।। श्रीः ।।
चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
592

श्रीमन्महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासविरचितं

श्रीपद्ममहापुराणम्

हिन्दीटीका–अकारादिश्लोकानुक्रमणी सहित

(चतुर्थ भाग : पाताल खण्ड)

सम्पादक एवं टीकाकार
आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी
(श्रीधराचार्य)

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

© सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी अंश का किसी भी रूप में पुनर्मुद्रण या किसी भी विधि (जैसे-इलेक्ट्रोनिक, यांत्रिक, फोटो-प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या कोई अन्य विधि) से प्रयोग या किसी ऐसे यंत्र में भंडारण, जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो, प्रकाशक की पूर्वलिखित अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है।

श्रीपद्ममहापुराणम् (1-7 भाग) – आचार्य शिव प्रसाद द्विवेदी

ISBN : 978-93-85005-30-5 (set)

प्रकाशक :
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के 37/117 गोपाल मन्दिर लेन, पोस्ट बॉक्स न. 1129
वाराणसी 221001
दूरभाष : (0542) 2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण : 2016
₹ 7500 (सात भाग–सम्पूर्ण)

वितरक :
चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस
4697/2 ग्राउण्ड फ्लोर, गली न. 21-ए
अंसारी रोड़, दरियागंज
नई दिल्ली 110002
दूरभाष : (011) 32996391, टेलीफैक्स : 23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

अन्य प्राप्तिस्थान :
चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड़, जवाहर नगर
पोस्ट बॉक्स न. 2113
दिल्ली 110007

*

चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पोस्ट बॉक्स न. 1069
वाराणसी 221001

मुद्रक :
डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली,

|| Shri ||

Chaukhamba Surbharti Prakashan
592

Śrīmanmaharṣikṛṣṇadvaipāyanavyāsaviracitaṁ

ŚRĪPADMAMAHĀPUĀṆAM

Hindi Commentary with Śloka Index

(Part IV : Pātāla Khaṇḍa)

Edited with Hindi Commentary by :

Acharya Shivprasad Dvivedi

(Shridharacharya)

Chaukhamba Surbharti Prakashan
Varanasi

© All right reserved. No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopying, recording or any information storage or retrieval system, without prior permission in writing from the Publisher.

ŚRĪPADMAMAHĀPUĀṆAM – Shivprasad Dvivedi

ISBN : 978-93-85005-30-5 (set)

Published by :
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(*Oriental Publishers or Distributors*)
K 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001 (India)
Tel. : +91-542-2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in

© All Rights Reserved

Edition 2016
₹ 7500 (1-7 Part Complete)

Also can be had from :
CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor, Street No. 21-A
Ansari Road, Daryaganj
New Delhi 110002
Tel : +91-11-32996391, +91-11-23286537
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

*

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bunglow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007

*

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001

Printed by :
A. K. Lithographer
Delhi

विषयानुक्रम

५. पाताल खण्ड

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१.	श्रीराम चरित वर्णन का उपक्रम	१७८९
२.	श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा प्रेषित हनुमानजी का भरतजी के समीप जाना और श्रीरामचन्द्रजी के आगमन का समाचार सुनाना	१७९३
३.	श्रीरामचन्द्रजी का अयोध्या में प्रवेश	१७९६
४.	श्रीरामचन्द्रजी का राज्याभिषेक	१७९९
५.	सभी देवताओं द्वारा श्रीराम की स्तुति और रामराज्य का वर्णन	१८०४
६.	रावण आदि की उत्पत्ति का वर्णन	१८०९
७.	तपस्या से प्रसन्न ब्रह्माजी द्वारा रावण आदि को वर प्रदान करना	१८१३
८.	ब्रह्मवध से संतप्त श्रीरामचन्द्र जी को अगस्त्य महर्षि द्वारा अश्वमेध याग करने का उपदेश	१८१६
९.	महर्षि अगस्त्य का श्रीरामचन्द्र की अश्वशला में अश्वमेध यज्ञोपयोगी अश्व का निरीक्षण	१८१९
१०.	अश्वमेध याग करने के लिए श्रीरामचन्द्र द्वारा रक्षकों के साथ अश्व को छोड़ना	१८२५
११.	श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से शत्रुघ्नजी का घोड़े की रक्षा के लिए जाना तथा पुष्कल की अपनी पत्नी से भेट वर्णन	१८३१
१२.	यज्ञाश्व के साथ शत्रुघ्नजी का अहिच्छत्रा नगरी में आना और कामाक्षोपाख्यान	१८३८
१३.	सुमद तथा अप्सराओं का संवाद तथा कामाक्षा देवी का प्रकट होकर सुमद को वरदान देना	१८४५
१४.	राजा सुमद का शत्रुघ्नजी से संवाद तथा च्यवनोपाख्यान का उपक्रम	१८५१
१५.	च्यवन एवं सुकन्या का उपाख्यान तथा ऋषि की तपस्या के प्रभाव का वर्णन	१८५६
१६.	सुकन्या और च्यवन का महाराज शर्याति के यज्ञ में जाना और शर्याति के द्वारा सुकन्या की भर्त्स्ना तथा महर्षि च्यवन की अश्विनी कुमारों को सोमपान कराकर इन्द्र का मान मर्दन करना	१८६१
१७.	शत्रुघ्नजी का अश्व के साथ बाजीपुर में जाने का वर्णन और काञ्ची के राजा रत्नग्रवी का उपाख्यान	१८६५
१८.	नील पर्वत पर निवास करने से चतुर्भुज स्वरूप की प्राप्ति का वर्णन	१८७१
१९.	राजा रत्नग्रीव की तीर्थ यात्रा का वर्णन	१८७४
२०.	गण्डकी तथा शालग्राम माहात्म्य का वर्णन	१८७९
२१.	नीलगिरि पर जाकर राजा रत्नग्रीव का भगवान् पुरुषोत्तम की स्तुति करना	१८८७
२२.	नीलगिरि पर्वत महिमा वर्णन	१८९१
२३.	राजा सुबाहु की नगरी में अश्व का आना और दमन के साथ राजा प्रतापाग्रय का युद्ध वर्णन	१८९६

अध्याय	विषय	पृष्ठ
२४.	दमन और पुष्कल का युद्ध और पुष्कल द्वारा दमन का पराजय	१९०३
२५.	सुबाहु का अपनी सेना के साथ युद्धभूमि में आना	१९०८
२६.	सुमति नामक मन्त्री के द्वारा राजा सुबाहु की सेना का अवलोकन	१९११
२७.	पुष्कल द्वारा चित्राङ्ग का वध	१९१६
२८.	राजा सुबाहु के पुत्र शोक का वर्णन	१९२०
२९.	सुबाहु तथा शत्रुघ्नजी का समागम	१९२६
३०.	अश्व के साथ शत्रुघ्नजी का तेज:पुर जाना और सत्यवान् आख्यान का उपक्रम	१९३१
३१.	राजा जनक का नरक द्वार पर जाने का कारण तथा सत्यवान् के धेनुव्रत का वर्णन	१९३७
३२.	सत्यवान् राजा का शत्रुघ्नजी को अपना राज्य समर्पण	१९४२
३३.	विद्युन्माली राक्षस के द्वारा अश्व का हरंण और वीरों द्वारा उस राक्षस को मारने की प्रतिज्ञा	१९४४
३४.	विद्युन्माली का वध	१९४९
३५.	अश्व का रेवातट आरण्यकाश्रम में जाना और लोमशरण्यक संवाद	१९५६
३६.	लोमशमहर्षि द्वारा समय निर्देश पूर्वक वर्णित श्रीरामचरित का आरण्यक मुनि द्वारा वर्णन	१९६२
३७.	आरण्यक का अयोध्या जाना	१९६९
३८.	नर्मदा ह्रद में अश्व का स्नान	१९७४
३९.	अश्व का देवनगर में जाना	१९७९
४०.	वीरमणि के साथ शत्रुघ्नजी का युद्ध करने का निश्चय	१९८४
४१.	रुक्माङ्गद का पुष्कल के साथ युद्ध	१९८८
४२.	पुष्कल तथा वीरमणि के बीच भयङ्कर युद्ध और राजा वीरमणि का पराजय	१९९१
४३.	शत्रुघ्नजी और पुष्कल के पराजय का वर्णन	१९९८
४४.	शिवजी के साथ हनुमानजी का युद्ध, हनुमानजी के प्रहार से व्याकुल शिवजी को उनको वरदान देना, द्रोणालच के देवता का हनुमानजी से पराजय	२००२
४५.	द्रोणाचल से संजीवनी लाकर हनुमानजी का पुष्कल आदि वीरों को जीवित करना और शत्रुघ्नजी के स्मरण करते ही भगवान् श्रीरामचन्द्र का रणमण्डल में आना	२००९
४६.	शङ्करजी के साथ श्रीराम का समागम	२०१३
४७.	अश्व का हेमकूट पर्वत पर आना और उसके गात्रस्तम्भ का होना	२०१६
४८.	शौनक महर्षि द्वारा शत्रुघ्नजी को कर्मगति का उपदेश	२०२१
४९.	राजा सुरथ की राजधानी कुण्डल पुर में अश्व का जाना और राजा द्वारा अश्व का ग्रहण	२०२७
५०.	शत्रुघ्नजी द्वारा राजा सुरथ के पास अङ्गद को दूत के रूप में भेजना	२०३२
५१.	राजकुमार चम्पक के साथ पुष्कल का युद्ध	२०३७
५२.	सुरथ तथा हनुमानजी का भयङ्कर युद्ध	२०४३
५३.	राजा सुरथ द्वारा शत्रुघ्नजी के सभी योद्धाओं का बन्धन और श्रीरामचन्द्रजी का सुरथ की सभा में आना	२०४८
५४.	महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में लव के द्वारा अश्व का पकड़ा जाना	२०५१
५५.	वात्स्यायन का सीतात्याग विषयक प्रश्न तथा शेषजी के द्वारा उस वृत्तान्त का वर्णन	२०५४

अध्याय	विषय	पृष्ठ
५६.	प्रातःकाल आकर गुप्तचरों का धोबी की बातों को श्रीरामचन्द्रजी को सुनाना	२०६१
५७.	सीता का पति से वियोग का कारण वर्णन	२०६७
५८.	लक्ष्मणजी का सीताजी को वन में छोड़ने के लिए जाना	२०७३
५९.	सीता लक्ष्मण सम्वाद जानकीजी का वन में परित्याग तथा कुश एवं लव की उत्पत्ति का वर्णन	२०७९
६०.	शत्रुघ्न के सेनापति कालजित् का लव के साथ युद्ध और कालजित् की मृत्यु	२०८७
६१.	शत्रुघ्न तथा लव के बीच घोर संग्राम एवं पुष्कल एवं हनुमानजी का पतन	२०९२
६२.	शत्रुघ्नजी के साथ युद्ध में लव की मूर्छा	२०९७
६३.	लव के मूर्छित होने से सीताजी का शोक करना तथा कुश एवं शत्रुघ्नजी का युद्ध एवं शत्रुघ्नजी का मूर्छित होना	२१०१
६४.	लव और कुश का हनुमान और सुग्रीव को बाँधकर सीताजी को दिखाना और युद्ध का वृत्तान्त बतलाना	२१०७
६५.	अश्व के साथ शत्रुघ्नजी आदि का अयोध्या आना	२११३
६६.	श्रीरामजी का वाल्मीकि महर्षि के साथ संवाद और सीताजी को वन से लाने के लिए लक्ष्मणजी का वन में जाना	२१२०
६७.	लक्ष्मणजी के साथ सीताजी का श्रीरामचन्द्रजी के यज्ञमण्डप में आना और यज्ञ का प्रारम्भ	२१३५
६८.	श्रीरामचन्द्रजी का यज्ञान्त स्नान	२१४२
६९.	श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन	२१४६
७०.	भगवान् श्रीकृष्ण के पार्षदसमूह का वर्णन	२१५५
७१.	नारदजी का वृन्दावन में भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीराधाजी का दर्शन करना	२१६०
७२.	भगवान् श्रीकृष्ण के श्रेष्ठ सुन्दरी समूह का वर्णन	२१६९
७३.	भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप वर्णन पूर्वक मथुरा का माहात्म्य वर्णन	२१८१
७४.	अर्जुन को राधा के स्वरूप का दर्शन पूर्वक स्त्रीत्व की प्राप्ति	२१८६
७५.	नारदजी को स्त्रीत्व की प्राप्ति	२२०३
७६.	भगवान् श्रीकृष्ण का गद्यमय संक्षिप्त चरित	२२०८
७७.	श्रीकृष्ण तीर्थ का वर्णन	२२०९
७८.	वैष्णव के धर्म और शालग्राम शिला के लक्षण आदि	२२१५
७९.	वैष्णवों के तिलक धारण आदि अनेक विधियों का वर्णन	२२१९
८०.	कलियुग में श्रीहरि नाम का माहात्म्य	२२२५
८१.	श्रीकृष्ण मन्त्रों के अर्थ का वर्णन	२२३०
८२.	मन्त्र दीक्षा की विधि	२२३६
८३.	वृन्दावन में भगवान् की प्रतिदिन की लीला का वर्णन	२२४४
८४.	भगवद् ध्यान का वर्णन	२२५४
८५.	भक्ति का लक्षण और उसका भेद	२२६३
८६.	वैशाख माहात्म्य एवं स्नान विधि का वर्णन	२२७०
८७.	देवशर्मा का वृत्तान्त	२२७५

अध्याय	विषय	पृष्ठ
८८.	ऋण सम्बन्धी आदि पुत्रों का तथा संसार की नि:सारता का वर्णन	२२८२
८९.	देवशर्मा और सुमना संवाद	२२८४
९०.	देवशर्मा के विप्रत्व प्राप्ति के कारण का वर्णन	२२९०
९१.	भगवान् विष्णु की प्रसन्नता से देवशर्मा और सुमना को पुत्र की प्राप्ति	२२९५
९२.	वैशाख मास की महिमा और चित्रोपख्यान	२२९७
९३.	वैशाख के महीने में रेवा नदी में स्नान करने का महत्त्व	२३०८
९४.	पाप प्रशमन स्तोत्र का माहात्म्य और पाँच पापियों का उपाख्यान एवं आठ प्रेतों की मुक्ति का वर्णन	२३०९
९५.	संक्षेप में वैशाख मास की विधि का वर्णन	२३२३
९६.	वैशाख के महीने में श्रीभगवान् की पूजा करने के माहात्म्य का वर्णन	२३३६
९७.	अनेक प्रकार के व्रतों के नियम तथा स्नान आदि का वर्णन	२३४९
९८.	वैशाख के महीने में विष्णुपूजा के विधान का वर्णन	२३५८
९९.	राजा महीरथ के वृत्तान्त का वर्णन	२३६९
१००.	कश्यप ब्राह्मण के द्वारा राजा महीधर से वैशाख स्नान करवाना	२३७७
१०१.	महीधर तथा देवदूत का सम्वाद	२३८०
१०२.	राजा महीधर के द्वारा वैशाख मास के स्नान जन्य एक दिन के पुण्य को देने से नारकीय जीवों के उद्धार का वर्णन	२३८५
१०३.	भगवान् विष्णु का ध्यान और वैशाख माहात्म्य वर्णन की समाप्ति	२३८८
१०४.	श्रीरामचन्द्रजी का श्रीरङ्गनगर में जाकर विभीषणजी को बन्धन मुक्त करना	२३९६
१०५.	भस्म का माहात्म्य वर्णन	२४११
१०६.	भस्म द्वारा कुत्ते को सुगति प्रदान वर्णन	२४३२
१०७.	भस्म की महिमा वीरभद्र कृत भस्म के द्वारा मुनियों तथा देवताओं को जीवन प्रदान	२४४२
१०८.	भस्म की महिमा	२४५०
१०९.	भस्म माहात्म्य	२४५७
११०.	शिवपूजन महात्म्य	२४६७
१११.	शिवजी के नाम, पूजा, नमस्कार तथा दर्शन का माहात्म्य	२४७६
११२.	शिवनाम माहात्म्य	२४८१
११३.	शम्भुमुनि द्वारा पुराण की महिमा और पौराणिक की पूजा का वर्णन	२४९४
११४.	महर्षि गौतम के गृह का वृत्तान्त वर्णन, महर्षि गौतम के घर बाण आदि असुरों का आना, महर्षि गौतम के घर ब्रह्मा विष्णु तथा शिव आदि का आना, भगवान् विष्णु तथा शिवजी की जलक्रीड़ा का वर्णन, महर्षि गौतम के घर देवताओं का भोज करना, शिव पार्वती संवाद, हनुमानजी द्वारा शिवलिङ्ग की पूजा, चारो युगों के धर्मों का वर्णन, हरि कीर्तन तथः पुराण	२४९९
११५.	पुराण श्रवण विधि और पुराण वाचनविधि	२५४२
११६.	जाम्बवान् के द्वारा पूर्व कल्प के रामकथा का वर्णन	२५५०
११७.	भगवान् श्रीराम द्वारा कौसल्याम्बा के मासिक श्राद्ध का वर्णन	२५८४

।। नमः श्रिये ।।
ओम् नमो भगवते वासुदेवाय
भगवते कृष्णद्वैपायनाय नमः

श्रीपद्ममहापुराण

पाँचवा पाताल खण्ड

पहला अध्याय

नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।१।।
ऋषय ऊचु:
श्रुतं सर्वं महाभाग ! स्वर्गखण्डं मनोहरम्। त्वतोऽधुना वदायुष्मञ्छ्रीरामचरितं हि नः।।२।।
सूत उवाच
अथैकदा धराधारं पृष्टवान्भुजगेश्वरम्। वात्स्यायनो मुनिवर:कथामेतां सुनिर्मलाम्।।३।।
श्रीवात्स्यायन उवाच
शेष श्रुता:कथास्त्वत्तो जगत्सर्गलयादिकाः। भूगोलश्च खगोलश्च ज्योतिश्चक्रविनिर्णयः।।४।।
महत्तत्त्वादिसृष्टीनां पृथक्तत्त्वविनिर्णयः। नाना राजचरित्राणि कथितानि त्वयाऽनघ।।५।।
सूर्यवंशभवानां च राज्ञां चरित्रामद्भुतम्। तत्रानेकमहापापहरा रामकथास्तुताः।।६।।
तस्य वीरस्य रामस्य हयमेधकथा श्रुता। संक्षेपतो मया त्वत्तस्तामिच्छामि सविस्तराम्।।७।।

श्रीराम चरित वर्णन का उपक्रम

भगवान् नारायण, नरोत्तम नर, सरस्वती देवी तथा महर्षि व्यास को नमस्कार करके इस जय संज्ञक ग्रन्थ का वाचन (अध्ययन) करें।।१।। **ऋषियों ने कहा**— हे आयुष्मन् महाभाग सूतजी ! आपसे हमलोगों ने मनोहर स्वर्गखण्ड की कथा सुनी; अब आप श्रीरामचरित हमलोगों को सुनायें।।२।। **सूतजी ने कहा**— एक बार वात्स्यायन मुनि ने पृथिवी को धारण करने वाले शेषजी से इस निर्मल कथा के विषय में पूछा था।।३।। **श्रीवात्स्यायन मुनि ने कहा**— हे शेष जी ! आपसे मैंने जगत् की सृष्टि, लय आदि भूगोल, खगोल तथा ज्योतिश्चचक्र के निर्णय सम्बन्धी कथा को सुना है।।४।। हे अनघ ! आपने महत् तत्त्व आदि की सृष्टि अलग-अलग तत्त्वों का निर्णय तथा अनेक राजाओं के चरित्र को हमें सुनाया है।।५।। सूर्यवंश में उत्पन्न होने वाले राजाओं के अद्भुत चरित्र, उसमें भी महापापों को विनष्ट करने वाली राम कथाओं, तथा सूर्यवंश के वीर श्रीराम के अश्वमेध की कथा का संक्षेप में वर्णन मैंने सुना है। अब मैं उसे विस्तार से सुनना चाहता हूँ।।६-७।। उसके

या श्रुता संस्मृता चोक्ता महापातकहारिणी। चिन्तितार्थप्रदात्री च भक्तवित्तप्रतोषदा ॥८॥

शेष उवाच

धन्योऽसि द्विजवर्य ! त्वं यस्य ते मतिरीदृशी ।
रघुवीरपदद्वन्द्वमकरन्दस्पृहावती ॥९॥
वदन्ति मुनयः सर्वे साधूनां सङ्गमं वरम्। यस्मात्पापक्षयकरी रघुनाथकथा भवेत् ॥१०॥
त्वया मेऽनुग्रहःसृष्टो यद्रामःस्मारितःपुनः। सुरासुरकिरीटौघमणिनीराजिताङ्घ्रिकः ॥११॥
रावणारिकथावार्द्धौ मशको मादृशःकियान् ।
यत्र ब्रह्मादयो देवा मोहिता न विदन्त्यपि ॥१२॥
तथापि भो मया तुभ्यं वक्तव्यं स्वीयशक्तितः ।
पक्षिणः स्वगतिं श्रित्वा खे गच्छन्ति सुविस्तरे ॥१३॥
चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्। येषां वै यादृशी बुद्धिस्ते वदन्त्येव तादृशम् ॥१४॥
रघुनाथसतीकीर्तिर्मद्बुद्धिंनिर्मलीमसाम् । करिष्यति स्वसम्पर्कात्कनकं त्वनलो यथा ॥१५॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तं मुनिवरं ध्यानस्तिमितलोचनः। ज्ञानेनालोकयाञ्चके कथां लोकोत्तरां शुभाम्॥१६॥
गद्गदस्वरसंयुक्तो महाहर्षाङ्कितातङ्गकः । कथयामास विशदां कथां दाशरथेःपुनः ॥१७॥

शेष उवाच

लङ्केश्वरे विनिहते देवदानवदुःखदे । अप्सरोगणवक्त्राब्जचन्द्रमःकान्तिहर्तरि ॥१८॥

सुनने तथा याद करने से महापातकों का नाश होता है और अभिप्रेत अर्थ की प्राप्ति होती है, तथा भक्तों के चित्त को सन्तोष मिलता है ॥८॥ **शेषजी ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! आप धन्य हैं, क्योंकि आपकी बुद्धि भगवान् श्रीराम के चरणारविन्द के पराग के पान का इच्छुक है ॥९॥ सभी मुनिजन साधु पुरुषों की सङ्गति को श्रेष्ठ बतलाते हैं; क्योंकि सत्संगति से पापों को विनष्ट करने वाली भगवान् श्रीराम की कथा होती है ॥१०॥ श्रीराम कथा की याद दिलाकर आपने मेरे ऊपर कृपा ही की है । भगवान् श्रीराम के चरणों की आरती तो देवता तथा असुर अपने मुकुट समूह की मणियों से किया करते हैं ॥११॥ श्रीराम कथा तो महासागर के समान है और मैं एक मशक के समान हूँ। उसे मैं कितना कह सकता हूँ ? श्रीराम कथा के विषय में ब्रह्मा आदि देवता भी मोहित हैं और उसे पूर्ण रूप से नहीं जानते हैं ॥१२॥ फिर भी मैं आपको उसे अपनी शक्ति के अनुसार सुनाऊँगा ही, विस्तृत आकाश में पक्षी भी अपनी शक्ति के अनुसार ही उड़ते हैं ॥१३॥ श्रीराम कथा सौ करोड़ श्लोकों में विस्तृत है, जिसकी जैसी बुद्धि होती है, वह अपनी बुद्धि के अनुसार उसका वर्णन करता है ॥१४॥ भगवान् श्रीराम की सत्कीर्ति मेरी बुद्धि को अपने सम्पर्क से उसी तरह से स्वच्छ बना देगी जिस तरह अग्नि के सम्पर्क से सुवर्ण शुद्ध हो जाता है ॥१५॥ **सूतजी ने कहा—** इस तरह से मुनिश्रेष्ठ वात्स्यायन को कहकर शेषजी ने अपनी आँखें बन्द कर लीं और उन्होंने अपने ज्ञान नेत्र से श्रीरामकथा का साक्षात्कार किया ॥१६॥ अत्यन्त हर्ष के कारण उनको रोमाञ्च हो गया और उन्होंने अपनी गद्गद वाणी से भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की विशद कथा को कहना प्रारम्भ किया॥१७॥ **शेषजी ने कहा—** देवताओं और दानवों को दुःख देने वाले तथा अप्सराओं के मुखचन्द्र की कान्ति का हरण करने वाले, रावण के मारे जाने पर ॥१८॥ इन्द्र आदि सभी देवताओं ने सुख प्राप्त किया और

सुराः सर्वे सुखं प्रापुरिन्द्रप्रभृतयस्तदा। सुखं प्राप्ताः स्तुतिं चक्रुर्दासवत्प्रणतिं गताः ॥१९॥
लङ्कायां च प्रतिष्ठाप्य धर्मयुक्तं विभीषणम् ।
सीतया सहितो रामः पुष्पकं समुपाश्रितः ॥२०॥
सुग्रीवहनुमत्सीतालक्ष्मणैस्संयुतस्तदा । लङ्कामपश्यद् बहुधा भग्नप्राकारतोरणाम् ॥२१॥
दृष्ट्वाऽशोकवनं तत्र सीतास्थानं मुमूर्च्छह । शिंशपास्तत्र वृक्षांश्च पुष्पितान्कोरकैर्युतान् ॥२२॥
राक्षसीभिः समाकीर्णां मृताभिर्हनुमद्भयात् । इत्थं सर्वं विलोक्याशु रामः प्रायात्पुरीं प्रति ॥२३॥
विभीषणोऽपि सचिवैरन्वगाद्विरहोत्सुकः। ब्रह्मादिदेवैः सहितः स्वीयस्वीयविमानकैः ॥२४॥
देवदुन्दुभिनिर्घोषाञ्छृण्वञ्छ्रोत्रसुखावहान् । यथैवाप्सरसां नृत्यैः पूज्यमानो रघूत्तमः ॥२५॥
सीतायै दर्शयन्मार्गे तीर्थान्याश्रमवन्ति च । मुनींश्च मुनिपुत्रांश्च मुनिपत्नीः पतिव्रताः ॥२६॥
यत्र यत्र कृतावासाः पूर्वं रामेण धीमता। तान्सर्वान्दर्शयामास लक्ष्मणेन समन्वितः ॥२७॥
इत्येवं दर्शयंस्तस्यै रामोऽद्राक्षीत्स्वकां पुरीम् ।
तस्याः पुनः समीपे तु नन्दिग्रामं ददर्श ह ॥२८॥
यत्र वै भरतो राजा पालयन्धर्ममास्थितः। भ्रातुर्वियोगजनितं दुःखचिह्नं बहन्बहु॥२९॥
गर्तशायी ब्रह्मचारी जटावल्कलसंयुतः। कृशाङ्गयष्टिर्दुःखार्तः कुर्वन्रामकथां मुहुः ॥३०॥
यवान्नमपि नो भुङ्क्ते जलं पिबति नो मुहुः। उद्यन्तं सवितारं यो नमस्कृत्य ब्रवीति च॥३१॥
जगन्नेत्र ! सुरस्वामिन्हर मे दुष्कृतं महत् । मदर्थे रामचन्द्रोऽपि जगत्पूज्यो वनं ययौ॥३२॥

वे दास के समान साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए भगवान् श्रीराम की स्तुति किए ॥१९॥ लङ्का के राज्य पर विभीषण को स्थापित करके भगवान् श्रीराम सीताजी के साथ पुष्पक विमान पर बैठ गये ॥२०॥ उस समय उन्होंने सुग्रीव, हनुमान, सीता और लक्ष्मणजी के साथ जिसका प्राकार (चाहारदिवारी) टूट गया था, उस लङ्का को उन्होंने बार-बार देखा ॥२१॥ अशोक वन को देखकर और वहाँ पर विद्यमान सीता के स्थान को देखकर वे मूर्छित हो गये। वहाँ पर शिंशपा के वृक्ष पुष्पित और मुकुलित थे ॥२२॥ हनुमान्जी के भय से मरी हुयी राक्षसियाँ वहाँ पड़ी हुयी थीं इस तरह से सब कुछ देखकर वे शीघ्र ही अपनी नगरी के लिए चल पड़े ॥२३॥ भगवान् श्रीराम के विरह से व्याकुल विभीषण भी उनके पीछे चले; देवता भी अपने-अपने विमानों के साथ चले ॥२४॥ देवताओं की दुन्दुभि की सुखद ध्वनि को सुनते हुए तथा अप्सराओ के नृत्यों से पूजित होते हुए श्रीरामचन्द्रजी ॥२५॥ सीताजी को मार्ग में पड़ने वाले आश्रमों से युक्त तीर्थों, मुनियों मुनिपुत्रों तथा पतिव्रता मुनि पत्नियों को तथा॥२६॥ जहाँ-जहाँ पर भगवान् श्रीराम ने लक्ष्मणजी के साथ निवास किया था उन सभी स्थानों को दिखाया॥२७॥ इस तरह से सीताजी को विभिन्न स्थानों को दिखाते हुए भगवान् श्रीराम ने अपनी पुरी अयोध्या को देखा और उसके बाद उन्होंने अयोध्या के सन्निकट नन्दीग्राम को देखा ॥२८॥ वहीं पर राजा भरत धर्म का पालन करते हुए रहते थे । वे अपने भाई श्रीरामचन्द्रजी के वियोग जन्य दुःख के अनेक चिह्नों को धारण किए हुए थे ॥२९॥ दुःखी होने के कारण उनके अङ्ग दुर्बल हो गये थे, वे गढे में सोते थे, ब्रह्मचर्य का पालन करते थे, जटा तथा बल्कल धारण किए रहते थे और बार-बार भगवान् श्रीराम की चर्चा करते रहते थे ॥३०॥ वे यव भी नहीं खाते थे और बार-बार जल भी नहीं पीते थे । उगते हुए सूर्य से वे कहते थे ॥३१॥ हे जगत् के नेत्र! हे देवताओं के स्वामिन् ! आप मेरे महान् पाप को दूर कर दें, मेरे ही कारण जगत् पूज्य श्रीरामचन्द्र वन में चले

सीतया सुकुमाराङ्ग्या सेव्यमानोऽटवीं गतः ।
या सीता पुष्पपर्यङ्के वृन्तमासाद्य दुःखिता ॥३३॥
या सीता रविसन्तापं कदापि प्राप नो सती ।
मदर्थे जानकी सा च प्रत्यरंण्यं भ्रमत्यहो ॥३४॥
या सीता राजवृन्दैश्च न दृष्टा नयनैःकदा । सा सीता दृश्यते नूनं किरातैःकालरूपिभिः॥३५॥
या सीता मधुरं त्वन्नं भोजिता न बुभुक्षति। सा सीताऽद्य वनस्थानि फलानि प्रार्थयत्यहो ॥३६॥
इत्येवमन्वहं सूर्यमुपस्थाय वदत्यदः। प्रातः प्रातर्महाराजो भरतो रामवल्लभः॥३७॥
यश्चोच्यमानः सचिवैःसमदुःखसुखैर्बुधैः। नीतिज्ञैःशास्त्रनिपुणैरिति प्रोवाच तान्नृपः॥३८॥
अमात्या दुर्भगं मां किं प्रब्रूत पुरुषाधमम् । यदर्थमग्रजो रामो वनं प्राप्यावसीदति ॥३९॥
दुर्भगस्य मम प्रस्वाः पापमार्जनमादरात्। करोमि रामचन्द्राङ्घ्रिं स्मारं स्मारं सुमन्त्रिणः॥४०॥
धन्या सुमित्रा सुतरां वीरसूस्वपतिप्रिया। यस्यास्तनूजो रामस्य चरणौ सेवतेऽन्वहम्॥४१॥
यत्र ग्रामे स्थितो नूनं भरतो भ्रातृवत्सलः । विलापं प्रकरोत्युच्चैस्तं ग्रामं स ददर्श ह ॥४२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे रघुनाथस्य
भरतावासनन्दिग्रामदर्शनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

* * *

गये ॥३२॥ सुकुमार अङ्गों वाली सीता के द्वारा सेवित होकर वे वन में गये हैं। जो सीताजी पुष्प की शय्या पर सोती हुयी पुष्प की डाल के कारण भी व्याकुल हो जाती थीं ॥३३॥ जो सती नारी कभी सूर्य के सन्ताप को नहीं वर्दास्त करती थी, वह सीता मेरे कारण वन-वन में भटक रही हैं ॥३४॥ जिन सीता को राजगण अपनी आँखों से भी नहीं देख पाये थे, उन सीता को विकराल शरीर वाले किरात देखते हैं ॥३५॥ जो सीता मधुर अन्न को खिलाये जाने पर भी खाना नहीं चाहती थीं वे वनैले फलों को खाना चाहती होंगी ॥३६॥ इस तरह से प्रतिदिन सूर्य की उपासना करके वे सवेरे-सवेरे कहा करते हैं। वे भरतजी श्रीराम के प्रिय हैं ॥३७॥ उनके दुःख तथा अपने दुःख को समान रूप से अनुभव करने वाले नीतिज्ञ, तथा शास्त्र निपुण मन्त्रियों के द्वारा कहे जाने पर वे उनसे कहते हैं ॥३८॥ मन्त्रियों ! दुर्भाग्य सम्पन्न अधम पुरुष मुझसे आपलोग क्या पूछते हैं ? मेरे ही कारण श्रीरामचन्द्रजी वन में जाकर दुःख का अनुभव कर रहे हैं ॥३९॥ मन्त्रियों ! दुर्भाग्य युक्त मैं अपनी माता के पापों का मार्जन भगवान् श्रीराम के चरणों का प्रतिदिन प्रेम पूर्वक स्मरण करके कर रहा हूँ ॥४०॥ इस समय अपने पति को प्रिय सुमित्रा देवी ही धन्य हैं, क्योंकि उनके पुत्र लक्ष्मण श्रीराम के चरणों की सेवा प्रतिदिन करते हैं॥४१॥ जिस नन्दी ग्राम में रहते हुए भरतजी इस प्रकार से विलाप करते रहते थे, उस नन्दी ग्राम को भगवान् श्रीराम ने देखा ॥४२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवाद के अन्तर्गत श्रीरामजी के
द्वारा भरत के निवास स्थान नन्दी ग्राम के दर्शन नामक पहले अध्याय का
शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

* * *

दूसरा अध्याय

शेष उवाच

अथ तद्दर्शनोत्कण्ठा विह्वलीकृतचेतसा। पुनःपुनःस्मृतो भ्राता भरतो धार्मिकाग्रणीः ॥१॥
उवाच च हनूमन्तं बलवन्तं समीरजम्। प्रस्फुरद्दशनव्याजचन्द्रकान्तिहतान्धकः ॥२॥
शृणु वीर हनूमंस्त्वं मद्‌गिरं भ्रातृनोदिताम्। चिरन्तनवियोगेन गद्गदीकृतविह्वलाम्॥३॥
गच्छ तं भ्रातरं वीर समीरणतनूद्भव !। मद्वियोगकृशां यष्टिं वपुषो बिभ्रतं हठात् ॥४॥
यो वत्कलं परीधात्ते जटां धत्ते शिरोरुहे। फलानां भक्षणमपि न कुर्याद्विरहातुरः ॥५॥
परस्त्री यस्य मातेव लोष्टवत्काञ्चनं पनुः। प्रजाः पुत्रानिवोद्रक्षेद्बान्धवो मम धर्मवित् ॥६॥
मद्वियोगजदुःखाग्निज्वालादग्धकलेवरम् । मदागमनसन्देशपयोवृष्ट्याऽशुसिञ्च तम्॥७॥
सीतया सहितं रामं लक्ष्मणेन समन्वितम्। सुग्रीवादि कपीन्द्रैश्च रक्षोभिःसविभीषणैः ॥८॥
प्राप्तं निवेदय सुखात्पुष्पकासनसंस्थितम्। येन मे सोऽनुजः शीघ्रं सुखमेति मदागमात् ॥९॥
इति श्रुत्वा ततो वाक्यं रघुवीरस्य धीमतः। जगाम भरतावासं नन्दिग्रामं निदेशकृत्॥१०॥
गत्वा स नन्दिग्रामं तु मन्त्रिवृद्धैःसुसंयुतम्। भरतं भ्रातृविरहक्लिन्नं धीमान्ददर्श ह॥११॥
कथयन्तं मन्त्रिवृद्धान्रामचन्द्रकथानकम्। तदीयपदपाथोजमकरन्दसुनिर्भरः ॥१२॥
नमश्चकार भरतं धर्ममूर्तियुतं किल। विधात्रा सकलांशेन सत्त्वेनैव विनिर्मितम्॥१३॥

श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा प्रेषित हनुमानजी का भरतजी के समीप जाना और श्रीरामचन्द्रजी के आगमन का समाचार सुनाना

शेषजी ने कहा— उसके पश्चात् भरतजी को देखने की उत्कण्ठा से उत्कण्ठित होने के कारण जिनका अन्तःकरण विह्वल हो गया था ऐसे धार्मिकों में अग्रगण्य भाई भरतजी को श्रीरामचन्द्रजी ने बार-बार स्मरण किया। उसके बाद अपने चमकते हुए दाँतों की कान्ति से चन्द्रमा में विद्यमान अन्धकार को दूर करने वाले भगवान् श्रीराम ने बलवान् पवनपुत्र हनुमान्‌जी से कहा ॥१-२॥ हे हनुमन् ! अपने भाई के द्वारा प्रेरित तथा चिरकालिक वियोग के कारण गद्गद बनी हुयी मेरी वाणी को आप सुनें ॥३॥ हे पवनपुत्र ! मेरे वियोग के कारण दुर्बल शरीर को धारण करने वाले मेरे भाई भरत के पास तुम जाओ ॥४॥ जो भरत मेरे विरह से व्याकुल होने के कारण वल्कल वस्त्र को धारण करते हैं और वालों की जटा को धारण करते हैं तथा फलों को भी नहीं खाना चाहते हैं ॥५॥ मेरे धार्मिक वन्धु भरत दूसरे की स्त्री को माता के समान सुवर्ण को भी मिट्टी के ढेले के समान देखते हैं। प्रजाओं की रक्षा पुत्र के समान करते हैं ॥६॥ मेरे वियोग जन्य अग्नि के कारण जिनका शरीर दग्ध सा हो चुका है मेरे आगमन के समाचार रूपी जल से तुम उनके शरीर को सींञ्चित करो ॥७॥ तुम जाकर उनको बतलाओं कि श्रीराम, सीता, लक्ष्मण, कपिराज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषण आदि के साथ सुख पूर्वक पुष्पक विमान से आ रहे हैं, जिससे मेरे अनुज को सुख की प्राप्ति हो ॥८-९॥ भगवान् श्रीराम की वाणी को सुनकर उनकी आज्ञा का पालन करने वाले हनुमान्‌जी भरतजी के निवास स्थान नन्दीग्राम में गये ॥१०॥ नन्दीग्राम में जाकर वृद्ध मन्त्रियों के साथ तथा अपने भाई के वियोग के कारण दुर्बल बने हुए भरतजी को बुद्धिमान हनुमान्‌जी ने देखा ॥११॥ उस समय भरतजी मन्त्री वृद्ध से श्रीरामजी की कथा की चर्चा कर रहे थे और वे भगवान् के चरण कमल के पराग से परिपूर्ण थे ॥१२॥ ब्रह्माजी के द्वारा निर्मित सम्पूर्ण सत्त्व से युक्त धर्म की मूर्ति के रूप में

तं दृष्ट्वा भरतःशीघ्रं प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
स्वागतं चेतिहोवाच रामस्य कुशलं वद ॥१४॥
इत्येवं वदतस्तस्य भुजो दक्षिणतोऽस्फुरत्। हृदयाच्च गतः शोको हर्षास्त्रैःपुरिताननः ॥१५॥
विलोक्य तादृशं भूपं प्रत्युवाच कपीश्वरः । निकटे हि पुरःप्राप्तं विद्धि रामं सलक्ष्मणम् ॥१६॥
रामागमनसन्देशामृतसिक्तकलेवरः । प्रापयद्धर्षपूरं हि सहस्त्रास्यो न वेद्म्यहम्॥१७॥
जगाद मम तन्नास्ति यत्तुभ्यं दीयते मया । दासोऽस्मि जन्मपर्यन्तं रामसन्देशहारक ! ॥१८॥
वसिष्ठोऽपि गृहीत्वाऽर्घ्यं मन्त्रिवृद्धाःसुहर्षिताः ।
जग्मुस्ते रामचन्द्रं च हनुमद्दर्शिताऽध्वना ॥१९॥
दृष्ट्वा दूरात्समायान्तं रामचन्द्रं मनोरमम् । पुष्पकासनमध्यस्थं ससीतं सहलक्ष्मणम् ॥२०॥
रामोऽपि दृष्ट्वा भरतं पादचारेण सङ्गतम् । जटावल्कलकौपीनपरिधानसमन्वितम् ॥२१॥
अमात्यान्भ्रातृवेषेण समवेषाञ्जटाधरान् । नित्यं तपःक्लिष्टतया कृशरूपान्ददर्श ह ॥२२॥
रामोऽपि चिन्तयामास दृष्ट्वा वै तादृशं नृपम् ।
अहो दशरथस्यायं राजराजस्य धीमतः ॥२३॥
पुत्रःपदातिरायाति जटावल्कलवेषभृत् । न दुःखं तादृशं मेऽन्यद्वनमध्यगतस्य हि ॥२४॥
यादृशं मद्वियोगेन चैतस्य परिवर्तते। अहो पश्यत मे भ्राता प्राणात्प्रियतमःसखा ॥२५॥
श्रुत्वा मां निकटे प्राप्तं मन्त्रिवृद्धैःसुहर्षितः। द्रष्टुं मां भरतोऽभ्येति वसिष्ठेन समन्वितः ॥२६॥
इति ब्रुवन्नरपतिःपुष्पकान्नभसोऽङ्गणात् । विभीषणहनूमद्भ्यां लक्ष्मणेन कृतादरः ॥२७॥

विद्यमान भरतजी को हनुमान्‌जी ने नमस्कार किया ॥१३॥ उनको देखकर भरतजी शीघ्र उठकर खड़े हो गये और हाथ जोड़कर कहे कि आप श्रीरामचन्द्रजी का समाचार बतलायें और उन्होंने उनका स्वागत किया ॥१४॥ इस तरह से कहते ही उनकी दायीं भुजा फड़कने लगी उनके हृदय से शोक निकल गया और हर्ष की आँसुओं से उनका मुखमण्डल भर गया ॥१५॥ उस तरह के राजा भरत को देखकर कपियों में श्रेष्ठ हनुमानजी ने कहा कि नगर के सन्निकट भगवान् श्रीराम, लक्ष्मणजी के साथ आ गये हैं ॥१६॥ श्रीरामजी के आगमन के सन्देश को सुनकर भरतजी के भीतर हर्ष की धारा प्रवाहित होने लगी । उसका वर्णन हजार मुखों वला मैं (शेष) भी नहीं कर सकता हूँ ॥१७॥ उन्होंने कहा हे सन्देश हारक ! मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो इस सन्देश के बदले में मैं तुम्हें दे सकूँ । मैं आजीवन तुम्हारा दास बना रहूँगा ॥१८॥ महर्षि वसिष्ठ भी अर्घ लेकर तथा बूढ़े मन्त्री भी हर्षित होकर भगवान् श्रीराम के पास उस मार्ग से गये जिसका निर्देश हनुमानजी ने किया था । दूर से ही सीता और लक्ष्मणजी के साथ पुष्पक विमान आते हुए श्रीरामचन्द्र को देखे ॥२०॥ श्रीरामचन्द्र भी अपने भाई के ही समान वेष वाले, जटा तथा वल्कल धारण करने वाले मन्त्रियों तथा जटा, वल्कल तथा कौपीन धारण करने वाले, पैदल आते हुए भरतजी को सदा तपस्या के कारण दुर्बल शरीर वालों को देखा ॥२२॥ राजा भरत को उस प्रकार का देखकर श्रीरामचन्द्र भी सोचने लगे; ये महाराज दशरथ के पुत्र भरत धन्य हैं । ये जटा और विल्कल धारण करके पैदल आ रहे हैं । यद्यपि मैं वन में गया था; किन्तु मुझको ऐसा कष्ट नहीं हुआ जैसा कि मेरे वियोग के कारण भरत को कष्ट हुआ है । मेरे प्राण से भी प्रिय भाई तथा मित्र भरत को देखो ॥२४-२५॥ यह सुनकर कि मैं सन्निकट में आ गया हूँ मुझे देखने के लिए हर्षित होकर वृद्ध मन्त्रियों तथा महर्षि वसिष्ठ के

यानादवततराशु विरहक्लिन्नमानसः। भ्रातर्भ्रातः पुनर्भ्रातर्भ्रातर्भ्रातर्वदन्मुहुः ॥२८॥
दृष्ट्वा समुत्तीर्णमिमं रामचन्द्रं सुरैर्युतम्। भरतो भ्रातृविरहक्लिन्नं धीमान्ददर्श ह ॥२९॥
हर्षाश्रूणि प्रमुञ्चंश्च दण्डवत्प्रणनाम ह। रघुनाथोऽपि तं दृष्ट्वा दण्डवत्पतितं भुवि ॥
उत्थाप्य जगृहे दोर्भ्यां हर्षालोकसमन्वितः ॥३०॥
उत्थापितोऽपि हि भृशं नोदतिष्ठद्रुदन्मुहुः। रामचन्द्रपदाम्भोजग्रहणासक्तबाहुभृत् ॥३१॥

भरत उवाच

दुराचारस्य दुष्टस्य पापिनो मे कृपां कुरु। रामचन्द्र ! महाबाहो कारुण्यात्करुणानिधे॥३२॥
यस्ते विदेहजापाणिस्पर्शं क्रूरममन्यत। स एव चरणो राम वने बभ्राम मत्कृते ॥३३॥
इत्युक्त्वाऽश्रुमुखो दीनःपरिरभ्य पुनःपुनः। प्राञ्जलिःपुरतस्तस्थौ हर्षविह्वलिताननः ॥३४॥
रघुनाथस्तमनुजं परिष्वज्य कृपानिधिः। प्रणम्य च महामन्त्रिमुख्यानापृच्छ्य सादरम्॥३५॥
भरतेन समं भ्रात्रा पुष्पकासनमास्थितः। सीतां ददर्श भरतो भ्रातृपत्नीमनिन्दिताम् ॥३६॥
अनसूयामिवात्रेःकिं लोपामुद्रां घटोद्भवः। पतिव्रतां जनकजाममन्यत ननाम च ॥३७॥
मातःक्षमस्व यदघं मया कृतमबुद्धिना। त्वत्सदृश्यःपतिपराःसर्वेषां साधुकारिकाः ॥३८॥
जानक्यपि महाभागा देवरं वीक्ष्य सादरम्। आशीर्भिरभियुज्याथ समपृच्छदनामयम् ॥३९॥

साथ आ रहे हैं ॥२६॥ इस तरह कहते हुए राजा रामचन्द्रजी विभीषण, हनुमान तथा लक्ष्मणजी से समादृत होकर आकाशस्थ पुष्पक विमान से शीघ्र ही भाई-भाई बार-बार कहते हुए उतर पड़े ॥२७-२८॥ बुद्धिमान् भरतजी भी देवताओं के साथ अपने भाई के वियोग के कारण कृश शरीर वाले तथा विमान से उतरे हुए श्रीराम चन्द्रजी को देखे ॥२९॥ आँखों से हर्षाश्रु के बहाते हुए वे दण्ड के समान पृथिवी पर गिर कर प्रणाम किए। श्रीरामचन्द्रजी भी उनको दण्ड के समान पृथिवी पर गिरे हुए देखकर अत्यन्त हर्षित होकर उठाकर दोनों हाथों से पकड़ लिए।॥३०॥ उठाये जाने पर भी बहुत रोते हुए भरतजी उठ नहीं रहे थे। वे अपने दोनों हाथों से श्रीरामचन्द्र के चरणों को पकड़ लिऐ थे ॥३१॥ **भरतजी ने कहा**— हे करुणासागर ! महाबाहो श्रीरामचन्द्रजी आप अपनी करुणा के द्वारा मुझ दुराचारी, दुष्ट और पापी पर कृपा करें ॥३२॥ आपके जो चरण श्रीजानकीजी के हाथों के स्पर्श को भी कठोर मानते थे आपके वे ही चरण मेरे कारण वन में भ्रमण करते रहे ॥३३॥ इस तरह कहकर जिनका मुख आंसू से भर गया था; दीन होकर तथा भगवान् का बार-बार आलिङ्गन करके, हर्ष से विह्वल बने मन वाले भरतजी हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्रजी के सामने खड़े हो गये ॥३४॥ कृपा सागर श्रीरामचन्द्रजी भी भरतजी का आलिङ्गन करने के बाद महामन्त्रियों में मुख्य मन्त्रियों को प्रणाम करके आदर पूर्वक उनसे कुशल पूछे ॥३५॥ फिर वे अपने भाई भरतजी के साथ पुष्पक विमान पर बैठ गये। वहाँ पर भरतजी ने अपने भाई की पत्नी निर्दोष श्रीजानकीजी का दर्शन किया ॥३६॥ उन्होंने महर्षि अत्रि की पत्नी अनसूया अथवा महर्षि अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा के समान श्रीजानकीजी को पतिव्रता मानकर उनको प्रणाम किया ॥३७॥ उन्होंने कहा हे माँ ! अज्ञानी मैंने जो अपराध किया है, उसे आप क्षमा कर दें, आपके जैसी पतिव्रताएँ तो सबों का कल्याण ही करती हैं ॥३८॥ महाभागा श्रीजानकीजी ने भी अपने देवर भरतजी को देखकर उनको आशीर्वाद

विमानवरमारूढास्ते सर्वे नभसोऽङ्गणे। क्षणादालोकयाञ्चक्रुर्निकटे स्वपितुःपुरीम् ॥४०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमेपातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
रामराजधानीदर्शनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तीसरा अध्याय

शेष उवाच

दृष्ट्वा रामो राजधानीं निजलोकनिवासिताम् ।
जहर्ष मतिमान्वीरश्चिरदर्शनलालसः ॥१॥
भरतोऽपि स्वकं मित्रं सुमुखं नगरं प्रति। प्रेषयामास सचिवं नगरोत्सवसिद्धये॥२॥

भरत उवाच

कुर्वन्तु लोकास्त्वरितं रघुनाथागमोत्सवम् । मन्दिरे मन्दिरे रम्यं कृतकौतुक चित्रकम्॥३॥
विपांसुका राजमार्गाश्चन्दनद्रवसेचिताः । प्रसूनभरसङ्क्लृप्ता हृष्टपुष्टजनावृताः ॥४॥
विचित्रवर्णध्वजभा चित्रिताखिलस्वाङ्गणाः । मेघागमे धनुरिव पश्यन्त्येव बलीमुखाः ॥५॥
प्रतिगेहं तु लोकानां कारयन्त्वगरूक्षणम्। यद्धूमं वीक्ष्य शिखिनो नृत्यं कुर्वन्ति लीलया॥६॥
हस्तिनो मम शैलाभानाधोरणसुयन्त्रितान्। विचित्रयन्तु बहुशो गैरिकाद्युपधातुभिः ॥७॥

दिया और उनसे उनका कुशल पूछा ॥३९॥ विमान पर बैठे हुए वे सभी लोग आकाशस्थ होकर क्षणभर में अपने पिता की नगरी अयोध्या का दर्शन किए ॥४०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत श्रीरामाश्वमेध प्रकरण के श्रीरामजी द्वारा राजधानी दर्शन नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

श्रीरामचन्द्रजी का अयोध्या में प्रवेश

शेषजी ने कहा— जिसे देखने की उन्हें दीर्घकाल से लालसा थी उस लोक में बसायी गयी अपनी राजधानी अयोध्या को देखकर बुद्धिमान भगवान् श्रीराम हर्ष का अनुभव किए ॥१॥ भरतजी ने अपने मित्र और सचिव सुमुख को नगर में उत्सव मनाने के लिए अयोध्या भेज दिया ॥२॥ **भरतजी ने कहा—** प्रत्येक मन्दिरों में सुन्दर-सुन्दर चित्र बनाकर सबलोग श्रीरामजी के आने का महोत्सव मनायें ॥३॥ चन्दन मिश्रित जल से सींचकर राजमार्ग को धूलि रहित बना दें, उन सबों पर फूल बिछा दिए जायँ और हृष्ट-पुष्ट लोग खड़े रहें ॥४॥ आँगनों में सुन्दर चित्र बना दिए जायँ, अनेक वर्णों की ध्वजाएँ लगा दी जायँ, ये सभी बन्दर इन्द्र धनुष के समान सुन्दर अयोध्या को देखें। प्रत्येक घरों में अगरु जला दिए जायँ जिसके धूम को देखकर मयूर नृत्य करने लगते हैं ॥५-६॥ हस्तिपकों के द्वारा नियन्त्रित मेरे पर्वत के समान बड़े-बड़े हाथियों को गेरु आदि घातुओं से रङ्ग दिया

वाजिनश्चित्रिता भूयःसुशोभन्तु मनोजवाः । यद्वेगवीक्षणादेव गर्वं त्यजति स्वर्हयः ॥८॥
कन्याःसहस्रशोरम्याःसर्वाभरणभूषिताः । गजोपरि समारूढा मुक्ताभिर्विकिरन्तु च ॥९॥
ब्राह्मण्यःपात्रहस्ताश्च दूर्वा हारिद्रसंयुताः । सुवासिन्यो महाराजं रामं नीराजयन्तु ताः ॥१०॥
कौसल्या पुत्रसंयोगसन्देशविधुरा सती । हर्षं प्राप्नोतु सुकृशा तदीक्षणसुलालसा ॥११॥
इत्येवमादि रचनाः पुरशोभाविधायिकाः । करोतु जनता हृष्टा रामस्यागमनं प्रति ॥१२॥

शेष उवाच

इति श्रुत्वा ततो वाक्यं सुमुखो मन्त्रवित्तमः ।
प्रययौ नगरीं कर्तुं कृतकौतुकतोरणाम् ॥१३॥
गत्वाऽथ नगरीं तां वै मन्त्री तु सुमुखाभिधः ।
ख्यापयामास लोकानां रामागममहोत्सवम् ॥१४॥
लोकाःश्रुत्वा पुरीं प्राप्तं रघुनाथं सुहर्षिताः ।
पूर्वं तदीयविरहत्यक्तभोगसुखादयः ॥१५॥
ब्राह्मणा वेदसम्पन्नाःपवित्रा दर्भपाणयः । धौतोत्तरीय वलिता जग्मुःश्रीरघुनायकम् ॥१६॥
क्षत्रिया ये शूरतमा धनुर्वाणधरा वराः । सङ्ग्रामे बहुशो वीरा जेतारो ययुरप्यमुम् ॥१७॥
वैश्या धनसमृद्धाश्च मुद्राशोभितपाणयः । शुभ्रवस्त्रपरीधाना अभिजग्मुर्नरेश्वरम् ॥१८॥
शूद्रा द्विजेषु ये भक्ताः स्वीयाचारसुनिष्ठिताः ।
वेदाचाररता ये वै तेऽपि जग्मुः पुरीपतिम् ॥१९॥
ये ये वृत्तिकरा लोकाःस्वे स्वे कर्मण्यधिष्ठिताः ।
स्वकं वस्तु समादाय ययुः श्रीरामभूपतिम् ॥२०॥

जाय ॥७॥ मन के समान वेग वाले घोड़े जिनके वेग को देखकर स्वर्ग के घोड़े लज्जित हो जाते हैं उन घोड़ों को सजा दिया जाय ॥८॥ हजारों सुन्दर कन्यायें सभी अलङ्कारों से अलंकृत होकर तथा हाँथियों पर बैठकर मोतियों को बिखेरती रहें ॥९॥ ब्राह्मणों की सुवसिनी पत्नियाँ अपने हाथ में दुर्वा और हरिद्रा से युक्त पात्रों को लेकर महाराज राम की आरती करें ॥१०॥ अपने पुत्र को देखने की लालसा से युक्त तथा अपने पुत्र के आगमन के सन्देश से रहित होने के कारण जो अत्यन्त कृश हो गयीं हैं वे कौसल्या देवी हर्षित हो जायँ ॥११॥ श्रीराम के आगमन के उपलक्ष्य में नगर की प्रसन्न जनता इसी प्रकार की शोभा से नगर की शोभा को बढ़ाने वाली रचना को करे ॥१२॥ **शेषजी ने कहा—** भरतजी की बातों को सुनकर मन्त्रियों में निपुण सुमुख अयोध्या नगरी को सजाने के लिए चले गये ॥१३॥ नगरी में जाकर सुमुख नामक मन्त्री ने श्रीरामागमन महोत्सव की घोषणा कर दी ॥१४॥ जिन लोगों ने श्रीराम के विरह में भोगों तथा सुखों का परित्याग कर दिया था वे श्रीराम के अयोध्या में आने का समाचार सुनकर हर्षित हो गये ॥१५॥ पवित्र वैदिक ब्राह्मण अपने हाथ में कुश लेकर तथा धोती एवं चादर धारण करके श्रीरामचन्द्रजी के पास गये ॥१६॥ वीरों में श्रेष्ठ धनुर्धारी तथा अनेक बार युद्धों में विजय प्राप्त करने वाले क्षत्रिय भी भगवान् श्रीराम के पास गये । धनाढ्य तथा जिनका हाथ मुद्रा से सुशोभित था ऐसे वैश्य भी, श्वेतवस्त्र धारण करके श्रीरामचन्द्रजी के समक्ष आये ॥१७-१८॥ ब्राह्मणों के भक्त तथा अपने आचार का पालन करने वाले तथा वैदिकाचार का पालन करने वाले शूद्र भी राजा रामचन्द्र की अगवानी किए ॥१९॥

इत्थं भूपतिसन्देशात्प्रमोदाप्लवसंयुताः । नानाकौतुकसंयुक्ता आजग्मुर्मनुजेश्वरम् ॥२१॥
रघुनाथोऽपि सकलैर्दैवतैःस्वस्वयानगैः। परीतःप्रविवेशोच्चैःपुरीं रचितमोहनाम् ॥२२॥
प्लवङ्गाः प्लवनैर्युक्ता आकाशपथचारिणः । स्वस्वशोभा परीताङ्गाश्चानुजग्मुःपुरोत्तमम् ॥२३॥
पुष्पकादवरुह्याशु नरयानमथारुहत् । सीतयासहितो रामःपरिवारसमावृतः ॥२४॥
अयोध्यां प्रविवेशाथ कृतकौतुकतोरणाम् । हृष्टपुष्टजनाकीर्णामुत्सवैःपरिभूषिताम् ॥२५॥
वीणापणवभेर्यादि वादित्रैराहतैर्भृशम्। शोभमानःस्तूयमानःसूतमागधबन्दिभिः ॥२६॥
जय राघव रामेति जय सूर्य कुलाङ्गद । जय दाशरथे देव जयताल्लोकनायक ! ॥२७॥
इति शृण्वञ्छुभां वाचं पौराणां हर्षिताङ्गिनाम् ।
रामदर्शनसञ्जात पुलकोद्भेदशोभिनाम् ॥२८॥
प्रविवेश वरं मार्गं रथ्याचत्वरभूषितम्। चन्दनोदकसंसिक्तं पुष्पपल्लवसंयुतम्॥२९॥
तदा पौराङ्गनाःकाश्चिद्गवाक्ष विलमाश्रिताः । रघुनाथस्वरूपेक्षा जातकामा अथाब्रुवन्॥३०॥

पौराङ्गना ऊचुः

धन्या अभूवन्बत भिल्लकन्या वनेषु या राममुखारविन्दम् ।
स्वलोचनेन्दीवरकैरथापिबन्स्वभाग्यसञ्जातमहोदया इमाः ॥३१॥
धन्यं मुखं पश्यत वीरधाम्न श्रीरामदेवस्य सरोजनेत्रम् ।
यद् दर्शनं धातृमुखाःसुरा अपि प्रापुर्महद्भाग्ययुता वयं त्वहो ॥३२॥
एतन्मुखं पश्यत चारुहासं किरीटसंशोभि निजोत्तमाङ्गम् ।
बन्धूकधिक्कारलसच्छविप्रदं दन्ताच्छदं बिभ्रतमुच्चनासम् ॥३३॥

सबलोग अपनी वृत्ति चलाने वाले थे, अपने-अपने कर्मों को करने वाले थे, वे सब अपनी वस्तुओं को लेकर राजा रामचन्द्र के पास गये ॥२०॥ इस तरह राजा के संदेश के कारण अत्यन्त हर्ष से सम्पन्न, अनेक प्रकार के कौतूहल से युक्त लोग राजा रामचन्द्र के समक्ष आये ॥२१-२२॥ कूदने फांदने वाले वानर, आकाश मे संचरण करते थे, वे अपने अङ्गों की शोभा से युक्त होकर उस नगर में आये ॥२३॥ भगवान् श्रीराम पुष्पक विमान से उतरकर मनुष्योपयोगी सवारी (शिविका) पर सीताजी के साथ बैठ गये ॥२४॥ वे सजायी गयी, हृष्ट-पुष्ट अङ्गों वाले लोगों से परिपूर्ण तथा उत्सवों से अलंकृत अयोध्या में प्रवेश किए। बहुत अधिक वीणा, पणव आदि वाद्यों से ध्वनित अयोध्या में सूतों तथा मागधों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए तथा सुशोभित होते हुए श्रीरामचन्द्रजी अयोध्या मे प्रवेश किए ॥२५-२६॥ श्रीराघव राम की जय हो ! सूर्यकुल भूषण की जय हो ! दशरथ नंदन महाराज राम की जय हो ! लोक नायक श्रीराम की जय हो, इस तरह करने वाले लोग श्रीरामचन्द्र का दर्शन करने के कारण जो रोमाञ्चित हो गये थे और हर्षित अङ्गों वाले नागरिकों की मङ्गलमयी वाणी को सुनते हुए तथा रथ्या (गली) तथा चत्वर (चौराहा) से सुशोभित श्रेष्ठ मार्ग से श्रीरामचन्द्रजी प्रवेश किये । वह मार्ग पुष्पों तथा पल्लवों से सुशोभित था और उस पर चन्दन का जल डाला गया था ॥२७-२९॥ उसी समय नगर की कुछ नारियाँ, श्रीराम के रूप को देखने की इच्छा से खिड़कियों के छिद्रों पर आकर कहीं ॥३०॥ **नगरनारियों ने कहा**— वे भिल्ल कन्यायें जिन सबों ने वन में श्रीरामचन्द्र के मुख कमल को अपने नेत्र कमलों से देखा है, वे धन्य हो गयीं । उन सबों का बहुत अधिक कल्यान हुआ ॥३१॥ हे लोगों ! वीरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी के धन्य मुख तथा

इति गदितवतीस्ता:स्नेहभारेण रामो नलिनदलसदृक्षैर्नेत्रपातैर्निरीक्ष्य ।
निखिलगुरुरनूनप्रेमभारं नृलोकं जननिगृहमियेष प्रोषिताङ्गेन हृष्टः ॥३४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
रघुनाथस्य पुरप्रवेशनं नाम तृतीयोऽध्याय: ॥३॥

चौथा अध्याय

वात्स्यायन उवाच

भुजगाधीश्वरेशान ! धराभारधरक्षम !। श्रृण्वेकं संशयं मह्यं कृपया कथयस्व तम्॥१॥
रघुनाथस्य गमनं वनम्प्रति यदाह्यभूत्। तदा प्रभृति देहेन स्थिता शून्येन चेतसा॥२॥
तद्विप्रयोगविधुरा कृशदेहातिदु:खिता। सुमुखान्मन्त्रिण:श्रुत्वा रघुनाथं समागतम् ॥३॥
कथं जहर्ष किमभूत्कीदृशं तत्र चिह्नितम्। रामचन्द्रस्य सन्देशहर्तारं किमुवाच सा॥४॥
एतं मे संशयं छिन्धि रघुनाथ गुणोदयम्। यथावच्छृण्वते मह्यं कथयस्व प्रसादतः ॥५॥

शेष उवाच

साधु पृष्टं महाभाग द्विजवर्य पुरस्कृत। तन्मे निगदित:साक्षाच्छृणुष्वैकमना:किल॥६॥

कमल के समान मनोहर नेत्रों को देखो । उसका दर्शन तो अत्यधिक भाग्य सम्पन्न ब्रह्मा आदि देवता करते हैं, हमलोग भी भाग्यवान् हैं । इनके मनोज्ञ हंसी से युक्त, तथा किरीट से जिनका शिर सुशोभित है, वन्धूक पुष्पों से भी मनोहर ओष्ठों वाले तथा ऊँची नाक वाले इनके इस मुख को देखो ॥३२-३३॥ स्नेह से भरकर इस तरह से कहने वाली उन नारियों को श्रीराम ने कमलदल के समान मनोहर नेत्रों से कृपा कटाक्ष से देखकर अपने प्यासे अङ्गों से प्रसन्नता पूर्वक जिनका सम्पूर्ण गुरुजनों की अपेक्षा अधिक प्रेम था उस अपनी माता के गृह में जाने की इच्छा किए ॥३४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवे पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण
में श्रीरामचन्द्रजी के नगर प्रवेश वर्णन नामक तीसरा अध्याय का
शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

श्रीरामचन्द्रजी का राज्याभिषेक

वात्स्यायन ने कहा— हे सर्पस्वामियों में सर्वश्रेष्ठ, पृथिवी के भार को धारण करने में समर्थ शेषजी आप मेरे एक संशय को आप सुनें तथा कृपा करके उसे दूर करें ॥१॥ जब से श्रीरामचन्द्रजी वन में गये, चेतना रहित तथा देहमात्र से जीवित ॥२॥ श्रीराम के वियोग से व्याकुल दुर्बल शरीर वाली तथा दु:खी कौसल्या माता सुमुख नामक मन्त्री से श्रीरामागमन का समाचार सुनीं ॥३॥ तो वे कैसे हर्षित हुयीं ? तथा उनके भीतर हर्ष के कौन से चिह्न प्रकट हुए ? श्रीरामचन्द्र के सन्देश को सुनाने वाले को उन्होंने क्या कहा ?॥४॥ श्रीराम के गुणों से उद्भूत मेरे इस संशय को आप दूर करें, मैं आपके उपदेश को विधिपूर्वक सुनता हूँ, इसे आप मुझे बतलायें ॥५॥

सा वै तद्वदनाम्भोजच्युतं रामागमामृतम्। पीत्वा पीत्वा बभूवाहो स्थगिताङ्गेन बिह्वला ॥७॥
किं मे स्वप्नो विमूढायाः किं वा भ्रमकरं वचः ।
मम वै मन्दभाग्यायाःकथं रामेक्षणं पुनः ॥८॥
बहुना तपसा कृत्वा प्राप्तोऽयं वै सुतःशिशुः ।
केनचिन्मम पापेन विप्रयोगं गतःपुनः ॥९॥
सुमन्त्रिन्कुशली रामःसीता लक्ष्मणसंयुतः। कथं मां स्मरते वीरो वनचारी सुदुःखिताम् ॥१०॥
इति सा विललापोच्चै रघुनाथस्मृतिं गता । न विवेद निजं किञ्चित्परकीयं विमोहिता ॥११॥
सुमुखोऽपि तथा दृष्ट्वा दुःखितां मातरं भृशम् ।
वीजयामास वासोग्रैःसंज्ञामाप च सा पुनः ॥१२॥
उवाच जननीं सौम्यं वचो हर्षकरं मुहुः । रघुनाथागमस्मारहृष्टां तां व्यदधात्पुनः ॥१३॥
मातर्विद्धि गृहं प्राप्तं रघुनाथं सलक्ष्णम्। सीतया सहितं पश्य चाशीर्भिरभियुङ्क्ष्व च॥१४॥
इति तथ्यं वचःश्रुत्वा सुमुखेन प्रभाषितम् । यादृशं हर्षगापेदे तादृशं वेद्म्यहं न हि॥१५॥
उत्थाय चाजिरे प्राप्ता रोमाञ्चिततनूरुहा। हर्षविह्वलिताङ्ग्यश्रु मुञ्चन्ती राममैक्षत ॥१६॥
तावत्सरामो राजेन्द्रो नरयानमधिश्रितः। प्राप्तःस्वभातुर्भवनं कैकेय्याः सुनयःपुरः ॥१७॥
कैकेय्यपि त्रपाभारनम्रा रामं पुरःस्थितम्। नोवाच किंचिन्महतीं चिन्तां प्राप्तवती मुहुः ॥१८॥
सूर्यवंशध्वजो रामो मातरं वीक्ष्य लज्जिताम् ।
उवाच सान्त्वयंस्तां च वाक्यैर्विनयमिश्रितैः ॥१९॥

शेषजी ने कहा— हे द्विजवर्य । पुरस्कृत महाभाग आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया हैं; अतएव मैं उसे बतला रहा हूँ, उसे आप अच्छी तरह से श्रवण करे ॥६॥ उस मन्त्री के मुखकमल से श्रीराम के आगमन का समाचार बार-बार सुनकर कौसल्याजी विह्वल सी हो गयीं और उनके अङ्ग जड से हो गये ॥७॥ उन्होंने कहा मैं तो विमूढ हूँ, क्या मैं यह स्वप्न देख रही हूँ ? यह भ्रम युक्त वाणी है क्या ? मैं तो मन्दभाग्य वाली हूँ, मुझको राम का दर्शन पुनः कैसे सम्भव हैं ?॥८॥ बहुत अधिक तपस्या करके मैंने इस पुत्र को प्राप्त किया था किन्तु किसी पाप के कारण मेरा उससे विप्रयोग हो गया ॥९॥ हे सुमन्त्रिन् ! सीता और लक्ष्मण के साथ श्रीराम कुशल पूर्वक है न ? वन में रहने वाले वे, दुखिनी मुझको किसी प्रकार से याद करते हैं ॥१०॥ इस तरह से वे श्रीराम को याद करके जोर-जोर से विलाप करने लगीं और मूर्छित होकर स्वकीय और परकीय के ज्ञान से रहित हो गयीं॥११॥ सुमुख ने भी श्रीराम की माता को उस तरह से अत्यन्त दुःखी देखकर कपड़ों से हवा किया तो वे पुनः होश में आ गयीं ॥१२॥ सुमुख ने माता कौसल्या से सुखद और हर्षप्रद बातें कहा और श्रीराम के आगमन की याद दिलाकर उनको प्रसन्न किया ॥१३॥ उन्होंने कहा— माँ ! लक्ष्मण तथा सीताजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी घर आ गये हैं; उनको देखों और आशिर्वाद दो ॥१४॥ इस तरह से सुमुख के मुख से सत्य वाणी को सुनकर माता कौसल्या को जैसा आनन्द हुआ उस वात को मैं नहीं जानता हूँ ॥१५॥ वे उठकर आङ्गन में आयीं, उनको हर्ष के कारण रोमाञ्च हो गया था । हर्ष के कारण उनके अङ्ग विह्वल से हो गये थे । अपनी आँखों से आँसू वहाती हुयीं उन्होंने श्रीराम को देखा ॥१६॥ उस समय राजेन्द्र श्रीराम शिविका पर बैठे हुए, सुन्दर नीति वाले श्रीरामचन्द्रजी माता कैकेयी के भवन में गये ॥१७॥ कैकेयी भी लज्जा के भार से लज्जित होकर सामने खड़े

मातर्मया वनं गत्वा सर्वमाचरितं तथा। अधुना करवै किं वा त्वदाज्ञातो जनन्यहो।।२०।।
मया न्यूनं कृतं नास्ति कथं मां नेक्षसे पुनः ।
आशीर्भिरभिनन्द्यैनं भरतं मां च वीक्षय ।।२१।।
इति श्रुत्वापि तद्वाक्यं सा नम्रवदनाऽनघ। शनैः शनैः प्रत्युवाच राम गच्छस्वमालयम् ।।२२।।
रामोऽपि श्रुत्वा वचनं जनन्याः पुरुषोत्तमः। नमस्कृत्य ययौ गेहं सुमित्रायाः कृपानिधिः ।।२३।।
सुमित्रापुत्र सहितं रामं दृष्ट्वा महामनाः । चिरंजीव चिरंजीव ह्याशीर्भिरिति चाभ्यधात्।।२४।।
मातुश्चरामभद्रोऽपि चरणौ प्रणिपत्य च । परिष्वज्य मुदा युक्तो जगाद वचनं पुनः ।।२५।।
रत्नगर्भे मम भ्रात्रा केनापि न कृतं तथा । यथायमकरोद्धीमान्मम दुःखापनोदनम् ।।२६।।
रावणेन हृता सीता मयायत्प्राप्यते पुनः। मातस्तत्सर्वमाविद्धि लक्ष्मणस्य विचेष्टितम् ।।२७।।
दत्तामाशिषमागृह्य शिरसा यं सुमित्रया । निजमातुश्च भवनं प्रययौ विबुधैर्वृतः ।।२८।।
मातरं वीक्ष्य हर्षितां निजदर्शनलालसाम् । स्वयानादवरुह्याशु चरणावग्रहीद्धरिः ।।२९।।
माता तद्दर्शनोत्कण्ठा विह्वलीकृतमानसा । परिष्वज्य परिवज्य रामं मुदमवाप सा ।।३०।।
शरीरे रोमहर्षोऽभूद्गद्गदावागभूत्तदा । हर्षाश्रूणि तु सोष्णानि प्रवाहं प्रापुरापदात् ।।३१।।
जननीं वीक्ष्य विनयी ताटङ्कद्वय वर्जिताम्। कराकल्पपदाकल्परहितां विभ्रतीं तनुम् ।।३२।।
किञ्चित्स्वदर्शनादधृष्टां कृशाङ्गीं तां स शोकभाक् ।
दुःखस्य समयो नायमिति मत्वा जगाद ताम् ।।३३।।

श्रीराम के देखकर कुछ नहीं बोलीं और अत्यन्त चिन्तित हो गयीं ।।१८।। सूर्यवंश के ध्वजा स्वरूप राम माता को लज्जित देखकर नम्रता मिश्रित वाक्यों से उनको सान्त्वना देते हुए कहने लगे ।।१९।। माँ वन में जाकर मैंने सवकुछ वैसे ही किया जैसी आपकी आज्ञा थी, अब आप बतलाएँ, मैं आपकी किस आज्ञा का पालन करूँ?।।२०।। मैंने कोई कमी नहीं की है, आप मुझे क्यों नहीं देख रही हैं ? अब आप मुझे तथा भरत को अपने आशीर्वचनों से अभिनन्दित करें ।।२१।। श्रीराम की इस वाणी को सुनकर कैकेयी कुछ नहीं बोलीं और उन्होंने धीरे-धीरे कहा राम अपने भवन में जाओ ।।२२।। पुरुषोत्तम श्रीराम माता की वाणी को सुनकर सुमित्रा माता के घर में गये ।।२३।। महामना सुमित्रा अपने पुत्र के साथ श्रीराम को देखकर कहीं— दीर्घ जीवी होओ, दीर्घजीवी होओ ।।२४।। श्रीरामचन्द्र भी माता के चरणों में प्रणाम करके, प्रसन्नता पूर्वक कहा ।।२५।। हे रत्नगर्भे ! मेरे किसी भाई ने उस तरह से मेरे दुःख को नहीं दूर किया जिसतरह इसने (लक्ष्मण ने) किया है ।।२६।। हे माँ ! रावण ने सीता का अपहरण कर लिया था और मैंने जो सीता को पुनः प्राप्त किया उसमें सब काम श्रीलक्ष्मण ने ही किया है ।।२७।। सुमित्रा के द्वारा दिए गये आशीर्वाद को शिर झुकाकर श्रीरामचन्द्र ने ग्रहण किया उसके वाद वे देवताओं के साथ अपनी माता के भवन में आये । उनके दर्शन की लालसा से युक्त तथा हर्षित अपनी माता को देखकर भगवान् यान से शीघ्र उतर के अपनी माता के दोनों चरणों को पकड़ लिए । श्रीराम के दर्शन से उत्कण्ठित माता का मन विह्वल हो गया, उन्होंने श्रीराम का बार-बार आलिङ्गन करके आनन्द का अनुभव किया ।।२८-३०।। उनके शरीर में रोमाञ्च हो गया, वाणी भर-भरा गयी । हर्ष जन्य बहता हुआ आँसू उनके चरणों तक चला आया ।।३१।। विनीत श्रीरामचन्द्र ने ताटंक से रहित माता को देखकर आभूषणों से रहित हाथ और पैर को तथा शरीर मात्र को धारण करने वाली माता को देखते रहे ।।३२।। श्रीराम को देखने से कुछ प्रसन्न हुयी

श्रीराम उवाच

मातर्मया त्वच्चरणौ चिरकालं न सेवितौ। ततःक्षमस्वापराधं भाग्यहीनस्य वै मम ।।३४।।
ये पुत्रा मातापित्रोर्न शुश्रूषायां समुत्सुकाः । ते मन्तव्याः परामातःकीटका रेतसोभवाः ।।३५।।
किं कुर्वे जनकाज्ञातो गतो वै दण्डकं वनम् ।
तत्रापि त्वत्कृपापाङ्गात्तीर्णोऽस्मि दुःखसागरम् ।।३६।।
रावणेन हृता सीता लङ्कायां गमिता पुनः । त्वत्कृपातो मया लब्धा तं हत्वा राक्षसेश्वरम् ।।३७।।
सीतेयं त्वच्चरणयोःपतिता वै पतिव्रता । सम्भावयाशु चकितां त्वत्पादार्पितमानसाम् ।।३८।।
इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं पादयोः पतितां स्नुषाम् ।
आशीर्भिरभियुज्यैनां बभाषे तां पतिव्रताम् ।।३९।।
सीते स्वपतिना सार्द्धं चिरंविलस भामिनि । पुत्रौ प्रसूय च कुलं स्वकं पावय पावने ! ।।४०।।
त्वत्सदृश्यः पतिपराः पतिदुःखसुखानुगाः । भवन्ति दुःखभागिन्यो नहि सत्यं जगत्त्रये।।४१।।
विदेहपुत्रि ! स्वकुलं त्वया पावितमात्मना । रामपादाब्जयुगलमनुयान्त्या महावने ।।४२।।
किं चित्रं यत्पुमांसस्तु वैरिकोटिप्रभञ्जनाः। येषां गेहे सती भार्या स्वपतिप्रियवाञ्छिका ।।४३।।
इत्युक्त्वा रघुनाथस्य भार्यामञ्चितलोचनाम्। तूष्णीं बभूव हर्षिता प्रहृष्टस्वतनूरुहा ।।४४।।
अथ भ्राताऽस्य भरतःपित्रादत्तं निजं महत्। राज्यं निवेदयामास रामचन्द्राय धीमते।।४५।।
मन्त्रिणस्ते प्रहृष्टाङ्गा दैवज्ञान्मन्त्रकोविदान् । आहूय सुमुहूर्तं ते पप्रच्छुःवरमादरात् ।।४६।।

तथा कृश अङ्गों वाली माता को शोकान्वित श्रीरामजी ने कहा— माँ ! यह शोक का समय नहीं है ।।३३।। **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** माँ मैंने दीर्घ काल तक आपके चरणों की सेवा नहीं की अतएव आप मुझ भाग्यहीन के अपराध को क्षमा कर दें ।।३४।। माँ ! जो पुत्र अपने माता-पिता की सेवा नहीं कर पाते हैं उन सबों को रेतस् से उत्पन्न कीड़े के समान समझना चाहिए ।।३५।। मैं क्या करूँ ? पिताजी की आज्ञा से मैं दण्डक वन में चला गया, वहाँ भी तुम्हारी कृपा कटाक्ष से मैंने दुःख सागर को पार कर लिया ।।३६।। रावण सीता का अपहरण करके लङ्का में ले गया और तुम्हारी कृपा से लङ्काधिपति रावण को मार कर मैंने सीता को प्राप्त किया ।।३७।। आपके चरणों में प्रणाम करने वाली यह पतिव्रता सीता है; तुम्हारे चरणों में अपने मन को लगाने वाली तथा आश्चर्यित सीता को आप समादृत करें ।।३८।। इस बात को सुनकर तथा अपने चरणों में पड़ी हुयी पुत्रवधू सीता को आशीर्वाद प्रदान करके माता कौसल्या ने उस पतिव्रता से कहा ।।३९।। हे सीते ! तुम अपने पति के साथ दीर्घकाल तक विलास करो । हे पावने ! अपने दो पुत्रों को उत्पन्न करके अपने वंश को पवित्र बनाओ ।।४०।। तुम्हारी जैसी पति की सेवा करने वाली तथा सुख एवं दुःख में पति का अनुसरण करने वाली नारियाँ दुःख नहीं उठाती हैं । यह त्रिकाल सत्य है ।।४१।। हे विदेह पुत्रि ! तुमने अपने वंश को श्रीराम के चरण युगल का महावन में अनुसरण करके पवित्र बना दिया ।।४२।। जिसके घर में सती पत्नी अपने पति के कल्याण प्राप्ति की इच्छा रखती है उसका पति अपने करोड़ों शत्रुओं का विनाश करने वाला हो; तो इसमें कौन सा आश्चर्य है ।।४३।। इस तरह से सुन्दर नेत्रों वाली श्रीराम की पत्नी को कहकर रोमाञ्चित तथा प्रहृष्ट कौसल्या माता चुप हो गयीं।।४४।। इसके बाद श्रीराम के भाई भरत ने पिता के द्वारा प्रदत्त महान् राज्य को बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्र को प्रदान किया।।४५।। प्रसन्न मन्त्रीजन भी दैवज्ञ तथा मन्त्रज्ञ ब्राह्मणों को आदर पूर्वक बुलाकर सुन्दर मुहूर्त पूछे ।।४६।।

शुभे मुहूर्ते सुदिने शुभनक्षत्रसंयुते । अभिषेकं महाराज्ये कारयामासुरुद्यताः ॥४७॥
सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं व्याघ्रचर्मणि सुन्दरे । लिखित्वोपरि राजेन्द्रो महाराजोऽधितस्थिवान् ॥४८॥
तद्दिनादेव साधूनां मनांसि प्रमुदं ययुः । दुष्टानां चेतसोग्लानिरभवत्परतापिनाम् ॥४९॥
स्त्रियस्तु पतिभक्त्या च पतिव्रतपरायणाः । मनसाऽपि कदा पापं नाचरन्ति जना मुने ॥५०॥
दैत्या देवास्तथा नागा यक्षासुरामहोरगाः । सर्वे न्यायपथे स्थित्वा रामाज्ञां शिरसा दधुः ॥५१॥
परोपकरणेयुक्ताःस्वधर्मसुखनिर्वृताः । विद्याविनोदगमिता दिनरात्रि क्षणाःशुभाः ॥५२॥
वातोऽपि मार्गसंस्थानां बलान्नाहरते महान् । वासांस्यपि तु सूक्ष्माणि तत्र चौरकथा न हि ॥५३॥
धनदो ह्यर्थिनां रामः कारुण्यश्च कृपानिधिः ।
भ्रातृभिःसहितो नित्यं गुरुदेवस्तुतिं व्यधात् ॥५४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
रघुवरस्य राज्याभिषेको नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

* * *

शुभ नक्षत्र से युक्त शुभदिन को सुन्दर मुहूर्त में श्रीराम का महान् राज्य पर अभिषेक कराया गया ॥४७॥ सुन्दर व्याघ्र चर्म पर सप्तदीपवती पृथिवी का चित्र बनाकर राजेन्द्र श्रीराम उसके ऊपर बैठे ॥४८॥ उस दिन से ही सज्जन पुरुषों का मन प्रगत्र हो गया तथा दूसरों को दुःख देने वाले दुष्टों के अन्तःकरण में दुःख हुआ ॥४९॥ हे मुने ! पतिव्रता स्त्रियाँ पतिभक्ति के कारण कभी मन से भी पाप नहीं करती हैं ॥५०॥ दैत्य, देवता, नाग, यक्ष, असुर महोरग ये सवके सव न्याय मार्ग में स्थित रहकर श्रीराम की आज्ञा को शिरोधार्य किए ॥५१॥ दूसरों का उपकार करने में लगे रहने वाले, और स्वधर्मजन्य सुख से सन्तुष्ट तथा जिनके दिन तथा रात्रियों के क्षण विद्या के विनोद में ही व्यतीत होते थे, ऐसे सन्मार्ग स्थित लोगों के सूक्ष्म वस्त्रों को वायु भी उड़ाकर नहीं ले जाते थे तो चारों की कौन सी बात है ॥५२-५३॥ कृपा सागर श्रीराम अपनी करुणा के कारण धनार्थियों को धन प्रदान करते थे तथा अपने भाइयों के साथ गुरुजनों और देवताओं की स्तुति करते थे ॥५४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध का रामराज्यभिषेक वर्णन नामक चतुर्थ अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

* * *

पाँचवाँ अध्याय

शेष उवाच

अथाभिषिक्तं रामं तु तुष्टुवुःप्रणताःसुराः। रावणाभिधदैत्येन्द्रवधहर्षितमानसाः ॥१॥

देवा ऊचुः

जय दाशरथे ! सुरार्तिहञ्जय जय दानववंशदाहक ।
जय देववराङ्गनागणग्रहणव्यग्रकरारिदारक ! ॥२॥
तव यद्दनुजेन्द्रनाशनं कवयो वर्णयितुं समुत्सुकाः ।
प्रलये जगतां ततीः पुनर्ग्रससे त्वं भुवनेश ! लीलया ॥३॥
जय जन्मजरादिदुःखकैःपरिमुक्त प्रबलोद्धरोद्धर ! ।
जय धर्मकरान्वयाम्बुधौ कृतजन्मन्नजरामराच्युत ॥४॥
तव देववरस्य नामभिर्बहुपापा अपि ते पवित्रिताः ।
किमुसाधु द्विजवर्य पूर्वकाः सुतनुं मानुषतामुपागताः ॥५॥
हर विरिञ्चिनुतं तव पादयोर्युगलमीप्सितकाम समृद्धिदम् ।
हृदि पवित्रयवादिकचिह्नितैःसुरचितं मनसा स्पृहयामहे ॥६॥
यदि भवान्नदधात्यभयं भुवो मदनमूर्तितिरस्करकान्तिभृत् ।
सुरगणा हि कथं सुखिनःपुनर्ननु भवन्ति घृणामय पावन ॥७॥
यदा यदा नो दनुजा हि दुःखदास्तदा तदा त्वं भुवि जन्मभाग्भवेः ।
अजोऽव्ययोऽपीशवरोऽपि सन्विभो स्वभावमास्थाय निजं निजार्चितः ॥८॥

सभी देवताओं द्वारा श्रीराम की स्तुति और रामराज्य का वर्णन

शेषजी ने कहा— उसके बाद राज्य पर अभिषिक्त श्रीरामचन्द्र की देवताओं ने स्तुति की ॥१॥ देवताओं ने कहा हे महाराज ! दशरथ नन्दन आपकी जय हो , देवताओ के कष्ट को विनष्ट करने वाले तथा दानव वंश को भस्म कर देने वाले आपकी जय हो देवताओं की श्रेष्ठ नारियों के हाथ को पकड़ने वाले शत्रुओं को विनष्ट करने वाले आपकी जय हो ॥२॥ आपने जो दनुजेन्द्र रावण का विनाश किया उसका वर्णन करने के लिए हम उत्सुक हैं। आप प्रलय काल में समस्त संसार को लीलापूर्वक ग्रस लेते है ॥३॥ हे जन्म, जरा आदि दुखों से रहित, हे प्रबल ! आप, हमलोगों का उद्धार करें। आपकी जय हो। सूर्यवंश रूपी सागर में जन्म लेने वाले हमलोगों का अजर-अमर अच्युत आपकी जय हो ॥४॥ आप देवश्रेष्ठ का नाम लेने मात्र से अनेक पापी भी पवित्र हो गये तो फिर साधु द्विजवर्य इत्यादि के विषय में क्या कहना है ? जिन्होंने सुन्दर मानव शरीर को प्राप्त किया हैं?॥५॥ अभिलषित मनोरथ प्रदान करने वाले तथा समृद्धि प्रदान करने वाले आपके दोनों चरणों की स्तुति शिवजी तथा ब्रह्माजी भी करते हैं। आप हमलोगों के हृदय को पवित्र कर दें। हम चाहते हैं कि हमारा हृदय यवादिक चिह्न से चिह्नित होकर सुन्दर हो जाय ॥६॥ यदि आप पृथिवी को अभय नही प्रदान करें तो हे कामदेव के शरीर से भी सुन्दर शरीर धारण करने वाले तथा पापियों को पवित्र बनाने वाले प्रभो तो फिर देवता सुखी कैसे हो सकते हैं ?॥७॥ जब-जब दानव हमलोगों को दुःख देने लगें तब-तब आप हे अजन्मा ! निर्विकार तथा सम्पूर्ण जगत्

मृतसुधा सदृशैरघनाशनैः सुचरितैरवकीर्य महीतलम् ।
अमनुजैर्गुणशंसिभिरीडितः प्रविश चाशु पुनर्हि स्वकं पदम् ॥९॥
अनादिराद्योऽजरूपधारी हारी किरीटी मकरध्वजाभः ।
जयं करोतु प्रसभं हतारिः स्मरारिसंसेवितपादपद्मः ॥१०॥
इत्युक्त्वा ते सुराः सर्वे ब्रह्मेन्द्रप्रमुखा मुहुः । प्रणेमुररिनाशेन प्रीणिता रघुनायकम् ॥११॥
इति स्तुत्यातिसंहृष्टो रघुनाथो महायशाः । प्रोवाच तान्सुरान्वीक्ष्य प्रणतान्नतकन्धरान् ॥१२॥

श्रीराम उवाच

सुरा ! वृणुत मे यूयं वरं किञ्चित्सुदुर्ल्लभम् ।
यं कोऽपि देवो दनुजो न यक्षः प्राप सादरः ॥१३॥

सुरा ऊचुः

स्वामिन्भगवतः सर्वं प्राप्तमस्माभिरुत्तमम् । यदयं निहतः शत्रुरस्माकं तु दशाननः ॥१४॥
यदा यदाऽसुरोऽस्माकं बाधां परिदधाति भोः ।
तदा तदेति कर्तव्यमेतावद्वैरिनाशनम् ॥१५॥
तथेत्युक्त्वा पुनर्वीरः प्रोवाच रघुनन्दनः ॥१६॥

श्रीराम उवाच

सुराः श्रृणुत मद्वाक्यमादरेण समन्विताः । भवत्कृतं मदीयैर्वै गुणैर्ग्रथितमद्भुतम् ॥१७॥
स्तोत्रं पठिष्यति मुहुः प्रातर्निशि सकृन्नरः । तस्य वैरि पराभूतिर्न भविष्यति दारुणा ॥१८॥
न च दारिद्र्यसंयोगो न च व्याधिपराभवौ। मदीय चरणद्वन्द्वे भक्तिस्तेषां तु भूयसी ॥१९॥

के स्वामी होकर भी आप अपने स्वभाव का आश्रय लेकर पृथिवी पर अवतार ग्रहण करें ॥८॥ अमृत के समान पाप विनाशक अपने सुन्दर चरित्र को पृथिवी पर फैलाकर आपके गुणों की प्रशंसा करने वाले देवताओं के द्वारा पूजित आप शीघ्र अपने लोक में चल जाया करें ॥९॥ आप अनादि हैं, फिर भी जगत् के आदि (कारण) हैं, अजन्मा होकर भी विविध रूपों को धारण करते हैं, हार तथा किरीट धारण करने वाले तथा कामदेव के समान कान्ति वाले, एवं शिवजी के द्वारा सेवित चरण कमल वाले आप विजयी हों ॥१०॥ इस तरह से स्तुति करके ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि देवता, शत्रु का नाश हो जाने के कारण प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम किए ॥११॥ इस प्रकार की स्तुति के द्वारा सन्तुष्ट महायशस्वी श्रीरघुनाथजी विनीत तथा कन्धा झुकाए हुए देवताओं को देखकर कहे ॥१२॥ **भगवान् श्रीराम ने कहा**— देवताओं ! आपलोग मुझसे कोई ऐसा दुर्लभ वरदान माँगे जिसको कोई देवता, दानव अथवा यक्ष ने नहीं प्राप्त किया हो ॥१३॥ **देवताओं ने कहा**— हे स्वामिन् ! आपने जो रावण का वध किया है, उसी के द्वारा हमलोगों को सब कुछ प्राप्त हो गया ॥१४॥ जब-जब कोई असुर हमलोगों को बाधा पहुँचाये, उस समय आप हमारे शत्रुओं का विनाश कर दिया करें ॥१५॥ बहुत अच्छा कहकर वीर श्रीरघुनन्दन ने फिर कहा ॥१६॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— हे देवताओं ! आपलोग मेरे वाक्य को सुनें । आपलोगों ने जो आदर पूर्वक मेरे गुणों से युक्त इस अद्भुत स्तुति का प्रणयन किया है ॥१७॥ इस स्तुति का जो प्रातःकाल अथवा रात में एक बार भी पाठ करेगा, उसको कभी भी वैरी से पराभव रूपी कष्ट का अनुभव नहीं करना पड़ेगा ॥१८॥ उसको न तो कभी दारिद्र्य होगा और न रोग होगा । और उसकी मेरे दोनों चरणों में बहुत

भविष्यति मुदायुक्तस्वान्तपुसां तु पाठतः । इत्युक्त्वा सोऽभवत्तूष्णीं नरदेवशिरोमणिः ॥२०॥
सुराः सर्वे प्रहृष्टास्ते ययुर्लोकं स्वकं स्वकम् ।
रघुनाथोऽपि भ्रातॄंस्तान्पालयंस्तातवद् बुधान् ॥२१॥
प्रजाः पुत्रानिव स्वीयाँल्लालयँल्लोकनायकः ।
यस्मिञ्छासति लोकानां नाकालमरणं नृणाम् ॥२२॥
न रोगादिपराभूतिर्गृहेषु च महीयसी । नेतिःकदापि दृश्येत वैरिजं भयमेव च ॥२३॥
वृक्षाःसदैव फलिनो मही भूयिष्ठधान्यका । पुत्रपौत्रपरीवारसनाथीकृत जीवनाः ॥२४॥
कान्तासंयोगजसुखैर्निरस्त विरहक्लमाः । नित्यं श्रीरघुनाथस्य पादपद्मकथोत्सुकाः ॥२५॥
कदापि परनिन्दासु वाचस्तेषां भवन्ति न । कारवोऽपिकदा पापं नाचरन्ति मनस्यहो ॥२६॥
रघुनाथ कराघात दुःखशङ्काभिशंसिनः । राज्यं प्राप्तमसापत्नं समृद्धबलवाहनम् ॥२७॥
ऋषिभिर्हृष्टपुष्टैश्च रम्यं हाटकभूषणैः । सम्पुष्टमिष्टापूर्तानां धर्माणां नित्यकर्तृभिः ॥२८॥
सदासम्पन्नसस्यं च सुवसुक्षेत्रसंयुतम् । सुदेशं सुप्रजःस्वस्थं सुतृणं बहुगोधनम् ॥२९॥
देवतायतनानां च राजिभिःपरिराजितम् । सुपूर्णा यत्र वै ग्रामाःसुवित्तर्द्धि विराजिताः ॥३०॥
सुपुष्पकृत्रिमोद्यानाः सुस्वादु फलपादपाः । सपद्मिनीककासारा यत्र राजन्ति भूमयः ॥३१-३२॥
सदम्भा निम्नगा यत्र न यत्र जनता क्वचित् ।
कुलान्येव कुलीनानि वर्णानां न धनानि च ॥३३॥

अधिक भक्ति होगी ॥१९॥ इसका पाठ करने से पुरुषों का अन्तःकरण आनन्द से युक्त हो जायेगा । इस तरह से कहकर राजाओं में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी चुप हो गये ॥२०॥ सभी देवता भी प्रसन्नता पूर्वक अपने-अपने लोक मे चले गये । भगवान् श्रीराम भी अपने तीनों भाइयों का उसी तरह पालन करने लगे जैसे कोई पिता अपने पुत्रो का पालन करता है ॥२१॥ प्रजाओं से अपने पुत्र के समान प्रेम करते हुए लोकनायक श्रीराम हुए । श्रीरामचन्द्र के राज्यकाल में किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी ॥२२॥ घरों में रोग आदि तथा पराभव नहीं होता था । कभी भी इति (अनावृष्टि आदि) तथा शत्रुओं का भय नही होता था ॥२३॥ वृक्षों में सदा फल लगे रहते थे, पृथिवी में बहुत अधिक धन-धान्य उपजता था । लोगों का जीवन पुत्र, पौत्र तथा परिवार से सनाथित था ॥२४॥ स्त्रियों का अपने पतियों से सदैव संयोग बने रहने के कारण वे विरह के दुःख से रहित होती थीं । लोग सदैव श्रीराम के चरण कमलों की कथा के विषय में उत्सुक रहते थे ॥२५॥ कभी भी उनकी वाणी दूसरे की निन्दा में नहीं प्रवृत्त होती थी शिल्पी भी कभी मन से भी पापाचरण नहीं करते थे ॥२६॥ आखें की ज्योति के आघात से श्रीरघुनाथ को कष्ट हो सकता है, इस शङ्का से जो लोग उनके मुख को देखते थे देखते ही रह जाते थे लोगों के मन में सदा करुणा का भाव बना रहता था, शत्रु रहित राज्य प्राप्त करने के कारण मैं समृद्ध और बलवान् हूँ; इस तरह से वे सोचते रहते थे ॥२७॥ हृष्ट-पुष्ट ऋषियों से तथा सुवर्ण के आभूषणों से तथा सदैव इष्टापूर्व कर्म करते रहने वाले लोगों के कारण राज्य मनोहर बना रहता था ॥२८॥ सुन्दर धान से हमेशा धरती हरी-भरी रहती थी, वह सुन्दर देश, सुन्दर प्रजा, तृण और बहुत अधिक गोधन से भरा हुआ था ॥२९॥ उनका राज्य देव मन्दिर समूह से सुशोभित था । धन की समृद्धि से सम्पन्न ग्राम सुशोभित होते थे ॥३०॥ कृत्रिम उद्यानों में सुन्दर पुष्प विकसित रहते थे और वृक्ष सुन्दर स्वाद वाले फलों से युक्त थे ॥३१-३२॥ उस रामराज्य में नदियाँ

विभ्रमो यत्र नारीषु न विद्वत्सु च कर्हिचित् ।
नद्यः कुटिल गामिन्यो न यत्रविषये प्रजाः ।।३४।।
तमोयुक्ताःक्षपा यत्र बहुलेषु न मानवाः। रजोयुजः स्त्रियो यत्र नाधनं बहुला नराः ।।३५।।
धनैरनन्धो यत्रास्ति जनो नैव च भोजने । अनयःस्यन्दनो यत्र न चैव राजपूरुषः ।।३६।।
दण्डःपरशु कुद्दाल वालव्यजनराजिषु । आतपत्रेषु नान्यत्र क्वचित्क्रोधोपरोधजः।।३७।।
अन्यत्राक्षिकवृन्देभ्यःक्वचिन्न परिदेवनम्। आक्षिका एव दृश्यन्ते यत्र पाशकपाणयः।।३८।।
जाड्यवार्ता जलेष्वेव स्त्रीमध्या एव दुर्बलाः ।
कठोरहृदया यत्र सीमन्तिन्यो न मानवाः ।।३९।।
औषधेष्वेव यत्रास्ति कुष्टयोगो न मानवे । वेधो यत्र सुरत्नेषु शूलं मूर्तिकरेषु वै।।४०।।
कम्पःसात्त्विकभावोत्थो न भयात्क्वापि कस्यचित् ।
सज्वरः कामजो यत्र दारिद्र्यं कलुषस्य च ।।४१।।
दुर्लुभत्वं सदैवस्य सुकृते न च वस्तुनः । इभा एव प्रमत्ता वै युद्धे वीच्यो जलाशये।।४२।।
दानहानिर्गजेष्वेव तीक्ष्णा एव हि कण्टकाः ।
बाणेषु गुणविश्लेषो बन्धोक्तिःपुस्तके दृढा ।।४३।।

ही सदम्भ (सुन्दर जल से युक्त) थी उस राज्य की जनता घमण्डी नहीं थी । तत्-तत् वर्णों के वंश ही कुलीन (समादृत परिवार वाले) थे धनों का प्रयोग, कुलीन (निषिद्ध कर्मों में) नहीं होता था ।।३३।। उस राज्य में नारियों में ही विभ्रम (हाव, भाव, विलास) होता था विद्वानों में किसी प्रकार का विभ्रम (भ्रम ज्ञान) नहीं था । उस राज्य की नदियों का मार्ग ही कुटिल (टेढ़ा-मेढ़ा) था उस राज्य की प्रजा कुटिल स्वभाव वाली नहीं थी ।।३४।। उस राज्य में कृष्ण पक्ष की रात्रियों में ही अन्धकार अधिक होता था, मनुष्यों में अन्धकार (अज्ञान) का बाहुल्य नहीं था । उस राज्य में स्त्रियों में रजस्वलापन होता था, लोग रजोगुण प्रकृति के नहीं थे । उस राज्य में काव्यों में ही निधन (एक प्रकार का काव्य विशेष) होता था, लोग निर्धन नहीं थे ।।३५।। उस राज्य में लोग ही धन के कारण अनन्ध (मदरहित थे) कोई व्यक्ति भूखा नहीं रहता था । उस राज्य में रथ ही लोहे से रहित होते थे, कोई राज्य कर्मचारी अनीति करने वाला नहीं था ।।३६।। कुल्हाड़ी, कुदाल और चामर एवं छत्रों में ही दण्ड लगे रहते थे कोई क्रोध करके किसी पर किसी प्रकार का दण्ड नहीं लगाता था ।।३७।। वहाँ पर आक्षिक समूह जुआड़ियों में ही रुदन होता था प्रजाओं में नहीं । आक्षिक ही अपने हाथ में पाश लिए रहते थे दूसरे नहीं ।।३८।। उस राज्य में जलों में ही जडता (जलत्व) रहता था लोगों में जडता (अज्ञानता) नहीं थी । स्त्रियों की कमर ही पतली होती थी कोई प्रजा दुर्वल नहीं थी । राम राज्य में स्त्रियाँ कठोरहृदया (गर्भिणी) होती थीं । कोई पुरुष कठोरहृदय वाला नहीं था ।।३९।। औषधियों में ही कुष्ठ (कूठ नामक औषधि) का योग होता था । कोई मनुष्य कोढ़ी नहीं था । रत्नों में ही वेध (छेद) किया जाता था, तथा मूर्तियों के ही हाथ में शूल (त्रिशूल) होता था ।।४०।। रसानुभव काल में ही कम्प होता था, लोगों में भय के कारण कम्प नहीं होता था । काम विकार जन्य ही लोगों में सज्वर होता था कोई मनुष्य ज्वर ग्रस्त नहीं होता था । पाप का ही दारिद्य (अभाव) था लोगों में दरिद्रता नहीं था ।।४१।। सदैव (देवयुक्त) पुण्य की ही दुर्लभता थी, कोई वस्तु नहीं दुर्लभ होती थी । युद्ध में हाथी ही मदमत्त होते थे कोई मनुष्य मदमत्त नहीं होता था, तथा जलाशयों में ही विचियाँ (तरङ्ग) दिखती थीं मनुष्यों में नहीं ।।४२।।

स्नेहत्यागः खलेष्वेव न च वै स्वजने जने ।
तं देशं पालयामास लालयँल्लालिताःप्रजाः ॥४४॥
धर्मं संस्थापयन्देशे दुष्टे दण्डधरोपमः। एवं पालयतो देशं धर्मेण धरणीतलम् ॥४५॥
सहस्रं च व्यतीयुर्वै वर्षाण्येकादश प्रभोः। तत्र नीचजनाच्छ्रुत्वा सीताया अपमाननम् ॥४६॥
स्वां च निन्दां रजकतस्तां तत्याज रघूद्वहः। पृथ्वीं पालयमानस्य धर्मेण नृपतेस्तदा ॥४७॥
सीताविरहितामेकां निदेशेन सुरक्षिताम् । कदाचित्संसदोमध्ये ह्यासीनस्य महामते ॥४८॥
आजगाममुनिश्रेष्ठःकुम्भोत्पत्तिर्मुनिर्महान् । गृहीत्वाऽर्घ्यंसमुत्तस्थौ वसिष्ठेन समन्वितः ॥४९॥
जनताभिर्महाराजो वार्धिशोषकमागतम्। स्वागतेन सुसम्भाव्य पप्रच्छ तमनामयम् ॥५०॥
सुखोपविष्टं विश्रान्तं बभाषे रघुनन्दनः ॥५१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधेऽगस्त्य
समागमो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

* * *

हाथियों में ही दान (मदवारि) का त्याग होता था, कोई मनुष्य दान का त्याग नहीं करता था । काण्टों में ही तीक्ष्णता होती थी, कोई मनुष्य तीक्ष्ण स्वभाव का नहीं था, वाणों में गुण (धनुष की डोरी) से विश्लेष होता था लोग गुण हीन नहीं थे । पुस्तकों में बन्धोक्ति (एक प्रकार की चित्र काव्य रचना) होती थी लोग नहीं बाँधे जाते थे ॥४३॥ खलों में स्नेह का त्याग दिखता था स्वजनों (बान्धवों) में स्नेह का अभाव नहीं था । इस प्रकार के देश का प्रशासन भगवान् श्रीराम प्रजाओं से प्रेम करते हुए करते थे ॥४४॥ वे देश धर्म की स्थापना करते समय दुष्टों के लिए यमराज के समान भयङ्कर थे । इस तरह से देश का धर्म पूर्वक प्रशासन करते हुए भगवान् श्रीराम के ग्यारह हजार वर्ष बीत गये । उस समय किसी नीच प्राणी के द्वारा सीता और राम दोनों के अपमान जनक निन्दा को सुनकर श्रीराम ने सीता का परित्याग कर दिया । उस समय राजा राम ने धर्म पूर्वक सीता से रहित केवल आज्ञा के द्वारा सुरक्षित पृथिवी का पालन किया । एक बार भगवान् श्रीराम जब सभा में बैठे थे उसी समय॥४५-४८॥ महामुनि महर्षि अगस्त्य आये । उनको भगवान् श्रीराम ने महर्षि वसिष्ठ के साथ अर्घ्य प्रदान किया ॥४९॥ समुद्र का शोषण करने वाले आये हुए महर्षि अगस्त्य का श्रीराम ने जनता के द्वारा समादर कराकर उनसे कुशल पुछा ॥५०॥ सुख पूर्वक बैठे हुए महर्षि अगस्त्य से भगवान् श्रीराम ने कहा ॥५१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के अगस्त्य समागम नामक पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

* * *

छठा अध्याय

शेष उवाच

इत्थं स्वागतसन्तुष्टं ब्रह्मचर्य तपोनिधिम्। उवाच मतिमान्वीरः सर्वलोकगुरुर्मुनिम् ॥१॥

श्रीराम उवाच

स्वागतं ते महाभाग ! कुम्भयोने तपोनिधे। त्वद्दर्शनेन सर्वे वै पाविताःसकुटुम्बकाः ॥२॥
कच्चिन्मतिस्ते वेदेषु शास्त्रेषु परिवर्तते। त्वत्तपो विघ्नकर्ता वै नास्ति भूमण्डले क्वचित्॥३॥
लोपामुद्रा महाभाग ! या च ते धर्मचारिणी ।
यस्याः पतिव्रता धर्मात्सर्वं भवति शोभनम् ॥४॥
अपि शंस महाभाग धर्ममूर्ते कृपानिधे । अलोलुपस्य किं कार्यं करवाणि मुनीश्वर !॥५॥
त्वत्तपो योगतःसर्वं भवति स्वेच्छया बहु। तथापि मयि कृत्वैव कृपां शंस मुनीश्वर ॥६॥

शेष उवाच

इत्युक्तो लोकगुरुणा राजराजेन धीमता। उवाच रामं लोकेशं विनीततरभाषया ॥७॥

अगस्त्य उवाच

स्वामिंस्तव सुदुर्दर्शं दर्शनं दैवतैरपि । मत्त्वा समागतं विद्धि राजराज ! कृपानिधे!॥८॥
हतस्त्वया रावणाख्यस्त्वसुरो लोककण्टकः ।
दिष्ट्याऽद्य देवाःसुखिनो दिष्ट्या राजा विभीषणः ॥९॥
राम त्वद्दर्शनान्मेऽद्य गतं वै दुष्कृतं किल। सम्पूर्णो मे मनःकोश आनन्देन सुरोत्तम ॥१०॥
इत्युक्त्वा स बभूवाशु तूष्णीं कुम्भसमुद्भवः ।
रामसन्दर्शनाह्लादविह्वलीकृतमानसः ॥११॥

रावण आदि की उत्पत्ति का वर्णन

शेषजी ने कहा— इस तरह से स्वागत से सन्तुष्ट तथा ब्रह्मचर्य और तपोधन महर्षि अगस्त्य से सम्पूर्ण लोकों के स्वामी तथा मतिमान भगवान् श्रीराम ने कहा ॥१॥ **श्रीराम ने कहा—** हे महाभाग ! तपोनिधि महर्षि अगस्त्य ! आपका स्वागत है, आपका दर्शन प्राप्त करके सभी कुटुम्बीजन पवित्र हो गये ॥२॥ आप वेदों तथा शास्त्रों का चिन्तन करते हैं। आपकी तपस्या में विघ्न करने वाला पृथिवी में कोई भी नहीं हैं ॥३॥ हे महाभाग! आपकी धर्मपत्नी लोपामुद्रा हैं। जिनके पातिव्रत्य धर्म से सम्पूर्ण संसार का कल्याण होता है। वे तो कुशल पूर्वक हैं ॥४॥ लोभ से आप रहित हैं फिर भी हे धर्ममूर्ति कृपानिधे ! आप कृपा करके बतलायें कि आपकी मैं कौन सी सेवा करूँ ?। आपकी तपस्या के ही कारण सारे कार्य होते रहते हैं; फिर भी हे मुनीश्वर आप मेरे ऊपर कृपा करके कोई सेवा बतलायें ॥५-६॥ **शेषजी ने कहा—** इस तरह से लोकगुरु राजराजेश्वर श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा कहे जाने पर लोक स्वामी श्रीराम से महर्षि ने अत्यन्त नम्रतामयी भाषा में कहा ॥७॥ **अगस्त्य महर्षि ने कहा—** हे स्वामिन् ! आपका दर्शन तो देवताओं को भी मिलना कठिन है, इसी तरह मानकर मैं आपके पास आया हूँ ॥८॥ आपने लोककण्टक रावण नामक राक्षस का वध कर दिया है और आज भाग्यवशात् देवतागण सुखी हैं और विभीषण भी सुखी हैं ॥९॥ हे देवश्रेष्ठ श्रीराम ! आपके दर्शन से ही मेरे सारे पाप विनष्ट हो गये और मेरा

रामः पप्रच्छ तं भूयो मुनिं ज्ञानविशारदम्। लोकातीतं भवद्भावि सर्वं जानासि सर्वतः ॥१२॥
मुने कथय मे सर्वं पृच्छतो हि सुविस्तरम्। कोऽसौ मया हतो यो हि रावणो विबुधार्दनः॥१३॥
कुम्भकर्णोऽपि कस्त्वेष का जातिर्वै दुरात्मनः ।
देवो दैत्यः पिशाचो वा राक्षसो वा महामुने !॥१४॥
सर्वमाख्याहि सर्वज्ञ ! सर्वं जानासि विस्तरात् ।
अतः कथय मे सर्वं कृपां कृत्वा ममोपरि ॥१५॥
इति श्रुत्वा ततो वाक्यं कुम्भजन्मा तपोनिधिः ।
यत्पृष्टं रघुराजेन प्रवक्तुं तत्प्रचक्रमे ॥१६॥
राजन्सृष्टिकरो ब्रह्मा पुलस्त्यस्तत्सुतोऽभवत् ।
ततस्तु विश्रवा जज्ञे वेदविद्याविशारदः ॥१७॥
तस्य पत्नीद्वयं जातं पातिव्रत्यचरित्रभृत्। एका मन्दाकिनी नाम्नी द्वितीया कैकसी स्मृता॥१८॥
पूर्वस्यां धनदो जज्ञे लोकपालविलासभृत्। योऽसौ शिवप्रसादेन लङ्कावासमचीकरत् ॥१९॥
विद्युन्मालिसुतायां तु पुत्रत्रयमभून्महत्। रावणःकुम्भकर्णश्च तथा पुण्यो विभीषणः ॥२०॥
राक्षस्युदरजन्मत्वात्सन्ध्यासमयसम्भवात् । द्वयोरधर्मनिपुणा मतिरासीन्महामते ! ॥२१॥
एकदा तु विमानेन पुष्पकेण सुशोभिना । काञ्चनीयोपकल्पेन किङ्किणीजालमालिना॥२२॥
आरुह्यपितरौ द्रष्टुं प्रायाच्छोभासमन्वितः। स्वगणैःसंस्तुतो भूत्वा नानारत्नविभूषणः ॥२३॥
आगत्य पित्रोश्चरणे पतित्वा चिरमात्मजः। हर्षविह्वलितात्मा च रोमाञ्चिततनूरुहः ॥२४॥

मनरूपी कोश आनन्द से भर गया है ॥१०॥ इस तरह से कहकर महर्षि अगस्त्य चुप हो गये। श्रीराम के दर्शन जन्य आनन्द से उनका मन विह्वल हो गया था ॥११॥ उसके वाद ज्ञान विशारद मुनि से श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा— आपका प्रभाव अतिलौकिक है, आप सबकुछ जानते है ॥१२॥ हे मुने ! मैं आपसे जो पूछता हूँ उसे विस्तार पूर्वक आप बतलायें। देवताओं का मर्दन करने वाला रावण जिसको मैंने मारा वह कौन था ?॥१३॥ यह कुम्भकर्ण भी कौन था ? और उस दुष्ट की कौन सी जाति थी ? हे महामुने ! वह देवता था कि दैत्य था कि पिशाच था या राक्षस था ?॥१४॥ हे धर्मज्ञ ! आप सब कुछ जानते हैं, इन सारी बातों को आप विस्तार पूर्वक बतलायें अतएव आप मुझपर कृपा करके इन सारी बातों को बतलायें ॥१५॥ इस बात को सुनकर तपोनिधि अगस्त्य महर्षि श्रीरामचन्द्र के द्वारा जो कहा गया था उसे कहना प्रारम्भ किए ॥१६॥ हे राजन् ! सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी है, उनके पुत्र पुलस्त्य महर्षि हुए। उनके पुत्र विश्रवा हुए। वे वेद विद्या में निपुण थे ॥१७॥ उनकी दो पतिव्रता पत्नियाँ हुयीं। उनमें एक का नाम मन्दाकिनी था और दूसरी का नाम कैकसी था ॥१८॥ पहली पत्नी के पुत्र कुबेर हुए, वे विलासी लोकपाल थे, शिवजी की कृपा से वे लङ्का को अपना निवास स्थल बनाये ॥१९॥ विद्युन्माली की पुत्री कैंकसी के तीन पुत्र हुए; रावण, कुम्भकर्ण और धार्मिक विभीषण ॥२०॥ राक्षसी के गर्भ से उत्पन्न होने और सन्ध्या के समय जन्म लेने के कारण रावण और कुम्भकर्ण की राक्षसी बुद्धि हो गयी ॥२१॥ एक वार सुवर्ण द्रव्य से निर्मित तथा जिसमें छोटे-छोटे घुंघरू लगे थे ऐसे मनोहर पुष्पक विमान॥२२॥ पर चढ़कर शोभा सम्पन्न कुबेर अपने माता-पिता का दर्शन करने के लिए आये। उनके गण उनकी स्तुति कर रहे थे तथा वे अनेक रत्नों से अलंकृत थे ॥२३॥ आकर के उन्होंने अपने माता-पिता के चरणों

उवाच मेऽद्य सुदिनं महाभाग्य ! फलोदयः ।
यन्मे युष्मत्पदौ दृष्टौ महापुण्यददर्शनौ ॥२५॥
इत्यादिभिः स्तुतिपदैः स्तुत्वाऽगान्मन्दिरं स्वकम् ।
पितरावपि संहृष्टौ पुत्रस्नेहाद् बभूवतुः ॥२६॥
तं दृष्ट्वा रावणो धीमाञ्जगाद निजमातरम्। कोऽयं पुमान्सुरो वाऽथ यक्षो वाऽथ नरोत्तमः॥२७॥
योऽसौ मम पितुःपादौ संनिषेव्य गतःपुनः। महाभाग्यनिधिःस्वीयैर्गणैःसुपरिवारितः ॥२८॥
केनेदं तपसा लब्धं विमानं वायुवेगधृक् । उद्यानारामलीलादिविलासस्थानमुत्तमम् ॥२९॥

शेष उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य जननी रोषविक्लवा ।
उवाच पुत्रं विमनाः किञ्चिन्नेत्रविकारिणी ॥३०॥
रे पुत्र ! श्रृणु मद्वाक्यं बहुशिक्षासमन्वितम् ।
एतस्य जन्मकर्मादि विचारचतुराधिकम् ॥३१॥
सपत्न्या मम कुक्षिस्थं विधानं समुपस्थितम् ।
येन स्वमातुर्विमलं कुलमुज्ज्वलितं महत् ॥३२॥
त्वं तु मत्कुक्षिजः कीटः पापः स्वोदरपूरकः ।
यथा खरः स्वकं भारं जानाति न च तद्गुणम् ॥३३॥
तथा त्वं लक्ष्यसे ज्ञानी शयनासनभोगवान्। सुप्तो गतः क्वचिद् भ्रष्ट इत्येव तव सम्भवः॥३४॥
अनेन तपसा लब्धं शिवसन्तोषकारिणा। लङ्कावासो मनोवेगं विमानं राज्यसम्पदः ॥३५॥
सुधन्या जननी त्वस्य सुभाग्या सुमहोदया। यस्याः पुत्रो निजगुणैर्लब्धवान्महतां पदम् ॥३६॥

में साष्टाङ्ग प्रणाम किया । उस समय उनका मन हर्ष से विह्वल था और वे रोमाञ्चित हो गये थे ॥२४॥ कुबेर ने कहा— आज मेरा सुन्दर दिन है और मेरे महाभाग्य का उदय हुआ है । उसी के फलस्वरूप मुझे आपके पुण्य प्रद चरणों का दर्शन हुआ है ॥२५॥ इस तरह से प्रार्थना करके कुबेर अपने निवास स्थान में चले गये और उनके माता-पिता भी पुत्र स्नेह के कारण प्रसन्न हो गये ॥२६॥ कुबेर को देखकर रावण ने अपनी माता से कहा यह पुरुष कौन था ? कोई देवता, या यक्ष या मनुष्य था ?॥२७॥ जो कि मेरे पिता के चरणों की सेवा करके गया है । महाभाग्यवान् वह अपने गुणों के साथ घिरा हुआ था । किस प्रकार की तपस्या करके इसने वायु के समान वेग वाले विमान को प्राप्त किया है । उसमें उद्यान, आराम आदि विलास के स्थान विद्यमान थे ॥२८-२९॥ **शेषजी ने कहा**— रावण की इस तरह की वाणी को सुनकर क्रुद्ध हुयी उसकी माँ अपने नेत्रों में कुछ विकार उत्पन्न करके तथा उदास होकर कहीं ॥३०॥ अरे पुत्र ! तुम शिक्षा से युक्त मेरी बात को सुनो; इसके जन्म, कर्म विचार तथा अधिक चतुरता आदि को सुनो ॥३१॥ मेरी सौत की कुक्षि से यह उत्पन्न है, उसके कारण इसने अपनी माता के वंश को प्रकाशित किया है ॥३२॥ तुम तो मेरे गर्भ से उत्पन्न कीड़ा हो, पाप करते हो और अपना पेट भरते हो । उसी तरह से जैसे कोई गधा अपने भार को जानता है उसके गुण को नहीं जानता है॥३३॥ उसी तरह से तुम शयन, आसन और भोग से युक्त ज्ञानी प्रातीत होते हो जैसे कोई सोते से गिर जाय ऐसे तुम्हारा जन्म हुआ है ॥३४॥ इसने तपस्या करके शिवजी को सन्तुष्ट किया और लङ्का में निवास, मन के समान वेग

इति क्रुधा भाषितमार्तया तया मात्रा स्वयाऽऽकर्ण्य दुरात्मसत्तमः ।
रोषं विधायाऽऽत्मगतं पुनर्वचो जगाद तां निश्चयभृत्तपः प्रति ॥३७॥

रावण उवाच

जनन्याकर्णय वचो मम गर्वसमन्वितम् । रत्नगर्भात्वमेवासि यस्याः पुत्रास्त्रयो वयम् ॥३८॥
कोऽसौ कीटः स धनदः क्व तपः स्वल्पकं पुनः ।
का लङ्का किं तु तद्राज्यं स्वल्पसेवकसंयुतम् ॥३९॥
मातः ! श‍ृणु ममोत्साहात्प्रतिज्ञां करुणान्विते ! ।
न केनापि कृता कर्त्रा महाभाग्ये ! हि कैकसि !॥४०॥
यद्यहं भुवनं सर्वं वशे न स्थापयामि वै । तपोभिर्दुष्कृतैःकृत्वा ब्रह्मसन्तोषकारकः ॥४१॥
अन्नोदके सदा त्यक्त्वा निद्रां क्रीडां तथा पुनः ।
चेत्तदापि त्रिलोकस्य घातात्पापं भवेन्मम ॥४२॥
कुम्भकर्णोऽपि कृतवान्विभीषणसमन्वितः । रावणेन सहभ्रात्रेत्युक्त्वाऽगाद्गिरिकाननम् ॥४३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
रावणोत्पत्तिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

* * *

वाला विमान और राज्य सम्पत्ति प्राप्त की ॥३५॥ इसकी माता धन्य, भाग्यवान और महोदय सम्पन्न है क्योंकि उसके पुत्र ने अपने गुणों से महान पद को प्राप्त किया है ॥३६॥ इस तरह क्रोधार्त अपनी माता के द्वारा कहे जाने पर दुष्टों में श्रेष्ठ रावण उसकी बातों को सुनकर अपने मन में क्रोध करके तपस्या के विषय में निश्चय करके कहने लगा ॥३७॥ **रावण ने कहा**— हे माँ ! मेरी गर्व युक्त वाणी को सुनो । तुम ही रत्नगर्भा हो तुम्हारे हमलोग तीन पुत्र हैं ॥३८॥ यह धनद तो छोटे कीड़े के समान हैं, इसने छोटी सी तपस्या की है, थोड़े से सेवको से युक्त लङ्का और उसके राज्य का क्या महत्त्व है ?॥३९॥ करुणा करने वाली माँ मेरी उत्साह युक्त प्रतिज्ञा को तुम सुनो, हे महाभागे ! उस प्रकार की प्रतिज्ञा किसी ने नहीं की है ॥४०॥ यदि मैं ब्रह्माजी को सन्तुष्ट करने वाली दुष्कर तपस्या के द्वारा त्रैलोक्य को अपने वश में न करूँ तो मुझको त्रिलोक का नाश करने का पाप लगे। तपस्या के समय मैं अन्न, जल, निद्रा और क्रीड़ा का परित्याग कर दूँगा ॥४१-४२॥ विर्भाषण के साथ कुम्भकर्ण ने भी अपने भाई रावण के साथ प्रतिज्ञा की और इस तरह से कहकर वह पर्वत के वन में चला गया ॥४३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध वर्णन का रावणादि की उत्पत्ति वर्णन नामक छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

* * *

सातवाँ अध्यया

अगस्त्य उवाच

अथोग्रं स तपो दैत्यो दशवर्षसहस्रकम्। चकार भानुमक्ष्णा च पश्यन्नूर्ध्वपदे स्थितः॥१॥
कुम्भकर्णोऽपि कृतवांस्तपः परमदुश्चरम्। विभीषणस्तु धर्मात्मा चचार परमं तपः॥२॥
तदा प्रसन्नो भगवान्देवदेवःप्रजापतिः। देवदानवयक्षादिमुकुटैः परिसेवितः ॥३॥
ददौ राज्यं च सुमहद्भुवनत्रयभास्वरम्। वपुश्च कृतवान्रम्यं देवदानवसेवितम्॥४॥
तदा सन्तापितो भ्राता धनदो धर्मबुद्धिमान्। विमानं तु ततो नीतं लङ्का च नगरी हठात् ॥५॥
भुवनं तापितं सर्वं देवाश्चैव दिवोगताः। हतवान्ब्राह्मणकुलं मुनीनां मूलकृन्तनः ॥६॥
तदाऽतिदुःखिता देवाःसेन्द्राब्रह्माणमाययुः। स्तुतिं चक्रुर्महात्मानो दण्डवत्प्रणतिं गताः॥७॥
ते तुष्टुवुःसुराःसर्वे वाग्भिरर्थ्याभिरादृताः। ततःप्रसन्नो भगवान्किं करोमीतिचाब्रवीत् ॥८॥
ततो निवदेयाञ्चक्रुर्ब्रह्मणे विबुधाःपुरः। दशग्रीवाच्च सङ्कष्टं तथा निजपराभवम् ॥९॥
क्षणं ध्यात्वा ययौ ब्रह्मा कैलासं त्रिदशैः सह ।
तस्य शैलस्य पार्श्वे तु वैचित्र्येण समाकुलाः ॥१०॥
स्थिताःसन्तुष्टुवुर्देवाःशम्भुं शक्रपुरोगमाः। नमो भवाय शर्वाय नीलग्रीवाय ते नमः॥११॥
नमः स्थूलाय सूक्ष्माय बहुरूपाय ते नमः। इति सर्वमुखेनोक्तां वाणीमाकर्ण्य शङ्करः ॥१२॥
प्रोवाच नन्दिनं देवानानयेति ममान्तिकम्। एतस्मिन्नन्तरे देवा आहूता नन्दिना च ते॥१३॥
प्रविश्यान्तःपुरे देवा ददृशुर्विस्मितेक्षणाः। ब्रह्माऽऽगत्य ददर्शाथ शङ्करं लोकशङ्करम्॥१४॥

तपस्या से प्रसन्न ब्रह्माजी द्वारा रावण आदि को वर प्रदान करना

अगस्त्य महर्षि ने कहा— उसके बाद वह रावण अपने पैरों के अग्रभाग पर खड़ा होकर तपस्या करते हुए दश हजार वर्षों तक सूर्य को देखता रहा ॥१॥ कुम्भकर्ण ने अत्यन्त उग्र तपस्या किया और धर्मात्मा विभीषण भी परम तप करते रहे ॥२॥ उस समय देवता, दानव, यक्ष आदि के मुकुटों से ब्रह्माजी प्रसन्न होकर रावण को त्रैलोक्य में प्रकाशित होने वाले राज्य को प्रदान किए और देवताओं और दानवों से सेवित शरीर भी प्रदान किए ॥३-४॥ उसके बाद उसने अपने भाई कुबेर को दुःख दिया और हट पूर्वक उसने उनकी नगरी लङ्का और उनके पुष्पक विमान को छिन लिया ॥५॥ उसने सम्पूर्ण लोकों को सन्तप्त किया और स्वर्ग में जाकर देवताओं को भी दुःख दिया । मुनियों के मूल को काटने वाले रावण ने ब्राह्मणों के वंश का विनाश किया ॥६॥ उसके बाद अत्यन्त दुःखी होकर देवगण इन्द्र के साथ ब्रह्माजी के पास आये और सबों ने साष्टाङ्ग प्रणाम करके ब्रह्माजी की स्तुति की ॥७॥ अथित्वि युक्त वाणी से उन देवताओं ने ब्रह्माजी की स्तुति की उससे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने कहा— मैं आपलोगों के लिए क्या करूँ ॥८॥ उसके बाद देवताओं ने ब्रह्माजी के समक्ष रावण से प्राप्त अपने पराभाव तथा सङ्कट को बतलाया ॥८-९॥ उसके बाद ब्रह्माजी क्षणभर ध्यान करके देवताओं के साथ कैलास पर्वत पर गये । उस पर्वत के सन्निकट विचित्रता युक्त खड़े होकर इन्द्र आदि देवताओं ने शङ्करजी की स्तुति की । भव, शर्व तथा नीलग्रीव को नमस्कार है ॥१०-११॥ स्थूल स्वरूप, सूक्ष्म स्वरूप तथा अनेक रूप वाले आपको नमस्कार है । इस तरह से सबों के मुख से कही गयी वाणी को सुनकर शङ्करजी ने नन्दी से कहा कि देवताओं को मेरे सन्निकट लाओ । उस समय नन्दी के द्वारा बुलाये गये सभी देवता ॥१२-१३॥ भीतर प्रवेश करके आश्चर्य भरे नेत्रों से शङ्करजी को देखे । उसके बाद ब्रह्माजी भी आकर जगत् कल्याण कर्ता शङ्करजी को

गणकोटिसहस्रैस्तु सेवितं मोदशालिभिः । नग्नैर्विरूपैःकुटिलैर्घूसरैर्विकटैस्तथा ॥१५॥
प्रणिपत्याग्रतःस्थित्वा सह देवैःपितामहः । उवाच देवदेवेशं पश्यावस्थां दिवौकसाम्॥१६॥
कृपां कुरु महादेव ! शरणागतवत्सल ! । दुष्टदैत्यवधार्थं त्वं समुद्योगं विधेहि भोः ॥१७॥
सोऽपि तद्वचनं श्रुत्वा दैन्यशोकसमन्वितम् । त्रिदशैःसहितःसर्वैराजगाम हरेःपदम् ॥१८॥
तुष्टुवुर्मुनयः सर्वे ससुरोरगकिन्नराः । जय माधव ! देवेश ! जयभक्तजनार्तिहन् ॥१९॥
विलोकय महादेव ! लोकयस्व स्वसेवकान् ।
इत्युच्चैर्जगदुःसर्वे देवाःशर्वपुरोगमाः ॥२०॥
इत्युक्तमाकर्ण्य सुराधिनाथो दृष्ट्वा सुरार्तिं परिचिन्त्य विष्णुः ।
जगाद देवाञ्जलदोच्चया गिरा दुःखं तु तेषां प्रशमं नयन्निव ॥२१॥
भो ब्रह्मशर्वेन्द्रपुरोगमामराः ! शृण्वन्तु वाचं भवतां हिते रताम् ।
जाने दशग्रीवकृतं भयं वस्तन्नाशयाम्यद्य कृतावतारः ॥२२॥
पुरी त्वयोध्या रविवंशजातैर्नृपैर्महादानमखादिसत्क्रियैः ।
प्रपालिता भूतलमण्डनीया विराजते राजतभूमिभागैः ॥२३॥
तस्यां दशरथो राजा निरपत्यःश्रियान्वितः । पालयत्यधुना राज्यं दिक्चक्रजयवान्विभुः ॥२४॥
स तु वन्द्यादृष्यशृङ्गात्प्रार्थितात्पुत्रकाम्यया । पुत्रेष्ट्या विधिना यज्वा महाबलसमन्वितः ॥२५॥
ततोऽहं प्रार्थितःपूर्वं तपसा तेन भोःसुराः । पत्नीषु तिसृषु प्रीत्या चतुर्धाऽपिभवत्कृते ॥२६॥
रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरताख्यासमन्वितः । कर्ताऽस्मि रावणोद्धारं समूलबलवाहनम् ॥२७॥
भवन्तोऽपि स्वकैरंशैरवतीर्य चरन्त्विह। ऋक्षवानरूपेण सर्वत्र पृथिवीतले ॥२८॥

देखे ॥१४॥ प्रमोदपूर्ण हजारों गणों से सेवित शङ्करजी को उन्होंने देखा । वे गण नङ्गे, विरूप, कुटिल, घूसर वर्ण के तथा विकट रूप वाले थे ॥१५॥ देवताओं के साथ प्रणाम करके तथा सामने खड़ा होकर ब्रह्माजी ने शङ्करजी से कहा— आप देवताओ की दशा देखिये ॥१६॥ हे शरणागत वत्सल महादेव ! आप कृपा कीजिये! दुष्ट-दैत्य रावण का वध करने के लिए आप उद्योग करें ॥१७॥ दैत्य विषयक शोक से युक्त वचन को सुनकर शङ्करजी भी सभी देवताओं के साथ श्रीहरि के लोक में आये ॥१८॥ उसके बाद देवता, सर्प और किन्नरों के साथ मुनियों ने भी भगवान् की स्तुति करते हुए कहा हे माधव ! हे देवेश ! हे भक्तजनों के कष्ट को दूर करने वाले भगवन् ! आपकी जय हो ॥१९॥ हे महादेव ! आप देखें और अपने भक्तों को प्रकाशित करें । इस तरह से शिव इत्यादि देवताओं ने जोर से कहा ॥२०॥ इस वाणी को सुनकर देवताओं के स्वामी भगवान् विष्णु देवताओं के कष्ट का विचार करके देवताओं से मेघ के समान गम्भीर वाणी में कहे, उसी से मानो देवताओं का दुःख शान्त हो गया ॥२१॥ हे ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र इत्यादि देवताओं ! आपलोग कल्याण करने वाली मेरी वाणी को सुनें । मैं रावण से उत्पन्न आपलोगों के भय को जानता हूँ अतएव मैं अवतार लेकर उसका नाश कर देता हूँ ॥२२॥ सूर्य वंश में उद्भूत महादानी तथा अनेक यज्ञों को करने वाले तथा चाँदीमय भूमि भाग वाले राजाओं से पालित, भूलोक के अलङ्कार स्वरूप अयोध्या नाम की नगरी है ॥२३॥ उस नगरी के राजा दशरथ, ऐश्वर्य सम्पन्न हैं और निस्सन्तान हैं, वे चक्रवती राजा हैं और इस समय राज्य का पालन कर रहे हैं ॥२४॥ महती सेना से सम्पन्न वे पुत्र प्राप्ति की इच्छा से वन्दनीय ऋष्य शृङ्ग की प्रार्थना करके विधि पूर्वक पुत्रेष्टि याग करने वाले हैं ॥२५॥ उसके बाद मैं पूर्वकाल में उनकी तपस्या द्वारा प्रार्थित होने के कारण उनकी तीन पत्नियों के गर्भ से आपलोगों का कल्याण करने के लिए राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के नाम से अवतीर्ण होऊँगा और सेना और वाहन के साथ रावण का समूल विनाश करूँगा ॥२६-२७॥ आपलोग भी अपने अंशों से ऋक्ष तथा वानर

इत्युक्त्वा विररामाऽऽशु नभसीरितवाङ् मुने ! ।
देवाः श्रुत्वा महद्वाक्यं सर्वे संहृष्टमानसाः ।।२९।।
ते चक्रुर्गदितं यादृग्देवदेवेन धीमता । स्वैःस्वैरंशैर्महीपूर्णा ऋक्षवानरूपिभिः ।।३०।।
योऽसौ विष्णुर्महादेवो देवानां दुःखनाशकः ।
स त्वमेव महाराज ! भगवान्कृतविग्रहः ।।३१।।
भरतोऽयं लक्ष्मणश्च शत्रुघ्नश्च महामते !। तावकांशाद्दशग्रीवो जनितश्च सुरार्दनः ।।३२।।
पूर्ववैरानुबन्धेन जानकीं हतवान्पुनः। स त्वया निहतो दैत्यो ब्रह्मराक्षसजातिमान्।।३३।।
पुलस्त्यपुत्रो दैत्येन्द्रःसर्वलोकैककण्टकः । पातितःपृथिवी सर्वा सुखमाप महेश्वर ! ।।३४।।
ब्राह्मणानां सुखं त्वद्य मुनीनां तापसं बलम् ।
शिवानि सर्वतीर्थानि सर्वे यज्ञाः सुसंहिताः ।।३५।।
त्वयि राज्ञि जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् । सुखं प्रपेदे विश्वात्मञ्जगद्योने ! नरोत्तम !।।३६।।
एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ। उत्पत्तिश्च विपत्तिश्च मया मत्यनुसारतः।।३७।।
इत्थं निशम्यदितिजेन्द्रकुलानुकारिवार्ता महापुरुष ईश्वर ईशिता च ।
संरुद्धबाष्पगलदश्रुमुखारविन्दो भूमौ पपात सदसि प्रथितप्रभावः ।।३८।।

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
रावणोत्पत्तिविपत्तिकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

◆

रूप से अवतार लेकर पृथिवी पर विचरण करें ।।२८।। हे मुने ! इस प्रकार से कहकर वह सत्य वाणी रुक गयी, उस वाणी को सुनकर सभी देवता प्रसन्न हो गये ।।२९।। जैसा कि श्रीभगवान् ने कहा था वैसा ही उन देवताओं ने किया । ऋक्ष और वानर रूपधारी देवताओं के अंशों से पृथिवी भर गयी ।।३०।। देवताओं के दुःख को दूर करने वाले भगवान् विष्णु आप ही हैं, आपने भगवान् का शरीर धारण किया है ।।३१।। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी आपके अंश हैं । देवताओं का मर्दन करने वाला रावण भी पहले के वैर का स्मरण करके जानकीजी का अपहरण किया था । उस ब्रह्मराक्षस जाति वाले रावण का आपने वध कर दिया ।।३२-३३।। महर्षि पुलस्त्य का वंशज दैत्यों का राजा एवं सम्पूर्ण लोकों का अकेला शत्रु; रावण को आपने मार दिया है । हे महेश्वर ! इस समय सम्पूर्ण पृथिवी सुखी है ।।३४।। आज सभी ब्राह्मण सुखी हैं । मुनियों का तपस्या रूपी बल बढ़ गया है। सभी तीर्थ मङ्गलमय हो गये हैं, और समस्त यज्ञ संरक्षित हो गये हैं ।।३५।। हे नरोत्तम ! हे जगत् के कारण स्वरूप ! आपके राज्य में सम्पूर्ण जगत् के सभी देवता, असुर और मनुष्य सुखी हैं ।।३६।। हे अनघ ! आपने जो पूछा था उन सारी बातों को मैंने कह दिया मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार उत्पत्ति और विपत्ति का वर्णन किया ।।३७।। इस तरह से राक्षस वंशानुकूल वार्ता को सुनकर महापुरुष, ईश्वर तथा नियामक अपनी आँखों से बहते हुए आँसू से जिनका मुख भर गया था ऐसे प्रख्यात प्रभाव वाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सभा में ही पृथिवी पर गिर पड़े ।।३८।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवे पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध प्रकरण के अन्तर्गत रावण आदि की उत्पत्ति का वर्णन नामक सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

◆

आठवाँ अध्याय

शेष उवाच

वात्स्यायन ! मुनिश्रेष्ठ ! कथा पापप्रणाशिनी ।
ब्रह्मण्यदेवदेवस्य सर्वधमैकरक्षितुः ॥१॥
राजानं मूर्च्छितं दृष्ट्वा कुम्भजन्मा तपोनिधिः ।
शनैः शनैः करेणाऽऽशु पस्पर्शाश्रु जगाद च ॥२॥
भो रामाश्वसिहि क्षिप्रं किमर्थमवसीदसि । भवान्दैत्यकुलच्छेत्ता महाविष्णुः सनातनः ॥३॥
भूतं भव्यं भवच्चैव जगत्स्थास्नु चरिष्णु च ।
त्वदृते नास्ति सञ्चारी किमर्थमिह मूर्च्छितः ॥४॥
श्रुत्वा वाक्यं महाराजः कुम्भजन्मसमीरितम् ।
उत्तस्थौ विगलन्नेत्रबाष्पपूरितसन्मुखः ॥५॥
उवाच दीनदीनं च विस्पष्टाक्षरविस्तरम् । त्रपाभरनमन्मूर्तिर्ब्रह्मद्रोहपराङ्मुखः ॥६॥

श्रीराम उवाच

अहो मे पश्यताज्ञानं विमूढस्य दुरात्मनः । यद् ब्राह्मणकुले रूढं हतवान्कामलोलुपः ॥७॥
महिलार्थे त्वहं विप्रं वेदशास्त्रविवेकवान् । हतवान्वाडवकुलं बुद्धिहीनोऽतिदुर्मतिः ॥८॥
इक्ष्वाकूणां कुले जातु ब्राह्मणो न दुरुक्तिभाक् ।
ईदृशं कुर्वता कर्म मयैतत्सुकलङ्कितम् ॥९॥
ये ब्राह्मणास्तु पूजार्हा दानसम्मानभोजनैः । ते मया निहता विप्राःशरसङ्घातसंहितैः ॥१०॥
काँल्लोकान्नु गमिष्यामि कुम्भीपाकोऽपि दुःसह ।
न तादृशं तीर्थमस्ति यन्मां पावयितुं क्षमम् ॥११॥

ब्रह्मवध से संतप्त श्रीरामचन्द्र जी को अगस्त्य महर्षि द्वारा अश्वमेध याग करने का उपदेश

शेषजी ने कहा— मुनिश्रेष्ठ वात्स्यायन ! सभी धर्मों के एकमात्र रक्षक ब्रह्मण्यदेव श्रीरामचन्द्रजी की श्रेष्ठ कथा पापों का विनाश करने वाली है ॥१॥ मूर्छित हुए राजा रामचन्द्र को देखकर महर्षि अगस्त्य ने धीरे-धीरे अपने हाथों से उनकी आँसुओं को पोंछा और कहा ॥२॥ हे राम ! आप आश्वस्त हों आप दुःखी क्यों हो रहे हैं ? आप तो दैत्यवंश का विनाश करने वाले सनातन महाविष्णु हैं ॥३॥ स्थावर जंगमात्मक इस जगत् में भूत कालिक, भविष्यत् कालिक और वर्तमान कालिक जो कुछ भी है, वह आप से भिन्न नहीं है । आप मूर्छित क्यों हो गये ॥४॥ महर्षि अगस्त्य की वाणी को सुनकर महाराज श्रीराम उठ गये । उनका मुख मण्डल बहे हुए आंसुओं से भर गया था ॥५॥ वे अत्यन्त दीन होकर अस्पष्ट वाणी में कहने लगे, ब्रह्मद्रोह के विपरीत होने के कारण उनका मुख लज्जा के भार से झुक गया था ॥६॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— मैं अत्यन्त मूढ और दुष्ट हूँ । आप मेरे अज्ञान को देखें, कामलोलुप मैंने ब्राह्मण को मारा ॥७॥ वेद और शास्त्र के ज्ञान से युक्त मैंने स्त्री के लिए दुर्मति होकर ब्राह्मणवंश के रावण को मारा ॥८॥ इक्ष्वाकु वंशीयों में कोई भी ब्राह्मणों को दुरुक्ति भी नहीं कहता है । इस तरह का काम करके मैंने अपने वंश को कलङ्कित किया है ॥९॥ जो ब्राह्मण दान, सम्मान

न यज्ञो न तपो दानं न वा चैव व्रतादिकम् ।
यत्तु वै ब्राह्मणद्रोग्धुर्मम पावनताकरम् ॥१२॥
यैःकोपितं ब्रह्मकुलं नरैर्निरयगामिभिः। ते नरा बहुशो दुःखं भोक्ष्यन्ति निरयं गताः ॥१३॥
वेदा मूलं तु धर्माणां वर्णाश्रमविवेकिनाम्। तन्मूलं ब्राह्मणकुलं सर्ववेदैकशाखिनः॥१४॥
मूलच्छेत्तुर्ममौद्धत्यात्को लोकोऽनुभविष्यति। किमद्य करणीयं वै येन मे हि शिवं भवेत् ॥१५॥

शेष उवाच

विलपन्तं भृशं रामं राजेन्द्रं रघुपुङ्गवम्। मायामनुष्यवपुषं कुम्भजन्माऽब्रवीद्वचः ॥१६॥

अगस्त्य उवाच

मा विषादं महाधीर ! कुरु राजन्महामते। न ते ब्राह्मणहत्यास्याद्दुष्टानां नाशमिच्छतः ॥१७॥
त्वं पुराणः पुमान्साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः। कर्ता हर्ताऽविता साक्षी निर्गुणः स्वेच्छया गुणी॥१८॥
सुरापो ब्रह्महत्याकृत्स्वर्णस्तेयी महाघकृत्। सर्वे त्वन्नामवादेन पूता शीघ्रं भवन्ति हि ॥१९॥
इयं देवी जनकजा महाविद्या महामते। यस्याःस्मरणमात्रेण मुक्ता यास्यन्ति सद्गतिम् ॥२०॥
रावणोऽपि न वै दैत्यो वैकुण्ठे तव सेवकः ।
ऋषीणां शापतोऽवाप्तो दैत्यत्वं दनुजान्तकः ॥२१॥
तस्याऽनुग्रहकर्ता त्वं न तु हन्ता द्विजन्मनः ।
एवं सञ्चिन्त्य मा भूयो निजं शोचितुमर्हसि ॥२२॥

तथा भोजन के द्वारा पूजा करने के योग्य हैं, उन ब्राह्मणों को मैंने बाण समूह का संधान करके मारने का काम किया है ॥१०॥ न जाने मैं किन लोकों में जाऊँगा, कुम्भीपाक भी मेरे पाप को नहीं सह सकता है । ऐसा कोई भी तीर्थ नहीं है, जो मुझे पवित्र बना सके ॥११॥ कोई भी यज्ञ, तप, दान अथवा व्रत नहीं हैं जो ब्राह्मणों से द्रोह करने वाले मुझको पवित्र बना सके ॥१२॥ जो नरकगामी पापियों ब्राह्मण को क्रुद्ध किया करते हैं, वे नरकों में जाकर अनेक प्रकार के दुःखों को भोगते हैं ॥१३॥ वर्ण एवं आश्रम का भेद पूर्वक ज्ञान रखने वालों के धर्मो के मूल वेद हैं, उन वेदों का भी मूल ब्राह्मण वंश है । ब्राह्मण ही सभी वेदों के एक-एक शाखा वाले हैं ॥१४॥ मूल का छेदन करने वाले मेरी उद्धतता के कारण का कौन सा मनुष्य अनुभव करेगा; जिससे कि मेरा कल्याण हो; ऐसा मैं कौन सा कार्य करूँ ॥१५॥ माया के द्वारा मनुष्य शरीर धारण किए हुए रघुवंशियों में अग्रगण्य राजेन्द्र, बहुत अधिक विलाप करने वाले श्रीराम को अगस्त्य महर्षि ने कहा ॥१६॥ महामते राजन् ! आप विषाद न करें, धैर्य धारण करें दुष्टों को विनष्ट करने वाले आपको ब्रह्महत्या नहीं लग सकती हैं ॥१७॥ आप साक्षात् पुराण पुरुष हैं, प्रकृति से परे हैं, आप साक्षात् ईश्वर हैं, आप जगत् की सृष्टि करने वाले, संहार करने वाले तथा रक्षा करने वाले साक्षी और निर्गुण हैं । आप अपनी इच्छा से सगुण हो जाते हैं ॥१८॥ मदिरा पीने वाले, ब्राह्मण की हत्या करने वाले, सुवर्ण की चोरी करने वाले जो महापापी हैं । वे भी आपके नाम का उच्चारण करके शीघ्र ही पवित्र हो जाते हैं ॥१९॥ हे महामते ! देवी जनक पुत्री महाविद्या स्वरूपिणी हैं, उनका स्मरण करने मात्र से जीव मुक्त होकर सद्गति को प्राप्त कर लेते हैं ॥२०॥ रावण भी दैत्य नहीं था वह वैकुण्ठ में आपका सेवक था । ऋषियों के शाप के कारण वह दैत्यत्व को प्राप्त कर लिया था ॥२१॥ इसलिए आपने उस पर अनुग्रह किया है, उसे मारा नहीं है । इस बात का विचार करके आप पुनः शोक न करें ॥२२॥ इस तरह

इति श्रुत्वा ततो वाक्यं रामःपरपुरञ्जयः । उवाच मधुरं वाक्यं गद्गदस्वरभाषितम् ॥२३॥

श्रीराम उवाच

पातकं द्विविधं प्रोक्तं ज्ञाताज्ञातविभेदतः। ज्ञातं यद्बुद्धिपूर्वं हि अज्ञातं तद्विवर्जितम्॥२४॥
बुद्धिपूर्वं कृतं कर्म भोगेनैव विनश्यति। नश्येदनुशयादन्यदिदं शास्त्रविनिश्चितम् ॥२५॥
कुर्वतो बुद्धिपूर्वं मे ब्रह्महत्यां सुनिन्दिताम् । न मे दुःखापनोदाय साधुवादः सुसंमतः ॥२६॥
प्रब्रूहि तादृशं मह्यं यादृशं पापदाहकम् । व्रतं दानं मखं किञ्चित्तीर्थमाराधनं महत् ॥२७॥
येन मे विमला कीर्तिर्लोकान्वै पावयिष्यति। पापाचाराप्तकालुष्यान्ब्रह्महत्याहतप्रभान् ॥२८॥

शेष उवाच

इत्युक्तवन्तं तं रामं जगाद स तपोनिधिः। सुरासुरनमन्मौलिमणिनीराजिताङ्घ्रिकम् ॥२९॥
शृणु राम ! महावीर ! लोकानुग्रहकारक ! ।
विप्रहत्यापनोदाय तव यद्वचनं ब्रुवे ॥३०॥
सर्वं स पापं तरति योऽश्वमेधं यजेत वै । तस्मात्त्वं यज विश्वात्मन्वाजिमेधेन शोभिना॥३१॥
सप्ततन्तुर्मही भर्त्रा त्वया साध्यो मनीषिणा। महासमृद्धियुक्तेन महाबलसुशालिना॥३२॥
स वाजिमेधो विप्राणां हत्यायाः पापनोदनः ।
कृतवान्यंमहाराजो दिलीपस्तव पूर्वजः ॥३३॥
शतक्रतुःशतं कृत्वा क्रतूनां पुरुषर्षभः। पदमापामरावत्यां देवदैत्यसुसेवितम्॥३४॥
मनुश्च सगरो राजा मरुत्तो नहुषात्मजः । एते ते पूर्वजाःसर्वे यज्ञं कृत्वा पदं गताः ॥३५॥
तस्मात्त्वं कुरु राजेन्द्र ! समर्थोऽसि समन्ततः ।
भ्रातरो लोकपालाभा वर्तन्ते तव भावुकाः ॥३६॥

से महर्षि की बातों को सुनकर शत्रुओं की नगरी पर विजय प्राप्त करने वाले श्रीराम ने गद्गद स्वर में मधुर वाणी में कहा ॥२३॥ **श्रीराम ने कहा**— पाप दो तरह के होते हैं ज्ञात और अज्ञात । ज्ञात पाप बुद्धिपूर्वक होते हैं और अज्ञात का ज्ञान पहले से नहीं रहता है ॥२४॥ जो कर्म बुद्धि पूर्वक किए जाते हैं उनका तो फल भोगना ही पड़ता है और अज्ञात पाप पश्चात्ताप के द्वारा विनष्ट हो जाता है, यह शास्त्र का निश्चय है ॥२५॥ मैंने अत्यन्त निन्दित ब्रह्महत्या बुद्धिपूर्वक किया है, अतएव मेरे दुःख को दूर करने के लिए केवल आशीर्वाद पर्याप्त नही है ॥२६॥ अतएव आप मुझे कोई पाप विनाशक तीर्थ, व्रत, यज्ञ, अथवा दान बतलायें ॥२७॥ जिससे कि मेरी निर्दोष कीर्ति पापाचरण करने के कारण कलुषित तथा ब्रह्महत्या के कारण निष्प्रभ लोकों को पवित्र बना सके॥२८॥ **शेषजी ने कहा**— देवताओं और राक्षसों के मुकुट मणियों से जिनके चरणों की आरती की जाती है, ऐसे श्रीरामचन्द्र से तपोनिधि महर्षि ने कहा ॥२९॥ हे महावीर श्रीराम ! आप सुनें । हे लोकों पर अनुग्रह करने वाले ! मैं ब्रह्महत्या को दूर करने के लिए उपाय बतलाता हूँ ॥३०॥ जो अश्वमेध याग करता है, उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं । अतएव हे विश्वात्मन् ! आप सुन्दर अश्वमेध याग करें ॥३१॥ मनीषी पृथिवी पति आपके लिए यह सप्तन्तु (याग) साध्य है क्योंकि आप महासमृद्धि सम्पन्न और महाबल से सुशोभित हैं ॥३२॥ अश्वमेध ब्राह्मण की हत्या जन्य पाप को दूर करने वाला है । इसको आपके पूर्वज दिलीप ने किया था ॥३३॥ पुरुष श्रेष्ठ इन्द्र ने सौ अश्वमेध याग करके अमरावती में देवताओं और दैत्यों से सुरोवित पद प्राप्त किया ॥३४॥ मनु, राजा

इत्युक्तमाकर्ण्य मुनेः स भाग्यवान्रघूत्तमो ब्राह्मणघातभीतः ।
पप्रच्छ यागे सुमतिं विकीर्षन्विधिं पुरावित्परिगीयमानः ॥३७॥

इति श्रीपद्मपुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
रघुनाथस्यागस्त्योपदेशो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

* * *

नवाँ अध्याय

श्रीराम उवाच

कीदृशोऽश्वस्तत्र भाव्यः को विधिस्तत्र पूजने ।
कथं वा शक्यते कर्तुं के जेयास्तत्र वैरिणः ॥१॥

अगस्त्य उवाच

गङ्गाजलसमानेन वर्णेन वपुषा शुभाः । कर्णे श्यामो मुखे रक्तः पीतः पुच्छे सुलक्षितः ॥२॥
मनोवेगः सर्वगतिरुच्चैःश्रवस्समप्रभः । वाजिमेधे हयः प्रोक्तः शुभलक्षणलक्षितः ॥३॥
वैशाखपौर्णमास्यां तु पूजयित्वा यथाविधि। पत्रं लिखित्वा भाले तु स्वनामबलचिह्नितम् ॥४॥
मोचनीयः प्रयत्नेन रक्षकैः परिरक्षितः । यत्र गच्छति यज्ञाश्वस्तत्र गच्छेत्सुरक्षकः ॥५॥

सगर, मरुत्त, ययाति ये सभी आपके पूर्वज इस यज्ञ को करके उत्तम पद को प्राप्त किए ॥३५॥ अतएव हे राजेन्द्र! आप इस यज्ञ को करें । आप हर तरह से समर्थ हैं, आपके भावुक भाई लोकपालों की कान्ति के समान कान्ति वाले हैं ॥३६॥ मुनि के द्वारा कहे गये इस वाक्य को सुनकर रघुवंशियों में श्रेष्ठ भाग्यवान् तथा ब्राह्मणवध के भय से भयभीत, उस याग को करने की इच्छा से इतिहास में श्रेष्ठ श्रीराम ने उस यज्ञ की विधि को पूछा ॥३७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवाद के अन्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में श्रीरामचन्द्रजी को महर्षि अगस्त्य का उपदेश वर्णन नामक आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

* * *

महर्षि अगस्त्य का श्रीरामचन्द्र की अश्वशला में अश्वमेध यज्ञोपयोगी अश्व का निरीक्षण

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा— अश्वमेध का घोड़ा कैसा होना चाहिए ? उसके पूजन की विधि क्या है ? अश्वमेध कैसे किया जा सकता है ? तथा किन शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना चाहिए ?॥१॥ **अगस्त्य महर्षि ने कहा—** जिसका शरीर गङ्गाजल के समान शुद्व हो, कान श्याम वर्ण के हों, मुख रक्तवर्ण का हो तथा पुंछ पीत वर्ण का हो इस प्रकार का अश्व सुन्दर लक्षण वाला होता है ॥२॥ उसका वेग मन के समान हो, सर्वत्र जिसकी गति हो, जिसकी कान्ति उच्चैःश्रवा के समान हो इस प्रकार का अश्व अश्वमेध में शुभ लक्षण वाला बतलाया गया है ॥३॥ वैशाख पूर्णिमा के दिन उसकी विधिपूर्वक पूजा करे; इसके बाद अपने नाम और बल से युक्त पत्र लिखकर उसके ललाट पर लगा दें ॥४॥ उसके बाद अश्व के रक्षकों को नियुक्त करके उस अश्व को छोड़ दे । वह यज्ञ का अश्व जहाँ जाय रक्षक को भी उसके साथ जाना चाहिए ॥५॥ जो कोई अपने बल एवं पराक्रम से दृप्त व्यक्ति उसको

यस्तं बलान्निबध्नाति स्ववीर्यलदर्पितः । तस्मात्प्रसभमानेयःपरिरक्षाकरैर्हयः ॥६॥
कर्त्रा तावत्सुविधिना स्थातव्यं नियमादिह। मृगशृङ्गधरो भूत्वा ब्रह्मचर्यसमन्वितः ॥७॥
व्रतं पालयमानश्च यावद्वर्षमतिक्रमेत्। तावद्दीनान्धकृपणाः परितोष्या धनादिभिः ॥८॥
अन्नं तु बहुशो देयं धनं वा भूरि मारिष । यद्यत्प्रार्थयते धीमांस्तत्तदेव ददाति हि ॥९॥
एवं प्रकुर्वतःकर्म यज्ञं सम्पूर्णतां गतः । करोति सर्वपापानां नाशनं रिपुनाशन ! ॥१०॥
तस्माद्भवान्समर्थोऽस्ति करणे पालनेऽर्चने । कृत्वा कीर्तिं सुविमलां पावयान्याञ्जनान्नृप !॥११॥

श्रीराम उवाच

विलोकय द्विजश्रेष्ठ ! वाजिशालां ममाधुना ।
तादृशाः सन्ति नो वाऽश्वाः शुभलक्षणलक्षिताः ॥१२॥
इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यमगस्त्यः करुणाकरः ।
उत्तस्थौ वीक्षमाणोऽयं यागार्हान्वाजिनः शुभान् ॥१३॥
गत्वाऽथ तत्र शालायां रामचन्द्रसमन्वितः । ददर्शाश्वान्विचित्राङ्गान्मनोवेगान्महाबलान् ॥१४॥
अवनितलगताःकिं वाजिराजस्य वंश्या किमथ रघुपतीनामेकतः कीर्तिपिण्डाः ।
किमिदममृतराशिर्वाहरूपेण सिन्धोर्मुनिरिति मनसोऽन्तर्विस्मयं प्राप पश्यन् ॥१५॥
एकतः शोणदेहानां वाजिनां पङ्क्तिरुत्तमा। एकतः श्यामकर्णाश्च कस्तूरीकान्तिसप्रभाः ॥१६॥
एकतःकनकाभाश्च त्वन्यतो नीलवर्णिनः । एकतःशबलैर्वर्णैर्विशिष्टैर्वाजिभिर्वृताः ॥१७॥
एवं पश्यन्मुनिः सर्वान्कौतुकाविष्टमानसः। ययावन्यत्र तान्द्रष्टुं यागयोग्यान्हयान्मुनिः ॥१८॥

वाँध ले, उससे बलपूर्वक छुड़ाकर रक्षकों को उसे लाना चाहिए ॥६॥ उतने समय तक यज्ञकर्ता को नियम पूर्वक यहाँ रहना चाहिए । उसको हाथ में मृग का शृङ्ग धारण करके तथा ब्रह्मचर्य का पालन करते रहना चाहिए ॥७॥ उसे एक वर्ष तक व्रत का पालन करना चाहिए, यजमान को उतने समय तक दीनों, अन्धों तथा कृपणों को धन प्रदान के द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिए ॥८॥ हे मारिष ! बहुत अधिक अन्न का दान करना चाहिए अथवा बहुत अधिक धन देना चाहिए । जो कोई जो कुछ चाहे उसे वही देना चाहिए ॥९॥ इस तरह के कर्म करने वाले का यज्ञ सम्पूर्ण हो जाता है । हे शत्रुओं का विनाश करने वाले ! वह यज्ञ समस्त पापों का नाश कर देता है ॥१०॥ आप इस यज्ञ के करने पालन करने, उसके और अर्चना करने में समर्थ हैं । हे राजन् ! आप अपनी निर्मल कीर्ति को करके दूसरे लोगों को भी पवित्र बनायें ॥११॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— हे द्विजश्रेष्ठ ! आप मेरे घुड़शाल को देख लें कि उस प्रकार के शुभ लक्षण से युक्त कोई अश्व उसमें हैं कि नहीं ॥१२॥ भगवान् श्रीराम के इस प्रकार के वाक्य को सुनकर करुणा करने वाले महर्षि अगस्त्य याग के योग्य घोडे को देखने के लिए खड़े हो गये ॥१३॥ भगवान् श्रीराम के साथ घुड़शाल में जाकर उन्होंने मन के समान वेग वाले तथा विचित्र अङ्गों वाले महाबलवान् अश्वों को देखा ॥१४॥ घोड़ों को देखते हुए मुनि को आश्चर्य हुआ कि वाजिराज (उच्चैः श्रवा) वंशवाले अश्व पृथिवी पर ही चल आये हैं क्या ? अथवा ये सब श्रीरामचन्द्र के यशः पिण्ड हैं ? अथवा यह समुद्र का अमृत समूह यहाँ पर अश्व रूप से विद्यमान हैं ?॥१५॥ एक तरफ लाल शरीर वाले घोड़ों की उत्तम पंक्ति थी दूसरी ओर श्याम वर्ण के कान वाले घोड़ों का रङ्ग कस्तुरी के समान था ॥१६॥ एक ओर सुवर्ण के समान कान्ति वाले तो दूसरी ओर नील वर्ण के घोड़े थे । एक तरफ चित्रवर्ण वाले अश्वों का समूह था ॥१७॥

ददर्श तत्र शतशो बद्धांस्तादृशवर्णकान्। दृष्ट्वाविस्मयमापेदे समुनिर्हर्षिताङ्गकः ॥१९॥

एकतः श्यामकर्णांश्च सर्वाङ्गैः क्षीरसन्निभान् ।
पीतपुच्छान्मुखे रक्ताञ्छुभलक्षणलक्षितान् ॥२०॥

निरीक्ष्य परितोऽनघान्विमलनीरधारानिभान् मनोजवनशोभितान्विमलकीर्तिपुञ्जप्रभान् ।
पयोनिधिविशोषको मुनिरुवाच सीतापतिम् विचित्रहयदर्शनाद्धृषितनेत्रवक्त्रप्रभः ॥२१॥

अगस्त्य उवाच

हयमेधक्रतौ योग्यान्वाहांस्ते बहुशःशुभान् । पश्यतो नेत्रयोर्मेऽद्य तृप्तिर्नास्ति रघूत्तम ! ॥२२॥
रामचन्द्र ! महाभाग ! सुरासुरनमस्कृत !। यज्ञं कुरु महाराज ! हयमेधं सुविस्तरम्॥२३॥

सुरपतिरिव सर्वान्यज्ञसङ्घान्करिष्यंस्तपन इव सुपर्वारातितोयं विशोष्यन् ।
हतरिपुगणमुख्यं साम्परायं विजित्य क्षितितलसुखभोगं कुर्विदं भूरिभाग ! ॥२४॥

इत्येवं वाक्यवादेन परितुष्टाखिलेन्द्रियः । सर्वान्वै यज्ञसम्भारानाजहार मनोहरान्॥२५॥
मुन्यन्वितो महाराजःसरयूतीरमागतः । सुवर्णलाङ्गलैर्भूमिं विचकर्ष महीयसीम् ॥२६॥
विलिख्य भूमिं बहुशश्चतुर्योजनसंमिताम्। मण्डपान्रचयामास यज्ञार्थं स नरोत्तमः ॥२७॥

कुण्डं तु विधिवत्कृत्वा योनिमेखलयान्वितम् ।
अनेकरत्नरचितं सर्वशोभासमन्वितम् ॥२८॥

मुनीश्वरो महाभागो वसिष्ठःसुमहातपाः । सर्वंतत्कारयामास वेदशास्त्रविधिश्रितम् ॥२९॥
प्रेषितास्तेन मुनिना शिष्या मुनिवराश्रमान्। कथयामासुरुद्युक्तं हयमेधे रघूत्तमम् ॥३०॥

आश्चर्य चकित मन वाले ऋषि इस प्रकार से अश्वों को देखते हुए याग के योग्य घोड़ों को देखने के लिए दूसरी ओर गये ॥१८॥ वहाँ पर उन्होंने उस प्रकार के सैकड़ों बँधे हुए घोड़ों को देखे । उन सबों को देखकर हर्षित हुए मुनि विस्मित हो गये ॥१९॥ एक तरफ श्याम वर्ण के कानों वाले तथा क्षीरसागर के समान समस्त अङ्गों वाले, पीले पूंछ तथा लाल मुँह वाले शुभलक्षण से युक्त ॥२०॥ चारों ओर से स्वच्छ जल धारा के समान, मन के समान वेग वाले, स्वच्छ कीर्ति के समान घोड़ों को देखकर समुद्र को सोख लेने वाले मुनि ने सीतापति श्रीरामचन्द्र से बोले । उस समय विचित्र घोड़ों को देखने के कारण उनके नेत्र और मुखमण्डल विकसित हो गये थे ॥२१॥ अगस्त्य महर्षि ने कहा— अश्वमेध यज्ञ के योग्य आपके बहुत से घोड़े हैं । हे रघूत्तम ! उन सबों को देखने से मेरे नेत्रों को तृप्ति नहीं हो रही है ॥२२॥ देवताओं और दैत्यों से नमस्कृत महाभाग श्रीरामचन्द्र! महाराज आप अच्छी तरह से विस्तृत अश्वमेध याग करें ॥२२॥ इन्द्र के समान समस्त यज्ञ समूहों को करते हुए समुद्र के जल समूह को सोखने वाले सूर्य के समान ॥२३॥ शत्रु समूह के मुखिया को मार देने वाले आप स्वर्ग पर विजय प्राप्त करके इस पृथिवी के सुखभोगों को करें । आप अत्यन्त भाग्यवान् हैं ॥२४॥ इस तरह के वाक्य के द्वारा जिनकी सारी इन्द्रियाँ सन्तुष्ट हो गयी थीं वे श्रीरामचन्द्रजी यज्ञ के समस्त मनोहर सामग्रियों को एकत्रित कराये ॥२५॥ अगस्त्य मुनि के साथ महाराज सरयू के तट पर आये और उन्होंने सुवर्ण के हल से पूजनीय पृथिवी को जोता ॥२६॥ चार योजन विस्तृत भूमि को बार-बार जोतकर नरोत्तम भगवान् श्रीराम ने यज्ञ के लिए मण्डप का निर्माण कराया ॥२७॥ उन्होंने योनि तथा मेखला के साथ विधिपूर्वक कुण्ड का निर्माण किया । कुण्ड सभी प्रकार की शोभा से युक्त तथा अनेक प्रकार के रत्नों से निर्मित था ॥२८॥ मुनियों में श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठ

आकारितास्तदा सर्व ऋषयस्तपतां वराः । आजग्मुःपरमेशस्य दर्शने त्वतिलालसाः ॥३१॥
नारदोऽसितनामा च पर्वतः कपिलो मुनिः ।
जातूकर्ण्योऽङ्गिरा व्यास आर्ष्टिषेणोऽत्रिरासुरिः ॥३२॥
हारीतो याज्ञवल्क्यश्च संवर्तःशुकसंज्ञितः । इत्येवमादयो रामहयमेधवरं ययुः ॥३३॥
तान्सर्वान्पूजयामास रघुराजो महामनाः। प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यामर्घ्यविष्टरकादिभिः ॥३४॥
गां हिरण्यं ददौ तेभ्यःप्रायशो दृष्टविक्रमः। महद्भाग्यं त्वद्य मेऽस्ति यद्यूयं दर्शनं गताः ॥३५॥

शेष उवाच

एवं समाकुले ब्रह्मन्नृषिवर्यसमागमे । धर्मवार्ता बभूवाहो वर्णाश्रमसुसंमता ॥३६॥

वात्स्यायन उवाच

का धर्मवार्ता तत्रासीत्किं वा कथितमद्भुतम् ।
साधवः सर्वलोकानां कारुण्यात्किमुताब्रुवन् ॥३७॥

शेष उवाच

तान्समेतान्मुनीन्दृष्ट्वा रामो दाशरथिर्महान् । पप्रच्छ सर्वधर्मांश्च सर्ववर्णाश्रमोचितान् ॥३८॥
ते तु पृष्टा हि रामेण धर्मान्प्रोचुर्महागुणान्। तान्प्रवक्ष्यामि ते सर्वान्यथाविधि शृणुष्व तान् ॥३९॥

ऋषय ऊचुः

ब्राह्मणेन सदा कार्यं यजनाध्ययनादिकम्। वेदान्पठित्वा विरजेन्नो वा गार्हस्थ्यमाविशेत् ॥४०॥
ब्राह्मणेन सदा त्याज्यं नीचसेवानुजीवनम्। आपद्गतोऽपि जीवेत न श्ववृत्त्या कदाचन॥४१॥

ने वेद शास्त्र के विधानानुसार समस्त कार्यों को करवाया ॥२९॥ महर्षि वसिष्ठ ने श्रेष्ठ मुनियों के आश्रमों में अपने शिष्यों को भेजा । उन लोगों ने जाकर कहा कि श्रीरामचन्द्र के अश्वमेध यज्ञ में आपलोग चलें ॥३०॥ श्रेष्ठ तपस्वी बुलाये गये, सभी ऋषिगण श्रीराम के दर्शन की लालसा से प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आयें ॥३१॥ नारद, असित, पर्वत ऋषि, कपिल मुनि, जातुकर्णी, अङ्गिरा महर्षि, व्यासजी, आर्ष्टिषेण, अत्रि महर्षि, आसुरि, हारीत महर्षि, याज्ञवल्क्य, संवर्त तथा शुक आदि महर्षि श्रीरामचन्द्रजी के अश्वमेध में आयें ॥३२-३३॥ महामना श्रीरामचन्द्रजी ने उन सभी ऋषियों की पूजा की, उन्होंने सबों को खड़ा होकर नमस्कार किया तथा अर्घ्य एवं विष्टर प्रदान किया ॥३४॥ उन लोगों को उन्होंने गौ तथा सुवर्ण आदि प्रदान किया और कहा कि आज मेरा बहुत बड़ा भाग्य है कि आपलोगों का दर्शन हो गया ॥३५॥ **शेषजी ने कहा**— हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार से ऋषिवर्यों के समागम में वर्णों एवं आश्रमों के समस्त अद्भुत धर्म की वार्ता चल पड़ी ॥३६॥ **वात्स्यायन महर्षि ने कहा**— वहाँ पर कौन सी धर्मवार्ता हुयी ? वहाँ पर क्या अद्भुत कार्य हुआ ? सम्पूर्ण संसार पर कृपा करने वाले साधु पुरुषों ने वहाँ क्या कहा ?॥३७॥ **शेषजी ने कहा**— उन एकत्रित मुनियों को देखकर महाराज दशरथ के पुत्र महान् श्रीरामचन्द्र ने सभी वर्णों तथा सभी आश्रमों के लिए उचित धर्मों के विषय में प्रश्न किया ॥३८॥ श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा पूछे जाने पर मुनियों ने महान् गुण सम्पन्न धर्मों को बतलाया । उन सबों को मैं तुम्हें विधिपूर्वक बतलाता हूँ उसे सुनो ॥३९॥ **ऋषियों ने कहा**— ब्राह्मण को सदैव यज्ञ तथा अध्ययन आदि करते रहना चाहिए । वेदों का अध्ययन करके या तो संसार से विरक्त हो जाय अथवा गार्हस्थ्य को स्वीकार कर ले॥४०॥ ब्राह्मणों को नीच की सेवा तथा उनकी नौकरी का त्याग कर देना चाहिए । विपत्ति में जी लेना ठीक

ऋतुकालाभिगमनं धर्मोऽयं गृहिणःपरः। स्त्रीणां वरमनुस्मृत्याऽपत्यकामोऽथ वा भवेत् ।।४२।।
दिवाभिगमनं पुंसामनायुष्यकरं मतम्। श्राद्धाहःसर्वपर्वाणि यतस्त्याज्यानि धीमता ।।४३।।
तत्र गछेत्स्त्रियं मोहाद्धर्मात्प्रच्यवते परात्। ऋतुकालाभिगामी यःस्वदारनिरतश्च यः ।।४४।।
सर्वदा ब्रह्मचारी ह विज्ञेयःस गृहाश्रमी। ऋतुःषोडशयामिन्यश्चतस्त्रस्ता सुगर्हिताः ।।४५।।
पुत्रदास्तासु या युग्मा अयुग्माः कन्यकाप्रदाः ।
त्यक्त्वा चन्द्रमसं दुष्टं मघां मूलं विहाय च ।।४६।।
शुचिःसन्निर्विशेत्पत्नीं पुंनामर्क्षे विशेषतः । शुचिं पुत्रं प्रसूयेत पुरुषार्थप्रसाधनम् ।।४७।।
आर्षे विवाहे गोद्वन्द्वं यदुक्तं तत्प्रशस्यते। शुल्कमण्वपि कन्यायाःकन्याक्रेतुस्तु पापकृत् ।।४८।।
वाणिज्यं नृपतेःसेवा वेदानध्ययनं तथा । कुविवाहःक्रियालोपःकुलपातनहेतवः ।।४९।।
अन्नोदकपयोमूलफलैर्वाऽपि गृहाश्रमी । गोदानेन तु यत्पुण्यं पात्राय विधिपूर्वकम् ।।५०।।
अनर्चितोऽतिथिर्गेहाद्भग्नाशो यस्य गच्छति । आजन्म सञ्चितात्पुण्यात्क्षणात्स हि बहिर्भवेत्।।५१।।
पितृदेवमनुष्येभ्यो दत्त्वाऽश्नीतामृतं गृही । स्वार्थं पचत्यघं भुङ्क्ते केवलं स्वोदरम्भरिः ।।५२।।
षष्ठ्यष्टम्योर्विशेत्पापं तैले मांसे सदैव हि । चतुर्दश्यां तथाऽमायां त्यजेत क्षुरमङ्गनाम्।।५३।।
रजस्वलां न सेवेत नाश्नीयात्सह भार्यया । एकवासा न भुञ्जीत न भुञ्जीतोत्कटासने ।।५४।।
नाश्नन्तीं स्त्रियमीक्षेत तेजःकामो नरोत्तमः । मुखेनोपधमेन्नाग्निं नग्नां नेक्षेत योषितम्।।५५।।

है किन्तु नौकरी करना कभी भी ठीक नहीं है ।।४१।। गृहस्थों को ऋतुकाल में ही पत्नी के साथ सङ्गम करना चाहिए । स्त्रियों के साथ सङ्गम उनके स्मरण के कारण अथवा सन्तान की प्राप्ति के लिए करना चाहिए ।।४२।। दिन में स्त्री के साथ सङ्गम करने से आयु क्षीण होती है । श्राद्ध के दिन, सभी पर्वों पर बुद्धिमान व्यक्ति को स्त्री सङ्गम त्याग देना चाहिए ।।४३।। इन अवसरों पर स्त्री सहवास करने से गृहस्थ धर्मभ्रष्ट हो जाता है । जो ऋतुकाल के समय अपनी पत्नी के साथ संगम करता है ।।४४।। उस गृहस्थ को सदा ब्रह्मचारी ही समझना चाहिए । ऋतुकाल सोलह रात्रियों का होता है, और उनमें प्रथम चार रात्रियाँ सहगमन के लिए निन्दित हैं ।।४५।। उनमें समसंख्याक रात्रियाँ पुत्रप्रद और विषम संख्याक रात्रियाँ कन्याप्रद होती हैं । मघा तथा मूल नक्षत्रों मे स्त्री सहगमन नहीं करना चाहिए ।।४६।। पत्नी जब पवित्र हो उस समय पुरुष संज्ञक नक्षत्र में सङ्गम करे । ऐसा करने से पत्नी पवित्र तथा पुरुषार्थ करने वाले पुत्र को जन्म देती है ।।४७।। आर्ष विवाह में दो गौओं का दान श्रेष्ठ माना गया है । कन्या का शुल्क अल्यल्प देना चाहिए । कन्या खरीदने वाला पापी होता है ।।४८।। ब्राह्मण के वंश के पतन के पाँच हेतु हैं १. व्यापार करना, २. राजा की सेवा, ३. वेदाध्ययन न करना, ४. निन्दित विवाह तथा ५. वर्णाश्रम धर्म का लोप होना । गृहस्थ अन्न, जल, दूध, मूल अथवा फल के द्वारा पूजा करके योग्य पात्र को विधि पूर्वक गोदान करे ।।४९-५०।। जिसके घर से पूजा प्राप्त किए बिना ही अतिथि निराश होकर लौट जाता है, क्षणभर में ही उस गृहस्थ के सारे पुण्यों को विनष्ट कर देता है ।।५१।। पितृगण, देवता और मनुष्य को दान देकर जो खाया जाता है, वह अमृत के समान होता है । जो केवल अपना पेट भरने के लिए अन्न पकाता है वह केवल पाप ही खाता है ।।५२।। षष्ठी और अष्टमी तिथि को तेल तथा मांस में पाप का सदैव प्रवेश रहता है । चतुर्दशी और अमावश्या तिथि को पत्नी के साथ सहगमन न करे ।।५३।। रजस्वला पत्नी के साथ समागम न करे । पत्नी के साथ भोजन न करे । एक कपड़ा पहन कर भोजन न करे । चटाई पर बैठकर भोजन न करे ।।५४।। तेज चाहने

नाङ्घ्री प्रतापयेदग्नौ न वस्त्वशुचि निक्षिपेत् ।
प्राणिहिंसां न कुर्वीत नाश्नीयात्सन्ध्ययोर्द्वयो: ॥५६॥
नाचक्षीत धयन्तीं गां नेन्द्रचापं प्रदर्शयेत् । न दिवोद्गतसांर च भक्षयेद्दधि नो निशि ॥५७॥
स्त्रीं धर्मिणी नाभिवदेन्नाद्यादातृप्ति रात्रिषु। तौर्यत्रिकप्रियो न स्यात्कांस्ये पादौ न धावयेत्॥५८॥
न धारयेदन्यभुक्तं वासश्चोपानहावपि । न भिन्नभाजनेऽश्नीयान्नाश्नीताऽन्नं विदूषितम् ॥५९॥
संविशेन्नार्द्रचरणो नोच्छिष्टः क्वचिदाव्रजेत् ।
शयानो वा न चाश्नीयान्नोच्छिष्टः संस्पृशेच्छिरः ॥६०॥
न मनुष्यस्तुतिं कुर्यान्नात्मानमवमानयेत्। अभ्युद्यतं न प्रणमेत्परमर्माणि नो वदेत्॥६१॥
एवं गार्हस्थ्यमाश्रित्य वानप्रस्थाश्रमं व्रजेत् । सस्त्रीको वा गतस्त्रीको विरज्येत ततः परम् ॥६२॥
इत्येवमादयोधर्मा गदिता ऋषिभिस्तदा। श्रुता रामेण महता सर्वलोकहितैषिणा॥६३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
सर्वधर्मोपदेशो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

* * *

वाले श्रेष्ठ पुरुष को भोजन करती हुयी स्त्री को नहीं देखना चाहिए । अग्नि को मुँह से न फूंके । नङ्गी औरत को न देखे । दोनों पैरों को आग में न सेके और न अग्नि में अपवित्र वस्तु डाले । पाणियों की हिंसा न करे दोनों संध्याओं में भोजन करे ॥५५-५६॥ बच्चे को दूध पिलाती हुयी गौ को न देखे । दूसरे को इन्द्र धनुष न दिखाये । दिन में या रात्रि में सार हीन दधि को न खाय । रजस्वला स्त्री को प्रणाम न करे और रात्रि में खुब पेट भर कर नही खाना चाहिए । नृत्य गीत परायण नहीं होना चाहिए, कांसे के वर्तन में पैर न धुलवाये ॥५७-५८॥ दूसरे द्वारा धारण किए गये जूते और वस्त्र को न धारण करे । फूटे वर्तन में भोजन न करे और दूसरे के द्वारा जूठा किया गया अन्न न खाय ॥५९॥ भीगे पैर न सोये और न जूठे मुँह कही जाय । सोये-सोये न खाये, जूठे हाथ शिर न छूए ॥६०॥ मनुष्य की स्तुति न करे, अपना अपमान भी न करे । जाने के लिए तैयार को प्रणाम न करे दूसरे के रहस्य को न खोले ॥६१॥ इस तरह से गार्हस्थ्य को अपनाने के वाद वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करे । स्त्री के साथ अथवा स्त्री के मर जाने पर वानप्रस्थ ग्रहण करे ॥६२॥ इस प्रकार के धर्मों को ऋषियों ने श्रीरामचन्द्रजी को वतलाया और सम्पूर्ण संसार का कल्याण चाहने वाले श्रीरामचन्द्र ने उसे सुना ॥६३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवे पाताल खण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में सर्वधर्मोपदेश वर्णन नामक नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

* * *

दशवाँ अध्याय

शेष उवाच

इत्थं संशृण्वतो धर्मान्वसन्तःसमुपस्थितः । यत्र यज्ञक्रियादीनां प्रारम्भः सुमहात्मनाम् ॥१॥
दृष्ट्वा तं समयं धीमान्वसिष्ठः कलशोद्भवः ।
रामचन्द्रं महाराजं प्रत्युवाच यथोचितम् ॥२॥

वसिष्ठ उवाच

रामचन्द्र ! महाबाहो ! समयः पर्यभूत्तव। हयो यत्र प्रमुच्येत यज्ञार्थं परिपूजितः ॥३॥
सामग्री क्रियतां तत्र आहूयन्तां द्विजोत्तमाः। करोतु पूजां भगवान्ब्राह्मणानां यथोचिताम् ॥४॥
दीनान्धकृपणानां च दानं स्वान्ते समुत्थितम् ।
ददातु विधिवत्तेषां प्रतिपूज्याधिमान्य च ॥५॥
भवान्कनकसत्पत्न्यादीक्षितश्चरताद्व्रतम् । भूमिशायी ब्रह्मचारी वसुभोगविवर्जितः ॥६॥
मृगशृङ्गाधरःकट्यां मेखलाजिनदण्डभृत्। करोतु यज्ञसम्भारं सर्वद्रव्यसमन्वितम्॥७॥
इति श्रुत्वा महद्वाक्यं वसिष्ठस्य यथार्थकम् ।
उवाच लक्ष्मणं धीमान्नानार्थपरिबृंहितम् ॥८॥

श्रीराम उवाच

शृणु लक्ष्मण ! मद्वाक्यं श्रुत्वा तत्कुरु सत्वरम् ।
हयमानय यत्नेन वाजिमेधक्रियोचितम् ॥९॥

शेष उवाच

श्रुत्वा वाक्यं रघुपतेःशत्रुजिल्लक्ष्मणस्तदा । सेनापतिमुवाचेदं वचो विविधवर्णनम् ॥१०॥

अश्वमेध याग करने के लिए श्रीरामचन्द्र द्वारा रक्षकों के साथ अश्व को छोड़ना

शेषजी ने कहा— इस प्रकार से धर्मों का श्रवण करते-करते वसन्त ऋतु आ गया । महापुरुष वसन्त ऋतु में ही यज्ञ आदि कार्यों को प्रारम्भ करते हैं ॥१॥ वसन्त का समय देखकर महर्षि वसिष्ठ ने महाराज रामचन्द्र को यथोचित बात कहा ॥२॥ हे महाबाहो श्रीरामचन्द्र ! अब आपका समय आ गया है । इसी समय में पूजित अश्व को यज्ञ के लिए छोड़ा जाता है ॥३॥ आप यज्ञ सामग्री को एकत्रित करें और द्विजश्रेष्ठों को आहूत करें और आप ब्राह्मणों की यथोचित पूजा करें ॥४॥ दीनों, अन्धों तथा कृपणों को आप अपने मनोनुसार दान दें । उन सवों को विधि पूर्वक पूजा करके ससम्मान दान दें ॥५॥ आप अपनी सुवर्ण निर्मित पत्नी के साथ यज्ञ की दीक्षा लें । पृथिवी पर सोयें, ब्रह्मचर्य का पालन करें और धन सम्पत्ति का भोग न करें ॥६॥ हाथ में मृग शृङ्ग को धारण करे और कमर में मेखला तथा मृगचर्म धारण करें, दण्ड धारण करें, सभी द्रव्यों के साथ यज्ञ की सामग्री एकत्रित करें ॥७॥ इस तरह से महर्षि वसिष्ठ के महत्त्वपूर्ण वाक्य को सुनकर भगवान् श्रीराम ने लक्ष्मणजी से अनेक अर्थों से युक्त वाक्य कहा ॥८॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** हे लक्ष्मण ! मेरी बात सुनो और सुनकर उसे शीघ्र करो । अश्वमेध यज्ञ के योग्य घोड़े को लाओ ॥९॥ **शेषजी ने कहा—** श्रीरामचन्द्रजी की बात को सुनकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले लक्ष्मणजी अनेक वर्णों से युक्त इस वाक्य को सेनापति से

लक्ष्मण उवाच

वीराकर्णय मे वचः सुमधुरं श्रुत्वा त्वरातः पुनः ।
कार्यं तत्क्षितिपालमौलिमुकुटैर्घृष्टाङ्घ्रि रामाज्ञया ॥
सेनां कालबलप्रभञ्जनबल प्रोद्यत्समर्थाङ्गिनीम् ।
सज्जां सद्रथहस्तिपत्तिसुहयारोहैर्विधैश्चान्विताम् ॥११॥
सज्जीकृता वायुजवास्तुरङ्गास्तरङ्गमालाललिताङ्घ्रिपाताः ।
सदश्वचारैर्बहुशस्त्रधारिभिः संरोहिता वैरिबलप्रहारिभिः ॥१२॥
संलक्ष्यन्तां हस्तिनः पर्वताभा आधोरणैः प्रासकुन्ताग्रहस्तैः ।
शूरैः साश्वैर्भूरिदानोपहाराः क्षीवाणस्ते सर्वशस्त्रास्त्रपूर्णाः ॥१३॥
विततबहुसमृद्धिभ्राजमाना रथं मे पवनजवनवेगैर्वाजिभिर्युज्यमानाः ।
विविधरिपुविनाशस्मारकैरायुधास्त्रैर्भृतवलभिविभागा नीयतां सूतवृन्दैः ॥१४॥
पत्तयः शतशो मह्यमायान्त्वस्त्राग्र्यपाणयः । हयमेधार्हवाहस्य रक्षणे विततोद्यमाः ॥१५॥

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः ।
सेनानीः कलिजिन्नामा कारयामास सज्जताम् ॥१६॥
दशध्रुवकमण्डितो लघुसुरोमशोभान्वितो,
विविक्तगलशुक्तिभृद्विततकण्ठकोशे मणिः ।
मुखे विशदकान्तिधृत्त्वसितकान्तिभृत् कर्णयो,
र्व्यराजत तदा हयो धृतकराग्ररश्मिच्छटः ॥१७॥

कहा॥१०॥ **लक्ष्मणजी ने कहा**— हे वीर ! आप मेरी मधुर वाणी को सुनें, और उसे सुनकर शीघ्रता से करें। ऐसी राजाओं के शिरोमुकुट से पूजित चरण वाले श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा है। काल के भी बल को भी भय देने में समर्थ चतुरङ्गिणी रथ, हाथी, अश्व तथा पैदल सेना से युक्त सेना को तैयार करें ॥११॥ इसके बाद वायु के समान वेग वाले घोड़े सजा दिए गये। उन घोड़ों के चरणपात तरङ्ग समूह के समान मनोहर थे। अच्छे घोड़े से सञ्चरण करने वाले, अनेक प्रकार के शस्त्रों को धारण करने वाले, शत्रुओं की सेना का संहार करने वाले वीर उन अश्वों पर सवार हो गये ॥१२॥ पर्वतों के समान कान्ति वाले हाथी दिखायी देने लगे। अपने हाथ में प्रास तथा कुन्त धारण करने वाले आधोरण (हाथीवान) तथा अस्त्रों से युक्त शूरवीर जिनपर सवार थे। जिनके कपोलों से दानवारि प्रवाहित होता था, वे सभी शस्त्रों और अस्त्रों से परिपूर्ण और मदमत्त थे ॥१३॥ विस्तृत तथा अनेक प्रकार की समृद्धि से युक्त मेरे (लक्ष्मणजी के) जिससे वायु के भी वेग को जीत लेने में समर्थ घोड़े जुते हों, अनेक शत्रुओं के विनाश को स्मरण करने वाले, आयुधों तथा अस्त्रों तथा वलभियों के विभाग से युक्त मेरे रथ को लाओ॥१४॥ श्रेष्ठ आयुधों को धारण करने वाले सैकड़ों पैदल सैनिकों को लाओ जो अश्वमेध के घोड़े की रक्षा करने में सदैव प्रयत्नशील रहें ॥१५॥ महात्मा लक्ष्मणजी के इस वचन को सुनकर कालजित् नामक सेनापति ने घोड़े को सजाकर लाया ॥१६॥ वह घोड़ा दश ध्रुवाओं से अलंकृत था। छोटे-छोटे रोमों के कारण वह सुशोभित हो रहा था। उसके गले में घुंघुरु पहनाये गये थे जो एक दूसरे से सटे हुए नहीं थे। उसके विस्तृत कण्ठ में मणि सुशोभित हो रही थी मुख की कान्ति भी विशद थी। उसके दोनों कान छोटे-छोटे और काले थे।

कलासंशोभितमुखः स्फुरद्रत्नविशोभितः । मुक्ताफलानां मालाभिः शोभितो निर्ययौ हयः ॥१८॥
श्वेतातपत्ररचितः सितचामरशोभितः। बहुशोभापरीताङ्गो निर्ययौ हयराट् ततः ॥१९॥
अग्रतो मध्यतश्चैके पृष्ठतःसैनिकास्तथा । देवा हरिं यथापूर्वं सेवन्ते सेवनोचितम् ॥२०॥
अथ सैन्यं समाहूय सर्वमाज्ञापयत्तदा । हस्त्यश्वरथपादातवृन्दैः सुबहु सङ्कुलम् ॥२१॥
तास्ततःसमेतानां सैन्यानां श्रूयते ध्वनिः । ततो दुन्दुभिनादोऽभूत्तस्मिन्पुरवरे तदा ॥२२॥
तन्निनादेन शूराणां प्रियेण महता तदा। कम्पन्ते गिरिशृङ्गाणि प्रासादा विचलन्ति च ॥२३॥
हेषारवो महानसीद्वाजिनां मुह्यतां नृप !। रथाङ्गघातसंघुष्टा धरा सञ्चलतीव सा ॥२४॥
चलितैर्गजयूथैश्च पृथ्वी रुद्धा समन्ततः । रजस्तु प्रचलत्तत्र जनान्तर्द्धानमादधात् ॥२५॥
निर्जगाम महासैन्यं छत्रैः संछाद्य भास्करम् ।
सेनान्या कालजिन्नाम्ना प्रेरितं जनसङ्कुलम् ॥२६॥
गर्जन्तस्तलवीराग्र्याः कुर्वन्तो रणसम्भ्रमम् । रघुनाथस्य यागाय सज्जास्ते प्रययुर्मुदा ॥२७॥
मृगमदमयमङ्गेष्वङ्गरागं दधानाः कुसुमविमलमाला शोभितस्वोत्तमाङ्गाः ।
मुकुटकटकभूषाभूषिताङ्गाः समस्ताः प्रययुरवनिनाथप्रेरितास्तेऽपि सर्वे ॥२८॥
इत्येवं ते महाराजं ययुःसेनाचरा वराः । धनुर्धराःपाशधराःखड्गधाराःस्फुटक्रमाः ॥२९॥
एवं शनैःशनैःप्राप्तो मण्डपं यागचिह्नितम् । हयःखुरक्षततलां भूमिं कुर्वन्नभः प्लवन् ॥३०॥
रामो दृष्ट्वा हरिं प्राप्तं बहुसन्तुष्टमानसः । वसिष्ठं प्रेरयामास क्रियाकर्तव्यतां प्रति ॥३१॥

उस समय वह अश्व हथेली की कान्ति को धारण किए हुए सुशोभित हो रहा था ॥१७॥ घास के ग्रास से उसका मुख सुशोभित था, चमकते हुए रत्नों से विशेष रूप से सुशोभित वह अश्व मोतियों की माला से शोभित होकर निकला ॥१८॥ उसके ऊपर श्वेत छत्र लगा हुआ था । दोनों ओर से दो श्वेत चमर उसकी शोभा को बढ़ा रहे थे । इस तरह से अनेक प्रकार की शोभा से परिपूर्ण अङ्गों वाला वह अश्वराज बाहर आया ॥१९॥ उसके आगे, पीछे और बीच में सैनिक उसी तरह से विद्यमान थे जिस तरह देवगण श्रीहरि की सब ओर से सेवा करते हैं ॥२०॥ उसके बाद सेनापति ने हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल सैनिक समूह से युक्त सेना को बुलाकर प्रस्थान करने का आदेश दिया ॥२१॥ विभिन्न स्थानों से आये हुए सैनिकों की ध्वनि सुनायी पड़ने लगी । उसके बाद उस श्रेष्ठ नगर में दुन्दुभि बजायी गयी ॥२२॥ शूरवीरों को प्रिय उस महान् ध्वनि से पर्वतों के शिखर काँपने लगे और भवन हिलने लगे ॥२३॥ हे नृप ! मोहित होने वाले घोड़ों की हिनहिनाहट की घोर ध्वनि हुयी, रथों के संघर्ष से पृथिवी काँपने सी लगी ॥२४॥ प्रस्थान किए हुए हाथी समूहों से पृथिवी चारों ओर से भर गयी । उससे उठी हुयी धूलि समूह ने लोगों को मानो ढँक दिया ॥२५॥ छत्रों के द्वारा सूर्य के ढंककर विशाल सेना चल पड़ी । कालजित् सुसज्जित सेनापति ने जन समूह को प्रेरित किया ॥२६॥ श्रीरामजी के यज्ञ के लिए सुसज्जित वीर, रण की शीघ्रता करते हुए तथा गर्जना करते हुए चल पड़े ॥२७॥ वे अपने अङ्गों में कस्तूरी का अङ्गराग लगाये थे, उनका शिर ताजे पुष्पों की माला से सुशोभित था । उनके सारे अङ्ग, मुकुट, कटक आदि भूषणों से भूषित थे, वे भी पृथिवीपति श्रीरामजी से प्रेरित होकर प्रस्थान किए ॥२८॥ इस तरह से धनुर्धारी, पाशधारी, खड्गधारी आदि सेना में सञ्चरण करने वाले श्रेष्ठ सैनिक क्रमशः महाराज के पास गये ॥२९॥ इस तरह धीरे-धीरे यज्ञ मण्डप स्थल आ गया, घोड़ा भी आकाश में उछलते हुए तथा अपने खुर से पृथिवी तल को खोदते हुए यज्ञ

वसिष्ठो राममाहूय स्वर्णपत्नीसमन्वितम् । प्रयोगं कारयामास ब्रह्महत्यापनोदनम् ॥३२॥
ब्रह्मचर्यव्रतधरो मृगशृङ्गपरिग्रहः । तत्कर्म कारयामास रामः परपुरञ्जयः ॥३३॥
प्रारेभे यागकर्माऽथ कुण्डं मण्डपसंमितम् । तत्राचार्योऽभवद्धीमान्वेदशास्त्रविचारवित् ॥३४॥
वसिष्ठो रघुनाथस्य कुलपूर्वगुरुर्मुनिः । ब्राह्म्यं तत्राचरद्ब्रह्मन्कर्मागस्त्यस्तपोनिधिः ॥३५॥
वाल्मीकिर्मुनिरध्वर्युर्मुनिःकण्वस्तु द्वारपः । अष्टौ द्वाराणि तत्रासन्सतोरणशुभानि वै ॥३६॥
द्वारि द्वारि द्वयं विप्र ब्राह्मणस्याधिमंत्रवित् । पूर्वद्वारि मुनिश्रेष्ठौ देवलासितसंज्ञितौ ॥३७॥
दक्षिणद्वारि भूमानौ कश्यपात्री तपोनिधी । पश्चिमद्वारि ऋषभौ जातूकर्ण्योऽथ जाजलिः ॥३८॥
उत्तरद्वारि तु मुनी द्वौ द्वितैकततापसौ । एवं द्वारविधिं कृत्वा वसिष्ठःकलशोद्भवः ॥३९॥
हयवर्यस्य सत्पूजां कर्तुमारभत द्विज ! । सुवासिन्यःस्त्रियस्तत्र वासोऽलङ्कारभूषिताः ॥४०॥
हरिद्राऽक्षतगन्धाद्यैः पूजयामासुरर्चितम् । नीराजनं ततःकृत्वा धूपयित्वाऽगुरूक्षणैः ॥४१॥
वर्धापनं ततो वेश्याश्चक्रुस्ता वाडवाज्ञया । एवं सम्पूज्य विमले भाले चन्दनचर्चिते ॥४२॥
कुङ्कमादिकगन्धाढ्यसर्वशोभासमन्विते । बबन्ध भास्वरं पत्रं तप्तहाटकनिर्मितम् ॥४३॥
तत्रालिखद्दाशरथेः प्रतापबलमूर्जितम् । सूर्यवंशध्वजो धन्वी धनुर्दीक्षागुरुर्गुरुः ॥४४॥
यं देवाःसासुराःसर्वे नमन्ति मणिमौलिभिः । तस्यात्मजो वीरबलदर्पहारी रघूद्वहः ॥४५॥
रामचन्द्रोमहाभागःसर्वशूरशिरोमणिः । तन्माता कोसलनृपपत्नी गर्भसमुद्भवा ॥४६॥

भूमि पर आ गया ॥३०॥ आये हुए घोड़े को देखकर श्रीरामचन्द्रजी का मन सन्तुष्ट हो गया और उन्होंने महर्षि वसिष्ठ से कर्म कराने के लिए कहा ॥३१॥ वसिष्ठजी ने भी सुवर्ण निर्मित पत्नी के साथ रामचन्द्रजी को बुलाकर ब्रह्महत्या को दूर करने वाले प्रयोग को कराया ॥३२॥ ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले, हाथ में मृग का शृङ्ग लिए हुए, शत्रुओं की नगरी पर विजय प्राप्त करने वाले श्रीरामचन्द्रजी ने भी उस कर्म को सम्पन्न कराया ॥३३॥ उसके बाद मण्डप के अनुसार कुण्ड वाले यज्ञशाला में यज्ञ का कार्य प्रारम्भ हो गया । उस यज्ञ के आचार्य वेदों तथा शास्त्रों के विचार के ज्ञाता महर्षि वसिष्ठ हुए, वे मुनि श्रीरामचन्द्रजी के पहले से कुलगुरु थे । उस यज्ञ में ब्रह्मा का कार्य तपोनिधि अगस्त्य महर्षि सम्भाले ॥३४-३५॥ वाल्मीकि मुनि अध्वर्यु हुए, कण्वमुनि द्वारपाल हुए। तोरणों से युक्त उस मण्डप के आठ द्वार थे ॥३६॥ प्रत्येक द्वार पर मन्त्र वेत्ता ब्राह्मण नियुक्त थे । पूर्वद्वार पर मुनिश्रेष्ठ देवल और असित थे ॥३७॥ उसके दक्षिण द्वार पर तनोनिधि महर्षि कश्यप और अत्रि थे । पश्चिम द्वार पर जातूकर्णी और जाजलि महर्षि नियुक्त थे ॥३८॥ उत्तर द्वार पर द्वित तथा एकत नामक दो मुनि नियुक्त थे । इस तरह से द्वार विधि सम्पन्न करके कलशोद्भव वसिष्ठ महर्षि ॥३९॥ श्रेष्ठ अश्व की पूजा करना प्रारम्भ किए । वहाँ पर वस्त्र एवं अलङ्कार से अलंकृत सौभाग्यवती स्त्रियों ने हरिद्रा, अक्षत तथा चन्दन आदि से पूजित अश्व की पूजा की । आरती करने के बाद अगरु के धूप से धूप दीं ॥४०-४१॥ उसके बाद वसिष्ठ महर्षि की आज्ञा से वेश्याओं ने वर्धापन कर्म किया । इस तरह से पूजा कराके जिस पर चन्दन लगा था, कुङ्कुम आदि की सुगन्धि से सुगन्धित, हर प्रकार की शोभा से सुशोभित, अश्व के निर्मल ललाट पर तप्त सुवर्ण से निर्मित देदीप्यमान पत्र ॥४२-४३॥ बान्ध दिया गया । उस पर महाराज रामचन्द्र का प्रताप एवं उनका उर्जित बल लिखा हुआ था। सूर्यवंशोद्भूत धनुर्धारी धनुष की दीक्षा के गुरुओं के भी गुरु ॥४४॥ जिनको सभी देवता तथा असुर अपना शिर झुकाकर प्रणाम करते हैं ऐसे महाराज दशरथ के पुत्र, वीरों के बल के दर्प को विनष्ट करने वाले, श्रीरामचन्द्र

तस्याः कुक्षिभवं रत्नं रामःशत्रुक्षयङ्करः । करोति हयमेधं वै ब्राह्मणेन सुशिक्षितः ॥४७॥
रामेणाभिधविप्रेन्द्रवधपापापनुत्तये । मोचितस्तेन वाहानां मुख्योऽसौ वाजिनाम्वरः ॥४८॥
महाबलपरीवारपरिखाभिः सुरक्षितः । तद्रक्षकोऽस्ति तद् भ्राता शत्रुघ्नो लवणान्तकः॥४९॥
हस्त्यश्वरथपादातसेनासङ्घसमन्वितः ।
यस्य राज्ञ इति श्रेष्ठो मानः स्यात्स्वबलोन्मदात् ॥५०॥
वयं धनुर्धराःशूराः श्रेष्ठा वयमिहोत्कटाः । ते गृह्णन्तु बलाद्वाहं रत्नमालाविभूषितम् ॥५१॥
मनोवेगं कामजवं सर्वगत्यधिभास्वरम्। ततो मोचयिता भ्राता शत्रुघ्नो लीलया हयम् ॥५२॥
शरासनविनिर्मुक्तवत्सदन्तैः शिलाशितैः ॥५३॥
इत्येवमादि विलिलेख महामुनीन्द्रः श्रीरामचन्द्रभुजवीर्यलसत्प्रतापम् ।
शोभानिधानमतिचञ्चलवायुवेगं पातालभूतलविशेषगतिं मुमोच ॥५४॥
शत्रुघ्नमादिदेशाऽथ रामः शस्त्रभृतां वरः । याहि वाहस्य रक्षार्थं पृष्ठतःस्वैरगामिनः ॥५५॥
शत्रुघ्न ! गच्छ वाहस्य मार्गं भद्रं भवेत्तव। भवेतां शत्रुविजयौ रिपुकर्षण ! ते भुजौ॥५६॥
ये योद्धारः प्रतिरणगतास्ते त्वया वारणीया ।
वाहं रक्ष स्वकगुणगणैः संयुतः सन्महोर्व्याम् ॥
सुप्तान्भ्रष्टान्विगतवसनान्भीतभीतांस्तु नम्रान् ।
तान्मा हन्याः सुकृतकृतिनो ये न संशन्ति कर्म ॥५७॥
विरथा भयसन्त्रस्ता ये वदन्ति वयं तव । ते त्वया नहि हन्तव्याः शत्रुघ्न ! सुकृतैषिणा॥५८॥

महाभाग हैं, वे सभी शूरवीरों में श्रेष्ठ है । कोसलराज की पत्नी के गर्भ से ये उद्भूत हैं ॥४५-४६॥ शत्रुओं का विनाश करने वाले श्रीरामचन्द्र उन्हीं के गर्भ से उत्पन्न रत्न हैं । वे ब्राह्मण के द्वारा दीक्षित होकर अश्वमेध याग कर रहे हैं । श्रीरामचन्द्र ही विप्रेन्द्र रावण के वध से उत्पन्न पाप को दूर करने के लिए वाहनों में श्रेष्ठ इस अश्व को छोड़ा है ॥४७-४८॥ इस अश्व के रक्षक श्रीरामचन्द्र के भ्राता शत्रुघ्न हैं, जो लवणासुर का वध करने वाले हैं और महान् बल से युक्त सेना के द्वारा सुरक्षित हैं ॥४९॥ उनके साथ हाथी, घोड़ा, रथ तथा पैदल सेना है। जिस राजा को अपने को श्रेष्ठ होने का घमण्ड हो, जो अपने बल से उन्मत होकर यह मानता हो कि मैं ही धनुर्धर श्रेष्ठ वीर हूँ, मैं ही सर्वश्रेष्ठ हूँ, वह इस रत्नों की माला से अलंकृत अश्व को पकड़ ले ॥५०-५१॥ यह अश्व मन के समान और काम के समान वेगवान है, समस्त प्रकार की गतियों से सुशोभित है । उस राजा से शत्रुघ्न बिना किसी प्रयास के लीला पूर्वक अपने तीक्ष्ण वाणों के प्रहार से इसे छुड़ा लेंगे ॥५२-५३॥ इस प्रकार से महामुनीन्द्र वसिष्ठ ने श्रीरामचन्द्र के भुजाओं के प्रताप को लिख दिया और शोभा के खान् अत्यन्त चञ्चल वायु के समान वेग वाले पाताल और भूलोक में जाने की गति से युक्त उस घोड़े को छोड़ दिया ॥५४॥ शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ श्रीराम ने शत्रुघ्न को शीघ्र जाने का आदेश दिया कि तुम अपनी इच्छा के अनुसार चलने वाले इस अश्व की रक्षा करने के लिए इसके पीछे-पीछे जाओ ॥५५॥ उन्होंने कहा शत्रुघ्न जाओ, घोड़े का और तुम्हारा दोनों का मार्ग कल्याणमय होए । हे शत्रुघ्न ! तुम्हारी भुजाएँ शत्रु विजयी वनें ॥५६॥ जो योद्धा तुम्हारे विरुद्ध युद्ध करने आये उसको तुम रोक देना अपने गुण समूह के द्वारा अश्व की पृथिवी पर रक्षा करना सोये हुए, भ्रष्ट, नङ्गे हुए, भयभीत तथा शरणागतों को मत मारना । जिससे कि पुण्यवान् पुरुष तुम्हारे कर्म की प्रशंसा

योे हन्याद्विमदं मत्तं सुप्तं भग्नं भयातुरम् । तावकोऽहं ब्रुवाणं च सव्रजत्यधमां गतिम्॥५९॥
परस्वे चित्तवृत्तिं त्वं मा कृथाः पारदारिके ।
नीचे रतिं न कुर्वीथाः सर्वसद्गुणपूरितः ॥६०॥
वृद्धानां प्रेरणं पूर्वं मा कुर्वीथा रणञ्जय !। पूज्यपूजातिक्रमं त्वं मा विधेहि दयान्वितः॥६१॥
गां विप्रं च नमस्कुर्या वैष्णवं धर्मसंयुतम् । अभिवाद्य यतो गच्छेस्तत्र सिद्धिमवाप्नुयाः॥६२॥
विष्णुःसर्वेश्वरःसाक्षी स्सर्वव्यापकदेहभृत् । ते तदीया महाबाहो तद्रूपा विचरन्ति हि ॥६३॥
ये स्मरन्ति महाविष्णुं सर्वभूतहृदि स्थितम्। ते मन्तव्या महाविष्णुसमरूपा रघूद्वह !॥६४॥
यस्य स्वीयो न पारक्यो यस्य मित्रसमो रिपुः ।
ते वैष्णवाः क्षणादेव पापिनं पावयन्ति हि ॥६५॥
येषां प्रियं भागवतं येषां वै ब्राह्मणाःप्रियाः ।
वैकुण्ठात्प्रेषितास्तोऽत्र लोकपावनहेतवे ॥६६॥
येषां वक्त्रे हरेर्नाम हृदि विष्णुः सनातनः । उदरे विष्णुनैवेद्यं सश्वपाकोऽपिवैष्णवः ॥६७॥
येषां वेदाःप्रियतमा न च संसारजं सुखम् । स्वधर्मनिरता ये च तान्नमस्कुर्विहान्वितान् ॥६८॥
शिव विष्णौ न वा भेदो न च ब्रह्ममहेशयोः ।
तेषां पादरजःपूतं वहाम्यघविनाशनम् ॥६९॥
गौरी गङ्गा महालक्ष्मीर्यस्य नास्ति पृथक्तया ।
ते मन्तव्या नराः सर्वे स्वर्गलोकादिहागताः ॥७०॥

करें॥५७॥ जो रथहीन तथा भयभीत वीर यह कहें कि मैं आपका हूँ, शत्रुघ्न पुण्य चाहने वाले तुम उनको मत मारना ॥५८॥ मदहीन, पागल, सोये हुए, भयभीत तथा मैं आपका हूँ; इसतरह से कहने वाले को जो मारता है, वह अधमगति प्राप्त करता है ॥५९॥ तुम्हारी चित्त की वृत्ति दूसरे की सम्पत्ति तथा दूसरे की पत्नी को प्राप्त करने में नहीं होनी चाहिए, तुम सम्पूर्ण सद्गुण से परिपूर्ण हो, नीच से प्रेम न करना ॥६०॥ हे रण में विजय प्राप्त करने वाले; पहले वृद्धों को प्रेरित करना । हे दयालो ! पूज्य पुरुषों की पूजा का अतिक्रमण मत करना॥६१॥ गौ, ब्राह्मण और धार्मिक वैष्णव को नमस्कार करके जाना ऐसा करने से तुम सफल होओगे॥६२॥ हे महाबाहो ! भगवान् विष्णु सर्वेश्वर, साक्षी तथा सर्वव्यापक हैं । उनके भक्त भगवत् स्वरूप हैं और पृथिवी पर विचरण करते हैं ॥६३॥ जो लोग सबों के हृदय में स्थित भगवान् महाविष्णु का स्मरण करते हैं; हे रघूद्वह ! उन लोगों को भगवान् विष्णु के समान ही मानना ॥६४॥ जिसका न तो कोई अपना होता है और न कोई पराया होता है, जो मित्र और शत्रु दोनों को एक समान मानते हैं वे वैष्णव क्षणभर में ही पापी पुरुष को भी पवित्र बना देते हैं ॥६५॥ जिन लोगों को भगवद् भक्त प्रिय हैं, जो ब्राह्मण को प्रिय मानते हैं, वे लोग संसार को पवित्र बनाने के लिए वैकुण्ठ से भेजे गये हैं ॥६६॥ जिनके मुख में श्रीहरि का नाम है और हृदय में सनातन भगवान् विष्णु हैं, जिसके उदर में भगवान् विष्णु का नैवेद्य है इस प्रकार का चाण्डाल भी वैष्णव है ॥६७॥ जो वेदों को प्रियतम मानता है, सांसारिक सुख को नहीं अपितु जो अपने धर्म का पालन करता है, उसको सदैव नमस्कार करो॥६८॥ जो शिव तथा विष्णु एवं ब्रह्मा तथा महेश में भेद नहीं मानता है उसके चरणों की पवित्र धूलि को मैं अपने शिर पर धारण करता हूँ । वह पापों को विनष्ट करने वाली है ॥६९॥ जो गौरी, गङ्गा और लक्ष्मी को अलग-अलग

शरणागतरक्षी च मानदानपरायणः। यथाशक्ति हरेःप्रीत्यै स ज्ञेयो वैष्णवोत्तमः ॥७१॥
यस्य नाम महापापराशिं दहति सत्वरम्। तदीयचरणद्वन्द्वे भक्तिर्यस्य स वैष्णवः ॥७२॥
इन्द्रियाणि वशे येषां मनोऽपि हरिचिन्तकम्।
तान्नमस्कृत्य पूयात्स ह्याजन्ममरणान्तिकात् ॥७३॥
परस्त्रियं त्वं करवालवत्त्यजन्भवेर्यशोभूषणभूतिभूमिः।
एवं ममादेशमथाचरंश्च लभेःपरं धाम सुयोगमीड्यम् ॥७४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
शत्रुघ्नशिक्षाकथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

* * *

ग्यारहवाँ अध्याय

शेष उवाच

एवमाज्ञाप्य भगवान्रामश्चामित्रकर्षणः। वीरानालोकयन्भूयो जगाद शुभया गिरा ॥१॥
शत्रुघ्नस्य मम भ्रातुर्वाजिरक्षाकरस्य वै। को गन्ता पृष्ठतो रक्षंस्तन्निदेशप्रपालकः ॥२॥
यः सर्ववीरान्प्रतिमुख्यमागतान्विनिर्जयेन्मर्मभिदस्त्रसङ्घैः।
गृह्णात्वसौ मे करवीटकं तद् भूमौ यशः स्वं प्रथयन्सुविस्तरम् ॥३॥

नहीं मानते हैं उन सभी मनुष्यों को इस लोक में स्वर्गलोक से आये हुए मानना चाहिए ॥७०॥ शरण में आये हुए की रक्षा करने वाले तथा अपनी शक्ति के अनुसार श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए मान तथा दान करने वाले को उत्तम वैष्णव समझना चाहिए ॥७१॥ जिनका नाम शीघ्र ही पाप समूह को विनष्ट कर देता है उन श्रीभगवान् के चरण कमल में जिसकी भक्ति होती है, वह वैष्णव है ॥७२॥ जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं, मन श्रीहरि का चिन्तन करता रहता है, उस पुरुष को नमस्कार करके मनुष्य जन्म से लेकर मरण पर्यन्त के पापों से पवित्र हो जाता है ॥७३॥ दूसरे की स्त्री को कृपाण के समान त्यागकर तुम यश रूपी अलङ्कार से भूषित होने के पात्र बनो, इस तरह से मेरे आदेश का पालन करते हुए तुम नमस्कारणीय परं कान्ति को प्राप्त करा ॥७४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में श्रीराम द्वारा शत्रुघ्न को उपदेश वर्णन नामक दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥

* * *

श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से शत्रुघ्नजी का घोड़े की रक्षा के लिए जाना तथा पुष्कल की अपनी पत्नी से भेट वर्णन

शेषजी ने कहा— शत्रुघ्नजी को इस प्रकार से आज्ञा देकर शत्रुओं का नाश करने वाले भगवान् राम उपस्थित वीरों को देखते हुए मङ्गलमयी वाणी में कहे ॥१॥ घोड़े की रक्षा करने वाले मेरे भाई शत्रुघ्न की रक्षा में उनके पीछे कौन वीर जायेगा ? जो उनकी आज्ञा का पालन करे ॥२॥ जो उनके विरोध में आये हुए वीरों

इत्युक्तवति रामे तु पुष्कलो भरतात्मजः । जग्राह वीटकं तस्माद्रघुराजकराम्बुजात् ॥४॥
स्वामिन्गच्छामि शत्रुघ्न पृष्टरक्षाकरोऽन्वहम् ।
सन्नद्धः सर्वशस्त्रास्त्रचापबाणधरःप्रभो ॥५॥
सर्वमद्य क्षितितलं त्वत्प्रतापो विजेष्यति। एतेनिमित्तभूता वै रामचन्द्र ! महामते ॥६॥
भवत्कृपातःसकलं ससुरासुरमानुषम्। उपस्थितं प्रयुद्धाय तन्निषेधे क्षमो ह्यहम् ॥७॥
सर्वं स्वामी ज्ञास्यति यन्मम विक्रमदर्शनात् ।
एष गन्ताऽस्मि शत्रुघ्नपृष्ठरक्षाप्रकारकः ॥८॥
एवं ब्रुवन्तं भरतात्मजं स प्रस्तूय साध्वित्यनुमोदमानः ।
शशंस सर्वान्नृपवीरमुख्यान्प्रभञ्जनोद्भूतमुखान्हरिः प्रभुः ॥९॥
भो हनूमन्महावीर ! शृणु मद्वाक्यमादृतः। त्वत्प्रसादान्मया प्राप्तमिदं राज्यमकण्टकम्॥१०॥
सीतया मम संयोगे यो भवाञ्जलधिं तरेत्। चरितं तद्धरे ! वेद्मि सर्वं तव कपीश्वर !॥११॥
त्वं गच्छ मम सैन्यस्य पालकः सन्ममाऽऽज्ञया ।
शत्रुघ्नः सोदरो मह्यं पालनीयस्त्वहं यथा ॥१२॥
यत्र यत्र मतिभ्रंशशत्रुघ्नस्य प्रजायते। तत्र तत्र प्रबोद्धव्यो भ्राता मम महामते ॥१३॥
इति श्रुत्वा महद्वाक्यं रामचन्द्रस्य धीमतः। शिरसा तत्समाधाय प्रणाममकरोत्तदा ॥१४॥
अथाऽदिशन्महाराजो जाम्बवन्तं कपीश्वरम्। रघुनाथस्य सेवायै कपिपूत्तमतेजसम् ॥१५॥
अङ्गदो गवयो मैन्दस्तथा दधिमुखःकपिः । सुग्रीवः प्लवगाधीशःशतवल्यक्षिकौ कपी ॥१६॥

को अपने मर्मभेदी अस्त्र समूह से जीत ले, वह भूलोक में अपने यश का विस्तार करने वाला वीर मेरे हाथ पर रखे हुए इस बीड़ा को उठा ले ॥३॥ श्रीरामजी के इस प्रकार से कहने पर भरतजी के पुत्र पुष्कल ने श्रीरामचन्द्रजी के करकमल पर से उस बीड़ा को उठा लिया ॥४॥ उन्होंने कहा— स्वामिन् ! समस्त शस्त्रों एवं अस्त्रों को धारण करके तैयार होकर मैं शत्रुघ्नजी के पृष्ठ रक्षक के रूप में जा रहा हूँ ॥५॥ आज आपका प्रताप ही सम्पूर्ण भूमण्डल की रक्षा कर सकता है । हे महामते रामचन्द्र ! ये सभी वीर तो केवल निमित्त मात्र हैं ॥६॥ आपकी कृपा से युद्ध करने के लिए आये हुए समस्त देवता, असुर और मनुष्यों को मैं रोकने मे समर्थ हूँ ॥७॥ इन सारी बातों को हे स्वामिन् ! आप मेरे पराक्रम को देखकर जान लेंगे; अतएव मैं चाचा शत्रुघ्नजी के पृष्ठ रक्षक के रूप में जा रहा हूँ ॥८॥ इस तरह से भरतजी के पुत्र को सामने देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने बहुत अच्छा कहकर उनकी प्रशंसा की, इसके बाद सभी वानर वीरों में मुख्य हनुमानजी आदि से भगवान् श्रीराम ने कहा ॥९॥ हे हनुमन्! महावीर आप मेरे वाक्य को आदर पूर्वक सुनें आपकी ही कृपा से मैंने यह अकण्टक राज्य प्राप्त किया है ॥१०॥ मेरा सीता के साथ संयोग होने में हे हरे ! आपने ही समुद्र संतरण किया । मै समझता हूँ कि वह सबकुछ आपका ही किया हुआ है ॥११॥ आप मेरी आज्ञा से मेरी सेना के रक्षक रूप में जायँ । आप मेरे ही समान मेरे भाई शत्रुघ्न की रक्षा करें ॥१२॥ जिस-जिस विषय मे शत्रुघ्न को मतिविभ्रम हो, उस-उस विषय में आप मेरे भाई को अपनी राय देंगे ॥१३॥ इस तरह से श्रीरामचन्द्रजी के महान् वाक्य को सुनकर बुद्धिमान् हनुमान्जी ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करके उन्हें प्रणाम किया ॥१४॥ उसके बाद महाराज श्रीरामचन्द्रजी ने जाम्बवान्, सुग्रीव, वानरों में श्रेष्ठ तथा श्रीरामचन्द्रजी की सेवा करने वाले अङ्गद, गवय, मैन्द, दधिमुख, सुग्रीव, वानरों में श्रेष्ठ

नीलो नलो मनोवेगोऽधिगन्ता वानराङ्गजः । इत्येवमादयो यूयं सज्जीभूता भवन्तु भोः ॥१७॥
सर्वैर्गजैःसदश्वैश्च तप्तहाटकभूषणैः । कवचैःसशिरस्त्राणैर्भूषिता यान्तु सत्वराः ॥१८॥

शेष उवाच

सुमन्तमहूय सुमन्त्रिणं तदा जगाद रामो बलवीर्यशोभनः ।
अमात्यमौले ! वद केऽत्र योज्या नरा हयं पालयितुं समर्थाः ॥१९॥
तदुक्तमेवमाकर्ण्य जगाद परवीरहा। हयस्य रक्षणे योग्यान्बलिनोऽत्र नराधिपान् ॥२०॥
रघुनाथ ! शृणुष्वैतान्नववीरान्सुसंहितान्। धनुर्धरान्महाविद्यान्सर्वशस्त्रास्त्रकोविदान् ॥२१॥
प्रतापाग्र्यं नीलरत्नं तथा लक्ष्मीनिधिं नृपम् ।
रिपुतापं चोग्रहयं तथा शस्त्रविदं नृपम् ॥२२॥
राजन्योऽसौ नीलरत्नो महावीरो रथाग्रणीः ।
स एव लक्षं रक्षेत लक्षं युध्येत निर्भयः ॥२३॥
अक्षौहिणीभिर्दशभिर्यातु वाहस्य रक्षणे। दंशितैस्सशिरस्त्राणैर्महाबाहुभिरुद्धतैः ॥२४॥
प्रतापाग्र्यो यो ह्ययं च रिपुगर्वमशातयत्। सव्यापसव्यबाणानां मोक्ता सर्वास्त्रवित्तमः॥२५॥
एषोऽक्षौहिणिविंशत्या यातु यज्ञहयावने। सन्नद्धो रिपुनाशाय युवा कोदण्डदण्डभृत् ॥२६॥
तथा लक्ष्मीनिधिस्त्वेष यातु राजन्यसत्तमः । यस्तपोभिःशतधृतिं प्रसाद्यास्त्राणि चाभ्यसत् ॥२७॥
ब्रह्मास्त्रं पाशुपत्यास्त्रं गारुडं नागसंज्ञितम्। मायूरं नाकुलं रौद्रं वैष्णवं मेघसंज्ञितम् ॥२८॥
वज्रं पार्वतसंज्ञं च तथा वायव्यसंज्ञितम्। इत्यादिकानामस्त्राणां सम्प्रयोगविसर्गवित् ॥२९॥
स एष निजसैन्यानामक्षौहिण्यैकयायुतः । प्रयातु शूरमुकुटः सर्ववैरिप्रभञ्जनः॥३०॥

शतवलि, आक्षिक, नील, नल, मनोवेगाधिगन्ता वानरों को आदेश दिया कि आपलोग भी जाने के लिए तैयार हो जायँ ॥१५-१७॥ **शेषजी ने कहा**— उस समय वल एवं पराक्रम से सुशोभित श्रीरामचन्द्रजी ने मन्त्री सुमन्तजी को वुलाकर कहा मन्त्रिवर्य ! आप वतलायें कि घोड़े की रक्षा करने में समर्थ किन राजाओं को लगाया जाय ?॥१८-१९॥ भगवान् श्रीरामजी की वात को सुनकर शत्रु वीरों को मारने वाले सुमन्तजी ने, अश्व की रक्षा करने की योग्यता से सम्पन्न वलवान् राजाओं को वतलाया ॥२०॥ हे रघुनाथ ! आप नव अत्यन्त महान् वीरों को सुनें जो पारङ्गत धनुर्धारी तथा सभी शस्त्रों के ज्ञाता हैं । वे हैं— प्रतापाग्र्य, नीलरत्न, राजा लक्ष्मीनिधि, रिपुताप, उग्रहय और शस्त्रविद् । राजा नीलरत्न, महावीर और रथाग्रणी हैं । वे अकेले एक लाख योद्धाओं से निर्भय होकर युद्ध कर सकते हैं और एक लाख की रक्षा भी कर सकते हैं ॥२१-२३॥ ये अश्व की रक्षा करने के लिए शिरस्त्राण से युक्त महावाहु वीरों की दश अक्षौहिणी सेना के साथ जायँ ॥२४॥ ये प्रतापाग्र्य शत्रुओं के गर्व को विनष्ट करने वाले हैं, ये सभी अस्त्रों के ज्ञाता तथा वायें तथा दायें दोनों हाथों से वाण चलाने वाले हैं॥२५॥ ये युवा तथा धनुष धारण करने वाले हैं । ये वीस अक्षौहिणी सेना के साथ अश्व की रक्षा करने तथा शत्रुओं का नाश करने के लिए जायँ ॥२६॥ लक्ष्मीनिधि राजाओं में श्रेष्ठ हैं । इन्होंने ब्रह्माजी को तपस्या से प्रसन्न करके अस्त्रों का अभ्यास किया है ॥२७॥ ये ब्रह्मास्त्र, पाशुपत्यास्त्र, गारुडास्त्र, नागास्त्र, मायूरास्त्र, नाकुलास्त्र, रौद्रास्त्र, वैष्णवास्त्र, मेघास्त्र, वज्रास्त्र, पार्वतास्त्र और वायव्यास्त्र इत्यादि अस्त्रों का सम्प्रयोग और विसर्ग को जानते हैं॥२८-२९॥ ये अपनी सेना की एक अक्षौहिणी के साथ प्रस्थान करें । ये श्रेष्ठ वीर और सम्पूर्ण वैरियों का

रिपुतापोऽयमेवाद्य गच्छत्वग्र्यो धनुर्भृताम् । सर्वशस्त्रास्त्रकुशलो रिपुवंशदवानलः ॥३१॥
गच्छतात्सेनया बह्व्या चतुरङ्गसमेतया । शत्रुघ्नाज्ञां शिरस्येते दधत्वद्य बलोत्कटाः ॥३२॥
उग्राश्वोऽपि महाराजस्तथा शस्त्रविदेष च । सर्वे यान्तु सुसंनद्धास्तव वाहस्य पालकाः ॥३३॥
इति भाषितमाकर्ण्यमन्त्रिणःप्रजहर्ष च। आज्ञापयामास च तान्सुमन्त्रकथितान्भटान् ॥३४॥
तेऽनुज्ञां रघुनाथस्य प्राप्य मोदं प्रपेदिरे । चिरकालं साम्परायं वाञ्छन्तो युद्धदुर्मदाः ॥३५॥
सन्नद्धाःकवचाद्यैश्च तथा शस्त्रास्त्रवर्तनैः । ययुःशत्रुघ्नसंवासं सीतापतिप्रणोदिताः ॥३६॥
अथोक्तऋषिणारामोविधिनाऽपूजयत्क्रमात् । आचार्यादीनृषीन्सर्वान्यथोक्तवरदक्षिणैः ॥३७॥
आचार्याय ददौ रामो हस्तिनं षष्टिहायनम् । हयमेकं मनोवेगं रत्नमालाविभूषितम् ॥३८॥
पौरटं रथमेकं च मणिरत्नविभूषितम् । चतुर्भिर्वाजिभिर्युक्तं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥३९॥
मणिमक्षं तु प्रत्यक्षं मुक्ताफलतुलाशतम् । विद्रुमस्य तुलानां तु सहस्रं स्फुटतेजसाम् ॥४०॥
ग्राममेकं सुसम्पन्नं नानाजनसमाकुलम् । विचित्रसस्य निष्पन्नं विविधैर्मन्दिरैर्वृतम् ॥४१॥
ब्रह्मणेऽपि तथैवादाद्धोत्रेऽप्यध्वर्यवे ददौ। ऋत्विग्भ्यो भूरिशो दत्त्वा प्रणनाम रघूत्तमः ॥४२॥
सर्वे तेऽवर्धयन्वाग्भिराशीर्भिरभिपूजिताः । चिरंजीव महाराज ! रामचन्द्र ! रघूद्वह !॥४३॥
कन्यादानं भूमिदानं गजदानं तथैव च। अश्वदानं स्वर्णदानं तिलदानं समौक्तिकम्॥४४॥
अन्नदानं पयोदानमभयदानमुत्तमम् । रत्नदानानि सर्वाणि विप्रेभ्यश्चादिशन्महान्॥४५॥
देहि देहि धनं देहि मा नेति ब्रूहि कस्याचित् ।
ददात्वन्नं ददात्वन्नं सर्वभोगसमन्वितम् ॥४६॥

विनाश करने वाले हैं ॥३०॥ धनुर्धारियों में श्रेष्ठ, सभी शास्त्रास्त्रों में कुशल, रिपुवंश के लिए दावाग्नि के समान रिपुताप अपनी चतुरङ्गिणी विशाल सेना के साथ जायँ ये उत्कट बल सम्पन्न शत्रुघ्नजी की आज्ञा को शिरोधार्य करें ॥३१-३२॥ हे महाराज ! ये उग्राश्व भी उसी तरह शस्त्रवेत्ता हैं । सभी अच्छी तरह से तैयार होकर आपके अश्व के रक्षक के रूप में जायँ ॥३३॥ इस तरह से मन्त्री सुमन्त की बातों को सुनकर श्रीभगवान् ने उन सबों को जाने का आदेश दिया ॥३४॥ वे सब रघुनाथजी की आज्ञा को प्राप्त करके प्रसन्न हो गये । वे सभी युद्धदुर्मद थे और दीर्घकाल से युद्ध प्राप्त करना चाहते थे ॥३५॥ वे सब कवच आदि से तथा शस्त्रस्त्रों की सामग्रियों से सजकर भगवान् श्रीरामजी के द्वारा प्रेरित होकर शत्रुघ्नजी के आवास पर गये । महर्षि वसिष्ठ ने जैसा कहा श्रीरामचन्द्रजी ने आचार्य आदि तथा सभी ऋषियों की उसी क्रम से पूजा की और दक्षिणा दी ॥३६-३७॥ उन्होंने मणियों एवं रत्नों से सुशोभित एक सुवर्ण निर्मित रथ यज्ञ के ब्रह्मा को दिया । उसमें चार घोड़े जुते थे तथा वह सभी साधनों से युक्त था । उसमें एक लाख मणियाँ, सौ तुला मोती तथा एक हजार तुला चमकता हुआ मुङ्गा, अनेक लोगों से भरापुरा समृद्ध एक ग्राम जिसमें अद्भुत प्रकार की खेती लगी थी और अनेक प्रकार के मन्दिर थे । इसी तरह से उन्होंने होता तथा अध्वर्यु को दक्षिणा प्रदान की । ऋत्विजों को प्रभूत मात्रा में दक्षिणा देकर श्रीरामचन्द्रजी ने उन लोगों को प्रणाम किया ॥३८-४२॥ वे सभी पूजित होकर अपनी आर्शीर्वाद मयी वाणी से संवर्द्धन करते हुए कहा— हे रघुश्रेष्ठ महाराज श्रीराम ! आप दीर्घकाल तक जीवित रहें ॥४३॥ भगवान् श्रीरामचन्द्र ने ब्राह्मणों को कन्यादान, भूमिदान, गजदान, अश्वदान, सुवर्णदान, मोती से युक्त तिलदान, अन्नदान, जलदान, उत्तम अभय दान तथा सभी प्रकार के रत्नों का दान देने का आदेश दिया ॥४४-४५॥ उन्होंने कहा दो-दो, धन

इत्थं प्रावर्तत मखो रघुनाथस्य धीमतः। स दक्षिणो द्विजवरैः पूर्णः सर्वशुभक्रियः ॥४७॥
अथ रामानुजो गत्वा मातरं प्रणनामह। आज्ञापयाश्वरक्षार्थमेष गच्छामि शोभने ! ॥४८॥
त्वत्कृपातो रिपुकुलं जित्वा शोभासमन्वितः ।
आयास्यामि महाराजैर्हयवर्यसमन्वितः ॥४९॥

मातोवाच

पुत्रगच्छ महावीर शिवाःपन्थान एव ते। सर्वान्रिपुगणाञ्जित्वा पुनरागच्छ सन्मते ! ॥५०॥
पुष्कलं पालय निजभ्रातृजं धर्मवित्तमम्। महाबलिनमद्यापि बालकं लीलया युतम् ॥५१॥
पुत्रागच्छसि चेद्युक्तः पुष्कलेनशुभान्वितः। तदा मम प्रमोदः स्यादन्यथा शोकभागहम् ॥५२॥
इति सम्भाषमाणां स्वां मातरं प्रत्युवाच सः ।
त्वदीयचरणद्वन्द्वं स्मरन्प्राप्स्यामिशोभनम् ॥५३॥
पुष्कलं पालयित्वाऽहं निजाङ्गमिव शोभने। स्वनाम सदृशं कृत्वा पुनरेष्यामि मोदवान् ॥५४॥
इत्युक्त्वा प्रययौ वीरो रामं स मखमण्डपे ।
आसीनं मुनिवर्याग्र्यैर्यज्ञवेषधरं वरम् ॥५५॥
उवाच मतिमान्वीरः सर्वशोभासमन्वितः । रामाज्ञापय रक्षार्थं हयस्यात्र महामखे ॥५६॥
रघुनाथोऽपि तच्छ्रुत्वा भद्रमस्त्विति चाब्रवीत् ।
बालं स्त्रियं प्रमत्तं त्वं मा हन्याः शस्त्रवर्जितम् ॥५७॥
तदा लक्ष्मीनिधिर्भ्राता जानक्या जनकात्मजः ।
प्रहस्य किञ्चिन्नयने नर्तयन्राममब्रवीत् ॥५८॥

दो, किसी को नहीं मत कहो। सभी प्रकार के भोगों से युक्त अन्न दान करो ॥४६॥ इस प्रकार से बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजी का यज्ञ प्रारम्भ हो गया। समस्त शुभ क्रियाओं वाला वह यज्ञ दक्षिणा के साथ ब्राह्मणों द्वारा प्रारम्भ किया गया ॥४७॥ इसके बाद शत्रुघ्नजी अपनी माता के पास जाकर उनको प्रणाम किए। उन्होंने कहा— माँ अश्व की रक्षा करने के लिए जा रहा हूँ, आप मुझे आज्ञा दें ॥४८। आपकी कृपा से शत्रु समूह को जीतकर श्रेष्ठ नीतियों से युक्त मैं आऊँगा ॥४९॥ **माता ने कहा**— हे सुन्दर बुद्धि वाले पुत्र ! जाओं; तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो। सभी शत्रुओं को जीतकर पुनः आओ ॥५०॥ धर्मज्ञों में श्रेष्ठ भरतजी के पुत्र पुष्कल की रक्षा करना। वह महावलवान है किन्तु अब भी वह बालक है, लीला करता रहता है ॥५१॥ हे पुत्र ! यदि तुम पुष्कल के साथ लौटकर आते हो तो मुझे वहुत प्रसन्नता होगी अन्यथा मुझे शोक होगा ॥५२॥ इस तरह से कहने वाली अपनी माता से शत्रुघ्नजी ने कहा आपके चरण कमलों का स्मरण करके मैं मङ्गल प्राप्त करूँगा ॥५३॥ मैं पुष्कल की रक्षा अपने अङ्गों के समान करूँगा। अपने नाम के अनुसार ही मैं पुनः आनन्द पूर्वक आऊँगा ॥५४॥ इस तरह से कहकर शत्रुघ्नजी यज्ञमण्डप में श्रीरामचन्द्रजी के पास गये। वहाँ पर वे यज्ञ का श्रेष्ठ वेष धारण करके श्रेष्ठ मुनियों के साथ बैठे थे ॥५५॥ वे बुद्धिमान् वीर सम्पूर्ण शोभाओं से सम्पन्न थे। उन्होंने कहा श्रीरामजी यज्ञ के अश्व की रक्षा करने की मुझे आज्ञा दें ॥५६॥ रघुनाथ श्रीरामचन्द्रजी ने भी कहा तुम्हारा कल्याण हो। बालक, स्त्री, पागल तथा शस्त्रहीन को तुम मत मारना ॥५७॥ उसके बाद जानकीजी के भाई लक्ष्मीनिधि ने जोर से हंसकर तथा अपने नेत्रों को कुछ घुमाकर कहा ॥५८॥ **लक्ष्मीनिधि ने कहा**— हे सर्वधर्म परायण, श्रीरामचन्द्रजी,

लक्ष्मीनिधिरुवाच

रामचन्द्र ! महाबाहो ! सर्वधर्मपरायण ! । शत्रुघ्नं शिक्षय तथा यथालोकोत्तरो भवेत् ॥५९॥
कुलोचितं कर्म कुर्वन्नग्रजाचरितं तथा। गच्छेत्स परमं धाम तेजोबलसमन्वितम् ॥६०॥
त्वया प्रोक्तं महाराज ! ब्राह्मणं नावमानयेत् ।
पित्रा तव हतो विप्रः पितृभक्तिपरायणः ॥६१॥
त्वयाऽपि सुमहत्कर्म कृतं लोकविगर्हितम्। अवध्यां महिलां यस्त्वं हतवन्नियतं ततः ॥६२॥
अग्रजोऽस्य महाराज ! कृतवान्यं पराक्रमम् ।
स न केन कृतःपूर्वं राक्षस्याःकर्णकर्तनम् ॥६३॥
एवं करिष्यति नृप ! शत्रुघ्नः शिक्षया तव ।
यदि नायं तथा कुर्यात्कुलस्यासदृशं भवेत् ॥६४॥
इत्युक्तवन्तं तं रामः प्रत्युवाच हसन्निव। मेघगम्भीरया वाचा सर्ववाक्यविशारदः॥६५॥
शृण्वन्तु योगिनः शान्ताः समदुःखसुखाःपुनः ।
जानन्त्यपारसंसारनिस्तारकरणादिकम् ॥६६॥
ये शूराः समहेष्वासाः सर्वशस्त्रास्त्रकोविदाः ।
ते च जानन्ति युद्धस्य वार्ता न तु भवादृशाः ॥६७॥
परोपतापिनो ये वै ये चोत्पथविसारिणः। ते हन्तव्या नृपैःसर्वैः सर्वलोकहितैषिभिः॥६८॥
इत्युक्तमाकर्ण्य सभासदस्ते सर्वे स्मितं चक्रुररिन्दमस्य ।
कुम्भोद्भवः पूजितमेनमश्वं विमोचयामास सुशोभितं हि ॥६९॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य वशिष्ठः कलशोद्भवः ।
कराग्रेण स्पृशन्नश्वं मुमोच जयकाङ्क्षया ॥७०॥

हे महाबाहो ! आप शत्रुघ्न को ऐसी शिक्षा दीजिये जो लोकोत्तर हो ॥५९॥ अपने वंश के अनुसार तथा अपने बड़े भाई के आचरण का पालन करने वाला तेज तथा बल से युक्त पुरुष परमधाम को प्राप्त करता है ॥६०॥ महाराज ! आपने कहा कि ब्राह्मण का अपमान न करें किन्तु अपनी पिता की भक्ति करने वाले आपके पिताजी ने ब्राह्मण का वध किया था ॥६१॥ आपने भी अत्यन्त निन्दित कर्म किया है, क्योंकि आपने भी अवध्य महिला (ताटका) का वध किया ॥६२॥ इनके बड़े भाई लक्ष्मणजी ने भी पराक्रम युक्त कर्म किया, उन्होंने तो राक्षसी शूर्पणखा का नाक कान ही काट लिया ॥६३॥ राजन् ! आपकी शिक्षा पाकर ये भी ऐसा ही कर्म करेंगे । यदि ये ऐसा न करें तो यह आपके वंश के विपरीत होगा ॥६४॥ इस तरह से कहने वाले लक्ष्मीनिधि को मुस्कुराते हुए, बोलने में चतुर श्रीरामचन्द्रजी ने मेघ के समान गम्भीर वाणी में कहा ॥६५॥ सभी शान्त योगी पुरुष जो सुख तथा दुःख दोनों को एक समान मानते हैं, वे सुनें; वे अपार संसार को पार करने के साधकतम को जानते हैं ॥६६॥ जो बड़े-बड़े धनुष धारण करने वाले तथा शस्त्रों एवं अस्त्रों को जानने वाले शूरवीर हैं, वे ही युद्ध की वार्ता को जानते हैं, आप जैसे लोग नहीं ॥६७॥ दूसरों के दुःख देने वाले, उन्मार्ग गामी जो लोग होते हैं, उनलोगों को सम्पूर्ण लोकों के हितैषी राजाओं को मार ही देना चाहिए ॥६८॥ श्रीरामचन्द्रजी की बातों को सुनकर सब लोग मुस्कुराने लगे उधर महर्षि अगस्त्य ने सुन्दर तथा पूजित अश्व को छोड़ दिया ॥६९॥ कलश से उत्पन्न

वाजिन्गच्छ यथालीलं सर्वत्र धरणीतले। यागार्थे मोचितो येन पुनरागच्छ सत्वरः ॥७१॥
अश्वस्तु मोचितः सर्वैर्भटैःशस्त्रास्त्रकोविदैः । परीतःप्रययौ प्राचीं दिशं वायुजवान्वितः ॥७२॥
प्रचचार बलं सर्वं कम्पयद्धरणीतलम् । शेषोऽपिकिञ्चिन्नतया फणया धृतवान्भुवम् ॥७३॥
दिशः प्रसेदुः परितः क्ष्मातलं शोभयान्वितम् ।
वायवस्तं तु शत्रुघ्नं पृष्ठतो मन्दगामिनः ॥७४॥
शत्रुघ्नस्य प्रयाणायाभ्युद्यतस्य भुजोऽस्फुरत् ।
दक्षिणः शुभमाशंसञ्जयाय च बभूव ह ॥७५॥
पुष्कलःस्वगृहं रम्यं प्रविवेश समृद्धिमत् । वितर्दिभिर्वलक्षाभिः शोभितं रत्नवेदिकम् ॥७६॥
तत्रापश्यन्निजां भार्यां पतिव्रतपरायणाम् । किञ्चित्स्वदर्शनाद्धृष्टांभर्तृदर्शनलालसाम् ॥७७॥
मुखारविन्देन च नागवल्लीदलं सुकर्पूरयुतं च चर्वती ।
नासाफलं तोयभवं महाधनं वाह्वोर्मृणालीसदृशोः सुकङ्कणे ॥७८॥
कुचौ तु मालूरफलोपमौ वरौ नितम्बबिम्बं वरनीविशोभितम् ।
पादौ तुलाकोटिधरौ सुकोमलौ दधत्यहो ! ऐक्षत सत्पतिं स्वकम् ॥७९॥
परिरभ्य प्रियां धीरो गद्गदस्वरभाषिणीम् । तदुरोजपरीरम्भनिर्भरीकृतदेहिकाम् ॥८०॥
उवाच भद्रे ! गच्छामि शत्रुघ्नपृष्टरक्षकः । रामाऽऽज्ञया याज्ञमश्वं पालयन्नथसंयुतः ॥८१॥
त्वया मे मातरःपूज्याःपादसंवाहनादिभिः । तदुच्छिष्टं हि भुञ्जाना तत्कर्मकरणादरा ॥८२॥

होने वाले महर्षि वशिष्ठ ने विजय प्राप्त करने की इच्छा से अपने हाथ के अग्रभाग से अश्व का स्पर्श करके इस मन्त्र का उच्चारण करके छोड़ा ॥७०॥ हे अश्व ! अपनी इच्छा के अनुसार पृथिवी पर जाओ, यज्ञ के लिए जिसने आपको छोड़ा है उसके पास फिर आओ ॥७१॥ शास्त्रास्त्रों के ज्ञाता वीरों द्वारा छोड़ा गया अश्व शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता वीरों से घिरा हुआ वायु की वेग से सर्वप्रथम पूर्व दिशा में गया ॥७२॥ सारी सेना भी पृथिवी को कँपाती हुयी उसी ओर चल पड़ी । उस समय शेष ने भी पृथिवी को कुछ अपने झुके हुए शिरों से धारण किया ॥७३॥ सारी दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं, पृथिवी सुशोभित हो गयी । हवायें भी शत्रुघ्नजी के पीछे-पीछे चलने लगीं ॥७४॥ प्रस्थान करने के लिए शत्रुघ्नजी की दायीं भुजा फड़कने लगी, जिससे उनकी विजय प्राप्ति की सूचना मिलती थी ॥७५॥ पुष्कल भी अपने मनोहर गृह में प्रवेश किए, उस गृह की रत्न वेदियाँ अनेक प्रकार की शोभाओं से सम्पन्न थीं ॥७६॥ उन्होंने अपनी पतिव्रता पत्नी को देखा, जो अपने पति के दर्शन की लालसा से युक्त थी तथा पुष्कल को देखते ही जो प्रसन्न हो गयी ॥७७॥ सुन्दर कर्पूर से युक्त पान वह अपने मुखारविन्द से चबा रही थी, उसकी नासिका वरुण के महाधन के समान थे । उसकी दोनों भुजाएँ कमलनाल के समान कोमल थीं। हाथ सुन्दर कङ्गन से सुशोभित था । दोनों स्तन विल्वफल के समान कठोर थे, उनके नितम्ब भाग मनोहर और नीविबंध से सुशोभित थे । उसके दोनों चरण करोड़ों तुला के समान कोमल थे इस तरह से उसने अपने पति को देखा ॥७८-७९॥ पुष्कल ने मधुर स्वर से बोलने वाली अपनी पत्नी का आलिङ्गन किया । स्तनों के संस्पर्श से उसको रोमाञ्च हो गया था ॥८०॥ पुष्कल ने कहा— भद्रे ! मैं चाचा शत्रुघ्न का पृष्ठ रक्षक होकर जा रहा हूँ । श्रीरामजी की आज्ञा से यज्ञाश्व की रक्षा करने के लिए रथ से जा रहा हूँ ॥८१॥ तुम मेरी माताओं के पैर

सर्वा पतिव्रता नार्यो लोपामुद्रादिकाः शुभाः ।
नावमान्यास्त्वया भीरु ! स्वतपोबलशोभिताः ॥८३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
हयमोचनपुष्कलभार्यासमागमो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

बारहवाँ अध्याय

शेष उवाच

इत्युक्तवन्तं स्वपतिं वीक्ष्य प्रेम्णा सुनिर्भरम् ।
प्रत्युवाच हसन्तीव किञ्चिद् गद्गदभाषिणी ॥१॥
नाथ ! ते विजयो भूयात्सर्वत्र रणमण्डले। शत्रुघ्नाज्ञा प्रकर्तव्या हयरक्षा यथाभवेत्॥२॥
स्मरणीया हि सर्वत्र सेविका त्वत्पदानुगा। कदापि मानसं नाथ ! त्वत्तो नाऽन्यत्र गच्छति॥३॥
परमायोधने कान्त ! स्मर्तव्याहं न जातुचित् ।
सत्यां मयि तव स्वान्ते युद्धे विजयसंशयः ॥४॥
पद्मनेत्र ! तथा कार्यमूर्मिलाद्या यथा मम। हास्यं नैव प्रकुर्वन्ति मां वीक्ष्य करताडनैः॥५॥
इयं पत्नी महाभीरोःसङ्ग्रामे प्रपलायितुः। कातरा यर्हि युद्ध्यन्ति शूराणां समयःकुतः॥६॥

दबाने इत्यादि का काम करना। उनका उच्छिष्ट ही भोजन करना और उनकी आज्ञा का पालन करना ॥८२॥ सभी लोपामुद्रा आदि पतिव्रता नारियों का कभी अपमान न करना। वे तपस्विनी हैं और उसी से सुशोभित हैं ॥८३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में अश्व छोड़ना तथा पुष्कल की अपनी पत्नी से भेंट वर्णन नामक ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।

यज्ञाश्व के साथ शत्रुघ्नजी का अहिच्छत्रा नगरी में आना और कामाक्षोपाख्यान

शेषजी ने कहा— इस प्रकार से कहने वाले ने अपने पति को अत्यन्त प्रेमपूर्वक देखकर कुछ गद्गद कण्ठ से बोलने वाली हँसती हुयी सी कान्तिमती ने कहा ॥१॥ हे नाथ ! सर्वत्र आपकी विजय हो। आपको चाचा शत्रुघ्न की आज्ञा का पालन करना चाहिए, जिससे कि घोड़े की रक्षा हो सके ॥२॥ आप सदैव अपनी इस चरण सेविका को याद करते रहेंगे। हे नाथ ! आपसे भिन्न वस्तुओं में मेरा मन कभी भी नहीं लगता है ॥३॥ हे नाथ! भयङ्कर युद्ध की बेला में आप मेरी चिन्ता नहीं करेंगे; क्योंकि उस समय आपके मेरा स्मरण करने पर विजय में बाधा उत्पन्न हो सकती है ॥४॥ हे कमल नयन ! ऐसा आप नहीं करेंगे, जिससे कि उर्मिला आदि मुझे देखकर अपनी ताली बजाकर हँसें और यह कहें कि यह युद्ध से भागने वाले महाडरपोक की पत्नी है। यदि डरपोक ही युद्ध करें तो वीरों को अवसर कहाँ मिलेगा ?॥५-६॥ इस तरह देवाङ्गनाएँ मेरा जोर-जोर से उपहास न कर

इत्येवं न हसन्त्युच्चैर्यथा मे देवराङ्गनाः। तथा कार्यं महाबाहो रामस्य हयरक्षणे ॥७॥
योद्धा त्वमादौ सर्वत्र परे ये तव पृष्ठतः। धनुष्टङ्कारबधिराः क्रियन्तां बलिनः परे ॥८॥
तव प्रोद्यत्कराम्भोजकरवालभियाबलम् । परेषां भवतात्क्षिप्रमन्योन्यभयसङ्कुलम् ॥९॥
कुलं महदलङ्कार्यं परान्विजयता त्वया। गच्छस्वामिन्महाबाहो ! तव श्रेयो भवत्विह ॥१०॥
इदं धनुर्गृहाणाऽऽशु महद्गुणविभूषितम् । यस्य गर्जितमाकर्ण्य वैरिवृन्दभयातुरम् ॥११॥
इमौ ते त्विषुधी वीर ! बध्येतां शं यथा भवेत् ।
वैरिकोटिविनिष्पेषबाणकोटिसुपूरितौ ॥१२॥
कवचं त्विदमाधेहि शरीरे कामसुन्दरे। वज्रप्रभामहादीप्तिहतसन्तमसंदृढम् ॥१३॥
शिरस्त्राणं निजोत्तंसे कुरु कान्त ! मनोरमम् ।
इमेवतंसे विशदे मणिरत्नविभूषिते ॥१४॥
इति सुविमलवाचं वारिपुत्रीं प्रपश्यन्नयनकमलदृष्ट्या वीक्षमाणस्तदङ्गम् ।
अधिगतपरिमोदो भारतिः शत्रुजेता रणकरणसमर्थस्तां जगादाऽतिधीरः ॥१५॥

पुष्कल उवाच

कान्ते यत्त्वं वदसि मां तथा सर्वं चराम्यहम् ।
वीरपत्नि ! भवेत्कीर्तिस्तवकान्तिमतीप्सिता ॥१६॥
इति कान्तिमतीदत्तं कवचं मुकुटं वरम्। धनुर्महेषुधी खङ्गं सर्वं जग्राह वीर्यवान् ॥१७॥
परिधाय च तत्सर्वं बहुशोभासमन्वितः । शुशुभेऽतीव सुभटसर्वशस्त्रास्त्रकोविदः॥१८॥
तमस्त्रशस्त्रशोभाढ्यं वीरमालाविभूषितम्। कुङ्कुमागुरुकस्तूरीचन्दनादिकचर्चितम् ॥१९॥

सकें। हे महाबाहो ! भगवान् श्रीरामचन्द्र के घोड़े की रक्षा करने में ऐसा ही कार्य कीजियेगा ॥७॥ कि दूसरे योद्धा आपके पीछे ही रहें। आप अपने धनुष के टङ्कार से शत्रुओं को वधिर बना दें ॥८॥ आपके करकमल में उठी हुयी तलवार को देखकर शत्रुओं के वीर भयभीत हो जायँ ॥९॥ शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके आप अपने वंश को अलंकृत करें। हे स्वामिन ! आप जायँ, आपका मङ्गल हो ॥१०॥ महान् प्रत्यञ्चा से युक्त इस धनुष को आप धारण करें, इसके टङ्कार को सुनकर शत्रु समूह भयभीत हो जाय ॥११॥ हे वीर ! आपके ये दोनों तरकस हैं, इन दोने को आप बाँध ले, जिससे कि अपका कल्याण हो। ये दोनों करोड़ों शत्रुओं को पीस डालने वाले करोड़ों बाणों से परिपूर्ण हैं ॥१२॥ आप अपने कामदेव के समान सुन्दर शरीर पर इस कवच को धारण कर लें यह वज्र के समान कान्ति वाला है, यह संतप्त सुवर्ण की कान्ति को तिरस्कृत करने वाला है। हे कान्त ! आप अपने शिर पर मनोहर मुकुट धारण करें। ये दोनों मणिरत्न निर्मित स्वच्छ कुण्डल हैं ॥१३-१४॥ इस तरह से सुन्दर वचन बोलने वाली वरुण पुत्री को अपने कमल के सदृश नेत्रों से उसके अङ्गों को देखते हुए प्रसन्न होकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले युद्ध करने में समर्थ भरतजी के पुत्र पुष्कल ने कहा ॥१५॥ **पुष्कल ने कहा**— हे कान्ते ! तुम जैसा कहती हो मैं सारा काम वैसा ही करूँगा। हे वीर पत्नी कान्ति ! मैं भी कीर्ति प्राप्त करना चाहता हूँ ॥१६॥ इस तरह कान्तिमती के द्वारा प्रदत्त कवच, श्रेष्ठ मुकुट, धनुष, तरकस तथा खड्ग आदि उन्होंने सबकुछ धारण किया ॥१७॥ उन सवों को धारण करके अत्यधिक शोभा से सम्पन्न समस्त शस्त्रास्त्रों के विशेषज्ञ सुभट पुष्कल अत्यन्त सुशोभित हुए ॥१८॥ अस्त्र-शस्त्र से सुशोभित तथा वीर माला से विभूषित

नाना कुसुममालाभिराजानुपरिशोभितम् । नीराजयामास मुहुस्तत्र कान्तिमती सती॥२०॥
नीरजयित्वा बहुश:किरन्ती मौक्तिकैर्मुहु: । गलदश्रुचलन्नेत्रा परिरेभे पतिं निजम् ॥२१॥
दृढं स परिरभ्यैतां चिरमाश्वासयत्तदा। वीरपत्नि ! कान्तिमति विरहं मा कृथा मम ॥२२॥
एष गच्छामि सविधात्तव भामे ! पतिव्रते!। इत्युक्त्वा तां निजां पत्नीं रथमारुरुहे वरम्॥२३॥
तं प्रयान्तं पति श्रेष्ठं नयनैर्निमिषोज्झितः । विलोकयामास तदा पतिव्रतपरायणा॥२४॥
स ययौ जनकं द्रष्टुं जननीं प्रेमविह्वलाम् । गत्वां पितरमम्बां च ववन्दे शिरसा मुदा॥२५॥
माता पुत्रं परिष्वज्य स्वाङ्कमारोपयत्तदा । मुञ्चन्ती वाष्पनिचयं स्वस्त्यस्त्विति जगाद सा॥२६॥
पितरं प्राह भरतं रामो यज्ञकर:पर: । पालनीयो लक्ष्मणेन भवद्भिश्च महात्मभि: ॥२७॥

आज्ञप्तोऽसौ जननया च पित्रा हर्षितया गिरा ।
ययौ शत्रुघ्नकटकं महावीरविभूषितम् ॥२८॥

रथिभि:पत्तिभिर्वीरै:सदश्वै:सादिभिर्वृत: । ययौ मुदा रघूत्तंसमहायज्ञहयाग्रणी: ॥२९॥
गच्छन्पाञ्चालदेशांश्च कुरूंश्चैवोत्तरान्कुरून्। दशार्णाञ्छ्रीविशालांश्च सर्वशोभासमन्वित: ॥३०॥
तत्र तत्रोपशृण्वानो रघुवीरयशोऽखिलम्। रावणासुरघातेन भक्तरक्षाविधायकम्॥३१॥
पुनश्च हयमेधादि कार्यमारभ्य पावनम्। यशो वितन्वन्भुवने लोकान्रामोऽविता भयात् ॥३२॥
तेभ्यस्तुष्टो ददौ हारानत्नानि विविधानि च। महाधनानि वासांसि शत्रुघ्न:प्रवरो महान्॥३३॥
सुमतिर्नाम तेजस्वी सर्वविद्याविशारद:। रघुनाथस्य सचिव:शत्रुघ्नानुचरो वर: ॥३४॥

कुंकुम, अगरु, कस्तूरी तथा चन्दन से पूजित घुटनों तक लटकने वाली अनेक प्रकार के पुष्पों से निर्मित माला से सुशोभित पुष्कल की पतिव्रता कान्तिमती ने बार-बार आरती की ॥१९-२०॥ अनेक प्रकार से आरती करके उनके ऊपर मोतियों को छिड़कती हुयी; जिसके आँखों से आँसू निकल रहा था उस कान्तिमती ने अपने पति का आलिङ्गन किया ॥२१॥ इसके बाद कान्तिमती का सुदृढ़ आलिङ्गन करके तथा उसको सन्त्वना प्रदान करके पुष्कल ने कहा— तुम वीर पत्नी हो मेरा वियोग मत अनुभव करना ॥२२॥ प्रिये ! पतिव्रते ! इस समय मैं जा रहा हूँ । इस तरह से कहकर पुष्कल रथ पर बैठ गये ॥२३॥ उस पतिव्रता ने जाते हुए अपने पुष्कल को निर्निमेष नेत्रों से देखा ॥२४॥ इसके वाद पुष्कल अपने पिता माता का दर्शन करने के लिए गये । जाकर उन्होंने अपने माता-पिता को शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥२५॥ माता ने अपने पुत्र का आलिङ्गन करके उसे अपनी गोद में बैठा लिया; अपने आँखों से आंसू बहाते हुए उन्होंने पुष्कल को स्वस्ति कहा ॥२६॥ पुष्कल ने अपने पिता भरतजी से कहा कि भगवान् श्रीराम यज्ञ कर रहे हैं, इस समय आपको तथा लक्ष्मणजी को उनकी रक्षा करनी चाहिए ॥२७॥ अपनी माता और पिता से आज्ञा प्राप्त करके पुष्कल शत्रुघ्नजी की महावीरों से समलंकृत सेना में चले गये ॥२८॥ रथियों, पैदल, सेना, अश्वारोही तथा हाथी वाली सेना से घिरे हुए वे प्रसन्नता पूर्वक श्रीरामचन्द्रजी के महायज्ञ के घोड़े के आगे पहुँच गये ॥२९॥ पाञ्चाल प्रदेश, उत्तरकुरुप्रदेश, कुरुप्रदेश, दशार्ण, श्रीविशाला आदि प्रदेशों में जाकर सभी शोभाओं से सम्पन्न वे ॥३०॥ सर्वत्र रावण का वध करने के कारण भक्तों की रक्षा करने वाले श्रीरामजी के सम्पूर्ण यश को सुनाते थे ॥३१॥ वे वतलाते थे कि इसके वाद अश्वमेध आदि पवित्र कर्मों को करके लोक में अपने यश का विस्तार करके श्रीरामचन्द्रजी संसार की भय से रक्षा करेंगे ॥३१-३२॥ प्रसन्न होकर के उन्होंने उन राजाओं को हारों तथा अनेक प्रकार के रत्नों को तथा अत्यन्त मूल्यवान वस्त्रों को

ययौ तेन महावीरो ग्रामाञ्जनपदान्बहून्। रघुनाथप्रतापेन न कोऽपि हृतवान्हयम् ॥३५॥
देशाधिपा ये बहवो महाबलपराक्रमाः। हस्त्यश्वरथपादातचतुरङ्गसमन्विताः ॥३६॥
सम्पदो बहुशो नीत्वा मुक्तामाणिक्यसंयुताः ।
शत्रुघ्नं हयरक्षार्थमागतं प्रणता मुहुः ॥३७॥
इदं राज्यं धनं सर्वं सपुत्र पशुबन्धवम्। रामचन्द्रस्य सर्वं हि न मदीयं रघूद्वह ! ॥३८॥
एवं तदुक्तमाकर्ण्य शत्रुघ्नःपरवीरहा। आज्ञां स्वां तत्र संज्ञाप्य ययौ तैः सहितः पथि॥३९॥
एवं क्रमेण सम्प्राप्तःशत्रुघ्नो हयसंयुतः। अहिच्छत्रां पुरीं ब्रह्मन्नानाजनसमाकुलाम् ॥४०॥
ब्रह्मद्विजसमाकीर्णां नानारत्नविभूषिताम्। सौवर्णैः स्फाटिकैर्हर्म्यैर्गोपुरैःसमलङ्कृताम् ॥४१॥
यत्र रम्भा तिरस्कारकारिण्यः कमलाननाः। दृश्यन्ते सर्वहर्म्येषु ललना लीलयान्विताः ॥४२॥
यत्र स्वाचारललिताःसर्वभोगैकभोगिनः। धनदानुचरा यद्वत्तथा लीलासमन्विताः ॥४३॥
यत्र वीरा धनुर्हस्ताःशरसन्धानकोविदाः। कुर्वन्ति तत्र राजनं सुहृष्टं सुमदाभिधम्॥४४॥
एवं विधं ददर्शाऽसौ नगरं दूरतःप्रभुः। पार्श्वे तस्य सुरश्रेष्ठमुद्यानं शोभयाऽन्वितम्॥४५॥
पुन्नागैर्नागचम्पैश्च तिलकैर्देवदारुभिः। अशोकैःपाटलैश्चूतैर्मन्दारैःकोविदारकैः ॥४६॥
आम्रजम्बुकदम्बैश्च प्रियालपनसैस्तथा। शालैस्तालैस्तमालैश्च मल्लिकाजातियूथिभिः ॥४७॥
नीपैःकदम्बैर्वकुलैश्चम्पकैर्मदनादिभिः। शोभितं स ददर्शाऽथ शत्रुघ्नःपरवीरहा॥४८॥

शत्रुघ्नजी ने प्रदान किया ॥३३॥ श्रीरामचन्द्रजी के सचिव तथा शत्रुघ्नजी के अनुचर महातेजस्वी तथा सर्वविद्या विशाद सुमति थे ॥३४॥ उनके साथ महावीर शत्रुघ्नजी अनेक ग्रामों और जनपदों में गये; किन्तु किसी ने भी घोड़े को नहीं रोका ॥३५॥ महाबल एवं पराक्रम से युक्त बहुत से देशों के राजा जो हाथी, घोड़ा, रथी एवं पैदल सेना से युक्त थे वे ॥३६॥ मुक्ताओं तथा मणियों आदि सम्पत्तियों को लाकर घोड़े की रक्षा करने के लिए आये हुए शत्रुघ्नजी को बार-बार प्रणाम किए ॥३७॥ उन लोगों ने कहा— हे रघूद्वह ! धन, पुत्र, पशु एवं बान्धवों से युक्त यह राज्य श्रीरामचन्द्रजी का ही है। हमारा नहीं हैं ॥३८॥ उन राजाओं की इस प्रकार की वाणी को सुनकर, शत्रुवीरों को मारने वाले शत्रुघ्नजी ने वहाँ पर अपनी आज्ञा की स्थापना की और उन सबों के साथ रास्ते में चले गये ॥३९॥ हे ब्रह्मन् ! शत्रुघ्नजी क्रमशः अहिच्छत्रापुरी में गये जो अनेक प्रकार के पुरुषों से भरी-पुरी थी ॥४०॥ वह नगरी ब्राह्मणों तथा द्विजों से भरी हुयी थी, अनेक प्रकार के रत्नों से अलंकृत थी; उसके गोपुर सुवर्ण तथा स्फटिक मणियों से अलंकृत थे ॥४१॥ सभी भवनों में लीला से युक्त ललनाएँ दिखायी पड़ती थीं, उनका मुख कमल के समान था और वे रम्भा के भी सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाली थीं ॥४२॥ उस नगरी में अपने आचार का पालन करने वाले, सभी प्रकार के भोगों से सम्पन्न, कुबेर के अनुचरों के समान लीला से युक्त हाथ में धनुष धारण करके बाणों का सन्धान करने वाले वीर पुरुष, वहाँ के राजा सुमद को प्रसन्न करते थे ॥४३-४४॥ इस प्रकार के नगर को शत्रुघ्नजी ने दूर से ही देखा। उसके सन्निकट देवताओं के उद्यान के समान सुन्दर उद्यान था॥४५॥ जो पुन्नाग, नागचम्पा, तिलक, देवदारु, अशोक पाटल, आम, मन्दार कोविदार, आम, जामुन, पियाल, पनस (कटहल) शाल, ताल, तमाल, मल्लिका, जाति, जूही, नीप, कदम्ब, बकुल, चम्पा तथा मदन आदि के वृक्षों से सुशोभित था। उस नगरी को शत्रुओं को मारने वाले शत्रुघ्नजी ने देखा ॥४६-४८॥ तमाल ताल आदि से सुशोभित उस वन के बीच में वह अश्व चला गया। उसके पीछे धनुर्धारी वीरों से सुसेवित चरण

हयो गतस्तद्वनमध्यदेशे तमालतालादिसुशोभिते वै ।
ययौ ततः पृष्ठत एव वीरो धनुर्धरैःसेवितपादपद्मः ।।४९।।
ददर्श तत्र रचितं देवायतनमद्भुतम् । इन्द्रनीलैश्च वैडूर्यैस्तथा मारकतैरपि ।।५०।।
शोभितं सुरसेवार्हं कैलासप्रस्थसन्निभम् । जातरूपमयैःस्तम्भैःशोभितं सद्मनां वरम् ।।५१।।
दृष्ट्वा तद्रघुनाथस्य भ्राता देवालयं वरम् । पप्रच्छ सुमतिं स्वीयं मन्त्रिणं वदतां वरम् ।।५२।।

शत्रुघ्न उवाच

वदाऽमात्यवरेदं किं कस्य देवस्य केतनम् ।
का देवता पूज्यतेऽत्र कस्य हेतोःस्थिताऽनघ ।।५३।।

सुमति उवाच

एवमाकर्ण्य सर्वज्ञो मन्त्रविन्निजगाद ह । शृणुष्वैकमना वीर ! यथावदिह सर्वशः ।।५४।।
कामाक्षायाःपरं स्थानं विद्धि विश्वैकशर्मदम् ।
यस्या दर्शनमात्रेण सर्वसिद्धिप्रजायते ।।५५।।
देवासुरास्ते यां स्तुत्वा नत्वा प्राप्ताखिलां श्रियम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां दात्री भक्तानुकम्पिनी ।।५६।।
याचिता सुमदेनात्राहिच्छत्रापतिना पुरा । स्थिता करोति सकलं भक्तानां दुःखहारिणी ।।५७।।
तां नमस्कुरुशत्रुघ्न ! सर्ववीरशिरोमणे । नत्वाऽऽशुसिद्धिं प्राप्नोषि ससुरासुरदुर्लभाम् ।।५८।।
इति श्रुत्वाऽथ तद्वाक्यं शत्रुघ्नःशत्रुतापनः । पप्रच्छ सकलां वार्ता भवान्याःपुरुषर्षभः ।।५९।।

शत्रुघ्न उवाच

कोऽहिच्छत्रापती राजा सुमदः किं तपः कृतम् ।
येनेयं सर्वलोकानां माता तुष्टाऽत्र संस्थिता ।।६०।।

वाले शत्रुघ्नजी भी गये ।।४९।। वहाँ उन्होंने इन्द्रनीलमणि, वैडूर्यमणि तथा मरकत मणि से निर्मित एक अद्भुत मन्दिर देखा ।।५०।। कैलास पर्वत के शिखर के समान देवताओं से सेवनीय वह सुन्दर मन्दिर था । उसके स्तम्भ सुवर्ण के थे । वह श्रेष्ठ भवन था ।।५१।। उस श्रेष्ठ देवालय को देखकर शत्रुघ्नजी ने बोलने वालें में श्रेष्ठ सुमति नामक मन्त्री से पूछा ।।५२।। **शत्रुघ्नजी ने कहा**— हे श्रेष्ठ मन्त्रिन् ! आप बतलायें कि यह किस देवता का मन्दिर हैं । इस मन्दिर में किस देवता की पूजा होती है और वह देवता यहाँ क्यों स्थित हैं ।।५३।। **सुमति ने कहा**— शत्रुघ्नजी की बातों को सुनकर सर्वज्ञ मन्त्री सुमति ने कहा— हे वीर ! इसके विषय में आप यथार्थ बातें सुनें ।।५४।। संसार का कल्याण करने वाला यह कामाक्षा देवी का स्थान है । इस देवी का दर्शन करने मात्र से ही सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ।।५५।। इस देवी को प्रणाम करके तथा स्तुति करके देवता तथा असुर सबों ने श्री को प्राप्त कर लिया । भक्तों पर कृपा करने वाली ये देवी धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष को प्रदान करने वाली हैं ।।५६।। इस अहिच्छत्रापुरी के स्वामी सुमद के द्वारा प्रार्थना किये जाने के कारण ये देवी यहाँ भक्तों के दुःख का विनाश करती हैं ।।५७।। हे शत्रुघ्नजी ! आप उन देवी को नमस्कार करें; आप तो सभी वीरों में श्रेष्ठ हैं । इनको नमस्कार करके आप देवताओं और दैत्यों को भी दुर्लभ सिद्धि को शीघ्र प्राप्त कर लेंगे ।।५८।। मन्त्री के इस वाक्य को सुनकर शत्रुओं का विनाश करने वाले शत्रुघ्नजी भवानी के विषय में सारी बातों को

वद सर्वं महामात्य ! नानार्थपरिबृंहितम् । यथावत्त्वं हि जानासि तस्माद्वद महामते !॥६१॥

सुमतिरुवाच

हेमकूटोगिरिःपूतःसर्वदेवोपशोभितः । तत्रास्ति तीर्थं विमलमृषिवृन्दनिषेवितम्॥६२॥
सुमदो हि तपस्तेपे हतमातृपितृप्रजः । अरिभिःसर्वसामन्तैर्जगाम तपसे हितम्॥६३॥
वर्षाणि त्रीणि स पदा त्वेकेन मनसा स्मरन् ।
जगतां मातरं दध्यौ नासाग्रस्तिमितेक्षणः ॥६४॥
वर्षाणि त्रीणि शुष्काणां पर्णानां भक्षणं चरन् ।
चकार परमुग्रं स तपःपरमदुश्चरम् ॥६५॥
अब्दानि त्रीणि सलिले शीतकाले ममज्ज सः ।
ग्रीष्मे चचार पञ्चग्नीन्प्रावृट्सु जलदोन्मुखः ॥६६॥
त्रीणि वर्षाणि पवनं संरुध्य स्वान्तगोचरम्। भवानीं संस्मरन्धीरो न च किञ्चन पश्यति ॥६७॥
वर्षे तु द्वादशेऽतीते दृष्ट्वतत्परमं तपः । विभाव्य मनसाऽतीव शक्रःपस्पर्धतं भयात् ॥६८॥
आदिदेश सकामं तु परिवारपरीवृतम्। अप्सरोभिः सुसंयुक्तं ब्रह्मेन्द्रादिजयोद्यतम् ॥६९॥
गच्छ कामसखे ! मह्यं प्रियमाचर मोहन। सुमदस्य तपोविघ्नं समाचर यथा भवेत् ॥७०॥
इति श्रुत्वा महद्वाक्यं तुरासाहः स्वयं प्रभुः ।
उवाच विश्वविजये प्रौढगर्वो रघूद्वह ! ॥७१॥

काम उवाच

स्वामिन्कोऽसौ हि सुमदः किं तपः स्वल्पकं पुनः ।
ब्रह्मादीनां तपोभङ्गं करोम्यस्य तु का कथा ॥७२॥

पूछे॥५९॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा**— अहिच्छत्रा के स्वामी सुमद कौन हैं ? उन्होंने कौन सी तपस्या की जिसके कारण प्रसन्न होकर लोकमाता यहाँ पर विराजमान हैं ?॥६०॥ हे महामात्य ! इन सारी बातों को आप बतलायें। इसके विषय में तुम जानते हो । अतएव विस्तार से बतलाओ ॥६१॥ **सुमति ने कहा**— समस्त देवताओं के द्वारा सेवित हेमकूट नामक पर्वत है, उस पर सभी ऋषियों से सुसेवित अत्यन्त निर्मल तीर्थ है ॥६२॥ सभी सामन्त शत्रुओं के द्वारा माता-पिता तथा प्रजाओं को मार दिए जाने के कारण सुमद वहीं पर तपस्या करने लगे॥६३॥ वे एक पैर पर खड़ा होकर तीन वर्षों तक अपनी दृष्टि को नासिका के अग्रभाग में स्थिर करके जगन्माता का ध्यान करते रहे ॥६४॥ उसके बाद तीन वर्षों तक सूखे पत्तों को खाकर उन्होंने अत्यन्त उग्र कठोर तपस्या की ॥६५॥ वे तीन वर्षों तक जल में खड़े रहे, ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि तापते थे और बरसात में वर्षा में रहते थे ॥६६॥ तीन वर्ष तक वे धैर्य धारण करके भवानी का स्मरण करते हुए अपने श्वासों को रोक दिए और वे किसी भी वस्तु को नहीं देखे ॥६७॥ इस तरह से बारह वर्ष बीत जाने पर उसकी तपस्या से इन्द्र भयभीत हो गये तथा उनसे स्पर्धा करने लगे ॥६८॥ इन्द्र ने ब्रह्मा आदि देवताओं को भी जीत लेने के लिए उत्सुक रहने वाले सपरिवार तथा अप्सराओं के साथ कामदेव को आदेश दिया ॥६९॥ हे मोह उत्पन्न करने वाले मित्र काम! आप जायँ और हमारा प्रिय कार्य करें । जिस तरह से हो सके सुमद की तपस्या में विघ्न उत्पन्न करो ॥७०॥ इस तरह से इन्द्र के वाक्य को सुनकर, हे रघूदवह ! विश्व विजय के प्रौढ गर्व वाले कामदेव ने कहा ॥७१॥ हे

मद्वाणबलनिर्भिन्नश्चन्द्रस्तारां गतः पुरा। त्वमप्यहल्यां गतवान्विश्वामित्रस्तु मेनकाम्।।७३।।
चिन्तां मा कुरु देवेन्द्र ! सेवके मयि संस्थिते ।
एष गच्छामि सुमदं देवान्पालय मारिष ।।७४।।
एवमुक्त्वा कामदेवो हेमकूटं गिरिं ययौ। वसन्तेन युतःसख्या तथैवाप्सरसां गणैः ।।७५।।
वसन्तस्तत्र सकलान्वृक्षान्पुष्पफलैर्युतान् । कोकिलान्षट्पदश्रेण्या घुष्टानाशु चकार ह।।७६।।
वायु सुशीतलो वाति दक्षिणां दिशमाश्रितः ।
कृतमालासरित्तीरलवङ्गकुसुमान्वितः ।।७७।।
एवंविधे वने वृत्ते रम्भानामाऽप्सरो वरा। सखीभिःसंवृता तत्र जगाम सुमदान्तिकम् ।।७८।।
तत्रारभत गानं सा किन्नरस्वरशोभना। मृदङ्गपणवानेकवाद्यभेदविशारदा ।।७९।।
तद्गानमाकर्ण्य नराधिपोऽसौ वसन्तमालोक्य मनोहरञ्च ।
तथान्यपुष्टारटितं मनोरमं चकार चक्षुःपरिवर्तनं बुधः ।।८०।।
तं प्रवुद्धं नृपं वीक्ष्य कामःपुष्पायुधस्त्वरन्। चकार सत्वरं सज्यं धनुस्तत्पृष्ठतोऽनघ।।८१।।
एकाप्सरास्तत्र नृपस्य पादयोःसंवाहनं नर्तितनेत्रपल्लवा ।
चकार चान्या तु कटाक्षमोक्षणं चकार काचिद् भृशमङ्गचेष्टितम् ।।८२।।
अप्सरोभिस्तथाकीर्णःकामविह्वलमानसः । चिन्तयामास मतिमाञ्जितेन्द्रियशिरोमणिः।।८३।।
एता मे तपसो विघ्नकारिण्योऽप्सरसां वराः ।
शक्रेण प्रेषिताःसर्वाःकरिष्यन्ति यथातथम् ।।८४।।
इति सञ्चिन्त्य सुतपास्ता उवाच वराङ्गनाः। का यूयं कुत्र संस्थाःकिं भवतीनां चिकीर्षितम्।।८५।।

स्वामिन् ! यह सुमद क्या है ? इसकी तो थोड़ी सी तपस्या है । मैं तो ब्रह्म आदि की भी तपस्या भङ्ग कर देने वाला हूँ; इसकी क्या बात है ?।।७२।। मेरे वाण से विद्ध होकर चन्द्रमा ने तारा के साथ सङ्गम किया और आप भी अहल्या के साथ सहगमन किए तथा विश्वामित्र मेनका के साथ सहगमन किए ।।७३।। देवेन्द्र आप चिन्ता न करें मैं आपका सेवक हूँ । आप देवताओं का पालन करें मैं सुमद के पास जाता हूँ ।।७४।। इस तरह से कहकर कामदेव हेमकूट पर्वत पर चला गया । उसके साथ उसके मित्र वसन्त थे और अप्सराओं का समूह था ।।७५।। वसन्त ने वहाँ सभी वृक्षों को पुष्पों और फलों से युक्त वना दिया । कोकिलायें और भ्रमरों की ध्वनि होने लगी।।७६।। दक्षिण दिशा की शीतल वायु चलने लगी । कृतमाला नदी के तट पर लवङ्ग वृक्ष पुष्पित हो गया।।७७।। इस तरह के वन के हो जाने पर रम्भा नामकी श्रेष्ठ अप्सरा सुमद के सन्निकट अपनी सखियों के साथ गयी ।।७८।। उसने मनोहर किन्नर के स्वर में गाना प्रारम्भ कर दिया वे सव मृदङ्ग तथा पणव आदि अनेक वाद्यों में पारङ्गत थीं ।।७९।। उस गीत को सुनकर तथा मनोहर वसन्त को देखकर तथा अन्य पुष्ट ध्वनियों को सुनकर वुद्धिमान राजा सुमद ने उस ओर दृष्टि घुमायी ।।८०।। उसको प्रवुद्ध देखकर पुष्पायुध काम ने शीघ्रता से उसके पीछ से अपने धनुष को तान लिया ।।८१।। उसमें से एक अप्सरा अपनी आँखों को नचाती हुयी राजा के पैरों को दवाने लगी । दूसरी अप्सरा ने वार-वार राजा पर कटाक्षपात किया ।।८२।। अप्सराओं से घिरा हुआ तथा काम से व्याकुल मन वाले जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ वुद्धिमान राजा ने सोचा ।।८३।। ये श्रेष्ठ अप्सरायें मेरी तपस्या में विघ्न करने वाली हैं । इसे इन्द्र ने भेजा है और उसी के अनुसार ये काम कर रही हैं ।।८४।। इस तरह से विचार

अत्यद्भुतं जातमहो यद्भवत्योऽक्षिगोचराः। यतपोभिः सुदुष्प्राप्यास्ता मे तपस आगताः ॥८६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
कामाक्षोपाख्यानं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

तेरहवाँ अध्याय

शेष उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य सुमदस्य तपोनिधेः। जगदुःकामसेनास्तं रम्भाद्यप्सरसो मुदा ॥१॥
त्वत्तपोभिर्वयं कान्त ! प्राप्ताःसर्ववराङ्गनाः। तासां यौवनसर्वस्वं भुङ्क्ष्व त्यज तपः फलम् ॥२॥
इयं घृताची सुभगा चम्पकाभशरीरभृत्। कर्पूरगन्धललितं भुनक्तु त्वन्मुखामृतम्॥३॥

एतां महाभाग सुशोभिविभ्रमां मनोहराङ्गी घनपीनसत्कुचाम् ।
कान्तोपभुङ्क्ष्वाऽऽशु निजोग्रपुण्यतःप्राप्तां पुनस्त्वं त्यज दुःखजातम् ॥४॥
मामप्यनर्घ्याभरणोपशोभितां मन्दारमालापरिशोभिवक्षसम् ।
नानारताख्यानविचारचंचुरां दृढं यथास्यात्परिरम्भणं कुरु ॥५॥
पिबामृतं मामकवक्त्रनिर्गतं विमानमारुह्य वरं मया सह ।
सुमेरुशृङ्गं बहुपुण्यसेवितं सम्प्राप्य भोगं कुरु सत्तपःफलम् ॥६॥

करके वे तपस्वी उन अप्सराओं से कहे— तुमलोग कौन हो ? कहाँ रहती हो, क्या करना चाहती हो ?॥८५॥ यह अत्यन्त अद्भुत बात है कि तुमलोग दिखायी पड़ी। तुमलोग तो तपस्या से भी दुष्प्राप्य हो, इस प्रकार की तुम सभी मुझ तपस्वी के पास क्यों आयी हो ॥८६॥

इसतरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में कामाक्षा उपाख्यान नामक बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य)
कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२।।

सुमद तथा अप्सराओं का संवाद तथा कामाक्षा देवी का प्रकट होकर सुमद को वरदान देना

शेष जी ने कहा— तपोनिधि सुमद के इस वाक्य को सुनकर कामदेव की सेना, रम्भा आदि अप्सराओं ने कहा ॥१॥ हे प्रिय ! आपकी तपस्या से हमलोग यहाँ श्रेष्ठ नारियाँ आयी हैं, आप तपस्या का फल छोड़कर इन नारियों के यौवन सर्वस्व का उपयोग कीजिये ॥२॥ यह घृताची है, इसका शरीर चम्पा के समान कान्ति वाला है। कर्पूर के गन्ध से मनोहर इसके मुख का अमृत भोगें ॥३॥ हे महाभाग ! सुन्दर हावभावों वाली, मनोहर अङ्गों तथा कठोर स्तनों वाली इसका हे कान्त ! आप शीघ्र उपभोग करें। आपके उग्र पुण्य के फलस्वरूप यह आयी है आप अपने दुःखों का परित्याग करें ॥४॥ अनर्घ्य आभरणों से अलंकृत जिसका वक्षस्थल मन्दार पुष्प की

तिलोत्तमा यौवनरूपशोभिता गृह्णातु ते मूर्धनि तापवारणम् ।
सुचामरौ सन्ततधारयाङ्कितौ गङ्गाप्रवाहाविव सुन्दरोत्तम ! ॥७॥
शृणुष्व भोःकामकथां मनोहरां पिबामृतं देवगणादिवाञ्छितम् ।
उद्यानमासाद्य च नन्दनाभिधं वराङ्गनाभिर्विहरं कुरु प्रभो ! ॥८॥
इत्युक्तमाकर्ण्य महामतिर्नृपो विचरयामास कुतो ह्युपस्थिताः ।
मया सुसृष्टास्तपसा सुराङ्गनाःप्रत्यूह एवात्र विधेयमेष किम् ॥९॥
इति चिन्तातुरो राजा स्वान्ते सञ्चिन्तयन्सुधीः ।
जगाद मतिमान्वीरःसुमदो देवताङ्गनाः ॥१०॥
यूयं तु मम चित्तस्था जगन्मातृस्वरूपकाः ।
मया सञ्चिन्त्यते या हि साऽपि त्वद्रूपिणी मता ॥११॥
इदं तुच्छं स्वर्गसुखं त्वयोक्तं सविकल्पकम् ।
मत्स्वामिनी मया भक्त्या सेविता दास्यते वरम् ॥१२॥
यत्कृपातो विधिः सत्यलोकं प्राप्तो महानभूत् ।
सा मे दास्यति सर्वं हि भक्तदुःखान्तकारिणी ॥१३॥
किं नन्दनं किं तु गिरिःकनकेन सुमण्डितः ।
किं सुधा स्वल्पपुण्येन प्राप्या दानवदुःखदा ॥१४॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य कामस्तु विविधैःशरैः ।
प्राहरन्नरदेवस्य कर्तुं किञ्चिन्न वै प्रभुः ॥१५॥

माला से अलंकृत है, अनेक प्रकार के रतिक्रीड़ा करने में चतुरा मेरा भी आप गाढालिङ्गन करें ॥५॥ मेरे मुख से निकले अमृत का आप पान करें । मेरे साथ श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर अनेक पुण्य पुरुषों से सेवित सुमेरु पर्वत के शिखर पर चलकर आप अपनी तपस्या के फल का भोग करें ॥६॥ यौवन तथा रूप से सुशोभित तिलोत्तमा आपके शिर पर छत्र से छाया करेगी । हे सर्वाधिक सुन्दर ! निरन्तर प्रवाहित होने वाली गङ्गा की धारा के समान श्वेतचामर आपको किए जायँ ॥७॥ आप उन मनोहर काम कथाओं का श्रवण करें जिन्हें देवता श्रवण करना चाहते हैं । अमृत का आप पान करें । नन्दनवन में जाकर आप श्रेष्ठ नारियों के साथ विहार करें ॥८॥ इस तरह से कही गयी बातों को सुनकर महाबुद्धिमान् राजा ने विचार किया कि ये सब क्यों आयी हैं ? क्या मैंने अपनी तपस्या से देवाङ्गनाओं की सृष्टि की है ? अथवा ये सब मेरी तपस्या में विघ्न हैं ॥९॥ इस तरह से अपने मन में चिन्तन करते हुए बुद्धिमान राजा सुमद ने देवाङ्गनाओं से कहा ॥१०॥ तुमलोग तो मेरे चित्त में रहने वाली जगन्माता स्वरूप हो । मैं जिसका चिन्तन करता हूँ वह जगदम्बा भी तुमलोगों के ही समान हैं ॥११॥ तुमने जिसे बतलाया है, यह स्वर्ग का सुख विकल्प से युक्त है । मैंने जिनकी सेवा की है वे मेरी स्वामिनी हैं वे ही उसका फल प्रदान करेंगी ॥१२॥ जिनकी कृपा से ही ब्रह्माजी सत्यलोक को प्राप्त किए हैं, वे ही भक्तों के दुःख को दूर करने वाली मुझे सब कुछ प्रदान करेंगी ॥१३॥ नन्दनवन और सुमेरु पर्वत से क्या मतलव है ? और स्वाल्प पुण्य से प्राप्त होने वाली तथा दानवों को दुःख प्रदान करने वाली सुधा (अमृत) तो व्यर्थ है ॥१४॥ इस वात को सुनकर कामदेव ने राजा सुमद पर अनेक बाणों से प्रहार किया किन्तु वह कुछ भी नहीं कर सका ॥१५॥

कटाक्षैर्नूपुरारावैःपरिरम्भैर्विलोकनैः । न तस्य चित्तं विभ्रान्तं कर्तुं शक्ता वराननाः ॥१६॥
गत्वा यथागतं शक्रं जगदुर्धीरधीर्नृपः । तच्छ्रुत्वा मघवा भीतो मोघमारम्भमात्मनः ॥१७॥
अथ निश्चितमालोक्य पादपद्मे स्वकेऽम्बिका ।
जितेन्द्रियं महाराजं प्रत्यक्षाऽभूत्सुतोषिता ॥१८॥
पञ्चास्यपृष्ठललिता पाशाङ्कुशधरा वरा । धनुर्बाणधरा माता जगत्पावनपावनी ॥१९॥
तां वीक्ष्य मातरं धीमान्सूर्यकोटिसमप्रभाम् । धनुर्बाणसृणीपाशान्दधानां हर्षमाप्तवान् ॥२०॥
शिरसा बहुशो नत्वा मातरं भक्तिभाविताम् ।
हसन्तीं निजदेहेषु स्पृशन्तीं पाणिना मुहुः ॥२१॥
तुष्टाव भक्त्युत्कलितचित्तवृत्तिर्महामतिः । गद्गदस्वरसंयुक्तःकण्टकाङ्गोपशोभितः ॥२२॥
जय देवि ! महादेवि ! भक्तवृन्दैकसेविते । ब्रह्मरुद्रादिदेवेन्द्रसेविताङ्घ्रियुगेऽनघे ! ॥२३॥
मातस्तव कलाविद्धमेतद्भाति चराचरम् । त्वदृते नास्ति सर्वं तन्मातर्भद्रे ! नमोऽस्तु ते ॥२४॥
मही त्वयाऽऽधारशक्त्या स्थापिता चलतीह च ।
सपर्वतवनोद्यानदिग्गजैरुपशोभिता ॥२५॥
सूर्यस्तपति खे तीक्ष्णैरंशुभिःप्रतपन्महीम् । त्वच्छक्त्या वसुधासंस्थं रसं गृह्णन्विमुञ्चति॥२६॥
अन्तर्बहिःस्थितो बह्निर्लोकानां प्रकरोति शम् ।
त्वत्प्रतापान्महादेवि ! सुरासुरनमस्कृते ! ॥२७॥
त्वं विद्या त्वं महामाया विष्णोर्लोकैकपालिनः ।
स्वशक्त्या सृजसीदं त्वं पालयस्यपि मोहिनि ! ॥२८॥

कटाक्षपात, नूपुर की ध्वनि, आलिङ्गन और अवलोकनों के द्वारा वे सभी सुन्दरियाँ राजा के चित्त में थोड़ा सा भी विकार नहीं उत्पन्न कर सकीं ॥१६॥ वे सब जैसे आयी थीं वैसे ही लौट गयीं और जाकर उन सबों ने इन्द्र से कहा राजा धैर्य सम्पन्न हैं । उस बात को सुनकर व्यर्थ प्रयास वाले इन्द्र भयभीत हो गये ॥११॥ उसके बाद अपने चरणकमलों पर जितेन्द्रिय राजा सुमद को देखकर प्रसन्न होकर जगदम्बा कामाक्षा ने उनको दर्शन दिया॥१८॥ वे सिंह के पीठ पर सवार थीं । अपने हाथ में पाश, अङ्कुश धनुष बाण धारण की हुयी जगत् को पवित्र बनाने वाली ॥१९॥ करोड़ों सूर्य के समान कान्ति वाली धनुष, बाण, अङ्कुश तथा पाशधारण की हुयी माता को देखकर बुद्धिमान् राजा सुमद प्रसन्न हो गये ॥२०॥ उन्होंने भक्ति से प्रसन्न हुयी, हँसती हुयी अपने हाथों से राजा के शरीर का बार-बार स्पर्श करती हुयी माता को राजा ने शिर से प्रणाम किया ॥२१॥ भक्ति से जिनकी चित्त वृत्ति उत्कण्ठित हो गयी थी ऐसे महामति राजा ने अपने गद्गद स्वर से माता की स्तुति की । उस समय राजा के शरीर में रोमाञ्च हो गया था ॥२२॥ **उन्होंने कहा**— अपने भक्त वृन्द से सेवित हे महादेवि ! आपकी जय हो, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि देवताओं से सेवित अनघे मातः आपको नमस्कार है ॥२४॥ आप अपनी आधार शक्ति के द्वारा स्थापित हैं, इसीलिए यह जगत् स्थिर है और पर्वत, वन, उद्यान और दिग्गजों से सुशोभित है। आपकी ही शक्ति से सूर्य आकाश में स्थित होकर पृथिवी को अपनी किरणों से संतप्त करते हैं और पृथिवी में विद्यमान जल का शोषण करके वे पुनः वर्षा के रूप में बरसाते हैं ॥२६॥ भीतर और बाहर रहने वाली अग्नि लोकों का कल्याण करतें हैं । हे देवताओं और असुरों के द्वारा नमस्कृते महादेवि ! आपके प्रताप अग्नि से ही

त्वत्तःसर्वे सुराःप्राप्य सिद्धिं सुखमयन्ति वै ।
मां पालय कृपानाथे ! वन्दिते ! भक्तवल्लभे ! ॥२९॥
रक्ष मां सेवकं मातस्त्वदीयचरणारणम्। कुरु मे वाञ्छितां सिद्धिं महापुरुषपूर्वजे !॥३०॥

सुमतिरुवाच

एवं तुष्टा जगन्माता वृणीष्व वरमुत्तमम्। उवाच भक्तं सुमदं तपसाकृशदेहिनम् ॥३१॥
इत्येतद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहृष्ट सुमदो नृपः । वव्रे निजं हृतं राज्यं हतदुर्जनकण्टकम्॥३२॥
महेशीचरणद्वन्द्वे भक्तिमव्यभिचारिणीम् । प्रान्ते मुक्तिं तु संसारवारिधेस्तारिणीं पुनः ॥३३॥

कामाक्षोवाच

राज्यं प्राप्नुहि सुमद ! सर्वत्र हतकण्टकम् ।
महिलारत्नसञ्जुष्टपादपद्मद्वयो भव ॥३४॥
तव वैरिपराभूतिर्मा भूयात्सुमदाभिध ! । यदा तु रावणं हत्वा रघुनाथो महायशाः ॥३५॥
करिष्यत्यश्वमेधं हि सर्वसम्भारशोभितम्। तस्य भ्राता महावीरःशत्रुघ्नःपरवीरहा ॥३६॥
पालयन्हयमायास्यत्यत्र वीरादिभिर्वृतः । तस्मै सर्वं समर्प्य त्वं राज्यमृद्धं धनादिकम् ॥३७॥
पालयिष्यसि योधैः स्वैर्धनुर्धारिभिरुद्भटैः । ततःपृथिव्यां सर्वत्र भ्रमिष्यसि महामते !॥३८॥
ततो रामं नमस्कृत्य ब्रह्मेन्द्रेशादिसेवितम् । मुक्तिं प्राप्स्यसि दुष्प्रापां योगिभिर्यमसाधनैः ॥३९॥
तावत्कालमिहस्थास्ये यावद्रामहयागमः । पश्चात्त्वां तु समुद्धृत्य गन्ताऽस्मि परमं पदम्॥४०॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवी सुरासुरनमस्कृता। सुमदोऽप्यहिच्छत्रायां शत्रून्हत्वा नृपोऽभवत् ॥४१॥

करती है ॥२७॥ आप ही विद्या हैं, महामाया हैं और भगवान् विष्णु के लोक का प्रधान रूप से पालन करने वाली हैं । आप अपनी शक्ति से इस जगत् की सृष्टि करती हैं और इसका पालन करती हैं ॥२८॥ सभी देवता आप से ही सिद्धि को प्राप्त करके सुख को प्राप्त करते हैं । हे वन्दिते ! हे कृपानाथे ! हे भक्त वल्लभे ! आप मेरी रक्षा करें ॥२९॥ हे मातः ! आप मुझ सेवक की रक्षा करें, मैं आपके चरणों की सेवा करता हूँ । हे महापुरुष पूर्वजे ! आप मेरी वाञ्छासिद्धि करें ॥३०॥ **सुमति ने कहा—** इस तरह से संतुष्ट हुयी माता ने तपस्या से कृश शरीर वाले सुमद से कहा तुम उत्तम वरदान माँगो ॥३१॥ इस बात को सुनकर राजा सुमद प्रसन्न हो गये और उन्होंने दुष्ट शत्रुओं को विनष्ट करके उन सबों के द्वारा हरण किए गये अपने राज्य का वरदान माँगा । जगदम्बा के दोनों चरणों में निश्चल भक्ति तथा अन्त में संसार सागर से तारने वाली मुक्ति का वरदान माँगा ॥३२-३३॥ **कामाक्षा देवी ने कहा—** हे सुमद ! तुम्हारा शत्रुओं से कभी भी पराभव न हो । जब महायशस्वी श्रीरामचन्द्र रावण को मारकर ॥३४-३५॥ सभी प्रकार की सामग्रियों से सुशोभित अश्वमेध याग करेंगे उस समय उनके भाई महावीर शत्रुघ्न, जो शत्रुओं को मारने वाले हैं ॥३६॥ वे अश्व की रक्षा करते हुए यहाँ वीरों के साथ आयेंगे उनको तुम अपना सम्पूर्ण समृद्ध राज्य तथा धन आदि समर्पित करके ॥३७॥ अपने धनुर्धारी उद्भट वीरों के द्वारा उनकी रक्षा करना । हे महामते ! उस समय पृथिवी पर तुम भ्रमण करना ॥३८॥ उस समय ब्रह्मा, ईश तथा इन्द्र आदि से सेवित भगवान् राम को नमस्कार करके तुम दुष्प्राप्य मुक्ति को प्राप्त करोगे, उसी को योगिजन यम आदि साधनों से प्राप्त करते हैं ॥३९॥ जब तक यहाँ श्रीराम आयेंगे तब तक मैं यहीं रहूँगी । उसके बाद मैं तुम्हारा उद्धार करके परमपद में चली जाऊँगी ॥४०॥ इस तरह से कहकर देवता और असुरों से नमस्कृत देवी

एष राजा समर्थोऽपि बलवाहनसंयुतः। न ग्रहीष्यति ते वाहं महामायासुशिक्षितः ॥४२॥
श्रुत्वा प्राप्तं पुरीपार्श्वे हयमेधहयोत्तमम्। त्वां च सर्वैर्महाराजैः सेविताङ्घ्रिं महामतिम् ॥४३॥
सर्वं दास्यति सर्वज्ञ ! राजा सुमदनामधृत्। अधुनातन्महाराजरामचन्द्रप्रतापतः ॥४४॥

शेष उवाच

इति वृत्तं समाकर्ण्य सुमदस्य महायशाः। साधु साध्विति चोवाच जहर्ष मतिमान्वली॥४५॥
अहिच्छत्रापतिःसर्वैःस्वगणैः परिवारितः। सभायां सुखमास्ते यो बहुराजन्यसेवितः ॥४६॥
ब्राह्मणा वेदविदुषो वैश्या धनसमृद्धयः। राजानं पर्युपासन्ते सुमदं शोभयान्वितम्॥४७॥
वेदविद्याविनोदेन न्यायिनो ब्राह्मणावराः। आशीर्वदन्ति तं भूपं सर्वलोकैकरक्षकम् ॥४८॥
एतस्मिन्समये कश्चिदागत्य नृपतिं जगौ। स्वामिन्न जाने कस्यास्ति हयः पत्रधरोऽन्तिके॥४९॥
तच्छुत्वा सेवकं श्रेष्ठं प्रेषयामास सत्वरः। जानीहि कस्य राज्ञोऽयमश्वो मम पुरान्तिके ॥५०॥
गत्वाऽथ सेवकस्तत्र ज्ञात्वा वृत्तान्तमादितः। निवेदयामास नृपं महाराजन्यसेवितम्॥५१॥
स श्रुत्वा रघुनाथस्य हयं नित्यमनुस्मरन्। आज्ञापयामास जनं सर्वं राजा विशारदः ॥५२॥
लोका मदीया सर्वे ये धनधान्यसमाकुलाः ।
तोरणादीनि गेहेषु मङ्गलानि सृजन्त्विह ॥५३॥
कन्याःसहस्रशो रम्याः सर्वाभरणभूषिताः। गजोपरि समारूढा यान्तु शत्रुघ्नसंमुखम् ॥५४॥
इत्यादि सर्वमाज्ञाप्य ययौ राजा स्वयं ततः। पुत्रपौत्रमहिष्यादिपरिवारसमावृतः ॥५५॥
शत्रुघ्नःसुमहामात्यैःसुभटैःपुष्कलादिभिः। संयुतो भूपतिं वीरं ददर्श सुमदाभिधम् ॥५६॥
हस्तिभिः सादिसंयुक्तैःपत्तिभिःपरतापनैः। वाजिभिर्भूषितैवीरं संयुतं वीरशोभितम् ॥५७॥

अन्तर्धान हो गयी। सुमद भी शत्रुओं को मारकर अहिच्छत्रा के राजा हो गये ॥४१॥ यह राजा वल एवं वाहन से युक्त तथा समर्थ होने पर भी देवि के द्वारा उपदिष्ट होने के कारण आपके अश्व को नहीं पकड़ेंगे ॥४२॥ नगर के सन्निकट अश्वमेध के उत्तम अश्व को तथा सभी महाराजों से सेवित चरणों वाले आपको सुनकर ॥४३॥ हे सर्वज्ञ राजा सुमद ! अपना सव कुछ आपको प्रदान कर देंगे। हे महाराज ! भगवान् रामचन्द्र के प्रताप से ही वह ऐसा करेंगे ॥४४॥ **शेषजी ने कहा—** इस तरह से सुमद के वृत्तान्त को सुनकर महायशस्वी शत्रुघ्नजी साधु-साधु कहे और वली तथा वुद्धिमान् वे प्रसन्न हुए ॥४५॥ अनेक राजाओं से सेवित अहिच्छत्रा के स्वामी भी सुख पूर्वक अपने गणों के साथ सभा में विद्यमान थे ॥४६॥ शोभा सम्पन्न सुमद की सेवा वेदविज्ञान सम्पन्न ब्राह्मण और धन से समृद्ध वैश्य करते थे ॥४७॥ सम्पूर्ण लोको की रक्षा करने वाले उस राजा को वेदविद्या के विनोद पूर्वक न्यायज्ञ ब्राह्मण आर्शीवाद देते थे ॥४८॥ उसी समय कोई आकर राजा से कहा— हे स्वामिन् ! न जाने किसका यह पत्र से युक्त अश्व नगर के सन्निकट आया है ॥४९॥ उसको सुनकर राजा ने अपने श्रेष्ठ सेवक को भेजा कि तुम पता लगाओ कि किस राजा का अश्व मेरे नगर के निकट आया है ॥५०॥ वहाँ जाकर सेवक ने सारे वृत्तान्त को जानकर वड़े-वड़े राजाओं से सेवित राजा शत्रुघ्न को वतलाया ॥५१॥ श्रीरामचन्द्रजी के अश्व को सुनकर राजा जिसका नित्य ही स्मरण करता था उस निपुण राजा ने सवों को आज्ञा दिया ॥५२॥ कि जो मेरे लोग धन-धान्य से समृद्ध हैं, वे अपने घरों में तोरण आदि से मङ्गल मनायें ॥५३॥ सभी आभरणों से अलंकृत हजारों मनोहर कन्यायें हाथी पर चढ़कर शत्रुघ्नजी के समक्ष जायँ ॥५४॥ इस तरह से सवों को आज्ञा देकर राजा स्वयं अपने पुत्र, पौत्र तथा रानियों के साथ शत्रुघ्नजी के समक्ष गया ॥५५॥ महामात्यों तथा पुष्कल आदि वीरों के साथ शत्रुघ्नजी ने भी सुमद नामक राजा को देखा ॥५६॥ हस्तिपकों से युक्त हाथियों, शत्रुओं को

अथागत्य महाराजःशत्रुघ्नं नतवान्मुदा ।
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि सत्कृतं च कृतं वपुः ॥५८॥
इदं राज्यं गृहाणाशु महराजोपशोभितम् । महामाणिक्यमुक्तादिमहाधनसुपूरितम् ॥५९॥
स्वामिंश्चिरं प्रतीक्षेऽहं हयस्यागमनं प्रति। कामाक्षाकथितं पूर्वं जातं सम्प्रति तत्तथा॥६०॥
विलोकय पुरं मह्यं कृतार्थान्कुरु मानवान् । पावयास्मत्कुलं सर्वं रामानुज ! महीपते !॥६१॥
इत्युक्त्वाऽऽरोहमायास कुञ्जरं चन्द्रसुप्रभम्। पुष्कलं च महावीरं तथा स्वयमथाऽऽरुहत् ॥६२॥
भेरीपणवतूर्याणां वीणादीनां स्वनस्तदा । व्याप्नोति स्म महाराज ! सुमदेन प्रणोदितः ॥६३॥
कन्याःसमागत्य महानरेन्द्रं शत्रुघ्नमिन्द्रादिकसेविताङ्घ्रिम् ।
करिस्थिता मौक्तिकवृन्दसङ्घैर्वर्धापयामासुरिनप्रयुक्ताः ॥६४॥
शनैःशनैः समागत्य पुरीमध्ये जनैर्मुदा । वर्धापितो गृहं प्राप तोरणादिकभूषितम् ॥६५॥
हयरत्नेन संयुक्तस्तथा वीरैःसुशोभितः। राज्ञा पुरस्कृतो राजा शत्रुघ्नःप्राप मन्दिरम् ॥६६॥
अर्घादिभिःपूजयित्वा रघुनाथानुजं तदा। सर्वं समर्पयामास रामचन्द्राय धीमते॥६७॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
शत्रुघ्नाहिच्छत्रापुरिप्रवेशो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

* * *

संतप्त करने वाली पैदल सेना तथा अश्वों से अलंकृत वीरों के साथ सुशोभित वीर राजा को शत्रुघ्नजी ने देखा॥५७॥ इसके बाद राजा सुमद आकर प्रसन्नता पूर्वक शत्रुघ्नजी को नमस्कार किए और कहे मैं तो धन्य हो गया, कृतकृत्य हो गया, आपने मेरा समादर किया है ॥५८॥ महाराज मेरे सुशोभित इस राज्य को आप शीघ्र स्वीकार करें । यह महामणि तथा मुक्ता आदि महाधन से परिपूर्ण है ॥५९॥ हे स्वामिन् ! अश्व के आगमन की मैं चिरकाल से प्रतीक्षा कर रहा हूँ । पहले कामाक्षा देवी ने जैसा कहा था, वैसा ही आज हुआ ॥६०॥ आप नगर का अवलोकन मेरे लिए कीजिये और मनुष्यों को कृतार्थ कीजिये । हे रामानुज महीपते ! आप मेरे सम्पूर्ण वंश को पवित्र बना दें ॥६१॥ इस तरह से कहकर राजा पुष्कल को चन्द्रसुप्रभ नामक हाथी पर बैठाकर स्वयं भी बैठे॥६२॥ हे महाराज ! सुमद के द्वारा प्रेरित होकर उस समय भेरी, पणव, तूर्य, तथा वीणा आदि की ध्वनि सर्वत्र व्याप्त हो गयी ॥६३॥ राजा सुमद के द्वारा भेजी गयी एक हजार कन्यायें हाथी पर बैठकर आयी हुयी थीं, इन्द्र आदि के द्वारा जिनके चरणों की सेवा की गयी है, ऐसा शत्रुघ्नजी के पास आकर राजा ने उनका मोतियों से वर्धापन किया ॥६४॥ धीरे-धीरे लोगों के साथ प्रसन्नता पूर्वक नगर में आकर वर्धापित शत्रुघ्नजी तोरण आदि से अलंकृत गृह में आये ॥६५॥ हयरत्न के साथ वीरों से सुशोभित राजा सुमद के द्वारा अगुआई किए गये शत्रुघ्नजी मन्दिर में आये ॥६६॥ उस समय श्रीरामजी के अनुज शत्रुघ्नजी की पूजा अर्घ्य इत्यादि से करके राजा ने भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को सब कुछ समर्पित कर दिया ॥६७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध प्रकरण के शत्रुघ्नजी द्वारा अहिच्छत्रापुरी में प्रवेश नामक तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

* * *

चौदहवाँ अध्याय

शेष उवाच

अथ स्वागतसन्तुष्टं शत्रुघ्नं प्राह भूमिपः। रघुनाथकथां श्रेष्ठां शुश्रूषुः पुरुर्षभः ॥१॥

सुमद उवाच

कच्चिदास्ते सुखं रामः सर्वलोकशिरोमणिः। भक्तरक्षावतारोऽयं ममानुग्रहकारकः ॥२॥
धन्या लोका इमे पुर्या रघुनाथमुखाम्बुजम्। ये पिबन्त्यनिशं चाक्षिपुटकैः परिमोदिताः॥३॥
अथ जातं मदीयं च नितरां पुरुषर्षभ !। कृतार्थं कुलभूम्यादि वस्तु जातं महामते !॥४॥
कामाक्षया प्रसादो मे कृतःपूर्वं दयार्द्रया। रघुनाथमुखाम्भोजं द्रक्ष्येऽद्य सुकुटुम्बकः ॥५॥
इत्युक्तवति वीरे तु सुमदे पार्थिवोत्तमे। सर्वं तत्कथयामास रघुनाथगुणोदयम्॥६॥
त्रिरात्रं तत्र वै स्थित्वा रघुनाथानुजःपरम्। गन्तुं चकार धिषणां राज्ञा सह महामतिः ॥७॥

तज्ज्ञात्वा सुमदः शीघ्रं पुत्रं राज्येऽभ्यषेचयत्।
शत्रुघ्नेन महाराज ! पुष्कलेनानुमोदितः ॥८॥

वासांसि बहुरत्नानि धनानि विविधानि च। शत्रुघ्नसेवकेभ्योऽसौ प्रादात्तत्र महामतिः ॥९॥
ततो गमनमारेभे मन्त्रिभिर्बहुवित्तमैः। पत्तिभिर्वाजिभिर्नागैःसदश्वै रथकोटिभिः॥१०॥
शत्रुघ्न सहितस्तेन सुमदेन धनुर्भृता। जगाम मार्गे विहसन्रघुनाथप्रतापभृत् ॥११॥
पयोष्णीतीरमासाद्य जगाम स हयोत्तमः। पृष्ठतोऽनुययुःसर्वे योधा वै हयरक्षिणः ॥१२॥
आश्रमान्विविधान्पश्यन्नृषीणां सुतपोभृताम्। तत्र तत्र विश्रृण्वानो रघुनाथगुणोदयम् ॥१३॥

राजा सुमद का शत्रुघ्नजी से संवाद तथा च्यवनोपाख्यान का उपक्रम

शेषजी ने कहा— इसके बाद स्वागत से सन्तुष्ट हुए शत्रुघ्नजी से रामकथा सुनने की इच्छुक पुरुषों में श्रेष्ठ राजा ने रामकथा के विषय में पूछा ॥१॥ सभी लोकों में श्रेष्ठ, भक्तों पर कृपा करने वाले भक्तरक्षावतार स्वरूप श्रीरामजी कुशल पूर्वक हैं न ॥२॥ उस नगरी में रहने वाले वे लोग धन्य हैं जो अपने नेत्र रूपी चषक से आनन्दपूर्वक भगवान् श्रीराम के मुखकमल के पराग का पान करते हैं ॥३॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! अब मेरा कुल, भूमि इत्यादि सम्पूर्ण वस्तु समूह पूर्णरूप से कृतार्थ हो गया है ॥४॥ कामाक्षा देवी ने पहले मेरे ऊपर कृपा किया था उसी के फलस्वरूप आज मैंने श्रीरामजी के मुखकमल के दर्शन का अवसर प्राप्त किया है ॥५॥ इस तरह से धैर्य सम्पन्न राजा सुमद के कहने पर शत्रुघ्नजी ने श्रीरामचन्द्रजी के सम्पूर्ण गुणों का वर्णन किया ॥६॥ शत्रुघ्नजी वहाँ तीन रातों तक निवास किए उसके बाद वे वहाँ से राजा के साथ जाने का निश्चय किए ॥७॥ इस बात को सुनकर राजा सुमद ने अपने पुत्र को शीघ्र ही राज्य पर अभिषिक्त कर दिया और शत्रुघ्नजी ने तथा पुष्कल ने उस कार्य का अनुमोदन कर दिया ॥८॥ वहाँ पर महामति राजा ने शत्रुघ्नजी के सेवकों को वस्त्र, अनेक प्रकार के रत्न तथा धन प्रदान किया ॥९॥ उसके बाद राजा अपने बहुत से मन्त्रियों के साथ जाने लगे। उस समय राजा के साथ पैदल सेना, हाथी सेना, घोड़े तथा करोड़ों रथ थे ॥१०॥ धनुर्धारी उस राजा सुमद के साथ रघुनाथजी के प्रातप को धारण करने वाले शत्रुघ्नजी रास्ते में राजा के साथ हँसते हुए गये ॥११॥ वह घोड़ा पयोष्णी नदी के तट पर गया और उसके पीछे सभी अश्व रक्षक योधा भी गये ॥१२॥ तपस्वी ऋषियों के विभिन्न

एष धीमान्हरिर्याति हरिणा परिरक्षितः। हरिभिर्हरिभक्तैश्च हरिवर्यानुगैर्महुः ॥१४॥
इति श्रृण्वञ्छुभा वाचो मुनीनां परितः प्रभुः ।
तुतोष भक्त्युत्कलितचित्तवृत्तिभृतां महान् ॥१५॥
ददर्श चाश्रमं शुद्धं जनजन्तुसमाकुलम् । वेदध्वनिहताशेषामङ्गलं श्रृण्वतां नृणाम् ॥१६॥
अग्निहोत्रहविर्धूमपवित्रितनभस्थलम् । मुनिवर्यकृतानेकयागयूपसुशोभितम् ॥१७॥
यत्र गावस्तु हरिणा पाल्यन्ते पालनोचिताः। मूषका न खनन्त्यस्मिन्बिडालस्य भयाद् विलम्॥१८॥
मयूरैर्नकुलैः सार्द्धं क्रीडन्ति फणिनोऽनिशम् ।
गजैः सिंहैर्नित्यमत्र स्थीयते मित्रतां गतैः ॥१९॥
एणास्तत्रत्यनीवारभक्षणेषु कृतादराः। न भयं कुर्वते कालाद्रक्षिता मुनिवृन्दकैः॥२०॥
गावः कुम्भसमोधस्का नन्दिनीसमविग्रहाः। कुर्वन्ति चरणोत्थेन रजसेला पवित्रिताम् ॥२१॥
मुनिवर्याः समित्पाणिपद्मैर्धर्मक्रियोचिताम् । दृष्ट्वा पप्रच्छ सुमतिं सर्वज्ञं राममन्त्रिणम् ॥२२॥

शत्रुघ्न उवाच

सुमते ! कस्य संस्थानं मुनेर्भाति पुरोगतम् ।
निर्वैरिजन्तुसंसेव्यं मुनिवृन्दसमाकुलम् ॥२३॥
श्रोष्यामि मुनिवार्तां च विदधामि पवित्रताम् ।
निजं वपुस्तदीयाभिर्वार्ताभिर्वर्णनादिभिः ॥२४॥
इति श्रुत्वा महद्वाक्यं शत्रुघ्नस्य महात्मनः। कथयामास सचिवो रघुनाथस्य धीमतः॥२५॥

सुमतिरुवाच

च्यवनस्याश्रमं विद्धि महातापसशोभितम् । निर्वैरि जन्तुसङ्कीर्णं मुनिपत्नीभिरावृतम् ॥२६॥

आश्रमों को देखते हुए तथा विभिन्न स्थानों पर श्रीरघुनाथजी के गुणों की प्रशंसा सुनते हुए ॥१३॥ श्रीहरि से संरक्षित होकर श्रीहरि के हरिभक्तों ने कहा— श्रेष्ठ घोड़े का अनुगमन करने वालों से संरक्षित यह अश्व जा रहा है ॥१४॥ भक्ति से उत्कण्ठित चित्त वाले मुनियों की शुभ वाणी को सुनकर शत्रुघ्नजी को सन्तोष हुआ ॥१५॥ उन्होंने जनों और जन्तुओं से भरे शुद्ध आश्रम को देखा जो सुनने वाले मनुष्यों के अमङ्गल को वेदवाणी की ध्वनि से विनष्ट कर रहा था ॥१६॥ अग्निहोत्र के हविष्य के धूम से आकाश वहाँ का पवित्र हो गया था । वह आश्रम मुनिवर्य के द्वारा किए गये अनेक यागों के स्तम्भों से वह सुशोभित था ॥१७॥ वहाँ पर पालने योग्य पापों की रक्षा सिंह करते थे । वहाँ पर विडाल के भय से चूहा विल नहीं बनाते थे ॥१८॥ सदा मयूरों तथा नेवलों के साथ सर्प खेलते रहते थे । वहाँ पर सदैव सिहं और हार्थी मित्र बनकर रहते थे ॥१९॥ हरिग प्रेमपूर्वक नीवार को खाते थे । वे मुनि समूह से रक्षित होकर काल से भयभीत नहीं होते थे ॥२०॥ गायों का स्तन घड़े के समान था और उन सवों का शरीर नन्दिनी के समान सुन्दर था । वे अपने पैरों से उठी हुयी धूलि के द्वारा पृथिवी को पवित्र वना रही थीं ॥२१॥ श्रेष्ठ मुनिजनों को अपने हाथ में समिधा लेकर धर्म क्रिया करते देखकर श्रीरामजी के सर्वज्ञ मन्त्री सुमति से शत्रुघ्नजी पूछे ॥२२॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा**— हे सुमते ! सामने किस मुनि का आश्रम दिखायी दे रहा है । इसमें वैर रहित जीव रहते हैं और मुनिजनों से यह भरा हुआ है ॥२३॥ मैं मुनियों की वार्ताओं का श्रवण करूँगा और उन लोगों की वार्ताओं तथा वर्णनों से अपने शरीर को पवित्र वनाऊँगा ॥२४॥

योऽसौ महामुनिःस्वर्गवैद्ययोर्भागमादधात्। स्वायम्भुवमहायज्ञे शक्रमानविभेदनः ॥२७॥
महामुनेःप्रभावोऽयं न केनापि समाप्यते । तपोबलसमृद्धस्य वेदमूर्तिधरस्य ह ॥२८॥
श्रुत्वा रामानुजो वार्ता च्यवनस्य महामुनेः । सर्वं प्रपच्छ सुमतिं शक्रमानादिभञ्जनम् ॥२९॥

शत्रुघ्न उवाच

कदाऽसौदस्त्रयोर्भागं चकार सुरपङ्क्तिषु । किं कृतं देवराजेन स्वायम्भुवमहामखे ॥३०॥

सुमतिरुवाच

ब्रह्मवंशेऽतिविख्यातो मुनिर्भृगुरिति श्रुतः । कदाचिद्गतवान्सायं समिदाहरणं प्रति ॥३१॥
तदा मखविनाशाय दमनो राक्षसोबलिः। आगत्योच्चैर्जगादेदं महाभयकरं वचः ॥३२॥
कुत्रास्ति मुनिबन्धुःस कुत्र तन्महिलाऽनघा। पुनःपुनरुवाचेदं वचो रोषसमाकुलः ॥३३॥
तदा हुतवहो ज्ञात्वा राक्षसाद्भयमागतम्। दर्शयामास तज्जायामन्तर्वत्नीमनिन्दिताम्॥३४॥
जहार राक्षसस्तां तु रुदन्तीं कुररीमिव। भृगो ! रक्षपते ! रक्ष रक्ष नाथ ! तपोनिधे ॥३५॥
एवं वदन्तीमार्ता तां गृहीत्वा निरगाद्बहिः। दुष्टो वाक्यप्रहारेण धर्षयन्स भृगोः सतीम्॥३६॥
ततो महाभयत्रस्तो गर्भश्चोदरमध्यतः। पपात प्रज्वलन्नेत्रो वैश्वानर इवाङ्गजः॥३७॥
तेनोक्तं मा व्रजाशु त्वं भस्मी भव सुदुर्मते ! ।
न हि साध्वीपरामर्शं कृत्वा श्रेयोऽधि यास्यसि ॥३८॥
इत्युक्तःस पपाताशु भस्मीभूतकलेवरः । माता तदाऽर्भकं नीत्वा जगामाश्रममुन्मनाः ॥३९॥

इस तरह से महात्मा शत्रुघ्न के महान् वाक्य को सुनकर श्रीभगवान् के मन्त्री ने कहा ॥२५॥ **सुमति ने कहा**— यह महातपस्वी महर्षि च्यवन का आश्रम है । यहाँ पर महातपस्वी रहते हैं । यह वैरहीन जीवों से भरा हुआ तथा मुनि पत्नियों से भरा है ॥२६॥ इन मुनि ने अश्विनी कुमारों को यज्ञभाग प्रदान किया था । इन्होंने स्वायम्भुव मनु के यज्ञ में इन्द्र के घमण्ड को चूर कर दिया था ॥२७॥ महामुनियों के इस प्रभाव को कोई समाप्त नहीं कर सकता है । ये मुनि तपस्या के बल से समृद्ध और वेद की मूर्ति हैं ॥२८॥ रामानुज शत्रुघ्नजी ने च्यवन महर्षि की वार्ता को सुनकर इन्द्र के मान मर्दन सम्वन्धी सारी बातों को पूछा ॥२९॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा**— इन मुनि ने देवताओं की पंक्ति में अश्विनी कुमारों को कब भाग प्रदान किया । स्वायम्भुव महायज्ञ में इन्द्र ने क्या किया था ?॥३०॥ **सुमति ने कहा**— ब्रह्माजी के वंश में भृगु महर्षि अत्यन्त विख्यात हैं । वे एक बार सायंकाल समिधा लाने के लिए सायंकाल में गये । उस समय यज्ञ का विनाश करने के लिए दमन नामक वलवान राक्षस आकर अत्यन्त भयभीत कर देने वाली वाणी को कहा ॥३१-३२॥ वे मुनि वन्धु कहाँ हैं और उनकी पत्नी कहाँ हैं ? वह क्रोध से व्याकुल होकर इस बात को बार-बार कहा ॥३३॥ उस समय राक्षस से उपस्थित होने वाले भय को जानकर अग्नि ने उनकी पत्नी को दिखा दिया, उस समय वे गर्भिणी थीं ॥३४॥ उस समय कुररी के समान रोती हुयी मुनि पत्नी का उसने अपहरण कर लिया वे कह रही थीं हे नाथ ! भृगो इस राक्षस से मेरी रक्षा कीजिये ॥३५॥ इस तरह से कहती हुयी मुनि पत्नी को पकड़कर वह आश्रम से वाहर निकल गया । वह दुष्ट अपने वाक्यों के द्वारा महर्षि भृगु की पत्नी को डाँट रहा था ॥३६॥ उस समय महान् भय से भयभीत उनके पेट से गर्भ नीचे गिर पड़ा । उसके नेत्र अग्नि के समान जल रहे थे ॥३७॥ उसने कहा अब मत जाओ तुम शीघ्र ही भस्म हो जा रहे हो । इस साध्वी का स्पर्श करने के कारण तुम कल्याण पूर्वक नहीं जा सकते हो ॥३८॥ इस तरह कहते ही वह दैत्य भस्म होकर पृथिवी पर गिर पड़ा और उसकी माता उस वालक को लेकर उदास होकर उस आश्रम में चली गयी ॥३९॥ महर्षि भृगु भी अग्नि के द्वारा किए गये सारे कार्यों को जानकर क्रुद्ध

भृगुर्वह्निकृतं सर्वं ज्ञात्वा क्रोधसमाकुलः। शशाप सर्वभक्षस्त्वं भव दुष्टारिसूचक ॥४०॥
तदा शप्तोऽतिदुःखार्तो जग्राहाङ्घ्री तनूनपात् ।
कुरु मेऽनुग्रहं स्वामिन्कृपार्णव महामते ॥४१॥
मयाऽनृतं वचो भीत्या कथितं न गुरुद्रुहा। तस्मान्ममोपरि कृपां कुरु धर्मशिरोमणे ! ॥४२॥
तदानुग्रहमाधाच्च सर्वभक्षो भवाञ्छुचिः। इत्युक्तवान्हुतभुजं दयार्द्रो मुनि तापसः ॥४३॥
गर्भाच्च्युतस्य पुत्रस्य जातकर्मादिकं शुचिः। चकार विधिवद्विप्रो दर्भपाणिः सुमङ्गलः ॥४४॥
च्यवनाच्च्यवनं प्राहुः पुत्रं सर्वे तपस्विनः । शनैःशनैः स ववृधे शुक्लप्रतिपदीन्दुवत् ॥४५॥
स जगाम तपःकर्तुं रेवां लोकैकपावनीम् । शिष्यैःपरिवृतःसर्वैस्तपोवलसमन्वितैः ॥४६॥
गत्वा तत्र तपस्तेपे वर्षाणामयुतं महान् । अंसयोःकिंशुकौ जातौ वल्मीकोपरिशोभितौ॥४७॥
मृगा आगत्य तस्याङ्गे कण्डूं विदधुरुत्सुकाः ।
न किञ्चित्स हि जानाति दुर्वारतपसावृतः ॥४८॥
कदाचिन्मनुरुद्युक्तस्तीर्थयात्रां प्रति प्रभुः । स कुटुम्बो ययौ रेवां महावलसमावृतः॥४९॥
तत्र स्नात्वा महानद्यां सन्तर्प्य पितृदेवताः। दानानि ब्राह्मणेभ्यश्च प्रादाद्विष्णुप्रतुष्टये॥५०॥
तत्कन्या विचरन्ती सा वनमध्ये इतस्ततः । सखीभिःसहिता रम्या तप्तहाटकभूषणा॥५१॥
तत्र दृष्ट्वाऽथ वल्मीकं महातरुसुशोभितम्। निमेषोन्मेषरहितं तेजः किञ्चिद्दर्श सा ॥५२॥
गत्वा तत्र शलाकाभिरतुदद्रुधिरं स्रवत् । दृष्ट्वा राज्ञोऽङ्गजाखेदं प्राप्तवत्यतिदुःखिता॥५३॥
न जनन्यै तथा पित्रे शशंसाघेन विप्लुता। स्वयमेवात्मनाऽऽत्मानं सा शुशोच भयातुरा॥५४॥
तदा भूश्चलिता राजन्दिवश्चोल्का पपात ह। धूम्रादिशोऽभवन्सर्वाःसूर्यश्च परिवेषितः ॥५५॥

हो गये। उन्होंने अग्नि को शाप दे दिया कि दुष्ट शत्रु को सूचित करने के कारण तुम सर्व भक्षक हो जाओ॥४०॥ उस समय शाप ग्रस्त अग्नि अत्यन्त दुःखी होकर मुनि के पैरों को पकड़ लिए और कहे— हे कृपासागर महामते स्वामिन् ! आप मुझ पर कृपा करें ॥४१॥ मैंने झूठ वाणी के भय से कहा है न कि गुरु से द्रोह करने के कारण, अतएव हे धर्म शिरोमणे ! आप मेरे ऊपर कृपा करें ॥४२॥ तव अग्नि पर कृपा करके भृगु महर्षि ने कहा कि सर्वभक्षी होकर भी तुम पवित्र ही रहोगे। इस तरह से दया से आर्द्र बने हुए तपस्वी मुनि ने कहा ॥४३॥ गर्भ से गिरे हुए वालक का महर्षि ने जातकर्म आदि कर्मों को हाथ में कुश लेकर मङ्गलमय तथा विधि पूर्वक किया॥४४॥ गिरने के कारण मुनियों ने उस वालक को च्यवन कहा वह वालक धीरे-धीरे शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान वढ़ने लगा ॥४५॥ वह वालक तपस्या करने के लिए संसार को प्रधान रूप से पवित्र करने वाली रेवा नदी के तट पर गये। उनके साथ तपोवल से युक्त उनके शिष्य विद्यमान थे ॥४६॥ वहाँ पर जाकर उन्होंने दश हजार वर्षों तक तपस्या किया। उनके कन्धों पर जमे हुए वल्मीक पर दो पलाश के वृक्ष जम गये थे ॥४७॥ मृग आकर उनके अङ्गों में अपने शरीर को खुजलाते थे; किन्तु महर्षि को इसका पता नहीं चलता था। वे तो दुर्वार तप में लगे थे ॥४८॥ एक वार मनु तीर्थ यात्रा के लिए तैयार हुए, वे अपने परिवार एवं विशाल सेना के साथ रेवा नदी में स्नान करने के लिए गये ॥४९॥ वहाँ पर महानदी में स्नान करके पितरों एवं देवताओं का उन्होंने तर्पण किया। इसके वाद भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए उन्होंने ब्राह्मणों को दान दिया ॥५०॥ राजा की कन्या उस वन में सखियों के साथ इधर-उधर विचरण कर रही थी। वह सुवर्ण के आभूषणों से भूषित थी॥५१॥ उसने वहाँ पर महान् वृक्ष से सुशोभित वल्मीक को देखा। उसने किसी तेज को देखा जो निमेष तथा उन्मेष से रहित था ॥५२॥ वहाँ जाकर उसने उस तेज को सूई से छेद दिया। उससे खून निकलने लगा। यह देखकर राजकुमारी दुःखी हो गयी ॥५३॥ उसने इस वात को अपने माता-पिता को नहीं वतलाया। वह भयभीत होकर अपने मन में ही शोक करती रही ॥५४॥ हे राजन् ! उसके वाद पृथिवी काँपने लगी और आकाश से उल्कापात होने लगा।

तदा राज्ञो हया नष्टा हस्तिनो बहवो मृताः। धनं नष्टं रत्नयुतं कलहोऽभून्मिथस्तदा ॥५६॥
तदालोक्य नृपो भीतःकिञ्चिदुद्विग्नमानसः। जनानपृच्छत्केनापि मुनये त्वपराधितम्॥५७॥
पारम्पर्येण तज्ज्ञात्वा स्वपुत्र्याः परिचेष्टितम् ।
ययौ सुदुःखितस्तत्र समृद्धबलवाहनः ॥५८॥
तं वै तपोनिधिं वीक्ष्य महता तपसायुतम्। स्तुत्वा प्रसादयामास मुनिवर्य ! दयां कुरु॥५९॥
तस्मै तुष्टो जगादयं मुनिवर्यो महातपाः। तवात्मजा कृतं सर्वमुत्पाताद्यमवेहि तत्॥६०॥
तव पुत्र्या महाराज ! चक्षुर्विस्फोटनं कृतम् ।
बहुसुस्राव रुधिरं जानती त्वामुवाच न ॥६१॥
तस्मादियं महाभूप ! मह्यं देया यथाविधि। ततश्चोत्पातशमनं भविष्यति न संशयः॥६२॥
तच्छुत्वा दुःखितो राजा प्रज्ञाचक्षुष आत्मजाम् ।
ददौ कुलवयोरूपशीललक्षणसंयुताम् ॥६३॥
दत्ता यदा नृपेणेयं कन्या कमललोचना। तदोत्पाता शमं याताःसर्वे मुनिरुषोद्गताः ॥६४॥
राजा दत्त्वाऽऽत्मजां तस्मै मुनये तपसांनिधे ।
प्राप स्वां नगरीं भूयो दुःखितोऽयं दयायुतः ॥६५॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
च्यवनोपाख्यानं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

* * *

सारी दिशाएँ धूमिल हो गयीं । सूर्य मण्डल घिर गया ॥५५॥ उस समय राजा का घोड़ा विनष्ट हो गया उनके हाथी मर गये । उनका धन नष्ट हो गया और परस्पर में कलह होने लगा ॥५६॥ यह देखकर राजा का मन उद्विग्न हो गया और वे भयभीत हो गये । उन्होंने लोगों से पूछा कि क्या किसी ने मुनि का अपराध किया है ॥५७॥ कर्ण परम्परा से राजा ने अपनी पुत्री का अपराध जान लिया । वे अपने सेना और वाहन के साथ मुनि के पास गये ॥५८॥ महान् तपस्या करने वाले मुनि को देखकर; उन्होंने स्तुति करके मुनि को प्रसन्न किया और कहा मुनिवर्य आप दया करें॥५९॥ राजा पर प्रसन्न होकर महातपा मुनि ने राजा से कहा। यह जानो कि तुम्हारी पुत्री ने ही सारा उत्पात किया है ॥६०॥ महाराज आपकी पुत्री ने मेरी आँखों को फोड़ दिया है । उससे बहुत खून निकला है, इस बात को जानकर भी उसने आपको नहीं बतलाया ॥६१॥ अतएव हे महाराज ! उसका विवाह आप मेरे साथ कर दें । ऐसा करने से उत्पात शान्त हो जायेगा, इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥६२॥ इस बात को सुनकर राजा अन्धे महर्षि से अपनी कुल, अवस्था, रूप तथा शील गुण सम्पन्न पुत्री का विवाह कर दिया ॥६३॥ राजा ने ज्यों ही इस कमलनयनी कन्या का विवाह किया उसी समय मुनि के क्रोध से उत्पन्न सभी उत्पात शान्त हो गये ॥६४॥ दुखी तथा दयालु राजा भी तपोनिधि मुनि से अपनी कन्या का विवाह करके अपनी नगरी में चले गये ॥६५॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के शेषवत्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में च्यवनोपाख्यान वर्णन नामक चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

* * *

पन्द्रहवाँ अध्याय

सुमतिरुवाच

अथर्षि:स्वाश्रमं गत्वा मानव्या सह भार्यया ।
मुदं प्राप हताशेषपातको योगयुक्तया ॥१॥
सा मानवी तं वरमात्मन:पतिं नेत्रेण हीनं जरसा गतौजसम् ।
सिषेव एवं हरिमेधसोत्तमं निजेष्टदात्रीं कुलदेवतां यथा ॥२॥
शुश्रूषती स्वं पतिमिङ्गितज्ञा महानुभावं तपसांनिधिं प्रियम् ।
परां मुदं प्राप सती मनोहरा शची यथा शक्रनिषेवणोद्यता ॥३॥
चरणौ सेवते तन्वी सर्वलक्षणलक्षिता। राजपुत्री सुन्दराङ्गी फलमूलोदकाशना ॥४॥
नित्यं तद्वाक्यकरणे तत्परा पूजने रता । कालक्षेमं प्रकुरुते सर्वभूतहिते रता ॥५॥
विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं लोभमघं मदम् ।
अप्रमत्तोद्यता नित्यं च्यवनं समतोषयत् ॥६॥
एवं तस्य प्रकुर्वाणा सेवां वाक्कायकर्मभि: ।
सहस्राब्दं महाराज ! सा च कामं मनस्यधात् ॥७॥
कदाचिद्देवभिषजावागतावाश्रमे मुनेः । स्वागतेन सुसम्भाव्य तयो:पूजां चकार सा॥८॥
शर्यातिकन्याकृतपूजनार्घपाद्यादिना तोषितचित्तवृत्ती ।
तावूचतुः स्नेहवशेन सुन्दरौ वरं वृणीष्वेति मनोहराङ्गीम् ॥९॥

च्यवन एवं सुकन्या का उपाख्यान तथा ऋषि की तपस्या के प्रभाव का वर्णन

सुमति ने कहा— इसके बाद महर्षि च्यवन मनु की पुत्री तथा अपनी पत्नी के साथ अपने आश्रम में जाकर प्रसन्न हुए । वह मानवी योगयुक्त थी तथा उसके सारे पाप विनष्ट हो गये थे ॥१॥ वह मनु की पुत्री नेत्र विहीन तथा वार्द्धक्य के कारण ओज विहीन अपने श्रेष्ठपति की अभीष्ट फल को देने वाली कुल देवता के समान श्रीहरि समझकर सेवा करने लगी ॥२॥ इङ्गितों (इशारों) को जानने वाली वह अपने तपोनिधि महाप्रभावशाली प्रिय पति की सेवा करती हुयी अत्यन्त आनन्द पूर्वक उसी तरह से करती थी जिस तरह इन्द्र की सेवा करने में शची आनन्द का अनुभव करती हैं ॥३॥ सम्पूर्ण लक्षणों से सम्पन्न वह सुन्दरी ऋषि के चरणों की सेवा करती थी । सुन्दर अङ्गों वाली वह राजकुमारी फलमूल तथा जल को ही खाती थी ॥४॥ वह सदैव ऋषि की आज्ञा का पालन करने और उनकी पूजा करने में तत्पर रहकर समस्त प्राणियों का कल्याण करने में अपना समय बिताती थी ॥५॥ काम, दम्भ, द्वेष, पाप तथा मद का परित्याग करके वह सावधानी पूर्वक च्यवन महर्षि की सेवा करती हुयी उसने उनको प्रसन्न कर दिया ॥६॥ इस तरह से वाणी, शरीर तथा कर्म के द्वारा महर्षि की सेवा करती हुयी उसके एक हजार वर्ष बीत गये । वह निरन्तर सेवा में ही अपने मन को लगाये रहती थी ॥७॥ एक बार देवताओं के चिकित्सक दोनों अश्विनी कुमार मुनि के आश्रम में आये । उन दोनों का स्वागत करके सुकन्या ने उनकी पूजा की ॥८॥ शर्याति की पुत्री द्वारा अर्घ्य तथा पाद्य आदि द्वारा पूजा किए जाने के कारण जिनकी चित्तवृत्ति सन्तुष्ट हो गयी थी । उन सुन्दर अश्विनी कुमारों ने उस सुन्दरी से कहा कि वरदान माँगो ॥९॥ देवताओं

तुष्टौ तौ वीक्ष्य भिषजौ देवानां वरयाचने । मतिं चकार नृपतेः पुत्री मतिमतांवरा ॥१०॥
पत्यभिप्रायमालक्ष्य वाचमूचे नृपात्मजा। दत्तं मे चक्षुषी पत्युर्यदि तुष्टौ युवां सुरौ ॥११॥
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा सुकन्यायाया मनोहरम् । सतीत्वं च विलोक्येदमूचतुर्भिषजांवरौ ॥१२॥
त्वत्पतिर्यदि देवानां भागं यज्ञे दधात्यसौ । आवयोरधुना कुर्वंश्चक्षुषोःस्फुटदर्शनम् ॥१३॥
च्यवनोऽप्योमिति प्राह भागदाने वरौजसोः। तदा हृष्टावश्विनौ तमूचतुस्तपतां वरम् ॥१४॥
निमज्जतां भवानस्मिन्ह्रदे सिद्धविनिर्मिते। इत्युक्तोजरया ग्रस्तदेहो धमनिसन्ततः ॥१५॥
ह्रदं प्रवेशितोऽश्विभ्यां स्वयं चामज्जतां ह्रदे ।
पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरपीच्या वनिताप्रियाः ॥१६॥
रुक्मस्रजःकुण्डलिनस्तुल्यरूपाःसुवाससः । तान्निरीक्ष्य वरारोहा सुरूपान्सूर्यवर्चसः ॥१७॥
अजानती पतिं साध्वी ह्यश्विनौ शरणं ययौ ।
दर्शयित्वा पतिं तस्यै पातिव्रत्येन तोषितौ ॥१८॥
ऋषिमामन्त्र्य ययतुर्विमानेन त्रिविष्टपम्। यक्ष्यमाणे क्रतौ स्वीयभागकार्याशयायुतौ ॥१९॥
कालेन भूयसा क्षामां कर्शितां व्रतचर्यया। प्रेम गद्गदया वाचा पीडितःकृपयाऽब्रवीत् ॥२०॥
तुष्टोऽहमद्य तव भामिनि मानदायाःशुश्रूषया परमया हृदि चैकभक्तया ।
यो देहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो नावेक्षितः समुचितःक्षपितुं मदर्थे ॥२१॥
ये मे स्वधर्मनिरतस्य तपःसमाधिविद्याऽऽत्मयोगविजिताभगवत्प्रसादाः ।
तानेव ते मदनुसेवनयाऽविरुद्धान्दृष्टिं प्रपश्य वितराम्यभयानशोकान् ॥२२॥

के वैद्यों को सन्तुष्ट देखकर वुद्धिमानों में श्रेष्ठ राजपुत्रि ने वर माँगना चाहा ॥१०॥ अपने पति के अभिप्राय को जानकर राजकुमारी ने कहा— यदि आप लोग प्रसन्न हैं तो आपलोग मेरे पति को आँखें प्रदान करें ॥११॥ सुकन्या के इस मनोहर वचन को सुनकर तथा उसके सतीत्व को देखकर उन दोनों श्रेष्ठ वैद्यों ने कहा ॥१२॥ यदि तुम्हारे पति हमदोनों को देवताओं का भाग दिलायें तो ये हमदोनों के द्वारा प्रदत्त नेत्रों के द्वारा देखने लगेंगे॥१३॥ च्यवन महर्षि ने भी उन दोनों को भाग दिलाने के विषय में स्वीकृति दे दी । उस समय प्रसन्न होकर उन दोनों अश्विनी कुमारों ने च्यवन महर्षि से कहा ॥१४॥ आप सिद्ध के द्वारा निर्मित इस कुण्ड में आप डूब जायं । इस तरह से कहने पर जराग्रस्त धमनि समूह वाले ऋषि को अश्विनी कुमारों ने उस कुण्ड में प्रवेश कराया और स्वयं भी वे दोनों उसमें प्रवेश कर गये और उससे अत्यन्त सुन्दर, वनिताओं को प्रिय लगने वाले तीन पुरुष वाहर निकले ॥१५-१६॥ वे सव सुवर्ण की माला पहने हुए, कुण्डल धारण किए हुए, समान रूप वाले तथा सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए थे । सूर्य के समान कान्ति वाले उन सवों को देखकर सुन्दरी सुकन्या ॥१७॥ अपने पति को नहीं पहचानने के कारण अश्विनी कुमारों की शरणागति की । उसके पातिव्रत्य से सन्तुष्ट अश्विनी कुमारों ने उसके पति को दिखाकर ॥१८॥ तथा ऋषि से आज्ञा लेकर विमान से स्वर्गलोक चले गये । उनके मन में था कि यज्ञ होने पर यज्ञ में उनको भाग मिले ॥१९॥ व्रत का पालन वहुत समय से करने के कारण दुर्वल हुयी सुकन्या को देखकर दुःखी ऋषि ने प्रेमपूर्वक गद्गद वाणी से कहा ॥२०॥ हे सम्मान करने वाली मानिनि ! आज मैं तुम्हारी सेवा से सन्तुष्ट हूँ । तुमने मेरे लिए अपने शरीर की भी उपेक्षा कर दी ॥२१॥ अपने धर्म का पालन करने वाले मैंने अपनी तपस्या समाधि, तथा आत्मयोग के द्वारा श्रीभगवान् की कृपा प्राप्त किया है, उन सवों

अन्ये पुनर्भगवतो भ्रुव उद्विजृम्भ विस्रंसितार्थरचनाः किमुरुक्रमस्य ।
सिद्धाऽसि भुङ्क्ष्व विभवान्निजधर्मदोहान्दिव्यान्नरैर्दुरधिगान्नृप विक्रियाभिः ।।२३।।
एवं ब्रुवाणमबलाऽखिलयोगमायाविद्याविचक्षणमवेक्ष्य गताधिरासीत् ।
सम्प्रश्रयप्रणयविह्वलया गिरेषद्व्रीडाविलोकविलसद्धसिताननाऽऽह ।।२४।।

सुकन्योवाच

राद्धं वत द्विजवृषैतदमोघयोगमायाधिपे त्वयि विभो तदवैमि भर्तः ! ।
यस्तेऽभ्यधायि समयःसकृदङ्गसङ्गो भूयाद्गरीयसि गुणःप्रसवःसतीनाम् ।।२५।।
तत्रेति कृत्यमुपशिक्ष्य यथोपदेशं येनैष कर्शिततमोऽतिरिरंसयात्मा ।
सिध्येत ते कृतमनोभवधर्षिताया दीनस्तदीश भवनं सदृशं विचक्ष्व ।।२६।।

सुमतिरुवाच

प्रियायाःप्रियमन्विच्छंश्च्यवनो योगमास्थितः। विमानं कामगं राजंस्तर्ह्येवाविरचीकरत् ।।२७।।
सर्वकामदुघं रम्यं सर्वरत्नसमन्वितम्। सर्वार्थोपचयोदर्कं मणिस्तम्भैरुपस्कृतम् ।।२८।।
दिव्योपस्तरणोपेतं सर्वकालसुखावहम्। पट्टिकाभिः पताकाभिर्विचित्राभिरलङ्कृतम् ।।२९।।
स्रग्भिर्विचित्रमालाभिर्मञ्जुशिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः । दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानावस्त्रैर्विराजितम् ।।३०।।
उपर्युपरिविन्यस्तनिलयेषु पृथक्पृथक् । क्लृप्तैः कशिपुभिः कान्तं पर्यङ्कव्यजनादिभिः।।३१।।
तत्र तत्र विनिक्षिप्तनानाशिल्पोपशोभितम्। महामरकतस्थल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः।।३२।।

को तुम्हें मेरी सेवा करने के कारण मैं तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ। उन सबों को तुम भी ठीक-ठीक जानो ।।२२।। दुसरे भी श्रीत्रिविक्रम भगवान् की भ्रुकुटी के विलास से उद्भूत रचनाओं के दिव्य ऐश्वर्य का तुम उपभोग करो तुम सिद्ध हो गयी हो, जिन ऐश्वर्य को राजा भी अपने प्रयास से नहीं प्राप्त कर सकते हैं उनका तुम उपभोग करो।।२३।। इस तरह से कहने वाले महर्षि के सम्पूर्ण योग माया तथा विद्या की विचक्षणता को देखकर सुकन्या अपने सारे दु:खों को भूल गयी सम्प्रश्रय और प्रणय से विह्वल बनी हुयी वह थोड़ी सी लज्जापूर्वक ऋषि को देखकर हँसती हुयी कही ।।२४।। **सुकन्या ने कहा—** हे द्विजश्रेष्ठ ! अपनी आराधना के द्वारा आप अमोघ योगाधिप हो गये हैं, इस बात को मैं जानती हूँ। आपने एक बार जो शरीर सम्वन्ध की वात की है, वही सती नारियों के गुण को उद्भुत करने वाला बन जाता है ।।२५।। आपके उपदेशानुसार कृत्यों की शिक्षा लेकर मैंने रमण करने की इच्छा से अपने शरीर को कृश किया है इस तरह से कामार्त बनी हुयी मेरा दीन मन सिद्ध हो जाय ऐसा आप भवन देखें ।।२६।। **सुमति ने कहा—** अपनी प्रियतमा के प्रिय करने की इच्छा से योग में स्थित महर्षि च्यवन ने एक कामग विमान को आविष्कृत कर दिया ।।२७।। वह विमान समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला, मनोहर तथा सभी प्रकार के रत्नों से युक्त था। सभी प्रकार की वस्तुओं से परिपूर्ण उस विमान के स्तम्भ मणियों से निर्मित थे ।।२८।। वह सभी कालों में सुखप्रद दिव्य आसनों से युक्त था। वह दिव्य पट्टिकाओं और पताकाओं से अलंकृत था ।।२९।। मनोहर ध्वनि युक्त षट्पादिकाओं वाली विचित्र मालाओं और हारों से तथा रेशमी सूक्ष्म वस्त्रों तथा अनेक प्रकार के वस्त्रों से वह सुशोभित था ।।३०।। वह अलग-अलग ऊपर के भवनों में रखे गये देदीप्यमान सुवर्ण के पलङ्गों और व्यजनों से युक्त था ।।३१।। उसमें स्थान-स्थान पर अनेक प्रकार की कारीगरी की गयी थी। उसकी फर्श महामरकतमणि से बनी थी और वेदिकाएँ विद्रुम की थीं ।।३२।। दरवाजों पर लगे

द्वाःसु विद्रुमदेहल्या भातं वज्रकपाटकम् । शिखरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैरधिश्रितम्॥३३॥
चक्षुष्मत्पद्मरागाग्र्यैर्वज्रभित्तिषु निर्मितैः । जुष्टं विचित्रवैतानैर्मुक्ताहारावलम्बितैः ॥३४॥
हंसपारावतव्रातैस्तत्र तत्र निकूजितम् । कृत्रिमानि विमाननि त्वधिरुह्यावरुह्य च ॥३५॥
विहारस्थानविश्रामसंवेशप्राङ्गणाजिरैः । यथोपजोषं रचितैर्विस्मापनमिवात्मनः ॥३६॥
एवं गृहं प्रपश्यन्तीं नातिप्रीतेन चेतसा। सर्वभूताशयाभिज्ञःस्वयं प्रोवाच तां प्रति ॥३७॥
निमज्ज्यास्मिन्ह्रदे भीरु ! विमानमिदमारुह। सुभ्रुर्भर्तुः समादाय वचः कुवलयेक्षणा ॥३८॥
सरजो बिभ्रती वासो वेणीभूतांश्च मूर्द्धजान् ।
अङ्गं च मलपङ्केन सञ्छन्नं शबलस्तनम् ॥३९॥
आविवेश सरस्तत्र मुदा शिवजलाशयम् । सान्तःसरसि वेश्मस्थाःशतानि दश कन्यकाः॥४०॥
सर्वाः किशोरवयसो ददर्शोत्पलगन्धिनीः । तां दृष्ट्वा शीघ्रमुत्थाय प्रोचुः प्राञ्जलयःस्त्रियः॥४१॥
कर्मकर्यो वयं तुभ्यं शाधि नः करवाम किम् ।
स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम् ॥४२॥
दुकूले निर्मले नूत्ने ददुरस्यै च मानद ! । भूषणानि परार्घ्यानि वरीयांसि द्युमन्ति च ॥४३॥
अन्नं सर्वगुणोपेतं पानं चैवामृतासवम् । अथादर्शे स्वमात्मानं स्त्रग्विणं विरजोऽम्बरम् ॥४४॥
ताभिःकृतस्वस्त्ययनं कान्ताभिर्बहुमानितम्। हारेण च महार्हेण रुचकेन चभूषितम् ॥४५॥
निष्कग्रीवं बलयिनं क्वणत्काञ्चननूपुरम्। श्रोण्योरध्यस्तया काञ्चया काञ्चन्याबहुरत्नया॥४६॥
सुभ्रुवा सुदता शुक्लस्निग्धापाङ्गेन चक्षुषा । पद्मकोशस्पृधा नीलैरलकैश्च लसन्मुखम् ॥४७॥

चौखट ही रत्न जटित किवाड़ों वाला था । इन्द्र नील मणि रचित शिखरों पर सुवर्ण के कलश लगाये गये थे॥३३॥ नेत्र युक्त पद्मराग मणियों से युक्त हीरे से निर्मित दिवारों में अद्भुत वितानों तथा मोतियों की लटकती हुयी मालाओं से वह सुशोभित था ॥३४॥ उसमें स्थान-स्थान पर हंस तथा पारावत पक्षी कृत्रिम विमानों पर चढ़कर तथा उतरकर बोलते रहते थे ॥३५॥ विहार के स्थान, विश्राम की जगह तथा आङ्गन उसमें स्थानुससार ऐसे बनाये गये थे जो मानो अपने को भी आश्चर्यित करने वाले थे ॥३६॥ इस तरह के गृह को प्रसन्न अन्तःकरण से देखती हुयी सुकन्या को सभी जीवों को अभिप्राय को जानने वाले महर्षि ने स्वयम् कहा ॥३७॥ हे भीरु ! इस ह्रद में स्नान करके इस विमान पर चढ़ो । नीलकमल के समान नेत्रों वाली, अपने पति के कथनानुसार॥३८॥ मैले वस्त्रों तथा वेणीभूत केशों, मैल से भरे अङ्गों और सटे हुए स्तनों वाली सुकन्या ने ॥३९॥ प्रसन्नता पूर्वक उस पवित्र जल वाले सरोवर में प्रवेश किया । उसने सरोवर के भीतर भवन में विद्यमान एक हजार कन्याओं को देखा ॥४०॥ उन सबों की किशोरावस्था थी उनके शरीर से कमल की सुगन्धि आती थी । सुकन्या को देखकर वे सब हाथ जोड़ कर खड़ी हो गयीं और कहा ॥४१॥ हमलोग आपकी दासियाँ हैं, आप बतलायें हमलोग आपकी कौन सी सेवा करें ? उन सबों ने मनस्विनी सुकन्या को महार्ह स्नान कराया ॥४२॥ पहनने के लिए नवीन दो वस्त्र प्रदान किया, अत्यन्त मूल्यवान तथा उत्तम कोटि के देदीप्यमान आभूषणों को भी प्रदान किया॥४३॥ समस्त गुणों से युक्त अन्न, जल तथा पीने के लिए अमृतासव प्रदान किया । इसके बाद सुकन्या ने माला तथा दिव्य वस्त्र धारण किए हुए अपने पति को नारियों के बीच देखा ॥४४॥ उन सुन्दरियों द्वारा मङ्गलमय बनाये गये, अत्यन्त समाननीय, हार तथा अत्यन्त मूल्यवान् रुचक से अलंकृत अपने को उसने

यदा सस्मार दयितमृषीणां बल्लभं पतिम् । तत्र चास्ते सहस्त्रीभिर्यत्रास्ते समुनीश्वरः ॥४८॥
भर्तुःपुरस्तादात्मानं स्त्रीसहस्त्रवृतं तदा। निशाम्य तद्योगगतिं संशयं प्रत्यपद्यत ॥४९॥
स तां कृतमलस्नानां विभ्राजन्तीमपूर्ववत् । आत्मनो बिभ्रतीं रूपं संवीतरुचिरस्तनीम्॥५०॥
विद्याधरीसहस्त्रेण सेव्यमानां सुवाससम् । जातभावो विमानं तदारोहयदमित्रहन्॥५१॥

तस्मिन्नलुप्तमहिमा प्रिययाऽनुषक्तो विद्याधरीभिरुपचीर्णवपुर्विमाने ।
बभ्राज उत्कचकुमुद्गणवानपीच्यस्ताराभिरावृत इवोडुपतिर्नभस्थः ॥५२॥
तेनाष्टलोकपविहारकुलाचलेन्द्रद्रोणीष्वनङ्गसखमारुतसौभगासु ।
सिद्धैर्नुतोद्युधुनिपातशिवस्वनासु रेमे चिरं धनदवल्लनावरूथी ॥५३॥

वैश्रम्भके सुरवने नन्दने पुष्पभद्रके। मानसे चैत्ररथ्ये च स रेमे रामया रतः॥५४॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
च्यवनस्य तपोभोगवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

* * *

देखा॥४५॥ ग्रीवा में निष्क धारण किए हुए, कङ्कन धारण किए हुए, वजते हुए सुवर्ण निर्मित नूपुर धारण किए हुए, कमर में सुवर्ण निर्मित करधनी धारण किए हुए अपने को देखकर ॥४६॥ सुन्दर भौहें, सुन्दर दाँत, स्वच्छ एवं प्रेमिल कटाक्ष युक्त नेत्र, कमल कोश को भी तिरस्कृत करने वाले घुंघराले केशों से सुशोभित अपने मुख को सुकन्या ने दर्पण में देखा ॥४७॥ उन्होंने ज्योंहि ऋषियों के प्रिय अपने पति का स्मरण किया तो उन्होंने देखा कि मुनि च्यवन हजारों नारियों के बीच में विद्यमान हैं ॥४८॥ अपने पति के समक्ष हजारों नारियों से घिरे अपने को देखकर उनके योग की गति के विषय मे सुकन्या को संशय होने लगा ॥४९॥ स्वच्छ स्नान करके अपूर्व के समान शोभित अपने रूप को धारण की हुयी, जिसके मनोहर स्तन ढँके हुए थे ॥५०॥ उस सुकन्या की सेवा हजारों विद्याधारियाँ कर रही थीं सुन्दर वस्त्र धारण की हुयी सुकन्या में प्रेम भरे महर्षि च्यवन उस विमान पर चढ़ गये ॥५१॥ उससे उनकी महिमा लुप्त नहीं हुयी थीं, अपनी प्रियतमा में ही आसक्त, विमान में विद्याधारियों के द्वारा सेवित शरीर वाले वे उसी तरह से सुशोभित हो रहे थे जिस तरह कुमद समुदाय को विकसित करने वाले चन्द्रमा तारा समूह से घिरे रहकर सुशोभित होते हैं ॥५२॥ वे महर्षि च्यवन आठों लोकपालों के विहारस्थल तथा वसन्ती वायु से जो सुन्दर बनी रहती थी इस प्रकार की कुलाचल पर्वत की कन्दराओं में सिद्धों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए तथा गङ्गा की धारा की पवित्र ध्वनियों से युक्त कन्दराओं में लालनाओं के समूह से युक्त दीर्घकाल तक रमण किये ॥५३॥ देवताओं के वैश्रम्भक वन, नन्दनवन, पुष्पभद्रक, मानसरोवर तथा चैत्ररथ वन में भी अपनी पत्नी के साथ उन्होंने विहार किया ॥५४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध प्रकरण के च्यवनतपोभोग वर्णन नामक पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

* * *

सोलहवाँ अध्याय

सुमतिरुवाच

एवं तया क्रीडमानःसर्वत्र धरणीतले। नाबुध्यत गतानब्दाञ्छतसङ्ख्यापरीमितान् ॥१॥
ततो ज्ञात्वाऽथ तद्विप्रःस्वकालपरिवर्तिनीम्। मनोरथैश्च सम्पूर्णां स्वस्य प्रियतमां वराम् ॥२॥
न्यवर्तताश्रमं श्रेष्ठं पयोष्णीतीरसंस्थितम्। निर्वैरजन्तुजनतासङ्कुलं मृगसेवितम्॥३॥
तत्रावसत्स सुतपाःशिष्यैर्वेदसमन्वितैः। सेविताङ्घ्रियुगो नित्यं तताप परमं तपः॥४॥
कदाचिदथ शर्यातिर्यष्टुमैच्छत देवताः । तदा च्यवनमनानेतुं प्रेषयामास सेवकान् ॥५॥
तैराहूतो द्विजवरस्तत्रागच्छन्महातपाः । सुकन्यया धर्मपत्न्या स्वाचारपरिनिष्ठया ॥६॥
आगतं तं मुनिवरं पत्न्या पुत्र्या महायशाः। ददर्श दुहितुःपार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम् ॥७॥
राजा दुहितरं प्राह कृतपादाभिवन्दनाम्। आशिषो न प्रयुञ्जनो नातिप्रीतमना इव ॥८॥
चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया प्रलम्भितो लोकनमस्कृतो मुनिः ।
या त्वं जराग्रस्तमसंमतं पतिं विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम् ॥९॥
कथं मतिस्तेऽवगताऽन्यथा सतां कुलप्रसूतेः कुलदूषणं त्विदम् ।
बिभर्षि जारं यदपत्रपाकुलं पितुःस्वभर्तुश्च नयस्यधस्तमाम् ॥१०॥
एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता। उवाच तात ! जामाता तवैव भृगुनन्दनः ॥११॥

सुकन्या और च्यवन का महाराज शर्याति के यज्ञ में जाना और शर्याति के द्वारा सुकन्या की भर्त्सना तथा महर्षि च्यवन की अश्विनी कुमारों को सोमपान कराकर इन्द्र का मान मर्दन करना

सुमति ने कहा— इस तरह सुकन्या के साथ पृथिवी पर रमण करते हुए महर्षि च्यवन के सौ वर्ष बीत गये और उनको समय का पता नहीं चला ॥१॥ उसके बाद समय का परिवर्तन करने वाली, परिपूर्ण मनोरथों वाली अपनी प्रियतमा को जानकर ॥२॥ महर्षि पयोष्णी नदी के तट पर स्थित अपने आश्रम में लौट गये। उस आश्रम में वैर रहित मनुष्य और पशु विद्यमान थे ॥३॥ वे वहाँ पर वेदज्ञ शिष्यों के साथ निवास कर रहे थे। अपने शिष्यों द्वारा सेवित वे श्रेष्ठ तपस्या किए ॥४॥ एक बार महाराज शर्याति ने देवताओं का यजन करना चाहा। उस समय च्यवन महर्षि को लाने के लिए शर्याति ने सेवकों को भेजा ॥५॥ उन सबों के द्वारा आहूत होकर महर्षि वहाँ गये। उनके साथ अपने आचार का पालन करने वाली उनकी पत्नी सुकन्या भी थी ॥६॥ अपनी पत्नी के साथ आये हुए मुनिवर को सुनकर राजा ने देखा की उनकी पुत्री के बगल में कोई सूर्य की कान्ति के समान कान्ति वाला, पुरुष विद्यमान है ॥७॥ अपने चरणों की वन्दना करने वाली पुत्री को आशीर्वाद न देकर उदास मन से राजा ने कहा ॥८॥ तुमने यह क्या किया ? तुमने संसार वंदित मुनि को धोखा दे दिया है क्योंकि तुमने अपने मन के प्रतिकूल जराग्रस्त पति को छोड़कर इस जार पति को अपना ली है ॥९॥ तुम सज्जनों के वंश में उत्पन्न हुयी थी। तुम्हारी पापमयी बुद्धि कैसे हो गयी ? यह तो वंश को दूषित करना है। तुम निर्लज्जता पूर्वक अपने पिता तथा अपने पति के वंश को नरक में डालने वाले जार को अपनाया है ॥१०॥ इस तरह से कहने वाले अपने पिता से पवित्र मुस्कानों वाली सुकन्या ने कहा— तात ! ये आपके जामाता च्यवन महर्षि ही हैं ॥११॥ इसके बाद उसने उन सारी बातों को बतलाया कि किस तरह से महर्षि को अवस्था और रूप की प्राप्ति

शशंस पित्रे तत्सर्वं वयोरूपाभिलम्भनम् । असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनःस्वेन तेजसा ॥१२॥
सोमेनायाजयद्वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत्। असोमपोरप्यश्वनोश्च्यवनःस्वेन तेजसा ॥१३॥
ग्रहं तु ग्राहयामास तपोबलसमन्वितः । वज्रं गृहीत्वा शक्रस्तु हन्तुं ब्राह्मणसत्तमम् ॥१४॥
अपङ्क्तिपावनौ देवौ कुर्वाणं पङ्क्तिगोचरौ ।
शक्रं वज्रधरं दृष्ट्वा मुनिः स्वहननोद्यतम् ॥१५॥
हुङ्कारमकरोद्धीमान्स्तम्भयामास तद्भुजम्। इन्द्रःस्तब्धभुजस्तत्र दृष्टः सर्वैश्च मानवैः ॥१६॥
कोपेन श्वसमानोऽहिर्यथा मन्त्रनियन्त्रितः। तुष्टाव स मुनिं शक्रःस्तब्धबाहुस्तपोनिधिम्॥१७॥
अश्विभ्यां भागदानं च कुर्वन्तं निर्भयान्तरम् ।
कथयामास भोःस्वामिन्दीयतामश्विनोर्वलिः ॥१८॥
मया न वार्यते तात ! क्षमस्वाघं महत्कृतम् ।
इत्युक्तःस मुनिःकोपं जहौ तूर्णं कृपानिधिः ॥१९॥
इन्द्रोमुक्तभुजोऽप्यासीत्तदानीं पुरुषर्षभ !। एतद्वीक्ष्य जनाःसर्वे कौतुकाविष्टमानसाः ॥२०॥
शशंसुर्ब्राह्मणबलं ते तु देवादि दुर्ल्लभम्। ततो राजा बहुधनं ब्राह्मणेभ्योऽददन्महान्॥२१॥
चक्रे चावभृथस्नानं यागान्ते शत्रुतापनः। त्वया पृष्टं यदाचक्ष्व च्यवनस्य महोदयम्॥२२॥
स मया कथितःसर्वस्तपोयोगसमन्वितः । नमस्कृत्य तपोमूर्तिमिमं प्राप्य जयाशिषः ॥२३॥
प्रेषय त्वं सपत्नीकं रामयज्ञे मनोरमे ॥२४॥

शेष उवाच

एवं तु कुर्वतोर्वार्तां हयःप्रापाश्रमं प्रति । विदधद्वायुवेगेन पृथ्वीं खुरविलक्षिताम्॥२५॥

हुयी । उसे सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी पुत्री का आलिङ्गन किए ॥१२॥ राजा ने सोमयाग किया और महर्षि च्यवन ने सोम के ग्रह (पात्र विशेष) को उठाया और सोमपान नहीं करने वाले अश्विनी कुमारों को अपने तेज के द्वारा ॥१३॥ तपस्या के बल से युक्त होने के कारण ग्रह को दे दिया । उस समय वज्र लेकर इन्द्र ब्राह्मणश्रेष्ठ च्यवन महर्षि को मारने के लिए तैयार हो गये ॥१४॥ क्योंकि वे अपङ्क्तिपावन अश्विनी कुमारों को पंक्ति पावन बना रहे थे । मुनि ने देखा कि उनको मारने के लिए इन्द्र ने वज्र उठा लिया है ॥१५॥ उन्होंने हुङ्कार करके इन्द्र की भुजाओं को स्तम्भित कर दिया । सभी लोगों ने देखा कि इन्द्र की भुजाएँ स्तम्भित हो गयी हैं॥१६॥ वे उसी तरह से क्रोध से श्वास ले रहे थे जिस तरह से मन्त्र से स्तम्भित सर्प लम्बी श्वास लेता है । भुजाओं के स्तब्ध हो जाने से इन्द्र ने तपोनिधि महर्षि की स्तुति की ॥१७॥ उस समय मुनि दोनों अश्विनी कुमारों को निर्भय होकर उनका भाग प्रदान कर रहे थे । इन्द्र ने कहा हे स्वामिन् ! आप अश्विनी कुमारों को पूजा प्रदान कीजिये ॥१८॥ हे तात ! मैं रोक नहीं रहा हूँ । आप मेरे महान् अपराध को क्षमा कर दें । इस तरह से कहने पर कृपासागर महर्षि ने शीघ्र ही अपने क्रोध का परित्याग कर दिया ॥१९॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! उस समय इन्द्र भी मुक्त भुजाओं वाले हो गये । यह देखकर कौतुकयुक्त मन वाले सभी लोग ॥२०॥ देवताओं को भी दुर्लभ ब्राह्मण के बल की प्रशंसा किए । उसके बाद राजा ने ब्राह्मणों को बहुत अधिक धन प्रदान किया ॥२१॥ शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले राजा शर्याति ने याग के अन्त में अवभृथ स्नान किया । आपने जो च्यवन महर्षि के वृत्तान्त को पूछा था उसे मैंने बतला दिया । वे महर्षि तपोयोग से युक्त हैं । इन महर्षि को नमस्कार करके और उनसे

दूर्वाङ्कुरान्मुखाग्रेण चरंस्तत्र महाश्रमे । मुनयो यावदादाय दर्भान्स्नातुं गता नदीम्॥२६॥
शत्रुघ्नःशत्रुसेनायास्तापनःशूरसंमतः । तावत्प्राप मुनेर्वासं च्यवनस्यातिशोभितम् ॥२७॥
गत्वा तदाश्रमे वीरो ददर्श च्यवनं मुनिम् । सुकन्यायाःसमीपस्थं तपोमूर्तिमिव स्थितम् ॥२८॥
ववन्दे चरणौ तस्य स्वाभिधां समुदाहरन् । शत्रुघ्नोऽहं रघुपतेर्भ्राता वाहस्य पालकः ॥२९॥
नमस्करोमि युष्मभ्यं महापापोपशान्तये । इति वाक्यं समाकर्ण्य जगाद मुनिसत्तमः ॥३०॥
शत्रुघ्न ! तव कल्याणं भूयान्नरवरर्षभ ! । यज्ञं पालयमानस्य कीर्तिस्ते विपुला भवेत्॥३१॥
चित्रं पश्यत भो विप्रा ! रामोऽपि मखकारकः ।
यन्नामस्मरणादीनि कुर्वन्ति पापनाशनम् ॥३२॥
महापातकसंयुक्ताःपरदाररता नराः । यन्नामस्मरणोद्युक्ता मुक्ता यान्ति परां गतिम्॥३३॥
पादपद्मसमुत्थेन रेणुनाग्रावमूर्तिभृत् । तत्क्षणाद्गौतमार्धाङ्गी जाता मोहनरूपधृत्॥३४॥
राघवीयस्वरूपस्य ध्यानेन प्रेमनिर्भरा। सर्वपातकराशिं सा दग्ध्वा प्राप्ता सुरूपताम् ॥३५॥
दैत्या यस्य मनोहारि रूपं प्रघनमण्डले । पश्यन्तःप्रापुरेतस्य रूपं विकृतिवर्जितम्॥३६॥
योगिनो ध्याननिष्ठा ये यं ध्यात्वा योगमास्थिताः ।
संसारभयनिर्मुक्ताः प्रयाताः परमं पदम् ॥३७॥
धन्योऽहमद्य रामस्य मुखं द्रक्ष्यामि शोभनम् ।
पयोजदलनेत्रान्तं सुनसं सुभ्रुसून्नतम् ॥३८॥

विजय का आशीर्वाद प्राप्त करके आप सपत्नीक महर्षि को श्रीरामजी के मनोहर यज्ञ में प्रेषित करें ॥२२-२४॥ इस तरह से उन दोनों (सुमति और शत्रुघ्नजी) के वार्ता करते समय ही वायु के समान वेग के कारण पृथिवी को चिह्नित करता हुआ अश्व आश्रम में पहुँच गया ॥२५॥ वह उस आश्रम में अपने मुख के अग्रभाग से दुर्वा को चर रहा था । जब मुनि गण दर्भ (कुश लाकर) नदी में स्नान करने के लिए गये थे ॥२६॥ उसी समय शत्रु की सेना को संतप्त करने वाले वीर शत्रुघ्नजी महर्षि च्यवन के सुन्दर निवास स्थान में आ गये ॥२७॥ वीर शत्रुघ्न उस आश्रम में जाकर च्यवन महर्षि का दर्शन किए । उस समय महर्षि सुकन्या के सन्निकट तपोमूर्ति के समान बैठे थे ॥२८॥ अपने नाम का उच्चारण करते हुए शत्रुघ्नजी ने मुनि के चरणों की वन्दना की और वे कहे कि मैं रघुपति का भाई तथा अश्व की रक्षा करने वाला शत्रुघ्न हूँ ॥२९॥ अपने महापाप की शान्ति के लिए आपलोगों के चरणों में नमस्कार करता हूँ । इस वाक्य को सुनकर मुनिश्रेष्ठ ने कहा ॥३०॥ हे श्रेष्ठ मनुष्यों में श्रेष्ठ शत्रुघ्न! आपका कल्याण हो, यज्ञ की रक्षा करने वाले आपकी अतुलनीय कीर्ति हो ॥३१॥ हे ब्राह्मणों ! आप लोग इस आश्चर्य को देखें कि श्रीराम भी यज्ञ कर रहे हैं । उनके नाम का स्मरण करने से ही पापों का नाश हो जाता है॥३२॥ महापातक से युक्त दूसरे की पत्नी में आसक्त रहने वाले भी मनुष्य, जिनके नाम का स्मरण करके मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं ॥३३॥ जिनके चरण कमल से निकली धूलि से स्पर्श होने से गौतम महर्षि की पत्नी क्षण भर में ही सुन्दर रूप को प्राप्त कर ली ॥३४॥ प्रेम पूर्वक श्रीरामजी के स्वरूप का ध्यान करने के कारण वह अपनी सम्पूर्ण पाप राशि को भस्म करके सुन्दर रूप को प्राप्त कर ली ॥३५॥ युद्धस्थल में जिनके मनोहर रूप का दर्शन करने वाले दैत्य भी विकार रहित श्रीराम के ही रूप को प्राप्त कर लिए ॥३६॥ ध्यान करने वाले योगिजन योग में स्थित होकर उनका ध्यान करके संसार के भय से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त कर

सा जिह्वा रघुनाथस्य नामकीर्तनमादरात् । करोति विपरीताया फणिनो रसनासमा ॥३९॥
अद्य प्राप्तं तपःपुण्यमद्य पूर्णा मनोरथाः । यद्द्रक्ष्ये रामचन्द्रस्य मुखं ब्रह्मादि दुर्ल्लभम् ॥४०॥
तत्पादरेणुना स्वाङ्गं पवित्रं विदधाम्यहम् । विचित्रतरवार्ताभिः पावये रसनां स्वकाम् ॥४१॥
इत्यादि रामचरणस्मरणप्रबुद्धप्रेमव्रजप्रसृतगद्गदवागुदश्रुः ।
श्रीरामचन्द्र ! रघुपुङ्गव ! धर्ममूर्ते ! भक्तानुकम्पक ! समुद्धर संसृतेर्माम् ॥४२॥
जल्पन्नश्रुकलापूर्णो मुनीनां पुरतस्तदा । नाज्ञासीत्तत्र पारक्यं निजध्यानेन संस्थितः ॥४३॥
शत्रुघ्नस्तं मुनिं प्राह स्वामिन्नो मखसत्तमः । क्रियतां भवतापादरजसा सुपवित्रितः ॥४४॥
महद्भाग्यं रघुपतेर्यद्युष्मन्मानसान्तरे। तिष्ठत्यसौ महाबाहुःसर्वलोकसुपूजितः॥४५॥
इत्युक्तःसपरीवारःसर्वाग्निपरिसंवृतः । जगाम च्यवनस्तत्र प्रमोदह्रदसम्प्लुतः॥४६॥
हनूमांस्तं पदायान्तं रामभक्तमवेक्ष्य ह । शत्रुघ्नं निजगादासौ वचो विनयसंयुतः ॥४७॥
स्वामिन्कथयसि त्वं चेन्महापुरुषसुन्दरम्। रामभक्तं मुनिवरं नयामि स्वपुरीमहम्॥४८॥
इति श्रुत्वा महद्वाक्यं कपिवीरस्य शत्रुहा। आदिदेश हनूमन्तं गच्छ प्रापय तं मुनिम्॥४९॥
हनूमांस्तं मुनिं स्वीये पृष्ठ आरोप्य वेगवान् ।
सकुटुम्बं निनायाशु वायुःख इव सर्वगः ॥५०॥
आगतं तं मुनिं दृष्ट्वा रामो मतिमतांवरः । अर्घ्यं पाद्यादिकं चक्रे प्रीतःप्रणयविह्वलः॥५१॥

लिए॥३७॥ मैं धन्य हूँ कि आज मैं श्रीरामचन्द्रजी के कमल दल के समान नेत्र के अन्त में उन्नत नासिका तथा सुन्दर भौहों से युक्त मुख का दर्शन करूँगा ॥३८॥ वही जिह्वा सफल है जो रघुनाथजी के नाम का आदर पूर्वक कीर्तन करती है, इससे भिन्न प्रकार की जिह्वा तो साँप की जिह्वा के समान है ॥३९॥ आज मुझको अपनी तपस्या का पुण्य प्राप्त हो गया तथा आज मेरे मनोरथ पूर्ण हो गये, क्योकि आज मैं ब्रह्मा आदि देवताओं के लिए दुर्लभ श्रीरामचन्द्रजी के मुख का दर्शन करूँगा ॥४०॥ उनके ही चरण कमलों की धूलि से मैं अपने शरीर को पवित्र बना लूँगा । उनके साथ विचित्र वार्ताओं को करने के कारण मै अपनी जीभ को पवित्र बनाऊँगा ॥४१॥ इस तरह से श्रीरामजी के चरणों का स्मरण करने से जिनका प्रेम सागर उद्रिक्त हो गया था उनकी वाणी गद्गद हो गयी थी और आँखों से आँसू प्रवाहित हो रहा था, वे मुनि कह रहे थे; हे श्रीरामचन्द्र ! रघुपुङ्गव ! हे धर्ममूर्ते ! हे भक्तों पर कृपा करने वाले ! आप मेरा संसार से उद्धार करें ॥४२॥ उस समय मुनियों के सामने ही उनके आँखों में आँसू भर गया था, अपने ध्यान में स्थित उनको अपने से भिन्न कुछ प्रतीत ही नहीं हो रहा था ॥४३॥ शत्रुघ्नजी ने उन मुनि से कहा हे स्वामिन् ! आप अपने चरण धूलि से हमलोगों के यज्ञ को पवित्र बनाये ॥४४॥ श्रीरामजी का यह बहुत बड़ा भाग्य है कि वे आपके मन में निवास करते हैं । वे महाबाहु सभी लोकों में पूजित हैं ॥४५॥ इस तरह से कहने पर सम्पूर्ण अग्नियों तथा परिवार के साथ आनन्द सरोवर मे स्नान करके महर्षि च्यवन यज्ञ में चले गये ॥४६॥ श्रीहनुमान्जी उन राम भक्त को पैदल जाते हुए देखकर विनय पूर्वक शत्रुघ्नजी से कहे॥४७॥ हे स्वामिन् ! यदि आप आज्ञा दें तो मैं महापुरुषों में सुन्दर रामभक्त मुनिवर को आपकी नगरी में पहुँचा दूँ ॥४८॥ हनुमान्जी के इस महान् वाक्य को सुनकर शत्रुघ्नजी ने हनुमान्जी को आदेश दिया कि जाओ मुनि को पहुँचा दो ॥४९॥ वेग सम्पन्न हनुमान् जी सपरिवार उन मुनि को अपनी पीठ पर बैठाकर शीघ्र ही आकाश में सर्वत्र विद्यमान वायु के समान अयोध्या पहुँचा दिए ॥५०॥ आये हुए उन मुनि को देखकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ श्रीरामजी

धन्योऽस्मि मुनिवर्यस्य दर्शनेन तवाधुना । पवित्रितो मखे मेऽद्य सर्वसम्भारसम्भृतः ॥५२॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य च्यवनो मुनिसत्तमः। उवाच प्रेमनिर्भिन्न पुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः ॥५३॥
स्वामिन्ब्रह्मण्यदेवस्य तव वाडवपूजनम् । युक्तमेव महाराज ! धर्ममार्गं प्ररक्षितुः ॥५४॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
च्यवनाश्रमे हयगमनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

* * *

सत्रहवाँ अध्याय

शेष उवाच

शत्रुघ्नश्च्यवनस्याथ दृष्टाऽचिन्त्यं तपोबलम् । प्रशशंस तपो ब्राह्मं सर्वलोकैकवन्दितम् ॥१॥
अहो पश्यत योगस्य सिद्धिं ब्राह्मणसत्तमे। यःक्षणादेव दुष्प्रापं तद्विमानमचीकरत् ॥२॥
क्वभोगसिद्धिर्महती मुनीनममलात्मनाम् । क्व तपो बलहीनानां भोगेच्छामनुजात्मनाम्॥३॥
इति स्वगतमाशंसञ्छत्रुघ्नश्च्यवनाश्रमे । क्षणं स्थित्वा जलं पीत्वा सुखसम्भोगमाप्तवान्॥४॥
हयस्तस्याःपयोष्ण्याख्यनद्याः पुण्यजलात्मनः ।
पयः पीत्वा ययौ मार्गे वायुवेगगतिर्महान् ॥५॥

ने प्रेम विह्वल होकर महर्षि को अर्घ्य तथा पाद्य आदि प्रदान किया ॥५१॥ उन्होंने कहा— आज मुनिवर का दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया हूँ और सम्पूर्ण सामग्री से युक्त मेरा यज्ञ पवित्र हो गया है ॥५२॥ इस वाक्य को सुनकर मुनियों में श्रेष्ठ महर्षि च्यवन को प्रेम से परिपूर्ण होने के कारण रोमाञ्च हो गया था और उन्होंने कहा॥५३॥ हे स्वामिन् ! आप ब्राह्मण्य देव हैं, धर्म की रक्षा करने वाले; आपके द्वारा ब्राह्मण का पूजन उचित ही है ॥५४॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में च्यवनाश्रम में अश्व का गमन वर्णन नामक सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।

* * *

शत्रुघ्नजी का अश्व के साथ बाजीपुर में जाने का वर्णन और काञ्ची के राजा रत्नग्रवी का उपाख्यान

शेषजी ने कहा— महर्षि च्यवन के अचिन्त्य तपोवल को देखकर शत्रुघ्नजी ने सम्पूर्ण लोकों में पूजित ब्राह्म तप की प्रशंसा की ॥१॥ अहो ब्राह्मण श्रेष्ठ च्यवन महर्षि के योग की सिद्धि को देखों कि उन्होंने क्षण भर में दुष्प्राप्य विमान की रचना कर दी ॥२॥ अमलात्मा मुनियों की कहाँ तो भोगों की सिद्धि और कहाँ बलहीन मनुष्यों का तप ॥३॥ इसतरह से अपने मन में प्रशंसा करते हुए शत्रुघ्नजी च्यवनाश्रम में क्षणभर ठहरकर तथा जल पीकर सुख की प्राप्ति का अनुभव किए ॥४॥ अश्व भी उस पयोष्णी नदी के जल का पान करके वायु के

योधास्तन्निर्गमं दृष्ट्वा पृष्ठतोऽनुययुस्तदा । हस्तिभिःपत्तिभिःकेचिद्रथैःकेचन वाजिभिः ॥६॥
शत्रुघ्नोऽमात्यवर्येण सुमत्याख्येन संयुतः । पृष्ठतोऽनुजगामाशु रथेन हयशोभिना ॥७॥
गच्छन्वाजीपुरं प्राप्तो विमलाख्यस्य भूपतेः। रत्नतटाख्यं च जनैर्हृष्टपुष्टैःसमाकुलम् ॥८॥
स सेवकादुपश्रुत्य रघुनाथहयोत्तमम् । पुरोऽन्तिके हि सम्प्राप्तं सर्वयोधसमन्वितम्॥९॥
तदा गजानां सप्तत्या चन्द्रवर्णसमानया । अश्वानामयुतैः सार्धं रथानां काञ्चनत्विषाम्॥१०॥
सहस्रेण च संयुक्तः शत्रुघ्नं प्रति जग्मिवान् ।
शत्रुघ्नं स नमस्कृत्य सर्वान्प्राप्तन्महारथान् ॥११॥
वसुकोशं धनंसर्वं राज्यं तस्मै निवेद्य च। किंकरोमीति राजा तं जगाद पुरतःस्थितः॥१२॥
राजापि तं स्वीयपदे प्रणम्रं दोर्भ्यां दृढं सम्परिषस्वजे महान् ।
जगाम सार्कं तनये स्वराज्यं निक्षिप्य सर्वं बहुधन्विभिर्वृतः ॥१३॥
रामचन्द्राभिधां श्रुत्वा सर्वे श्रुतिमनोहराम्। सर्वे प्रणम्य तं वाहं ददुर्वसु महाधनम् ॥१४॥
राजानं पूजयित्वा तु शत्रुघ्नःपरमया मुदा । सेनया सहितोऽगच्छद्वाजिनःपृष्ठतस्तदा ॥१५॥
एवं सगच्छंस्तन्मार्गे पर्वताग्र्यं ददर्श ह। स्फाटिकैःकानकै रुप्यै राजितं प्रस्थराजिभिः ॥१६॥
जलनिर्झरसंह्लादं नानाधातुकभूतलम् । गैरिकादिकसद्यतुलाक्षारङ्गविराजितम् ॥१७॥
यत्र सिद्धाङ्गनाः सिद्धैसङ्क्रीडन्तेऽकुतोभयाः ।
गन्धर्वाप्सरसो नागा यत्र क्रीडन्ति लीलया ॥१८॥
गङ्गातरङ्गसंस्पर्श शीतवायुनिषेवितम् । वीणारणद्धं सशुकक्वणसुन्दरशोभितम् ॥१९॥

वेग से मार्ग पर चलने लगा ॥५॥ घोड़े को निकलते हुए देखकर योद्धागण उसका अनुसरण करने लगे कुछ लोग हाथियों से, कुछ पैदल, कुछ लोग रथों से तथा कुछ लोग घोड़ों से उसका अनुगमन किए ॥६॥ शत्रुघ्नजी सुमति नामक आमात्य के साथ सुन्दर घोड़े से युक्त रथ के द्वारा उसके पीछे चले ॥७॥ चलते हुए वे राजा विमल की नगरी वाजीपुर में आये। वह नगर रत्ना नदी के तट पर बसा हुआ तथा हृष्ट पुष्ट लोगों से परिपूर्ण था ॥८॥ राजा अपने सेवक से सभी योद्धाओं के साथ नगर के सन्निकट में आये हुए अश्व को सुनकर चन्द्रमा के समान कान्ति वाले सत्तर हाथियों तथा दश हजार अश्वों के साथ, सुवर्ण की कान्ति से युक्त एक हजार रथों से युक्त होकर शत्रुघ्नजी के पास गये। सभी आये महारथों तथा शत्रुघ्नजी को नमस्कार करके वे ॥९-११॥ अपना खजाना तथा राज्य उनको निवेदित करके उनसे पूछे कि मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ?॥१२॥ शत्रुघ्नजी भी अपने चरणों पर गिरे हुए राजा को अपने दोनों हाथों से पकड़कर आलिङ्गन किए। राजा भी अपने पुत्र को राज्य पर बैठाकर बहुत से धनुधारियों के साथ उनके साथ चल दिए गये ॥१३॥ सभी राजा सुनने में मनोहर श्रीरामचन्द्रजी का नाम सुनकर उस घोड़ें को प्रणाम किये और बहुत अधिक धन सम्पत्ति प्रदान किये ॥१४॥ शत्रुघ्नजी भी उस राजा की अत्यन्त आनन्द के साथ पूजा करके अपनी सेना के साथ घोड़े के पीछे चल पड़े ॥१५॥ इस तरह से जाते हुए उन्होंने सामने एक श्रेष्ठ पर्वत को देखा। उस पर्वत के शिखर स्फटिक तथा सुवर्ण से सुशोभित थे ॥१६॥ वह जल के झरने की ध्वनि से युक्त था। वहाँ की भूमि अनेक प्रकार के धातुओं से मण्डित थी। वह गेरु आदि धातुओं तथा लाक्षा आदि के रङ्ग से सुशोभित था ॥१७॥ वहाँ सिद्धों की नारियाँ सिद्धों के साथ निर्भय होकर क्रीड़ा करती थीं और गन्धर्व, अप्सराये तथा नाग भी लीला पूर्वक क्रीड़ा करते थे ॥१८॥ गङ्गा की

पर्वतं वीक्ष्य शत्रुघ्न उवाच सुमतिं त्विदम्। तद्दर्शनसमुद्भूतविस्मयाविष्टमानसः ॥२०॥
कोऽयं महागिरिवरो विस्मापयति मे मनः। महारजतसत्प्रस्थो मार्गे राजति मेऽद्भुतः ॥२१॥
अत्र किं देवतावासो देवानां क्रीडनस्थलम्। यदेतन्मनसः क्षोभं करोति श्रीसमुच्चयैः ॥२२॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य जगाद सुमतिस्तदा। वक्ष्यमाणगुणागाररामचन्द्रपदाब्जधीः ॥२३॥
नीलोऽयं पर्वतो राजन्पुरतो भाति भूमिप। मनोहरैर्महाशृङ्गैः स्फाटिकाग्रैः समन्ततः ॥२४॥
एनं पश्यन्ति नो पापाः परदाररताः नराः। विष्णोर्गुणगणान्येवै न मन्यन्ते नराधमाः ॥२५॥
श्रुतिस्मृतिसमुत्थं ये धर्मसद्भिः सुसाधितम्। न मन्यन्ते स्वबुद्धिस्थहेतुवादविचारणाः ॥२६॥
नीलीविक्रयकर्तारो लाक्षाविक्रयकारकाः। यो ब्राह्मणो घृतादीनि विक्रीणाति सुरापकः ॥२७॥
कन्यां रूपेण सम्पन्नां न दद्यात्कुलशीलिने। विक्रीणाति द्रव्यलोभात्पिता पापेन मोहितः ॥२८॥
पत्नीं दूषयते यस्तु कुलशीलवतीं नरः। स्वयमेवात्ति मधुरं बन्धुभ्याो न ददाति यः ॥२९॥
भोजने ब्राह्मणार्थे च पाकभेदं करोति यः। कृसरं पायसं वापि निजार्थे पाचयेत्कुधीः ॥३०॥
अतिथीनवमन्यन्ते सूर्योढान्सुक्षुधार्दितान्। अन्तरिक्षभुजो ये च ये च विश्वासघातकाः ॥३१॥
न पश्यन्ति महाराज ! रघुनाथपराङ्मुखाः। असौ पुण्यो गिरिवरः पुरुषेत्तमशोभितः ॥३२॥
पवित्रयति सर्वान्नो दर्शनेन मनोहरः। अत्र तिष्ठति देवानां मुकुटैरर्चिताङ्घ्रिकः ॥३३॥
पुण्यवद्भिर्दर्शनार्हः पुण्यदः पुरुषोत्तमः। श्रुतयोनेति नेतीति ब्रुवाणा न विदन्ति यम्॥३४॥

लहरियो के संसर्ग से शीतल वायु से युक्त वह पर्वत वीणा की ध्वनि तथा शुककण से सुन्दर शोभा युक्त था॥१९॥ उस पर्वत को देखकर शत्रुघ्नजी का मन आश्चर्य युक्त हो गया था उस पर्वत को देखकर शत्रुघ्नजी ने सुमति से कहा ॥२०॥ यह कौन सा श्रेष्ठ पर्वत है ? जो मेरे मन को आश्चर्यित कर रहा है ? इसके प्रस्तर महारजत के समान हैं। यह अद्भुत पर्वत मेरे मार्ग में सुशोभित हो रहा है ॥२१॥ यह किसी देवता का निवास स्थल है क्या ? या देवताओं का क्रीड़ास्थल है ? यह अपने आश्चर्य समूह से मेरे मन को क्षुब्ध कर रहा है॥२२॥ इस वाक्य को सुनकर जिसके गुण आगे बतलाये जायेंगे उस श्रीरामचन्द्र के चरण कमल में बुद्धि वाला सुमति ने कहा ॥२३॥ हे राजन् ! सामने दीखने वाला नील पर्वत है। इसके सारे शिखर स्फटिक मणि के होने के कारण मनोहर हैं ॥२४॥ इस पर्वत को पापी, दूसरे की स्त्री में आसक्त रहने वाले तथा भगवान् विष्णु के गुण समूह को नहीं मानने वाले नराधाम नहीं देख पाते हैं ॥२५॥ श्रुतियों तथा स्मृतियों में वर्णित धर्म को नहीं मानने वाले अपने बुद्धिस्थ हेतुवाद का विचरण करते हैं, नील बेंचने वाले, लाह बेचने वाले, सुरापक (मदिरा बनाने वाले) एवं घी आदि बेंचने वाले ब्राह्मण, जो कन्यारूपी धन से सम्पन्न होकर भी उसे कुलवान् तथा शीलवान् को नही देते हैं, जो पिता द्रव्य के लोभ से कन्या को बेचनें का काम करता है, पाप से मोहित जीव ॥२६-२८॥ कुलशील सम्पन्न पत्नी को दूषित करने वाले तथा जो अपने बान्धवों को दिए बिना ही अच्छी वस्तुओं को स्वयं खा लेता है ॥२९॥ जो ब्राह्मण के भोजन में पाकभेद करता है, अथवा जो अपने खाने के लिए कृसर या पायस (खीर) बनाता है वह दुष्ट बुद्धिवाला व्यक्ति, दोपहर में आये हुए भूखे अतिथि का अपमान करने वाले, अन्तरिक्ष में भोजन करने वाले तथा विश्वासघात करने वाले ॥३०-३१॥ तथा भगवान् श्रीराम से विपरीत रहने वाले इस पर्वत को नहीं देख पाते हैं। यह पवित्र पर्वत पुरुषोत्तम भगवान् से सुशोभित है ॥३२॥ यह मनोहर पर्वत दर्शन देकर हम सबों को पवित्र बना रहा है। यहाँ पर देवताओं के मुकुटों द्वारा जिनके चरणों की पूजा होती है ॥३३॥

यत्पादरज इन्द्रादि देवैर्मृग्यं सुदुर्ल्लभम्। वेदान्तादिभिरन्यूनैर्वाक्यैर्विन्दन्ति यं बुधाः ॥३५॥
सोऽत्र श्रीमान्नीलशैले बसते पुरुषोत्तमः। आरूह्य तं नमस्कृत्य सम्पूज्य सुकृतादिना ॥३६॥
नैवेद्यं भक्षयित्वा वै भूप ! भूयाच्चतुर्भुजः। अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥३७॥
तं शृणुष्व महाराज ! सर्वाश्चर्यसमन्वितम् । रत्नग्रीवस्य नृपतेर्यद्वृत्तं सकुटुम्बिनः ॥३८॥
चतुर्भुजादिकं प्राप्तं देवदानवदुर्लभम्। आसीत्काञ्ची महाराज पुरी लोकेषु विश्रुता ॥३९॥
महाजनपरीवारसमृद्धबलवाहना । यस्यां वसन्ति विप्राग्र्याःषट्कर्मनिरता भृशम् ॥४०॥
सर्वभूतहिते युक्ता रामभक्तिषु लालसाः। क्षत्रिया रणकर्तारः सङ्ग्रामेऽप्यपलायिनः ॥४१॥
परदारपरद्रव्यपरद्रोहपराङ्मुखाः । वैश्याः कुसीद कृष्यादि वाणिज्यशुभवृत्तयः ॥४२॥
कुर्वन्ति रघुनाथस्य पदाम्भोजे रतिं सदा। शूद्रा ब्राह्मण सेवाभिर्गत रात्रिदिनान्तराः ॥४३॥
कुर्वन्ति कथनं राम रामेति रसानाग्रतः। प्राकृताःकेपि नो पापं कुर्वन्ति मनसाऽत्र वै ॥४४॥
दानं दया दमःसत्यं तत्र तिष्ठन्ति नित्यशः। वदते न पराबाधं वाक्यं कोऽपि नरोऽनघः ॥४५॥
न पारक्ये धने लोभं कुर्वन्ति नहि पातकम् ।
एवं प्रजा महाराज रत्नग्रीवेण पाल्यते ॥४६॥
षष्ठांशं तत्र गृह्णाति नान्यं लोभविवर्जितः। एवं पालयमानस्य प्रजाधर्मेण भूपतेः ॥४७॥
गतानि बहुवर्षाणि सर्वभोगविलासिनः। विशालाक्षीं महाराज एकदा ह्यूचिवानिदम् ॥४८॥
पतिव्रतां धर्मपत्नीं पतिव्रतपरायणाम् । पुत्राजाता विशालाक्षि प्रजारक्षा धुरन्धराः ॥४९॥

इस प्रकार के पुण्यवान् पुरुषों से ही देखे जाने योग्य पुण्य प्रदाता भगवान् पुरुषोत्तम हैं जिनको नेति-नेति कहकर श्रुतियाँ पूर्णरूप से नहीं जान पाती है ॥३४॥ जिनके चरणों की दुर्लभ धूलि को इन्द्र आदि देवता खोजा करते हैं, जिनको विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण वेदान्त वाक्यों द्वारा जानते हैं ॥३५॥ वे श्रीभगवान् पुरुषोत्तम् इस नील पर्वत पर निवास करते हैं। इसके ऊपर चढ़कर तथा अपने सुकर्मों द्वारा उनकी अच्छी तरह से पूजा करके तथा उनका नैवेद्य खाकर मनुष्य चतुर्भुज रूप वाला हो जाता है। इसके विषय में लोग पुराना इतिहास बतलाते है ॥३६-३७॥ हे महाराज ! उस आश्चर्यमय इतिहास को आप सुनें। वह सपरिवार राजा रत्नग्रीव का इतिहास है ॥३८॥ उसने देवताओं एवं दानवों के लिए दुर्लभ चतुर्भुजत्व को प्राप्त किया। हे महाराज ! लोकविख्यात काञ्ची नामक नगरी थी ॥३९॥ वह नगरी सेना और वाहन से समृद्ध थी। उसमें षट्कर्म करने वाले वहुत से ब्राह्मण रहते थे ॥४०॥ वे सभी जीवों का कल्याण करने वाले तथा रामजी की भक्ति की कामना वाले थे। उस नगर के क्षत्रिय युद्ध करने वाले तथा युद्ध से नहीं भागने वाले थे ॥४१॥ वे दूसरे की पत्नी, दूसरे के द्रव्य तथा दूसरे से द्रोह नहीं करते थे। वैश्य कुसीद (सूद पर ऋण देना) कृषि, तथा वाणिज्य आदि करते थे ॥४२॥ वे सदा श्रीरामजी के चरण कमलों में प्रेम रखते थे। शूद्र ब्राह्मणो की सेवा करने में ही दिन-रात बिताते थे ॥४३॥ वे अपनी जीभ से निरन्तर राम-राम का उच्चारण करते रहते थे। वहाँ की कोई सामान्य प्रजा भी मन से भी पाप नहीं करती थी॥४४॥ दान, दया, दम एवं सत्य का वहाँ सदैव निवास था। कोई भी दूसरों को दुख देने वाली वाणी नहीं बोलता था। सबलोग निष्पाप थे ॥४५॥ वे दूसरे के धन का लोभ रूपी पाप नहीं करते थे। इस प्रकार की प्रजा का पालन राजा रत्नग्रीव करते थे ॥४६॥ वे प्रजा के धन का केवल छठा अंश ही लेते थे अन्य कुछ नहीं लेते थे। वे राजा लोभ से रहित थे। इस तरह से धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करते हुए राजा को ॥४७॥ भोग विलास

परीवारो महान्मह्यं वर्तते विगतज्वरः । हस्तिनो मम शैलाभा वाजिनःपवनोपमाः ॥५०॥
रथाश्च सुहयैर्युक्ता वर्तन्ते मम नित्यशः । महाविष्णुप्रसादेन किञ्चिन्न्यूनं ममास्ति न ॥५१॥
एवं मनोरथस्त्वेकस्तिष्ठते मानसे मम। परं तीर्थं मया नाद्य कृतं परमशोभने॥५२॥
गर्भवासविरामाय क्षमं गोविन्दशोभितम्। वृद्धो जातोऽस्म्यहं तावद्वलीपलितदेहवान्॥५३॥
करिष्यामि मनोहारि तीर्थसेवनमादृतः । यो नरो जन्मपर्यन्तं स्वोदरस्य प्रपूरकः ॥५४॥
न करोति हरेःपूजां स नरो गोवृषःस्मृतः । तस्माद्गच्छामि भो भद्रे ! तीर्थयात्रां प्रति प्रिये॥५५॥
सकुटुम्बः सुते न्यस्य धुरं राज्यस्य निर्भृताम् ।
इति व्यवस्य सन्ध्यायां हरिं ध्यायन्निशान्तरे ॥५६॥
अद्राक्षीत्स्वप्नमप्येकं ब्राह्मणं तापसं वरम् ।
प्रातरुथाय राजाऽसौ कृत्वा सन्ध्यादिकाःक्रियाः ॥५७॥
सभां मन्त्रिजनैःसार्द्धं सुखमासेदिवान्महान् । तावद्विप्रं ददर्शाथ तापसं कृशदेहिनम् ॥५८॥
जटावल्कलकौपीनधारिणं दण्डपाणिनम् । अनेकतीर्थसेवाभिः कृतपुण्यकलेवरम् ॥५९॥
राजा तं वीक्ष्य शिरसा प्रणनाम महाभुजः। अर्घ्यपाद्यादिकं चक्रे प्रहृष्टात्मा महीपतिः॥६०॥
सुखोपविष्टं विश्रान्तं पप्रच्छ विदितं द्विजम्। स्वामिंस्त्वद्दर्शनान्मेऽद्य गतं देहस्य पातकम् ॥६१॥
महान्तःकृपणान्पातुं यान्ति तद्गेहमादरात् । तस्मात्कथय भो विप्र ! वृद्धस्य मम सम्प्रति॥६२॥
को देवो गर्भनाशाय किं तीर्थं च क्षमं भवेत् ।
यूयं सर्वगताःश्रेष्ठाःसमाधिध्यानतत्पराः ॥६३॥

करते हुए बहुत वर्ष बीत गये । एक बार महाराज ने अपनी पत्नी विशालाक्षी से कहा ॥४६॥ राजा की पत्नी पतिव्रता थी और पतिव्रत को करती थी । राजा ने कहा— विशालाक्षि अब पुत्र प्रजा की रक्षा करने में समर्थ हो गये हैं ॥४८-४९॥ मेरा निश्चिन्त एवं विशाल परिवार हो गया है । मेरे हाथी पर्वत के समान हैं और घोड़े वायु के समान वेग वाले हैं । मेरे रथ सुन्दर घोड़ों से युक्त हैं । भगवान् विष्णु की कृपा से मुझे कोई कमी नहीं है ॥५०-५१॥ हे सुन्दरि ! मेरे मन में एक ही मनोरथ है कि मैंने कोई तीर्थ नहीं किया ॥५२॥ पुनः गर्भ में निवास निवृत्त कर देने में समर्थ गोविन्द की शरणागति है । मैं वृद्ध हो गया हूँ, देह में झुर्री पड़ गयी है और बाल पक गये हैं।॥५३॥ अब मैं आदर पूर्वक तीर्थों की सेवा करूँगा जो मनुष्य जीवन भर अपना पेट ही भरने में लगा रहता हैं ॥५४॥ श्रीहरि की पूजा नहीं करता है वह सबसे बड़ा बैल है, अतएव हे प्रिये ! मैं तीर्थ यात्रा करने के लिए जा रहा हूँ ॥५५॥ परिवार सहित राज्य का पूरा भार पुत्र को समर्पित करके, तीर्थ यात्रा कर रहा हूँ । इस तरह से सायंकाल निश्चित करके रात्रि में श्रीहरि का ध्यान करते हुए ॥५६॥ राजा ने स्वप्न में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण को देखा। प्रातःकाल जगकर राजा सन्ध्या आदि क्रियाओं को करके ॥५७॥ अपने मन्त्रियों के साथ सभा में आये । उसी समय राजा ने दुर्बल शरीर वाले तपस्वी ब्राह्मण को देखा ॥५८॥ वह ब्राह्मण, जटा धारण किये था वल्कल का कौपीन धारण किए था । हाथ में दण्ड लिए था, अनेक तीर्थों की सेवा करने के कारण उसका शरीर पवित्र हो गया था ॥५९॥ उस ब्राह्मण को देखकर महाभुज राजा ने उस ब्राह्मण को प्रणाम किया । राजा ने प्रसन्न मन से ब्राह्मण को अर्घ्य, पाद्य इत्यादि निवेदित किया ॥६०॥ सुख पूर्वक बैठकर विश्राम करने के बाद उस ज्ञात ब्राह्मण से राजा ने कहा— हे स्वामिन् ! आपके दर्शन से आज मेरे शरीर के पाप विनष्ट हो गये ॥६१॥ महापुरुष पापियों

सर्वतीर्थावगाहेन कृतपुण्यात्मनोऽमलाः । यथावच्छृण्वते मह्यं श्रद्दधानाय विस्तरात् ॥६४॥
कथयस्व प्रसादेन सर्वतीर्थविचक्षण ! ॥६५॥

ब्राह्मण उवाच

शृणु राजेन्द्र ! वक्ष्यामि यत्पृष्टं तीर्थसेवनम् ।
कस्य देवस्य कृपया गर्भनिर्वारणं भवेत् ॥६६॥
सेव्यःश्रीरामचन्द्रोऽसौ संसारज्वरनाशकः । पूज्यःस एव भगवान्पुरुषोत्तमसंज्ञकः ॥६७॥
नानापुर्यो मया दृष्टाःसर्वपापक्षयङ्कराः । अयोध्या सरयूस्तापी तथा द्वारंहरेःपरम् ॥६८॥
अवन्ती विमला काञ्ची रेवा सागरगामिनी। गोकर्णं हाटकाख्यं च हत्याकोटिविनाशनम्॥६९॥
मल्लिकाख्यो महाशैलो मोक्षदः पश्यतां नृणाम् ।
यत्राङ्गेषु नृणां तोयं श्यामं वा निर्मलं भवेत् ॥७०॥
पातकस्यापहारीदं मया दृष्टं तु तीर्थकम् । मया द्वारवती दृष्टा सुरासुरनिषेविता ॥७१॥
गोमती यत्र वहति साक्षाद् ब्रह्मजला शुभा ।
यत्र स्वापो लयःप्रोक्ता मृतिर्मोक्ष इति श्रुतिः ॥७२॥
यस्यां संवसतां नृणां न कलिःप्रभवेत्क्वचित् ।
चक्राङ्का यत्र पाषाणा मानवा अपि चक्रिणः ॥७३॥
पशवः कीटपक्ष्याद्याःसर्वे चक्रशरीरिणः । त्रिविक्रमो वसेद्यस्यां सर्वलोकैकपालकः ॥७४॥
सा पुरीं तु महापुण्यैर्मया दृग्गोचरीकृता । कुरुक्षेत्रं मया दृष्टं सर्वहत्यापनोदनम्॥७५॥

की रक्षा करने के लिए ही उनके घर जाते हैं । अतएव हे स्वामिन् ! मैं वृद्ध हो गया हूँ । आप बतलायें कि मेरी गर्भ में मिलने वाली शय्या को कौन सा तीर्थ विनष्ट करने में समर्थ हैं ? आप तो सबों में श्रेष्ठ तथा ध्यान एवं समाधि में लगे रहते हैं ॥६२-६३॥ सभी तीर्थों में स्नान करने के कारण आप निर्मल पुण्यवान् हैं । मैं इस बात को सुनना चाहता हूँ उसे आप विस्तार पूर्वक बतलायें ॥६४॥ हे सभी तीर्थों को जानने वाले ! आप इसे मुझे बतलायें ॥६५॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे राजन् ! आपने यह जो पूछा है कि किस देवता की कृपा से गर्भ में जाना बन्द हो जायेगा ? उसे मैं बतला रहा हूँ, आप सुनें ॥६६॥ संसार के संताप को विनष्ट करने वाले भगवान् श्रीराम की ही सेवा करनी चाहिए, वे ही भगवान् पुरुषोत्तम पूजनीय हैं ॥६७॥ मैंने अनेक पुरियों को देखा है जो सभी पापों को विनष्ट करने वाली है । अयोध्या, सरयू, तापी तथा हरिद्वार श्रीहरि के द्वार हैं ॥६८॥ विमल, अवन्ती, उज्जैन, काञ्ची और सागर गामिनी, रेवा, गोकर्ण तीर्थ, हाटकतीर्थ, ये करोड़ों हत्याजन्य पापों को विनष्ट करने वाले हैं ॥६९॥ मल्लिकार्जुन नामक महाशैल दर्शन करने वालों को मोक्ष प्रदान करता है । वहाँ पर मनुष्यों के अङ्गों में लगे जल श्याम अयवा निर्मल हो जाता है ॥७०॥ मैंने उस तीर्थ को पाप का अपहरण करने वाला देखा है । मैंने देवों और असुरों से सेवित द्वारकापुरी को भी देखा है ॥७१॥ वहाँ ब्रह्मजल से युक्त गोमती नदी प्रवाहित होती है । वहाँ पर सोना लय बतलाया गया है और वहाँ पर मृत्यु को मोक्ष कहा गया है॥७२॥ वहाँ पर रहने वाले लोगों पर कलियुग का प्रभाव नहीं होता है । वहाँ के पत्थर और मनुष्य दोनों चक्राङ्कित हैं ॥७३॥ वहाँ के पशु, कीड़े तथा पक्षी आदि भी चक्राङ्कित शरीरधारी हैं । उस नगरी में सम्पूर्ण जगत् का पालन करने वाले श्रीभगवान् का निवास है ॥७४॥ मैंने अपने महान् पुण्यों के कारण उस नगरी का दर्शन

स्यमन्तपञ्चकं यत्र महापातकनाशनम्। वाराणसी मया दृष्टा विश्वनाथकृतालया॥७६॥
यत्रोपदिशते मन्त्रं तारकं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥७७॥
यस्यां मृताः कीटपतङ्गभृङ्गाः पश्वादयो वा सुरयोनयो वा ।
स्वकर्मसम्भोगसुखं विहाय गच्छन्ति कैलासमतीतदुःखाः ॥७८॥
मणिकर्णियत्र तीर्थं यस्यामुत्तरवाहिनी। करोति संसृतेर्बन्यच्छेदं पापकृतामपि॥७९॥
कपर्दिनःकुण्डलिनःसर्पभूषाधरा वराः। गजचर्मपरीधाना वसन्ति गतदुःखकाः ॥८०॥
कालभैरवनामाऽत्र करोति यमशासनम्। न करोति नृणां वार्ता यमो दण्डधरःप्रभुः॥८१॥
एतादृशी मया दृष्टा काशी विश्वेश्वराङ्किता। अनेकान्यपि तीर्थानि मया दृष्टानि भूमिप !॥८२॥
परमेकं महच्यिचत्रं यद्दृष्टं नीलपर्वते। पुरुषोत्तमसान्निध्ये तत्र क्वाप्यक्षिगोचरम् ॥८३॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
ब्राह्मणसमागमो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

* * *

अठारहवाँ अध्याय

ब्राह्मण उवाच

राजंस्त्वं श्रृणु यद्वृत्तं नीले पर्वतसत्तमे। यच्छ्रद्दधानाःपुरुषा यान्ति ब्रह्म सनातनम् ॥१॥
मया पर्यटता तत्र गतं नीलाभिधे गिरौ। गङ्गासागरतोयेन क्षालितप्राङ्गणे मुहुः ॥२॥

किया है। मैंने सभी हत्याजन्य पापों को दूर करने वाले कुरुक्षेत्र का दर्शन किया है ॥७५॥ वहाँ पर सभी पापों का विनाश करने वाला स्यमन्त पञ्चक तीर्थ है। मैंने भगवान् विश्वनाथ की निवास नगरी वाराणसी का भी दर्शन किया है। वहाँ पर विश्वनाथजी जीवों को तारक मन्त्र का उपदेश देते हैं ॥७७॥ वाराणसी में मरने वाले कीट, पतङ्ग, पशु, आदि अथवा देवता, अपने कर्म जन्य भोग का सुख छोड़कर दुःखों से रहित होकर कैलास चले जाते हैं ॥७८॥ वहाँ पर मणिकर्णिका तीर्थ है जहाँ पर उत्तर वाहिनी गङ्गा बहती है, वहाँ पर रहने वाले पापियों का संसार का बन्धन कट जाता है ॥७९॥ वहाँ पर कपर्दी, कुण्डल धारण करने वाले, तथा सभी प्रकार के आभूषणों को धारण करने वाले, हाथी के चमड़े को ओढ़ने वाले, दुःख रहित होकर निवास करते हैं ॥८०॥ यहाँ के काल भैरव यम का प्रशासन करते हैं, वहाँ के जीवों के विषय में यमराज चर्चा भी नहीं करते हैं ॥८१॥ इस प्रकार विश्वेश्वर से युक्त काशी का भी मैंने दर्शन किया है। राजन् मैंने अनेक तीर्थों का दर्शन किया है ॥८२॥ किन्तु इस तरह की विचित्रता कहीं नहीं देखा है, जैसी विचित्रता इस नील पर्वत की है ॥८३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में ब्राह्मण समागम वर्णन नामक सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

* * *

नील पर्वत पर निवास करने से चतुर्भुज स्वरूप की प्राप्ति का वर्णन

ब्राह्मण ने कहा— हे राजन् ! नील पर्वत पर जो हुआ, उसको आप सुनें। उस वृत्तान्त में श्रद्धा करने

तत्र भिल्ला मया दृष्टाःपर्वताग्रे धनुर्भृतः । चतुर्भुजा मूलफलैर्भक्ष्यैर्निर्वाहितक्लमाः ॥३॥
तदा मे मनसि क्षिप्रं संशयः सुमहानभूत्। चतुर्भुजाःकिमेते वे धनुर्बाणधरा नराः॥४॥
वैकुण्ठवासिनां रूपं दृश्यते विजितात्मनाम्। कथमेतैरुपालब्धं ब्रह्माद्यैरपि दुर्ल्लभम्॥५॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गपद्मोल्लसितपाणयः । वनमालापरीताङ्गा विष्णुभक्ता इवान्तिके॥६॥
संशयाविष्टचित्तेन मया पृष्टं तदा नृप !। यूयं के बत युष्माभिर्लब्धं चातुर्भुजं कथम् ॥७॥
तदा तैर्वहुहास्यं तु कृत्वा मां प्रतिभाषितम् ।
ब्रह्मणोऽयं न जानाति पिण्डमाहात्म्यमद्भुतम् ॥८॥
इति श्रुत्वाऽवदं चाहं कःपिण्डःकस्य दीयते ।
तन्मम ब्रूत धर्मिष्ठाश्चतुर्भुजशरीरिणः ॥९॥
तदा मद्वाक्यमाकर्ण्य कथितं तैर्महात्मभिः । सर्वं तत्र तु यद्वृत्तं चतुर्भुजभवादिकम्॥१०॥

किरात उवाच

शृणु ब्राह्मण ! वृत्तान्तमस्माकं पृथुकःशिशुः ।
नित्यं जम्बूफलादीनि भक्षयन्क्रीडयाचरन् ॥११॥
एकदा रममाणस्तु गिरिशृङ्गं मनोरमम्। समारुरोह शिशुभिःसमन्तात्परिवारितः ॥१२॥
तदा तत्र ददर्शाथ देवायतनमद्भुतम्। गारुत्मतादिमणिभिःखचितं स्वर्णभित्तिकम्॥१३॥
स्वकान्त्या तिमिरश्रेणीं दारयद्रविवद् भृशम् ।
दृष्ट्वा विस्मयमापेदे किमिदं कस्य वै गृहम् ॥१४॥

वाले परमपद को प्राप्त करते हैं ॥१॥ घूमता हुआ मैं नील पर्वत पर गया उसका प्राङ्गण गङ्गा तथा सागर के जल से बार-बार धोया गया था ॥२॥ उस नील पर्वत के ऊपर मैंने भिल्लों को देखा जो धनुष धारण किए हुए थे । उन सबों की चार भुजाएँ थीं और वे मूल फल से निर्वाह करते थे ॥३॥ उस समय शीघ्र ही मेरे मन में संशय उत्पन्न हो गया कि इन धनुष बाणधारी मनुष्यों की चार भुजाएँ कैसे हैं ?॥४॥ इन जितेन्द्रियों का रूप तो वैकुण्ठ में रहने वालों के समान है । इन सबों को ब्रह्मा आदि देवताओं को भी नहीं प्राप्त होने वाला रूप कैसे प्राप्त हुआ ?॥५॥ ये अपने हाथ में शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किए हैं । वनमाला को धारण किए हुए भगवान् विष्णु के भक्त के समान हैं ॥६॥ हे राजन् ! संशयग्रस्त होने के कारण मैंने उन सबों से पूछा कि आप लोग कौन है और आपलोगों ने चतुर्भुज रूप कैसे प्राप्त किया ?॥७॥ उस समय वे सब बहुत हँसने के बाद मेरे विषय में कहें, यह ब्राह्म पिण्ड के उत्तम माहात्म्य को नहीं जानता है ॥८॥ इस बात को सुनकर मैंने कहा कि कौन सा पिण्ड किसको दिया जाता है ? हे धार्मिक चतुर्भुज शरीर वाले आपलोग ! इसे हमें बतलायें ॥९॥ उसके बाद मेरे वाक्य को सुनकर उन महात्माओं ने चतुर्भुज होने से संबद्ध सारे वृत्तान्त को बतलाया ॥१०॥ **किरातों ने कहा**— हे ब्राह्मण ! इसका वृत्तान्त आप सुनें । हमलोगों का छोटा सा बच्चा क्रीड़ा करते हुए जामुन आदि के फल को खाता था ॥११॥ एक बार खेलता हुआ वह बालकों के साथ मनोहर पर्वत के शिखर पर चढ़ गया ॥१२॥ वहाँ उसने एक अद्भुत देव मन्दिर को देखा । उसकी दिवार सोने की थी और उसमें गारुत्मत आदि रत्न जड़े थे ॥१३॥ वह सूर्य के समान अपनी कान्ति से अन्धकार को दूर कर रहा था यह देखकर वह बालक आश्चर्यित हुआ कि यह किसका भवन है ॥१४॥ मैं जाकर देखूं कि यह कौन सा महान् पद है । इस तरह

गत्वा विलोकयामीति किमिदं महतां पदम् ।
इति सञ्चिन्त्य गेहान्तर्जगाम बहुभाग्यतः ॥१५॥
ददर्श तत्र देवेशं सुरासुरनमस्कृतम् । किरीटाहारकेयूरग्रैवेयाद्यैर्विराजितम् ॥१६॥
मनोहरावतंसौ च धारयन्तं सुनिर्मलौ। पादपद्मे तुलसिकागन्धमत्तषडङ्घ्रिके ॥१७॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गपद्माद्यैर्मूर्तिसंयुतैः । उपासिताङ्घ्रिं श्रीमूर्तिं नारदाद्यैःसुसेवितम्॥१८॥
केचिद्गायन्ति नृत्यन्ति हसन्ति परमाद्भुतम्। प्रीणयन्ति महाराजं सर्वलोकैककवन्दितम् ॥१९॥
हरिं वीक्ष्य मदीयोऽर्भस्तत्र सञ्जग्मिवान्मुने । देवास्तत्र विधायोच्चैः पूजां धूपादिसंयुताम् ॥२०॥
नैवेद्यं श्रीप्रियस्यार्थे कृत्वा नीराजनं ततः। जग्मुः स्वं स्वं गृहं राजन्कृपां पश्यन्त आदरात्॥२१॥
महाभाग्यवशात्तेन प्राप्तं नैवेद्यसिक्थकम् । पतितं ब्रह्मदेवाद्यैर्दुर्ल्लभं सुरमानुषैः॥२२॥
तद्भक्षणं च कृत्वाऽथो श्रीमूर्तिमवलोक्य च ।
चतुर्भुजत्वमाप्तं वै पृथुकेन सुशोभिना ॥२३॥
तदाऽस्माभिर्गृहं प्राप्तो बालको वीक्षितो मुहुः ।
चतुर्भुजत्वं सम्प्राप्तः शङ्खचक्रादिधारकः ॥२४॥
अस्माभिःपृष्टमेतस्य किमेतज्जातमद्भुतम्। तदा प्रोवाच नःसर्वान्बालकःपरमाद्भुतम् ॥२५॥
शिखराग्रे गतःपूर्वं तत्र दृष्टःसुरेश्वरः। तत्र नैवेद्यसिक्थं तु मया प्राप्तं मनोहरम्॥२६॥
तस्य भक्षणमात्रेण कारणेन तु साम्प्रतम् । चतुर्भुजत्वं सम्प्राप्तो विस्मयेन समन्वितः॥२७॥
तच्छ्रुत्वा तु वचस्तस्य सद्यः सम्प्राप्तविस्मयैः ।
अस्माभिरप्यसौ दृष्टो देवः परमदुर्ल्लभः ॥२८॥

विचार कर अपने अत्यधिक भाग्य के कारण वह घर के भीतर चला गया ॥१५॥ वहाँ पर उसने देवों तथा असुरों से नमस्कृत श्रीभगवान् का दर्शन किया । वे भगवान् किरीट, केयूर तथा हार आदि से सुशोभित थे ॥१६॥ वे मनोहर अत्यन्त देदीप्यमान दो कुण्डलों को धारण किये थे । उनके चरण कमलों पर सुगन्धित तुलसी पड़ी थी॥१७॥ शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग तथा पद्म से युक्त शरीर वाले पुरुष श्रीभगवान् के चरणों की उपासना करते थे । नारद आदि उनकी सेवा कर रहे थे ॥१८॥ उनमें से कुछ गा रहे थे, और कुछ नाच रहे थे, कुछ श्रीहरि को देखकर अद्भुत रूप से हँस रहे थे । वे सम्पूर्ण लोकों के द्वारा श्रीभगवान् को प्रसन्न कर रहे थे ॥१९॥ श्रीहरि को देखकर हमारा बच्चा वहाँ चला गया । देवता श्रीभगवान् की धूप-दीप आदि से पूजा करके श्रीहरि की प्रसन्नता के लिए आरती करके नैवेद्य भोग लगाये और श्रीभगवान् की आदर पूर्वक कृपा का अनुभव करके अपने-अपने घर चले गये ॥२०-२१॥ अपने महान् भाग्य के कारण उसने वहाँ पर गिरा हुआ उच्छिष्ट प्रसाद पा लिया । जो वहाँ पर गिरा हुआ था । वह देवताओं और मनुष्यों के लिए दुर्लभ था ॥२२॥ उसने श्रीभगवान् की मूर्ति को देखकर उस प्रसाद को खा लिया । उस बालक ने सुन्दर शरीर और चार भुजाओं को प्राप्त कर लिया ॥२३॥ उसके बाद जब वह घर आया तो हमलोगों ने उसे बार-बार देखा, वह चतुर्भुज होकर शङ्ख, चक्र आदि धारण किए था ॥२४॥ हमलोगों ने उस अद्भुतता के बारे में उस बालक से पूछा तो उस बालक ने हमसबों को उस अद्भुत वृत्तान्त को बतलाया । वह स्वयम् आश्चर्यित था ॥२५॥ उसने बतलाया कि मैं शिखर पर गया था और वहाँ श्रीभगवान् का दर्शन किया । वहाँ पर मैंने अत्यन्त मनोहर शीत प्रसाद प्राप्त किया ॥२६॥ उसके खाने मात्र

अन्नादिकं तत्र भुक्तं सर्वस्वाद समन्वितम् । वयं चतुर्भुजा जाता देवस्य कृपया पुनः ॥२९॥
गत्वा त्वमपि देवस्य दर्शनं कुरु सत्तम !। भुक्त्वा तत्रान्नसिक्थं तु भव विप्र ! चतुर्भुजः॥३०॥
त्वया पृष्टं यदाश्चर्यं तदुक्तं वाडवर्षभ ! ॥३१॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
ब्राह्मणोपदेशे नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

ब्राह्मण उवाच

इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं भिल्लानां महदद्भुतम् ।
अत्याश्चर्यमिदं मत्त्वा प्रहृष्टोऽभवमित्युत ॥१॥
गङ्गासागरसंयोगे स्नात्वा पुण्यकलेवरः। शृङ्गमारुरुहे तत्र मणिमाणिक्यचित्रितम् ॥२॥
तत्रापश्यं महाराज देवं देवादिवन्दितम् । नमस्कृत्य कृतार्थोऽहं जातोऽन्नप्राशनेन च ॥३॥
चतुर्भुजत्वं सम्प्राप्तःशङ्खचक्रादिचिह्नितम् । पुरुषोत्तमदर्शनेन न पुनर्गर्भमाविशम् ॥४॥

से मैं चार भुजाओं वाला अद्भुत हो गया ॥२७॥ उसको उस वाणी को सुनकर हमलोगों ने शीघ्र ही आश्चर्यित होकर जाकर श्रीभगवान् का दर्शन किया । वह भगवान् का दर्शन देवताओं के भी लिए दुर्लभ है ॥२८॥ वहाँ पर समस्त स्वादों से युक्त अन्न आदि को हमलोग खाये । फिर हमलोग भी श्रीभगवान् की कृपा से चतुर्भुज हो गये ॥२९॥ हे श्रेष्ठ ! आप भी जाकर श्रीभगवान् का दर्शन करें और वहाँ का शांत प्रसाद खाकर चतुर्भुज हो जायँ ॥३०॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आपने जो पूछा था । वह हमलोगों ने कह दिया ॥३१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में ब्राह्मण द्वारा राजोपदेश नामक अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

राजा रत्नग्रीव की तीर्थ यात्रा का वर्णन

ब्राह्मण ने कहा— भिल्लों के उस अद्भुत वाक्य को सुनकर यह तो अत्यन्त आश्चर्य की बात है इस तरह से विचार करके मैं प्रसन्न हो गया ॥१॥ गङ्गासागर सङ्गम स्थल पर स्नान करके पवित्र शरीर वाला मैं मणियों तथा माणिक्यों से सुशोभित उस शिखर पर चढ़ गया ॥२॥ हे महाराज ! वहाँ पर मैंने देवताओं आदि से वन्दित श्रीभगवान् का दर्शन करके, उनको नमस्कार करके तथा वहाँ का अन्न खाकर कृतार्थ हो गया ॥३॥ मैं शङ्ख, चक्र आदि से चिह्नित चतुर्भुजत्व को प्राप्त कर लिया । भगवान् पुरुषोत्तम का दर्शन करने के कारण मैं फिर गर्भ में नहीं गया ॥४॥ हे राजन् ! आप भी शीघ्र नीलगिरि पर जायँ और गर्भ दुःख आदि से रहित

राजंस्त्वमपि तत्राशु गच्छ नीलाभिधं गिरिम् ।
कृतार्थं कुरु चात्मानं गर्भदुःखविवर्जितम् ॥५॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य वाडवाग्र्यस्य धीमतः ।
पप्रच्छ हृष्टगात्रस्तु तीर्थयात्राविधिं मुनिम् ॥६॥

राजोवाच

साधु विप्राग्र्य ! हे साधो ! त्वया प्रोक्तं ममानघ ! ।
पुरुषोत्तममाहात्म्यं शृण्वतां पापनाशनम् ॥७॥
ब्रूहि तत्तीर्थयात्रायां विधिं श्रुतिसमन्वितम्। विधिना केन सम्पूर्णफलप्राप्तिर्नृणां भवेत् ॥८॥

ब्राह्मण उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तीर्थयात्राविधिं शुभम्। येन सम्प्राप्यते देवः सुरासुरनमस्कृतः ॥९॥
वलीपलितदेहो वा यौवनेनान्वितोऽपि वा । ज्ञात्वा मृत्युमनिस्तीर्यं हरिं शरणमाव्रजेत् ॥१०॥
तत्कीर्तने तच्छ्रवणे वन्दने तस्य पूजने । मतिरेव प्रकर्तव्या नान्यत्र वनितादिषु ॥११॥
सर्वं नश्वरमालोक्य क्षणस्थायि सुदुःखदम्। जन्ममृत्युजरातीतं भक्तिवल्लभमच्युतम् ॥१२॥
क्रोधात्कामाद्भयाद्द्वेषल्लोभाद्दम्भान्नरःपुनः । यथा कथञ्चिद्विभजन्न सदुःखं समश्नुते ॥१३॥
स हरिङ्गायते साधुसङ्गमात्पापवर्जितात् । येषां कृपातःपुरुषा भवन्त्यसुखवर्जिताः ॥१४॥
ते साधवः शान्तरागाः कामलोभविवर्जिताः ।
ब्रुवन्ति यन्महाराज तत्संसारनिवर्तकम् ॥१५॥
तीर्थेषु लभ्यते साधू रामचन्द्रपरायणः। यद्दर्शनं नृणां पापराशिदाहाशुशुक्षणिः ॥१६॥
तस्मात्तीर्थेषु गन्तव्यं नरैःसंसारभीरुभिः। पुण्योदकेषु सततं साधुश्रेणिविराजिषु ॥१७॥

होकर अपनी आत्मा को कृतार्थ बना लें ॥५॥ उन ब्राह्मण श्रेष्ठ की वाणी को सुनकर राजा ने उनसे तीर्थ यात्रा की विधि को पूछा ॥६॥ **राजा ने कहा**— हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! हे अनघ ! आपने मुझे बहुत अच्छा बतलाया । पुरुषोत्तम का माहात्म्य सुनने वालों के पाप को विनष्ट करने वाला है ॥७॥ आप उस तीर्थ की यात्रा की वेदानुकूल विधि को मुझे बतलायें । किस विधि से मनुष्यों को सम्पूर्ण फल की प्राप्ति होती हैं ?॥८॥ **ब्राह्मण ने कहा**— हे राजन् ! मैं तीर्थयात्रा की शुभ विधि को बतलाता हूँ । उसे आप सुनें, उससे देवताओं तथा असुरों द्वारा नमस्कृत श्रीभगवान् की प्राप्ति होती हैं ॥९॥ हे राजन् ! शरीर बूढ़ा हो गया हो या युवक शरीर हो, इस बात को जानकर मृत्यु का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है, श्रीभगवान् की शरणागति कर लेनी चाहिये ॥१०॥ उनके ही कीर्तन, श्रवण, वन्दन तथा पूजन में अपने मन को लगाना चाहिए; स्त्रियों आदि में न लगाये ॥११॥ सम्पूर्ण संसार को नश्वर क्षणिक और दुःखप्रद समझकर, क्रोध या काम या भय या द्वेष या लोभ या दम्भ आदि से किसी भी प्रकार से अपने को संसार से अलग करके जन्म, मृत्यु तथा जरा से रहित, भक्तिप्रिय भगवान् अच्युत की भक्ति करने वाला मनुष्य कभी दुःख नहीं प्राप्त करता है ॥१२-१३॥ वह निष्पाप साधु पुरुषों की सङ्गति में पड़कर श्रीहरि का संकीर्तन करने लगता है । साधु पुरुषों की कृपा से मनुष्य सुखी हो जाता है ॥१४॥ हे महाराज! वे काम तथा लोभ से रहित राग रहित, साधु पुरुष जो कुछ भी कहते हैं वह संसार के बन्धन को दूर कर देता है ॥१५॥ श्रीरामचन्द्र की भक्ति करने वाले साधु पुरुषों की प्राप्ति तीर्थों में होती है । उन लोगों का दर्शन

तानि तीर्थानि विधिना दृष्टानि प्रहरन्त्यघम्। तं विधिं नृपशार्दूल ! कुरुष्व श्रुतिगोचरम् ॥१८॥
विरागं जनयेत्पूर्वं कलत्रादि कुटुम्बके। असत्यभूतं तज्ज्ञात्वा हरिं तु मनसा स्मरेत् ॥१९॥
क्रोशमात्रं ततो गत्वा रामरामेति च ब्रुवन्। तत्र तीर्थादिषु स्नात्वा क्षौरं कुर्याद्विधानवित्॥२०॥
मनुष्याणां च पापानि तीर्थानि प्रति गच्छताम् ।
केशानाश्रित्य तिष्ठन्ति तस्माद्वपनमाचरेत् ॥२१॥
ततो दण्डं तु निर्ग्रन्थि कमण्डलुमथाजिनम्। बिभृयाल्लोभनिर्मुक्तस्तीर्थवेषधरो नरः ॥२२॥
विधिनागच्छतां नृणां फलावाप्तिर्विशेषतः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तीर्थयात्राविधिं चरेत् ॥२३॥
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंहितम् ।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥२४॥
हेरकृष्ण हरेकृष्ण भक्तवत्सल गोपते। शरण्य भगवन्विष्णो मां पाहि बहुसंसृतेः ॥२५॥
इति ब्रुवन् रसनया मनसा च हरिं स्मरन्। पादचारी गतिं कुर्यात्तीर्थम्प्रति महोदयः॥२६॥
यानेन गच्छन्पुरुषःसमभागफलं लभेत् । उपानद्धयां चतुर्थांशं गोयाने गोवधादिकम् ॥२७॥
व्यवहर्ता तृतीयांशं सेवयाऽष्टमभागभाक्। अनिच्छया व्रजंस्तत्र तीथमर्धफलं लभेत् ॥२८॥
यथायथं प्रकर्तव्या तीर्थानामभियात्रिका। पापक्षयो भवत्येव विधिदृष्ट्या विशेषतः ॥२९॥
तत्र साधून्नमस्कुर्यात्पादवन्दनसेवनैः। तद्द्वारा हरिभक्तिर्हि प्राप्यते पुरुषोत्तमे ॥३०॥

मनुष्यों के पाप समूह को उसी तरह भस्म कर देता है जिस तरह अग्नि इन्धन को भस्म कर देती है ॥१६॥ संसार से भयभीत रहने वाले मनुष्यों को तीर्थ में चले जाना चाहिए। वे तीर्थ साधु समूह से सुशोभित पवित्र जलों वाले होते हैं ॥१७॥ विधि पूर्वक उन तीर्थो का दर्शन करने से पापों का नाश हो जाता है। हे राजश्रेष्ठ ! आप उस विधि को सुने ॥१८॥ सर्वप्रथम पत्नी आदि परिवार को असत्य समझकर उससे विरक्त हो जाय और मन से श्रीहरि का स्मरण करें ॥१९॥ विधानों को जानने वाले को चाहिए कि वह अपने नगर से एक कोश दूर जाकर स्नान आदि करके क्षौर कराये ॥२०॥ तीर्थों में जाने वाले मनुष्यों के पाप उनके केशों में जाकर रुक जाते हैं अतएव क्षौर कर्म कराना चाहिए ॥२१॥ उसके बाद लोभ से रहित होकर तथा तीर्थ का वेष धारण करके मनुष्य को चाहिए कि वह गन्थि रहित दण्ड, मृगचर्म और कमण्डलु को धारण कर लें ॥२२॥ विधि पूर्वक तीर्थ यात्रा करने वाले को विशेष रूप से फल की प्राप्ति होती है अतएव प्रयास पूर्वक विधि का पालन करे ॥२३॥ जिसके दोनों हाथ, पैर, मन, विद्या, तपस्या तथा यश ये सभी अत्यन्त संयत होते हैं, वही तीर्थ के फल को प्राप्त करता है ॥२४॥ महान् कल्याण सम्पन्न अपनी जिह्वा से हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! हे भक्तवत्सल ! हे गोपते ! हे शरण्य! हे भगवन् विष्णो ! इस संसार से आप मेरी रक्षा करें यह उच्चारण करते हुए मन से श्रीहरि का स्मरण करते हुए पैदल तीर्थ में जाय ॥२५-२६॥ सवारी से तीर्थ यात्रा करने वाले मनुष्य को बार-बार फल की प्राप्ति होती है। जूता पहनकर तीर्थ में जाने वाले को चतुर्थांश फल होता है, और बैल की सवारी से जाने वाले को गोवध का पाप लगता है ॥२७॥ व्यवहार (व्यापार करने वाला) तीर्थ का तृतीयांश फल पाता है, जो सेवा करता है उसको तीर्थ के आठवाँ भाग फल मिलता है। जो बिना इच्छा के तीर्थ में जाता है उसको तीर्थ का आधा फल प्राप्त होता है ॥२८॥ अतएव यथोचित रूप से तीर्थ यात्रा करनी चाहिए। सविधि तीर्थ यात्रा करने वाले के पाप का विनाश हो जाता है ॥२९॥ तीर्थ में जाकर साधु पुरुषों को नमस्कार करके उनके चरणों की वन्दना और सेवा

इति तीर्थविधिः प्रोक्तः समासेन न विस्तरात् ।
एवं विधिं समाश्रित्य गच्छत्वं पुरुषोत्तमम् ॥३१॥
तुभ्यं तुष्टो महाराज ! दास्यते भक्तिमच्युतः ।
यथा संसारनिर्वाहःक्षणादेव भविष्यति ॥३२॥
तीर्थयात्राविधिं श्रुत्वा सर्वपातकनाशनम्। मुच्यते सर्वपापेभ्यः उग्रेभ्यःपुरुषर्षभ॥३३॥

सुमतिरुवाच

इतिवाक्यं समाकर्ण्य ववन्दे चरणौ महान् ।
तत्तीर्थदर्शनौत्सुक्यविह्वलीकृतमानसः ॥३४॥
आदिदेश निजामात्यं मन्त्रवित्तमनुत्तमम्। तीर्थयात्रेच्छया सर्वान्सह नेतुं मनोऽदधत्॥३५॥
मन्त्रिन्पौरजनान्सर्वानादिश त्वं ममाज्ञया। पुरुषोत्तम पादाब्जदर्शनप्रीतिहेतवे ॥३६॥
ये मदीये पुरे लोका ये च मद्वाक्यकारकाः ।
सर्वे निर्यान्तु मत्पुर्या मया सह नरोत्तमाः ॥३७॥
ये तु मद्वाक्यमुल्लङ्घ्य स्थास्यन्ति पुरुषा गृहे ।
ते दण्ड्या यमदण्डेन पापिनोऽधर्महेतवः ॥३८॥
किं तेन सुतबृन्देन बान्धवैःकिं सुदुर्नयैः । यैर्न दृष्टःस्वचक्षुर्भ्यां पुण्यदःपुरुषोत्तमः ॥३९॥
सूकरीयूथवत्तेषां प्रसूतिर्विट् प्रभक्षिका। येषां पुत्राश्च पौत्रा वा हरिं न शरणं गताः॥४०॥
यो देवो नाममात्रेण सर्वान्पावयितुं क्षमः। तं नमस्कुरुत क्षिप्रं मदीयाःप्रकृतिव्रजाः॥४१॥
इति वाक्यं मनोहारि भगवद्गुणगुम्फितम्। प्रजहर्ष महामात्य उत्तमः सत्यनामधृत्॥४२॥
हस्तिनं वरमारोप्य पटहेन व्यघोषयत्। यदादिष्टं नृपेणेह तीर्थयात्रां समिच्छता॥४३॥

करनी चाहिए। उससे भगवान् पुरुषोत्तम में भक्ति बढ़ती है ॥३०॥ इस तरह से मैंने आप को तीर्थ की विधि संक्षेप में बतलाया विस्तार से नहीं। इसी विधि को अपनाकर भगवान् पुरुषोत्तम का आप दर्शन करें ॥३१॥ हे महाराज! प्रसन्न होकर भगवान् अच्युत आपको भक्ति प्रदान करेंगे जिससे कि संसार का क्षणभर में निर्वाह हो जायेगा ॥३२॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! सभी पापों को विनष्ट करने वाले तीर्थ यात्रा की विधि को सुनने से मनुष्य उग्र पापों से भी मुक्त हो जाता है ॥३३॥ **सुमति ने कहा**— ब्राह्मण की इस तरह की वाणी को सुनकर राजा ने उनके चरणों की वन्दना की, उनका मन उस तीर्थ के दर्शन की उत्सुकता से विह्वल हो गया था ॥३४॥ राजा ने उत्तम मन्त्र को जानने वाले अपने मन्त्री को आदेश दिया कि वे तीर्थ यात्रा में सबों को ले जाने का मन बनाये ॥३५॥ राजा ने कहा— मेरी आज्ञा से तुम मन्त्रियों और सभी नागरिकों को पुरुषोत्तम का दर्शन करने के लिए कहो ॥३६॥ जो मेरे नगर में मेरी आज्ञा मानने वाले लोग हैं मेरी नगरी से वे सभी मनुष्य श्रेष्ठ भगवान् का दर्शन करने चलें॥३७॥ जो लोग मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके अपने घर में रहेंगे उन पापियों को यमदण्ड मिलेगा ॥३८॥ उन दुराचारी बान्धवों और पुत्रों से क्या लाभ है ? जिन सबों ने भगवान् पुरुषोत्तम का दर्शन नहीं किया है ॥३९॥ जिनके पुत्रों तथा पौत्रों ने श्रीहरि की शरणागति नहीं की है उनकी सन्तानें शूकरी के समूह के समान मल-मूत्र का ही भक्षण करने वाली हैं ॥४०॥ मैं श्रीभगवान् का नाम लेने मात्र से ही सबों का पालन करनें में समर्थ हूँ, हे मेरी प्रजाओं ! आपलोग उन्हीं श्रीभगवान् को नमस्कार करें ॥४१॥ श्रीभगवान् के गुण से युक्त राजा के मनोहर

गच्छन्तु त्वरिता लोका राज्ञा सह महागिरिम् ।
दृश्यतां पापसंहारी पुरुषोत्तमनामधृत् ॥४४॥
क्रियतां सर्वसंसारसागरो गोष्पदं पुनः। भूष्यतां शङ्खचक्रादि चिह्नैःस्वस्वतनुर्नरैः ॥४५॥
इत्यादि घोषयामास राज्ञाऽऽदिष्टं यदद्भुतम्। सचिवो रघुनाथाङ्घ्रिध्याननिर्वारितश्रमः ॥४६॥
तच्छ्रुत्वा ताः प्रजाः सर्वा आनन्दरससम्प्लुताः ।
मनो दधुः स्वनिस्तारे पुरुषोत्तमदर्शनात् ॥४७॥
निर्ययुर्ब्राह्मणास्तत्र शिष्यैःसह सुवेषिणः। आशिषं वरदानाढ्यां ददतो भूमिपं प्रति ॥४८॥
क्षत्रिया धन्विनो वीरा वैश्या वस्तुक्रयाञ्चिताः ।
शूद्राः संसारनिस्तारहर्षितस्वीयविग्रहाः ॥४९॥
रजकाश्चर्मकाः क्षौद्रा किरता भित्तिकारकाः ।
सूचीवृत्त्या च जीवन्तस्ताम्बूलक्रयकारकाः ॥५०॥
तालवाद्यधरा ये च ये च रङ्गोपजीविनः। तैलविक्रयिणश्चैव वस्त्रविक्रयिणस्तथा ॥५१॥
सूतावदन्तःपौराणीं वार्तां हर्षसमन्विताः। मागधा वन्दिनस्तत्र निर्गता भूमिपाज्ञया ॥५२॥
भिषग्वृत्त्या च जीवन्तस्तथा पाशककोविदाः ।
पाकस्वादुरसाभिज्ञा हास्यवाक्यानुरञ्जकाः ॥५३॥
ऐन्द्रजालिकविद्याढ्यास्तथा वार्तासु कोविदाः ।
प्रशंसन्तो महाराजं निर्ययुःपुरमध्यतः ॥५४॥
राजाऽपि तत्र निर्वर्त्य प्रातः सन्ध्यादिकाः क्रियाः ।
ब्राह्मणं तापसश्रेष्ठमानिनाय सुनिर्मलम् ॥५५॥

वाक्य को सुनकर उत्तम नाम वाले महामन्त्री अत्यन्त हर्षित हुए ॥४२॥ तीर्थ यात्रा करने की इच्छा वाले राजा ने जो आदेश दिया उसकी घोषणा महामात्य ने हाथी के ऊपर नगाड़ा रखकर कर दी ॥४३॥ उन्होंने कहा— हे लोगों ! आपलोग शीघ्र राजा के साथ महापर्वत (नीलगिरि) पर जाकर पापों का विनाश करने वाले भगवान् पुरुषोत्तम का दर्शन करें ॥४४॥ सवलोग इस संसार सागर को गौ के खुर के समान समुल्लंघ्य वना दें और अपने शरीर को शङ्ख, चक्र आदि के चिह्नों से अलंकृत वना दें ॥४५॥ इस प्रकार से राजा ने जो आदेश दिया था उसको श्रीरामचन्द्रजी के चरणों का ध्यान करने के कारण श्रम रहित मन्त्री ने घोषणा कर दी ॥४६॥ इस घोषणा को सुनकर आनन्द रस में मग्न सारी प्रजाओं ने भगवान् पुरुषोत्तम के दर्शन द्वारा अपने उद्धार में मन को लगाया॥४७॥ सुन्दर वेषधारी ब्राह्मण अपने शिष्यों के साथ निकल पड़े । वे सवके सव राजा को वरदान तथा वहुत अधिक आशीर्वाद दे रहे थे ॥४८॥ धनुर्धारी क्षत्रिय वीर और वस्तुओं को वेंचने वाले वैश्य तथा संसार से उद्धार के कारण हर्षित शरीर वाले शूद्र भी तीर्थ यात्रा के लिए निकल पड़े ॥४९॥ धोवी, चमार, क्षुद्रकर्म करने वाले, किरात, मिस्त्री, दर्जी तथा पान वेचने वाले भी निकले ॥५०॥ गवैया, नाटक करने वाले, तेल वेचने वाले, वस्त्र वेचनें वाले, पुराणों की कथा कहने वाले सूतजन, मागधजन, वन्दिजन ये सवके सव हर्षित होकर राजा की आज्ञा से निकल पड़े । वैद्य, पाशविद्या (घूतविद्या) के जानकार सुन्दर स्वादिष्ट भोजन वनाने वाले, मसखरी करके लोगों को प्रसन्न करने वाले ॥५१-५३॥ जादूगर, समाचार वताने वाले ये सव राजा की प्रशंसा

तदाज्ञया महाराजो निर्जगाम पुराद्बहिः। लोकैरनुगतो राजा बभौ चन्द्र इवोडुभिः ॥५६॥
क्रोशमात्रं स गत्वाऽथ क्षौरं कृत्वा विधानतः ।
दण्डं कमण्डलुं बिभ्रन्मृगचर्म तथा शुभम् ॥५७॥
शुभवेषेण संयुक्तो हरिध्यानपरायणः। कामक्रोधादि रहितं मनो बिभ्रन्महायशाः॥५८॥
तदा दुन्दुभयो भेर्य आनकाःपणवास्तथा। शङ्खवीणादिकाश्चैवाध्मातास्वादकैर्मुहुः ॥५९॥
जय देवेश ! दुःखघ्न ! पुरुषोत्तमसंज्ञित! । दर्शय स्वतनुं मह्यं वदन्तो निर्ययुर्जनाः ॥६०॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
रत्नग्रीवस्य तीर्थप्रयाणं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

बीसवाँ अध्याय

सुमतिरुवाच

अथ प्रयाते भूपाले सर्वलोकसमन्विते। महाभागैर्वैष्णवैश्च गायकैःकृष्णकीर्तनम् ॥१॥
शुश्रवाऽसौ महाराजो मार्गे गोविन्दकीर्तनम् ।
जय माधव भक्तानां शरण्य पुरुषोत्तम ! ॥२॥
मार्गे तीर्थान्यनेकानि कुर्वन्पश्यन्महोदयम्। तापसब्राह्मणात्तेषां महिमानामथाशृणोत् ॥३॥

करते हुए नगर से बाहर निकल पड़े ॥५४॥ राजा भी प्रात:कालीन सन्ध्या वन्दनादि क्रियाओं को पूरा करके श्रेष्ठ तपस्वी तथा निर्मल ब्राह्मण को अपने साथ ले लिए ॥५५॥ ब्राह्मण की आज्ञा प्राप्त करके महाराज नगर से बाहर निकले। लोगों के द्वारा अनुगमन किए जाते हुए राजा उसी तरह से सुशोभित हुए जिस तरह तारों के द्वारा चन्द्रमा सुशोभित होते हैं ॥५६॥ वे कोश भर चलकर अपना क्षौर कर्म विधि पूर्वक कराये। उन्होंने दण्ड, कमण्डलु तथा शुभ मृगचर्म धारण किया ॥५७॥ श्वेत वेष में वे श्रीहरि का ध्यान कर रहे थे। उन महायशस्वी का मन काम तथा क्रोध से रहित हो गया था ॥५८॥ उस समय दुन्दुभि, भेरी, आनक, पणव (नगाड़ा), शङ्ख, वीणा आदि वाद्यों को वादकों ने बार-बार बजाया ॥५९॥ लोग हे देवेश ! आपकी जय हो, हे दु:ख विनाशक ! हे पुरुषोतम ! आप हमे दर्शन दें; इस तरह से कहते हुए लोग निकल पड़े ॥६०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध प्रकरण में राजा रत्नग्रीव की तीर्थयात्रा वर्णन नामक उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९।।

गण्डकी तथा शालग्राम माहात्म्य का वर्णन

सुमति ने कहा— इसके बाद राजा के सभी लोगों के साथ, भगवान् श्रीकृष्ण का कीर्तन करने वाले श्रीवैष्णवों के साथ तीर्थ यात्रा के लिए चले जाने पर ॥१॥ महाराज ने मार्ग में भगवान् गोविन्द का कीर्तन सुना और लोग कहते थे हे भक्तों के रक्षक पुरुषोत्तम माधव ! आपकी जय हो ॥२॥ रास्ते में वहुत से तीर्थों का दर्शन

विचित्रविष्णुवार्ताभिर्विनोदितमना नृपः। मार्गे मार्गे महाविष्णुं गापयामास गायकान् ॥४॥
दीनान्धकृपणानां च पङ्गूनां वासनोचितम्। दानं ददौ महाराजो बुद्धिमान्विजितेन्द्रियः ॥५॥
अनेकतीर्थविरजमात्मानं भव्यतां गतम्। कुर्वन्ययौ स्वीयलोकैर्हरिध्यानपरायणः ॥६॥
नृपो गच्छन्ददर्शाग्रे नदीं पापप्रणाशिनीम्। चक्राङ्कितग्रावयुतां मुनिमानसनिर्मलाम्॥७॥
अनेकमुनिवृन्दानां बहुश्रेणिराजिताम्। सारसादि पतत्त्रीणां कूजितैरुपशोभिताम् ॥८॥
दृष्ट्वा पप्रच्छ विप्राग्र्यं तापसं धर्मकोविदम्।
अनेकतीर्थमाहात्म्यविशेषज्ञानजृम्भितम् ॥९॥
स्वामिन्केयं नदी पुण्या मुनिवृन्दनिषेविता। करोति मम चित्तस्य प्रमोदभरनिर्झरम् ॥१०॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य राजराजस्य धीमतः। वक्तुं प्रचक्रमे विद्वांस्तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्॥११॥

ब्राह्मण उवाच

गण्डकीयं नदी राजन्सुरासुरनिषेविता। पुण्योदकपरीवाहहतपातकसञ्चया ॥१२॥
दर्शनान्मानसं पापं स्पर्शनात्कर्मजं दहेत्। वाचिकं स्वीयतोयस्य पानतः पापसञ्चयम् ॥१३॥
पुरा दृष्ट्वा प्रजानाथः प्रजाः सर्वा विपापिनीः।
स्वगण्डविपुषोऽनेकपापघ्नीं सृष्टवानिमाम् ॥१४॥
एनां नदीं ये पुण्योदां स्पृशन्ति सुतरङ्गिणीम्।
ते गर्भभाजो नैव स्युरपि पापकृतो नराः ॥१५॥
अस्यां भवा ये चाश्मानश्चक चिह्नैरलङ्कृताः।
ते साक्षाद्भगवन्तो हि स्वस्वरूपधराःपराः ॥१६॥

करते हुए और आत्मकल्याण करते हुए राजा ने तपस्वी ब्राह्मणों के मुख से तीर्थों की महिमा का श्रवण किया॥३॥ अद्भुत प्रकार की कथाओं से अपना मनोरञ्जन करने वाले राजा, प्रत्येक मार्गों पर गवैयों से गीत गवाये ॥४॥ जितेन्द्रिय राजा ने दीनों, अन्धों, कृपणों, लङ्गणों को रहने योग्य दान दिया ॥५॥ अनेक तीर्थों में स्नान करने के कारण पाप रहित राजा भव्य हो गये थे। इस तरह से अपने लोगों के साथ राजा श्रीहरि का ध्यान करते हुए जा रहे थे ॥६॥ जाते हुए राजा ने रास्ते में पापों को विनष्ट करने वाली नदी को देखा उसके पत्थर चक्र के चिह्न से युक्त थे और वह नदी मुनियों के मन के समान निर्मल थी ॥७॥ अनेक श्रेणी के मुनि समूहों से सुशोभित तथा सारस आदि पक्षियों की कूजन ध्वनि से सुशोभित थी वह नदी ॥८॥ उस नदी को देखकर राजा ने धर्म के जानकार श्रेष्ठ तपस्वी ब्राह्मण जो अनेक तीर्थों के माहात्म्य विशेष के ज्ञाता थे उनसे पूछे ॥९॥ हे स्वामिन्! मुनि श्रेष्ठों से सेवनीय यह कौन सी नदी है? इसको देखकर मेरा चित्त आनन्द से भरा जा रहा है ॥१०॥ राज राजेश्वर की इस तरह की वाणी को सुनकर वे विद्वान् तीर्थ का उत्तम माहात्म्य कहना प्रारम्भ किये॥११॥ **ब्राह्मण ने कहा**— हे राजन्! यह देवताओं तथा असुरों से सुसेवित गण्डकी नदी है। यह पाप समूह को विनष्ट करने वाली है तथा इसमें पवित्र जल प्रवाहित हो रहा है ॥१२॥ इसके दर्शन से मानसिक पाप तथा, स्पर्श करने से कर्म जन्य पाप, पीने से वाणी के पाप का नाश होता है ॥१३॥ प्राचीन काल में सारी प्रजाओं को पाप रहित देखकर ब्रह्माजी ने अपने कुल्ले के जल से इस नदी का निर्माण किया ॥१४॥ इस सुन्दर तरङ्गो वाली तथा पवित्र जल वाली नदी का जो लोग स्पर्श करते हैं वे पापी मनुष्य भी माता के गर्भ में पुनः

शिलां सम्पूजयेद्यस्तु नित्यं चक्रयुतां नरः । न जातु स जनन्या वै जठरं समुपाविशेत्॥१७॥
पूजयेद्यो नरो धीमाञ्शालग्रामशिलां वराम्। तेनाचारवता भाव्यं दम्भलोभवियोगिना॥१८॥
परदारपरद्रव्यविमुखेन नरेण हि। पूजनीयःप्रयत्नेन शालग्रामः सचक्रकः ॥१९॥
द्वारवत्यां भवं चक्रं शिला वै गण्डकीभवा ।
पुंसां क्षणाद्धरत्येष पापं जन्मशतार्जितम् ॥२०॥
अपि पापसहस्राणां कर्ता तावन्नरो भवेत् । शालग्रामशिलातोयं पीत्वा पूतो भवेत्क्षणात्॥२१॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वेदपथि स्थितः ।
शालग्रामं पूजयित्वा गृहस्थो मोक्षमाप्नुयात् ॥२२॥
न जातुचित्स्त्रियाकार्यंशालग्रामस्य पूजनम् । भर्तृहीनाऽथ सुभगा स्वर्गलोकहितैषिणी ॥२३॥
मोहात्स्पृष्ट्वाऽपि महिला जन्मशीलगुणान्विता ।
हित्वा पुण्यसमूहं सा सत्वरं नरकं व्रजेत् ॥२४॥
स्त्रीपाणिमुक्तपुष्पाणि शालग्रामशिलोपरि । पवेरधिकपातानि वदन्ति ब्राह्मणोत्तमाः ॥२५॥
चन्दनं विषसंकाशं कुसुमं वज्रसन्निभम्। नैवेद्यं कालकूटाभं भवेद्भगवतः कृतम्॥२६॥
तस्मात्सर्वात्मना त्याज्यः स्त्रिया स्पर्शः शिलोपरि ।
कुर्वती याति नरकं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥२७॥
अपि पापसमाचारो ब्रह्महत्यायुतोऽपि वा । शालग्रामशिलातोयं पीत्वा याति परां गतिम् ॥२८॥

नहीं आते हैं ॥१५॥ इसमें उत्पन्न होने वाले जो चक्राङ्कित पत्थर हैं वे साक्षात् श्रीभगवान् के स्वरूप को धारण करने वाले हैं ॥१६॥ जो उस चक्रांकित शिला का प्रतिदिन पूजन करता है, वह कभी भी माता के उदर में प्रवेश नहीं करता है ॥१७॥ जो बुद्धिमान् पुरुष श्रेष्ठ शालग्राम शिला का पूजन करता है, वह दम्भ और लोभ से रहित सदाचारी हो जाता है ॥१८॥ चक्रयुक्त शालग्राम की पूजा करने वाले मनुष्य को परस्त्री तथा परद्रव्य से पराङ्मुख होना चाहिए ॥१९॥ गोमतीचक्र और शालग्राम शिला ये दोनों मनुष्यों के सौ जन्मों के पाप को विनष्ट कर देते हैं ॥२०॥ हजारों पापों को करने वाला मनुष्य शालग्राम शिला के जल को पीकर क्षणभर में पवित्र हो जाता है॥२१॥ वेदमार्गानुयायी ब्राह्मण, या क्षत्रिय, या वैश्य या शूद्र, गृहस्थ शालग्राम शिला का पूजन करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥२२॥ स्त्रियों को कभी भी शालग्राम शिला का पूजन नहीं करना चाहिए। स्वर्गलोक चाहने वाली सधवा स्त्री हो या विधवा स्त्री हो, उसे शालग्राम का पूजन नहीं करनी चाहिए ॥२३॥ सद्वंश में उत्पन्न तथा शील गुण से युक्त भी स्त्री यदि अज्ञानवशात् शालग्राम शिला का स्पर्श कर ले तो उसके सारे पुण्य विनष्ट हो जाते हैं और वह नरक में जाती है ॥२४॥ उत्तम ब्राह्मण बतलाते हैं कि स्त्री के हाथ से चढ़ाया गया पुष्प शालग्राम को वज्र के प्रहार से भी अधिक दुःखद होता है ॥२५॥ भगवान् पर स्त्री के द्वारा चढ़ाया गया चन्दन विष के समान होता है, पुष्प वज्र के समान होता है और नैवेद्य कालकूट के समान होता है ॥२६॥ अतएव स्त्री को हर प्रकार से शालग्राम शिला का स्पर्श त्याग देना चाहिए। यदि वह शालग्राम शिला क स्पर्श करती है तो वह तब तक नरक में निवास करती है, जब तक चौदह इन्द्रों का काल होता है ॥२७॥ केवल पाप करने वाला तथा ब्रह्म हत्या युक्त भी व्यक्ति शालग्राम शिला का जल पीकर मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥२८॥ तुलसी, चन्दन जल, घण्टा, गोमतीचक्र, शालग्राम शिला, ताम्बे का पात्र, भगवान् विष्णु का नाम और चरणामृत इन नवों से पाप

तुलसी चन्दनं वारि शङ्खो घण्टाऽथ चक्रकम् ।
शिला ताम्रस्य पात्रं तु विष्णोर्नाम पदामृतम् ॥२९॥
पदामृतं तु नवभिःपापराशिप्रदाहकम्। वदन्ति मुनयःशान्ताःसर्वशास्त्रार्थकोविदाः ॥३०॥
सर्वतीर्थपरिस्नानात्सर्वक्रतुसमर्चनात् । पुण्यं भवति यद्राजन्बिन्दौ बिन्दौ तदद्भुतम् ॥३१॥
शालग्रामशिला यत्र पूज्यते पुरुषोत्तमैः । तत्र योजनमात्रं तु तीर्थकोटिसमन्वितम् ॥३२॥
शालग्रामाः समाः पूज्याः समेषु द्वितयं न हि ।
विषमा एव सम्पूज्याः विषमेषु त्रयं न हि ॥३३॥
द्वारावतीभवं चक्रं तथा वै गण्डकीभवम् । उभयोःसङ्गमो यत्र तत्र गङ्गा समुद्रगा॥३४॥
रुक्षाः कुर्वन्ति पुरुषानायुःश्रीबलवर्जितान्। तस्मात्स्निग्धा मनोहरि रूपिण्यो ददति श्रियम्॥३५॥
आयुष्कामो नरो यस्तु धनकामो हि यः पुमान् ।
पूजयन्सर्वमाप्नोति पारलौकिकमैहिकम् ॥३६॥
प्राणान्तकाले पुंसस्तु भवेद्भाग्यवतो नृप !। वाचिनामहरेःपुण्यं शिला हृदि तदन्तिके ॥३७॥
गच्छत्सु प्राणमार्गेषु यस्य विश्रम्भतोऽपि चेत् ।
शालग्रामशिलास्फूर्तिस्तस्य मुक्तिर्न संशयः ॥३८॥
पुरा भगवता प्रोक्तमम्बरीषाय धीमते ।
ब्राह्मणान्यासिनःस्निग्धाःशालग्रामशिलास्तथा ॥३९॥
स्वरूपत्रितयं मह्यमेतद्धि क्षितिमण्डले । पापिनां पापनिर्हारं कर्तुं धृतमुदञ्चता॥४०॥
निन्दन्ति पापिनो ये वा शालग्रामशिलां सकृत् ।
कुम्भीपाके प्रपच्यन्ते यावदाभूतसम्प्लवम् ॥४१॥

समूह भस्म हो जाता है । इस बात को सभी शास्त्रों को जानने वाले मुनिजन बतलाते हैं ॥२९-३०॥ हे राजन्! सभी तीर्थों में स्नान करने से तथा सभी यज्ञों से, श्रीभगवान् की आराधना करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है उस पुण्य की प्राप्ति शालग्राम शिला के प्रत्येक बिन्दु से होती है ॥३१॥ जहाँ पर शालग्राम शिला की पूजा श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा की जाती है, वहाँ की योजन भर की भूमि करोड़ों तीर्थों से युक्त होती है ॥३२॥ समसंख्याक शालग्राम शिला की पूजा करें किन्तु दो शालग्राम शिलाओं की पूजा न करें । इसीतरह विषम संख्याक शालग्राम शिलाओं की पूजा करें किन्तु तीन शालग्रामों की पूजा न करें ॥३३॥ जहाँ पर गोमती चक्र और शालग्राम शिला का संयोग होता है, वहाँ पर गङ्गा सागर सङ्गम तीर्थ होता है ॥३४॥ रुक्ष शालग्राम शिला पूजक पुरुष को आयु, ऐश्वर्य तथा बल से हीन बना देते हैं । अतएव चिकने, मनोहर तथा रूपवान शालग्राम शिला, लक्ष्मी प्रदान करती है ॥३५॥ आयु, धन, चाहने वाला मनुष्य शालग्राम शिला का पूजन करके लौकिक और पारलौकिक समस्त वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है ॥३६॥ हे राजन् ! भाग्यवान् पुरुष के ही मृत्यु के समय उसकी जिह्वा पर श्रीहरि का नाम आता है और हृदय के निकट शालग्राम शिला होती है ॥३७॥ प्राणों के जाते समय जिसके विश्राम के कारण शालग्राम शिला का नाम याद आ जाय उसकी मुक्ति हो जाती है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥३८॥ पूर्वकाल में श्रीभगवान् ने बुद्धिमान् अम्बरीष को बतलाया था कि, ब्राह्मण, संन्यासी तथा स्निग्ध शालग्राम शिला ये तीनों मेरे स्वरूप हैं और पृथिवी पर पापियों के पाप को विनष्ट करने वाले हैं ॥३९-४०॥ जो पापी एक बार

पूजां समुद्यतं कर्तुं यो वारयति मूढधीः । तस्य माता पिता बन्धुवर्गा नरकभागिनः ।।४२।।
यो वा कथयति प्रेष्ठं शालग्रामार्चनं कुरु । सकृतार्थो नयत्याशु वैकुण्ठं स्वस्य पूर्वजान् ।।४३।।
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । मुनयो वीतरागाश्च कामक्रोधविवर्जिताः ।।४४।।
पुरा कीकटसंज्ञे वै देशे धर्मविवर्जिते । आसीत्पुल्कसजातीयो नरः शबरसंज्ञितः ।।४५।।
नित्यं जन्तुवधोद्युक्तःशरासनधरो मुहुः । तीर्थप्रति ग्यियासूनां बलाद्धरति जीवितम् ।।४६।।
अनेकप्राणिहत्याकृत्परस्वे निरतःसदा । सदा रागादिसंयुक्तःकामक्रोधादि संयुतः ।।४७।।
विचरत्यनिशं भीमे वने प्राणिवधङ्करः । विषसंसक्तबाणग्ररूढचापगुणोद्धुरः ।।४८।।
स कदा पर्यटन्व्याधःप्राणिमात्रभयङ्करः । कालं प्राप्तं न जानाति समीपेऽप्युग्रमानसः ।।४९।।
यमदूतास्तु सम्प्राप्ताःपाशमुद्गरपाणयः । ताम्रकेशा दीर्घनखा लम्बदंष्ट्रा भयानकाः ।।५०।।
श्यामा लोहस्य निगडान्बिभ्रतो मोहकारकाः ।
बध्नन्तु पापिनं ह्येनं प्राणिमात्रभयङ्करम् ।।५१।।
कदाचिन्मनसा नायं प्राणिमात्रोपकारकः । परदारपरद्रव्यपरद्रोहपरायणः ।।५२।।
एतस्य जिह्वां महतीमहं निष्कासयाम्यतः । एको वदति चैतस्य चक्षुरुत्पाटयाम्यहम् ।।५३।।
एको वदति चैतस्य करौ कृन्तामि पापिनः ।
अन्यो वदत्यहं कर्णौ कर्तयामि दुरात्मनः ।।५४।।
एवं वदन्तः सुभृशं दन्तैर्दन्तनिपीड़काः । आगत्य तं दुरात्मानं सायुधास्तस्थुरुन्मदाः ।।५५।।

भी शालग्राम शिला की निन्दा करते हैं, वे महाप्रलय काल पर्यन्त कुम्भीपाक नरक में पकाये जाते हैं ।।४१।। जो मूर्ख पूजा करने के लिए तैयार व्यक्ति को पूजा करने से रोक देते हैं उसके माता, पिता तथा बान्धव नरक के भागी होते हैं ।।४२।। जो अपने प्रिय व्यक्ति को यह कहता है कि तुम शालग्राम की पूजा करो, वह कृतकृत्य होकर अपने पूर्वजों को स्वर्ग में ले जाता है ।।४३।। इस विषय में काम तथा क्रोध से रहित वीतराग मुनिजन इस प्राचीन इतिहास को बतलाते हैं ।।४४।। प्राचीन काल में धर्म रहित कीकट देश में पुल्कस जाति का शबर नामक मनुष्य था ।।४५।। वह नित्य ही प्राणियों का वध करता था, हाथ में धनुष बाण लिए रहता था और जो लोग तीर्थ यात्रा करना चाहते थे उन सबों को वलपूर्वक मार देता था ।।४६।। उसने अनेक प्राणियों की हत्या की थी तथा दूसरे की सम्पत्ति का हरण करता था । वह सदैव, राग, काम तथा क्रोध आदि से युक्त रहता था।।४७।। प्राणियों का वध करने वाला वह सदा वन में घूमता रहता था, वह अपने धनुष की प्रत्यञ्चा पर विषैले बाणों को चढ़ाये रहता था ।।४८।। प्राणी मात्र के लिए भयङ्कर वह एक बार घूम रहा था । उग्र मन वाले उसको इस बात का पता नहीं था कि उसकी मृत्यु सन्निकट आ गयी है ।।४९।। उसके मारने पर उसको लेने के लिए हाथ में पाश तथा मुद्गर लेकर आयें यमदूतों के केश लाल थे, नख बड़े-बड़े थे, दांत लम्बे थे और वे देखने में भयानक थे ।।५०।। उनका वर्ण काला था हाथ में लोहे की वेणी लिए थे, वे भयभीत करने वाले थे । वे कहते थे सम्पूर्ण प्राणियों के लिए भयङ्कर इस पापी को बाँध दो ।।५१।। इसने कभी किसी प्राणी का मन से भी उपकार नहीं किया है । यह परस्त्री, परद्रव्य तथा परद्रोह करने में ही लगा रहता था ।।५२।। अतएव मैं इसकी लम्बी जीभ को मैं खीच लेता हूँ । दूसरा कहता था कि मैं इसकी आँखें निकला लेता हूँ ।।५३।। एक कहता था मैं इसके हाथ को काट देता हूँ । दूसरा कहता था कि मैं इस दुष्ट के दोनों कानों को काट देता हूँ ।।५४।। इस तरह से कहते

एकोदूतस्तदा सर्परूपं धृत्वाऽदशत्पदे । स दष्टमात्रःसहसा गतासुःपर्यजायत ॥५६॥
तदा तं लोहपाशेन बद्ध्वा ते यमकिङ्कराः। काशाभिस्ताडयामासुर्मुद्गरैः प्राहरन्क्रुधा ॥५७॥
अहो दुष्ट ! दुरात्मंस्त्वं कदाचिन्नाचरः शुभम् ।
मनसाऽपि यतस्त्वां वै क्षेप्स्यामो रौरवेषु च ॥५८॥
त्वङ्मासं वायसा रौद्रा भक्षयिष्यन्ति वै क्रुधा ।
आजन्मतस्तु भवता न कृतं हरिसेवनम् ॥५९॥
त्वया कलत्रपुत्राद्या द्रोहं कृत्वा सुपोषिताः। न कदाचित्स्मृतो देवः पापहारी जनार्दनः ॥६०॥
तस्मात्त्वां लोहशङ्कौ वा कुम्भीपाके च रौरवे ।
धर्मराजाज्ञया सर्वे नेष्यामो बहुताडनैः ॥६१॥
एवमुक्त्वा यदा नेतुं समैच्छन्यमकिङ्कराः । तावत्प्राप्तो महाविष्णुचरणाब्जपरायणः ॥६२॥
यमदूतास्तदा दृष्टा वैष्णवेन महात्मना । पाशमुद्गरदण्डादिदुष्टायुधधरा गणाः ॥६३॥
पुल्कसं लोह निगडैर्बद्ध्वा यातुं समुद्यताः ।
बन्ध बन्ध ग्रस च्छिन्धि भिन्धि भिन्धीति वादिनः ॥६४॥
तदा कृपालुस्तं प्रेक्ष्य पद्मनाभपरायणः । अत्यन्तकृपयायुक्तं चेतस्तत्र तदाऽकरोत्॥६५॥
असौ महादुष्टपीडां मा यातु मम सन्निधौ। मोचयाम्यहमद्यैव यमदूतेभ्य एव च ॥६६॥
इति कृत्वा मतिं तस्मिन्कृपायुक्तो मुनीश्वरः ।
शालग्रामशिलां हस्ते गृहीत्वाऽस्य गतोऽन्तिके ॥६७॥
तस्य पादोदकं पुण्यं तुलसीदलमिश्रितम् । मुखे विनिक्षिपन्कर्णे रामनाम जजाप ह ॥६८॥

हुए वे सब अपना दाँत पीस रहे थे । इस तरह से वहुत अधिक वोलते हुए वे सव आयुध लिए हुए उसके सामने आकर खड़े हो गये ॥५५॥ उस समय एक यमदूत सांप बनकर उसके पैर में काटते लिया । काटते ही वह मरकर गिर पड़ा ॥५६॥ उस समय उसको लोहे के पाश में बाँध कर यमदूत कोड़े से पीटे और उस पर क्रोध पूर्वक मुद्गर का प्रहार किए ॥५७॥ उन सबों ने कहा— अरे दुष्ट ! तुमने कभी भी पुण्य कर्म मन से भी नहीं किया है; अतएव हमलोग तुम्हें रौरव नरक में डाल देंगे ॥५८॥ तुम्हारे चमड़े और मांस को कौए क्रोध पूर्वक खायेंगे। तुमने जीवन में कभी भी श्रीहरि की सेवा नहीं की ॥५९॥ तुमने द्रोह करके अपने पुत्रों और पत्नी का पालन किया है, तुमने कभी भी पापापहारी भगवान् जनार्दन का स्मरण भी नहीं किया है ॥६०॥ अतएव तुमको लोहशङ्कु या कुम्भीपाक या रौरव नरक में खूब पीटते हुए हमलोग यमराज की आज्ञा से ले जायेंगे ॥६१॥ इस तरह से कहकर यमदूत उसे ले जाना चाहे, उसी समय वहाँ पर भगवान् विष्णु का सेवक कोई वैष्णव वहाँ आ गया ॥६२॥ उस समय वैष्णव ने यमदूतों को देखा वे सवके सव अपने हाथ में पाश, मुद्गर और दण्ड इत्यादि भयङ्कर आयुध धारण किए थे ॥६३॥ पुल्कस को लोहे की वेणी में वाँधकर वाँध दो, खा जाओ, काट डालो, तोड़ डालो इसतरह से कहते हुए जब वे सब जाने के लिए तैयार हुए ॥६४॥ उस समय अत्यन्त दयालु भगवद् भक्त मुनीश्वर उसको देखकर अपने मन में दया से भर गये ॥६५॥ यह मेरे सन्निकट में इस भयङ्कर पीड़ा को न प्राप्त करे; अतएव मैं इसे यमदूतों से छुड़ाता हूँ ॥६६॥ इस तरह से उसके विषय में कृपा से युक्त बुद्धि बनाकर वे अपने हाथ पर शालग्राम शिला रखकर उसके सन्निकट में गये ॥६७॥ उसके मुख में तुलसीदल

तुलसीं मस्तके तस्य धारयामास वैष्णवः । शिलां हृदि महाविष्णोर्धृत्वा प्राह स वैष्णवः ॥६९॥
गच्छन्तु यमदूता वै यातनासुपरायणाः। शालग्रामशिलास्पर्शो दहतात्पातकं महत् ॥७०॥
इत्युक्तवति तस्मिन्वै गणा विष्णोर्महाद्भुताः ।
आययुस्तस्य सविधे शिलास्पर्शाद् गतांहसः ॥७१॥
पीतवस्त्राःशङ्खचक्रगदापद्मविराजिताः । आगत्य मोचयामासुर्लोहपाशाद्दुरासदात् ॥७२॥
मोचयित्वा महापापकारकं पुल्कसं नरम्। ऊचुः किमर्थं बद्धोऽयं वैष्णवः पूज्य देहभृत्॥७३॥
कस्याज्ञाकारका यूयं यदधर्मप्रकारकाः। मुञ्चन्तु वैष्णवं त्वेनं किमर्थं विधृतो ह्ययम् ॥७४॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य जगदुर्यमकिङ्कराः। धर्मराजाज्ञया प्राप्ता नेतुं पापिनमुद्यताः ॥७५॥
नासौ कदाचिन्मनसा प्राणिमात्रोपकारकः। प्राणिहत्यामहापापकारी दुष्टशरीभृत् ॥७६॥
नृन्बहूंस्तीर्थयात्रायां गच्छतोऽसौ व्यलुण्ठयत् ।
परदाररतो नित्यं सर्वपापाधिकारकः ॥७७॥
तस्मान्नेतुं वयं प्राप्ताःपापिनं पुल्कसं नरम्। भवद्भिर्मोचितःकस्मादकस्मादागतैर्भटैः ॥७८॥

विष्णुदूता ऊचुः

ब्रह्महत्यादिकं पापं प्राणिकोटिवधोद्भवम् । शालग्रामशिलास्पर्शःसर्वं दहति तत्क्षणात् ॥७९॥
रामेति नाम चच्छ्रोत्रे विश्रम्भादागतं यदि। करोति पापसन्दोहं तूलं वह्निकणो यथा॥८०॥
तुलसी मस्तके यस्य शिलाहृदि मनोहरा। मुखे कर्णेऽथ वा राम नाम मुक्तस्तदैव सः ॥८१॥
तस्मादनेन तुलसी मस्तके विधृता पुरा। श्रावितं रामनामाशु शिलाहृदि सुधारिता ॥८२॥

मिश्रित श्रीभगवान् का चरणोदक डाल दिये और उसके कान में रामनाम का उपदेश कर दिए ॥६८॥ उन श्रीवैष्णव ने उसके मस्तक पर तुलसी रख दिया । उसके हृदय पर शालग्राम शिला को रखकर वे श्रीवैष्णव कहे॥६९॥ सदा यातना देने वाले यमदूत चाले जायँ और शालग्राम शिला का स्पर्श इसके पापों को भस्म कर दे ॥७०॥ इस तरह से कहने पर वहाँ पर भगवान् विष्णु के अत्यन्त अद्भुत गण आ गये, क्योंकि शिला के स्पर्श से उसके पाप विनष्ट हो गये थे ॥७१॥ पीताम्बर धारण किए हुए तथा शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म से सुशोभित वे आकर उसको भयङ्कर लौह पाश से मुक्त कर दिए ॥७२॥ उस महापापी पुल्कस मनुष्य को छुड़ाकर कहे कि देहधारी इस पूज्य वैष्णव को तुमलोगों ने क्यों बाँधा था ?॥७३॥ तुमलोग अधर्म करने वाले किसके दूत हो। इस वैष्णव को छोड़ों, क्यों इन्हें पकड़े हो ?॥७४॥ इस वाक्य को सुनकर यमदूतों ने कहा हमलोग धर्मराज की आज्ञा से इस पापी को लेने आये हैं ॥७५॥ इसने कभी मन से भी किसी प्राणी का उपकार नहीं किया है, यह दुष्ट शरीरधारी महापाप करने वाला तथा प्राणियों की हत्या करने वाला है ॥७६॥ तीर्थ यात्रा में जाने वाले अनेक यात्रियों को इसने लूट लिया है । सभी पापों को करने वाला सदा परस्त्री में ही आसक्त रहा ॥७७॥ इसीलिए इस पुल्कस पापी मनुष्य को लेने के लिए हमलोग आये हैं । अकस्मात् आकर आपलोगों ने इसे किस कारण से छुड़ा दिया ॥७८॥ **भगवान् विष्णु के दूतों ने कहा—** ब्रह्महत्या इत्यादि पाप तथा करोड़ों प्राणियों का वध करने से उत्पन्न पाप को शालग्राम शिला का स्पर्श क्षण भर में विनष्ट कर देता है ॥७९॥ जिसके कान में विश्वास पूर्वक श्रीराम यह शब्द पड़ जाता है वह सम्पूर्ण पाप समूह को उसी तरह से भस्म कर देता है जिस तरह अग्नि का कण तूल राशि को भस्म कर देता है ॥८०॥ जिसके मस्तक पर तुलसी और हृदय पर शालग्राम शिला होती है तथा जिसके मुख में अथवा कान में राम का नाम आ जाता है, वह उसी क्षण मुक्त हो जाता है ॥८१॥ इसीलिए इसने पहले अपने मस्तक पर तुलसी रखा रामनाम का श्रवण किया और हृदय पर शालग्राम शिला

तस्मात्पापसमूहोऽस्य दग्धः पुण्यकलेवरः । यास्यते परमं स्थानं पापिनां यत्सुदुर्ल्लभम् ॥८३॥
वर्षायुतं तत्र भुक्त्वा भोगान्सर्वमनोहरान् । भारते जन्म सम्प्राप्य समाराध्य जगद्गुरुम् ॥८४॥
प्राप्स्यते परमं स्थानं सुरासुरसुदुर्ल्लभम्। न ज्ञातो महिमा सम्यक्छिलायाःपरमेष्ठिनः ॥८५॥
दृष्टा स्पृष्टाऽर्चिता वापि सर्वपापहरा क्षणात् ।
इत्युक्त्वा विरताः सर्वे महाविष्णोर्गणा मुदा ॥८६॥
याम्यास्ते किङ्करा राज्ञे कथयामासुरद्भुतम् । वैष्णवो हर्षमापेदे रघुनाथपरायणः ॥८७॥
मुक्तोऽसौ यमपाशाच्च गमिष्यति परं पदम् ।
तदाऽऽजगाम विमलं किङ्किणीजालमण्डितम् ॥८८॥
विमानं देवलोकात्तु मनोहरि महाद्भुतम् । तत्रारुह्य गतःस्वर्गं महापुण्यैर्निषेवितम्॥८९॥
भोगान्भुक्त्वा स विपुलानाजगाम महीतलम् ।
काश्यां जन्म समासाद्य शुचिवाडवसत्कुले ॥९०॥
आराध्य जगतामीशं गतवान्परमं पदम् । स पापी साधुसङ्गत्या शालग्रामशिलां स्पृशन्॥९१॥
महापीडाविनिर्मुक्तो गतवान्परमं पदम् । मया तेऽभिहितं राजन्गण्डकीचरितं महत् ॥९२॥
श्रुत्वा विमुच्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥९३॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
गण्डकीमाहात्म्यं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥

* * *

रखा ॥८२॥ अतएव इसका सम्पूर्ण पाप समूह भस्म हो गया इसका शरीर पवित्र हो गया । अव यह पापियों के लिए अत्यन्त दुर्लभ परम पद में जायेगा ॥८३॥ वहाँ पर दश हजार वर्षों तक हर प्रकार से मनोहर भोगों को भोग कर भारत वर्ष में जन्म प्राप्त करके जगद्गुरु भगवान् विष्णु की आराधना करके ॥८४॥ देवताओं और असुरों के लिए भी अत्यन्त दुर्लभ परमपद को प्राप्त करेगा । शालग्राम शिला की महिमा को व्रह्माजी भी अच्छी तरह से नहीं जानते हैं ॥८५॥ शालग्राम शिला दर्शन, स्पर्श या पूजा करने मात्र से भी उसी क्षण सभी पापों को विनष्ट कर देती है । इस तरह से कहकर भगवान् विष्णु के गण चुप हो गये ॥८६॥ यमराज के दूत इस अद्भुत वृत्तान्त को यमराज को सुनाये । यह सुनकर श्रीरामभक्त वैष्णव यमराज भी प्रसन्न हो गये ॥८७॥ मुक्त होकर वह परम पद को चला गया। उस समय छोटे-छोटे घुंघुरुओं से अलंकृत विमल ॥८८॥ विमान वहाँ देवलोक से आया । वह भी महापुण्यवान् पुरुषों से सुसेवित उस विमान पर वैठकर चला गया ॥८९॥ प्रभूत मात्रा में भोगों को भोगकर फिर वह पृथिवी पर आया और काशी में पवित्र व्राह्मण के वंश में जन्म लिया ॥९०॥ वह पापी साधु पुरुषों की सङ्गति और शालग्राम शिला का स्पर्श करके तथा संसार के स्वामी श्रीभगवान् की आराधना करके परम पद को प्राप्त कर लिया ॥९१॥ वह महापीड़ा से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त किया, इस तरह से मैंने आपको गण्डकी नदी का माहात्म्य वतलाया ॥९२॥ इसका श्रवण करने वाला पापों से रहित होकर भोग तथा मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥९३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शेष वात्स्यायन सम्वादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण
में गण्डकी माहात्म्य वर्णन नामक बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य)
कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०।।

* * *

इक्कीसवाँ अध्याय

सुमतिरुवाच

एतन्माहात्म्यमतुलं गण्डक्याःकर्णगोचरम्। कृत्वा कृतार्थमात्मानममन्यत नृपोत्तमः ॥१॥
स्नात्वा तीर्थे पितृन्त्सर्वान्त्सन्तर्प्य जहृषे महान् ।
शालग्रामशिलापूजां कुर्वन्वाडववाक्यतः ॥२॥
चतुर्विंशच्छिलास्तत्र गृहीत्वा स नृपोत्तमः। पूजयामासप्रेम्णा च चन्दनाद्युपचारकैः ॥३॥
तत्र दानानि दत्त्वा च दीनान्धेभ्यो विशेषतः ।
गन्तुं प्रचक्रमे राजा पुरुषोत्तममन्दिरम् ॥४॥
एवं क्रमेण सम्प्राप्तो गङ्गासागरसङ्गमम्। कृत्वाऽक्षिगोचरं तं च ब्राह्मणं पृष्टवान्मुदा ॥५॥
स्वामिन्वद कियद् दूरे नीलाख्यः पर्वतो महान् ।
पुरुषोत्तमसंवासः सुरासुरनमस्कृतः ॥६॥
तदा श्रुत्वा महद्वाक्यं रत्नग्रीवस्य भूपतेः। उवाच विस्मयाविष्टो राजानं प्रति सादरम् ॥७॥
राजन्नेतत्स्थलं नीलपर्वतस्य नमस्कृतम् । किमर्थं दृश्यते नैव महापुण्यफलप्रदम् ॥८॥
पुनःपुनरुवाचेदं स्थलं नीलस्य भूभृतः । कथं न दृश्यते राजन्पुरुषोत्तमवासभृत् ॥९॥
अत्र स्नानं मया सम्यग्भिल्लात्राक्षिगोचराः ।
अनेनैव पथा राजन्नारूढं पर्वतोपरि ॥१०॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य विव्यथे मानसे नृपः । नीलभूधरदर्शाय कुर्वन्नुत्कण्ठितं मनः ॥११॥
उवाच तत्कथं विप्र ! दृश्येत पुरुषोत्तमः। कथं वा दृश्यते नीलस्तदुपायं वदस्व नः ॥१२॥

नीलगिरि पर जाकर राजा रत्नग्रीव का भगवान् पुरुषोत्तम की स्तुति करना

सुमति ने कहा— गण्डकी नदी के इस उत्तम माहात्म्य को सुनकर राजा रत्नग्रीव अपने को कृत-कृत्य मान लिए ॥१॥ वे उस तीर्थ में स्नान करके तथा समस्त पितृगणों का तर्पण करके अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव किए और ब्राह्मण की आज्ञा प्राप्त करके शालग्राम की पूजा किए ॥२॥ वहाँ पर चौबीस शिलाओं को लेकर राजा ने उसकी वन्दना आदि उपचारों से पूजा की ॥३॥ वहाँ पर विशेष रूप से दीनों तथा अन्धों को दान देकर पुरुषोत्तम मन्दिर जाने के लिए वे चल पड़े ॥४॥ इस तरह से वे क्रमशः गङ्गासागर सङ्गमस्थल में गये । उस तीर्थ का दर्शन करके उन्होंने ब्राह्मण से पूछा ॥५॥ हे स्वामिन् ! यहाँ से कितना दूर नील पर्वत है । जिस पर भगवान् पुरुषोत्तम का निवास है और वह देवताओं एवं असुरों से नमस्कृत पर्वत है ॥६॥ उसके बाद राजा रत्नग्रीव के वाक्य को सुनकर विस्मय से युक्त होकर ब्राह्मण ने आदर पूर्वक कहा ॥७॥ हे राजन् ! यह नील पर्वत का ही स्थान है, आप उस पुण्य फल को प्रदान करने वाले उस पर्वत को क्यों नहीं देख पा रहे हैं ॥८॥ ब्राह्मण ने बार-बार राजा से कहा कि यह नील पर्वत का स्थान है; हे राजन् ! भगवान् पुरुषोत्तम के स्थान भूत यह आपको क्यों नहीं दिखता है ?॥९॥ यहीं पर मैंने स्नान करके उन भिल्लों को देखा था । और इस मार्ग से मैं पवर्त पर चढ़ा था इस तरह से उस ब्राह्मण के वाक्य को सुनकर राजा के मन में अत्यन्त कष्ट हुआ उनका मन नील पर्वत का दर्शन करने के लिए उत्कण्ठित था ॥१०-११॥ राजा ने कहा— हे विप्र ! पुरुषोत्तम का दर्शन कैसे हो सकता

तदा वाक्यं समाकर्ण्य रत्नग्रीवस्य भूपतेः। तापसो ब्राह्मणो वाक्यमुवाच नृप ! विस्मितः॥१३॥
गङ्गासागरसंयोगे स्नात्वाऽस्माभिर्महीपते । स्थातव्यं तावदेवात्र यावन्नीलो न दृश्यते ॥१४॥
गीयते पापहा देवः पुरुषोत्तमसंज्ञितः। करिष्यते कृपामाशु भक्तवत्सलनामधृत् ॥१५॥
त्यजत्यसौ न वै भक्तान्देवदेवशिरोमणिः । अनेके रक्षिता भक्तास्तत्त्रायस्व महामते ! ॥१६॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य राजा व्यथितचेतसा ।
स्नात्वा गङ्गाब्धिसंयोगे ततोऽनशनमादधात् ॥१७॥
करिष्यति कृपां यर्हि दर्शने पुरुषोत्तमः । पूजां कृत्वाऽशनं कुर्यामन्यथाऽनशनं व्रतम् ॥१८॥
इति कृत्वा सनियमं गङ्गासागररोधसि। गायन्हरिगुणग्राममुपवासमथाचरत् ॥१९॥

राजोवाच

जय दीनदयाकर ! प्रभो ! जय दुःखापह ! मङ्गलाह्वय ! ।
जय भक्तजनार्तिनाशन ! कृतवर्ष्मञ्जय दुष्टघातक ! ॥२०॥
अम्बरीषमथ वीक्ष्य दुःखितं विप्रशापहतसर्वमङ्गलम् ।
धारयन्निजकरे सुदर्शनं संररक्ष जठराधिवासतः ॥२१॥
दैत्यराजपितृकारितव्यथः शूलपाशजलवह्निपातनैः ।
श्रीनृसिंहतनुधारिणा त्वया रक्षितः सपदि पश्यतः पितुः ॥२२॥
ग्राहवक्त्रपतिताङ्घ्रिमुद्भटं वारणेन्द्रमतिदुःखपीडितम् ।
वीक्ष्य साधु करुणार्द्रमानसस्त्वं गरुत्मति कृतारुहक्रियः ॥२३॥

है ? आप उस उपाय को बतलायें जिससे कि नील पर्वत का दर्शन हो सके ॥१२॥ राजा रत्नग्रीव के वाक्य को सुनकर तपस्वी ब्राह्मण आश्चर्यचकित होकर कहे ॥१३॥ हे राजन् ! गङ्गासागर सङ्गम स्थल पर स्नान करके हमलोगों को तब तक यहीं रुकना चाहिए जब तक कि नील पर्वत का दर्शन न हो जाय ॥१४॥ भगवान् पुरुषोत्तम भक्त वत्सल कहे जाते हैं । ये पापों का विनाश करने वाले हैं अवश्य दया करेंगे ॥१५॥ ये देवाराध्य शिरोमणि हैं । ये अपने भक्तों का परित्याग नहीं करते है । इन्होने अनेक भक्तों की रक्षा की है, अतएव आप इनका कीर्तन करें ॥१६॥ इस बात को सुनकर राजा का अन्तःकरण दुःखी हो गया । गङ्गासागर सङ्गम स्थल में स्नान करके राजा ने अनशन प्रारम्भ कर दिया ॥१७॥ जब भगवान् पुरुषोत्तम कृपा करके मुझे दर्शन देंगे तब उनका पूजन करके ही मैं भोजन करूँगा ॥१८॥ इस तरह से नियम करके राजा गङ्गा सागर के तट पर श्रीहरि के गुणसमूह का गायन करते हुए उपवास करना प्रारम्भ कर दिए ॥१९॥ **राजा ने कहा**— हे दीनों पर दया करने वाले प्रभो ! आपकी जय हो । हे दुःख दूर करने वाले, हे मङ्गलस्वरूप ! आपकी जय हो । हे भक्तों के कष्ट को दूर करने वाले शरीर धारण करने वाले ! आपकी जय हो । हे दुष्टों का विनाश करने वाले ! ॥२०॥ ब्राह्मण के शाप से जिनका सारा मङ्गल विनष्ट हो गया था उन अम्बरीष का दुःखी देखकर अपने हाथ में सुदर्शन चक्र धारण करके उनकी रक्षा आपने की ॥२१॥ दैत्य राज हिरण्यकशिपु के द्वारा शूल, पाश, जल तथा अग्नि के प्रहार से दुःखी बनाये गये प्रह्लाद की आपने नृसिंह शरीर धारण करके रक्षा सबों के सामने की ॥२२॥ जिसके पैर को ग्राह ने अपने मुख से पकड़ लिया था । इस तरह से अत्यन्त दुःखी गजराज को पीड़ित देखकर करुणा क्रान्त मन वाले आपने गरुड़ पर चढ़कर ॥२३॥ आये हुए आप गरुड़ को छोड़कर अपने हाथ में चक्र लेकर जब वेग

त्यक्तपक्षिपतिरात्तचक्रको वेगकम्पयुतमालिकाम्बरः ।
गीयसेऽसुभिरमुष्य नक्रतो मोचकः सपदि तद्विनाशकः ॥२४॥
यत्र यत्र तव सेवकार्दनं तत्र तत्र वत देहधारिणा ।
पाल्यते च भवता निजः प्रभो पापहारि चरितैर्मनोहरैः ॥२५॥
दीननाथ ! सुरमौलिहीरकाधृष्टपादतलभक्तवल्लभ ! ।
पापकोटिपरिदाहक ! प्रभो ! दर्शयस्व मम पादपङ्कजम्॥२६॥
पापकृद्यदि जनोऽयमागतो मानसे तव तथा हि दर्शय ।
तावका वयमघौघनाशनं विस्मृतं न हि सुरासुरार्चित ॥२७॥
ये वदन्ति तव नाम निर्मलं ते तरन्ति सकलाघसागरम् ।
संस्मृतिर्यदिकृता तदा मया प्राप्यतां सकलदुःखवारक ! ॥२८॥

सुमतिरुवाच

एवं गायान्गुणान्रात्रौ दिवा वापि महीपतिः। क्षणमात्रं न विश्रान्तो निद्रामाप न वै सुखम्॥२९॥
गायन्गाच्छन्गृणंस्तिष्ठन्वदत्येतदहर्निशम् । दर्शयस्व कृपानाथ स्वतनुं पुरुषोत्तम !॥३०॥
एवं राज्ञः पञ्चदिनं गतं गङ्गाब्धिसङ्गमे । तदा कृपाब्धिःकृपया चिन्तयामास गोपतिः ॥३१॥
असौ राजा मदीयेन गानेन विगताघकः । पश्यतान्मामकींप्रेष्ठां सुरासुरनमस्कृताम् ॥३२॥
इति सञ्चिन्त्य भगवान्कृपापूरितमानसः । संन्यासिवेषमास्थाय ययौ राज्ञोऽन्तिकं विभुः॥३३॥
तत्र गत्वा महाराज त्रिदण्डियतिवेषधृत् । भक्तानुकम्पया प्राप्तो वीक्षितस्तापसेन हि ॥३४॥
ॐ नमो विष्णवेत्युक्त्वा नमश्चक्रे नृपोत्तमः ।
अर्घ्यपाद्यासनैःपूजां चकार हरिमानसः ॥३५॥

के कारण उस समय आपके वस्त्र और माला काँप रहे थे आपने ग्राह को मारकर गजेन्द्र के प्राणों की रक्षा की यह प्रख्यात है ॥२४॥ जहाँ-जहाँ पर आपके सेवक को कष्ट होता है, वहाँ-वहाँ पर देह धारण करने वाले हे प्रभो ! अपने मनोहर चरित्रों के द्वारा आप भक्तों की रक्षा करते हैं ॥२५॥ हे दीनों के नाथ ! हे देवताओं के मुकुटमणियों से संस्पृष्ट चरण वाले प्रभो ! हे भक्त बल्लभ ! हे करोड़ों पापों को भस्म कर देने वाले प्रभो ! आप अपने चरण कमलों का दर्शन करायें ॥२६॥ यदि आपके मन में यह हो कि यह पापी आया है तो भी आप दर्शन दें। हम आपके ही भक्त हैं, हे देवों तथा असुरों से पूजित भगवन हम आपके पापनाशक स्वभाव को भूले नहीं है ॥२७॥ जो लोग आपके निर्मल नामों का उच्चारण करते हैं, वे सम्पूर्ण पाप समूह को पार कर जाते हैं। यदि मैंने संसार को ही बढ़ाया है तो भी हे सारे दुःखों को दूर करने वाले भगवन् ! आप मुझे प्राप्त हों ॥२८॥ **सुमति ने कहा—** इस तरह से दिन-रात श्रीभगवान् के गुणों को गाते हुए राजा क्षणभर भी विश्राम नहीं लिए। उनको न नींद आती थी और न सुख मिलता था ॥२९॥ वे बैठे हुए चलते हुए दिन-रात इस तरह से गा रहे थे। वे कहते थे हे कृपानाथ पुरुषोत्तम ! आप दर्शन दें ॥३०॥ इस तरह से राजा के गङ्गा सागर के तट पर पाँच दिन बीत गये। उसके बाद पृथिवी पति कृपासागर ने विचार किया ॥३१॥ यह राजा मेरा सङ्कीर्तन करके पाप रहित हो गया है अतएव यह मेरे प्रिय तथा देवों एवं असुरों से नमस्कृत शरीर का दर्शन प्राप्त करे ॥३२॥ इस तरह से विचार करके कृपा से परिपूर्ण मन वाले श्रीभगवान् संन्यासी का वेष धारण करके राजा के सन्निकट गये॥३३॥

उवाच   भाग्यमतुलं यद्भवानक्षिगोचरः । अतःपरं दास्यते मे गोविन्दो निजदर्शनम् ॥३६॥
इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं संन्यासी निजगाद तम् ।
राजञ्छृणुष्व कथितं मम वाक्यं विनिःसृतम् ॥३७॥
अहं ज्ञानेन जानामि भूतं भव्यं भवच्च यत् ।
तस्मादहंब्रुवे किञ्चिच्छृणुष्वैकाग्रमानसः ॥३८॥
श्वो मध्याह्ने हरिर्दाता दर्शनं ब्रह्म दुर्ल्लभम् ।
पञ्चभिः स्वजनैः साकं यास्यसे परमं पदम् ॥३९॥
त्वममात्यश्च महिला तव तापस वाडवः । पुरे तव करम्बाख्यःसाधुश्च तन्तुवायकः ॥४०॥
एतैःपञ्चभिरेतस्मिन्नीले   पर्वतसत्तमे। यास्यसे   ब्रह्मदेवेन्द्रवन्दितं   सुरपूजितम्॥४१॥
इत्युक्त्वाऽदृश्यतां प्राप्तो यतिः क्वापि न दृश्यते ।
तदाकर्ण्य नृपो हर्षं प्राप चाशु स विस्मयम् ॥४२॥

राजोवाच

स्वामिन्कोऽसौ समागत्य संन्यासी मां यदूचिवान् ।
न दृश्यते पुनः कुत्र गतोऽसौ चित्तहर्षदः ॥४३॥

तापस उवाच

राजंस्तव   महाप्रेम्णाकृष्टचित्तःसमभ्यगात्। पुरुषोत्तम   नामायं   सर्वपापप्रणाशनः॥४४॥
श्वो मध्याह्ने तव पुरो भविष्यति महान्गिरिः ।
तमारुह्य हरिं दृष्ट्वा कृतार्थस्त्वं भविष्यसि ॥४५॥

हे महाराज ! वहाँ जाकर त्रिदण्डि संन्यासी का वेष धारण करके भक्तों पर अनुकम्पा करने के कारण प्राप्त हुए तपस्वी को राजा ने देखा ॥३४॥ राजा ने **ओं नमो विष्णवे** कहकर उनको नमस्कार किया । उनको श्रीहरि मानकर राजा ने अर्घ्य, पाद्य तथा आचमन आदि उपचारों से उनकी पूजा की ॥३५॥ **राजा ने कहा—** आपका दर्शन हुआ यह मेरा अतुलनीय भाग्य है । अब मुझे भगवान् गोविन्द दर्शन देंगे ॥३६॥ यह सुनकर संन्यासी ने राजा से कहा राजन् आप मेरी वाणी को सुनें ॥३७॥ मैं अपने ज्ञान से भूत, भविष्य और वर्तमान को जानता हूँ । अतएव मैं आपको कह रहा हूँ उसे ध्यान पूर्वक सुनें ॥३८॥ कल दोपहर में आपको ब्रह्मादि देवताओं को भी दुर्लभ भगवान् दर्शन देंगे । आप अपने पाञ्च बान्धवों के साथ परम पद जायेंगे ॥३९॥ तुम, तुम्हारे मन्त्री, तुम्हारी पत्नी और तपस्वी ब्राह्मण तथा तुम्हारी नगरी में रहने वाला करम्ब नामक जुलाहा ॥४०॥ इन पाञ्चों के साथ आप पर्वत श्रेष्ठ एवं देवताओं द्वारा पूजित नील पर्वत पर जायेंगे । यह पर्वत ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि देवताओं से पूजित है ॥४१॥ इस तरह से कहकर यति अदृश्य हो गये, वे कहीं दिखायी नहीं पड़े । उसको सुनकर राजा आश्चर्यित और हर्षित हो गये ॥४२॥ **राजा ने कहा—** हे स्वामिन् ! जो आकर मुझसे कहे, वे संन्यासी कहाँ चले गये ? मेरे चित्त को हर्ष प्रदान करने वाले वे कहीं नहीं दिखते हैं ॥४३॥ **तपस्वी ने कहा—** राजन् ! आपके महाप्रेम के कारण आकृष्ट होकर सभी पापों को विनष्ट करने वाले ये भगवान् पुरुषोत्तम आये थे ॥४४॥ कल दोपहर में महापर्वत आपके सामने होगा, उस पर चढ़कर तथा श्रीहरि का दर्शन करके तुम कृतार्थ हो जाओगे ॥४५॥ इस वाक्य के अमृत प्रवाह से जिनके अन्त:करण का सन्ताप नष्ट हो गया था, उस राजा ने जिस

इति वाक्यसुधापूरनाशितस्वान्तसज्ज्वरः । हर्षं यमाप स नृपो ब्रह्माऽपि न हि वेत्ति तम्॥४६॥
तदा दुन्दुभयो नेदुर्वीणापणवगोमुखाः । महानन्दस्तदा ह्यासीद्राजराजस्य चेतसि ॥४७॥
गायन्हरिं क्षणं तिष्ठन्हसञ्जल्पन्ब्रुवन्नमन् । आनन्दं प्राप सुघनं सर्वसन्तापनाशनम्॥४८॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
संन्यासिदर्शनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

* * *

बाइसवाँ अध्याय

सुमति रुवाच

अथ एवं दिनं नीत्वा हरिस्मरणकीर्तनैः । रात्रौ सुष्वाप गङ्गाया रोधस्युरुफलप्रदे॥१॥
ददर्श स्वप्नमध्ये तु स स्वात्मानं चतुर्भुजम्। शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गकोदण्डधारिणम् ॥२॥

नृत्यन्तं पुरुषोत्तमस्य पुरतः शर्वादि देवैःसह,
श्रीमद्भिः स्वतनूयुतैररिगदाम्बूत्थाब्जहेत्यादिभिः ।
विष्वक्सेनवरैर्गणैः सुतनुभिः श्रीशं सदोपासितं,
दृष्ट्वा विस्मयमाप लोकविषयं हर्षं तथाऽत्यद्भुतम् ॥३॥

ददतं मनसोऽभीष्टं पुरुषोत्तमसंज्ञितम्। आत्मानं च कृपापात्रममन्यत महामतिः ॥४॥

हर्ष को प्राप्त किया उसे ब्रह्माजी भी नहीं जानते हैं ॥४६॥ उस समय दुन्दुभियाँ, वीणा, पणव तथा गोमुख आदि वाद्य वजने लगे और राजराजेश्वर के अन्तःकरण में महानन्द की प्राप्ति हुयी ॥४७॥ श्रीहरि का गायन करते हुए वे क्षणभर रुक जाते थे, आलाप लेते हुए बातें करते हुए, नमस्कार करते हुए राजा को सारे सन्तापों को नष्ट करने वाला अत्यधिक आनन्द प्राप्त हुआ ॥४८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में संन्यासी दर्शन नामक इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।

* * *

नीलगिरि पर्वत महिमा वर्णन

सुमति ने कहा— श्रीहरि के स्मरण और कीर्तन के द्वारा सम्पूर्ण दिन को बिताकर राजा रात्रि में महान् फल प्रदान करने वाले गङ्गा के तट में सोये । उन्होंने स्वप्न में अपने को चतुर्भुज रूप में देखा । शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और कोदण्ड (धनुष) धारण किए हुए उनका रूप था ॥१-२॥ भगवान् पुरुषोत्तम के समक्ष शिव आदि देवताओं के साथ अपने ऐश्वर्य सम्पन्न शरीरों के साथ गदा, जल में विकसित कमल तथा चक्र आदि तथा सुन्दर शरीर वाले विष्वक्सेन इत्यादि गणों के साथ नृत्य करते हुए तथा श्रीश की उपासना करते हुए अपने को देखकर राजा ने परलोक विषयिणी चिन्ता की और अत्यद्भुत हर्ष प्राप्त किया ॥३॥ भगवान् पुरुषोत्तम के द्वारा अभीष्ट

इत्येवं स्वप्नविषये ददर्श नृपसत्तमः। प्रातःप्रबुद्धो विप्राय जगाद स्वप्नमीक्षितम् ॥५॥
तच्छुत्वा बाडवो धीमान्कथयामास विस्मितः ।
राजंस्त्वयाऽसौ दृष्टो यः पुरुषोत्तमसंज्ञितः ॥६॥
दास्यते शङ्खचक्रादि चिह्नितां स्वतनुं हरिः। इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं रत्नग्रीवो महामनाः ॥७॥
दापयामास दानानि दीनानां मानसोचितम्। स्नात्वा गङ्गाब्धिसंयोगे तपर्ययित्वा पितृन्सुरान् ॥८॥
गायन्हरिगुणग्रामं प्रत्यैक्षत च दर्शनम्। ततो मध्याह्नसमये दिवि दुन्दुभयो मुहुः ॥९॥
नेदुःसुरकराघातबहुशब्दसुशब्दिताः । अकस्मात्पुष्पवृष्टिश्च बभूव नृपमस्तके ॥१०॥
धन्योऽसि नृपवर्य ! त्वं नीलं पश्याक्षि ।
शृणोतीति यदा वाक्यं नृपो देवप्रणोदितम् ॥११॥
तदा स सूर्यकोटीनामधिकान्तिधरोऽद्भुतः। राज्ञोऽक्षिगोचरो जातो नीलनामा महागिरिः ॥१२॥
राजतैःकानकैःशृङ्गैःसमन्तात्परिराजितः । किमग्निःप्रज्वलत्येष द्वितीयःकिमु भास्करः ॥१३॥
किमयं वैद्युतः पुञ्जो ह्यकस्मात्स्थिरकान्तिधृत् ।
तापसब्राह्मणो दृष्ट्वा नीलप्रस्थं सुशोभितम् ॥१४॥
राज्ञे निवेदयामास एष पुण्यो महागिरिः। तच्छुत्वा नृपतिश्रेष्ठःशिरसा प्रणनाम ह ॥१५॥
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि नीलो मे दृष्टिगोचरः ।
अमात्यो राजपत्नी च करम्बस्तन्तुवायकः ॥१६॥
नीलदर्शनसंहृष्टा बभूवुः पुरुषर्षभ !। पञ्चैते विजये काले नीलपर्वतमारुहन् ॥१७॥
महादुन्दुभिनिर्घोषाञ्छृण्वन्तो ह्यमरैःकृतान्। तस्योपरितने शृङ्गे चित्रपादपराजिते ॥१८॥

फल प्रदान किए जाते हुए राजा ने अपने को श्रीभगवान् का कृपा पात्र मान लिया ॥४॥ इस तरह से राजा ने स्वप्न देखा और प्रातःकाल उन्होंने जगकर ब्राह्मण को अपना स्वप्न वतलाया ॥५॥ उसको सुनकर वुद्धिमान ब्राह्मण ने आश्चर्यित होकर कहा— राजन् आपने जिसे देखा है वे भगवान् पुरुषोत्तम हैं ॥६॥ वे भगवान् आपको शङ्ख, चक्रांकित शरीर आपको प्रदान करेंगे यह सुनकर महामना रत्नग्रीव ने ॥७॥ गङ्गा सागर सङ्गम में स्नान करके देवताओं तथा पितरों का तर्पण करके अपने मनोऽनुकल दीनों को दान दिया ॥८॥ श्रीहरि के गुणों का गायन करते हुए वे दर्शन की प्रतीक्षा करने लगे। उसके बाद दोपहर के समय बार-बार दुन्दुभियाँ वजने लगीं। देवता उसे अपने हाथों के प्रहार से जोर-जोर से बजा रहे थे। अकस्मात् राजा के शिर पर पुष्पों की वृष्टि हुयी ॥९-१०॥ राजा ने देवताओं की राजन् ! आप धन्य हैं अपने आँखों से नीलगिरि को देखें। इस वाणी को सुना ॥११॥ उस समय करोड़ों सूर्य की कान्ति से भी अधिक कान्ति सम्पन्न अद्भुत नील नामक पर्वत को राजा ने अपनी आँखों से देखा ॥१२॥ उसके चारों ओर सुवर्ण और रजत के शिखर सुशोभित हो रहे थे। राजा सोचने लगे कि ये अग्नि जल रहे हैं अथवा दूसरे सूर्य हैं ॥१३॥ अथवा यह अकस्मात् विधुत् समूह स्थित कान्ति हैं ? तपस्वी ब्राह्मण ने सुन्दर नील पर्वत को देखकर ॥१४॥ राजा से कहा यही पवित्र महापर्वत है। उसे सुनकर राजश्रेष्ठ ने उसे नमस्कार किया ॥१५॥ मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया क्योंकि मैंने नीलगिरि को देख लिया है। मन्त्री, राजपत्नी तथा करम्बक नामक जुलाहे भी ॥१६॥ नील पर्वत के दर्शन से प्रसन्न हो गये। उसके वाद ये पाञ्चों अभिजित् मुहूर्त में नीलपर्वत पर चढ़े ॥१७॥ वे सब देवताओं के द्वारा बजाये गये दुन्दुभि की ध्वनि

ददर्श हाटकाबद्धं देवालयमनुत्तमम्। ब्रह्मागत्य सदा पूजां करोति परमेष्ठिनः ॥१९॥
नैवेद्यं कुरुते यत्र हरिसन्तोषकारकम् । दृष्ट्वाऽथ तत्र विमलं देवायतनमुत्तमम् ॥२०॥
प्रविवेश परीवारैःपञ्चभिःसह संवृतः। तत्र दृष्ट्वा जातरूपे महामणिविचित्रिते ॥२१॥
सिंहासने विराजन्तं चतुर्भुजमनोहरम्। चण्डप्रचण्डविजयजयादिभिरुपासितम् ॥२२॥
प्रणनाम सपत्नीको राजा सेवकसंयुतः । प्रणम्य परमात्मानं महाराजः सुरोत्तमम् ॥२३॥
स्नापयामास विधिवद्वेदोक्तैः स्नानमन्त्रकैः। अर्घ्यपाद्यादिकं चक्रे प्रीतेन मनसा नृपः ॥२४॥
चन्दनेन विलिप्यैनं सुवस्त्रे विनिवेद्य च । धूपमारार्तिकं कृत्वा सर्वस्वादु मनोहरम् ॥२५॥
नैवेद्यं भगवन्मूर्त्यै न्यवेदयदथो नृपः । प्रणम्य च स्तुतिं चक्रे तापसब्राह्मणेन च ॥२६॥
यथामति गुणग्रामगुम्फितस्तोत्रसञ्चयैः ॥२७॥

राजोवाच

एकस्त्वं पुरुषः साक्षाद्भगवान्प्रकृतेः परः। कार्यकारणतो भिन्नो महत्तत्त्वादिपूजितः॥२८॥
त्वन्नाभिकमलाज्जज्ञे ब्रह्मा सृष्टिविचक्षणः । तथा संहारकर्त्ता च रुद्रस्त्वन्नेत्रसम्भवः ॥२९॥
त्वयाऽऽज्ञप्तः करोत्यस्य विश्वस्य परिचेष्टितम् ।
त्वत्तो जातं पुराणाद्यज्जगत्स्थास्नु चरिष्णु च ॥३०॥
चेतनाशक्तिमाविश्य त्वमेनं चेतयस्यहो। तव जन्म तु नास्त्येव नान्तस्तव जगत्पते॥३१॥
वृद्धिक्षयपरीणामास्त्वयि सन्त्येव नो विभो। तथापि भक्तरक्षार्थं धर्मस्थापनहेतवे ॥३२॥
करोषि जन्मकर्माणि ह्यनुरुपगुणानि च । त्वयामात्स्यंवपुर्धृत्वाशङ्खस्तुनिहतोऽसुरः ॥३३॥

को सुन रहे थे । उसके ऊपर वाले शिखर पर जो विचित्र वृक्ष से सुशोभित था ॥१८॥ उन्होंने सुवर्ण निर्मित मन्दिर को देखा । वहाँ पर सदैव ब्रह्माजी आकर श्रीभगवान् की पूजा करते हैं ॥१९॥ वे श्रीभगवान् को सन्तुष्ट करने वाली वस्तुओं का भोग लगाते हैं । वहाँ पर निर्मल देव मन्दिर का दर्शन करके ॥२०॥ राजा अपने पाँचों परिवार के साथ उसमें प्रवेश किए । वहाँ पर महामणि से सुशोभित सुवर्ण के ॥२१॥ सिंहासन पर विराजमान चार भुजाओं वाले मनोहर तथा चण्ड-प्रचण्ड जय विजय जिनकी उपासना करते हैं ॥२२॥ ऐसे श्रीभगवान् को राजा ने पत्नी तथा सेवक के साथ प्रणाम करके महाराज ॥२३॥ वेदोक्त मन्त्रों श्रीभगवान् को विधिपूर्वक स्नान कराये । राजा ने प्रसन्न मन से भगवान् को अर्घ्य और पाद्य निवेदित किया ॥२४॥ राजा ने श्रीभगवान् को चन्दन लगाकर दो वस्त्र निवेदित किया । धूप तथा आरती करके उन्होंने समस्त स्वादिष्ट और मनोहर नैवेद्य निवेदित किया । फिर भगवान् को प्रणाम करके तपस्वी ब्राह्मण के साथ श्रीभगवान् की उन्होंने स्तुति की ॥२५-२६॥ उन्होंने अपनी बुद्धि के अनुसार गुण समूह के द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति की ॥२७॥ **राजा ने कहा**— हे भगवन्! एक मात्र आप प्रकृति से श्रेष्ठ पुरुष हैं । इस सम्पूर्ण कार्य कारण रूप जगत् से विलक्षण तथा महत् तत्त्व आदि से पूजित आप हैं ॥२८॥ आपके नाभिकमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुयी है । वे सृष्टि करने में निपुण हैं । आपके नेत्र से संहार करने वाले रुद्र की उत्पत्ति हुयी है ॥२९॥ आपकी आज्ञा प्राप्त करके ब्रह्माजी विश्व को चेष्टा सम्पन्न करते हैं । आपसे ही प्राचीन आदि स्थिर एवं जङ्गम जगत् उत्पन्न हुआ ॥३०॥ आप इस जगत् में चेतना शक्ति का प्रवेश कराकर चेतनायुक्त बनाते हैं । हे जगत्पते ! आप अनादि और अनन्त हैं ॥३१॥ हे विभो ! आपमें वृद्धि, क्षय और परिणाम आदि विकार नहीं होते हैं । फिर भी आप भक्तों की रक्षा करने के लिए और धर्म की

वेदाः सुरक्षिताः ब्रह्मन्महापुरुष ! पूर्वज !। शेषो न वेत्ति नापि त्वां भारत्यपि महेश्वरी ॥३४॥
किमुतान्ये महाविष्णो ! मादृशास्तु कुबुद्धयः ।
मनसा त्वां न चाप्नोति वागियं परमेश्वरी ॥३५॥
तस्मादहं कथं त्वां वै स्तोतुं स्यामीश्वरः प्रभो ! ।
इति स्तुत्वा स शिरसा प्रणाममकरोन्मुहुः ॥३६॥
गद्गदस्वरसंयुक्तो रोमहर्षाङ्किताङ्गकः । इति स्तुत्या प्रहृष्टात्मा भगवान्पुरुषोत्तमः ॥
उवाच वचनं सत्यं राजानं प्रति सार्थकम् ॥३७॥

श्रीभगवानुवाच

स्तव स्तुत्या प्रहर्षोऽभून्ममराजन्महामते । जानीहि त्वं महाराज मां च प्रकृतितःपरम् ॥३८॥
नैवेद्यभक्षणं त्वं हि शीघ्रं कुरु मनोहरम्। चतुर्भुजत्वमाप्तः सन्गन्ताऽसि परमं पदम् ॥३९॥
त्वत्कृतस्तुतिरत्नेन यो मांस्तोष्यतिमानवः । तस्यापि दर्शनं दास्ये भुक्तिमुक्तिवरप्रदम् ॥४०॥
इत्येवं वचनं राजा श्रुत्वा भगवतोदितम् । नैवेद्यभक्षणं चक्रे चतुर्भिःसह सेवकैः॥४१॥
ततो विमानं सम्प्राप्तं किङ्किणीजालमण्डितम् ।
अप्सरोवृन्दसंसेव्यं सर्वभोगसमन्वितम् ॥४२॥
पुरुषोत्तमसंज्ञं च पश्यन्राजा स धार्मिकः । ववन्दे चरणौ तस्य कृपापात्रकृतात्मकः ॥४३॥
तदाज्ञया विमाने स आरुह्य महिलायुतः । जगाम पश्यतस्तस्य दिवि वैकुण्ठमद्भुतम् ॥४४॥
मन्त्रीधर्मपरो राज्ञः सर्वधर्म विदुत्तमः । ययौ साकं विमानेन ललनावृन्दसेवितः ॥४५॥
तापसब्राह्मणस्तत्र सर्वतीर्थावगाहकः । चतुर्भुजत्वं सम्प्राप्तो ययौ देवैर्विमानिभिः॥४६॥

स्थापना करने के लिए ॥३२॥ जन्म तथा कर्मों एवं उसके अनुकूल गुणों को उत्पन्न करते हैं । आपने मत्स्य शरीर धारण करके शङ्ख नामक दैत्य का वध किया ॥३३॥ हे ब्रह्मन् ! हे महापुरुष पूर्वज भगवन् ! आपने वेदों को सुरक्षित किया । आपको पूर्ण रूप से न तो शेषजी जानते हैं और न सरस्वती देवी जानती हैं ॥३४॥ तो फिर हे महाविष्णो ! मुझ जैसे कुबुद्धि जीवों की कौन सी बात हैं ? सरस्वती देवी आपका वर्णन वाणी से नहीं कर सकती है ॥३५॥ अतएव हे प्रभो ! मैं आपकी स्तुति करने में कैसे समर्थ हो सकता हूँ ? इस तरह से स्तुति करके राजा ने श्रीभगवान् को बार-बार प्रणाम किया ॥३६॥ राजा ने गद्गद स्वर से तथा रोमाञ्चित शरीर से श्रीभगवान् की स्तुति की । उस स्तुति से प्रसन्न भगवान् पुरुषोत्तम ने राजा के प्रति सत्य तथा सार्थक वाणी को कहा ॥३७॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— हे महामते राजन् ! मुझको आप अपनी स्तुति से प्रसन्न जानें मैं प्रकृति से परे (श्रेष्ठ) हूँ ॥३८॥ तुम इस सुन्दर नैवेद्य को शीघ्र खा लो तुम चतुर्भुज होकर परमपद जाने वाले हो ॥३९॥ तुम्हारे द्वारा की गयी श्रेष्ठ स्तुति के द्वारा जो मनुष्य मेरी स्तुति करेगा उसको भी भोग तथा मुक्ति को प्रदान करने वाला मैं अपना दर्शन प्रदान करूँगा ॥४०॥ इस तरह से श्रीभगवान् के वचन को सुनकर राजा ने अपने चार सेवकों के साथ प्रसाद खाया ॥४१॥ इसके वाद किंकिणी जाल से अलंकृत सभी भोग्य वस्तुओं से युक्त तथा अप्सरा समूह से सेवनीय विमान आया ॥४२॥ भगवान् पुरुषोत्तम का दर्शन करते हुए धार्मिक राजा ने अपने को श्रीभगवान् का कृपापात्र बनाकर श्रीभगवान् के चरणों की वन्दना की ॥४३॥ श्रीभगवान् की आज्ञा से राजा पत्नी के साथ विमान में चढ़कर श्रीभगवान् के सामने ही अद्भुत वैकुण्ठलोक में चले गये ॥४४॥ राजा के

करम्बोऽपिमहाराज ! गानपुण्येन दर्शनम् । प्राप्तो ययौ सुरावासं सर्वदेवादि दुर्ल्लभम् ॥४७॥
सर्वे प्रचलिता विष्णुलोकं परममद्भुतम् । चतुर्भुजा शङ्खचक्र गदापाथोजःधारिणः ॥४८॥
सर्वे मेघश्रियःशुद्धा लसदम्भोजपाणयः । हारकेयूरकटकैर्भूषिताङ्गा ययुर्दिवम्॥४९॥
तद्विमानावलीर्दृष्ट्वा लोकैःप्रकृतिभिस्तदा । दुन्दुभीनां तु निर्घोषस्तैःकृतःकर्णगोचरः ॥५०॥
तदेको ब्राह्मणो ह्यासीद्विष्णुपादाब्जवल्लभः ।
गतस्तद्विरहाकृष्टचेता जातश्चतुर्भुजः ॥५१॥
तच्चित्रं वीक्ष्य लोकास्ते प्रशंसन्तो महोदयम् ।
गङ्गासागरसंयोगे स्नात्वाऽगुस्तं पुरम्प्रति ॥५२॥
अहोभाग्यं भूमिपते रत्नग्रीवस्य सन्मतेः। जगामानेन देहेन तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५३॥
राजन्नसौ नीलगिरिः पुरुषोत्तमसत्कृतः। यं वीक्ष्यैव व्रजन्त्यद्धा वैकुण्ठं परमायनम्॥५४॥
एतन्नीलस्य माहात्म्यं यः श्रृणोति स भाग्यवान् ।
यः श्रावयति लोकान्वै तौ गच्छेतां परम्पदम् ॥५५॥
एतच्छ्रुत्वा तु दुःस्वप्नो नश्यति स्मृतिमात्रतः ।
प्रान्ते संसार निस्तारं ददाति पुरुषोत्तमः ॥५६॥
योऽसौ नीलाधिवासी च स रामः पुरुषोत्तमः ।
सीता ! साक्षान्महालक्ष्मीः ! सर्वकारण कारणम् ॥५७॥
हयमेधं चरित्वा स लोकान्वै पावयिष्यति । यन्नाम ब्रह्महत्यायाःप्रायश्चित्ते प्रदिश्यते॥५८॥

धार्मिक तथा सभी धर्मों का उत्तम ज्ञाता मन्त्री स्त्री समूह से सेवित विमान के साथ गये ॥४५॥ सभी श्रेष्ठ तीर्थों में स्नान करने वाले तपस्वी ब्राह्मण चतुर्भुज होकर विमान वाले देवताओं के साथ गये ॥४६॥ हे महाराज ! अपने कीर्तन जन्य पुण्य के द्वारा करम्व दर्शन प्राप्त करके सभी देवताओ के दुर्लभ देवलोक में चला गया॥४७॥ वे सवके सव चारभुजा वाले शङ्ख, चक्र, गदा एवं कमल धारण करने वाले अद्भुत विष्णु लोक में चले गये॥४८॥ उन सवों के शरीर की शोभा श्यामवर्ण की थी, वे सभी शुद्ध तथा कमल धारण किए हुए थे । वे सव हार, केयूर तथा कटक (कंकण) से सुशोभित होकर वैकुण्ट लोक में चले गये ॥४९॥ उस विमान समूह को देखकर उस समय प्रजाओं ने दुन्दुभियों की ध्वनि को अपने कानो से सुना ॥५०॥ उनमें से एक ब्राह्मण भगवान् के चरणों का भक्त था । उसका शरीर भगवान् के विरह में छूट गया वह भी चार भुजाओं वाला होकर वैकुण्ठ चला गया ॥५१॥ उस अद्भुत कार्य को देखकर उसकी प्रशंसा करते हुए लोग गङ्गा सागर में स्नान करके अपने नगर में चले गये ॥५२॥ वे सव आपस में कहते थे; सुन्दर मति वाले राजा रत्नग्रीव का अहोभाग्य है कि वे अपने इसी शरीर से भगवान् विष्णु के धाम में चले गये ॥५३॥ ये राजा नीलगिरि तथा पुरुषोत्तम का सत्कार किये जिसका दर्शन करने से लोग वैकुण्ठ चले जाते हैं ॥५४॥ नीलगिरि के इस माहात्म्य को जो पुरुष सुनते हैं वे भाग्यवान् है तथा जो लोगों को सुनाता है वह भी वे दोनों परमपद को प्राप्त करते हैं ॥५५॥ इसका श्रवण करके स्मरण करने मात्र से दुःस्वप्न का नाश हो जाता है और अन्त में भगवान् पुरुषोत्तम उसका संसार से उद्धार कर देते हैं ॥५६॥ नीलगिरि पर रहने वाले भगवान् श्रीराम ही पुरुषोत्तम हैं और समस्त कारणों के कारण स्वरूप श्रीजानकीजी साक्षात् लक्ष्मी हैं ॥५७॥ वे अश्वमेध को करके संसार को पवित्र वना देंगे । श्रीभगवान् के नाम को

इदानीं त्वद्धय: प्राप्तो नीले पर्वतसत्तमे। पुरुषोत्तम देवं ! त्वं नमस्कुरु महामते !॥५९॥
तत्र निष्पापिनो भूत्वा यास्याम: परमम्पदम् ।
यस्य प्रसादाद्‌बहवो निस्तीर्णा भवसागरात् ॥६०॥
एवं प्रवदतस्तस्य प्राप्तोऽश्वो नीलपर्वतम् । वायुवेगेन पृथिवीं कुर्वन्संक्षुण्णमण्डलाम् ॥६१॥
तदा राजाऽपि तत्पृष्ठचारी नीलाभिधं गिरिम् ।
प्राप्तो गङ्गाब्धिसंयोगे स्नात्वाऽगात्पुरुषोत्तमम् ॥६२॥
स्तुत्वा नत्वा च देवेशं ! सुरासुरनमस्कृतम् ।
जातं कृतार्थमात्मानममन्यत स शत्रुहा ॥६३॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे नीलगिरिमहिमवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्याय: ॥२२॥

* * *

तेइसवाँ अध्याय

शेष उवाच

क्षणं स्थित्वा तृणं जग्ध्वा ययौ वाजी मनोजव: ।
वीरश्रेणीवृत: पत्रं भाले धृत्वा सचामर: ॥१॥
शत्रुघ्नेन सुवीरेण लक्ष्मीनिधिनृपेण च । पुष्कलेनोग्रवाहेन प्रतापाग्र्येण रक्षित: ॥२॥

ब्रह्महत्या का प्रायश्चित कहा गया है ॥५८॥ इस समय आपका अश्व पर्वत श्रेष्ठ नीलगिरि पर आ गया है; हे महामते ! आप भगवान् पुरुषोत्तम को नमस्कार करें ॥५९॥ वहाँ पर पाप रहित होकर हमलोग परम पद चले जायेंगे। उनकी कृपा से अनेक जीव संसार सागर को पार कर गये हैं ॥६०॥ इस तरह से सुमति के कहते समय अश्व अपने वायुवेग से पृथिवी मण्डल को खनता हुआ नील पर्वत पर पहुँच गया ॥६१॥ उस समय राजा शत्रुघ्न भी जो उसके पीछे चल रहे थे नीलपर्वत पर गये तथा गङ्गा सागर सङ्गम में स्नान करके भगवान् पुरुषोत्तम का दर्शन किए ॥६२॥ देवताओं और असुरों से नमस्कृत भगवान् पुरुषोत्तम की स्तुति तथा नमस्कार करके वे अपने को कृतकृत्य माने ॥६३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में नीलगिरि की महिमा का वर्णन नामक बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

* * *

राजा सुबाहु की नगरी में अश्व का आना और दमन के साथ राजा प्रतापाग्र्य का युद्ध वर्णन

शेषजी ने कहा— नील पर्वत पर क्षणभर रुककर तथा तृण चरकर मन के समान वेग वाला वह अश्व वीर समूह से घिरा हुआ तथा चामर के साथ ललाट पर पत्र धारण करके ॥१॥ वीर शत्रुघ्न तथा लक्ष्मीनिधि राजा

ययौ पुरीं स चक्राङ्कां सुबाहुपरिरक्षिताम्। अनेकवीरकोटीभीरक्षितोऽनुगतः प्रभो ॥३॥
तदा पुत्रोऽस्य दमनो मृगयामास्थितो महान् ।
ददर्शाश्वं भालपत्रं चन्दनादिकचर्चितम् ॥४॥
विलोक्य सेवकं प्राह कस्याश्वो मेऽक्षिगोचरः ।
भाले पत्रं धृतं किंनु चामरं किन्तु शोभनम् ॥५॥
इति राज्ञो वचःश्रुत्वा सेवकःप्रययौ ततः। यत्रासौ वर्तते वाजी भालपत्रःसुशोभनः ॥६॥
गृहीत्वा तं केशसङ्घे रत्नमालाविभूषितम्। निनाय चाग्रे भूपस्य सुबाहुकुलधारिणः ॥७॥
सपत्रं वाचयामास सुन्दराक्षरशोभितम्। अयोध्याधिपतिश्चासीद्राजा दशरथो बली ॥८॥
तस्यात्मजो रामभद्रः सर्वशूरशिरोमणिः। नान्योऽस्ति तत्समः पृथ्व्यां धनुर्धरणविक्रमः ॥९॥
तेनासौ मोचितो वाजी चन्दनादिकचर्चितः । तं पालयति धर्मात्मा शत्रुघ्नःपरवीरहा ॥१०॥
ये च शूरा वयं वीरा धनुर्हस्ता इमे वयम् ।
ते गृह्णन्तु बलाद्वाहं रत्नमालाविभूषितम् ॥११॥
तं च मोक्ष्यति शत्रुघ्नः सर्ववीरशिरोमणिः। अन्यथा पादयोस्तस्य प्रणतिं यान्तु धन्विनः ॥१२॥
इत्यभिप्रायमालोक्य जगाद नृपनन्दनः। राम एव धनुर्धारी न वयं क्षत्रियाःस्मृताः ॥१३॥
ताते मेऽवस्थिते पृथ्व्यां कोऽयं गर्वो महान् भुवि ।
प्राप्नोतु गर्वस्य फलं मम निर्मुक्तसायकैः ॥१४॥
अद्य मे निशिता बाणाःशत्रुघ्नं किंशुकं यथा ।
पुष्पितं विदधत्वद्धाक्षतावृतशरीरकम् ॥१५॥

के द्वारा उग्रप्रताप वाले पुष्कल के द्वारा रक्षित ॥२॥ राजा सुबाहु की राजधानी चक्रांका नगरी में चला गया । उसके पीछे उसकी रक्षा करने वाले अनेक करोड़ वीर चल रहे थे ॥३॥ उस समय आखेट करने वाला उस राजा के पुत्र दमन ने चन्दन आदि से पूजित तथा जिसके ललाट पर पत्र लगा था उस अश्व को देखा ॥४॥ उसको देखकर उसने सेवक से कहा यह किसका अश्व दिखायी दे रहा है ? जिसके ललाट पर पत्र लगा हुआ है और सुन्दर चामर को वह धारण किए हुए है ? ॥५॥ राजा की वाणी सुनकर सेवक अश्व के सन्निकट में गया जहाँ पर उस पत्र से सुशोभित अश्व विद्यमान था ॥६॥ उस घोड़े का केश पकड़कर रत्नों की माला से सुशोभित अश्व को सुबाहु के वंशज के सामने लाया ॥७॥ उसने सुन्दर अक्षर में लिखे हुए उस पत्र को बाँचा । उस पर लिखा था अयोध्या के राजा बलवान् महाराज दशरथ थे ॥८॥ उनके पुत्र श्रीरामचन्द्र हैं, उनके समान कोई भी धनुर्धारी नहीं हैं ॥९॥ उन्होंने ही इस चन्दन आदि से पूजित अश्व को छोड़ा है । उसकी रक्षा शत्रुओं को मारने वाले शत्रुघ्नजी कर रहे हैं ॥१०॥ जो वीर अपने को ही शूरवीर और धनुर्धारी मानते हों वे इस रत्नों की माला से विभूषित अश्व को बलपूर्वक पकड़ लें ॥११॥ सभी वरों में श्रेष्ठ शत्रुघ्न उससे इस अश्व को छुड़ा लेगे । अन्यथा वे वीर इसके शरणागत हो जायँ ॥१२॥ इस अभिप्राय को जानकर राजकुमार ने कहा— क्या ये राम ही धनुर्धर हैं ? हम सभी क्षत्रिय नहीं हैं ?॥१३॥ मेरे पिता के जीते जी यह महान् गर्व करने वाला कौन है ? वह मेरे द्वारा छोड़े गये वाणों से अपने गर्व का फल प्राप्त करे ॥१४॥ आज मेरे वाण, घावों से भरे हुए शरीर वाले शत्रुघ्न को विकसित पलाश वृक्ष के समान लाल-लाल बना देंगे ॥१५॥ मेरे वाण उनके हाथियों के गाल

दारयन्तु कपोलांश्च सायका मम दन्तिनाम्। अश्वान्पश्यन्तु शतशो रुधिरौघपरिप्लुतान् ॥१६॥
पिबन्तु योगिनीसङ्घा रुधिराणि नृमस्तकैः। शिवा भवन्तु सन्तुष्टा मद्वैरिक्रव्यभक्षणैः ॥१७॥
पश्यन्तु सुभटास्तस्य मम बाहुबलं महत्। कोदण्डदण्डनिर्मुक्ताःशरकोटिर्विमुञ्चतः ॥१८॥
इत्थमुक्तवा महीपस्य तनुजो दमनाभिधः । स्वपुरं प्रेषयित्वा तं प्रहृष्टोऽभवदुद्भटः ॥१९॥
सेनापतिमुवाचेदं सज्जीकुरु महामते !। सेनां परिमितां मह्यं वैरिवृन्दनिवारणे ॥२०॥
सज्जां सेनां विधायाऽऽशु संमुखो रणमण्डले ।
स्थितवान्यावदत्युग्रस्तावत्प्राप्ता हयानुगाः ॥२१॥
क्वाऽसौ हयो महाराज्ञो भालपत्रेण चिह्नितः ।
पप्रच्छुस्ते तु चान्योन्यमतिव्याकुलिता मुहुः ॥२२॥
तावद्ददर्श पुरतःप्रतापाग्र्यःपरन्तपः । सज्जीभूतं तु कटकं वीरशब्दनिनादितम् ॥२३॥
तत्रावदञ्जनाःकेचिन्नीतोऽश्वोऽनेन भूपते। अन्यथा संमुखस्तिष्ठेत्कथं वीरोबलानुगः ॥२४॥
इत्याकर्ण्य प्रतापाग्र्यःप्रेषयामास सेवकम्। स गत्वा तत्र पप्रच्छ कुत्राश्वो रामभूपतेः ॥२५॥
केन नीतःकुतो नीतो रामं जानाति नो कुधीः ।
यं शक्रप्रमुखा देवा बलिमादाय सन्नताः ॥२६॥
तस्य वै धर्मराजस्य कुपितं तु बलं महत् ।
सर्वथा हि ग्रसिष्येत प्रणतिं चेन्न यास्यति ॥२७॥
इत्थमुक्तं समाकर्ण्य तदा राजसुतो बली। तं वै धिक्कारयामास वाग्जालेन सुदुर्मनाः ॥२८॥
मया नीतो यज्ञहयःपत्रचिह्नाद्यलङ्कृतः । ये शूरास्ते तु मां जित्वा मोचयन्तु बलादिह ॥२९॥

को फाड़ देंगे और वे अपने सैकड़ों घोड़ों को खून से लथपथ देखेंगे ॥१६॥ मनुष्यों के मस्तकों में भर-भर कर योगिनियाँ रक्तपान करें । मेरे शत्रुओं के मांस को खाकर शृगाल सन्तुष्ट हो जायँ ॥१७॥ उनके वीर धनुष से करोड़ों बाणों का प्रहार करने वाले मेरी भुजा के बल को देखें ॥१८॥ इस तरह से कहकर राजकुमार दमन ने उस अश्व को अपने नगर में भेजकर हर्ष का अनुभव किया ॥१९॥ उसने सेनापति से कहा कि शत्रु को रोकने के लिए मेरी थोड़ी सी सेना को तैयार कर दो ॥२०॥ शीघ्रता से सेना को सजा कर रण मण्डल में सामने अत्यन्त उग्र वह सेनापति जब तक खड़ा हुआ उसी समय घोड़े के अनुगन्ता रक्षक आ गये ॥२१॥ वे परस्पर में अत्यन्त व्याकुल होकर पूछने लगे कि भालपत्र से युक्त महाराज का घोड़ा कहाँ है ?॥२२॥ उस समय परन्तप प्रतापाग्र्य ने सामने वीरों की ध्वनि से युक्त सजी हुयी सेना को देखा ॥२३॥ उनमें से कुछ लोगों ने कहा— महाराज घोड़े को यही ले गया है, यदि ऐसी बात नहीं होती तो फिर सेना के साथ यह वीर सामने क्यों खड़ा रहता ?॥२४॥ इसको सुनकर प्रतापग्र्य ने अपने सेवक को भेजा, उसने जाकर पूछा कि महाराज राम का अश्व कहाँ है ?॥२५॥ उसे किसने, और क्यों ले गया है ? क्या वह मूर्ख श्रीरामचन्द्रजी को नहीं जानता है ? उनको इन्द्र इत्यादि देवता उपहार लेकर प्रणाम करते हैं ॥२६॥ उन धर्मराज की विशाल सेना उसको विनष्ट कर देगी यदि वह उनको जाकर प्रणाम नहीं करता है तो ॥२७॥ इस तरह की वाणी को सुनकर राजा के बलवान् पुत्र दमन ने उस सेवक का अपनी वाणी समूह से क्रोध के कारण धिक्कार किया ॥२८॥ यज्ञ के घोड़े को मैं ले गया हूँ जो पत्र के चिह्न से अलंकृत है । जो वीर हों वे मुझको जीतकर उसे बलपूर्वक छुड़ा लें ॥२९॥ सेवक उसकी वाणी को सुनकर

सेवकस्तद्वचःश्रुत्वा रोषपूर्णो हसन्ययौ। राज्ञे निवेदयामास यथावदुपवर्णितम्॥३०॥
तच्छुत्वा रोषताम्राक्षःप्रतापाग्र्यो महाबलः। ययौ योद्धुं राजपुत्रं महावीरपुरस्कृतम्॥३१॥
रथेन कनकाङ्गेन चतुर्वाजिसुशोभिना। सुकूबरेण सर्वास्त्रपूरितेन ययौ बली॥३२॥
धनुष्टङ्कारयामास महाबलसमन्वितः। पुनःपुनर्जहासोच्चैःकोपादुद्गमिताश्रुतः ॥३३॥
अश्ववाहजगारूढाःखड्गोल्लसितपाणयः । अन्वयुस्ते प्रतापाग्र्यं रोषपूर्णाकुलेक्षणम् ॥३४॥
हस्तिनःपत्तयश्चैव कोटिशःप्रधनोद्यताः। चिरकालमभीप्सन्तो रणं वीरेण कारितम् ॥३५॥
तदोद्यतं समाज्ञाय रिपुसैन्यं नृपात्मजः। प्रत्युज्जगाम वीराग्र्यो महावलपरीवृतः ॥३६॥
सन्नद्धःकवची खड्गी शरासनधरो युवा। लीलयैव ययौ योद्धुं मृगराड्गजतमामिव ॥३७॥
तदा योधाः प्रकुपिताः परस्परवधैषिणः। छिन्धि भिन्धीति भाषन्तो रणकार्यविशारदाः ॥३८॥
पत्तयः पत्तिसङ्घेन गजारूढाश्च सादिभिः। रथारूढा रथस्थैश्च वाहारूढाश्च वाहगैः ॥३९॥
गजाभिन्ना द्विधा जाता हयाश्च द्विदलीकृताः।
अनेकनरमास्तिष्कैर्मेदिनीपूरिताह्यभूत् ॥४०॥
तदा प्रकुपितो राजा प्रतापाग्र्यो महाबलः। स्वसैन्यकदनोद्युक्तं राजपुत्रं समीक्ष्य च ॥४१॥
उवाच सारथिं तत्र प्रापयाश्वान्यतो मम। सैन्यस्य कदनासक्तो राजपुत्रो महारथः ॥४२॥
अथ वीरशिरोरत्ननमिताङ्घ्रिर्नृपात्मजः। ययौ संमुखमेवाऽस्य प्रतापाग्र्यस्य वीर्यवान् ॥४३॥
सारथिः प्रापयामास प्रतापाग्र्यस्य वाजिनः। यत्रासौ दमनो वीरः सर्वशूरशिरोमणिः॥४४॥

क्रोध पूर्वक हँसता हुआ चला गया और राजा को सारी बातें बतलाया ॥३०॥ उसको सुनकर महाबलवान् प्रतापग्रय उस राजकुमार से युद्ध करने के लिए महावीरों के साथ गये ॥३१॥ उनके सुवर्ण निर्मित रथ में चार घोड़े जुते थे। उसका मध्यभाग सुन्दर और समस्त अस्त्रों से परिपूर्ण था ॥३२॥ महाबलवान् प्रातापग्रय ने अपने धनुष का टङ्कार किया। उन्होंन बार-बार अट्टहास किया, उनके आँखों में क्रोधाश्रु दिखायी दे रहे थे ॥३३॥ अश्वारोही, हाथी सेना तथा हाथ में खड्ग धारण किये हुए वीर प्रतापग्रय का अनुसरण कर रहे थे, क्रोध के कारण उनकी आँखे लाल हो गयी थीं। हाथी सेना, पैदल सेना जो युद्ध करने के लिए उद्यत थी, वीरों के साथ चिरकाल से युद्ध न करने के कारण युद्ध करना चाहते थे ॥३४-३५॥ उस समय शत्रु की सेना युद्ध करने के लिए तैयार जानकर राजा का पुत्र जो वीरों में अग्रणी था विशाल सेना के साथ युद्ध करने के लिए गया ॥३६॥ वह कवच तथा खड्ग बाँधे था, और वह धनुष धारण करके जिस तरह से मृगराज गज समूह में लीला पूर्वक जाता है, उसी तरह से लीला पूर्वक गया ॥३७॥ उसके बाद परस्पर में एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से क्रुद्ध होकर रण करने में निपुण वे काट डालो; तोड़ दो इस तरह से कहने लगे ॥३८॥ पैदल सेना पैदल सेना के साथ, हाथी सेना, हाथी सेना के साथ, रथी, रथी के साथ और घुड़सवार, घुड़सवार के साथ युद्ध करने लगे ॥३९॥ युद्ध में हाथी दो टुकड़े कर दिए गये, घोड़े चीर दिए गये तथा अनेक मनुष्यों के शिरों से पृथिवी पट गयी ॥४०॥ राजा प्रतापग्रय ने क्रुद्ध होकर देखा कि राजकुमार उनकी सेना को मार रहा है ॥४१॥ उन्होंने सारथि से कहा कि मेरे घोड़ों को वहाँ ले चलो जहाँ महारथी राजकुार मेरी सेना को मार रहा है ॥४२॥ इसके बाद वीरों से पूजित पराक्रमी राजपुत्र प्रतापाग्रय के समक्ष आया ॥४३॥ सारथि ने भी प्रातापग्रय के घोड़ों को वहाँ पहुँचा दिया जहाँ पर वीर शिरोमणि दमन विद्यमान था ॥४४॥ वहाँ पर जाकर युद्ध के लिए तैयार राजकुमार

गत्वा तमाह्वयामास राजपुत्रं रणोद्यतम् । रथे पुरटनिर्णिक्ते तिष्ठन्कोदण्डदण्डभृत् ॥४५॥
हे राजपुत्रक ! शिशो ! त्वया बद्धोऽश्वसत्तमः ।
न जानासि महाराजं सर्ववीरेन्द्रसेवितम् ॥४६॥
यस्य प्रतापं दैत्येन्द्रो न शक्तः सोढुमद्भुतम् ।
तस्य त्वं वाजिनं नीत्वा गतोऽसि पुटभेदनम् ॥४७॥
मां जानीहि पुरः प्राप्तं कालरूपं तु वैरिणम् ।
मुञ्चाश्वमम ! गच्छाशु बालक्रीडनकं कुरु ॥४८॥
कस्यात्मजस्त्वं कुत्रत्यः कथं नोऽदीर्घदर्शिना ।
धृतोऽश्वस्त्वथ संजाता घृणा मम शिशो ! त्वयि ॥४९॥
इत्यमाकर्ण्य दमनःस्मितं चक्रे महामनाः । उवाच च प्रतापाग्र्यं तृणीकुर्वंश्च तद्वलम् ॥५०॥

दमन उवाच

मयाबद्धो वलादश्वो नीतःस्वपुटभेदनम् । नार्पयिष्येऽद्य सप्राणःकुरु युद्धं महावल ! ॥५१॥
त्वया यदुक्तं बालस्त्वं गत्वा क्रीडनकं कुरु ।
तन्मे पश्य महाराज ! क्रीडनं रणमूर्धनि ॥५२॥

शेष उवाच

इत्युक्त्वा सगुणं चापं विधाय भूभुजोऽङ्गजः ।
शराणां शतमाधत्त प्रतापाग्र्यस्य वक्षसि ॥५३॥
सन्धाय बाणशतकं शङ्ख दध्मौ प्रतापवान् । तेन शङ्खनिनादेन कातराणां भयं ह्यभूत् ॥५४॥
ताडयामास हृदये बाणानां शतकेन सः । प्रतापाग्र्य प्रचिच्छेद लघुहस्त सुपर्वणः ॥५५॥
स बाणच्छेदनं दृष्ट्वा कुपितो व्यसृजच्छरान् ।
कङ्कपक्षान्वितांस्तीक्ष्णभल्लान्राजात्मजो बली ॥५६॥

को सुवर्ण निर्मित रथ में धनुष धारण करके वैठे हुए प्रातपग्रय ने युद्ध के लिए ललकारते हुए कहा ॥४५॥ हे राजकुमार ! बालक ! तुमने अश्वश्रेष्ठ को बाँधा है । तुम सभी वीरों से सेवित महाराज श्रीराम को नहीं जानते हो ॥४६॥ उनके प्रताप को दैत्यराज भी नहीं सह सके, उनके घोड़े को बाँधकर तुम विपत्ति में पड़ गये हो।॥४७॥ मैं शत्रु के लिए काल स्वरूप हूँ । बच्चे घोड़े को छोड़ दो और जाकर बालक्रीड़ा करो ॥४८॥ तुम किसके पुत्र हो ? कहाँ रहते हो, दीर्घ दर्शी नहीं होने कारण क्यों घोड़े को पकड़ रखे हों ? तुम बालक को देखकर मुझे तुम पर दया आती है ॥४९॥ इस तरह की बात सुनकर महामना दमन मुस्कुराया और प्रातपाग्रय के वल को तुच्छ बनाते हुए उसने कहा ॥५०॥ **दमन ने कहा—** मैंने घोड़े को बाँधा है और उसे पुटभेदन में ले गया हूँ। मैं उसे जीते जी नहीं लौटा सकता हूँ । हे महाबलवान् ! युद्ध करो ॥५१॥ आपने जो कहा कि तुम बालक हो बालक्रीडा करे तो हे महाराज ! आप मेरी रणक्रीड़ा को देखें ॥५२॥ **शेषजी ने कहा—** इस तरह से कहकर धनुष को चढ़ाकर राजकुमार ने प्रतापग्रय के वक्षस्थल में सौ बाणों से प्रहार किया । सौ बाणों का सन्धान करके उसने अपना शङ्ख बजाया । उस शङ्ख की ध्वनि से कातरों के हृदय में भय हो गया ॥५३-५४॥ उसने सौ बाणों से प्रहार किया; किन्तु प्रतापग्रय ने शीघ्रता से उन बाणों को काट दिया ॥५५॥ अपने कटे हुए बाणों को देखकर

आकाशे भुवि मध्ये च बाणा ददृशिरेऽङ्किताः ।
स्वनाम चिह्नितास्तीक्ष्णधारापातसुशोभिताः ॥५७॥
शरास्तद्बाहु हृदये लग्ना वह्निकणान्बहून् । सृजन्तःकुर्वते सैन्यदाहनं तदभून्महत् ॥५८॥
प्रतापाग्र्यःप्रकुपितस्तिष्ठ तिष्ठेति च ब्रुवन्। शरेण दशसङ्ख्येन ताडयामास मूर्धनि ॥५९॥
ते बाणा राजपुत्रस्य ललाटे परिनिष्ठिताः । विराजन्तेस्म च मुनेदशशाखास्तरोरिव ॥६०॥
तेन बाणप्रहारेण विव्यथे न महामनाः । यष्टिकाप्रहतो यद्वत्कुञ्जरः सप्तवर्षकः ॥६१॥
बाणान्धनुषि सन्धाय मुमोच त्रिशताञ्छुभान् ।
सुवर्णपुङ्खरचितान्महाकालानलोपमान् ॥६२॥
ते बाणास्तु प्रतापाग्र्यवक्षो भित्त्वा गता ह्यधः ।
शोणिताक्ता यथा रामचन्द्रभक्तिपराङ्मुखाः ॥६३॥
प्रतापाग्र्यःप्रकुपितःशरान्मुञ्चन्सहस्रशः । अकरोद्विरथं सूनुं सुबाहोस्तत्क्षणद्द्रुतम् ॥६४॥
चतुर्भिरश्चतुरोवाहान्द्वाभ्यां ध्वजमशातयत्। एकेन सारथेःकायाच्छिरो मह्यामपातयत् ॥६५॥
चतुर्भिस्ताडयामास तं सूनुं नृपतेः पुनः। तत्क्षणाच्चापमेकेन गुणयुक्तं तु चिच्छिदे ॥६६॥
सोऽन्यं रथं समारुह्य हयरत्नसुशोभितम्। धनुःकरे समादाय सज्यं चक्रे महामनाः ॥६७॥
प्रत्युवाच प्रातापाग्र्यं त्वया विक्रान्तमद्भुतम्। पश्येदानीं पराक्रान्तिं धनुषो मम सद्भट ! ॥६८॥
एवमुक्त्वा तु दमनो बाणान्दश समाददे । चतुर्भिश्चतुरोवाहान्निनाय यमसादनम् ॥६९॥
चतुर्भिस्तिलशःकृत्तो रथश्चक्रसमन्वितः । एकेन हृदि विव्याध बाणेनैकेन सारथिम् ॥७०॥

उसने कंकपक्ष से युक्त भल्लनामक बाणों को छोड़ा ॥५६॥ उस समय आकाश में पृथिवी पर तथा बीच में बाण ही दिखने लगे । वे बाण उसके नाम से चिह्नित थे तथा उन सबों का धार तीक्ष्ण था ॥५७॥ हृदय तथा भुजाओं में लगे हुए उसके वाण अग्निकण को उत्पन्न करके बहुत सी सेना को जला दिए ॥५८॥ यह देखकर प्रतापाग्र्य कुपित हो गये और उन्होंने तिष्ठ-तिष्ठ कहकर ललकारा । उन्होंने दशबाणों से उसके शिर पर प्रहार किया॥५९॥ हे मुने वात्स्यायन ! राजपुत्र के ललाट में लगे हुए वे बाण पेड़ों की शाखा के समान सुशोभित हुए ॥६०॥ किन्तु उस वाण के प्रहार से राजपुत्र को कष्ट नहीं हुआ । यह उसी तरह से था जैसे किसी सात वर्ष के हाथ से छड़ी से मारा गया हो ॥६१॥ इसके वाद राजपुत्र ने तीन सौ सुवर्ण के पुंख वाले बाणों को जो महाकालाग्नि के समान थे उन सवों को धनुष पर चढ़ाकर छोड़ा ॥६२॥ वे बाण प्रतापाग्र्य के हृदय को वेध कर रक्त से सने हुए पृथिवी पर गिर पड़े, मानो वे श्रीरामचन्द्र की भक्ति से पराङ्मुख हों ॥६३॥ प्रतापाग्र्य भी हजारों बाणों को बरसाते हुए सुवाहु के पुत्र को रथ हीन बना दिए ॥६४॥ उन्होंने चार बाणों से चार घोड़ों को मार दिया, दो बाणों से दमन की ध्वजा को काट दिया, एक बाण से सारथि के शिर को काटकर पृथिवी पर गिरा दिया ॥६५॥ चार बाणों का प्रहार उस राजकुमार पर किया उसी समय एक बाण से उन्होंने उसके प्रत्यञ्चा युक्त धनुष को काट दिया॥६६॥ फिर वह राजकुमार हयरत्न से सुशोभित दूसरे रथ पर चढ़कर अपने हाथ में धनुष को चढ़ाया॥६७॥ उसने प्रातापाग्र्य से कहा वीर ! तुमने अपना अद्भुत पराक्रम दिखाया है अब मेरे धनुष की शक्ति को देखो ॥६८॥ इस तरह कहकर दमन ने दश बाणों को ले लिया । उसने चार बाणों से प्रतापाग्र्य के चारों घोड़ों को मार दिया। चार बाणों से रथ को तिल-तिल के समान काट दिया । एक बाण से प्रतापाग्र्य के हृदय को छेद दिया और एक

जगर्ज शङ्खमापूर्य शङ्खशब्दसमन्वितः । तत्कर्म पूजयामास साधु वीर महाबल !॥७१॥
इति विक्रान्तमालोक्य प्रतापाग्र्यो रुषान्वितः ।
अन्यं रथं समास्थाय ययौ योद्धुं नृपात्मजम् ॥७२॥
उवाच वीर ! पश्य त्वं मम विक्रान्तमद्भुतम् ।
इत्युक्त्वाऽऽशु मुमोचौघाञ्छराणां शितपर्वणाम् ॥७३॥
शराःसर्वत्र दृश्यन्ते कुञ्जरेषु हयेषु च। परब्रह्मेव सर्वत्र व्याप्ताश्चान्तरगोचराः ॥७४॥
तं राजपुत्रं शितबाणकोटिभिर्व्याप्तं विधायाऽऽशु जगर्ज विक्रमी ।
संहर्षयन्स्वीयगणान्परान्महान्कुर्वन्हृदा शून्यतमान्गतासुकान् ॥७५॥
स राजपुत्रः शितसायकव्रजैः सम्पूर्णमात्मानमवेक्ष्य रोषितः ।
जग्राह शस्त्राणि दुरन्तविक्रमो धनुश्च धुन्वन्भुजदण्डयोर्महान् ॥७६॥
चकर्त सर्वाण्यस्त्राणि शस्त्राणि च महाबलः ।
रोषताम्रेक्षणो मुञ्चञ्छरान्वैरिविदारिणः ॥७७॥
तच्छस्त्रजालं निर्धूय राजपुत्रो जगाद तम्। क्षमस्वैकं प्रहारं मे यदि शूरोऽसि मारिष ! ॥७८॥
यद्यनेन भवन्तं वै रथाच्चेत्पातयामि न । प्रतिज्ञां शृणु मे वीर ! मम गर्वेण निर्मिताम्॥७९॥
वेदं निन्दन्ति ये मत्ता हेतुवादविचक्षणाः । तेषां पापं ममैवास्तु नरकार्णवमज्जकम्॥८०॥
इत्युक्त्वा बाणमासाद्य कोदण्डे कालसन्निभम् ।
ज्वालामालाकुलं तीक्ष्णं निषङ्गादुद्धृतं वरम् ॥८१॥
स मुक्तो नृपवर्येण हृदि लक्ष्यीकृतःशरः। जगाम तरसा तं वै कालानलसमप्रभः ॥८२॥
प्रतापाग्र्यःशरं दृष्ट्वा स्वपातनसमुद्यतम् । बाणान्यनुष्यथाधत्त शरच्छेदाय वै शितान् ॥८३॥

वाण से सारथि को मार दिया ॥६९-७०॥ इसके बाद शङ्ख को बजाकर शङ्ख के शब्द के साथ उसने गर्जना किया । प्रतापाग्र्य ने उसके पराक्रम की सराहना की ॥७१॥ इस तरह से उस वीर को देखकर प्रतापाग्र्य दूसरे रथ पर बैठकर राजपुत्र के साथ युद्ध करने गये ॥७२॥ उन्होंने कहा— वीर अब मेरे पराक्रम को देखो । यह कहकर उन्होंने तीक्ष्ण पर्ववाले बाणों को शीघ्रता से चलाया ॥७३॥ सर्वत्र हाथियों और घोड़ों पर वाण ही दीखने लगे। सारी दिशाओं में वे बाण उसी तरह से व्याप्त हो गये जिस तरह पर ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त हैं ॥७४॥ उस राजकुमार को करोड़ों बाणों से छेद कर प्रतापी प्रतापाग्र्य ने गर्जना की । उस समय प्रतापाग्र्य ने अपने गणों को प्रहृष्ट कर दिया और शत्रुओं के हृदय को शून्य बना दिया ॥७५॥ वह राजपुत्र अपने सम्पूर्ण शरीर को तीक्ष्ण बाणों से भरे हुए देखकर क्रुद्ध हो गया । भयङ्कर पराक्रम वाले उसने अपने धनुष तथा भुजदण्ड को कँपाते हुए शस्त्रों को ले लिया ॥७६॥ वैरिसमूह को मारने वालें उसकी आँखे क्रोध से लाल हो गयी और बाणों को छोड़ते हुए उसने समस्त अस्त्र शस्त्रों को काट दिया ॥७७॥ प्रतापाग्र्य के बाण समूह को काटकर राजपुत्र ने कहा यदि वीर हो तो मेरे एक प्रहार को बर्दास्त करो ॥७८॥ हे वीर ! मेरी गर्व भरी प्रतिज्ञा को आप सुनें यदि इस प्रहार से तुम्हे रथ से मैने गिरा नहीं दिया तो वेदों की निन्दा करने वाले हेतुवादियों मदमत्तों को जो पाप लगता है, वही पाप मुझे लगे; जिससे जीव नरक में चला जाता है ॥७९-८०॥ इस तरह से कहकर उसने काल के समान बाण को धनुष पर चढ़ाया । ज्वाला से देदीप्यमान बाण को उसने अपने तरकस से निकाला ॥८१॥ वह छोड़ा गया वाण जो

सबाणःसर्वबाणांस्तांश्छिन्दन्मध्यत एव हि ।
जगाम वै प्रतापाग्र्यहृदयं धैर्यसंयुतम् ॥८४॥
संलग्नो हृदि नालीकःप्रविवेश तदन्तरम् । राजा कृतप्रहारस्तु पपात धरणीतले ॥८५॥
मूर्च्छितं चेतनाहीनं रथोपस्थाद्गतं भुवि। सारथिस्तं समादायापोवाह रणमण्डलात् ॥८६॥
हाहाकारो महानासीद्बलं भग्नं गतं ततः । यत्र शत्रुघ्ननामासौ वीरकोटिपरीवृतः ॥८७॥
राजात्मजो जयं प्राप्य प्रतापाग्र्यं विजित्य सः ।
प्रतीक्षां तु चकाराऽस्य शत्रुघ्नस्य च भूपतेः ॥८८॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
राजपुत्रयुद्धकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

* * *

चौबीसवाँ अध्याय

शेष उवाच

शत्रुघ्नस्तु क्रुधाविष्टो दन्तान्दन्तैर्विनिष्पिषन् । हस्तौ धुन्वँल्लेलिहानमधरं जिह्वयाऽसकृत्॥१॥
पुनःपुनस्तान्पप्रच्छ केनाश्वो नीयते मम। प्रतापाग्र्यःकेन जितःसर्वशूरशिरोमणिः ॥२॥
सेवकास्ते तदा प्रोचुर्दमनो नाम शत्रुहन्। सुबाहुजःप्रतापाग्र्यं जितवान्हयमाहरत्॥३॥

राजा के हृदय को लक्ष्य बनाकर छोड़ा गया था । कालाग्नि के समान कान्ति वाला वह वेग से राजा के पास गया॥८२॥ अपने को मार देने के लिए उद्यत बाण को देखकर प्रतापाग्र्य ने उस बाण को काटने के लिए अपने धनुष पर तीक्ष्ण बाणों को चढ़ाया । वह बाण उन सभी बाणों को बीच से काटते हुए धैर्य सम्पन्न प्रतापाग्र्य के हृदय तक पहुँच गया ॥८३-८४॥ वह बाण उनके हृदय में प्रवेश कर गया । उस प्रहार से राजा पृथिवी पर गिर पड़े ॥८५॥ मूर्छित ज्ञान शून्य तथा रथ से पृथिवी पर गिरे हुए उनको उठाकर सारथि युद्धस्थल से बाहर ले गया॥८६॥ उस समय भयङ्कर हाहाकार मच गया और सेना भाग कर वहाँ गयी जहाँ पर करोड़ों वीरों के साथ शत्रुघ्नजी थे ॥८७॥ राजपुत्र दमन प्रतापाग्र्य को जीतकर शत्रुघ्न के आने की प्रतीक्षा करने लगा ॥८८॥

इस तरह से पद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में राजपुत्र दमन के युद्ध का वर्णन नामक तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

* * *

दमन और पुष्कल का युद्ध और पुष्कल द्वारा दमन का पराजय

शेषजी ने कहा— शत्रुघ्नजी ने क्रोधित होकर दाँतों को पीसते हुए तथा अपने हाथों को इधर-उधर सञ्चालित करते हुए और अपनी जीभ से ओष्ठों को बार-बार चाटते हुए ॥१॥ उन सबों से बार-बार पूछा कि कौन मेरे अश्व को ले गया है ? सभी वीरों में श्रेष्ठ प्रतापाग्र्य को किसने परास्त किया है ?॥२॥ सेवकों ने

इति श्रुत्वा हयं नीतं दमनेन स्ववैरिणा। आजगाम सवेगेन यत्राभूद्रणमण्डलम् ॥४॥
तत्रापश्यत्स शत्रुघ्नो गजान्दीर्णकपोलकान्। पर्वतानिव रक्तोदे मज्जमानान्मदोद्धतान्॥५॥
हयास्तत्रनिजारोह कर्तृभिःसहिताःक्षताः। मृता वीरेण ददृशे शत्रुघ्नेन सुकोपिना॥६॥
नरान्रथान्गजान्भग्नान्वीक्षमाणःसशत्रुहा । अतीव चुक्रुधे यद्वत्प्रलये प्रलयार्णवः ॥७॥
पुरतो दमनं वीक्ष्य हयनेतारमुद्भटम्। प्रतापाग्र्यस्य जेतारं तृणीकृत्य निजं बलम्॥८॥
तदा राजा प्रत्युवाच योधान्कोपाकुलेक्षणः। कोऽसौ दमन जेताऽत्र सर्वशस्त्रास्त्रधारकः ॥९॥
यो वै राजसुतं वीरं रणकर्मविशारदम्। जेष्यत्यस्त्रेण निर्भीतःसज्जीभूतो भवत्वयम्॥१०॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य पुष्कलः परवीरहा। दमनं जेतुमुद्युक्तो जगाद वचनं त्विदम् ॥११॥
स्वामिन्क्वाऽयं दमनकःक्वतेऽपरिमितं बलम् ।
जेष्येऽहं त्वत्प्रतापेन गच्छाम्येष महामते ॥१२॥
सेवके मयि युद्धाय स्थिते कैर्नीयते हयः । रघुनाथप्रतापोऽयं सर्वं कृत्यं करिष्यति ॥१३॥
स्वामिञ्छृणु प्रतिज्ञां मे तव मोदप्रदायिनीम्। विजेष्ये दमनं युद्धे रणकर्म विचक्षणम्॥१४॥
रामचन्द्रपदाम्भोजमध्वास्वादवियोगिनाम् । यदघं तु भवेत्तन्मे दमनं न जये यदि ॥१५॥
पुत्रो यो मातृपादान्यत्तीर्थं मत्वा तया सह । विरुद्धयेत्तमो मह्यं न जय दमनं यदि ॥१६॥
अद्य मद्बाणनिर्भिन्नमहोरस्को नृपाङ्गजः। अलङ्करोतु प्रधने भूतलं शयनेन हि ॥१७॥

शेष उवाच

इति प्रतिज्ञामाकर्ण्य पुष्कलस्य रघूद्वहः। जहर्ष चित्ते तेजस्वी निर्दिदेश रणम्प्रति ॥१८॥

कहा— दमन नामक शत्रुओं को मारने वाला वीर है । वह सुवाहु का पुत्र है तथा प्रतापाग्र्य को जीतकर अश्व को ले लिया है ॥३॥ यह सुनकर कि दमन नामक शत्रु ने अश्व को ले लिया है, वे वेगपूर्वक रणभूमि में आ गये॥४॥ वहाँ शत्रुघ्नजी ने फटे गाल वाले अपने हाथियों को देखा । लग रहा था जैसे पर्वत के समान मदोद्धत हाथियों ने खून में स्नान किया हो ॥५॥ उन्होंने अश्वारोहों से युक्त तथा मरकर पड़े हुए अश्वों को क्रोध भरे नेत्रों से देखा॥६॥ शत्रुओं को मारने वाले वे मनुष्यों, रथों और भग्न हाथियों को देखकर प्रलय काल के प्रलयार्णव के समान क्रोध किए ॥७॥ सामने घोड़े को ले जाने वाले तथा प्रतापाग्र्य को जीतकर उनकी सेना को तृणवत् समझने वाले दमन को देखकर ॥८॥ क्रोध से व्याकुल नेत्रों वाले शत्रुघ्नजी ने वीरों से कहा— यहाँ समस्त शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाला वीर कौन है ?॥९॥ जो निर्भय होकर युद्ध करने में निपुण इस राजपुत्र को अस्त्र से जीत सके ? वह वीर युद्ध के लिए तैयार हो जाय ॥१०॥ इस वाक्य को सुनकर शत्रु वीरों को मारने वाले पुष्कल दमन को जीतने के लिए तैयार हो गये और कहे ॥११॥ हे स्वामिन् ! कहाँ तो यह दमन और कहाँ आपका असीमित बल, मैं आपके प्रताप से उसे जीत लूँगा और मैं जा रहा हूँ ॥१२॥ मुझ जैसे सेवक के रहते अश्व को कौन ले जा सकता है ? भगवान् श्रीराम का प्रताप ही सारा कार्य करेगा ॥१३॥ हे स्वामिन् ! आपको आनन्दित करने वाली मेरी प्रतिज्ञा को आप सुनें; मैं युद्ध करने में निपुण दमन को जीत लूँगा ॥१४॥ भगवान् श्रीरामचन्द्र के चरण कमलों के पराग के आस्वाद से रहित रहने वालो को जो पाप लगता है वही पाप मुझे लगे यदि मैं उसे नहीं जीत सकूँ तो ॥१५॥ जो पुत्र माता के चरणों को तीर्थ नहीं मान करके उसके साथ उसका विरोध करे उसको जो पाप लगता है, वही पाप मुझे लगे यदि मै दमन को नहीं जीत सकूँ तो ॥१६॥ आज मेरे बाणों से विद्ध हृदय वाला राजपुत्र

आज्ञप्तोऽसौ ययौ सैन्यैर्बहुभिःपरिवारितः। यत्रास्ते दमनो राजपुत्रः शूरकुलोद्भवः ॥१९॥
दमनोऽपि तमाज्ञाय ह्यागतं रणमण्डले। प्रत्युज्जगाम वीराग्र्यः स्वसैन्यपरिवारितः ॥२०॥
अन्योन्यं तौ संमिलितौ रथस्थौ रथशोभिनौ।
समरे शक्रदैत्यौ किं युद्धार्थं रणमागतौ ॥२१॥
उवाच पुष्कलस्तं वै राजपुत्रं महाबलम्। राजपुत्र ! दमनक ! मां जानीहि समागतम् ॥२२॥
सप्रतिज्ञं तु युद्धाय भरतात्मजमुद्भटम्। पुष्कलेन स्वनाम्ना च लक्षितं विद्धि सत्तम ! ॥२३॥
रघुनाथपदाम्भोजनित्यसेवामधुव्रतम्। त्वां जेष्ये शस्त्रसङ्घेन सज्जीभव महामते ! ॥२४॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य दमनःपरवीरहा। प्रत्युवाच हसन्वाग्मी निर्भयो दृष्टविक्रमः ॥२५॥
सुबाहुपुत्रं दमनं पितृभक्तिहताघकम्। विद्धि मामश्वनेतारं शत्रुघ्नस्य महीपतेः॥२६॥
जयो दैवविसृष्टोऽयं यस्य चाऽलङ्करिष्यति। स प्राप्नोति निरीक्षस्व बलं वै रणमूर्धनि ॥२७॥
इत्युक्त्वा सशरं चापं विधायाकर्णपूरितम्। मुमोच बाणान्निशितान्वैरिप्राणापहारिणः ॥२८॥
ते बाणास्त्वाविलीभूताश्छादयामासुरम्बरम्। सूर्यभानुप्रभा यत्र बाणच्छाया निवारिता ॥२९॥
गजानां कटभित्त्यौघे लग्ना सायकसन्ततिः। अलङ्करोति धातूनां रागा इव विचित्रिताः ॥३०॥
पतितास्तत्र दृश्यन्ते नरा वाहा गजा रथाः। शरव्रातेन नृपतेःसुतेन परिताडिताः ॥३१॥
तद्विक्रान्तं समालोक्यं पुष्कलःपरवीरहा। शराणां छाययाव्याप्तं रममण्डलमीक्ष्य च ॥३२॥
शरासने समाधत्त बाणं वह्न्यभिमन्त्रितम्। आचम्य सम्यग्विधिवन्मोचयामास सायकम् ॥३३॥

युद्ध में पृथिवी पर सो जाय ॥१७॥ **शेषजी ने कहा—** पुष्कल की इस प्रतिज्ञा को सुनकर शत्रुघ्नजी प्रसन्न हो गये और उसे युद्ध करने का आदेश दिए ॥१८॥ आज्ञा प्राप्त करके पुष्कल अनेक सैनिक वीरों के साथ वहाँ गये जहाँ पर शूरवंशीय वीर दमन विद्यमान था ॥१९॥ दमन भी रणभूमि में आये हुए पुष्कल को जानकर अपनी सेना के साथ सामने आ गया ॥२०॥ रथ पर बैठकर सुशोभित होने वाले वे दोनों परस्पर में ऐसे लगते थे जैसे इन्द्र और दैत्येन्द्र युद्ध करने के लिए आये हों ॥२१॥ पुष्कल ने महाबलवान् राजपुत्र से कहा— राजपुत्र दमन मैं तुमसे युद्ध करने आया हूँ ॥२२॥ मैं भरतजी का पुत्र उद्भट वीर हूँ और प्रतिज्ञा पूर्वक आया हूँ। मेरा नाम पुष्कल है ॥२३॥ श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमलों का सेवक हूँ। मैं अपने शस्त्र समूह से तुमको जीतूँगा, तुम तैयार हो जाओ ॥२४॥ इस वाक्य को सुनकर शत्रुवीरों को मारने वाले दमन जिसका पराक्रम देखा जा चुका था वह निर्भय होकर हँसते हुए कहा ॥२५॥ मैं महाराज सुबाहु का पुत्र तथा पिता की भक्ति करने के कारण निष्पाप हूँ। राजा शत्रुघ्न के अश्व को मैं ले गया हूँ, यह जानो ॥२६॥ भाग्य के द्वारा प्रदत्त विजय जिसको प्राप्त होगी वही उसे प्राप्त करेगा। आप युद्ध में मेरे पराक्रम को देखें ॥२७॥ इस तरह से कहकर उसने बाण से युक्त धनुष को अपने कान पर्यन्त खींचकर वैरियों के प्राण को ले लेने वाले तीक्ष्ण वाणों को छोड़ा ॥२८॥ छोड़े गये वे बाण आकाश को ढँक दिये उससे सूर्य की कान्ति भी ढँक गयी ॥२९॥ वे बाण समूह हाथियों के गाल में जाकर लगे और वे उनको उसी तरह से सुशोभित किए जिस तरह गेरु की लालिमा से रङ्गे गये वे सुशोभित होते हों। राजपुत्र के द्वारा छोड़े गये बाण समूह मनुष्य, वाहन, हाथी और रथ पर गिरे हुए दिखने लगे ॥३०-३१॥ उसके पराक्रम को देखकर तथा बाणों की छाया से व्याप्त रणमण्डल को देखकर वीर शत्रुओं को मारने वाले पुष्कल भी अपने धनुष पर अग्निमन्त्र से अभिमन्त्रित बाणों को चढ़ाकर तथा आचमन करके विधिपूर्वक बाणों को

ततोऽग्निःप्रादुरभवत्तत्र सङ्ग्राम मूर्धनि। ज्वालाभिर्विलिहन्व्योम प्रलयाग्निरिवोत्थितः॥३४॥
ततोऽस्य सैन्यं निर्दग्धं त्रासं प्राप्तं रणाङ्गणे ।
पलायनपरं जातं वह्निज्वालाभिपीडितम् ॥३५॥
छत्राणि तु प्रदग्धानि चन्द्राकाराणि धन्विनाम् ।
दृश्यन्ते जातरूपाभकान्तिधारीणि तत्र ह ॥३६॥
हया दग्धाःपलायन्ते केसरेषु च वैरिणाम्। रथा अपि गता दाहं सुकूबरसमन्विताः॥३७॥
मणिमाणिक्यरत्नानि वहन्तःकरभास्ततः । पलायन्ते दहनभूज्वालामालाभिपीडिताः ॥३८॥
कुत्रचिद्दन्तिनो नष्टाःकुत्रचिद्धयसादिनः। कुत्रचित्पत्तयो नष्टा वह्निदग्धकलेवराः॥३९॥
शराःसर्वे नृपसुतप्रमुक्ताः प्रलयं गताः। आशुशुक्षणिकीलाभिर्भस्मीभूताःसमन्ततः ॥४०॥
तदा स्वसैन्ये दग्धे च दमनो रोषपूरितः । सर्वास्त्रवित्तच्छान्त्यर्थं वारुणास्त्रमथाददे॥४१॥
वारुणं वह्निशान्त्यर्थमुक्तं तेन महीभृता। आप्लावयद्बलं तस्य रथवाजिसमाकुलम् ॥४२॥
रथा विप्लावितास्तोयैर्दृश्यन्ते परिपन्थिनाम्। गजाश्चापि परिप्लुष्टाः स्वीयाः शान्तिमुपागताः॥४३॥
वह्निश्च शान्तिमगमदग्न्यस्त्रपरिमोचितः। शान्तिमाप बलं स्वीयं वह्निज्वालाभिपीडितम्॥४४॥
कम्पिताः शीततोयेन सीत्कुर्वन्ति च वैरिणा ।
करका वृष्टिभिः क्षिप्ता वायुना च प्रपीडिताः ॥४५॥
तदा स्वबलमालोक्य तोयपूरेण पीडितम्। कम्पितं क्षुभितं नष्टं वारुणेन विनिर्हतम्॥४६॥
तदाऽतिकोपताम्राक्षःपुष्कलो भरतात्मजः। वायव्यास्त्रं समाधत्त धनुष्येकं महाशरम्॥४७॥
ततो वायुर्महानासीद्वायव्यास्त्रप्रचोदितः । नाशयामास वेगेन घनानीकमुपस्थितम्॥४८॥
वायुना स्फालिता नागाःपरस्पर समाहताः। अश्वाश्च संहतान्योन्यं सस्वारोहसमन्विताः॥४९॥

छोड़े॥३२-३३॥ उससे युद्ध स्थल में अग्नि प्रकट हो गये और प्रलयाग्नि के समान अपनी ज्वाला से मानो आकाश को छू रहे थे ॥३४॥ उससे जलती हुयी दमन की सेना भयभीत हो गयी और अग्नि की ज्वाला से पीड़ित होकर भागने लगी ॥३५॥ धनुर्धारियों के चन्द्राकर छत्र जल गये और उनकी कान्ति सुवर्ण के समान दिखने लगी॥३६॥ उनके घोड़ों के आयालों मे आग लग गयी और सुन्दर मध्यभाग से युक्त रथ भी जल गये॥३७॥ मणि-मणिक्य तथा रत्नों को धारण किए हुए हाथी भी अग्नि की ज्वाला से पीड़ित होकर भागने लगे॥३८॥ कहीं पर हाथी नष्ट हो गये, कहीं पर घुड़सवार मर गये, कहीं पर पैदल सेना मर गयी, उनका शरीर अग्नि से जल गया था ॥३९॥ राजपुत्र के द्वारा छोड़े गये सभी बाण भी विनष्ट हो गये । अग्नि की चिनगारियों से वे पूर्णरूप से भस्म हो गये ॥४०॥ उस समय अपनी सेना के दग्ध हो जाने पर सभी अस्त्रों को जानने वाले दमन ने वारुणास्त्र का सन्धान किया ॥४१॥ उस राजकुमार ने अग्नि की शान्ति के लिए वारुणास्त्र को छोड़ा, उसने रथ और घोड़े से व्याप्त पुष्कल सेना को सींच दिया ॥४२॥ शत्रुओं के रथ पानी में डूबते हुए दिखने लगे। शत्रुओं के हाथी भी डूबने लगे और अपने हाथी शान्त हो गये ॥४३॥ अग्न्यास्त्र से निकली हुयी आग और उसकी अपनी सेना दोनों शान्त हो गयी ॥४४॥ वे ठंढे जल से काँपने लगे और सीत्कार करने लगे क्योंकि शत्रु ने वायु के साथ ओले की वृष्टि कर दी थी ॥४५॥ उस समय वारुणास्त्र के जल से पीड़ित, काँपते हुए, क्षुब्ध तथा नष्ट अपनी सेना को देखकर क्रोध से लाल आँखों वाले भरतपुत्र पुष्कल ने एक महान् शर को लेकर वायव्यास्त्र का सन्धान किया ॥४६-४७॥ उसके बाद वायव्यास्त्र से प्रेरित महान् वायु उद्धुत हो गयी, उसने वेग पूर्वक मेघ समूह को विनष्ट कर दिया ॥४८॥ वायु के द्वारा शत्रु सेना एक दूसरे से टकराने लगी । घोड़े भी परस्पर में अपने

नरा:प्रभञ्जनोद्धूता मुक्तकेशा निरोजसः। पतन्तोऽत्र समीक्ष्यन्ते वेताला इव भूगताः॥५०॥
वायुना स्वबलं सर्वं परिभूतं विलोक्य सः।
राजपुत्रःपर्वतास्त्रं धनुष्येवं समादधे ॥५१॥
तदा तु पर्वताः पेतुर्मस्तकोपरि युध्यताम्। वायुः सञ्छादितस्तैस्तु न प्रचक्राम कुत्रचित्॥५२॥
पुष्कलो वज्रसंज्ञं तु समाधत्तं शरासनम्। वज्रेण कृत्तास्ते सर्वे जाताश्च तिलशःक्षणात् ॥५३॥
वज्रं नागाव्रजःशेषान्कृत्वा बाणाभिमन्त्रितम्। राजपुत्रोरसि प्रोच्चैः पपात स्वनवद् भृशम् ॥५४॥
सस्वाकुलितचेतस्को हृदि विद्धः क्षतो भृशम्।
विव्यथे बलवान्वीरःकश्मलं परमाप सः ॥५५॥
तं वै कश्मलितं दृष्ट्वा सारथिर्नयकोविदः।
अपोवाहरणात्तस्मात्क्रोशमात्रं नरेन्द्रजम् ॥५६॥
ततो योधा राजसूनोः प्रनष्टाःप्रपलायिताः। गत्वा पुरीं समाचख्युःकश्मलस्थंनृपात्मजम् ॥५७॥
पुष्कलो जयमाप्यैवं रणमूर्धनि धर्मवित्। न प्रहर्तुं पुनः शक्तो रघुनाथवचः स्मरन्॥५८॥
ततो दुन्दुभि निर्घोषो जयशब्दो महानभूत्। साधुसाध्विति वाचश्च प्रावर्तन्त मनोहराः॥५९॥
हर्षं प्राप स शत्रुघ्नो जयिनं वीक्ष्य पुष्कलम्।
प्रशशंस सुमत्यादिमन्त्रिभिःपरिवारितः ॥६०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
पुष्कलविजयो नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥

* * *

अश्वारोहियों के साथ संहत हो गये ॥४९॥ तेज वायु के द्वारा उड़ाये गये शत्रुओं के केश खुल गये। वे ओजहीन हो गये। वे बेतालों के समान पृथिवी पर गिरने लगे ॥५०॥ राजपुत्र दमन ने अपनी सारी सेना को वायु से परेशान देखा और उसने अपने धनुष पर पर्वतास्त्र का सन्धान किया ॥५१॥ उस समय युद्ध करने वालों के शिर पर पर्वत गिरने लगे। पर्वतों के कारण वायु रुक गयी और चल न सकी ॥५२॥ पुष्कल ने वज्रास्त्र का संधान किया वज्र ने उस पर्वतों को क्षणभर में तिल के समान काट दिया ॥५३॥ पर्वत समूह को विनष्ट करके अभिमन्त्रित वह बाण जोर से शब्द करता हुआ राजपुत्र के हृदय में जाकर लगा ॥५४॥ उससे राजपुत्र व्याकुल अन्तःकरण वाला हो गया और उसका विद्ध हृदय अत्यन्त क्षत हो गया। वह वीर अत्यन्त व्यथित होकर अत्यधिक मूर्छित हो गया ॥५५॥ दमन को मूर्छित देखकर नीतिज्ञ सारथि उसको रणस्थल से एक कोश दूर ले गया ॥५६॥ उसके बाद राजपुत्र के नष्ट हुए योद्धा भाग चले। नगर में जाकर बतलाये की राजपुत्र निस्संज्ञ हो गये हैं ॥५७॥ इस तरह से युद्ध स्थल में विजय प्राप्त करके पुष्कल श्रीरामचन्द्र की वाणी का स्मरण करते हुए पुनः प्रहार नहीं किए। उस समय जोर-जोर से दुन्दुभि बजी और जय-जयकार होने लगा, सबलोगों ने बहुत अच्छा, बहुत अच्छा इस मनोहर वाणी को कहा ॥५८-५९॥ विजयी पुष्कल को देखकर शत्रुघ्नजी प्रसन्न हो गये और सुमति आदि मन्त्रियों से सेवित उन्होंने पुष्कल की प्रशंसा की ॥६०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवान्दान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में पुष्कल विजय नामक चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

* * *

पचीसवाँ अध्याय

शेष उवाच

अथ वीक्ष्य भटान्निजान् नृपो रुधिरौघेण परिप्लुताङ्गकान् ।
सुखमाप न वै शुशोच तान्परिपप्रच्छ सुतस्य चेष्टितम् ।।१।।
गदताऽखिलकर्म तस्य वै स कथं चाहरदश्ववर्यकम् ।
कथयन्तु पुनःकियद्बलं बत वीराः कति योद्धुमागताः ।।२।।
अथ शत्रुबलोन्मुखः कथं मम वीरो दमनो रणं व्यधात् ।
विजयं च विधाय दुर्जयं किल वीरं बत कोऽप्यशातयत् ।।३।।
इत्याकर्ण्य वचो राज्ञः प्रत्यूचुस्तेऽस्य सेवकाः ।
क्षतजेन परिक्लिन्नगात्रवस्त्रादिधारिणः ।।४।।
राजन्नश्वं समालोक्य पत्रचिह्नाद्यलङ्कृतम्। ग्राहयामास गर्वेण तृणीकृत्य रघूत्तमम् ।।५।।
ततो हयानुगःप्राप्तःस्वल्पसैन्यसमावृतः। तेन साकभूद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।।६।।
तं मूर्च्छितं ततःकृत्वा तव पुत्रःस्वसायकैः। यावत्तिष्ठत्यथायातःशत्रुघ्नभ्रातृपुत्रकः ।।७।।
ततो युद्धंमहदभूतच्छस्त्रास्त्र परिबृंहितम्। बहुशो जयमापेदे तव पुत्रो महाबलः।।८।।
इदानीं तेन मुक्त्वास्त्रं शत्रुघ्नभ्रातृसूनुना। मूर्च्छितःप्रधने राजन्कृतो वीरःसुतस्तव।।९।।
इति वाक्यं समाकर्ण्य रोषशोकसमन्वितः। स्थगिताङ्ग इवासीत्स समुद्र इव पर्वणि ।।१०।।
उवाच सेनाधिपतिं रोषप्रस्फुरिताधरः। दन्तैर्दन्ताँल्लिहन्नोष्ठं जिह्वया शोककर्शितः।।११।।
सेनापते ! कुरुष्वारान्मम सेनां तु सज्जिताम् ।
योत्स्ये रामस्य सुभटैर्मम पुत्रोपघातवैः ।।१२।।

सुबाहु का अपनी सेना के साथ युद्धभूमि में आना

शेषजी ने कहा— राजा अपने वीरों के खून से लथपथ अङ्ग को देखकर दुःखी हो गये और उन सबों से अपने पुत्र की चेष्टाओं को पूछे ।।१।। **राजा ने कहा—** बतलाओं और कहो कि उसने इस श्रेष्ठ अश्व का हरण क्यों किया ? यह भी बतलाओं कि युद्ध करने के लिए आयी हुयी वीरों की सेना कितनी है ।।२।। उसके बाद शत्रु के सामने दमन ने कैसे युद्ध किया ? उसने विजय को कैसे प्राप्त किया ? उसके बाद किस वीर ने उसको मारा ।।३।। राजा की इस वाणी को सुनकर उनके सेवकों ने जो सब खून से लथपथ शरीर और वस्त्र को धारण किए हुए थे, कहा ।।४।। हे राजन् ! पत्र तथा चिह्न से अलंकृत अश्व को देखकर दमन ने रघुश्रेष्ठ को तृण के समान मानकर उस घोड़े को गर्व से पकड़ लिया ।।५।। उसके बाद अश्व के पीछे चलने वाली थोड़ी सेना के साथ प्रतापाग्रय आये उनके साथ भयङ्कर घोर युद्ध हुआ ।।६।। उसको आपके पुत्र ने अपने बाणों से मूर्छित कर दिया। वे वहीं पर ठहरे हुए थे कि शत्रुघ्न के भाई का पुत्र आया ।।७।। उसके बाद दोनों का शास्त्रास्त्रों से महान् युद्ध हुआ । आपके महाबलवान् पुत्र ने बार-बार जय प्राप्त किया ।।८।। उसके बाद शत्रुघ्न के भाई के पुत्र के द्वारा छोड़े गये अस्त्र ने युद्ध में आपके पुत्र को मूर्छित कर दिया ।।९।। इस बात को सुनकर रोष तथा शोक से युक्त राजा के अङ्ग उसी तरह शिथिल हो गये जिस तरह पर्व के अवसर पर समुद्र शिथिल हो जाता है ।।१०।। राजा

अद्याऽहं मम पुत्रस्य दुःखदं निशितैःशरैः। पातयिष्ये यदि ह्येनं रक्षिताऽपि महेश्वरः ॥१३॥
सेनापतिरिदं वाक्यं प्रोक्तं सुभुजभूपतेः। निशम्य च तथा कृत्वा सज्जीभूतोऽभवत्स्वयम्॥१४॥
राज्ञे निवेदयामास स सज्जां चतुरङ्गिणीम्। सेनां कालबलप्रख्यां हतदुर्जनकोटिकाम् ॥१५॥
श्रुत्वा सेनापतेर्वाक्यं सुबाहुःपरवीरहा। निर्जगाम ततो यत्र शत्रुघ्नःस्वसुतार्दनः ॥१६॥
कुञ्जरैश्च मदोन्मत्तैर्हयैश्चापि मनोजवैः। रथैश्च सर्वशस्त्रास्त्रपूरितै रिपुजेतृभिः ॥१७॥
भूश्चकम्पे तदा तत्र सैन्यभारेण भूरिणा। संमर्दःसुमहानासीत्तत्र सैन्ये विसर्पति ॥१८॥
राजानं निर्गतं दृष्ट्वा रथेन कनकाङ्गिना। शत्रुघ्नबलमुद्युक्तं सर्ववैरिप्रहारकम् ॥१९॥
सुकेतुस्तस्य वै भ्राता गदायुद्धविशारदः। रथेनाश्वाजगामायं सर्वशस्त्रास्त्रपूरितः ॥२०॥
चित्राङ्गस्तु सुतो राज्ञःसर्वयुद्ध विचक्षणः। जगाम स्वरथेनाशु शत्रुघ्नबलमुन्मदम् ॥२१॥
तस्यानुजो विचित्राख्यो विचित्ररणकोविदः। ययौ रथेन हैमेन भ्रातृदुःखेन पीडितः॥२२॥
अन्ये शूरा महेष्वासाःसर्वशस्त्रास्त्रकोविदाः। ययुर्नृपसमादिष्टाःप्रधनं वीरपूरितम् ॥२३॥
राजा सुबाहुःसंरोषादागतःप्रधनाङ्गणे। विलोकयामास सुतं मूर्च्छितं शरपीडितम्॥२४॥
रथोपस्थस्थितं मूढं स्वसुतंदमनाभिधम्। वीक्ष्य दुःखं मुहुःप्राप वीजयामास पल्लवैः॥२५॥
जलेन सिक्तः संस्पृष्टो राज्ञा कोमलपाणिना।
संज्ञामाप शनैर्वीरो दमनःपरमास्त्रवित् ॥२६॥

के क्रोध से ओठ फड़कने लगे। उन्होंने सेनापति से अपने दाँत को कटकटाते हुए तथा शोक सन्तप्त होने से जीभ से ओठ को चाटते हुए कहा ॥११॥ सेनापते ! तुम शीघ्र मेरी सेना को तैयार करो। यदि उसके रक्षक महेश्वर भी होंगे तो भी मैं उसका वध करूँगा ॥१२-१३॥ राजा सुबाहु की इस बात को सुनकर सेनापति उनकी आज्ञा का पालन करते हुए स्वयं युद्ध करने के लिए तैयार हो गया ॥१४॥ उसने चतुरङ्गिणी सेना जो मृत्यु की सेना के समान भयङ्कर थी तथा करोड़ों दुर्जनों को मारने वाली थी उसे सजाकर निवेदित किया ॥१५॥ सेनापति के वाक्य को सुनकर शत्रुवीरों को मारने वाले सुबाहु वहाँ के लिए प्रस्थान किये जहाँ पर उनके पुत्र का मर्दन करने वाले शत्रुघ्न विद्यमान थे ॥१६॥ मदोन्मत्त हाथियों, मन के समान वेग वाले घोड़ों तथा समस्त शस्त्रास्त्रों से परिपूर्ण तथा शत्रुओं को जीतने वाले रथों के साथ वे वहाँ गये ॥१७॥ सुबाहु की विशाल सेना के भार से पृथिवी काँपने लगी, उस चलती हुयी सेना में बहुत अधिक भीड़ थी ॥१८॥ सुवर्ण निर्मित रथ से राजा को निकले हुए देखकर तथा शत्रुघ्न की शत्रुओं का विनाश करने वाली सेना को तैयार गदा युद्ध विशारद राजा का भाई सुकेतु सभी शस्त्रास्त्रों से पूरित रथ से आया ॥१९-२०॥ राजा का चित्राङ्ग नामक पुत्र जो सभी प्रकार के युद्धों को करने में निपुण था, वह अपने रथ से शत्रुघ्नजी की सेना के सामने आया ॥२१॥ उसका छोटा भाई विचित्र था। वह विचित्र प्रकार का युद्ध करता था वह भी भाई के दुःख से पीड़ित होकर सुवर्ण रथ से वहाँ गया ॥२२॥ दूसरे वीर जो बड़े-बड़े धर्नुधारी थे तथा सभी शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता थे, वे भी राजा से आदिष्ट होकर उस वीरों से पूरिपूर्ण युद्ध में गये ॥२३॥ राजा सुबाहु क्रोध करके युद्धाङ्गण में आये उन्होंने अपने पुत्र को देखा जो बाण से पीड़ित होकर मूर्छित पड़ा था ॥२४॥ रथ के पीछे के भाग में मूर्छित पड़े हुए अपने दमन नामक पुत्र को देखकर अत्यन्त दुःखी राजा पल्ल्वों से उसे हवा किए ॥२५॥ उन्होंने उसे जल से सींचा और राजा ने अपने कोमल हाथों से उसका स्पर्श किया। दमन नामक परमवीर होश में आ गया ॥२६॥ उसने उठकर कहा— मेरा धनुष कहाँ है

उत्थित:क्व धनुर्मेऽस्ति क्व पुष्कल इतो गतः ।
संसज्य समरं त्यक्त्वा मद्बाणव्रणपीडितः ॥२७॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य सुबाहुः पुत्रभाषितम् ।
परमं हर्षमापेदे परिरभ्य सुतं स्वकम् ॥२८॥
दमनो वीक्ष्य जनकं नृपं नम्रशिरोधरः । पपात पादयोर्भक्त्या क्षतदेहोऽस्त्रराजिभिः ॥२९॥
स्वसुतं रथसंस्थं तु विधाय नृपतिःपुनः। जगाद सेनाधिपतिं रणकर्मविशारदः॥३०॥
व्यूहं रचय संग्रामे क्रौञ्चाख्यं रिपुदुर्जयम् । यमाविश्य जये सैन्यं शत्रुघ्नस्य महीपतेः॥३१॥
तद्वाक्यमाकर्ण्य सुबाहुभूपतेः क्रौञ्चख्यसद्व्यूहविशेषमादधात् ।
यन्नो विशान्ते सहसा रिपोर्गणा महाबलाः शस्त्रसमूहधारिणः ॥३२॥
मुखे सुकेतुस्तस्यासीद्गले चित्राङ्गसंज्ञकः। पक्षयो राजपुत्रौ द्वौ पुच्छे राजा प्रतिष्ठितः ॥३३॥
मध्ये सैन्यं महत्तस्य चतुरङ्गैस्तु शोभितम्। कृत्वा न्यवेदयद्राज्ञे क्रौञ्चव्यूहं विचित्रितम् ॥३४॥
राजा दृष्ट्वा सुसन्नद्धं क्रौञ्चव्यूहं सुनिर्मितम् ।
रणाय स्वमतिं चक्रे शत्रुघ्नकटके स्थितैः ॥३५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
सुबाहुसैन्यसमागमो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

* * *

और युद्ध करके तथा मेरे बाणों से पीड़ित होकर पुष्कल कहाँ गया ॥२७॥ अपने पुत्र के इस वाक्य को सुनकर सुबाहु अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने पुत्र का आलिङ्गन किए ॥२८॥ दमन अपने पिता को देखकर अपना शिर क्षुकाकार भक्ति पूर्वक पिता के चरणों पर गिर पड़ा । उसका शरीर अस्त्र समूह से क्षत हो गया था ॥२९॥ अपने पुत्र को रथ पर बैठाकर रणकर्म में दक्ष राजा ने सेनापति से कहा ॥३०॥ तुम युद्ध में क्रौञ्च नामक व्यूह की रचना करो । उनको जीतना शत्रु के लिए कठिन होता है । उसी में प्रवेश करके मैं राजा शत्रुघ्न की सेना को जीत लूँगा॥३१॥ राजा सुबाहु की बात को सुनकर सेनापति ने क्रौञ्च व्यूह को बनाया । उसमें सहसा कोई अत्यन्त बलवान शत्रु भी प्रवेश नहीं कर पाता है ॥३२॥ उस व्यूह के मुख पर सुकेतु था, गले पर चित्राङ्ग था उसके दोनों पंखों पर दोनों राजपुत्र थे और उसके पुच्छ भाग में स्वयं राजा सुवाहु थे ॥३३॥ उसके बीच में राजा की चतुरङ्गिणि सेना थी । उसकी रचना करके सेनापति ने उस विचित्र व्यूह को दिखाया ॥३४॥ राजा ने अच्छी तरह से सजाये गये क्रौञ्च व्यूह को देखा । शत्रुघ्नजी की सेना में विद्यमान वीरों के साथ युद्ध करना चाहे ॥३५॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेषवास्त्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में सुबाहु की सेना के आगमन वर्णन नामक पचीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।

* * *

छबीसवाँ अध्याय

शेष उवाच

शत्रुघ्नस्तद्बलं दृष्ट्वा भीषणाकृतिमेघवत्। हस्त्यश्वरथपादातैर्बहुभिःपरिवारितम् ॥१॥
सुमतिं प्रत्युवाचेदं वचो गम्भीरशब्दयुक् । नानावाक्यविचारज्ञैःपण्डितैःपरिसेवितः ॥२॥

शत्रुघ्न उवाच

सुमते ! कस्य नगरं प्राप्तो मे हयसत्तमः । बलमेतन्निरीक्षेऽहं पयोनिधितरङ्गवत् ॥३॥
कस्यैतद्बलमुद्धर्षं चतुरङ्गसमन्वितम् । पुरतो भाति युद्धाय समुपस्थितमादरात् ॥४॥
एतत्सर्वं समाचक्ष्व यथावत्पृच्छतो मम । यज्ज्ञात्वा युद्धसंस्थायै निर्दिशामि स्वकान्भटान् ॥५॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य सुमतिःशुभबुद्धिमान् ।
उवाच वचनं प्रीतःशत्रुघ्नं वैरितापनम् ॥६॥

सुमतिरुवाच

चक्राङ्का नगरी राजन्वर्तते सविधे शुभा । यस्यां सन्ति नराःपापरहिता विष्णुभक्तितः ॥७॥
तस्याःपुर्याःपतिरयं सुबाहुर्धर्मवित्तमः । तवाऽयं पुरतो भाति पुत्रपौत्रसमावृतः ॥८॥
स्वदारनिरतो नित्यं परदारपराङ्मुखः । विष्णोःकथाऽस्य कर्णस्था नापरार्थप्रकाशिनी ॥९॥
परस्वं न समादत्ते षष्ठांशादधिकं नृपः । ब्राह्मणा विष्णुभक्त्यैव पूज्यन्ते तेन धर्मिणा ॥१०॥
नित्यं सेवारतो विष्णुपादपद्ममधुव्रतः । एष स्वधर्मनिरतःपरधर्मपराङ्मुखः ॥११॥
एतस्य बलतुल्यं हि न वीराणां बलं क्वचित् ।
पुत्रस्य पतनं श्रुत्वा रोषशोकसमाकुलः ॥१२॥

सुमति नामक मन्त्री के द्वारा राजा सुबाहु की सेना का अवलोकन

शेषजी ने कहा— शत्रुघ्नजी ने उस भयङ्कर सेना को देखकर जो हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सेना से परिपूर्ण थी ॥१॥ मेघ के समान गम्भीर स्वर में सुमति से कहा । शत्रुघ्नजी वाक्यों का विचार करने वाले अनेक पण्डितों से सुसेवित थे ॥२॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा—** सुमते ! यह अश्व श्रेष्ठ किसके नगर में आ गया हैं ? इस सेना को मैं समुद्र के तरङ्ग के समान देख रहा हूँ ॥३॥ चतुरङ्गिणी सेना से सम्पन्न यह उत्तम सेना किसकी है? लगता है कि यह सेना सामने युद्ध करने के लिए आदर पूर्वक आ गयी हैं ॥४॥ मैं आपसे पूछ रहा हूँ; आप इन सारी बातों को मुझे बतलायें । उसको जानकर ही मैं अपने वीरों को युद्ध करने का निर्देश दूँगा ॥५॥ इस वाक्य को सुनकर शुभ बुद्धि वाले सुमति प्रसन्न होकर शत्रुओं को संतप्त करने वाला वाक्य कहा ॥६॥ **सुमति ने कहा—** हे राजन् ! सन्निकट में चक्राङ्का नाम की नगरी है । इसमें भगवान् विष्णु की भक्ति करने वाले निष्पाप लोगों का निवास है ॥७॥ उस नगरी के स्वामी सुबाहु हैं, ये धर्मो के श्रेष्ठ ज्ञाता हैं, वे ही यह पुत्रों और पौत्रों से युक्त प्रतीत होते हैं ॥८॥ ये सदा अपनी पत्नियों से प्रेम करते हैं और दूसरे की पत्नी से सदा दूर रहते हैं। ये सदैव भगवान् विष्णु की ही कथा सुनते हैं दुसरी कथा को नहीं ॥९॥ ये अपने छठे अंश के अतिरिक्त किसी दूसरे की सम्पति को नहीं लेते हैं । भगवान् विष्णु की भक्ति करने के कारण ये राजा ब्राह्मणों की पूजा करते हैं॥१०॥ ये सदैव भगवान् विष्णु के चरणों की सेवा करते रहते हैं ये राजा सदैव अपने धर्म का पालन करते

चतुरङ्गसमेतोऽयं युद्धाय समुपस्थितः । तवाऽपि वीरा बहवो लक्ष्मीनिधिमुखा अमून् ॥१३॥
जेष्यन्ति शस्त्रसङ्घेन निर्दिशाऽऽशु परं हि तान् ।
शत्रुघ्नस्तद्वचःश्रुत्वा प्रोवाच स्वभटान्वरान् ॥१४॥
रणप्राप्तिभवोद्धर्षपूरपूरितमानसान् । क्रौञ्चव्यूहोऽथ रचितःसुबाहुपरिसैनिकैः ॥१५॥
मुखपक्षस्थिता योधास्तान्को भेत्स्यति शस्त्रवित् ।
यस्य भेदे निजा शक्तिर्यो वीरविजयोद्यतः ॥१६॥
स गृह्णातु मदीयाद्धि पाणिपद्माच्च वीटकम् ।
तदालक्ष्मीनिधिर्वीरो जग्राह क्रौञ्चभेदने ॥१७॥
सर्वशस्त्रास्त्रविद्धीरैर्बहुभिःपरिवारितः । उवाच वचनं राजन्यास्येऽहं क्रौञ्चभेदने ॥१८॥
भार्गवः पूर्वमेवासीत्क्रौञ्चभेत्ता तथा ह्यहम् । तथाऽन्यं वीरमावोचत्कोऽस्य सार्धं गमिष्यति ॥१९॥
पुष्कलःपृष्ठतस्तस्य यातुं चक्रे मतिं ततः । रिपुतापो नीलरत्न उग्राश्वो वीरमर्दनः ॥२०॥
सर्वे शत्रुघ्नसन्देशाद्ययुस्तत्क्रौञ्चभेदने । शत्रुघ्नोऽपि रथस्थश्च सर्वायुधधरःपरः ॥२१॥
पृष्ठतोऽस्य परीयाय बहुभिःसैनिकैर्वृतः। तदा प्रचलितौ दृष्टावन्योन्यबलवारिधी ॥२२॥
प्रलयं कर्तुमुद्युक्तौ जगतःसुतरङ्गिणौ । तदा भेर्यःसमाजघ्नुरुभयो सेनायोर्दृढाः ॥२३॥
रणभेर्यःशङ्खनादाः श्रूयन्ते तत्र तत्र ह। हेषन्ते वाजिनस्तत्र गर्जन्ति द्विरदाभृशम्॥२४॥
हुंहुं कुर्वन्ति वीराग्र्या नदन्ति रथनेमयः । तत्र प्रकुपिताःशूराःसुबाहुबलदर्पिताः ॥२५॥

है और परधर्म से पराङ्मुख रहते हैं ॥११॥ इनकी सेना के समान कहीं भी वीरों की सेना नहीं है । अपने पुत्र के पतन को सुनकर क्रोध तथा शोक से युक्त ॥१२॥ ये राजा अपनी चतुरङ्गिणी सेना के साथ युद्ध करने के लिए आ गये हैं । आपके भी लक्ष्मीनिधि आदि अनेक वीर हैं । ये इन सबों को अपने शस्त्रसमूह के द्वारा जीत लेंगे । अतएव आप शीघ्र आदेश दें । सुमति की बातों को सुनकर शत्रुघ्नजी ने अपने श्रेष्ठ वीरों से कहा ॥१३-१४॥ उस समय वे वीर रण की प्राप्ति होने से प्रसन्न मन वाले थे । **शत्रुघ्नजी ने कहा—** आज सुबाहु के सैनिको ने क्रौञ्चव्यूह की रचना की है ॥१५॥ इस व्यूह के मुख तथा पक्ष भाग में स्थित योद्धाओं को कौन शस्त्रज्ञ जीतेगा? उसका भेदन करने में समर्थ जो वीर हो वह मेरे हाथ पर से बीड़ा उठा ले । उस समय सभी शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता वीरों से युक्त लक्ष्मीनिधि ने क्रौञ्चव्यूह का भेदन करने के लिए बीड़ा उठा लिया और कहा— राजन् ! क्रौञ्च का भेदन करने के लिए मैं जाऊँगा ॥१६-१८॥ पहले से ही क्रौञ्च का भेदन करने वाले भार्गव हैं, मैं भी इसी तरह हूँ शत्रुघ्नजी ने पूछा लक्ष्मीनिधि के साथ कौन जायेगा ?॥१९॥ उस समय पुष्कल उनके पीछे जाना चाहे । तदनन्तर रिपुताप, नीलरत्न, उग्राश्व तथा वीरमर्दन ये सबके सब शत्रुघ्नजी के निर्देशानुसार उनके साथ क्रौञ्च भेदन के लिए गये । सभी आयुधों के श्रेष्ठ धर्ता शत्रुघ्नजी भी रथ पर बैठकर बहुत से सैनिकों के साथ उनके पीछे गये । उस समय दोनों सेना रूपी समुद्र एक दूसरे के प्रति चल पड़े ॥२०-२२॥ लग रहा था कि वे सेना रूपी सागर तरङ्गायित होकर संसार का प्रलय करना चाहते हों । दोनों सेनाओं की भेरियाँ जोर से बजने लगीं॥२३॥ उस समय सर्वत्र रणभेरी तथा शङ्ख की ध्वनि सुनायी पड़ती थी । उस समय घोड़े हिनहिनाते थे और हाथी गरज रहे थे ॥२४॥ श्रेष्ठ वीर हुंकार कर रहे थे और रथों के चक्के आवाज कर रहे थे । बल के दर्प से दृप्त सुबाहु की सेना के वीर क्रुद्ध हो गये थे ॥२५॥ वे युद्ध में कह रहे थे, काट दो, छेद दो । इस तरह के

छिन्धि भिन्धीति भाषन्तो दृश्यन्ते बहवो रणे ।
एवम्भूते रणोद्युक्ते सैन्ये शत्रुघ्नवैरिणोः ॥
मुखसंस्थं सुकेतुं तं लक्ष्मीनिधिरुवाच ह ॥२६॥

लक्ष्मीनिधिरुवाच

जनकस्य सुतं विद्धि लक्ष्मीनिधि. स्मृतम् ।
सर्वशस्त्रास्त्रकुशलं सर्वयुद्धविशारदम् ॥२७॥
मुञ्चाऽश्वं रामचन्द्रस्य सर्वदानवदंशितुः। नो चेन्मद्बाणनिर्भिन्नो यास्यसे यमसादनम् ॥२८॥
इति ब्रुवन्तं वीराग्र्यं सुकेतुः सहसा त्वरन्। सज्यं चापं विधायाशु बाणान्मुञ्चन्स्थिरोऽभवत्॥२९॥
ते बाणाःशितपर्वाणःस्वर्णपुङ्खाःसमन्ततः । दृश्यन्ते व्यापिनस्तत्र रणमध्ये सुदुर्भराः ॥३०॥
तद् बाणजालं तरसा निहत्य लक्ष्मीनिधिश्चापमथाततज्यम् ।
विधाय तस्योरसि बाणषट्कं मुमोच तीक्ष्णं शितपर्वशोभितम् ॥३१॥
तद्बाणाःसुभुजभ्रातुर्हृदयं संविदार्य च। गतास्ते भुवि दृश्यन्ते रुधिराक्ता मलीमसाः ॥३२॥
तद्बाणभिन्नहृदयःसुकेतुःकोपपूरितः । जघान शरविंशत्या तीक्ष्णया नतपर्वया ॥३३॥
उभौ बाणविभिन्नाङ्गावुभो क्षतजविप्लुतौ । सैनिकैः परिदृश्यन्ते किंशुकाविव पुष्पितौ ॥३४॥
मुञ्चन्तौ बाणकोटीश्च सन्दधन्तौ द्रुतं शरान्। न केनापि विलक्ष्येते लघुहस्तौ महाबलौ ॥३५॥
कुण्डलीकृतसच्चापौ वर्षन्तौ बाणधारया। नवाम्बुदाविव दिवि शक्रनिर्देशकारिणौ ॥३६॥
तयोर्बाणा गजान्वाहान्नराञ्छूरान्विमस्तकान्। कुर्वन्तः केवलं दृष्टा न च सन्धानमोक्षणे ॥३७॥
पृथिवी सुभटैःपूर्णा सकिरीटैःसकुण्डलैः। धनुर्बाणकरै रोषसन्दष्टाधरयुग्मकैः ॥३८॥

शत्रुघ्नजी के वैरियों की सेना के मुख स्थान पर स्थित सुकेतु से लक्ष्मीनिधि ने कहा ॥२६॥ **लक्ष्मीनिधि बोले**— मैं महाराज जनक का पुत्र लक्ष्मीनिधि हूँ । मैं सभी शस्त्रास्त्रों में कुशल तथा सभी प्रकार के युद्धों को करने में निपुण हूँ ॥२७॥ समस्त दानवों को मारने वाले श्रीरामचन्द्रजी के अश्व को छोड़ दो, अन्यथा तुम मेरे बाणों द्वारा मारे जाकर यमलोक जाओगे ॥२८॥ इस तरह से कहने वाले वीर लक्ष्मीनिधि पर धनुष को चढ़ाकर बाणों को चलाते हुए सुकेतु स्थिर हो गया ॥२९॥ तीक्ष्ण पर्व वाले वे बाण सुवर्ण पुङ्ख वाले तथा भयङ्कर थे । वे युद्ध में सर्वत्र व्याप्त हो गये ॥३०॥ उसके बाद लक्ष्मीनिधि प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उस बाण समूह को बलपूर्वक विनष्ट करके तीक्ष्ण पर्वों से युक्त छह तीक्ष्ण बाणों को सुकेतु के वक्षःस्थल में मारे ॥३१॥ वे बाण सुबाहु के भाई के हृदय को चीर कर खून से सने हुए पृथिवी में प्रवेश कर गये ॥३२॥ उन बाणों से विदीर्ण हृदय वाले सुकेतु क्रुद्ध होकर अपने बीस नतपर्व बाणों से लक्ष्मीनिधि को मारे ॥३३॥ दोनों के अङ्ग बाण से विद्ध हो गये तथा दोनों खून से लथपथ हो गये थे । विकसित पलाश वृक्ष के समान दोनों को सैनिक देख रहे थे ॥३४॥ वे शीघ्रता से बाणों का सन्धान करके करोड़ों बाणों को छोड़ रहे थे । महाबलवान् उन दोनों को कोई ठीक से देख भी नहीं पा रहा था ॥३५॥ वे अपने धनुष को कुण्डलाकार बना लिए थे । इन्द्र की आज्ञा से मानो दो नवीन मेघ बाणों की धारा को बरसा रहे हों । उन दोनों के बाण हाथी, घोड़े तथा वीर मनुष्यों को मस्तक विहीन बनाते हुए ही दिखते थे । वे कब बाण का सन्धान किए और कब उसे छोड़े यह कोई देख नहीं पा रहा था ॥३६-३७॥ हाथ में धनुष बाण लिए हुए क्रोध से जो अपने दोनों अधरों को काट लेते थे ऐसे किरीट और कुण्डल से युक्त वीरों

तयो:प्रयुध्यतोर्दर्पात्सर्वशस्त्रास्त्रवेदिनो: । युद्धं समभवद्धोरं देवविस्मापनं महत् ।।३९।।
संमदोऽभवदत्यन्तं वीरकोटिविदारण: । न केनचित्क्वचिद्दृष्टं शरजालान्तरेऽम्बरम् ।।४०।।
तस्मिंस्तु समये लक्ष्मीनिधिर्वीरोऽरिमर्दन: । बाणांश्चापे समाधत्त वसुसङ्ख्यान्दृढाञ्छितान् ।।४१।।
चतुर्भिस्तुरगान्वीर:सुकेतोर्नयत्क्षयम् । एकेन ध्वजमत्युग्रं चिच्छेद तरसा हसन् ।।४२।।
एकेन सारथे:कायाच्छिरो भूमावपातयत् । एकेन चापं सगुणमच्छिनद्रोषपूरित: ।।४३।।
एकेन हृदि विव्याध सुकेतोर्वेगवान्नृप: । तत्कर्माद्भुतमुद्वीक्ष्य वीरा विस्मयमाययु: ।।४४।।
सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथि: । महतीं स गदां धृत्वा योद्धुकामोऽभ्युपेयिवान्।।४५।।
तमायान्तं समालक्ष्य गदायुद्धविशारदम् । महत्या गदया युक्तं रथादवततार स: ।।४६।।
गदामादाय महतीं सर्वाय स विनिर्मिताम् । जातरूपविचित्राङ्गीं सर्वशोभापुरस्कृताम् ।।४७।।
लक्ष्मीनिधिर्भृशं क्रुद्ध: सुकेतोर्वक्षसि त्वरन् ।
पतायामास सुदृढं गदां वज्राग्निसन्निभाम् ।।४८।।
गदया ताडितो वीरो नाकम्पत महामुने । मदान्मत्तो यथादन्ती बालेन स्रग्भिराहत: ।।४९।।
उवाच तं सुवीराग्र्यो नृपं लक्ष्मीनिधिं तदा। सहस्वैकं प्रहारं मे यदि शूर:परन्तप !।।५०।।
इत्युक्त्वा ताडयामास ललाटे गदया भृशम् ।
गदया ताडितो भालेऽसृग्वमन्कुपितो भृशम् ।।५१।।
मूर्ध्नि तं ताडयामास गदया कालरूपया । सुकेतुरपि तं स्कन्धेताडयामास धर्मवित् ।।५२।।
एवं भृशं प्रकुपितौ गदायुद्धविशारदौ । गदायुद्धं प्रकुर्वाणौ परस्परजयैषिणौ ।।५३।।

से पृथिवी पट गयी थी ।।३८।। सभी शस्त्रों एवं अस्त्रों के अभिज्ञ उन दोनों के युद्ध करते समय देवताओं को भी आश्चर्यित करने वाला भयङ्कर युद्ध हुआ था ।।३९।। वहाँ करोड़ों वीरों को विनष्ट करने वाला अत्यन्त संमर्द हुआ । उस समय कोई भी बाण समूह के भीतर से आकाश को नहीं देख पाता था ।।४०।। उसी समय लक्ष्मीनिधि ने अपने धनुष पर आठ बाणों को चढ़ाया । वे बाण सुदृढ़ तथा तीक्ष्ण थे ।।४१।। उन्होंने चार बाणों से सुकेतु के घोड़ों को मार दिया और जोर से हँसते हुए उनके ध्वजा को एक बाण से काट दिया । एक बाण से उन्होंने सारथि के शिर को काटकर पृथिवी पर गिरा दिया । एक बाण से उन्होंने सुकेतु के प्रत्यञ्चा से युक्त धनुष को काट दिया ।।४२-४३।। एक बाण से उन्होंने सुकेतु के हृदय को वेध दिया । उनके इस अद्भुत कर्म को देखकर वीर आश्चर्यित हो गये ।।४४।। धनुष के कट जाने से तथा रथ और सारथि के विनष्ट हो जाने के कारण सुकेतु महान् गदा लेकर युद्ध करने आये ।।४५।। गदा युद्ध करने में निपुण सुकेतु को आते देखकर लक्ष्मीनिधि अपनी महती गदा लेकर रथ से उतर पड़े ।।४६।। सम्पूर्ण लोहे से निर्मित सुवर्ण से मढ़ी हुयी तथा सभी प्रकार की शोभा से युक्त विशाल गदा को लेकर लक्ष्मीनिधि अत्यन्त क्रोध से वाज्राग्नि के समान उस गदा का प्रहार सुकेतु के वक्षस्थल पर किए ।।४७-४८।। उस गदा के प्रहार से सुकेतु उसी तरह से कम्पित नहीं हुए जिस तरह कोई किसी मदोन्मत्त हाथी पर माला से प्रहार किया हो ।।४९।। सुकेतु ने कहा— हे परंतप ! यदि तुम वीर हो तो अब मेरे एक प्रहार को वर्दास्त करो ।।५०।। इस तरह से कहकर सुकेतु ने लक्ष्मीनिधि के ललाट पर गदा का भयङ्कर प्रहार किया । उस गदा के प्रहार से खून का वमन करते हुए लक्ष्मीनिधि अत्यन्त कुपित हुए ।।५१।। उन्होंने अपनी काल रूपी गदा के द्वारा सुकेतु के शिर पर प्रहार किया और धर्मज्ञ सुकेतु ने भी लक्ष्मीनिधि के कन्धे पर प्रहार

अन्योन्याघातविमतौ परस्परवधोद्यतौ । न कोऽपि तत्र हीयेत न को जीयेत संयुगे॥५४॥
मूर्ध्नि भाले तथा स्कंधे हृदि गात्रेषु सर्वतः ।
रुधिरौधपरिक्लिन्नौ महाबलपराक्रमौ ॥५५॥
तदा लक्ष्मीनिधिक्रुद्धो गदामुद्यम्य वेगवान् । जगाम प्रबलं हन्तुं हृदि राजानुजं बली॥५६॥
तमायान्तमथालोक्य स्वगदां महतीं दधत् । ययौ तं तरसा हन्तुंराजभ्राता बलाद्बलम् ॥५७॥
गदां तेन विनिक्षप्तां स्वकरे धृतवानयम् । तयैव गदया तस्य हृदि जघ्ने महाबलः ॥५८॥
स्वगदां तेन वै नीतां दृष्ट्वा लक्ष्मीनिधिर्नृपः ।
बाहुयुद्धेन तं योद्धुमियेष बलवत्तमम् ॥५९॥
तदा राजानुजःक्रुद्धो बाहुभ्यामुपगृह्य तम् । युयुधे सर्वयुद्धस्य ज्ञाता वीरेषु सत्तमः ॥६०॥
तदा लक्ष्मीनिधिस्तस्य हृदि जघ्ने स्वमुष्टिना ।
तदा सोऽपि शिरस्येनं मुष्टिमुद्यम्य चाहनात् ॥६१॥
मुष्टिभिर्वज्रसङ्काशैस्तलस्फोटैश्च दारुणैः । अन्योन्यं जघ्नतुःक्रुद्धौ सन्दष्टाधरपल्लवौ ॥६२॥
मुष्टीमुष्टी दन्तादन्ति कचाकचि नखानखि । उभयोरभवद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥६३॥
तदास प्रकुपितो भ्राता नृपतेश्चरणे नृपम् । गृहीत्वा भ्रामयित्वाऽथ पातयामास भूतले ॥६४॥
लक्ष्मीनिधिःकरे गृह्य तं नृपानुजमुच्चकैः । भ्रामयित्वा शतगुणं गजोपस्थे जघान तम् ॥६५॥
स तदा पतितो भूमौ संज्ञां प्राप्य क्षणादनु । तथैव भ्रामयामास व्योम्नि वेगेन विक्रमी ॥६६॥
एवं प्रयुध्यमानौ तो बाहुयुद्धं गतौ पुनः । पादे पादं करे पाणिं हृदिहृद्वदने मुखम् ॥६७॥

किया ॥५२॥ इस तरह गदा युद्ध करने में निपुण वे दोनों अत्यन्त कुपित थे । वे एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से गदा युद्ध कर रहे थे ॥५३॥ एक दूसरे को मार डालने की इच्छा से वे एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे । उसमें में कोई न तो कमजोर पड़ता था और न तो कोई विजयी हो रहा था ॥५४॥ महान बल और पराक्रम से युक्त उनके शिर, ललाट, कन्धा, हृदय तथा सम्पूर्ण शरीर खून की धारा से भिंग गये थे ॥५५॥ उस समय वेग सम्पन्न लक्ष्मीनिधि गदा उठाकर राजा के अनुज के हृदय पर प्रहार करने चले । उस तरह से लक्ष्मीनिधि को आते देखकर सुकेतु भी वेग पूर्वक उनको मारने चले ॥५६-५७॥ सुकेतु ने उनके द्वारा फेंकी गयी गदा को अपने हाथ से पकड़ लिया और उसी गदा से लक्ष्मीनिधि के वक्षस्थल पर प्रहार किया ॥५८॥ सुकेतु के द्वारा प्रक्षिप्त अपनी गदा को देखकर लक्ष्मीनिधि ने उसके साथ बाहु युद्ध करना चाहे ॥५९॥ उस समय क्रुद्ध होकर राजा के अनुज लक्ष्मीनिधि को अपनी भुजाओं से पकड़कर युद्ध करने लगे क्योंकि वे वीरों में श्रेष्ठ थे और सभी प्रकार का युद्ध करना जानते थे ॥६०॥ उस समय लक्ष्मीनिधि ने अपने मुक्के से उनके हृदय में प्रहार किया । उस समय सुकेतु ने भी इनके शिर पर मुक्के से प्रहार किया ॥६१॥ वज्र के समान मुक्के से तथा भयङ्कर तल स्फोट के द्वारा क्रुद्ध हुए अपने ओष्ठों को काटकर वे एक दूसरे पर प्रहार करते थे ॥६२॥ उन दोनों में मुक्के से दांतो से, केश पकड़कर भयङ्कर युद्ध हुआ ॥६३॥ उसके बाद क्रुद्ध होकर राजा के भाई ने लक्ष्मीनिधि के पैरों को पकड़कर घुमाया और पृथिवी पर पटक दिया ॥६४॥ लक्ष्मीनिधि ने भी सुकेतु का हाथ पकड़कर उन्हें खूब घुमाया और हाथी के पीछले भाग पर पटक दिया ॥६५॥ उसके बाद पृथिवी पर गिरने के क्षणभर बाद होश में आकर सुकेतु ने लक्ष्मीनिधि को उसी प्रकार आकाश में घुमाया ॥६६॥ इस तरह से युद्ध करने के बाद वे दोनों

एवं परस्परं श्लिष्टौ परस्परवधैषिणौ । उभावपि पराक्रान्तावुभावपि मुमूर्च्छतुः ॥६८॥
तद् दृष्टा विस्मयं प्राप्ताः प्रशशंसुः सहस्रशः ।
धन्यो लख्मीनिधिभूपो धन्यो राजनुजो बली ॥६९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
गदायुद्धं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥२६॥

* * *

सत्ताइसवाँ अध्याय

शेष उवाच

चित्राङ्ग क्रौञ्चकण्ठस्थो रथस्थो वीरशोभितः ।
गाहयामास तत्सैन्यं वाराह इव वारिधिम् ॥१॥
धनुर्विस्फार्य सुदृढं मेघनादनिनादितम् । मुमोच बाणान्निशितान्वैरिकोटिविदाहकान् ॥२॥
तद्वाणभिन्नसर्वाङ्गाःशेरते सुभटाभृशम् । सकिरीटतनुत्राणाःसन्दष्टदशनच्छदाः ॥३॥
एवं प्रवृत्ते सङ्ग्रामे ययौ योद्धुं सपुष्कलः ।
मणिचित्रितमादाय चापं वैरि प्रतापनम् ॥४॥
तयोःसङ्गतयो रूपं दृश्यतेऽतिमनोहरम्। पुरा तारकसङ्ग्रामे स्कन्दतारकयोर्यथा ॥५॥

वाहुयुद्ध करने लगे । वे पैर पर पैर को, हाथ पर हाथ को, हृदय पर हृदय को तथा मुख पर मुख को सटाकर एक दूसरे को मार डालना चाहते थे । वे दोनों एक दूसरे पर आक्रमण करके दोनों मूर्छित हो जाते थे ॥६७-६८॥ उस युद्ध को देखकर हजारों लोग उन दोनों की प्रशंसा करते थे और कहते थे कि राजा लक्ष्मीनिधि और सुकेतु दोनों धन्य हैं ॥६९॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में गदायुद्ध वर्णन नामक छवीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२६।।

* * *

पुष्कल द्वारा चित्राङ्ग का वध

शेषजी ने कहा— क्रौञ्च के कण्ठ स्थान पर चित्राङ्ग वीरों के साथ विद्यमान था । प्रलयकालीन समुद्र में स्नान करने वाले वाराह के समान उसकी सेना लगती थी ॥१॥ उसने अपने धनुष का घोर टङ्कार किया । उसकी ध्वनि मेघ ध्वनि के समान थी । उसने करोड़ों वैरियों को भस्म कर देने वाले तीक्ष्ण वाणों को छोड़ा ॥२॥ उसके वाणों से विदीर्ण अङ्गों वाले जिन लोगों ने अपने ओठों को काट लिया था ऐसे किरीट और कवच धारण किए हुए वहुत से वीर पृथिवी पर गिर पड़े ॥३॥ इस तरह से युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर पुष्कल युद्ध करने के लिए गये। वे वैरियों को संतप्त करने वाले तथा मणियों से सुशोभित धनुष धारण करके गये थे ॥४॥ उन दोनों का रूप

विस्फारयन्धनुःशीघ्रं सव्यसाची तु पुष्कलः ।
ताडयामास तं क्षिप्रं शरैःसन्नतपर्वभिः ॥६॥
चित्राङ्गोऽपि रूषाक्रान्तःशरासन इषूञ्छितान् ।
दधद्व्यमुञ्चद्बहुशो रणमण्डलमूर्धनि ॥७॥
नादानं न च सन्धानं न मोचनमथापि वा । दृष्टं तावेव सन्दृष्टौ कुण्डलीकृतचापिनौ ॥८॥
तदाऽसौ पुष्कलः क्रुद्धः शराणां शतकेन तम् ।
विव्याध वक्षःस्थलके महायोद्धारमुद्भटम् ॥९॥
चित्राङ्गस्ताञ्छरान्सर्वांश्चिच्छेद तिलशः क्षणात् ।
तडयामास चाङ्गेषु पुष्कलं शितसायकैः ॥१०॥
पुष्कलस्तद्रथं दिव्यं भ्रामकास्त्रेण शोभिना। नभसि भ्रामयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥११॥
भ्रान्त्वा मुहूर्तमात्रं तु स रथो हयसंयुतः । स्थितिं लेभेऽतिकष्टेन सन्धृतो रणमण्डले ॥१२॥
स चास्य विक्रमं दृष्ट्वा चित्राङ्गः कुपितो भृशम् ।
उवाच पुष्कलं धीमान्सर्वास्त्रेषु विशारदः ॥१३॥

चित्राङ्ग उवाच

त्वया साधु कृतं कर्म सुभटैर्युधि संमतम् । मद्रथो वाजिसंयुक्तो भ्रामितो नभसि क्षणम् ॥१४॥
पराक्रमं समीक्ष्स्व ममापि सुभटेरितम्। आकाशचारी तु भवान्भव त्वमरपूजितः ॥१५॥
इत्युक्त्वा स मुमोचास्त्रं रणे परमदारुणम्। धनुषा परमास्त्रज्ञः सर्वधर्मविदुत्तमः ॥१६॥
तेन बाणेन संविद्धः खे बभ्राम पतङ्गवत् । सरथः सहयः सङ्ख्ये सध्वजश्च ससारथिः ॥१७॥
भ्रान्त्वा सरथवर्यस्तु नभसि त्वरयान्वितः। यावत्स्थितिं न लभते तावन्मुक्तोऽपरः शरः ॥१८॥

अत्यन्त मनोहर था । प्राचीन काल में तारक संग्राम में युद्ध करते हुए वे दोनों स्कन्द और तारकासुर के समान प्रतीत होते थे ॥५॥ (बायें हाथ से बाण चलाने वाले) अपने धनुष का टङ्कार करते हुए पुष्कल ने अपने सन्नत पर्व वाले बाणों से प्रहार किया ॥६॥ चित्राङ्ग भी क्रुद्ध होकर अपने उञ्छित बाणों को धनुष पर चढ़ाकर समराङ्गण में अनेक बाणों का प्रहार किया ॥७॥ वे दोनों अपने धनुष को कुण्डलाकार बना लिए थे । कोई भी यह नहीं देख पाता था कि उन सबों ने कब बाण लिया, कब उसका सन्धान किया और कब छोड़े । केवल वे ही दोनों दिखते थे ॥८॥ उस समय क्रुद्ध होकर पुष्कल ने सौ बाणों के द्वारा उद्भट तथा महान् योद्धा चित्राङ्ग के हृदय को बेध दिया ॥९॥ चित्राङ्ग ने भी उन समस्त बाणों को क्षणभर में तिल के बराबर टुकड़े-टुकड़े काट दिया और उसने भी अपने तीक्ष्ण बाणों से पुष्कल के समस्त अङ्गों में प्रहार किया ॥१०॥ पुष्कल ने अपने भ्रामकास्त्र के द्वारा चित्राङ्ग के रथ को आकाश में अद्भुत ढंग से घुमाया ॥११॥ आकाश में घोड़ों के साथ एक मुहूर्त तक घूमते रहने के बाद उसका रथ पृथिवी पर स्थिर हुआ ॥१२॥ पुष्कल के इस पराक्रम को देखकर चित्राङ्ग अत्यन्त कुपित हो गये । समस्त अस्त्रों में निपुण चित्राङ्ग ने कहा ॥१३॥ **चित्राङ्ग ने कहा**— तुमने वीरों के अनुसार सुन्दर कार्य किया है क्योंकि तुम घोड़ों के साथ मेरे रथ को क्षणभर तक घुमाते रहे ॥१४॥ अब तुम मेरे पराक्रम को देखो देवताओं के द्वारा पूजित तुमको मैं आकाशचारी बना रहा हूँ ॥१५॥ इस तरह से कहकर चित्राङ्ग ने अपने धनुष से भयङ्कर परमास्त्र का प्रहार किया । वह समस्त धर्मों का ज्ञाता था ॥१६॥ उस बाण के द्वारा पुष्कल अपने रथ,

पुनश्च परिबभ्राम रथः सूतसमन्वितः । तत्कर्म वीक्ष्य पुत्रस्य राज्ञो विस्मयमाप सः ॥१९॥
कथंचित्स्थितिमप्याप पुष्कलः परवीरहा । रथं जघान बाणैश्च ससूतहयमस्य च ॥२०॥
सभग्नस्यन्दनो वीरः पुनरन्यं समाश्रितः । सोऽपि भग्नः शरैराशुपुष्कलेन रणाङ्गणे ॥२१॥
पुनरन्यं समास्थाय यावदायाति संमुखम् । तावद्बभञ्ज निशितैः सायकैस्तद्रथं पुनः ॥२२॥
एवं दशरथा भग्ना नृपतेरात्मजस्य हि । पुष्कलेन तु वीरेण महासंयुगशालिना ॥२३॥
तदा चित्राङ्गकः सङ्ख्ये रथे स्थित्वा विचित्रिते ।
आजगाम ह वेगेन पुष्कलं प्रति योधितुम् ॥२४॥
पुष्कलं पञ्चभिर्बाणैस्ताडयामास संयुगे । तैर्बाणैर्निहतोऽत्यन्तं विव्यथे भरतात्मजः ॥२५॥
स क्रुद्धश्चापमुद्यम्य बाणान्दशशितान्महान् । मुमोच हृदये तस्य स्वर्णपुङ्खसुशोभितान् ॥२६॥
ते बाणाः पपुरेतस्य रुधिरं बहु दारुणाः । पीत्वा पेतुः क्षितौ कूटसाक्षिणः पूर्वजा इव ॥२७॥
तदा चित्राङ्गकः क्रुद्धो भल्लान्पञ्च समाददे ।
मुमोच भाले पुत्रस्य भरतस्य महौजसः ॥२८॥
तैर्भल्लैराहतः क्रुद्धः शरासनवरे शरम् । दधत्प्रतिज्ञामकरोच्चित्राङ्गनिधनं प्रति ॥२९॥
शृणु वीर ! मम क्षिप्रं प्रतिज्ञां त्वद्वधाश्रिताम् ।
तज्ज्ञात्वा सावधानेन योद्धव्यं च त्वयाऽत्र हि ॥३०॥
बाणेनानेन चेत्त्वां वै न कुर्यां प्राणवर्जितम् । सतीं सन्दूष्य वनितां शीलाचारसुशोभिताम् ॥३१॥
यो लोकः प्राप्यते लोकैर्यमस्य वशवर्तिभिः ।
स लोको मम वै भूयात्सत्यं मम प्रतिश्रुतम् ॥३२॥

घोड़े अपनी ध्वजा तथा सारथि के साथ आकाश में सञ्चरण करते रहे ॥१७॥ भ्रमण करने के बाद जब पुष्कल का रथ पृथिवी पर स्थित होने वाला ही था कि उसी समय चित्राङ्ग ने दूसरे बाण का प्रहार किया ॥१८॥ उसके बाद फिर सारथि के साथ रथ आकाश में घूमने लगा । अपने पुत्र के इस कर्म को देखकर राजा सुबाहु आश्चर्यित हो गये ॥१९॥ पुष्कल किसी प्रकार स्थिर हो पाये उसके बाद उन्होंने बाणों के प्रहार से चित्राङ्ग के रथ घोड़े और सारथि को मार दिया ॥२०॥ रथ के टूट जाने पर वीर चित्राङ्ग दूसरे रथ पर स्थित हो गये । उस रथ को भी पुष्कल ने बाणों के प्रहार से शीघ्र ही तोड़ दिया ॥२१॥ उसके दूसरे रथ पर सवार होकर चित्राङ्ग ज्यों ही सामने आये त्यों ही पुष्कल ने अपने बाणों के प्रहार से उस रथ को भी तोड़ दिया ॥२२॥ इस तरह से महापराक्रमी पुष्कल ने चित्राङ्ग के दश रथों को तोड़ दिया ॥२३॥ उस समय अद्भुत रथ पर बैठकर चित्राङ्ग पुष्कल के साथ युद्ध करने के लिए आये ॥२४॥ उन्होंने युद्ध में पुष्कल को पाञ्च बाणों से मारा । उन बाणों से पुष्कल अत्यन्त पीड़ित हो गये ॥२५॥ क्रुद्ध होकर पुष्कल ने सुवर्ण पुंख से सुशोभित दश तीक्ष्ण बाणों का प्रहार चित्राङ्ग के हृदय में किए ॥२६॥ अत्यन्त भयङ्कर बाणों ने चित्राङ्ग के बहुत अधिक खून को पी लिया और उसके बाद वे कूटसाक्षी पूर्वजों के समान पृथिवी पर गिर पड़े ॥२७॥ उसके बाद क्रुद्ध होकर चित्राङ्ग ने पाँच भल्ल बाणों को उठाया और उन बाणों से महाओजस्वी पुष्कल के ललाट में प्रहार किया ॥२८॥ उन भल्ल बाणों से आहत होकर पुष्कल ने क्रुद्ध होकर अपने धनुष पर बाण चढ़ाकर चित्राङ्ग के वध की प्रतिज्ञा की ॥२९॥ उन्होंने कहा— वीर मेरी प्रतिज्ञा सुनो । उसको सुनकर तुम सावधान होकर युद्ध करना ॥३०॥ यदि इस बाण से मैं तुमको नहीं मार

इति श्रेष्ठं वचः श्रुत्वा जहास परवीरहा। उवाच मतिमान्वीरः पुष्कलं वचनं शुभम् ॥३३॥
मृत्युर्वै प्राणिनां भाव्या सर्वत्रैव च सर्वदा । तस्मान्मे निधने दुःखं नास्ति शूरशिरोमणे !॥३४॥
प्रतिज्ञा या कृता वीर ! त्वया वीरत्वशालिना ।
सा सत्यैव पुनर्मेऽद्य श्रूयतां व्याहृतं महत् ॥३५॥
त्वद् बाणं मद्वधोद्युक्तं न च्छिन्द्यां यदि चेदहम् ।
तदा प्रतिज्ञा शृणु मे सर्ववीराभिमानिनः ॥३६॥
तीर्थं जिगमिषोर्यो वै कुर्यात्स्वान्तविखण्डनम् ।
एकादशीव्रतादन्यज्जानाति व्रतमुच्चकैः ॥३७॥
तस्य पापं ममैवास्तु प्रतिज्ञापरिघातिनः । इति वाक्यमुदीर्यैव तूष्णीभूतो धनुर्दधे॥३८॥
तदाऽनेन निषङ्गात्स्वादुद्धृत्य सायकं वरम्। कथयामास विशदं वाक्यं शत्रुवधावहम् ॥३९॥

पुष्कल उवाच

यदि रामाङ्घ्रियुगलं निष्कापट्येन चेतसा। उपासितं मया तर्हि मम वाक्यमृतं भवेत् ॥४०॥
यदि स्वमहिलां मुक्त्वा नान्यां जानामि चेतसा ।
तेन सत्येन मे वाक्यं सत्यं भवतु सङ्गरे ॥४१॥
इति वाक्यमुदीर्याशु बाणं धनुषि संहितम्। कालानलोपमं वीर ! शिरश्छेदनमाक्षिपत् ॥४२॥
तं बाणं मुक्तमालोक्य स तु राजसुतो बली ।
बाणं शरासनेऽधत तीक्ष्णं कालानलोपमम् ॥४३॥
तेन बाणेन संछिन्नो बाणः स्ववध उद्यतः । हाहाकारो महानासीच्छिन्ने तस्मिञ्छरे तदा ॥४४॥
परार्धं पतितं भूमौ पूर्वार्धं फलसंयुतम् । शिरोधरां चकर्ताशु पद्मनालमिव क्षणात् ॥४५॥

दूँ तो शील और आचार से सम्पन्न सती नारी को दूषित करने से पापियों को जिस लोक की प्राप्ति होती है, वही लोक मुझे प्राप्त हो, यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है ॥३१-३२॥ उस श्रेष्ठ वाणी को सुनकर चित्राङ्ग जोर से हँसे और उस बुद्धिमान वीर ने पुष्कल से कहा ॥३३॥ प्राणियों की मृत्यु तो सर्वत्र होती ही है, अतएव हे वीर शिरोमणि मुझे मृत्यु का कोई दुःख नहीं है ॥३४॥ आपने जो वीरत्व सम्पन्न प्रतिज्ञा की है उसके विषय में मेरी प्रतिज्ञा सुनो॥३५॥ मेरा वध करने के लिए तैयार तुम्हारे बाण को यदि मैं नहीं काट दू तो सभी वीरों में अभिमानी मेरी प्रतिज्ञा सुनों ॥३६॥ तीर्थ यात्रा करने वाले का जो अपने मन में खण्डन करता है अथवा एकादशी व्रत से बड़ा व्रत किसी दूसरे व्रत को जो मानता है ॥३७॥ उसको जो पाप लगता है, वही पाप मुझे लगे । इसतरह से कहकर चित्राङ्ग चुप हो गये और धनुष धारण किए ॥३८॥ उसके बाद अपने तरकस से श्रेष्ठ बाण को निकालकर शत्रु का वध करने वाले पुष्कल ने श्रेष्ठ वाक्य कहा ॥३९॥ **पुष्कल ने कहा—** यदि मैंने श्रीराम के दोनों चरणों की निष्कपट भाव से उपासना की है तो मेरी वाणी सत्य होए ॥४०॥ यदि मैं अपनी पत्नी से भिन्न किसी दूसरी नारी को नहीं जानता हूँ तो उसी सत्य के कारण मेरी वाणी सत्य हो ॥४१॥ इस वाक्य को कहकर पुष्कल ने धनुष पर बाण का सन्धान किया । वह बाण कालाग्नि के समान शिर काटने वाला था ॥४२॥ उस छूटे हुए बाण को देखकर राजपुत्र चित्राङ्ग ने अपने धनुष पर कालाग्नि के समान बाणों को चढ़ाया ॥४३॥ उस बाण से अपने को मारने के लिए उद्यत बाण को छिन्न हुए देखकर महान् हाहाकार मच गया ॥४४॥ उसके पीछे का आधा भाग

तदा भूमौ पतन्तं तु दृष्ट्वा तत्तस्य सैनिकाः ।
हाहा कृत्वा भृशं सर्वे पलायनपरागताः ॥४६॥
पृथ्व्यां तन्मस्तकं श्रेष्ठं सकिरीटं सकुण्डलम् ।
शुशुभेऽतीव पतितं चन्द्रबिम्बं दिवो यथा ॥४७॥
तं वीक्ष्य पतितं वीरः पुष्कलो भरतात्मजः ।
व्यगाहत व्यूहमिमं सर्ववीरैकशोभितम् ॥४८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
चित्राङ्गवधो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अठाइसवाँ अध्याय

शेष उवाच

अथ पुत्रं समालोक्य पतितं व्यसुमुद्धतम्। विललाप भृशं राजा सुतदुःखेन दुःखितः ॥१॥
मूर्ध्नि सन्ताडयामास पाणिभ्यामतिदुःखितः। कम्पमानो भृशं चाश्रूण्यमुञ्चन्नयनाब्जयोः ॥२॥
गृहीत्वा पतितं वक्त्रं चन्द्रबिम्बमनोरमम् । पुष्कलेषुक्षतासृग्भिः क्लिन्नं कुण्डलशोभितम् ॥३॥
कुटिलभ्रूयुगं श्रेष्ठं सन्दष्टाधरपल्लवम्। सचुम्बन्मुखपाद्मेन बिलपन्निदमब्रवीत् ॥४॥
हे पुत्र वीर ! कथमुत्सुकचेतसं मां किं नेक्षसे विशदनेत्रयुगेन शूर ! ।
किंमद्विनोदकथया रहितस्त्वमेवं रोषोदधिप्लुतमनाः किल लक्ष्यसे च ॥५॥

पृथिवी पर गिर पड़ा और बाण के पूर्वार्ध ने चित्राङ्ग के शिर को कमल नाल के समान काट दिया ॥४५॥ चित्राङ्ग को पृथिवी पर गिरते हुए देखकर उसके सैनिक जोर से हाहाकार करके भागने लगे ॥४६॥ कुण्डल तथा किरीट के साथ वह मस्तक पृथिवी पर उसी तरह सुशोभित हुआ जैसे आकाश से पृथिवी पर चन्द्र मण्डल गिरा हो॥४७॥ उसको गिरे हुए देखकर वीर पुष्कल व्यूह में प्रवेश कर गये । वह व्यूह सभी वीरों से सुशोभित था ॥४८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में चित्राङ्ग वध नामक सत्ताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२७।।

राजा सुबाहु के पुत्र शोक का वर्णन

शेषजी ने कहा— अपने मृत पुत्र को देखकर राजा सुबाहु अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगे ॥१॥ दुःखी होकर अपने दोनों हाथों से वे अपना शिर पीटने लगे, काँपते हुए राजा के नेत्र कमल से आँसू बहने लगा॥२॥ पुष्कल के बाणों से क्षत होने के कारण खून से लथपथ तथा कुण्डल से सुशोभित चित्राङ्गद के चन्द्रमण्डल के समान सुन्दर मुख को लेकर ॥३॥ टेढी भौहों से सुन्दर तथा जिसने अपने ओठों को काट लिया था ऐसे अपने पुत्र के उस मुख कमल को चूमते हुए तथा विलाप करते हुए राजा ने कहा ॥४॥ हाय वीर पुत्र!

वद पुत्र! कथं मां त्वां प्रब्रूषे न हसन्पुनः ।
अमृतैर्मधुरास्वादैर्विनोदयसि पुत्रक! ॥६॥
शत्रुघ्नाश्वं गृहाण त्वं सितचामरशोभितम्। स्वर्णपत्रेण शोभाढ्यं त्यज निद्रां महामते॥७॥
एषं प्रतापविशदः प्रतापग्र्यः परन्तपः। धनुर्बिभ्रत्पुरो भाति पुष्कलः परवीरहा॥८॥
एनं वारयसत्तीक्ष्णैर्बाणैः कोदण्डनिर्गतैः। कथं त्वं रणमध्ये वै शेषे वीर ! विमोहितः ॥९॥
हस्तिनः पत्तयश्चैव रथारूढा भयार्दिताः। शरणं त्वां समायान्ति तानीक्षस्व महामते ॥१०॥
पुत्र ! त्वया विना सोढुं कथं शक्तो रणाङ्गणे ।
शत्रुघ्नसायकांस्तीक्ष्णांश्चण्डकोदण्डनिर्गतान् ॥११॥
अतो मां तु त्वया हीनं को वा पालयितुं क्षमः ।
यदि त्यक्ष्यसि निद्रां त्वं जयायाहं क्षमस्तदा ॥१२॥
इत्थं विलप्य सुभृशं तताड हृदयं स्वकम्। बहुशः पाणिना राजा पुत्रदुःखेन दुःखितः ॥१३॥
तदा विचित्रदमनौ स्वस्वस्यन्दनसंस्थितौ। पितुश्चरणयोर्नत्वा ऊचतुः समयोचितम् ॥१४॥
राजन्नस्मासु जीवत्सु किं दुःखं हृदि तद्वद। वीराणां प्रधने मृत्युर्वाञ्छितो जायते महान्॥१५॥
धन्योऽयं बत चित्राङ्गो यो वीरभुवि शोभते ।
सकिरीटस्तु सन्दष्टदन्तच्छदयुगः प्रभुः ॥१६॥
कथयाशु किमद्यैव कुर्वस्ते कार्यमीप्सितम्। शत्रुघ्नवाहिनीं सर्वां हन्व आवामनाथिनीम् ॥१७॥
अद्यैव पुष्कलं भ्रातुर्वधकारिणमाहवे। पातयावो रथाच्छित्त्वा शिरोमुकुटमण्डितम्॥१८॥

उत्कण्ठित अन्तःकरण वाले मुझको तुम अपने नेत्रों से क्यों नहीं देखते हो ? क्या तुम विनोद भरी चर्चा से रहित तुम इस तरह से क्रोध सागर में निमज्जित से प्रतीत हो रहे हो ?॥५॥ बोलो पुत्र ! तुम हँसते हुए मुझसे क्यों नहीं बोल रहे हो ? तुम मुझे अमृत के समान मधुर बातों से क्यों नहीं प्रसन्न कर रहे हो ?॥६॥ तुम शत्रुघ्न के श्वेत चामर से सुशोभित तथा स्वर्णपत्र से सुशोभित उस अश्व को ले लो । तुम अपनी नींद को त्याग दो । यह विशद प्रताप वाला प्रातापाग्र्य तथा पुष्कल अपने धनुष का टङ्कार कर रहा है ॥७-८॥ हे वीर ! तुम युद्ध में मोहित होकर कैसे सो रहे हो ? अपने धनुष से निकले बाणों द्वारा इसको तुम रोको ॥९॥ हे महामते ! हाथीवान, पैदल सेना तथा रथी वीर भयभीत होकर तुम्हारी शरण में आ रहे हैं, इन सबों को देखो ॥१०॥ हे पुत्र ! तुम्हारे बिना रणाङ्गण में भयङ्कर धनुष से निकले हुए शत्रुघ्न के बाणों को मैं कैसे सह सकता हूँ ?॥११॥ अतएव तुम्हारे बिना मेरी रक्षा कौन कर सकता है ? यदि तुम अपनी नींद त्याग दो तो मैं विजयी हो सकता हूँ ॥१२॥ इस तरह से बहुत विलाप करके राजा ने अत्यन्त दुःखी दोनों हाथों से अपने हृदय को पीटा ॥१३॥ उसके बाद विचित्र तथा दमन अपने -अपने रथ पर बैठे हुए अपने पिता के चरणों में नमस्कार करके समयानुकूल बात कहे॥१४॥ हे राजन् ! आप बतलाएँ हमलोगों को जीते जी आपको कौन सा कष्ट है ? वीरों को युद्ध में मृत्यु का होना तो अत्यन्त अभिप्रेत होता है ॥१५॥ यह वीर चित्राङ्ग धन्य है जो पृथिवी पर किरीट और अपने संदष्ट ओष्ठों के साथ सुशोभित हो रहा है ॥१६॥ आप बतलाएँ कि हम दोनों आपके लिए अभिप्रेत किसी कार्य को करें । हम दोनों शत्रुघ्न की अनाथ सेना को मार डाल रहे हैं ॥१७॥ आज ही हम दोनों अपने भाई का वध करने वाले पुष्कल के मुकुट से मण्डित शिर को काटकर रथ से गिरा दे रहे हैं ॥१८॥ हे महामते ! आप दुःख का

त्यज शोकं सुदुःखार्तः कथं भासि महामते ! ।
आज्ञापयावां मानार्ह ! कुरुयुद्धे मतिं तथा ॥१९॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य पुत्रयोर्वीरमानिनोः । शोकं त्यक्त्वा महाराजो युद्धाय मतिमादधात्॥२०॥
तावापि प्रतियोद्धारं वाञ्छन्तौ रणदुर्मदौ। जग्मतुः कटके शत्रोरनंतभटपूरिते ॥२१॥
रिपुतापेन दमनो नीलरत्नेन चेतरः । युयुधाते रणे वीरौ प्रावृषीव बलाहकौ ॥२२॥
राजा कनकसन्नद्धे रथे मणिविचित्रिते । रत्नकूबरशोभाढ्ये तिष्ठंश्चापधरो बली ॥२३॥
ययौ योद्धुं तु शत्रुघ्नं वीरकोटिभिरावृतम् । तृणीकुर्वन्महावीरान्धनुर्विद्याविशारदान् ॥२४॥
तं योद्धुमागतं दृष्ट्वा सुबाहुं रोषपूरितम्। पुत्रनाशेन कुर्वन्तं सर्वसैन्यवधादिकम् ॥२५॥
शत्रुघ्नपार्श्वसञ्चारी हनूमांस्तमुपाद्रवत् । नखायुधो महानादं कुर्वन्मेघ इवाहवे ॥२६॥
सुबाहुस्तं हनूमन्तमागच्छन्तं महारवम्। उवाच प्रहसन्वाक्यं रोषपूरितलोचनः॥२७॥
क्व गतः पुष्कलो हत्वा मत्पुत्रं रणमण्डले ।
पातयाम्यद्य तस्याशु शिरोज्वलितकुण्डलम् ॥२८॥
क्व शत्रुघ्नो वाहपालः क्व च रामः कुतो भटाः ।
प्राणहन्तारमायान्तं पश्यन्तु प्रधने तु माम् ॥२९॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य हनूमान्निजगाद तम्। शत्रुघ्नो लवणच्छेत्ता वर्तते सैन्यपालकः ॥३०॥
स कथं प्रधने युध्येत्सवेकेऽग्रे स्थिते नृप ! ।
मां विजित्य रणे तं च त्वं गन्तासि नरर्षभ ! ॥३१॥

परित्याग करें । आप अत्यन्त आर्त क्यों वने हुए है ?। हे मानार्ह ! आप युद्ध के लिए तैयार हो जायँ और हमदोनों को आज्ञा दें ॥१९॥ इस तरह से अपने को वीर मानने वाले उन दोनों पुत्रों की वाणी को सुनकर महाराज सुवाहु शोक का परित्याग करके युद्ध करने के लिए तैयार हो गये ॥२०॥ वे दोनों भी अपने विरोधी योद्धा के रहते हुए अनन्तवीरों से परिपूर्ण शत्रु की सेना में प्रवेश कर गये ॥२१॥ युद्ध में दमन रिपुताप के साथ और विचित्र नील रत्न के साथ युद्ध करने लगे और वर्षाकाल में मेघ के समान बाणों की वर्षा करने लगे ॥२२॥ राजा सुबाहु सुवर्ण निर्मित तथा मणियों से सुशोभित तथा जिसका बीच का भाग रत्नों की शोभा से युक्त था उस रथ पर सवार होकर तथा धनुष धारण किये हुए ॥२३। करोड़ों वीरों को साथ लेकर शत्रुघ्नजी के साथ युद्ध करने के लिए गये । वे राजा उस समय धनुर्विद्या में निपुण वीरों को तुच्छ समझ रहे थे ॥२४॥ क्रोध से भरे हुए युद्ध करने के लिए आये हुए तथा पुत्रशोक के कारण सम्पूर्ण सेना का वध करते हुए सुबाहु को देखकर ॥२५॥ शत्रुघ्नजी के पार्श्ववती हनुमानजी उसके समक्ष दौड़े उनका नख ही आयुध था । वे युद्ध में मेघ के समान गर्जना करते हुए दौड़े ॥२६॥ उन आते हुए हनुमानजी को देखकर सुबाहु ने जोर से हँसते हुए तथा क्रोध से आँखे लाल करके कहा ॥२७॥ रणमण्डल में मेरे पुत्र को मारकर पुष्कल कहाँ गया ? मैं चमकते हुए कुण्डल से युक्त उसके शिर को मैं गिरा देना चाहता हूँ ॥२८॥ घोड़े के रक्षक शत्रुघ्न कहाँ है ? राम कहाँ है ? उनके वीर कहाँ है ? मैं उनको युद्ध में मारने वाला हूँ, वे मुझको देखें ॥२९॥ इस तरह से राजा के वाक्य को सुनकर हनुमानजी ने कहा— लवणासुर का वध करने वाले शत्रुघ्नजी सेना के पालक हैं ॥३०॥ राजन् ! सेवकों के रहने पर वे कैसे युद्ध करें । राजन् ! मुझको जीत करके तुम उनके पास जा पाओगे ॥३१॥ इस तरह से कहने वाले हनुमान्जी

इत्युक्तवन्तं तरसा विव्याध दशसायकैः। हृदि वानरमत्युग्रं पर्वताग्र्य मिवस्थितम्॥३२॥
स बाणानागतास्तांश्च गृहीत्वा करसम्पुटे। चूर्णयामास तिलशः शितान्वैरिविदारणान्॥३३॥
चूर्णयित्वा शरांस्तांस्तु निनदन्घनगर्जितैः। पुच्छेनावेष्ट्य तस्योच्चै रथं निन्ये महाबलः॥३४॥
तदा तं नृपवर्योऽसावाकाशे स्थित एष सः।
लांगूलं ताडयामास शिताग्रैः सायकैर्मुहुः॥३५॥
स ताडितस्तु पुच्छाग्रे शरैः सन्नतपर्वभिः। मुमोच तद्रथं दिव्यं कनकेन विचित्रितम्॥३६॥
स मुक्तस्तेन तरसा शरैस्तीक्ष्णैर्जघान तम्। हनूमन्तं कपिवरं रोषसम्पूरितेक्षणः॥३७॥
हनूमान्बाणविच्छिन्नः सर्वत्र रुधिराप्लुतः। महारोषं समाधत्त नृपोपरि कपीश्वरः॥३८॥
गृहीत्वा तस्य दंष्ट्राभी रथं हयसमन्वितम्। चूर्णयामास वेगेन तदद्भुतमिवाभवत्॥३९॥
स्वरथं भज्यमानं तु दृष्ट्वा राजा त्वरन्बली।
अन्यं रथं समास्थाय युयुधे तं महाबलम्॥४०॥
पुच्छे मुखेऽथोरसि च भुजे चरणयोर्नृपः। जघान शरसन्धानकोविदः परमास्त्रवित्॥४१॥
तदा क्रुद्धः कपिवरस्ताडयामास वक्षसि। पादेनोत्प्लुत्य वेगेन राज्ञः सुभटशोभिनः॥४२॥
स पदा प्रहतो भूमौ पपात किल मूर्च्छितः।
मुखाद्वमन्नसृक्चोष्णं श्वासपूरप्रवेपितः॥४३॥
तदा प्रकुपितोऽत्यन्तं हनूमान्प्रधनाङ्गणे। अश्वान्वीरानगजांश्चपि चूर्णयामास वेगतः॥४४॥
तदा सुकेतुस्तद्भ्राता तथा लक्ष्मीनिधिर्नृपः। उभावपि सुसन्नद्धौ युद्धाय समुपस्थितौ॥४५॥
राजानं मूर्च्छितं दृष्ट्वा प्रपलाय्यगता नराः। इतस्ततो बाणसङ्घैःक्षताःपुष्कलवर्षितैः॥४६॥

के हृदय को राजा सुबाहु ने दश बाणों से छेद दिया किन्तु हनुमान जी श्रेष्ठ पर्वत के समान खड़े थे ॥३२॥ उन्होंने उन बाणों को अपने हाथ से पकड़कर चूर-चूर कर दिया। वे तीक्ष्ण बाण वैरियों का वध करने वाले थे॥३३॥ उन बाणों को चूर-चूर करके मेघ के समान गर्जना करके अपनी पूंछ में राजा के रथ को बाँधकर हनुमानजी बहुत ऊपर ले गये ॥३४॥ उस समय वह आकाश में स्थित ही राजा उनके लांगूल मे तीक्ष्ण बाणों से बार-बार प्रहार किया ॥३५॥ झुके हुए पर्व वाले उन बाणों से अपने पूंछ के अग्रभाग में प्रहार किए जाने पर उन्होंने उस सुवर्ण निर्मित रथ को छोड़ दिया ॥३६॥ हनुमान्‌जी से छोड़े जाने पर राजा ने तीक्ष्ण बाणों से क्रोध से आँखे लाल करके हनुमानजी को मारा ॥३७॥ बाण से विच्छिन्न हनुमानजी के सारे अङ्ग खून-खून हो गये थे। उन्होंने राजा पर भयङ्कर क्रोध किया ॥३८॥ अपने दांत से घोड़ों के साथ रथ को पकड़कर उन्होंने रथ को चूर-चूर कर दिया यह अत्यन्त अद्भुत कर्म था ॥३९॥ अपने रथ को तोड़ते हुए देखकर बलवान् राजा शीघ्रता करते हुए दूसरे रथ पर बैठकर उनके साथ युद्ध करने लगे ॥४०॥ बाणों का सन्धान करने में निपुण राजा ने हनुमानजी के मुख, पुच्छ, हृदय, भुजाएँ तथा चरणों में बाण से प्रहार किया ॥४१॥ वीरों में सुशोभित होने वाले राजा के वक्षस्थल में क्रुद्ध होकर हनुमानजी ने अपने पैरों से प्रहार किया ॥४२॥ पैर से मारे जाने के कारण राजा मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े। वे काँप रहे थे तथा मुख से खून उगल रहे थे ॥४३॥ उस समय अत्यन्त क्रुद्ध होकर हनुमानजी युद्ध स्थल में अपने वेग से घोड़ों तथा वीरों को पीस रहे थे ॥४४॥ उस समय राजा के भाई सुकेतु और लक्ष्मीनिधि दोनों युद्ध करने के लिए उपस्थित हो गये ॥४५॥ राजा को मूर्छित देखकर उनके

तद्भज्यमानं स्वबलं वीक्ष्य राजात्मजो बली ।
दमनःस्तम्भयामास सेतुर्वार्धिमिवोच्चलम् ॥४७॥
तदा तु मूर्च्छितो राजा स्वप्नमेकं ददर्श ह। रणमध्ये कपिवरप्रपदाघातताडितः ॥४८॥
रामचन्द्रस्त्वयोध्यायां सरयूतीरमण्डपे। ब्राह्मणैर्याज्ञिकश्रेष्ठैष्ठैर्बहुभिःपरिवारितः ॥४९॥
तत्र ब्रह्मादयोदेवास्तत्र ब्रह्माण्डकोटयः। कृतप्राञ्जलयस्ते वै स्तुवन्ति स्तुतिभिर्मुहुः॥५०॥
राम श्यामं सुनयनं मृगशृङ्गपरिग्रहम्। गायन्ति नारदाद्याश्च वीणोल्लसितपाणयः ॥५१॥
नृत्यन्त्यप्सरस्तत्र घृताची मेनकादयः। वेदा मूर्तिधरा भूत्वा उपतिष्ठन्ति राघवम्॥५२॥
यच्च किञ्चिद्वस्तुजातं सर्वशोभासमन्वितम् । तस्य दातारमखिलं भक्तानां भोगदायकम् ॥५३॥
इत्येवमादिसम्पश्यञ्जाग्रत्संज्ञामवाप सः। ब्रह्मशापहतज्ञानःकिं दृष्टमिति वै वदन् ॥५४॥
उत्थाय प्रययौ पद्भ्यां शत्रुघ्नचरणं प्रति। भृत्यकोटिपरीवारो रथकोटिपरीवृतः॥५५॥
सुकेतुं तु समाहूय विचित्रं दमनं तथा। युद्धकर्तुं समुद्युक्तान्वारयामास धर्मवित् ॥५६॥
उवाच तान्महाराजो धर्मात्मा धर्मसंयुतः। भ्रातःपुत्रौ शृणुत मे वाक्यं धर्मसमन्वितम्॥५७॥
मा युद्धं कुरुत क्षिप्रमनयस्तु महानभूत्। यद्रामचन्द्रवाहं त्वमगृह्णादमनोर्ज्जितम्॥५८॥
एष रामःपरंब्रह्म कार्यकारणतःपरम्। चराचरजगत्स्वामी न मानुषवपुर्धरः ॥५९॥
एतद्धि ब्रह्मविज्ञानमधुना ज्ञातवानहम्। पुराऽसिताङ्गशापेन हतज्ञानधनोऽनघाः ॥६०॥
अहं पुरा तीर्थयात्रां गतस्तत्त्वविवित्सया। तत्रानेके मया दृष्टा मुनयो धर्मवित्तमाः ॥६१॥

लोग भागकर इधर-उधर चले गये क्योकि पुष्कल के बाण समूह से वे क्षत विक्षत हो गये थे ॥४६॥ अपनी सेना को भागते हुए देखकर राजा के पुत्र दमन ने उन सबों को उसी तरह से रोका जिस तरह सेतु से किसी समुद्र को रोका जाय ॥४७॥ उस समय हनुमानजी के चरण प्रहार से बेहोश हुए राजा ने एक स्वप्न देखा ॥४८॥ श्रीरामचन्द्रजी अयोध्या में सरयू के तट पर यज्ञ मण्डप में बहुत से श्रेष्ठ याज्ञिक ब्राह्मणों के साथ विद्यमान हैं॥४९॥ वहाँ पर ब्रह्मा आदि करोड़ों देवता हाथ जोड़कर उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥५०॥ श्यामवर्ण वाले सुन्दर नेत्रों वाले श्रीरामचन्द्रजी जो अपने हाथ में मृग का शृंग लिए हुए हैं उनकी हाथ में वीणा लेकर नारद आदि ऋषिगण स्तुति कर रहे हैं ॥५१॥ वहाँ पर घृताची, मेनका इत्यादि अप्सरायें नृत्य कर रही हैं, वेद मूर्तिमान होकर श्रीरामचन्द्रजी की उपासना कर रहे हैं ॥५२॥ संसार की समस्त शोभा सम्पन्न वस्तुओं के तथा भोगों को श्रीरामचन्द्रजी अपने भक्तों को प्रदान करने वाले हैं ॥५३॥ इस तरह से स्वप्न देखते हुए राजा होश में आ गये। वे कह रहे थे कि ब्राह्मण के शाप से मेरा ज्ञान नष्ट हो गया था मैंने क्या देखा ॥५४॥ वे उठकर पैदल करोड़ों भृत्यों तथा करोड़ों रथों के साथ शत्रुघ्नजी के चरणों में गिर पड़े ॥५५। उन्होंने सुकेतु को बुलाकर युद्ध करने में उत्सुक विचित्र और दमन को रोका ॥५६॥ धर्मात्मा तथा धार्मिक महाराज ने कहा— हे भाई, हे पुत्रों मेरी धर्म युक्त वाणी सुनो ॥५७॥ युद्ध मत करो यह तो महान् अनर्थ हो गया कि दमन ने श्रीरामचन्द्रजी के घोड़े को पकड़ लिया ॥५८॥ ये श्रीरामचन्द्रजी परंब्रह्म है, वे समस्त कार्य का कारण समूह से ऊपर उठे हुए हैं । वे चराचर जगत् के स्वामी हैं, वे मनुष्य नहीं मानव का शरीर धारण किए हैं ॥५९॥ इस ब्रह्म विज्ञान को मैंने अब जाना है । प्राचीनकाल में असित नामक ब्राह्मण के शाप से मेरा ज्ञान नष्ट हो गया था ॥६०॥ मैं तत्वज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से तीर्थयात्रा में गया था । वहाँ पर मैंने अनेक धर्मज्ञ मुनियों को देखा ॥६१॥ ज्ञान प्राप्त करने

अञ्असिताङ्गं मुनिमहं गतवाञ्ज्ञातुमिच्छया। तदा प्रोवाच मां विप्रःकृपां कृत्वा ममोपरि ॥६२॥
योऽसावयोध्याधिपतिः स परब्रह्मशब्दितः ।
तस्य या जानकी देवी साक्षात्सा चिन्मयी स्मृता ॥६३॥
एनं तु योगिनःसाक्षादुपासते यमादिभिः । दुस्तरापारसंसारवारिधिं सन्तितीर्षवः ॥६४॥
स्मृतमात्रो महापापहारी स गरुडध्वजः । य एनं सेवते विद्वान्स संसारं तरिष्यति॥६५॥
तदाहमहसं विप्रं कोऽयं रामस्तु मानुषः । केयं सा जानकीदेवी हर्षशोकसमाकुला ॥६६॥
अजन्मनःकथं जन्म अकर्तुःकृत्यमत्र किम् ।
जन्मदुःखजरातीतं कथयस्व मुने ! मम ॥६७॥
इत्युक्तवन्तं मां क्रुद्धः शशाप स मुनीश्वरः ।
अज्ञात्वा तत्स्वरूपं त्वं प्रतिब्रूषे ममाधम ! ॥६८॥
एनं निन्दसि रामं त्वं मानुषोऽयमिदं हसन्। तस्मात्त्वं तत्त्वसंमूढो भविष्यस्युदरम्भरिः ॥६९॥
तदाऽहं तस्य चरणान्वगृह्णन्सदयायुतः। दृष्ट्वा मे विनयं मां तु प्रावोचत्करुणानिधिः ॥७०॥
त्वं रामस्य मखे विघ्नं करिष्यसि यदा नृप ! ।
तदाऽङ्घ्रिणा हनूमांस्त्वां ताडयिष्यति वेगतः ॥७१॥
तदा त्वं ज्ञास्यसे राजन्नान्यथा स्वमनीषया। पुराऽहमुक्तस्तेनैव तद्दृष्टमधुना मया॥७२॥
यदा मां हनुमान्क्रुद्धस्ताडयामास वक्षसि । तदाऽदर्शं रमानाथं पूर्णब्रह्मस्वरूपिणम् ॥७३॥
तस्मादश्वं तु शोभाढ्यमानयन्तु महाबलाः। धनानि चैव वासांसि राज्यं चेदं समर्पये॥७४॥

की इच्छा से असिताङ्ग मुनि के पास मैं गया । उस समय मुझ पर कृपा करके मुनि ने मुझे कहा ॥६२॥ ये अयोध्याधिपति पंरब्रह्म है, उनकी पत्नी जो जानकी देवी हैं वे साक्षात् ज्ञान स्वरूपिणि हैं ॥६३॥ इनकी साक्षात् उपासना से जो इस प्राप्य संसार सागर से पार जाना चाहते हैं वे योगिजन यम-नियम आदि के द्वारा उपासना करते हैं ॥६४॥ वे स्मरण करने मात्र से महान् से महान् पापों को विनष्ट करने वाले हैं । वे साक्षात् विष्णु हैं। जो विद्वान् इनकी आराधना करता है वह संसार को पार कर जाता है ॥६५॥ उस समय मैंने उस विप्र का उपहास करते हुए कहा कि ये राम तो मनुष्य हैं । और हर्ष तथा शोक से व्याकुल रहने वाली ये जानकी देवी कौन है?॥६६॥ अजन्मा का जन्म कैसे सम्भव है । अकर्ता का कौन सा कृत्य हो सकता है ? हे मुने ! आप मुझे जन्म, जरा आदि से रहित तत्त्व का उपदेश दें ॥६७॥ इस तरह से कहने वाले मुझ पर मुनि क्रुद्ध हो गये और कहे अधम; तत्त्व को जाने बिना तुम मुझसे बहस करते हो ?॥६८॥ तुम श्रीराम को मनुष्य कहकर उनकी निन्दा करते हों । अतएव तुम तत्वज्ञान विहीन अपना पेट पालने वाले हो जाओगे ॥६९॥ उस समय मैंने उनके चरण को पकड़ लिया । वे मेरी नम्रता को देखकर कृपा करके कहे ॥७०॥ हे राजन् ! जब तुम राम के यज्ञ में विघ्न करोगे उस समय हनुमान वेग पूर्वक तुमको अपने लात से मारेंगे ॥७१॥ राजन ! उसी समय तुम अपने ज्ञान से राम को जानोगे, प्राचीन काल में जो उन्होंने कहा था उसी को मैंने आज देखा है ॥७२॥ जब हनुमानजी ने क्रोध करके मेरे वक्षस्थल में प्रहार किया । उस समय मैं पूर्णब्रह्म स्वरूप रामनाथ का दर्शन किया ॥७३॥ अतएव हे महाबलवानों ! शोभा सम्पन्न अश्व को लाओ मैं इस राज्य को, धनों को तथा वस्त्रों को समर्पित कर रहा हूँ ॥७४॥

रामं दृष्ट्वा कृतार्थःस्यामहं यज्ञेऽति पुण्यदे ।
आनयन्तु हयं मह्यं रोचते तु तदर्पणम् ।।७५।।
इति श्रीपद्ममहापुराणे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
सुबाहुपराजयोनामाष्टविंशतितमोऽध्यायः ।।२८।।

उनतीसवाँ अध्याय

शेष उवाच

ते तु तातवचःश्रुत्वा हर्षिताःसम्प्रहारिणः । तथेत्यूचुर्महाराजं रामदर्शनलालसम् ।।१।।

पुत्रा ऊचुः

राजन्भवत्पदाम्भोजान्नान्यं जानीमहे वयम् । यत्तव स्वान्ततो जातं तद्भवत्वद्य वेगतः ।।२।।
अश्वोऽयं नीयतां तत्र सितचारमरभूषितः । रत्नमालातिशोभाढ्यश्चन्दनादिकचर्चितः ।।३।।
राज्यमाज्ञाफलं स्वामिन्कोशा बहुसमृद्धयः । वासांसि सुमहार्हाणि सूक्ष्माणि सुगुणानि च ।।४।।
चन्दनं चन्द्रकं चैव वाजिनः सुमनोहराः । हस्तिनस्तु मदोद्धृता रथाःकाञ्चनकूबराः ।।५।।
विचित्रतरवर्णादि नानाभूषणभूषिताः । दास्यःशतसहस्रं च दासाश्च सुमनोरमाः ।।६।।
मणयःसूर्यसङ्काशा रत्नानि विविधानि च । मुक्ताफलानि शुभ्राणि गजकुम्भभवानि च ।।७।।

मैं अत्यन्त पुण्यमय यज्ञ में श्रीराम का दर्शन करके कृतार्थ हो जाऊँगा । तुमलोग घोड़ो को लाओ, मैं उसको समर्पित करना चाहता हूँ ।।७५।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवे पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में सुबाहु पराजय वर्णन नामक अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२८।।

सुबाहु तथा शत्रुघ्नजी का समागम

शेषजी ने कहा— युद्ध करने वाले वे सब राजा सुवाहु की वाणी को सुनकर प्रसन्न हो गये तथा भगवान् श्रीराम के दर्शन की लालसा वाले राजा से कहे ।।१।। **पुत्रों ने कहा**— हे राजन् ! आपके चरण कमलों से भिन्न हमलोग कोई भी दूसरी बात नहीं जानते हैं । आपके अन्तःकरण में जो आया है, उस कार्य को शीघ्र होना चाहिए।।२।। श्वेत चामर से अलंकृत रत्नों की माला से सुशोभित तथा चन्दन इत्यादि से अलंकृत इस अश्व को ले आया जाय ।।३।। हे स्वामिन् ! राज्य तो आपकी आज्ञा का फल है, कोश अत्यन्त समृद्ध हैं, अत्यन्त मूल्यवान् सूक्ष्म तथा सुन्दर गुणों से युक्त वस्त्र ।।४।। चन्दन, चन्द्रक, अत्यन्त मनोहर अश्व, मदमत्त हाथी, सुवर्ण से निर्मित तथा कूबर से युक्त रथ ।।५।। अत्यन्त अद्भुत वर्ण वाले, अनेक प्रकार के भूषणों से भूषित लाखों दासियाँ, तथा मनोहर दास ।।६।। सूर्य के समान देदीप्यमान मणियाँ, अनेक प्रकार के रत्न, श्वेत मोतियाँ जो

विद्रुमाःशतसाहस्त्रा यद्यद्वस्तु महोदयम्। तत्सर्वं रामचन्द्राय देहि राजन्महामते ! ॥८॥
सुतानस्मान्किङ्करांश्च सर्वानर्पय भूपते। कथं न कुरुषे राजंस्तदधीनं नृपासनम्॥९॥

शेष उवाच

इति पुत्रवचःश्रुत्वा हर्षितोऽभून्महीपतिः। उवाच च सुतान्वीरान्स्ववाक्यकरणोद्यतान्॥१०॥

राजोवाच

आनयन्तु हयं सर्वे सन्नद्धाःशस्त्रपाणयः। नानारथपरीवारास्ततो यास्ये नृपं प्रति॥११॥

शेष उवाच

इति राज्ञोवचःश्रुत्वा विचित्रो दमनस्तथा। सुकेतुःसमरे शूरा जग्मुस्तस्याज्ञयोद्यताः॥१२॥
ते गत्वाऽथ पुरीं शूरा वाजिनं सुमनोरमम्। सितचामरसंयुक्तं स्वर्णपत्राद्यलङ्कृतम्॥१३॥
रत्नमालाविभूषाढ्यं चित्रपत्रेण शोभितम्। विचित्रमणिभूषाढ्यं मुक्ताजालस्वलङ्कृतम्॥१४॥
रज्ज्वाधृतं महावीरैःपूर्वतःपृष्ठतो भटैः। महाशस्त्रास्त्रसंयुक्तैःसर्वशोभासमन्वितैः ॥१५॥
सितातपत्रमस्योच्चैर्भाति मूर्धनि वाजिनः। सुचामरद्वयं यस्य ध्रियते पुरतो मुहुः ॥१६॥
कृष्णागर्वादि धूपैश्च धूपितं वायुवेगिनम्। राज्ञःपुरो निनायाश्वं हयमेधस्य सत्क्रतोः ॥१७॥
तमानीतं हयं दृष्ट्वा रत्नमालाविभूषितम्। मनोजवं कामरूपं जहर्ष मतिमान्नृपः॥१८॥
जगाम पद्भ्यां शत्रुघ्नं राजचिह्नाद्यलङ्कृतः। स्वपुत्रपौत्रैःसंयुक्तो राजा परमधार्मिकः ॥१९॥
ययौ कर्तुं धनानां स सद्व्ययं चलगामिनाम् ।
एतद्विनश्वरं मत्त्वा दुःखदं सक्तचेतसाम् ॥२०॥

हाथियों के कुम्भ स्थल से निकली हुयी हैं ॥७॥ लाखों विद्रुम इत्यादि जो भी वस्तु अत्युत्कृष्ट हों, उन सबों को आप श्रीरामचन्द्र को प्रदान करें ॥८॥ हे राजन् ! आपके किंकर भूत हमलोगों को भी आप उनको अर्पित कर दें। आप उन्हीं के अधीन राजसिंहासन को क्यों नहीं कर देते हैं ?॥९॥ **शेषजी ने कहा—** इस तरह से अपने पुत्रों की वाणी को सुनकर राजा सुबाहु प्रसन्न हो गये। अपनी आज्ञा मानने के लिए उद्यत अपने वीर पुत्रों से उन्होंने कहा ॥१०॥ **राजा ने कहा—** तुमलोग तैयार होकर हाथ में शस्त्र को धारण किए हुए अनेक रथों के साथ अश्व को लाओ, मैं महाराज के पास जाऊँगा ॥११॥ **शेषजी ने कहा—** इस तरह से राजा की वाणी को सुनकर विचित्र, दमन और सुकेतु जो युद्ध करने वाले वीर थे वे सब राजा की आज्ञा से नगर में गये ॥१२॥ वे सभी वीर नगर में जाकर श्वेत चामर से युक्त, तथा स्वर्णपत्र से अलंकृत; अत्यन्त मनोहर अश्व को ॥१३॥ जो रत्नों की माला रूपी अलङ्कार से अलंकृत चित्रपत्र से अलंकृत था अद्भुत मणियों के भूषणों से सजा हुआ था तथा मोतियों की माला से अलंकृत था ॥१४॥ जिसकी रस्सी को बड़े-बड़े वीर पकड़े हुए थे वे वीर उसके आगे तथा पीछे चल रहे थे तथा महान शस्त्रों और अस्त्रों के साथ सभी शोभाओं से सुशोभित थे ॥१५॥ उस अश्व के शिर पर श्वेत छत्र सुशोभित हो रहा था। उसके आगे दो सुन्दर चामर रखा हुआ था। वह अश्व काले अगरु की धूप से धूपित था। ऐसे वायु के वेग से युक्त अश्वमेध के अश्व को राजा के सामने लाया गया ॥१६-१७॥ रत्नों की माला से अलंकृत, मन के समान वेग वाले, कामदेव के समान सुन्दर अश्व को देखकर राजा प्रसन्न हो गये ॥१८॥ राजा के चिह्नों से अलंकृत राजा अपने पुत्रों तथा पौत्रों के साथ पैदल शत्रुघ्नजी के समीप गये॥१९॥ राज्य के धनों को चञ्चल, दुखद तथा विनश्वर मानकर उन सबों का सदुपयोग करने के लिए वे गये।

शत्रुघ्नं स ददर्शाथ सितच्छत्रेण शोभितम्। चामरैर्वीज्यमानश्च सेवकैःपुरतःस्थितैः ॥२१॥
सुमतिं परिपृच्छन्तं रामचन्द्रकथानकम्। भयवार्ताविनिर्मुक्तं वीरशोभास्वलङ्कृतम्॥२२॥
वीरैः कोटिभिराकीर्णं नेत्रपाताभिकाङ्क्षिभिः ।
वानराणां सहस्रैश्च समन्तात्परिवारितम् ॥२३॥
दृष्ट्वा शत्रुघ्नचरणौ प्रणनाम सपुत्रकः। धन्योऽहमिति संहृष्टो वदन्रामैकमानसः ॥२४॥
शत्रुघ्नस्तं प्रणयिनं दृष्ट्वा राजानमुद्भटम्। उत्थायासनतः सर्वैं र्भटैर्दोर्भ्यां स सस्वजे ॥२५॥
दृढं सम्पूज्य राजा तं शत्रुघ्नं परवीरहा। उवाच हर्षमापन्नो गद्गदस्वरया गिरा ॥२६॥

सुबाहुरुवाच

अद्य धन्योऽस्मि ससुतःसकुटुम्बःसवाहनः। यद्युष्मच्चरणौ द्रक्ष्ये नृपकोटिभिरीडितौ ॥२७॥
अज्ञानिना सुतेनायं गृहीतो वाजिनांवरः। दमनेनानयंत्वस्य क्षमस्व करुणानिधे ! ॥२८॥
न जानाति रघूत्तंसं सर्वदेवाधिदैवतम्। लीलया विश्वस्रष्टारं हन्तारमपि पालकम्॥२९॥
इदं राज्यं समृद्धाङ्ग समृद्धबलवाहनम्। इमे कोशा धनैःपूर्णा इमे पुत्रा इमे वयम् ॥३०॥
सर्वे वयं रामनाथास्त्वदाज्ञा प्रतिपालकाः। गृहाण सर्वं सफलं न मेऽस्ति क्वचिदुन्मतम्॥३१॥
क्वासौ हनूमान्रामस्य चरणाम्भोजषट्पदः। यत्प्रसादादहं प्राप्स्ये राजराजस्यदर्शनम् ॥३२॥
साधूनां सङ्गमे किं किं प्राप्यते न महीतले ।
यत्प्रसादादहं मूढो ब्रह्मशापमतीतरम् ॥३३॥
दृष्ट्वा त्वद्य महाराजं पद्मपत्रनिभेक्षणम्। प्राप्स्यामि जन्मनःसर्वफलं दुर्लभमत्र च॥३४॥

उनका मन श्रीरामचन्द्रजी में लगा था ॥२०॥ राजा ने श्वेत छत्र से सुशोभित शत्रुघ्नजी को देखा। शत्रुघ्नजी को चामर किया जा रहा था और सेवक उनके सामने खड़े थे ॥२१॥ शत्रुघ्नजी श्रीरामचन्द्रजी से संबद्ध बातें सुमति से पूछ रहे थे। वे बिल्कुल निर्भय थे तथा वीर की शोभा से अलंकृत थे ॥२२॥ वहाँ करोड़ों वीर भरे थे जो चाहते थे कि शत्रुघ्नजी हमको देख लें। उनके चारों ओर हजारों वानर विद्यमान थे ॥२३॥ शत्रुघ्नजी के चरणों को देखकर राजा ने अपने पुत्रों के साथ प्रणाम किया। राजा का मन रामचन्द्रजी में लगा था। वे अपने को धन्य मान रहे थे ॥२४॥ शत्रुघ्नजी उस प्रेम करने वाले तथा उद्भट राजा को देखकर सभी वीरों के साथ अपने आसन से उठकर दोनों हाथ से पकड़कर राजा का आलिङ्गन किए ॥२५॥ शत्रु वीरों को मारने वाले राजा ने शत्रुघ्नजी की अच्छी तरह से पूजा की और हर्षित होकर वे गद्गद वाणी से कहने लगे ॥२६॥ **सुबाहु ने कहा**— अपने पुत्र तथा परिवार के साथ हजारों राजाओं के द्वारा पूजित आपके चरणों का दर्शन करके आज मैं धन्य हो गया हूँ ॥२७॥ मेरे दमन नामक अज्ञानी पुत्र ने अश्व को पकड़ लिया था अतएव आप इसके औद्धत्य को क्षमा करें॥२८॥ सभी देवताओं के भी पूज्य श्रीरामचन्द्रजी को यह नहीं जानता है। जो श्रीरामचन्द्रजी की लीलापूर्वक विश्व की सृष्टि करते है, उसका पालन करते हैं और अन्त में उसका संहार कर देते हैं ॥२९॥ इस राज्य के सारे अङ्ग समृद्ध हैं, इसके बल और वाहन समृद्ध हैं। ये कोश धन से परिपूर्ण हैं। ये पुत्र और मैं हूँ ॥३०॥ हमसबों के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी हैं, और हमलोग आपकी आज्ञा का पालन करने वाले हैं। इन सबों को आप स्वीकार करें मेरी इनमें से किसी के भी प्रति अभीप्सा नहीं है ॥३१॥ श्रीरामजी के चरणकमलों के भ्रमर स्वरूप श्रीहनुमानजी कहाँ है ? उनकी ही कृपा से मैं राजराजेश्वर श्रीरामजी का दर्शन प्राप्त कर पाऊँगा ॥३२॥ साधु

मम तावद्गतं चायुर्बहु रामवियोगिनः। स्वल्पमुर्वरितं तत्र कथं द्रक्ष्ये रघूत्तमम् ॥३५॥
मह्यं दर्शयतं रामं यज्ञकर्मविचक्षणम्। यदङ्घ्रिरजसा पूता शिलाभूता मुनिप्रिया ॥३६॥
काकः परं पदं प्राप्तो यद्बाणस्पर्शनात्खगः ।
अनेके यस्य वक्त्राब्जं वीक्ष्य सङ्ख्ये पदं गताः ॥३७॥
ये त्वस्य रघुनाथस्य नाम गृह्णन्ति सादराः। ते यान्ति परमं स्थानं योगिभिर्यद्विचिन्त्यते ॥३८॥
धन्योऽयोध्याभवो लोको यो राममुखपङ्कजम् ।
स्वलोचनपुटैः पीत्वा सुखं याति महोदयम् ॥३९॥
इति सम्भाष्य नृपतिं वाहं राज्यं धनानि च ।
सर्वं समर्प्य चावोचत्किङ्करोऽस्मि महीपते ॥४०॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य राज्ञःपरपुरञ्जयः । प्रत्युवाचेति तं भूपं वाग्मी वाक्यविशारदः ॥४१॥

शत्रुघ्न उवाच

कथं राजन्निदं ब्रूषे त्वं वृद्धो मम पूजितः । सर्वं त्वदीयं त्वद्राज्यं दमनो विदधात्वयम् ॥४२॥
क्षत्रियाणामिदं कृत्यं सङ्ग्रामकरणं तु यत् ।
सर्वं राज्यं धनं चेदं प्रतियातु ममाज्ञया ॥४३॥
यथा ये रघुनाथस्तु पूज्यो वाङ्मनसा सदा ।
तथा त्वमपि मत्पूज्यो भविष्यसि महीपते ! ॥४४॥
भवान्सज्जो भवत्वद्य हयस्यानुगमं प्रति। सन्नद्धःकवची खड्गी गजाश्वरथसंयुतः ॥४५॥

पुरुषों की सङ्गति से सभी वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है । उनकी ही कृपा से अज्ञानी मैं ब्राह्मण के शाप से मुक्त हो गया हूँ ॥३३॥ आज मैं कमलदल के समान नेत्रों वाले महाराज का दर्शन करके अपने जन्म के दुर्लभ समस्त फलों को प्राप्त कर लूँगा ॥३४॥ श्रीराम से वियुक्त हुए मेरी बहुत आयु बीत गयी अब थोड़ी सी बची हुयी हैं मैं कैसे श्रीराम का दर्शन कर पाऊँगा ?॥३५॥ यज्ञ कर्म करने में निपुण श्रीराम का दर्शन मुझे कराइये । शिला वनी हुयी गौतम महर्षि की पत्नी उन्हीं के चरणों की धूलि से पवित्र हो गयी ॥३६॥ जिनके बाणों के स्पर्श होने मात्र से ककपक्षी परमपद को प्राप्त कर लिया और युद्ध में जिनके मुख कमल का दर्शन करके जीव भी परंपद को प्राप्त कर लिए ॥३७॥ जो लोग श्रीरघुनाथजी के नाम को आदर पूर्वक स्मरण करते हैं, वे योगिजन जिसका चिन्तन करते हैं उस परमपद को प्राप्त कर लेते हैं ॥३८॥ अयोध्या में उत्पन्न होने वाले लोग धन्य है क्योंकि वे लोग अपने नेत्रों से श्रीरामचन्द्रजी के मुखकमल का दर्शन करके अत्यधिक सुख को प्राप्त करते हैं ॥३९॥ इस तरह से राजा शत्रुघ्नजी से कहकर राजा सुबाहु ने अश्व, राज्य तथा धनों को समर्पित करके कहा राजन् ! मैं आपका दास हूँ ॥४०॥ राजा के इस वाक्य को सुनकर बोलने में निपुण तथा वाग्मी शत्रुघ्नजी ने राजा से कहा ॥४१॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा—** राजन् ! आप इस तरह की बातों को क्यों कह रहे हैं ? आप वृद्ध तथ मेरे पूज्य हैं । आपका सम्पूर्ण राज्य आपका है । इसको दमन चलायें ॥४२॥ सङ्ग्राम करना तो क्षत्रियों का धर्म हैं इस राज्य और धन की रक्षा दमन मेरी आज्ञा से करें ॥४३॥ जिस तरह श्रीरामचन्द्रजी मेरे लिए सदैव मन तथा वाणी से पूज्य हैं, राजन् ! उसी तरह से आप भी मेरे पूज्य हैं ॥४४॥ आप घोड़े का अनुगमन करने के लिए हाथी, घोड़े तथा रथ के साथ सजकर कवच एवं खड्ग धारण करके तैयार हो जायं । [illegible] त्रुघ्नजी के इस

इति वाक्यं समाकर्ण्य शत्रुघ्नस्य महीपतिः ।
पुत्रं राज्येऽभिषेच्यैव शत्रुघ्नेन सुपूजितः ॥४६॥
महारथैःपरिवृतो निजं पुत्रं रणाङ्गणे। पुष्कलेन हतं भूपः संस्कृत्य विधिपूर्वकम्॥४७॥
क्षणं शुशोच तत्त्वज्ञो लोकदृष्ट्या महारथः। ज्ञानेनानाशयच्छोकं रघुनाथमनुस्मरन्॥४८॥
सज्जीभूतो रथे तिष्ठन्महासैन्यसमावृतः। आजगाम सशत्रुघ्नं महारथिपुरस्कृतः ॥४९॥
राजा तमागतं दृष्ट्वा सर्वसैन्यसमन्वितम्। गन्तुं चकार घिषणां हयवर्यस्य पालने॥५०॥
सोऽश्वो विमोचितस्तेन भाले पत्रेण चिह्नितः ।
वामावर्त भ्रमन्प्रायात्पौर्वाञ्जनपदान्बहून् ॥५१॥
तत्र तत्रत्यभूपालैर्महाशूराभिपूजितः। प्रणतिःक्रियते तस्य न कोऽपि तमगृह्णत॥५२॥
केचिद्वासांसि चित्राणि केचिद्राज्यं स्वकं महत् ।
केचिद्धनं जनं केचिदानीय प्रणमन्ति तम् ॥५३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे शत्रुघ्नस्य सुबाहुना सह निर्याणं नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥२९॥

* * *

वाक्य को सुनकर राजा शत्रुघ्नजी से समादृत होकर तथा अपने पुत्र को राज्य समर्पित करके ॥४६॥ महारथियों से घिरे हुए राजा पुष्कल के द्वारा मारे गये अपने पुत्र का समर स्थल में विधि पूर्वक संस्कार करके ॥४७॥ तत्त्वज्ञ राजा ने लोकदृष्टि से क्षणभर शोक किया और ज्ञान के द्वारा अपने शोक को श्रीरामचन्द्र का स्मरण करते हुए नष्ट कर दिया ॥४८॥ वे सजकर रथ पर बैठ गये। वे विशाल सेना से घिरे थे। महारथियों से पुरस्कृत राजा शत्रुघ्नजी के पास आये ॥४९॥ सम्पूर्ण सेना के साथ आये हुए राजा सुवाहु को देखकर शत्रुघ्नजी उस श्रेष्ठ अश्व के रक्षणार्थ आगे जाने की बुद्धि बनाये ॥५०॥ ललाट पर पत्र से सुशोभित अश्व को शत्रुघ्नजी ने छोड़ा और वह घोड़ा वायीं ओर घूमकर पूर्व के अनेक जनपदों में गया ॥५१॥ सर्वत्र वह महावीर राजाओं से पूजित हुआ। सबलोग उसको प्रणाम करते थे किसी ने भी उसे पकड़ा नहीं। कुछ लोग अद्भुत वस्त्रों को; कुछ लोग अपना राज्य कुछ लोग धन और जन को समर्पित करके उसे प्रणाम करते थे ॥५२-५३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में सुबाहु के साथ शत्रुघ्नजी के प्रस्थान वर्णन नामक उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३९॥

* * *

तीसवाँ अध्याय

शेष उवाच

अथ तेजःपुरं प्राप्तस्तुरगःपत्रशोभितः। यस्यां पालयते राजा प्रजाःसत्येन सत्यवान् ॥१॥
रथकोटिपरीवारो रघुनाथानुजस्ततः। हयानुगो ययौ तस्य पुरतःपुरघर्षणः ॥२॥
तद् दृष्ट्वा नगरं रम्यं चित्रप्रकारशोभितम् ।
काञ्चनैः कलशैस्तत्र परितः प्रतिभासितम् ॥३॥
देवायतनसाहस्त्रैःसर्वतश्च विराजितम्। यतीनां तु मठास्तत्र शोभन्ते यतिपूरिताः ॥४॥
बहत्यत्र महादेवी शिखिलोचनमूर्धगा। हंसकारण्डवाकीर्णा मुनिवृन्दनिषेविता ॥५॥
ब्राह्मणानां प्रत्यगारमग्निहोत्रभवः पुनः। धूमस्तत्र पुनात्यङ्गपातकाप्लुतमानसान्॥६॥
उवाच सुमतिं राजा शत्रुघ्नःशत्रुतापनः। तत्पुरप्रेक्षणोद्धूतहर्षविस्मितमानसः ॥७॥

शत्रुघ्न उवाच

मन्त्रिन्कथय कस्येदं पुरं मे दृष्टिगोचरम्। करोति मानसाह्लादं धर्मेण प्रतिपालितम्॥८॥

शेष उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य शत्रुघ्नस्य महीपतेः। उवाच सुमतिःसर्वं यथातथमनुद्धतम् ॥९॥

सुमतिरुवाच

शृणुष्वावहितः स्वामिन्वैष्णवस्य कथाः शुभाः ।
याः श्रुत्वा मुच्यते पापाद् ब्रह्महत्यासमादपि ॥१०॥
जीवन्मुक्तो वरीवर्ति रामाङ्घ्र्यम्बुजषट्पदः। सत्यवान्यज्ञयज्ञाङ्गज्ञाता कर्ताऽविता महान्॥११॥
धेनुं प्रसाद्य बहुभिर्व्रतैर्यं प्राप तत्पिता। ऋतम्भराख्यो जगति ख्यातःपरमधार्मिकः ॥१२॥

अश्व के साथ शत्रुघ्नजी का तेजःपुर जाना और सत्यवान् आख्यान का उपक्रम

शेषजी ने कहा— उसके बाद पत्र से सुशोभित अश्व तेजःपुर पहुँचा। उस नगर के राजा सत्यवादी सत्यवान् थे ॥१॥ करोड़ों रथ के साथ श्रीरामचन्द्रजी के अनुज शत्रुघ्नजी उस श्रेष्ठ नगर के सामने गये ॥२॥ उन्होंने सुन्दर प्रकारों से सुशोभित नगर को देखा। वह नगर सुवर्ण के कलशों से चारों ओर सुशोभित होता था॥३॥ उस नगर में हजारों देवमन्दिर थे। वहाँ पर संन्यासियों से भरे हुए यतियों के मठ थे ॥४॥ वहाँ पर अग्निनेत्र वाले शङ्करजी के शिर पर रहने वाली हंसों तथा कारण्डवों से परिपूर्ण एवं मुनि समूह से सेवित गङ्गा नदी प्रवाहित होती थी ॥५॥ वहाँ पर ब्राह्मणों के प्रत्येक गृहों में अग्निहोत्र से उत्पन्न धूम पापियों के भी अङ्गों को पवित्र करते थे ॥६॥ शत्रुओं को संतप्त करने वाले राजा शत्रुघ्न ने सुमति से नगर के विषय में पूछा क्योंकि उस सामने विद्यमान नगर के देखने से उनका मन हर्षित था ॥७॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा**— हे मन्त्रिन्! बतलाइये धर्मपूर्वक पालित तथा मेरे मन को आह्लादित करने वाला यह किसका नगर है ॥८॥ **शेषजी ने कहा**— शत्रुघ्नजी के इस वाक्य को सुनकर सुमति ने ठीक-ठीक वर्णन करना प्रारम्भ किया ॥९॥ **सुमति ने कहा**— हे राजन्! आप श्रीवैष्णव की कथा को सुनें। उसका श्रवण करने से मनुष्य ब्रह्महत्या जैसे पापों से मुक्त हो जाता है ॥१०॥ इस नगर के राजा सत्यवान् हैं वे श्रीरामचन्द्रजी के चरण कमल के उपासक हैं और यज्ञों के अङ्गों

गौः प्रसन्ना ददौ पुत्रमनेकगुणसंस्कृतम्। सत्यवन्तं सुशोभाढ्यं तं जानीहि नृपोत्तमम् ॥१३॥

शत्रुघ्न उवाच

को वा ऋतम्भरो राजा किमर्थं धेनुपूजनम् ।
कथं प्राप्तः सुतस्तस्य वैष्णवो विष्णुसेवकः ॥१४॥
सर्वमेतत्समाचक्ष्व वैष्णवस्य कथानकम्। श्रुतं हरति जन्तूनां महापातकपर्वतम्॥१५॥

शेष उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य शत्रुघ्नस्य महार्थकम् ।
कथयामास विशदं तदुत्पत्तिकथानकम् ॥१६॥
ऋतम्भरो नरपतिरनपत्यः पुराऽभवत्। कलत्राणि बहून्यस्य न पुत्रं प्राप तेषु वै ॥१७॥
तदा जाबालिनामानं मुनिं दैवादुपागतम्। पप्रच्छ कुशलोद्युक्तःमम पुत्रोत्पत्तिकारणम्॥१८॥

ऋतम्भर उवाच

स्वामिन्वन्ध्यस्य मे ब्रूहि पुत्रोत्पत्तिकरं वचः ।
यत्कृत्वा जायतेऽपत्यं ममवंशधरं परम् ॥१९॥
तज्ज्ञात्वा भवतो भव्यं प्रकुर्यान्निश्चितं वचः। दानं व्रतं वा तीर्थं वा मखं वा मुनिसत्तम !॥२०॥
इति राज्ञो वचः श्रुत्वा जगाद मुनिसत्तमः। सुतोत्पत्तिकरं वाक्यं प्रणतस्यसुतार्थिनः॥२१॥
अपत्यप्राप्तिकामस्य सन्त्युपायास्त्रयः प्रभो ! ।
विष्णोः प्रसादो गोश्चापि शिवस्याप्यथवा पुनः ॥२२॥
तस्मात्त्वं कुरु वै पूजां धेनोर्देवतनोर्नृप। यस्याःपुच्छे मुखे शृङ्गे पृष्टेदेवाःप्रतिष्ठिताः॥२३॥

के ज्ञाता तथा उनके रक्षक हैं ॥११॥ उनके पिता ऋतम्भर थे। वे संसार में प्रख्यात धार्मिक थे। अनेक व्रतों तथा गौ को प्रसन्न करके वे पुत्र प्राप्त किए थे ॥१२॥ प्रसन्न होकर गौ ने उन्हें अनेक गुणों से सम्पन्न पुत्र प्रदान किया था। हे राजन्! उनको सत्य का पालन करने वाला और शोभा सम्पन्न जानें ॥१३॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा**— ऋतम्भर राजा कौन थे, उन्होंने गौ की पूजा क्यों की, उनको भगवान् विष्णु का सेवक पुत्र कैसे प्राप्त हुआ?॥१४॥ आप इस वैष्णव की सम्पूर्ण कथा को कहें। इसका श्रवण करने से जीवों के पाप रूप पर्वत का नाश होता है॥१५॥ **शेषजी ने कहा**— शत्रुघ्नजी के इस वाक्य को सुनकर सुमति ने उनकी उत्पत्ति की कथा को सुनाया॥१६॥ प्राचीन काल में ऋतम्भर नामक राजा हुए। उनकी कोई सन्तान नहीं थी। राजा की बहुत सी स्त्रियाँ थीं किन्तु किसी से सन्तान नहीं हुयी ॥१७॥ एक बार जावलि नामक मुनि उनके यहाँ भाग्यवशात् आये। राजा ने अपने कुशल के लिए पुत्र प्राप्ति के साधन के विषय में पूछा ॥१८॥ **ऋतम्भर ने कहा**— हे स्वामिन्! मैं निःसन्तान हूँ; आप मुझे पुत्र प्राप्ति का साधन बतलायें, जिसके करने से मुझे वंश बढ़ाने वाले पुत्र की प्राप्ति हो ॥१९॥ आपसे उस साधन को जानकर मैं आपकी वाणी का पालन अवश्य करूँगा। हे मुनिश्रेष्ठ ! चाहे वह दान हो, या व्रत हो, या तीर्थ हो या यज्ञ हो ॥२०॥ राजा की वाणी सुनकर मुनिश्रेष्ठ ने पुत्र के लिए शरणागत राजा को पुत्र प्राप्ति के साधन को बतलाया ॥२१॥ पुत्र चाहने वाले के लिए तीन उपाय हैं, भगवान् विष्णु की कृपा, या गौ की कृपा या भगवान् शिव की कृपा ॥२२॥ अतएव हे राजन्! आप गौ की पूजा करें, गौ के शरीर में देवताओं का निवास होता है। गौ के पुच्छ, मुख, शृङ्ग तथा पीठ में देवताओं का निवास है ॥२३॥ वह प्रसन्न

सा तुष्टा दास्यति क्षिप्रं वाञ्छितं धर्मसंयुतम् ।
एवं विदित्वा गोपूजां विधेहि त्वमृतम्भर ! ॥२४॥
यो वै नित्यं पूजयति गां गेहे यवसादिभिः ।
तस्य देवाश्च पितरो नित्यं तृप्ता भवन्ति हि ॥२५॥
यो वै गवाह्निकं दद्यान्नियमेन शुभव्रतः। तेन सत्येन तस्य स्युःसर्वे पूर्णा मनोरथाः ॥२६॥
तृषिता गौर्गृहे बद्धा गेहे कन्या रजस्वला। देवता च सनिर्माल्या हन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥२७॥
यो वै गां प्रतिषिद्ध्येत चरन्तीं स्वं तृणं नरः ।
तस्य पूर्वे च पितरः कम्पन्ते पतनोन्मुखाः ॥२८॥
यो वै यष्ट्या ताडयति धेनुं मर्त्यो विमूढधीः ।
धर्मराजस्य नगरं स याति करवर्जितः ॥२९॥
यो वै दंशान्वारयति तस्य पूर्वे ह्यधोगताः ।
नृत्यन्ति मत्सुतो ह्यस्मांस्तारयिष्यति भाग्यवान् ॥३०॥
अत्रैवोदाहरन्तीमिमतिहासं पुरातनम्। जनकस्य पुरावृत्तं धर्मराजपुरेऽद्भुतम्॥३१॥
एकदा जनको राजा योगेनासून्समत्यजत्। तदा विमानं सम्प्राप्तं किङ्किणीजालभूषितम् ॥३२॥
तदाऽऽरुह्य गतो राजा सेवकैरूढदेहवान्। मार्गे जगाम धर्मस्य संयमिन्याःपुरोऽन्तिके॥३३॥
तदा नरककोटीषु पीड्यन्ते पापकारिणः। जनकस्याङ्गपवनं प्राप्य सौख्यं प्रपेदिरे॥३४॥
निरये दाहजा पीडा जातैषां सुखकारिणी। महादुःखं तदा नष्टं जनकस्याङ्गवायुना ॥३५॥
तदा तं निर्गतं दृष्ट्वा जन्तवः पापपीडिताः। अत्यन्तं चुक्रुशुर्भीतास्तद्वियोगमनिच्छवः ॥३६॥

होकर तुम्हें शीघ्र ही अभिप्रेत एवं धार्मिक पुत्र देगी। हे ऋतम्भर ! तुम गौ की पूजा करो ॥२४॥ जो अपने घर में घास इत्यादि के द्वारा गौ की पूजा करता है उसके देवता और पितृगण नित्य ही तृप्त रहते हैं ॥२५॥ जो नियम पूर्वक गौ आदि का दान करता है, उस सत्य के द्वारा उसके सारे मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं ॥२६॥ जिसके घर में बँधी हुयी गौ प्यासी रहती है और रजस्वला कन्या रहती है, तथा देवताओं पर चढ़ाये गये वासी वस्तुएँ पड़ी रहती है, उसके पूर्वकृत सारे पुण्यों को वे विनष्ट कर देते हैं ॥२७॥ जो अपने तृण को चरती हुयी गौ को रोकता है, उसके नरक में पतनोन्मुख पितृगण काँपने लगते हैं ॥२८॥ जो मूर्ख मनुष्य लाठी से गौ को मारता है, वह हाथ से रहित होकर यमराज के नगर में जाता है ॥२९॥ गौ के शरीर में काटने वाले दंशों को जो हटाने का काम करता है उसके पितृगण प्रसन्न होकर नृत्य करने लगते हैं कि यह हमारा वंशज हमलोगों को संसार से तार देगा ॥३०॥ इसके विषय में एक प्राचीन इतिहास सुना जाता है। जो धर्मराज के नगर में जनक का अद्भुत कार्य है ॥३१॥ एक बार राजा जनक ने यौगिक प्रक्रिया से अपने प्राणों का परित्याग कर दिया। उस समय किंकिणी जाल से अलंकृत वहाँ विमान आया ॥३२॥ उस समय सेवकों द्वारा ले गये हुए शरीर वाले राजा धर्मराज की नगरी संयमनी पुरी के पास गये ॥३३॥ वहाँ पर करोड़ों नरकों में पापी जीव सताए जा रहे थे। जनक के शरीर में लगी हुयी हवा से उन पापियों को सुख प्राप्त हुआ ॥३४॥ नरकों में दाहजन्य पीड़ा उन सबों को सुखद लगने लगी। जनक के शरीर के वायु से उनका महाकष्ट समाप्त हो गया ॥३५॥ उस समय वहाँ से जनकजी को जाते देखकर पापी जीव उनके वियोग को नहीं चाहने के कारण चिल्लाने लगे ॥३६॥ वे करुण होकर कहे कि हे

ऊचुस्ते करुणां वाचं मा गच्छ सुकृतिन्नितः ।
त्वदङ्गवायुसंस्पर्शात्सुखिनः स्याम पीडिताः ॥३७॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य राजा परमधार्मिकः ।
मानसे चिन्तयामास करुणापूरपूरितः ॥३८॥
चेन्मत्तः प्राणिनां सौख्यं भवेदिह तदा पुनः ।
अत्रैव च पुरे स्थास्ये स्वर्ग एष मनोरमः ॥३९॥
एवं कृत्वा नृपस्तस्थौ तत्रैव निरयाग्रतः। विदधत्प्राणिनां सौख्यमनुकम्पितमानसः ॥४०॥
तत्र धर्मस्तु सम्प्राप्तो निरयद्वारि दुःखदे। कारयन्यातनास्तीव्रा नानापातककारिणाम् ॥४१॥
तदा ददर्श राजानं जनकं द्वारि संस्थितम् ।
विमानेन महापुण्यकारिणं दयया युतम् ॥४२॥
तमुवाच प्रेतपतिर्जनकं स हसन्गिरा । राजन्कुतस्त्वं सम्प्राप्तः सर्वधर्मशिरोमणिः ॥४३॥
एतत्स्थानं पातकिनां दुष्टानां प्राणघातिनाम्। नायान्ति पुरुषा भूप ! त्वादृशाः पुण्यकारिणः॥४४॥
अत्रायान्ति नरास्ते वै ये परद्रोहतत्पराः। परापवादनिरताः परद्रव्यपरायणाः ॥४५॥
यो वै कलत्रं धर्मिष्ठं निजसेवापरायणम्। अपराधादृते जह्यात्स नरोऽत्र समाव्रजेत् ॥४६॥
मित्रं वञ्चयते यस्तु धनलोभेन लोभितः। आगत्याऽत्र नरःपीडां मत्तःप्राप्नोति दारुणाम्॥४७॥
यो रामं मनसा वाचा कर्मणा दम्भतोऽपिवा ।
द्वेषाद्वाचोपहासाद्वा न स्मरत्येव मूढधीः ॥४८॥
तं वध्नामि पुनस्त्वेषु निक्षिप्य श्रपयामि च। यैः स्मृतो न रमानाथो नरकक्लेशवारकः॥४९॥
तावत्पापं मनुष्याणामङ्गेषु नृप ! तिष्ठति । यावद्रामं न रसना गृणाति कलिदुर्मतेः॥५०॥

सुकृति ! आप यहाँ से न जायँ । हमलोग पीड़ित हैं । आपके अङ्गों की वायु लगने से हमलोग सुखी हैं । इस वाक्य को सुनकर परम धार्मिक राजा करुणा से पूर्ण मन वाले होकर विचार किए ॥३८॥ यदि मेरे यहाँ रहने से इन प्राणियों को सुख मिलता है तो फिर मैं यहीं रहूँगा यही मेरे लिए मनोहर स्वर्ग है ॥३९॥ इस तरह से सोचकर राजा वहीं नरकों के आगे रुक गये । अनुकम्पा से युक्त मनवाले वे जीवों को सुख दे रहे थे ॥४०॥ उस दुःखप्रद नरक के द्वार पर धर्मराज आये, वे अनेक प्रकार के पाप करने वालों को तीव्र यातना दे रहे थे ॥४१॥ वहाँ उन्होंने नरक के द्वार पर जनकजी को देखा । वे दयालु तथा महापुण्य करने वाले विमान से वहाँ आये थे ॥४२॥ उस समय हँसते हुए धर्मराज ने जनकजी से कहा— राजन् ! आप तो सभी धार्मिकों में श्रेष्ठ हैं आप यहाँ कैसे आये ॥४३॥ यह स्थान हिंसा करने वाले पापियों का है । राजन् ! आप जैसे पुण्यात्मा पुरुष यहाँ नहीं आते हैं ॥४४॥ जो लोग दूसरों से द्रोह करते हैं वे ही लोग यहाँ आते हैं । जो सदा दूसरों की निन्दा करते हैं, तथा दूसरों के द्रव्य को ले लेते हैं ॥४५॥ जो पति की सेवा करने वाली तथा धार्मिक पत्नी को विना किसी अपराध के त्याग देते हैं, वे ही यहाँ आता है ॥४६॥ धन के लोभ मे पड़ा हुजा जो मनुष्य अपने मित्र को धोखा देता है, वही मनुष्य यहाँ आता है और मैं उसे भयङ्कर कष्ट देता हूँ ॥४७॥ जो मूर्ख मनुष्य श्रीरामचन्द्रजी का मन, कर्म तथा वाणी से दम्भ, या द्वेष या उपहास के कारण स्मरण नहीं करता है ॥४८॥ जो लोग नरक के क्लेश विनाशक रमानाथ का स्मरण नहीं करते हैं; उन सबों को बाँधकर नरक में डाल देता हूँ और खूब पकाता

महापापकरा राजन्ये भवन्ति महामते !। ताननयन्ति मद्भृत्यास्त्वादृशान्द्रष्टुमक्षमाः ॥५१॥
तस्माद्गच्छ महाराज ! भुङ्क्ष्वभोगाननेकशः ।
विमानवरमारुह्य भुङ्क्ष्व पुण्यमुपार्जितम् ॥५२॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य धर्मराजस्य तत्पतेः। उवाच धर्मराजं स करुणापूरपूरितः ॥५३॥

जनक उवाच

अहं गच्छामि नो नाथ ! जीवानामनुकम्पया ।
मदङ्गवायुना ह्येते सुखं प्राप्ताः स्म संस्थिताः ॥५४॥
एतान्मुञ्चसि चेद्राजन्सर्वान्वै निरयस्थितान्। ततो गच्छामि सुखितः स्वर्गपुण्यजनाश्रितम् ॥५५॥

जावालिरुवाच

इति वाक्यमथाश्रुत्य जनकं प्रत्युवाच सः । प्रत्येकं निर्दिशञ्जीवान्निरयस्थाननेकशः ॥५६॥

धर्म उवाच

अयं मित्रकलत्रं वै विश्वस्तमनुजग्मिवान्। तस्मादेनं लोहशङ्कौ वर्षायुतमपीपचम् ॥५७॥
पश्चादेनं सूकराणां योनौ निक्षिप्य दोषिणम् ।
मानुषेष्ववतार्योऽयं षण्ढचिह्नेन चिह्नितः ॥५८॥
अनेन परदाराश्च बलादालिङ्गिता मुहुः। तस्मादयं पच्यतेऽत्र रौरवे शतहायनम् ॥५९॥
अयं तु परकीयं स्वं मुषित्वा बुभुजे कुधीः ।
तस्मादस्य करौ छित्त्वा पचेयं पूयशोणिते ॥६०॥
अयं सायन्तने प्राप्तमतिथिं क्षुधयार्दितम्। वाण्यापि नो सच्चकार नाब्रवीत्स्वागतं वचः ॥६१॥
तस्मादयं पातनीयस्तामिस्त्रेऽन्धेन पूरिते। भ्रमरैःपीडितो यातु यातनां शतहायनम् ॥६२॥

हूँ॥४९॥ राजन् ! मनुष्यों के शरीर में तब तक ही पाप रहता है जब तक कलि के कारण दुष्ट मति वाले उस मनुष्य की रसना श्रीराम के नाम का उच्चारण नहीं करती है ॥५०॥ हे महामते राजन ! जो महापाप करने वाले हैं उन सबों को मेरे दूत यहाँ ले आते हैं, वे सब आप जैसे लोगों को तो देख भी नहीं सकते हैं ॥५१॥ अतएव हे राजन् ! आप जाइये अनेक प्रकार के भोगों का भोग कीजिए । आप श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर अपने उपर्जित भोगों को भोगिए ॥५२॥ धर्मराज के इस बात को सुनकर करुणा प्रवाह से पूरित राजा ने धर्मराज से कहा ॥५३॥ **जनकजी ने कहा**— हे नाथ ! मैं जीवों पर कृपा करने के कारण अन्यत्र नहीं जा सकता हूँ । मेरे शरीर की वायु से यहाँ के जीवों को सुख मिलता है ॥५४॥ राजन् ! यदि आप नरक में पड़े हुए इन जीवों को छोड़ देते हैं तो फिर मैं स्वर्ग के धार्मिक लोगों के पास जा सकता हूँ ॥५५॥ **जाबालि महर्षि ने कहा**— इस तरह के वाक्य को सुनकर नरक में स्थित प्रत्येक जीवों का निर्देश करते हुए यमराज ने जनकजी से कहा ॥५६॥ **धर्मराज ने कहा**— इसने अपने विश्वस्त मित्र की पत्नी के साथ व्यभिचार किया है अतएव इसको मैं दश हजार वर्षो तक (लोहशङ्कु नामक नरक) में मैंने पकाया हैं ॥५७॥ उसके बाद मैं इसको शूकर की योनि में डालकर मनुष्य की योनि में नपुंसक बनाऊँगा ॥५८॥ इसने दूसरों की पत्नियों का बार-बार आलिङ्गन किया है अतएव इसको इस रौरव नरक में सौ वर्ष तक पकाया जा रहा है ॥५९॥ यह मूर्ख दूसरे के धन को चुराकर उसका भोग किया है इसलिए इसके हाथ को काटकर पीव और शोणित में पकाऊँगा ॥६०॥ यह सायंकाल आये हुए भूखे अ-

अयं तावत्परस्योच्चैर्निन्दां कुर्वन्नलज्जितः । अयमप्यशृणोत्कर्णौ प्रेरयन्बहुशस्तु ताम् ॥६३॥
तस्मादिमावन्धकूपे पतितौ दुःखदुःखितौ । अयं मित्रध्रुगुद्विग्नः पच्यते रौरवे भृशम् ॥६४॥
तस्मादेतान्पापभोगान्कारयित्वा विमोचये। त्वं गच्छ नरशार्दूल ! पुण्यराशिविधायकः ॥६५॥

जाबालिरुवाच

एवं स निर्दिशञ्जीवांस्तूष्णीमासाघकारिणः । प्रोवाच रामभक्तोऽसौ करुणापूरितेक्षणः ॥६६॥

जनक उवाच

कथंनिरयनिर्मुक्तिजीवानां दुःखिनां भवेत्। तदाशु कथय त्वं वै यत्कृत्वा सुखमाप्नुयुः ॥६७॥

धर्म उवाच

नैभिराराधितो विष्णुर्नैभिस्तस्य कथाः श्रुताः ।
कथं निरयनिर्मुक्तिर्भवेद्धै पापकारिणाम् ॥६८॥

यदि त्वं मोचयस्येतान्महापापकरानपि । तदर्पय महाराज ! पुण्यं तत्कथयामि यत् ॥६९॥
एकदा प्रातरुत्थाय शुद्धभावेन चेतसा। ध्यातःश्रीरघुनाथोऽसौ महापापहराभिधः ॥७०॥
राम रामेति यच्चोक्तं त्वया शुद्धेन चेतसा। तत्पुण्यमर्पयैतेभ्यो येन स्यान्निरयाच्च्युतिः ॥७१॥

जाबालिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य धर्मराजस्य धीमतः । पुण्यं ददौ महाराज आजन्म समुपार्जितम् ॥७२॥
यदाजन्मकृतैः पुण्यै रघुनाथार्चनोद्भवैः । एतेषां निरयान्मुक्तिर्भवत्वत्र मनोरमा ॥७३॥
एवं कथयतस्तस्य जीवा निरयसंस्थिताः । तत्क्षणान्निरयान्मुक्ता जाता दिव्यवपुर्धराः ॥७४॥

की न तो वाणी से ही सत्कार किया और न तो उनका स्वागत किया ॥६१॥ अतएव यह घोर अन्धकार से व्याप्त तामिस्त्र नामक नरक में डाल दिए जाने योग्य है । और वहाँ पर सौ वर्षो तक इसको भौरें काटते रहेंगे ॥६२॥ यह दूसरो की निन्दा जोर-जोर से खूब करनें में लज्जित नहीं होता था । और यह जो दूसरा है इसको प्रेरित करके दूसरे की निन्दा खूब सुनता था ॥६३॥ इसलिए ये दोनों अन्ध कूप नामक नरक में गिरकर दुःख का अनुभव कर रहे हैं । यह मित्र से द्रोह करता था अतएव रौरव नामक नरक में खूब पकाया जा रहा है ॥६४॥ इस तरह इन सबों के पापों का भोग कराकर मैं मुक्त कर दूँगा । हे नरश्रेष्ठ ! आप तो पुण्यवान् हैं अतएव आप यहाँ से जायँ ॥६५॥ **जाबालि महर्षि ने कहा—** इस तरह से उन जीवों का निर्देश करके यमराज चुप हो गये । उस समय यम को जनकजी ने करुणा पूर्वक कहा ॥६६॥ **जनकजी ने कहा—** आप शीघ्र यह बतलायें कि इन दुःखी जीवों की इन नरकों से मुक्ति कैसे हो सकती हैं ? जिससे कि ये जीव सुखी हो जायँ ॥६७॥ **धर्म ने कहा—** इन सबों ने न तो भगवान् विष्णु की आराधना की है और न तो उनकी कथा का ही श्रवण किया है। अतएव इन पापियों की नरक से मुक्ति कैसे हो सकती है ?॥६८॥ यदि आप इन महापापियों को भी मुक्त कराना चाहते हैं तो हे महाराज ! मैं जिसको बतला रहा हूँ उस पुण्य को आप इनको अर्पित कर दें ॥६९॥ एक बार प्रातःकाल उठकर आपने शुद्ध मन से श्रीरामजी का ध्यान किया था । श्रीरामजी तो महापाप को विनष्ट कर देने वाले हैं ॥७०॥ आपने शुद्ध मन से जो राम-राम कहा उसी पुण्य को आप इन्हें अर्पित करें उसी से इन सबों की नरकों से मुक्ति हो जायेगी ॥७१॥ **जाबालि महर्षि ने कहा—** धर्मराज की इस वाणी को सुनकर महाराज जनक ने अपने जीवन भर के सारे पुण्यों को समर्पित कर दिया ॥७२॥ जीवनभर में किए गये श्रीरामचन्द्रजी

ऊचुस्ते जनकं राजंस्त्वत्प्रसादाद्वयं क्षणात् । दुःखदान्निरयान्मुक्ता यास्यामः परमं पदम् ॥७५॥
तान्दृष्ट्वा सूर्यसङ्काशान्नरान्निरयनिःसृतान् । तुतोष चित्तेसुभृशं सर्वभूतदयापरः ॥७६॥
ते सर्वे प्रययुर्लोकं दिवं देवैरलङ्कृतम् । जनकं तु प्रशंसन्तो महाराजं दयानिधिम् ॥७७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे सत्यवदाख्याने
जनकेन नरकस्थप्राणिमोचनं नम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

एकतीसवाँ अध्याय

जाबलिरुवाच

अथ तेषु प्रयातेषु नरकस्थेषु वै नृप। राजा पप्रच्छ कीनाशं सर्वधर्मविदांवरम् ॥१॥

राजोवाच

धर्मराज ! त्वया प्रोक्तं यत्पातककरा नराः ।
आयान्ति तव संस्थानं न च धर्मकथारताः ॥२॥
मदागमनमत्राभूत्केन पापेन धार्मिक !। तद्वै कथय सर्वं मे पापकार्यं यथा तथा ॥३॥
इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं धर्मराजः परन्तप ! ।
कथयामास तस्यैवं यमपुर्यागमं तदा ॥४॥

पूजन से उत्पन्न पुण्यों को अर्पित करके जनकजी ने कहा कि इन सबों की सुन्दर मुक्ति हो जाय ॥७३॥ उनके इस तरह से कहते ही नरक में विद्यमान जितने जीवन थे वे उसी क्षण नरक से निकलकर दिव्य शरीर धारी हो गये ॥७४॥ उन सबों ने जनकजी से कहा— महाराज आपकी कृपा से हमलोग इन दुःख देने वाले नरकों से मुक्त होकर परमपद में जा रहे हैं ॥७५॥ उन नरक से निकले हुए मनुष्य को सूर्य के समान कान्तिमान देखकर सभी जीवों पर दया करने वाले जनकजी अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥७६॥ वे सभी जीव देवताओं से अलंकृत द्युलोक में चले गये । वे सब दयासागर जनकजी की प्रशंसा कर रहे थे ॥७७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शेषवास्त्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में जनकजी द्वारा नरकों से प्राणियों को मुक्ति प्रदान वर्णन नामक तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३०॥

राजा जनक का नरक द्वार पर जाने का कारण तथा सत्यवान् के धेनुव्रत का वर्णन

जाबालि महर्षि ने कहा— उन नरक में स्थित जीवों के स्वर्ग चले जाने के बाद राजा ने सभी धर्मों के ज्ञाता यमराज से पूछा ॥१॥ **राजा ने कहा**— धर्मराज ! आपने कहा है कि पापी जीव ही आप के लोक में आते हैं धार्मिक नहीं आते हैं ॥२॥ हे धार्मिक ! मुझे यहाँ किस पाप के कारण आना पड़ा है ? आप मेरे द्वारा किए गये पाप कार्य को ठीक-ठीक बतलायें ॥३॥ हे परन्तप ! इस वाक्य को सुनकर धर्मराज ने जनकजी के यमपुरी

धर्मराज उवाच

राजंस्तवमहत्पुण्यं नैतादृक्कस्य भूतले। रघुनाथपदद्वन्द्वमकरन्दमधुव्रत ॥५॥
त्वकीर्तिस्वर्धुनी सर्वान्यापिनो मलसंयुतान्। पुनाति परमाह्लादकारिणी दुष्टतारिणी॥६॥
तथापि पापलेशस्ते वर्तते नृपसत्तम !। येन संयमिनीपार्श्वमागतः पुण्यपूरितः ॥७॥
एकदा तु चरन्तीं गां वारयामास वै भवान् ।
तेन पापविपाकेन निरयद्वारदर्शनम् ॥८॥
इदानीं पापनिर्मुक्तो बहुपुण्यसमन्वितः । भुङ्क्ष्व भोगान्सुविपुलान्निजपुण्यार्जितान्बहून् ॥९॥
एतेषां करुणावार्धी रघुनाथो सुखं हरन् । संयमिन्या महामार्गे प्रेरयामास वैष्णवम् ॥१०॥
नागमिष्यो यदि त्वं वै मार्गेणानेन सुव्रत !। अभविष्यत्कथं तेषां निरयात्परिमोचनम् ॥११॥
त्वादृशा:परदु:खेन दु:खिताः करुणालयाः ।
प्राणिनां दुःखविच्छेदं कुर्वन्त्येव महामते ! ॥१२॥

जाबालिरुवाच

एवं वदन्तं शमनं प्रणम्य स दिवंगतः । दिव्येन सुविमानेन अप्सरोगणशोभिना॥१३॥
तस्माद्गावोऽनिशं पूज्या मनसापि न गर्हयेत् ।
गर्हयन्निरयं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥१४॥
तस्मात्त्वं नृपतिश्रेष्ठ ! गोपूजां वैसमाचर। सातुष्टादास्यति क्षिप्रं पुत्रं धर्मपरायणम् ॥१५॥

सुमतिरुवाच

तच्छुत्वा धेनुपूजां स पप्रच्छ कथमादरात्। पूजनीया प्रयत्नेन कीदृशं कुरुते नरम्॥१६॥
जाबालिः कथयामास धेनुपूजां यथाविधि । प्रत्यहं विपिनं गच्छेच्चारणार्थं व्रती तु गोः ॥१७॥

में आने के कारण को बतलाया ॥४॥ **धर्मराज ने कहा**— हे राजन् ! आपका बहुत बड़ा पुण्य है, ऐसा पुण्य किसी का भी नहीं है । आप तो श्रीरामचन्द्र के युगल चरण कमलों के मधुव्रत हैं ॥५॥ आपकी कीर्ति मन्दाकिनी! अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाली और पापियों के पाप रूपी मल को विनष्ट करने वाली है ॥६॥ फिर भी हे राजन् ! आप में पाप का लेश है । उसी के कारण पुण्यवान् भी आप संयमनी नगरी के पास आये हैं ॥७॥ एक बार आपने घास चरती हुयी गौ को भगा दिया था, उसी पाप के परिणाम स्वरूप आपको नरक के द्वार को देखना पड़ा है ॥८॥ इस समय आप पाप से रहित और अत्यधिक पुण्य से युक्त हैं । आप अपने पुण्यों से अर्जित विपुल पुण्यों का भोग करें ॥९॥ इन सबों के सुख का हरण करने वाले करुणासागर श्रीरामचन्द्रजी ने संयमनी नगरी के महामार्ग पर वैष्णव लोक में भेज दिया है ॥१०॥ हे सुव्रत ! यदि आप इस मार्ग पर नहीं आते तो फिर इन सबों की नरकों से मुक्ति कैसे होती ?॥११॥ आप जैसे लोग दूसरों के ही दुःख से दुःखी होते हैं, और प्राणियों के दुःख को दूर किया करते हैं ॥१२॥ **जाबालि महर्षि ने कहा**— इस प्रकार से कहने वाले यमराज को प्रणाम करके वे स्वर्ग चले गये । उनका सुन्दर विमान अप्सरा समूह से सुशोभित था ॥१३॥ अतएव गायों की आप सदा पूजा करें, उन सबों की मन से भी निन्दा न करें ।,गायों की निन्दा करने वाले जब तक चौदह इन्द्र जीवित रहते हैं तब तक नरक में रहते हैं ॥१४॥ अतएव हे राजश्रेष्ठ ! आप सदैव गायों की पूजा करें । गौ सन्तुष्ट होकर आपको शीघ्र ही धार्मिक पुत्र प्रदान करेगी ॥१५॥ **सुमति ने कहा**— महर्षि की बात को सुनकर राजा ने आदर

गवे यवांस्तु सम्भोज्य गोमयस्थान्समाहरेत्। भक्षणीया यवास्ते तु पुत्रकामेन भूपते !॥१८॥
सा यदा पिबते तोयं तदा पेयं जलं शुचि ।
सोच्चैः स्थाने यदा तिष्ठेत्तदानीं चासनस्थितः ॥१९॥
दंशान्निवारयेन्नित्यं यवसं स्वयमाहरेत् । एवं प्रकुर्वतःपुत्रं दास्यते धर्मतत्परम्॥२०॥

सुमतिरुवाच

इतिवाक्यं समाकर्ण्य पुत्रकाम ऋतम्भरः । व्रतं चकार धर्मात्मा धेनुपूजां समाचरन् ॥२१॥
प्रत्यहं कुरुते गां वै यवसाद्येन तोषिताम् । दंशान्न्यवारयद्धीमान्यवभक्षकृतादरः ॥२२॥
एवं धेनुं पूजयतो गतास्तु दिवसाघनाः । वनमध्ये तृणादींश्च चरन्तीमकुतोभयाम् ॥२३॥
एकदा नृपतिस्तस्य वनस्य श्रीनिरीक्षणे । न्यस्तदृष्टिःसपरितो वभ्राम सकुतूहली ॥२४॥
तदाऽऽगत्याहनद्गां वै पञ्चास्यः काननान्तरात् ।
क्रोशन्तीं बहुधा दीनां सिंहभारेण दुःखिताम् ॥२५॥
तदा नृपःसमागत्य विलोक्य निजमातरम्। सिंहेन निहतां पश्यन्रुरोदातीवविह्वलः ॥२६॥
स दुःखितःसमागत्य जाबालिं मुनिसत्तमम्। निष्कृतिं तस्य पप्रच्छगोवधस्य प्रमादतः॥२७॥

ऋतम्भर उवाच

स्वामिंस्त्वदाज्ञया धेनुं पालयन्वनमास्थितः । कुतोऽप्यागत्य तां सिंहो जघानादृष्टिगोचरः ॥२८॥
तस्य पापस्य निष्कृत्यै किं करोमि त्वदाज्ञया ।
कथं वा व्रतसम्पूर्तिर्मम पुत्रप्रदायिनी ॥२९॥
इत्युक्तवन्तं तं भूपं जगाद मुनिसत्तमः। सन्त्युपाया महीपाल ! पापस्यास्यापनुत्तये ॥३०॥
ब्रह्मघ्नस्य कृतघ्नस्य सुरापस्य महामते । प्रायश्चित्तानि वर्तन्ते सर्वपापहराणि च ॥३१॥
कृच्छ्रैश्चान्द्रायणैर्दानैर्व्रतैःसनियमैर्यमैः । पापानि प्रलयं यान्ति नियमादनुतिष्ठतः ॥३२॥

पूर्वक पूछा कि गौ की पूजा कैसे करनी चाहिए । प्रयत्न पूर्वक पूजा करने से मनुष्य को वह कैसा बना देती है?॥१६॥ जाबालि महर्षि ने धेनु की पूजा की विधि का वर्णन किया उन्होंने कहा कि व्रती को गौ को चराने के लिए प्रतिदिन वन में जाना चाहिए ॥१७॥ गौ को यव खिलाए और गोमय (गोबर) में विद्यमान यवों को ले ले तथा पुत्र प्राप्ति की कामना से उन यवों को खा जाय ॥१८॥ गौ जिस समय जल पिए उसी पवित्र जल को व्रती पिए । गौ जब उच्च स्थान पर रुके तब स्वयं बैठ जाय ॥१९॥ उसके दंशों को भगाये और गौ के लिए घास स्वयं लाये । इस तरह से आचरण करने वाले धार्मिक पुरुष को गौ धार्मिक पुत्र देती है ॥२०॥ **सुमति ने कहा**— इस वावय को सुनकर पुत्र प्राप्त करने की इच्छा वाले ऋतम्भर ने गौ की पूजा करते हुए व्रत किया॥२१॥ वे प्रतिदिन घास इत्यादि से गौ को सन्तुष्ट करते थे । वे दंश इत्यादि जीवों को हटाते थे तथा आदर पूर्वक यव खाते थे ॥२२॥ इस तरह से गौ की सेवा करते हुए बहुत दिन बीत गये । वह गौ वन मे तृण आदि को निर्भय होकर चरती थी ॥२३॥ एक दिन राजा उस वन की शोभा को देख रहे थे और कुतूहल पूर्वक भ्रमण कर रहे थे ॥२४॥ उसी समय वन से आकर सिंह ने उस गौ को मार दिया । यह देखकर राजा अत्यन्त विह्वल होकर रो पड़े ॥२५-२६॥ वे दुःखी होकर आये और प्रमाद वशात् हुए गोवध का प्रायश्चित महर्षि जाबालि से पूछे॥२७॥ **ऋतम्भर ने कहा**— हे स्वामिन् ! आपकी आज्ञा से गौ की रक्षा करते हुए वन में मैं विद्यमान था। कहीं से आकर सिंह ने उसे मेरी आँखों के सामने उसे मार दिया ॥२८॥ अब मैं उस पाप को नष्ट करने के लिए आपकी किस आज्ञा का पालन करूँ ? मेरे पुत्र प्रदान करने वाले व्रत की पूर्ति कैसे हो ?॥२९॥ इस तरह से कहने वाले राजा ने मुनिश्रेष्ठ से कहा— हे राजन् ! इस पाप को दूर करने वाले अनेक उपाय हैं ॥३०॥ ब्रह्मन,

द्वयोश्च निष्कृतिर्नास्ति पापपुञ्जकृतोस्तयोः। मत्या गोवधकर्तुश्च नारायणविनिन्दितुः ॥३३॥
गवां यो मनसादुःखं वाञ्छत्यधमसत्तमः । सयाति निरयस्थानं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥३४॥
योऽपि देवं हरिं निन्देत्सकृद्दुर्भाग्यवान्नरः। सचापि नरकं पश्येत्पुत्रपौत्रपरीवृतः ॥३५॥
तस्माज्ज्ञात्वा हरिं निन्दनगोषु दुःखं समाचरन् ।
कदापि नरकान्मुक्तिं न प्राप्नोति नरेश्वर ! ॥३६॥
अज्ञानप्राप्तगोहत्याप्रायश्चितं तु विद्यते । रामभक्तं तु धीमन्तं याहि त्वमृतुपर्णकम् ॥३७॥
स वै समदृशा सर्वाञ्छत्रून्मित्राणि पश्यति। कथयिष्यति ते क्षिप्रं गोवधस्यास्य निष्कृतिम् ॥३८॥
तस्य देशांस्त्वमाक्रामंस्तेन निर्वासितः पुरा। वैरिभावं परित्यज्य गच्छत्वमृतुपर्णकम् ॥३९॥
य यद्वदिष्यति क्षिप्रं तत्कुरुष्व समाहितः । यथा त्वत्कृतपापस्य निष्कृतिर्हि भविष्यति ॥४०॥
स तु तद्वचनं श्रुत्वा जगाम ऋतुपर्णकम्। रामभक्तं रिपौ मित्रे समदृष्ट्यासमञ्जसम्॥४१॥
स तस्मै कथयामास यज्जातं गोवधादिकम् ।
तस्य पापस्य निष्कृत्ये ह्युपायं सोऽप्यचिन्तयत् ॥४२॥
क्षणं ध्यात्वाऽथ तं राजाऋतुपर्ण ऋतम्भरम् ।
उवाच प्रहसन्वाक्यं बुद्धिमान्धर्मकोविदः ॥४३॥
कोऽहं राजन्मुनीनां वै पुरतः शास्त्रवेदिनाम् ।
तान्हित्वा किंतु मां प्राप्तो मूर्खं पण्डितमानिनम् ॥४४॥
तव मय्यस्ति चेच्छ्रद्धा तदा किञ्चिद् ब्रवीम्यहम् ।
शृणुष्व नरशार्दूल ! गदितं मम सादरः ॥४५॥
भज श्रीरघुनाथं त्वं कर्मणा मनसा गिरा। नैष्कापट्येन लोकेशं तोषयस्व महामते ! ॥४६॥

कृतघ्न तथा सुरापायी के सभी पापों को दूर करने वाले बहुत से उपाय हैं । कृच्छ्र, चान्द्रयाण, दान तथा नियम युक्त व्रत के अनुष्ठान से पाप विनष्ट हो जाते हैं । दो प्रकार के पाप समूह का कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है, जानबूझ कर गौ का वध करने वाले का तथा भगवान् नारायण की निन्दा करने वाले का ॥३१-३३॥ जो अधम मनुष्य मन से भी गौओं को दुःख देना चाहते हैं उन सबों को चौदह इन्द्रों की आयु काल पर्यन्त नरक में रहना पड़ता है॥३४॥ जो दुर्भाग्यवान् मनुष्य एक बार भी भगवान् नारायण की निन्दा करता है वह भी अपने पुत्रों तथा पौत्रों के साथ नरक में जाता है ॥३५॥ अतएव जो जानकर श्रीहरि की निन्दा करता है, वह दुःख प्राप्त करता है । उसका नरकों से कभी उद्धार नहीं होता है ॥३६॥ अज्ञान वशात् यदि गोहत्या हो जाती है तो उसका प्रायश्चित्त तो है ही; तुम श्रीरामचन्द्रजी के भक्त बुद्धिमान् ऋतुपर्ण के पास जाओ ॥३७॥ वह सभी शत्रुओं और मित्रों को एक समान दृष्टि से देखते है । वह शीघ्र ही आपको इस गोवध का प्रायश्चित्त बतलायेंगे ॥३८॥ पूर्वकाल में तुमने उनके देश पर आक्रमण करके उन्हें देश से निकाल दिया था । तुम शत्रु की भावना का परित्याग करके ऋतुपर्ण के पास जाओ ॥३९॥ वे जो कहें तुम उसी का आचरण करो । ऐसा करने से तुम्हारे पाप का प्रायश्चित्त हो जायेगा॥४०॥ जावालि के वचन को सुनकर ऋतम्भर ऋतुपर्ण के पास गये । ऋतुपर्ण श्रीरामचन्द्र के भक्त तथा शत्रु एवं मित्र को एक समान दृष्टि से देखने वाले थे ॥४१॥ ऋतम्भर ने गोवध से संबद्ध सारी बातों को ऋतुपर्ण को सुनाया । उस पाप के प्रायश्चित्त के साधन का ऋतुपर्ण ने विचार किया ॥४२॥ क्षण भर ध्यान करने के बाद राजा ऋतम्भर से जोर से हँसते हुए वे बुद्धिमान तथा धर्म के ज्ञाता ऋतुपर्ण ने कहा— ॥४३॥ राजन् शास्त्रों को जानने वाले मुनियों के समक्ष मैं कौन होता हूँ । उन मुनियों को छोड़कर तुम अपने को पण्डित मानने वाले मेरे पास आये हो ॥४४॥ यदि तुम्हारी मुझमें श्रद्धा है तो मैं तुम्हें बतला रहा हूँ तुम आदर पूर्वक मेरी बातों

स तुष्टो दास्यते सर्वं त्वद्धृदिस्थं मनोरथम्। अज्ञानकृतगोहत्यापापनाशं करिष्यति।।४७।।
रामं स्मरंस्त्वं धर्मात्मन्धेनुं पालय सत्तम !। दत्त्वा द्विजाय कनकं पापनिष्कृतिमाप्स्यसि।।४८।।

सुमतिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा तु तद्वाक्यमृतम्भरनृपस्तदा । विधाय रामस्मरणं पूतात्मा व्रतमाचरत् ।।४९।।
पूर्ववत्पालयन्धेनुं जगाम विपिनं महत् । रामनाम स्मरन्नित्यं सर्वभूतहिते रतः ।।५०।।
तस्मै तुष्टा तु सुरभिःप्रोवाच परितोषिता । राजन्वरय मत्तो वै वरं हृत्स्थं मनोरथम् ।।५१।।
तदा प्रोवाच वै राजा पुत्रं देहि मनोरमम् । रामभक्तं पितृरतं स्वधर्मप्रतिपालकम्।।५२।।
तुष्टा दत्त्वा वरं साऽपि तस्मै राज्ञे सुतार्थिने ।
जगामादर्शनं देवी कामधेनुः कृपावती ।।५३।।
स काले प्राप्तवान्पुत्रं वैष्णवं रामसेवकम् । सत्यवत्संज्ञयायुक्तमकरोत्तत्र तत्पिता।।५४।।
सत्यवन्तं सुतं लब्ध्या पितृभक्तिपरं महान् । परमं हर्षमापेदे शक्रतुल्यपराक्रमम् ।।५५।।
स राजा धार्मिकं पुत्रं प्राप्य हर्षेण निर्भरः। राज्यं तस्मिन्महत्न्यस्य जगाम तपसे वनम् ।।५६।।
तत्राराध्य हृषीकेशं भक्तियुक्तेन चेतसा । निर्धूतपापःसतनुरगाद्धरिपदं नृपः ।।५७।।

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
सत्यवदाख्याने धेनुव्रतवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ।।३१।।

* * *

को सुनो ।।४५।। तुम मन, वाणी और कर्म से श्रीरामचन्द्रजी का भजन करो । हे महामते ! तुम कपट रहित होकर लोकस्वामी श्रीरामचन्द्रजी को प्रसन्न करो ।।४६।। वे प्रसन्न होकर तुम्हारे मनोरथ को पूरा करेंगे । वे अज्ञान जन्य गोहत्या के पाप का नाश कर देंगे ।।४७।। हे धार्मिक श्रेष्ठ ! श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करते हुए तुम गौ की रक्षा करो । तुम ब्राह्मण को सुवर्ण दान देकर पाप से मुक्त हो जाओगे ।।४८।। **सुमति ने कहा—** ऋतुपर्ण के इस वाक्य को सुनकर ऋतम्भर श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करके पाप रहित हो गये और व्रत करने लगे ।।४९।। वे पहले के ही समान गाय की रक्षा करते हुए वन में गये । सभी जीवों का कल्याण करने वाले राजा सदा श्रीराम नाम का स्मरण करते थे ।।५०।। राजा पर प्रसन्न होकर गौ ने राजा से कहा— राजन् आप अपने हृदय में विद्यमान वरदान को मुझसे माँगें ।।५१।। उस समय राजा ने कहा आप मुझे अपने धर्म का पालन करने वाले पितृभक्त तथा राम भक्त सुन्दर पुत्र प्रदान करें ।।५२।। उस पुत्र चाहने वाले राजा पर प्रसन्न होकर गौ ने राजा को वरदान दिया और वह दयालु गौ अन्तर्धान हो गयी ।।५३।। राजा ने भी समयानुसार रामसेवक तथा वैष्णव पुत्र को प्राप्त किया । राजा ने उस पुत्र का नाम सत्यवान् रखा ।।५४।। महान् पितृभक्त तथा इन्द्र के समान पराक्रमी पुत्र को प्राप्त करके राजा प्रसन्न हो गये ।।५५।। उस धार्मिक पुत्र को प्राप्त करके राजा हर्ष से परिपूर्ण होकर उसे राज्य समर्पित करके वन में तपस्या करने के लिए चले गये ।।५६।। वहाँ पर भक्ति भरे अन्तःकरण से भगवान् हृषीकेश की आराधना करके, तथा पाप से रहित होकर शरीर के साथ वे श्रीहरि के लोक में चले गये ।।५७।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध प्रकरण के सत्यवान चरित में धेनु व्रतानुष्ठान वर्णन नामक इकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३१।।

* * *

बत्तीसवाँ अध्याय

सुमतिरुवाच

असावपि नृपःसौम्य ! सत्यवान्नाम विश्रुतः ।
निजधर्मेण लोकेशं रघुनाथमतोषयत् ॥१॥
अस्मै तुष्टो रमानाथो ददौ भक्तिमचञ्चलाम् ।
निजांघ्रिपद्मे यजतां दुर्लभां पुण्यकोटिभिः ॥२॥
नित्यं श्रीरघुनाथस्य कथानकमनातुरः । कुरुते सर्वलोकानां पावनं कृपयायुतः ॥३॥
यो न पूजयते देवं रघुनाथं रमापतिम् । स तेन ताड्यते दण्डैर्यमस्यापि भयावहैः ॥४॥
अष्टमाद्वत्सरादूर्ध्वमशीतिवत्सरो भवेत् । तावदेकादशी सर्वैर्मानुषैः कारिताऽमुना ॥५॥
तुलसी वल्लभा यस्य कदाचिद्यच्छिरोधराम् ।
न मुञ्चति रमानाथपादपद्मास्रगुत्तमा ॥६॥
ऋषीणामपि पूज्योऽयमितरेषां कथं न हि। रघुनाथस्मृति प्रीतिर्धूतपाप्मा हताशुभः ॥७॥
ज्ञात्वाऽयं रामचन्द्रस्य वाजिनं परमाद्भुतम् । आगत्य तुभ्यं सन्दास्यत्येतद्राज्यमकण्टकम् ॥८॥
त्वया यद्वदितं राजंस्तत्ते कथितमुत्तमम् । पुनः किं पृच्छसे स्वामिन्नाज्ञापय करोमि तत् ॥९॥

शेष उवाच

गतोऽश्वस्तत्पुरान्तस्तु नानाश्चर्यसमन्वितः । तं दृष्ट्वा जनताःसर्वा राज्ञे गत्वान्यवेदयन्॥१०॥

सत्यवान् राजा का शत्रुघ्नजी को अपना राज्य समर्पण

सुमति ने कहा— हे सौम्य ! वह सत्यवान के नाम से विख्यात राजा भी अपने धर्मानुष्ठान के द्वारा लोक स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को प्रसन्न किये ॥१॥ प्रसन्न होकर भगवान् रमानाथ ने उस राजा को भी अविचल भक्ति प्रदान किया अपने चरण कमल की पूजा से उत्पन्न करोड़ों पुण्यों से भी वह भक्ति दुर्लभ है ॥२॥ वह राजा कृपा पूर्वक श्रीरामचन्द्रजी की कथा को शान्ति पूर्वक सुनाकर सभी प्रजाओं को पवित्र बनाते हैं ॥३॥ जो मनुष्य रमापति श्रीरघुनाथजी की पूजा नहीं करता है, उस व्यक्ति को वह राजा यमराज से भी भयङ्कर दण्डों से प्रताड़ित करता है ॥४॥ आठ वर्ष की अवस्था से लेकर अस्सी वर्ष की अवस्था पर्यन्त के सभी लोगों से वह राजा एकादशी व्रत करवाता है ॥५॥ श्रीभगवान् की प्रियतमा तुलसी की माला को तथा श्रीभगवान् के पैरों पर चढ़ी हुयी माला को ये राजा अपने शिर पर सदैव धारण करते हैं ॥६॥ ये राजा ऋषियों के भी पूज्य हैं तो दूसरो के पूज्य क्यों नहीं होंगे । श्रीरामचन्द्रजी के स्मरण जन्य प्रेम से उनके सारे पाप विनष्ट हो गये हैं ॥७॥ ये राजा भगवान् रामचन्द्रजी के उत्तम अश्व को जानकर आपके पास आयेंगे और आपको अपना अकण्टक राज्य प्रदान करेंगे ॥८॥ राजन् ! आपने जो पूछा था उसे मैंने कह दिया अव आप क्या पूछ रहे हैं ? आप वतलायें कि मैं क्या करूँ ॥९॥ **शेषजी ने कहा**— अनेक आश्चर्यो से युक्त वह अश्व उस राजा के नगर के भीतर गया । उस अश्व को देखकर लोग जाकर राजा को वतलायें ॥१०॥ **जनता ने कहा**— गङ्गाजल के समान श्वेत वर्ण वाला

जनता ऊचुः

कोऽप्यश्वःसितवर्णेन गङ्गाजलसमेन वै। भाले सौवर्णपत्रेण राजमानःसमागतः ॥११॥
तच्छ्रुत्वा वचनं रम्यं जनानां हृद्यमीरितम्। ताःप्रत्याह हसन्भूपो ज्ञायतां कस्य वै हयः ॥१२॥
ताश्चैनं कथयामासुः शत्रुघ्नेन प्रपालितः। आयात्यश्वो महीभर्तू रामस्य पुरमध्यतः ॥१३॥
रामस्य नाम स श्रुत्वा द्व्यक्षरं सुमनोरमम्। जहर्ष चित्ते सुभृशं गद्गदस्वरचिह्नितः ॥१४॥
मयाऽयोध्यापतिर्नित्य यो रामश्चिन्त्यते हृदि। तस्याश्वःसहशत्रुघ्नःसमायातःपुरं मम ॥१५॥
हनूमांस्तत्र रामाङ्घ्रिसेवाकर्ता भविष्यति। कदाचिदपि यो रामं न विस्मरति मानसे॥१६॥
गच्छामि यत्र शत्रुघ्नो यत्र मारुतनन्दनः। अन्येऽपि यत्र पुरुषा रामपादाब्जसेवकाः ॥१७॥
अमात्यमादिदेशाथ सर्वं राजधनं महत् । गृहीत्वा तु मया सार्द्धमागच्छ त्वरयायुतः ॥१८॥
यास्मेऽहं रघुनाथस्य हयं पालयितुं वरम्। कर्तुं च रामपादाब्जपरिचर्यां सुदुर्लभाम्॥१९॥
इत्युक्त्वा निर्जगामाथ शत्रुघ्नं प्रति सैनिकैः ।
तावत्पुरीमथप्राप्तो रामभ्राता ससैनिकः ॥२०॥
वीरा गर्जन्ति प्रबला रथाःसुनिनदन्ति च। जयशङ्खस्वनास्तत्र वेणुनादाश्च सर्वतः ॥२१॥
आगत्य सत्यवान्राजा मन्त्रिभिसुसमन्वितः । चरणे प्रणिपत्यास्मै राज्यं प्रादान्महाधनम् ॥२२॥
शत्रुघ्नस्तं तु राजानं ज्ञात्वा राममनुव्रतम् । तद्राज्यं तस्य पुत्राय रुक्मनाम्ने ददौ महत् ॥२३॥
हनूमन्तं परीरभ्य सुबाहुं रामसेवकम्। अन्यान्वै रामभक्तांश्च परिरभ्य महायशाः ॥२४॥

जो ललाट पर विद्यमान सुवर्ण पत्र से सुशोभित है ऐसा एक अश्व आया है ॥११॥ लोगों के द्वारा कहे गये मनोहर उस वचन को सुनकर हँसते हुए राजा ने जनता से कहा कि पता लगाओ कि वह किसका अश्व है ॥१२॥ उन सबों ने राजा से कहा कि यह अश्व महाराज श्रीराम की नगरी से आ रहा है और उसके रक्षक शत्रुघ्नजी हैं॥१३॥ राम इस दो अक्षर के मनोहर नाम को सुनकर राजा मन में अत्यन्त प्रसन्न हो गया। उनकी वाणी गद्गद स्वर वाली हो गयी ॥१४॥ मैं जिस अयोध्याधिपति श्रीराम के नाम का हृदय में चिन्तन करता हूँ, उन्हीं का अश्व शत्रुघ्नजी के साथ मेरे नगर में आया है ॥१५॥ जो अपने मन में कभी भी श्रीराम को नहीं भूलते हैं वे श्रीरामजी के चरणों के सेवक हनुमानजी भी वहाँ होंगे ॥१६॥ जहाँ पर शत्रुघ्नजी हैं, हनुमानजी हैं तथा श्रीरामजी के चरणकमलों के सवेक दूसरे लोग हैं, वहीं पर मैं भी चल रहा हूँ ॥१७॥ उन्होंने अपने मन्त्री को आदेश दिया कि तुम सम्पूर्ण राजधन लेकर शीघ्र मेरे साथ चलो ॥१८॥ मैं श्रीरामचन्द्रजी के श्रेष्ठ अश्व की रक्षा करने के लिए जाऊँगा और श्रीरामचन्द्रजी के चरणों की दुर्लभ सेवा करने के लिए मैं जाऊँगा ॥१९॥ इस तरह से कहकर सैनिकों के साथ राजा शत्रुघ्न के पास जाने के लिए निकल पड़े उसी समय श्रीरामजी के भाई शत्रुघ्नजी सैनिकों के साथ उस नगर में पहुँच गये ॥२०॥ प्रबल वीर गरज रहे थे, रथों की ध्वनि हो रही थी वहाँ पर जय शब्द तथा वेणु की ध्वनि हो रही थी ॥२१॥ राजा सत्यवान् अपने मन्त्रियों के साथ आकर शत्रुघ्नजी के चरणों में प्रणाम किये और महान् धन से युक्त राज्य प्रदान किये ॥२२॥ शत्रुघ्नजी ने राजा को राम भक्त जानकर उस राजा के राज्य को उनके रुक्म नामक पुत्र को प्रदान कर दिया ॥२३॥ हनुमानजी तथा रामजी के सेवक सुबाहु का आलिङ्गन करके महायशस्वी सत्यवान् अपने को कृतार्थ अनुभव किए। उस समय वे शत्रुघ्नजी के साथ हृदय

कृतार्थमिव चात्मानं मेने सत्यसमन्वितः। ननन्द चेतसि तदा शत्रुघ्नेन समन्वितः ॥२५॥
हयस्तावद्गतो दूरं वीरैःसुपरिरक्षितः। शत्रुघ्नस्तेन भूपेन ययौ वीरसमन्वितः ॥२६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
सत्यवत्समागमो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

* * *

तैंतिसवाँ अध्याय

शेष उवाच

गच्छत्सु रथिवर्येषु शत्रुघ्नादिषु भूरिषु। महाराजेषु सर्वेषु रथकोटियुतेषु च ॥१॥
अकस्मादभवन्मार्गे तमःपरमदारुणम्। यस्मिन्स्वीयो न पारक्यो लक्ष्यते ज्ञातिभिर्नरैः ॥२॥
रजसाव्यावृतं व्योम विद्युत्स्तनितसङ्कुलम्। एतादृशे तु सम्मर्दे महाभयकरे ततः ॥३॥
मेघा वर्षन्ति रुधिरं पूयामेध्यादिकं बहु। अत्याकुला बभूवुस्ते वीराः परमवैरिणः ॥४॥
आकुलीकृतलोके तु किमिदं किमिति स्थितिः।
तमोव्याप्तानि लोकानां चक्षूंषि प्रथितौजसाम् ॥५॥
जहाराश्वं रावणस्य सुहृत्पातालसंस्थितः। विद्युन्मालीति विख्यातो राक्षसश्रेणिसंवृतः ॥६॥
कामगे सुविमाने तु सर्वायसनिषेविणि। आरूढोऽश्वं तु वीराणां भयंकुर्वञ्जहार ह ॥७॥

से आनन्दित हुए ॥२५॥ उस समय तक अश्व वीरों के साथ दूर चला गया था। शत्रुघ्नजी भी उस राजा के साथ तथा वीरों के साथ चले गये ॥२६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में सत्यवान् समागम नामक बत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३२।।

* * *

विद्युन्माली राक्षस के द्वारा अश्व का हरण और वीरों द्वारा उस राक्षस को मारने की प्रतिज्ञा

शेषजी ने कहा— जब श्रेष्ठ रथी शत्रुघ्न इत्यादि जा रहे थे तथा करोड़ों रथों के साथ सभी महाराजे भी जा रहे थे ॥१॥ उस समय अकस्मात् रास्ते में भयङ्कर अन्धकार छा गया। उस अन्धकार में कोई भी व्यक्ति अपने अथवा पराये किसी को भी नहीं देख पाता था ॥२॥ आकाश अन्धकार से भर गया जोर-जोर से विजली चमकने लगी। इस प्रकार के अत्यन्त भयङ्कर सम्मर्द उपस्थित होने पर ॥३॥ मेध खून, पीव आदि अपवित्र वस्तुओं की वर्षा करने लगे। उसके कारण सभी वीर व्याकुल हो गये ॥४॥ यह क्या हो गया ? इस तरह से सोचकर सभी लोगों के व्याकुल हो जाने पर चारों ओर अन्धकार छा गया, लोगों की आँखों से कुछ भी नहीं दिख रहा था, उसी समय पाताल में रहने वाले रावण के मित्र तथा विद्युन्माली के नाम से विख्यात राक्षस राक्षस समूह के साथ॥६॥ यज्ञीयाश्व का अपहरण कर लिया ॥७॥ एक मुहूर्त में अन्धकार मिट गया, आकाश साफ हो गया।

मुहूर्तात्ततमो नष्टमाकाशं विमलं बभौ ।
वीराः शत्रुघ्नमुख्यास्ते प्रोचुः कुत्र हयोऽस्ति सः ॥८॥
ते सर्वे हयराजं तु लोकयन्तःपरस्परम्। ददृशुर्न यदावाहं हाहाकारस्तदाऽभवत्॥९॥
कुत्राश्वो हयमेधस्य केन नीतःकुबुद्धिना। इति वाचमवोचंस्ते तावत्स दनुजेश्वरः॥१०॥
ददृशे सुभटैःसर्वै रथस्थैःशौर्यशोभितैः। विमानवरमारूढे राक्षसाग्र्यैःसमावृतः ॥११॥
दुर्मुखा विकरालास्या लम्बदंष्ट्रा भयानकाः ।
राक्षसास्तत्र दृश्यन्ते सैन्यग्रासाय चोद्यताः ॥१२॥
तदा तं वेदयामासुःशत्रुघ्नं नृवरोत्तमम्। हयो नीतो न जानीमःखे विमानविलासिना ॥१३॥
तमसाव्याकुलान्कृत्वा वीरानस्मान्समाययौ। जग्राह नृपशार्दूल हयं कुरु यथोचितम्॥१४॥
शत्रुघ्नस्तद्वचःश्रुत्वा महारोषसमावृतः ।
कोऽस्त्येष राक्षसो यो मे हयं जग्राह वीर्यवान् ॥१५॥
विमानं तत्पतत्वद्य मद्बाणव्रजनिर्हतम्। पतत्वद्य शिरस्तस्य क्षुरप्रैर्मम वैरिणः॥१६॥
सज्जीयन्तां रथाः सर्वैर्महाशस्त्रास्त्रपूरिताः। यान्तु तं प्रतिसंहर्तुं योद्धारो वाजिहारिणम्॥१७॥
इत्युक्त्वा रोषताम्राक्ष उवाच निजमन्त्रिणम्। नयानयविदं शूरं युद्धकार्यविशारदम्॥१८॥

शत्रुघ्न उवाच

मन्त्रिन्कथय के योज्या राक्षसस्य वधोद्यताः ।
महाशस्त्रा महाशूराः परमास्त्रविदुत्तमाः ॥१९॥
कथयाशु विचार्यैवं तत्करोमि भवद्वचः ।
वीरान्कथय तस्यैवं योग्यान्सर्वास्त्रकोविदान् ॥२०॥

शत्रुघ्नजी के मुख्य वीरों ने पूछा कि अश्व कहाँ हैं ?॥८॥ वे सब उस अश्वराज को खोजते हुए परस्पर में अश्व को नहीं देखे तो हाहाकार मच गया ॥९॥ अश्वमेध का अश्व कहाँ है ? किस मूर्ख ने उसका अपहरण किया है? इस तरह से वे बातें कर रहे थे, उसी समय वह दनुजेश्वर ॥१०॥ रथ पर बैठे हुए वीरों के द्वारा देखा गया। वह श्रेष्ठ विमान पर बैठा हुआ श्रेष्ठ राक्षसों से घिरा हुआ था ॥११॥ उसकी सेना के दुर्मुख तथा भयङ्कर मुख वाले, जिनके दाँत लम्बे थे तथा भयानक राक्षस मानो सेना को खा जाने के लिए तैयार थे ॥१२॥ उस समय सैनिकों ने, मनुष्यों में श्रेष्ठ शत्रुघ्नजी से कहा कि विमान पर बैठे हुए किसी ने अश्व को ले लिया है, उसे हमलोग नहीं जानते हैं ॥१३॥ हे राजश्रेष्ठ ! वह हम सभी वीरों को अन्धकार से व्याकुल बनाकर अश्व को ले लिया है। अतएव आप जैसा उचित समझें वैसा करें ॥१४॥ उस वाक्य को सुनकर शत्रुघ्नजी अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। वह कौन सा पराक्रमी राक्षस है जिसने मेरे घोड़े को पकड़ लिया है ?॥१५॥ मेरे बाण समूह से विदीर्ण होकर उसका विमान गिर जाय ॥१६॥ सभी रथ महान् शस्त्रास्त्रों से सजा दिये जायँ। सभी योद्धा उसका संहार करने के लिए तैयार हो जायँ, जिसने अश्व का अपहरण किया है ॥१७॥ इस तरह से कहकर क्रोध से लाल आँखों वाले शत्रुघ्नजी ने न्याय तथा अन्याय के विषय में दक्ष अपने युद्ध के कार्य में निपुण मन्त्री से कहा ॥१८॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा**— हे मन्त्रिन् ! आप बतलायें कि राक्षस का वध करने के लिए उद्यत किन लोगों को भेजा जाय ? जो महास्त्र को धारण करने वाले महावीर तथा परमास्त्रों के श्रेष्ठ ज्ञाता हों ॥१९॥ आप शीघ्र विचार करके बतलायें,

एतच्छ्रुत्वा तु सचिवःप्राह वाक्यं यथोचितम् ।
वीरान्रणवरे योग्यान्दर्शयंस्तरसानतान् ॥२१॥

सुमतिरुवाच

जेतुं गच्छतु तद्रक्षःसमरे विजयोद्यतः । महाशस्त्रास्त्रसंयुक्तःपुष्कलःपरतापनः ॥२२॥
तथा लक्ष्मीनिधिर्यातु शस्त्रसङ्घसमन्वितः। करोतु तस्य यानस्य भङ्गं तीक्ष्णैः स्वसायकैः॥२३॥
हनूमान्दृष्टकर्माऽत्र राक्षसैर्योधितुं क्षमः। करोतु मुखपुच्छाभ्यां ताडनं रक्षसां प्रभो ! ॥२४॥
वानरा अपि ये वीरा रणकर्मविशारदाः । गच्छन्तु तेऽखिला योद्धुं तव वाक्यप्रणोदिताः॥२५॥
सुमदश्च सुबाहुश्च प्रतापाग्र्यश्च सत्तमाः । गच्छन्तु सायकैस्तीक्ष्णैस्तान्योद्धुं राक्षसाधमान्॥२६॥
भवानपि महाशस्त्रपरिवारो रथेस्थितः। करोतु युद्धे विजयं राक्षसं हन्तुमुद्यतः ॥२७॥
एतन्मम मतं राजन्ये योधास्तत्प्रमर्दनाः। ते गच्छन्तु रणे शूराःकिमन्यैर्बहुभिर्भटैः ॥२८॥
इत्युक्तवति वीराग्र्येऽमात्ये सुमतिसंज्ञके। शत्रुघ्नः कथयामास वीरान्सङ्ग्रामकोविदान्॥२९॥
भो वीराःपुष्कलाद्या ये सर्वशस्त्रास्त्रकोविदाः ।
ते वदन्तु प्रतिज्ञां वै मत्पुरो राक्षसार्दने ॥३०॥
कृत्वा प्रतिज्ञां विपुलां स्वपराक्रमशोभिनीम् ।
गच्छन्तु रणमध्ये हि भवन्तो बलसंयुताः ॥३१॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य शत्रुघ्नस्य महाबलाः ।
स्वां स्वां प्रतीज्ञां महतीं चक्रुस्ते तेजसान्विताः ॥३२॥
तत्रादौ पुष्कलो वीरः श्रुत्वा वाक्यं महीपतेः ।
परमोत्साहसम्पन्नः प्रतिज्ञामूचिवानिमाम् ॥३३॥

आपके कथनानुसार ही मैं कार्य करूँगा । उन योग्य वीरों को आप वतलायें जो सभी अस्त्रों के ज्ञाता हों ॥२०॥ इस बात को सुनकर मन्त्री ने यथोचित वाक्य को कहा वे श्रेष्ठ युद्ध के योग्य वीरों को दिखाते हुए कहे ॥२१॥ **सुमति ने कहा**— युद्ध में उस राक्षस को जीतने के लिए महान् शस्त्रात्रों के ज्ञाता तथा शत्रुओं के विनाशक पुष्कल जायँ ॥२२॥ इसके अतिरिक्त शस्त्र समूह से युक्त लक्ष्मीनिधि जायँ वे अपने तीक्ष्ण बाणों से उस राक्षस के विमान को विनष्ट कर दें ॥२३-२४॥ रणकर्म में निपुण जो वानर वीर हैं वे सब आपके वाक्य से प्रेरित होकर जायँ ॥२५॥ सुमद, सुबाहु, प्रतापाग्रय ये सब उन अधम राक्षसों के साथ अपने तीक्ष्ण वाणों के द्वारा युद्ध करने के लिए जायँ ॥२६॥ आप भी अपने महान् शस्त्र समूह के साथ रथ पर स्थित होकर राक्षस को मारने के लिए तैयार होकर युद्ध में विजय प्राप्त करें ॥२७॥ हे राजन् ! मेरा यही विचार है कि उस राक्षस का मर्दन करने वाले जो योद्धा हैं वे शूरवीर युद्ध में जायँ दूसरे वीरों से क्या मतलब हैं ॥२८॥ वीरों में श्रेष्ठ सुमति नामक आमात्य के इस तरह से कहने पर शत्रुघ्नजी ने सङ्ग्राम करने में निुपण वीरों को कहा ॥२९॥ हे पुष्कल आदि वीरों ! जो समस्त शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता हैं वे सब मेरे समक्ष उस राक्षस को मारने की प्रतीज्ञा करें ॥३०॥ अपने-अपने पराक्रम को सुशोभित करने वाली विपुल प्रतिज्ञा को करके वलवान् वीर युद्ध में जायँ ॥३१॥ शत्रुघ्नजी के इस वाक्य को सुनकर महावलवान् तथा तेजस्वी वीरों ने अपनी-अपनी प्रतिज्ञा की ॥३२॥ सर्वप्रथम शत्रुघ्नजी के वाक्य को सुनकर पुष्कल ने अत्यन्त उत्साह से सम्पन्न होकर प्रतिज्ञा की ॥३३॥ **पुष्कल ने कहा**— हे राजश्रेष्ठ!

पुष्कल उवाच

श्रृणुष्व नृपशार्दूल ! मत्प्रतिज्ञां पराक्रमात् । विहितां सर्वलोकानां श्रृण्वतां परमाद्भुताम् ॥३४॥
चेन्न कुर्यां क्षुरप्रागैस्तीक्ष्णैः कोदण्डनिर्गतैः । दैत्यं मूर्च्छासमाक्रान्तं कीर्णकेशाकुलाननम् ॥३५॥
कन्यास्वभोर्क्तुत्पापं यत्पापं देवनिन्दने । तत्पापं मम वै भूयाच्चेत्कुर्यां स्ववचोऽनृतम् ॥३६॥
यदि मद्बाणनिर्भिन्नाःसैनिकाःसुमहाबलाः । न पतन्ति महाराज ! प्रतिज्ञां तत्र मे श्रृणु ॥३७॥
विष्ण्वीशयोर्विभेदं यः शिवशक्त्योः करोत्यपि ।
तत्पापं मम वै भूयाच्चेन्न कुर्यामृतं वचः ॥३८॥
सर्वं मद्वाक्यमित्युक्तं रघुनाथपदाम्बुजे । भक्तिर्मे निश्चलायाऽस्ति सैव सत्यं करिष्यति ॥३९॥
पुष्कलस्य प्रतिज्ञां तां श्रुत्वा लक्ष्मीनिधिर्नृपः ।
प्रतिज्ञां व्यदधात्सत्यां स्वपराक्रमशोभिताम् ॥४०॥

लक्ष्मीनिधिरुवाच

वेदानां निन्दनं श्रुत्वा आस्ते यो मौनिवन्नरः ।
मानसे रोचयेद्यस्तु सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥४१॥
ब्राह्मणो यो दुराचारो रसलाक्षादिविक्रयी । विक्रीणाति च गां मूढो धनलोभेन मोहितः॥४२॥
म्लेच्छकूपोदकं पीत्वा प्रायश्चित्तं तु नाचरेत् ।
तत्पापं मम वै भूयाद्विमुखश्चेद्भवाम्यहम् ॥४३॥
तत्प्रतिज्ञामथाश्रुत्य हनूमान्रणकोविदः । रामाङ्घ्रिस्मरणं कृत्वा प्रोवाच वचनं शुभम् ॥४४॥
मत्स्वामी हृदये नित्यं धेयो वै योगिभिर्मुहुः ।
यं देवाः सासुराः सर्वे नमन्ति मणिमौलिभिः ॥४५॥

आप अद्भुत तथा पराक्रम पूर्ण सबलोगों के समक्ष की गयी मेरी प्रतिज्ञा को सुनें ॥३४॥ यदि मैं अपने धनुष से छोड़े गये तीक्ष्ण क्षुरप्र बाणों से दैत्य को विखरे हुए केशों से आच्छन मुख वाला तथा मूर्छित नहीं बना दूँ तो॥३५॥ कन्या की सम्पत्ति रखने वाले तथा देवताओं की निन्दा करने वालों को जो पाप लगता है वही पाप मुझको अपनी वाणी को मिथ्या करने पर लगे ॥३६॥ यदि मेरे वाणों से भिन्न-भिन्न महाबलवान् सैनिक मर नहीं जाते हैं तो इसके विषय में आप मेरी प्रतिज्ञा सुनें ॥३७॥ शिव तथा विष्णु में तथा शिव एवं शक्ति में भेद मानने वाले को जो पाप लगता है वही पाप मुझे लगे, यदि मैं अपनी वाणी सत्य नहीं कर सकूँ तो ॥३८॥ मैंने जो कुछ भी कहा है, मेरी उस वाणी को भगवान् श्रीराम के चरणों में जो मेरी भक्ति है, वही सत्य करेगी ॥३९॥ पुष्कल की उस प्रतिज्ञा को सुनकर राजा लक्ष्मीनिधि ने अपने पराक्रम से सुशोभित सत्य प्रतिज्ञा की ॥४०॥ **लक्ष्मीनिधि ने कहा**— वेदों की निन्दा सुनकर जो मनुष्य मौन हो जाता है, तथा सभी धर्मों से वहिष्कृत मन से उसका समर्थन करता है ॥४१॥ तथा रस तथा लाह इत्यादि को बेचने वाले दुराचारी ब्राह्मण को तथा जो मूर्ख धन के लोभ से मोहित होकर गौ को बेचता है, उसको ॥४२॥ म्लेक्षों के कुएँ का पानी पीकर जो उसका प्रायश्चित्त नहीं करता है उसको जो पाप लगता है, वही पाप मुझको लगे यदि मैं युद्ध पराङ्मुख हो जाऊँ तो ॥४३॥ इस प्रतिज्ञा को सुनने के बाद रणविद्या के ज्ञाता हनुमान् जी श्रीभगवान् राम के चरणों का स्मरण करके कहे ॥४४॥ योगिजनों के ध्येय तथा मेरे हृदय में सदा विराजमान रहने वाले मेरे स्वामी जिनको सभी देवता और असुर अपने

रामः श्रीमानयोध्यायाः पतिर्लोकेशपूजितः । तं स्मृत्वा यद्ब्रुवे वाक्यं तद्वै सत्यं भविष्यति॥४६॥
राजन्कोऽयं लघुर्दैत्यो दुर्बलःकामगेस्थितः । कथयाशु मया कार्यमेकेन विनिपातनम्॥४७॥
मेरुं देवेन्द्रसहितं लाङ्गूलाग्रेण तोलये । जलधिं शोषये सर्वं सांवर्तं वा पिबाम्यहम् ॥४८॥
राज्ञःश्रीरघुनाथस्य जानक्याःकृपया मम । तन्नास्ति भूतले राजन्यदसाध्यं कदा भवेत्॥४९॥
एतद्वाक्यं मया प्रोक्तमनृतंस्याद्यदि प्रभो ! । तदैव रघुनाथस्य भक्तिदूरो भवाम्यहम् ॥५०॥
यः शूद्रः कपिलां गां वै पयोबुद्ध्याऽनुपालयेत् ।
तस्य पापं ममैवास्तु चेत्कुर्यामनृतंवचः ॥५१॥
ब्राह्मणीं गच्छते मोहाच्छूद्रःकामविमोहितः । तस्य पापं ममैवास्तु चेत्कुर्यामनृतंवचः ॥५२॥
यद्घ्राणान्नरकं गच्छेत्स्पर्शनाच्चापि रौरवम् ।
तां पिबेन्मदिरां यो वा जिह्वास्वादेन लोलुपः ॥५३॥
तस्य यज्जायते पापं तन्ममैवास्तु निश्चितम्। चेन्नकुर्या प्रतिज्ञातं सत्यं रामकृपाबलात्॥५४॥
एवमुक्ते महावीरैर्योद्धारस्तरसायुताः। चक्रुःप्रतिज्ञां महतीं स्वपराक्रमशालिनीम् ॥५५॥
शत्रुघ्नोपि व्यधात्तत्र प्रतिज्ञां पश्यतां नृणाम्। साधु साधु प्रशंसन्वै तान्वीरान्युद्धकोविदान ॥५६॥
कथयामि पुरो वः स्वां प्रतिज्ञां सत्त्वशोभिताम् ।
तच्छृण्वन्तु महाभागा युद्धोत्साहसमन्विताः ॥५७॥
चेत्तस्य शिर आहत्य पातयामि न सायकैः ।
विमानाच्च कबन्याच्च भिन्नं छिन्नं च भूतले ॥५८॥

मुकुट मणियों से प्रणाम करते हैं ।।४५।। वे श्रीरामजी अयोध्या के स्वामी है, लोकेश उनकी पूजा करते है, उनका स्मरण करके मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह सत्य ही होगा ।।४६।। हे राजन् ! यह दैत्य दुर्बल है, अपने कामग विमान पर स्थित है यह क्या है, आप मुझे अकेले आज्ञा दें मैं इसे गिरा देता हूँ ।।४७।। मैं अपनी पूँछ के अग्रभाग से सुमेरु पर्वत को उठा सकता हूँ । मैं समुद्र को पी सुखा दे सकता हूँ तथा संवर्त को पी जा सकता हूँ ।।४८।। राजा श्रीरामचन्द्र तथा जानकीजी की कृपा से हे राजन् ! भूलोक में मेरे लिए कोई भी कार्य असाध्य नहीं हैं ।।४९।। हे प्रभो ! यह जो वाक्य मैंने कहा है, वह यदि असत्य हो जाय तो मैं श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति से रहित हो जाऊँ ।।५०।। जो मूर्ख कपिला गौ का पालन केवल दुग्ध प्राप्ति की वुद्धि से करे उसको जो पाप लगता है वही पाप मुझको लगे यदि मैं झूठ बोलूँ तो ।।५१।। जो कोई शूद्र काम मोहित होकर किसी ब्राह्मणी के साथ समागम करता है, उसको जो पाप लगता है, वही पाप मुझे लगे, यदि मैं झूठ बोलूं तो ।।५२।। जिसके सूंघने मात्र से मनुष्य नरकगामी होता है और जिसको पीने से रौरव नरक गामी होता है, उस मदिरा को जीभ के स्वाद का लोभी कोई पीता है ।।५३।। तो उसको जो पाप लगता है, वही पाप मुझे भी लगे । यदि मैं श्रीरामजी की कृपा से अपनी प्रतिज्ञा सत्य नहीं करूँ तो ।।५४।। इस तरह से वीरों के कहने पर वल सम्पन्न योद्धाओं ने महान् प्रतिज्ञा की जो उनके पराक्रम को सुशोभित करने वाली थी ।।५५।। शत्रुघ्नजी ने भी सभी लोगों के समक्ष बहुत अच्छा ! वहुत अच्छा कहते हुए तथा उन वीरों की प्रशंसा करते हुए प्रतिज्ञा की ।।५६।। मैं अपने पराक्रम के अनुसार प्रतिज्ञा आपलोगों के समक्ष करता हूँ आप सभी युद्ध के उत्साह से समन्वित हैं, मेरी उस प्रतिज्ञा को सुनें ।।५७।। यदि मैं वाणों से मारकर उसके शिर को पृथिवी पर गिरा न दूँ तथा उसके शरीर को छिन्न-भिन्न करके

यत्पापं कूटसाक्ष्येण यत्पापं स्वर्णचौर्यतः। यत्पापं ब्रह्मनिन्दायां तन्ममास्त्वद्य निश्चयात्॥५९॥
इति शत्रुघ्नसद्वाक्यं श्रुत्वा ते वीरपूजिताः । धन्योऽसि राघवभ्रातः ! कस्त्वदन्यो वदेदिदम्॥६०॥
त्वया वै निहतो दैत्यो देवदानवदुःखदः । लवणो नाम लोकेश ! मधुपुत्रो महाबलः॥६१॥
कोऽयं वै राक्षसो दुष्टः क्वचास्य बलमल्पकम् ।
करिष्यसि क्षणादेव तस्य नाशं महामते ! ॥६२॥
इत्युक्त्वा ते महावीराःसज्जीभूता रणाङ्गणे ।
प्रतिज्ञां स्वामृतांकर्तुं ययुस्ते राक्षसं मुदा ॥६३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
वीरप्रतिज्ञाकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

शेष उवाच

रथैःसदश्वैःशोभाढ्यैः सर्वशस्त्रास्त्रपूरितैः । नानारत्नसमायुक्तैर्ययुस्ते राक्षसाधमम् ॥१॥
तान्दृष्ट्वा कामगे याने स्थितःप्रोवाच राक्षसः ।
मेघगम्भीरया वाचा तर्जयन्निव भूरिशः ॥२॥

विमान से नहीं गिरा दूँ तो ॥५८॥ जो पाप झूठी गवाही देने से तथा जो पाप सुवर्ण चुराने से लगता है तथा जो पाप ब्रह्म की निन्दा करने से होता है, वही पाप आज मुझको लगे ॥५९॥ शत्रुघ्नजी के इस वाक्य को सुनकर समादृत वीरों ने कहा हे राघवभ्रातः ! आप धन्य हैं आपको छोड़कर दूसरा कौन यह कह सकता है ?॥६०॥ हे लोकेश ! आपने देवों तथा दानवों को दुःख देने वाले तथा मधु नामक दैत्य के पुत्र महाबलवान् लवणासुर को मारा है ॥६१॥ यह दुष्ट राक्षस क्या है ? तथा इसका बल तो अल्प है । हे महामते ! आप इसका क्षण भर में नाश कर देंगे ॥६२॥ इस तरह से कहकर वे भी महाबलवान् वीर युद्धस्थल में सजकर अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिए उस राक्षस के पास गये ॥६३॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में वीरों की प्रतिज्ञाओं का वर्णन नामक तैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३३।।

विद्युन्माली का वध

शेषजी ने कहा— अच्छे अश्वों की शोभा से सम्पन्न तथा सम्पूर्ण शास्त्रास्त्रों से परिपूर्ण तथा अनेक रत्नों से युक्त रथों से वे सब वीर राक्षासाधम के पास युद्ध करने के लिए गये ॥१॥ उन सबों को देखकर कामाग विमान पर बैठा हुआ वह राक्षस मेघ के सामन गम्भीर वाणी से उन सबों को बहुत डाँटते हुए कहा ॥२॥ वीरों युद्ध

मा यान्तु सुभटा योद्धुं गच्छन्तु निजमन्दिरम् ।
मा त्यजन्तु स्वकान्प्राणान्न मोक्ष्ये वाजिनं वरम् ।।३।।
विद्युन्मालीति विख्यातो रावणस्य सुहृत्सखा ।
मत्सख्युः प्रेतभूतस्य निष्कृतिं कर्तुमेयिवान् ।।४।।
क्वासौ रामो य आहत्य सखायं रावणं गतः ।
तस्य भ्रातापि कुत्रास्ते सर्वशूरशिरोमणिः ।।५।।
तं हत्वा निष्कृतिं तस्य प्राप्स्ये रामस्य चानुजम् ।
पिबन्रुधिरमुद्भूतं कण्ठनालस्य बुद्बुदैः ।।६।।
इति वाक्यं समाकर्ण्य योधानां प्रवरोत्तमः। पुष्कलो निजगादेनं वीर्यशौर्यसमन्वितम् ।।७।।

पुष्कल उवाच

विकत्थनं न कुर्वन्ति सङ्ग्रामे सुभटा नराः ।
पराक्रमं दर्शयन्ति निजशस्त्रास्त्रवर्षणैः ।।८।।
रावणो निहता येन स सुहृत्स्वजनैर्वृतः। तस्य वाजिनमाहत्य कुत्र गन्ताऽसि दुर्मद ।।९।।
पतिष्यसि त्वं शत्रुघ्नबाणैः कोदण्डनिर्गतैः। त्वामत्स्यन्ति शिवा भूमौ पतितं प्राणवर्जितम् ।।१०।।
मा गर्ज दुष्ट ! रामस्य सेवके मयि संस्थिते ।
गर्जन्ति सुभटा युद्धे शत्रुं जित्वा महोदयात् ।।११।।

शेष उवाच

एवं ब्रुवन्तं तं वीरं पुष्कलं रणदुर्मदम्। जघान शक्त्या सुभृशं हृदि राक्षससत्तमः ।।१२।।
आयान्तीं तां महाशक्तिमायसीं काञ्चनाश्रिताम् ।
विच्छेद त्रिभिरत्युग्रैः शितैर्बाणैः स पुष्कलः ।।१३।।

मत करो अपने घर लौट जाओ, अपने प्राणों का परित्याग न करो। मैं इस श्रेष्ठ अश्व को नहीं छोड़ूंगा ।।३। मैं रावण का सुहृत् मित्र विद्युन्माली हूँ; अपने मृतमित्र का बदला लेने आया हूँ ।।४।। मेरे मित्र रावण को मारने वाले राम कहाँ है ? और उनके वीर शिरोमणि कहाँ है ?।।५।। राम के उस अनुज को मारकर मैं रावण का बदला ले लूँगा। उनके कण्ठ नाल से निकलने वाले फेन युक्त रक्त का मै पान करूँगा ।।६।। इस वाक्य को सुनकर श्रेष्ठ योद्धाओं में उत्तम पुष्कल ने वीर्य तथा शौर्य समन्वित शब्दों में कहा ।।७।। **पुष्कल ने कहा**— जो वीर मनुष्य होते हैं वे बहुत बढ़चढ़कर नहीं बोलते हैं। वे अपने शस्त्रास्त्रों की वर्षा करके अपना पराक्रम प्रदर्शित करते हैं ।।८।। जिन श्रीरामजी ने सुहृदों तथा बान्धवों के साथ रावण को मारा है, उन्हीं श्रीरामचन्द्रजी के अश्व का अपहरण करके तुम कहाँ जाओगे ।।९।। तुम शत्रुघ्नजी के धनुष से छूटे हुए बाणों से मारे जाओगे। पृथिवी पर प्राणों से रहित होकर गिरे हुए तुमको स्यार खायेंगे ।।१०।। अरे दुष्ट ! श्रीरामजी के सेवक मेरे रहते हुए तुम गर्जना मत करो। वीर तो युद्ध में शत्रु को जीतकर महोदय के कारण गर्जना करते हैं ।।११।। **शेषजी ने कहा**— इस तरह से कहने वाले रणदुर्मद वीर पुष्कल के हृदय में उस राक्षस श्रेष्ठ ने शक्ति से प्रहार किया ।।१२।। उस सुवर्ण चित्रित तथा लोहे से निर्मित शक्ति को आती हुयी देखकर पुष्कल ने उसको अपने तीन तीक्ष्ण बाणों से काट दिया ।।१३।। बाणों के प्रहार से कान्ति विहीन बनी हुयी वह शक्ति तीन टुकड़ों में पृथिवी पर गिर पड़ी।

सा त्रिधा ह्यपतद् भूमौ विशिखैर्निष्प्रभीकृता ।
पतन्ती विरराजासौ विष्णोः शक्तित्रयीव किम् ॥१४॥
तां छिन्नां शक्तिकां दृष्ट्वा राक्षसः परतापनः ।
जग्राह शूलं तरसा त्रिशिखं लोहनिर्मितम् ॥१५॥
तीक्ष्णाग्रं ज्वलनप्रख्यं राक्षसेन्द्रो व्यमोचयत् ।
आयान्तं तिलशश्चक्रेबाणैःपुष्कलसंज्ञितः ॥१६॥
छित्त्वा त्रिशूलं तरसा राघवस्य हि सेवकः ।
पुष्कलश्चाप आधत्त बाणांस्तीक्ष्णान्मनोजवान् ॥१७॥
तं बाणा हृदि तस्याशु लग्ना रागं बतासृजन् ।
वैष्णवस्य यथा स्वान्ते गुणा विष्णोर्मनोहराः ॥१८॥
तद्बाणवेधदुःखार्तो विद्युन्माली सुदुर्मदः । जग्राह मुद्गरं घोरं पुष्कलं हन्तुमुद्यतः ॥१९॥
मुद्गरः प्रहितस्तेन विद्युन्माल्यभिधेनाहि। हृदिलग्नोऽसृजच्छीघ्रं कश्मलं तदकारयत्॥२०॥
मुद्गरप्रहतो वीरः कम्पमानः सवेपथुः । पपात स्यन्दनोपस्थे पुष्कलः शत्रुतापनः ॥२१॥
उग्रदंष्ट्रोऽथ तद्भ्राता लक्ष्मीनिधिमयोधयत् । शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तैर्वीरं प्राणापहारकैः॥२२॥
पुष्कलस्तत्क्षणात्प्राप्य संज्ञां राक्षसमब्रवीत् । धन्योऽसि राक्षसश्रेष्ठ ! महीयांस्ते पराक्रमः ॥२३॥
पश्येदानीं ममाप्युच्चैः प्रतिज्ञां शूरमानिताम् ।
विमानात्पातयाम्यद्य भूमौ त्वां शितसायकैः ॥२४॥
इत्युक्त्वा निशितं बाणं समगृह्णाद् दुरासदम् ।
ज्वलन्तमग्नितेजस्कं महौदार्यसमन्वितम् ॥२५॥

गिरती हुयी वह भगवान् विष्णु की तीन शक्तियों के समान सुशोभित हुयी ॥१४॥ उस शक्ति को कटी हुयी देखकर शत्रुओं को दुःख देने वाला वह राक्षस वेग पूर्वक लौह निर्मित त्रिशूल को उठा लिया ॥१५॥ उसका तीक्ष्ण अग्रभाग अग्नि के समान था, उसको राक्षस ने छोड़ा । उस आते हुए त्रिशूल को पुष्कल ने बाण के प्रहार से तिल के समान काटकर गिरा दिया ॥१६॥ उसको काटकर रामसेवक पुष्कल ने अपने धनुष पर मन के समान वेग वाले तीक्ष्ण बाणों को चढ़ाया ॥१७॥ वे बाण विद्युन्माली के हृदय में लगकर उसको उसी तरह लाल-लाल बना दिए जिस तरह वैष्णवों के अन्तःकरण में भगवान् विष्णु के मनोहर गुण लग जाते हैं ॥१८॥ उन बाणों से छेदे जाने के कारण दुःखी बना हुआ अत्यन्त दुर्मद विद्युन्माली पुष्कल को मारने के लिए उद्यत होकर भयङ्कर मुद्गर को उठाया ॥१९॥ विद्युन्माली ने उस मुद्गर को चलाया उसके हृदय में लगने से पुष्कल मूर्छित हो गये॥२०॥ उस मुद्गर के प्रहार से; शत्रुओं को मारने वाले वीर पुष्कल काँपते हुए रथ के पीछले भाग में गिर पड़े॥२१॥ विद्युन्माली का भाई उग्रदंष्ट्र लक्ष्मीनिधि के साथ युद्ध कर रहा था । वह वीरों के प्राणों का अपहरण करने वाले अनेक शस्त्रास्त्रों का प्रहार कर रहा था ॥२२॥ पुष्कल उसी क्षण होश में आकर राक्षस से कहे, राक्षसश्रेष्ठ धन्य हो तुम्हारा पराक्रम महान् है ॥२३॥ अब तुम वीर मानित मेरी प्रतिज्ञा को सुनो । आज मैं अपने तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से तुम्हें विमान से गिरा रहा हूँ ॥२४॥ इस तरह से कहकर उन्होंने अत्यन्त भयङ्कर तथा तीक्ष्ण बाण को ले लिया, वह अग्नि के तेज से प्रज्वलित था तथा अत्यन्त औदार्य से युक्त था ॥२५॥ जब तक

स यावत्तत्प्रतीकर्तुं विधत्ते स्वपराक्रमम् । तावद्धृदि गतोऽत्युग्रस्तीक्ष्णधारः स सायकः ॥२६॥
तेन बाणेन विभ्रान्तो भ्रमच्चितः स राक्षसः ।
पपात कामगोपस्थाद्भूमौ विगतचेतनः ॥२७॥
उग्रदंष्ट्रेण वै दृष्टः पतमानो निजाग्रजः । गृहीत्वा तं विमानान्तर्निनाय रिपुशङ्कितः ॥२८॥
प्राह चारिं महारोषात्पुष्कलं बलिनांवरम् । मद्भ्रातरं पातयित्वा कुत्र यास्यसि दुर्मते ! ॥२९॥
मां वै युधि विनिर्जित्य गन्तासि जयमुत्तमम् ।
स्थिते मयि तव स्वान्ते जयाशा विनिवर्त्यताम्॥३०॥
एवं ब्रुवन्तं तरसा जघान दशभिः शरैः । हृदये तस्य दुष्टस्य रोषपूरितलोचनः ॥३१॥
स ताडितो दशशरैःपुष्कलेन महात्मना । चुक्रोध हृदि दुर्बुद्धिस्तं हन्तुमुपचक्रमे ॥३२॥
दन्तान्निष्पिष्य सक्रोधो मुष्टिमुद्यम्य चाहनत ।
व्यनदद्वज्रनिर्घातपातशङ्कां सृजन्हृदि ॥३३॥
मुष्टिनाभिहतो वीरःपुष्कलःपरमास्त्रवित् । नाकम्पतविनिष्पेषं वाञ्छंस्तस्य दुरात्मनः ॥३४॥
वत्सदन्तानमहातीक्ष्णान्मुमोच हृदि सायकान् ।
तैर्बाणैर्व्यथितो दैत्यस्त्रिशूलं तु समाददे ॥३५॥
जाज्वल्यमानं त्रिशिखं ज्वालामालातिभीषणम् ।
लग्नं हृदि महावीर ! पुष्कलस्य तु दारुणम् ॥३६॥
मूर्च्छितस्तेन शूलेन निहतो धन्विसत्तमः । कश्मलं परमं प्राप्तःपपात स्यन्दनोपरि ॥३७॥
मूर्च्छा प्राप्तं तमाज्ञाय हनूमान्पवनात्मजः । कोपव्याकुलितस्वान्तो बभाषे तं तु राक्षसम् ॥३८॥
कुत्र गच्छसि दुर्बुद्धे मयि योद्धरि संस्थिते । त्वां हन्मि चरणाघातैर्वाजिहर्तारमागतम् ॥३९॥

उसका प्रतिकार करने के लिए विद्युन्माली अपने पराक्रम को धारण करता कि उससे पहले ही वह तीक्ष्ण धार वाला वाण उसके हृदय में लग गया ।।२६।। उस वाण से व्याकुल चित्त वाला वह राक्षस उस कामग विमान के उपस्थ भाग से बेहोश होकर पृथिवी पर गिर पड़ा ।।२७।। उग्रदंष्ट्र ने अपने गिरते हुए बड़े भाई को देखा, उसको पकड़कर वह विमान पर ले गया क्योंकि उसे शत्रु से भय था ।।२८।। उसने क्रोधपूर्वक श्रेष्ठ वलवान् अपने शत्रु पुष्कल से कहा— दुर्मते मेरे भाई को गिराकर तुम कहाँ जाओगे ?।।२९।। तुम मुझको परास्त करके ही विजय प्राप्त कर सकते हो । मेरे रहते तुम विजय की आशा न करो ।।३०।। इस तरह से कहने वाले उस दुष्ट के हृदय में पुष्कल ने क्रोध पूर्वक दश वाणों का प्रहार किया ।।३१।। पुष्कल द्वारा दश वाणों से मारे जाकर वह मूर्ख पुष्कल को मारने का उपक्रम किया ।।३२।। अपने दाँतों को पीसकर क्रोध पूर्वक उसने मुक्का तानकर पुष्कल के हृदय में प्रहार करके व्रज के समान गर्जना किया ।।३३।। मुक्के से मारे गये पुष्कल कँपे नहीं और उन्होंने उस राक्षस को पीस देना चाहा ।।३४।। उन्होंने उसके हृदय में अत्यन्त तीक्ष्ण वत्सदन्त वाणों का प्रहार किया। उन वाणों से व्यथित होकर उस दैत्य ने त्रिशूल उठाया ।।३५।। जलता हुआ वह त्रिशूल ज्वाला समूह से अत्यन्त भयङ्कर हो गया था । वह आकर पुष्कल के हृदय मे लगा ।।३६।। उस त्रिशूल से मारे जाकर धनुर्धर श्रेष्ठ पुष्कल मूर्छित हो गये और रथ पर गिर पड़े ।।३७।। पुष्कल को मूर्छित जानकर पवनपुत्र हनुमानजी अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस राक्षस से कहे ।।३८।। मूर्ख में युद्ध करेन वाला हूँ कहाँ जा रहे हो । तुमको तो अपने चरण प्रहार से मार

एवमुक्त्वा महादैत्याञ्जघान परसैनिकान्। विमानस्थान्नखाग्रेण दारयन्नभसि स्थितः ॥४०॥
लाङ्गूलेनाहताःकेचित्केचित्पादतलाहताः । बाहुभ्यां दारिताःकेचित्पवनस्य तनूभुवा॥४१॥
नश्यन्ति केचिन्निहताःकेचिन्मूर्च्छन्ति संहताः ।
पलायन्तो पदाघातभयपीडाहतास्ततः ॥४२॥
अनेके निहितास्तत्र राक्षसाश्चातिदारुणाः । छिन्ना भिन्ना द्विधा जाताःपवनस्य सुतेन वै ॥४३॥
कामगं तु विमानं तद्भिन्नप्राकारतोरणम्। हाहाकुर्वद्भिरसुरैःसमन्तात्परिवारितम् ॥४४॥
हनूमति महाशूरे क्षणं भूमौ क्षणं दिवि। इतस्ततःप्रदृश्येत कामयानं दुरासदम् ॥४५॥
यत्रयत्र विमानं तत्तत्र तत्र समीरजः । प्रहरन्नेव दृश्येत कामरूपधरःकपिः ॥४६॥
एवं तदाकुलीभूते विमानस्थे महाजने । उग्रदंष्ट्रवस्तु दैत्येन्द्रो हनूमन्तमुपेयिवान् ॥४७॥
कपे ! त्वया महत्कर्म कृतं यद्भटपातनम् । क्षणं तिष्ठसि चेत्कुर्वे तव प्राणवियोजनम्॥४८॥
एवमुक्त्वा हनूमन्तं प्रजघान सदुर्मतिः । त्रिशूलेन सुतीक्ष्णेन ज्वलत्पावककान्तिना॥४९॥
तदागतं त्रिशूलं च मुखे जग्राह वीर्यवान्। चूर्णयामास सकलं सर्वलोहविनिर्मितम् ॥५०॥
चूर्णयित्वा त्रिशूलं तदायसं दैत्यमोचितम्। जघान तं चपेटाभिर्बह्वीभिर्हनुमान्बली ॥५१॥
स आहतःकपीन्द्रेण चपेटाभिरितस्ततः । व्यथितो व्यसृजन्मायां सर्वलोकभयङ्करीम्॥५२॥
तदा तमोऽभवत्तीव्रं यत्र को वा न लक्ष्यते ।
यत्र स्वीयो न पारक्यो विदामास जनान्बहून् ॥५३॥
शिलाःपर्वतशृङ्गाभाःपतन्ति सुभटोपरि। ताभिर्हतास्तु ते सर्वे व्याकुला अथ जज्ञिरे ॥५४॥

दे रहा हूँ। तुमने ही अश्व को चुराया है ॥३९॥ इस तरह से कहकर उन्होंने शत्रु सेना के बड़े-बड़े दैत्यों को मार दिया। आकाश में स्थित होकर उन्होंने उन सबों को अपने नख से चीर दिया ॥४०॥ हनुमानजी ने कुछ को तो अपनी पूंछ से मारा और कुछ को पैर से मारा, कुछ राक्षसों को अपनी दोनों भुजाओं से चिर दिया ॥४१॥ कुछ राक्षस मारे जाकर नष्ट हो गये और कुछ टकरा कर मूर्छित हो गये, वे उनके चरण प्रहार के भय से इधर-उधर भाग रहे थे ॥४२॥ वहाँ पर अनेक भयङ्कर राक्षस मारे गये। उन सबों को हनुमानजी ने अपने नखों से छिन्न-भिन्न कर दिया ॥४३॥ उस कामग विमान का प्रकार और तोरण टूट गया। हाय-हाय करते हुए सभी असुरों ने उसको चारों ओर से घेर लिया ॥४४॥ महावीर हनुमानजी क्षणभर में पृथिवो पर तथा क्षणभर में आकाश में उस कामग विमान को देखते थे। जहाँ-जहाँ विमान रहता था वहाँ-वहाँ हनुमानजी उस पर प्रहार कर रहे थे। उस समय हनुमानजी कामरूप बन गये थे ॥४६॥ इस तरह से उस विमान में स्थित सभी लोगों के व्याकुल होने पर महादैत्य उग्रदंष्ट हनूमानजी के पास आया ॥४७॥ उसने कहा हनुमान वीरों को मारकर आपने बहुत बड़ा काम किया है। यदि क्षणभर रुको तो मैं तुम्हें मार डालता हूँ॥४८॥ इस तरह से कहकर उसने अग्नि की कान्ति के समान देदीप्यमान अत्यन्त तीक्ष्ण त्रिशूल से हनुमानजी पर प्रहार किया ॥४९॥ उस आये हुए त्रिशूल को हनुमानजी ने मुख से पकड़ लिया और पूर्ण रूप से सभी धातुओं से निर्मित उस त्रिशूल को उन्होंने चूर-चूर कर दिया ॥५०॥ दैत्य के द्वारा छोड़े गये त्रिशूल को चूर-चूर करके उन्होंने उसको अनेक थप्पड़ों से मारा॥५१॥ कपीन्द्र के द्वारा चपेटाओं से मारे जाने से पीड़ित उस दैत्य ने माया की सृष्टि की वह अत्यन्त भयङ्कर माया थी ॥५२॥ उस समय भयङ्कर अन्धकार हो गया, कोई भी दिखायी नहीं पड़ता था। वहाँ पर कोई भी अपने

विद्युतोविलसन्त्यश्च गर्जन्ति जलदाघनम्। वर्षन्ति पूयरुधिरं मुञ्चन्ति समलं जलम्॥५५॥
आकाशात्पतमानानि कबन्धानि बहूनि च। दृश्यन्ते छिन्नशिर्षाणि सुकुण्डलयुतानि च ॥५६॥
नग्ना विरूपाःसुभृशं कीर्णकेशाःसुदुर्मुखाः। दृश्यन्ते सर्वतो दैत्या दारुणा भयकारिणः॥५७॥
तदा व्याकुलितालोकाःपरस्परभयाकुलाः। पलायनपरा जाता महोत्पातममंसत ॥५८॥
तदा शत्रुघ्न आयातो रथे स्थित्वा महायशाः ।
श्रीरामस्मरणं कृत्वा चापे सन्धाय सायकान् ॥५९॥
तां मायां स विधूयाथ मोहनास्त्रेण वीर्यवान् ।
शरधाराः किरन्व्योम्नि ववर्ष समरेऽसुरम् ॥६०॥
तदा दिशःप्रसेदुस्ता रविस्त्वपरिवेषवान्। मेघा यथागतं याता विद्युतःशान्तिमागताः ॥६१॥
तदा विमानं पुरतो दृश्यते राक्षसैर्युतम्। छिन्धिभिन्धीति भाषाभिर्व्याकुलं सुतरां महत् ॥६२॥
बाणाश्च शतसाहस्राः स्वर्णपुङ्खैश्च शोभिताः ।
पेतुर्विमाने नभसि स्थिते कामगमे मुहुः ॥६३॥
तदा भग्नं विमानं हि दृश्यते पतदुच्चकैः। स्वपुरी खण्डमेकत्र भग्नाङ्गमिव भूतले ॥६४॥
तदा प्रकुपितो दैत्यो बाणान्धनुषि सन्दधे। तैर्बाणैर्विकिरन्रामभ्रातरं चाभिगर्जितः ॥६५॥
ते बाणाः शतशस्तस्य लग्ना वपुषि भूरिशः ।
शोभामापुः शोणितौघान्वहन्तस्तीक्ष्णवक्त्रिणः ॥६६॥
शत्रुघ्नःपरया शक्त्या संयुक्तो वायुदैवतम्। अस्त्रं धनुषि चाधत्त राक्षसानां प्रकम्पनम्॥६७॥
तेनास्त्रेण विमानात्खात्पतन्तो मुक्त मूर्धजाः। दृश्यन्ते भूतवेतालसङ्घा इव नभश्चराः॥६८॥
तदस्त्रं रघुनाथस्य भ्रात्रा मुक्तं विलोक्य सः ।
अस्त्रं च पाशुपत्यं स चापेऽधाद्दनुजात्मजः ॥६९॥

और पराये को जान नहीं पाता था ॥५३॥ वीरों के ऊपर पर्वत के शिखर के समान शिलाएँ गिरने लगीं। उन सवों से सव व्याकुल हो गये ॥५४॥ बिजलियाँ चमकने लगीं और मेघ गरजने लगे। उनसे पीव तथा मल-मूत्र मिश्रित जल की वर्षा होने लगी ॥५५॥ आकाश से गिरने वाले बहुत से कवन्ध गिरने लगे और कुण्डल से युक्त उनके शिर कटे हुए दिखते थे ॥५६॥ सब ओर भयङ्कर, नङ्गे, विरूप, विखरे हुए केश वाले तथा विरूप मुख वाले दैत्य दिखायी देने लगे ॥५७॥ उस समय परस्पर मे भयभीत सभी लोग व्याकुल हो गये। वे समझे कि बहुत बड़ा उत्पात हो गया और लोग भागने लगे ॥५८॥ उस समय महायशस्वी शत्रुघ्नजी रथ पर बैठकर आये। उन्होंने श्रीरामजी का स्मरण करके धनुष पर बाणों को चढ़ाया ॥५९॥ उन्होंने मोहनास्त्र के द्वारा उस माया को विनष्ट कर दिया। बाणो की आकाश में वर्षा की ॥६०॥ उस समय दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं, सूर्य भी स्वच्छ हो गये। मेघ समाप्त हो गये और बिजलियाँ शान्त हो गयीं ॥६१॥ सामने राक्षसों से युक्त विमान दिखने लगा काटो, मारो, की जोर-जोर से ध्वनि सुनायी पड़ने लगी ॥६२॥ सुवर्ण पुंखों से युक्त लाखों वाण आकाश में कामग विमान पर पड़े ॥६३॥ उस समय भग्न होकर वह विमान गिरने लगा। लगता था कि उसकी नगरी का एक खण्ड पृथिवी पर टूटकर गिर गया हो ॥६४॥ उस समय क्रुद्ध होकर दैत्य ने अपने धनुष पर वाणों का सन्धान करके शत्रुघ्नजी पर प्रहार किया और गर्जना किया ॥६५॥ सैकड़ों वाण शत्रुघ्नजी के शरीर में लगे। रक्त समूह को प्रवाहित करने वाले तीक्ष्ण मुख वाले वे बाण सुशोभित हुए ॥६६॥ शत्रुघ्नजी ने पराशक्ति से सम्पन्न तथा राक्षसों को कँपा देने वाले वायव्यास्त्र का अपने धनुष पर सन्धान किया ॥६७॥ उस अस्त्र के द्वारा खुले हुए केशों वाले भूत वेताल विमान से उसी तरह गिर पड़े जिस तरह आकाश से आकाशचारी गिरते हैं ॥६८॥

ततःप्रवृत्ताः वेताला भूताःप्रेताःनिशाचराः । कपालकर्तरीयुक्ताःपिबन्तःशोणितं बहु ॥७०॥
ते वै शत्रुघ्नवीराणां रुधिराणि पपुर्मुदा। जीवतामपि दुर्वाराःकर्तरी पाणिशोभिताः॥७१॥
तदस्त्रं व्याप्नुवद् दृष्ट्वा सर्ववीरप्रभञ्जनम्। मुमोच तन्निरासाय चास्त्रं नारायणाभिधम्॥७२॥
नारायणास्त्रं तान्सर्वान्वारयामास तत्क्षणात् । ते सर्वे विलयं प्रापुर्निशाचपरप्रणोदिताः ॥७३॥
तदा क्रुद्धो निशाचारी विद्युन्माली समाददे। त्रिशूलं निशितं घोरं शत्रुघ्नं हन्तुमुल्बणम् ॥७४॥
शूलहस्तं समायान्तं विद्युन्मालिनमाहवे। सायकैःप्रहरत्तस्य भुजे त्वर्धशशिप्रभैः॥७५॥
तैर्बाणैश्छिन्नहस्तः स शिरसा हन्तुमुद्यतः। हतोऽसि याहि शत्रुघ्न कस्त्वां त्राता भविष्यति॥७६॥
इति ब्रुवाणं तरसा चिच्छेद शितसायकैः। मस्तकं तस्य बलिनः शूरस्य सहकुण्डलम् ॥७७॥
तं छिन्नशिरसं दृष्टा उग्रदंष्ट्रःप्रतापवान् । मुष्टिनाहन्तुमारेभे शत्रुघ्नं शूरसेवितम्॥७८॥
शत्रुघ्नस्तु क्षुरप्रेण सायकेनाच्छिनच्छिरः। प्रधावतो रणे वीरान्सर्वशस्त्रास्त्रकोविदान् ॥७९॥
हतशेषा ययुःसर्वे राक्षसा नाथवर्जिताः । शत्रुघ्नं प्रणिपत्याथ ददुर्वाजिनमाहृतम् ॥८०॥
ततो वीणानिनादाश्च शङ्खनादाःसमन्ततः। श्रूयन्ते शूरवीराणां जयनादा मनोहराः ॥८१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
विद्यन्मालिराक्षसपराजयो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

* * *

शत्रुघ्नजी के द्वारा छोड़े गये उस अस्त्र को देखकर उस दानव ने अपने धनुष पर पाशुपतास्त्र का सन्धान किया॥६९॥ उससे उत्पन्न भूत, वेताल प्रेत तथा राक्षस अपने हाथ में कपालकर्तरी लेकर वहुत अधिक रक्त का पान करते हुए दिखने लगे ॥७०॥ वे अपने हाथ में कर्तरी (छूरी) लिए थे । वे शत्रुघ्नजी के जीवित वीरों का भी खून पीने लगे । वे रोकने पर भी नहीं रुकते थे ॥७१॥ सभी वीरों को भगा देने वाले उस अस्त्र को व्याप्त होते देखकर शत्रुघ्नजी ने उस अस्त्र को विनष्ट करने के लिए नारायणास्त्र का प्रयोग किया ॥७२॥ नारायणास्त्र ने उसी क्षण उन सबों को रोक दिया और राक्षस के द्वारा प्रेरित वे भूत प्रेत विनष्ट हो गये ॥७३॥ उससे क्रुद्ध होकर विद्युन्माली ने शत्रुघ्नजी को मारने के लिए तीक्ष्ण तथा भयङ्कर त्रिशूल उठाया ॥७४॥ त्रिशूल लेकर आते हुए उसे देखकर शत्रुघ्नजी ने उसकी भुजाओं पर अर्ध चन्द्रमा के समान कान्ति वाले बाणों से प्रहार किया॥७५॥ उन बाण से हाथ के कट जाने से उसने अपने शिर से उन्हें मारना चाहा । उसने कहा— शत्रुघ्न तुम अव मरे! तुमको कोई भी नहीं बचा सकता है ॥७६॥ इस तरह से कहने वाले विद्युन्माली के शिर को शत्रुघ्नजी ने वेगपूर्वक काट दिया । उसका शिर कुण्डल से युक्त था ॥७७॥ विद्युन्माली को मरे हुए देखकर उग्रदंष्ट ने वीरों से सेवित शत्रुघ्नजी को मुक्के से मारना प्रारम्भ किया ॥७८॥ शत्रुघ्नजी ने क्षुरप्र बाणों से युद्ध में दौड़ने वाले तथा सभी शस्त्रास्त्रों को जानने वाले वीरों के शिरों को काट दिया ॥७९॥ मृत्यु से बचे हुए वीर अनाथ होकर भाग गये और शत्रुघ्नजी को प्रणाम करके चुराये गये अश्व को दे दिए ॥८०॥ उसके बाद सर्वत्र वीरगण वीणा तथा शङ्ख की ध्वनि करते हुए जय-जयकार करने लगे ॥८१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवे पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में विद्युन्माली राक्षस के पराजय वर्णन नामक चौंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३४।।

* * *

पैंतीसवाँ अध्याय

शेष उवाच

प्राप्य तं वाजिनं राजा शत्रुघ्नो राक्षसैर्हृतम् ।
अत्यन्तं हर्षमापेदे पुष्कलेन समन्वितः ॥१॥
रुधिरैःसिक्तगात्रास्ते योधा लक्ष्मीनिधिस्तथा ।
रणोत्साहेन संयुक्तं प्रशशंसुर्महानृपम् ॥२॥
हते तस्मिन्महादैत्ये विद्युन्मालिनि दुर्जये। सुराःसर्वे भयं त्यक्त्वा सुखमापुर्मुने महत् ॥३॥
नद्यस्तु विमला जाता रविस्तु विमलोऽभवत् ।
वाता ववुः सुगन्धोदसिक्ता विमलशुष्मिणः ॥४॥
सन्नद्धास्ते महावीरा रथस्था विमलाङ्गकाः। राजानमूचुस्ते सर्वे जयलक्ष्म्या समन्विताः ॥५॥

वीरा ऊचुः

दिष्ट्या हतस्त्वया दैत्यो विद्युन्माली महामते ! ।
यद्भयात्त्रासमापन्नाः सुराः स्वर्गान्निराकृताः ॥६॥
दिष्ट्या प्राप्तो महावाजी रघुनाथस्य शोभनः ।
दिष्ट्या गन्तासि सर्वत्र जयं तु क्षितिमण्डले ॥७॥
स्वामिन्मुञ्चत्विमं वाहं मनोवेगं मनोरमम् । समयस्य विलम्बो मा भवत्वत्र महामते ॥८॥

शेष उवाच

इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं वीराणां समयोचितम् ।
साधु साधु प्रशस्यैतान्मुमोच हयसत्तमम् ॥९॥
स मुक्तश्चोत्तरामाशां बभ्रामाथ सुरक्षितः । रथपत्तिहयश्रेष्ठैः सर्वशस्त्रास्त्रकोविदैः ॥१०॥

अश्व का रेवातट आरण्यकाश्रम में जाना और लोमशरण्यक संवाद

शेषजी ने कहा— राक्षसों द्वारा चुराये गये यज्ञाश्व को प्राप्त करके श्रीशत्रुघ्नजी पुष्कल के साथ अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव किए ॥१॥ जिनके शरीर रक्त से भीग गये थे वे योधा तथा लक्ष्मीनिधि ये सबके सब युद्ध के उत्साह से युक्त शत्रुघ्नजी की प्रशंसा किए ॥२॥ हे मुने ! दुर्जय विद्युन्माली नामक उस महादैत्य के मारे जाने पर सभी देवता भयमुक्त होकर सुखी हो गये ॥३॥ नदियाँ स्वच्छ हो गयीं, सूर्य विमल हो गये, स्वच्छ सुगन्धि से युक्त सुगन्धित जल की शीतलता लिए हुए हवा बहने लगी ॥४॥ चलने के लिए तैयार शुद्ध अङ्गों वाले तथा विजयलक्ष्मी से युक्त वे वीर रथ पर बैठकर राजा शत्रुघ्नजी से कहे ॥५॥ **वीरों ने कहा**— हे महामते ! सौभाग्यवशात् आपने विद्युन्माली का वध किया है । स्वर्ग से निकाले गये देवता उसके भय से भयभीत रहते थे ॥६॥ भाग्यवशात् भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का सुन्दर महाअश्व प्राप्त हो गया । आप सौभाग्यवशात् सम्पूर्ण भूमण्डल पर विजय प्राप्त करने वाले हैं ॥७॥ हे स्वामिन् ! आप मन के समान वेग वाले इस मनोहर अश्व को छोड़ें । हे महामते ! यहाँ पर समय का विलम्ब नहीं होना चाहिए ॥८॥ **शेषजी ने कहा**— इस तरह के वीरों की समयोचित वाणी को सुनकर शत्रुघ्नजी ने बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा ! कहकर उस श्रेष्ठ अश्व को छोड़

तत्र यद्वृत्तमेतस्य शत्रुघ्नस्य मनोहरम्। वात्स्यायन ! शृणुष्वैतत्पापराशिप्रदाहकम् ॥११॥
रेवातीरमथप्राप्तो मुनिवृन्दनिषेवितम् । नीलरत्नसमूहस्य रसःकिं तु पयोमिषात् ॥१२॥
तांस्तान्मुनिवरान्सर्वान्प्रणमञ्छूरसेवितः । जगाम हयरत्नस्य पृष्ठतःकामगामिनः ॥१३॥
गच्छंस्तत्राश्रमं जीर्णं पलाशपर्णनिर्मितम्। रेवायाजलकल्लोलैःसिक्तं पापहराश्रयम् ॥१४॥
तं दृष्ट्वा सुमतिं प्राह सर्वज्ञं नयकोविदम् । शत्रुघ्नः सर्वधर्मार्थकर्मकर्तव्यकोविदः ॥१५॥

राजोवाच

मन्त्रिन्कथय कस्यायमाश्रमःपुण्यदर्शनः । विचारचतुरश्रेष्ठ वदैतन्मम पृच्छतः ॥१६॥

शेष उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य सुमतिःप्राह तं नृपम् ।
विशदस्मेरया वाचा दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥१७॥

सुमतिरुवाच

एनं दृष्ट्वा महाराज ! धूतपापा वयं खलु ।
भविष्यामो मुनिश्रेष्ठं सर्वशास्त्रपरायणम् ॥१८॥

तस्मान्नत्वा तमापृच्छ सर्वं ते कथयिष्यति । रघुनाथपदाम्भोजमकरन्दातिलोलुपः ॥१९॥
नाम्नात्वारण्यकंख्यातं रघुनाथाङ्घ्रिसेवकम् । अत्युग्रतपसा पूर्णं सर्वशास्त्रार्थकोविदम् ॥२०॥
इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं धर्मार्थपरिबृंहितम्। जगाम तमथोद्रष्टुं स्वल्पसेवकसंयुतः॥२१॥
हनूमान्पुष्कलो वीरःसुमतिर्मन्त्रिसत्तमः । लक्ष्मीनिधिःप्रतापाग्र्यःसुबाहुःसुमदस्तथा ॥२२॥
एतैःपरिवृतो राजा शत्रुघ्नःप्रापदाश्रमम् । नमस्कर्तुं द्विजवरमारण्यकमुदारधीः ॥२३॥

दिया॥९॥ उसमें भी शत्रुघ्न का जो मनोहर वृत्तान्त है, हे वात्स्यायन ! आप उसे सुनें। वह पाप समूह को विनष्ट करने वाला है ॥१०-११॥ उसके पश्चात् वह अश्व रेवा नदी के मुनि समूह से सुशेभित तट पर आया। वहाँ का जल मानो नीलरत्न का रस हो ॥१२॥ वीरों से सुसेवित शत्रुघ्नजी विभिन्न मुनिश्रेष्ठों को प्रणाम करते हुए, उस स्वेच्छया चलने वाले अश्व रत्न के पीछे जा रहे थे ॥१३॥ जाते हुए वे पलाश के पत्ते से निर्मित रेवानदी की लहरियों से सिक्त तथा पाप समूह के विनाशक आश्रम को देखकर नीतियों के जानकार तथा सर्वज्ञ सुमति से समस्त धर्म, अर्थ तथा कर्त्तव्यों के ज्ञाता शत्रुघ्नजी ने पूछा ॥१४-१५॥ **राजा शत्रुघ्न ने कहा—** हे विचार करने में चतुर मन्त्रिन् ! मैं जो पूछ रहा हूँ उसे आप बतलाएँ; यह किसका आश्रम है ?॥१६॥ **शेषजी ने कहा—** इस वाक्य को सुनकर सुमति ने राजा शत्रुघ्न से विशद मुसुकान के द्वारा अपने सौहार्द को अभिव्यक्त करते हुए कहा ॥१७॥ **सुमति ने कहा—** महाराज ! इन मुनिश्रेष्ठ का दर्शन करके हमलोग निष्पाप हो जायेंगे। ये मुनि सभी शास्त्रों के ज्ञाता हैं ॥१८॥ अतएव आप इनको नमस्कार करके इनसे पूछें; ये आपको सब कुछ बतलायेंगे। ये भगवान् श्रीराम के चरण कमलों के मकरन्द के लोलुप भ्रमर (भगवद्भक्त) हैं ॥१९॥ इनका नाम आरण्यक है। ये श्रीरामजी के चरणों के सेवक हैं, सभी शास्त्रों के ज्ञाता तथा उग्र तपस्वी हैं ॥२०॥ सुमति के धार्मिक अर्थों से युक्त वाक्य को सुनकर शत्रुघ्नजी बहुत थोड़े सेवकों के साथ उनका दर्शन करने के लिए गये ॥२१॥ उनके साथ हनुगान्जी, पुष्कल, मन्त्रिश्रेष्ठ सुमति, लक्ष्मीनिधि, प्रतापाग्र्य, सुबाहु तथा सुमद थे ॥२२॥ राजा शत्रुघ्न इन सबों के साथ आश्रम में उदार बुद्धि वाले शत्रुघ्नजी आरण्यक नामक द्विजश्रेष्ठ को प्रणाम करने के लिए

गत्वा तं तापसश्रेष्ठं नमस्कारमथाकरोत् । सर्वैस्तैःसहितो वीरैर्विनयानतकन्धरैः ॥२४॥
तान्दृष्ट्वा सन्नतान्सर्वाञ्छत्रुघ्नप्रमुखान्नृपान्। अर्घ्यपाद्यादिकं चक्रे फलमूलादिभिस्तदा ॥२५॥
उवाच तान्नृपान्सर्वान्भवन्तःकुत्र सङ्गताः । कथमत्र समायातास्तत्सर्वं वदतानघाः ॥२६॥
तच्छुत्वा वाक्यमेतस्य मुनिवर्यस्य वाडव !। सुमतिःकथयामास वाक्यवादविचक्षणः ॥२७॥

सुमतिरुवाच

रघुवंशनृपस्यायमश्वो वै पाल्यतेऽखिलैः । यागं करिष्यते वीरःसर्वसम्भारसम्भृतम् ॥२८॥
तच्छुत्वा वचनं तेषां जगाद मुनिसत्तमः । दन्तकान्त्याऽखिलं घोरं तमोनिर्वारयन्निव ॥२९॥

आरण्यक उवाच

किं यागैर्विविधैरन्यैःसर्वसम्भारसम्भृतैः । स्वल्पपुण्यप्रदैर्नूनं क्षयिष्णुपददातृभिः ॥३०॥
मूढो लोको हरिं त्यक्त्वा करोत्यन्यसमर्चनम् ।
रघुवीरं रमानाथं स्थिरैश्वर्यपदप्रदम् ॥३१॥
यो नरैः स्मृतमात्रोऽपि हरते पापपर्वतम् ।
तं मुक्त्वा क्लिश्यते मूढो यागयोग व्रतादिभिः ॥३२॥
अहो पश्यत मूढत्वं लोकानामतिवञ्चितम्। सुलभं रामभजनं मुक्त्वा दुर्लभमाचरेत्॥३३॥
सकामैर्योगिभिर्वापि चिन्त्यते कामवर्जितैः । अपवर्गप्रदं नृणां स्मृतमात्राखिलाघहम् ॥३४॥
पुराऽहं तत्त्ववित्सायां ज्ञानिनं सुविचारयन् । अगमं बहुतीर्थानि तत्त्वं कोऽपि न मेऽदिशत्॥३५॥
तदैकं हि महाभाग्यात्प्राप्तं वै लोमशं मुनिम् ।
स्वर्गलोकात्समायातं तीर्थयात्रा चिकीर्षया ॥३६॥

गये॥२३॥ नम्रता पूर्वक अपना कन्धा झुकाये हुए इन वीरों के साथ जाकर उन श्रेष्ठ तपस्वी को उन्होंने नमस्कार किया ॥२४॥ शत्रुघ्न आदि विनयावनत वीरों को देखकर मुनि ने फल-मूल इत्यादि से उन लोगों का अर्घ्य पाद्य इत्यादि प्रदान किया ॥२५॥ उन्होंने उन लोगों से पूछा— आपलोग कहाँ से आये हैं ? यहाँ कैसे आये ? इन सारी बातों को आपलोग बतलायें ॥२६॥ हे ब्राह्मण ! मुनिवर्य के इस वाक्य को सुनकर बोलने में निपुण सुमति ने कहा ॥२७॥ **सुमति ने कहा**— सभी प्रकार की सामग्रियों को एकत्रित करके श्रीरामचन्द्रजी अश्वमेध याग करने वाले हैं । उनके ही अश्व की रक्षा ये सब लोग कर रहे हैं ॥२८॥ उनलोगो की इस वाणी को सुनकर अपने दाँतों की कान्ति से अन्धकार को दूर करते हुए मुनिश्रेष्ठ ने कहा ॥२९॥ **आरण्यक ने कहा**— सभी सामग्रियों से परिपूर्ण दूसरे यागों को करने से कौन सा लाभ है ? ये याग तो अल्पत्प पुण्य प्रदान करने वाले तथा क्षयिष्णु पद प्रदान करने वाले हैं ॥३०॥ अज्ञानी संसारी लोग श्रीहरि को छोड़कर दूसरे देवता की पूजा करते हैं । लक्ष्मीपति श्रीराम तो स्थिर ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं ॥३१॥ मनुष्यों के द्वारा स्मरण करने मात्र से ही वे उसके पाप रूपी पर्वत को विनष्ट कर देते हैं । उनको छोड़कर अज्ञानी जीव यज्ञ, योग तथा व्रत इत्यादि करने का क्लेश उठाता है ॥३२॥ देखिये अज्ञान ने संसारी जीवों को किस प्रकार ठगा है । उसी के कारण मनुष्य सुलभ श्रीरामचन्द्रजी के भजन को त्यागकर दुर्लभ साधनो को अपनाता है । कामना युक्त अथवा निष्काम रूप से योगियों के द्वारा चिन्तन किए जाने मात्र से श्रीरामचन्द्रजी सभी पापों को विनष्ट करके उन्हें मुक्ति प्रदान कर देते हैं ॥३३-३४॥ प्राचीन काल में मैं तत्त्वज्ञान की इच्छा से ज्ञानी पुरुष का अन्वेषण करते हुए अनेक तीर्थों में गया किन्तु किसी

तमहं प्रणिपत्याथ पर्यपृच्छं महामुनिम्। महायुषं महायोगिसंसेवितपदद्वयम्॥३७॥
स्वामिन्मयाद्य मानुष्यं प्राप्तमद्भुतदुर्ल्लभम्। संसारघोरजलधिं किं कर्तव्यं तितीर्षुणा॥३८॥
विचार्य कथयत्वं तद्व्रतं दानं जपोमखः। देवो वा विद्यते यो वै संसृत्यम्भोधितारकः॥३९॥
यज्ज्ञात्वा संसृतिं घोरां तरामि त्वत्कृपाब्धितः।
तन्मे कथय योगेश ! सर्वशास्त्रार्थपारग ! ॥४०॥
इति मद्वाक्यमाकर्ण्य जगाद मुनिसत्तमः। शृणुष्वैकमना विप्र ! श्रद्धया परया युतः॥४१॥
सन्ति दानानि तीर्थानि व्रतानि नियमा यमाः।
योगा यज्ञास्तथाऽनेके वर्तन्ते स्वर्गदायकाः॥४२॥
परंगुह्यं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम्। तच्छृणुष्व महाभाग संसाराम्भोधितारकम्॥४३॥
नास्तिकाय न वक्तव्यं न चाऽश्रद्धालवे पुनः।
निन्दकाय शठायापि न देयं भक्तिवैरिणे॥४४॥
रामभक्ताय शान्ताय कामक्रोधवियोगिने। वक्तव्यं सर्वदुःखस्य नाशकारकमुत्तमम्॥४५॥
रामान्नास्ति परो देवो रामान्नास्ति परं व्रतम्।
न हि रामात्परोयोगो न हि रामात्परोमखः॥४६॥
तं स्मृत्वा चैव जप्त्वा च पूजयित्वा नरःपरम्।
प्राप्नोति परमामृद्धिमैहिकामुष्मिकीं तथा॥४७॥
संस्मृतो मनसाध्यातः सर्वकामफलप्रदः। ददाति परमां भक्तिं संसाराम्भोधितारिणीम्॥४८॥

ने मुझे तत्त्वोपदेश नहीं किया ॥३५॥ उस समय सौभाग्यवशात् मुझे लोमश मुनि का दर्शन हुआ। वे तीर्थों की यात्रा करने की इच्छा से स्वर्गलोक से आये थे ॥३६॥ उनके चरणों की सेवा महायोगिजन कर रहे थे। उनकी आयु वहुत वड़ी थी। उन महामुनि को प्रणाम करके मैंने उनसे पूछा ॥३७॥ मैंने अत्यन्त दुर्लभ मनुष्यत्व को प्राप्त किया है। इस भयङ्कर संसार सागर को पार करने की इच्छा वाले को क्या करना चाहिए ॥३८॥ आप विचार करके उस व्रत, दान, जप अथवा यज्ञ को बतलाएँ, अथवा जो कोई देवता हों जो संसार सागर से उद्धार करते हों उन्हें कहें ?॥३९॥ आप कृपा सागर हैं आप से ही मैं उस साधन को जानकर घोर संसार को पार करूँगा। हे सभी शास्त्रार्थों के ज्ञाता, हे योगेश ! आप मुझे उसको बतलायें ॥४०॥ इस तरह के मेरे वाक्य को सुनकर मुनिश्रेष्ठ ने कहा— हे अत्यन्त श्रद्धा सम्पन्न विप्र ! आप सावधानी पूर्वक सुनें ॥४१॥ दान, व्रत, तीर्थ, यम, नियम, योग तथा यज्ञ आदि अनेक साधन हैं। इन सबों से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥४२॥ मैं आपको अत्यन्त रहस्यमय तथा समस्त पापों का विनाश करने वाले साधन को बतलाता हूँ उसे आप सुनें। वह संसार सागर से पार करने वाला है ॥४३॥ इसे नास्तिक या श्रद्धाहीन, या निन्दक या भक्ति के वैरी तथा शठ व्यक्ति को नहीं वतलाना चाहिए ॥४४॥ रामभक्त, शान्त, काम तथा क्रोध से रहित व्यक्ति को ही इसे बतलाना चाहिए, यह समस्त दुःखों का उतम नाशक है ॥४५॥ राम से बड़ा कोई देवता नहीं हैं, राम से बढ़कर कोई व्रत नहीं है, श्रीराम से श्रेष्ठ कोई योग नहीं हैं एवं राम से बढ़कर कोई भी यज्ञ नहीं हैं ॥४६॥ मनुष्य श्रीभगवान् राम का स्मरण करके, उनके मन्त्र का जप करके तथा उनकी पूजा करके सर्वोत्कृष्ट लौकिक तथा पारलौकिक समृद्धि को प्राप्त करता है ॥४७॥ स्मरण करने से तथा मन से ध्यान करने से सम्पूर्ण अभिप्रेत फल प्रदान करने वाले

श्वपाकोऽपि हि संस्मृत्य रामं याति परां गतिम् ।
ये वेदशास्त्रनिरतास्त्वादृशास्तत्र किं पुनः ॥४९॥
सर्वेषां वेदशास्त्राणां रहस्यं ते प्रकाशितम् । समाचार तथा त्वं वै यथा स्यात्ते मनीषितम् ॥५०॥
एको देवो रामचन्द्रो व्रतमेकं तदर्चनम् । मन्त्रोऽप्येकश्च तन्नाम शास्त्रं तद्ध्येव तत्स्तुतिः ॥५१॥
तस्मात्सर्वात्मना रामचन्द्रं भज मनोहरम् । यथा गोष्पदवत्तुच्छो भवेत्संसारसागरः ॥५२॥
श्रुत्वाऽहं तु मुनेर्वाक्यं पुनःप्रश्नमकारिषम् । कथं वा ध्यायते देवःकथं वा पूज्यते नरैः ॥५३॥
कथयस्व महाबुद्धे ! सर्वज्ञ ! मम विस्तरात् ।
यज्ज्ञात्वाऽहं कृतार्थः स्यां त्रिलोक्यां मुनिसत्तम ! ॥५४॥
एतच्छ्रुत्वा तु मद्वाक्यं विचार्य स तु लोमशः ।
कथयामास मे सर्वं रामध्यानपुरःसरम् ॥५५॥
शृणु विप्रेन्द्र वक्ष्यामि यत्पृष्टं तु त्वयाऽनघ ।
यथा तुष्येद्रमानाथः संसारज्वरदाहकः ॥५६॥
अयोध्यानगरे रम्ये चित्रमण्डपशोभिते । ध्यायेत्कल्पतरोर्मूले सर्वकामसमृद्धिदे ॥५७॥
महामरकतस्वर्णनीलरत्नादिशोभितम् । सिंहासनं चित्तहरं कान्त्या तामिस्रनाशनम् ॥५८॥
तस्योपरि समासीनं रघुराजं मनोरमम् । दूर्वादलश्यामतनुं देवदेवेन्द्रपूजितम् ॥५९॥
राकायां पूर्णशीतांशुकान्तिधिक्कारि वक्त्रिणम् ।
अष्टमी चन्द्रशकलसमभालाधिधारिणम् ॥६०॥
नीलकुन्तलशोभाढ्यंकिरीटमणिरञ्जितम् । मकराकारसौन्दर्यकुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥६१॥

भगवान् राम संसार सागर से पार करने वाली परभा भक्ति को प्रदान करते हैं ॥४८॥ चाण्डाल भी भगवान् राम का स्मरण करके मुक्ति को प्राप्त कर लेता है और तुम्हारे (आरण्यक) जैसे वेदशास्त्र में संलग्न रहने वाले मनुष्यों के विषय में क्या कहना है ?॥४९॥ मैंने तुम्हें सम्पूर्ण वेदशास्त्रों के रहस्य को बतलाया । अब तुम जैसा चाहो वैसा आचरण करो ॥५०॥ केवल श्रीरामचन्द्र ही सबसे बड़े देवता हैं, उनकी अर्चना करना सबसे बड़ा व्रत है। उनका नाम जप ही सबसे बड़ा मन्त्र है तथा उनकी स्तुति करना ही सबसे बड़ा शास्त्र है ॥५१॥ अतएव तुम पूर्णरूप से मनोहर श्रीरामचन्द्र का भजन करो । ऐसा करने से तुम्हारे लिए यह संसार सागर गौ के खुर के समान तुच्छ हो जायेगा ॥५२॥ मुनि के वाक्य को सुनकर मैंनें फिर प्रश्न किया भगवान् श्रीरामचन्द्र का ध्यान तथा उनकी पूजा कैसे करनी चाहिए ॥५३॥ हे सर्वज्ञ ! महाबुद्धे ! इन बातों को आप मुझे विस्तार से बतलाइये । हे मुनिश्रेष्ठ ! उसे जानकर मैं त्रैलोक्य में कृतार्थ हो जाऊँ ॥५४॥ मेरे इस वाक्य को सुनकर मुनि लोमश ने विचार करके श्रीरामचन्द्रजी के ध्यान विषयक सारी बातों को मुझे बतलाया ॥५५॥ हे अनघ विप्रेन्द्र ! आपने जो पूछा है, उसे मैं बतलाता हूँ सुनो कि संसार रूपी ज्वर को विनष्ट करने वाले श्रीरामचन्द्रजी कैसे प्रसन्न होते हैं ॥५६॥ अयोध्यानगर में मनोहर चित्रमण्डप में सम्पूर्ण कामनाओं को समृद्ध करने वाले कल्पवृक्ष के मूल में श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान करना चाहिए कि ॥५७॥ महामरकत मणि तथा सुवर्ण एवं नील रत्न से अलंकृत, अपनी कान्ति से अन्धकार को विनष्ट करने वाला मनोहर सिंहासन है ॥५८॥ उस पर मनोहर रघुराज श्रीराम विराजमान हैं । उनका शरीर दुर्वा दल के समान श्यामवर्ण का है । उनकी पूजा देवता और इन्द्र करते हैं ॥५९॥ उनका मुख पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रमा की होने वाली कान्ति से अधिक सुन्दर है । उनका ललाट अष्टमी के चन्द्रमा के समान सुन्दर है ॥६०॥ उनके केश घुंघराले और काले हैं, उनका किरीट मणियों से सुशोभित है वे

विद्रुमच्छविसत्कान्तिरदच्छदविराजितम् । तारापतिकराकारद्विजराजिसुशोभितम् ॥६२॥
जपापुष्पाभयामाध्व्या जिह्वया शोभिताननम् ।
यस्यां वसन्ति निगमा ऋगाद्याः शास्त्रसंयुताः ॥६३॥
कम्बुकान्तिधरग्रीवा शोभया समलङ्कृतम् ।
सिंहवदुच्चकौ स्कन्धो मांसलौ बिभ्रतं वरम् ॥६४॥
बाहूदधानं दीर्घाङ्गौ केयूरकटकाङ्कितौ । मुद्रिकाहीरशोभाभिर्भूषितौ जानुलम्बिनौ ॥६५॥
वक्षोदधानं विपुलं लक्ष्मीवासेन शोभितम् । श्रीवत्सादिविचित्राङ्कैरङ्कितं सुमनोहरम् !॥६६॥
महोदरं महानाभिं शुभकट्या विराजितम् । काञ्च्या वै मणिमत्या च विशेषेण श्रियान्वितम्॥६७॥
ऊरुभ्यां विमलाभ्यां वै जानुभ्यां शोभितं श्रिया ।
चरणाभ्यां वज्ररेखा यवाङ्कुशसुरेखया ॥६८॥
युताभ्यां योगिध्येयाभ्यां कोमलाभ्यां विराजितम् ।
ध्यात्वा स्मृत्वा च संसारसागरं त्वं तरिष्यसि ॥६९॥
तमेव पूजयन्नित्यं चन्दनादिभिरिच्छया । प्राप्नोति परमामृद्धिमैहिकामुष्मिकीं पराम्॥७०॥
त्वया पृष्टं महाराज ! रामस्य ध्यानमुत्तमम् ।
तत्ते कथितमेतद्वै संसारजलधिं तर ॥७१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे आरण्यकोपाख्याने
लोमशारण्यकसंवादो नाम पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३५॥

* * *

मकराकृति कुण्डल से सुशोभित हैं ॥६१॥ उनके ओष्ठ मूंगे के समान लाल-लाल हैं, उनकी दन्तपंक्ति चन्द्रमा की कान्ति के समान सुशोभित होती है ॥६२॥ उनका मुख जपा पुष्प के समान मधुर जिह्वा से सुशोभित है । उसमे ऋग्वेद आदि शास्त्रों से युक्त वेद निवास करते हैं ॥६३॥ शङ्ख के समान शोभा से सम्पन्न उनकी ग्रीवा है । उनके दोनों कन्धे सिंह के कन्धे के समान उठे हुए और मांसल हैं ॥६४॥ केयूर तथा कटक से अलंकृत उनकी दोनों भुजाएँ लम्बी हैं, वे हीरों की नग वाली मुद्रिकाओं से सुशोभित अङ्गुलियों वाले हैं ॥६५॥ श्रीवत्सचिह्न से सुशोभित उनका वक्षःस्थल चौड़ा है । वह श्रीवत्स आदि विचित्र लक्षणों से लक्षित हैं ॥६६॥ उनकी सुन्दर महानभि सुन्दर क्रम से सुशोभित हैं तथा वह मणि निर्मित करधनी से विशेष रूप से सुशोभित हैं॥६७॥ विशद दोनों जंघाओं और घुटनों से सुशोभित उनके दोनों पैर वज्र की रेखा, यव तथा अङ्कुश की रेखा से सुशोभित हैं ॥६८॥ उनके वे दोनों पैर अत्यन्त कोमल तथा योगिध्येय हैं । इस तरह से स्मरण करके तथा ध्यान करके तुम संसार सागर को पार कर जाओगे ॥६९॥ उनका ही ध्यान करते हुए तथा चन्दन आदि से उनका पूजन करके मनुष्य लौकिक तथा पारलौकिक परमा ऋद्धि को प्राप्त कर लेता है ॥७०॥ हे महाराज ! आपने श्रीराम का ध्यान पूछा था उसको मैंने आपको बतला दिया । इससे आप संसार सागर को पार कर जायँ ॥७१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में आरण्यकोपाख्यानान्तर्गत लोमश आरण्यक संवाद वर्णन नामक पैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३५।।

* * *

छत्तीसवाँ अध्याय

शेष उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु विप्रेन्द्रो लोमशात्परमं महत् । पुनःप्रपच्छ तमृषिं सर्वज्ञं योगिनां वरम् ॥१॥

आरण्यक उवाच

मुनिश्रेष्ठ ! वदैतन्मे पृच्छामि त्वां महामते। गुरवःकृपया युक्ता भाषन्ते सेवकेऽखिलम्॥२॥

कोऽसौ रामो महाभाग ! यो नित्यं ध्यायते त्वया ।
तस्य कानि चरित्राणि वदस्व त्वं द्विजर्षभ ! ॥३॥

किमर्थमवतीर्णोऽसौ कस्मान्मानुषतां गतः । तत्सर्वं कथयाशु त्वं मम संशयनुत्तये ॥४॥

शेष उवाच

इतिवाक्यं समाकर्ण्य मुनेःपरमशोभनम् । लोमशः कथयामास रामचारित्रमद्भुतम् ॥५॥
लोकान्निरयसंमग्नाञ्ज्ञात्वा योगेश्वरेश्वरः। कीर्तिं प्रथयितुं लोके यया घोरं तरिष्यति ॥६॥
एवं ज्ञात्वा दयावार्धिःपरमेशो मनोहरः। अवतारं चकारात्र चतुर्धा सश्रियान्वितः ॥७॥
पुरा त्रेतायुगे प्राप्ते पूर्णांशो रघुनन्दनः । सूर्यवंशे समुत्पन्नो रामो राजीवलोचनः ॥८॥
सरामो लक्ष्मणसखःकाकपक्षधरो युवा। तातस्य वचनात्तौ तु विश्वामित्रमनुव्रतौ ॥९॥
यज्ञसंरक्षणार्थाय राज्ञा दत्तौ कुमारकौ। दान्तौ धनुर्धरौ वीरौ विश्वामित्रमनुव्रतौ॥१०॥
पथि प्रव्रजतोस्तत्र ताटका नाम राक्षसी। सङ्गता च वने घोरे तयोर्वै विघ्नकारणात्॥११॥
ऋषेरनुज्ञया रामस्ताटकां यमयातनाम् । प्रावेशयद्धनुर्वेदविद्याभ्यासेन राघवः॥१२॥

लोमशमहर्षि द्वारा समय निर्देश पूर्वक वर्णित श्रीरामचरित का आरण्यक मुनि द्वारा वर्णन

शेषजी ने कहा— महर्षि लोमश से इस श्रेष्ठ कथानक को सुनकर उस विप्रेन्द्र ने सर्वज्ञ महर्षि लोमश से पुनः पूछा ॥१॥ **आरण्यक ने कहा**— हे मुनिश्रेष्ठ ! आपसे मैं पूछ रहा हूँ, इसे आप बतलायें क्योंकि गुरुजन कृपा युक्त होते हैं और अपने सेवक को सारी बातें बतलाते हैं ॥२॥ हे महाभाग ! श्रीरामचन्द्रजी कौन हैं ?, जिनका आप नित्य ध्यान करते हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! बतलायें कि उनके चरित्र कौन हैं ?॥३॥ उनके अवतार का प्रयोजन क्या है ? वे मनुष्य क्यों हो गये ? इन सारी बातों को आप मुझे बतलायें जिससे कि मेरा सन्देह दूर हो जाय ॥४॥ **शेषजी ने कहा**— इस तरह से मुनि के अत्यन्त सुन्दर वाक्य को सुनकर लोमश महर्षि ने भगवान् राम के उत्तम चरित्र को बतलाया ॥५॥ लोकों को नरक में डूबे हुए देखकर योगेश्वरेश्वर श्रीहरि संसार में आते हैं जिसके द्वारा संसार को जीव पार कर जाता है, अपने उस यश का विस्तार करने के लिए दया सागर, परमेश श्रीहरि चार रूपों में अवतार ग्रहण किए ॥६-७॥ प्राचीन काल में त्रेतायुग के आने पर रघुनन्दन श्रीराम अपने पूर्ण अंश से रघुवंश में अवतीर्ण हुए ॥८॥ अपने पिता की आज्ञा के अनुसार श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी के साथ महर्षि विश्वामित्र का अनुगमन किए ॥९॥ महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने के लिए महाराज दशरथ ने राम और लक्ष्मण को दे दिया था । वे दोनों वीर दमगुण सम्पन्न धनुष धारण करने वाले, महर्षि विश्वामित्र के अनुचर हो गये ॥१०॥ वहाँ जाते हुए रास्ते में ताटका नाम की राक्षसी उन दोनों का नाश करने के लिए भयङ्कर वन में मिली ॥११॥ धनुर्वेद विद्या के अभ्यास वाले श्रीरामचन्द्र ने उसको महर्षि की आज्ञा प्राप्त करके मार

यस्य पादतलस्पर्शाच्छिला वासवयोगजा । अहल्या गौतमवधू पुनर्जाता स्वरूपिणी॥१३॥
विश्वामित्रस्य यज्ञे तु सुप्रवृत्ते रघूत्तमः । मारीचं च सुबाहुं च जघान परमेषुभिः॥१४॥
ईश्वरस्य धनुर्भग्नं जनकस्य गृहेस्थितम् । रामःपञ्चदशे वर्षे षड्वर्षामथ मैथिलीम् ॥१५॥
उपयेमे विवाहेन रम्यां सीतामयोनिजाम् । कृतकृत्यस्तदा जातःसीतां सम्प्राप्य राघवः॥१६॥
ततो द्वादशवर्षाणि रेमे रामस्तया सह। सप्तविंशतिमेवर्षे यौवराज्यमकल्पयत् ॥१७॥
राजानमथ कैकेयी वरद्वयमयाचत । तयोरेकेन रामस्तु ससीतःसहलक्ष्मणः ॥१८॥
जटाधरःप्रवजतुर्वर्षाणीह चतुर्दश । भरतस्तु द्वितीयेन यौवराज्याधिपोऽस्तु मे॥१९॥
जानकी लक्ष्मणसखं रामं प्राव्राजयन्नृपः । त्रिरात्रमुदकाहारश्चतुर्थेऽह्नि फलाशनः ॥२०॥
पञ्चमे चित्रकूटे तु रामःस्थानमकल्पयत् । अथ त्रयोदशेवर्षे पञ्चवट्यां महामुने॥२१॥
रामो विरूपयामास शूर्पणखां निशाचरीम् । वने विचरतस्तस्य जानक्यासहितस्य च॥२२॥
आगतो राक्षसस्तां तु हर्तुं पापविपाकतः । ततो माघासिताष्टम्यां मुहूर्ते वृन्दसंज्ञिते॥२३॥
राघवाभ्यां विना सीतां जहार दशकन्धरः । तेनैवं ह्रियमाणा सा चक्रन्द कुररी यथा॥२४॥
रामरामेति मां रक्ष रक्ष मां रक्षसा हृताम् । यथा श्येनः क्षुधाक्रान्तः क्रन्दतीं वर्तिकां नयेत्॥२५॥
तथा कामवशं प्राप्तो रावणो जनकात्मजाम् ।
नयत्येवं जनकजां जटायुःपक्षिराट् तदा ॥२६॥

दिया॥१२॥ उन्हीं भगवान् श्रीराम के चरण तलों के स्पर्श को पाकर इन्द्र के द्वारा दूषित मुनिपत्नी अहल्या पुनः अपने वास्तविक रूप को प्राप्त कर ली ॥१३॥ जब विश्वामित्र महर्षि का यज्ञ प्रारम्भ हुआ उस समय रामचन्द्रजी ने मारीच और सुबाहु को अपने भयङ्कर बाणों से मार दिया ॥१४॥ जनकजी के राज्य में जाकर शङ्करजी के धनुष को उन्होंने तोड़ दिया । उस समय श्रीरामचन्द्रजी की अवस्था पन्द्रह वर्ष की थी और जानकीजी की अवस्था छह वर्ष की थी ॥१५॥ श्रीरामचन्द्रजी ने विवाह की विधि से श्रीजानकीजी को अपनी पत्नी वनाया । उस समय सीताजी को प्राप्त करके श्रीरामजी कृतकृत्य हो गये । उसके बाद श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी के साथ बारह वर्षो तक विहार किया । सत्ताइस वर्ष की अवस्था में श्रीरामजी को महाराज दशरथ युवराज का पद देना चाहे उस समय कैकेयी ने महाराज दशरथ से दो वरदान माँगा । एक वरदान के द्वारा लक्ष्मण और सीता के साथ श्रीराम को जटाधारण करके चौदह वर्षो के लिए वन में जाना माँगा और दूसरे वरदान के द्वारा भरत के यौवराज्य को माँगा ॥१६-१८॥ राजा दशरथजी जानकीजी तथा लक्ष्मणजी के साथ श्रीरामचन्द्र को वन भेज दिए । श्रीरामजी तीन दिन तक केवल जल पीकर रहे और चौथे दिन फल खाये ॥१९-२०॥ पाञ्चवें दिन श्रीरामचन्द्रजी चित्रकूट में अपना स्थान बनाये । हे महामुने ! वहाँ पर पञ्चवटी में तेरहवें वर्ष में ॥२१॥ श्रीरामचन्द्रजी ने शूपर्णखा को विरूप बना दिया । जब राम वन में जानकीजी के साथ निवास कर रहे थे उस समय रावण नामक राक्षस अपने पाप के परिणाम स्वरूप जानकीजी का अपहरण करने के लिए आया । उसके बाद माघ कृष्ण अष्टमी के दिन वृन्द नामक मुहूर्त में राम लक्ष्मण की अनुपस्थिति में उसने सीताजी का अपहरण कर लिया । रावण के द्वारा हर कर जाती हुयी सीताजी ने कुररी के समान विलाप किया ॥२२-२४॥ हे राम ! राक्षस रावण के द्वारा हरण की गयी मेरी आप रक्षा करें । जिस तरह कोई बाज पक्षी चिलाती हुयी लावा चिड़िया को ले जाय उसी तरह कामार्त रावण सीताजी को ले जा रहा था । उस समय पक्षियों के राजा जटायू ने रावण के साथ युद्ध किया किन्तु

युयुधे राक्षसेन्द्रेण स रावणहतोऽपतत् । मार्गशुक्लनवम्यां तु वसन्तीं रावणालये ॥२७॥
सम्पातिर्दशमेमास आचख्यौ वानरेषु ताम् । एकादश्यां महेन्द्राद्रेः पुप्लुवे शतयोजनम्॥२८॥
हनूमान्निशि तस्यां तु लङ्कायां पर्यकालयत्। तद्रात्रिशेषे सीताया दर्शनं हि हनूमतः॥२९॥
द्वादश्यां शिंशपावृक्षे हनूमान्पर्यवस्थितः ।
तस्यां निशायां जानक्यां विश्वासालापसंकथा ॥३०॥
अक्षादिभिस्त्रयोदश्यां ततो युद्धमवर्तत । ब्रह्मास्त्रेण चतुर्दश्यां बद्धःशक्रजिता कपिः॥३१॥
वह्निना पुच्छयुक्तेन लङ्काया दहनं कृतम् । पूर्णिमायां महेन्द्रदाद्रौ पुनरागमनं कपेः ! ॥३२॥
मार्गासितप्रतिपदःपञ्चभिः पथिवासरैः । पुनरागत्य षष्ठेह्नि ध्वस्तं मधुवनं किल॥३३॥
सप्तम्यां प्रत्यभिज्ञानदानं सर्वनिवेदनम् । अष्टम्युत्तरफल्गुन्यां मुहूर्ते विजयाभिधे॥३४॥
मध्यं प्राप्ते सहस्रांशौ प्रस्थानं राघवस्य च ।
रामः कृत्वा प्रतिज्ञां तु प्रयातो दक्षिणां दिशम् ॥३५॥
तीर्त्वाऽहं सागरमपि हनिष्ये राक्षसेश्वरम् । दक्षिणाशां प्रयातस्य सुग्रीवोऽप्यभवत्सखा॥३६॥
वासरैः सप्तभिः सिन्धोः स्कन्धावारनिवेशनम् ।
पौषशुक्लप्रतिपदस्तृतीया यावदम्बुधेः ॥३७॥
उपस्थानं ससैन्यस्य राघवस्य बभूव ह । विभीषणश्चतुर्थ्यां तु रामेण सह सङ्गतः ॥३८॥
समुद्रतरणार्थाय पञ्चम्यां मन्त्र उद्यतः । प्रायोपवेशनं चक्रे रामो दिनचतुष्टयम् ॥३९॥
समुद्रवरलाभश्च सहोपायप्रदर्शनम्। ततो दशम्यामारम्भस्त्रयोदश्यां समापनम् ॥४०॥

रावण ने जटायू को मार दिया । अगहन शुक्ल नवमी को रावण के यहाँ जब सीताजी निवास कर रही थीं उस समय दशवें महीने में सम्पाती ने वानरों को सीता का पता बतलाया । हनुमानजी एकादशी के दिन महेन्द्र पर्वत पर से कूद कर सौ योजन पार करके रात्रि में लङ्का में पहुँचें । उस रात्रि के अन्तिम प्रहर में श्रीहनुमानजी ने सीताजी का दर्शन किया ॥२५-२९॥ द्वादशी तिथि को शिंशपा वृक्ष पर वैठै हुए हनुमानजी रात्रि में श्रीसीताजी से विश्वास पूर्वक वातें किए ॥३०॥ उसके बाद त्रयोदशी के दिन उनका अक्षय कुमार आदि के साथ युद्ध हुआ। चतुर्दशी तिथि को इन्द्रजित ने हनुमान् जी को ब्रह्मास्त्र से वाँध दिया ॥३१॥ इसके बाद हनुमानजी ने अपनी पूंछ की आग से लङ्का नगरी को जला दिया । पूर्णिमा तिथि को हनुमानजी लौट कर महेन्द्र पर्वत पर आ गये ॥३२॥ मार्गशीर्ष कृष्ण पञ्चमी से पाञ्च दिनों में आकर छटे दिन उन्होंने मधुवन को ध्वस्त कर दिया ॥३३॥ सप्तमी तिथि को उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी को प्रत्यभिज्ञान (चिह्न) प्रदान किया । अष्टमी तिथि को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के अभिजित मुहूर्त में ॥३४॥ दोपहर की वेला में श्रीरामचन्द्रजी ने लङ्का के लिए प्रस्थान किया । श्रीरामचन्द्रजी; मैं सागर को तैरकर भी रावण का वध करूँगा, इस तरह से प्रतिज्ञा करके दक्षिण दिशा में प्रस्थान किए । दक्षिण दिशा में प्रस्थान करते समय सुग्रीव उनके मित्र बन गये ॥३५-३६॥ श्रीरामचन्द्रजी सात दिन में समुद्र के तट पर पहुँच गये। पौष शुक्ल प्रतिपदा से तृतीया तिथि तक उन्होंने समुद्र ॥३७॥ की अपनी सेना के साथ उपासना की । चतुर्थी तिथि को विभीषणजी श्रीरामचन्द्रजी से आकर मिल गये ॥३८॥ समुद्र को पार करने के लिए श्रीरामचन्द्रजी मन्त्र जप करते हुए चार दिन प्रायोपवेशन किए ॥३९॥ उसके बाद समुद्र ने उपाय बतलाया तथा वर प्रदान किया । उसके वाद दशमी से लेकर चतुर्दशी पर्यन्त में सेतु बनकर पूरा हो गया ॥४०॥ चतुर्दशी के दिन श्रीरामचन्द्रजी ने सुवेल

चतुर्दश्यां सुवेलाद्रौ रामः सैन्यं न्यवेशयत्। पौर्णमास्या द्वितीयान्तं त्रिदिनैः सैन्यतारणम् ॥४१॥
तीर्त्वा तोयनिधिं रामो वानरेश्वरसैन्यवान्। रुरोच च पुरीं लङ्कां सीतार्थं सहलक्ष्मणः ॥४२॥
तृतीयादि दशम्यन्तं निवेशश्च दिनाष्टकम्। शुकसारणयोस्तत्र प्राप्तिरेकादशे दिने ॥४३॥
पौषासिताख्यद्वादश्यां सैन्यसङ्ख्यानमेव च ।
शार्दूलेन कपीन्द्राणां सहसा सैन्यवर्णनम् ॥४४॥
त्रयोदश्यां अमावास्यां लङ्कायां दिवसैस्त्रिभिः ।
रावणः सैन्यसङ्ख्यानं रणोत्साहं तदाकरोत् ॥४५॥
प्रययावङ्गदो दौत्यं माघशुक्लाद्यवासरे। सीतायाश्च ततोभर्तुर्मायामूर्द्धादिदर्शनम् ॥४६॥
माघद्वितीयादि दिनैः सप्तभिर्यावदष्टमी। रक्षसां वानराणां च युद्धमासीच्च सङ्कुलम् ॥४७॥
माघशुक्लनवम्यां तु रात्राविन्द्रजिता रणे। रामलक्ष्मणयोर्नागपाशबन्धः कृतः किल ॥४८॥
आकुलेषु कपीशेषु निरुत्साहेषु सर्वशः। नागपशविमोक्षार्थं दशम्यां पवनोऽजपत्॥४९॥
कर्णे स्वरूपं रामस्य गरुडागमनं ततः। एकादश्यां च द्वादश्यां धूम्राक्षस्य वधः कृतः॥५०॥
त्रयोदश्यां तु तेनैव निहतः कम्पनो रणे। माघशुक्लचतुर्दश्यां यावत्कृष्णादिवासरम्॥५१॥
त्रिदिनेन प्रहस्तस्य नीलेन विहितो वधः। माघकृष्णाद्वितीयायाश्चतुर्थ्यन्तं त्रिभिर्दिनैः ॥५२॥
रामेण तुमुले युद्धे रावणो द्रावितो रणात्। पञ्चम्या अष्टमींयावद्रावणेन प्रबोधितः ॥५३॥
कुम्भकर्णस्तदा चक्रेऽभ्यवहारं चतुर्दिनम्। कुम्भकर्णो दिनैः षड्भिर्नवम्यास्तु चतुर्दशीम् ॥५४॥

पर्वत पर अपनी सेना को टिकाया। पूर्णिमा से द्वितीया तक तीन दिनों में सेना ने समुद्र को पार किया ॥४१॥ वानरेश्वरों की सेना वाले श्रीरामचन्द्रजी समुद्र को पार करके लक्ष्मणजी के साथ सीताजी को प्राप्त करने के लिए लङ्कापुरी को घेर लिये ॥४२॥ तृतीया से दशमी तिथि तक आठ दिनों तक सेना का निवेश किया। ग्यारहवें दिन शुक और सारण नामक दो रावण के गुप्तचर वहाँ आये ॥४३॥ पौष कृष्ण द्वादशी तिथि को सेना की गणना की गयी। शार्दूल ने वानर वीरों की सेना का वर्णन किया ॥४४॥ उस समय रावण ने लङ्का में त्रयोदशी से आमावस्या पर्यन्त तीन दिनों में युद्ध की तैयारी और सेना की गणना की ॥४५॥ अङ्गद माघ शुक्ल प्रतिपदा तिथि को दौत्य कर्म करने के लिए लङ्का में गये। उसके बाद रावण ने माया से निर्मित श्रीराम के कटे हुए शिर आदि को सीताजी को दिखाया ॥४६॥ माघ शुक्ल द्वितीया से अष्टमी तिथि तक सात दिनों तक राक्षसों एवं वानरों में भयङ्कर युद्ध हुआ ॥४७॥ माघ शुक्ल नवमी तिथि को इन्द्रजित ने रात्रि को युद्ध में श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी को नागपाश में बाँध दिया ॥४८॥ जब सभी वानरश्रेष्ठ पूर्णरूप से निराश हो गये थे, उस समय वायु देवता ने श्रीरामचन्द्रजी के कानों में मन्त्र सुनाया ॥४९॥ उन्होंने श्रीरामचन्द्र के कान में उनके स्वरूप को बतलाया। उस समय गरुड़जी आये। एकादशी और द्वादशी तिथि को धूम्राक्ष का वध हुआ। त्रयोदशी तिथि को कम्पन मारा गया। माघ शुक्ल चतुर्दशी से कृष्ण पक्ष की प्रतिपत् तिथि तक नील ने तीन दिनों में प्रहस्त का वध किया। माघ कृष्ण द्वितीया से चतुर्थी पर्यन्त तीन दिनों में ॥५०-५२॥ श्रीराम ने रावण के साथ भयङ्कर युद्ध किया जिसके कारण रावण युद्ध से भाग चला। पञ्चमी तिथि से लेकर अष्टमी तिथि तक रावण ने कुम्भकर्ण को जगाया। उसके बाद चार दिनों तक कुम्भकर्ण अत्यधिक भोजन करता रहा। अनेक वानरों को खाने वाले कुम्भकर्ण को नवमी तिथि से लेकर चतुर्दशी तिथि तक छह दिनों तक ॥५३-५४॥ श्रीराम ने युद्ध

रामेण निहतो युद्धे बहुवानरभक्षकः। अमावास्यादिने शोकादवहारो बभूवह ॥५५॥
फाल्गुनादि प्रतिपदश्चतमुर्थ्यन्तं चतुर्दिनैः। बिसतन्तुप्रभृतयो निहताः पञ्च राक्षसाः ॥५६॥
पञ्चम्याः सप्तमींयावदतिकायवधस्तथा। अष्टम्या द्वादशींयावन्निहतौ दिनपञ्चकात्॥५७॥
निकुम्भकुम्भावूर्ध्वं तु मकराक्षस्त्रिभिर्दिनैः । फाल्गुनासितद्वितीयायां दिने शक्रजिताजितम् ॥५८॥
तृतीयादिसप्तम्यन्तं दिनपञ्चकमेव च। ओषध्यानयनव्यग्रादवहारो बभूव ह ॥५९॥
ततस्त्रयोदशींयावद्दिनैः पञ्चभिरिन्द्रजित्। लक्ष्मणेन हतो युद्धे विख्यातबलपौरुषः ॥६०॥
चतुर्दश्यां दशग्रीवो दीक्षां प्रापावहारतः। अमावास्यादिने प्रायाद्युद्धाय दशकन्धरः॥६१॥
चैत्रशुक्लप्रतिपदः पञ्चमीदिनपञ्चकैः। रावणे युद्ध्यमाने तु प्रचुरोरक्षसां वधः॥६२॥
चैत्रषष्ठ्याष्टमी यावन्महापार्श्वादिमारणम्। चैत्रशुक्लनवम्यां तु सौमित्रेः शक्तिभेदनम्॥६३॥
कोपाविष्टेन रामेण द्रावितोदशकन्धरः। द्रोणाद्रिराञ्जनेयेन लक्ष्मणार्थमुपाहृतः ॥६४॥
दशम्यामवहारोऽभूद्रात्रौ युद्धे तु रक्षसाम्। एकादश्यां तु रामाय रथं मातलिसारथिः ॥६५॥
प्रेरितो वासवेनाजावर्पयामास भक्तितः। कोपवानथ द्वादश्या यावत्कृष्णाचतुर्दशीम्॥६६॥
अष्टादशदिनै रामो रावणं द्वैरथेऽवधीत्। सङ्ग्रामेतुमुले जाते रामो जयमवाप्तवान्॥६७॥
माघशुक्लद्वितीयायाश्चैत्रकृष्णचतुर्दशीम् । सप्ताशीतिदिनेष्वेव मध्यं पञ्चदशाहकम्॥६८॥
युद्धावहारः सङ्ग्रामो द्वासपततिदिनान्यभूत्। संस्कारो रावणादीनाममावस्यादिनेऽभवत्॥६९॥
वैशाखादितिथौ राम उवास रणभूमिषु । अभिषिक्तो द्वितीयायां लङ्काराज्ये विभिषणः ॥७०॥

करके मार दिया । अमावस्या के दिन शोक सन्तप्त रावण ने युद्ध नहीं किया ॥५५॥ फाल्गुन शुक्ल प्रतिपत् से चतुर्थी पर्यन्त चार दिनों मे विसतन्तु इत्यादि पाँच राक्षस मारे गये ॥५६॥ पञ्चमी से सप्तमी तिथि पर्यन्त अतिकाय का वध हुआ और अष्टमी से द्वादशी तिथि पर्यन्त पाञ्च दिनों में कुम्भ और निकुम्भ नामक दो राक्षस मारे गये । उसके बाद तीन दिन में मकराक्ष का वध हुआ । फाल्गुन कृष्ण द्वितीया को इन्द्र ने दिन में विजय प्राप्त कर लिया ॥५७-५८॥ तृतीया से सप्तमी पर्यन्त पाञ्च दिन तक औषधि लाने की व्यग्रता के कारण युद्ध बन्द रहा ॥५९॥ उसके बाद त्रयोदशी तिथि पर्यन्त पाञ्च दिनों में बल और पौरुष के लिए विख्यात इन्द्रजित् का वध लक्ष्मणजी ने किया ॥६०॥ चतुर्दशी तिथि को रावण ने अवहार से दीक्षा प्राप्त की और अमावास्या के दिन वह युद्ध करने के लिए आया ॥६१॥ चैत्र शुक्ल प्रतिपत् तिथि से पञ्चमी तिथि पर्यन्त पाञ्च दिनों में जब कि रावण युद्ध कर रहा था उस समय बहुत अधिक राक्षस मारे गये ॥६२॥ चैत्र शुक्ली षष्ठी से अष्टमी तक महापार्श्व आदि मारे गये । चैत्र शुक्ल नवमी तिथि को रावण ने लक्ष्मणजी को शक्ति से छेद दिया ॥६३॥ उस समय क्रुद्ध होकर श्रीरामजी ने रावण को युद्धस्थल से मार कर भगा दिया । श्रीलक्ष्मणजी के लिए हुनमानजी द्रोणाचल पर्वत को लाये ॥६४॥ दशमी के दिन युद्ध विराम रहा और रात्रि में राक्षसों के साथ युद्ध हुआ । एकादशी तिथि को इन्द्र से प्रेरित होकर उनके सारथि मातलि भक्ति पूर्वक श्रीराम को रथ समर्पित किए । चैत्र शुक्ल द्वादशी से लेकर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी पर्यन्त क्रोध करके श्रीराम ने अठारह दिनों में रावण का युद्ध में वध किया । इस घोर युद्ध में श्रीराम ने विजय प्राप्त किया ॥६५-६७॥ माघशुक्ल द्वितीया से लेकर चैत्र कृष्ण चतुर्दशी पर्यन्त सत्तासी दिनों तक युद्ध चला । उसमें बीच में पन्द्रह दिन युद्ध विराम रहा और बासठ दिनों तक युद्ध चला । रावण आदि का दाह संस्कार अमावस्या के दिन हुआ ॥६८-६९॥ वैशाख मास के प्रतिपत् तिथि को श्रीराम ने रणभूमि में ही

सीताशुद्धिस्तृतीयायां देवेभ्यो वरलम्भनम्। हत्वाऽचिरेण लङ्केशं लक्ष्मणाग्रज एव सः ॥७१॥
गृहीत्वा जानकीं पुण्यां दुःखितां राक्षसेन तु ।
आदाय परया प्रीत्या जानकीं सन्यवर्तत ॥७२॥
वैशाखस्य चतुर्थ्यां तु रामः पुष्पकमाश्रितः ।
विहायसा निवृत्तस्तु भूयोऽयोध्यां पुरीं प्रति ॥७३॥
पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां माघवस्यतु। भरद्वाजाश्रमे रामः सगणः समुपाविशत् ॥७४॥
नन्दिग्रामे तु षष्ठ्यां स भरतेन समागतः। सप्तम्यामभिषिक्तोऽसावयोध्यायां रघूद्वहः ॥७५॥
दशैकाधिकमासांस्तु चतुर्दशाहानिमैथिली। उवास रामरहिता रावणस्य निवेशने ॥७६॥
द्विचत्वारिंशके वर्षे रामो राज्यमकारयत्। सीतायाश्च त्रयस्त्रिंशद्वत्सराश्च तदाऽभवन् ॥७७॥
स चतुर्दशवर्षान्ते प्रविश्य च पुरीं प्रभुः। अयोध्यां मुदितो रामो हत्वा रावणमाहवे ॥७८॥
भ्रातृभिः सहितस्तत्र रामो राज्यमथाकरोत् ।
राज्यं प्रकुर्वतस्तस्य पुरोधा वदतांवरः ॥७९॥
अगस्त्यः कुम्भसम्भूतिस्तमागन्ता रघोःपतिम् ।
तद्वाक्याद्रघुनाथोऽसौ करिष्यति हयक्रतुम् ॥८०॥
तस्यागमिष्यति हयो ह्याश्रमे तव सुव्रत ! ।
तस्य योधाः प्रमुदिता आयास्यन्ति तवाश्रमम् ॥८१॥
तेषामग्रे रामकथाः करिष्यसि मनोहराः। तैः साकं त्वमयोध्यायां गन्तासि वै द्विजर्षभ !॥८२॥
दृष्ट्वा राममयोध्यायां पद्मपत्रनिभेक्षणम्। तत्क्षणादेव संसारवार्धिनिस्तारवान्भव ॥८३॥

निवास किया। द्वितीया तिथि को विभीषण लङ्का के राज्य पर अभिषिक्त हुए ॥७०॥ तृतीया तिथि को सीताजी की अग्नि परीक्षा हुयी और देवताओं ने वरदान प्रदान किया। लङ्केश रावण को मार कर श्रीरामजी शीघ्र ही॥७१॥ राक्षसराज रावण के द्वारा दुःखी बनायी गयी सीताजी को ग्रहण करके श्रीरामचन्द्रजी अयोध्या के लिए लौट गये ॥७२॥ वैशाख मास की चतुर्थी तिथि को श्रीरामचन्द्रजी पुष्पक विमान पर बैठकर आकाश मार्ग से पुनः अयोध्या पुरी में आये ॥७३॥ चौदहवें वर्ष के पूरा हो जाने पर पञ्चमी तिथि को अपने गण के साथ वे भरद्वाजाश्रम में आये ॥७४॥ षष्ठी तिथि को वे नन्दी ग्राम में भरतजी से मिले। श्रीरामचन्द्रजी सप्तमी तिथि को अयोध्या के सिंहासन पर बैठे ॥७५॥ श्रीजानकीजी ग्यारह महीना चौदह दिन राम से अलग होकर रावण के गृह में निवास कीं ॥७६॥ बयालीसवें वर्ष में श्रीरामजी राजा हुए उस समय श्रीजानकीजी की अवस्था वतीस वर्ष की थी ॥७७॥ चौदह वर्षों के अन्त में प्रभु श्रीराम युद्ध में रावण को मार कर अयोध्या नगरी में प्रवेश करके ॥७८॥ अपने भाइयों के साथ राज्य किये। जब श्रीरामचन्द्रजी राज्य कर रहे थे उस समय बोलने वालों में श्रेष्ठ पुरोहित॥७९॥ कुम्भ से उत्पन्न हुए महर्षि अगस्त्य श्रीरामचन्द्रजी के पास आयेंगे। उनकी ही आज्ञा के अनुसार श्रीरामजी अश्वमेध यज्ञ करेंगे ॥८०॥ हे सुव्रत उस यज्ञ का घोड़ा तुम्हारे आश्रम में आयेगा। उस घोड़े के रक्षक वीरों से प्रसन्नता पूर्वक तुम रामकथा को कहना। हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम उन सबों के साथ तुम अयोध्या जाओगे ॥८१-८२॥ अयोध्या में कमलदल के समान मनोहर नेत्र वाले श्रीराम का दर्शन करके उसी क्षण तुम इस संसार सागर को पार कर जाओगे ॥८३॥ इस तरह सबों में बुद्धिमान् महर्षि लोमश कहे कि अब तुमको

इत्युक्त्वा मां मुनिवरो लोमशः सर्वबुद्धिमान् ।
उवाच ते किं प्रष्टव्यं तदाहमवदं हितम् ॥८४॥
ज्ञातं त्वत्कृपया सर्वं रामचारित्रमद्भुतम् । तवप्रसादादवाप्स्येऽहं रामस्य चरणाम्बुजम् ॥८५॥
मया नमस्कृतः पश्चाज्जगाम स मुनीश्वरः । तत्प्रसादान्मयाऽवाप्तं रामस्य चरणार्चनम् ॥८६॥
सोऽहं स्मरामि रामस्य चरणावन्वहं मुहुः । गायामि तस्य चरितं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः ॥८७॥
पावयामि जनानन्यान्गानेन स्वान्तहारिणा । हृष्यामि तन्मुनेर्वाक्यं स्मारं स्मारं तदीक्षया ॥८८॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं सभाग्योऽहं महीतले ।
रामचन्द्रपदाम्भोजादिदृक्षा मे भविष्यति ॥८९॥
तस्मात्सर्वात्मना रामो भजनीयो मनोहरः । वन्दनीयो हि सर्वेषां संसाराब्धितितीर्षया ॥९०॥
तस्माद्यूयं किमर्थं वै प्राप्ताः को वा नराधिपः ।
यागं करोति धर्मात्मा हयमेधं महाक्रतुम् ॥९१॥
तत्सर्वं कथयन्त्वत्र यान्तु वाहस्य पालने । स्मरन्तु रघुनाथङ्घ्रिं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ॥९२॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य मुनेर्विस्मयमागताः । रघुनाथं स्मरन्तस्ते प्रोचुरारण्यकं मुनिम् ॥९३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे लोमशारण्यकसंवादे
रामचरित्रकथनं नाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३६॥

* * *

क्या पूछना है, मैंने कल्याण की सारी बातें बता दी ॥८४॥ मैंने कहा— आपकी कृपा से मैंने सम्पूर्ण अद्भुत राम चरित को जान लिया । आपकी कृपा से मैं श्रीरामजी के चरण कमलों को प्राप्त करूँगा ॥८५॥ इसके बाद मेरे द्वारा नमस्कार कर लिए जाने के पश्चात् वे मुनीश्वर चले गये । उन्हीं की कृपा से मैंने श्रीराम के चरणों की पूजा का अवसर प्राप्त किया है ॥८६॥ मैं प्रतिदिन श्रीराम के चरणों को बार-बार स्मरण करता हूँ और निरालस होकर उनके चरित का बार-बार गायन करता हूँ ॥८७॥ अपने अन्तःकरण को आकृष्ट करने वाले गायन के द्वारा मैं दूसरे लोगों को पवित्र बनाता हूँ और उन मुनीश्वर के वाक्यों को स्मरण करके श्रीराम दर्शन की लालसा से प्रसन्न होता हूँ ॥८८॥ भूलोक में मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ और भाग्यवान् हूँ । मुझमें श्रीरामचन्द्रजी के चरणों को देखने की इच्छा हो गयी है ॥८९॥ अतएव मनोहर श्रीराम का हर प्रकार से भजन करना चाहिए । संसार सागर को पार करने की इच्छा से श्रीराम सबों के लिए वन्दनीय हैं ॥९०॥ अतएव आपलोग यहाँ किसलिए आये हैं? आपका राजा कौन है ? जो धर्मात्मा यह अश्वमेध याग कर रहा है ? ॥९१॥ इन सारी बातों को आपलोग बतलायें और अश्व की रक्षा करें । बार-बार श्रीरामचन्द्रजी के चरणों का स्मरण करें ॥९२॥ मुनि के इस वाक्य को सुनकर वे लोग आश्चर्यित हो गये और भगवान् श्रीराम के चरणों का स्मरण करते हुए आरण्यक मुनि से कहे ॥९३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातल खण्ड के रामाश्वमेध के प्रकरण में लोमश आरण्यक
संवादान्तर्गत रामचरित वर्णन नामक छत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य)
कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३६।।

* * *

सैंतीसवाँ अध्याय

शेष उवाच

ते पृष्टा मुनिवर्येण रामचारित्रमद्भुतम् । धन्यं सभाग्यं मन्वानाः प्रोचुरात्मानमादरात् ॥१॥

जना ऊचुः

पवित्रिता वयं सर्वे दर्शनेन तवाधुना। यद्रामकथयास्मान्वै पावयस्यधुना जनान् ॥२॥
शृणुष्व वचनं तथ्यं भवान्ब्रह्मर्षिसत्तमः । त्वया पृष्टं यदस्मभ्यं सर्वं तत्कथयाम वै ॥३॥
अगस्त्यवाक्याच्छ्रीरामो विप्रहत्यापनुत्तये। यागं करोति सुमहान्सर्वसम्भारसम्भृतम् ॥४॥
पालयमानास्तं सर्वे त्वदाश्रममुपागताः । अश्वेन सहिता विप्र ! तज्जानीहि महामते ! ॥५॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य मनोहारि रसायनम्। अत्यन्तहर्षमापेदे ब्राह्मणो रामभक्तिमान् ॥६॥
अद्य मे फलितो वृक्षो मनोरथश्रियान्वितः । अद्य मे जननी धन्या जाता मां सुषुवे तु या ॥७॥
अद्य राज्यं मया प्राप्तं कण्टकेन विवर्जितम् ।
अद्य कोशाः सुसम्पन्ना अद्य देवा सुतोषिताः ॥८॥
अग्निहोत्रफलं त्वद्य प्राप्तं मे हविषाहुतम्। यद्द्रक्ष्ये रामचन्द्रस्य चरणाम्भोरुहोर्युगम् ॥९॥
यो नित्यं ध्यायते स्वान्त अयोध्यायाः पतिः प्रभुः ।
स मे दृग्गोचरो नूनं भविष्यति मनोहरः ॥१०॥
हनूमान्मां समालिङ्ग्य प्रक्ष्यते कुशलं मम। भक्तिं मे महतीं दृष्ट्वा तोषं प्राप्स्यति सत्तमः॥११॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य हनूमानकपिसत्तमः । जग्राह पादयुगलं मुनेरारण्यकस्य हि ॥१२॥
स्वामिन्हनूमान्विप्रर्षे सेवकोऽहं पुरः स्थितः। जानीहि रामदासस्य रेणुकल्पं मुनीश्वर ॥१३॥

आरण्यक का अयोध्या जाना

शेषजी ने कहा— आरण्यक मुनीश्वर के द्वारा अद्भुत श्रीरामचरित पूछे जाने पर अपने को धन्य तथा भाग्यवान् मानने वाले वे सभी वीर आदर पूर्वक कहे ॥१॥ **लोगों ने कहा**— आपके दर्शन से हम सभी पवित्र हो गये हैं क्योंकि आप श्रीरामचन्द्रजी की कथा से लोगों को पवित्र बना रहे हैं ॥२॥ हे ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ ! आप वास्तविक बात सुनें । आपने जो हमलोगों से पूछा है, उसे हमलोग आपको बतला रहे हैं ॥३॥ महर्षि अगस्त्य की आज्ञा से भगवान् श्रीराम ब्रह्महत्या नामक दोष को दूर करने के लिए सभी सामग्रियों से सम्पन्न महान अश्वमेध याग को कर रहे हैं ॥४॥ हे महामते ! उन्हीं के अश्व की रक्षा करते हुए हमलोग आपके आश्रम में आये हैं ॥५॥ मनोहर रसायन के समान इस वाक्य को सुनकर श्रीराम की भक्ति से परिपूर्ण वे ब्राह्मण अत्यधिक प्रहर्षित हुए॥६॥ उन्होंने कहा— आज मेरा मनोरथ रूपी वृक्ष फलित हो गया । मुझको जन्म देने वाली मेरी माता आज धन्य हो गयी ॥७॥ आज मैंने निष्कण्टक राज्य प्राप्त कर लिया । आज मेरे कोश भर गये तथा मैंने आज देवताओं को संतुष्ट कर दिया ॥८॥ हविष्य से हवन करके आज मैं अग्निहोत्र का फल प्राप्त कर लिया; क्योंकि मुझे श्रीरामचन्द्र के दोनों चरण का दर्शन प्राप्त होगा ॥९॥ जिन अयोध्याधिपति का मैं नित्य ही अपने अन्तःकरण में ध्यान करती हूँ उनका मनोहर दर्शन मुझे अवश्य प्राप्त होगा । हनुमानजी मुझे अपने हृदय में लगाकर मेरा कुशल पूछेंगे और मेरी महती भक्ति को देखकर श्रीरामचन्द्रजी सन्तुष्ट होंगे ॥१०-११॥ इस बात को सुनकर

इत्युक्तवति तस्मिन्वै मुनिः परमहर्षितः । आलिलिङ्ग हनूमन्तं रामभक्त्या सुशोभितम् ॥१४॥
उभौ प्रेमविनिर्भिन्नावुभावपि सुधाप्लुतौ । स्थगितौ चित्रलिखिताविव तत्र बभूवतुः ॥१५॥
उपविष्टौ कथास्तत्र चक्रतुः सुमनोहराः । रघुनाथपदाम्भोजप्रीतिनिर्भरमानसौ ॥१६॥
हनूमांस्तमुवाचेदं वचो विविधशोभनम् । आरण्यकं मुनिवरं रामाङ्घ्रिध्याननिर्भृतम् ॥१७॥
स्वामिन्नयं दशरथकुलहीराङ्कुरो महान् । रामभ्राता महाशूरः शत्रुघ्नः प्रणमत्यसौ ॥१८॥
लवणो येन निहतः सर्वलोकभयङ्करः । कृताश्च सुखिनः सर्वे मुनयः सुतपोधनाः ॥१९॥
एष पुष्कलनामा त्वां नमत्युद्भटसेवितः । येनाधुना महावीरा जिताः समरमण्डले ॥२०॥
जानीह्येनं बहुगुणं रामामात्यं महाबलम् । प्राणप्रियं रघुपतेः सर्वज्ञं धर्मकोविदम् ॥२१॥
सुबाहुरयमत्युग्रो वैरिवंशदवानलः । रामपादाब्जरोलम्बो नमति त्वां महायशाः ॥२२॥
सुमदोऽप्येष पार्वत्या दत्तरामाङ्घ्रिसेवया । प्राप्तोऽधुनाऽसौ संसारवार्धिनिस्तरणं महत् ॥२३॥
सत्यवानयमश्वं यः प्राप्तमाश्रुत्य सेवकात् । राज्यं निवेदयामास स त्वां प्रणमति क्षितौ ॥२४॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य समालिङ्ग्य समादरात् ।
चकारारण्यक ऋषिः स्वागतं फलकादिना ॥२५॥
ते हृष्टास्तत्र वसितं चक्रुर्मुनिवराश्रमे । प्रातर्नित्यक्रियां कृत्वा रेवायां ते महोद्यमाः ॥२६॥
नरयानमथारोप्य सेवकैः सहितं मुनिम् । शत्रुघ्नः प्रापयामासायोध्यां रामकृतालयाम् ॥२७॥

वानरों में श्रेष्ठ हनुमानजी, आरण्यक मुनि के दोनों चरणों को पकड़ लिए और कहे ॥१२॥ हे स्वामिन् ! विप्रर्षे! मैं आपके सामने आपका सेवक हनुमान हूँ । मुझे श्रीरामचन्द्र के दासों में मुझको सबसे छोटा जानें ॥१३॥ इस तरह से हनुमानजी के कहने पर अत्यन्त हर्षित होकर हनुमानजी की रामभक्ति से संतुष्ट होकर मुनि ने उनका आलिङ्गन किया ॥१४॥ दोनों प्रेम विह्वल थे, दोनों प्रेमामृत से सरावोर थे । वे दोनों वहाँ पर चित्र लिखित के समान स्थित थे ॥१५॥ इसके बात उन दोनों ने वैठकर मनोहर श्रीराम कथा की चर्चा की । उन दोनों का मन श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम से भरा था ॥१६॥ हनुमानजी ने श्रीरामचन्द्रजी के चरणों का ध्यान करने वाले आरण्यक मुनि को सुन्दर वातों को सुनाया ॥१७॥ (हनुमानजी ने कहा) हे स्वामिन् ! ये महाराज दशरथ के वंश के हीराङ्कुर तथा श्रीरामजी के छोटे भाई महावीर शत्रुघ्नजी आपको प्रणाम कर रहे हैं ॥१८॥ इन्होंने सम्पूर्ण संसार के लिए भयङ्कर लवणासुर का वध किया है । उसके कारण सभी तपस्वी मुनिजन सुखी हो गये हैं ॥१९॥ ये पुष्कल आपको प्रणाम करते हैं । इन्होंने युद्ध में बड़े-बड़े वीरों को परास्त किया है ॥२०। ये श्रीरामजी के महामात्य महाबलवान् श्रीरामजी के प्राण प्रिय, सर्वज्ञ एवं धर्मज्ञ सुमति हैं ॥२१॥ ये वैरियों के वंश के लिए दावाग्नि के समान सुबाहु हैं । ये श्रीरामजी के चरणों के भक्त हैं ये आपको प्रणाम करते हैं ॥२२॥ ये सुमद हैं, श्रीरामजी के चरणों की सेवा करके पार्वती देवी ने इनको प्राप्त किया है । इस समय उन्होने संसार सागर को पार कर लिया है ॥२३॥ ये सत्यवान् हैं । इन्होंने अपने सेवक के मुख से आये हुए अश्व को सुनकर अपना राज्य श्रीरामजी को निवेदित कर दिया ये आपको प्रणाम करते हैं ॥२४॥ इस वाक्य को सुनकर आरण्यक ऋषि ने सबों को आदर पूर्वक गले से लगाया और फल आदि प्रदान करके सबों का स्वागत किया ॥२५॥ वे सब प्रसन्नता पूर्वक उस मुनि के आश्रम में निवास किए । प्रात:काल रेवा नदी में नित्य क्रिया करके ॥२६॥ महान उद्यम सम्पन्न शत्रुघ्नजी ने सेवकों के साथ मुनि को पालकी पर वैठाकर जहाँ पर श्रीरामजी विद्यमान थे उस

स दूरान्नगरीं दृष्ट्वा सूर्यवंशनृपोषिताम्। पदातिरभवद्वेगाद्रघुनाथदिदृक्षया ॥२८॥
सम्प्राप्य नगरीं रम्यामयोध्यां जनशोभिताम्।
मनोरथसहस्रेण संरूढो रामदर्शने ॥२९॥
ददर्श तत्र सरयूतीरे मण्डपशोभिते। रामं दूर्वादलश्यामं कञ्जकान्तिविलोचनम्॥३०॥
मृगशृङ्गं कटौ रम्यं धारयन्तं श्रियान्वितम्। ऋषिवृन्दैर्व्यासमुख्यैर्वृतं शूरैःसुसेवितम् ॥३१॥
भरतेन सुमित्रायास्तनूजेन परीवृतम्। ददतं दीनसङ्घेभ्यो दानानि प्रार्थितानि तम् ॥३२॥
विलोक्यारण्यकाख्योऽसौ कृतार्थ इत्यमन्यत।
मल्लोचने पद्मदलसमाने रामलोकके ॥३३॥
अद्य मे सर्वशास्त्रस्य ज्ञातृत्वं बहुसार्थकम्। येन श्रीराममाज्ञाय प्राप्तोऽयोध्यापुरीमिमाम्॥३४॥
इत्येवमादिवचनानि बहूनि हृष्टो रमाङ्घ्रिदर्शनसुहर्षितगात्रशोभी।
प्रायाद्रमेश्वरसमीपमगम्यमन्यैर्योगेश्वरैरपि विचारपरैः सुदूरम् ॥३५॥
धन्योऽहमद्य रामस्य चरणावक्षिगोचरौ। करिष्यामि वचो रम्यं वदन्राममवेक्षयन् ॥३६॥
रामोऽपि वाडवश्रेष्ठं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा। तपोमूर्तिधरं वीक्ष्य प्रत्युत्थानमथाकरोत् ॥३७॥
रामचन्द्रस्तस्य पादौ सुचिरं नतवान्महान्। ब्रह्मण्यदेव ! पावित्र्य कृतमद्यतनोर्मम ॥३८॥
इति वाक्यं वदंस्तस्य पादयोः पतितः प्रभुः।
सुरासुरनमन्मौलिमणिनीराजिताङ्घ्रिकः ॥३९॥
प्रणतं तं नृपश्रेष्ठं वाडवेन्द्रो महातपाः। गृहीत्वा भुजयोर्मध्यमालिलिङ्ग प्रियं प्रभुम्॥४०॥

अयोध्या में भेज दिए ॥२७॥ सूर्यवंश से सुसेवित अयोध्या को दूर से ही देखकर श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करने की इच्छा से मुनि वेगपूर्वक पैदल चलने लगे ॥२८॥ वे मनोहर नगरी तथा लोगों से सुशोभित अयोध्या पहुँचकर श्रीरामदर्शन करके हजारों मनोरथों से भर गये ॥२९॥ वहाँ पर मण्डप से सुशोभित सरयू के तट पर दुर्वादल के समान श्यामवर्ण के शरीर वाले कमल के समान नेत्र वाले श्रीरामचन्द्रजी का वे दर्शन किए ॥३०॥ शोभा से सम्पन्न वे अपने कमर में मृग शृंग लगाये हुए थे। व्यास आदि ऋषिगण उनको घेरे थे तथा वीर पुरुष उनकी सेवा कर रहे थे ॥३१॥ उनके सन्निकट में भरतजी और लक्ष्मणजी विद्यमान थे। दीन जीव उनसे जो माँगते थे उन सबों को वे वही दान दे रहे थे ॥३२॥ श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करके आरण्यक मुनि ने अपने को कृतार्थ मान लिया। ये कमलदल के समान मेरे दोनों नेत्र रामजी का दर्शन करके कृत-कृत्य हो गये ॥३३॥ आज मेरा सभी शास्त्रों का ज्ञान सफल हो गया; क्योंकि मैं श्रीरामजी को जानकर अयोध्यापुरी आ गया हूँ ॥३४॥ इस प्रकार से बहुत से सुन्दर वचनों को प्रसन्नतापूर्वक कहकर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों का दर्शन करके हर्षित होने के कारण उनका शरीर सुशोभित हो गया था। दूसरे विचार परायण योगेश्वरों के लिए भी अत्यन्त कठिन श्रीरामचन्द्रजी के समीप आरण्यक मुनि पहुँच गये ॥३५॥ वे सोच रहे थे आज श्रीरामचन्द्रजी के चरणों का दर्शन करके मैं धन्य हो गया हूँ। मैं उनको देखते हुए उनके साथ मनोहर बातें करूँगा ॥३६॥ अपने तेज से देदीप्यमान उस ब्राह्मण श्रेष्ठ तथा तपस्या की मूर्ति के समान उन्हें देखकर श्रीरामजी उठकर खड़े हो गये ॥३७॥ श्रीरामचन्द्रजी ने उनके चरणों में देर तक प्रणाम किया और कहे— हे ब्राह्मण देवता आज आपने मेरे शरीर को पवित्र बना दिया है ॥३८॥ इस तरह से कहते हुए; जिनके चरणों की आरती प्रणाम देवों और दानवों के शिरों मुकुटों की मणियाँ

कौसल्यातनयस्तं वा उच्चैर्मणिमयासने । संस्थाप्य च पदोर्युग्मं जलेनाक्षालयत्प्रभुः ॥४१॥
पादावनेजनोदं तु मस्तकेऽधाद्धरिः स्वयम् । पवित्रितोऽद्य सगणः सकुटुम्ब इति ब्रुवन् ॥४२॥
चन्दनेन विलिप्याथ गां च प्रादात्पयस्विनीम् ।
उवाच च वचोरम्यं देवदेवेन्द्रसेवितः ॥४३॥
स्वामिन्मखो मया वाजिमेधसंज्ञः क्रियेत ह ।
सोऽयं त्वच्चरणापातादद्य पूर्णो भविष्यति ॥४४॥
अद्य मे ब्रह्महत्योत्थपापहानिं करिष्यति । अश्वमेधः क्रतुर्युष्मच्चरणेन पवित्रितः ॥४५॥
इति वाक्यं ब्रुवाणं तं राजराजेन्द्रसेवितम् । आरण्यक उवाचेदं हसन्माध्व्या गिरा मुनिः ॥४६॥
स्वामिंस्तव तु युक्तं हि वचो ब्रह्मण्य ! भूमिप ! ।
त्वन्मूर्तयो महाराज ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥४७॥
त्वं यदा ब्रह्मपूजादि शुभं कर्म करिष्यसि । ततोऽखिला नृपा विप्रं पूजयिष्यन्ति भूमिप ! ॥४८॥
त्वयोक्तं यन्महाराज ! विप्रहत्यापनुत्तये । यागं करोमि विमलं तत्तु हास्यकरं वचः ॥४९॥
त्वन्नामस्मणान्मूढः सर्वशास्त्रविवर्जितः । सर्वपापाब्धिमुत्तीर्य स गच्छेत्परमं पदम् ॥५०॥
सर्ववेदेतिहासानां सारार्थोऽयमितिस्फुटम् । यद्रामनामस्मरणं क्रियते पापतारकम् ॥५१॥
तावद्गर्जन्ति पापानि ब्रह्महत्यासमानि च । न यावत्प्रोच्यते नाम रामचन्द्र तव स्फुटम् ॥५२॥
त्वन्नामगर्जनं श्रुत्वा महापातककुञ्जराः । पलायन्ते महाराज कुत्रचित्स्थानलिप्सया ॥५३॥
तस्मात्तव कथं हत्या महापुण्यददर्शन । राम त्वत्सुकथां श्रुत्वा पूतः सद्यो भविष्यति ॥५४॥
मया पूर्वं कृतयुगे गङ्गायास्तीरवसिनाम् । ऋषीणां मुखतो वाक्यं श्रुतमेतत्पुराविदाम् ॥५५॥

करती हैं, वे प्रभु श्रीराम महर्षि के चरणों पर गिर पड़े ॥३९॥ प्रणाम करने वाले राजवर्य श्रीरामचन्द्र को बीच में ही दोनो हाथों से पकड़कर महातस्वी ब्राह्मण वर्य ने अपने प्रिय प्रभु का आलिङ्गन किया ॥४०॥ कौसल्या नंदन श्रीराम प्रभु उनको मणि निर्मित आसन पर बैठाकर उनके पैरों को जल से धोए ॥४१॥ उनके चरणोदक को श्रीभगवान् ने अपने मस्तक पर चढ़ाया । उस समय भगवन् कह रहे थे आज मैं अपने गण के साथ पवित्र हो गया ॥४२॥ श्रीभगवान् ने उनको चन्दन लगाकर दुधारु गाय प्रदान किया; इसके बाद देवताओं और देवेन्द्र से सेवित श्रीराम प्रभु ने मनोहर वाणी में कहा ॥४३॥ हे स्वामिन् ! इस समय मैं अश्वमेध याग कर रहा हूँ आज आपके चरण के यहाँ आ जाने से यज्ञ पूर्ण हो जायेगा ॥४४॥ आज मेरा ब्रह्महत्याजन्य पाप विनष्ट हो जायेगा। आपके चरणों से मेरा अश्वमेध पवित्र हो गया ॥४५॥ राज राजेन्द्रों से सेवित तथा इस तरह से वाक्यों को कहने वाले श्रीरामचन्द्रजी से आरण्यक ऋषि ने हँसते हुए मधुर वाणी से कहा ॥४६॥ हे ब्रह्मण्य राजन् ! स्वामिन् ! आपका इस तरह का कहना उचित ही है । हे महाराज ! वेदपारंगत ब्राह्मण आपके शरीर हैं ॥४७॥ हे राजन्! जब आप ब्राह्मणों की पूजा करेंगे तो सभी राजागण ब्राह्मणों की पूजा करेंगे ॥४८॥ हे महाराज ! आपने यह जो कहा कि ब्रह्महत्या को हटाने के लिए मैं याग कर रहा हूँ आपकी यह विमल वाणी हास्यास्पद है ॥४९॥ आपके नाम का स्मरण करने मात्र से अज्ञानी जीव भी सभी पापों को विनष्ट करके परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥५०॥ यही सभी वेदों तथा इतिहासों का सारांश है कि राम के नाम का स्मरण पापियों को संसार से पार कर देता है॥५१॥ ब्रह्महत्या के सदृश जो पाप हैं वे तब तक गरजते हैं जब तक मनुष्य आप श्रीरामचन्द्र के नामों का उच्चारण नहीं करता है ॥५२॥ आपके नाम रूपी गर्जना को सुनकर पाप रूपी हाथी कहीं स्थान प्राप्त कर लेने की अभिलाषा से भाग जाते हैं ॥५३॥ अतएव हे महापवित्र ! दर्शन वाले भगवन् राम ! आपको हत्या कैसे लग सकती है ? आपकी सुन्दर कथा को सुनकर मनुष्य सद्यः पवित्र हो जाता है ॥५४॥ मैंने प्राचीन काल में गङ्गा

तावत्पापभियः पुंसां कातराणां सुपापिनाम ।
यावन्न वदते वाचा रामनाम मनोहरम् ॥५६॥
तस्माद्धन्योऽहमधुना मम संसृतिनाशनम्। साम्प्रतं सुलभं रामचन्द्रत्वद्दर्शनादभूत् ॥५७॥
इत्युक्तवन्तं समुनिं पूजयामास तत्र वै। सर्वे मुनिजनाः साधुसाधुवाक्यमिति ब्रुवन् ॥५८॥

शेष उवाच

अत्याश्चर्यमभूत्तत्र तन्मे निगदतः शृणु । वात्स्यायन मुनिश्रेष्ठ रामभक्तिपरायण ! ॥५९॥
रामं दृष्ट्वा महाराजं यादृशं ध्यानगोचरम्। अत्यन्तं हर्षमापन्नो जगाद स मुनीश्वरान् ॥६०॥
मुनीश्वराः संश्रृणुत मद्वाक्यं सुमनोहरम्। मादृशः को न भूलोके भविष्यति सुभाग्यवान्॥६१॥
नास्ति मत्सदृशः कोऽपि न जातो न भविष्यति ।
यद्रामभद्रो मां नत्वा स्वागतं परिपृष्टवान् ॥६२॥
यत्पादपङ्कजरजः श्रुतिमृग्यं सदैव हि । सोऽद्य मत्पादयो पाथः पीत्वा पूतममन्यत ॥६३॥
एवं प्रवदतस्तस्य ब्रह्मस्फोटोऽभवत्तदा। निर्गतं तद्भवं तेजो विवेश रघुनायके ॥६४॥
पश्यतां सर्वलोकानां सरयूतीरमण्डपे। सायुज्यमुक्तिं सम्प्राप दुर्ल्लभां योगिभिर्जनैः ॥६५॥
दिवि तूर्यनिनादोऽभूद्वीणानादोऽभवत्तदा । पुष्पवृष्टिः पपाताग्रे पश्यतां चित्रमद्भुतम्॥६६॥
मुनयोऽप्येतदीक्षित्वा प्रशंसन्तो मुनीश्वरम् । कृतार्थोऽयं मुनिश्रेष्ठो यद्रामवपुषीक्षितः ॥६७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
आरण्यकमुनेर्विष्णुलोकगमनं नाम सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३७॥

* * *

के तट पर निवास करने वाले ऐतिह्यवेत्ता ऋषियों के मुख से यह सुना था ॥५५॥ बड़े-वड़े पापी मनुष्यों को तब तक ही पाप का भय बना रहता है जब तक कि वे अपनी वाणी से रामनाम का उच्चारण नहीं करते हैं।।५६॥ अतएव मैं आज धन्य हो गया कि इस समय संसार बन्ध विनाशक आप श्रीरामचन्द्र का दर्शन मुझे प्राप्त हो गया है ॥५७॥ इस तरह से कहने वाले मुनि की भगवान् श्रीराम ने पूजा की और वहाँ पर विद्यमान सभी महर्षियों ने कहा बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा !!॥५८॥ **शेषजी ने कहा**— हे रामभक्ति में लगे रहने वाले मुनिश्रेष्ठ वात्स्यायन ! वहाँ पर बहुत बड़ा जो आश्चर्य हुआ उसे मैं बतलाता हूँ सुनो ॥५९॥ ध्यान के विषयभूत श्रीरामजी हैं; उनका साक्षात्कार करके वे मुनि अत्यन्त हर्षित होकर दूसरे मुनियों से कहे ॥६०॥ हे मुनीश्वरों ! आपलोग मेरी मनोहर वाणी को सुनें । इस भूलोक में मेरे समान कोई भी दूसरा भाग्यवान नहीं है ॥६१॥ मेरे सामने कोई नहीं हैं, न हुआ और न होगा; क्योंकि श्रीरामभद्र ने मुझे नमस्कार करके मेरा स्वागत किया है ॥६२॥ जिनके चरण कमलों की धूलि का अन्वेषण श्रुतियाँ किया करती हैं, वे ही श्रीराम मेरे चरणोदक को पीकर अपने को पवित्र मानते हैं ॥६३॥ इस तरह से कहने वाले उस आरण्यक मुनि का ब्रह्मस्फोट हो गया और उससे निकला हुआ तेज श्रीरामजी में प्रवेश कर गया ॥६४॥ सरयूतीर के मण्डप में सभी लोगों के सामने ही वे मुनि योगियों के लिए भी दुर्लभ सायुज्य मुक्ति को प्राप्त कर लिए ॥६५॥ आकाश में बाजे बजने लगे, बीणा की भी ध्वनि हुयी और सबों के सामने ही पुष्प की वृष्टि हुयी ॥६६॥ मुनिजन भी इस आश्चर्य को देखकर उन मुनीश्वर की प्रशंसा करते हुए कहे कि ये मुनि मुक्त हो गये क्योंकि वे श्रीराम के शरीर में ही निवास प्राप्त कर लिये ॥६७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में आरण्यक मुनि के विष्णु लोक गमन वर्णन नामक सैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३७।।

* * *

अड़तीसवाँ अध्याय

व्यास उवाच

एतदाख्यानकं श्रुत्वा वात्स्यायन उदारधीः । परमं हर्षमापेदे जगाद च फणीश्वरम्॥१॥

वात्स्यायन उवाच

कथां संशृण्वते मह्यं तृप्तिर्नास्ति फणीश्वर ! ।
रघुनाथस्य भक्तार्तिहारिकीर्तिकरस्य वै ॥२॥
धन्य आरण्यको नाम मुनिर्वेदधरः परः । रघुनाथं समालोक्य देहं तत्याज नश्वरम्॥३॥
ततो राज्ञो हयः कुत्रः गतः केन नियन्त्रितः ।
कथं तत्र रमानाथकीर्तिर्जाता फणीश्वर ! ॥४॥
सर्वं कथय मे तथ्यं सवज्ञोऽस्ति यतो भवान् ।
धराधरवपुर्धारी साक्षात्तस्य स्वरूपधृत् ॥५॥

व्यास उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य प्रहृष्टेनान्तरात्मना । उवाच रामचरित्रं तत्तद्गुणकथोदयम् ॥६॥

शेष उवाच

साधु पृच्छसि विप्रर्षे रघुनाथगुणान्मुहुः । श्रुतानश्रुतवत्कृत्वा तेषु लोलुपतां दधन्॥७॥
ततो निरगमद्वाहः सैनिकैर्बहुभिर्वृतः । रेवातीरे मनोज्ञे तु मुनिवृन्दनिषेविते ॥८॥
सेनाचरास्ततः सर्वे यत्र वाहस्ततस्ततः । प्रसर्पन्ति निरीक्षन्तस्तन्मार्गं रणकोविदाः ॥९॥
वाजी गतोऽथरेवाया ह्रदेऽगाधजलान्विते। भाले स्वर्णभवं पत्रं धारयन्पूजिताङ्गकः ॥१०॥
ततो जले ममज्जासौ रामचन्द्रहयो वरः । तदा सर्वे महाशूरास्तत्र विस्मयमागताः ॥११॥

नर्मदा हृद में अश्व का स्नान

व्यासजी ने कहा— इस कथा का श्रवण करके उदार बुद्धि वाले महर्षि वात्स्यान हर्षित हुए और शेषजी से कहे ॥१॥ **वात्स्यायन महर्षि ने कहा**— हे फणीश्वर ! भक्तों के कष्ट को दूर करने वाले, यशस्वी श्रीरामचन्द्रजी की कथा सुनने से मुझे तृप्टि नहीं हो रही है ॥२॥ वेदों के परं ज्ञाता आरण्यक मुनि धन्य हैं । उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करके अपने नश्वर शरीर का परित्याग कर दिया ॥३॥ उसके वाद श्रीरामचन्द्रजी का अश्व कहाँ गया और उसे किसने रोका और वहाँ पर श्रीरामचन्द्रजी की कीर्ति कैसे हुयी ?॥४॥ आप तो सर्वज्ञ हैं, मुझे इन सारी बातों को बतलायें आप साक्षात् पृथिवी को धारण करने वाले शरीर को धारण किए हुए हैं ॥५॥ **व्यासजी ने कहा**— इस वाक्य को सुनकर अन्तरात्मा से प्रसन्न होकर विभिन्न गुणों से युक्त कथाओं वाले रामचरित्र को कहने लगे ॥६॥ **शेषजी ने कहा**— हे विप्रर्षे ! यह अच्छी वात है कि सुनी हुयी रामकथा को आश्रुत के समान वनाकर श्रीराम कथा में लोलुपता के कारण उसे पूछते हो ॥७॥ वहाँ से वह अश्व अनेक सैनिकों से घिरा हुआ निकला और मुनि समूह से सेवित वह रेवा नदी के तट पर गया ॥८॥ सभी सैनिक भी जहाँ-जहाँ अश्व जाता था उसके मार्ग को देखते हुए वहाँ-वहाँ जाते थे ॥९॥ इसके वाद वह अश्व अगाध जल वाले रेवा नदी हृद में प्रवेश कर गया उसके ललाट पर पत्र लगा था और उसके अङ्ग पूजित थे ॥१०॥ उसके वाद वह

ते परस्परमेवोचे कथं हयसमागमः । कोऽत्रगन्ता जले वाहमानेतुं तं महोदयम्॥१२॥
इति यावत्समुद्विग्रा मन्त्रयन्ते परस्परम् । तावद्वीरशतैः सार्थमाजगाम रघोः पतिः ॥१३॥
तान्सर्वान्विमनसकान्स दृष्ट्वा शत्रुघ्नसंज्ञितः ।
पप्रच्छमेघगम्भीरवाचा वीरशिरोमणिः ॥१४॥
किं स्थितं निखिलैरद्य युष्माभिः सङ्घशो जले ।
कुत्राश्वो रघुनाथस्य स्वर्णपत्रेण शोभितः ॥१५॥
जले किं विनिमग्नोऽसौ हृतो वा केन मानिना ।
तन्मे कथयत क्षिप्रं कथं यूयं विमोहिताः ॥१६॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य राज्ञो रघुवरस्य हि ।
कथयामासुस्ते सर्वं वीराः शूरशिरोमणिम् ॥१७॥

जना ऊचुः

स्वामिन्वयं न जानीमो मुहूर्तमभवज्जले। निममज्ज ततो नायाद्धयस्तव मनोहरः ॥१८॥
त्वमेव तत्र गत्वेवं वाहमानय वेगतः। अस्माभिस्तत्र गन्तव्यं त्वया सार्द्धं महामते ! ॥१९॥

शेष उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां सैनिकानां रघूद्वहः । खेदं प्राप जनान्पश्यञ्जलसन्तरणोद्यतान् ॥२०॥
उवाच मन्त्रिमुख्यं स किं कर्तव्यमतः परम् ।
कथं वाहस्य सम्प्राप्तिर्भविष्यति वदस्व तत् ॥२१॥
के तत्र शूराः संयोज्या जलेऽन्वेषयितुं हयम् ।
कोवाऽऽनयिष्यते वाहं केनोपायेन तद्वद ॥२२॥
इति राज्ञो वचः श्रुत्वा सुमतिर्मन्त्रिसत्तमः । उवाच समये योग्यं शत्रुघ्नं हर्षयन्निव ॥२३॥

रामचन्द्र का श्रेष्ठ अश्व जल में डूब गया । उस समय वहाँ पर विद्यमान सभी वीर आश्चर्यित हो गये ॥११॥ वे आपस में कहने लगे कि अश्व कैसे मिल सकता है ? उस अश्व को लाने के लिए जल में कौन जा सकता है?॥१२॥ इस तरह उद्विग्न होकर वे सब जब आपस में विचार कर रहे थे उसी समय सैकड़ों वीरों के साथ शत्रुघ्नजी वहाँ आ गये ॥१३॥ उन सबों को उदास देखकर वीर शिरोमणि शत्रुघ्नजी मेघ के समान गम्भीर वाणी में कहे ॥१४॥ आप सभी यहाँ जड़ के समान संघ बनाकर क्यों खड़े हैं । स्वर्ण पत्र से सुशोभित श्रीरामचन्द्रजी का अश्व कहाँ है ?॥१५॥ क्या यह जल में डूब गया हैं ? अथवा किसी अभिमानी ने उसका अपहरण कर लिया है ? आपलोग मुझे शीघ्र बतलायें आपलोग दुःखी क्यों हैं ?॥१६॥ राजा शत्रुघ्नजी की इस वाणी को सुनकर वे सभी वीर शिरोमणि शत्रुघ्नजी से कहे ॥१७॥ **लोगों ने कहा**— हे स्वामिन् ! हमलोग यह नहीं जान पा रहे हैं कि आपका मनोहर अश्व मूहूर्त भर पहले जल में प्रवेश किया और अब तक क्यों नहीं आया ॥१८॥ आप ही वेग पूर्वक उस अश्व को लाएँ । हमलोग भी आपके साथ वहाँ चलेंगे ॥१९॥ **शेषजी ने कहा**— सैनिकों की इस वाणी को सुनकर जल में संतरण करने के लिए उद्यत उन वीरों को देखकर शत्रुघ्नजी खिन्न हो गये ॥२०॥ उन्होंने अपने मुख्यमन्त्री से पूछा कि अब क्या करना चाहिए ? आप बतलायें की अश्व की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?॥२१॥ जल में घोड़े को खोजने के लिए किन वीरों को लगाना चाहिए ? आप बतलायें कि कौन किस

सुमतिरुवाच

स्वामिन्नस्ति तव श्रीमच्छक्तिरद्भुतकर्मणः। पातालगमने शक्तिर्जलमध्यादिह स्फुटम्॥२४॥

अन्यच्च पुष्कलस्यापि शक्तिरस्ति महात्मनः।
हनूमतोऽपिरामस्य पादसेवापरस्य च ॥२५॥

तस्माद्यूयं त्रयो गत्वा हयमानयत ध्रुवम्। यतो भवेद्वाहमेधो रघुनाथस्य धीमतः ॥२६॥

शेष उवाच

इति वाक्यं समाश्रुत्य शत्रुघ्नः परवीरहा। स्वयं विवेश तोयान्तर्हनुमत्पुष्कलान्वितः ॥२७॥
यावज्जलं विवेशासौ तावत्पुरमदृश्यत। अनेकोद्यानशोभाढ्यममेयं पुटभेदनम्॥२८॥
तत्र माणिक्यरचिते स्तम्भे स्वर्णमये हयम्। बद्धं ददर्श रामस्य स्वर्णपत्रसुशोभितम्॥२९॥
स्त्रियस्तत्र मनोहारि रूपधारिण्य उत्तमाः। सेवन्ते सुन्दरीमेकां पर्यङ्के सुखमास्थिताम् ॥३०॥

तान्दृष्ट्वा ताः स्त्रियः सर्वाः प्रावोचन्स्वामिनीं प्रति।
एतेऽल्पवर्ष्मवयसो मांसपुष्टकलेवराः ॥३१॥

भविष्यन्ति तव श्रेष्ठमाहारस्य फलं महत्। एतेषां शोणितं स्वादु पुरुषाणां गतायुषाम्॥३२॥
एतद्वचः समाकर्ण्य सेविकानां वराङ्गना। जहास किञ्चिद्वदनं नर्तयन्ती भ्रुवाऽनघा॥३३॥
तावत्त्रयस्ते सम्प्राप्ताः सन्नाहश्रीविशोभिताः। शिरस्त्राणानि दधतः शौर्यवीर्यसमन्विताः ॥३४॥
तान्दृष्ट्वा महिलास्तत्र सौन्दर्यश्रीसमन्विताः। प्रोचुस्ते विस्मयं विप्र ! किमिदं दृश्यते महत्॥३५॥
नमश्चक्रुर्महात्मानः सर्वे देववराङ्गनाः। किरीटमणिविद्योतद्योतिताङ्घ्रियुगास्ततः ॥३६॥
सा तान्पप्रच्छ पुरुषान्सर्वश्रेष्ठा तु भामिनी। के यूयमत्र सम्प्राप्ताः कथं चापधरा नराः ॥३७॥

उपाय से अश्व को ला सकेगा ॥२२॥ शत्रुघ्नजी की इस वाणी को सुनकर सुमति नामक मन्त्री ने शत्रुघ्नजी को प्रसन्न करते हुए समयोचित वाणी कहा ॥२३॥ **सुमति ने कहा**— हे अद्भुत कर्म करने वाले स्वामिन् ! आपमें जल के बीच से पाताल में जाने की शक्ति है ॥२४॥ श्रीराम के चरणों की सेवा करने वाले पुष्कल तथा हनुमानजी इन दोनों में भी ऐसी शक्ति है ॥२५॥ अतएव आप तीनों पाताल जाकर शीघ्र अश्व को लायें जिससे कि श्रीरामजी का अश्वमेध यज्ञ हो सकें ॥२६॥ **शेषजी ने कहा**— इस बात को सुनकर शत्रुघ्नजी हनुमानजी तथा पुष्कल के साथ जल में प्रवेश कर गये ॥२७॥ जल में प्रवेश करके उन्होंने अनेक उद्यानों से सुशोभित तथा अनेक परिखाओं से युक्त एक नगर को देखा ॥२८॥ वहाँ पर उन्होंने मणिमय स्तम्भ में बँधे हुए श्रीरामचन्द्रजी के स्वर्णपत्र से सुशोभित अश्व को देखा ॥२९॥ वहाँ पर अनेक मनोहर रूपों वाली स्त्रियाँ पलङ्ग पर सुख पूर्वक बैठी हुयी एक सुन्दरी की सेवा कर रही थीं ॥३०॥ उन तीनों लोगों को देखकर उन सभी स्त्रियों ने अपनी स्वामिनी से कहा— ये सभी छोटी अवस्था और छोटे शरीर वाले तथा मांस से पुण्य शरीर वाले हैं ॥३१॥ इन भूभुषु पुरुषों का स्वादिष्ट रक्त आपके आहार का महान् फल होगा ॥३२॥ सेविकाओं की इस वाणी को सुनकर अपने भौहों तथा मुखड़े को नचाती हुयी वह जोर से हँसी ॥३३॥ उसी समय कवचादि की शोभा से सुशोभित वे तीनों वहा आ गये। वे तीनों शिरस्त्राण धारण किए हुए और शौर्य वीर्य से युक्त थे ॥३४॥ उन तीनों को वहाँ पर देखकर वे सुन्दरी नारियाँ कहीं कि ये यह क्या दिखायी दे रहा है ॥३५॥ उसके बाद वे तीनों लोग उन किरीट की मणियों से प्रकाशित चरण युगल वाली देव स्त्रियों को प्रणाम किए ॥३६॥ उनमें जो सर्वश्रेष्ठ नारी

मत्स्थलं सर्वदेवानामगम्यं मोहनं महत् । अत्र प्राप्तस्य तु क्वापि निवृत्तिर्न भवत्युत ॥३८॥
अश्वोऽयं कस्य राज्ञो वै कथं चामरवीजितः ।
स्वर्णपत्रेण शोभाढ्यः कथयन्तु ममाग्रतः ॥३९॥
इति तस्या वचः श्रुत्वा मोहनाचारसंयुतम् । हनूमांस्तां प्रत्युवाच गतभीः प्रहसन्निव ॥४०॥
वयं वै किङ्करा राज्ञस्त्रैलोक्यस्य शिखामणेः ।
त्रिलोकीयं प्रणमते सर्वदेवशिरोमणिम् ॥४१॥
रामभद्रस्य जानीहि हयमेधप्रवर्तितुः । प्रमुञ्च वाहमस्माकं कथं बद्धो वराङ्गने ! ॥४२॥
वयं सर्वास्त्रकुशलाः सर्वशस्त्रास्त्रकोविदाः । नयिष्यामो बलाद्वाहं हत्वा तत्प्रतिरोधकान् ॥४३॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य प्लवङ्गमस्य वराङ्गना ।
विवरस्था प्रत्युवाच हसन्ती वाक्यकोविदा ॥४४॥
मयानीतमिमं वाहं न को मोचयितुं क्षमः । वर्षायुतेन निशितैर्बाणकोटिभिरुच्छिखैः ॥४५॥
परं रामस्य पादाब्जसेवकी कर्मकारिणी । न ग्रहीष्यामि तद्वाहं राजराजस्य धीमतः ॥४६॥
महानविनयो जातो मम नेत्र्याः सुवाजिनः । क्षमताद्रामचन्द्रस्तच्छरण्यो भक्तवत्सलः ॥४७॥
यूयं क्लिष्टास्तत्पुरुषा हयार्थं तस्य रक्षितुः। याचध्वं वरमप्राप्यं देवानामपि सत्तमाः ॥४८॥
यथा मेऽमी वमत्युग्रं क्षमेत पुरुषोत्तमः । व्रीडां त्यक्त्वाऽखिलां यूयं वृणुध्वं वरमुत्तमम्॥४९॥
तस्या वचः परं श्रुत्वा हनूमान्निजगाद ताम् ।
रघुनाथप्रसादेन सर्वमस्माकमूर्जितम् ॥५०॥
तथापि याचे वरमेकमुत्तमं विधेहि तन्मे मनसः समीहितम् ।
भवे भवे नो रघुनायकः पतिर्वयं च तत्कर्मकराश्च किङ्कराः ॥५१॥

थी उसने उन तीनों लोगों से पूछी; धनुष धारण किए हुए आपलोग कौन हैं और यहाँ कैसे आयें हैं ?॥३७॥ मेरा स्थान तो देवताओं के लिए भी अगम्य और मोहित करने वाला है । जो यहाँ आ जाता है वह कभी लौटकर नहीं जा पाता है ॥३८॥ यह किस राजा का अश्व है, इस पर चामर क्यों लगा है ? यह स्वर्णपत्र से क्यों सुशोभित है ? इसे आपलोग बतलायें ॥३९॥ मोह के आचार से युक्त उसकी वाणी को सुनकर निर्भय हनुमानजी ने हँसते हुए उससे कहा ॥४०॥ हमलोग त्रैलोक्य शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी के सेवक हैं । वे सभी देवताओं में श्रेष्ठ हैं । त्रैलोक्य उनको प्रणाम करता है । वे अश्वमेध याग कर रहे हैं । हे वराङ्गने ! आपने इस अश्व को क्यों बाँध रखा हैं ? इसे छोड़ दें ॥४१-४२॥ हमलोग सभी शस्त्रास्त्रों के जानने वाले और निपुण हैं । हमलोग रोकने वाले को मारकर बलपूर्वक अश्व को ले जायेंगे ॥४३॥ हनुमानजी के वाक्य को सुनकर वाक्यों को जानने वाली उस श्रेष्ठ नारी ने जो एक छिद्र में बैठी थी कही ॥४४॥ मेरे द्वारा लाये गये इस अश्व को कोई भी दश हजार वर्षो तक भी अपने तीक्ष्ण बाणों का प्रयोग करके नहीं छुड़ा सकता है ॥४५॥ किन्तु मैं राजाओं के भी राजा श्रीराम की सेविका हूँ; अतएव मैं उनके घोड़े को नहीं रख सकती हूँ ॥४६॥ इस अश्व को लाने वाली मेरे द्वारा बहुत बड़ा अपराध हो गया है । भक्तवत्सल भगवान् श्रीरामचन्द्र उस अपराध को क्षमा करें ॥४७॥ उस अश्व की रक्षा करने वाले आपलोगों को कष्ट उठाना पड़ा । आपलोग देवताओं के लिए भी दुर्लभ वरदान मुझसे माँग लें। जिससे कि मेरे इस उग्र अपराध को पुरुषोत्तम श्रीराम क्षमा कर दें । आपलोग लज्जा को त्याग करके उत्तम वरदान माँग लें ॥४८-४९॥ उसकी वाणी को सुनकर हनुमानजी ने कहा— भगवान् श्रीराम की कृपा से हमलोगों को सब कुछ प्राप्त है ॥५०॥ फिर भी एक सर्वोत्तम वरदान मैं माँगता हूँ उसे आप दें प्रत्येक जन्म में श्रीरामजी हमारे स्वामी हों और मैं उनका सेवक रहूँ ॥५१॥ हनुमानजी के इस वचन को सुनकर उसने जोर से हँसकर गुणों से

एतद्वचनमाकर्ण्य प्लवगस्य तदाऽङ्गना। उवाच वाक्यं मधुरं प्रहस्य गुणपूजितम् ॥५२॥
भवद्भिः प्रार्थितं यद्वै दुर्ल्लभं सर्वदैवतैः । तद्भविष्यत्यसन्देहः सेवकास्तद्रघोः पते ॥५३॥
तथापि वरमेकं वै दास्यामि कृतहेलना। रघुनाथस्य तुष्ट्यर्थं तदृतं मे भवेद्वचः ॥५४॥
अग्रे वीरमणिर्भूपो महावीरसमन्वितः। ग्रहीष्यति भवद्वाहं शिवेन परिरक्षितः ॥५५॥
तज्जयार्थे महास्त्रं मे गृह्णीत सुमहाबलाः । द्वैरथे स तु योद्धव्यः शत्रुघ्नेन त्वया महान् ॥५६॥
इदमस्त्रं यदा त्वं तु क्षेपयिष्यसि सङ्गरे। अनेन पूतो रामस्य स्वरूपं ज्ञास्यते पुनः ॥५७॥
ज्ञात्वा तं वाजिनं दत्त्वा चरणे प्रपतिष्यति। तस्माद् गृह्णीध्वमस्त्रं तन्मम वैरि विदारणम् ॥५८॥
तच्छ्रुत्वा रघुनाथस्य भ्राता जग्राह चास्त्रकम् ।
उदङ्मुखः पवित्राङ्गो योगिन्या दत्तमद्भुतम् ॥५९॥
तात्प्राप्याणं (स्त्रं) महातेजा बभूव रिपुकर्शनः ।
दुष्प्रधर्ष्यो दुराराध्यो वैरिवारणसत्सृणिः ॥६०॥
तां नत्वा राघवश्रेष्ठः शत्रुघ्नो हयसत्तमम्। गृहीत्वाऽगाज्जलात्तस्माद्रेवातीरे सुखोचिते॥६१॥
तं दृष्ट्वा सैनिकाः सर्वे प्रहृष्टाङ्गा मुदान्विताः ।
साधु साधु प्रशंसन्तः प्रपच्छुर्हयनिर्गमम् ॥६२॥
हनूमान्कथयामास हयस्यागमनं महत्। वरप्राप्तिं च तेभ्यो वै तेऽपि श्रुत्वा मुदंगताः॥६३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे शत्रुघ्नस्य योगिनीदर्शनपूर्वकं जलमध्याद्वाहप्राप्तिर्नामाष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३८॥

* * *

युक्त वाणी में कहा ॥५२॥ आपने जो माँगा है, वह तो सभी देवताओं के लिए दुर्लभ है । आपलोग श्रीराम के निःसन्देह रूप से सेवक होंगे ॥५३॥ फिर भी अपराधिनी मैं एक वरदान अवश्य दूँगी । जिससे कि श्रीराम को सन्तोष हो जाय और मेरी वाणी भी सत्य हो जाय ॥५४॥ आगे महावीरों ये युक्त वीरमणि नामक राजा है । उसकी रक्षा शिवजी करते हैं वह आपलोगों के अश्व को पकड़ेगा ॥५५॥ हे महाबलवानों ! उस पर विजय प्राप्त करने के लिए आपलोग मेरे महास्त्र को ग्रहण करें । संग्राम स्थल में शत्रुघ्नजी उसके साथ युद्ध करेंगे ॥५६॥ आप युद्ध में इस अस्त्र का प्रयोग करेंगे तो इससे वह पवित्र हो जायेगा और श्रीरामचन्द्र के स्वरूप को जान जायेगा ॥५७॥ भगवान् को जानकर वह घोड़े को देकर आपके चरणों में गिरेगा । अतएव आप मेरे इस शत्रु विनाशक अस्त्र को ग्रहण करें ॥५८॥ यह सुनकर शत्रुघ्नजी ने पवित्र होकर उत्तरभिमुख होकर उस योगिनी के द्वारा अद्भुत अस्त्र को ग्रहण किया ॥५९॥ उसको प्राप्त करके शत्रुघ्नजी महातेजस्वी दुष्प्रधर्ष्य, दुराराध्य वैरीरूपी हाथी के अङ्कुश बन गये ॥६०॥ इसके वाद उसको प्रणाम करके तथा श्रेष्ठ अश्व को लेकर उस जल से रेवा नदी के तट पर आ गये ॥६१॥ उनको देखकर सभी सैनिक आनन्दमय हो गये और पूछे कि अश्व की प्राप्ति कैसे हुयी ?॥६२॥ हनुमानजी ने जिस तरह से अश्व की प्राप्ति हुयी थी उसे वतलाया और उन्होंने वर प्राप्ति की बात बतलायी उसे सुनकर सव प्रसन्न हो गये ॥६३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में योगिनी के दर्शन पूर्वक जल के भीतर से अश्व की प्राप्ति का वर्णन नामक अड़तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३८।।

* * *

उनतालीसवाँ अध्याय

शेष उवाच

निनदत्सु मृदङ्गेषु वीणानादेषु सर्वतः। मुक्तो वाहस्ततो देवपुरं देवनिर्मितम्॥१॥
यत्र स्फाटिककुड्यानां रचनाभिर्गृहा नृणाम् ।
हसन्ति विन्ध्यं विमलं पर्वतं नागसेवितम् ॥२॥
राजतानि गृहाण्यत्र दृश्यन्ते प्रकृतेरपि। विचित्रमणिसन्नद्धा नानामाणिक्यगोपुराः॥३॥
पद्मिन्यो यत्र लोकानां गेहे गेहे मनोहराः । हरन्ति चित्तानि नृणां मुखपद्मकलेक्षिताः ॥४॥
यत्र पद्मपरागणि गहे गेहे सुभूमिषु । बद्धः संलक्ष्यते विप्र ! तदोष्ठस्पर्धया नु कित् ॥५॥
क्रीडाशैलाः प्रत्यगारं नीलरत्नविनिर्मिताः। कुर्वन्ति शङ्कां मेघस्य मयूराणां कलापिनाम्॥६॥
हंसा यत्र नृणां गेहे स्फाटिके सुनियन्त्रिताः ।
कुर्वन्ति मेघान्नो भीतिं मानसं न स्मरन्ति च ॥७॥
निरन्तरं शिवस्थाने ध्वस्तं चन्द्रिकया तमः। शुक्लकृष्णविभेदो न पक्षयोस्तत्र वै नृणाम्॥८॥
तत्र वीरमणी राजा धार्मिकेष्वग्रणीर्महान् । राज्यं करोति विपुलं सर्वभोगसमन्वितम्॥९॥
तस्य पुत्रो महाशूरो नाम्ना रुक्माङ्गदो बली ।
वनिताभिर्गतो रम्यदेहाभिः क्रीडितुं वनम् ॥१०॥
तासां मञ्जीरसंरावः कङ्कणानां रवस्तथा । मनोहरति कामस्य किमन्यस्य कथाऽत्र भोः ॥११॥
वनं जगाम सुमहत्सुपुष्पनगरसंयुतम् । सदाशिवकृतस्थानमृतुषट्कैर्विराजिम् ॥१२॥

अश्व का देवनगर में जाना

शेषजी ने कहा— जहाँ सर्वत्र मृदङ्ग और वीणा का ध्वनि होती थी उस देवताओं से निर्मित देवनगर में वह अश्व गया ॥१॥ वहाँ पर स्फटिक मणि की दिवारों की रचना से भवन बने थे हाथियों लोगों के गृह नागों हाथियों से सेवित स्वच्छ विन्ध्य पर्वत का उपहास करते थे ॥२॥ वहाँ के चाँदी से बने घर प्रकृति से भी अधिक विचित्र दिखते थे । वे अनेक माणिक्य निर्मित गोपुरों से युक्त थे ॥३॥ वहाँ के लोगों के प्रत्येक गृहों में पद्मिनी नारियाँ थीं व अपने मुख कमल को दिखाकर लोगों के चित्त का हरण करने का काम करती थीं ॥४॥ वहाँ के प्रत्येक गृहों के फर्श में पद्मराग मणि लगी थी जो नारियों के ओष्ठों से मानो स्पर्धा करने का काम करती थीं ॥५॥ वहाँ के प्रत्येक गृहों में नीलमणि से क्रीडशैल बने थे, जिसके कारण बर्हों से सुशोभित मयूरों को मेघों की आशंका होती थी ॥६॥ वहाँ पर स्फटिक मणि निर्मित हंस न तो मेघों से भयभीत होते थे और न मान सरोवर को याद करते थे ॥७॥ जहाँ पर भगवान् शेष के स्थान में सदा बनी रहने वाली चाँदनी शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष के भेद के बिना ही सदा अन्धकार को दूर करने का काम करती थी ॥८॥ वहाँ के राजा धार्मिकों में अग्रगण्य वीरमणि थे । वे सभी प्रकार के भोगों से युक्त विशाल राज्य का राज करते थे ॥९॥ उनके पुत्र का नाम रुक्माङ्गद था । वह महाबलवान् वीर था । वह सुन्दरी नारियों के साथ क्रीड़ा करने के लिए वन में गया था ॥१०॥ उन नारियों के नूपरों तथा कङ्गनों की ध्वनि काम के भी मन को आकृष्ट करती थी तो फिर दूसरों की कौन सी बात है ?॥११॥ सुन्दर पुंनाग वृक्षों से सुशोभित तथा छहो ऋतुओं से सुशोभित वहाँ पर सदैव शिवजी का निवास

चम्पका यत्र बहुशःफुल्लकोरकशोभिताः । कुर्वन्ति कामिनां तत्र हृच्छयार्त्तिविलोकिताः ॥१३॥
चूताःफलादिर्भिर्नम्रा मञ्जरीकोटिसंयुताः । नागाःपुन्नागवृक्षाश्च शालास्तालास्तमालकाः ॥१४॥
कोकिलानां समारावा यत्र च श्रुतिगोचराः। सदा मधुपभङ्झङ्कारगतनिद्राः सुमल्लिकाः ॥१५॥
दाडिमानां समूहाश्च कर्णिकारैः समन्विताः। केतकी कानकी वन्यवृक्षराजिविराजिताः ॥१६॥
तस्मिन्वने प्रमदसंयुतचित्तवृत्तिर्गायन्कलं मधुरवाग्विजिहीर्षयोच्चैः ।
उद्यत्कुचाभिरभितो वनिताभिरागाच्छोभानिधानवपुरुज्झितभीर्विवेश ॥१७॥
काश्चितं नृत्यविद्याभिस्तोषयन्ति स्म शोभनम् ।
काश्चिद् गानकलाभिश्च काश्चिद्वाक्चातुरोचितैः ॥१८॥
भ्रूसंज्ञाभिः पराः काश्चित्तोषयामासुरुन्मदाः। परिरम्भणचातुर्यैस्तं हृष्टं विदधुः स्त्रियः ॥१९॥
ताभिः पुष्पोच्चयं कृत्वा भूषयामास ताः स्त्रियः ।
वाण्या कोमलया शंसन् रेमे कामवपुर्धरः ॥२०॥
एवं प्रवृत्ते समये राजराजस्य धीमतः । प्रायात्तद्वनदेशं स हयः परशोभनः ॥२१॥
तं स्वर्णपत्ररचितैकललाटदेशं गङ्गासमं घुसृणकुङ्कुमपिञ्जराङ्गम् ।
गत्याऽसमं पवनवेगतिरस्करिण्या दृष्ट्वा स्त्रियः परमकौतुकधामदेहम् ॥२२॥
ऊचुः पतिं कमलमध्यपिशङ्गवर्णास्ताम्राधरप्रतिभया हतविद्रुमाभाः ।
दन्तव्रजप्रमितहास्यसुशोभिवक्त्राः कामस्य बाणनयनादिविमोहनाभाः ॥२३॥

था ऐसे वन में वह गया ॥१२॥ वहाँ पर बहुत अधिक कलियों से सुशोभित विकसित चम्पा के पुष्प देखने वालों के हृदय में काम के विकार को उत्पन्न कर देते थे ॥१३॥ वहाँ के आम्र वृक्ष फलों के भार से झुके हुए थे और उनमें करोड़ों मञ्जरियाँ लगी थीं । नाग, पुंनाग ताल तथा तमाल के वृक्ष वहाँ विद्यमान थे ॥१४॥ वहाँ कोयलों की ध्वनि सदा सुनायी पड़ती थी और मल्लिका पुष्पों पर सदा भौंरों की गुनगुनाहट सुनायी पड़ती थी ॥१५॥ वहाँ पर दाडिम वृक्षों के समूह से कर्णिकार के वृक्ष समन्वित थे और केतकी तथा सोनचम्पा से वन पंक्ति सुशोभित होती थी । उसी वन में प्रमदाओं के साथ जिसकी चित्त वृत्ति लगी हुयी थी, अत्यधिक विहार करने की इच्छा से मनोहर एवं मधुरगान करते हुए हर ओर से उन्नत स्तनों वाली नारियों से प्रेम के कारण सुन्दर शरीर वाला बना निर्भय हुआ रुक्मांगद प्रवेश किया ॥१६-१७॥ कुछ स्त्रियाँ उसको सुन्दर नृत्य विद्या से सन्तुष्ट करती थीं कुछ गीत की कलाओं से तथा कुछ अपनी वाक् चातुरी से उसको सन्तुष्ट कर रही थीं ॥१८॥ कुछ उन्मत्त नारियों ने उसे अपनी भृकुटि के विलास से सन्तुष्ट की और अपने आलिङ्गन की कलाओं से उसको उन नारियों से प्रसन्न किया ॥१९॥ कुछ स्त्रियों ने पुष्पों को एकत्रित करके उसको अलंकृत किया अपनी कोमल वाणी से उन सबों की प्रशंसा करते हुए रुक्माङ्गद ने काम के समान शरीर धारण करके उन सबों के साथ रमण किया ॥२०॥ उस बुद्धिमान् राजा के इस तरह से क्रीड़ा करने के ही समय उस वन में वह अत्यन्त सुन्दर अश्व प्रवेश किया ॥२१॥ स्वर्णपत्र से जिसका ललाट सुशोभित था, गङ्गा के समान उसके श्वेत अङ्गों में चन्दन लगा था, वायु के भी वेग को अपने वेग से तिरस्कृत करने वाले तथा अत्यन्त कौतुक के आश्रयभूत उस अश्व को देखकर ॥२२॥ कमल के पराग के समान गौराङ्गी तथा अपने ओष्ठों की कान्ति से विद्रुम को भी तिरस्कृत करने वाली दन्तापंक्ति की कान्ति से युक्त हास्य से सुन्दर मुख वाली तथा काम के बाण के समान नेत्रों से मोहित करने वाली स्त्रियों ने अपने

स्त्रिय ऊचुः

कान्त ! कोऽयं महानर्वा स्वर्णपत्रैकशोभितः ।
कस्यं वा भाति शोभाढ्यो गृहाण स्वबलादिमम् ॥२४॥

शेष उवाच

तदुक्तं वच आकर्ण्य लीलाललितलोचनः । जग्राह हयमेकेन करपद्मेन लीलया॥२५॥
वाचयित्वा स्वर्णपत्रं स्पष्टवर्णसमन्वितम्। जहास महिलामध्ये जगादवचनं पुनः ॥२६॥

रुक्माङ्गद उवाच

पृथिव्यां नास्ति मे पित्रा समः शौर्येण च श्रियः ।
तस्मिनकथं विधत्ते स उत्सेकं रमभूमिपः ॥२७॥
यस्य रक्षां प्रकुरुते यदा रुद्रः पिनाकधृत् । यं देवा दानवा यक्षा नमन्ति मणिमौलिभिः॥२८॥
कुरुताद्वाजिमेधं वै जनको मे महाबलः । यात्वेष वाजिशालायां बध्नन्तु मम वै भटाः ॥२९॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य महिलास्ता मनोहराः ।
प्रहृष्टवदना जाताः कान्तं तु परिरेभिरे ॥३०॥
गृहीत्वा च हयं पुत्रो राज्ञो वीरमणेर्महान् । पुरं पत्नीसमायुक्तो महोत्साहमवीविशत् ॥३१॥
मदृङ्गध्वनिषु प्रोच्चैराहतेषु समन्ततः। बन्दिभिः संस्तुतः प्रागात्स्वपितुर्मन्दिरं महत् ॥३२॥
तस्मै स कथयामास हयं नीतं रघोः पतेः। वाजिमेधाय निर्मुक्तं स्वच्छन्दगतिमद्भुतम् ॥३३॥
रक्षितं शत्रुसुदेन महाबलसमेतिना। तच्छुत्वा वचनं तस्य नृपो वीरमणिर्महान्॥३४॥
नातिप्रशंसयामास तत्कर्म सुमहामतिः । नीत्वा पुनः समायान्तं चौरस्येव विचेष्टितम् ॥३५॥
कथयामास जामात्रे शिवायाद्भुतकर्मणे । अर्धाङ्गनाथरायाङ्गभूषाय चन्द्रधारिणे ॥३६॥
तेन संमन्त्रयामास नृपो वीरमणिर्महान्। पुत्र ! सृष्टं महत्कर्म विनिन्द्यं महतां मतः ॥३७॥

पति से कहा ॥२३॥ **स्त्रियों ने कहा**— हे कान्त ! स्वर्ण पत्र से सुशोभित यह किसका अश्व है तथा कैसा है? इसको आप अपने बल से पकड़ लें ॥२४॥ **शेषजी ने कहा**— उस वाणी को सुनकर लीला से मनोहर बने हुए नेत्रों वाले रुक्माङ्गद ने अपने एक हाथ से अश्व को पकड़ लिया ॥२५॥ स्पष्ट वर्णों से युक्त उस स्वर्ण पत्र को बांचाकर वह राजा नारियों के बीच में जोर से हँसा और फिर कहा ॥२६॥ **रुक्माङ्गद ने कहा**— मेरे पिता के समान पृथिवी पर कोई भी शौर्य और ऐश्वर्य से सम्पन्न नहीं है । उनके रहते हुए वह काम राम का राजा कैसे यह अभिमान करते हैं ॥२७॥ मेरे पिता की रक्षा पिनाकधारी रुद्र करते हैं इस अश्व को मेरे अश्वशाला में ले जाकर मेरे सैनिक बाँध दें ॥२८-२९॥ इस बात को सुनकर उन मनोहर स्त्रियों ने प्रसन्न होकर अपने पति का आलिङ्गन किया ॥३०॥ महान राजा वीरमणि के पुत्र ने अश्व को पकड़कर अत्यन्त उत्साह पूर्वक अपनी पत्नियों के साथ नगर में प्रवेश किया ॥३१॥ चारों ओर से जहाँ मृदङ्ग की ध्वनि जोर से हो रही थी, वन्दीजन स्तुति कर रहे थे ऐसे अपने पिता के गृह में उसने प्रवेश किया ॥३२॥ उसने राजा से कहा कि मैंने रघुपति के अश्व को पकड़ लिया है । वह स्वच्छन्द गति वाला अश्व अश्वमेध के लिए छुटा हुआ है ॥३३॥ उसकी रक्षा विशाल सेना से युक्त शत्रुघ्न करते हैं । उसकी वाणी को सुनकर महान् राजा वीरमणि ने ॥३४॥ अश्व को पकड़कर चोर के समान लाते हुए उसके कर्म की रुक्माङ्गद ने प्रशंसा नहीं की ॥३५॥ उन्होंने अपने जमाता, अद्भुत कर्म करने

शिव उवाच

राजन्पुत्रेण भवतः कृतं कर्म महाद्भुतम्। यो जहार महावाहं रामचन्द्रस्य धीमतः॥३८॥
अद्य युद्धं महद्भाति सुरासुरविमोहनम्। शत्रुघ्नेन महीभर्त्रा वीरकोट्येकरक्षिणा ॥३९॥
मया यो ध्रियते स्वान्ते जिह्वया प्रोच्यते हि यः ।
तस्य रामस्य यज्ञाङ्गं जहार तव पुत्रकः ॥४०॥
परमत्र महाँल्लाभो भविष्यति रणाङ्गणे। यद्रामचरणाम्भोजं द्रक्ष्यामः स्वीयसेवितम् ॥४१॥
अत्र यत्नो महान्कार्यो हयस्य परिरक्षणे। नयिष्यन्ति बलाद्वाहं मया रक्षितमप्यमुम्॥४२॥
तस्मादिमं महाराज ! राज्येन सह सन्नतः। वाजिने भोजनं दत्त्वा प्रेक्षस्वाङ्घ्रियुगं ततः ॥४३॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य शिवस्य स नृपोत्तमः ।
उवाच तं सुरेन्द्रादिवन्द्यपादाम्बुजद्वयम् ॥४४॥

वीरमणिरुवाच

क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रतापस्य रक्षणम् । तदसौ क्रान्तुमुद्युक्तः क्रतुना हयसंज्ञिना ॥४५॥
तस्माद्रक्ष्यः स्वप्रतापो येन केनाऽपि मानिना ।
यावच्छक्यं कर्म कृत्वा शरीरव्ययकारिणा ॥४६॥
सर्वं कृतं सुतेनेदं गृहीतोऽश्वः पुनर्यतः। कोपितं रामभूपालं समयार्हं कुरु प्रभो ! ॥४७॥
क्षत्रियाणामिदं कर्म कर्तव्यार्हं भवेन्नहि। यदकस्माद्रिपोः पादौ प्रणमेद्भयविह्वलः ॥४८॥
रिपवो विहसन्त्येनं कातरोऽयं नृपाधमः। क्षुद्रः प्राकृतवन्नीचो नतवान्भयविह्वलः ॥४९॥

वाले अर्धनारीश्वर तथा चन्द्रमौलि से जाकर इस वात को बतलाया ॥३६॥ उसके द्वारा मन्त्रणा करके महान् राजा वीरमणि ने महापुरुषों के द्वारा निन्दित कर्म को बतलाया ॥३७॥ **शिवजी ने कहा**— आपके राजकुमार ने महान् और अद्भुत कर्म को किया है कि उसने भगवान् श्रीरामचन्द्र के महाअश्व का अपहरण किया है ॥३८॥ लगता है आज देवताओं और असुरों को मोहित करने वाला युद्ध होने वाला है । एक करोड़ वीरों की रक्षा करने वाले शत्रुघ्न के साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध होगा ॥३९॥ जिन श्रीराम को मैं अपने अन्त:करण में रखता हूँ और जिह्वा से उनका उच्चारण करता हूँ उन श्रीरामचन्द्र के यज्ञ के अङ्गभूत अश्व का तुम्हारे पुत्र ने अपहरण कर लिया है।॥४०॥ किन्तु इस युद्ध में एक महान् लाभ होगा कि हमें श्रीराम के चरणों का दर्शन मिल जायेगा ॥४१॥ इस अश्व की रक्षा करने का खूब प्रयास करना चाहिए । मेरे द्वारा रक्षित होने पर भी वे बल पूर्वक इस अश्व को ले जायेंगे ॥४२॥ अतएव महाराज ! राज्य के साथ सावधानी पूर्वक इस अश्व को भोजन देकर इसके चरण युगल को आप देखें ॥४३॥ इस तरह शिवजी की वाणी को सुनकर श्रेष्ठ राजा ने; इन्द्र आदि जिनके चरण युगल की वन्दना करते हैं उन शिवजी से कहा ॥४४॥ **वीरमणि ने कहा**— अपने प्रताप की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म है उसका यह अश्वमेध यज्ञ अतिक्रमण करना चाहता है ॥४५॥ अतएव स्वाभिमानी पुरुष को हर प्रकार से अपने प्रताप की रक्षा करनी चाहिए । चाहे इसके लिए शरीर भी नष्ट हो जाय ॥४६॥ हे प्रभो ! यह सब पुत्र ने किया है उसी ने घोड़े को पकड़ा है और श्रीरामजी को कुपित बनाया है; अब आप जो समयोचित हो उसे करें ॥४७॥ क्षत्रियों के लिए यह कर्म नहीं करने योग्य है कि अकस्मात् शरणागत होकर शत्रु के चरणों पर गिर पड़े ॥४८॥ ऐसा करने वाले यह शत्रुगण यह कहकर उपहास करते हैं कि कायर, अधम राजा, क्षुद्र और प्राकृत मनुष्य के

तस्मान्भवान्यथायोग्यं योद्धव्ये समुपस्थिते । यद्विधेयं विचार्यैव कर्तव्यं भक्तरक्षणम् ॥५०॥

शेष उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य चन्द्रचूडोऽवदद्वचः । प्रहसन्मेघगम्भीरवाण्या संमोहयन्मनः ॥५१॥
यदि देवास्त्रयस्त्रिंशत्कोट्यः समुपस्थितः । तथापि त्वत्तः केनाश्वो गृह्यते मम रक्षितुः ॥५२॥
यदि रामः समागत्य स्वात्मानं दर्शयिष्यति। तदाऽहं चरणौ तस्य प्रणमामि सुकोमलौ ॥५३॥
स्वामिना न हि योद्धव्यं महाननय उच्यते । अन्ये वीरास्तृणप्रायाः किञ्चित्कर्तुं न वै क्षमाः॥५४॥
तस्माद्युद्ध्यस्व राजेन्द्र ! रक्षके मयि सुस्थिते ।
को गृह्णाति बलाद्वाहं त्रिलोकी यदि सङ्गता ॥५५॥
एतद्वचः परं श्रुत्वा चन्द्रचूडस्य भूमिपः। जहर्ष मानसेऽत्यन्तं युद्धकर्मणि कौतुकी ॥५६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे वीरमणिपुत्रेण
हयग्रहणं नामैकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥३९॥

* * *

समान नीच है, क्योंकि यह भयभीत होकर शरणागत हो गया ॥४९॥ अतएव युद्ध के उपस्थित होने पर यथोचित रूप से विचार करके आप अपने भक्त की रक्षा करें ॥५०॥ **शेषजी ने कहा**— इस वाक्य को सुनकर शङ्करजी ने जोर से हँसते हुए अपनी मेघ के समान गम्भीर वाणी से मन को मोहित करते हुए कहा ॥५१॥ यदि तैंतिस करोड़ भी देवता आ जायँ तो मेरे जैसे रक्षक के रहते अश्व को कौन ले जा सकता हैं ?॥५२॥ यदि श्रीराम स्वयम् आकर मुझे दर्शन दे देंगे तव तो मैं उनके कोमल चरणों पर गिर पड़ूंगा ॥५३॥ स्वामी के साथ युद्ध करना महान अपराध है, अतएव राजेन्द्र आप युद्ध करें मैं आपकी रक्षा करूँगा । यदि त्रिलोकी भी आ जाती हैं तो अश्व को कोई नहीं ले जा सकता है ॥५४-५५॥ शङ्करजी के इस वाणी को सुनकर युद्ध करने की इच्छा वाले राजा अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥५६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में वीरमणि के पुत्र द्वारा अश्व का ग्रहण वर्णन नामक उन्तालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३९।।

* * *

चालिसवाँ अध्याय

शेष उवाच

सेनाचरास्तु रामस्य महाबलसमन्विताः । समागतास्तं पश्यन्तो हयं रामस्य भूपतेः ॥१॥
क्वासावश्वः केन नीतः कथं वा दृश्यते न सः ।
को गन्ता यमपुर्यां वै वाहं हृत्वा सुमन्दधीः ॥२॥
विलोकयन्तस्तन्मार्गं यावत्सेनाचरा रघोः । तावत्प्राप्तो महाराजो महासैन्यपरीवृतः ॥३॥
पप्रच्छ सेवकान्सर्वान्कुत्राश्वो मम साम्प्रतम् । न दृश्यते कथं वाहः स्वर्णपत्रसुशोभितः ॥४॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा सेवकास्ते हयानुगाः । प्रोचुर्नाथ मनोवेगो वाहः केनापि कानने ॥५॥
हृतो न लक्ष्यते तस्मादस्माभिर्मार्गकोविदैः । तदत्र यत्नः कर्तव्यो हरप्राप्तिं प्रति प्रभो ! ॥६॥
तेषां वचनमाकर्ण्य प्रपच्छ सुमतिं नृपः ! । शत्रुघ्नः शत्रुसंहारकारी मोहनरूपधृत् ॥७॥

शत्रुघ्न उवाच

कोऽत्र राजा निवसति कथं वाहस्य सङ्गमः ।
कियद्बलं भूमिपतेर्येन मेऽद्य हृतो हयः॥८॥

सुमतिरुवाच

राजन्देवपुरं ह्येतद्देवेनैव विनिर्मितम् । कैलासमिव दुर्गम्यं वैरिसङ्घैः सुसंहतैः ॥९॥
अस्मिन्वीरमणी राजा महाशूरः प्रतापवान् । राज्यं करोति धर्मेण शिवेन परिरक्षितः ॥१०॥
योऽसौ प्रलयकारी स आस्ते भक्त्या वशीकृतः ।
चन्द्रचूडः स्वभक्तास्य पक्षपातं सृजन्सदा ॥११॥

वीरमणि के साथ शत्रुघ्नजी का युद्ध करने का निश्चय

शेषजी ने कहा— श्रीरामजी की सेना में रहने वाले वीर महाबलवान् थे । वे श्रीरामचन्द्रजी के घोड़े को देखते हुए वहाँ आ गये ॥१॥ वह अश्व कहाँ है, उसे कौन ले गया ? वह क्यों नहीं दिखता है ? कौन अज्ञानी जीव अश्व का हरण करके यमपुरी जाना चाहता है ?॥२॥ उसके मार्ग को देखते हुए श्रीराम की सेना के वीर कह रहे थे वहाँ उसी समय महाराज शत्रुघ्न भी विशाल सेना के साथ आ गये ॥३॥ उन्होंने सभी सेवकों से पूछा कि मेरा अश्व कहाँ है ? स्वर्ण पत्र से सुशोभित मेरा अश्व क्यों नहीं दिखता है ?॥४। उनकी वाणी को सुनकर अश्व का अनुगमन करने वाले सेवकों ने कहा— मनोवेग वाले अश्व को किसी ने वन में अपहरण कर लिया हैं ॥५॥ हरण कर लिए जाने के ही कारण हमलोग उसे नहीं देख पा रहे हैं । अतएव हे प्रभों ! अश्व को प्राप्त करने के लिए प्रयास करना चाहिए ॥६॥ उन सबों की वाणी को सुनकर शत्रुओं का विनाश करने वाले मनोहर रूपधारी शत्रुघ्नजी सुमति से पूछे ॥७॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा**— यहाँ पर कौन सा राजा रहता है, उसको अश्व कैसे मिला? जिसने मेरे अश्व का हरण किया है उस राजा का बल कितना है ?॥८॥ **सुमति ने कहा**— हे राजन् ! यह देवपुर है, इसका निर्माण देवताओं ने किया है । अत्यन्त संघटित शत्रु समुदाय के लिए यह कैलास पर्वत के समान दुर्गम्य है ॥९॥ यहाँ महावीर, प्रतापी तथा भगवान् शिव से संरक्षित राजा वीरमणि धर्मपूर्वक राज्य करते हैं॥१०॥ चन्द्रमौलि तथा प्रलयकारी भगवान् शिव राजा की भक्ति के द्वारा राजा के वश में हो गये हैं और सदैव

तस्मादत्र महद्युद्धं गृहीतश्चेद्भविष्यति । यत्ताः सन्तः प्रकुर्वन्तु रक्षणं कटकस्य हि ॥१२॥
एवं श्रुत्वा स शत्रुघ्नः सर्वभूपशिरोमणिः । सैन्यव्यूहं रचित्वाऽसौ तिष्ठतिस्म महायशाः॥१३॥
अथ तं सुखमासीनं मन्त्रयन्तं सुमन्त्रिणा । आजगाम स देवर्षियुद्धकौतुकसंयुतः॥१४॥
तमागतं मुनिं दृष्ट्वा शत्रुघ्नस्तपसां निधिम्। अभ्युत्थायासने स्थाप्य मधुपर्कमथार्पयत् ॥१५॥
स्वागतेन च सन्तुष्टं नारदं मुनिसत्तमम् । उवाच प्रीणयन्वाचा वाक्यवादविशारदः ॥१६॥

शत्रुघ्न उवाच

मदीयोऽश्वः कुत्र विप्र ! कथयस्व महामते ।
न लक्ष्यते गतिस्तस्य सेवकैर्मम कोविदैः ॥१७॥
शंस तं येन वा नीतं क्षत्रियेण च मानिना ।
कथमत्र हयप्राप्तिर्भविष्यति तपोधन ! ॥१८॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य शत्रुघ्नस्य स नारदः ।
उवाच वीणां रणयन्गायन्रामकथां मुहुः ॥१९॥

नारद उवाच

एतद्दैवपुरं राजन्भूपो वीरमणिर्महान् । तत्पुत्रेण वनस्थेन गृहीतस्तव वाजिराट् ॥२०॥
तत्र युद्धं महत्तेऽद्य भविष्यति सुदारुणम् । अत्र वीराः पतिष्यन्ति बलशौर्यसमन्विताः ॥२१॥
तस्मादत्र महायत्नात्स्थातव्यं ते महाबल ! । रचय व्यूहरचनां दुर्गमां परसैनिकैः ॥२२॥
जयस्ते भविता राजन्कृच्छ्रेणास्मान्नृपोत्तमात्। रामं कोऽनुपराजीयाद् भुवने सकले ह्यपि॥२३॥
इत्युत्तवाऽन्तर्दधे विप्रो नभसि स्थितवास्ततः ।
युद्धं सुदारुणं द्रक्ष्यन्देवदानवयोरिव ॥२४॥

अपने भक्त का पक्षपात करते हैं ॥११॥ यदि उसने अश्व पकड़ा है तो यहाँ भयङ्कर युद्ध होगा । अतएव आपलोग सावधानी पूर्वक सेना की रक्षा करें ॥१२॥ यह सुनकर सभी राजाओं में शिरोमणि शत्रुघ्नजी सेना का व्यूह वनाकर वहाँ ठहर गये ॥१३॥ उसके बाद सुखपूर्वक बैठे हुए तथा मन्त्री से मन्त्रणा करते हुए शत्रुघ्नजी के पास युद्ध देखने के कौतुक वाले नारदजी आ गये ॥१४॥ आये हुए तपोनिधि नारदजी को देखकर शत्रुघ्नजी उठकर खड़े हो गये । इसके बाद उन्हें आसन पर बैठाकर वे मधुपर्क प्रदान किए ॥१५॥ स्वागत से सन्तुष्ट हुए मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी को वाणी से प्रसन्न करते हुए बोलने में चतुर शत्रुघ्नजी ने कहा ॥१६॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा—** हे महामते विप्र ! बतलायें कि मेरा अश्व कहाँ है ? मेरे जानकार सेवक यह पता नहीं लगा पा रहे हैं कि वह कहाँ गया ?॥१७॥ आप बतलायें कि कौन अभिमानी क्षत्रिय उसे ले गया है ? हे तपोधन ! यहाँ अश्व की प्राप्ति कैसे होगी ?॥१८॥ शत्रुघ्नजी के इस वाक्य को सुनकर नारदजी ने वीणा को बजाते हुए और राम कथा को गाते हुए कहा ॥१९॥ **नारदजी ने कहा—** राजन् ! यह देवपुर है; यहाँ के महान् राजा वीरमणि हैं । वन में स्थित उस राजा के पुत्र ने आपके अश्व को पकड़ लिया है ॥२०॥ अतएव यहाँ पर आपका भयङ्कर युद्ध होगा । यहाँ पर बल एवं शौर्य से समन्वित वीर मारे जायेंगे ॥२१॥ अतएव हे महाबलवान् ! आपको अत्यधिक प्रयास करना होगा । आप शत्रुओं की सेना के लिए दुर्गम व्यूह की रचना करें ॥२२॥ राजन् ! इस राजा के ऊपर आप बहुत कष्ट से विजय प्राप्त करेंगे । सम्पूर्ण संसार में रामचन्द्रजी को कौन पराजित कर सकता है ?॥२३। यह कहकर

शेष उवाच

अथ राजा वीरमणिः सर्वशूरशिरोमणिः। पटहं घोषितुं स्वीये पुरमध्ये महारवम् ॥२५॥
आह्वयामास सेनान्यं रिपुवीरं महोन्नतम्। कथयामास च क्षिप्रं मेघगम्भीरया गिरा ॥२६॥

वीरमणिरुवाच

सेनानी पटहस्याज्ञां देहि मे शोभने पुरे। तच्छ्रुत्वा मे सुसन्नद्धाः शत्रुघ्नं प्रतियान्तु ते ॥२७॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य राज्ञो वीरमणेस्तदा। कारयामास पटहं महारवनिनादितम् ॥२८॥
गेहे गेहे च रथ्यायां श्रूयते पटहध्वनिः। शत्रुघ्नं यान्तु ये सर्वे वीरा राजपुरे स्थिताः॥२९॥
ये वै राज्ञः समुल्लङ्घ्य शासनं वीरमानिनः ।
पुत्रा वा भ्रातरो वापि ते वध्याः स्युर्नृपाज्ञया ॥३०॥
शृण्वन्तु वीराः पुनरप्याहते पटहे रवम्। श्रुत्वा विधीयतामाशु कर्तव्यं मा विलम्बितम् ॥३१॥

शेष उवाच

इति पटहरवं स्वकर्णगोचरं नरवरवीरवराययुर्नृपोत्तमम् ।
कनककवचभूषितस्वदेहाः समरमहोत्सवहृष्टचित्तकोशाः ॥३२॥
केचिद्ययुः शिरस्त्राणं धृत्वा शिरसि शोभनम् ।
कवचेन सुशोभाढ्याः शतकोटिसुशोभिताः ॥३३॥
रथेन हययुग्मेन मणिकञ्चनशोभिना । ययुस्ते राजसन्देशान्नृवरा युद्धदुर्मदाः ॥३४॥
केचिन्मतङ्गजैर्मत्तैः केचिद्वाहैः सुशोभनैः । ययुर्नृपगृहं सर्वे राजसन्देशकारकाः ॥३५॥
विविक्तस्वर्णकवचशिरस्त्राणसुशोभितः । रुक्माङ्गदोऽपि च निजे रथे तिष्ठन्मनोजवे॥३६॥

नारदजी अन्तर्धान हो गये और देव-दानव संग्राम के समान संग्राम देखने की इच्छा से आकाश में जाकर स्थित हो गये ॥२४॥ **शेषजी ने कहा—** इसके बाद राजा वीरमणि जो सभी वीरों में शिरोमणि थे वे अपने नगर में महान् ध्वनि करने वाले पटह का घोष करने के लिए मेघ के समान गम्भीर वाणी में आदेश दिए ॥२५-२६॥ **वीरमणि ने कहा—** सेनापते ! आप मेरे सुन्दर नगर में महारव पटह की ध्वनि करा दें और उसको सुनकर सभी वीर शत्रुघ्नजी से युद्ध करने के लिए शत्रुघ्नजी के समक्ष जायँ ॥२७॥ राजा वीरमणि के इस वाक्य को सुनकर सेनापति ने घोर ध्वनि करने वाले पटह की ध्वनि कराया ॥२८॥ प्रत्येक घरों तथा प्रत्येक गलियों में पटह की ध्वनि सुनायी पड़ने लगी। इस राजा की नगरी में जो भी वीर हों वे शत्रुघ्न से युद्ध करने के लिए जायँ ॥२९॥ अपने को वीर मानने वाले राजा के चाहे पुत्र हों या भाई, राजा की आज्ञा का जो उल्लंघन करेगा वह राजा का वध्य होगा ॥३०॥ सभी वीर पुनः सुन लें पटह के बजने पर उसकी ध्वनि सुनकर शीघ्रता करें देर न करें ॥३१॥ **शेषजी ने कहा—** इस तरह से अपने कानों से पटह की ध्वनि सुनकर श्रेष्ठ वीर सुवर्ण कवच को धारण करके उस राजवर्य के पास गये। युद्ध रूप महोत्सव के कारण उनका चित्त रूपी कोश विकसित हो गया था ॥३२॥ कुछ वीर सुन्दर शिरस्त्राण धारण करके तथा वज्र से सुशोभित कवच को धारण करके दो घोड़ों वाले तथा सुवर्ण एवं मणि जटित रथ से राजा की आज्ञा पाकर युद्धदुर्मद होकर गये ॥३३-३४॥ कुछ वीर मदमत्त हाथी पर सवार होकर, कुछ सुन्दर घोड़ों से राजा की आज्ञा मानकर राजा के घर गये ॥३५॥ शुद्ध सुवर्ण तथा शिरस्त्राण से सुशोभित होकर रुक्माङ्गद भी मन के समान वेग वाले रथ से राजा के पास गये ॥३६॥ रुक्माङ्गद के अनुज

शुभाङ्गदोऽनुजस्तस्य महारत्नमयं दधन् । कवचं वपुषि श्रेष्ठं निजं प्रायाद्रणोत्सवे ॥३७॥
राजभ्राता वीरसिंहः सर्वशस्त्रास्त्रकोविदः । ययौ नृपाज्ञया तत्र शासनं भूमिपस्य हि ॥३८॥
जामेयस्तस्य राज्ञोऽपि बलमित्र इति स्मृतः ।
सन्नद्धः कवची खड्गी जगाम नृपमन्दिरम् ॥३९॥
सेनानी रिपुवारोऽपि सेनां तां चतुरङ्गिणीम् ।
सज्जां विधाय भूपाय न्यवेदयदथो महान् ॥४०॥
अथ राजा वीरमणिः सर्वशस्त्रास्त्रपूरितम् । मणि सृष्टोच्चचक्रोच्चमारोहत्स्यन्दनोत्तमम्॥४१॥
ततो वीरार्णवे शङ्खनिनादश्च समन्ततः । श्रूयते कातरान्वीरान्प्रेरयन्निव सङ्गरे॥४२॥
भेर्यः समन्ततो जघ्नुः शुभवादकवादिताः । अनीकान्यत्र तस्यायन्सङ्ग्रामायप्रतस्थुषः॥४३॥
सर्वे कृतस्वस्त्ययनाः सर्वाभरणभूषिताः। सर्वशस्त्रास्त्रसम्पूर्णा ययुः समरमण्डलम्॥४४॥
भेरीशङ्खनिनादेन पूरिताश्च नगागुहाः । आकारितुं गतःकिंनु तद्रवः स्वर्गसंस्थितान् ॥४५॥
तस्मिन्कोलाहले वृत्ते राजा वीरमणिर्महान्। रणोत्साहेन संयुक्तो ययौ प्रधनमण्डलम्॥४६॥
आगत्य संस्थितस्तावद्रथपत्तिसमाकुलम् । समुद्र इव तत्स्थानात्प्लावितुं पुरुषानयात्॥४७॥
तदागतं बलं दृष्ट्वा रथिभिः शस्त्रकोविदैः। कोलाहलीकृतं सर्वमुवाच सुमतिं नृपः ॥४८॥

शत्रुघ्न उवाच

समागतो वीरमणिर्मम वाजिधरो बली। योद्धुं मां महता भूयः सैन्येन चतुरङ्गिणा ॥४९॥
कथं युद्धं प्रकर्तव्यं के योत्स्यन्ति बलोत्कटाः ।
तान्सर्वान्दिश मे वीरान्यथा स्याज्जय ईप्सितः ॥५०॥

सुमतिरुवाच

स्वामिन्नसौ महाराजो महासैन्यपरीवृतः । समागतः स युद्धार्थं शिवभक्तिसमन्वितः॥५१॥

शुभाङ्गद भी रत्नमय श्रेष्ठ कवच को धारण करके युद्धस्थल में गये ॥३७॥ सभी शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता तथा राजा के भाई वीरसिंह भी राजा की आज्ञा से युद्ध में गये ॥३८॥ राजा के बहनोई बलमित्र थे कवच तथा खड्ग से सजकर राजा के गृह में गये ॥३९॥ सेनापति रिपुवार भी राजा के लिए चतुरङ्गिणी सेना को सजाकर राजा को निवेदित किए ॥४०॥ इसके बाद सभी शस्त्रास्त्रों से परिपूर्ण तथा मणियों से निर्मित चक्कों वाले विशाल रथ पर राजा वीरमणि भी सवार हुए ॥४१॥ उसके बाद उस वीर रूपी महासागर में चारों ओर शङ्ख ध्वनि होने लगी। मानो वह ध्वनि कातर वीरों को युद्ध करने के लिए प्रेरित कर रही थी ॥४२॥ सुन्दर वादकों के द्वारा बजायी गयीं भेरियाँ चारो ओर बजने लगीं । उस समय सेनाएँ प्रस्थान करने के लिए उद्यत थीं ॥४३॥ सबों का स्वस्ति वाचन किया जा चुका था, वे सभी आभरणों से भूषित रहकर तथा सभी शस्त्रास्त्रों से परिपूर्ण होकर युद्ध मण्डल में गये ॥४४-४६॥ सब रथ तथा पैदल सेना से परिपूर्ण सेना में आकर सब खड़े हो गये । जैसे समुद्र पुरुषों को डुबो देना चाहता हो ॥४७॥ उस समय आयी हुयी सेना को देखकर शस्त्रों के ज्ञाता सभी रथी कोलाहल करने लगे । उस समय राजा शत्रुघ्न ने सुमति से कहा ॥४८॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा—** मेरे अश्व को पकड़ने वाले वीरमणि चतुरङ्गिणी सेना के साथ युद्ध करने के लिए आ गये हैं ॥४९॥ युद्ध कैसे करना चाहिए ? कौन बलवान् वीर युद्ध करेंगे । आप वीरों को ऐसा आदेश दें की हमारी विजय हो ॥५०॥ **सुमति ने कहा—** हे

साम्प्रतं युद्ध्यतां वीरः पुष्कलः परमास्त्रवित् ।
अन्येऽपि नीलरत्नाद्या योद्धारो युद्धकोविदाः ॥५२॥
शिवेन सह योद्धव्यं राज्ञा वा भवताऽनघ ! ।
द्वन्द्वयुद्धेन जेतव्यो महाबलपराक्रमः ॥५३॥
अनेन विधिना राजञ्जयस्तेऽत्र भविष्यति । पश्चाद्यद्रोचते स्वामिंस्तत्कुरुष्व महामते ॥५४॥

शेष उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य शत्रुघ्नः परवीरहा । सुभटानादिदेशाथ युद्धाय कृतनिश्चयः ॥५५॥
सर्वैः ससैन्यैर्युद्धार्थं राजभिः शस्त्रकोविदैः। यथास्यान्मे जयःक्षिप्रं यतितव्यं तथा पुनः ॥५६॥
जयार्थं राघवस्यैव श्रुत्वा ते रणकोविदाः । महोत्साहेन संयुक्ता ययुर्योद्धुं तु सैनिकैः ॥५७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
वीरमणिना सह युद्धनिश्चयो नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यः ॥४०॥

एकतालिसवाँ अध्याय

शेष उवाच

युद्धाय ते सुसन्नद्धाः शत्रुघ्नस्य महाबलाः । ययुर्वीरमणेः सैन्यमध्ये शौर्यसमन्विताः ॥१॥
शरान्विमुञ्चमानास्ते भिन्दन्तः सैनिकान्बहून्। व्यदृश्यन्त रणान्तःस्थाः शरासनधरा नराः ॥२॥

स्वामिन् ! ये महाराज विशाल सेना से समन्वित हैं, वे शिवजी की भक्ति के साथ युद्ध करने के लिए आये हैं॥५१॥ इस समय अस्त्रों के परं ज्ञाता पुष्कल युद्ध करें और उनके साथ दूसरे भी युद्ध की कला को जानने वाले नीलरत्न आदि भी युद्ध करें ॥५२॥ शिवजी के साथ अथवा राजा के साथ आप युद्ध करें । महान् वल और पराक्रम वाले राजा को द्वन्द्व युद्ध से जीतना चाहिए ॥५३॥ हे राजन् ! यहाँ पर इसी प्रकार से आप विजयी होंगे। उसके वाद आपको जो अच्छा लगे वह करें ॥५४॥ **शेषजी ने कहा—** इस बात को सुनकर शत्रुघ्नजी ने युद्ध करने के लिए निश्चय करके वीरों को आदेश दिया ॥५५॥ शस्त्रों के ज्ञाता सभी राजगण अपनी सेना के साथ ऐसा प्रयास करें कि मुझे विजय प्राप्त हो ॥५६॥ श्रीरामचन्द्रजी की विजय के लिए सुनकर युद्ध के जानकार वीर अत्यन्त उत्साह पूर्वक सैनिकों के साथ युद्ध करने के लिए गये ॥५७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में वीरमणि के साथ युद्ध का निश्चय नामक चालीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४०।।

रुक्माङ्गद का पुष्कल के साथ युद्ध

शेषजी ने कहा— शत्रुघ्नजी के महाबलवान् वीर शौर्य से समन्वित होकर युद्ध करने के लिए वीरमणि की सेना में प्रवेश कर गये ॥१॥ बाणों को छोड़ते हुए तथा अनेक सैनिकों का भेदन करते हुए धनुर्धारी वे सव

अनेके निहतास्तत्र गजा मणिमया रथाः । भग्रा वाहसमेताश्च दृश्यन्ते रणमण्डले ॥३॥
विहितं कदनं तेषां श्रुत्वा रुक्माङ्गदो बली। रथे मणिमये तिष्ठन्ययौ योद्धुं स सैनिकान् ॥४॥
शरासने शरान्धास्यन्निषुधी अक्षयौ दधत्। शोणनेत्रान्तरो भीमो महाकोपसमन्वितः ॥५॥
अनेकबाणसंविग्नान्कुर्वञ्छूरान्सहस्रशः । हाहाकारं कारयंस्तद्ययौरुक्माङ्गदो बली ॥६॥
राजपुत्रः स्वसदृशं बलेन यशसा श्रिया। आह्वयामास शत्रुघ्नं भारतिंपुष्कलं बली ॥७॥

रुक्माङ्गद उवाच

आगच्छ वीरकर्मा त्वं महाबलपराक्रम । मया योद्धुं तु बलिना राजपुत्रेण भास्वता॥८॥
किमन्यैस्त्रासितैर्वीरनिहतैः कोटिभिर्नरैः । मया समं महायुद्धं विधाय जयमाप्नुहि ॥९॥
इत्युक्तवन्तं तरसा प्रहसन्पुष्कलो बली। जघान विपुले मध्ये वक्षसस्तीक्ष्णपर्वभिः॥१०॥
तदमृष्यन्राजपुत्रो महाचापे दधञ्शरान् । जघान दशभिर्वीरं पुष्कलं वक्षसोऽन्तरे ॥११॥
उभौ समरसंरब्धावुभावपि जयैषिणौ। रेजाते समरे तौ हि कुमारतारकौ यथा ॥१२॥

बाणान्धनुषि सन्धाय दशसङ्ख्यान्महाशितान् ।
अकरोत्पुष्कलो वीरो विरथं राजपुत्रकम् ॥१३॥

चतुर्भिश्चतुरो वाहान्द्वाभ्यांसूतमपातयत् । एकेन ध्वजमेतस्य द्वाभ्यां स्यन्दनरक्षकौ ॥१४॥
नैकेन हृदि विव्याध राजपुत्रस्य वेगवान् । तदद्भुतं कर्म दृष्ट्वा सर्वे वीराःप्रतोषिताः ॥१५॥
सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । अत्यन्तं कोपमापन्नः स्यन्दनं परमाविशत्॥१६॥
स स्थित्वा स्यन्दनवरे हयरत्नेन भूषिते । शरासनं महद्धृत्वा सुदृढं गुणपूरितम्॥१७॥

युद्ध में दिखायी दे रहे थे ॥२॥ वहाँ पर अनेक हाथी और मणिनिर्मित रथ विनष्ट हो गये । वाहन के साथ वे सब युद्ध मण्डल में भागते हुए दिखते थे ॥३। उनसबों के द्वारा किए गये वध को सुनकर बलवान् रुक्माङ्गद मणिमय रथ पर बैठाकर सैनिकों के साथ युद्ध करने के लिए गये ॥४॥ दो तरकस धारण किए हुए धनुष पर बाण चढ़ाकर अत्यधिक क्रोध के कारण आँखें लाल किए हुए रुक्माङ्गद ॥५॥ अनेक बाणों से शूरवीरों को व्याकुल करके हाहाकार मचाते हुए रुक्माङ्गद युद्ध में गये ॥६॥ अपने सदृश बलवान्, यशस्वी तथा शत्रुओं को मारने वाले भरतजी के पुत्र पुष्कल को युद्ध कि लिए उन्होंने आह्वान किया ॥७॥ **रुक्माङ्गद ने कहा**— महान् बल और पराक्रम से युक्त वीर कर्म करने वाले तुम बलवान् तथा राजा के पुत्र मेरे साथ युद्ध करने के लिए आओ॥८॥ वीर दूसरे भयभीत करोड़ों मनुष्यों को मारने से कौन सा लाभ है ? मेरे साथ युद्ध करके विजय प्राप्त करो ॥९॥ इस तरह से कहने वाले रुक्माङ्गद के विस्तृत वक्षस्थल में पुष्कल ने तीक्ष्ण बाणों से प्रहार किया॥१०॥ उसकी परवाह किए बिना राजकुमार ने अपने महान् धनुष पर बाण चढ़ाकर दश बाणों से पुष्कल के वक्षस्थल में प्रहार किया ॥११॥ दोनों वीर युद्ध करने वाले थे तथा विजय प्राप्त करना चाहते थे । युद्ध में उन दोनों की शोभा कार्तिकेय और तारकासुर के समान हो रही थी ॥१२॥ पुष्कल ने अपने धनुष पर अत्यन्त तीक्ष्ण दश बाणों को आरोपित करके राजकुमार रुक्मांगद के रथ को तोड़ दिया ॥१३॥ चार बाण से चार घोड़ों को तथा दो बाणों से सारथि को मार दिया । एक बाण से ध्वज को तथा दो बाणों से उसके रथ के रक्षकों को मार दिया । वेग सम्पन्न पुष्कल ने एक बार से राजकुमार रुक्माङ्गद के हृदय को बेध दिया । उस अद्भुत कर्म को देखर सभी वीर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ॥१४-१५॥ धनुष के कट जाने से रथ और सारथि से रहित होकर

उवाच पुष्कलं वीरं रुक्माङ्गद इदं वचः। महापराक्रमं कृत्वा क्व यास्यसि परन्तप !॥१८॥
पश्य मेऽद्य पराक्रान्तिं यद्बलेन विनिर्मिताम् ।
यत्नात्तिष्ठस्व भो वीर ! नयामि त्वद्रथं नभः ॥१९॥
इत्युक्त्वा शरमत्युग्रं दधार स्वशरासने। मन्त्रयित्वा ततश्चास्त्रं भ्रामकं पौष्कले रथे ॥२०॥
मुमोच निशितं बाणं स्वर्णपुङ्खैकशोभितम्। तेन बाणेन नीतोऽस्य रथो योजनमात्रकम्॥२१॥
धृतः कृच्छ्रेण सूतेन रथो बभ्राम भूतले। कृच्छ्रेण प्राप्य स्वस्थानं पुष्कलः परमास्त्रवित्॥२२॥
जगाद वचनं तं वै बाणं विभ्रच्छरासने। स्वर्गं प्राप्नुहि वीराग्र्य ! सर्वदैवैश्च सेवितम् ॥२३॥
त्वादृशाः पृथिवीयोग्या न भवन्ति नृपोत्तम ! ।
शतक्रतुसमा योग्यास्तद्गच्छ त्वं सुरालयम् ॥२४॥
इत्युक्त्वा स मुमोचास्त्रमाकाशप्रापकं महत् ।
तेन बाणेन स रथो ययौ खमनुलोमतः ॥२५॥
सर्वांल्लोकानतिक्रामन्ययौ सूर्यस्य मण्डलम् ।
तज्ज्वालया रथो दग्धो हयसूतसमन्वितः ॥२६॥
तत्करैर्दग्धभूयिष्ठकलेवरः सुदुःखितः। पपात चन्द्रचूडं स धृत्वा हृद्यसुखार्दनम्॥२७॥
भूमौ निपतितस्तत्र करदग्धकलेवरः। अत्यन्तं दुःखमापन्नो मुमूर्च्छ रणमण्डले ॥२८॥
तस्मिन्निपतिते भूमौ मूर्च्छिते राजपुत्रके। हाहाकारो महानासीत्तत्र सङ्ग्राममूर्धनि ॥२९॥
वैरिणो जयलक्ष्मीं ते प्रापुः पुष्कलमुख्यकाः ।
पलायनपरा जाता वैरिणो हयरक्षकाः ॥३०॥

रुक्माङ्गद ने अत्यन्त कोप किया। वह दूसरे रथ पर बैठ गया ॥१६॥ श्रेष्ठ अश्व से अलंकृत श्रेष्ठ रथ पर बैठकर सुदृढ़ प्रत्यञ्चा से युक्त धनुष धारण करके रुक्माङ्गद ने पुष्कल से कहा— हे परन्तप ! महापराक्रम दिखाकर अव कहाँ जा पाओगे ॥१७-१८॥ अव तुम वल के द्वारा निर्मित मेरे पराक्रम को देखो, तुम सावधानी पूर्वक बैठो; तुम्हारे रथ को मैं आकाश में पहुँचा रहा हूँ ॥१९॥ यह कहकर उसने भयङ्कर बाण को धनुष पर चढ़ाया और उसे भ्रामकास्त्र से अभिमंत्रित करके पुष्कल के रथ पर छोड़ा ॥२०॥ उसने स्वर्णपुङ्ख से युक्त एक तीक्ष्ण वाण को छोड़ा। उस वाण ने पुष्कल के रथ को एक योजन मात्र ले गया ॥२१॥ सारथि बड़ी कठिनाई से उस रथ को धारण किए रहा। कठिनाई से अपने स्थान पर पहुँचकर परमास्त्र के ज्ञाता पुष्कल ने वाण को धनुष पर धारण किए हुए रुक्मांगद से कहा— वीर, सभी देवताओं से सेवित तुम स्वर्ग में जाओ ॥२२-२३॥ राजवर्य आपके जैसे लोग पृथिवी के योग्य नहीं होते हैं। वे इन्द्र की सभा के योग्य होते हैं; अतएव तुम स्वर्गलोक में जाओ॥२४॥ इस तरह से कहकर पुष्कल ने आकाश में पहुँचा देने वाले वाण को छोड़ा। उस वाण से रुक्माङ्गद का रथ अनुलोम विधि से आकाश में पहुँच गया ॥२५॥ सभी लोकों को पार करके वह सूर्यमण्डल में पहुँच गया सूर्य की ज्वाला से वह रथ अश्व तथा सारथि के साथ जल गया ॥२६॥ सूर्य की किरणों से रुक्माङ्गद का शरीर भी वहुत अधिक दग्ध हो गया वह शिवजी को हृदय में धारण किए हुए गिरा ॥२७॥ सूर्य के किरणों से दग्ध शरीर वाला वह पृथिवी पर गिरा और अत्यन्त दुःखी होकर युद्धस्थल में मूर्छित हो गया ॥२८॥ रुक्माङ्गद के भूमि पर गिर कर मूर्छित हो जाने पर संग्राम स्थल में महान् हाहाकार मच गया ॥२९॥ उसके पुष्कल आदि

तदा पुत्रस्य वै मूर्च्छां दृष्ट्वा वीरमणिर्नृपः। प्रायात्समरमध्यस्थं पुष्कलं कोपपूरितः ॥३१॥
तदा भूमिश्चचालेयं सपर्वतवनोत्तमा। शूरा वै हर्षमापन्नाः कातरा भयपीडिताः ॥३२॥
चापं महद्दधानः स इषुधी अक्षयावपि । रोषान्निःश्वासमामुञ्चन्नाह्वयामास वैरिणम् ॥३३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
रुक्माङ्गदपराजयपुष्कलविजयो नामैकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४१॥

* * *

बयालीसवाँ अध्याय

शेष उवाच

आह्वयन्तं महासैन्यवारिधौ पुष्कलं नृपम् । समालक्ष्य कपीन्द्रोऽपि हनुमांस्तमधावत ॥१॥
लाङ्गूलमुद्यम्य विशालदेहं सरावमातत्यपयोदघोषम् ।
रणस्थितान्वीरवरान्कपीन्द्रो जगाम तं वीरमणिं नृपेन्द्रम् ॥२॥
आयान्तं तं हनूमन्तं वीक्ष्य पुष्कल उद्भटः। विलोकयामास दृशा वैरिक्रोधसुशोणया॥३॥
जगाद तं हनूमन्तं पुष्कलः परमास्त्रवित् । मेघगम्भीरया वाचा नादयन्रणमण्डलम् ॥४॥

पुष्कल उवाच

कथं त्वं समरे योद्धुमागतोऽसि महाकपे !। कियद्बलं स्वल्पमेतद्राजो वीरमणेर्महत् ॥५॥
यत्र त्रिजगती सर्वा संमुखे समुपागता ।
तत्र त्वं लीलया योद्धुं यातुमिच्छसि वा न वा ॥६॥

शत्रुओं को विजय श्री मिल गयी । अश्व की रक्षा करने वाले शत्रु भागने लगे ॥३०॥ उस समय अपने पुत्र की मूर्छा को देखकर राजा वीरमणि क्रोध से भरकर युद्ध स्थल में पुष्कल के समक्ष आये ॥३१॥ उस समय पर्वतों तथा वनों से युक्त पृथिवी काँपने लगी । वीर प्रसन्न हो गये और कायर भयभीत हो गये ॥३२॥ राजा महान् धनुष और दो अक्षय तुणीर धारण किए थे । क्रोध से लम्बी श्वास छोड़ते हुए उन्होंने अपने वैरी का आह्वान किया ॥३३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में रुक्माङ्गद का पराजय और पुष्कल की विजय वर्णन नामक एकतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४१।।

* * *

पुष्कल तथा वीरमणि के बीच भयङ्कर युद्ध और राजा वीरमणि का पराजय

महासैन्य सागर में पुष्कल को ललकारते हुए वीरमणि को देखकर कपीन्द्र हनुमानजी वहाँ दौड़कर आये॥१॥ विशाल देह और अपनी पूँछ उठाकर मेघ के समान गर्जना करके युद्ध में स्थित वीरों को देखकर हनुमानजी राजा वीरमणि के समक्ष आ गये ॥२॥ उद्भट वीर पुष्कल ने वैरियों पर क्रोध करने के कारण लाल वनी हुयी आँखों से आते हुए हनुमानजी को देखे ॥३॥ परमास्त्रों के ज्ञाता पुष्कल ने हनुमानजी से मेघ के समान गम्भीर वाणी से युद्ध मण्डल को ध्वनित करते हुए कहा ॥४॥ **पुष्कल ने कहा—** महाकपे ! आप युद्ध करने

कोऽयं राजा वीरमणिः कियद्बलमथाल्पकम् ।
अत्रागमनमत्युग्रं तव वीर न भाव्यते ॥७॥
रघुनाथकृपापाङ्गादहं निस्तीर्य दुस्तरम् । क्षणान्निर्यामि कीशेन्द्र मा चित्तं कुरु सङ्गरे ॥८॥
त्वया राक्षसपाथोधिस्तीर्णो रामकृपावशात् । तथा रामं सुसंस्मृत्य निस्तरिष्यामि दुस्तरम्॥९॥
ये केचिद्दुस्तरं प्राप्य रघुनाथं स्मरन्ति च । तेषां दुःखोदधिः शुष्को भविष्यति न संशयः॥१०॥
तस्माद्व्रज महावीर शत्रुघ्नसविधे बलिन् । एष आयामि निर्जित्य भूपं वीरमणिं क्षणात् ॥११॥

शेष उवाच

इति धीरां समाकर्ण्य वाणीं पुष्कलभाषितम् ।
जगाद वचनं भूयः पुष्कलं परवीरहा ॥१२॥

हनुमानुवाच

पुत्र ! मा साहसं कर्षीर्भूपं वीरमणिं प्रति । एष दाता शरण्यश्च बलशौर्यसमन्वितः ॥१३॥
त्वं बालः स्थविरो भूपोऽखिलशस्त्रास्त्रवित्तमः ।
अनेके विजिताः संख्ये वीराः शौर्यसुशोभिनः ॥१४॥
जानीहि पार्श्वे तस्य त्वं रक्षितारं सदाशिवम् ।
भक्त्या वशीकृतं स्थाणुं सोमं चैतत्पुरि स्थितम् ॥१५॥
तस्मादहमनेनैव योत्स्ये भूपेन पुष्कल । अन्यान्वीरान्विजित्य त्वं कीर्तिमाप्नुहि पुष्कलाम्॥१६॥

पुष्कल उवाच

शिवो भक्त्या वशीकृत्य स्वपुरे स्थापितोऽमुना ।
परमस्याशु हृदये न तिष्ठति महेश्वरः ॥१७॥

के लिए क्यों आये हैं, राजा वीरमणि का वल तो अत्यल्प है ॥५॥ जहाँ पर त्रैलोक्य युद्ध करने के लिए आये वहाँ पर लीला पूर्वक युद्ध करने आप जा सकते हैं ॥६॥ यह राजा वीरमणि क्या है ? इसका वल तो वहुत अल्प है । यहाँ आपका अत्यन्त उग्र आगमन उचित नहीं है ॥७॥ श्रीरामचन्द्रजी की कृपा दृष्टि से इस दुस्तर युद्ध को जीतकर क्षणभर में आ रहा हूँ आप अपने मन में शङ्का न करें ॥८॥ श्रीरामजी की कृपा प्राप्त करके आप राक्षस रूपी सागर को पार कर गये उसी तरह श्रीरामचन्द्रजी का ही स्मरण करके मैं इस दुष्तर संग्राम को जीत लूँगा॥९॥ जो कोइ भी दुस्तर कठिनाई प्राप्त करके श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करता है उसके लिए दुःख का सागर सूख जाता है इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥१०॥ अतएव हे बलवान् ! आप श्रीशत्रुघ्नजी के पास जायँ मैं क्षणभर में राजा वीरमणि को जीत कर आ रहा हूँ ॥११॥ **शेषजी ने कहा—** इस तरह से पुष्कल के द्वारा कही गयी धीर वाणी को सुनकर शत्रुओं को मारने वाले हनुमानजी ने पुष्कल से कहा ॥१२॥ वत्स ! राजा वीरमणि के प्रति साहस न करो । ये वल एवं शौर्य से युक्त दानी और रक्षक भी हैं ॥१३॥ तुम बालक हो और राजा सभी शास्त्रास्त्रों के ज्ञाता तथा वृद्ध हैं । इन्होंने शौर्य सम्पन्न अनेक वीरों को जीता है ॥१४॥ तुम जानो कि उसके रक्षक रूप से उनके पास में सदा शिवजी रहते हैं, इन्होंने अपनी भक्ति से शिवजी तथा सोम (चन्द्रमा) को वश में करके अपने नगर में रखा है ॥१५॥ अतएव पुष्कल इस राजा के साथ मैं युद्ध करूँगा । तुम दूसरे वीरों को जीतकर विशाल कीर्ति को प्राप्त करो ॥१६॥ **पुष्कल ने कहा—** भक्ति के द्वारा शिवजी को अपने वश

सदाशिवो यमाराध्य परमं स्थानमागतः। स रामो मन्मनस्त्यक्त्वा न क्वापि परिगच्छति॥१८॥

यत्र रामस्तत्र विश्वं सर्वं स्थास्नु चरिष्णु च ।
तस्मादहं जयिष्यामि रणे वीरमणिं नृपम् ॥१९॥
व्रज त्वं समरे योद्धुमन्यान्मानिवरान्नृपान् ।
वीरसिंहमुखान्कीश ! मच्चिन्तां मा कुरु प्रभो ! ॥२०॥

वाचमित्थं समाकर्ण्य हनूमान्धीरसेविताम्। जगाम समरे योद्धुं वीरसिंहं नृपानुजम् ॥२१॥
लक्ष्मीनिधिः सुतेनास्य शुभाङ्गदसुसंज्ञिना। द्वैरथेन प्रयुयुधे महाशस्त्रास्त्रवेदिना ॥२२॥
बलमित्रेण सुमदः स्वप्रतापबलोर्जितः। योद्धुं सशस्त्रः सङ्ग्रामं विचचार नृपात्मजः ॥२३॥
आह्वयन्तं नृपं दृष्ट्वा द्वैरथे युद्धकोविदः। पुष्कलो रत्नखचिते रथे तिष्ठन्ययौ हितम्॥२४॥

राजा तमागतं दृष्ट्वा पुष्कलं युद्धकोविदम् ।
उवाच निर्भिया वाण्या रणमध्ये सुभाषितः ॥२५॥

वीरमणिरुवाच

बाल मायाहि मां क्रुद्धं सङ्ग्रामे चण्डकोपनम् ।
गच्छ प्राणपरीप्सायै मा युद्धस्व मया सह ॥२६॥
त्वादृशान्बालकान्भूपा मादृशाः कृपयन्ति हि ।
प्रहरन्ति न चैतान्वै तस्माद्गच्छ रणाद्बहिः ॥२७॥

यावत्त्वं न मयादृष्टश्चक्षुर्भ्यां तावदुन्मनाः। साम्प्रतं त्वां प्रहर्तुं न मनःसमभिकाङ्क्षति॥२८॥

यत्त्वया मत्सुतो बाणैर्भिन्नो मूर्च्छीकृतः पुनः ।
सर्वं मया क्षान्तमद्य तव बालधियो महत् ॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य पुष्कलो निजगाद तम् ॥२९॥

में करके इन्होंने अपने नगर में स्थापित किया है किन्तु इनके हृदय में शिवजी नहीं रहते हैं ॥१७॥ जिनकी आराधना करके शिवजी परम स्थान को प्राप्त किए हैं वे श्रीरामजी मेरे मन को छोड़कर कहीं नहीं जाते हैं ॥१८॥ जहाँ राम हैं वहीं पर चराचर जगत् है; अतएव मैं युद्ध में राजा वीरमणि पर विजय प्राप्त करूँगा ॥१९॥ आप युद्ध में वीरसिंह के साथ युद्ध करने के लिए जायँ आप मेरी चिन्ता न करें वीरसिंह बहुत बड़े वीर है ॥२०॥ धीरोचित इस वाणी को सुनकर हनुमानजी वीरसिंह से युद्ध करने के लिए चले गये ॥२१॥ लक्ष्मीनिधि राजा के छोटे पुत्र महाशास्त्रास्त्रों को जानने वाले शुभाङ्गद के साथ द्वैरथ से युद्ध करने लगे ॥२२॥ बलमित्र के साथ अपने प्रताप से प्रख्यात सुमद युद्ध करने के लिए संग्राम में विचरण करने लगे ॥२३॥ द्वैरथ पर ललकारते हुए वीरमणि को देखकर रत्न रचित रथ पर बैठकर पुष्कल युद्ध करने लगे ॥२४॥ युद्ध के ज्ञाता पुष्कल को देखकर राजा ने निर्भय वाणी से युद्ध में कहा ॥२५॥ **वीरमणि ने कहा**— हे वालक ! युद्ध में भयङ्कर क्रोध करने वाले मेरे साथ युद्ध करने के लिए न आओ । अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए चले जाओ मेरे साथ युद्ध न करो॥२६॥ मेरे जैसे राजा तुम्हारे जैसे बालकों पर कृपा ही करते हैं । उन सबों पर प्रहार नहीं करते हैं; अतएव युद्ध से बाहर चले जाओ ॥२७॥ जब तक तुम मेरे नेत्रों के सामने से दूर नहीं चले जाते हो तब तक मैं उदास हो जाता हूँ, तुम पर प्रहार करने का मेरा मन नहीं कर रहा है ॥२८॥ तुमने मेरे पुत्र को बाणों के प्रहार से मारकर

पुष्कल उवाच

बालोऽहं त्वं महावृद्धः सर्वशस्त्रास्त्रकोविदः ।
क्षत्रियाणां मतं चैव ये बलाधिक्यसंयुताः ॥३०॥
त एव वृद्धा भूपाग्र्य ! न वयो वृद्धतां गताः ।
मया ते मूर्च्छितः पुत्रः सशौर्यबलदर्पितः ॥३१॥
इदानीं त्वामहं शस्त्रैः पातयिष्यामि सङ्गरे। तस्मात्त्वं यत्नतस्तिष्ठ राजन्संग्राममूर्धनि ॥३२॥
रामभक्तं न मां कश्चिज्जयतीन्द्रपदे स्थितः। इत्थं भाषितमाश्रुत्य पुष्कलस्य नृपाग्रणीः ॥३३॥
जहास बालं संवीक्ष्य कोपं च व्यदधात्पुनः ।
तं वै कुपितमालक्ष्य भरतात्मज उन्मदः ।
जघान शरविंशत्या राजानं हृदि तीक्ष्णया ॥३४॥
राज तानागतान्दृष्ट्वा बाणांस्तेन विमोचितान् ॥३५॥
चिच्छेद परमक्रुद्धः शरैस्तीक्ष्णैरनेकधा । तद्बाणच्छेदनं दृष्ट्वा भारतिः परवीरहा ॥३६॥
चुकोप हृदयेऽत्यन्तं राजानं च त्रिभिःशरैः। विव्याध भाले भूपालपुत्रः पुष्कलसंज्ञकः ॥३७॥
तत्र लग्ना विरेजुस्ते त्रिकूटशिखराणि किम् ।
तैर्बाणैर्व्यथितो राजा जघान नवभिः शरैः ॥३८॥
हृदये पुष्कलं वीरं महाकोपसमन्वितः। तैर्वत्सदन्तैर्बह्वस्रं पीतरामानुजाङ्गजम्॥३९॥
सर्पा आशीविषा यद्वत्क्रुद्धास्तद्वपुषि स्थिताः ।
परमं कोपमापन्नः पुष्कलो भूमिपं पुनः ॥४०॥
बाणानां शतकेनाशु विभेद शितपर्वणाम्। तैर्बाणैः कवचं भिन्नं किरीटः सशिरस्त्रकः॥४१॥

जो मूर्छित कर दिया है । तुमको बालबुद्धि जानकर मैं सबकुछ क्षमा कर देता हूँ । इस बाणी को सुनकर पुष्कल ने कहा ॥२९॥ **पुष्कल ने कहा**— मैं बालक हूँ आप सभी शास्त्रास्त्रों के महाज्ञाता महावृद्ध हैं । हे राजवर्य ! क्षत्रियों को यही अर्थ अभिप्रेत है कि जो अधिक वलवान् होता है, वही वृद्ध होता है, अवस्था से वृद्ध को वृद्ध नहीं कहते हैं, आपके शौर्य और बल से दृप्त पुत्र को मैंने मूर्छित कर दिया है ॥३०-३१॥ अव मैं आपको युद्ध में शस्त्रों से मार दूँगा । अतएव हे राजन् ! इस युद्ध में आप सावधानी से स्थिर रहें ॥३२॥ मैं रामभक्त हूँ, इन्द्र भी मुझे नहीं जीत सकते हैं । इस तरह से पुष्कल की वाणी सुनकर राजश्रेष्ठ ॥३३॥ उस वालक को देखकर जोर से हँसे और उसके बाद क्रोध भी किए । राजा को क्रुद्ध देखकर पुष्कल ने वीस तीक्ष्ण बाणों से राजा के हृदय में प्रहार किया ॥३४॥ उसके द्वारा छोड़े गये उन बाणों को देखकर राजा ने ॥३५॥ उन सबों को तीक्ष्ण बाणों से अनेक प्रकार से काट दिया । उन कटे हुए बाणों को देखकर शत्रुओं को मारने वाले पुष्कल ॥३६॥ अत्यन्त क्रोध करके राजा के ललाट में तीन वाणों से मारे ॥३७॥ राजा के ललाट में लगे हुए वे बाण त्रिकूट पर्वत के शिखर के समान लगते थे । उन बाणों से व्यथित होकर राजा ने नव बाणों से वीर पुष्कल के हृदय में प्रहार किया। वे वत्सदन्त वाण पुष्कल के वहुत अधिक रक्त को पी लिया ॥३८-३९॥ पुष्कल के शरीर में लगे हुए वे बाण क्रुद्ध तथा विषैले सर्प के समान लगते थे । अत्यन्त क्रुद्ध होकर पुष्कल ने राजा को फिर ॥४०॥ शीघ्र ही सौ बाणों से छेद दिया । उन बाणों से राजा के कवच और शिरस्त्राण विदीर्ण हो गये ॥४१॥ उससे राजा का

रथो धनुर्महत्सज्यं छिन्नं कोपपरिपल्वात् । क्षतजेन परिप्लुतो बाणभिन्नकलेवरः ॥४२॥
अन्यस्यन्दनमारुह्य जगाम भरतात्मजम् । धन्योऽसि वीर रामस्य चरणाब्जमधुव्रत ॥४३॥
महत्कृतं कर्म तेऽद्य यदहं विरथीकृतः । प्राणान्रक्षस्व भो वीर ! साम्प्रतं मयि युद्ध्यति॥४४॥
सुलभा न तव प्राणाः कालरूपे मयि स्थिते ।
इत्युक्त्वा व्यहनद्बाणैरसङ्ख्यैः शस्त्रकोविदः ॥४५॥
भूमौ दिशि च तद्बाणानान्यद् दृश्येत तत्र ह ।
अनेके गजसाहस्रा भिन्ना अश्वाः समन्ततः ॥४६॥
रथा रथियुतास्तेन च्छिन्ना भिन्ना द्विधाकृताः ।
शोणितौघा सरित्तत्र प्रसुस्राव रणाङ्गणे ॥४७॥
यत्रोन्मदा हि मातङ्गा दृश्यन्ते शैलशृङ्गवत् ।
केशाः शैवाललक्ष्यास्ते मुहुः प्राणिशिरः स्थिताः ॥४८॥
अनेके पाणयश्छिन्ना वीराणां मुद्रिकाश्रियः ।
दृश्यन्ते अहिवत्तत्र चन्दनादिकरूषिताः ॥४९॥
शिरांसि च भटाग्र्याणां कच्दपाभां वहन्ति वै ।
मांसानि पङ्का यत्रासन्वीराणां महतां ततः ॥५०॥
एवं व्यतिकरे वृत्ते योगिन्यः शतशो रणे । पपुः पात्रेण रुधिरं प्राणिनां रणपातिनाम् ॥५१॥
मांसानि बुभुजुस्ता वै हर्षकौतुकसंयुताः। पीत्वा तु शोणितं तत्र भक्षित्वा मांसमुन्मदाः ॥५२॥
ननृतुर्ज्हसुः प्रोच्चैरुज्जगुः प्रधानाङ्गणे। पिशाचास्तत्र समरे प्राणिनां मस्तकानि वै ॥५३॥
धृत्वा कराभ्यां मत्ताङ्गास्तालवद्वादनोद्यताः । शिवास्तत्र महामांसं पतितानां रणाङ्गणे ॥५४॥

धनुष कट गया, रथ टूट गया और बाणों के लगने से राजा खून से भिंग गये ॥४२॥ राजा दूसरे रथ पर चढ़कर पुष्कल के समक्ष गये और कहे— हे श्रीरामचरणों के मधुकर ! तुम धन्य हो ॥४३॥ तुमने मेरे रथ को तोड़कर महान् कर्म किया है । अव मेरे साथ युद्ध करते हुए अपने प्राणों की रक्षा करो ॥४४॥ मेरे रहते तुम्हारे प्राण सुलभ नहीं होंगे । इस तरह से कहकर शस्त्रज्ञ राजा ने असंख्य बाणों से प्रहार किया ॥४५॥ पृथिवी पर दिशाओं में राजा के बाण ही दिखते थे और कुछ नहीं दिखता था । अनेक हजार हाथी, घोड़े मर गये ॥४६॥ राजा ने रथियों से युक्त रथों को छिन्न-भिन्न करके दो-दो टुकड़े कर दिया । युद्ध स्थल में खून से भरी हुयी नदी बह चली ॥४७॥ उसमें उन्मत्त हाथी पर्वत शिखर के समान दिखते थे प्राणियों के शिर से युक्त केश सेवार के समान लगते थे ॥४८॥ वीरों के मुद्रिका से युक्त अनेक चन्दन लगे हुए तथा कटे हुए हाथ सर्प के समान दिखते थे ॥४९॥ उस रक्त नदी में श्रेष्ठ वीरों के वाण कच्छष के समान बह रहे थे और बड़े-बड़े वीरों के मांस उस नदी में कमल के समान लगते थे ॥५०॥ इस तरह की स्थिति होने पर युद्ध में सैकड़ों योगिनियाँ युद्ध में गिरे हुए जीवों के रक्त को पात्र में भर-भर कर पी रही थीं ॥५१॥ भक्षण करके मदमत्त बनी हुयी वे सब गरजने लगीं जिससे कायर डरने लगे वीरों के मुद्रिका से युक्त अनेक चन्दन लगे हुए तथा कटे हुए हाथ सर्प के समान दिखते थे ॥५२॥ उस रक्त नदी में श्रेष्ठ वीरों के बाण कच्छप के समान वह रहे थे और बड़े-बड़े वीरों के मांस उस नदी में कमल के समान लगते थे ॥५३॥ इस तरह की स्थिति होने पर युद्ध में सैकड़ो योगिनियाँ युद्ध में गिरे हुए जीवों के रक्त को पात्र

भक्षित्वा व्यनदन्मत्ताः कातराणां भयप्रदाः । कातरास्तत्र सन्त्रस्ता गताः कुञ्जरकोटरे ॥५५॥
भक्षिता योगिनीभिस्ते पापिनां क्वापि न स्थितिः ।
एतत्कदनमालक्ष्य स्वसैन्यस्य रथाग्रणीः ॥५६॥
पुष्कलेऽपि चकारात्र कदनं रणमण्डले। भिद्यन्ते गजशीर्षाणि पतन्ति मौक्तिकानि तु ॥५७॥
दृश्यते लोमभिः पूर्णा ताम्रपर्णीवतन्नदी। पुष्कलप्रहिता बाणा नृणामङ्गेषु सङ्गताः ॥५८॥
कुर्वन्ति प्राणविच्छेदं वीराणामपि सर्वतः। सर्वे रुधिरसिक्ताङ्गाः सर्वे च्छिन्ननिजाङ्गकाः ॥५९॥
दृश्यन्ते किंशुका यद्वत्सुभटाः प्रधनाङ्गणे। एतस्मिन्समये क्रुद्धः समाभाष्य महीपतिम् ॥६०॥
जघान बहुबाणैस्तं रोषपूरपरिप्लुतः। तद्बाणवेधभिन्नाङ्गो विशीर्णकवचो नृपः ॥६१।
महाबलं तं मन्वानः प्राहरच्छरकोटिभिः । तैर्बाणैः कवचान्मुक्तं सुस्राव बहुशोणितम् ॥६२॥
वपुर्बभूव रुचिरं शरपञ्जरगोचरम्। शरपञ्जरमध्यस्थो विह्वलीकृतमानसः ॥६३॥
शरान्नेतुं च सन्यातुं न क्षमः स च भारतिः ।
रामं स्मृत्वा धनुर्धृत्वा करे सज्जं महद्दृढम् ॥६४॥
मुमोच बाणान्निशितान्वैरिवृन्दनिवारणान्। तैर्बाणैः शरजालं तद्विधूय मुनिपुङ्गव ! ॥६५॥
शङ्खं प्रध्माय समरे जगाद गतभीर्नृपम् ॥६६॥

पुष्कल उवाच

त्वया कृतं महत्कर्म यन्मां बाणस्य पञ्जरे । गोचरं कृतवान्वीरं वीरतापनमुद्भटम् ॥६७॥
वृद्धत्वान्मम मान्योऽसि साम्प्रतं रणमण्डले। पश्य मेऽद्य पराक्रान्तिं राजन्वीरमणे महत् ॥६८॥

में भर-भर कर पी रही थीं ॥५४॥ भक्षण करके मदमत्त बनी हुयी वे सब गरजने लगीं जिससे कायर डरने लगे वे भयभीत होकर हाथियों के कोटर में छिप गये ॥५५॥ उन सबों को योगिनियों ने खा लिया, पापी कहीं नही रहे । अपनी सेना के इस तरह कटते हुए देखकर रथियों में श्रेष्ठ ॥५६॥ पुष्कल ने भी युद्ध मण्डल मे काटने का काम किया । उससे हाथियों के शिर फट गये उनसे गजमुक्ताएँ गिरने लगीं ॥५७॥ लगता था जैसे लोम से युक्त ताम्रपर्णी नदी हो । पुष्कल के द्वारा चलाये गये बाण लोगो के अङ्गों मे लगकर वीरों को निष्प्राण बना देते थे । सबों के अङ्ग खून से लथपथ हो गये और सबों के अङ्ग कट पिट गये ॥५८-५९॥ रणाङ्गण में सभी वीर पलाश वृक्ष के समान दिखते थे । उसी समय क्रुद्ध होकर पुष्कल ने राजा को सम्बोधित करके क्रुद्ध होकर अनेक बाणों से मारा । उन बाणों से राजा के अङ्ग कट गये और कवच टूट गया ॥६०-६१॥ पुष्कल को महावलवान् मानकर उसके ऊपर करोड़ों बाणों का प्रहार राजा ने किया । उन बाणों से कवच से रहित पुष्कल का वहुत अधिक रक्त वहने लगा ॥६२॥ और बाणों के पिञ्जड़ें में उनका शरीर दिखने लगा । वाणापञ्जर में पड़े पुष्कल का मन घबरा गया ॥६३॥ वे न तो बाणों को ले सकते थे और न उसका सन्धान कर सकते थे । श्रीरामजी का स्मरण करके और हाथ में दृढ, धनुष धारण करके ॥६४॥ उन्होंने वैरी समूह को विनष्ट करने वाले बाणों को छोड़ा। उन बाणों से उस बाण पञ्जर को विनष्ट करके पुष्कल ने शङ्ख बजाकर निर्भय होकर राजा से कहा ॥६५-६६॥
पुष्कल ने कहा— वीर ! आपने मुझे वाण के पञ्जरगत करके वीरों को संतप्त करने वाला वहुत वड़ा कार्य किया है ॥६७॥ वृद्ध होने के कारण आप इस रणमण्डल में मेरे सम्माननीय हैं । राजन् वीरमणे ! अब आप मेरे पराक्रम को देखिये ॥६८॥ यदि मैं तीन वाणों से आपको मूर्छित न कर दूँ तो आप मेरी सभी वीरों को मोहित

वाणत्रयेण भोवीर मूर्च्छितं करवै नहि । तर्हि प्रतिज्ञां शृणु वै सर्ववीरविमोहिनीम् ॥६९॥
गङ्गा प्राप्यापि यो वै तां निन्दित्वा पापहारिणीम् ।
न मज्जति महापापो महामूढविचेष्टितः ॥७०॥
तस्य पापं ममैवास्तु चेन्नत्वां रणमण्डले । पातये मूर्च्छितं वीर सन्नद्धो भव भूपते ॥७१॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य पुष्कलस्य नृपोत्तमः ।
चुकोप भृशमुद्विग्नः सन्दधे निशिताञ्छरान् ॥७२॥
ते शराहृदयं भित्त्वा गतास्ते भारतेर्महत् । पेतुः क्षितावधो यद्वद्रामभक्तिपराङ्मुखाः ॥७३॥
ततः शरं मुमोचास्मै निशितं वह्निसप्रभम् । लक्षीकृत्य महद्वक्षः कपाटतटविस्तृतम् ॥७४॥
स बाणो भूमिपतिना द्विधा च्छिन्नः शरेण हि ।
पपात रथमध्ये स रविमण्डवज्ज्वलन् ॥७५॥
अपरं बाणमाघत मातृभक्तिभवं ततः । निधाय पुण्यं सोऽप्येषचिच्छेद महता पुनः ॥७६॥
तदा खिन्नः स हृदये किंकर्तव्यमिति स्मरन् ।
रामं हृदि निजार्तिघ्नं मुमोच परमास्त्रवित् ॥७७॥
स बाणस्तस्य हृदये लग्न आशीविषोपमः । मूर्च्छामगमयत्तं वै ज्वलन्सूर्यसमप्रभः ॥७८॥
ततो हाहाकृतं सर्वं पलायनपरायणम् । राज्ञि संमूर्च्छिते जाते पुष्कलो जयमाप्तवान् ॥७९॥

इति श्रीपद्मंमहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
वीरमणेः पराभवो नाम द्विचत्वारिशत्तमोऽध्यायः ॥४२॥

* * *

करने वाली प्रतिज्ञा को सुनें ॥६९॥ सभी पापों को विनष्ट करने वाली गङ्गा नदी में जाकर भी जो अज्ञानी उसमें स्नान नहीं करता है, और उसकी निन्दा करता है ॥७०॥ उसको जो पाप लगता है वही पाप यदि मैं तुमको युद्ध मे गिरा न दूँ तो मुझे लगे । अतएव वीर राजन् आप सावधान हो जाइये ॥७१॥ पुष्कल के इस वाक्य को सुनकर वीरमणि अत्यन्त उद्विग्न होकर तथा क्रोध करके तीक्ष्ण वाणों का सन्धान किए ॥७२॥ वे बाण पुष्कल के हृदय को छेदकर पृथिवी पर उसी तरह से गिर पड़े जिस तरह कोई रामभक्ति पराङ्पुख गिर पड़ता है ॥७३॥ उसके बाद पुष्कल ने अग्नि के समान चमकते हुए तीक्ष्ण बाण को राज़ा के कपाट के समान विस्तृत वक्ष:स्थल को लक्ष्य बनाकर छोड़ा ॥७४॥ राजा ने उस वाण को अपने बाण से दो टुकड़ा कर दिया और वह बाण सूर्य मण्डल के समान प्रकाशित होते हुए रणमण्डल में गिर पड़ा ॥७५॥ इसके बाद पुष्कल ने माता की भक्ति से उत्पन्न बाण को लिया राजा ने उस बाण को भी अपने पवित्र बाण से काट दिया ॥७६॥ उसके बाद किं कर्त्तव्य विमूढ़ होकर अपने हृदय में विपत्ति को विनष्ट करने वाले श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करते हुए पुष्कल ने छोड़ा ॥७७॥ वह बाण राजा के हृदय में विषैले सर्प के समान जाकर लगा और जलते हुए सूर्य के समान उस बाण ने राजा को मूर्छित कर दिया ॥७८॥ उसके बाद हाहाकार करते हुए सबके सब भागने लगे और राजा के मूर्छित हो जाने पर पुष्कल ने विजय प्राप्त कर लिया ॥७९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण
में वीरमणि के पराभव वर्णन नामक बयालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य)
कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४२।।

* * *

तैंतालिसवाँ अध्याय

शेष उवाच

हनूमान्वीरसिंहं तु समागत्याब्रवीद्वचः ।
तिष्ठ यासि कुतो वीर ! जेष्यामि त्वां क्षणादिह ।।१।।
एवमुक्तं समाकर्ण्य प्लवगस्य वचो महत् । कोपपूरपरिप्लुष्टः कार्मुकं जलदस्वनम्।।२।।
विनद्य घोरान्निशितान्बाणान्मुञ्चन्बभौ रणे । आषाढे जलदस्येव धारासारे मनोहरः ।।३।।
तान्दृष्ट्वा निशितान्बाणान्स्वदेहे सुविलग्नकान् ।
चुकोप हृदयेऽत्यन्तं हनूमानञ्जनीसुतः ।।४।।
मुष्टिना ताडयामास हृदये वज्रसारिणा । स मुष्टिना हतोः वीरः पपात धरणीतले ।।५।।
मूर्च्छितं तं समालोक्य पितृव्यं स शुभाङ्गदः ।
रुक्माङ्गदोऽपि संमूर्च्छां त्यक्त्वाऽगाद्रणमण्डलम् ।।६।।
बाणान्समभिर्षन्तौ मेघाविव महास्वनौ । कुर्वन्तौ कदनं घोरं प्लवगं प्रतिजग्मतुः ।।७।।
तौ दृष्ट्वा समरे वीरौ समायातौ कपीश्वरः। लाङ्गूलेन च संवेष्ट्य सरथौ चापधारकौ ।।८।।
स्फोटयामास भूदेशे तत्क्षणान्मूर्च्छितावुभौ । निश्चेष्टौ समभूतान्तौरुधिरारक्तदेहकौ ।।९।।
बलमित्रश्चिरं युद्धं विधाय सुमदेन हि । मूर्च्छामगमयत्तं वै बाणैः सुशितपर्वभिः ।।१०।।
पुष्कलेन क्षणान्नीतो मूर्च्छां चैतन्यवर्जिताम् ।
जयमाप्तं तु कटकं शत्रुघ्नस्य भटार्दनम् ।।११।।
एतस्मिन्समये साम्बः स्यन्दनं वरमास्थितः । विस्फारयन्धनुर्दिव्यमुपाधावद्भटानिमान् ।।१२।।
जटाजूटान्तरगतां चन्द्ररेखां वहन्महान् । सर्पभूषां मनः स्पर्शां दधदाजगवं धनुः ।।१३।।

शत्रुघ्नजी और पुष्कल के पराजय का वर्णन

शेषजी ने कहा— हनुमानजी वीरसिंह के पास जाकर कहे कि वीर ठहरो मैं तुम्हें क्षणभर में परास्त करता हूँ ।।१।। हनुमानजी की इस वाणी को सुनकर वीरसिंह क्रुद्ध होकर मेघ के समान ध्वनि करने वाले अपने धनुष को उठाये ।।२।। गर्जना करके वे उसी तरह से बाणों को छोड़ने लगे जिस तरह से आषाढ़ मास में जल की वर्षा हो रही हो अपने देह में लगे हुए उन बाणों को देखकर अञ्जनी कुमार हनुमानजी अत्यन्त क्रुद्ध हुए ।।३-४।। उन्होंने अपने वज्र के समान मुक्के से वीरसिंह के हृदय में प्रहार किया उस प्रहार के कारण वीरसिंह पृथिवी पर गिर पड़े ।।५।। अपने चाचा को मूर्छित देखकर शुभाङ्गद तथा रुक्माङ्गद भी होश में आकर रणमण्डल में आ गये।।६।। मेघ के समान गर्जना करने वाले वे दोनों बाणों की वर्षा कर रहे थे । वे दोनों हनुमानजी से युद्ध करने पहुँच गये ।।७।। उन दोनों वीरों को आये हुए देखकर उन दोनों को रथ और धनुष के साथ अपनी पूंछ में लपेटकर हनुमानजी ।।८।। उन्हें पृथिवी पर पटक दिए । उसके कारण वे दोनों मूर्छित हो गये । उन दोनों का शरीर रक्त से लथपथ हो गया । वे दोनों चेष्टा विहीन हो गये ।।९।। बलमित्र ने सुमद के साथ अत्यन्त तीक्ष्ण नोक वाले बाणों से युद्ध करके उसे मूर्छित कर दिया ।।१०।। पुष्कल ने क्षणभर में शत्रुघ्नजी की सेना का मर्दन करने वाले राजा को मूर्छित करने वाले राजा को मूर्छित करके विजय प्राप्त कर लिया ।।११।। उस समय श्रेष्ठ

मूर्च्छितान्स्वजनान्दृष्ट्वा भक्तार्तिघ्नो महेश्वरः। योद्धुं प्रायान्महासैन्यैः शत्रुघ्नस्य भटानिमान् ॥१४॥
सगणः सपरीवारः कम्पयन्पृथिवीतलम्। भक्तरक्षार्थमागच्छंस्त्रिपुरं तु पुरा यथा॥१५॥
कोपाच्छोणतरे नेत्रे बहन्प्रलयकारकः। पश्यन्वीरान्बहुमतीन्पिनाकी देववन्दितः ॥१६॥
तमागतं महेशानं वीक्ष्य रामानुजो बली। जगाम समरे योद्धुं सर्वदेवशिरोमणिम्॥१७॥
अथागतं तु शत्रुघ्नं रुद्रो वीक्ष्य पिनाकधृत्। उवाच परमापन्नः कोपं सगुणचापधृत् ॥१८॥
पुष्कलेन महत्कर्म कृतं रमाङ्घ्रिसेविना। मद्भक्तं यो रणे हत्वा गतः समरमण्डलम्॥१९॥
अद्य क्वास्ति परो वीरः पुष्कलः परमास्त्रवित् ।
तं हत्वा सुखमाप्स्यामि समरे भक्तपीडनम् ॥२०॥

शेष उवाच

इत्युक्त्वा वीरभद्रं स प्रेषयामास पुष्कलम्। याहि त्वं समरे योद्धुं पुष्कलं सेवकार्दनम् ॥२१॥
नन्दिनं प्रेषयामा हनूमन्तं महाबलम्। कुशध्वजं प्रचण्डं तु भृङ्गिणं च सुवाहुकम्॥२२॥
सुमदं चण्डनामानं गणं स्वीयं समादिशत्। पुष्कलस्तु समायान्तं वीरभद्रं महागणम् ॥२३॥
महारुद्रस्य संवीक्ष्य योद्धुंप्रायान्महामनाः। पुष्कलः पञ्चभिर्बाणैस्ताडयामास संयुगे॥२४॥
तैर्बाणैः क्षतगात्रस्तु त्रिशूलं समादिशत्। स त्रिशूलं क्षणाच्छित्त्वा व्यगर्जत महाबलः ॥२५॥
छिन्नं स्वीयं त्रिशूलं वै वीक्ष्य रुद्रानुगो बली ।
खट्वाङ्गेन जघानाशु मस्तके भारतिं द्विज ! ॥२६॥

रथ पर स्थित होकर अपने धनुष का टङ्कार करते हुए शङ्करजी इन वीरों के विरुद्ध दौड़ पड़े ॥१२॥ उनके जटाजूट में चन्द्रमा की रेखा थी वे सर्पो का भूषण धारण किए थे तथा वे अजगव धनुष धारण किए थे ॥१३॥ अपने भक्तों को मूर्छित देखकर, भक्तों के कष्ट को दूर करने वाले महेश्वर अपनी विशाल सेना के साथ शत्रुघ्नजी की सेना से युद्ध करने के लिए आ गये ॥१४॥ वे अपने गणों और परिवार के साथ इस पृथिवी को कँपा रहे थे, अपने भक्त की रक्षा करने के लिए वे उसी तरह आ गये जैसे पहले वे त्रिपुरासुर को मारने गये थे ॥१५॥ प्रलय करने वाले शङ्करजी के दोनों नेत्र क्रोध से लाल हो गये थे। पिनाकधारी तथा देवताओं से वन्दित वे प्रख्यात वीरों को देख रहे थे ॥१६॥ आये हुए शङ्करजी को देखकर बलवान् शत्रुघ्नजी सर्वदेव शिरोमणि शङ्करजी से युद्ध करने के लिए गये ॥१७॥ पिनाकधारी शत्रुघ्नजी को देखकर प्रत्यञ्चा से युक्त धनुष धारण करने वाले शङ्करजी ने कहा ॥१८॥ श्रीराम भक्त पुष्कल ने बहुत बड़ा काम किया है उसने युद्ध में मेरे भक्त को युद्ध में मार कर गया है ॥१९॥ इस समय परमास्त्र वेत्ता पुष्कल कहाँ है ? मेरे भक्त को पीड़ित करने वाले उसे मारकर मै सुखी हो जाऊँगा ॥२०॥ **शेषजी ने कहा—** इस प्रकार से कहकर शङ्करजी ने वीरभद्र को पुष्कल से युद्ध करने के लिए भेजा। मेरे सेवक का मर्दन करने वाले पुष्कल से तुम युद्ध करो ॥२१॥ उन्होंने महाबलवान् नन्दी को हनुमानजी से युद्ध करने के लिए भेजा। उन्होंने कुशध्वज, प्रचण्ड, भृङ्गी, सुबाहु, सुमद तथा चण्ड नामक अपने गण को युद्ध करने का आदेश दिया। पुष्कल ने महागण वीरभद्र को आते हुए देखा ॥२२-२३॥ उन्होंने महारुद्र को देखकर उनसे युद्ध करने के लिए महामना पुष्कल गये। पुष्कल ने पाञ्च बाणों से वीरभद्र को मारा ॥२४॥ उन बाणों से छिन्न-भिन्न शरीर वाले वीरभद्र ने त्रिशूल को आदेश दिया; किन्तु पुष्कल ने क्षणभरमें त्रिशूल को काटकर गर्जना किया ॥२५॥ अपने त्रिशूल को कटा हुआ देखकर बलवान वीरभद्र पुष्कल के शिर पर खटवाङ्ग

खट्वाङ्गाभिहतः सोऽथ मुमूर्च्छ क्षणमुद्भटः ।
विहाय मूर्च्छां सद्वीरः पुष्कलः परमास्त्रवित् ॥२७॥
शरैश्चिच्छेद खट्वाङ्गं करस्थं तस्य तत्क्षणात् ।
वीरभद्रः स्वके च्छिन्ने खट्वाङ्गे कर संस्थिते ॥२८॥
परमक्रोधमापन्नो बभञ्ज रथिनो रथम् ।
भङ्क्त्वा रथं तु वीरस्य पदातिं च विधाय सः ॥२९॥
बाहुयुद्धेन युयुधे पुष्कलेन महात्मना। स पुष्कलो रथं त्यक्त्वा चूर्णितं तेन वेगतः ॥३०॥
मुष्टिना ताडयामास वीरभद्रं महाबलः। अन्योन्यं मुष्टिभिर्घ्नन्तावूरुभिर्जानुभिस्तथा ॥३१॥
परस्परवधोद्युक्तौ परस्परजयैषिणौ। एवं चतुर्दिनमभूद्रात्रिंदिवमपीशयोः ॥३२॥
न कोऽपि तत्र ही न जीयेत महाबलः। पञ्चमे तु दिने वृत्ते वीरभ्रदो महाबलः ॥३३॥
गृहीत्वा नभ उड्डीनो महावीरं तु पुष्कलम्। तत्र युद्धं तयोरासीद्देवासुरविमोहनम् ॥३४॥
मुष्टिना चरणाघातैर्बाहुभिः सुखुरैर्महत् । तदात्यन्तं प्रकुपितः पुष्कलो वीरभद्रकम्॥३५॥
गृहीत्वा कण्ठदेशे तु ताडयामास भूतले। तत्प्रहारेण व्यथितो वीरभद्रो महाबलः ॥३६॥
गहीत्वा पुष्कलं पादे जघानास्फालयन्मुहुः। ताडयित्वा महीदेशे पुष्कलं सुमहाबलः ॥३७॥
त्रिशूलेन चकर्ताशु शिरोज्वलितकुण्डलम् । जगर्ज पुष्कलं हत्वा वीरभद्रो महाबलः ॥३८॥
गर्जता तेन शार्वेण प्रापितास्त्रासमुद्भटाः। हाहाकारो महानासीत्पुष्कले पतिते रणे॥३९॥
त्रासं प्रापुर्जनाः सर्वेरणमध्ये सुकोविदाः। ते शशंसुश्च शत्रुघ्नं पुष्कलं पतितं रणे॥४०॥
निहतं वीरभद्रेण महेश्वरगणेन वै। इत्याश्रुत्य महावीरः पुष्कलस्य वधं तदा॥४१॥

से प्रहार किया । खटवङ्ग से मारे गये पुष्कल क्षणभर के लिए मूर्छित हो गये । होश में आकर श्रेष्ठ वीर तथा परमास्त्र वेत्ता पुष्कल वीरभद्र के हाथ में विद्यमान खट्वाङ्ग को बाणों से काट दिया । वीरभद्र ने अपने खट्वाङ्ग को कटा हुआ देखकर ॥२६-२८॥ अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और उन्होंने पुष्कल के रथ को तोड़ दिया । उनके रथ को तोड़कर पदाति बना दिया ॥२९॥ उसके बाद वीरभद्र पुष्कल के साथ बाहु युद्ध करने लगे । चूर्णकिए गये रथ को छोड़कर पुष्कल ने वेगपूर्वक वीरभद्र को मुक्के से मारा । इसके बाद वे एक दूसरे पर मुक्के से, घुटने से प्रहार करने लगे ॥३०-३१॥ दोनों एक दूसरे का वध करना चाहते थे और दोनों विजय प्राप्त करना चाहते थे । इस तरह उन दोनों में चार दिनों तक रात-दिन युद्ध चलता रहा ॥३२॥ दोनों महाबलवान् थे उन दोनों में न तो कोई हारता था और न कोई जीतता था । पाञ्चवाँ दिन प्रारम्भ होने पर महाबलवान् वीरभद्र ॥३३॥ महावीर पुष्कल को पकड़कर आकाश में उड़ गये और वहीं उन दोनों का देवताओं और असुरों को मोहित करने वाला मुक्के, पैर प्रहार तथा भुजाओं आदि से युद्ध हुआ । अत्यन्त क्रुद्ध होकर पुष्कल ने वीरभद्र के ॥३४-३५॥ गले को पकड़कर पृथिवी पर पटक दिया । उससे व्यथित होकर महाबलवान् वीरभद्र ने ॥३६॥ पुष्कल के पैर को पकड़कर बार-बार उछाले और बार-बार पृथिवी पर पटका ॥३७॥ उसके बाद उसने पुष्कल के कुण्डल मण्डित शिर को त्रिशूल से काट दिया । इस तरह से पुष्कल का वध करके वीरभद्र ने गर्जना की ॥३८॥ शङ्कर भक्त की गर्जना से वहाँ अस्त्रधारी महावीर आ गये । युद्ध में पुष्कल के मारे जाने से महान् हाहाकार मच गये ॥३९॥ युद्ध कला को जानने वाले लोग भयभीत हो गये । उन लोगों ने शत्रुघ्नजी को बतलया कि युद्ध में पुष्कल की

दुःखं प्राप्तो रणेऽत्यन्तं कम्पमानः शुचा महान् ।
तं दुःखितं च शत्रुघ्नं ज्ञात्वा रुद्रोऽब्रवीद्वचः ॥४२॥
शत्रुघ्नं समरे वीरं शोचन्तं पुष्कले हते। रे शत्रुघ्न रणे शोकं मा कृथाः सुमहाबल !॥४३॥
वीराणां रणमध्ये तु पतनं कीर्तये स्मृतम् । धन्यो वीरः पुष्कलाख्यो यश्च वै दिनपञ्चकम्॥४४॥
युयुधे वीरभद्रेण महाप्रलयकारिणा। येन क्षणाद्विनिहतो दक्षो मदपमानकृत्॥४५॥
क्षणाद्विनिहता येन दैत्यास्त्रिपुरसैनिकाः ।
तस्माद्युद्ध्यस्व राजेन्द्र ! शोकं त्यक्त्वा महाबल ! ॥४६॥
यत्नात्तिष्ठाद्य वीराग्र्य मयी योद्धरि संस्थिते ।
शोकं सन्त्यज्य शत्रुघ्नो वीरश्चुक्रोध शङ्करम् ॥४७॥
आत्तसज्ज्यधनुर्बाणैः प्रचच्छाद महेश्वरम्। ते बाणाः सुरशीर्षण्यवपुषं क्षतविक्षतम्॥४८॥
अकुर्वत महच्चित्रं भक्तरक्षार्थमागतम् । ते बाणाः शङ्करस्यापि बाणा नभसि संस्थिताः॥४९॥
व्याप्यैतत्सकलं विश्वं चित्रकारिमुनेरपि। तद्बाणयोर्युद्धबलं वीक्ष्य सर्वत्र मेनिरे ॥५०॥
प्रलयं लोकसंहारकारकं सर्वमोहकम् । आकाशे तु विमानानि संश्रित्य स्वपुरस्थिताः॥५१॥
विलोकयितुमागत्य प्रशंसन्ति तयोर्भृशम् । अयं लोकत्रयस्यास्य प्रलयोत्पत्तिकारकः ॥५२॥
असावपि महाराज ! रामचन्द्रस्य चानुजः । किमिदं भविता को वा जेष्यति क्षितिमण्डले॥५३॥
पराजयं वा को वीरः प्राप्स्यते रणमूर्धनि। एवमेकादशाहानि वृत्तं युद्धं परस्परम् ॥५४॥
द्वादशे दिवसे प्राप्ते मुमोचास्त्रं नराधिपः । ब्रह्मसंज्ञं महादेवं हन्तुं क्रोधसमन्वितः ॥५५॥
स विज्ञाय महास्त्रं तन्मुक्तं शत्रुघ्नवैरिणा । हसन्नप्यपिबत्तेन मुक्तं ब्रह्मशिरो महत् ॥५६॥

मृत्यु हो गयी हैं ॥४०॥ उनको महेश्वर के भक्त वीरभद्र ने मार दिया है । पुष्कल के इस तरह से बध के बारे में सुनकर ॥४१॥ शत्रुघ्नजी दुःखी होकर काँप गये । उनको दुःखी देखकर रुद्र ने ॥४२॥ युद्ध में पुष्कल के मारे जाने पर शोक करने वाले शत्रुघ्नजी से कहा— महावलवान् शुत्रुघ्न युद्ध में शोक न करो ॥४३॥ युद्ध में वीरों का मरना तो उनके यश को बढ़ाता है । वीर पुष्कल धन्य है जिसने पाञ्च दिनों तक महाप्रलयकारी वीरभद्र के साथ युद्ध किया । जिस वीरभद्र ने मेरा अपमान करने वाले दक्ष को क्षणभर में मार दिया ॥४४-४५॥ उसने त्रिपुर की सेना को क्षणभर में विनष्ट कर दिया था । अतएव हे राजेन्द्र ! युद्ध करो शोक को त्याग दो ॥४६॥ हे वीर श्रेष्ठ ! सावधानी से मेरे साथ युद्ध करो । इसके वाद शोक करना छोड़कर शत्रुघ्नजी शङ्करजी पर क्रुद्ध हो गये ॥४७॥ उन्होंने धनुष धारण करके बाणों से शङ्करजी को ढंक दिया । उन वाणों ने भक्त की रक्षा करने के लिए आये हुए देवश्रेष्ठ शङ्करजी के शरीर को क्षतविक्षत कर दिया । उनके वाण तथा शङ्करजी के भी बाण इस सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त होकर आकाश में स्थित हो गये । इस तरह के वाणों के युद्ध को देखकर विमान पर चढ़कर अपने नगर में स्थित देवताओं ने उसे सबों को मोहित करने वाला तथा लोकों का संहार करने वाला युद्ध माना ॥४८-५१॥ युद्ध देखने के लिए आकर सब प्रशंसा करते हुए कहते थे कि यह त्रैलोक्य में प्रलय उत्पन्न कर देने वाला युद्ध है ॥५२॥ ये रामचन्द्र के अनुज भी सोचते थे कि क्या होगा ? पृथिवी पर कौन विजयी होगा?॥५३॥ युद्ध में कौन वीर पराजय प्राप्त करेगा ? इस तरह परस्पर में ग्यारह दिन तक युद्ध चलता रहा॥५४॥ वारहवें दिन शत्रुघ्नजी ने महेश्वर को मारने के लिए ब्रह्मशिरः अस्त्र का प्रयोग किया ॥५५॥ शङ्करजी

अत्यन्तं विस्मयं प्राप्य किंकर्तव्यमतः परम् ।
एवं विचारयुक्तस्य हृदये ज्वलनोपमम् ॥५७॥
शरं वै निचखानाशु देव देव शिरोमणिः । तेन बाणेन शत्रुघ्नो मर्च्छितो रणमण्डले ॥५८॥
हाहाभूतमभूत्सर्वं कटकं भटसेवितम्। वीरा:सर्वे रुद्रगणैः पातिताः पृथिवीतले ॥५९॥
सुबाहुपद्मप्रेष्ठाः स्वबाहुबलदर्पिताः । पतितं मूर्च्छया वीक्ष्य शत्रुघ्नशरपीडिनम् ॥६०॥
पुष्कलं तु रथे स्थाप्य सेवकैः परिरक्षितुम् ।
हनूमानागतो योद्धुं शिवं संहारकारकम् ॥६१॥
श्रीरामस्मरणाद्योधान्स्वीयान्विप्र प्रहर्षितान्। प्रकुर्वनोषितस्तीव्रं लाङ्गूलं च प्रकम्पयन्॥६२॥

इति श्रीपद्मपुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
पुष्कलशत्रुघ्नपराजयो नाम त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४३॥

◆

चौवालिसवाँ अध्याय

शेष उवाच

आगत्य सविधे रुद्रं समराङ्गणमूर्धनि। जगाद हनुमान्वीरः सञ्जिहीर्षुः सुराधिपम्॥१॥

ने जान लिया कि उनके वैरी शत्रुघ्न ने महास्त्र का प्रयोग किया है । उन्होने हँसते हुए उस ब्रह्मशिरः अस्त्र को पी लिया ॥५६॥ अत्यन्त आश्चर्यित होकर सोचने लगे कि अब क्या किया जाय, इस तरह से विचार करके देवाराध्य शङ्करजी ने शत्रुघ्न के हृदय में अग्नि के समान बाण का प्रहार किया, उस बाण से शत्रुघ्न मूर्छित होकर गिर पड़े ॥५७-५८॥ शत्रुघ्नजी की सेना में हाहाकार मच गया रुद्रगणों ने सभी वीरों को मार कर पृथिवी पर गिरा दिया ॥५९॥ वे सभी सुबाहु के प्रिय और अपने बाहुबल से दृप्त थे । शत्रुघ्नजी को मूर्छित होकर गिरे देखकर ॥६०॥ हनुमानजी पुष्कल को रथ में रखकर तथा सेवकों को उनकी रक्षा करने की लिए निर्दिष्ट करके शिवजी से युद्ध करने के लिए हनुमानजी आ गये ॥६१॥ श्रीरामजी का स्मरण करते हुए अपने वीरों को प्रहर्षित करते हुए हनुमानजी अपनी पूंछ को घुमा रहे थे और अत्यन्त क्रुद्ध हो गये थे ॥६२॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत श्रीरामाश्वमेध प्रकरण में पुष्कल तथा शत्रुघ्नजी के पराजय वर्णन नामक तैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४३।।

◆

शिवजी के साथ हनुमानजी का युद्ध, हनुमानजी के प्रहार से व्याकुल शिवजी को उनको वरदान देना, द्रोणालच के देवता का हनुमानजी से पराजय

शेषजी ने कहा— युद्धस्थल में शिवजी के पास आकर उनको परास्त करने की इच्छा से हनुमानजी ने कहा ॥१॥ **हनुमानजी ने कहा—** रुद्र आप जो कर रहें है वह धर्म के प्रतिकूल है । अतएव रामभक्तों का वध

हनूमानवाच

त्वं यदाचरसे रुद्र ! धर्मस्य प्रतिकूलनम्। तस्मात्त्वां शास्तुमिच्छामि रामभक्तवधोद्यतम् ॥२॥
मया पुरा श्रुतं देव ! ऋषिभिर्बहुधोदितम् । रघुनाथपदस्मारी नित्यं रुद्रः पिनाकभृत् ॥३॥
तत्सर्वं तु मृषा जातं शत्रुघ्नं प्रतियुध्यतः । पुष्कलो मे हतः शूरः शत्रुघ्नोऽपि विमूर्च्छितः ॥४॥
तस्मात्त्वां पातयाम्यद्य त्रैलोक्यप्रलयोद्यतम् । यत्नात्तिष्ठस्व भोःशर्व ! रामभक्तिपराङ्मुख॥५॥

शेष उवाच

इत्युक्तवंतं प्लवगं प्रोवाच स महेश्वरः। धन्योऽसि वीरवर्यस्त्वं भवान्वदति नो मृषा॥६॥
मत्स्वामी रामचन्द्रोऽयं सुरासुरनमस्कृतः । तदश्वमानयामास शत्रुंघ्नः परवीरहा ॥७॥
तद्रक्षार्थं समायातस्तद्भक्त्या तु वशीकृतः ।
यथा कथञ्चिद्भक्तोऽसौ रक्ष्यः स्वात्मा इति स्थितिः ॥८॥
रघुनाथः कृपां कृत्वा विलोकयतु निस्त्रपम् ।
मां स्वभक्तं सुदुःखेन किञ्चित्कोपं दधन्महान् ॥९॥
एवं वदति चण्डीशे हनूमान्कुपितो भृशम् । शिलामादाय महतीं ताडयामास तद्रथम्॥१०॥
शिलया ताडितस्तस्य रथः शकलतां गतः ।
ससूतः सहयः केतुपताकाभिः समन्वितः ॥११॥
नभःस्था देवताः सर्वाः प्रशशंसुः कपीश्वरम् ।
धन्योऽसि प्लवगाधीश ! महात्कर्म त्वया कृतम् ॥१२॥
श्रीशिवं विरथं दृष्ट्वा नन्दी तं समुपाद्रवत् ।
उवाच श्रीमहादेवं मत्पृष्टं गम्यतामिति ॥१३॥
वृषस्थितं तु भूतेशं हनूमान्कुपितो भृशम् । शिलामुत्पाट्यतरसा जघान हृदये तदा॥१४॥

करने के लिए तैयार आपका मैं प्रशासन करना चाहता हूँ ॥२॥ देव मैंने पहले ऋषियों के मुख से सुना था कि पिनाकधारी रुद्र श्रीरामचन्द्र के चरणों का स्मरण करते हैं ॥३॥ शत्रुघ्नजी से युद्ध करने वाले आपके विषय में वे सारी बातें मिथ्या हो गयीं । आपने मेरे पुष्कल को मार दिया और शत्रुघ्नजी को मूर्छित कर दिया है ॥४॥ अतएव त्रैलोक्य का प्रलय करने वाले आपको मैं आज मारता हूँ । आप सावधान होकर स्थित रहें । आप रामभक्ति के पराङ्मुख हैं ॥५॥ **शेषजी ने कहा**— इस तरह से कहने वाले हनुमानजी से शङ्करजी ने कहा आप धन्य हैं और वीरों में श्रेष्ठ हैं, क्योंकि इस तरह की बातें करते हैं ॥६॥ मेरे स्वामी श्रीराम देवताओं और दैत्यों से नमस्कृत हैं । उनके अश्व को शत्रुओं को मारने वाले शत्रुघ्न लाये हैं ॥७॥ उसकी भक्ति के वश में रहने वाला मैं युद्ध करने के लिए उसकी रक्षा के लिए आया हूँ । भक्त तो अपनी आत्मा होता है । उसकी रक्षा किसी प्रकार से करनी चाहिए ॥८॥ अतएव श्रीरामजी क्रोध करके ही निर्लज्ज मुझको कृपा पूर्वक देख लें ॥९॥ शङ्करजी के इस तरह कहने पर हनुमानजी अत्यन्त क्रुद्ध हो गये । उन्होंने विशाल शिला लेकर शङ्करजी के रथ पर प्रहार किया॥१०॥ उस शिला के प्रहार से शङ्करजी का रथ चूर-चूर हो गया और उसके घोड़े सारथि और पताका भी विनष्ट हो गये ॥११॥ आकाश में स्थित देवताओं ने हनुमानजी की प्रशंसा की । उन लोगों ने कहा वानरराज! आप धन्य हैं । आपने बहुत बड़ा काम किया है ॥१२॥ शङ्करजी को रथ विहीन देखकर नन्दी दौड़े और शङ्करजी

तदाऽहतो भूतपतिः शूलं तीक्ष्णं समाददे । जाज्वल्यमानं त्रिशिखं वह्निज्वालासमप्रभम् ॥१५॥
आयातं तन्महद्दृष्ट्वा शूलं प्रज्वलनप्रभम् । हस्ते गृहीत्वा तरसा बभञ्ज तिलशः क्षणात् ॥१६॥
भग्ने त्रिशूले तरसा कपीन्द्रेण क्षणाच्छिवः। शक्तिं करे समाधत्त सर्वलोहविनिर्मिताम् ॥१७॥
सा शक्तिः शिवनिर्मुक्ताहृदये तस्य धीमतः। लग्ना क्षणादभूत्तत्र विक्लवः प्लवगाधिपः ॥१८॥
क्षणाच्च तद्व्यथां तीर्त्वा गृहीत्वा वृक्षमुल्बणम् ।
ताडयामास हृदये महाव्यालविभूषिते ॥१९॥
ताडितास्तेन वीरेण फणीन्द्रास्त्रासमागताः। इतस्ततस्ते तं मुक्त्वा गताः पातालमुज्जवाः ॥२०॥
शिवस्तस्मिन्नगे मुक्ते वक्षसि स्वे निरीक्ष्य च ।
कुपितो व्यदधद्घोरं मुसलं करयुग्मके ॥२१॥
हतोऽसि गच्छ संग्रामात्पलाय्य प्लवगाधम ! ।
एष ते प्राणहन्ताहं मुसलेनक्षणादिह ॥२२॥
मुसलं वीक्ष्य निर्मुक्तं शिवेन कुपितेन वै। कीशस्तद्वञ्चयामास महावेगाद्धरिं स्मरन् ॥२३॥
मुसलं तत्पपाताधः शिवमुक्तं महायसम्। विदार्य पृथिवीं सर्वा जगाम स रसातलम् ॥२४॥
तदा प्रकुपितोऽत्यन्तं हनूमानरामसेवकः। गृहीत्वा पर्वतं हस्ते ताडयामास वक्षसि ॥२५॥
स यावत्पर्वतं छेत्तुं मतिं चक्रे सतीपतिः । तावद्धतः कपीन्द्रेण शालेन बहुशाखिना ॥२६॥
तमपि च्छेत्तुमुद्युक्तो यावत्तावच्छिलाहतः । शिलास्ता भेदितुं स्वान्तं चकार मृड उद्यतः ॥२७॥
तावद्दृष्टिं चकारायं शिलाभिर्नगपर्वतैः । लाङ्गूलेन च संवेष्ट्य ताडयत्येष भूतपम् ॥२८॥

से कहे कि आप मेरे पीठ पर बैठ जाइये ॥१३॥ बैल पर बैठे हुए शङ्करजी को देखकर हनुमानजी ने शिला उखाड़कर उनके हृदय पर वेग से प्रहार किया ॥१४॥ उससे आहत होकर शङ्करजी ने अपना त्रिशूल उठाया वह त्रिशूल अग्नि की ज्वाला के समान जल रहा था ॥१५॥ आये हुए त्रिशूल को हनुमानजी ने हाथ में लेकर चूर-चूर कर दिया ॥१६॥ हनुमानजी के द्वारा त्रिशूल को तोड़ दिये जाने पर उसी क्षण शिवजी ने सभी धातुओं से निर्मित शक्ति को अपने हाथ में ले लिया ॥१७॥ शक्ति हनुमानजी के वक्ष स्थल में जाकर लगी । उससे हनुमानजी क्षणभर के लिए मूर्छित हो गये ॥१८॥ क्षणभर के बाद उन्होंने भयंकर वृक्ष लेकर शङ्करजी के महाव्याल से विभूषित हृदय में प्रहार किया ॥१९॥ उस प्रहार से सर्पराज भयभीत हो गये और इधर-उधर भागते हुए वे पाताल में चले गये ॥२०॥ शिवजी ने देखा कि सर्पराज उनके वक्षस्थल में नहीं हैं वे क्रोध करके अपने दोनों हाथ में मुसल धारण किए ॥२१॥ उन्होंने कहा वानराधम संग्राम से भाग जाओ नहीं तो मारे गये तुम । क्षणभर में मैं मुसल से मार रहा हूँ ॥२२॥ क्रुद्ध शिवजी के द्वारा छोड़े गए मुसल को देखकर श्रीहरि का स्मरण करते हुए हनुमानजी उससे अपने को बचा लिए ॥२३॥ लौह निर्मित तथा क्रुद्ध शिवजी के द्वारा छोड़ा गया वह मुसल पृथिवी पर गिरा और पाताल में चला गया ॥२४॥ उस समय श्रीरामसेवक हनुमानजी अत्यन्त कुपित हो गए। वे हाथ में पर्वत लेकर शङ्करजी के वक्षःस्थल पर प्रहार किए ॥२५॥ शिवजी जब तक उस पर्वत को काटना चाहे, तब तक हनुमानजी ने अनेक शाखाओं वाले शालवृक्ष से उन पर प्रहार किया ॥२६॥ जब तक उसको भी काटने के लिए वे तैयार हुए तब तक हनुजानजी ने उन पर शिला से प्रहार किया । जब शिवजी उन शिलाओं को काटना चाहे तब तक वे उन पर पर्वतों की वर्षा करने लगे । वे पर्वतो को अपनी पूंछ में लपेटकर उससे

शिलाभिः पर्वतैर्वृक्षैः पुच्छास्फोटेन भूरिशः ।
नन्दी प्राप्तो महात्रासं चन्द्रोऽपि शकलीकृतः ॥२९॥
अत्यन्तं विह्वलो जातो महेशानः प्रकोपनः। क्षणे क्षणे प्रहारेण विह्वलं कुर्वतं भृशम् ॥३०॥
जगाद प्लवगाधीशं धन्योऽसि रघुपानुग !। महत्कर्म कृतं तेऽद्य यत्तेऽहं सुप्रतोषितः ॥३१॥
न दानेन न यज्ञेन नाल्पेन तपसा ह्यहम् । सुलभोऽस्मि महावेग ! तस्मात्प्रार्थय मे वरम्॥३२॥

शेष उवाच

एवं ब्रुवन्तं तं दृष्ट्वा हनूमान्निजगाद तम्। प्रहसन्निर्भिया वाण्या महेशानं सुतोषितम्॥३३॥

हनूमानुवाच

रघुनाथ प्रसादेन सर्वं मेऽस्ति महेश्वर । तथापि याचे हि वरं त्वत्तः समरतोषितात्॥३४॥
एष पुष्कलसंज्ञो नः समरे पतितो हतः। तथैव रामावरजः शत्रुघ्नो मूर्च्छितो रणे ॥३५॥
अन्ये च वीरा बहवः पतिताः शरविक्षताः। मूर्च्छिताः पतिताः केचित्तानरक्ष स्वगणैः सह॥३६॥
यथा चैतान्महाभूता वेतालाश्च पिशाचकाः । न हरन्ति न खादन्ति श्वशृगालादयस्तथा ॥३७॥
एतेषां वपुषो भेदो न भवेत्त्वं तथाऽऽवर। यावदिन्द्रगणं जित्वाऽऽनयामि द्रोणपर्वतम् ॥३८॥
तत्रस्था ओषधीर्वापि नीत्वा संस्थापितान्भटान् ।
जीवयामि बलात्सर्वास्तावत्त्वं रक्ष सर्वशः ॥३९॥
एष गच्छामि तं नेतुं द्रोणं पर्वतसत्तमम्। यस्मिन्वसन्त्योषधयः प्राणिसञ्जीवनङ्कराः ॥४०॥
एतद्वचः समाकर्ण्य तथेति निजगाद तम्। याहि शीघ्रं नगं तं तु रक्षामि त्वद्भटान्मृतान् ॥४१॥
तच्छ्रुत्वा वाक्यमीशस्य जगाम द्रोणपर्वतम्। द्वीपान्सर्वानतिक्रम्य जगाम क्षीरसागरम्॥४२॥

शङ्करजी को मारे ।।२७-२८।। शिलाओं, पर्वतों, वृक्षों तथा पूंछ के प्रहार से नन्दी अत्यन्त भयभीत हो गये । चन्द्रमा टुकड़े-टुकड़े हो गये ।।२९।। क्रोधी शङ्करजी अत्यन्त घबरा गये क्योंकि हनुमानजी उन पर प्रत्येक क्षण प्रहार कर रहे थे ।।३०।। उन्होंने हनुमानजी से कहा वानरराज आप धन्य हैं । आपने इस महान् कार्य से मुझे सन्तुष्ट कर दिया ।।३१।। मैं यज्ञ, दान और तपस्या से सुलभ नहीं हूँ; अतएव आप मुझसे वरदान माँगें ।।३२।। **शेषजी ने कहा—** इस तरह से कहने वाले शङ्करजी से हनुमानजी ने सन्तुष्ट हुए शङ्करजी से जोर से हँसकर कहा।।३३।। **हनुमानजी ने कहा—** शङ्करजी ! भगवान् राम की कृपा से मुझको सब कुछ प्राप्त है, फिर भी युद्ध से सन्तुष्ट हुए आपसे मैं वरदान माँगता हूँ ।।३४।। ये हमारे पुष्कल नामक वीर मारे गये हैं, युद्ध में शत्रुघ्नजी मूर्छित हो गये हैं ।।३५।। बाणों से विक्षत होकर दूसरे वीर युद्ध में पड़े हैं, वे सब मूर्छित पड़े हैं । उन सबों की रक्षा आप अपने गण के साथ करें ।।३६।। आप ऐसा करें कि इन गिरे हुओं के शरीर को भूत, वेताल तथा पिशाच न ले जा सकें और न स्यार इत्यादि इनको खा सकें । जब तक मै इन्द्र इत्यादि देव गणों को हराकर द्रोण पर्वत न लाऊँ तब तक आप ऐसा करें ।।३७-३८।। अथवा वहाँ पर विद्यमान औषधियों को लाकर मरे बीरों को जब तक मैं जिला न लूँ तब तक आप इनकी रक्षा करें ।।३९।। अब मैं उस द्रोण पर्वत को लाने जा रहा हूँ । उस पर प्राणियों को जिलाने वाली औषधियाँ रहती हैं ।।४०।। इस बात को सुनकर शङ्करजी ने कहा ठीक है । तुम शीघ्र जाओ मैं तुम्हारे वीरों की रक्षा कर रहा हूँ ।।४१।। शङ्करजी के इस वाक्य को सुनकर हनुमानजी द्रोण पर्वत पर चले गये । सभी द्वीपों को पार करके वे क्षीरसागर में गये ।।४२।। यहाँ पर शङ्करजी अपने गणों

अत्र तु स्वगणैश्चायं रक्षतिस्म शिवो महान् ।
श्मशानं तद्गणैः स्वीयैर्महाबलपराक्रमैः ॥४३॥
हनूमान्द्रोणमासाद्य द्रोणं नाम महागिरिम् । लाङ्गूले तं निधायाशु प्रतस्थे रणमण्डलम् ॥४४॥
तं नेतुमुद्यते विप्र चकम्पे स च पर्वतः । कम्पमानं तु तं दृष्ट्वा तत्पाला देवतागणाः ॥४५॥
हाहेति कृत्वा प्रोचुस्ते किमिदं भविता गिरौ ।
को ह्येनं नयते वीरो महाबलपराक्रमः ॥४६॥
एवं कृत्वा सुराः सर्वे संहता ददृशुः कपिम् ।
मुञ्चैनमिति तं प्रोच्य जघ्नुः शस्त्रास्त्रकोटिभिः ॥४७॥
तान्सर्वान्निघ्नतो दृष्ट्वा हनूमान्कुपितो भृशम् ।
जघान तान्क्षणाद्वीरः शक्रः सर्वासुरान्यथा ॥४८॥
केचित्पदा हतास्तत्र केचित्करविमर्दिताः । लाङ्गूलेन हताः केचित्केचिच्छृङ्गेण चाहताः ॥४९॥
सर्वे ते नाशमापन्नाः क्षणात्कीशेन ताडिताः ।
केचन्निपतिता भूमौ रुधिरेण परिप्लुताः ॥५०॥
केचित्कीशभयात्त्रस्ता जग्मुः शक्रं सुराधिपम् ।
क्षतेन च परिप्लुष्टा रुधिरक्षतदेहिनः ॥५१॥
तान्दृष्टवा भयसंविग्नान्रुधिरेण परिप्लुतान् । सुराञ्जगाद विमनाः शक्रः सर्वसुरोत्तमः ॥५२॥
कथं यूयं भयत्रस्ताः कथं रुधिरविप्लुताः । केन दैत्येन निहता राक्षसेनाधमेवन वा ॥५३॥
सर्वं शंसत मे तथ्यं यथा ज्ञात्वा व्रजामि तम् ।
निहत्य बद्ध्वा चायामि युष्मद्घातकमुन्मदम् ॥५४॥

के साथ रक्षा करने का काम अपने अत्यन्त पराक्रमी गणों के साथ कर रहे थे ॥४३॥ हनुमानजी द्रोण नामक महापर्वत पर आकर उसे अपनी पूंछ पर रखकर युद्धस्थल के लिए प्रस्थान किए ॥४४॥ पर्वत को ले जाने के लिए उद्यत होने पर पर्वत काँप गया । उसको काँपते हुए देखकर उसके रक्षक देवताओं का गण ॥४५॥ हाहाकार करते हुए कहने लगे पर्वत पर न जाने क्या होने वाला है ? कौन महान् बल एवं पराक्रम से युक्त वीर इसे ले जा रहा है ॥४६॥ इस तरह एकत्रित हुए देवताओं ने हनुमानजी को देखा । उन सबों ने कहा इसे तुम छोड़ दो और इसके बाद उन सबो ने करोड़ों शस्त्रास्त्रों से उन पर प्रहार किया ॥४७॥ उन सबों को प्रहार करते देखकर हनुमानजी कुपित हो गये उन्होंने उसी तरह से उन सबों को मारा जैसे इन्द्र ने दैत्यों को मारा था ॥४८॥ किसी को पैर से मार दिया किसी को हाथ से मसल दिया । कुछ को पूँछ से उन्होंने मारा और कुछ को शिखर से मार दिया ॥४९॥ हनुमानजी से मारे जाकर वे सभी विनष्ट हो गये कुछ खून से लथपथ होकर पृथिवी पर गिर पड़े॥५०॥ कुछ देव हनुमानजी से भयभीत होकर इन्द्र के पास गये वे सब खून से सने थे और उनके शरीर कटपिट गये थे ॥५१॥ उन देवताओं को भयभीत तथा खून से सने देखकर देववर्य इन्द्र ने दुःखी होकर उन सबों से पूछा ॥५२॥ तुम सभी भयभीत क्यों हो ? कैसे तुम लोग खून से सने हो ? तुमलोगों को किस अधम दैत्य अथवा राक्षस ने मारा है ?॥५३॥ सारी बातों को ठीक-ठीक बतलाओ । मैं उसके पास जा रहा हुँ तुमलोगों को मारने वाले उस उन्मत्त को बाँधकर तथा मारकर आता हूँ ॥५४॥ इन्द्र की बात को सुनकर उन देवताओ

इति वाक्यं समाकर्ण्य तुरासाहं सुरोत्तमाः। जगदुर्दीनया वाचा सुरासुरनमस्कृतम् ॥५५॥

देवा ऊचुः

इहागत्य न जानीभः कश्चिद्वानररूपधृत्। नेतुं द्रोणं समुद्युक्तो लाङ्गूले वेष्ट्य तं गिरिम् ॥५६॥
गन्तुं कृतमतिस्तावद्वयं सर्वे सुसंहताः। युद्धं चकृमसन्नद्धाः सर्वशस्त्रास्त्रवर्षिणः ॥५७॥
तेन सर्वे वयं युद्धे निर्जिता बलशालिना। अनेके निहतास्तत्र भूमौ पेतुः सुरोत्तमाः ॥५८॥
वयं तु बहुभिः पुण्यैर्जीविता इह चागताः। शोणितेन सुसिक्ताङ्गाः क्षतपीडासमन्विताः ॥५९॥
एतद्वाक्यं समाकर्ण्य सुराणां स पुरन्दरः। आदिदेश सुरान्सर्वान्बलावलसमन्वितान् ॥६०॥
यात महाद्रोणगिरिं कपिं बद्धुं महाबलम्। बद्धवाऽऽनयत यूयं वै सुराणां रणपातकम् ॥६१॥
इत्याज्ञप्ता ययुस्ते वै द्रोणं पर्वतसत्तमम्। यत्रास्ते बलवान्वीरो हनूमान्कपिसत्तमः ॥६२॥
गत्वा ते प्राहरन्सर्वे हनूमन्तं महाबलम्। हनूमता ते निहता मुष्टिभिः करताडनैः ॥६३॥
पतितास्ते क्षणात्तत्र रुधिरक्षतविग्रहाः। अन्ये पलायनपरा जग्मुस्ते त्रिदिवेश्वरम् ॥६४॥
तच्छ्रुत्वा कुपितः शक्रः सर्वानमरसत्तमान्। आदिदेश महावीरं वानरेन्द्रं सुरोत्तमः ॥६५॥
तदाज्ञप्ता ययुस्ते वै यत्र कीशेश्वरो बली। तान्सर्वानागतान्दृष्ट्वा जगाद कपिसत्तमः ॥६६॥
मा यान्तु वीराः समरे संहर्तारं हि मां बलात्।
नेष्यामि युष्मानधुना संयमिन्याः पुरोऽन्तिके ॥६७॥
इत्युक्ता अपि ते सर्वे सन्नद्धाः प्राहरन्कपिम्।
शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तैर्महाबलसमन्विताः ॥६८॥
केचिच्छूलैः परशुभिः केचित्खड्गैश्च पट्टिशैः।
मुसलैः शक्तिभिः केचित्क्रोधेन कलुषीकृताः ॥६९॥

ने दीन होकर देवासुर नमस्कृत इन्द्र से कहा ॥५५॥ **देवताओं ने कहा**— हमलोग उसको नहीं जानते हैं, कोई बानर का रूप धारण करके, द्रोण पर्वत को अपनी पूँछ में लपेट कर ले जाना चाहता है ॥५६॥ उसको जाने के लिए तैयार देखकर हमलोग मिलकर सभी शस्त्रास्त्रों की वर्षा करके युद्ध किए ॥५७॥ उस बलवान् ने हम सबों को युद्ध में परास्त कर दिया । बहुत से देवता मरकर पृथिवी पर गिर पड़े हैं ॥५८॥ अनेक पुण्यों के फलस्वरूप हमलोग जीवित रहकर आपके पास आये हैं । हमलोग घाव की पीड़ा से पीड़ित तथा खून से सने हैं ॥५९॥ इस बात को सुनकर इन्द्र सेना से युक्त बलवान देवताओं को आदेश दिए ॥६०॥ कि तुमलोग महाद्रोण पर्वत पर जाओ महाबलवान् वानर को बाँध करके यहाँ लाओ । उसने युद्ध में देवताओं को मारा है॥६१॥ इस तरह से आज्ञा प्राप्त करके वे देवता वहाँ गये जहाँ द्रोण पर्वत पर बलवान् वीर हनुमानजी थे॥६२॥ उन सबों ने हनुमानजी पर प्रहार किया और हनुमानजी ने उन सबों को मुक्के तथा थप्पड़ से मार दिया॥६३॥ क्षणभर में वे सब खून से सने शरीर वाले गिर पड़े और कुछ भाग कर इन्द्र के पास गये ॥६४॥ यह सुनकर क्रुद्ध हुए इन्द्र ने सर्वश्रेष्ठ देवताओं को हनुमानजी से युद्ध करने का आदेश दिया ॥६५॥ इन्द्र की आज्ञा पाकर वे देवता हनुमानजी से युद्ध करने गये । उन सबों को देखकर हनुमानजी ने कहा ॥६६॥ वीरों मुझसे युद्ध न करो नहीं तो मैं तुम सबों को यमपुरी भेज दूँगा ॥६७॥ यह सुनकर वे सब तैयार होकर हनुमानजी पर अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों से प्रहार करने लगे ॥६८॥ कुछ देवता उन पर शूल से, कुछ पट्टिश से, कुछ मुसल से कुछ फरसे से उन पर क्रुद्ध होकर प्रहार किये ॥६९॥ बलवान् देवताओं के अनेक आयुधों से मारे जाकर उन श्रेष्ठ देवताओं को हनुमानजी ने शिलाओं से मारा ॥७०॥ उन सबों में से कुछ देवता भागकर इन्द्र को सारी बात

स आहतोऽमरवरैर्विविधैरायुधैर्बली। शिलाभिस्ताञ्जघानाशु सर्वानमरसत्तमान् ॥७०॥
केचित्पलाय्य आहुस्ते गताः शक्रसमीपकम् ।
तदुक्तं वाक्यमाकर्ण्य भयं प्राप सुराधिपः ॥७१॥
बृहस्पतिं सुराध्यक्षं मन्त्रिणं स्वर्गवासिनाम्। पप्रच्छ सविधे गत्वा नत्वा सुरगुरुं वरम्॥७२॥

इन्द्र उवाच

कोऽसौ यो वानरो द्रोणं नेतुं स्वामिन्समागतः ।
येन मे निहता वीरा अमराः शस्त्रधारिणः ॥७३॥

शेष उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु तद्वाक्यमुक्तमाङ्गिरसो महान् । जगाद भयसंविग्नं तुरासाहं सुराधिपम् ॥७४॥

बृहस्पतिरुवाच

यो रावणमहन्सङ्ख्ये कुम्भकर्णमदीदहत्। येन ते वैरिणः सर्वे हतास्तस्यैव सेवकः ॥७५॥
येन लङ्का सत्रिकूटा निर्दग्धा पुच्छवह्निना । अक्षश्च निहतो येन हनूमन्तमवेहि तम् ॥७६॥
तेन सर्वे विनिहता द्रोणार्थमयमुद्यतः। हयमेधं महाराजः करोति बलिसत्तमः॥७७॥
तस्याश्वं शिवभक्तस्तु नृपो वीरमणिर्महान् । जहार तत्र समभूद्रणं सुरविमोहनम् ॥७८॥
शिवेन निहताः सङ्ख्ये वीरा रामस्य भूरिशः ।
तान्वै जीवयितुं द्रोणं नेष्यत्येव महाबलः ॥७९॥
नायं वर्षशतैर्जेयो भवता बलसंयुतः। तस्मात्प्रसादय कपिं देहि तत्रत्यमौषधम्॥८०॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायन संवादे रामाश्वमेधे
द्रोणगिरौ देवानां पराजयो नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४४॥

* * *

वतलाए । यह सुनकर इन्द्र भयभीत हो गये ॥७१॥ देवताओं के तथा स्वर्गवासियों को मन्त्र प्रदान करने वाले आचार्य बृहस्पति के पास जाकर उन्होंने पूछा ॥७२॥ **इन्द्र ने कहा**— हे स्वामिन् ! यह कौन वानर है जो द्रोण पर्वत को लेने के लिए आया है ? उसने मेरे शस्त्रधारी देवों को मार दिया है ॥७३॥ **शेषजी ने कहा**— इन्द्र की बातो को सुनकर भयभीत देवराज इन्द्र से बृहस्पति बोले ॥७४॥ **बृहस्पति ने कहा**— जिन्होंने युद्ध में रावण और कुम्भकर्ण को विनष्ट कर दिया, जिन्होंने तुम्हारे सभी वैरियों को मार दिया उन्हीं श्रीरामचन्द्रजी के सेवक॥७५॥ जिन्होंने अपनी पूंछ की आग से त्रिकूट के साथ लङ्का को जला दिया; जिन्होंने अक्षय कुमार को मार दिया वे ही हनुमान इनको जानो ॥७६॥ द्रोण को ले जाने के लिए उद्यत उन्होंने ही सभी को मारा है । महाराज श्रीराम श्रेष्ठ अश्वमेध याग कर रहे हैं ॥७७॥ उनके अश्व को शिवभक्त महान् राजा वीरमणि ने हरण कर लिया । वहाँ पर देवताओं को भी मोहित करने वाला युद्ध हुआ ॥७८॥ युद्ध में शिवजी ने बहुत अधिक सेना को मार दिया । ये महाबली उन वीरों को ही जीवित करने के लिए द्रोण पर्वत को ले जाना चाहते हैं ॥७९॥ आप अपनी सेना के साथ दश हजार वर्षों में भी इनको नहीं जीत सकते हैं । अतएव उनको प्रसन्न करके आप उन्हें वहाँ की औषधि प्रदान कर दें ॥८०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में द्रोणगिरि पर देवताओं के पराजय वर्णन नामक चौवालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४४।।

* * *

पैंतालिसवाँ अध्याय

शेष उवाच

गुरुभाषितमाकर्ण्य वृषपर्वरिपुः स्वराट्। ज्ञात्वा रामस्य कार्यार्थमागतं पवनात्मजम्॥१॥
भयं तत्याज मनसि वानरात्समुपस्थितम्। जहर्ष चित्ते च भृशं वाचस्पतिमुवाच ह॥२॥

इन्द्र उवाच

कथं कार्यं सुराधीश द्रोणोऽयं नीयते यदि।
देवानां जीवनं भूयः कथं स्यादिति मे वद॥३॥
इदानीं पवनोद्भूतं प्रसादय यथातथम्। रामः प्रीतिं परां याति देवानां च सुखं भवेत्॥४॥
देवाधिपस्य वचनं श्रुत्वा वाचस्पतिस्तदा। शक्रं तु पुरतः कृत्वा सर्वदेवैः परीवृतम्॥५॥
जगाम तत्र यत्रास्ते हनूमान्निर्भयः कपिः। गर्जति प्रसभं जित्वा सुरान्सर्वान्सुखासिनः॥६॥
ते गत्वा सन्निधौ तस्य बृहस्पतिपुरोगताः। पेतुस्ते चरणौ नत्वा समीरतनुजस्य हि॥७॥
बृहस्पतिश्च तं वीरं जगाद प्रेरितोऽमुना। सुराधीशेन लोकस्य गुरुणा वदतां वरः॥८॥

बृहस्पतिरुवाच

अजानद्भिः कृतं कर्म देवैस्तव पराक्रमम्। श्रीरामचरणस्य त्वं सेवकोऽसि महामते॥९॥
किमर्थमयमारम्भः कथमत्र समागमः। तत्करिष्यामहे सर्वे सन्नतास्तव भाषितम्॥१०॥
रोषं त्यक्त्वा कृपां कृत्वा देवाधीशं विलोकय।
पवनात्मज ! दैत्यानां भयङ्करवपुर्दधन्॥११॥

शेष उवाच

इत्थं भाषितमाकर्ण्य देवानां स गुरोर्वचः। उवाच देवान्सकलान्गुरुं चैव महायशाः॥१२॥

द्रोणाचल से संजीवनी लाकर हनुमानजी का पुष्कल आदि वीरों को जीवित करना और शत्रुघ्नजी के स्मरण करते ही भगवान् श्रीरामचन्द्र का रणमण्डल में आना

शेषजी ने कहा— बृहस्पति के वचनों को सुनकर और उन्हें श्रीरामचन्द्र के कार्य के लिए आये हुए हनुमानजी को जानकर इन्द्र ॥१॥ आये हुए हनुमानजी से भय को त्याग दिए और प्रसन्न होकर बृहस्पति से कहे॥२॥ **इन्द्र ने कहा—** हे सुराधीश ! यदि ये द्रोण पर्वत को ले जाते हैं तो फिर देवताओं को कैसे जीवित किया जा सकेगा, मुझे इस बात को आप बतलायें ॥३॥ इस समय आप हनुमानजी को प्रसन्न करें ऐसा करने से श्रीरामचन्द्रजी को अत्यन्त प्रसन्नता होगी और देवताओं को सुख मिलेगा ॥४॥ वे सब बृहस्पति के साथ जाकर हनुमानजी के चरण पर गिर पड़े ॥५-७॥ देवराज इन्द्र के द्वारा प्रेरित होकर बोलने वालों में श्रेष्ठ बृहस्पति ने हनुमानजी से कहा ॥८॥ **बृहस्पति ने कहा—** आपको नहीं जानने के कारण देवों ने अपना पराक्रम दिखाया। हे महामते ! आप तो श्रीरामचन्द्रजी के चरणों के सेवक हैं ॥९॥ आप यहाँ कैसे आये हैं । आप यह क्यों कर रहे हैं । हमलोग आपकी सारी आज्ञा मानने के लिए तैयार हैं ॥१०॥ कृपया आप क्रोध त्याग दें, इन्द्र को देखें। पवनात्मज ! आप तो देवताओं को भयभीत करने वाला शरीर धारण किए हैं ॥११॥ **शेषजी ने कहा—** देवगुरु की बातों को सुनकर महायशस्वी हनुमानजी ने बृहस्पति तथा सभी देवों से कहा ॥१२॥ राजा वीरमणि के साथ

राज्ञो वीरमणेः सङ्ख्ये हताः शर्वेण भूरिशः ।
भटास्तान्वै जीवयितुं द्रोणं नेष्यामि पर्वतम् ॥१३॥
तं ये निवारयिष्यन्ति स्ववीर्यबलदर्पिताः । तान्नेष्यामि क्षणादेव यमस्य सदनं प्रति ॥१४॥
तस्माद्वदत मे यूयं द्रोणं वाथ तदौषधम् । येन सञ्जीवयिष्यामि मृतान्वीरान्रणाङ्गणे ॥१५॥

शेष उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य वायुसूनोर्महात्मनः । ते सर्वे प्रणतिं गत्वा ददुः सञ्जीवनौषधम् ॥१६॥
ते प्रहृष्टा भयं त्यक्त्वा सुराः स्वर्गौकसः स्वयम् ।
ययुः सुरपतिं कृत्वा पुरः सौख्यसमन्विताः ॥१७॥
हनुमान्भेषजं तत्तु समादायागतो रणम् । स्तुतः सर्वैः सुरगणैर्महाकर्मसमुत्सुकैः ॥१८॥
तमागतं हनूमन्तं वीक्ष्य सर्वेऽपि वैरिणः । साधु साधु प्रशसन्तश्चाद्भुतं मेनिरे कपिम्॥१९॥
कपिः समागत्य महामुदायुतः पुरोभटं पुष्कलमागतं मृतम् ।
शिवेन संरक्षितमुग्रमण्डले श्रीरामचित्तं सविधे जगाम ह ॥२०॥
सुमतिं च समाहूय मन्त्रिणं महतां मतम् । उवाच जीवयाम्यद्य सर्वान्वीरान्रणे मृतान् ॥२१॥
एवमुक्त्वा भेषजं तत्पुष्कलस्य महोरसि । शिरः कायेन सन्धाय जगाद वचनं शुभम् ॥२२॥
यद्यहं मनसा वाचा कर्मणा राघवं पतिम् । जानामि तर्हि एतेन भेषजेनाशु जीवतु॥२३॥
इति वाक्यं यदा वक्ति तावत्पुष्कल उत्थितः ।
रणाङ्गणेऽदशद्रोषाद्दन्तान्वीरशिरोमणिः ॥२४॥
क्व गतो वीरभद्रोऽसौ मां संमूर्च्छ्य रणाङ्गणे ।
सद्योऽहं पातयाम्येनं क्वास्ति मे धनुरुत्तमम् ॥२५॥

युद्ध में बहुत से वीर मार दिए गये हैं, उन वीरों को जिलाने के लिए द्रोण पर्वत को मैं ले जाऊँगा ॥१३॥ अपने बल एवं पराक्रम से दृप्त होकर जो कोई भी मुझे रोकेगा उसे मैं क्षणभर में यमलोक भेज दूँगा ॥१४॥ अतएव आपलोग मुझे द्रोण पर्वत अथवा उसकी औषधियाँ प्रदान कर दें। जिससे कि मैं युद्ध में मारे गये वीरों को जीवित कर सकूँ ॥१५॥ **शेषजी ने कहा—** हनुमानजी की बातों को सुनकर देवताओं ने प्रणाम करके सञ्जीवनौषध प्रदान किया ॥१६॥ वे देवता प्रसन्न होकर इन्द्र को आगे करके सुखपूर्वक अपने-अपने घर चले गये ॥१७॥ हनुमानजी उस औषध को लेकर युद्धस्थल में आये। सभी देवताओं ने उनकी स्तुति की ॥१८॥ आये हुए हनुमानजी को देखकर सभी शत्रुओं ने उनकी साधु-साधु प्रशंसा करते हुए उनके कर्म को अद्भुत माना ॥१९॥ अत्यधिक आनन्द युक्त हनुमानजी सर्वप्रथम मरे हुए पुष्कल के पास आये। उसकी रक्षा शिवजी उग्र मण्डल में कर रहे थे। हनुमानजी ने श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण किया ॥२०॥ उन्होंने सुमति को बुलाकर कहा कि युद्ध में मरे हुए सभी वीरों को मैं जीवित कर रहा हूँ ॥२१॥ इस तरह से कहकर पुष्कल के शिर को शरीर से जोड़कर उनके वक्षस्थल पर औषधि को उन्होंने रख दिया और कहा ॥२२॥ यदि मैं मन, वाणी और कर्म से श्रीराम को ही अपना स्वामी जानता हूँ तो इस औषध से ये शीघ्र जीवित हो जायँ ॥२३॥ इस तरह से ज्यों हि उन्होंने कहा उसी समय पुष्कल जग गये और वे वीर शिरोमणि रण में मरे हुए वीरों को क्रोध पूर्वक देखे ॥२४॥ उन्होने कहा युद्ध में मुझे मूर्छित करके वीरभद्र कहाँ गया, मैं शीघ्र ही उसे मार दे रहा हूँ। मेरा उत्तम धनुष कहाँ हैं ?॥२५॥

इति तं भाषमाणं वै प्राह वीरं कपीन्द्रकः। धन्योऽसि वीर यद्ब्रूयो वदस्येनं रणाङ्गणे ॥२६॥
त्वं हतो वीरभद्रेणरघुनाथप्रसादतः । पुनः सञ्जीवितोऽस्येहि शत्रुघ्नं याममूर्च्छितम् ॥२७॥
इत्युक्त्वा प्रययौ तत्र सङ्ग्रामवरमूर्धनि । श्वसन्नास्ते सशत्रुघ्नः शिवबाणप्रपीडितः ॥२८॥
तत्र गत्वा समीपं तच्छत्रुघ्नस्य महात्मनः । निधाय भेषजं तस्य वचसि श्वासमागते ॥२९॥
उवाच हनुमांस्तं वै जीव शत्रुघ्नसत्तम ! । मूर्च्छितोऽसि रणे कस्मान्महाबलपराक्रम ! ॥३०॥
यद्यहं ब्रह्मचर्यं च जन्मपर्यन्तमुद्यतः। पालयामि तदा वीरः शत्रुघ्नो जीवतु क्षणात् ॥३१॥
उक्तमात्रेण तेनेदं जीवितः क्षणमात्रतः ।
क्व शिवः क्व शिवो यातो विहाय रणमण्डलम् ॥३२॥
अनेके निहताः सङ्ख्ये श्रीरुद्रेण पिनाकिना ।
ते सर्वे जीविता वीराः कपीन्द्रेण महात्मना ॥३३॥
तदा सर्वे सुसन्नद्धा रोषपूरितमानसाः । स्वे स्वे रथे स्थिताः शत्रून्प्रययुःक्षतविग्रहाः ॥३४॥
पुष्कलो वीरभद्रं तु चण्डं चैव कुशध्वजः। नन्दिनं हनुमान्वीरः शत्रुघ्नः सङ्गरे शिवम् ॥३५॥
धनुर्विस्फारयन्तं तं शत्रुघ्नं बलिनां वरम्। सङ्ग्रामे शिवमाहूय तिष्ठन्तं प्रययौ नृपः॥३६॥
राजा वीरमणिर्वीरः शत्रुघ्नः समरे बली । अन्योन्यं चक्रतुर्युद्धं मुनिविस्मयकारकम् ॥३७॥
राज्ञा च वीरमणिना रथा भग्नाः शताधिकाः ।
शत्रुघ्नस्य नरेन्द्रस्य तिलशः क्षणतो द्विज ! ॥३८॥
तदा प्रकुपितोऽत्यन्तं शत्रुघ्नो रणमण्डले। आग्नेयास्त्रं मुमोचामुं दग्धुं सैन्यसमन्वितम्॥३९॥
दाहकं तन्महद्दृष्ट्वा महास्त्रं शत्रुमोचितम् । अत्यन्तं कुपितो राजा वारुणास्त्रं समाददे ॥४०॥

इस तरह से कहने वाले पुष्कल से हनुमानजी ने कहा वीर आप धन्य हैं पुनः इस तरह की वात कह रहे हैं ॥२६॥ वीर आपको वीरभद्र ने मार दिया था, श्रीरामजी की कृपा से आप जीवित हो गये हैं । अब हमलोग मूर्छित हुए शत्रुघ्नजी के पास चलें ॥२७॥ इस तरह से कहकर वे युद्ध स्थल में जहाँ पर शिवजी के बाणों से पीड़ित शत्रुघ्नजी श्वास ले रहे थे वहाँ गये ॥२८॥ शत्रुघ्नजी के समीप जाकर उन्होंने उनके वक्षःस्थल पर औषधि को रख दिया ॥२९॥ उन्होंने कहा— हे श्रेष्ठ शत्रुघ्नजी ! आप जी जायँ । हे महावल और पराक्रम ये युक्त आप मूर्छित क्यों हैं ॥३०॥ यदि मैंने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया है तो वीर शत्रुघ्न क्षणभर में जीवित हो जायँ ॥३१॥ उनके कहते ही क्षण मात्र में शत्रुघ्नजी जीवित हो गये और कहे— रणमण्डल को त्याग कर शिव कहाँ गये ॥३२॥ शङ्करजी ने अनेक वीरों को मार दिया था उन सबों को हनुमानजी ने जीवित कर दिया ॥३३॥ उस समय सब के सब तैयार होकर तथा क्रोध से भरकर सभी वीर अपने-अपने रथ पर चले गये ॥३४॥ पुष्कल वीरभद्र से, कुशध्वज चण्ड से, हनुमानजी नन्दी से और शत्रुघ्नजी शिवजी से युद्ध करने लगे ॥३५॥ धनुष का टङ्कार करते हुए बलवान् शत्रुघ्नजी शङ्करजी का आह्वान करके राजा वीरमणि से युद्ध करने लगे ॥३६॥ युद्ध में शत्रुघ्नजी और राजा वीरमणि ने मुनियों को विस्मित कर देने वाला युद्ध किया ॥३७॥ राजा वीरमणि ने शुत्रुघ्नजी के सैकड़ों रथों को क्षणभर में तोड़ दिया ॥३८॥ उस समय क्रुद्ध होकर उसको सेना के साथ जला देने के लिए शत्रुघ्नजी ने आग्नेयास्त्र को छोड़ा ॥३९॥ शत्रु के द्वारा छोड़ गये महान दहक अस्त्र को देखकर अत्यन्त कुपित होकर राजा ने वरुणास्त्र ले लिया ॥४०॥ वारुणास्त्र के कारण शीतातिरेक को देखकर बलवान् शत्रुघ्नजी ने

वारुणास्त्रेण शीतर्तिं वीक्ष्य रामानुजो बली। वायव्यास्त्रं मुमोचास्मै तेन वायुर्महानभूत् ॥४१॥
वायुना संहता मेघा ययुस्ते सर्वतो दिशम्। इतस्ततो गताः सर्वे सैन्यं तत्सुखितं बभौ ॥४२॥
सैन्ये पवनपीडार्ते नृपो वीरमणिर्महान्। पर्वतास्त्रं रिपूद्धारि जग्राह च शरासने ॥४३॥
पर्वतैः स्तम्भितो वायुर्नचासर्पत सङ्गरे। तद्वीक्ष्य रामावरजो वज्रास्त्रं तु समाददे ॥४४॥

वज्रास्त्रेण हताः सर्वे नगास्तु तिलशः कृताः ।
चूर्णतां प्रापुरेतस्मिन्रणे वीरवरार्चिते ॥४५॥
वज्रास्त्रेण विदीर्णाङ्गा वीराः शोणितशोभिताः ।
बभूवुः समरप्रान्ते चित्रं समभवद्रणम् ॥४६॥

तदा प्रकुपितोऽत्यन्तं राजा वीरमणिर्महान्। ब्रह्मास्त्रं चापआधत्त वैरिदाहकमद्भुतम् ॥४७॥
ब्रह्मास्त्रे संहिते सोऽपि सस्मार सुमनोहरम्। अस्त्रं तद्योगिनीदत्तं सर्ववैरिविमोहनम् ॥४८॥
ब्रह्मास्त्रं तत्करभ्रष्टमागतं वैरिणं प्रति। तावच्छत्रुघ्ननाम्ना तु तन्मुक्तं मोहनास्त्रकम् ॥४९॥

मोहनास्त्रेण तद् ब्राह्मं द्विधा च्छिन्नं क्षणादिह ।
लग्नं राज्ञो हृदि क्षिप्रं मूर्च्छां सम्प्रापयन्नृपम् ॥५०॥
ते बाणाः शतशो मुक्ताः शत्रुघ्नेन महीभृता ।
सर्वेऽपि मूर्च्छिता वीरा गणा रुद्रस्य ये पुनः ॥५१॥

शिवस्य चरणोपस्थे मूढाः पेतुर्महीतले। तदा शिवः प्रकुपितो रथे तिष्ठन्ययौ नृपम् ॥५२॥
शिवेन सहसा योद्धुं समायातो रणाङ्गणे। शत्रुघ्नः सज्जमात्तज्यं धनुः कृत्वा व्ययुद्ध्यत ॥५३॥
तयोः समभवद्युद्धं घोरं वैरिविदारणम्। शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तैरादीपितदिगन्तरम् ॥५४॥
अस्त्रप्रत्यस्त्रसङ्घातैस्ताडनप्रतिताडनैः' । देवानामपि दैत्यानां नैतादृग्रणमण्डलम् ॥५५॥

वायव्यास्त्र का प्रयोग किया उसके कारण महान वायु उद्भृत हो गयीं ॥४१॥ वायु से एकत्रित हुए मेघ सभी दिशाओं में इधर-उधर चले गये और सारी सेना सुखीं हो गयी ॥४२॥ वायु से पीड़ित सेना को देखकर राजा वीरमणि ने अपने धनुष पर शत्रु विनाशक पर्वतास्त्र को चढ़ाया ॥४३॥ पर्वत से स्तम्भित होकर वायु यद्ध में नही चल रहा थीं । यह देखकर शत्रुघ्नजी ने वज्रास्त्र को सम्भाला ॥४४॥ वज्र के प्रहार से सभी पर्वत इस युद्धस्थल में चूर-चूर हो गये ॥४५॥ वज्र के द्वारा अङ्गों के विदीर्ण हो जाने से सभी वीरों के अङ्ग खून से भिंग गये और यह युद्ध अद्भुत हो गया ॥४६॥ उस समय कुपित होकर राजा वीरमणि, वैरियों को भस्म कर देने वाले ब्रह्मास्त्र को धारण कर लिया ॥४७॥ ब्रह्मास्त्र के धारण करने पर शत्रुघ्नजी ने सभी वैरियों को मोहित करने वाले तथा योगिनी के द्वारा प्रदत्त मनोहर अस्त्र को धारण कर लिया॥४८॥ उस समय ब्रह्मास्त्र राजा के हाथ से छूटकर शत्रुघ्नजी के पास आ गया । उसी समय शत्रुघ्नजी ने मोहनास्त्र का प्रयोग किया ॥४९॥ मोहानास्त्र के द्वारा ब्रह्मास्त्र टूट कर दो टुकड़ा हो गया । वह जाकर राजा के हृदय में लगा और राजा भी मूर्छित हो गये ॥५०॥ शत्रुघ्नजी के द्वारा छोड़े गये सैकड़ों बाणों से रुद्र के गण के सभी वीर मूर्छित हो गये ॥५१॥ वे निःसंज्ञ होकर शिवजी के चरणों के पास गिर पड़े । उस समय क्रुद्ध होकर शिवजी रथ पर चढ़ाकर शत्रुघ्नजी से युद्ध करने के लिए गये ॥५२॥ शत्रुघ्नजी भी शिवजी से युद्ध करने के लिए धनुष को चढ़ाकर पहुँच गये ॥५३॥ दोनो में शत्रु विनाशक भयङ्कर युद्ध हुआ । अनेक प्रकार से छोड़े गये शस्त्रास्त्रों से दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं ॥५४॥ अस्त्रों

तदा व्याकुलितोऽत्यन्तं शत्रुघ्नः शिवसङ्गरे। सस्मार स्वामिनं तत्र पावनेरुपदेशतः ॥५६॥
हा नाथ भ्रातरत्युग्रः शिवः प्राणापहारणम्। करोति धनुरुद्यम्य त्रायस्व रणमण्डले॥५७॥
अनेके दुःखपायोधिं तीर्णा राम ! तवाख्यया ।
मामप्युद्धर दुःखस्थं राम ! राम ! कृपानिधे ! ॥५८॥
इत्थं वक्ति यदातावद्वीक्षितो रणमण्डले। नीलोत्पलदलश्यामो रामो राजीवलोचनः॥५९॥
मृगशृङ्गं कटौ धृत्वा दीक्षितं वपुरुद्वहन्। तं दृष्ट्वा विस्मयं प्राप शत्रुघ्नः समराङ्गणे ॥६०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
श्रीरामसमागमो नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४५॥

* * *

छियालिसवाँ अध्याय

शेष उवाच

आगतं वीक्ष्य श्रीरामं शत्रुघ्नः प्रणतार्तिहम्। भ्रातरं सकलाद्दुःखान्मुक्तोऽभूद् द्विजसत्तम !॥१॥
हनूमान्वीक्ष्य विभ्रान्तो रामस्य चरणौ मुदा। ववन्दे भक्तरक्षार्थमागतं निजगाद च॥२॥
स्वामिंस्तवैतद्युक्तं तु स्वभक्तपरिपालनम्। यत्सङ्ग्रामे जितं सर्वं पाशबद्धममोचयः॥३॥

तथा प्रत्यस्त्रों के समूह के ताड़न और प्रतिताड़न के द्वारा ऐसा युद्ध हुआ कि इस तरह का दैत्यों और देवों का भी युद्ध नहीं हुआ था ॥५५॥ शिव के साथ युद्ध करते समय शत्रुघ्नजी अत्यन्त व्याकुल हो गये । उस समय हनुमान्‌जी से उपदिष्ट होकर शत्रुघ्नजी ने श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण किया ॥५६॥ उन्होंने कहा— भ्रातः अत्यन्त उग्र धनुष धारण करके शिव मेरा प्राणापहार कर रहे हैं अतएव आप मेरी रक्षा करें ॥५७॥ हे श्रीराम जी ! आप का नाम लेकर अनेक लोग दुःख सागर पार कर गये । हे कृपानिधे राम ! आप मेरा भी उद्धार करें ॥५८॥ शत्रुघ्नजी के ऐसा कहते हुए देखे कि युद्ध में नीलकमल दल के समान कान्ति वाले कमलनयन श्रीरामजी आ गये ॥५९॥ कमर में मृगशृङ्ग धारण करके दीक्षित शरीर धारण किए हुए थे श्रीरामजी को युद्ध स्थल में देखकर शत्रुघ्नजी आश्चर्यित हो गये ॥६०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत श्रीरामाश्वमेध के प्रकरण में श्रीरामसमागम वर्णन नामक पैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४५।।

* * *

शङ्करजी के साथ श्रीराम का समागम

शेषजी ने कहा— शरणागतों के कष्ट को हरने वाले अपने भाई श्रीरामजी को आये हुए देखकर शत्रुघ्नजी दुखमुक्त हो गये ॥१॥ हनुमानजी भक्त की रक्षा करने के लिए आये हुए श्रीरामजी के चरणों को देखकर आश्चर्यित हो गये और उन्होंने प्रणाम करके प्रेम पूर्वक कहा ॥२॥ हे स्वामिन् ! आपके द्वारा अपने भक्त की रक्षा करना

वयं त्विदानीं धन्या वै यद् द्रक्ष्यामो भवत्पदे ।
जेष्यामोऽरीन्क्षणादेव त्वत्कृपातो रघूद्वह ! ॥४॥

शेष उवाच

स्थाणुस्तदागतं रामं योगिनां ध्यानगोचरम् । पतित्वा पादयोर्विप्र जगाद प्रणताभयम् ॥५॥
एकस्त्वं पुरुषः साक्षात्प्रकृतेः पर ईर्यसे । यः स्वांशकलया विश्वं सृजस्यवसि हंसि च ॥६॥
अरूपस्त्वमशेषस्य जगतः कारणं परम् । एक एव त्रिधा रूपं गृह्णासि कुहकान्वितः ॥७॥
सृष्टौ विधातृरूपेण पालने स्वयमास च । प्रलये जगतः साक्षादहं शर्वाख्यतां गतः ॥८॥
तव यत्परमेशस्य हयमेधक्रतुक्रिया । ब्रह्महत्यापनोदाय तद्विडम्बनमद्भुतम् ॥९॥
यत्पादशौचममलं गङ्गाख्यं शिरसोऽन्तरा । वहामि पापशान्त्यर्थं तस्य ते पातकं कुतः ॥१०॥
मया बह्वपकाराय कृतं कर्म तव स्फुटम् । क्षम्यतां तत्कृपालो हि भवतो व्यवधायकम् ॥११॥
किं करोमि मया सत्यपालनार्थमिदं कृतम् । जानन्प्रभावं भवतो भक्तरक्षार्थमागतः ॥१२॥
असौ पुरा उज्जयिन्यां महाकालनिकेतने । स्नात्वा शिप्राख्यसरिति तपस्तेपे महाद्भुतम् ॥१३॥
ततः प्रसन्नो जातोऽहं जगाद भूमिपं प्रति । याचस्वेति महाराज स वव्रे राज्यमद्भुतम् ॥१४॥
मया प्रोक्तं देवपुरे तव राज्यं भविष्यति । यावद्रामहयः पुर्यामागमिष्यति याज्ञिकः ॥१५॥
तावत्प्रभृत्यहं स्थास्ये तव रक्षार्थमुद्यतः । एतद् दत्तवरो राम किंकरोमि स्वसत्यतः ॥१६॥
घृणितोऽस्मधुना राज्ञा सपुत्रपशुबान्धवः । हयं समर्प्यते पादसेवां राजा विधास्यति ॥१७॥

उचित ही है । आप पाश मे बंधे हुए तथा परास्त वीरों को मुक्त कर दें ॥३॥ हमलोग आपके चरणों का दर्शन करके धन्य हो गये । हे रघुश्रेष्ठ ! आपकी कृपा से हमलोग शत्रुओं को क्षणभर में जीत लेंगे ॥४॥ **शेषजी ने कहा—** योगियों के ध्यान के विषय श्रीरामजी को आये हुए देखकर शङ्करजी उनके चरणों पर गिरकर निर्भय होकर कहे ॥५॥ केवल आप ही प्रकृते से परे पुरुष कहे जाते हैं । आप अपनी कला से विश्व की सृष्टि, रक्षा और विनाश करते हैं ॥६॥ आप सम्पूर्ण जगत् के रूप रहित एक मात्र कारण हैं । आप माया से युक्त होकर अकेले ही तीन रूपों को धारण करते हैं ॥७॥ सृष्टि काल में ब्रह्मारूप से, पालन के समय विष्णु रूप से और संहार के समय मुझ रुद्र रूप से आप युक्त होते हैं ॥८॥ आप ब्रह्महत्या के अपनोदन के लिए जो अश्वमेध कर रहे हैं, यह आपका बहाना मात्र है । आप तो परमेश हैं ॥९॥ आपके चरणोदक रूप गङ्गा को मैं अपने पाप का विनाश करने के लिए शिर पर धारण करता हूँ । आपको पाप कहाँ से लगेगा ॥१०॥ मैंने आपका बहुत अपकार किया है उससे आपको व्यवधान हुआ है । हे कृपालो ! आप उसे क्षमा कर दें ॥११॥ क्या करूँ सत्य की रक्षा करने के लिए मैंने यह कर्म किया है ? मैं आपके प्रभाव को जानता था फिर भी अपने भक्त की रक्षा करने के लिए मैं आया हूँ ॥१२॥ प्राचीन काल में इसने उज्जैनी में क्षिप्रा नदी में स्नान करके महाकाल में अद्भुत तपस्या की ॥१३॥ उससे प्रसन्न होकर मैंने इससे वरदान माँगने के लिए कहा तो इसने अद्भुत राज्य का वरदान माँगा॥१४॥ मैंने इससे कहा कि तुम्हारा देवपुरी में राज्य होगा, जब तक श्रीरामजी के यज्ञ का अश्व उस नगरी में नहीं आयेगा तब तक मैं तुम्हारी रक्षा करने के लिए तुम्हारी नगरी में रहूँगा । हे राम ! यह मैंने इसको वरदान दे दिया । अपने सत्य की रक्षा करने के लिए राजा ने अपने पुत्र, पशु तथा बान्धवों की रक्षा करने के लिए मेरा वरण कर लिया है । राजा आपको अश्व समर्पित करके आपके चरणों की सेवा करेगा ॥१५-१७॥ **शेषजी ने**

शेष उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य महेशस्य रघूत्तमः । उवाच धीरया वाचा कृपया पूर्णलोचनः ॥१८॥

राम उवाच

देवानामयमेवास्ति धर्मो भक्तस्य पालनम्। त्वया साधु कृतं कर्म यद्भक्तो रक्षितोऽधुना ॥१९॥
ममासि हृदये शर्व भवतो हृदये त्वहम्। आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥२०॥
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः। कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम् ॥२१॥
ये त्वद्भक्तास्त एवासन्मद्भक्ता धर्मसंयुताः। मद्भक्ता अपि भूयस्याभक्तया तव नतिङ्कराः॥२२॥

शेष उवाच

इत्थं भाषितमाकर्ण्य शर्वो वीरमणिं नृपम्। मूर्च्छितं जीवयामास करस्पर्शादिना प्रभुः॥२३॥
अन्यानपि सुतानस्य मूर्च्छिताञ्छरपीडितान् । जीवयामास स मृडः समर्थः प्रभुरीश्वरः ॥२४॥
सज्जं विधाय तं भूप श्रीरामपदयोर्नतिम्। कारयामास भूतेशः पुत्रपौत्रैः परीवृतम्॥२५॥
धन्यो राजा वीरमणिर्यो ददर्श रघूत्तमम् । योगिभिर्योगनिष्ठाभिर्दुष्प्रापमयुतायुतैः ॥२६॥
ते नत्वा रघुनाथं तं कृतार्थीकृतविग्रहाः । ब्रह्मादिभिः पूज्यतमा अभूवन्द्विजसत्तम !॥२७॥
शत्रुघ्नहनुमद्भ्यां च पुष्कलादिभिरुद्भटैः। परिष्टुताय रामाय ददौ राजा हयोत्तमम्॥२८॥
राज्येन सहितं सर्वं सपुत्रपशुबान्धवम्। शर्वेण प्रेरितः प्रादाद्भूपो वीरमणिस्तदा॥२९॥
ततो रामो नुतः सर्वैर्वैरिभिर्निजसेवकैः। शत्रुघ्नादिभिरत्यन्तमुत्सुकैश्च विशेषतः॥३०॥
रथे मणिमये तिष्ठन्बभूव स तिरोहितः। अन्तर्हिते रामभद्रे सर्वे प्रापुः सुविस्मयम्॥३१॥

कहा— शङ्करजी के इस वाक्य को सुनकर कृपा से परिपूर्ण नेत्र वाले श्रीरामचन्द्रजी ने धीर वाणी से कहा॥१८॥ **रामजी ने कहा**— अपने भक्तों की रक्षा करना ही देवताओं का धर्म है । आपने अपने भक्त की रक्षा करके अच्छा काम किया है ॥१९॥ हे शिव ! आप मेरे हृदय में निवास करते हैं और मैं आपके हृदय में निवास करता हूँ। हमदोनों में भेद कोई नहीं है । अज्ञानी जीव ही हमदोनों में भेद मानते हैं ॥२०॥ एक रूप वाले हमदोनों में जो लोग भेद मानते हैं वे कुम्भीपाक नामक नरक में हजारों कल्प तक पकाये जाते हैं ॥२१॥ जो आपके भक्त हैं वे मेरे धार्मिक भक्त हैं । मेरे भी भक्त आपको अत्यन्त भक्ति से प्रणाम करते हैं ॥२२॥ **शेषजी ने कहा**— श्रीरामजी की इस वाणी को सुनकर शङ्करजी ने राजा वीरमणि जो मूर्छित पड़े थे उनको अपने हाथ के स्पर्श आदि से जीवित कर दिया ॥२३॥ राजा के दूसरे पुत्र जो बाण से पीड़ित होकर मूर्छित पड़े थे उन सबों को समर्थ शङ्करजी ने जीवित कर दिया ॥२४॥ सबों को तैयार कराकर शङ्करजी ने पुत्र-पौत्रों के साथ राजा को श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रणाम कराया ॥२५॥ धन्य हुए राजा वीरमणि; जिन्होंने योगनिष्ठ योगियों के द्वारा लाखों वर्षों में भी दुष्प्राप्य श्रीरामचन्द्र जी का दर्शन प्राप्त किया ॥२६॥ श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करके वे सब धन्य हो गये । हे द्विजश्रेष्ठ वात्स्यायन ! वे सब ब्रह्मा आदि देवताओं के भी पूज्य बन गये ॥२७॥ शत्रुघ्नजी, हनुमानजी तथा पुष्कल आदि से संस्तुत श्रीरामचन्द्रजी को राजा ने उस अश्व को प्रदान किया ॥२८॥ उसके साथ राजा ने अपना राज्य, पुत्र तथा पशु आदि सबकुछ शङ्करजी के द्वारा प्रेरित होकर प्रदान कर दिया ॥२९॥ उसके बाद सभी वैरियों तथा उनके सेवकों ने तथा शत्रुघ्नजी आदिने उत्सुकता पूर्वक श्रीरामचन्द्रजी की विशेष रूप से स्तुति की ॥३०॥ इसके बाद मणि निर्मित रथ में स्थित श्रीरामचन्द्रजी अन्तर्धान हो गये । श्रीरामचन्द्रजी के

मा जानीहि मनुष्यं तं रामं लोकैकवन्दितम् ।
जले स्थले च सर्वत्र वर्तते संस्थित:सदा ॥३२॥
ततो वीरा अलं हृष्टा अन्योन्यं परिरेभिरे । तूर्यमङ्गलवादित्रैः सुमहानुत्सवोऽभवत् ॥३३॥
ततो मुक्तो हयः सर्वैर्वीरैः शस्त्रास्त्रकोविदैः। सर्वैरनुगतः प्रीतैर्विस्मयेन समन्वितैः ॥३४॥
शर्वः सत्यप्रतिज्ञश्च तमनुज्ञाप्य सेवकम् । श्रीरामं शरणं प्रोच्य याहि लोकैकदुर्ल्लभम् ॥३५॥
स्वयमन्तर्हितस्तत्र प्रलयोत्पत्तिकारकः। कैलासमगमच्छर्वः सेवकैः परिशोभितः ॥३६॥
भूपो वीरं मणिर्ध्यायञ्छ्रीरामचरणोदजम् । शत्रुघ्नेन ययौ साकं बलिना बलसंयुतः॥३७॥
एतद्रामस्य चरितं ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः । तेषां संसारजं दुःखं न भविष्यति कर्हिचित्॥३८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
हयप्रस्थानं नाम षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४६॥

सैंतालिसवाँ अध्याय

शेष उवाच

हयोगतो हेमकूटं भारतान्ते ततो द्विज ! । अनेकभटसाहस्त्रै रक्षितो बद्धचामरः ॥१॥
यो वै विस्तरतोदैर्ध्याद्योजानानां समन्ततः। अयुतेन सुशृङ्गैश्च राजतैः काञ्चनादिभिः॥२॥

अन्तर्धान होते ही सवलोग आश्चर्यित हो गये ॥३१॥ तुम भी श्रीरामचन्द्रजी को मनुष्य मत समझो वे जल तथा पृथिवी आदि सभी स्थानों में सदैव विद्यमान हैं ॥३२॥ इसके बाद सभी वीर एक-दूसरे को देखकर आलिङ्गन किए । अनेक प्रकार के वाद्यों से वहाँ महान् उत्सव हुआ ॥३३॥ इसके पश्चात् शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता, आश्चर्य से युक्त तथा परस्पर में एक दूसरे से प्रेम करने वाले वीरों से घिरा हुआ अश्व वहाँ से छोड़ दिया गया ॥३४॥ उसके पश्चात् सत्यप्रतिज्ञ शङ्करजी अपने सेवक को आज्ञा देकर कहे, श्रीराम ही रक्षक हैं, इस प्रकार से उच्चारण करके तुम दुर्लभ लोकों में जाओ ॥३५॥ प्रलयकारी शङ्करजी भी अन्तर्धान हो गये और अपने गणों के साथ कैलास चले गये ॥३६॥ राजा वीरमणि भी श्रीरामचन्द्रजी के चरणों का ध्यान करते हुए बलवान् शत्रुघ्नजी के साथ अपनी सेना के साथ चले गये ॥३७॥ श्रीरामचन्द्रजी के इस चरित को जो श्रेष्ठ मनुष्य श्रवण करेंगे उन सबों को कभी भी संसार जन्य कष्ट नहीं होगा ॥३९॥

इस तरह श्रीपद्यमहापुराण के पाँचवे पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत श्रीरामाश्वमेध के प्रकरण में अश्व के प्रस्थान वर्णन नामक छियालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४६।।

अश्व का हेमकूट पर्वत पर आना और उसके गात्रस्तम्भ का होना

शेषजी ने कहा— हे द्विज ! उसके बाद अश्व भारत वर्ष के अन्तिम भाग हेमकूट पर्वत पर चला गया। उस पर चामर बाँधा था और अनेक हजार वीर उसकी रक्षा कर रहे थे ॥१॥ वह पर्वत चारों ओर दस हजार

तत्रोद्यानं महच्छ्रेष्टं पादपैः परिशोभितम्। शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैः समन्ततः ॥३॥
हिन्तालैर्नागपुन्नागैः कोविदारैः सबिल्वकैः। चम्पकैर्बकुलैर्मेघैर्मदनैः कुटजादिभिः ॥४॥
जातिकाभिर्यूथिकाभिर्नवमालिकया तथा। आम्रैर्माधवद्राक्षाभिर्दाडिमैः शोभितं वरम् ॥५॥
अनेकपक्षिसङ्घुष्टं भ्रमरैस्सुनिनादितम्। मयूरकेकारवितं सर्वर्तुसुखदं हयः ॥६॥
प्रविवेश स शत्रुघ्नो मनोवेगसमन्वितः। स्वर्णपत्रं विशाले स्वे भाले विभ्रन्मनोहरम्॥७॥
गच्छतस्तस्य वाहस्य हयमेधक्रतोस्तदा। अकस्मादभवच्चित्रं तच्छृणुष्व द्विजोत्तमः ॥८॥
गात्रस्तम्भोऽभवत्तस्य न चचाल पथि स्थितः।
हेमकूट इवाचाल्यो बभूव हयसत्तमः ॥९॥
तदा तद्रक्षकाः सर्वे कशाघातान्वितेनिरे। तदा हतोऽपि न ययौ स्तब्धगात्रो हयोत्तमः ॥१०॥
शत्रुघ्नसविधे गत्वा चुक्रुशुर्वाहरक्षकाः। स्वामिन्वयं न जानीमः किममूद्धयसत्तमे ॥११॥
गच्छतो वाहवर्यस्य मनोवेगस्य भूपते !। आकस्मिकोऽभवत्तस्य गात्रस्तम्भो महामते॥१२॥
कशाभिस्ताडितोऽस्माभिः परं तत्र चचाल न।
एवं विचार्य यत्कार्यं तत्कुरुष्व नृपोत्तम ! ॥१३॥
तदाविस्मयमापन्नो भूपतिः सह सैनिकैः। जगाम सहितः सर्वैर्हयस्य महतोऽन्तिके ॥१४॥
पुष्कलो बाहुना धृत्वा चरणौ तस्य भूतलात्।
उत्पाटयामास तदा परन्नो चेलतुस्ततः ॥१५॥
बलेन बलिनाऽऽक्रान्तो नाकम्पत हयस्तदा।
हनूमांस्तं समुद्धतुं मतिं चक्रे महामनाः ॥१६॥
लाङ्गूलेन समावेष्ट्य बलेन बलिनांवरः। आचकर्ष बलाद्वाहं न चचाल तथापि सः ॥१७॥

योजन में फैला था उसके सोने चाँदी के शिखर थे ॥२॥ उस पर श्रेष्ठ ताल, तमाल तथा कर्णिकर के वृक्षों से युक्त श्रेष्ठ उद्यान था ॥३॥ उसमें, हिन्ताल, नाग, पुंनाग, कोविदार, विल्व, चम्पा, बकुल, मेघ, मदन तथा कुटज आदि के वृक्ष थे ॥४॥ वह वन जाति, यूथिका, नवमालिका, आम, महुआ, अङ्गूर तथा अनार से सुशोभित था ॥५॥ उसमें अनेक पक्षी बोलते थे, भौंरे गुनगुना रहे थे, मयूरों की ध्वनि आ रही थी तथा सभी ऋतुओं में सुखद था वह वन। वहीं अश्व चला गया ॥६॥ मनोवेग से युक्त शत्रुओं का विनाश करने वाला वह अश्व था। उसके ललाट पर विशाल तथा मनोहर स्वर्ण पत्र लगा था ॥७॥ हे द्विजोत्तम ! जाते हुए उस यज्ञ के अश्व के साथ अचानक घटना हुयी ॥८॥ उसका शरीर स्तम्भित हो गया ॥९॥ उस समय उस अश्व के रक्षक उसको कोड़े से मारे, फिर भी शरीर के स्तम्भित हो जाने के कारण वह अश्व आगे नहीं चला ॥१०॥ शत्रुघ्नजी के पास जाकर अश्व रक्षकों ने कहा— स्वामिन् ! न जाने अश्व को क्या हो गया है ? ॥११॥ हे महामते ! मनोवेग से जाते हुए अश्व का न जाने कैसे अचानक शरीर स्तम्भ हो गया है ॥१२॥ हमलोगों ने उसे कोड़ों से भी मारा; किन्तु वह नहीं चला। हे राजश्रेष्ठ ! इस पर विचार करके आप जो उचित हो वह करें ॥१३॥ इस बात को सुनकर शत्रुघ्नजी सभी सैनिकों के साथ उस महान अश्व के पास गये ॥१४॥ पुष्कल ने बहुत बार उसके चरणों को पकड़कर ऊपर की ओर उठाया किन्तु उठा नहीं ॥१५॥ बलवान् बल ने भी बहुत प्रयास किया किन्तु वह अश्व नहीं हिला। इसके बाद महामति हनुमानजी ने उसे उठाने को सोचा ॥१६॥ बलवानों में श्रेष्ठ उन्होंने उसे

तदोवाच कपिश्रेष्ठो हनूमान्विस्मयान्वितः। शत्रुघ्नं बलिनां श्रेष्ठं वीराणां परिशृण्वताम् ॥१८॥
मयाद्रोणो लाङ्गुलेन लीलयोत्पाटितोऽधुना। परमत्र महाश्चर्यं कम्पते न हयोऽल्पकः ॥१९॥
दृष्टमत्र निदानं हि वीरैर्बलिभिरुद्धतैः। आकृष्टोऽपि न च स्थानाच्चचाल तिलमात्रतः॥२०॥
कपिभाषितमाकर्ण्य शत्रुघ्नो विस्मयान्वितः। सुमतिं मन्त्रिणां श्रेष्ठमुवाच वदतांवर ॥२१॥

शत्रुघ्न उवाच

मन्त्रिन्किमभवद्वाहेस्तम्भनं वपुषोऽनघ। कोऽत्रोपायो विधेयःस्याद्येन वाहगतिर्भवेत्॥२२॥

सुमतिरुवाच

स्वामिन्कश्चिन्मुनिर्मृग्योऽखिलज्ञानविचक्षणः।
देशोद्भवमहं जाने प्रत्यक्षं न परोक्षजम् ॥२३॥

शेष उवाच

इतिवाक्यं समाकर्ण्य सुमतेर्धर्मकोविदः। अन्वेषयामास मुनिं सेवकैः सहशोभनम् ॥२४॥
ते सर्वे सर्वतो गत्वा मुनिं धर्मविदंभटाः। व्यालोकयन्तःसर्वत्र न चापश्यन्मुनीश्वरम् ॥२५॥
एकस्त्वनुचरो विप्र ! गतो योजनमात्रतः। पूर्वस्यां दिशि चोद्युक्तः पश्यतिस्ममहाश्रमम्॥२६॥
यत्र निर्वैरिणःसर्वे पशवो जनतास्तथा। गङ्गास्नानहताशेषकिल्बिषाःसुमनोहराः ॥२७॥
यत्र केचित्तपःश्रेष्ठं कुर्वतिस्म हुताशनैः। धूमैरधोमुखाःपत्रैर्वायुभिःस्वोदरम्भराः ॥२८॥
यत्राग्निहोत्रजो धूमः पवित्रयति सर्वदा। अनेकमुनिसंहृष्टो मुक्तपत्रलतोत्तमः ॥२९॥
तमाश्रयं मुनेर्ज्ञात्वा शौनकस्य मनोहरम्। न्यवेदयन्नृपायासौ विस्मयाविष्टचेतसे ॥३०॥
तच्छ्रुत्वा हर्षितोऽत्यन्तं शत्रुघ्नः सहसेवकैः। हनूमत्पुष्कलाद्यैश्च संयुतोऽगात्तदाश्रमम्॥३१॥

अपनी पूंछ में लपेट कर खींचा फिर भी वह अश्व नहीं चला ॥१७॥ उसके बाद वानरो में श्रेष्ठ हनुमानजी आश्चर्यित होकर वीरों में श्रेष्ठ शत्रुघ्नजी तथा दूसरों वीरों के समक्ष कहे ॥१८॥ मैंने अपनी पूंछ से द्रोण पर्वत को आसानी से उखाड़ दिया था लेकिन यह आश्चर्य की बात है कि छोटा सा घोड़ा हिल भी नहीं रहा है ॥१९॥ मेरे प्रयास को बलवान वीरो ने भी देखा कि खींचने पर भी वह तिल भर भी नहीं हिला ॥२०॥ हनुमानजी की बात को सुनकर शत्रुघ्नजी आश्चर्यित हो गये। उन्होंने मन्त्रियों में श्रेष्ठ सुमति से कहा— हे मन्त्रिन्, अश्व के शरीर में स्तम्भन कैसे हो गया है। यहाँ कौन सा उपाय किया जाय कि अश्व चले ॥२१-२२॥ **सुमति ने कहा**— हे स्वामिन्! यहाँ पर सम्पूर्ण ज्ञानों में निपुण किसी ऋषि का अन्वेषण करना चाहिए यह प्रत्यक्ष नहीं अपितु परोक्ष है, मुझे लगता है कि यह देव का प्रभाव है ॥२३॥ **शेषजी ने कहा**— सुमति की बातो को सुनकर धर्म के जानकार शत्रुघ्नजी अपने सेवकों के साथ मुनि का अन्वेषण करने लगे ॥२४॥ वे सभी सेवक चारों ओर जाकर भी किसी धर्मवेत्ता मुनि का पता नहीं लगा सके ॥२५॥ एक सेवक एक योजन पर्यन्त चला गया उसने पूर्व दिशा में एक महान् आश्रम को देखा ॥२६॥ वहाँ पर सभी पशु और लोग वैरहीन थे। गङ्गा में स्नान करने से उनके पाप विनष्ट हो गये थे ॥२७॥ वहाँ पर कुछ लोग श्रेष्ठ तपस्या कर रहे थे। वे नीचे मुँह करके अग्निहोत्र जन्य धूम को पत्तों के सहारे पी रहे थे ॥२८॥ वहाँ पर अग्निहोत्र का धूम सदैव पवित्र बना रहा था। उस आश्रम के पत्ते और लताएँ अनेक मुनियों से सुशोभित थीं ॥२९॥ उसे शौनक महर्षि का मनोहर आश्रम जानकर उसने आश्चर्यित शत्रुघ्नजी को बतलाया ॥३०॥ इस बात को सुनकर शत्रुघ्नजी अत्यन्त हर्षित होकर अपने सेवकों तथा

तत्र वीक्ष्य मुनिश्रेष्ठं सम्यग्घुतहुताशनम्। प्रणमद्दण्डवत्तस्य चरणौ पापहारिणौ ॥३२॥
तमागतं नृपं ज्ञात्वा शत्रुघ्नं बलिनांवरम्। अर्घ्यपाद्यादिकं चक्रे प्रीतस्तद्दर्शनादभूत् ॥३३॥
सुखोपविष्टं विश्रान्तं नृपं प्राह मुनीश्वरः। किमर्थमटनं देव ! महत्पर्यटनं तव ॥३४॥
त्वादृशाः पृथिवीं सर्वां नृपा वै न भ्रमन्ति चेत् ।
तदा दुष्टजनाः साधून्बाधन्ते विगतज्वरान् ॥३५॥
कथयस्व महीपाल शत्रुघ्न बलिनांवर। सर्वं शुभाय नो भूयात्तवपर्यटनादिकम् ॥३६॥

शेष उवाच

इत्युक्तवन्तं भूदेवं प्रत्युवाच महीश्वरः। गद्गदस्वरया वाण्या हर्षितस्वीयविग्रहः ॥३७॥

शत्रुघ्न उवाच

अकस्मादभवच्चित्रं रामाश्वस्य मनोहृतः। नातिदूरे त्वदावासात्तच्छृणुष्व विदांवर ॥३८॥
उद्याने तव शोभाढ्ये यदृच्छातो हयो गतः ।
तत्प्रान्ते तस्य वाहस्य गात्रस्तम्भो भवत्क्षणात् ॥३९॥
तदा मे बलिनो वीराः पुष्कलाद्या मदोत्कटाः ।
बलादाचकृषुर्व्वाहं न चचाल तथाप्यसौ ॥४०॥
अस्मानपारदुःखाब्धौ मग्नान्प्रति तरिः स्मृतः ।
दैवाद्दृष्टः सुभाग्यैस्त्वं कथयस्व निदानकम् ॥४१॥

शेष उवाच

एवं पृष्टो मुनिवरः क्षणं दध्यौ महामतिः। हयस्य चरणस्तम्भकारणं तु विचारयन् ॥४२॥
क्षणात्तु सविज्ञाय विस्मयोत्फुल्ललोचनः। जगाद स महीपालं दुःखितं संशयान्वितम् ॥४३॥

शौनक उवाच

श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि हयस्तम्भस्य कारणम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते दुःखादतिचित्रकथानकम् ॥४४॥

हनुमानजी एवं पुष्कल आदि के साथ उस आश्रम में गये ॥३१॥ वहाँ पर अच्छी तरह से होम किए हुए मुनिश्रेष्ठ को देखकर उनके पाप विनाशक चरणों में उन्होने साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥३२॥ बलवानों में श्रेष्ठ राजा शत्रुघ्नजी को जानकर उनके दर्शन से प्रसन्न हुए मुनि ने उन्हें अर्घ्य आदि प्रदान किया ॥३३॥ सुर्खपूर्वक बैठकर विश्राम कर लेने पर राजा से मुनीश्वर ने पूछा— राजन् ! इस प्रकार से भ्रमण किसलिए कर रहे हैं ?॥३४॥ आप जैसे राजा यदि पृथिवी पर भ्रमण न करें तो फिर निर्द्वन्द्व ऋषियों को दुष्ट लोग पीड़ित करने लगते हैं ॥३५॥ हे बलवानो मे श्रेष्ठ राजन् शत्रुघ्न ! बतलाइये आपका भ्रमण तो हमलोगों के लिए कल्याणकारी ही होगा ॥३६॥ **शेषजी ने कहा**— इस तरह से महर्षि के कहने पर शत्रुघ्नजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर गद्गद स्वर से कहा ॥३७॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा**— श्रीरामचन्द्र के मनोहर अश्व के विषय में आप के आवास के सन्निकट में ही अत्यन्त आश्चर्य की वात हो गयी है उसे आप सुनें ॥३८॥ उस सुन्दर उद्यान में अकस्मात अश्व चला गया। उसके किनारे उस अश्व का शरीर स्तम्भ हो गया ॥३९॥ इस समय मेरे पुष्कल आदि बलवान् वीरो ने बल पूर्वक उस अश्व को खींचा किन्तु अश्व हिला तक नहीं ॥४०॥ दुःख सागर में पड़े हुए आप नौका के समान भाग्यवशात् दिखायी पड़े आप इसका उपाय वतलायें ॥४१॥ **शेषजी ने कहा**— इस तरह पूछने पर मुनि ने क्षणभर ध्यान किया और उन्होंने अश्व के चरणों के स्तम्भन का विचार किया ॥४२॥ क्षणभर में आश्चर्य चकित नेत्र वाले महर्षि उसका कारण जानकर दुःखी तथा संशयग्रस्त शत्रुघ्नजी से कहे ॥४३॥ **शौनक महर्षि ने कहा**— हे राजन् ! आप

गौडदेशे महारण्ये कावेरीतीरभूषिते । वाडवः सात्त्विको नाम्ना चचार परमं तपः ॥४५॥
एकाहं पयशः प्राशी दिनैकं वायुभक्षकः । दिनैकं तु निराहार एवं त्रिदिनमुन्नयेत्॥४६॥
एवं व्रते प्रवृत्तस्य कालः सर्वक्षयङ्करः । जग्राह स्वस्य दंष्ट्रायां मृतिं प्राप महाव्रती ॥४७॥
विमाने सर्वशोभाढ्ये सर्वरत्नविभूषिते । अप्सरोभिः सह क्रीडन्ययौ मेरोः शिखास्थितौ॥४८॥
जम्बूनाम महावृक्षस्तत्र सेव्यरसोभवत् । नदीजाम्बवती संज्ञा स्वर्णद्रवसमन्विता॥४९॥
तस्यां तु मुनयस्सर्वे तपोध्यानसमन्विताः । अनेक तपसा पुण्याःसर्वसौख्यसमन्विताः ॥५०॥
तत्रासौ स्वेच्छया क्रीडन्नप्सरोभिर्मुदान्वितः । प्रतीपमाचरत्तेषां स्वाभिमानमदोद्धतः ॥५१॥
ततः शप्तः स मुनिभी राक्षसो भवदुर्मुखः ।
ततोऽतिदुःखितां प्राह मुनीन्विद्यातपोधनान् ॥५२॥
अनुगृह्णन्तु मां सर्वे विप्रा यूयं कृपालवः। तदातैरनुगृहीतो यदा राम हयं भवान्॥५३॥
स्तम्भयिष्यति वेगेन ततो रामकथाश्रुतिः । पश्चान्मुक्तिर्भवित्री ते शापादस्मात्सुदारुणात् ॥५४॥
स प्रोक्तो मुनिभिर्देवो राक्षसत्वमितः प्रभो ! ।
स्तम्भयामास रामाश्वं मोचयानघकीर्तनैः ॥५५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
शापकीर्तनं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥४७॥

* * *

सुनें मैं अश्व को स्तम्भन का कारण बतलाता हूँ। उस अत्यन्त विचित्र कथानक को सुनकर आप दुःखमुक्त हो जायेंगे ॥४४॥ गौडदेश में कावेरी के तट पर महारण्य में सात्त्विक नामक ब्राह्मण ने घोर तपस्या की ॥४५॥ वह ब्राह्मण एक दिन जल पीता था, एक दिन वायु पीता था और एक दिन निराहार रहता था इस तरह वह तीन दिन बिताता था ॥४६॥ इस तरह व्रत करने वाले उस ब्राह्मण को सर्व विनाशक काल खा लिया और उसकी मृत्यु हो गयी ॥४७॥ वह सभी प्रकार के रत्नों से अलंकार तथा सभी प्रकार की शोभा से समन्वित विमान पर अप्सराओ के साथ क्रीड़ा करता हुआ सुमेरु पर्वत के शिखर पर गया ॥४८॥ वहाँ पर विद्यमान जम्बू नामक महान् वृक्ष के रस का सेवन करने योग्य है । वहाँ की नदी जाम्बवती है और उसमें स्वर्णद्रव प्रवाहित होता है॥४९॥ उस नदी में सभी ऋषि तपस्या और ध्यान करते हैं । अनेक प्रकार की तपस्या करने वाले तथा सभी प्रकार के सुख से युक्त हैं ॥५०॥ वहाँ पर अप्सराओं के साथ वह अपनी इच्छानुसार क्रीड़ा करता था । अभिमान के कारण उद्धत बना हुआ वह मुनियों के विपरीत आचरण करता था ॥५१॥ उसके कारण मुनियों ने उसे शाप दे दिया कि दुष्ट तुम राक्षस हो जाओ उसके बाद दुःखी होकर उसने विद्याधन वाले तपस्वियों से कहा ॥५२॥ आपलोग तो दयालु हैं, आपलोग इस शाप का अनुग्रह बतलाएँ । तब ऋषियों ने उसको अनुगृहीत करके कहा— जब तुम श्रीरामजी के अश्व को ॥५३॥ वेग पूर्वक स्तम्भित कर दोगे तो तुम्हें राम कथा सुनने को मिलेगी। उसके बाद तुम्हारी इस भयङ्कर शाप से मुक्ति होगी ॥५४॥ मुनियों द्वारा इस तरह से कहे जाने पर वह राक्षस हो गया । उसी ने अश्व को स्तम्भित किया है । श्रीराम कथा को सुनाकर आप उसे छुड़ा लें ॥५५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेघ के प्रकरण
में शापवर्णन नामक सैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य)
कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४७।।

* * *

अड़तालिसवाँ अध्याय

शेष उवाच

इति प्रोक्तं तु मुनिना संश्रुत्य परवीरहा। विस्मयं मानयामास हृदि शौनकमब्रवीत्॥१॥

शत्रुघ्न उवाच

कर्मणो गहना वार्ता यया सात्त्विकनामधृत् ।
दिवं प्राप्तोऽपि महता कर्मणा राक्षसी कृतः ॥२॥
स्वामिन्वद महर्षे त्वं कर्मणा स्वगतिर्यथा । येन कर्मविपाकेन यादृशं नरकं भवेत्॥३॥

शौनक उवाच

धन्योऽसि राघवश्रेष्ठ ! यत्ते मतिरियं शुभा ।
जानन्नपि हितार्थाय लोकानां त्वं ब्रवीषि भोः ॥४॥
कथयामि विचित्राणां कर्मणां विविधा गतीः ।
ताः शृणुष्व महाराज यच्छ्रुत्वा मोक्षामाप्नुयात् ॥५॥
परवित्तं परापत्यं कलत्रं पारकं च यः। बलात्कारेण गृह्णाति भोगबुद्ध्या च दुर्मतिः ॥६॥
कालपाशेन सम्बद्धो यमदूतैर्महाबलैः। तामिस्रे पात्यते तावद्यावद्वर्षसहस्रकम्॥७॥
तत्र ताडनमूद्धताः कुर्वन्ति यमकिङ्कराः। पापभोगेनसन्तप्तस्ततो योनिं तु सौकरीम् ॥८॥
तत्र भुक्त्वा महादुःखं मानुषत्वं गमिष्यति। रोगादिचिह्नतं तत्र दुर्यशो ज्ञापकं स्वकम्॥९॥
भूतद्रोहं विधायैव केवलं स्वकुटुम्बकम्। पुष्णाति पापनिरतः सोऽन्धतामिस्रके पतेत् ॥१०॥
ये नरा इह जन्तूनां वधं कुर्वन्ति वै मृषा। ते रौरवे निपात्यन्ते भिद्यन्ते रुरुभी रुषा॥११॥

शौनक महर्षि द्वारा शत्रुघ्नजी को कर्मगति का उपदेश

शेषजी ने कहा— महर्षि की इस बात को सुनकर शत्रुओं को मारने वाले शत्रुघ्नजी महर्षि शौनक को अपने हृदय में विस्मय स्वरूप मानते हुए कहे ॥१॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा**— कर्मों की गति अत्यन्त गहन है, जैसे सात्त्विक की। स्वर्गलोक प्राप्त करके भी उसने राक्षसों का कर्म किया ॥२॥ हे महर्षे ! स्वामिन् मुझे आप कर्मों की गति बतलायें। किस कर्म के फलस्वरूप किस नरक की प्राप्ति होती है ॥३॥ **शौनक महर्षि ने कहा**— हे राघवश्रेष्ठ ! आप धन्य हैं, क्योंकि आपकी इस प्रकार की कल्याणमयी बुद्धि हो। जानकार भी आप संसार का कल्याण करने के लिए ऐसी बातें करते हैं ॥४॥ मैं विचित्र कर्मों की अनेक प्रकार की गतियों और परिणामों को बतलाता हूँ। हे महाराज ! आप सबों को सुनें। उन सबों के सुनने से मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥५॥ दूसरे का धन, दूसरे की सन्तान, दूसरे की पत्नी को जो भोग्य बुद्धि से बल पूर्वक अपना लेता है ॥६॥ उसको यमदूत कालपाश से बाँधकर तामिस्र नरक में एक हजार वर्ष के लिए डाल देते हैं ॥७॥ वहाँ पर उसे दुष्ट यमदूत पीटते हैं। पाप कर्मों का भोग करने के बाद वह सूकर की योनि में जाता है ॥८॥ वहाँ पर भयङ्कर कष्ट भोगकर वह मनुष्य होता है। वह रोग आदि से युक्त होकर अपने दुर्यश को फैलाता है ॥९॥ जो मनुष्य दूसरे जीवों से द्रोह करके केवल अपने परिवार का पालन करता है वह अन्धतामिस्र नामक नरक में जाता है ॥१०॥ जो मनुष्य इस संसार में जीवों का झूठे वध करते हैं वे रौरव नरक में गिरा दिए जाते हैं और रुरु उसको क्रोधपूर्वक काटते

य: स्वोदरार्थे भूतानां वधमाचरति स्फुटम् । महारौरवसंज्ञे तु पात्यते स यमाज्ञया ॥१२॥
यो वै निजं तु जनकं ब्राह्मणं द्वेष्टि पापकृत् ।
कालसूत्रे महादुष्टे योजनायुतविस्तृते ॥१३॥
यावन्ति पशुरोमाणि गवां द्वेषं करोति स: ।
तावद्वर्षसहस्राणि पच्यते समकिङ्करै: ॥१४॥
यो भूमौ भूपतिर्भूत्वा दण्डायोग्यं तु दण्डयेत् ।
करोति ब्राह्मणस्यापि देहखण्डं च लोलुप: ॥१५॥
स सूकरमुखैर्दुष्टै: पीड्यते यमकिङ्करै: । पश्चाद्दुष्टासु योनीषु जायते पापमुक्तये ॥१६॥
ब्राह्मणानां गवां ये तु द्रव्यं वृत्तं तथाल्पकम् ।
वृत्तिं वा गृह्णते मोहाल्लुम्पन्ति स्वबलान्नरा: ॥१७॥
ते परत्रान्धकूपे च पात्यन्ते च महार्दिता:। योऽन्नं स्वयमुपाहृत्य मधुरं चात्ति लोलुप: ॥१८॥
न देवाय न सुहृदे ददाति रसनापर: । स पतत्येव नरके कृमिभोजनसंज्ञिते ॥१९॥
अनापदि नरो यस्तु हिरण्यादीन्यपाहरेत्। ब्रह्मस्वं वा महादुष्टे सन्दंशे नरके पतेत् ॥२०॥
य: स्वदेहं प्रपुष्णाति नान्यं जानाति मूढधी: ।
स पात्यते तैलतप्ते कुम्भीपाकेऽतिदारुणे ॥२१॥
यो नाऽगम्यां स्त्रियं मोहाद्योषिद्धावाच्च कामयेत् ।
तं तया किङ्करा: सूर्म्या परिरम्भं च कुर्वते ॥२२॥
ये बलाद्वेदमर्यादां लुम्पन्ति स्वबलोद्धता: । ते वैतरण्यां पतिता मांसशोणितभक्षका: ॥२३॥

हैं॥११॥ जो लोग अपना पेट पालने के लिए जीवों का बध करते हैं, वे यम की आज्ञा से महारौरव नरक में डाल दिये जाते हैं ॥१२॥ जो पापी अपने पिता तथा ब्राह्मण से द्वेष करता है वह दश योजन विस्तृत कालसूत्र नामक नरक में डाल दिया जाता है ॥१३॥ जो गायों से द्वेष करता है, वह पशु के शरीर में जितने रोएँ होते हैं उतने हजार वर्ष तक यमदूतों द्वारा पकाया जाता है ॥१४॥ जो पृथिवी पर राजा होकर जो दण्ड के योग्य नहीं है उसको दण्ड देता है । लोभ के कारण ब्राह्मण को भी देह दण्ड देता है ॥१५॥ वह सूकर मुख नामक नरक यमदूतों से सताया जाता है । उसके बाद वह पापों से मुक्ति पाने के लिए दुष्ट योनियों में जन्म लेता है ॥१६॥ जो मनुष्य बलपूर्वक ब्राह्मणों की गौ अथवा थोड़ा सा भी धन, या वृत्ति को अज्ञान के कारण ले लेता है अथवा विनष्ट कर देता है, वह परलोक में महाअन्ध कूप नामक नरक में गिरा दिया जाता हैं । जो अच्छी वस्तु लाकर स्वयं खा लेता है ॥१७-१८॥ जिह्वा के स्वाद के कारण न देवता को चढ़ाता है और न मित्रों को देता है,वह क्रिमिभोजन नामक नरक में गिर पड़ता है ॥१९॥ जो मनुष्य बिना किसी विपत्ति के सुवर्ण आदि चुराता है, अथवा ब्राह्मण की संपत्ति को चुराता है वह संदंश नामक भयङ्कर नरक में गिर पड़ता है ॥२०॥ जो मूर्ख अपने ही देह का पोषण करता है दूसरे पर ध्यान नहीं देता है । वह तप्त तेल वाले कुम्भीपाक नाम वाले नरक में गिर पड़ता है ॥२१॥ जो आज्ञानवशात् अगम्या नारी को प्राप्त करना चाहता है, उस पुरुष को उसी प्रकार की लौह निर्मित संतप्त नारी का यमदूत आलिङ्गन कराते हैं ॥२२॥ जो लोग बल से उद्धत होकर वल पूर्वक वेद की मर्यादा का उल्लंघन करते हैं । वे वैतरणी नदी पर पीब, मांस तथा रक्त को खाते-पीते हैं ॥२३॥ जो मनुष्य

वृषलीं यः स्त्रियं कृत्वा तया गार्हस्थ्यमाचरेत् ।
पूयोदे निपतत्येव महादुःखसमन्वितः ॥२४॥
ये दम्भमाश्रयन्ते वै धूर्ता लोकस्य वञ्चने । वैशसे नरके मूढाः पतन्ति यमताडिताः ॥२५॥
ये सवर्णासु तु स्त्रीषु स्वं रेतः पातयन्ति च ।
रेतःकुल्यासु ते पापा रेतः पानेषु तत्पराः ॥२६॥
ये चौरा वह्निदा दुष्टा गरदा ग्रामलुण्ठकाः ।
सारमेयादने ते वै पात्यन्ते पातकान्विताः ॥२७॥
कूटसाक्ष्यं वदत्यद्धा पुरुषः पापसम्भृतः । परकीयं तु द्रव्यं यो हरति प्रसभं बली ॥२८॥
सोऽवीचिनरके पापी अर्वाग्वक्त्रः पतत्यधः ।
तत्रदुःखंमहद्भुक्त्वा पापिष्ठां योनिमाव्रजेत् ॥२९॥
यो नरो रसनास्वादात्सुरां पिबति मूढधीः । तं पाययन्ति लोहस्य रसं धर्मस्य किङ्कराः ॥३०॥
यो गुरूनवमन्येत स्वविद्याचारदर्पितः। स मृतः पात्यते क्षारनरकेऽधोमुखः पुमान् ॥३१॥
विश्वासघातं कुर्वन्ति ये नरा धर्मनिष्कृताः । शूलप्रोते च नरके पात्यन्ते बहुयातने ॥३२॥
पिशुनो यो नरान्सर्वानुद्वेजयति वाक्यतः । दन्दशूके च पतितो दन्दशूकैः स दश्यते ॥३३॥
एवं राजन्ननेके वै नरकाः पापकारिणाम् ।
पापं कृत्वा प्रयान्त्येते पीडां यान्ति सुदारुणाम् ॥३४॥
यैर्न श्रुता रामकथा न परोपकृतिः कृता। तेषां सर्वाणि दुःखानि भवन्ति नरकान्तरे ॥३५॥
अत्र यस्य सुखं स्वर्गे भूयात्तस्य इतीर्यते। ये दुःखिनो रोगयुता नरकादागताश्च ते॥३६॥

दुराचारिणी नारी को स्त्री बनाकर अपना गार्हस्थ्य चलाते हैं वे अत्यन्त दुःखी होकर पूयोद नामक नरक में जाते हैं ॥२४॥ जो लोगों को धोखा देने वाले धूर्त पाखण्ड को अपनाते हैं, वे यमराज के द्वारा पीटे जाकर वैशस नामक नरक में गिर पड़ते हैं ॥२५॥ जो सभी वर्णो की स्त्रियों में अपना वीर्य गिराते है, वे पापी वीर्य की कुल्या में गिरकर वीर्य पीते रहते हैं ॥२६॥ चोरी करने वाले, आग लगाने वाले, किसी को विष देने वाले तथा गावों को लूटने वाले पापी लोग सारमेयादन नामक नरक में डाल दिए जाते हैं ॥२७॥ जो झूठी गवाही देता है तथा जो दूसरे की सम्पत्ति को बलपूर्वक चुराता है, वह पापी नीचे मुंह करके अर्वाचि नामक नरक में डाल दिया जाता है ॥२८-२९॥ जो अज्ञानी जीभ के स्वाद के लिए शराब पीता है, उसको यमदूत लोहरस नामक नरक में डाल देते हैं ॥३०॥ जो मनुष्य अपनी विद्या तथा आचार से दृप्त होकर गुरुजन का अपमान करता है वह मरने पर नीचे मुँह करके क्षार नामक नरक में डाल दिया जाता है ॥३१॥ जो अधार्मिक पुरुष विश्वासघात करते हैं, वे अनेक प्रकार की यातना वाले शूलप्रोत नामक नरक में डाल दिए जाते हैं ॥३२॥ जो चुगुलखोर अपनी वाणी से लोगों को उद्विग्न करता है वह दन्दशूक नामक नरक में जाता है और वहाँ उसको सर्प काटते रहते हैं ॥३३॥ हे राजन् ! पापियों के लिए इस तरह के अनके नरक हैं । वे पाप करके उन नरकों में जाकर भयङ्कर पीड़ा को भोगते हैं ॥३४॥ जो न तो रामकथा को सुनते है और न दूसरों का उपकार करते है, उन जीवों को नरकों में सभी दुःखों को भोगना पड़ता है ॥३५॥ इस संसार में जो सुखी हैं वे स्वर्ग से आये जीव हैं और जो दुःखी और रोगी होते हैं वे नरक से आये लोग हैं ॥३६॥ **शेषजी ने कहा**— इस बात को सुनकर राजा शत्रुघ्नजी बार-

शेष उवाच

एतच्छ्रुत्वा महीपालः कम्पमानः क्षणे क्षणे ।
पप्रच्छ भूयस्तं विप्रं सर्वसंशयनुत्तये ॥३७॥

शत्रुघ्न उवाच

तत्तत्पापस्य चिह्नानि कथयस्व महामुने !। केन पापेन किं चिह्नं भूलोक उपजायते ॥३८॥

शेष उवाच

इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं मुनिः प्रोवाच भूपतिम् ॥३९॥

शौनक उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि चिह्नानि पापकारिणाम् ।
सुरापः श्यावदन्तश्च नरकान्ते प्रजायते ॥४०॥
अभक्ष्यभक्षकारी च जायते गुल्मकोदरः। उदक्या वीक्षितं भुक्त्वा जायते कृमिलोदरः ॥४१॥
श्वमार्जारादिसंस्पृष्टं भुत्तवा दुर्गन्धिवान्भवेत् । अनिवेद्य सुरादिभ्यो भुञ्जानो जायते नरः ॥४२॥
उदरे रोगवान्दुःखी महारोगप्रपीडितः । परान्नविघ्नकरणादजीर्णमभिजायते ॥४३॥
मन्दोदराग्निर्भवति सति द्रव्ये कदन्नदः। विषदश्छर्दिरोगी स्यान्मार्गहा पादरोगवान्॥४४॥
पिशुनो नरकस्यान्ते जायते श्वासकासवान् । धूर्तोऽपस्माररोगी स्याच्छूली स परतापनः ॥४५॥
दावाग्निदायकश्चैव रक्तातीसारवान्भवेत् । सुरालये जले वापि शकृत्क्षेपं करोति यः॥४६॥
गुदरोगो भवेत्तस्य पापरूपः सुदारुणः । गर्भपातनजारोगा यकृत्प्लीहजलोदराः ॥४७॥
प्रतिमाभङ्गकारी च अप्रतिष्ठश्च जायते । दुष्टवादी खण्डितः स्यात्खल्वाटः परनिन्दकः॥४८॥
सभायां पक्षपाती च जायते पक्षघातवान्। परोक्तहास्यकृत्काणः कुनखी विप्रहेमहृत्॥४९॥

वार कॉपते हुए अपने संशय को दूर करने के लिए महर्षि से फिर पूछे ॥३७॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा—** हे महामुने! आप विभिन्न पापों के चिह्नों को बतलायें कि किस पाप को करने से संसार में कौन सा चिह्न उत्पन्न होता है ॥३८॥ **शेषजी ने कहा—** उनकी वाणी सुनकर मुनि ने कहा ॥३९॥ **शौनक महर्षि ने कहा—** राजन् ! आप सुनें मैं पापियों के चिह्नों को बतलाता हूँ । नरक के अन्त में मदिरा पायी काले दाँतों वाला मनुष्य हो जाता है ॥४०॥ वह अभक्ष्य भक्षण करता है । उसके पेट में गुल्म रोग हो जाता है । जो रजस्वला को देखे हुए अन्न को खाता है, उसके पेट में कृमिका रोग होता है ॥४१॥ जो कुत्ते, बिल्ली आदि के छुए हुए अन्न को खाता है, उसके शरीर से दुर्गन्धि निकलती है । देवताओं आदि को भोग लगाए विना खाने वाले के पेट में रोग होता है और वह महारोग से पीड़ित होता है । दूसरे के भोजन में विघ्न करने वाला अजीर्ण रोग से ग्रस्त होता है ॥४२-४३॥ धान रहने पर भी कदन्न (खराब अन्न) दान करने वाले को मन्दाग्नि हो जाती है । विष देने वाला छर्दि (खूनवमन करने) का रोगी होता है । रास्ता खराब करने वाला पैर का रोगी होता है ॥४४॥ चुगुलखोर नरक भोगने के वाद श्वास और कास का रोगी होता है । धूर्तता करने वाला अपस्भार का रोगी होता है, दूसरे को दुख देने वाला शूल का रोगी होता है ॥४५॥ वन में आग लगाने वाला रक्तातिसार का रोगी होता है । जो मन्दिर अथवा जल में विष्ठा फेंकता है, उसके पाप स्वरूप वह गुदा का रोगी होता है । गर्भ गिराने से प्लीहा और जलोदर रोग होते हैं ॥४६-४७॥ प्रतिमा को तोड़ने वाला अप्रतिष्ठित हो जाता है । दुष्टता पूर्वक बोलने वाला लूला होता है । दूसरे की निन्दा करने

तुन्दीवरी ताम्रचौरः कांस्यहृत्पुण्डरीकिकः। त्रपुहारी च पुरुषो जायते पिङ्गमूर्धजः ॥५०॥
शीसहारी च पुरुषो जायते शीर्षरोगवान्। घृतचौरस्तु पुरुषो जायते नेत्ररोगवान् ॥५१॥
लोहहारी च पुरुषो बर्वराङ्गः प्रजायते। चर्महारी च पुरुषो जायते मेदसावृतः ॥५२॥
मधुचौरस्तु पुरुषो जायते वस्तिगन्धवान्। तैलचौर्येण भवति नरः कण्ड्वातिपीडितः ॥५३॥
आमान्नहरणाच्चैव दन्तहीनः प्रजायते। पक्वान्नहरणाच्चैव जिह्वारोगयुतो भवेत् ॥५४॥
मातृगामी च पुरुषो जायते लिङ्गवर्जितः। गुरुजायाभिगमनान्मूत्रकृच्छः प्रजायते ॥५५॥
भागिनीं चैव गमने पीतकुष्ठः प्रजायते। स्वसुतागमने चैव रक्तकुष्ठः प्रजायते ॥५६॥
भ्रातृभार्याभिगमने गुल्मकुष्टः प्रजायते। पितृष्वस्त्रभिगमने दक्षिणाङ्गे व्रणी भवेत् ॥५७॥
विश्वस्तभार्यागमने गजचर्मा प्रजायते। पितृष्वस्त्रभिगमने दक्षिणाङ्गे व्रणी भवेत् ॥५८॥
मातुलन्यास्तु गमने वामाङ्गे व्रणवान्भवेत्। पितृव्यपत्नीगमने कटौ कुष्ठः प्रजायते ॥५९॥
मित्रभार्याभिगमने मृतभार्यः प्रजायते। स्वगोत्रस्त्रीप्रसङ्गेन जायते च भगन्दरः ॥६०॥
तपस्विनीप्रसङ्गेन प्रमेहो जायते नरे। श्रोत्रियस्त्रीप्रसङ्गेन जायते नासिकाव्रणी ॥६१॥
दीक्षितस्त्रीप्रसङ्गेन जायते दुष्टरक्तसृक्। स्वजातिजायागमने जायते हृदयव्रणी ॥६२॥
जात्युन्नतस्त्रीगमने जायते मस्तकव्रणी। पशुयोनौ च गमनान्मूत्रघातः प्रजायते ॥६३॥
एते दोषा नराणां स्युर्नरकान्ते न संशयः। स्त्रीणामपि भवन्त्येते तत्तत्पुरुषसङ्गमात् ॥६४॥

वाला खल्वाट होता है ॥४८॥ सभा में पक्षपात करने वाला पक्षघात का रोगी होता है। दूसरे की हँसी करने वाला काना होता है। ब्राह्मण का सुवर्ण चुराने वाला काले नख वाला होता है ॥४९॥ ताम्बा चुराने वाला तुन्दिल होता है। कांस्य चुराने वाला पुण्डरीक हो जाता है। राङ्गा चुराने वाले पुरुष के बाल पीले होते हैं ॥५०॥ शीशा चुराने वाला मनुष्य शिर का रोगी होता है। घी चुराने वाला आँख का रोगी होता है ॥५१॥ लोहा चुराने वाले पुरुष के अङ्ग रुक्ष होते हैं। चमड़ा चुराने वाले की मेदा बढ़ जाती है ॥५२॥ शहद चुराने वाले की वस्ती से दुर्गन्धि आती है। तेल चुराने वाला खुजली से पीडित होता है ॥५३॥ कच्चा अन्न चुराने वाला दाँत से रहित होता है। पक्वानों को चुराने वाले को जीभ का रोग होता है ॥५४॥ माता के साथ सङ्गम करने वाला लिङ्गहीन होता है। गुरु पत्नी के साथ सङ्गम करने से मनुष्य मूत्रकृछ्र का रोगी होता है ॥५५॥ भगिनी (बहन) के साथ सङ्गम करने से पीला कुष्ट होता है। पुत्री के साथ सङ्गम करने से रक्त कुष्ठ का रोगी होता है ॥५६॥ भौजाइ के साथ सङ्गम करने से मनुष्य गुल्म कुष्ठ का रोगी होता हैं। अपने स्वामी की पत्नी के साथ सहगमन करने वाले को दाद का रोग होता है ॥५७॥ विश्वस्त व्यक्ति की पत्नी के साथ सङ्गम करने से मनुष्य का हाथी के जैसा चमड़ा हो जाता है। बूआ के साथ सङ्गम करने से दोहिने अङ्ग में घाव होता है ॥५८॥ मामी के साथ सहगमन करने वाले के बायें अङ्ग में व्रण होता है। चाची के साथ सहगमन करने वाले के कमर में कुष्ठ होता है ॥५९॥ मित्र की पत्नी के साथ सहगमन करने वाले की पत्नी मर जाती है। अपने गोत्र की पत्नी के साथ सहगमन करने वाले को भगन्दर होता है ॥६०॥ तपस्विनी के साथ प्रसङ्ग करने से प्रमेह का रोग होता है। वैदिक की पत्नी के साथ प्रसङ्ग करने से नाक में घाव होता है ॥६१॥ यज्ञ में दीक्षित की पत्नी के साथ प्रसङ्ग करने से रक्त दूषित होने का रोग होता है। अपनी जाति की पत्नी के साथ सहगमन करने से मनुष्य हृदय का रोगी होता है ॥६२॥ ऊँच जाति की स्त्री के साथ प्रसङ्ग करने वाला मनुष्य शिर का रोगी होता है। पशु योनि से प्रसङ्ग करने पर

एवं राजन्हिचिह्नानि कीर्तितानि सुपापिनाम्। दानपुण्यप्रसङ्गेन तीर्थादिक्रियया तथा ॥६५॥
रामस्य चरितं श्रुत्वा तपसा वाऽक्षयं व्रजेत् ।
सर्वेषामेव पापानां हरिकीर्तिधुनी नृणाम् ॥६६॥
क्षालयेत्पापिनां पङ्कं नात्र कार्या विचारणा। यश्चावमन्येत हरिं तं गङ्गा न पुनाति हि ॥६७॥
तीर्थान्यपि सुपुण्यानि पावितुं न क्षमाणि तम् ।
हसते कीर्त्यमानं यश्चारित्रं ज्ञानदुर्बलः ॥६८॥
न तस्य नरकान्मुक्तिः कल्पान्तेऽपि भविष्यति ।
याहि राजन्विमोक्षार्थं हयस्यानुचरैः सह ॥
श्रावय श्रीशचरितं यतो वाहगतिर्भवेत् ॥६९॥

शेष उवाच

इति श्रुत्वा प्रहृष्टोऽभूच्छत्रुघ्नः परवीरहा । प्रणम्य तं परिक्रम्य ययौ सेवकसंयुतः ॥७०॥
तत्र गत्वा स हनुमान्हयवर्यस्य पार्श्वतः । उवाच रामचरितं महादुर्गतिनाशकम् ॥७१॥
याहि देवविमानं स्वं रामकीर्तनपुण्यतः । स्वैरं चरस्व लोके त्वं मुक्तो भव कुयोनितः॥७२॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य शत्रुघ्नो यावदास्थितः ।
तावद्ददर्श विमलं देवं वैमानिकं वरम् ॥७३॥
स उवाच विमुक्तोऽहं रामकीर्तनसंश्रुतेः । यामि स्वं भवनं राजन्नाज्ञापय महामते ॥७४॥
इत्युक्त्वा प्रययौ देवो विमाने स्वेपरिस्थितः ।
तदा विस्मयमापुस्ते शत्रुघ्नेन सहानुगाः ॥७५॥

मूत्रघात का रोग होता है ॥६३॥ ये रोग सभी मनुष्यों को नरक का भोग भोग लेने के बाद होते है । विभिन्न पुरुषों के साथ सङ्गम करने से स्त्रियों को भी ये ही रोग होते हैं ॥६४॥ हे राजन् ! ये सभी चिह्न मैंने बड़े पापियों का बतलाया है । दान, पुण्य करने से तथा तीर्थ करने से ॥६५॥ श्रीरामजी का चरित्र श्रवण करने से अथवा तपस्या करने से ये पाप विनष्ट होते हैं । मनुष्यों के सभी पापों के लिए श्रीहरि का कीर्तन ही पाप विनाशक है ॥६६॥ वह पापियों के पाप को विनष्ट कर देता है, इसमें कोई भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है । जो श्रीहरि का अपमान करता है, उसके गङ्गा नदी भी पवित्र नहीं बनाती है ॥६७॥ उसको पवित्र तीर्थ भी पवित्र करने में समर्थ नहीं होते हैं । जो अज्ञानी श्रीहरि के कीर्तन का उपहास करता है ॥६८॥ उसकी कल्प के अन्त में भी नरकों से मुक्ति नहीं मिल पाती है । राजन् ! यदि आप अश्व की गति चाहते हैं तो जाकर उसे श्रीरामजी के चरित को सुनायें ॥६९॥ **शेषजी ने कहा**— यह सुनकर शत्रुघ्नजी प्रसन्न हो गये । महर्षि को प्रणाम करके तथा उनकी परिक्रमा करके वे अपने सेवकों के साथ चले गये ॥७०॥ वहाँ जाकर हनुमानजी अश्व श्रेष्ठ के बगल में महान् दुर्गति को विनष्ट करने वाले रामचरित को सुनाये ॥७१॥ उन्होंने कहा— हे देव ! आप रामकीर्तन के पुण्य से अपने विमान पर जायँ । आप अपने लोक में इच्छा के अनुसार विचरण करें आप इस दुष्टयोनि से मुक्त हो जायँ ॥७२॥ इस बात को सुनकर जब तक वे वहाँ स्थित थे तब तक उन्होंने एक सुन्दर वैमानिक देव को देखा ॥७३॥ उसने कहा— मैं रामचरित्र को सुनकर मुक्त हो गया हूँ । हे महामते राजन् ! आप मुझे आज्ञा दें अब मैं अपने भवन में जा रहा हूँ ॥७४॥ इस तरह से कहकर वह देवता अपने विमान पर चढ़कर चला गया । यह देखकर शत्रुघ्नजी

ततो वाहो विनिर्मुक्तो गात्रस्तम्भाच्च भूतलात् ।
ययौ तद्विपिनं सर्वं भ्रमन्पक्षिसमाकुलम् ।।७६।।

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायन सम्वादे रामाश्वमेधे
हयनिर्मुक्तिर्नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४८।।

* * *

उनचासवाँ अध्याय

शेष उवाच

मासाः सप्ताभवंस्तस्य हयवर्यस्य हेलया। चरतो भारतं वर्षमनेकनृपपूरितम् ।।१।।
स पूजितो भूपवरैः परीत्य वरभारतम्। परीवृतो वीरवीरैः शत्रुघ्नादिभिरुद्भटैः ।।२।।
स बभ्राम बहून्देशान्हिमालयसमीपतः । न कोऽपि तं निजग्राह हयं रामबलं स्मरन् ।।३।।
अङ्गवङ्गकलिङ्गानां राजभिः संस्तुतो हयः । जगाम राज्ञो नगरे सुरथस्य मनोहरे ।।४।।
कुण्डलं नाम नगरमदितेर्यत्र कुण्डलम् । कर्णयोः पतितं भूमौ हर्षभयसुकम्पयोः ।।५।।
यत्र धर्मव्यतिक्रान्तिं न करोति कदापि ना। श्रीरामस्मरणं प्रेम्णा करोति जनतान्वहम् ।।६।।
अश्वत्थानां तु यत्रार्चा तुलस्याः प्रत्यहं नृभिः ।
क्रियते रघुनाथस्य सेवकैः पापवर्जितैः ।।७।।

के सभी अनुचर आश्चर्यित हो गये ।।७५।। उसके बाद अश्व का पृथिवी से गात्रस्तम्भ समाप्त हो गया । वह पक्षियों से परिपूर्ण उस वन में घूमते हुए चला गया ।।७६।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में अश्वनिर्मुक्ति नामक अड़तालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४८।।

* * *

राजा सुरथ की राजधानी कुण्डल पुर में अश्व का जाना और राजा द्वारा अश्व का ग्रहण

शेषजी ने कहा— इस तरह उस अश्व को राजाओं से परिपूर्ण भारतवर्ष में लीला पूर्वक विचरण करते हुए सात महीने बीत गये थे ।।१।। श्रेष्ठ राजाओं से पूजित भारतवर्ष की परिक्रमा करके शत्रुघ्न आदि उद्भट वीरों से घिरा हुआ वह अश्व ।।२।। हिमालय के सन्निकटवर्ती अनेक देशों में भ्रमण किया; किन्तु श्रीरामचन्द्रजी के बल का स्मरण करके उसे किसी ने भी नहीं पकड़ा ।।३।। अङ्ग देश, वङ्ग देश, तथा कलिङ्ग देश के राजाओं ने उस अश्व की स्तुति की । उसके बाद वह राजा सुरथ के मनोहर नगर में गया ।।४।। जहाँ पर हर्ष तथा भय के कारण अदिति के कानों का कुण्डल पृथिवी पर गिरा था; उस कुण्डल नगर में वह गया ।।५।। वहाँ का कोई भी मनुष्य धर्म का अतिक्रमण नहीं करता था । वहाँ की जनता प्रतिदिन श्रीरामजी का प्रेम पूर्वक स्मरण करती थी ।।६।। जहाँ के रामभक्त निष्पाप लोग प्रतिदिन अश्वत्थ (पिप्पल) और तुलसी की पूजा करते थे ।।७।। वहाँ के मन्दिरों

यत्र देवालया रम्या राघवंप्रतिमायुताः। पूज्यन्ते प्रत्यहं शुद्धचितैः कपटवर्जितैः ॥८॥
वाचि नामहरेर्यत्र न वै कलहसङ्कथा । हृदि ध्यानं तु तस्यैव न च कामफलस्मृतिः ॥९॥
देवनं यत्र रामस्य वार्त्ताभिःपूतदेहिनाम् । न जातुचिन्नृणामस्ति सत्यव्यसनमानिनाम् ॥१०॥
तस्मिन्वसति धर्मात्मा सुरथः सत्यवान्बली । रघुनाथपदस्मारहृष्टचित्तः परोन्मदः ॥११॥
किं वर्णयामि रामस्य सेवकं सुरथं वरम् । यस्याशेषगुणा भूमौ विस्तृताः पावयन्त्यघम् ॥१२॥
सेवका तस्य भूपस्य पर्यटन्तः कदाचन। अपश्यन्हयमेधस्य हयं चन्दनचर्चितम् ॥१३॥
ते दृष्ट्वाविस्मयं प्राप्ता हयपत्रमलोकयन् । स्पष्टाक्षरसमायुक्तं चन्दनादिकचर्चितम् ॥१४॥
ज्ञात्वा रामेण संमुक्तं हयं नेत्रमनोहरम् । हृष्टा राज्ञे सभास्थाय कथयामासुरुत्सुकाः ॥१५॥
स्वामिन्नयोध्या नगरी पतिस्तस्यास्तु राघवः। हयमेधोक्रतोर्योग्यो हयो मुक्तः परिभ्रमन् ॥१६॥
स ते पुरस्य निकटे प्राप्तः सेवकसंयुतः। गृहाण त्वं महाराज ! हयं तं सुमनोहरम् ॥१७॥

शेष उवाच

इति श्रुत्वा निजप्रोक्तं वाक्यं हर्षपरिप्लुतः। उवाच वीरान्बलिनो मेघगम्भीरया गिरा॥१८॥

सुरथ उवाच

धन्या वयं राममुखं पश्यामः सह सेवकाः। ग्रहिष्यामि हयं तस्य भटकोटिपरीवृतम् ॥१९॥
तदा मोक्ष्यामि वाहं तं यदा रामः समाव्रजेत् ।
कृतार्थं मम भक्तस्य चिरं ध्यानरतस्य वै ॥२०॥

में श्रीरामचन्द्रजी की मनोहर मूर्ति की पूजा शुद्ध चरित्र वाले तथा कपट रहित लोगों द्वारा की जाती थी ॥८॥ वहाँ के लोगों की वाणी में श्रीहरि का नाम रहता था, कोई भी वहाँ कलह नहीं करता था । वे हृदय में श्रीरामचन्द्रजी का ही ध्यान करते थे कोई भी काम का स्मरण नहीं करता था ॥९॥ वहाँ पर श्रीरामचन्द्रजी की वार्ताओं में ही लोग लगे रहते थे, वे कभी भी सत्य को व्यसन मानने वाले मनुष्यों की चर्चा नहीं करते थे ॥१०॥ उस नगर में सत्यवक्ता, बलवान् सुरथ नामक राजा रहते थे । वे श्रीरामचन्द्रजी के चरणों का स्मरण करके अत्यन्त प्रसन्न हो जाते थे ॥११॥ मैं श्रीरामचन्द्र के परम सेवक सुरथ का क्या वर्णन करूँ । उनके पृथिवी पर फैले हुए सभी गुण पापों को विनष्ट करने वाले थे ॥१२॥ पृथिवी पर पर्यटन करते हुए राजा के सेवकों ने चन्दन से पूजित अश्वमेध के अश्व को देखा ॥१३। उन सबों ने उस अश्व के मनोहर भाल पत्र को देखा और आश्चर्यित हो गये। वह पत्र स्पष्ट अक्षरों में लिखा था और चन्दन आदि से पूजित था ॥१४॥ यह जानकर कि इस मनोहर अश्व को श्रीरामचन्द्रजी ने छोड़ा है, वे सब सभा में बैठे हुए राजा को जाकर प्रसन्नता पूर्वक बतलाये ॥१५॥ हे स्वामिन्! अयोध्या नगरी के स्वामी श्रीरामचन्द्रजी हैं । उनके द्वारा अश्वमेध याग का छोड़ा गया अश्व घूमता हुआ ॥१६॥ आपके नगर के निकट सेवकों के साथ आया है । हे महाराज ! उस सुन्दर अश्व को पकड़ लें ॥१७॥ **शेषजी ने कहा**— सेवकों के द्वारा कही गयी इस बात को सुनकर उस बलवान् राजा ने अपने वीरों से मेघ के समान गम्भीर वाणी में कहा ॥१८॥ **सुरथ ने कहा**— हमलोग धन्य हैं कि सेवकों के साथ श्रीरामजी के मुख का दर्शन करेंगे । मैं करोड़ों वीरों से घिरे हुए उस अश्व को पकडूंगा ॥१९॥ मैं तब ही अश्व को छोडूंगा जब कि श्रीरामजी यहाँ आ जायँ और दीर्घकाल से ध्यान करने वाले मुझे अपने दर्शन से कृतार्थ कर दें ॥२०॥ **शेषजी ने कहा**— इस तरह से कहकर राजा ने अपने सेवकों को आदेश दिया, दिखायी पड़ते ही अश्व को पकड़ लो, उसे छोड़ना

शेष उवाच

इत्थमुक्त्वा महीपालः सेवकान्स्वयमादिशत् ।
गृह्णन्तु वाहं प्रसभं मोच्यो नाश्वोऽक्षिगोचरः ॥२१॥
अनेन सुमहाँल्लाभो भविष्यति तु मे मतम् ।
यद्रामचरणौ प्रेक्षे ब्रह्मशक्रादिदुर्ल्लभौ ॥२२॥
स एव धन्यः स्वजनः पुत्रो वा बान्धवोऽथवा ।
पशुर्वा वाहनं वापि रामाप्तिर्येन सम्भवेत् ॥२३॥
तस्माद् गृहीत्वा क्रत्वश्वं स्वर्णपत्रेण शोभितम् ।
बध्नन्तु वाजिशालायां कामवेगं मनोरमम् ॥२४॥
इत्युक्तास्ते ततो गत्वा वाहं रामस्य शोभितम् ।
गृहीत्वा तरसा राज्ञे ददुः सर्वं शुभाङ्गिनम् ॥२५॥
राजा प्राप्य मुदा चाश्वं रामस्य दनुजार्दनः । सेवकान्प्राहबलिनो धर्मकृत्यविचक्षणः ॥२६॥
वात्स्यायन ! महाबुद्धे ! शृणुष्वैकाग्रमानसः ।
न तस्य विषये कश्चित्परदाररतोनरः ॥२७॥
न परद्रव्यनिरतो न च कामेषु लम्पटः । न जिह्वाभिरतो मार्गे कीर्त्तयेद्रामकीर्तनात् ॥२८॥
यः सेवकान्नृपो वक्ति यूयं सेवार्थमागताः । कथयन्तु भवच्चेष्टां धर्मकर्मविशारदाः ॥२९॥
एकपत्नीव्रतधरा न परद्रव्यलोलुपाः । परापवादनिरता न च वेदोत्पथं गताः ॥३०॥
श्रीरामस्मरणादीनि कुर्वन्ति प्रत्यहं भटाः । तानहं रामसेवार्थं रक्षाम्यन्तककोपवान् ॥३१॥
एतद्विरुद्धधर्माणो ये नराःपापसंयुताः। तानहं विषये मे तु वासयामि न दुर्मतीन्॥३२॥

मत ॥२१॥ मेरे मतानुसार इससे बहुत बड़ा लाभ होने वाला है । वह यह कि ब्रह्मा और इन्द्र को भी दुर्लभ श्रीरामचन्द्र के चरणों का मुझे दर्शन मिलेगा ॥२२॥ वह स्वजन, पुत्र या बान्धव, पशु अथवा वाहन धन्य है जिसके द्वारा श्रीरामचन्द्रजी की प्राप्ति हो जाय ॥२३॥ अतएव स्वर्णपत्र से सुशोभित काम के समान वेग वाले अश्व को अश्वशाला में ले जाकर बाँध दो ॥२४॥ इस तरह से कहने पर वे सब जाकर श्रीरामचन्द्र के मनोहर अङ्गों वाले अश्व को पकड़कर राजा को प्रदान कर दिया ॥२५॥ दानवों को मारने वाले तथा धर्म कर्म में निपुण राजा ने अश्व को प्राप्त करके बलवान् सेवकों से युद्ध करने के लिए तैयार रहने को कहा ॥२६॥ हे महाबुद्धिमान् वात्स्यायन आप एकाग्र मन से सुनें । उस राजा के राज्य में कोई भी मनुष्य परस्त्री से प्रेम नहीं करता था ॥२७॥ न तो कोई दूसरों के द्रव्य का लालची था और न कामी था । लोग मार्ग में भी अपनी जीभ से श्रीरामचन्द्रजी का ही कीर्तन करते थे ॥२८॥ वह राजा सेवकों से कहता था कि आपलोग सेवा करने के लिए आये हैं । हे धर्म कर्मों में निपुणों आपलोग ! अपनी बात बतलायें ॥२९॥ सबलोग एक पत्नी व्रत का पालन करते थे, वे दूसरों के धन के लोभी नहीं थे, दूसरे की निन्दा भी नहीं करते थे और न वेद विरुद्ध कार्य करते थे ॥३०॥ वे वीर प्रतिदिन श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण आदि करते थे, ऐसे वीरों की रक्षा यमराज के समान क्रोध करने वाला मैं करता हूँ ॥३१॥ इसके विरुद्ध आचरण करने वाले जो पापी मनुष्य हैं उन दुष्ट बुद्धि वालों को मैं अपने राज्य में नहीं बसाता हूँ ॥३२॥ उस राजा के राज्य में कोई पापी मन से भी पाप नहीं करता था सबों के पाप श्रीहरि

तस्य देशे न पापिष्ठाः पापं कुर्वन्ति मानसे ।
हरिध्यानहताशेषपातका मोदसंयुताः ॥३३॥
यदैवमभवद्देशो राजा धर्मेण संयुतः । तदा तत्स्था नराः सर्वे मृता गच्छन्ति निर्वृतिम्॥३४॥
यमानुचरनिर्वेशो नाभवत्सौरथे पुरे । तदा यमो मुने रूपं धृत्वा प्रागान्महीश्वरम् ॥३५॥
बल्कलाम्बरधरी च जटाशोभितशीर्षकः । सुरथं तु सभामध्ये ददर्श हरिसेवकम् ॥३६॥
तुलसीं मस्तके यस्य वाचि नाम हरेःपरम्। धर्मकर्मरतांवार्ता श्रावयन्तं निजाञ्जनान्॥३७॥
तदा मुनिं नृपो दृष्ट्वा तपोमूर्तिमिवस्थितम्। ववन्दे चरणौ तस्य पाद्यादिकमथाकरोत् ॥३८॥
सुखोपविष्टं विश्रान्तं मुनिं प्राह नृपाग्रणीः । धन्यमद्य जनुर्मह्यं धन्यमद्य गृहं मम ॥३९॥
कथाःकथयतान्मह्यं रामस्य विविधा वराः । याःश्रृण्वतां पापहानिर्भविष्यति पदे पदे॥४०॥
इत्थमुक्तं समाकर्ण्य जहास स मुनिर्भृशम्। दन्तान्प्रदर्शयन्सर्वांस्तालस्फालितपाणिकः ॥४१॥
हसन्तं तं मुनिं प्राह हसने कारणं किमु । कथयस्व प्रसादेन यथास्यान्मनसः सुखम् ॥४२॥
ततो मुनिर्नृपं प्राह श्रृणु राजन्धियया युतः । यदहंतेऽभिधास्यामि स्मिते कारणमुत्तमम्॥४३॥
त्वया प्रोक्तं हरेःकीर्तिं कथयस्व ममाग्रतः । को हरिःकस्य वा कीर्तिःसर्वे कर्मवशा नराः॥४४॥
कर्मणा प्राप्यते स्वर्गःकर्मणा नरकं व्रजेत्। कर्मणैव भवेत्सर्वं पुत्रपौत्रादिकं बहु ॥४५॥
शक्रःशतं क्रतूनां तु कृत्वागात् परमं पदम् ।
ब्रह्माऽपि कर्मणा लोकं प्राप्य सत्याख्यमद्भुतम् ॥४६॥
अनेके कर्मणा सिद्धा मरुदादय ईशिनः । कुर्वन्ति भोगसौख्यं च अप्सरोगणसेविताः ॥४७॥

का ध्यान करने से विनष्ट हो गया था । सब लोग प्रसन्न थे ॥३३॥ जब से यह राजा देश का राजा हुआ तव से उसके देश में जो मरता था उसकी मुक्ति हो जाती थी ॥३४॥ सुरथ के नगर मे यमराज कभी अपने दूतों को नहीं भेजते थे । उस राजा के काल में मुनि का रूप धारण करके यम राजा के पास आये ॥३५॥ वे वल्कल वस्त्र धारण किए थे और शिर पर जटा धारण किए थे । उन्होंने भगवद् भक्त सुरथ को सभा में देखें ॥३६॥ राजा अपने मस्तक पर तुलसी धारण किए थे और श्रीहरि का नाम जपते थे । वे धार्मिक कर्म सम्वन्धी वातें करते थे और उसे लोगों को सुनाते थे ॥३७॥ उस समय तपोमूर्ति मुनि को देखकर पाद्य आदि समर्पित करके राजा ने उनके चरणों की वन्दना की ॥३८॥ सुखपूर्वक बैठकर विश्राम कर लेने के बाद राजा ने मुनि से कहा— आज मेरा जन्म धन्य हो गया और आज मेरा गृह धन्य हो गया ॥३९॥ आप मुझे श्रीरामजी की अनेक श्रेष्ठ कथाओं को सुनायें । जिन सबों के सुनने मात्र से पापों का विनाश होता है ॥४०॥ इस बात को सुनकर मुनि वहुत अधिक हँसे, वे ताली पीट रहे थे और उनके दाँत चमक रहे थे ॥४१॥ हँसते हुए मुनि से राजा ने पूछा कि आपके हँसने का कारण क्या हैं ? आप कृपा करके मुझे वतलायें जिससे मेरे मन को सुख मिले ॥४२॥ उसके बाद मुनि ने राजा से कहा— हे बुद्धिमान् राजन् ! आप मेरी बात सुनें । मैं अपनी हँसी का उत्तम कारण वतलाता हूँ ॥४३॥ आपने कहा कि आप मुझे श्रीहरि की कथा सुनायें किन्तु हरि कौन है ? अथवा उनकी कीर्ति क्या है ? सभी मनुष्य तो कर्म के वशवर्ती हैं ॥४४॥ कर्मों के ही द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति होती है और कर्म के कारण मनुष्य नरक में जाता है । कर्म से ही बहुत अधिक पुत्र पौत्र होते हैं ॥४५॥ इन्द्र ने सौ यागों को करके श्रेष्ठ पद को प्राप्त कर लिया । व्रह्माजी भी कर्म करके ही अद्भुत सत्य लोक को प्राप्त किए ॥४६॥ मरुत् आदि देवता कर्म करके

तस्मात्कुरुष्व यज्ञादीन्यजस्व किल देवताः। यथा ते विमलाकीर्तिर्भविष्यति महीतले॥४८॥
इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं कोपक्षुभितमानसः। उवाच रामैकमना विप्रं कर्मविशारदम्॥४९॥
मा ब्रूहि कर्मणो वार्तां क्षयिष्णु फलदायिनीम्।
गच्छ मन्नगरोपान्ताद् बहिर्लोकविगर्हितः ॥५०॥
इन्द्रःपतिष्यति क्षिप्रं पतिष्यत्यपि पद्मजः। न पतिष्यन्ति मनुजा रामस्य भजनोत्सुकाः॥५१॥
पश्य ध्रुवं प्रह्लादं विभीषणमथाद्भुतम्। ये चान्ये रामभक्ता वै कदापि न पतन्ति ते॥५२॥
ये रामनिन्दका दुष्टास्तानिमे यमकिङ्कराः। ताडयिष्यन्ति लोहस्य मुद्गरैःपाशबन्धनैः॥५३॥
ब्राह्मणत्वाद्देहदण्डं न कुर्यां ते द्विजाधम !। गच्छ गच्छ मदालोकात्ताडयिष्यामि चान्यथा॥५४॥
इत्थमुक्तवति श्रेष्ठे भूपे सुरथसंज्ञिते। सेवका बाहुना धृत्वा निष्कासयितुमुद्यताः॥५५॥
तदा यमो निजंरूपं धृत्वा लोकैकवन्दितम्। प्राह भूपं प्रतुष्टोऽस्मि याचस्व हरिसेवक !॥५६॥
मयाप्रलोभितो वाग्भिर्बह्वीभिरपि सुव्रत। चलितोऽसि न रामस्य सेवायाः साधुसेवितः॥५७॥
तदा प्रोवाच भूमीशो यमं दृष्ट्वा सुतोषितम्।
उवाच यदि तुष्टोऽसि देहि मे वरमुत्तमम् ॥५८॥
तावन्मम न वै मृत्युर्यावद्रामसमागमः। न भयं मे भवत्तोहि कदा च न हि धर्मराट्॥५९॥
तदोवाच यमो भूपमिदं तव भविष्यति। सर्वं त्वदीप्सितं तथ्यं करिष्यति रघोःपति॥६०॥
इत्युक्त्वान्तर्हितो धर्मो जगाम स्वपुरं प्रति। प्रशस्य तस्य चरितं हरिभक्ति परात्मनः॥६१॥
स राजा धार्मिको रामसेवकः परया मुदा। गृहीत्वाऽश्वं प्रत्युवाच सेवकान्हरिसेवकान्॥६२॥

ही सिद्ध हो गये और वे अप्सरा समूह से सेवित होकर भोगों को प्राप्त करते हैं॥४७॥ अतएव आप यज्ञ आदि कर्मो को करें देवताओं का यजन करें। उससे आपकी स्वच्छ कीर्ति संसार में फैलेगी॥४८॥ इस तरह के उस मुनि के वाक्यों को सुनकर रामभक्त राजा का मन क्रोध से क्षुब्ध हो गया और उन्होंने मुनि से कहा॥४९॥ आप लोक निन्दित हैं, मेरे नगर से आप बाहर चले जायँ, क्षयिष्णु फल देने वाले कर्म की बातें न करें॥५०॥ इन्द्र का शीघ्र ही पतन होने वाला है, ब्रह्माजी का भी पतन होगा। किन्तु राम का भजन करने वाले मनुष्यों का पतन नहीं होगा॥५१॥ आप ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण तथा दूसरे रामभक्तों को देखें उनका कभी भी पतन नहीं होता है॥५२॥ जो रामजी की निन्दा करने वाले दुष्ट हैं, उन सबों को यनदूत लोहे के मुद्गरों से पीटते हैं और पाश के वन्धन में बाँध देते हैं॥५३॥ हे द्विजाधम ! आप ब्राह्मण हैं, इसीलिए मैं आपको शारीरिक दण्ड नहीं देता हूँ। आप मेरी आँखों के सामने से चले जायँ अन्यथा मैं आपको पीटूँगा॥५४॥ राजा सुरथ के इस तरह कहने पर लोग मुनि का हाथ पकड़कर उनको सभा से बाहर निष्कासित करने के लिए तैयार हो गये॥५५॥ उस समय यमराज अपना लोक वन्दित रूप धारण करके कहे— मैं आपसे बहुत प्रसन्न हूँ; आप वरदान माँगे॥५६॥ हे सुव्रत ! मैंने आपको बहुत अधिक बातों से लुभाया; किन्तु साधु पुरुषों से सेवित आप विचलित नहीं हुए॥५७॥ उसके बाद प्रसन्न यम को देखकर राजा ने कहा यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यही उत्तम वरदान दीजिये॥५८॥ कि श्रीरामजी का दर्शन होने से पहले मेरी मृत्यु न हो। हे धर्मराज ! मुझे आपका भय कभी न हो॥५९॥ उस समय यमराज ने कहा यही होगा। श्रीरामचन्द्रजी आपके सभी अभिप्रेत कार्य को करेंगे॥६०॥ यह कहकर धर्मराज अन्तर्धान हो गये और अपने नगर में चले गये॥६१॥ वह रामभक्त धार्मिक राजा अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक

मया गृहीतो वाहोऽसौ राघवस्य महीपतेः । सज्जीभवन्तु सर्वत्र यूयं रणविशारदाः ।।६३।।
इति प्रोक्तास्तु ते सर्वे भटा राज्ञो महाबलाः ।
सज्जीभूताःक्षणादेव सभायां जग्मुरुत्सुकाः ।।६४।।
राज्ञो वीरा दशसुताश्चम्पको मोहकस्तथा। रिपुञ्जयोऽतिदुर्वारःप्रतापी बलमोदकः ।।६५।।
हर्यक्षःसहदेवश्च भूरिदेव सुतापनः । इति राज्ञो दशसुताःसज्जीभूता रणाङ्गणे ।।६६।।
यातुमिच्छामकुर्वंस्ते महोत्साहसमन्विताः । राजाऽपि स्वरथं चित्रं हेमशोभाविनिर्मितम् ।।६७।।
आह्वयामास सुजवैर्वाजिभिःसमलङ्कृतम्। रणोत्साहेन संयुक्तःसर्वसैन्यपरीवृतः ।।६८।।
सभायां सेवकान्सर्वान्दिशन्नास्ते महीपतिः ।।६९।।

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
सुरथेन राज्ञा हयग्रहणं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।४९।।

पचासवाँ अध्याय

शेष उवाच

अथ रामानुजो वेगात्समागत्य स्वसेवकान् । पप्रच्छ कुत्र वाहोऽसौ याज्ञिकः सुमनोहरः।।१।।
तदा ते वचनं प्रोचुः शत्रुघ्नं सुमहाबलाः । न जानीमो भटाः केचिद्धयं नीत्वा गताः पुरे ।।२।।

अश्व को पकडकर रामभक्त सेवकों से कहा ।।६२।। मैंने राजा रामचन्द्रजी के अश्व को पकड़ लिया है, आप सभी युद्ध विशारद युद्ध के लिए तैयार हो जायें ।।६३।। यह सुनकर राजा के महाबलवान् वीर उत्सुक होकर तैयार होकर सभा में गये ।।६४।। राजा के दश वीर पुत्र थे चम्पक, मोहक, रिपुञ्जय, अतिदुर्वार, प्रतापी, बलमोदक।।६५।। हर्यक्ष, सहदेव, भूरिदेव औरसुतापन ये सभी राजा के दशों पुत्र रण में जाकर तैयार हो गये ।।६६।। उन सबों ने कहा— महाउत्साह से युक्त हमलोग सभी युद्ध में जाना चाहते हैं । राजा भी अपने सुवर्ण की शोभा से युक्त।।६७।। अत्यन्त वेगवान् अश्वों से अलंकृत रथ को मँगवाये सम्पूर्ण सेना से युक्त राजा युद्ध के उत्साह से युक्त थे ।।६८।। राजा ने सभी सेवकों को आदेश दिया ।।६९।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में राजा सुरथ के द्वारा अश्व ग्रहण वर्णन नामक उनचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४९।।

शत्रुघ्नजी द्वारा राजा सुरथ के पास अङ्गद को दूत के रूप में भेजना

शेषजी ने कहा— उसके बाद रामानुज शत्रुघ्नजी वेगपूर्वक आकर अपने सेवकों से पूछे कि मनोहर याज्ञिक अश्व कहाँ हैं ?।।१।। उस समय उन महाबलवानों ने **शत्रुघ्नजी से कहा—** हम उन्हें जानते नहीं हैं कुछ वीर अश्व को पकड़ कर नगर में चले गये हैं ।।२।। उन बलवान् राजसेवकों ने हमलोगों का तिरस्कार भी किया

वयं च धिक्कृताः सर्वे बलिभी राजसेवकैः ।
अत्र प्रमाणं भगवानिति कर्तव्यतां प्रति ॥३॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां शत्रुघ्नः कुपितो भृशम् ।
दशन्नोघात्स्वदशनाञ्जिह्वया लेलिहन्मुहुः ॥४॥
उवाच वीरो मद्वाहं हृत्वा कुत्र गमिष्यति। इदानीं पातये बाणै पुरंजनसमन्वितम्॥५॥
इत्युक्त्वा सुमतिं प्राह कस्येदं पुटभेदनम्। को वर्ततेऽस्याधिपतिर्योमे वाहमजीहरत् ॥६॥

शेष उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य भूपतेः कोपसंयुतम् ।
जगाद मन्त्री सुगिरा स्फुटाक्षरसमन्वितम् ॥७॥
विद्धीदं कुण्डलं नाम नगरं सुमनोहरम्। अस्मिन्वसति धर्मात्मा सुरथः क्षत्रियो बली॥८॥
नित्यं धर्मपरो रामचरणद्वन्द्वसेवकः। मनसा कर्मणा वाचा हनुमानिव सेवकः ॥९॥
चरितान्यस्य शतशो वर्तन्ते धर्मकारिणः । महाबलपरीवारः सुरथः सर्वशोभनः ॥१०॥
महद्युद्धं भवेदत्र हृतश्चेद्वाहसत्तमः । अनेके प्रपतिष्यन्ति वीरा रणविशारदाः॥११॥
एवमुक्तं समाश्रुत्य शत्रुघ्नः सचिवं प्रति । उवाच पुनरप्येवं वचनं वदतां वरः ॥१२॥

शत्रुघ्न उवाच

कथमत्र प्रकर्तव्यं रामाश्वोऽनेन चेद्धृतः। नायाति योद्धुं प्रबलं कटकं वीरसेवितम् ॥१३॥

सुमतिरुवाच

दूतः प्रेष्यो महाराज राजानं प्रतिवाग्मिकः। यद्वाक्येन समायाति बलेन बलिनां वरः ॥१४॥
नोचेदज्ञानतो वाहो धृतः केनापि मानिना। अर्पयिष्यति नः साधुमश्वं क्रतुवरं शुभम्॥१५॥

अब आगे क्या करना है ? इसके विषय में आप ही प्रमाण हैं ॥३॥ उन सबों की बातों को सुनकर शत्रुघ्नजी अत्यन्त कुपित हुए । उन्होंने अपनी जीभ से ओठों को चाटते हुए तथा दाँतों को काटकर कहा ॥४॥ वीर शत्रुघ्नजी ने कहा— मेरे अश्व का हरण करके वह कहाँ जायेगा ? इस समय मैं बाणों से राजा के साथ में उन सबों को मार दूँगा ॥५॥ उन्होंने सुमति से पूछा कि यह किसका नगर है । यहाँ का राजा कौन है जिसने मेरे अश्व का हरण किया है ?॥६॥ **शेषजी ने कहा**— राजा की क्रोध भरी वाणी को सुनकर मन्त्री सुमति ने स्पष्ट शब्दों में कहा ॥७॥ इस मनोहर नगर का नाम कुण्डल है । इसके राजा बलवान् क्षत्रिय राजा सुरथ हैं ॥८॥ वे धार्मिक हैं और श्रीरामजी के चरणों के सेवक हैं । वे मन, वाणी और कर्म से हनुमानजी के समान रामजी के सेवक हैं॥९॥ इस धार्मिक राजा के सैकड़ों विख्यात चरित हैं । राजा सुरथ महाबलवान तथा महा परिवार से युक्त हैं॥१०॥ यदि उन्होंने अश्व को पकड़ा है तब तो यहाँ महायुद्ध होगा । यहाँ पर अनेक युद्धविशारद वीर मरने वाले हैं ॥११॥ मन्त्री की इस बात को सुनकर शत्रुघ्नजी ने फिर पूछा ॥१२॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा**— यदि इसने रामजी के अश्व को पकड़ा है तो फिर इसके साथ क्या करना चाहिए । वीरों से सेवित यह यदि युद्ध करने के लिए नहीं आ रहा है तो क्या किया जाय ?॥१३॥ **सुमति ने कहा**— राजा के पास बोलने में चतुर दूत को भेजना चाहिए जिसकी बातों को सुनकर बलवानों में श्रेष्ठ राजा सेना के साथ आये ॥१४॥ यदि किसी ने अज्ञानवशात् अश्व को पकड़ लिया होगा तो वह अच्छी तरह से यज्ञ के अश्व को लौटा देगा ॥१५॥ इस बात

इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं शत्रुघ्नो बुद्धिमान्बली ।
अङ्गदं प्रत्युवाचेदं वचनं विनयान्वितम् ॥१६॥

शत्रुघ्न उवाच

याहि त्वं निकटस्थे वै सुरथस्य महापुरे। दूतत्वेन ततो गत्वा प्रब्रूहि नृपतिं प्रति॥१७॥
त्वया धृतो रामवाहो ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।
अर्पयतु न वा यातु प्रधनं वीरसंयुतम् ॥१८॥
रामस्य दौत्यं लङ्कायां रावणं प्रति यत्कृतम् ।
तथैव कुरु भूयिष्ठबलसंयुतबुद्धिमन् ! ॥१९॥

शेष उवाच

एतच्छ्रुत्वाऽङ्गदो वीर ओमिति प्रोच्य भूमिपम् ।
जगाम संसदो मध्ये वीरश्रेणिसमन्विते ॥२०॥
ददर्श सुरथं भूपं तुलसीमञ्जरीधरम्। रामभद्रं रसनया ब्रुवन्तं सेवकान्निजान्॥२१॥
राजाऽपि दृष्ट्वा प्लवगं मनोहरवपुर्धरम्। शत्रुघ्नदूतं मत्वाऽपि बालिजं प्रत्यभाषत॥२२॥

सुरथ उवाच

प्लवगाधिप ! कस्मात्त्वमागतोऽत्र कथं भवान् ।
ब्रूहि मे कारणं सर्वं यथा ज्ञात्वा करोमि तत् ॥२३॥

शेष उवाच

इति सम्भाषमाणं तं प्रत्युवाच कपीश्वरः। विस्मयंश्चेतसि भृशं रामसेवाकरं नृणाम् ॥२४॥
जानीहि मां नृपश्रेष्ठ ! बालिपुत्रं हरीश्वरम्। शत्रुघ्नेन च दूतत्वे प्रेपितोभवतोऽन्तिकम्॥२५॥
सेवकैः कैश्चिदागत्य धृतोऽश्वो मम साम्प्रतम् ।
अज्ञानतो महान्याय्यं कुर्वद्भिः सहसा नृप ॥२६॥

को सुनकर बुद्धिमान तथा वलवान् शत्रुघ्नजी नम्रता पूर्वक अङ्गद से कहे ॥१६॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा**— तुम सन्निकट में विद्यमान राजा सुरथ के नगर में दूत के रूप में जाकर राजा से कहो ॥१७॥ यदि आपने जानकर अथवा बिना जाने ही श्रीरामचन्द्रजी के अश्व को पकड़ लिया है; तो उसे आप लौटा दें अथवा वीरों के साथ युद्ध करें ॥१८॥ तुमने जिस तरह लङ्का में रावण के प्रति राम के दूत का काम किया था उसी तरह तुम दौत्य कर्म करो। तुम अत्यधिक बल एवं बुद्धि से युक्त हो ॥१९॥ **शेषजी ने कहा**— इस बात को सुनकर वीर अङ्गद ने कहा— ठीक है और वे वीर समूह से युक्त राजा की सभा में गये ॥२०॥ उन्होंने राजा सुरथ को तुलसी की मञ्जरी धारण किए देखा। उस समय राजा अपने सेवकों को श्रीरामचन्द्रजी के विषय में बतला रहे थें ॥२१॥ राजा ने भी मनोहर शरीरधारी वानर अङ्गद को देखा। उनको वालि का पुत्र तथा शत्रुघ्नजी का दूत मानकर कहा॥२२॥ **सुरथ ने कहा**— वानराधिप आप यहाँ पर कैसे और कहाँ से आये हैं ? आप अपने आने का प्रयोजन बतलायें जिससे कि मैं उसके अनुसार कार्य कर सकूँ ॥२३॥ **शेषजी ने कहा**— इस तरह से कहने वाले राम के सेवक तथा लोगों के अन्तःकरण में विस्मय उत्पन्न करने वाले अङ्गद ने राजा से कहा ॥२४॥ हे राजश्रेष्ठ ! मैं बालि का पुत्र हूँ शत्रुघ्नजी ने दौत्य कर्म करने के लिए मुझे आपके पास भेजा है ॥२५॥ आपके

तमश्वं सह राज्येन सहपुत्रैर्मुदान्वितः । शत्रुघ्नं याहि चरणे पतित्वाऽऽशु प्रदेहि च ॥२७॥
नोचेच्छत्रुघ्ननिर्मुक्तनाराचैः क्षतविग्रहः । पृथ्वीतलमलङ्कुर्वञ्छयिष्यसि विशीर्षकः ॥२८॥
येन लङ्कापतिर्नाशं प्रापितो लीलया क्षणात् ।
तस्याश्वं यागयोग्यं तु हत्वा कुत्र गमिष्यसि ॥२९॥
इत्यादि भाषमाणं तं प्रत्युवाच महीश्वरः । सर्वं तथ्यं व्रवीषि त्वं नानृतं तवभाषितम् ॥३०॥
परं शृणुष्व मद्वाक्यं शत्रुघ्नपदसेवक !। मया धृतो महानश्वो रामचन्द्रस्य धीमतः ॥३१॥
न मोक्ष्ये सर्वथा वाहं शत्रुघ्नादि भयादहम् ।
चेद्रामः स्वयमागत्य दर्शनं दास्यते मम ॥३२॥
तदाहं चरणौ नत्वा दास्यामि सुतसंयुतः । सर्वं राज्यं कुटुम्बं च धनंधान्यं बलं बहु ॥३३॥
क्षत्त्रियामणामयं धर्मः स्वामिनाऽपि विरुद्ध्यते ।
धर्मेण युद्धं तत्रापि रामदर्शनमिच्छता ॥३४॥
शत्रुघ्नादीन्प्रवीरांस्तानधुनाहं क्षणादपि । जित्वा बध्नामि मद्गेहे नोचेद्रामः समाव्रजेत् ॥३५॥

शेष उवाच

इनि श्रुत्वाङ्गदो धीमाञ्जहास नृपतिं तदा। उवाच च महद्वाक्यं महाधैर्यसमन्वितम् ॥३६॥

अङ्गद उवाच

बुद्धिहीनः प्रवदसि बृद्धत्वात्सा गता तव। यत्त्वं शत्रुघ्ननृपतिं धिक्करोषि धिया बली॥३७॥
यो मान्धातृरिपुं दैत्यं लवणं लीलयाऽवधीत् ।
येनानेके जिताः सङ्ख्ये वैरिणः प्रबलोद्धताः ॥३८॥

कुछ सेवकों ने मेरे अश्व को आकर पकड़ लिया है । हे राजन् ! अज्ञानवशात् उन सबों ने यह महा अन्याय किया है ॥२६॥ तो आप अपने पुत्रों तथा राज्य के साथ प्रसन्नता पूर्वक शत्रुघ्नजी के चरणों पर गिरकर अश्व को समर्पित कर दें ॥२७॥ अन्यथा शत्रुघ्नजी के द्वारा छोड़े गये बाणों से क्षतविक्षत शरीर वाले और शिर से हीन होकर आपको पृथिवी पर सोना होगा ॥२८॥ जिन्होंने आसानी से लङ्कापति का क्षण भर में नाश कर दिया उन श्रीरामजी के अश्व का हरण करके आप कहाँ जायेंगे ?॥२९॥ **शेषजी ने कहा—** इस तरह से कहने वाले अङ्गद से राजा ने कहा— तुम सारी बातें सत्य कह रहे हो; कुछ भी मिथ्या नहीं कह रहे हो ॥३०॥ किन्तु हे शत्रुघ्न के चरणों के सेवक ! तुम मेरी बात सुनो, मैंने बुद्धिमान श्रीरामचन्द्रजी के अश्व को पकड़ा है ॥३१॥ मैं शत्रुघ्न आदि के भय से अश्व को नहीं छोडूंगा । यदि स्वयं रामजी आकर मुझे दर्शन दें ॥३२॥ तब मैं उनके चरणों में प्रणाम करके अपने पुत्र के साथ उसे प्रदान करूँगा । सारा राज्य, कुटुम्ब, धन-धान्य तथा बहुत अधिक सेना प्रदान करूँगा ॥३३॥ उसमें श्रीराम के दर्शन की इच्छा से धर्म पूर्वक युद्ध स्वामी के साथ करना विरुद्ध नहीं है॥३४॥ यदि राम नहीं आते हैं तो मैं शत्रुघ्न आदि वीरों को भी जीतकर क्षणभर में अपने घर में बाँध देता हूँ॥३५॥ **शेषजी ने कहा—** राजा की इस बात को सुनकर अङ्गद जोर से हँसे और अत्यन्त धैर्य पूर्वक कहे॥३६॥ **अङ्गद ने कहा—** आप बूढ़े हो गये हैं, आप की बुद्धि समाप्त हो गयी है, इसीलिए शत्रुघ्नजी का इस प्रकार से तिरस्कार कर रहे हैं ॥३७॥ जिन्होंने मान्धाता के शत्रु लवणासुर को आसानी से जीत लिया, जिन्होंने युद्ध में अनेक प्रबल शत्रुओं को जीत लिया ॥३८॥ और जिन्होंने कामग विमान में स्थित विद्युन्माली

विद्युन्माली हतो येन राक्षसः कामगे स्थितः ।
त्वं तं बध्नासि वीरेन्द्रं मतिहीनः प्रभासि मे ॥३९॥
भ्रातृजो यस्य सुबली पुष्कलः परमास्त्रवित् ।
येन रुद्रगणः सङ्ख्ये वीरभद्रः सुतोषितः ॥४०॥
वर्णयामि किमेतस्य पराक्रान्ति बलोर्जिताम् ।
येन नास्ति समः पृथ्व्यां बलेन यशसा श्रिया ॥४१॥
हनूमानस्य निकटे रघुनाथपदाब्जधीः। यस्यानेकानि कर्माणि भविष्यन्ति श्रुतानि ते ॥४२॥
सत्रिकूटा राक्षसपूर्दग्धा येन क्षणाद्बलात् । अक्षो येन हतः पुत्रो राक्षसेन्द्रस्य दुर्मतेः॥४३॥
द्रोणो नाम गिरिर्येन पुच्छाग्रेण सदैवतः । आनीतो जीवानार्थं तु सैनिकानां मुहुर्मुहुः ॥४४॥
जानाति रामश्चारित्रं नान्यो जानाति मूढधीः। यं कपीन्द्रं मानवस्वान्तान्न विस्मरति सेवकम्॥४५॥
सुग्रीवाद्याः कपीन्द्रा ये पृथ्वीं सर्वां ग्रसन्ति ये ।
ते शत्रुघ्नं नृपं सर्वे सेवन्ते प्रेक्षणोत्सुकाः ॥४६॥
कुशध्वजो नीलरत्नो रिपुतापो महास्त्रवित् । प्रतापाग्र्यः सुबाहुश्च विमलः सुमदस्तथा ॥४७॥
राजा वीरमणिः सत्ययुतो रामस्य सेवकः। एतेऽन्येपि नृपा भूमेःपतयः पर्युपासते ॥४८॥
तत्र त्वं वीरजलधौ मशकः कोभवानिति । तज्ज्ञात्वा गच्छ शत्रुघ्नं कृपालुं पुत्रकैर्वृतः॥४९॥
वाहं समर्प्य गन्तासि रामं राजीवलोचनम् । दृष्ट्वा कृतार्थी कुरुषे स्वाङ्गानि जनुषा सह ॥५०॥

शेष उवाच

राजा प्रोवाच तं दूतं प्रब्रुवन्तमनेकधा । एतान्दर्शयसि क्षिप्रं सर्वे न मम गोचराः॥५१॥

नामक दैत्य को मारा; हे वीर ! उनको तुम बाँधने की बात कहते हो, लगता है तुम बुद्धिहीन हो ॥३९॥ जिनके भाई के पुत्र पुष्कल परमास्त्र के ज्ञाता हैं, जिन्होंने युद्ध में रुद्र के गण वीरभद्र को सन्तुष्ट कर दिया ॥४०॥ मैं इनके बल से परिपूर्ण पराक्रम का क्या वर्णन करूँ ? पृथिवी में उनके समान कोई बलवान और यशस्वी नहीं है ॥४१॥ श्रीरामभक्त हनुमानजी उनके निकट में विद्यमान रहते हैं । आपने हनुमानजी के अनेक कर्मों को सुना होगा ॥४२॥ जिन्होंने त्रिकूट पर्वत के साथ लङ्का को क्षण भर में जला दिया । मूर्ख राक्षसपति रावण के पुत्र अक्षयकुमार को मार दिया ॥४३॥ सैनिकों को जीवित करने के लिए जिन्होंने अपनी पूछ पर देवताओं के साथ द्रोण पर्वत को उठाकर बार-बार लाया है ॥४४॥ वे श्रीराम के जिस चरित्र को जानते हैं, उसे कोई दूसरा नहीं जानता है । उन अपने सेवक कपीन्द्र को श्रीरामजी कभी अपने अन्तःकरण से नहीं भूलते हैं ॥४५॥ सुग्रीव आदि कपीन्द्र जो सम्पूर्ण पृथिवी को निगल जाने में समर्थ हैं वे सबके सब श्रीशत्रुघ्नजी को देखने के लिए उत्सुक रहकर उनकी सेवा करते हैं ॥४६॥ कुशध्वज, नीलरत्न, महास्त्रवेत्ता रिपुताप, प्रतापाग्र्य, सुबाहु, विमल, सुमद, राजा वीरमणि ये सब-के-सब रामजी के सेवक हैं । ये सबके सब तथा पृथिवी के दूसरे राजा भी उनकी उपासना करते हैं ॥४७-४८॥ उन वीरों के सागर में आप कौन हैं ? आप तो मशक के समान हैं । इन सारी बातों को जानकर आप अपने पुत्रों के साथ दयालु शत्रुघ्नजी की शरण में जायँ ॥४९॥ अश्व को समर्पित करके आप राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजी के पास जायँ । उनका दर्शन करके आप अपने शरीर और जन्म को पवित्र बना लें ॥५०॥ **शेषजी ने कहा**— अनेक प्रकार से बोलने वाले उस दूत से राजा ने कहा— इन सबों को तुम दिखाना इन सबों को मैं

यादृशं मद्बलं दूत ! तादृशं न हनूमतः। यो रामं पृष्ठतः कृत्वा प्रागाद्यागस्य पालने॥५२॥
यद्यहं मनसा वाचा कर्मणा कुतुकान्वितः। भजामि रामं तर्ह्याशु दर्शयिष्यति स्वां तनुम् ॥५३॥
अन्यथा हनुमन्मुख्या वीरा बध्नन्तु मां बलात् ।
गृह्णन्तु वाहं तरसा रामभक्तिसमन्विताः ॥५४॥
गच्छ त्वं नृपशत्रुघ्नं कथयस्व ममोदितम् । सज्जीभवन्तु सुभटा एष यामि रणे बली ॥५५॥
स विचार्य यथा युक्तं करिष्यति रणाङ्गणे। मोचयन्तु महावाहं न वा मामाददन्तु ते॥५६॥

शेष उवाच

इति श्रुत्वा स्मितं कृत्वा ययौ वीरो यतो नृपः ।
गत्वा निवेदयामास यथोक्तं सुरथेन वै ॥५७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
अङ्गदस्य दौत्यवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

* * *

एकावनवाँ अध्याय

शेष उवाच

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्य सुरथस्याङ्गदाननात् । सज्जीभूता रणे सर्वे रथस्था रणकोविदाः ॥१॥
पटहानां निनादोऽभूद्भेरीनादस्तथैव च । वीराणां गर्जनानादाः प्रादुर्भूता रणाङ्गणे॥२॥

नहीं जानता हूँ ॥५१॥ हे दूत ! मेरा जैसा बल है, वैसा बल हनुमान का नहीं हैं । वे तो रामजी को छोड़कर यज्ञ की रक्षा करने गये ॥५२॥ यदि मैं उत्कण्ठा पूर्वक मन, कर्म तथा वाणी से श्रीरामजी का भजन करता हूँ तो वे शीघ्र ही मुझको दर्शन देंगे ॥५३॥ अन्यथा रामभक्त हनुमान आदि वीर मुझको बल पूर्वक बाँधकर बलपूर्वक अश्व को ले जायँ ॥५४॥ तुम शत्रुघ्न के पास जाओ और मेरी बात उनको सुना दो । मैं शीघ्र ही युद्ध में आ रहा हूँ, उनके वीर तैयार रहें ॥५५॥ वे विचार करके जो उचित हो वह युद्ध में करे । वे अश्व को छुड़ा लें मुझको दे नहीं ॥५६॥ **शेषजी ने कहा**— इस बात को सुनकर मुस्कुराते हुए वीर अङ्गद शत्रुघ्नजी के पास चले गये और सुरथ की सारी बातों को उन्होंने सुना दिया ॥५७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में अङ्गद के दौत्य कर्म का वर्णन नामक पचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५०॥

* * *

राजकुमार चम्पक के साथ पुष्कल का युद्ध

शेषजी ने कहा— अङ्गद के मुख से सुरथ की बातों को सुनकर सभी युद्ध के ज्ञाता वीर रथ पर बैठकर युद्ध करने के लिए तैयार हो गये ॥१॥ उस समय पटह तथा भेरी की ध्वनि होने लगी । युद्ध स्थल में वीरों

रथचीत्कारशब्देन गजानां बृंहितेन च । व्याप्तं तत्सकलं विश्वं दिवं यातो महारवः ॥३॥
रणोत्साहेन संयुक्ता वीरा रणविशारदाः । कुर्वन्ति विविधान्नादान्कातरस्य भयङ्करान् ॥४॥
एवं कोलाहले वृत्ते सुरथो नाम भूमिपः । स्वसुतैः सैनिकैश्चाथ वृतः प्रायाद्रणाङ्गणे ॥५॥
गजैरथैर्हयैः पत्तिव्रजैः पूर्णां तु मेदिनीम् । कुर्वन्समुद्र इव तां प्लावयन्ददृशे भटैः ॥६॥
शङ्खनादेन सङ्घुष्टं जयनादैस्तथैव च । वीक्ष्य तं प्रधनोद्युक्तं सुमतिं प्राह भूमिपः ॥७॥

शत्रुघ्न उवाच

एष राजा समायातो महासैन्यपरीवृतः । अत्र यत्कृत्यमस्माकं तद्वदस्व महामते ! ॥८॥

सुमतिरुवाच

योद्धव्यमत्र बहुभिर्वीरै रणविशारदैः । पुष्कलादिभिरत्युग्रैः सर्वशस्त्रास्त्रकोविदैः ॥९॥
राज्ञा सह समीरस्य पुत्रः परमशौर्यवान् । युद्धं करोतु सुबलः परयुद्धविशारदः ॥१०॥

शेष उवाच

इति ब्रूते महामात्ये यावत्तावन्नृपात्मजाः । रणाङ्गणे धनूष्यद्धा स्फारयामासुरुद्धताः ॥११॥
तान्वीक्ष्य योधाः सुबलाः पुष्कलाद्या रणोत्कटाः ।
अभिजग्मुः स्यन्दनैः स्वैर्धनुर्बाणकरा मताः ॥१२॥
चम्पकेन महाबीरः पुष्कलः परमास्त्रवित् । द्वैरथेनैव युयुधे महावीरेण शालिना ॥१३॥
मोहकं योधयामास जानकिः सकुशध्वजः । रिपुञ्जयेनविमलो दुर्वारेण सुबाहुकः ॥१४॥
प्रतापिना प्रतापाग्र्यो बलमोदेन चाङ्गदः । हर्यक्षेण नीलरत्नः सहदेवेन सत्यवान् ॥१५॥
राजा वीरमणिर्भूरिदेवेन युयुधे बली । असुतापेन चोग्राश्वो युयुधे बलसंयुतः ॥१६॥

के गरजने की ध्वनि सुनायी पड़ने लगी ॥२॥ रथों की ध्वनि को हाथियों की ध्वनि और बढ़ा रही थी । उससे सारा विश्व व्याप्त हो गया और वह ध्वनि स्वर्ग तक पहुँच गयी ॥३॥ युद्ध वीर युद्ध के उत्साह से भर गये । वे कायरों को भयभीत करने वाले अनेक प्रकार की गर्जना कर रहे थे ॥४॥ इसतरह से कोलाहल होने पर सुरथ नामक राजा अपने पुत्रों तथा सैनिकों के साथ युद्धस्थल में गये । हाथी, घोड़े, पैदल सैनिक समूह से पृथिवी उसी तरह भर गयी जैसे समुद्र पृथिवी को ढँक लेता है ॥५-६॥ युद्धस्थल शङ्ख की ध्वनि तथा जय-जयकार की ध्वनि से भर गया । युद्ध की तैयारी को देखकर शत्रुघ्नजी ने सुमति से कहा ॥७॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा**— विशाल सेना के साथ राजा आ गया है । हे महामते ! अब हमलोगों को क्या करना चाहिए बतलायें ?॥८॥ **सुमति ने कहा**— अनेक युद्ध निपुण वीरों को युद्ध करना चाहिए । सभी शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता पुष्कल आदि अत्यन्त उग्र वीर हैं ॥९॥ राजा के साथ परमशौर्य सम्पन्न हनुमानजी युद्ध करें । वे बलवान् तथा शत्रु के साथ युद्ध करने में निपुण हैं॥१०॥ **शेषजी ने कहा**— इस तरह से महामात्य सुमति जब तक कह रहे थे तब तक राजा के पुत्र युद्धस्थल में अपने धनुष का टङ्कार कर रहे थे ॥११॥ उन सबों को देखकर बल सम्पन्न पुष्कल आदि योद्धा अपने हाथ में धनुष बाण धारण करके रथों पर चढ़कर वहाँ गये ॥१२॥ महाधैर्यशाली चम्पक के साथ परमास्त्रवेत्ता पुष्कल द्वैरथ के द्वारा युद्ध करने लगे ॥१३॥ कुशध्वज के साथ जनकजी के पुत्र मोहक के साथ युद्ध करने लगे । रिपुञ्जय के साथ विमल और दुर्वार के साथ सुबाहु युद्ध करने लगे ॥१४॥ प्रतापी के साथ प्रतापाग्रय और बलमोद के साथ अङ्गद युद्ध करने लगे । हर्यक्ष के साथ नीलरत्न और सहदेव के साथ सत्यवान् युद्ध करने

द्वैरथं तु महद्युद्धमकुर्वन्युद्धकोविदा: । सर्वे शस्त्रास्त्रकुशला: सर्वे युद्धविशारदा: ॥१७॥
एवं प्रवृत्ते सङ्ग्रामे सुरथस्य सुतैस्तदा । अत्यन्तं कदनं तत्र बभूव मुनिसत्तम ! ॥१८॥
पुष्कलश्चम्पकं प्राह किन्नामासि नृपात्मज ! ।
धन्योऽसि यो मया सार्धं रणमभ्मुपेयिवान् ॥१९॥
इदानीं तिष्ठ किं यासि कथन्ते जीवितं भवेत् ।
एहि युद्धं मया सार्धं सर्वशस्त्रासस्त्रकोविद ! ॥२०॥
इत्यभिव्याहृतं तस्य श्रुत्वा राजात्मजो बली ।
जगाद पुष्कलं वीरो मेधगम्भीरया गिरा ॥२१॥

चम्पक उवाच

न नाम्ना न कुलेनेदं युद्धमत्र भविष्यति । तथापि तव वक्ष्येऽहं स्वनाम बलपूर्वकम् ॥२२॥
मम माता राघवेशो मत्पिता राघव:स्मृत: । मम बन्धू रामचन्द्र:स्वजनो मम राघव: ॥२३॥
मन्नाम रामदासश्च सदा रामस्य सेवक: । तारयिष्यति मां युद्धे रामो भक्तकृपाकर: ॥२४॥
लोकानां मतमास्थाय प्रब्रवीमि तवाधुना । सुरथस्य सुतश्चाहं माता वीरमती मम ॥२५॥
मन्नाम यो मधौ सर्वाञ्छोभनान्विदधाति वै । मधुपायं रसावासं त्यजन्ति मधुमोहिता: ॥२६॥
वर्णेन स्वर्णसदृशो मध्ये लिङ्गवपुर्धर: । तदराख्यायाभिधां वीर जानीहि मम मोहिनीम् ॥२७॥
युध्यस्व बाणै: प्रधने न को जेतुं हि मां क्षम: ।
इदानीं दर्शयिष्यामि स्वपराक्रममद्भुतम् ॥२८॥

शेष उवाच

इतिश्रुत्वा महद्वाक्यं पुष्कलो हृदि तोषित: । तं दुर्जयं मन्यमान: शरान्मुञ्चन्रणेऽभवत् ॥२९॥

लगे ॥१५॥ बलवान् राजा वीरमणि भूरिदेव के साथ युद्ध करने लगे । असुताप के साथ अपनी सेना लेकर उग्राश्व युद्ध करने लगे ॥१६॥ ये सभी युद्ध के ज्ञाता द्वैरथ में युद्ध कर रहे थे । सभी शस्त्रास्त्रों में कुशल और युद्ध करने में निपुण थे ॥१७॥ इसतरह से सुरथ के पुत्रों के साथ संग्राम होने लगने पर हे मुनिश्रेष्ठ ! वहाँ बहुत अधिक मार काट हुआ ॥१८॥ पुष्कल ने चप्पक से पूछा कि राजकुमार आपका नाम क्या है ? तुम धन्य हो कि मेरे साथ युद्ध करने आये हो ॥१९॥ अब आप ठहरो आपका जीवन कैसे बचेगा ? आओ सभी शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता मेरे साथ युद्ध करो ॥२०॥ इस तरह की बातें सुनकर बलवान् राजकुमार ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से पुष्कल से कहा ॥२१॥ **चम्पक ने कहा**— यहाँ नाम और वंश से युद्ध नहीं होगा फिर भी मैं बलपूर्वक अपना नाम तुम्हें बतलाता हूँ ॥२२॥ मेरी माता राघवेश हैं और मेरे पिता राघव है । मेरे बन्धु श्रीरामचन्द्र हैं और मेरे स्वजन श्रीराघव हैं ॥२३॥ मेरा नाम राम दास हैं मैं सदैव राम का सेवक हूँ । भक्तों पर कृपा करने वाले राम मुझे युद्ध में विजय प्रदान करेंगे ॥२४॥ लौकिक मतानुसार मैं आपको बतला रहा हूँ । मेरे पिता सुरथ और मेरी माता वीरवती हैं ॥२५॥ मेरा नाम वह है जो वसन्त में सबां को सुन्दर बना देता है । पराग से मदमत भौरे मेरे पराग का पान करके दूसरों रसाश्रयों का परित्याग कर देते हैं ॥२६॥ जिसका वर्ण सुवर्ण के समान होता है और जिसका मध्यभाग लिङ्ग के अकार का होता है । इस तरह की वस्तु का जो नाम है वही मेरा मोहित करने वाला नाम है ॥२७॥ आप बाणों से युद्ध करें मुझे कोई भी युद्ध में नहीं जीत सकता है । अब मैं अपना अद्भुत पराक्रम

शरसङ्घं प्रमुञ्चन्तं कोटिधा पुष्कलं ययौ । चम्पकःकोपसंयुक्तो धनुःसज्यमथाकरोत् ॥३०॥
मुमोच निशिताान्बाणान्वैरिवृन्दविदारणान् । स्वनामचिह्नितान्स्वर्णपुङ्खभागसमन्वितान् ॥३१॥
तांश्चिच्छेद महावीरः पुष्कलः प्रधनाङ्गणे। शरान्धकारं सर्वत्र मुञ्चन्बाणाञ्छिलाशितान्॥३२॥
स्वबाणच्छेदनं दृष्ट्वा कृतं वीरेण चम्पकः। आह्वयामास बलिनं पुष्कलं कोपपूरितः ॥३३॥
मा प्रयाहि रणं त्यक्त्वेति ब्रुवन्समरे पुनः । पुष्कलं हृदये बाणैर्विव्याध दशभिस्त्वरन् ॥३४॥
ते बाणाः पुष्कलस्याहो हृदये तीव्रवेगिनः। आगत्य सुभृशं लग्नाःशोणितं पपुरूर्जितम् ॥३५॥
तैर्बाणैर्व्यथितोवीरःशरान्पञ्च समाददे। सुतीक्ष्णाग्रान्महाकोपाद्भारयन्पर्वतानिव ॥३६॥
ते बाणास्तस्य बाणाश्च परस्परमथोर्जिताः । आकाशे रचिताश्छिन्ना शतधा राजसूनुना ॥३७॥

छित्त्वा बाणान्सुतीक्ष्णाग्रान्सुरथाङ्गोद्भवो बली ।
बाणाञ्छतं समाधत्त पुष्कलं ताडितुं हृदि ॥३८॥

ते बाणाःशतधाच्छिन्नाःपुष्कलेन महात्मना । अपतन्समरोपान्ते शरवेगप्रपीडिताः ॥३९॥
तदा तत्सुमहत्कर्म दृष्ट्वा राज्ञःसुतो बली । सहस्रेण शराणां च ताडयन्वक्षसिम्फुटम्॥४०॥
तानप्याशु प्रचिच्छेद पुष्कलःपरमास्त्रवित् । पुनरप्याशु स्वे चापे समाधत्तायुतं शरान्॥४१॥
तानप्याशु प्रचिच्छेद पुष्कलः परमास्त्रवित् । ततोऽत्यन्तं प्रकुपितः शरवृष्टिमथाकरोत् ॥४२॥
शरवृष्टिं समायान्तीं मत्वा चम्पकवीरहा। साधुसाधु प्रशंसन्तं पुष्कलं समताडयत् ॥४३॥
पुष्कलश्चम्पकं दृष्ट्वा महावीर्यसमन्वितम् । ब्रह्मणोऽस्त्रं समाधत्त स्वे चापे सर्वशस्त्रवित् ॥४४॥

दिखाऊँगा ॥२८॥ **शेषजी ने कहा**— इस तरह से महान् वाक्य को सुनकर पुष्कल हृदय से प्रसन्न हो गये। उसको दुर्जय जान करके वे युद्ध में बाण चलाने लगे ॥२९॥ क्रोध करके चम्पक करोड़ों वाणों को छोड़ते हुए पुष्कल के पास गये । इसके वाद उन्होंने अपना धनुष चढ़ाया ॥३०॥ उन्होंने वैरी समूह को विदीर्ण करने वाले तीक्ष्ण बाणों को चलाया । वे सभी वाण उसके नाम से युक्त तथा सुवर्ण पुङ्ग से युक्त थे ॥३१॥ वीर पुष्कल ने उन सभी बाणों को रणाङ्गण में काट दिया और उन्होंने अत्यन्त तीक्ष्ण वाणों को छोड़कर वाणों से अन्धकार फैला दिया ॥३२॥ अपने वाणों को कटे हुए देखकर चम्पक ने क्रोध करके पुष्कल का आह्वान किया ॥३३॥ चम्पक ने कहा— युद्ध छोड़कर न जाओ । यह कहकर चम्पक ने पुष्कल के हृदय को छेद दिया ॥३४॥ तीव्र वेग वाले वे वाण पुष्कल के हृदय में जाकर लगे और उनके गर्म रक्त को पी लिए ॥३५॥ उन वाणों से व्यथित होकर वीर पुष्कल ने क्रोध करके तीक्ष्ण तथा पर्वत के समान भारी पाँच बाणों को लिया । वे बाण तथा चम्पक के बाण आकाश में ही परस्पर में टकराकर टूट गये ॥३६-३७॥ पुष्कल के वाणों को काटकर बलवान चम्पक ने पुष्कल के हृदय में मारने के लिए सौ बाणों को उठाया ॥३८॥ पुष्कल ने उन वाणों को सैकड़ों टुकड़े कर दिए वाण के वेग से पीड़ित वे वाण युद्धस्थल के किनारे गिर पड़े ॥३९॥ उस समय उस महान कर्म को देखकर वलवान् चम्पक ने हजार बाणों को पुष्कल के हृदय पर चलाया ॥४०॥ परमास्त्र वेत्ता पुष्कल ने उन वाणों को भी काट दिया । उसके बाद चम्पक ने फिर अपने धनुष पर दश हजार वाणों को चढ़ाया ॥४१॥ परमास्त्र वेत्ता पुष्कल ने उन बाणों को भी काट दिया । उसके वाद अत्यन्त कुपित होकर पुष्कल ने वाणों की वर्षा की ॥४२॥ आती हुयी वाण वृष्टि को मानकर वीरों को मारने वाले चम्पक ने साधु-साधु कहकर प्रशंसा करने वाले पुष्कल पर प्रहार किया ॥४३॥ सभी शस्त्रों के वेत्ता पुष्कल ने चम्पक को महापराक्रमी देखकर अपने धनुष पर ब्रह्मास्त्र

तेन मुक्तं महाशस्त्रं प्रजज्वाल दिशोदश । खं रोदसी व्याप्यविश्वं प्रलयं कर्तुमुद्यतम्॥४५॥
चम्पको मुक्तमस्त्रं तद् दृष्ट्वा सर्वास्त्रकोविदः ।
तत्संहर्तु तदेवास्त्रं मुमोच रिपुमुद्यतम् ॥४६॥
द्वयोरेकतमं तेजः प्रलयं मेनिरे जनाः। सञ्जहार तदास्त्रास्त्रमेकीभूतं परास्त्रकम्॥४७॥
तत्कर्म चाद्भुतं दृष्ट्वा पुष्कलस्तिष्ठ तिष्ठ च ।
ब्रुवञ्छरानमोघांस्तु चम्पकं स क्रुधाऽहनत् ॥४८॥
चम्पकस्ताञ्छरान्मुक्तानगणय्य महामनाः। रामास्त्रं प्रमुमोचाथा पुष्कलं प्रति दारुणम्॥४९॥
तन्मुक्तमस्त्रमालोक्य चम्पकेन महात्मना। छेत्तुं यावन्मनश्चक्रे तावद्ग्रस्तः शरेण सः॥५०॥
वद्धश्चम्पकवीरेण रथे स्वे स्थापितःपुनः। पुरं प्रेषयितुं तावन्मनश्चक्रे महामनाः॥५१॥
हाहाकारो महानासीद्वद्धे पुष्कलसंज्ञके। शत्रुघ्नं प्रययुर्योधाः पलायनपरायणाः॥५२॥
भग्नांस्तान्वीक्ष्य शत्रुघ्नो हनूमन्तमुवाच ह। केन वीरेण मे भग्नं बलं वीरैरलङ्कृतम्॥५३॥
तदोवाच महीनाथ ! पुष्कलं परवीरहा। बद्ध्वानयति वीरोऽसौ चम्पकःस्वपदोद्धुरः॥५४॥
तस्येदृग्वाक्यमाकर्ण्य शत्रुघ्नःकोपसंयुतः। उवाच पवनोद्भूतं मोचयाशु नृपात्मजात्॥५५॥
महाबलः सुतश्चास्य बद्ध्वा यः पुष्कलं भटम् ।
तस्मान्मोचय वीराग्र्य ! कथं तिष्ठसि चाहवे ॥५६॥
एतद्वाक्यं समाकर्ण्य हनूमानोमिति ब्रुवन्। जगाम तं मोचयितुं पुष्कलं चम्पकाद्भटात्॥५७॥
हनूमन्तमथालोक्य तं मोचयितुमागतम्। बाणैःशतैश्च साहस्रैर्जघान परकोपनः॥५८॥
वाणांस्तान्स बभञ्जाशु मुक्तांस्तेन महात्मना। पुनरप्येनमेवाशु बाणान्मुञ्चन्महानभूत्॥५९॥

का सन्धान किया ॥४४॥ पुष्कल के द्वारा छोड़े गये महाशस्त्र से दशों दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं । वह आकाश और भूमण्डल के बीच में व्याप्त होकर विश्व का मानो प्रलय कर देना चाहता था ॥४५॥ छोड़े गये अस्त्र को देखकर उसका संहार करने के लिए सर्वशस्त्र वेत्ता पुष्कल ने भी ब्रह्मास्त्र छोड़ा ॥४६॥ दोनों तेजों को एकत्रित होने पर लोगों ने माना कि प्रलय हो गया । पुष्कल ने भी उस एकीभूत अस्त्र का उपसंहार कर लिया ॥४७॥ उसके उस कर्म को देखकर पुष्कल ने कहा ठहरो ठहरो !! और उन्होंने क्रोध करके अमोध बाणों से चम्पक पर प्रहार किया ॥४८॥ उन बाणों की परवाह किए बिना महामना चम्पक ने पुष्कल पर भयङ्कर रामास्त्र से प्रहार किया॥४९॥ महात्मा चम्पक के द्वारा छोड़े गये अस्त्र को देखकर पुष्कल जब तक उसे काटने का मन बनाये तब तक उसने पुष्कल को ग्रस्त कर लिया ॥५०॥ बंधे हुए पुष्कल को चम्पक ने अपने रथ पर रख लिया और अपने नगर में भेजने का मन बनाया ॥५१॥ पुष्कल के बँध जाने पर महान् हाहाकार मचा । भागते हुए सभी योधा शत्रुघ्नजी के पास गये ॥५२॥ भागते हुए उन वीरों को देखकर शत्रुघ्नजी ने हनुमानजी से कहा— वीरों से सुशोभित मेरी सेना को किस वीर ने भगाया ?॥५३॥ **हनुमानजी ने कहा**— राजन् ! पुष्कल को बाँधकर चम्पक अपने नगर में ले जा रहा है ॥५४॥ उन्होंने क्रोध करके हनुमानजी से कहा कि शीघ्र पुष्कल को छुड़ाओं॥५५॥ राजकुमार महाबलवान् है, वह वीर पुष्कल को बाँध लिया है । आप उसे छुड़वायें आप कैसे युद्ध में चुप हैं॥५६॥ हनुमानजी ने कहा ठीक है और वे पुष्कल को चम्पक से छुड़ाने के लिए गये । पुष्कल को छुड़ाने के लिए आये हुए हनुमानजी को देखकर अत्यन्त क्रोधी चम्पक ने सैकड़ों तथा हजारों बाणों से उन्हें मारा ॥५७-५८॥ किन्तु उसके द्वारा छोड़े गये बाणों को हनुमानजी ने शीघ्र तोड़ दिया । चम्पक ने उनको वैसे ही बाणों से मारा॥५९॥ किन्तु वैरी के छोड़े गये सभी बाणों को हनुमानजी ने तोड़ दिया । उन्होंने हाथ में शाल वृक्ष लेकर

तान्सर्वांश्चूर्णयामास नाराचान्वैरिमोचितान्। शालं करे समाधृत्य जघान नृपनन्दनम्॥६०॥
शालं तेन विनिर्मुक्तं तिलशःकृत्तवान्बली। गजो हनूमता मुक्तो नृपनन्दनमस्तके॥६१॥
सोऽप्याहतश्चम्पकेन मृतो भूमौ पपात सः। शिलाः संमोचयामास हनूमान्परमास्त्रवित्॥६२॥
चम्पकस्ताःशिलाः सर्वाः क्षणाच्चूर्णितवान्भृशम्।
बाणयन्त्रिकया ब्रह्मन्महच्चित्रमभूदिदम्॥६३॥
स्वमुक्तास्ताः शिलाः सर्वाश्चूर्णिता वीक्ष्य मारुतिः।
चुकोप हृदयेऽत्यन्तं बहुवीर्यमिति स्मरन्॥६४॥
आगत्य च करे धृत्वा नभस्युत्पतितःकपिः।
तावद्ययौ नेत्रपथादुपरि क्षिप्रवेगवान्॥६५॥
चम्पकस्तं हनूमन्तं युयुधे नभसि स्थितः। वाहुयुद्धेन महता ताडितः कपिपुङ्गवः॥६६॥
चुकोप मानसे वीरो गर्वपर्वतदारुणः। पदा धृत्वा चम्पकं तं ताडयामास भूतले॥६७॥
ताडितोऽसौ कपीन्द्रेण क्षणादुत्थाय वेगवान्।
हनूमन्तं तु लाङ्गूले धृत्वा बभ्राम सर्वतः॥६८॥
कपीन्द्रस्तद्बलं वीक्ष्य हसन्पादेऽग्रहीत्पुनः। भ्रामयित्वा शतगुणं गजोपस्थे ह्यपातयत्॥६९॥
पपात भूमौ सुबलो राजसूनुःस चम्पकः। मूर्छितो वीरभूषाढ्यमलङ्कुर्वन्त्रणाङ्गणम्॥७०॥
तदा हाहेति वै लोकाश्चुक्रुशुश्चम्पकानुगाः। पुष्कलं मोचयामास बद्धं चम्पकपाशतः॥७१॥

इति श्रीपद्मे महापुराणे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
पुष्कलमोचनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५१॥

* * *

चम्पक को मारा ॥६०॥ हनुमानजी द्वारा फेंके गये शाल को चम्पक ने तिल-तिल करके काट दिया। हनुमानजी ने चम्पक के शिर पर हाथी को फेंका ॥६१॥ किन्तु उसे भी चम्पक ने बाणों से मारा और वह मरकर पृथिवी पर गिर पड़ा। परमास्त्र वेत्ता हनुमानजी ने उसके ऊपर शिला फेंका चम्पक ने उन शिलाओं को क्षणभर में चूर-चूर कर दिया। हे ब्रह्मन! यह अत्यन्त अद्भुत कार्य था ॥६२-६३॥ फेंकी गयी सभी शिलाओं को चूर्णित देखकर हनुमानजी अपने पराक्रम का स्मरण करते हुए अत्यन्त कुपित हुए ॥६४॥ वे आकर चम्पक का हाथ पकड़कर अत्यन्त वेग से इतना ऊपर चले गये वे आँखों से भी नहीं दिखते थे ॥६५॥ चम्पक आकाश में ही स्थित होकर हनुमानजी से वाहु युद्ध किए और उन्होंने हनुमानजी पर बहुत प्रहार किया ॥६६॥ गर्व रूपी पर्वत को धारण करने वाले हनुमानजी क्रुद्ध हो गये। उन्होंने चम्पक का पैर पकड़ कर उसे पृथिवी पर पटक दिया ॥६७॥ हनुमानजी से पटके जाने पर क्षणभर में उठकर चम्पक हनुमानजी की पूंछ पकड़ कर उन्हें चारों ओर घुमाया ॥६८॥ हनुमानजी उसके वल को देखकर उसके पैर पकड़कर सौ वार घुमाये और हाथी के पिछले भाग पर पटक दिये॥६९॥ उसके कारण राजकुमार चम्पक पृथिवी पर गिरकर मूर्छित हो गये और युद्धस्थल को सुशोभित किए ॥७०॥ उस समय चम्पक के अनुयायी हाहाकार मचाने लगे और हनुमानजी ने चम्पक पाश में बंधे पुष्कल को मुक्त कर दिया ॥७१॥

इसतरह श्रीपद्यमहापुराण के पाँचवे पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में पुशकलमोचन वर्णन नामक एकावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ।।५१।।

* * *

बावनवाँ अध्याय

शेष उवाच

चम्पकं पतितं दृष्ट्वा सुरथःक्षत्रियो बली। पुत्रदुःखपरीताङ्गो जगाम स्यन्दने स्थितः ॥१॥
कपीन्द्रमाजुहावाथ सुरथःकोपसंयुतः। निःश्वासांश्चबहून्मुञ्चन्महाबलसमन्वितः ॥२॥
आह्वयन्तं नृपं दृष्ट्वा निजं वीरःकपीश्वरः। जगाम तं महावीरो महावेगसमन्वितः ॥३॥
तमागतं हनूमन्तं तृणीकुर्वन्तमुद्भटान्। उवाच सुरथो राजा मेघगम्भीरसुस्वरः ॥४॥

सुरथ उवाच

धन्योऽसि कपिवर्य ! त्वं महाबलपराक्रमः ।
येन राममहत्कृत्यं कृतं राक्षसके पुरे ॥५॥
त्वं रामचरणस्यासि सेवको भक्तिसंयुतः। त्वया वीरेण मत्पुत्रःपातितश्चम्पको बली ॥६॥
इदानीं त्वां तु सम्बध्य गन्तास्मि नगरे मम ।
यत्नात्तिष्ठ कपीशेश ! सत्यमुक्तं मया स्मृतम् ॥७॥
इति भाषितमाकर्ण्य सुरथस्य कपीश्वरः। उवाच धीरया वाण्या रणे वीरैकभूषिते॥८॥

हनूमानुवाच

त्वं रामचरणस्मारी वयं रामस्य सेवकाः। बध्नासि चेन्मां प्रसभं मोचयिष्यति मत्प्रभुः॥९॥
कुरु वीर ! भवत्स्वान्तस्थितं सत्यं प्रतिश्रुतम् ।
रामं स्मरन्वै दुःखान्तं याति वेदा वदन्त्यदः ॥१०॥

शेष उवाच

इति ब्रुवान्तं सुरथःप्रशस्य पवनात्मजम्। विव्याध बाणैर्बहुभिःशितैःशाणेन दारुणैः ॥११॥

सुरथ तथा हुनमानजी का भयङ्कर युद्ध

शेषजी ने कहा— चम्पक को गिरे हुए देखकर सुरथ नामक बलवान् क्षत्रिय; पुत्र के दुःख से दुःखी होकर रथ पर चढ़कर युद्ध में गये ॥१॥ क्रुद्ध होकर सुरथ ने हनुमान्‌जी को युद्ध करने के लिए ललकारा। उस समय राजा सुरथ बहुत लम्बी श्वास ले रहे थे ॥२॥ आखें लाल किए हुए राजा को देखकर वीर हनुमानजी महावेग पूर्वक युद्ध करने के लिए गये ॥३॥ आये हुए हनुमानजी की परवाह किए बिना राजा ने मेघ के समान गम्भीर वाणी में कहा ॥४॥ **सुरथ ने कहा**— हे महाबल और पराक्रम से युक्त हनुमन् ! आप धन्य हैं। आपने रावण की नगरी में श्रीरामजी का बहुत बड़ा काम किया है ॥५॥ आप श्रीरामजी की भक्ति से सम्पन्न उनके चरण सेवक हैं। आपने मेरे पुत्र चम्पक को गिरा दिया है ॥६॥ अब मैं आपको बाँधकर अपने नगर में ले जाऊँगा। अतएव वानरेश युद्ध करो। मैंने यह सत्य कहा है। यह याद रखना ॥७॥ सुरथ की बातों को सुनकर कपीश्वर ने वीरोचित धीर वाणी से कहा ॥८॥ **हनुमानजी ने कहा**— तुम राम के चरणों का स्मरण करने वाले हो और मैं राम का सेवक हूँ। यदि मुझे बल पूर्वक बाँध लोगे तो हमारे स्वामी हमें छुडायेंगे ॥९॥ वीर तुम अपने अन्तःकरण की प्रतिज्ञा पूरी करो। वेद बतलाते हैं कि श्रीराम का स्मरण करने वाले के दुःख विनष्ट हो जाते हैं ॥१०॥ **शेषजी ने कहा**— इस तरह से कहने वाले हनुमानजी की राजा सुरथ ने प्रशंसा की। उसके बाद उन्होंने शाण पर

तान्मुक्तानगणय्याथ बाणाच्छोणितपातिनः । करे जग्राह कोदण्डं सज्यं शरसमन्वितम् ॥१२॥
गृहीत्वा करयोश्चापं बभञ्ज कुपितःकपिः । चीत्कुर्वँस्त्रासयन्वीरान्नखैर्दीर्णान्सृजन्भटान् ॥१३॥
तेन भग्नं धनुर्दृष्ट्वा स्वकीयं गुणसंयुतम्। अपरं धनुरादत्त महद्गुणाविशोभितम्॥१४॥
तच्चापि जगृहे रोषात्कपिश्चापं बभञ्ज तत्। अन्यच्चापं समादत्त तद् बभञ्ज महाबलः ॥१५॥
तस्मिंश्चापे प्रभग्नेऽपि सोऽन्यद्धनुरुपाददे । सोऽपि चापं बभञ्जाशु महावेगसमन्वितः ॥१६॥
एवं राज्ञस्तु चापानामशीतिर्विदलीकृता । क्षणे क्षणे महारोषात्कुर्वन्नादाननेकधा ॥१७॥
तदाऽत्यन्तं प्रकुपितःशक्तिमुग्रामथाददे । शक्त्या स ताडितो वीरःपपात क्षणमुत्सुकः ॥१८॥
उत्थाय स्यन्दनं राज्ञो जग्राह कुपितोभृशम्। उड्डीनस्तं गृहीत्वा तु समुद्रमतिवेगतः ॥१९॥
तमुड्डीनं समालक्ष्य सुरथःपरवीरहा। ताडयामास परिघैर्हृदि मारुतिमुद्यतम्॥२०॥
मुक्तस्तेन रथो दूराच्चूर्णीभूतोऽभवत्क्षणात्। सोऽन्यं रथं समारुह्य ययौ वेगात्समीरजम् ॥२१॥
हनूमांस्तद्रथं पुच्छे संवेष्टय प्रधनाङ्गणे। हयसारथिसंयुक्तं बभञ्ज सपताकिनम् ॥२२॥
अन्यंरथं समास्थाय ययौ राजा महाबलः । बभञ्ज तं रथं वेगन्मारुतिःकुपिताङ्गकः ॥२३॥
भग्नं तं स्यन्दनं वीक्ष्य सुरथोऽन्यं समाश्रितः ।
भग्नःस तेन सहसा हयसारथिसंयुतः ॥२४॥
एवमेकोनपञ्चाशद्रथा भग्ना हनूमता। तत्कर्मवीक्ष्य राजाऽपि स्मयं प्राप ससैनिकः ॥२५॥
कुपितःप्राहकीशेन्द्रं धन्योऽसि पवनात्मज्ञ! । पराक्रमन्त्रिदंकर्म न कर्ता न करिष्यति ॥२६॥

चढ़ाकर तीक्ष्ण किए गये अनेक वारुण वाणों से हनुमानजी को वेध दिया ॥११॥ छोड़े गये तथा खून बहाने वाले उन वाणों की परवाह न करके हनुमानजी ने राजा के बाण से युक्त धनुष को हाथ से पकड़ लिया ॥१२॥ क्रुद्ध होकर हनुमानजी ने उस धनुष को हाथ से पकड़कर तोड़ दिया । राजा ने महान् प्रत्यञ्चा से सुशोभित दूसरे धनुष को ले लिया ॥१३-१४॥ उसको भी श्रीहनुमानजी ने पकड़कर तोड़ दिया । राजा ने तीसरा धनुष लिया और हनुमानजी ने उसको भी तोड़ दिया ॥१५॥ उस धनुष के टूट जाने पर भी राजा ने दूसरा धनुष ले लिया और महावेग सम्पन्न हनुमानजी ने उसको भी तोड़ दिया ॥१६॥ इस तरह से क्षण-क्षण में क्रोध पूर्वक अनेक प्रकार की गर्जना करने वाले राजा के अस्सी धनुषों को हनुमानजी ने तोड़ दिया ॥१७॥ उसके बाद अत्यन्त कुपित होकर राजा ने अपने हाथ में शक्ति ले लिया और शक्ति से प्रताड़ित हनुमानजी गिर पड़े । किन्तु क्षणभर में उत्सुक होकर हनुमानजी ने राजा के रथ को ही पकड़ लिया और अत्यन्त वेग पूर्वक उस रथ को लेकर समुद्र की ओर उड़े ॥१८-१९॥ उड़ते हुए हनुमानजी को देखकर राजा ने हनुमानजी के हृदय में परिघों से प्रहार किया ॥२०॥ हनुमानजी से छूटा हुआ रथ क्षणभर में चूर-चूर हो गया । राजा दूसरे रथ पर चढ़कर वेगपूर्वक हनुमानजी के पास आये ॥२१॥ हनुमानजी ने उस रथ को युद्धस्थल में अपनी पूंछ में लपेट लिया और उस रथ को अश्व सारथि तथा पताका के साथ विनष्ट कर दिया ॥२२॥ महावलवान् राजा दूसरे रथ पर वैठकर युद्ध करने गये; किन्तु क्रुद्ध हनुमानजी ने उस रथ को भी तोड़ दिया ॥२३॥ उस रथ को टूटा हुआ देखकर सुरथ दूसरे रथ पर वैठे; किन्तु उसको भी हनुमानजी ने अचानक सारथि और अश्वों के साथ विनष्ट कर दिया ॥२४॥ इस तरह से हनुमानजी ने उनचास रथों को तोड़ दिया । हनुमानजी के इस कर्म को देखकर राजा भी आश्चर्यित हो गये ॥२५॥ राजा ने क्रोध पूर्वक कहा— हनुमान आप धन्य हैं । तुम्हारे समान न तो किसी ने पराक्रम दिखाया और न दिखायेगा॥२६॥

क्षणमेकं प्रतीक्षस्व यावत्सज्यं धनुस्त्वहम् । करोमि पवनोद्भूत ! रामपादाब्जषट्पद ! ॥२७॥
इत्युक्त्वा चापमात्तज्यं कृत्वा रोषपरिप्लुतः। अस्त्रं पाशुपतं नाम संदधे शरउल्बणे ॥२८॥
ततो भूताश्च वेतालाः पिशाचा योगिनीमुखाः ।
प्रादुर्बभूवुः सहसा भीषयन्तः समीरजम् ॥२९॥
कपिःपाशुपतैरस्त्रैर्बद्धोलोकैरभीक्षितः । हाहेति च वदन्त्येते यावत्तावत्समीरजः ॥३०॥
स्मृत्वा रामं स्वमनसा त्रोटयामास तत्क्षणात् ।
स मुक्तगात्रः सहसा युयुधे सुरथं नृपम् ॥३१॥
तं मुक्तगात्रं संवीक्ष्य सुरथःपरमास्त्रवित् । महाबलं मन्यमानो ब्राह्ममस्त्रं समाददे ॥३२॥
मारुतिब्रह्मास्त्रं तु निजगाल हसन्बली । तन्निगीर्णं नृपो दृष्ट्वा रामं सस्मारभूमिपः ॥३३॥
स्मृत्वा दाशरथिं रामं रामास्त्रं स्वशरासने । सन्धाय तं जगादेदं बद्धोऽसि कपिपुङ्गव ॥३४॥
श्रुत्वा तत्प्रकमेद्यावत्तावद्बद्धो रणाङ्गणे । राज्ञा रामास्त्रतो वीरो हनूमान्रामसेवकः ॥३५॥
उवाच भूपं हनुमान्किं करोमि महीपते ! । मत्स्वाम्यस्त्रेण सम्बद्धो नान्येन प्राकृतेन वै ॥३६॥
तन्मानायामि भूपाल ! नयस्व स्वपुरं प्रति। मोचयिष्यति मत्स्वामी आगत्य स दयानिधिः ॥३७॥
बद्धे समीरजे क्रुद्धः पुष्कलो भूमिपं ययौ। तं पुष्कलं समायातं विव्याध बहुभिःशरैः ॥३८॥
अनेकबाणसाहस्त्रैर्निजघान नृपं बली । राज्ञानेके शरास्तस्या च्छिन्नाःप्रधनमण्डले॥३९॥
एवं समरसङ्क्रुद्धे सुरथे पुष्कले तथा । बाणैर्व्याप्तं जगत्सर्वं स्थास्नुभूयश्चरिष्णु च ॥४०॥
तेषां रणोद्यमं वीक्ष्य मुमुहः सुरसैनिकाः। मानवानां तु का वार्ता क्षणात्त्रासं समीयुषाम्॥४१॥
अस्त्रप्रत्यस्त्रविगमैर्महामन्त्रपरिष्टुतैः । बभूव तुमुलं युद्धं वीराणां रोमहर्षणम् ॥४२॥

जब तक मैं धनुष चढ़ाता हूँ तब तक प्रतीक्षा करो । हे राम के चरणों के भ्रमर के समान प्रेमी ! ॥२७॥ इस तरह से कहकर तथा धनुष चढ़ाकर अत्यन्त उग्र पाशुपतास्त्र का राजा ने संधान किया ॥२८॥ उस समय हनुमानजी को डराने के लिए भूत, वेताल, पिशाच योगिनियाँ आदि उत्पन्न हो गयीं ॥२९॥ पाशुपतास्त्र के प्रकाश मे दिखने वाले ये सब जब तक हाय-हाय बोल रहे थे उसी समय हनुमानजी ने श्रीरामजी का स्मरण करके पाशुपतास्त्र को पकड़कर तोड़ दिया । शरीर के मुक्त हो जाने से हनुमानजी राजा के साथ युद्ध करने लगे ॥३०-३१॥ परमास्त्र वेत्ता राजा ने हनुमानजी को मुक्त मान ब्रह्मास्त्र का संधान किया ॥३२॥ बलवान् हनुमानजी हँसते हुए ब्रह्मास्त्र को निगल गये । ब्रह्मास्त्र को निगीर्ण देखकर राजा ने श्रीरामजी का स्मरण किया ॥३३॥ दाशरथि श्रीरामजी का स्मरण करके राजा ने अपने धनुष पर रामास्त्र का सन्धान किया और हनुमानजी से राजा ने कहा अब तुम बन्ध गये ॥३४॥ उसको सुनकर पराक्रम प्रदर्शन से पहले ही हनुमानजी उस अस्त्र में बंध गये । राजा ने रामास्त्र से हनुमानजी को बाँध दिया ॥३५॥ हनुमानजी ने कहा राजन् ! मैं क्या करूँ अपने स्वामी के अस्त्र सें बँधा हूँ किसी दूसरे प्राकृत अस्त्र से नहीं ॥३६॥ राजन् ! मैं उसका सम्मान करता हूँ अब अपने नगर में मुझे ले चलो । दया सागर मेरे स्वामी आकर मुझे इससे छुड़ायेंगे ॥३७॥ हनुमानजी के बंध जाने पर क्रोध करके पुष्कल राजा से युद्ध करने गये । राजा ने आये हुए पुष्कल को अनेक बाणों से छेद दिया ॥३८॥ बलवान पुष्कल ने भी राजा को अनेक हजार बाणों से मारा । युद्ध मण्डल में राजा ने पुष्कल के अनेक बाणों को काट दिया॥३९॥ इस तरह युद्ध में सुरथ और पुष्कल के क्रुद्ध हो जाने पर संसार के सम्पूर्ण चराचर पदार्थ बाणों से व्याप्त हो गये ॥४०॥

तदा प्रकुपितो राजा नाराचं तु समाददे। छिन्नः स तु क्रुधामुक्तैर्वत्सदन्तैः स भारते: ॥४३॥
छिन्ने तस्मिञ्छरे राजा कोपादन्यं समाददे । छिनत्ति यावत्स शरं तावल्लग्नो हृदि क्षतः ॥४४॥
मूर्च्छा प्राप महातेजाः पुष्कलो महदद्भुतम्। युद्धं विधाय सुमहद्राज्ञा सह महामतिः ॥४५॥
पुष्कले पतिते राज्ञा शत्रुघ्नः शत्रुतापनः । सुरथं प्रति सङ्क्रुद्धो जगाम स्यन्दनस्थितः ॥४६॥
उवाच सुरथं भूपं रामभ्राता महाबलः। त्वया महत्कृतं कर्म यद्बद्धः पवनात्मजः ॥४७॥
पुष्कलोऽपि महावीरस्तथान्ये मम सैनिकाः। पातिताः प्रधने घोरे महाबलपराक्रमाः ॥४८॥
इदानीं तिष्ठ मद्वीरान्तापयित्वा रणाङ्गणे । कुत्र यास्यासि भूमीश ! सहस्व मम सायकान्॥४९॥
इत्थामाश्रुत्य वीरस्य भाषितं सुरथो बली । जगाद रामपादाब्जं दधच्चेतसि शोभनम्॥५०॥
मया ते पातिताःसङ्ख्ये वीरा मारुतजोन्मुखाः ।
इदानीं पातयिष्यामि त्वामपि प्रधनाङ्गणे ॥५१॥
स्मरस्व रामं यो वीरस्त्वामागत्य प्ररक्षति । अन्यथा जीवितं नास्ति मत्पुरः शत्रुतापन !॥५२॥
इत्युक्त्वा बाणसाहस्रैस्तं जघान महीपतिः । शत्रुघ्नं शरसङ्घातपञ्जरे न्यदधात्परम्॥५३॥
शत्रुघ्नः शरसङ्घातं मुञ्चन्तं वह्निदैवतम् । अस्त्रं मुमोच दाहार्थं शराणां नतपर्वणाम्॥५४॥
तदस्त्रं मुक्तमालोक्य राजा वै सुरथो महान् ।
वारुणास्त्रेण शमयन्विव्याध शरकोटिभिः ॥५५॥
तदा तद्योगिनीदत्तमस्त्रं धनुषि सन्दधे। मोहनं सर्ववीराणां निद्राप्रापकमद्भुतम्॥५६॥
तन्मोहनामहास्त्रं स वीक्ष्य राजा हरिं स्मरन् ।
जगाद शत्रुघ्नमयं सर्वशस्त्रास्त्रकोविदः ॥५७॥

उन सवों के युद्ध में प्रयास को देखकर देव सैनिक भी आश्चर्यित हो गये तथा क्षणभर में भयभीत हो जाने वाले मनुष्यों की कौन सी बात है ?॥४१॥ महामन्त्रों से संपुटित अस्त्रों और प्रत्यस्त्रों को छोड़ने से वीरों को रोमाञ्चित कर देने वाला भयङ्कर युद्ध हुआ ॥४२॥ तब क्रुद्ध होकर राजा ने नाराच का प्रयोग किया तो उसे पुष्कल ने वत्सदन्त वाणों से काट दिया ॥४३॥ उस वाण के कट जाने पर राजा ने दूसरे नाराच का सन्धान किया जव तक उस वाण को वे काटते कि उससे पहले ही वह वाण आकर पुष्कल के हृदय में लगा ॥४४॥ महातेजस्वी पुष्कल राजा के साथ घोर युद्ध करके मूर्छित हो गये ॥४५॥ पुष्कल को मूर्छित हो जाने पर शत्रुओं को संतप्त करने वाले राजा शत्रुघ्नजी रथ पर सवार होकर सुरथ के समक्ष आ गये ॥४६॥ महावलवान श्रीरामभ्राता ने राजा सुरथ से कहा तुमने हनुमान को वाँध कर बहुत वड़ा काम किया है ॥४७॥ भयङ्कर युद्ध में तुमने पुष्कल तथा दूसरें वीरों को मूर्छित कर दिया है ॥४८॥ अव तुम ठहरो, मेरे वीरों को मूर्छित करके कहाँ जाओगे ॥४९॥ वीर शत्रुघ्न की इस वाणी को सुनकर महावली सुरथ अपने हृदय में श्रीरामचरणों को धारण किए हुए कहा ॥५०॥ मैंने तुम्हारे हनुमान आदि वीरों को गिरा दिया है, अब मैं तुम्हें भी रणाङ्गण में गिराऊँगा ॥५१॥ हे वीर ! श्रीराम का स्मरण करो जो आकर तुम्हारी रक्षा करेंगे । अन्यथा तुम मेरे समक्ष जीवित नहीं रह सकते हो ॥५२॥ इस तरह से कहकर राजा सुरथ ने हजारों बाणों से शत्रुघ्नजी को मारा और उसके वाद उन्होने शत्रुघ्नजी को बाण पंजर में बाँध दिया ॥५३॥ अग्नि दैवत बाणों को छोड़ने वाले राजा को भस्म करने के लिए झुके हुए पर्व वाले वाणों का अस्त्र शत्रुघ्नजी ने छोड़ा ॥५४॥ उस छोड़े हुए अस्त्र को देखकर राजा सुरथ ने उसे वरुणास्त्र से शान्त कर दिया और फिर करोड़ों बाणों से शत्रुघ्नजी को वेध दिया ॥५५॥ इसके वाद शत्रुघ्नजी ने योगिनी के द्वारा प्रदत्त अस्त्र का अपने धनुष पर सन्धान किया । वह अद्भुत मोहन अस्त्र सभी वीरों को निद्रित करने वाला था ॥५६॥

मोहितस्य मम श्रीमद्रामस्य स्मरणेन ह। नान्यन्मोहनमाभाति ममापि भयतापदम् ॥५८॥
इत्युक्तवति वीरे तु मुमोच स महास्त्रकम्। तेन बाणेन संछिन्नं पपात रणमण्डले ॥५९॥
तन्मोहनं महास्त्रं तु निष्फलं वीक्ष्य भूमिपे। अत्यन्तं विस्मयं प्राप्य बाणं धनुषि सन्दधे ॥६०॥
लवणो येन निहतो महासुरविमर्दनः। तं बाणं चाप आधत्त घोरं कान्त्यानलप्रभम् ॥६१॥
तं वीक्ष्य राजा प्रोवाच बाणोऽयमसतां हृदि।
लगते रामभक्तस्य संमुखेऽपि नभात्यसौ ॥६२॥
इत्येवं भाषमाणां तु बाणेनानेन शत्रुहा। विव्याध हृदये क्षिप्रं वह्निज्वालासमप्रभम् ॥६३॥
तेन बाणेन दुःखार्तो महापीडासमन्वितः। रथोपस्थे क्षणं मूर्च्छामवाप परतापनः ॥६४॥
स क्षणात्तां व्यथां तीर्त्वा जगाद रिपुमग्रतः। सहस्वैकं प्रहारं मे कुत्र यासि ममाग्रतः ॥६५॥
एवमुक्त्वा महासङ्ख्ये बाणमाधत्त सायके। ज्वालामालापरीताङ्गं स्वर्णपुङ्खसमन्वितम् ॥६६॥
स बाणो धनुषे मुक्तः शत्रुघ्नेन पथि स्थितः।
छिन्नोऽप्यग्रफलेनाशु हृदये समपद्यत ॥६७॥
तेन बाणेन संमुर्च्छ्य पपात स्यन्दनोपरि। ततो हाहाकृतं सैन्यं भग्नं सर्वं पराद्रवत् ॥६८॥
सुरथो जयमापेदे सङ्ग्रामे रामसेवकः। दशवीरा दशसुतैर्मूर्च्छिताः पतिताः क्वचित् ॥६९॥

इति श्रीपद्मपुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
सुरथविजयो नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

* * *

उस मोहनास्त्र को देखकर श्रीहरि का स्मरण करते हुए सभी शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता राजा ने शत्रुघ्नजी से कहा ॥५७॥ मेरे मोहित होने पर भी श्रीराम के स्मरण से मुझको भय तथा संताप प्रदान करने वाला कोई अस्त्र नहीं है ॥५८॥ इस तरह से कहने वाले राजा पर शत्रुघ्नजी ने उस महास्त्र को छोड़ा। राजा ने उसे बाण से काट दिया और वह अस्त्र युद्धस्थल में गिर पड़ा ॥५९॥ राजा पर निष्फल हुए उस महास्त्र को देखकर अत्यन्त आश्चर्यित हुए शत्रुघ्नजी ने धनुष पर बाण चढ़ाया ॥६०॥ महान् असुर को मारने वाले शत्रुघ्नजी जिस बाण से लवणासुर को मारे थे उस कालाग्नि के समान कान्ति वाले बाण को उन्होंने धनुष पर चढ़ाया ॥६१॥ उसको देखकर राजा ने कहा कि यह बाण तो दुष्टों के हृदय में लगता है, रामभक्त के सामने तो यह नहीं प्रकाशित होता है ॥६२॥ इस तरह से कहने वाले राजा के हृदय में उस बाण से शत्रुघ्नजी ने प्रहार किया ॥६३॥ उस बाण से पीडित राजा रथ के पृष्ठ भाग में क्षणभर के लिए मूर्छित हो गये ॥६४॥ क्षणभर में उस व्यथा को दूर करके राजा ने शत्रुघ्नजी से कहा अब मेरे एक प्रहार को वर्दास्त करो। अब कहाँ जाओगे ॥६५॥ इस तरह से कहकर राजा ने ज्वाला से देदीप्यमान तथा स्वर्णपुङ्ख से युक्त बाण को धनुष पर चढ़ाया ॥६६॥ धनुष से छोड़ने पर शत्रुघ्नजी द्वारा बीच में ही काट दिए जाने पर भी आगे के फलक से शत्रुघ्नजी के हृदय में लगा ॥६७॥ उस बाण से मूर्छित होकर वे रथ पर ही गिर पड़े उसके बाद हाहाकार करती हुयी सेना भाग चली ॥६८॥ राम सेवक सुरथ विजयी हो गये। उनके दश पुत्र मूर्छित होकर कहीं पड़े थे ॥६९॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध प्रकरण में सुरथ विजय नामक बावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५२॥

* * *

तिरपनवाँ अध्याय

शेष उवाच

सुग्रीवस्तच्च कटकं भग्नं वीक्ष्य रणाङ्गणे। स्वामिनं मूर्च्छितं वाऽपि ययौ योद्धुं नृपं प्रति ॥१॥
आगच्छ भूप ! सर्वान्नो मूर्च्छयित्वा कुतो भवान् ।
गच्छति क्षिप्रं मे देहि युद्धं रणविशारद ! ॥२॥
एवमुक्त्वा नगं कञ्चिद्विशालं शाखया युतम् ।
उत्पाट्य प्राहरत्तस्य मस्तके बलसंयुतः ॥३॥
तेन प्रहारेण महाबलो नृपः संवीक्ष्य सुग्रीवमथो स्वचापे ।
बाणान्समाधाय शितान्सरोषाञ्जघान वक्षस्यतिपौरुषो बली ॥४॥
तान्बाणान्व्यधमत्सर्वान्सुग्रीवः सहसा हसन्। ताडयामास हृदये सुरथं सुमहाबलः ॥५॥
पर्वतैः शिखरैश्चैव नगैर्द्विरदवर्ष्मभिः। वेगात्सन्ताडयामास दारयन्सुरथं नखैः ॥६॥
तमप्याशु बबन्धास्त्राद्रामसंज्ञात्सुदारुणात्। बद्धः कपिवरो मेने सुरथं रामसेवकम् ॥७॥
गजो यथाऽऽयसमयीं शृङ्खलां पादलम्बिताम् ।
प्राप्य किञ्चिन्न वै कर्तुं शक्नोति स तथा ह्यभूत् ॥८॥
जितं तेन महाराज ! सुरथेन सुपत्रिणा। सर्वान्वीरान्रथे स्थाप्य ययौ स्वनगरं प्रति ॥९॥
गत्वा सभायां सुमहान्बद्धं मारुतिमब्रवीत्। स्मर श्रीरघुनाथं त्वं दयालुं भक्तपालकम् ॥१०॥
यथा त्वां बन्धनात्सद्यो मोचयिष्यति तुष्टधीः ।
नान्यथाऽयुतवर्षेण मोचयिष्यामि बन्धनात् ॥११॥

राजा सुरथ द्वारा शत्रुघ्नजी के सभी योद्धाओं का बन्धन और श्रीरामचन्द्रजी का सुरथ की सभा में आना

शेषजी ने कहा— भागती हुयी सेना को देखकर सुग्रीव राजा सुरथ से युद्ध करने गये ॥१॥ उन्होंने कहा— राजन् ! आओ हम सबों को मूर्छित करके कहाँ जा रहे हो । मेरे साथ युद्ध करो ॥२॥ इस तरह से कहकर बलवान् सुग्रवीजी ने शाखा से युक्त एक पर्वत से उस राजा के शिर पर प्रहार किया ॥३॥ उस प्रहार से महाबलवान् राजा सुग्रीव को देखकर अपने धनुष पर तीक्ष्ण वाणों को चढ़ाकर उनके वक्षस्थल में प्रहार किया॥४॥ सुग्रीव ने हँसते हुए उन बाणों को सहसा तोड़ दिया और अत्यन्त बलवान् सुग्रीव ने सुरथ के हृदय में प्रहार किया ॥५॥ वे पर्वतों शिखरों, नागों तथा हाथियों से सुरथ पर वेग से प्रहार किए तथा उनको नखों से चिर दिए ॥६॥ राजा ने सुग्रीव को भी शीघ्र ही रामास्त्र से बाँध दिया । बंध करके सुग्रीवजी ने सुरथ को रामजी का सेवक मान लिया ॥७॥ जिस तरह से पैरों में लोहे की शृङ्खला से बाँध दिए जाने पर जैसे हाथी कुछ भी करने में असमर्थ हो जाता है वैसे ही वे कुछ भी नहीं कर सके ॥८॥ हे महाराज ! राजा विजयी हो गये । वे सभी वीरों को रथ पर रखकर अपने नगर में ले गये ॥९॥ सभा में जाकर राजा ने हनुमानजी से कहा कि तुम दयालु श्रीरामजी का स्मरण करो ॥१०॥ उससे प्रसन्न होकर वे तुमको शीघ्र ही वन्धन मुक्त करेंगे । इसके विना दशो हजार वर्षों में भी बन्धन मुक्त नहीं करूँगा ॥११॥ इस तरह की वाणी को सुनकर हनुमानजी अपने को तथा वीरों

इत्युक्तमाकर्ण्य समीरजस्तदा सुबद्धमात्मानमवेक्ष्य वीरान् ।
संमूर्च्छिताञ्छत्रुशराभिघातापीडायुतान्बन्धनमुक्तयेऽस्मरत् ॥१२॥
श्रीरामचन्द्रं रघुवंशजातं सीतापतिं पङ्कजपत्रनेत्रम् ।
स्वमुक्तये बन्धनतः कृपालुं सस्मार सर्वैः करणैर्विशोकैः ॥१३॥

हनूमानुवाच

हानाथ ! हानरवरोत्तम ! हादयालो ! सीतापते ! रुचिरकुन्तलशोभिवक्त्र ! ।
भक्तर्तिदाहक ! मनोहररूपधारिन्मां बन्धनात्सपदि मोचय मा विलम्बम् ॥१४॥
संमोचितास्तु भवता गजपुङ्गवाद्या देवाश्च दानवकुलाग्निसु दह्यमानाः ।
तत्सुन्दरीशिरसि संस्थितकेशबन्धः संमोचितस्तु करुणालय ! मां स्मरस्व ॥१५॥
त्वं यागकर्मनिरतोऽसि मुनीश्वरेन्द्रैधर्मं विचारयसि भूमिपतीड्यपाद ! ।
अत्राहमद्य सुरथेन विगाढपाशबद्धोऽस्मि मोचय महापुरुषाशु देव ! ॥१६॥
नो मोचयस्यथ यदि स्मरणातिरेकात्त्वं सर्वदेववरपूजितपादपद्म ! ।
लोको भवन्तमिदमुल्लसितोऽहसिष्यत्तस्माद्विलम्बमिह माऽऽचर मोचयाशु ॥१७॥
इति श्रुत्वा जगन्नाथो रघुवीरः कृपानिधिः। भक्त मोचयितुं प्रागात्पुष्केणाशु बेगिना ॥१८॥
लक्ष्मणेनानुगेनाथ भरतेन सुशोभितम्। मुनिवृन्दैर्व्यासमुख्यैः समेतं ददृशे कपिः ॥१९॥
तमागतं निजं नाथं वीक्ष्य भूपं समब्रवीत्। पश्य राजन्निजं मोक्तुमायातं कृपया हरिम्॥२०॥
अनेके मोचिताः पूर्वं स्मरणात्सेवका निजाः ।
तथा मां पाशतो बद्धं संमोचयितुमागतः ॥२१॥

को अच्छी तरह से बँधे हुए देखकर तथा शत्रु के बाण की पीड़ा से पीड़ित वीरों को बन्धन मुक्त करने के लिए हनुमानजी ने श्रीभगवान् का स्मरण किया ॥१२॥ उन्होंने रघुवंश में उत्पन्न सीतापति कमल के समान नेत्र वाले कृपालु श्रीरामचन्द्र का, अपने शान्त सभी इन्द्रियों से स्मरण किया ॥१३॥ **हनुमानजी ने कहा—** हे नाथ ! हे श्रेष्ठ पुरुषों में उत्तम !! हे दयालो !!! हे सीतापते !हे मनोहर केशों से सुशोभित मुख वाले भगवन् ! हे भक्तों के कष्ट को विनष्ट करने वाले ! हे मनोहर रूप धारण करने वाले ! आप मुझे शीघ्र बन्धन से मुक्त कर दें, विलम्ब न करें ॥१४॥ आपने गजराज इत्यादि को मुक्त किया है, दानवों की अग्नि में जलते हुए देवताओं की आपने रक्षा की है, राक्षस राज की पत्नी केश बन्ध को आपने खोल दिया। हे करुणालय ! आप मुझे याद करें ॥१५॥ आप मुनीश्वरों के साथ याग कर्म में लगे हुए हैं, हे राजाओं द्वारा पूजित चरण कमल वाले प्रभो ! आप धर्म का पालन कर रहे हैं। यहाँ मैं सुरथ के द्वारा सुदृढ़ पाश में बाँध दिया गया हूँ, हे महापुण्य देव ! आप मुझे मुक्त करें ॥१६॥ हे सभी देवताओं से पूजित चरण कमलों वाले देव ! आप स्मरण करने पर भी यदि नहीं मुक्त करते हैं तो संसार इस बात को लेकर आपकी हँसी करेगा आप शीघ्र मुक्त करें विलम्ब न करें ॥१७॥ इस प्रार्थना को सुनकर जगत् स्वामी अत्यन्त वेगवान पुष्पक विमान से अपने भक्त को मुक्त करने के लिए गये ॥१८॥ हनुमानजी ने लक्ष्मणजी, भरतजी तथा मुनिसमूह से सुशोभित श्रीरामजी को देखा ॥१९॥ अपने स्वामी को आये हुए देखकर हनुमानजी ने राजा से कहा राजन् ! अपने भक्त को मुक्त करने के लिए आये हुए प्रभु को देखों॥२०॥ स्मरण करने मात्र से इन्होंने अपने अनेक भक्तों को मुक्त किया है। उसी तरह मुझ पाश बद्ध को मुक्त करने के

श्रीरामभद्रमायान्तं वीक्ष्यासौ सुरथः क्षणात् ।
नतीश्च शतशश्चक्रे भक्तिपूरपरिप्लुतः ॥२२॥
श्रीरामस्तं निजैर्दोर्भिः परिरेभे चतुर्भुजः । मूर्ध्नि सिञ्चन्नश्रुजलैर्हर्षाद्भक्तं स्वकं मुहुः ॥२३॥
उवाच धन्यदेदोऽसि महत्कर्म कृतं त्वया। कपीश्वरस्त्वया बद्धो हनूमान्सर्वतो बलः ॥२४॥
श्रीरामः कपिवर्यं तं मोचयामास बन्धनात्। मूर्छितांस्तान्भटान्सर्वान्वीक्ष्य दृष्ट्या स्वजीवयत्॥२५॥
ते मूर्च्छां तत्यजुर्दृष्टा रामेणासुरघातिना । उत्थिता ददृशुः श्रीमद्रामचन्द्रं मनोहरम् ॥२६॥
प्रणतास्ते रघुपतिं तेन पृष्टा अनामयम्। सुखीभूता नृपं प्रोचुः सर्वं स्वकुशलं नृपाः ॥२७॥
सुरथो वीक्ष्य रामं च कृपार्थं सेवकात्मनः। आगतं सकलं राज्यं सहयं सुमुदाऽपयत्॥२८॥
अनेकवरिवस्याभिः श्रीरामं समतोषयत्। कथयामास मेऽन्याय्यं कृतं ते क्षम राघव! ॥
श्रीरामस्तमुवाचाथ कृतं ते वाहरक्षणम् ॥२९॥

श्रीराम उवाच

क्षत्रियाणामयं धर्मः स्वामिना सह युद्धयते ।
त्वया साधु कृतं कर्म रणे वीराः प्रतोषिताः ॥३०॥
इत्युक्तवन्तं नृहरिं पूजयन्ससुतोऽभवत्। श्रीरामस्त्रिदिनं स्थित्वाययौ तमनुमन्त्र्य च ॥३१॥
कामगेन विमानेन मुनिभिः सहितो महान् । तं दृष्ट्वा विस्मितास्तस्य कथाश्चक्रुर्मनोहराः ॥३२॥
चम्पकं स्वपुरेस्थाप्य सुरथः क्षत्रियो बली। शत्रुघ्नेन समं यातुं मनश्चक्रे महाबलः ॥३३॥
शत्रुघ्नः स्वहयं प्राप्य भेरीनादानकारयत् । शङ्खनादान्बहुविधान्सर्वत्र समवादयत् ॥३४॥

लिए ये आ गये हैं ॥२१॥ आये हुए श्रीरामचन्द्रजी को देखकर राजा सुरथ ने भक्ति से भरकर सैकड़ों बार प्रणाम किया ॥२२॥। चतुर्भुज रूपधारी भगवान् ने राजा को अपनी भुजाओं से पकड़कर आलिङ्गन किया अपनी प्रसन्नताश्रुओं से उन्होंने अपने भक्त के शिर को सींच दिया ॥२३॥ भगवान् ने कहा— तुम धन्य हो, तुमने महान कर्म किया है, तुमने कपीश्वर हनुमानजी को भी बाँध दिया ॥२४॥ भगवान् श्रीराम ने हनुमानजी को बन्धन से मुक्त कर दिया । उन्होंने मूर्छित वीरों को अपने नेत्रों से देखकर जीवित कर दिया ॥२५॥ असुरों को विनष्ट करने वाले श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा देखे जाने से उन सबों की मूर्छा समाप्त हो गयी । मनोहर श्रीरामचन्द्रजी को देखकर सभी खड़े हो गये ॥२६॥ सबों ने श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम किया और श्रीरामचन्द्रजी ने सबों से कुशल पूछा। सुखी होकर सभी राजाओं ने अपना कुशल बतलाया ॥२७॥ श्रीरामचन्द्रजी को देखकर राजा सुरथ ने प्रसन्नता पूर्वक अपने राज्य और अश्व को समर्पित कर दिया ॥२८॥ राजा ने अनेक प्रकार की सेवाओं द्वारा भगवान् श्रीराम को सन्तुष्ट किया । राजा ने कहा— हे राघव ! मैंने जो अपराध किया है, उसे आप क्षमा कर दें । श्रीरामजी ने कहा— तुमने अश्व की रक्षा की है ॥२९॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— स्वामी के साथ युद्ध करना क्षत्रियों का धर्म है । तुमने अच्छा काम किया है युद्ध में तुमने वीरों को सन्तुष्ट किया है ॥३०॥ इसतरह से कहने वाले श्रीरामचन्द्रजी की पूजा राजा ने अपने पुत्रों के साथ की । श्रीरामजी वहाँ तीन दिन रहकर राजा को आज्ञा देकर चले गये ॥३१॥ मुनियों के साथ कामग विमान से वे चले गये । भगवान् को देखकर सभी आश्चर्यित हो गये और भगवान् की मनोहर कथा कहने लगे ॥३२॥ बलवान राजा सुरथ चम्पक को अपने नगर में रखकर शत्रुघ्नजी के साथ जाने का मन बनाये ॥३३॥ शत्रुघ्नजी अपने अश्व को प्राप्त करके भेरी ताडन कराये । उन्होंने अनेक

सुरथेन समं वीरो यज्ञवाहममूमुचत् । स बभ्रामापरान्देशान्न कोऽपि जगृहे बली ॥३५॥
यत्र यत्र गतो वाहस्तत्र क्षत्र परिभ्रमन् । सैन्येन महता यातः शत्रुघ्नः सुरथेन च ॥३६॥
कदाचिज्जाह्नवीतीरे वाल्मीकेराश्रमं वरम्। गतो मुनिवरैर्जुष्टं प्रातर्धूमेन चिह्नितम् ॥३७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
रघुनाथसमागमो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

चौवनवाँ अध्याय

शेष उवाच

गतः प्रातः क्रियां कर्तुं समिधस्तत्क्रियार्हकाः ।
आनेतुं जानकीसूनुर्वृतो मुनिसुतैर्लवः ॥१॥
ददर्श तत्र यज्ञाश्वं स्वर्णपत्रेण चिह्नितम्। कुङ्कुमागरुकस्तूरीदिव्यगन्धेन वासितम् ॥२॥
विलोक्य जातकुतुको मुनिपुत्रानुवाच सः। अर्वा कस्य मनोवेगः प्राप्तो दैवान्मदाश्रमम् ॥३॥
आगच्छन्तु मया सार्धं प्रेक्षन्तां मा भयं कृथाः ।
इत्युक्त्वा स लवस्तूर्णं वाहस्य निकटे गतः ॥४॥
स रराज समीपस्थो वाहस्य रघुवंशजः । धनुर्बाणधरः स्कन्धे जयन्त इव दुर्जयः॥५॥

प्रकार से शङ्खनाद करवाया ॥३४॥ राजा सुरथ के साथ उन्होंने यज्ञ के अश्व को छोड़ा । वह अश्व दूसरे देशों में भी भ्रमण किया, किन्तु कोई भी उसे नहीं पकड़ा ॥३५॥ जहाँ-जहाँ अश्व गया वहाँ-वहाँ राजा सुरथ के साथ शत्रुघ्नजी गये ॥३६॥ एक दिन वह गङ्गाजी के तट पर मुनियों से सेवित महर्षि वाल्मीकि के श्रेष्ठ आश्रम में प्रातःकाल पहुँचा ॥३७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में श्रीराम समागम वर्णन नामक तिरपवनें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५३।।

महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में लव के द्वारा अश्व का पकड़ा जाना

शेषजी ने कहा— प्रातःकाल मुनि कुमारों के साथ जानकीजी के पुत्र लव प्रातःकालिक क्रियाओं को करने के लिए समिधा लाने गये थे ॥१॥ उन्होंने स्वर्णपत्र से युक्त उस अश्व को देखा । वह अश्व कुंकुम की लालिमा तथा कस्तूरी की दिव्य सुगन्धि से युक्त था ॥२॥ उसको देखकर उत्कण्ठा पूर्वक उन्होंने मुनि कुमारों से कहा दैववशात् यह किसका मनोवेग से सम्पन्न अश्व आया है ?॥३॥ आपलोग मेरे साथ आयें डरें नहीं यह कहकर लव शीघ्रता से अश्व के सन्निकट गये ॥४॥ अश्व के सन्निकट में रघुवंश में उत्पन्न होने वाले लव सुशोभित हुए। वे अपने कन्धे पर धनुष और बाण धारण किए हुए थे तथा जयन्त के समान दुर्जय थे ॥५॥ मुनि कुमारों के साथ

गत्वा मुनिसुतैः सार्थं वाचयामास पत्रकम्। भालस्थितं स्पष्टवर्णराजिराजितमुत्तमम् ।।६।।
विवस्वतो महान्वंशः सर्वलोकेषु विश्रुतः। यत्र कोऽपि पराबाधी न परद्रव्यलम्पटः ।।७।।
सूर्यवंशध्वजो धन्वी धनुर्दीक्षागुरुर्गुरुः। यं देवा सानुगाः सर्वे नमन्ति मणिलौलिभिः ।।८।।
तस्यात्मजो वीरबलदर्पहारी रघूद्वहः। रामचन्द्रो महाभागः सर्वशूरशिरोमणिः ।।९।।
तन्माता कोसलनृपपुत्री रत्नसमुद्भवा। तस्याः कुक्षिभवं रत्नं रामशत्रुक्षयङ्करः ।।१०।।
करोति हयमेधं स ब्राह्मणेन सुशिक्षितः। रावणाभिधविप्रेन्द्रवधपापापनुत्तये ।।११।।
मोचितस्तेन वाहानां मुख्योऽसौ याज्ञिकोहयः।
महाबलपरीवारः परिखाभिः सुरक्षितः ।।१२।।
तद्रक्षकोऽस्ति मद्भ्राता शत्रुघ्नो लवणान्तकः।
हस्त्यश्वरथापादातसङ्गसेनासमन्वितः ।।१३।।
यस्य राज्ञ इति श्रेष्ठो मानो जायेत्स्वकान्मदात्।
शूरावयं धनुर्धारिश्रेष्ठा वयमहोत्कटाः ।।१४।।
ते गृह्णन्तु बलाद्वाहं रत्नमालाविभूषितम्। मनोवेगं कामजवं सर्वगत्याधिभास्वरम् ।।१५।।
ततो मोचयिता भ्राता शत्रुघ्नो लीलया हठात्।
शरासनविनिर्मुक्तवत्सदन्तावृतव्यथात् ।।१६।।
ये क्षत्रियाः क्षत्रियकन्यकायां जाताश्च सत्क्षेत्रकुलेषु सत्सु।
गृह्णन्तु ते तद्विपरीतदेहा नमन्तु राज्यं रघवे निवेध ।।१७।।
इति संवाच्य कुपितो लवः शस्त्रधनुर्धरः। उवाच मुनिपुत्रांस्तान्रोषगद्गदभाषितः ।।१८।।
पश्यत क्षिप्रमेतस्य धृष्टत्वं क्षत्रियस्य वै। लिलेख यो भालपत्रे स्वप्रतापबलं नृपः ।।१९।।

जाकर उन्होंने स्पष्ट वर्ण समूह में लिखे गये सुवर्ण पत्र को बाँचा ।।६।। उसमें लिखा था कि सूर्य का महान् वंश सम्पूर्ण लोकों में विख्यात है। उस वंश में कोई भी न तो किसी को दुःख देता है और न दूसरे की सम्पत्ति की लालच करता है ।।७।। सूर्य वंश में उत्पन्न धनुर्धारी सर्वश्रेष्ठ धनुर्विद्या के ज्ञाता, जिनको सभी देवता अपने अनुचरों के साथ प्रणाम करते हैं ।।८।। उनके पुत्र वीरों के बल के दर्प के विनष्ट करने वाले, सभी वीरों में शिरोमणि महाभाग श्रीरामचन्द्र हैं ।।९।। उनकी माता कोसल राज की पुत्री कौसल्या हैं। शत्रुओं को विनष्ट करने वाले श्रीरामजी उनके ही गर्भ से उत्पन्न हैं ।।१०।। ब्राह्मणों से दीक्षा प्राप्त करके वे रावण वध जन्य पाप का अपनोदन करने के लिए अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं ।।११।। उन्होंने महावीरों से सुरक्षित अपने इस याज्ञिक अश्व को छोड़ा है ।।१२।। उसकी रक्षा मेरे भाई तथा लवणासुर को मारने वाले शत्रुघ्न कर रहे हैं। उनके साथ, हाथी घोड़े, रथ तथा पैदल सेना हैं ।।१३।। जिस किसी राजा के मन में घमण्ड के कारण यह बात आये कि मैं ही सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी वीर हूँ ।।१४।। वह राजा रत्नों की माला से सुशोभित इस अश्व को पकड़ ले। यह अश्व मनोवेग वाला काम के समान गति वाला तथा सभी प्रकार की गतियों से सुशोभित है ।।१५।। शत्रुघ्न उस राजा से बल पूर्वक अपने वत्सदन्त बाणों से उसको मारकर अश्व को छुड़ा लेंगे ।।१६।। जो क्षत्रिय क्षत्रिय कन्या के गर्भ से क्षत्रियों के सद्वंश में उत्पन्न हों वही इसे पकड़े अथवा श्रीरामचन्द्रजी को अपना राज्य समर्पित करके उन्हें प्रणाम करे ।।१७।। उसे बाँच करके शस्त्र तथा धनुष धारण करने वाले लव क्रुद्ध हो गये। उन्होंने क्रोध भरी वाणी में

कोऽसौ रामः क्व शत्रुघ्नः कीटाः स्वल्पबलाश्रिताः ।
क्षत्रियाणां कुले जाता एते न वयमुत्तमाः ॥२०॥
एतस्य वीरसूर्माता जानकी न कुशप्रसूः । या रत्नं कुशसंज्ञं तु दधाराग्निमिवारणिः ॥२१॥
इदानीं क्षत्रियत्वादि दर्शयिष्यामि सर्वतः । यदि क्षत्रियभूरेष भविष्यति च शत्रुहा॥२२॥
गृहीष्यति मया बद्धं वाहं यज्ञक्रियोचितम् । नोचेत्क्षत्रत्वमुन्मुच्य कुशस्य चरणार्चकः ॥२३॥
अधुना मद्धनुर्मुक्तैः शरैः सुप्तो भविष्यति । अन्ये ये च महावीरा रणमण्डलभूषणाः ॥२४॥
इत्यादिवाक्यमुच्चार्य लवो जग्राह तं हयम् ।
तृणीकृत्य नृपान्सर्वांश्चापबाणधरोवरः ॥२५॥
तदा मुनिसुताः प्रोचुर्लवं हयजिहीर्षकम्। अयोध्यानृपती रामो महाबलपराक्रमः ॥२६॥
तस्य वाहं न गृह्णाति शक्रोऽपि स्वबलोद्धतः ।
मा गृहाण शृणुष्वेदं मद्वाक्यं हितसंयुतम् ॥२७॥
इत्युक्तं स श्रुतौ धृत्वा जगाद स द्विजात्मजान् ।
यूयं बलं न जानीथ क्षत्रियाणां द्विजोत्तमाः ॥२८॥
क्षत्रिया वीर्यशौण्डीर्या द्विजा भोजनशालिनः ।
तस्माद्यूयं गृहे गत्वा भुञ्जन्तु जननीहृतम् ॥२९॥
इत्युक्तास्तेऽभवंस्तूष्णीं प्रेक्षन्तस्तत्पराक्रमम् । लवस्य मुनिपुत्रास्ते सन्तस्थुर्दूरतो बहिः ॥३०॥
एवं व्यतिकरे वृत्ते सेवकास्तस्य भूपतेः । आयातास्तं हयं बद्धं दृष्ट्वा प्रोचुस्तदालवम् ॥३१॥
बबन्ध को हयमहो रुष्टः कस्य च धर्मराट् ।
को बाण व्रजमध्यस्थः प्राप्स्यते परमां व्यथाम् ॥३२॥

मुनि पुत्रों से कहा ॥१८॥ इस क्षत्रिय की धृष्टता तो देखिये उस राजा ने इस भाल पत्र पर अपने प्रताप और बल को लिखा है ॥१९॥ ये अल्प बल वाले राम और शत्रुघ्न कौन है ? ये उत्तम क्षत्रियों के वंश में नहीं उत्पन्न हुए हैं ॥२०॥ इन सबों की माता वीरों को जन्म देने वाली जानकी नहीं है । जिस जानकी ने अपने गर्भ में कुश जैसे वीर को धारण किया ॥२१॥ अब मैं पूर्ण रूप से क्षत्रियत्व दिखाऊँगा जिससे कि यह क्षत्रिय भूमि शत्रुओं को मारने वाली बन जायेगी ॥२२॥ यदि कोई मुझसे इस यज्ञ कर्म के लिए उचित अश्व को ले जायेगा तो कुश के चरणों की पूजा करने वाला मैं क्षत्रियत्व का परित्याग कर दूँगा ॥२३॥ अब मेरे धनुष से छूटे हुए बाणों के द्वारा यह तथा दूसरे युद्धमण्डल के भूषण भूत वीर मारे जायेंगे ॥२४॥ इस तरह से कहकर सभी राजाओं की परवाह नहीं करके शस्त्रधारी लव ने अश्व को पकड़ लिया ॥२५॥ अश्व को हरण करने के इच्छुक लव को मुनि कुमारों ने कहा अयोध्या के राजा राम महाबलवान् और पराक्रमी हैं ॥२६॥ उनके अश्व को पराक्रमी इन्द्र भी नहीं पकड़ सकते हैं । इसको मत पकड़ो मेरी हितकारी वाणी को सुनो ॥२७॥ इस बात को सुनकर लव ने मुनिकुमारों से कहा— द्विजोत्तमों आपलोग क्षत्रियों के उत्तम बल को नहीं जानते हैं ॥२८॥ क्षत्रिय पराक्रम प्रधान होते है और ब्राह्मण भोजन करने वाले होते हैं । अतएव आपलोग अपने घर जाकर अपनी माता के द्वारा लाये गये अन्न का भोजन करें ॥२९॥ इस तरह से कहने पर वे उसके पराक्रम को देखते हुए चुप हो गये । वे मुनिकुमार लव से दूर ही रुक गये ॥३०॥ इस तरह से व्यतिकर उपस्थित्त होने पर राजा के सेवक वहाँ आये और बँधे हुए अश्व

तदा लवो जगादाशु मया बद्धोऽश्व उत्तमः ।
यो मोचयति तस्याशु रुष्टोभ्राता कुशो महान् ॥३३॥
यमः करिष्यति किमु ह्यागतोऽपि स्वयं प्रभुः ।
नत्वा गमिष्यति क्षिप्रं शरवृष्ट्या सुतोषितः ॥३४॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य बालोऽयमिति तेऽब्रुवन् ।
समागता मोचयितुं हयं बद्धं तु ये हरेः ॥३५॥
तान्वै मोचयितुं प्राप्ताञ्छत्रुघ्नस्य च सेवकान् ।
कोदण्डं करयोर्धृत्वा क्षुरप्रान्सममूमुचत् ॥३६॥
ते च्छिन्नबाहवः शोकाच्छत्रुघ्नं प्रतिसङ्गताः। पृष्टास्ते जगदुः सर्वे लवात्स्वभुजकृन्तनम् ॥३७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
लवेन हयबन्धनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

पचपनवाँ अध्याय

व्यास उवाच

एतां श्रुत्वा कथां रम्यां लवस्य बलिनो मुनिः ।
संशयानः पर्यपृच्छन्नागं दशशताननम् ॥१॥

को देखकर लव से कहे ॥३१॥ इस अश्व को किसने बाँधा है ? किस पर यमराज कुपित हो गये हैं ? कौन है जो वाण समूह के बीच अत्यन्त पीड़ित होने वाला है ?॥३२॥ उस समय लव ने कहा— मैंने इस उत्तम अश्व को बाँधा है जो इसको खोलेगा उस पर मेरे भाई कुश रुष्ट हो जायेंगे ॥३३॥ यहाँ पर स्वयं यमराज ही आकर क्या कर लेंगे ? वाण वृष्टि से संतुष्ट होकर वे भी नमस्कार करके चले जायेंगे । **शेषजी ने कहा—** इस बात को सुनकर उन सबों ने कहा यह बालक है और वे श्रीहरि के अश्व को खोलने के लिए आये ॥३४-३५॥ खोलने के लिए आये हुए शत्रुघ्नजी के सेवकों के हाथ पर धनुष धारण करके लव ने क्षुरप बाणों से मारा और उन सबों की भुजाएँ कट गयीं तदनन्तर वे शत्रुघ्नजी के पास गये और पूछने पर उन सबों ने बतलाया कि लव ने हमलोगों की भुजाओं को काटा है ॥३६-३७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में लव द्वारा अश्वबन्धन वर्णन नामक चौवनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५४।।

वात्स्यायन का सीतात्याग विषयक प्रश्न तथा शेषजी के द्वारा उस वृत्तान्त का वर्णन

व्यासजी ने कहा— बलवान लव की इस मनोहर कथा को सुनकर वात्स्यायन ने संशय पूर्वक शेषजी से पूछा ॥१॥ **श्रीवात्स्यायन ने कहा—** आपने कहा है कि अकेली जानकीजी को भूमि के लोलुप श्रीराम ने

श्रीवात्स्यायन उवाच

त्वयोक्तं तु पुरा रामः सीतामेकाकिनीं वने ।
रजकस्य दुरुत्तयाऽसौ तत्याज महिलोलुपः ॥२॥
जानक्यां क्वसुतौ जातौ क्वधनुर्धरतां गतौ ।
कथं च शिक्षिता विद्या यो रामहयमाहरत् ॥३॥

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं शेषो नागो महामतिः ।
प्रशस्य विप्रं जगदे रामचारित्रमद्भुतम् ॥४॥

शेष उवाच

रामो राज्यमयोध्यायां भ्रातृभिः सहितोऽकरोत् ।
धर्मेण पालयन्सर्वं क्षितिखण्डं स्वया स्त्रिया ॥५॥
सीता दधार तद्वीर्यं मासाः पञ्चाभवंस्तदा। अत्यन्तं शुशुभे देवी त्रयीव पुरुषन्धरा॥६॥
कदाचित्समये रामः पप्रच्छ च विदेहजाम् ।
कीदृशो दोहदः साध्वि ! मया ते साध्यते हि सः ॥७॥
रहस्येव तु सा पृष्टा त्रपमाणा पतिं सती। लज्जागद्गदवाग्रामं निजगाद वचोऽमृतम् ॥८॥

सीतोवाच

त्वत्कृपातो मया सर्वं भुक्तं भोक्ष्यामि शोभनम् ।
न कश्चिन्मानसे कान्त ! विषयो ह्यतिरिच्यते ॥९॥
यस्या भवादृशः स्वामी देवसंस्तुतसत्पदः । तस्याः सर्वं वरीवर्ति न किञ्चिदवशिष्यते ॥१०॥
त्वमाग्रहात्पृच्छसि मां दोहदं मनसि स्थितम् ।
ब्रवीमि पुरतः सत्यं तव स्वामिन्मनोहर ! ॥११॥

रजक के अपवाद के कारण छोड़ दिया ॥२॥ जानकीजी के दोनों पुत्र कहाँ उत्पन्न हुए ? और कहाँ पर वे धनुर्धर बन गये ? उन दोनों ने कहाँ पर विद्या सीखी कि अश्व का उन सबों ने हरण किया ?॥३॥ **व्यासजी ने कहा**— मुनि के इस वाक्य को सुनकर महामति शेषनाग ने विप्र की प्रशंसा की और अद्भुत रामचरित का उन्होंने वर्णन किया ॥४॥ **शेषजी ने कहा**— रामचन्द्रजी अपने भाइयों के साथ अयोध्या में राज्य करते थे । अपनी पत्नी के साथ वे सम्पूर्ण पृथ्वी का धर्मपूर्वक प्रशासन करते थे ॥५॥ सीताजी ने उनके वीर्य को धारण किया । उसके पाँच महीने बीत गये थे । वे देवी पुरुष को धारण करने वाली त्रयी के समान अत्यन्त सुशोभित हो रही थीं ॥६॥ एक बार श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी से पूछा— हे देवि ! तुमको कैसा दोहद है ? मैं उस को पूरा करूँगा ॥७॥ एकान्त में पूछे जाने पर लज्जित होती हुई वे देवी अपने पति से कहीं ॥८॥ **सीताजी ने कहा**— आपकी कृपा से मैंने समस्त अच्छे भोगों को भोगा है अतएव हे कान्त ! मेरे लिए कोई भी वस्तु नहीं बची हैं ॥९॥ जिसके आप जैसे देवताओं द्वारा संस्तुत पति हों उसको प्राप्त होने के लिए कोई भी वस्तु नहीं बची हैं ॥१०॥ आप आग्रह पूर्वक यदि दोहद पूछते हैं तो जो मेरे मन में है उस मनोहर सत्य को मैं कहती हूँ ॥११॥ लोपामुद्रा आदि सतियों को

चिरं जातं मया सत्यो लोपामुद्रादिकाः स्त्रियः ।
दृष्ट्वा स्वामिन् मनो द्रष्टुं ता उत्सुकति सुन्दरीः ॥१२॥
राज्यं प्राप्ता त्वया सार्द्धमनेकसुखमास्थिता ।
कृतघ्नाहं कदापीह ता नमस्कर्तुमानसा ॥१३॥
तत्र गत्वा तपः कोशान्वस्त्राद्यैः परिपूजये । रत्नानि चैव भास्वन्ति भूषा अपि समर्पये ॥१४॥
यथा मे तोषिताः सत्यो ददत्याशीर्मनोहराः ।
एष मे दोहदः कान्त परिपूरय मानसम् ॥१५॥
इत्थमाकर्ण्य वचनं सीतायाः सुमनोहरम् । जगाद परमप्रीतो रामचन्द्रः प्रियां प्रति ॥१६॥
धन्याऽसि जानकि ! प्रातर्गमिष्यसि तपोधनान् ।
प्रेक्ष्य तास्तु कृतार्था त्वमागमिष्यसि मेऽन्तिकम् ॥१७॥
इति रामवचः श्रुत्वा परमां प्रीतिमाप सा । प्रातर्मम भवत्यद्धा तापसीनां समीक्षणम् ॥१८॥
अथ तन्निशि रामेण चाराः कीर्तिं निजां श्रुताम् ।
प्रेक्षितुं प्रेषितास्ते तु निशीथे ह्यगमच्छनैः ॥१९॥
ते प्रत्यहं रामकथाः शृण्वन्तः सुमनोहराः । तद्दिने गतवन्तस्तु धनाढ्यस्य गृहं महत्॥२०॥
दीपं वीक्ष्य प्रज्वलन्तं वचनं वीक्ष्य मानुषम् ।
स्थितास्तत्र क्षणं चाराः समशृण्वन्यशो भृशम् ॥२१॥
तत्र काचन वामाक्षी बालकं प्रतिहर्षिता । स्तनन्धयन्तं निजगौ वाक्यं तु सुमनोहरम् ॥२२॥
पिब पुत्र ! यथेष्टं त्वं स्तन्यं मम मनोहरम् ।
पश्चात्तव सुदुष्प्रापं भविष्यति ममात्मज ! ॥२३॥
एतत्पुर्याः पती रामो नीलोत्पलदलप्रभः । तत्पुरीस्थजनानां तु न भविष्यति वै जनुः ॥२४॥

देखे हुए बहुत दिन बीत गये हैं, मेरा मन उन सतियों को देखने के लिए उत्सुक है ॥१२॥ राज्य भी प्राप्त हो गया है; किन्तु कृतघ्ना मैं कभी आपके साथ उन सबों को देखने तथा नमस्कार करने के लिए जाकर तपःकोश से वस्त्र आदि से उन लोगों की पूजा करती तथा चमकते हुए रत्नों तथा भूषणों को समर्पित करती ॥१३-१४॥ जिससे सन्तुष्ट होकर वे सतियाँ मुझे मनोहर आशीर्वाद देतीं । हे कान्त ! मेरे मन का यही दोहद है; इसे आप पूरा करें ॥१५॥ सीताजी के इस मनोहर वचन को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी से कहा ॥१६॥ जानकि तुम धन्य हो; प्रातःकाल तुम तपोधनों के पास जाओगी । उनके पास से जब तुम आओगी तो मैं कृतार्थ हुयी तुमको देखूंगा ॥१७॥ श्रीरामचन्द्रजी की इस बात को सुनकर सीताजी अत्यन्त प्रसन्न हुयीं । वे सोचती थीं कि प्रातःकाल मैं तापस्वियों का दर्शन करूँगी ॥१८॥ उस दिन श्रीरामचन्द्रजी ने रात्रि को अपना यश सुनने के लिए दूतों को नगर में भेजा । आधी रात की बेला में वे गुप्तचर जाते थे ॥१९॥ वे प्रतिदिन श्रीरामजी की मनोहर चर्चा सुनते थे, उस दिन वे एक वहुत बड़े धनवान के घर गये ॥२०॥ जलते हुए दीपक और मनुष्य की आवाज सुनकर, वे दूत वहीं पर श्रीरामचन्द्रजी का यश सुनते हुए वहीं ठहर गये ॥२१॥ वहाँ पर कोई सुन्दरी बालक के प्रति हर्षित होकर अपने बच्चे को दूध पिलाती हुयी कहती थी ॥२२॥ हे पुत्र ! मेरा दूध इच्छाभर पी लो, हे पुत्र ! इसके बाद यह तुम्हारे लिए दुष्प्राप्य हो जायेगा ॥२३॥ इस नगरी के स्वामी नील कमल के समान सुन्दर

जन्माभावात्कथं पानं स्तन्यस्य भुवि जायते ।
तस्मात्पिब मुहुः स्तन्यं दुर्ल्लभं हृदि मन्य च ॥२५॥
ये श्रीरामं स्मरिष्यन्ति ध्यायन्ति च वदन्ति ये ।
तेषामपि पयः पानं न भविष्यति जातुचित् ॥२६॥
इत्यादि वाक्यं संश्रुत्य श्रीरामयशसोऽमृतम् ।
हर्षिताः प्रययुर्गेहमन्यद्भाग्यवतो महत् ॥२७॥
तावदन्यश्चरस्तत्र मनोरममिदं गृहम्। मत्वा तिष्ठन्ति रामस्य शुश्रूषुर्यशसः क्षणम्॥२८॥
तत्र काचिन्निजं कान्तं पर्यङ्कोपरि सुस्थितम् ।
ताम्बूलं चर्वती दत्तं भर्त्रा स्नेहेन सुन्दरी ॥२९॥
कङ्कणस्वरशोभाढ्या कर्पूरागरुधूपिता। कान्तं वीक्ष्य चलन्नेत्रा कामरूपमवोचत॥३०॥
नाथ त्वं तादृशो मह्यं भासि यादृग्रघोः पति ।
अत्यन्तं सुन्दरतरं वपुर्बिभ्रत्सुकोलम् ॥३१॥
पद्मप्रान्तं नेत्रयुग्मं वक्षो मोहनविस्तृतम् । भुजौ च साङ्गदौ बिभ्रत्साक्षाद्राम इवासि मे॥३२॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य कान्तायाः सुमनोहरम् ।
उवाच नेत्रयोः प्रान्तं नर्तयन्कामसुन्दरः ॥३३॥
शृणु कान्ते त्वया प्रोक्तं साध्व्या तु सुमनोहरम् ।
पतिव्रतानां तद्योग्यं स्वकान्तो राम एव हि ॥३४॥
परं क्वहं मन्दभाग्य क्वरामो भाग्यवान्महान् ।
क्व चाहं कीटवत्तुच्छः क्व ब्रह्मादिसुरार्चितः ॥३५॥
खद्योतः क्व नभो रत्नं शलभः क्व नु पामरः ।
गजारिः क्व मृगेन्द्रोऽसौ शशकः क्व नु मन्दधीः ॥३६॥

कान्ति वाले श्रीरामजी हैं। उनकी नगरी में रहने वाले का फिर जन्म नहीं होने वाला है ॥२४॥ जन्म नहीं होने पर पृथिवी पर स्तनपान कैसे सम्भव है। अतएव इसे दुर्लभ समझकर बार-बार स्तनपान करो ॥२५॥ जो कोई भी श्रीराम का स्मरण अथवा ध्यान करता है, या उनका नाम लेता है, वह भी कभी पाय:पान नहीं करता है॥२६॥ इस तरह से श्रीरामचन्द्रजी के यशोऽमृत वाक्य सुनकर वे दूसरे भाग्यवान के घर गये ॥२७॥ उस गृह को अच्छा समझकर एक दूत श्रीरामचन्द्रजी का यश सुनने के लिए रुक गया ॥२८॥ वहाँ पर पर्यंक पर विद्यमान अपने पति को कोई पत्नी प्रेम पूर्वक ताम्बूल अर्पण कर रही थी। उसके हाथों के कङ्गन बज रहे थे, कर्पूर और अगरु की सुगन्धि से वह सुगन्धित थी। अपने सुन्दर पति को देखकर चञ्चल नेत्रों वाली उसने कहा ॥२९-३०॥ हे नाथ ! आप तो मुझे श्रीरामजी के समान दिखते हैं। आपका शरीर अत्यन्त कोमल और सुन्दर है ॥३१॥ आपके दोनों नेत्र कमल दल के समान सुन्दर और वक्ष:स्थल मनोहर और विस्तृत है। दोनों हाथों में अङ्गद धारण किए हुए आप मुझे साक्षात् श्रीराम प्रतीत होते हैं ॥३२॥ इस तरह से अपनी पत्नी के मनोहर वाक्य को सुनकर अपने नेत्रों को नचाते हुए उस सुन्दर पुरुष ने कहा ॥३३॥ हे प्रिये ! तुमने साध्वी नारियों के लिए मनोहर बात कहा है, पतिव्रताओं के लिए उनका पति राम ही होता है ॥३४॥ किन्तु कहाँ तो मन्द भाग्य वाला मैं और कहाँ

क्व च सा जाह्नवी देवी क्व रथ्याजलमुत्पथम् ।
क्व मेरुः सुरसंवासः क्वगुञ्जापुञ्जकोऽल्पकः ॥३७॥
तथाऽहं क्व क्व रामोऽसौ यत्पादरजसाऽङ्गना ।
शिलीभूता क्षणाज्जाता ब्रह्ममोहनरूपधृत् ॥३८॥
इति वाक्यं प्रबुवाणं परिरेभे निजं पतिम् । जातकामा हृतप्रेम्णा नर्तितभ्रूधनुर्धरा ॥३९॥
इत्यादि वाक्यं संश्रुत्य गतश्चान्यनिवेशनम् । तावदन्यश्चरो वाक्यं शश्राव यशसाऽन्वितम् ॥४०॥
काचित्पुष्पमयीं शय्यां चन्दनं सह चन्द्रकम् ।
सर्वं विधाय कामार्हं जगाद वचनं पतिम् ॥४१॥
पते ! कुरुष्व भोगार्हे शयनं पुष्पमञ्चके । चन्दनादिकलेपं च यथा भोगमनेकधा ॥४२॥
त्वादृशा एव भोगार्हा न वै रामपराङ्मुखाः ।
सर्वं रामकृपाप्राप्तमुपभुङ्क्ष्व यथातथम् ॥४३॥
मत्सदृशी कामिनी ते चन्दनं तापहारकम् । पर्यङ्कः पुष्परचितः सर्वं रामकृपाभवम् ॥४४॥
ये रामं न भजिष्यन्ति ते नरा जठरं स्वयम् ।
न भर्तुं शक्नुवन्त्येव वस्त्रभोगादिवर्जिताः ॥४५॥
इति ब्रुवन्तीं महिलां हर्षितः पतिरब्रवीत् । सर्वं तथ्यं ब्रवीषि त्वं मम रामकृपाभवम् ॥४६॥
इत्येवं रामभद्रस्य यशः श्रुत्वा गतश्चरः । तावन्यस्य वेशमस्थश्चरोऽन्यः शुश्रुवे वचः ॥४७॥
काचित्कान्तेन पर्यङ्के वीणावादनतत्परा । कान्तेन रामसत्कीर्तिं गायमाना पतिं जगौ ॥४८॥

श्रीरामजी महाभाग्यवान हैं । मैं तो उनके सामने कीड़े के समान तुच्छ हूँ और वे ब्रह्मा आदि देवताओं से वन्दित हैं ॥३५॥ कहाँ तो मूर्ख कीड़ा जुगुनू और कहा सूर्य चन्द्रमा दोनों की कौन सी तुलना है ?। कहाँ हाथियों को शत्रु सिंह और कहा मूर्ख खरगोश ?॥३६॥ जिस तरह गङ्गादेवी और गली में बहने वाली जलधारा की कोई तुलना नहीं है, जिस तरह गुञ्जा पुञ्ज की देवताओं के निवास स्थान सुमेरु से कोई तुलना नहीं हो सकती है॥३७॥ अतएव सुन्दरि ! राम और मेरी कोई तुलना नहीं हो सकती है । उनके चरणों की धूलि से शिला भी ब्रह्म को मोहित करने वाली नारी हो गयी ॥३८॥ इस तरह से कहने वाले अपने पति का उसने आलिङ्गन किया। वह अपने भौहों को नचाती हुयी कामार्त हो गयी ॥३९॥ इस वाक्य को सुनकर वह दूसरे घर चला गया । उस समय दूसरे दूत ने श्रीरामचन्द्रजी का बहुत अधिक यश सुना ॥४०॥ कोई नारी पुष्पों की शय्या तथा चन्दन के साथ चन्द्रक बनाकर अपने सुन्दर पति से कही ॥४१॥ हे स्वामिन् ! इस भोगार्ह पुष्प की शय्या पर शयन करें और आप अपने शरीर में अनेक प्रकार के चन्दनों का लेप लगायें ॥४२॥ आपके समान ही लोग भोग के योग्य है, श्रीराम विरोधी नहीं । श्रीरामजी की कृपा से प्राप्त वस्तुओं का आप उपभोग करें ॥४३॥ मेरी जैसी पत्नी, संताप निवारक चन्दन तथा पुष्पों की शय्या सब कुछ श्रीरामजी की कृपा से ही प्राप्त है ॥४४॥ जो लोग श्रीरामचन्द्र का भजन नहीं करते हैं वे अपना पेट भी नहीं भर सकते हैं तथा वे वस्त्रों तथा भोगों से रहित रहते हैं ॥४५॥ इस तरह से कहने वाली पत्नी से हर्षित होकर उसके पति ने कहा तुम सत्य कह रही हो मुझे सवकुछ; श्रीरामजी की कृपा से ही प्राप्त है ॥४६॥ इस तरह से श्रीरामचन्द्र का यश सुनकर वह दूत चला गया । तव तक दूसरे के गृह में दूसरे दूत ने सुना ॥४७॥ कोई सुन्दरी शय्या पर वीणा बजाती हुयी अपने पति के साथ श्रीरामजी

स्वामिन्वयं धन्यतमा येषां पुर्याः पतिः प्रभुः ।
श्रीरामः स्वप्रजाः पुत्रानिव पाति च रक्षकः ॥४९॥
यो महत्कर्मदुःसाध्यं कृतवान्सुलभं न तत्। समुद्रं यो निजग्राह सेतुं तत्र बवन्ध च॥५०॥
रावणं यो रिंपु हत्वा लङ्कां सम्भज्य वानरैः ।
जानकीमाजहारात्र महदाचारमाचरत् ॥५१॥
इति प्रोक्तं समाकर्ण्य वचः सुमधुराक्षरम्। पतिः स्मितं चकारेमां वाक्यं पुनरथाब्रवीत्॥५२॥
मुग्धेनेदं महत्कर्म रामचन्द्रस्य भामिनि !। दशाननवधादीनि समुद्रदमनानि च ॥५३॥
लीलया योऽवनिं प्राप्तो ब्रह्मादिप्रार्थितो महान् ।
करोति सच्चरित्राणि महापापहराणि च ॥५४॥
मा जानीहि नरं रामं कौसल्यानन्ददायकम्। सृजत्यवति हन्त्येतद्विश्वं लीलात्तमानुषः॥५५॥
धन्या वयं ये रामस्य पश्यामो मुखपङ्कजम् ।
ब्रह्मादिसुरदुर्दर्शं महापुण्यकृतो वयम् ॥५६॥
अशृणोद्रामचन्द्रस्य चरित्रं श्रुतिसौख्यदम्। इत्यादि वाक्यं शुश्राव चारो द्वारि स्थितो मुहुः॥५७॥
अन्यो ह्यन्यगृहं गत्वा तस्थौ श्रोतुं हरेर्यशः ।
तत्रापि रामभद्रस्य यशः शुश्राव शोभनम् ॥५८॥
खेलन्ती स्वामिना सार्धंद्यूतेन सुमनोहरा। उवाच वाक्यं मधुरं नर्तयन्तीव कङ्कणे ॥५९॥
जितं मया कान्त ! जवेन सर्वं करिष्यसि त्वं किमु हारिमानसः ।
इत्यादि वाक्यं परिहासपूर्वकं कृत्वा स्वकान्तं परिषस्वजे मुदा ॥६०॥
उवाच कान्तश्चार्वङ्गि जितमेव सुशोभने। रामं मे स्मरतो नित्यं न कुत्रापि पराजयः॥६१॥

की सत्कीर्ति को गा रही थी ॥४८॥ वह कह रही थी हे स्वामिन् ! हमलोग अत्यन्त धन्य हैं कि हमलोगों की नगरी के स्वामी श्रीराम प्रभु हैं । वे अपनी प्रजाओं की रक्षा पुत्रों के समान करते हैं ॥४९॥ उन्होंने महान कर्म को सुलभ बना दिया । उन्होंनें समुद्र पर सेतु का निर्माण कर दिया ॥५०॥ उन्होंनें रावण को मारकर वानरों के द्वारा लङ्का को विनष्ट करके जानकीजी को यहाँ लाया और महान् आचरण का पालन किया ॥५१॥ अत्यन्त मधुर इस बात को सुनकर मुस्कुराता हुआ उसका पति कहने लगा ॥५२॥ सुन्दरि दशानन का वध और समुद्र बन्धन कोई राम का महान् कर्म नहीं है ॥५३॥ ब्रह्मा आदि की प्रार्थना से वे पृथिवी पर आये हैं और बड़े-बड़े पापों को विनष्ट करने वाले सच्चरित्रों को करते हैं ॥५४॥ तुम श्रीरामजी के केवल कौसल्यानन्द वर्धन मनुष्य की मत जानो वे लीला के लिए मनुष्य बने हैं । वे जगत् सृष्टि, पालन और संहार करते हैं ॥५४॥ हमलोग महापुण्यवान् और धन्य है कि हमें उनके मुख कमल का दर्शन मिल जाता है । उनका दर्शन ब्रह्मा आदि देवताओं के लिए दुर्लभ है ॥५५॥ उस द्वार पर खड़ा होकर दूत ने भगवान् राम के कानों को सुख देने वाले यश का श्रवण किया ॥५६-५७॥ दूसरा दूत दूसरे द्वार पर श्रीहरि का यश सुनने के लिए गया था, वहाँ भी उसने श्रीरामचन्द्रजी का सुन्दर यश को सुना ॥५८॥ वहाँ सुन्दरी अपने पति के साथ द्यूतक्रीड़ा कर रही थी । उसने अपने कङ्गनों को नचाती हुयी कही । हे कान्त ! मैंने तो वेग पूर्वक सब जीत लिया है । अब तुम क्या करोगे? इस तरह से मनोहर वाक्य को कहकर उसने अपने पति को गले से लगा लिया ॥५९-६०॥ पति ने कहा— कान्ते

इदानीं त्वां तु जेष्यामि रामं स्मृत्वा मनोहरम् ।
देवा यथा पुरा स्मृत्वा दितिजानजयन्क्षणात् ।।६२।।
एवमुक्त्वा पाशकानां परिवर्तनमाकरोत्। तावज्जयं प्रपेदेऽसौ हर्षितो वाक्यमब्रवीत् ।।६३।।
मम प्रोक्तमृतं जातं जिता त्वं नवयौवना । रामस्मारी कदाप्येव न भवेद्रिपुतो भयी ।।६४।।
इत्येवं तौ वदन्तौ च परस्परमथोत्सुकौ । परिरभ्य दृढं प्रेम्णा ततश्चारोगतो गृहम्।।६५।।
एवं पञ्चमहाचारा राज्ञः संश्रुत्य वै यशः। परस्परं प्रशंसन्तो गेहं स्वं स्वं ययुर्मुदा।।६६।।
एकः षष्ठश्चरः कारुगेहानालोक्य तत्र ह । जगाम श्रोतुकामोऽसौ यशो राज्ञो महीपतेः ।।६७।।
रजकः क्रोधसंस्पृष्टो भार्यामन्यगृहोषिताम् । पदा सन्ताडयामास धिक्कुर्वञ्छोणनेत्रवान् ।।६८।।
गच्छ त्वं मद्गृहात्तस्य गेहं यत्रोषिता दिनम् ।
नाहं गृह्णामि भवतीं दुष्टां वचनलङ्घिनीम् ।।६९।।
तदाऽस्य माता प्रोवाच मा त्यजैनां गृहागताम् ।
अपराधेन रहितां दुष्टकर्मविवर्जिताम् ।।७०।।
मातरं प्रत्युवाचाथ रजकः क्रोधसंयुतः । नाहं राम इव प्रेष्ठां गृह्णाम्यन्यगृहोषिताम् ।।७१।।
स राजा यत्करोत्येव तत्सर्वं नीतिमद्भवेत् । अहं गृह्णामि नो भार्या परवेश्मनि संस्थिताम्।।७२।।
पुनः पुनरुवाचेदं नाहं रामो महीश्वरः । यः परस्य गृहे संस्थां जानकीं वै ररक्ष सः ।।७३।।
इति वाक्यं समाश्रुत्य चारः क्रोधपरिप्लुतः ।
खड्गं गृहीत्वा स्वकरे तं हन्तुं विदधे मनः ।।७४।।

मैं तो जीत ही गया हूँ । श्रीराम का सदा स्मरण करते रहने से मैं कभी हारता नहीं हूँ ।।६१।। अब मैं मनोहर श्रीराम का स्मरण करके तुम्हें उसी तरह से जीतूंगा जिस तरह से देवता श्रीराम का स्मरण करके दैत्यों को जीत लिए थे।।६२।। इसतरह से कहकर अपने पाशों को उसने बदल दिया और विजय प्राप्त करके उसने हर्षित होकर कहा।।६३।। मेरी बात सत्य हो गयी तुम नव यौवन को मैंने जीत लिया । श्रीराम का स्मरण करने वाले को कभी भी शत्रु से भय नहीं होता ।।६४।। इस तरह से परस्पर में अत्यन्त प्रेम पूर्वक कहते हुए दोनों ने एक दूसरे का आलिङ्गन किया और वह गुप्तचर वहाँ से चला गया ।।६५।। इस तरह पाँच बड़े गुप्तचर राजा का यश सुनकर श्रीराम की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घर चले गये ।।६६।। एक छठा गुप्तचर किसी धोबी के घर को देखकर वहाँ श्रीराम का यश सुनने के लिए गया ।।६७।। धोबी किसी दूसरे के घर में रही हुयी अपनी पत्नी को क्रोध पूर्वक पैर से मारा और आँखें लाल करके उसका धिक्कार किया ।।६८।। उसने कहा— तुम मेरे घर से उसी के घर चली जा जहाँ दिन में थी मेरी बातों का उल्लंघन करने वाली तुमको मैं नहीं रख सकता हूँ ।।६९।। उस समय उसकी माता ने कहा इसको त्यागो मत यह घर आ गयी है यह निरपराध है, इसने कोई दूषित कर्म नहीं किया है ।।७०।। क्रोधी रजक ने अपनी माँ से कहा— मैं राम के समान दूसरे के घर में रहने वाली पत्नी को नहीं रखूँगा।।७१।। वे राजा हैं जो भी करें वह नीति से युक्त हो जाता है; मैं दूसरे के घर में रहने वाली पत्नी को नहीं स्वीकार कर सकता हूँ ।।७२।। उसने बार-बार कहा मैं राजा राम नहीं हूँ । उन्होंने दूसरे के घर में रहने वाली सीता को रख लिया ।।७३।। इस वाक्य को सुनकर क्रुद्ध होकर गुप्तचर ने अपने हाथ में खड्ग लेकर उसको मार देने का मन बनाया ।।७४।। उसे राम की यह आज्ञा याद आयी कि मेरे किसी भी प्रजा को नहीं मारना।

स रामोक्तं च सस्मार न वध्यः कोऽपि मे जनः ।
इति ज्ञात्वा सरोषं तु सञ्जहार महामनाः ।।७५।।
तदा श्रुत्वा सुदुःखार्तः पञ्च चारा यतः स्थिताः ।
ततो गतः प्रकुपितो निःश्वसन्मुहुरुच्छ्वसन् ।।७६।।
ते वै परस्परं तत्र मिलितास्तु समब्रुवन्। स्वश्रुतं रामचरितं सर्वलोकैकपूजितम् ।।७७।।
ते तद्भाषितमाकर्ण्य परस्परममन्त्रयन्। न वाच्यं रघुनाथायावाच्यं दुष्टजनोदितम् ।।७८।।
इति संमन्त्र्य ते गेहं गत्वा सुषुपुरुत्सुकाः । प्राता राज्ञे प्रशंसाम इति बुद्ध्या व्यवस्थिताः ।।७९।।

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
चारनिरीक्षणं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५५।।

छप्पनवाँ अध्याय

शेष उवाच

प्रातर्नित्यं विधायासौ ब्राह्मणान्वेदवित्तमान्। हिरण्यदानैः सन्तर्प्य विधिवत्संसदं ययौ।।१।।
लोकाः सर्वे नमस्कर्तुं रघुनाथं महीपतिम् । पुत्रवत्स्वप्रजाः सर्वाः पालयन्तं ययुः सभाम् ।।२।।
लक्ष्मणेनातपत्रं तु धृतं मूर्धनि भूपतेः । तदा भरतशत्रुघ्नौ चामरद्वन्द्वधारिणौ ।।३।।
वसिष्ठप्रमुखास्तत्र मुनयः पर्युपासत । सुमन्तप्रमुखास्तत्र मन्त्रिणो न्यायकर्तृकाः।।४।।

इस बात को याद करके उसने अपने क्रोध को रोक लिया ।।७५।। उसके बाद सुनकर वह वहाँ गया जहाँ पर पाँच गुप्तचर थे । वह क्रोध के कारण लम्बी श्वास ले रहा था ।।७६।। वे परस्पर में मिलकर अपने से सुने हुए सभी लोगों को समादृत श्रीरामचरित को कहे ।।७७।। वे उसके वचन को सुनकर आपस में विचार किए कि दुष्ट व्यक्ति से कहे गये अवाच्य वचन को श्रीराम को नहीं बतलाना चाहिए ।।७८।। इस तरह से मन्त्रणा करके वे अपने घर जाकर सो गये । उन लोगो ने सोचा कि प्रात:काल हमलोग श्रीरामचन्द्र की प्रशंसा करेंगे ।।७९।।

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवे पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में गुप्तचरों द्वारा निरीक्षण वर्णन नामक पचपनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५५।।

प्रात:काल आकर गुप्तचरों का धोबी की बातों को श्रीरामचन्द्रजी को सुनाना

शेषजी ने कहा— प्रात:काल श्रीरामचन्द्रजी नित्य कर्म करके वैदिक ब्राह्मणों को सुवर्णदान करके सभा में गये ।।१।। लोग भी अपनी प्रजा का पुत्रवत् पालन करने वाले राजा श्रीरामचन्द्र को नमस्कार करने के लिए सभा में आये ।।२।। लक्ष्मणजी उनके शिर पर छत्र लगाये हुए थे, भरतजी तथा शत्रुघ्नजी उनको चमर से हवा कर रहे थे ।।३।। वसिष्ठ आदि मुनिगण उस सभा में विद्यमान थे । सुमन्त्र आदि मन्त्रिगण उस सभा में न्याय करने

एवं प्रवृत्ते समये षट्चारास्ते स्वलङ्कृताः। समाजग्मुर्नरपतिं नमस्कर्तुं सभास्थितम्॥५॥
तान्वक्तुकामान्संवीक्ष्य चारान्नृपतिसत्तमः। सभायामन्तरवेश्म रहः प्राविशदुत्सुकः ॥६॥
एकान्ते तांश्चरान्सर्वान्पप्रच्छ सुमतिर्नृपः। कथयन्तु चरा मह्यं यथातथ्यमरिन्दमाः ॥७॥
लोका ब्रुवन्ति मे कीदृग्भार्याया मम कीदृशम्।
मन्त्रिणां कीदृशं लोका वदन्ति चरितं कथम् ॥८॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य चारा राममथाब्रुवन्।
मेघगम्भीरया वाचा पृच्छन्तं रघुनायकम् ॥९॥

चारा ऊचुः

नाथ कीर्तिर्जनान्सर्वान्पावयत्यधुना भुवि। गृहे गृहे श्रुताऽस्माभिःपुरुषैः स्त्रीभिरीडिता ॥१०॥
विवस्वतो महावंशं भवता परमेष्ठिना। अलङ्कर्तुं गतं भूमौ कीर्तिर्विस्तारिताः बहुः ॥११॥
अनेके सगराद्याश्च कीर्तिमन्तो महाबलाः। अभवंस्तादृशी कीर्तिस्तेषां नाभूद्यथा तव॥१२॥
त्वया नाथेन सकलाः कृतार्थाश्च प्रजाः कृताः।
यासां नाकालमरणं न च रोगाद्युपद्रुतिः ॥१३॥
यादृशश्चन्द्रमा लोके यादृशी जाह्नवी सरित्।
तादृक्तव च सत्कीर्तिः प्रकाशयति भूतलम् ॥१४॥
ब्रह्मादिका भवत्कीर्तिमाकर्ण्य त्रपिता भृशम्।
नाथ ! सर्वत्र ते कीर्तिः पावयत्यधुना जनान् ॥१५॥
वयं धन्यतमाः सर्वे ये चारास्तव भूपते !। क्षणे क्षणे तव मुखं लोकयाम मनोहरम् ॥१६॥
वचः श्रुत्वा तु चाराणां पञ्चानां राघवस्तदा।
षष्ठं पप्रच्छं चारं तं विलक्षणमुखाङ्कितम् ॥१७॥

वाले थे ॥४॥ उसी समय आये हुए उन गुप्तचरों को कुछ कहने की इच्छा से युक्त देखकर राजवर्य श्रीरामचन्द्र सभा के भीतर के गृह में प्रवेश कर गये ॥५-६॥ उन सबों से एकान्त में बुद्धिमान राजा ने पूछा। उन्होंने कहा गुप्तचरों आप लोग सही-सही बातों को बतलायें ॥७॥ लोग मेरे विषय में और मेरी पत्नी सीता के विषय में क्या कहते हैं ? वे हमारे मन्त्रियों का चरित्र कैसा बतलाते हैं ?॥८॥ इस वाक्य को सुनकर गुप्तचरों ने श्रीरामचन्द्रजी से मेघ के समान गम्भीर वाणी से पूछने वाले श्रीरामचन्द्रजी से कहा ॥९॥ **गुप्तचरों ने कहा—** हे नाथ ! इस समय आपका यश सभी लोगों को पवित्र बना रहा है। हमलोगों ने प्रत्येक घरों में आपकी वंदनीय कीर्ति को सुना है ॥१०॥ आप श्रीहरि हैं सूर्यवंश को अलंकृत करने के लिए पृथिवी पर आये हैं और आपने अपने यश का विस्तार किया है ॥११॥ इस वंश में महाबलवान् सगर आदि राजा हुए हैं किन्तु उनका वैसा यश नहीं हुआ॥१२॥ आपने समस्त प्रजाओं को कृतार्थ किया है। किसी प्रजा की न तो अकाल मृत्यु होती है और न तो किसी को रोग आदि का उपद्रव होता है ॥१३॥ लोक में जैसे चन्द्रमा हैं तथा जैसी गङ्गा नदी हैं उसी तरह की आपकी कीति पृथिवी को प्रकाशित करती है ॥१४॥ ब्रह्मा आदि देवता आपकी कीर्ति से अत्यन्त लज्जित होते हैं। हे नाथ ! आपकी कीर्ति इस समय लोगों को पवित्र करती है। हमलोग आपके जो गुप्तचर हैं धन्य हैं क्योंकि हमलोग प्रत्येक क्षण आपके मनोहर मुख का दर्शन पाते हैं ॥१५-१६॥ पाञ्च गुप्तचरों की बातों को

राम उवाच

सत्यं वद महाबुद्धे ! यच्छ्रुतं लोकसङ्करे। तादृक्प्रशंस मे सर्वमन्यथा पातकादिकृत्॥१८॥
पुनः पुनश्च तं रामः पप्रच्छाशु सविस्तरम्। तथापि न ब्रवीत्येव रामं लौकिकभाषितम्॥१९॥
तदा रामः प्रत्यवोचच्चारं मुखविलक्षितम् । शपामि त्वां तु सत्येन शंस सर्वं यथातथम् ॥२०॥
तदा रामं प्रत्युवाच चारो वाक्यं शनैः शनैः ।
अकथ्यमपि ते वाच्यं वाक्यं कारुजनोदितम् ॥२१॥

चार उवाच

स्वामिन्सर्वत्र ते कीर्तिर्दशाननवधादिका। अन्यत्रराक्षसगृहे स्थितायास्ते स्त्रिया अहो ॥२२॥
कारुरेकस्तु रजको निशीथे महिलां स्वकाम् ।
अन्यगेहोषितां दृष्ट्वा धिक्कुर्वन्समताडयत् ॥२३॥
तन्माता प्रत्युवाचेमां कथं ताडयसेऽनघाम् । गृहाण मा कृथा निन्दां स्त्रियं मद्वाक्यमाचर ॥२४॥
तदाऽवोचत्स रजको नाहं रामो महीपतिः । यद्राक्षसगृहेऽध्युष्टांसीतामङ्गीचकार सः ॥२५॥
सर्वं राज्ञः कृतं कर्म नीतिमद्भवति प्रभो !। अन्येषां पुण्यकर्तॄणामपि कृत्यमनीतिमत् ॥२६॥
पुनः पुनरुवाचासौ नाहं रामो महीपतिः । चुक्रुधे समये राजन्मया वाक्यं तव स्मृतम् ॥२७॥
तदानीं शिर आच्छिद्य पातयामि महीतले । कृतः पुनर्विचारो मे क्व रामो रजकः क्व नु॥२८॥
अयं दुष्टोऽनृतं वक्ति नहीदं तथ्यमुच्यते। आज्ञापयसि चेद्राम साम्प्रतं मारयामि तम् ॥२९॥
अवाच्यमपि ते प्रोक्तं त्वदाग्रहत उन्नयम्। राजा प्रमाणमत्रेदं विचारयतु सङ्गतम् ॥३०॥

सुनकर श्रीरामचन्द्र ने छठे विलक्षण ढंग के मुख बनाये हुए गुप्तचर से कहा ॥१७॥ **श्रीरामचन्द्र ने कहा**— हे महाबुद्धे ! तुमने लोक समुदाय में जो कुछ सुना है उसे सत्य-सत्य बतलाओ । इस प्रकार की मेरी प्रशंसा तो मुझे पापी बना देगी ॥१८॥ श्रीरामचन्द्रजी ने उससे बार-बार विस्तार पूर्वक पूछा फिर भी उसने लोगों की वार्ता को श्रीरामचन्द्र को नहीं सुनाया ॥१९॥ उस समय विकृत मुख वाले गुप्तचर से श्रीरामजी ने कहा यदि तुम सत्य नहीं कहते हो तो मैं तुम्हें शाप देता हूँ ॥२०॥ तब उस गुप्तचर ने धीरे-धीरे श्रीरामचन्द्रजी से कहा नहीं कहने योग्य भी बात धोबी ने आपके विषय में कहा है ॥२१॥ **गुप्तचर ने कहा**— हे राजन् ! रावण वध सम्बन्धी आपकी कीर्ति सर्वत्र है । किन्तु राक्षस के घर में रहने वाली आपकी स्त्री के विषय में ॥२२॥ एक धोबी आधी रात को दूसरे के घर में रहने वाली अपनी पत्नी को देखकर उसकी निन्दा करके उसे मारा ॥२३॥ उसकी माँ ने कहा कि यह निर्दोष है इसे क्यों मारते हो इसको स्वीकार करो इसकी निन्दा मत करो, मेरी बात मानो ॥२४॥ उस समय उस धोबी ने कहा कि मैं राजा राम नहीं हूँ कि उन्होंने राक्षस के घर में रहने वाली सीता को स्वीकार कर लिया ॥२५॥ राजा तो जो कुछ करते हैं वे सारी बातें नीति से युक्त हो जाती हैं, दूसरे पुण्यवान व्यक्ति का भी कार्य अनीति बन जाता है ॥२६॥ राजन् ! उसने बार-बार कहा कि मैं राम नहीं हूँ, तो उसे सुनकर मुझे क्रोध हो गया, किन्तु मुझे आपकी बात याद आ गयी । अन्यथा मैं उसका शिर काटकर पृथिवी पर गिरा देता । मैंने विचार किया कि राम और रजक में कौन सी तुलना है ?॥२७-२८॥ यह दुष्ट है झूठ बोल रहा है, यह सत्य नहीं बोल रहा है । हे राम ! यदि आप आज्ञा दें तो मैं उसे मार दूँ ॥२९॥ उसने आपके विषय में अवाच्य बातें कही है, किन्तु आपकी आज्ञा का पालन मैंने किया । महाराज ! इसके विषय में आप जैसा सोचें वैसी आज्ञा

शेष उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य महावज्रनिभाक्षरम् । निःश्वसन्मुहुरुच्छ्वासमाचरन्मूर्च्छितोऽपतत् ॥३१॥
तं मूर्च्छितं नृपं दृष्ट्वा चारा दुःखसमन्विताः ।
वीजयामासुर्वासोग्रैर्दुःखापनयहेतवे ॥३२॥
स लब्धसंज्ञो नृपतिर्मुहूर्तेन जगाद तान् । गच्छन्तु भरतं शीघ्रं प्रेषयन्तु च मां प्रति॥३३॥
ते दुःखिताश्चरास्तूर्णं भरतस्य गृहं गताः। कथयामासू रामस्य सन्देशं नयहारकाः॥३४॥
भरतो रामसन्देशं श्रुत्वा धीमान्ययौ सदः । रामं प्रति रहः संस्थं श्रुत्वा तं त्वरया युतः ॥३५॥
आगत्य तं प्रतीहारं प्रत्युवाच महामनाः। कुत्रास्ते रामभद्रोऽसौ मम भ्राता कृपानिधिः ॥३६॥
तन्निर्दिष्टं गृहं वीरो ययौ रत्नमनोहरम् । रामं विलोक्य विक्लान्तं भयमाप स मानसे ॥३७॥
किं वाऽसौ कुपितो रामः किं वा दुःखमिदं विभोः ।
तदा प्रोवाच नृपतिं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः ॥३८॥
स्वामिन्सुखसमाराध्यं वक्त्रं ते कथमानतम् ।
अश्रुभिर्लक्ष्यते राहुग्रस्तदेहः शशीव ते ॥३९॥
सर्वं मे कारणं तथ्यं ब्रूहि मां किं करोमि ते ।
त्यज दुःखं महाराज ! कथं दुःखस्य भाजनम् ॥४०॥
एवं भ्रात्रा प्रोच्यमानो गद्गदस्वरया गिरा । प्रोवाच भ्रातरं वीरो रामचन्द्रश्च धार्मिकः ॥४१॥
शृणु भ्रातर्वचो मह्यं मम दुःखस्य कारणम् ।
तन्मार्जनं कुरुष्वाद्य भ्रातः प्रातर्महामते ! ॥४२॥
वंशे वैवस्वते राजा न कश्चिदयशःक्षतः । मत्कीर्तिरद्य कलुषा गङ्गा यमुनया गता॥४३॥

दें ॥३०॥ **शेषजी ने कहा**— महावज्र के समान अक्षरों वाले इस वाक्य को सुनकर भगवान् लम्बी श्वास लेते हुए मूर्छित होकर गिर पड़े ॥३१॥ उनको मृर्छित देखकर दुःखी होकर गुप्तचरों ने उन्हें कपड़े से हवा किया जिससे कि उनका दुःख दूर हो ॥३२॥ मुहूर्त भर में होश में आकर भगवान् राम ने उन गुप्तचरों से कहा— तुमलोग भरतजी के पास जाकर उन्हें मेरे पास भेजो ॥३३॥ वे दु;खी गुप्तचर भरतजी के गृह में गये और उन सबों ने श्रीराम का उन्हें सन्देश सुनाया ॥३४॥ वुद्धिमान भरतजी उस सन्देश को सुनकर सभा में गये । उनको एकान्त में स्थित सुनकर वे उनके पास गये ॥३५॥ उन्होंने आकर प्रतिहार से पूछा कि मेरे कृपा सागर भाई कहाँ है ?॥३६॥ उसके द्वारा निर्दिष्ट रत्न से बने हुए मनोहर गृह में भरतजी गये । श्रीरामजी को विकल देखकर वे भयभीत हो गये ॥३७॥ क्या श्रीराम क्रुद्ध हैं ? अथवा इनको कोई कष्ट हो गया है ? उसके बाद उन्होंने बार-बार श्वास लेते हुए राजा से कहा ॥३८॥ हे स्वामिन्— आपका आराध्य मुख झुका हुआ क्यों है ? आँसुओं के कारण यह राहुग्रस्त चन्द्रमा के समान प्रतीत हो रहा है ॥३९॥ आप मुझे इसका कारण बतलाएँ मैं क्या करूँ। महाराज ! आप दुःख का परित्याग करें आप दुःखी क्यों हैं ?॥४०॥ इस तरह से भाई के द्वारा गद्गद वाणी से कहे जाते हुए धार्मिक वीर श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई से कहे ॥४१॥ हे भ्रातः आप मेरे दुःख का कारण सुनें । हे भाई! आज प्रातःकाल आप उस दुख को दूर करें ॥४२॥ सूर्यवंश में कोई भी राजा अयश का पात्र नहीं बना। आज मेरी कीर्ति यमुना से मिली हुयी गङ्गा के समान कलुषित हो गयी है ॥४३॥ जिस मनुष्य का पृथिवी पर यश है,

येषां यशो नृणां भूमौ तेषामेव सुजीवितम्। अपकीर्तिक्षतानां तु जीवितं मृतकैः समम् ॥४४॥
येषां यशो भवेद्भूमौ तेषां लोकाः सनातनाः ।
अपकीर्त्युरगीदष्टास्तेषां भूयादधोगतिः ॥४५॥
अद्य मे कलुषा कीर्तिः स्वर्धुनी लोकविश्रुता ।
तच्छृणुष्व वचो मेऽद्य रजकेन यथोदितम् ॥४६॥
अस्मिन्पुरऽद्य रजक उक्तवाञ्जनकीभवम् । किञ्चिद्वाच्यं ततो भ्रातः किं करोमि महीतले॥४७॥
किमात्मानं जहाम्यद्य किमेनां जानकीं स्त्रियम् ।
उभयोः किं मया कार्यं भवांस्तथ्यं ब्रवीतु तत् ॥४८॥
इत्युक्त्वा निर्गलद्बाष्पो वेपथु क्षुभिताङ्गकः। पपात भूमौ विरजो धार्मिकाणां शिरोमणिः ॥४९॥
भ्रातरं पतितं दृष्ट्वा भरतो दुःखसंयुतः । संवीज्य शनकै रामं प्राप्तसंज्ञं चकार सः॥५०॥
संज्ञां प्राप्तं तु संवीक्ष्य रामचन्द्रं सुदुःखितम् ।
उवाच दुःखनाशाय वाक्यं तु सुमनोहरम् ॥५१॥
कोऽयं वै रजकः किं तु वाच्यं वाक्यं यथाऽब्रवीत् ।
जिह्वाच्छेदं करिष्यामि जानकीवाच्यकारिणः ॥५२॥
तदा रामोऽब्रवीद्वाक्यं रजकस्य मुखोद्गतम्। श्रुतं चारेण तत्सर्वं भरताय महात्मने ॥५३॥
तच्छ्रुत्वा भरतः प्राह भ्रातरं दुःखशोकिनम् ।
जानकीवह्निशुद्धाऽभूल्लाङ्कायां वीरपूजिता ॥५४॥
ब्रह्माऽब्रवीदियं शुद्धा पिता दशरथस्तव। कथं सा रजकोक्तित्वाद्धातव्या लोकपूजिता॥५५॥
ब्रह्मादिसंस्तुता कीर्तिस्तव लोकान्पुनाति हि ।
सा कथं राजकोक्त्या वै कलुषाऽद्य भविष्यति ॥५६॥

उसी का सुन्दर जीवन है, दूषित यश वाले मनुष्यों का जीवन तो मरे हुए के समान है ॥४४॥ पृथिवी पर जिन लोगों का यश फैलता है उन लोगों को सनातन लोकों की प्राप्ति होती है, जिन लोगों को अपकीर्ति रूपी सर्पिणी ने डॅस लिया है, उन लोगों की अधोगति होती है ॥४५॥ आज मेरी यशरूपी लोक विख्यात गङ्गा कलुषित हो गयी है । रजक ने जो कहा है उसे आप सुनें ॥४६॥ इस नगर में एक रजक ने जानकी के विषय में कुछ अवाच्य कहा है; अतएव मैं क्या करूँ ॥४७॥ क्या अपने जीवन का परित्याग कर दूँ अथवा जानकी का परित्याग करूँ। आप ठीक-ठीक बतलायें कि इन दोनों में से कौन सा कार्य करूँ ॥४८॥ इस तरह से कहकर जिनकी आँखों से आँसू बह रहा था और जिनका शरीर काँप रहा था वे धार्मिक शिरोमणि श्रीरामजी पृथिवी पर गिर पड़े ॥४९॥ गिरे हुए भाई को देखकर दुःखी भरतजी हवा करके धीरे-धीरे उनको होश में लाये ॥५०॥ होश में आये हुए श्रीराम को देखकर दुःखी भरतजी उनके दुःख का नाश करने के लिए मनोहर वाक्य कहे ॥५१॥ यह कौन रजक है ? उसने जानकीजी के विषय में क्या कहा है ? जानकीजी की निन्दा करने वाले की मैं जीभ काट दूँगा ॥५२॥ उसके बाद रामजी ने रजक की कही हुयी बात को कहा जो कुछ भी गुप्तचर ने उन्हें सुनाया था उसे भरतजी को सुनाया ॥५३॥ उसको सुनकर भरतजी ने दुख तथा शोक करने वाले श्रीरामचन्द्रजी से कहा वीर पूजिता जानकीजी की तो अग्निशुद्धि लङ्का में हो चुकी है ॥५४॥ ब्रह्माजी तथा पिताजी दोनों ने उनको शुद्ध बतलाया

तस्मात्यज महादुखं सीतावाच्यसमुद्भवम् । कुरु राज्यं तया सार्थमन्तर्वत्न्या सुभाग्यया ॥५७॥
त्वं कथं स्वशरीरं तु हातुमिच्छसि शोभनम् ।
वयं हताः स्म सर्वेऽद्यत्वां विना दुःखनाशकम् ॥५८॥
क्षणं सीता न जीवेत त्वां विना सुमहोदया ।
तस्मात्पतिव्रतासाकं भुनक्तु विपुलां श्रियम् ॥५९॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य भरतस्य च धार्मिकः ।
पुनरेव जगादेवं वाक्यं वाक्यविदांवरः ॥६०॥
यत्त्वं कथयसि भ्रातस्तत्सर्वं धर्मसंयुतम्। परं यद्वच्म्यहं वाक्यं तत्कुरुष्व ममाज्ञया ॥६१॥
जानाम्येनां वह्निशुद्धां पवित्रां लोकपूजिताम् ।
लोकापवादाद्भीतोऽहं त्यजामि स्वां तु जानकीम् ॥६२॥
तस्मात्करे शितं धृत्वा करवालं सुदारुणम् ।
शिरश्छिन्ध्यथवा जायां जानकीं मुञ्च वै वने ॥६३॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य रामस्य भरतोऽपतत् ।
मूर्च्छितः सन्क्षितौ देहे कम्पयुक्तः सवाष्पकः ॥६४॥

इति श्रीपद्मपुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
भरतवाक्यं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

* * *

है । रजक के कहने मात्र से उनको कैसे त्यागा जा सकता है ? वे तो लोक पूजिता हैं ॥५५॥ ब्रह्मादि देवताओं से वर्णित आपकी कीर्ति संसार को पवित्र बना रही है, आज उस रजक के कहने से कैसे कलुषित हो सकती है ॥५६॥ अतएव सीता के अपवाद जन्य दुःख का आप परित्याग कर दें । उन सुन्दर भाग्य वाली तथा गर्भिणी सीताजी के साथ आप राज्य करें ॥५७॥ आप अपने सुन्दर शरीर का परित्याग क्यों करना चाहते हैं । दुःखों को विनाश करने वाले आपके बिना तो हमसब लोग मर जायेंगे ॥५८॥ आपके बिना सीताजी क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकती हैं अतएव उन पतिव्रता के साथ आप विपुलश्री का भोग करें ॥५९॥ भरतजी के इस वाक्य को सुनकर धार्मिक श्रीरामजी उनसे फिर कहे ॥६०॥ हे भ्रातः आप जो कह रहे हैं वह सब धर्मानुकूल है; किन्तु जो मैं कह रहा हूँ उसे आप करें यह मेरी आज्ञा है ॥६१॥ मैं सीता को अग्नि से शुद्ध, पवित्र तथा लोकपूजित जानता हूँ; किन्तु लोकापवाद के भय से मैं अपनी जानकी का परित्याग कर रहा हूँ ॥६२॥ अतएव अपने हाथ से तीक्ष्ण तलवार लेकर तुम मेरा या तो शिर काट दो अथवा जानकी को वन में छोड़ आओ ॥६३॥ श्रीरामजी के इस वाक्य को सुनकर भरतजी मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े; उनकी आँखों से आँसू बह रहा था और उनका शरीर काँप रहा था ॥६४॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में भरत वाक्य वर्णन नामक छप्पनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५६॥

* * *

सत्तावनवाँ अध्याय

वात्स्यायन उवाच

जगत्पवित्रसत्कीर्तिजानक्यावाच्यवाचनम् । कथं समकरोत्स्वामी तन्मे कथय सुव्रत ! ॥१॥
यथा मे मनसः सौख्यं भविष्यति सुशोभनम् ।
तथा कुरुष्व शेषाद्य त्वन्मुखान्निःसृतामृतम् ।
पिबतस्तृप्तिरेवस्याद्यया संसृतिकृन्तनम् ॥२॥

शेष उवाच

मिथिलायां महापुर्यां जनको नाम भूपतिः । तस्यां करोति सद्राज्यं धर्मेणाराधयन्प्रजाः ॥३॥
तस्य सङ्कर्षतो भूमिं सीतया दीर्घमुख्यया। सीरध्वजस्य निरगात्कुमारी ह्यतिसुन्दरी ॥४॥
तदाऽत्यन्तं मुदं प्राप्तः सीरकेतुर्महीपतिः । सीता नामाकरोत्तस्या मोहिन्या जगतः श्रियः ॥५॥
सैकदोद्यानविपिने खेलन्ती सुमनोहरा । अपश्यत्स्वमनः कान्तं शुकशुक्योर्युगं वदत् ॥६॥
अत्यन्तं हर्षमापन्नमत्यन्तं काललोलुपम्। परस्परं भाषमाणं स्नेहेन शुभया गिरा ॥७॥
रममाणं तदा युग्मं नभसि क्षिप्रवेगतः । समुत्पतन्नगोपस्थे स्थितं शब्दं चकार तत्॥८॥
रामो महीपतिर्भूमौ भविष्यति मनोहरः । तस्य सीतेति नाम्ना तु भविष्यति महेलिका॥९॥
स तया सह वर्षाणां सहस्राण्येकयुग्दशः । राज्यं करिष्यते धीमान्कर्षन्भूमिपतीन्बली ॥१०॥
धन्या सा जानकी देवी धन्योऽसौ रामसंज्ञितः ।
यो परस्परमापन्नौ पृथिव्यां रंस्यतो मुदा ॥११॥
इति सम्भाषमाणं तु शुकयुग्मं तु मैथिली। ज्ञात्वेदं देवतायुग्मं वाणीं तस्य विलोक्य च ॥१२॥

सीता का पति से वियोग का कारण वर्णन

वात्स्यायन महर्षि ने कहा— हे सुव्रत ! जगत् को पवित्र बनाने वाली कीर्ति से युक्त जानकीजी की निन्दा मात्र से स्वामी श्रीरामजी ने उसे क्यों मान लिया ? इसे आप मुझे बतलायें ॥१॥ जिसे सुनकर मरे मन को सुख मिले । हे शेष ! आप अपने मुख से निकले हुए अमृत के द्वारा मुझे ऐसा ही बना दें । संसार के बन्धन को काटने वाले उस कथा को सुनने मात्र से तृप्ति होगी ॥२॥ **शेषजी ने कहा—** मिथिला नगरी के राजा जनकजी थे । वे धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करते हुए राज्य करते थे ॥३॥ राजा सीरध्वज जब यज्ञार्थ भूमि को लम्बे मुख वाले हल से भूमि को जोत रहे थे तो वहाँ एक अत्यन्त सुन्दरी कुमारी निकली ॥४॥ उससे राजा सीरध्वज अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने जगन्मोहिनी उस लक्ष्मी का नाम सीता रखा ॥५॥ एक बार उद्यान के वन में खेलती हुयी सीताजी ने एक शुक-शुकी को आपस में बातचित करते हुए देखा ॥६॥ वे दोनों अत्यन्त प्रसन्न तथा कामलोलुप थे । वे परस्पर में स्नेह पूर्वक मनोहर वाणी में बातें कर रहे थे । आकाश में शीघ्रता से वेग पूर्वक उड़ते हुए वे पर्वत के ऊपर बैठ गये तथा शब्द करने लगे ॥७-८॥ वह कह रहे थे पृथिवी पर राम राजा होंगे, उनकी रानी सीता होंगी । राम सीता के साथ ग्यारह हजार वर्ष तक दूसरे बलवान् राजाओं को हराकर राज्य करेंगे ॥९-१०॥ जानकी देवी और श्रीराम दोनों धन्य हैं । वे दोनों पृथिवी पर प्रेमपूर्वक रमण करेंगे ॥११॥ इस तरह बातचित करने वाली शुक की जोड़ी को सीताजी देवता जानकर तथा उन दोनों की वाणी को सुनकर ॥१२॥ सोचीं कि ये दोनों

मदीयास्तु कथा रम्याः कुरुते शुकयोर्युगम् ।
एतद् गृहीत्वा पृच्छामि सर्वं वाक्यं गतार्थकम् ॥१३॥
एवं विचार्य सा स्वीयाः सखीः प्रतिजगाद ह ।
गृह्णन्तु शनवैरेतत्पक्षियुग्मं मनोहरम् ॥१४॥
सख्यस्तास्तद्गिरिं गत्वा गृह्णन्पक्षियुगं वरम्। निवेदयामासुरिदं स्वसख्याः प्रियकाम्यया॥१५॥
बहुधा विविधाञ्छब्दान्कुर्वद्वीक्ष्य मनोहरम्। आश्वासयामास तदा पप्रच्छ तदिदं वचः ॥१६॥

सीतोवाच

मा भैष्टं तु युवां रम्यौ कौ वां कुत्र समागतौ ।
को रामः का च सा सीता तज्ज्ञानं तु कुतः स्मृतम् ॥१७॥
तत्सर्वं शंसतं क्षिप्रं मत्तो वां व्येतु यद्भयम् ।
इति पृष्टं तया पक्षियुगं सर्वमशंत ! ॥१८॥

पक्षियुग्ममुवाच

वाल्मीकिरास्ते सुमहानृषिर्धर्मविदुत्तमः। आवां तदाश्रमस्थाने सर्वदा सुमनोहरे ॥१९॥
स शिष्यान्गापयामास भावि रामायणं मुनिः ।
प्रत्यहं तत्पदस्मारी सर्वभूतहितेरतः ॥२०॥
तदावाभ्यां श्रुतं सर्वं भावि रामायणं महत् ।
मुहुर्मुहुर्गीयमानमायातं परिपाठितः ॥२१॥
शृण्वावां तेऽभिधास्यावो यो रामो या च जानकी ।
यद्यद्भविष्यते तस्या रामेण क्रीडितात्मना ॥२२॥
ऋष्यशृङ्गकृतेष्ट्यां च चतुर्धात्वं गतो हरिः ।
प्रादुर्भविष्यति श्रीमान्सुरस्त्रीगीतसत्कथः ॥२३॥

शुकपक्षी मेरी ही चर्चा कर रहे हैं, इन सबों को पकड़कर मैं सारी बातों को पूछूं ॥१३॥ इस तरह से सोचकर सीताजी ने अपनी सखियों से कहा— धीरे से इन पक्षियों के जोड़ों को पकड़ लो ॥१४॥ वे सखियाँ उस पर्वत पर जाकर उस पक्षी के जोड़े को पकड़ लीं। सीताजी ने उन सबों को आश्वस्त किया और कहा ॥१५-१६॥ **सीताजी ने कहा**— मनोहर पक्षियों आप दोनों डरो मत। तुम दोनों कौन हो ? कहाँ से आये हो ? राम कौन हैं और सीता कौन हैं और आप दोनों को उनका ज्ञान कैसे है ?॥१७॥ इन सारी बातों को आप बतलायें हमसे तुमलोगों को कोई भय नहीं होना चाहिए। इस तरह से पूछने पर दोनों पक्षियों ने सारी बातें बतलायीं ॥१८॥ **दोनों पक्षियों ने कहा**— धर्मज्ञों में श्रेष्ठ महर्षि वाल्मीकि हैं। हमदोनों उनके ही मनोहर आश्रम में रहते हैं ॥१९॥ वे मुनि अपने रामायण को अपने शिष्यों से गवाते हैं। वे सभी जीवों का कल्याण करते रहते हैं तथा श्रीरामजी के चरणों का स्मरण करते हैं ॥२०॥ हमदोनों ने बार-बार उस भावि रामायण को सुना है। इसलिए हमदोनों ने भी उस रामायण को पढ़ लिया है ॥२१॥ तुम सुनो हम बतलाते हैं कि राम कौन हैं ? और सीता कौन हैं? राम के साथ क्रीड़ा करती हुयी सीता के साथ जो कुछ भी होगा उसे बतलाते हैं ॥२२॥ ऋष्यशृङ्ग पुत्रेष्टि याग करेंगे उसके कारण श्रीहरि चार रूप धारण करके उत्पन्न होंगे। देव स्त्रियाँ भी उनके यश का गान करेंगी ॥२३॥ वे

स कौशिकेन मिथिलां प्राप्स्यते भ्रातृसंयुतः ।
धनुष्पाणिस्तदा दृष्ट्वा दुर्ग्राह्यमन्यभूभुजाम् ॥२४॥
धनुर्भङ्क्त्वा जनकजां प्राप्स्यते सुमनोहराम् । तया सह महद्राज्यं करिष्यतिश्रुतं वरे ॥२५॥
एतदन्यच्च तत्रस्थैः श्रुतमस्माभिरुद्गतैः। कथितं तव चार्वङ्गि मुञ्चवां गन्तुकामुकौ॥२६॥
इति वाक्यं तयोर्धृत्वा श्रोत्रयोः सुमनोहरम् ।
पुनरेव जगादेदं वाक्यं पक्षियुगं प्रति ॥२७॥
स रामः कुत्र वर्तेत कस्य पुत्रः कथं तु ताम् ।
परिग्रहीष्यति वरः कीदृग्रूपधरोनरः ॥२८॥
मया पृष्टमिदं सर्वं युवां ब्रूतं यथातथम् । पश्चात्सर्वं करिष्यामि प्रियं युष्मन्मनोहरम्॥२९॥
तच्छ्रुत्वा तां तु कामेन पीडितां वीक्ष्य सा शुकी ।
जानकीं हृदये ज्ञात्वा पपाठ पुरतस्ततः ॥३०॥
सूर्यवंशध्वजो धीमान्राजा पङ्क्तिरथो बली। यं देवाः श्रित्य सर्वारीन्विजेष्यन्ते च सर्वशः ॥३१॥
तस्य भार्यात्रयं भावि शक्रमोहनरूपधृत्। तस्मिन्नपत्यचातुष्कं भविष्यति बलोन्नतम् ॥३२॥
सर्वेषामग्रजो रामो भरतस्तदनुस्मृतः । लक्ष्मणस्तदनुश्रीमाञ्छत्रुघ्नः सर्वतोऽवरः॥३३॥
रघुनाथ इति ख्यातिं गमिष्यति महामनाः । तेषामनन्तनामानि रामस्य बलिनः सखि !॥३४॥
पद्मकोश इव शोभनं मुखं पङ्कजाभनयने सुदीर्घके ।
उन्नतापृथुमनोहरानसा वल्गुसङ्गतमनोहरे भ्रुवौ ॥३५॥
जानुलम्बितमनोहरौ भुजौ कम्बुशोभि गलकोऽतिह्रस्वकः ।
सत्कपाटतलविस्तृतश्रिकं वक्ष एतदमलं सलक्ष्मकम् ॥३६॥

अपने भाई के साथ मुनि विश्वामित्र के द्वारा मिथिला लाये जायेंगे । वे धनुष धारण किये रहेंगे । वे दूसरे राजाओं के लिए दुर्ग्राह्य धनुष को देखकर उसे तोड़ देंगे और जनकपुत्री को अपनी पत्नी को रूप में स्वीकार करेंगे । वे जानकीजी के साथ श्रेष्ठ राज्य करेंगे ॥२४-२५॥ इन सारी बातों को तथा दूसरी अन्य बातों को हमलोगों ने वहाँ के लोगों से सुना है । अतएव हे सुन्दरि ! अब हमदोनों को छोड़ दो हमदोनों जाना चाहते हैं ॥२६॥ उन दोनों की इस बात को सुनकर जानकीजी ने दोनों पक्षियों से कहा ॥२७॥ वे राम कहाँ हैं, किसके पुत्र हैं और दुलहा बनकर वे सीता को कैसे ग्रहण करेंगे । उनका रूप कैसा होगा ?॥२८॥ मेरे द्वारा पूछी गयी इन सारी बातों को तुमदोनों ठीक-ठीक कहो । उसके बाद मैं तुमलोगों के लिए मनोहर कर्म करूँगी ॥२९॥ उसे सुनकर काम पीड़ित जानकी को जानकर शुकी उनके सामने आकर सारी बातें कहीं ॥३०॥ सूर्यवंश में उत्पन्न बुद्धिमान राजा दशरथ होंगे । उनकी सहायता से देवता अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करेंगे । उनकी इन्द्र को भी मोहित करने वाली तीन पटरानियाँ होंगी । उन सबों से राजा की चार बलवान् सन्तानें होंगी ॥३१-३२॥ सबसे बड़े राम होंगे, उनसे छोटे भरतजी होंगे । फिर लक्ष्मण होंगे और उनसे छोटे शत्रुघ्न होंगे ॥३३॥ महामना श्रीराम विख्यात होंगे हे सखि ! श्रीराम के अनन्त नाम हैं ॥३४॥ उनका मुखमण्डल कमल के समान मनोहर होगा । कमल के समान उनके बड़े-बड़े नेत्र होंगे । उनकी नाक उठी हुयी और सुन्दर होगी उनकी दोनों भौहें अत्यन्त सुन्दर होंगी ॥३५॥ उनकी सुन्दर भुजाएँ घुटनों तक लटकने वाली होंगी । उनका छोटा गला शङ्ख के समान सुन्दर होगा उनका

शोभनोरुकटिशोभया युतं जानुयुग्मममलं स्वसेवितम् ।
पादपद्ममखिलैर्निजैः सदा सेवितं रघुपतिं सुशोभनम् ॥३७॥
एतद्रूपधरो रामो मया किं तु स वर्ण्यते ।
शताननोऽपि नो याति पक्षिणः किमु मादृशाः ॥३८॥
यद्रूपं वीक्ष्य ललिता मनोहरवपुर्धरा। लक्ष्मीर्मुमोह भुवि का वर्तते या न मुह्यति ॥३९॥
महाबलो महावीर्यो महामहोनरूपधृत्। किं वर्णयामि श्रीरामं सर्वैश्वर्यगुणान्वितम् ॥४०॥
धन्या सा जानकी देवी महामोहनरूपधृत् । रंस्यते तेन सह या वर्षाणामयुतं मुदा ॥४१॥
त्वं कासि किं नु ते नाम वद सुन्दरि यत्तु माम् ।
परिपृच्छसि वैदग्ध्याद्रामकीर्तनमादरात् ॥४२॥
एतद्वाक्यं समाकर्ण्य जानकीपक्षिणोर्युगम् । उवाच जन्मललितं शंसन्ती स्वस्य मोहनम्॥४३॥
या त्वया जानकी प्रोक्ता साऽहं जनकपुत्रिका ।
स रामो मां यदाभ्येत्य प्राप्स्यते सुमनोहरः ॥४४॥
तदा वां मोचयाम्यद्धा नान्यथा वाक्यलोभिता ।
लीलया च सुखेनास्तं मद्गेहे मधुरादकौ ॥४५॥
इत्युक्तं तत्समाकर्ण्य पक्षिणौ भयमापतुः। परस्परं प्रक्षुभितौ जानकीमित्यवोचताम्॥४६॥
वयं वै पक्षिणःसाध्वि वनस्था वृक्षगोचराः ।
परिभ्रमाम सर्वत्र नो सुखं नो भवेद्गृहे ॥४७॥
अन्तर्वत्नी स्वके स्थाने गत्वा संसूय पुत्रकान् ।
त्वत्स्थानमागमिष्यामि सत्यं मे ह्युदितं वचः ॥४८॥

वक्षःस्थल कपाट के समान चौड़ा होगा। वह श्रीवत्स चिह्न से सुशोभित होगा ॥३६॥ उनकी दोनों जंघायें कमर की शोभा से सुशोभित तथा घुटने स्वच्छ होंगे। श्रीरामचन्द्र के चरण कमलों की सेवा उनके समस्त भक्तजन करेंगे ॥३७॥ श्रीराम का इसी प्रकार का रूप होगा। मैं और क्या वर्णन करूँ। सैकड़ों मुख से भी उनका पूरा-पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता है। हम पक्षी क्या वर्णन करेंगे ?॥३८॥ ललित तथा मनोहर शरीर धारण करने वाली लक्ष्मी भी श्रीराम के रूप को देखकर मोहित हो जाती है, पृथिवी पर कौन नारी है जो उनके रूप पर मोहित न हो ॥३९॥ वे महाबलवान्, महा पराक्रमी तथा अत्यन्त मनोज्ञ रूप धारण करने वाले हैं। समस्त ऐश्वर्यो से सम्पन्न श्रीराम का मैं क्या वर्णन करूँ ॥४०॥ अत्यन्त सुन्दर रूप धारण करने वाली जानकी देवी धन्य हैं; जो उनके साथ दशो हजार वर्षो तक रमण करेंगी ॥४१॥ हे सुन्दरि ! बतलाओं तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? कि इस तरह से चतुरता पूर्वक श्रीराम की कथा को आदर के साथ पूछती हो ॥४२॥ उन दोनों पक्षियों की वाणी को सुनकर जानकी ने उन दोनों की खूब प्रशंसा करती हुयी मनोहर वाणी में कही ॥४३॥ जिसको तुम जानकी कहती हो वही जनक पुत्री मैं हूँ, वे श्रीराम जब मुझको अपना बना लेंगे ॥४४॥ तुम्हारे वचनों का श्रवण करने वाली मैं उसी समय तुमदोनों को छोड़ूंगी पहले नहीं। तुमदोनों हमारे घर में मधुर वस्तुओं को खाओ और सुख पूर्वक रहो ॥४५॥ सीताजी की इस बात को सुनकर वे दोनों भयभीत हो गये। वे एक दूसरे को देखकर क्षुब्ध हो गये और जानकीजी से कहे ॥४६॥ हे साध्वि ! हमदोनों पक्षी हैं वन के वृक्ष पर रहते हैं। सर्वत्र

एवं प्रोक्ता तया सा तु न मुमोच शुकीं स्वयम् ।
तदा पतिस्तां प्रोवाच विनीतवदनुत्सुकः ॥४९॥
सीते मुञ्च कथं भार्यां रक्षसे मे मनोहरीम् ।
आवां गच्छावविपिने विचरावः सुखं वने ॥५०॥
अन्तर्वत्नी तु वर्तेत भार्या मम मनोरमा। तस्याःप्रसूतिं कृत्वा त्वामागमिष्यामि शोभने !॥५१॥
इत्युक्ता निजगादेमं सुखं गच्छ महामते !। एतां रक्षामि सुखिनीं मत्पार्श्वे प्रियकारिणीम् ॥५२॥
इत्युक्तो दुःखितः पक्षी तामूचे करुणान्वितः ।
योगिभिः प्रोच्यते यद्वै तद्वचस्तथ्यमेव हि ॥५३॥
न वक्तव्यं न वक्तव्यं मौनमाश्रित्य तिष्ठताम् ।
नोचेत्स वाक्यदोषेण प्राप्नोत्यालानमुन्मदः ॥५४॥
वयं चेदत्र वाक्यं नाकरिष्याम नगोपरि। बन्धनं कथमावां स्यात्तस्मान्मौनं समाचरेत्॥५५॥
इत्युक्त्वा तां प्रत्युवाच नाहं जीवामि सुन्दरि ! ।
एतया भार्यया हीनस्तस्मान्मुञ्च मनोहरे ! ॥५६॥
अनेकविधवाक्यैः सा बोधिता नामुचत्तदा । कुपिता दुःखिता भार्या शशाप जनकात्मजाम्॥५७॥
यथा त्वं पतिना सार्धं वियोजयसि मामितः ।
तथा त्वमपि रामेण वियुक्तो भव गर्भिणी ॥५८॥
इत्युक्तवत्यां तस्यां तु दुःखितायांः पुनः पुनः ।
प्राणा निरगमन्दुःखात्पतिदुखेन पूरितात् ॥५९॥
रामं रामं स्मरन्त्याश्च वदन्त्याश्च पुनः पुनः ।
विमानमागतं सुष्ठ पक्षिणी स्वर्गता बभौ ॥६०॥

घूमते रहते है । तुम्हारे घर में फिर मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगी मैं सत्य कहती हूँ ॥४८॥ इस तरह से कहने पर भी सीता ने उस शुकी को नहीं छोड़ा । उसके पति ने विनीत होकर कहा ॥४९॥ सीते तुम मेरी प्रिया पत्नी को क्यों पकड़ी हो छोड़ दो हमदोनों वन में जाकर सुखपूर्वक विचरण करते हैं ॥५०॥ मेरी सुन्दरी पत्नी गर्भिणी है, उसके बच्चे के हो जाने पर मैं तुम्हारे पास आऊँगा ॥५१॥ इस बात को सुनकर सीताजी ने कहा— तुम सुखपूर्वक जाओ । यह मेरा प्रिय काम करने वाली है, इसको मै अपने पास रखूँगी ॥५२॥यह सुनकर पक्षी दुःखी हो गया और उसने कहा योगिजन जो कहते हैं वही सत्य है ॥५३॥ बोलना नहीं चाहिए मौन रहना चाहिए । अन्यथा उन्मत्त जीव बन्धन में पड़ जाता है ॥५४॥ यदि हमदोनों यहाँ पर्वत पर बात नहीं किए होते तो हमलोगों का बन्धन कैसे होता ? अतएव मौन रहना चाहिए ॥५५॥ यह कहकर उसने कहा— सुन्दरि ! मैं अपनी इस पत्नी के बिना नहीं जी सकता हूँ । अतएव हे सुन्दरि ! इसको तुम छोड़ दो ॥५६॥ उस दुखिता के इस प्रकार से बार-बार कहने पर भी जब सीता ने उसे नहीं छोड़ा तो उसने सीता को शाप दे दिया कि जिस तरह तुम मुझे पति से वियुक्त कर रही हो उसी तरह तुम भी गर्भिणी की अवस्था में श्रीराम से अलग हो हो जाओगी । इस तरह से बार-बार कहकर उस शुकी के दुःख के कारण प्राण निकल गये ॥५७-५९॥ वह बार-बार राम का उच्चारण कर रही थी और आये हुए विमान पर बैठकर स्वर्ग चली

तस्यां मृतायां दुःखर्तो भर्ता तस्याः स पक्षिराट् ।
परमं क्रोधामापन्नो जाह्नव्यां दुःखितोऽपतत् ॥६१॥
तथा भवामि रामस्य नगरे जनपूरिते । मद्वाक्यादियमुद्विग्ना वियोगेन सुदुःखिता ॥६२॥
इत्युक्त्वा स पपातोदे जाह्नव्या भ्रमशोभिते ।
दुःखितः कुपितो भीतस्तद्वियोगेन कम्पितः ॥६३॥
क्रुद्धत्वाद्दुःखितत्त्वाच्च सीताया अपमाननात् ।
अन्त्यजत्वं परं प्राप्तो रजकः क्रोधनाभिधः ॥६४॥
यः क्रोधाच्च स्वकान्प्राणान्महतां दुष्टमाचरन् ।
सन्त्यजेत्स मृतो याति अन्त्यजत्वं द्विजोत्तमः ॥६५॥
तज्जातं रजकोक्त्यायाऽसौ निन्दिता च वियोजिता ।
रजकस्य च शापेन वियुक्ता सा वनं गता ॥६६॥
एतत्ते कथितं विप्र यत्तेपृष्टं विदेहजाम्। पुनरत्र परं वृत्तं शृणुष्व निगदामि तत् ॥६७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
रजकप्राग्जन्मकथनं नाम सप्तपञ्चशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

* * *

गयीं ॥६०॥ उसके मरने पर उसका पति दुःख से आर्त हो गया अत्यन्त क्रोध करके वह दुःख के कारण गङ्गा में गिर गया ॥६१॥ उसने कहा मैं लोगों से परिपूर्ण राम के नगर में जन्म लूँगा । मेरे वाक्य के कारण उद्विग्न होकर इसका अपने पति से वियोग होगा ॥६२॥ इस तरह से भँवरों से सुशोभित गङ्गा के जल में वह गिर पड़ा। वह अपनी पत्नी के वियोग से दुःखी था और काँप रहा था ॥६३॥ क्रुद्ध तथा दुःखी होने के कारण तथा सीता का अपमान करने के कारण वह क्रोधन नामक धोबी के रूप में जन्म लिया ॥६४॥ हे द्विजोत्तम ! महान् पुरुषों के विरोध में क्रोध करके जो मर जाता है वह शूद्र योनि में जन्म लेता है ॥६५॥ उस उत्पन्न हुए धोबी के वचनों से सीता की निन्दा की गयी और वे श्रीरामजी से वियुक्त हुयीं । रजक के शाप से ही जानकी जी रामजी से वियुक्त होकर वन में गयीं ॥६६॥ हे विप्र ! आपको अभिप्रेत जानकी के वृत्तान्त को मैंने बतलाया अब तुम आगे के वृत्तान्त को सुनों मैं बतलाता हूँ ॥६७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत श्रीरामाश्वमेध के प्रकरण में रजक के पूर्वजन्म की कथा का वर्णन नामक सत्तावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पुर्ण हुआ ।।५७।।

* * *

अठावनवाँ अध्याय

शेष उवाच

भरतं मूर्च्छितं दृष्ट्वा रघुनाथः सुदुःखितः। प्रतिहारमुवाचेदं शत्रुघ्नं प्रापयाशु माम्॥१॥
तद्वाक्यं प्रोक्तमाकर्ण्य क्षणाच्छत्रुघ्नमानयत्। यत्र रामो निजभ्राता भरतेन सह स्थितः॥२॥
भरतं मूर्छितं दृष्ट्वा रघुनाथं च दुःखितम्।
प्रणम्यदुःखितोऽवोचत्किमिदं दारुणं महत्॥३॥
तदा रामोऽन्त्यजप्रोक्तं वाक्यं लोकविगर्हितम्।
तं प्रत्युवाच रामोऽसौ शत्रुघ्नं पदसेवकम्॥४॥
अधोमुखो दीनरवो गद्गदाक्षरवेपथुः। शृणु भ्रातर्वचोमेऽद्य कुरु तत्क्षिप्रमादरात्॥५॥
यथास्याद्विमला कीर्तिर्गङ्गेव पृथिवीं गता। सीताया वाच्यमतुलं लोके श्रुत्वाऽन्त्यजोदितम्॥६॥
हातुमिच्छामि देहं स्वमेनां वा जानकीं किल।
इति वाक्यं समाकर्ण्य रामस्य किल शत्रुहा॥७॥
सवेपथुः पपातोर्व्यां दुःखितः परदारणः। संज्ञां प्राप्य मुहूर्तेन रघुनाथमवोचत॥८॥

शत्रुघ्न उवाच

किमेतदुच्यते स्वामिञ्जानकीं प्रति दारुणम्। पाखण्डैर्दुष्टचित्तैश्च सर्वधर्मबहिष्कृतैः॥९॥
निन्दिता श्रुतिरग्राह्या भवति त्वग्र्यजन्मनाम्। जाह्नवी सर्वलोकानां पापघ्नी दुरितापहा॥१०॥
निस्पृष्टा पापिभिः पुम्भिः सा स्पर्शे नार्हिता सताम्।
सूर्यो जगत्प्रकाशाय समुदेति जगत्यहो॥११॥

लक्ष्मणजी का सीताजी को वन में छोड़ने के लिए जाना

शेषजी ने कहा— अत्यन्त दुःखी श्रीरामचन्द्रजी भरतजी को मूर्छित हुए देखकर द्वारपाल से कहे कि शत्रुघ्न को मेरे पास शीघ्र लाओ ॥१॥ उनकी बात सुनकर द्वारपाल शत्रुघ्नजी को क्षणभर में ला दिया। वहाँ पर श्रीरामजी अपने भाई भरतजी के साथ विद्यमान थे ॥२॥ भरतजी को मूर्छित तथा श्रीरामचन्द्रजी को दुःखी देखकर शत्रुघ्नजी ने प्रणाम करके कहा कि यह कौन सी वड़ी विपत्ति आ गयी है ॥३॥ तब श्रीरामचन्द्रजी ने लोक निन्दित सीताजी तथा रजक के द्वारा कही गयी बात को अपने चरण सेवक शत्रुघ्नजी को बतलाया ॥४॥ नीचे मुख करके दीन स्वर में काँपों हुए गद्गद शब्दों में रामचन्द्रजी ने कहा— हे भाई तुम मेरी बात सुनो और उसका आदर पूर्वक पालन करो ॥५॥ पृथिवी पर फैली हुयी कीर्ति जिस तरह गङ्गा के समान स्वच्छ बनी रहे। धोबी के द्वारा कही गयी सीता विषयिणी निन्दा को सुनकर मैं चाहता हूँ कि या तो मैं अपने शरीर का त्याग कर दूँ अथवा सीता का त्याग कर दूँ। श्रीरामचन्द्रजी की इस वाणी को सुनकर शत्रु विनाशक शत्रुघ्नजी दुःखी होकर काँपते हुए पृथिवी पर गिर पड़े। मुहूर्त भर में होश में आकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी से कहा ॥६-८॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा—** हे स्वामिन्! आप जानकीजी के विषय में यह कठोर बात कैसे कहते हैं? पाखण्डियों, दुष्टों तथा सभी धर्मो से वहिष्कृत लोगों के द्वारा निन्दा किए जाने पर भी श्रुति ब्राह्मणों के द्वारा अग्राहय होती है क्या? गङ्गा सभी लोगों के पापों को विनष्ट करने वाली है ॥९-१०॥ पापियों के द्वारा स्पर्श कर लए जाने पर वह सज्जनों के लिए

उलूकानां रुचिकरो न भवेत्तत्र का क्षतिः ।
तस्मात्त्वमेनां गृह्णीष्व मा त्यजानिन्दितां स्त्रियम् ॥१२॥
श्रीरामभद्रकृपया कुरुष्व वचनं मम। एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः॥१३॥
पुनः पुनर्जगादेमं यदुक्तं भरतम्प्रति। तन्निशम्य वचो भ्रातुर्दुःखपूरपरिप्लुतः ॥१४॥
पपात मूर्च्छितो भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः। भ्रातरं पतितं वीक्ष्य शत्रुघ्नं दुःखितो भृशम् ॥१५॥
प्रतिहारमुवाचेदं लक्ष्मणं त्वानयान्तिकम्। सलक्ष्मणगृहं गत्वा न्यवेदयदिदं वचः ॥१६॥

प्रतिहार उवाच

स्वामिन्रामो भवन्तं तु समाह्वयति वेगतः। स तच्छ्रुत्वा समाह्वानं रामचन्द्रेण वेगतः ॥१७॥
जगाम तरसा तत्र यत्र सभ्रातृकोऽनघः। भरतं मूर्च्छितं दृष्ट्वा शत्रुघ्नमपि मूर्च्छितम्॥१८॥
श्रीरामचन्द्रं दुःखार्तं दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ।
किमेतद्दारुणं राजन्दृश्यते मूर्च्छनादिकम् ॥१९॥
तदाशु शंस मां सर्वं कारणं मुख्यतोऽनघ ! ।
एवं वदन्तं नृपतिर्वृत्तान्तं सर्वमादितः ॥२०॥
शशंस लक्ष्मणं क्षिप्रं दुःखपूरपरिप्लुतम्। लक्ष्मणस्तद्वचः श्रुत्वा सीतायास्त्यागसम्भवम् ॥२१॥
निःश्वसन्मुहुरुच्छ्वासं स्तब्धागात्र इवाऽभवत् ।
भ्रातरं स्तब्धगात्रं च कम्पमानं मुहुर्मुहुः ॥२२॥
न किञ्चन वदन्तं तं वीक्ष्य शोकर्दितोऽब्रवीत् ।
किं करिष्याम्यहं भूमौ स्थित्वा दुर्यशसाऽङ्कितः ॥२३॥

अस्पृश्य हो जाती है क्या ? सूर्य संसार को प्रकाशित करने के लिए संसार में उदित होते हैं। यदि सूर्य उल्लुओं को अच्छा न लगे तो उससे उनका क्या बिगड़ जाता है ? अतएव आप श्रीसीताजी को स्वीकार करें सीताजी अनिन्दित हैं, उनका त्याग न करें ॥११-१२॥ हे श्रीरामभद्र ! आप कृपा करके मेरी बात मानें। महात्मा शत्रुघ्नजी की इस वाणी को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने बार-बार वही उनसे कहा जो उन्होंने भरतजी से कहा था। श्रीरामजी की उस बात को सुनकर शत्रुघ्नजी अत्यन्त दुःखी होकर जिसकी जड़कर कट गयी हो ऐसे वृक्ष के समान पृथिवी पर गिर पड़े। अत्यन्त दुःखी तथा गिरे हुए शत्रुघ्नजी को देखकर ॥१३-१५॥ श्रीरामचन्द्रजी ने द्वारपाल से कहा कि लक्ष्मण को बुला लाओ। वह भी लक्ष्मणजी के घर जाकर कहा ॥१६॥ **द्वारपाल ने कहा**— हे स्वामिन् ! आपको श्रीरामचन्द्रजी अत्यन्त शीघ्र बुला रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजी द्वारा उस आह्वान को सुनकर लक्ष्मणजी वेग पूर्वक वहाँ गये जहाँ पर श्रीरामचन्द्रजी अपने दो भाइयों के साथ विद्यमान थे। भरतजी तथा शत्रुघ्नजी को मूर्छित देखकर ॥१७-१८॥ तथा दुःख से आर्त बने हुए श्रीरामचन्द्रजी से दुखित होकर लक्ष्मणजी ने कहा। हे राजन् ! यह भयङ्कर मूर्छा आदि मैं क्या देख रहा हूँ ?॥१९॥ हे अनघ ! आप मुझे इसका कारण बतलायें। इस तरह से कहने वाले लक्ष्मण से श्रीरामचन्द्रजी ने शुरु से सारा वृत्तान्त बतला दिया ॥२०॥ लक्ष्मणजी सीताजी के त्याग विषयक बात को सुनकर स्तब्ध शरीर वाले हो गये। वे श्वास और निःश्वास ले रहे थे। अपने भाई को स्तब्ध शरीर वाले तथा बार-बार काँपते हुए देखकर ॥२१-२२॥ तथा कुछ नहीं बोलते हुए देखकर श्रीरामजी शोक संतप्त हो गये और कहे। मैं दुर्यश से युक्त होकर इस पृथिवी पर रहकर क्या

त्यजामीदं वपुः श्रीमल्लोकभीत्या च शोकवान् ।
सर्वदा भ्रातरो मह्यं मद्वाक्यकरणोत्सुकाः ॥२४॥
इदानीं तेऽपिदैवेन प्रतिकूलवचस्कराः। कुत्र गच्छामि कं यामि हसिष्यन्ति नृपा भुवि॥२५॥
दुर्यशोलाञ्छितं मां वै कुष्ठिनं रूपवन्नराः। मनोर्वंशे पुरा भूपा जाता जाता गुणाधिकाः ॥२६॥
इदानीं मयि जाते तु विपरीतं वभूव तत् । इति सम्भाषमाणं तं रामभद्रं समीक्ष्य सः ॥२७॥
संस्तभ्याऽश्रूणि विपुलान्युवाच विकलस्वरः ।
स्वामिन्विषादं मा कार्षीः कथं तव मतिर्हता ॥२८॥
सीतामनिन्दितां को नु त्यजति श्रुतवान्भवान् ।
आकारयामि रजकं परिपृच्छामि तम्प्रति ॥२९॥
कथं त्वया निन्दिता सा जानकी योषिताम्वरा ।
तव देशे बलात्कश्चिद् बाध्यते न जनोऽल्पकः ॥३०॥
तस्मात्तस्य यथा स्वान्ते प्रतीतिः स्यात्तथाऽऽचर ।
किमर्थं त्यज्यते भीरुः पतिव्रतपरायणा ॥३१॥
मनसा वचसा नान्यं जानाति जनकात्मजा। तस्मादेनां गृहाण त्वमेतां मा त्यज जानकीम्॥३२॥
ममोपरि कृपां कृत्वा मदुक्तं संश्रयाऽऽशु तत् ।
एवं वदन्तं प्रत्यूचे रामः शोकेन कर्षितः ॥
लक्ष्मणं धर्मवाक्येन बोधयंस्त्यजनोद्यमः ॥३३॥

राम उवाच

कथं तु मां ब्रवीषि त्वं मा त्यजैनामनिन्दिताम् ।
लोकापवादात्त्यक्ष्येऽहं जानन्नपि विपापिनीम् ॥३४॥

करूँगा? ॥२३॥ मैं इस सुन्दर शरीर को लोकापवाद के भय से शोकसंतप्त होकर त्याग रहा हूँ। मेरे भाई सर्वदा मेरी वात मानने के लिए उत्सुक रहते थे ॥२४॥ इस समय वे भी भाग्य के प्रतिकूल होने के कारण मेरी बात नहीं मानते हैं । मैं कहाँ और किसके पास जाऊँ सभी राजा मेरा उपहास करेंगे ॥२५॥ दुर्यश से लांछित लोग मेरा उसी तरह से उपहास करेंगे जिस तरह किसी सुन्दर तथा कोढ़ी व्यक्ति का लोग उपहास करते हैं । मनु के वंश में जितने राजा हुए वे अत्यधिक गुणवान हुए ॥२६॥ किन्तु इस समय मेरे राजत्व में यह बात विपरीत हो गयी। इस तरह से कहने वाले श्रीरामचन्द्रजी को देखकर ॥२७॥ लक्ष्मणजी ने अपने आँसुओं को रोककर गद्गद स्वर में कहा। हे स्वामिन् ! आप विषाद न करें आपकी ऐसी बुद्धि कैसे हो गयी हैं ?॥२८॥ आप आनिन्दिता सीता को त्याग रहे हैं यह आपने किससे सुना है मैं रजक को बुलाता हूँ और उससे पूछता हूँ ॥२९॥ कि नारियों में श्रेष्ठ सीता की तुमने क्यों निन्दा की है ? आपके देश में किसी छोटे भी मनुष्य को कोई दुःख नहीं देता है॥३०॥ अतएव उसके मन में जैसी प्रतीति होती है, वैसा ही आप आचरण करें। आप पतिव्रता सीता का त्याग क्यों कर रहे हैं ?॥३१॥ जानकीजी मन वाणी और कर्म से आपको छोड़कर किसी दूसरे को नहीं जानती हैं अतएव आप उनको नहीं त्यागें ॥३२॥ आप मेरे ऊपर कृपा करके मेरी बात मान लें। इस तरह से कहने वाले लक्ष्मणजी से श्रीरामचन्द्रजी ने कहा ॥३३॥ त्याग करने के लिए उद्यत श्रीरामचन्द्रजी ने धर्म वाक्यों के द्वारा

स्वयशः कारणेऽहं स्वं देहं त्यक्ष्यामि शोभनम् ।
त्वामपि भ्रातरं त्यक्ष्ये लोकवादाद्विगर्हितम् ॥३५॥
किमुतान्ये गृहा पुत्रा मित्राणि वसु शोभनम् ।
स्वयशः कारणे सर्वं त्यजामि किमु मैथिलीम् ॥३६॥
न तथा मे प्रियो भ्राता न कलत्रं न बान्धवाः ।
यथा मे विमला कीर्तिर्वल्लभा लोकविश्रुता ॥३७॥
इदानीं रजको नैव (नाद्य) प्रष्टव्यो भवति ध्रुवम् ।
कालेन सर्वं भविता लोकचित्तस्य रञ्जनम् ॥३८॥
आमयो यद्वदामस्तु न चिकित्स्यो भवेत्क्षितौ ।
स कालेन परीपाकाद्भेषजादेव नश्यति ॥३९॥
तथा कालेन सम्भावि साम्प्रतं माविलङ्घय। त्यजैनां विपिने साध्वीं मां वा खड्गेन घातय॥४०॥
इत्युक्तं वाक्यमाकर्ण्य दुःखितोऽभूत्तदा महान् ।
चिन्तयामास च स्वान्ते लक्ष्मणः शोककर्शितः ॥४१॥
पित्राऽऽज्ञप्तो जामदग्न्यो मातरं चाप्यघातयत् ।
गुरोराज्ञा नैव लङ्घ्या युक्ताऽयुक्ताऽपि सर्वथा ॥४२॥
तस्मादेनां त्यजाम्येव रामस्य प्रियकाम्यया । इति सञ्चिन्त्य मनसि भ्रातरं प्रत्युवाच सः ॥४३॥

लक्ष्मण उवाच

अकृत्यमपि कार्यं वै गुर्वाज्ञां नैव लङ्घयेत्। तस्मात्कुर्वे भवद्वाक्यं यत्त्वं वदसि सुव्रत ! ॥४४॥

लक्ष्मणजी को बतलाया । **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** तुम मुझे कहते हो कि आप इनको न त्यागें । मैं जानकी को निष्पाप जानता हूँ । फिर भी लोकापवाद के कारण मैं उसका त्याग कर रहा हूँ ॥३४॥ अपने यश की रक्षा करने के लिए मैं अपने सुन्दर शरीर का त्याग कर दूँगा । लोकापवाद से निन्दित होने पर मैं तुम जैसे भाई का भी त्याग कर दूँगा ॥३५॥ तो फिर दूसरे गृह, पुत्र, मित्र तथा सुन्दर धन की क्या बात है ? अपने यश के लिए सबका मैं त्याग कर सकता हूँ तो फिर सीता की क्या बात है ?॥३६॥ मुझको जितना अपनी लोक विख्यात निर्मल कीर्ति प्रिया है उतना भाई, बन्धु और पत्नी प्रिय नहीं हैं ॥३७॥ इस समय रजक से कुछ भी पूछने की आवश्यकता नहीं है । समयानुसार सब कुछ संसार के चित्त को प्रसन्न करने वाला हो जायेगा ॥३८॥ जिस तरह लोक में कच्चे घाव को नहीं चीरना चाहिए समय से पक जाने पर वह दवा से ही ठीक हो जाता है ॥३९॥ उसी तरह सबकुछ समयानुसार ठीक हो जायेगा इस समय मेरी बात का उल्लंघन न करो । या तो इस साध्वी को वन में छोड़ आओ अथवा मुझको खड्ग से मार दो ॥४०॥ इस बात को सुनकर लक्ष्मण जी अत्यन्त दुःखी हो गये। वे शोक सन्तप्त होकर अपने मन में विचार किए ॥४१॥ परशुरामजी ने अपने पिता की आज्ञा पाकर अपनी माता को मार दिया था गुरुजन की आज्ञा उचित हो या अनुचित उसका उल्लंघन नहीं करना चाहिए ॥४२॥ अतएव श्रीराम का प्रिय करने के लिए मैं सीता का परित्याग कर दूँगा । इस तरह से मन में विचार करके उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी से कहा ॥४३॥ **लक्ष्मणजी ने कहा—** गुरुजनों की अनुचित भी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए । अतएव हे सुव्रत ! आप जो कहेंगे वह मैं करूँगा ॥४४॥ इस तरह से कहने वाले लक्ष्मणजी से

इत्येवं भाषमाणं तं लक्ष्मणं प्रत्युवाच सः। साधु साध महाप्राज्ञ ! त्वया मे तोषितं मनः ॥४५॥
अद्यैव रात्रौ जानक्या दोहदस्तापसीक्षणे। तन्मिषेण रथे स्थाप्य मोचयैनां महावने॥४६॥
इत्थं भाषितमाकर्ण्य विशुष्यद्वदनोऽभितः। रुदन्वाष्पकलां मुञ्चञ्जगाम स्वं निवेशनम्॥४७॥
सुमन्त्रं तु समाहूय वचनं तमथाऽब्रवीत्। रथं मे कुरु सज्जं वै सदश्ववरभूषितम् ॥४८॥
स तद्वाक्यं समाकर्ण्य रथमानीतवांस्तदा। आनीतं तं रथं दृष्ट्वा लक्ष्मणः शोककर्शितः॥४९॥
परमं दुःखमापन्नः संरुह्य स्यन्दनं वरम्। निःश्वसञ्जानकीगेहं प्रतस्थे भ्रातृसेवकः ॥५०॥
गत्वा चान्तः पुरे भ्राता रामस्य मिथिलात्मजजाम् ।
प्रत्यूचे निःश्वसन्वाक्यं दुःखपूरपरिप्लुतः ॥५१॥
मातर्जानकि ! रामेण प्रेषितो भवनं तव। तापसीः प्रति याहि त्वं दोहदप्राप्तिहेतवे ॥५२॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य लक्ष्मणस्य विदेहजा ।
परमं हर्षमापन्ना लक्ष्मणं प्रत्यभाषत ॥५३॥

जानक्युवाच

धन्याहं मैथिली राज्ञी रामस्य चरणस्मरा। यस्या दोहदपूर्त्यर्थं प्रेषयामास लक्ष्मणम् ॥५४॥
अद्याऽहं ता वनचरीस्तापसीः पतिदेवताः। नमस्कुर्यां च वासोभिः पूजयामि मनोहराः ॥५५॥
इत्युक्त्वा रम्यवस्त्राणि महार्हाभरणानि च। मणीन्विमलमुक्ताश्च कर्पूरादिसुगन्धिमत् ॥५६॥
चन्दनादिकवस्तूनि विचित्राणि सहस्रधा। जग्राह रघुनाथस्य पत्नीस्वप्रियकाम्यया ॥५७॥
सीता गृहीत्वा सर्वाणि दासीनां करयोर्मुहुः ।
लक्ष्मणं प्रतिगच्छन्ती देहल्यां चास्खलत्तदा ॥५८॥

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा। बहुत अच्छा महाभाग ! तुमने मेरे मन को सन्तुष्ट कर दिया है ॥४५॥ आज ही रात्रि में जानकी ने तपस्वियों का दर्शन करने की इच्छा प्रकट की थी उसी बहाने उसको रथ पर बैठाकर तुम महावन में छोड़ आओ ॥४६॥ इस तरह की बात सुनकर लक्ष्मणजी का मुख सुख गया। वे रोते हुए और आँखों से आँसू बहाते हुए अपने भवन में गये ॥४७॥ उन्होंने सुमन्त्रजी को बुलाकर कहा सुन्दर अश्वों से अलंकृत मेरे रथ को तैयार करो ॥४८॥ लक्ष्मणजी की बात सुनकर सुमन्त्र रथ को लाये। लाये हुए रथ को देखकर शोक सन्तप्त भाई के सेवक लक्ष्मणजी अत्यन्त दुःखी होकर रथ पर बैठकर जानकीजी के घर गये ॥४९-५०॥ भगवान् श्रीराम के अन्तःपुर में जाकर अत्यन्त दुःखी होकर तथा लम्बी श्वास लेते हुए उन्होंने जानकीजी से कहा ॥५१॥ हे माँ जानकी ! मुझे आपके भवन में श्रीरामजी ने भेजा है, अपने दोहद की प्राप्ति के लिए आप तपस्वियों के यहाँ जायँ ॥५२॥ लक्ष्मणजी के इस वाक्य को सुनकर विदेह नन्दिनी जानकीजी अत्यन्त हर्षित होकर लक्ष्मणजी से कहीं ॥५३॥ **जानकीजी ने कहा—** श्रीरामजी के चरणों का स्मरण करने वाली रानी मैथिली मैं धन्य हूँ। मेरे दोहद की पूर्ति के लिए उन्होंने लक्ष्मण को भेजा है ॥५४॥ आज मैं वन में रहने वाली पतिव्रता तपस्वियों को नमस्कार करके उनकी पूजा वस्त्रों से करूँगी ॥५५॥ इस तरह से कहकर श्रीरामजी की पत्नी जानकीजी अपनी प्रसन्नता के लिए मनोहर वस्त्रों, बहुमूल्य आभूषणों, मणियों तथा स्वच्छ मुक्ताओं, कपूर आदि की सुगन्धि से युक्त हजारों प्रकार के चन्दन आदि को ले लिया ॥५६-५७॥ इन सारी वस्तुओं को जानकीजी दासियों के हाथों से लेकर लक्ष्मणजी के पास जाती हुयी चौखट के पास गिर पड़ी ॥५८॥ किन्तु उसकी परवाह किए बिना उन्होंने

अविचार्य तदौत्सुक्याल्लक्ष्मणं प्रियकारिणम् ।
उवाच कुत्र सरथो येन मां प्रापयिष्यसि ॥५९॥
स निःश्वसन्नभं हैमं जानक्या सह निर्विशत् ।
सुमन्त्रं प्रत्युवाचासौ चालयाश्वान्मनोजवान् ॥६०॥
स (तु) सुयुक्तं रथं वाक्याल्लक्ष्मणस्य तु चालयन् ।
अश्रुपूर्णमुखं पश्यल्लक्ष्मणं स मुहुर्मुहुः ॥६१॥
आहतास्तेन कशया वाहास्तस्यापतन्पथि । च चलन्ति यदा वाहास्तदा लक्ष्मणमब्रवीत् ॥६२॥

सुमन्त्र उवाच

स्वामिंश्चलन्ति नो वाहा यत्नेन परिचालिताः ।
किं करोमि न जानेऽत्र कारणं वाहपातने ॥६३॥
एवं ब्रुवन्तं प्रत्यूचे लक्ष्मणो गद्गदस्वरः । सारथिं धैर्यमास्थाय ताडयैतान्कशादिभिः ॥६४॥
एतच्छुत्वोदितं यन्ता कथञ्चित्समचालयत् । तदाऽस्फुरद्दक्षनेत्रं जानक्या दुःखशंसकम् ॥६५॥
तदैव हृदये शोकः समभूद्दुःखशंसकः । तदैव पक्षिणः पुण्याः कुर्वन्ति परिवर्तनम् ॥६६॥
एवं वीक्ष्यैव वैदेही प्रत्युवाचाथ देवरम् । कथं मे तापसीक्षायै यातुमिच्छा रघूद्वह ! ॥६७॥
रामे भूयाद्धि कल्याणं भरते वा तथानुजे । तत्प्रजजासु च सर्वत्र मा भवन्तु विपर्यया: ॥६८॥
एवं ब्रुवन्तीं सम्वीक्ष्य जानकीं च स (स तु) लक्ष्मणः ।
न किञ्चिदुक्तवान्रुद्धकण्ठो वाप्पप्रपूरितः ॥६९॥
सा गच्छन्ती मृगान्वामपरिवर्तनकारकान् । अपश्यद्दुःखसङ्घातकारकान्समभाषत ॥७०॥
अद्य यन्मे मृगा वामं वर्तयन्ति तदिष्यते । श्रीरामचरणौ मुक्त्वा गच्छन्त्या युक्तमेव तत् ॥७१॥

लक्ष्मणजी से कहा कि रथ कहाँ है ? जिससे मुझे ले चलोगे ॥५९॥ वे लम्बी श्वास लेते हुए जानकीजी के साथ सुवर्ण रथ पर बैठ गये और कहे कि मन के समान वेग वाले अश्वों को चलाओ ॥६०॥ सुमन्त्र भी लक्ष्मणजी के कहने से लक्ष्मणजी के आँसूओं से भरे मुख को बार-बार देखते हुए रथ को हाँक दिए ॥६१॥ कोड़े से मारे गये घोड़े रास्ते में गिर पड़े और आगे नहीं चले तो उन्होंने लक्ष्मणजी से कहा ॥६२॥ **सुमन्त्र ने कहा**— हे स्वामिन् ! प्रयास पूर्वक चलाने पर भी ये घोड़े चल नहीं रहे हैं । मैं क्या करूँ ? अश्वों के गिरने का न जाने क्या कारण है ?॥६३॥ इस तरह से कहने वाले सारथि से लक्ष्मणजी ने गद्गद स्वर में कहा— इन सबों को कोड़ों से मारो ॥६४॥ यह सुनकर सारथि ने किसी तरह रथ को चलाया । उस समय दुःख की सूचना देने वाली जानकीजी की दाहिनी आँख फरकने लगी ॥६५॥ उस समय उनके हृदय में शोक भी उत्पन्न हुआ । उस समय शुभ पक्षी उलटी दिशा में जाने लगे ॥६६॥ यह सब देखकर जानकीजी ने लक्ष्मणजी से कहा । रघूद्वह ! तपस्वियों को देखने लिए जाते समय यह सब क्यों हो रहा है ?॥६७॥ श्रीराम, भरत और शत्रुघ्न तथा उनकी प्रजाओं का मङ्गल हो, किसी प्रकार का अकल्याण न हो ॥६८॥ इस तरह से कहने वाली जानकीजी को देखकर लक्ष्मणजी गला के रुधं जाने के कारण कुछ नहीं कह सके ॥६९॥ जाती हुयी जानकीजी ने बायी ओर घूमकर जाने वाले मृगों को देखा जो दुःख समूह को उत्पन्न करने वाला था ॥७०॥ आज मृग जो मुझे वामावर्त जा रहे हैं, वह श्रीरामचन्द्र के चरणों को छोड़कर जाती हुयी मेरे लिए उचित ही है ॥७१॥ स्त्रियों का सबसे बड़ा धर्म

महिलानां परो धर्मः स्वभर्तृचरणार्चनम्। तन्मुक्ताऽन्यत्र यान्त्या मे यद्भवेद्युक्तमेव तत् ।।७२।।
एवं पथि विचारं तु कुर्वन्त्या परमार्थतः। जाह्नवी ददृशे देव्या मुनिवृन्दैकसेविता ।।७३।।
यस्यां जलस्य कल्लोला दृश्यन्ते दुग्धसन्निभाः ।
तरङ्गो दृश्यते यत्र स्वर्गसोपानमूर्तिभृत् ।।७४।।
यस्या वारिकणस्पर्शान्महापातकसञ्चयः। पलायते न कुत्रापि स्थानमीक्षन्समन्ततः।।७५।।
गङ्गां प्राप्याऽथ सौमित्रिर्जानकीं स्यन्दने स्थिताम् ।
उवाच निर्गलद्बाष्प एहि सीते ! रथाद्भुवि ।।७६।।
सीता तद्वाक्यमाकर्ण्य क्षणादवततार सा। लक्ष्मणेन धृता बाहौ स्खलन्ती पथि कण्टकैः।।७७।।

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
जानक्या गङ्गादर्शनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५८।।

* * *

उनसठवाँ अध्याय

शेष उवाच

अथ नावा समुत्तीर्य जाह्नवीं लक्ष्मणस्तदा। जानकीं परतस्तीरे हस्ते धृत्वा वनं ययौ ।।१।।
सा चलन्ती पथि तदा शुष्यद्वदलक्षिता। कण्टकक्षतसत्पादा स्खलन्ती च पदे पदे।।२।।
लक्ष्मणस्तां महाघोरे विपिने दुःखदायिनि। प्रवेशयामास तदा राघवाज्ञाविधायकः ।।३।।

अपने पति के चरणों की पूजा करना है। उसको छोड़कर अन्यत्र जाती हुयी मुझको जो हो सो उचित ही है।।७२।। रास्ते में इस तरह से विचार करती हुयी जानकीजी ने मुनि समूह से सेवित गङ्गाजी को देखा ।।७३।। गङ्गाजी में दुग्ध के समान जल की लहरें दिखायी पड़ती थीं। गङ्गाजी की तरङ्गें साक्षात् स्वर्ग की सीढ़ी के समान थीं।।७४।। जिस गङ्गाजी के जल के कण को स्पर्श करने से पाप समूह कहीं भी अपने लिए स्थान न देखकर पलायन कर जाते हैं ।।७५।। उस गङ्गा के तट पर आकर रथ पर बैठी हुयी जानकीजी से लक्ष्मणजी ने कहा आप नीचे उतरिए।।७६।। उनकी बातें सुनकर जानकीजी रथ से नीचे उतरीं। लक्ष्मणजी ने उनका हाथ पकड़ रखा था क्योंकि वे रास्ते में लड़खड़ा रही थीं ।।७७।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में जानकीजी द्वारा गङ्गा दर्शन नामक अठानवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५८।।

* * *

सीता लक्ष्मण सम्वाद जानकीजी का वन में परित्याग तथा कुश एवं लव की उत्पत्ति का वर्णन

शेषजी ने कहा— उसके बाद नौका से गङ्गा को पार करके लक्ष्मणजी गङ्गा के दूसरे तट पर जानकीजी का हाथ पकड़कर वन में चले गये ।।१।। रास्ते में चलती हुयी जानकीजी का मुख सुख रहा था। उनके पैर

यत्र वृक्षा महाघोरा बर्बूराः खदिराधनाः (धवाः) ।
श्लेष्मातकाश्चिञ्चिणीकाः शुष्का दावेन वह्निना ॥४॥
कोटरस्था महासर्पाःफूत्कुर्वन्ति सुकोपिताः ।
घूका घूत्कुर्वते यत्र लोकचित्तभयङ्कराः ॥५॥
व्याघ्राः सिंहा शृगालाश्च द्वीपिनोऽतिभयङ्कराः ।
दृश्यन्ते यत्र सरला (असहनाः) मनुष्यादाः सुकोपनाः ॥६॥
महिषाः शूकरा दुष्टा दंष्ट्रावाद्वयविलक्षिताः। कुर्वन्ति प्राणिनां तापं मानसस्य मदोद्धुराः ॥७॥
ईदृग्वनं प्रपश्यन्ती भयेनोपगतज्वराः। कण्टकैर्दष्टचरणा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥८॥

जानक्युवाच

वीरर्षिमुनिसंसेव्यानाश्रमान्नेत्रसौख्यदान् । नाहं पश्यामि नो तेषां पत्नीश्च सुतपोधनाः ॥९॥
पश्यामि केवलं घोरान्पक्षिणः शुष्कवृक्षकान् ।
दावानलेन तत्सर्वं दह्यमानमिदं वनम् ॥१०॥
त्वां च पश्यामि दुःखार्तमश्रुपूर्णाकुलेक्षणाम् ।
शकुनेतरसाहस्रं भवेन्मम पदे पदे ॥११॥
तन्मे कथय वीराग्र्य ! कथं मुक्ता महात्मना ।
रामेण दुष्टहृदया क्षिप्रं कथय मे हि तत् ॥१२॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य लक्ष्मणः शोककर्शितः ।
संरुद्धबाष्पवदनो (नयनो) न किञ्चित्प्रोक्तवांस्तदा ॥१३॥
तदेव विपिनं घोरं गच्छन्ती लक्ष्मणान्विता। पुनरप्याह तं वीरं दुःखार्ता पश्यती मुखम् ॥१४॥

काण्टों से छिद गये और वे पग-पग पर गिर रहीं थी ॥२॥ श्रीराम की आज्ञा का पालन करने वाले लक्ष्मणजी ने जानकीजी को दुःखप्रद घोर वन में प्रवेश करा दिया ॥३॥ वहाँ अत्यन्त भयङ्कर बबूल, खैर, बहेड़ा तथा तिंत्रिणी आदि के वनाग्नि से सुखे वृक्ष थे ॥४॥ वृक्षों के कोटरों में भयङ्कर सर्प थे, वे फुत्करकर रहे थे । वहाँ पर लोगों को भयभीत करने वाले उल्लू बोल रहे थे ॥५॥ बाघ, सिंह, स्यार तथा भयङ्कर हाथी दिखायी देते थे। जो मनुष्यों को खा जाने वाले तथा क्रोधी थे ॥६॥ भैंसे, शूकर जिनको दो दाँत दिखते थे । वे भयङ्कर होने के कारण प्राणियों को भयभीत करने वाले थे ॥७॥ इस तरह के वन को देखकर भयभीत होकर तथा पैरों के छेद जाने से जानकीजी ने लक्ष्मणजी से कहा ॥८॥ **जानकीजी ने कहा**— हे वीर ! यहाँ मैं सुख देने वाले तथा ऋषियों एवं मुनियों का आश्रम नहीं देख रही हूँ और न तो उनकी पत्नियाँ ही यहाँ दिखायी देती है ॥९॥ यहाँ तो मैं केवल सूखे वृक्षों तथा भयङ्कर पक्षियों को ही देख रही हूँ । यहाँ का सारा वन दावागिन से जला हुआ है॥१०॥ तुम्हें भी मैं देखती हूँ कि तुम दुखी हो; तुम्हारे नेत्र आँसुओं से भरे हैं । मुझे पद-पद पर अपशकुन हो रहा है ॥११॥ हे वीरश्रेष्ठ ! शीघ्र बतलाओ कि दुष्ट हृदय वाली मुझको श्रीराम ने क्यों त्याग दिया है?॥१२॥ इस वाक्य को सुनकर शोक संतप्त लक्ष्मणजी का गला भर गया था वे कुछ भी नहीं बोले ॥१३॥ उसी समय लक्ष्मणजी के साथ घोर वन में जाती हुयी सीताजी लक्ष्मणजी का दुखार्त मुख देखकर फिर कहीं ॥१४॥ उस बार भी लक्ष्मणजी उनसे कुछ नहीं बोले । उस समय जानकीजी ने अत्यन्त आग्रह किया ॥१५॥ जब सीताजी

तदापि स न तां वक्ति किमपि प्रेक्षुलोलुपः ।
तदा सात्यन्तनिर्बन्धं चकार परिपृच्छती ॥१५॥
आग्रहेण यदा पृष्टो लक्ष्मणः सीतया तदा। रुद्धकण्ठो मुहुः शोचन्नवदत्त्यागसम्भवम् ॥१६॥
तद्वाक्यं पविना तुल्यं निशम्य मुनिसत्तम !। सुलता कृत्तमूलेव बभूवाऽऽकल्पवर्जिता ॥१७॥
तदैव पृथिवी तां न जग्राह तनयामिमाम्। रामो विपापिनीं सीतां न जह्यादिति शङ्किनी ॥१८॥
पतितां तां तु वैदेहीं दृष्ट्वा सौमित्रिरुत्सुकः ।
पल्लवाग्र्य (ग्र) समीरेण संज्ञितां तु चकार सः ॥१९॥
संज्ञां प्राप्ता ह्युवाचेदं मा हास्यं कुरु देवर ! ।
कथं मां पापरहितां त्यजते स रघूद्वहः ॥२०॥
एवं बहु विलाप्याऽथ लक्ष्मणं दुःखसंयुतम् ।
सम्वीक्ष्य मूर्च्छिता भूमौ पपात परिदुःखिता ॥२१॥
मुहूर्तेनापि संज्ञां सा प्राप्य दुःखपरिप्लुता। जगाद रामचरणौ स्मरन्ती शोकविक्षता॥२२॥

जानक्युवाच

रघुनाथो महाबुद्धिस्त्यजते मां कथं महान्। यो मदर्थे पयोराशिं बद्धवान्वानरैर्युतः॥२३॥
स कथं मां महावीरो निष्पापां रजकोक्तितः ।
त्यजिष्यति ममैवात्र दैवं तु प्रतिकूलितम् ॥२४॥
एवं वदन्ती पुनरपि मूर्च्छां प्राप्ता विदेहजा ।
मूर्च्छितां तां समीक्ष्याथ रुरोद विकृतस्वरः ॥२५॥
पुनः संज्ञामवाप्यैवं सौमित्रिं निजगाद सा। दुःखातुरं वीक्षमाणारुद्धकण्ठं सुदुःखिता॥२६॥
सौमित्रे गच्छ रामं त्वं धर्ममूर्तिं यशोनिधिम् ।
मद्वाक्यमेवैतद् ब्रूयाः समक्षं तपसां निधेः ॥२७॥

ने आग्रह पूर्वक पूछा तो रुँधे हुए गले से लक्ष्मणजी ने त्याग की बात बतलायी ॥१६॥ हे मुनिश्रेष्ठ वात्स्यायन! उस वज्र के समान वाक्य को सुनकर जानकीजी कटी हुयी लता के समान गिर गयीं ॥१७॥ उस समय भूदेवी ने भी अपनी इस पुत्री को नहीं पकड़ा। उनको शङ्का थी कि निष्पाप सीता को राम नहीं त्याग सकते हैं ॥१८॥ गिरी हुयी सीताजी को देखकर दुःखी लक्ष्मणजी पत्तों से हवा करके उन्हें होश में लाये ॥१९॥ होश में आकर जानकीजी ने कहा देवर ! हँसी न करो। पाप रहित मुझको श्रीराम क्यों त्यागेंगें ?॥२०॥ इस तरह से बहुत विलाप करके दुःखी लक्ष्मणजी को देखकर जानकीजी फिर मूर्छित हो गयीं और पृथिवी पर गिर पड़ीं ॥२१॥ क्षणभर में होश में आकर दुःखिनी सीताजी श्रीरामजी के चरणों का स्मरण करती हुयी कहीं ॥२२॥ **जानकीजी ने कहा—** महाबुद्धिमान श्रीरामजी मुझे क्यों त्याग रहे हैं। उन्होंने मेरे लिए वानरों के साथ समुद्र को बाँध दिया॥२३॥ वे महावीर निष्पाप मुझको रजक के कहने से क्यों त्यागेंगें ? मेरा भाग्य ही प्रतिकूल है। इस तरह से कहकर जानकीजी फिर मूर्छित हो गयीं। मूर्छित जानकीजी को देखकर लक्ष्मणजी विकृत स्वर में रोने लगे॥२४-२५॥ फिर होश में आकर जानकीजी दुःखी तथा रुद्ध कण्ठ वाले लक्ष्मणजी को देखकर कहीं ॥२६॥ हे लक्ष्मण ! तुम धर्ममूर्ति तथा यशोनिधि श्रीरामजी के पास जाओ उन तपस्वी से यही कहना ॥२७॥ आप मुझे

मां तत्याज भवान्यद्वै जानन्नपि विपापिनीम् ।
कुलस्य सदृशं किं वा शास्त्रज्ञानस्य तत्फलम् ॥२८॥
नित्यं तव पदे रक्तां त्वदुच्छिष्टभुजां हि माम् ।
भवांस्तत्याज तत्सर्वं मम दैवं तु कारणम् ॥२९॥
कल्याणं तत्र सर्वत्र भूयाद्वीरवरोत्तम ! । अहं तावद्वने त्वां हि स्मरन्ती प्राणधारिका ॥३०॥
मनसा कर्मणा वाचा भवानेव ममोत्तमः । अन्ये तुच्छीकृताः सर्वे मनसा रघुवंशज !॥३१॥
भवे भवे भवानेव पतिर्भूयान्मही(हे)श्वर ! । त्वत्पदस्मरणानेकहतपापा सतीश्वरी ॥३२॥
श्वश्रूजनं ब्रूहि सर्वं मत्सन्देशं रघूत्तम ! । त्यक्ता वने महाघोरे रामेण निरवा सती ॥३३॥
स्मरामि चरणौ युष्मद्वने मृगगणैर्युते । अन्तर्वत्नी वने त्यक्ता रामेण सुमहात्मना ॥३४॥
सौमित्रे ! शृणु मद्वाक्यं भद्रं भूयाद्रघूत्तमे । इदानीं सन्त्यजे प्राणान्रामवीर्यं सुरक्षती ॥३५॥
त्वं रामवचनं तथ्यं यत्करोषि शुभं तव । परतन्त्रेण तत्कार्यं रामपादाब्जसेविना ॥३६॥
गच्छ त्वं रामसविधे शिवाः पन्थान एव ते ।
ममोपरि कृपा कार्या स्मर्तव्याऽहं कदा कदा ॥३७॥
इत्युक्त्वा मूर्च्छिता भूमौ पपात पुरतस्तदा (स्ततः) ।
लक्ष्मणो दुःखमापेदे वीक्ष्य मूर्च्छितजानकीम् ॥३८॥
वीजयामास वासोग्रैःसंज्ञाम्प्राप्तां प्रणम्य च। सौमित्रिः सान्त्वयामास वचनैर्मधुरैर्मुहुः ॥३९॥

लक्ष्मण उवाच

एष गच्छामि रामं वै गत्वा शंसामि सर्वशः ।
समीपे ते मुनेरस्ति वाल्मीकेराश्रमो महान् ॥४०॥

निष्पाप जानकर भी क्यों त्याग दिए। यह आपके वंशानुकूल है अथवा यह शास्त्र ज्ञान का फल है ॥२८॥ मैं सदा आपके चरणों से प्रेम करती थी आपका उच्छिष्ट भोजन करती थी। फिर भी आपने मुझे त्याग दिया। इसमें मेरे भाग्य का ही दोष है ॥२९॥ हे वीर श्रेष्ठ ! आपका कल्याण हो मैं वन में भी आपका स्मरण करती हुयी अपने प्राणों को धारण करूँगी ॥३०॥ हे रघुवंशज ! मेरे लिए मन, वाणी तथा कर्म से आप ही उत्तम पुरुष हैं, दूसरों को मैंने मन से तुच्छ मान लिया है ॥३१॥ प्रत्येक जन्म में आप ही मेरे पति हों। आपके चरणों का स्मरण करके मैं सतियों में श्रेष्ठ हो जाऊँगी ॥३२॥ हे रघूत्तम ! मेरी सासुओं से आप कहेंगे कि मुझे श्रीराम ने घोर वन में त्याग दिया है; यद्यपि मैं निष्पाप हूँ ॥३३॥ मैं मृग समूह से युक्त आपलोगों के चरणों का स्मरण करती हूँ। मैं गर्भिणी हूँ और महात्मा श्रीराम ने मुझे वन में त्याग दिया है ॥३४॥ लक्ष्मण ! मेरी बात सुनो श्रीराम का कल्याण हो। श्रीराम के वीर्य की सुरक्षा करने के कारण मैं अपने प्राणों को भी नहीं त्याग सकती हूँ ॥३५॥ तुम श्रीराम के वचनों को सत्य कर रहे हो अतएव तुम्हारा कल्याण हो। श्रीराम के चरणों की सेवा करने वाले तुमको ऐसा ही करना चाहिए तुम तो उनके परतंत्र हो ॥३६॥ तुम श्रीराम के पास जाओ तुम्हारा मार्ग कल्याणमय हो। कृपा करके मुझे भी कभी-कभी स्मरण कर लेना ॥३७॥ यह कहकर वे उनके सामने ही मूर्छित होकर गिर पड़ीं। मूर्छित जानकीजी को देखकर लक्ष्मणजी भी दुःखी हो गये ॥३८॥ कपड़ों से हवा करने पर वे होश में आयीं तो उनको प्रणाम करके लक्ष्मणजी ने मधुर वचनों से उन्हें सान्त्वना प्रदान किया ॥३९॥ **लक्ष्मणजी ने**

इत्युक्त्वा तां परिक्रम्य दुःखितो बाष्पपूरितः ।
मुञ्चन्नश्रुकलादुःखाद्ययौरामं महीपतिम् ॥४१॥
जानकी देवरं यान्तं वीक्ष्य विस्मितलोचना। हसत्ययं महाभागो लक्ष्मणो देवरो मम॥४२॥
कथं मां प्राणतः प्रेष्ठां विपापां राघवोऽत्यजत् ।
इति सञ्चिन्तयन्ती सा तमैक्षिष्टानिमेषणा (तमैक्षदनिमेषणा) ॥४३॥
जाह्नवीं सर्वथोत्त्तीर्णां ज्ञात्वा सत्यं स्वहापनम् ।
पतिता प्राणसन्देहं प्राप्ता मूर्च्छाऽऽगता तदा ॥४४॥
तदा हंसाः स्वपक्षाभ्यां जलमानीय सर्वतः। सिषिचुर्मधुरोवायुर्ववौ पुष्पसुगन्धिमान् ॥४५॥
करिणः पुष्करैः स्वीयैजलपूर्णैं समन्ततः। व्याप्तं शरीरं रजसा क्षालयन्त इवाऽऽगताः ॥४६॥
मृगास्तदन्तिकं प्राप्य सन्तस्थुर्विस्मितेक्षणा । नगाः पुष्पयुता आसंस्तत्कालं मधुना विना ॥४७॥
एतस्मिन्समये वृत्ते संज्ञां प्राप्य सती तदा । विललाप सुदुःखार्ता रामरामेति जल्पती ॥४८॥
हा नाथ ! दीनबन्धो हे करुणापयसां निधे ।
अपराधादृते मां त्वं कथं त्यजसि वै वने ॥४९॥
इत्येवमादिभाषन्ती विलपन्ती मुहुर्मुहुः । इतस्ततः प्रपश्यन्ती संमूर्च्छन्ती पुनःपुनः ॥५०॥
तदा स्वशिष्यैर्भगवान्वाल्मीकिः सङ्गतो वनम् ।
शुश्राव रुदितं तत्र करुणास्वरभाषितम् ॥५१॥
शिष्यान्प्रतिजगादाथ पश्यन्तु वनमध्यतः। को रोदिति महाघोरे विपिने दुःखितस्वरः॥५२॥
ते प्रत्युक्ताश्च मुनिना सञ्जग्मुर्यत्र जानकी। रामरामेति भाषन्ती बाष्पपूरपरिप्लुता॥५३॥

कहा— मैं श्रीरामजी के पास जाकर उनसे सारी बातें कहूँगा । आपके सन्निकट में महर्षि वाल्मीकि का महान् आश्रम है ॥४०॥ इस तरह से कहकर जानकीजी की परिक्रमा करके रुँधे गले वाले, दुःखी लक्ष्मणजी आँसू बहाते हुए श्रीरामजी के पास चले गये ॥४१॥ जाते हुए देवर को आश्चर्यित नेत्रों से देखकर जानकीजी सोचीं की लगता है देवर लक्ष्मण मुझसे हँसी कर रहे हैं ॥४२॥ निष्पाप तथा प्राणों से भी प्रिय मुझको श्रीराम क्यों त्यागेंगे? इस तरह सोचकर वे निर्निमेष नेत्रों से देखती रहीं ॥४३॥ जव लक्ष्मणजी गङ्गापार कर गये तो उन्होंने जाना कि सचमुच मेरा त्याग हो गया है । वे मूर्छित होकर गिर पड़ी और अब तो उनके प्राणों का भी सन्देह था ॥४४॥ उस समय हंस अपने पंखों से पानी लाकर उनको सींचे, सुगन्धित हवा चलने लगी ॥४४॥ हाथी अपनी सूंढ में पानी भरकर धूल में लोटी हुयी जानकीजी को मानो धोने लगे ॥४५॥ उनके सन्निकट में आकर मृग विस्मृत नेत्रों से उन्हें देखने लगे, बिना वसन्त के ही पर्वत पुष्पों से भर गये ॥४७॥ उसी समय होश में आकर जानकीजी राम-राम कहकर अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगीं ॥४८॥ हे नाथ ! हे दीनबन्धों ! हे करुणासागर ! बिना अपराध के आप मुझे क्यों वन में त्याग रहे हैं ॥४९॥ इस तरह से कहकर बार-बार विलाप करके इधर-उधर देखकर वे मूर्छित हो जाती थीं ॥५०॥ उसी समय भगवान वाल्मीकि अपने शिष्यों के साथ वन में आये । उन्होंने करुणस्वर में उस रुदन को सुना ॥५१॥ उन्होंने शिष्यों से कहा कि वन में जाकर देखो कि अत्यन्त घोर वन में दुःखी होकर कौन रो रहा है ?॥५२॥ मुनि के द्वारा भेजे गये वे सब जानकीजी के पास आये जहाँ वे आँसू बहाती हुयी राम-राम कहकर रो रही थीं ॥५३॥ उनको देखकर उत्सुक होकर वे सब महर्षि वाल्मीकि के पास

तां दृष्ट्वा स्त्रियमौत्सुक्याद्वाल्मीकिं प्रत्यगुर्मुनिम् ।
श्रुत्वा तदीरितं वाक्यं जगामाऽऽसौ ततो मुनिः ॥५४॥
दृष्ट्वा तं तपसां राशिं जानकी पतिदेवता। नमोऽस्तु मुनये वेदमूर्तये व्रतवार्धये ॥५५॥
इत्युक्तवन्तीं तां सीतामाशीर्भिरभ्यनन्दयत् । भर्त्रा सह चिरं जीव पुत्रौ प्राप्नुहि शोभनौ ॥५६॥
काऽसि त्वं किं वने घोरे सङ्गताऽसि किमीदृशी ।
सर्वं मे शंस जानीयां तव दुःखस्य कारणम् ॥५७॥
सा तदा प्रत्युवाचेमं रामस्य महिलामुनिम् । निःश्वसन्ती करुणया गिरा सञ्जातवेपथुः ॥५८॥
शृणु मे वाक्यमर्थोक्तं सर्वदुःखस्य कारणम् ।
जानीहि मां भूमिपते ! रघुनाथस्य सेविकाम् ॥५९॥
अपराधं विना त्यक्तां न जाने तत्र कारणम् ।
लक्ष्मणो मां विमुच्यात्र गतवान्राघवाज्ञया ॥६०॥
इत्युक्त्वाऽश्रुकलापूर्णं बिभ्रतीं मुखपङ्कजम्। वाल्मीकिः सान्त्वयन्प्राह जानकीं कमलेक्षणाम्॥६१॥

वाल्मीकिरुवाच

वाल्मीकिं मां विजानीहि पितुस्तव गुरुं मुनिम् ।
दुःखं मा कुरु वैदेहि ! ह्यागच्छ मम चाऽऽश्रमम् ॥६२॥
भिन्नस्थाने पितुर्गेहं जानीहि पतिदेवते। ईदृशे कर्मणि मम रोषोऽस्त्येव महीपतेः॥६३॥
एवं वचः समाकर्ण्य जानकी पतिदेवता। दुःखपूर्णाऽश्रुवदना किञ्चित्सुखमवाप सा॥६४॥

शेष उवाच

वाल्मीकिः सान्त्वयित्वैनां दुःखपूराकुलेक्षणाम् ।
निनाय स्वाश्रमं पुण्यं तापसीवृन्दपूरितम् ॥६५॥

गये । उन सबों की बातों को सुनकर मुनि जानकीजी के पास गये ॥५४॥ तपोराशि मुनि को देखकर पतिव्रता जानकी ने कहा— व्रत के सागर तथा वेद मूर्ति महर्षि को नमस्कार है ॥५५॥ इस तरह से कहने वाली सीताजी को अपने आशीर्वाद से अभिनन्दित करते हुए महर्षि ने कहा— अपने पति के साथ चिरकाल तक जीओ और दो सुन्दर पुत्रों को प्राप्त करो ॥५६॥ तुम कौन हो ? इस घोर वन में क्यों आयी हो ? इन सभी बातों को बतलाओ; जिससे कि मैं तुम्हारे दुःख का कारण जान सकूँ । तब रामपत्नी ने महामुनि से कहा वे दुःख के कारण निःश्वास ले रही थीं और उनका शरीर काँप रहा था ॥५७-५८॥ आप मेरी बात सुनें जो सभी दुःखों का कारण हैं उसे सुनें मैं राजा राम की सेविका हूँ ॥५९॥ विना अपराध के ही न जाने क्यों उन्होंने मेरा त्याग कर दिया है । श्रीराम की आज्ञा से मुझको यहाँ छोड़कर लक्ष्मण चले गये हैं ॥६०॥ इस तरह से कहते हुए उनकी आँखों में आँसू भर गया और कमल के समान मुख तथा नेत्रों वाली जानकी को महर्षि वाल्मीकि ने आश्वस्त किया॥६१॥ **महर्षि वाल्मीकि ने कहा**— मेरा नाम वाल्मीकि है, मैं तुम्हारे पिता का गुरु हूँ । तुम दुःख न करो मेरे आश्रम में आओ॥६२॥ हे पतिव्रते ! इसे तुम अपने पिता का दूसरा घर समझो । ऐसा कर्म करने से मेरा क्रोध राजा पर है ॥६३॥ इस बात को सुनकर पतिव्रता जानकी का जो मुख दुःख के आँसू से भर गया था, उनको कुछ सुख मिला ॥६४॥ **शेषजी ने कहा**— दुःख से व्याकुल नेत्रों वाली सीताजी को सान्त्वना प्रदान करके महर्षि

सा गच्छन्ती पृष्ठतोऽस्य वाल्मीकेस्तपसांनिधेः ।
रराजेन्दोः पृष्ठतो वै तारकेव मनोहरा ॥६६॥
वाल्मीकिः प्राप्य च स्वीयमाश्रमं मुनिपूरितम् ।
तापसीःप्रतिसञ्चख्यौ जानकीं स्वाश्रमं गताम् ॥६७॥
वैदेही तापसीः सर्वा नमश्चक्रे महामनाः । परस्परं प्रहृष्य ताःपरिरम्भं समाचरन् ॥६८॥
वाल्मीकिर्निजशिष्यान्स प्रत्युवाच तपोनिधिः ।
रच्यतां वत जानक्याः पर्णशाला मनोरमा ॥६९॥
इत्युक्तं वाक्यमाकर्ण्य वाल्मीकेः सुमनोरमम् ।
व्यरचन्पत्रकैः शालां दारुभिः सुमनोहराम् (सुमनोरमाम्) ॥७०॥
तत्रावसद्धि वैदेही पतिव्रतपरायणा । वाल्मीकेः परिचर्यां च कुर्वन्ती फलभक्षिका ॥७१॥
जपन्तीरामरामेति मनसा वचसा स्वयम् । निनाय दिवसांस्तत्र जानकी पतिदेवता॥७२॥
काले साऽभूत पुत्रौ द्वौ मनोहरवपुर्धरौ । राम चन्द्रप्रतिनिधी ह्यश्विनाविव जानकी॥७३॥
तच्छ्रुत्वा तु मुनिर्हृष्टो जानक्याः पुत्रसम्भवम् ।
चकार जातकर्मादि संस्कारान्मन्त्रवित्तमः ॥७४॥
कुशैर्लवैश्च वाल्मीकिर्मुनिःकर्माणि चाऽऽचरत् ।
तन्नाम्ना पुत्रयोराख्यां कुशोलव इति स्फुटा ॥७५॥
वाल्मीकिर्यत्र विरजा मङ्गलं तद्यथाचरन् । अत्यन्तं हृष्टचित्ता सा बभूव कमलेक्षणा ॥७६॥
तद्दिने लवणं हत्वा शत्रुघ्नःस्वल्पसैनिकः । आगमच्चाश्रमे चास्य वाल्मीकेर्निशि शोभने॥७७॥
तदा वाल्मीकिना शिष्टःशत्रुघ्नो रघुनायकम् ।
मा शंस जानकीपुत्रौ कथयिष्याम्यहंपुरः ॥७८॥

वाल्मीकि तपस्वी समूह से परिपूर्ण अपने आश्रम में लाये ॥६५॥ महर्षि के पीछे-पीछे जाती हुयी सीताजी की शोभा चन्द्रमा के पीछे चलने वाली तारा के समान हो रही थी ॥६६॥ मुनियों से परिपूर्ण अपने आश्रम में आकर महर्षि ने तपस्वियों से अपने आश्रम में आयी हुयी जानकी को बतलाया ॥६७॥ महामना जानकी ने सभी तपस्वियों को नमस्कार किया । परस्पर में प्रहर्षित होकर उन लोगों ने सीताजी को गले से लगा लिया ॥६८॥ तपोनिधि महर्षि ने अपने शिष्यों से कहा कि जानकी के लिए मनोहर पर्णशाला बनाओ ॥६९॥ महर्षि वाल्मीकि के मनोहर वाक्य को सुनकर उन लोगों ने पल्लवों तथा लकड़ियों से मनोहर आश्रम को बना दिया ॥७०॥ जानकीजी फलाहार करके महर्षि वाल्मीकि की सेवा करती हुयी वहीं निवास करने लगीं ॥७१॥ वे स्वयम् मन और वाणी से राम-राम का जप करती थीं । इस तरह से पतिव्रता वे अपने दिनों को बिताने लगीं ॥७२॥ समयानुसार उन्होंने दो मनोहर पुत्रों को जन्म दिया वे अश्विनी कुमारों के समान सुन्दर और देखने में रामचन्द्र के समान थे ॥७३॥ जानकी के पुत्रों का जन्म सुनकर महर्षि प्रसन्न हुए मन्त्रों के श्रेष्ठ ज्ञाता उन्होंने उन सबों का जातकर्म संस्कार किया ॥७४॥ मुनि ने कुशों और लवों (कुश के जड़ों) से सभी कर्मों को किया उसी के कारण उन दोनों बच्चों का नाम कुश और लव हुआ ॥७५॥ निष्पाप महर्षि ने सीता का मङ्गल किया उसके कारण कमल के समान नेत्रों वाली जानकीजी अत्यन्त प्रसन्न मन वाली हो गयीं ॥७६॥ उसी सुन्दर रात्रि को शत्रुघ्नजी

जानकीपुत्रकौ तत्र ववृधाते मनोरमौ। कन्दमूलफलैः पुष्टौ व्यदधादुन्मदौ वरौ ॥७९॥
शुक्लप्रतिपदायाश्च शशीव सुमनोहरौ। कालेन संस्कृतौ जातावुपनीतौ मनोहरौ॥८०॥
उपनीय मुनिर्वेदं साङ्गमध्यापयत्सुतौ । सरहस्यं धनुर्वेदं रामायणमपाठयत् ॥८१॥
वाल्मीकिना च धनुषी दत्ते स्वर्णसुभूषिते । अभेद्ये सगुणे श्रेष्ठे वैरिवृन्दविदारणे ॥८२॥
इषुधी बाणसम्पूर्णे अक्षये करवालके। वर्माण्यभेद्यानि ददौ जानक्यात्मजयोस्तदा ॥८३॥
धनुर्धरौ धनुर्वेदपारगावाश्रमे मुदा। चरन्तौ तत्र रेजाते (ह्य) अश्विनाविव शोभनौ॥८४॥
जानकी वीक्ष्य पुत्रौ द्वौ खड्गचर्मधरौ वरौ ।
परमं हर्षमापन्ना विरहोद्भवमत्यजत् ॥८५॥
एष ते कथितो विप्र ! जानक्याः पुत्रसम्भवः ।
अतःशृणुष्व यद्वृत्तंवीरबाहुविकृन्तनम् ॥८६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
कुशलवोत्पत्तिकथानकं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

* * *

लवणासुर का वध करके महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में अपने अल्प सैनिकों के साथ आये थे ॥७७॥ उस समय वाल्मीकि महर्षि ने शत्रुघ्नजी को कहा कि वे जानकी के पुत्रों की चर्चा नहीं करेंगे । मैं ही सर्वप्रथम इस बात को कहूँगा ॥७८॥ वहाँ पर जानकीजी के मनोहर दोनों पुत्र बढ़ने लगे । जानकीजी ने उन दोनों को फल-मूल खिलाकर पुष्ट बनाया ॥७९॥ वे शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि के चन्द्रमा के समान मनोहर थे । समयानुसार उन दोनों का यज्ञोपवीत संस्कार हो गया ॥८०॥ दोनों बच्चों को उपनीत करके महर्षि ने साङ्गवेदों का अध्ययन कराया । रहस्य के साथ धनुर्वेद को तथा रामायण को पढ़ाया ॥८१॥ महर्षि वाल्मीकि ने उन दोनों को सुवर्ण भूषित अभेद्य दो धनुषों को प्रदान किया जो प्रत्यञ्चा से युक्त और शत्रुओं के समूह को विनष्ट करने वाले थे॥८२॥ अक्षय बाणों से परिपूर्ण दो तुणीर और दो तलवार तथा अभेद्य कवच जानकी के पुत्रों को उन्होंने प्रदान किया॥८३॥ धनुर्वेद मे पारंगत दोनों धनुष धारण करके आश्रम में विचरण करते थे । उनकी शोभा दोनों अश्विनी कुमारों के समान होती थी ॥८४॥ जानकीजी ने खड्ग और ढाण धारण करने वाले अपने दोनों पुत्रों को देखकर अपने विरह के दुःख को त्याग दिया और अत्यन्त प्रसन्न हुयीं ॥८५॥ हे विप्र ! (वात्स्यायन) इस तरह से मैंने आपको जानकीजी के पुत्रों की उत्पत्ति का वर्णन सुनाया । उसके बाद शत्रुघ्नजी के वीरों के बाहु के कट जाने पर क्या हुआ उसे सुनो ॥८६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में कुश तथा लव की उत्पत्ति नामक उनसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५९।।

* * *

साठवाँ अध्याय

शेष उवाच

शत्रुघ्नो निजवीराणां छिन्नबाहून्निरीक्षयन्। उवाच तान्सुकुपितो रोषसदंशिताधरः ॥१॥
केन वीरेण बो बाहुकृन्तनं समकारि भोः। तस्याहं बाहूकृन्तामि देवगुप्तस्य वै भटाः॥२॥
न जानाति महामूढो रामचन्द्रबलं महत्। इदानीं दर्शयिष्यामि पराक्रान्त्य बलं स्वकम्॥३॥
स कुत्र वर्तते वीरो हयः कुत्र मनोरमः। को वाऽगृह्णात्सुप्तसर्पान्मूढोऽज्ञात्वा पराक्रमम् ॥४॥
इति ते कथिता वीरा विस्मिता दुःखिता भृशम्।
रामचन्द्रप्रतिनिधिं बालकं समशंसत ॥५॥
स श्रुत्वा रोषताम्राक्षो बालकेन हयग्रहम्। सेनान्यं वै कालजितमाज्ञापयद्युयुत्सुकः ॥६॥

शत्रुघ्न उवाच

सेनानीःसकलां सेनां व्यूहयस्व ममाऽऽज्ञया।
रिपुःसम्प्रति गन्तव्यो महाबलपराक्रमः ॥७॥
नायं बालो हरिर्नूनं भविष्यति हयन्धरः। अथवा त्रिपुरारिः स्यान्नान्यथा मद्धयापहृत् ॥८॥
अवश्यं कदनं भावि सैन्यस्य बलिनो महत्।
स्वच्छन्दचरितैः खेलन्नास्ते निर्भयधीःशिशुः ॥९॥
तत्र गन्तव्यमस्माभिःसन्नद्धै रिपुदुर्जयैः। एतन्निशम्य वचनं शत्रुघ्नस्य स सैन्यपः ॥१०॥
सज्जीचकार सेनां तां दुर्व्यूढां चतुरङ्गिणीम्।
सज्जां तां शत्रुजिद्दृष्ट्वा चतुरङ्गयुतां वराम् ॥११॥

शत्रुघ्न के सेनापति कालजित् का लव के साथ युद्ध और कालजित् की मृत्यु

शेषजी ने कहा— शत्रुघ्नजी अपने वीरों के कटे हुए हाथों को देखकर अत्यन्त क्रोध करके अपने ओठों को काट लिए और बोले ॥१॥ किस वीर ने तुमलोगों की भुजाओं को काटा है ? यदि वह देवताओं के द्वारा रक्षित हो तो भी उसकी भुजाओं को मैं काट दूँगा ॥२॥ वह मूर्ख श्रीरामचन्द्रजी के बल को नहीं जानता है। अब मैं पराक्रम के द्वारा बल का प्रदर्शन करूँगा ॥३॥ वह वीर कहाँ है ? मनोहर अश्व कहाँ है ? कौन मूर्ख सोए हुए सर्प के पराक्रम को जाने बिना उसको पकड़ लिया है ?॥४॥ इस तरह से कहने पर विस्मत तथा दुःखी वीरों ने श्रीरामचन्द्र के समान सुन्दर बालक को बतलाया ॥५॥ क्रोध के कारण लाल आँखों वाले शत्रुघ्नजी ने बालक के द्वारा अश्व के पकड़े जाने की बात सुनकर युद्ध करने की इच्छा से कालजित् नामक सेनापति को आज्ञा दिया॥६॥ सेनापते ! इस समय सारी सेना को एकत्रित करके महान् बल और पराक्रम से युक्त शत्रु से युद्ध करना है ॥७॥ अश्व को पकड़ने वाला बालक नहीं निश्चित रूप से विष्णु होंगे अथवा शङ्कर होंगे। दूसरा कोई मेरे अश्व का अपहरण करने वाला नहीं होगा ॥८॥ अतएव वीरों की मृत्यु अवश्य होंगी। वह बालक अपनी इच्छानुसार क्रीड़ा कर रहा है और निर्भय है ॥९॥ अतएव वहाँ हमलोगों को शत्रु के लिए दुर्जय होकर चलना चाहिए। शत्रुघ्नजी के इस वचन को सुनकर सेनापति ने ॥१०॥ अपनी चतुरङ्गिणी सेना को दुर्व्यूढ रूप से सजाया। उस श्रेष्ठ चतुरङ्गिणी सेना को देखकर शत्रुघ्नजी अश्व को पकड़ने वाले बालक के पास जाने का आदेश दिये। उसके

आज्ञापयत्ततो गन्तुं यत्र बालो हयन्धरः। सा चचाल तदा सेना चतुरङ्गसमन्विता ॥१२॥
कम्पयन्ती महीभागं त्रासयन्ती रिपून्बलात्। सेनानीस्तं ददर्शाऽथ बालकं रामरूपिणम् ॥१३॥
विचार्य रामप्रतिममब्रवीद्वचनं हितम्। बाल ! मुञ्च हयश्रेष्ठं रामस्य बलशालिनः ॥१४॥
सेनानीः कालजिन्नाम तस्य भूपस्य दुर्मदः। त्वां रामप्रतिमं दृष्ट्वा कृपा मे हृदि जायते ॥१५॥
अन्यथा तत्र मे दौस्थ्याज्जीवितं न भविष्यति ।
एतद्वाक्यं समाकर्ण्य शत्रुघ्नस्य भटस्य हि ॥१६॥
जहास किञ्चिदाकोपादुवाच च वचोऽद्भुतम् ।
गच्छ मुक्तोऽसि तं रामं कथयस्व हयग्रहम् ॥१७॥
त्वत्रो विभेमि नो शूर वाक्येन नयशालिना ।
ममाऽत्र गणना नास्ति त्वादृशाः कोटयो यदि ॥१८॥
मातृपादप्रसादेन तूलीभूता न संशयः। कालजित्तव यन्नाम मात्राऽकारिमनोज्ञया ॥१९॥
पक्वबिम्बफलस्येव वर्णतो न च वीर्यतः । दर्शयस्वाऽधुना वीर्यं स्वनाम बलचिह्नितः ॥
मां कालं तव सञ्जित्य सत्यनामा भाविष्यसि ॥२०॥

शेष उवाच

स वाक्यैःपविनातुल्यैर्भिन्नःसुभटशेखरः। चुकोप हृदयेऽत्यन्तं जगाद वचनं पुनः ॥२१॥

कालजिदुवाच

कस्मिन्कुले समुत्पत्तिः किन्नामासि च बालक ! ।
त्वन्नाम नाभिजानामि कुलं शीलं वयस्तथा ॥२२॥
पादचारं रथस्थोऽहमधर्मेण कथं जये। तदाऽत्यन्तं कुपितो जगाद वचनं पुनः ॥२३॥

बाद वह चतुरङ्गिणी सेना चल पड़ी ॥११-१२॥ वह पृथिवी को कँपा रही थी और शत्रुओं को भयभीत बना रही थी। सेनापति ने उस बालक को श्रीरामचन्द्रजी के समान देखा ॥१३॥ राम के समान विचार करके उसने बालक से कहा— बालक ! बलवान् श्रीरामचन्द्रजी के अश्व को छोड़ दो ॥१४॥ मैं श्रीरामचन्द्र का दुर्मद सेनापति हूँ। राम के समान तुमको देखकर मुझे दया आती है ॥१५॥ यदि ऐसा नहीं करोगे तो फिर तुम जीवित नहीं रह सकते हो। शत्रुघ्नजी के सेनापति के इस वाक्य को सुनकर ॥१६॥ लव ने थोड़ा क्रोध करके अट्टहास किया और अद्भुत वाणी में कहा। जाओ मैंने तुम्हें छोड़ दिया और राम से अश्व के पकड़े जाने की बात कहो ॥१७॥ नीतिशाली वीर तुम्हारी बातों से मैं डरता नही हूँ। तुम्हारे जैसे करोड़ों को भी देखकर मैं कुछ नहीं गिनता हूँ॥१८॥ मेरी माता के चरणों की कृपा से तुमलोग रुई के समान हो। तुम्हारी माता ने तुम्हारा नाम कालजित् ठीक ही रखा है ॥१९॥ पके हुए बिम्बाफल के समान तुम्हारा रङ्ग अच्छा है किन्तु तुममें पराक्रम नहीं है। अपने नाम और बल के अनुसार अपना पराक्रम दिखाओ। अपने काल स्वरूप मुझको जीत कर तुम सत्य नाम वाले हो जाओगे ॥२०॥ **शेषजी ने कहा—** वीरों में अग्रगण्य वाक्य रूपी वज्र से विद्ध होकर सेनापति ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर फिर कहा ॥२१॥ **कालजित् ने कहा—** बालक तुम किस वंश में उत्पन्न हुए हो और तुम्हारा नाम क्या है ? मैं तुम्हारा नाम, कुल तथा शील एवं अवस्था नहीं जानता हूँ ॥२२॥ तुम पैदल हो और मैं रथ पर हूँ; तुमको कैसे जीतूं ? उस समय अत्यन्त क्रुद्ध होकर लव बोले ॥२३॥ **लव ने कहा—** मनोहर कुल शील

लव उवाच

कुलेन किं च शीलेन नाम्ना वा सुमनोहृता (वयसा भट!) ।
लवोऽहं लवतः सर्वाञ्जेष्यामि रिपुसैनिकान् ॥२४॥
इदानीं त्वामपि भटं करिष्ये पादचारिणम्। इत्थमुक्त्वा धनुःसज्यं चकार स लवो बली ॥२५॥
टङ्कारयामास तदा वीरानाकम्पयन्हृदि । वाल्मीकिं प्रथमं स्मृत्वा जानकीं मातरं लवः ॥२६॥
मुमोच बाणान्निशितान्सद्यः प्राणापहारिणः ।
कालजित्स्वधनुः कृत्वा सज्यं (ज्जं) कोपसमन्वितः ॥२७॥
ताडयामास जवनो लवं रणविशारदः ।
तद्बाणाञ्छतधा छित्त्वा क्षणाद्वेगात्कुशानुजः (ग) ॥२८॥
सेनानीं चक्रे विरथं (बहुभिः) वसुभिः स्वशरोत्तमैः (स्वशरोत्तमैः) ।
विरथो गजमानीतमारुरोह भटैर्निजैः ॥२९॥
मदोन्मत्तं महावेगं सप्तधा प्रस्रवान्वितम्। गजारूढं तु तं दृष्ट्वा दशभिर्धनुषोगतैः ॥३०॥
बाणैर्विव्याध विहसन्सर्वान्रिपुगणाञ्जयी। कालजित्तस्य वीर्यं तु दृष्ट्वा विस्मितमानसः ॥३१॥
गदां मुमोच महतीं महायसविनिर्मिताम् । आपतन्तीं गदां वेगाद्भारायुतविनिर्मिताम्॥३२॥
त्रिधा चिच्छेद तरसा क्षुरप्रैः स कुशानुजः। परिधं निशितं घोरं वैरिप्राणहरोदितम् ॥३३॥
मुक्तं पुनस्तेन लवश्चिच्छेद तरसाऽन्वितः । छित्त्वा तत्परिघं घोरं कोपादारक्तलोचनः ॥३४॥
गजोपस्थे समारूढं मन्यमानश्चुकोप ह। तत्क्षणादच्छिनत्तस्य शुण्डां खड्गेन दन्तिनः ॥३५॥
दन्तयोश्चरणौ धृत्वाऽऽरुरोह गजमस्तके । मुकुटं शतधा कृत्वा कवचं तु सहस्रधा ॥३६॥
केशेष्वाकृष्य सेनान्यं पातयामास भूतले । पातितः सगजोपस्थात्सेनानीः कुपितः पुनः ॥३७॥

और नाम से क्या होता है ? मैं लव हूँ लव भर में सभी शत्रुओं के सैनिकों को जीत लूँगा ॥२४॥ वीर तुमको भी अभी मैं पैदल बना देता हूँ। यह कहकर वलवान् लव ने अपना धनुष चढ़ा लिया ॥२५॥ उन्होंने वीरों के हृदय को कँपाते हुए उसका टङ्कार किया । पहले महर्षि वाल्मीकि का स्मरण करके उसके बाद जानकीजी का स्मरण किया ॥२६॥ उन्होंने सद्यः प्राणापहारी बाणों को छोड़ा कालजित् ने भी अपना धनुष चढ़ाकर क्रोध पूर्वक॥२७॥ लव के ऊपर प्रहार किया । उसके बाणों के लव ने क्षणभर में सैकड़ों टुकड़े कर दिया ॥२८॥ उन्होंने अपने अनेक बाणों से कालजित् को भी रथविहीन बना दिया । रथहीन होकर अपने सैनिकों द्वारा लाये गये गज पर वह चढ़ गया ॥२९॥ वह हाथी मदोन्मत्त और महावेगवान् था उससे सात मद की धारा निकलती थीं । इस तरह से हाथी पर चढ़े हुए उसको देखकर अपने धनुष से निकले हुए दश बाणों से सभी शत्रुओं का उपहास करते हुए विजयी लव ने सेनापति को छेद दिया । उसके पराक्रम को देखकर कालजित् आश्चर्यित हो गया ॥३०-३१॥ महालौह से निर्मित अपनी गदा को उसने चलाया । दश हजार भार से निर्मित गदा को आती हुयी देखकर ॥३२॥ लव ने अपने क्षुरप्र बाणों से मार कर उसके तीन टुकड़े कर दिया । उसके बाद उसने शत्रुओं के प्राण को हरने वाले तीक्ष्ण परिध को चलाया और वेग सम्पन्न लव ने उसको भी काट दिया । उसके परिध को काटकर क्रोध से आँखें लाल करके लव उसको हाथी के उपस्थ भाग पर बैठे हुए मानकर क्रुद्ध हो गये । उन्होंने खड्ग से हाथी के शूण्ड को काट दिया ॥३३-३५॥ हाथी के दाँतों पर पैर रखकर लव हाथी के

हृदये ताडयामास मुष्टिना वज्रमुष्टिना। स आहतो मुष्टिभिस्तु क्षुरप्रान्निशिताञ्छरान् ॥३८॥
मुमोच हृदये क्षिप्रं कुण्डलीकृतधन्ववान् । स रराज रणोपान्ते कुण्डलीकृतचापवान् ॥३९॥
शिरस्त्रं कवचं बिभ्रदभेद्यं शरकोटिभिः। स विद्धः सायकैस्तीक्ष्णैस्तं हन्तुं खड्गमाददे॥४०॥
दशनरोषात्स्वदशानान्निःश्वशन्नुच्छ्वसन्मुहुः । खड्गहस्तं समायान्तं शूरं सेनापतिं लवः ॥४१॥
चिच्छेद भुजमध्यं तुसखड्ग पाणिरापतत् । छिन्नं खड्गधरं हस्तंवीक्ष्यकोपाच्चमूपतिः ॥४२॥
वामेन गदया हन्तुं प्रचक्राम भुजेन तम् । सोऽपिच्छिन्नोभुजस्तस्य साङ्गदस्तीक्ष्णसायकैः ॥४३॥
तदा प्रकुपितो वीरः पादाभ्यामहनल्लवम् । लवः पादाहतस्तस्य न चचाल रणाङ्गणे॥४४॥
स्रजा हतो द्विप इव चरणच्छेदनं व्यधात् । तदाऽपि तं मौलिनाऽसौ प्रहर्तुमुपचक्रमे॥४५॥
तदा लवश्चमूनाथं मन्यमानोऽधिपौरुषम् । करवालं समादाय करे कालानलोपमम् ॥४६॥
अच्छिनच्छिर एतस्य महामुकुटशोभितम् । हाहाकारो महानासीच्चमूनाथे निपातिते ॥४७॥
सैनिकाः परिसङ्क्रुद्धा लवं हन्तुं समागताः ।
लवस्तान्स्वशराघातैःपलायनपरान्व्यधात् ॥४८॥
छिन्ना भिन्नाङ्गकाः केचिद् गताः केचिद्रणाङ्गणात् ।
स निवार्याखिलान्योधान्विजगाह चमुं मुदा ॥४९॥
वाराह इव निःश्वस्य प्रलये (षु)सु महार्णवम् ।
गजा भिन्नाद्विधा जातामौक्तिवैःपूरितामही ॥५०॥
दुर्गमाऽभूद्धटाग्र्याणां पर्वतैर्व्यापृता यथा । अश्वाःकनकपल्याणा रुचिरा रत्नराजिताः ॥५१॥

शिर पर चढ़ गये । उन्होंने उसके मुकुट के दो टुकड़े तथा कवच के हजारों टुकड़े कर दिये ॥३६॥ उसके बाद सेनापति के केशों को पकड़ कर उसको पृथिवी पर पटक दिये । हाथी के उपस्थ से गिरकर सेनापति ने क्रुद्ध होकर॥३७॥ लव के हृदय में अपनी वज्र मुष्टि से प्रहार किया । मुष्टि से मारे जाकर लव ने अपने क्षुरप्र बाणों से उसके हृदय में प्रहार किया । उस समय लव ने अपने धनुष को कुण्डलाकार बना लिया था ॥३८-३९॥ शिरस्त्राण तथा करोड़ों बाणों से भी अभेद्य कवच को धारण करके बाणों से विद्ध सेनापति ने लव को मारने के लिए खड्ग ले लिया ॥४०॥ क्रोध के कारण उसने अपना दाँत कटकटाया और बार-बार दीर्घ श्वास ले रहा था। शूरवीर सेनापति को हाथ में खड्ग लेकर आते हुए देखकर लव ने ॥४१॥ उसके हाथ को बीच में काट दिया उसका खड्ग हाथ से गिर पड़ा । खड्ग वाले हाथ को कटा हुआ देखकर उस सेनापति ने बाएँ हाथँ से लव को गदा से मारना चाहा । लव ने उसके उस हाथ को भी अपने तीक्ष्ण बाणों से काट दिया ॥४२-४३॥ तब क्रुद्ध होकर वीर सेनापति ने पैरों से लव पर प्रहार किया । युद्ध में उसके पैरों से मारे जाने पर भी लव हिले नहीं॥४४॥ माला से मारे गये हाथी के समान अडिग रहकर उन्होंने उसके पैरों को काट दिया । फिर उसने अपर शिर से लव को मारना चाहा ॥४५॥ उस समय लव ने सेनापति को अधिक पौरुष सम्पन्न मानकर हाथ में कालाग्नि के समान तीक्ष्ण तलवार लेकर उसके महामुकुट से सुशोभित शिर को काट दिया । सेनापति के मरते ही घोर हाहाकर मच गया ॥४६-४७॥ सभी सैनिक क्रुद्ध होकर लव को मारने के लिए आये लव ने उन सबों को अपने बाणों के प्रहार से भागने के लिए विवश कर दिया ॥४८॥ कुछ सैनिक अङ्गों के कट-पिट जाने से युद्धस्थल से भाग गये। लव ने सम्पूर्ण सेना को रोककर प्रलय काल में महार्णव में प्रवेश करने वाले वाराह के समान सेना में प्रवेश

अपतन्रुधिरा प्लुष्टे ह्रदे बलसुशोभिताः । रथिनः करमध्यस्थधनुर्दण्डसुशोभिनः ॥५२॥
रथोपस्थे निपतिताः स्वर्गगा इव वै सुराः। सन्दष्टौष्ठपुटा वक्त्रभ्रमल्लक्ष्मीविलक्षिताः ॥५३॥
पतितास्तत्र दृश्यन्ते वीरा रणविशारदाः । सुस्राव शोणितसरिद्धयमस्तककच्छपा ॥५४॥
महाप्रवाहललि (सि) ता वैरिणां भयकारिका ।
केषां चिद्बाहवश्छिन्नाःकेषां पादा विकर्तिताः ॥५५॥
केषां कर्णाश्च नासाश्च केषां कवचकुण्डले ।
एवं तु कदनं जातं सेनान्यां पतिते रणे ॥५६॥
सर्वे निपतिता वीरा न केचिज्जीवितास्ततः ।
लवो जयं रणे प्राप्य वैरिवृन्दं विजित्य च ॥५७॥
अन्यागमनशङ्कायां मनःकुर्वन्नवैक्षत। केचिदुर्वरिता युद्धाद्भाग्येन न रणे मृताः ॥५८॥
शत्रुघ्नसविधे जग्मुः संशितुं वृत्तमद्भुतम्। गत्वा ते कथयामासुर्यथावृत्तं रणाङ्गणे ॥५९॥
कालजिन्निधनं बालाच्चित्रकारिरणोद्यमम्। तच्छ्रुत्वा विस्मयं प्राप्तः शत्रुघ्नस्तानुवाच ह ॥६०॥
हसन्रोषाद्दशन्दन्तान्बालग्राहहयं स्मरन्। रे वीराः किं मदोन्मता यूयं किम्वाछलग्रहाः ॥६१॥
किम्बा वैकल्यमायातं कालजिन्मरणं कथम् ।
यः सङ्गये वैरिवृन्दानां दारुणः समितिञ्जयः ॥६२॥
तं कथं बालको जीयाद्यमस्यापि दुरासदम्। शत्रुघ्नवाक्यं संश्रुत्य वीराःप्रोचुरसृक्प्लुताः ॥६३॥
नास्माकं मदमत्तादि न च्छलो न च देवनम् ।
कालजिन्मरणं सत्यं लवाज्जानीहि भूपते ! ॥६४॥

किया । उन्होंने हाथियों के दो टुकड़े कर दिया और पृथिवी मोतियों से भर गयी ॥४९-५०॥ वह भूमि बड़े-बड़े वीरों के लिए पर्वतों से भरी हुयी के समान दुर्गम हो गयी । रत्नों से सुशोभित मनोहर अश्व खून से भरे ह्रद में गिर पड़े । हाथ में धनुष धारण किए हुए रथी वीर, स्वर्ग जाने वाले देवताओं के समान रथ के पीछे के भाग में गिर गये । उन वीरों ने अपने दाँतों से ओष्ठों को काट लिया था । उन सबों के मुख की शोभा विकृत हो गयी थी ॥५१-५३॥ वहाँ पर युद्ध करने में कुशल वीर गिरे पड़े थे । खून की नदी प्रवाहित हो गयी थी और उसमे वीरों के शिर कच्छप के समान दिखते थे । वह नदी महाप्रवाह से सुन्दर लगती थी वह शत्रुओं को भय प्रदान करने वाली थी । किसी के हाथ कटे थे तो किसी के पैर कटे थे ॥५४-५५॥ किसी के कान और नाक तथा किसी के कवच और कुण्डल कटे थे । इस तरह से सेनापति के मर जाने पर वीरों का वध हुआ ॥५६॥ सभी वीर मारे गये कोई भी जीवित नहीं बचा । लव युद्ध में विजयी होकर तथा वैरियों के समूह को जीतकर ॥५७॥ दूसरों के आगमन की शङ्का से देखते रहे । भाग्य से कुछ वीर जो रण में मरे नहीं थे बच गये थे ॥५८॥ इस अद्भुत वृत्तान्त को बतलाने के लिए शत्रुघ्नजी के पास गये । जाकर उन सबों ने युद्ध में जो हुआ था उसको बतलाया॥५९॥ युद्ध में बालक के द्वारा कालजित् की मृत्यु को सुनकर शत्रुघ्नजी ने उन सबों से कहा ॥६०॥ वालक के द्वारा अश्व को पकड़े जाने की बात स्मरण करते हुए वे रोष से हँसते हुए और दाँतों को पीसते हुए कहे, वीरों तुमलोग मदोन्मत हो क्या ? या कोई छल हो रहा है ?॥६१॥ अथवा सबों में विकलता आ गयी है, कालजित् मरा कैसे ? युद्ध में वह वैरी समूह को जीतने वाला था ॥६२॥ वह तो यमराज के भी लिए दुरासद

बलं च कृत्स्नं मथितं बालेनातुलशौण्डिना। अतःपरं तु यत्कार्यं ये प्रेष्या नृवरोत्तमाः ॥६५॥
बालं ज्ञात्वा भवान्नाऽत्र करोतु बलसाहसम् ।
इति श्रुत्वा वचस्तेषां वीराणां शत्रुहा तदा ॥६६॥
सुमतिं च मतिश्रेष्ठमुवाच रणकारणे ॥६७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे कुशलवयुद्धे सैन्यपराजयकालजित्सेनानीमरणं नाम षष्ठितमोऽध्यायः ॥६०॥

◆

एकसठवाँ अध्याय

शत्रुघ्न उवाच

जानासि किं महामन्त्रिन्को बालो हयमाहरत् ।
येन मे क्षपितं सर्वं बलं वारिधिसन्निभम् ॥१॥

सुमतिरुवाच

स्वामिन्नयं मुनिश्रेष्ठवाल्मीकेराश्रमो महान् । क्षत्रियाणामत्र वासो नास्त्येव परनापन !॥२॥
इन्द्रो भविष्यति परमाम(ह)र्षी हयमाहरत् । पुरारिर्वान्यथा वाहं तव कः समुपाहरेत् ॥३॥
कालजिद्येन नाशं वै प्राप्तः परमदारुणः । तं प्रति श्रीमहाराज ! गन्ता कः पुष्कलान्वितः॥४॥
त्वं च वीरैर्भटैःसर्वैराजभिः परिवारितः । तत्र गच्छस्व सैन्येन महता शत्रुकृन्तनः ॥५॥

था, उसको बालक कैसे जीत सकता है ? शत्रुघ्नजी की बातों को सुनकर खून से सने वीरों ने कहा ॥६३॥ हमलोग न मो मदोन्मत्त थे, न छल हुआ है, कदन राजन् कालजित् को लव ने मारा है यह सत्य है ॥६४॥ उस अतुलनीय पराक्रमी ने सम्पूर्ण सेना का भी विनाश कर दिया । इसके बाद राजन जो करना हो और जिसको भेजना हो उसे भेजें ॥६५॥ आप उसे बालक जानकर बल और साहस न करें । यह उन सबों की बाणी सुनकर शत्रुओं को मारने वाले ॥६६॥ शत्रुघ्नजी ने परंबुद्धिमान सुमति से पूछा ॥६७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में सेना पराजय तथा कालजित् वध वर्णन नामक साठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६०।।

◆

शत्रुघ्न तथा लव के बीच घोर संग्राम एवं पुष्कल एवं हनुमानजी का पतन

शत्रुघ्नजी ने कहा— हे महामन्त्रिन् ! आप जानते हैं क्या कि किस बालक ने अश्व का हरण किया है? और मेरी सागर के समान सम्पूर्ण सेना को मार दिया है ॥१॥ **सुमति ने कहा—** हे स्वामिन् ! यह मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि का आश्रम है । यहाँ पर कोई भी क्षत्रिय नहीं रहता है ॥२॥ हो सकता है परम अमर्षी इन्द्र ने अश्व का हरण किया हो अथवा शङ्करजी हों, आपके अश्व का हरण दूसरा कौन कर सकता है ?॥३॥ जिसने भयङ्कर

गत्वा सजीवितं वीरं बद्ध्वा तु कुतुकार्थिने ।
दर्शयिष्यामि रामाय मतं मे त्विदमादृतम् ॥६॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य वीरान्सर्वान्समादिशत् ।
सैन्येन महतायात यूयमायामि पृष्ठतः ॥७॥
निर्दिष्टास्ते क्षणाद्वीरा जग्मुर्यत्र लवो बली । धनुर्विस्फारयंस्तत्र सुदृढं गुणपूरितम् ॥८॥
आयातं तन्महद्दृष्ट्वा बलं वीरप्रपूरितम् । न किञ्चिन्मनसा बिभ्ये लवेन बलशालिना ॥९॥
लवः सिंह इवोत्तस्थौ मृगान्मत्वाऽखिलान्भटान् ।
धनुर्विस्फारयन्रोषाच्छरान्मुञ्चन्सहस्रशः ॥१०॥
ते शरैः पीड्यमानास्तु महारोषेण पूरिताः । वीरं बालं मन्यमानाःसम्मुखं प्राद्रवंस्तदा ॥११॥
वीरान्सहस्रशो दृष्ट्वा भ्रमिभिःपर्यवस्थितान् ।
लवो जवेन सन्धाय शरान्रोषप्रपूरितः ॥१२॥
भ्रमिराद्या सहस्रेण द्वितीयाऽयुतसङ्ख्यया । तृतीयायुतयुग्मेन तुरीयाऽयुतपञ्चभिः ॥१३॥
पञ्चमी लक्षयोधानां षष्ठी योधायुताधिकैः । सप्तमी लक्षयुग्मेन सप्तभिर्भ्रमिभिर्वृतः ॥१४॥
मध्ये लवो भ्रमिव्याप्तः सञ्चरन्वह्निवत्तदा। दाहयामास सर्वान्वै सैनिकान्भ्रमिकारकान् ॥१५॥
केचित्खड्गैः शरैः केचित्केचित्प्रासैश्च कुन्तलैः ।
पट्टिशैः परिघैः सर्वा भ्रमिर्भग्ना महात्मना ॥१६॥
सप्तभिर्भ्रमिभिर्मुक्तो रराज स कुशानुजः। मेघवृन्दविनिर्मुक्तःशशीव शरदागमे॥१७॥
प्राहरत्सर्वथायोधान्भिन्दन्गजकरान्बहून् । छिन्दञ्छिरांसि वीराणां चक्रभ्रूणि महान्ति च ॥१८॥

कालजित् को मार दिया, उससे युद्ध करने के लिए कौन जा सकता है । पुष्कल के साथ तथा वीर सैनिकों के साथ हे शत्रु विनाशक आप विशाल सेना के साथ जायँ ॥४-५॥ मैं उस वीर को जीवित ही बाँधकर कौतुकी श्रीराम को दिखाऊँगा ॥६॥ इस वाक्य को सुनकर शत्रुघ्नजी ने वीरों को आदेश दिया कि तुमलोग विशाल सेना के साथ आगे चलो मैं पीछे से आ रहा हूँ ॥७॥ आदेश पाकर वे सभी वीर लव के पास गये लव प्रत्यञ्चा से युक्त अपने धनुष का टङ्कार कर रहे थे ॥८॥ वीरों से भरी हुयी उस सेना को आयी हुयी देखकर बलवान् लव ने मन में थोड़ा सा भी भय नहीं किया ॥९॥ सारे वीरों को मृग के समान मानकर लव सिंह के समान खड़े हो गये । वे क्रोध धनुष का टङ्कार करते हुए हजारों बाणों को छोड़ रहे थे ॥१०॥ वे सब बाणों से पीड़ित अत्यन्त रोष से भरकर बालक लव को वीर मानते हुए लव के सामने दौड़ पड़े ॥११॥ घेरे हुए हजारों वीरों को देखकर रोष से भरकर लव वेगपूर्वक बाणों का सन्धान करके उसमें प्रवेश किए ॥१२॥ उस आवरण के प्रथम आवरण में एक हजार योद्धा थे, दूसरी भ्रमि में दश हजार वीर थे, तीसरी भ्रमि में बीस हजार वीर थे, चौथी भ्रमि में पचास हजार वीर थे, पाँचवी भ्रमि में एक लाख योद्धा थे, छठी भ्रमि मे एक लाख दश हजार वीर थे, सातवीं भ्रमि में दो लाख योद्धा थे । इस तरह लव सप्तभ्रमियों (घेरों) से घिरे हुए थे ॥१३-१४॥ उस समय उसके बीच में लव अग्नि के समान सञ्चरण कर रहे थे । वे सभी वीरों को जला रहे थे ॥१५॥ कुछ को खड्ग से, कुछ को बाणों से, कुछ को प्रास से तथा कुछ को कुन्त से, पट्टिश और परिध से सम्पूर्ण भ्रमि को महात्मा लव ने मार दिया ॥१६॥ सातों भ्रमियों से निकले हुए लव की शोभा शरदृतु में मेघ समूह से निकले हुए चन्द्रमा के समान

अनेके पतिता वीरा लवबाणप्रपीडिताः । मुमुहुःसमरेऽथान्ये नष्टा अन्ये सुकातराः ॥१९॥
पलायनपरं सैन्यं लवबाणप्रपीडितम् । वीक्ष्य वीरो रणे योद्धुं प्रायात्पुष्कलसंज्ञकः ॥२०॥
तिष्ठतिष्ठेति च बदन्रोषपूरितलोचनः । रथे सुहयशोभाढ्ये तिष्ठन्प्रायाल्लवं बली ॥२१॥
स लवं प्रत्युवाचाथ पुष्कलः परमास्त्रवित् । तिष्ठ दत्ते मयासह्वये रथे सुहयशोभिते॥२२॥
पदातिना त्वया युद्धं करोमि कथमाहवे । तस्मात्तिष्ठ रथे पश्चाद्युद्धयेऽहं भवता सह॥
एतद्वाक्यं निशम्याऽसौ लवः पुष्कलमब्रवीत् ॥२३॥

लव उवाच

त्वयादत्ते रथेस्थित्वा युद्धं कुर्यामहं रणे । तदा मे पापमेवस्याज्जयःसन्दिगध एव हि॥२४॥
न वयं ब्राह्मण वीर ! प्रतिग्रहपरायणाः । वयं तु क्षत्त्रिया नित्यं दानकर्मक्रियारताः ॥२५॥
इदानीं त्वद्रथं कोपाद्भनज्मि प्रत्यहं भवान् । पादचारी भवत्येव पश्चाद्युद्धं करिष्यति ॥२६॥
पुष्कलो वाक्यमाकर्ण्य धर्मधैर्यसमन्वितम् । वि[illegible]य चिरंचित्ते धनुःसज्यमथाकरोत् ॥२७॥
तमात्तधनुषं दृष्ट्वा लवःकोपसमन्वितः । चापं चिच्छेद पाणिस्थं शरसन्धानमाचरन् ॥२८॥
स यावत्गुणं चापं कुरुते तावदुद्धतः । रथभङ्गं चकारास्य समरे प्रहसन्बली ॥२९॥
भग्नं रथं स्वकं वीक्ष्य धनुश्छिन्नं महात्मना ।
महावीरं मन्यमानःपदातिःप्राद्रवद्रणे ॥३०॥
उभौ धनुर्धरौ वीरावुभावपि शरोद्धतौ । उभौ क्षतजविप्लुष्टौ छिन्नसन्नाहितावुभौ ॥३१॥
परस्परं बाणघातविशीर्णतनुलक्षितौ । जयाकाङ्क्षां प्रकुर्वन्तौ परस्परवधैषिणौ॥३२॥

हो रही थी ॥१७॥ वे वीरों पर प्रहार किए, हाथियों के शुण्ड को काट दिए, वीरों के शिरों को काटते हुए उन्होंने बड़े-बड़े वीरों को भौंहों को काट दिया ॥१८॥ लव के बाण से पीड़ित होकर अनेक योधा गिर पड़े । युद्ध में कुछ लोग मूर्छित हो गये तथा दूसरे कायर नष्ट हो गये ॥१९॥ लव के बाण से भागती हुयी सेना को देखकर वीर पुष्कल युद्ध करने के लिए आये ॥२०॥ क्रोध से लाल आँखें करके तिष्ठ-तिष्ठ कहते हुए सुन्दर अश्व से युक्त रथ पर बैठकर पुष्कल लव के पास आये ॥२१॥ परमास्त्र के ज्ञाता पुष्कल ने लव से कहा— मेरे द्वारा प्रदत्त तथा सुन्दर अश्व से युक्त रथ पर बैठकर युद्ध करो ॥२२॥ तुम पैदल हो, तुम्हारे साथ युद्ध कैसे करूँ ?। अतएव पहले रथ पर बैटो उसके बाद मैं तुम्हारे साथ युद्ध करता हूँ ॥२३॥ इस वाक्य को सुनकर लव ने पुष्कल से कहा । तुम्हारे द्वारा प्रदत्त रथ पर बैठकर यदि मैं युद्ध करूँ तो मुझे पाप लगेगा और मेरी विजय भी संदिग्ध हो जायेगी ॥२४॥ हे वीर दान लेने वाले हम ब्राह्मण नही है । हम तो क्षत्रिय है सदा दान करते रहते हैं ॥२५॥ इस समय मैं क्रोध करके तुम्हारे रथ को तोड़ देता हूँ तव तो आप पैदल हो जायेंगे और उसके बाद युद्ध कीजियेगा ॥२६॥ धर्म तथा धैर्य से युक्त वाक्य को सुनकर पुष्कल अपने मन में विस्मित हो गये और उन्होंने धनुष चढ़ा लिया ॥२७॥ धनुष धारण किए हुए पुष्कल को देखकर क्रोध करके लव बाण सन्धान करते हुए पुष्कल के धनुष को काट दिए ॥२८॥ जब तक पुष्कल प्रत्यञ्चा से युक्त धनुष को करते तब तक लव ने उनके रथ को हँसते हुए तोड़ दिया ॥२९॥ लव के द्वारा रथ के टूटे हुए पुष्कल तथा धनुष को कटे हुए देखकर उसको महावीर मानते हुए पैदल दौड़ पड़े ॥३०॥ दोनों वीर धनुर्धारी तथा बाण से उद्धत थे । दोनों खून से सन गये उनका कवच भी टूट गया ॥३१॥ परस्पर में बाणों के लड़ने से उन दोनों का शरीर कट पिट गया था । दोनों

जयन्तकार्तिकेयौ वा पुरारिःपुरभिद्यथा। एवं परस्परं युद्धं प्रकुर्वाणौ रणाङ्गणे॥३३॥
पुष्कलः प्रत्युवाचाथ लवशूरशिरोमणे। त्वादृशो न मया दृष्टःकश्चिद्वीरशिरोमणिः॥३४॥
शिरस्ते पातयाम्यद्य बाणैः शितसुपर्वभिः। मा पलायस्व समरे प्राणान्रक्षस्व संयतः॥३५॥
एवमुक्त्वा लवं वीरं चकार शरपञ्जरे। पुष्कलस्य शरा भूमौ नभसि व्याप्यसंस्थिताः॥३६॥
शरपञ्जरमध्यस्थो लवः पुष्कलमब्रवीत्। महत्कर्मकृतं वीर ! यन्मां बाणैरपीडयत्॥३७॥
इत्युक्त्वा बाणसङ्घातं प्रच्छिद्य वचनं पुनः। जगाद पुष्कलं वीरःशरसन्धानकोविदः॥३८॥
पालयात्मानमाजिस्थं मच्छराघातपीडितः। पतिष्यसि महीपृष्ठे रुधिरेण परिप्लुतः॥३९॥
एवमुक्तं समाकर्ण्य पुष्कलःकोपसंयुतः। रणे संयोधयामास लवं वीरं महाबलम्॥४०॥
लवःप्रकुपितो बाणं तीक्ष्णं वैरिविदारणम्। जग्राह लवतःकोशादाशीविषमिव क्रुधा॥४१॥
जाज्वल्यमानःसशरश्चापमुक्तो लवस्य च। हृदयं भेत्तुमुद्युक्तश्छिन्नो भारतिनाऽऽशु सः॥४२॥
छिन्ने भारतिना सङ्ख्ये शरेण प्राणहारिणा।
अत्यन्तं कुपितो घोरं शरमन्यं समाददे॥४३॥
आकर्णाकृष्टचापेन समुक्तो निशितः शरः। बिभेद हृदयं तस्य पुष्कलस्य महारणे॥४४॥
भिन्नो वक्षसि वीरेण सायकेनाशुगामिना। पपात धरणीपृष्ठे महाशूरशिरोमणिः॥४५॥
पतितं तं समालोक्य पुष्कलं पवनात्मजः। गृहीत्वा राघवभ्रात्रे ददौ मूर्च्छासमन्वितम्॥४६॥
मूर्च्छितं तं समालोक्य शोकविह्वलमानसः। हनूमन्तं लवं हन्तुं निदिदेश क्रुधान्वितः॥४७॥
हनूमान्क्रोधसम्प्लुष्टो लवं सङ्ख्ये महाबलम्।
विजेतुं तरसा प्रागाद् वृक्षमुद्यम्य शाल्मलिम्॥४८॥

एक दूसरे का वध करके विजय प्राप्त करना चाहते थे॥३२॥ वे दोनों जयन्त और कार्तिकेय के समान अथवा पुरारि तथा पुरभित् (इन्द्र) के समान युद्धस्थल में युद्ध कर रहे थे॥३३॥ पुष्कल ने कहा— वीर शिरोमणि लव आपके जैसे वीर मैंने नहीं देखा॥३४॥ अब मैं तीक्ष्ण पर्वों वाले बाणों से तुम्हारे शिर को काट दूँगा। युद्ध से भागना मत; अपने प्राणों की रक्षा करो॥३५॥ इस तरह से कहकर पुष्कल ने लव को बाणों के पिंजडे में डाल दिया। पुष्कल के बाण पृथिवी से आकाश तक व्याप्त हो गये॥३६॥ शरपञ्जर के भीतर विद्यमान लव ने पुष्कल से कहा— वीर मुझको बाणों से पीड़ित करके महान् कर्म किया है॥३७॥ इस तरह से कहकर बाण समूह को काटकर शरसन्धान के ज्ञाता लव ने पुष्कल से कहा॥३८॥ युद्ध में मेरे बाणों के घात से तुम पीड़ित होकर अपनी रक्षा करो। खून से सने हुए तुम पृथिवी पर गिर जाओगे॥३९॥ इस वचन को सुनकर क्रुद्ध हुए पुष्कल ने युद्ध में महाबलवान् लव के साथ युद्ध किया॥४०॥ क्रुद्ध होकर लव ने क्षणभर में तरकस से वैरी को मारने वाले तीक्ष्ण बाणों को निकाला॥४१॥ जलते हुए वह तथा लव के धनुष से छूटे हुए उस बाण को पुष्कल ने शीघ्र ही काट दिया॥४२॥ प्राणापहारक बाण के कट जाने पर लव अत्यन्त क्रुद्ध हुए और वे दूसरा बाण ले लिए॥४३॥ कानों तक खींचकर छोड़ा गया वह तीक्ष्ण बाण उस महारण में पुष्कल के हृदय को छेद दिया॥४४॥ तीव्रगामी बाण के द्वारा हृदय के विदीर्ण हो जाने पर महावीर शिरोमणि पुष्कल पृथिवी पर गिर पड़े॥४५॥ पुष्कल को गिरे हुए देखकर हनुमानजी उनको मूर्छित अवस्था में ही शत्रुघ्नजी को समर्पित कर दिए॥४६॥ पुष्कल को मूर्छित देखकर शोक युक्त शत्रुघ्नजी हनुमानजी को लव को मारने के लिए आदेश

वृक्षेण हतवान्मूर्ध्नि लवस्य हनुमान्बली। तमापतन्तं तरसा चिच्छेद शतधा लवः ॥४९॥
छिन्नेनगे पुनः कोपाद्वृक्षानुत्पाटय मूलतः। ताडयामास हृदये मस्तके च महाबलः ॥५०॥
यान्यान्वृक्षान्समादत्ते ताडनाय स मारुतिः। तांस्तां श्छिच्छेद तरसा बलवान्नतपर्वभिः ॥५१॥
तदा शिलाः समुत्पाट्य गण्डशैलोपमाः कपिः।
पातयामास शिरसि क्षिप्रवेगेन मारुतिः ॥५२॥
स आहतः शिलासङ्घै सङ्ख्ये कोदण्डमुन्नयन्।
बाणैस्ताश्चूर्णयामास यन्त्रिकाभिर्यथा कणाः ॥५३॥
तदाऽत्यन्तं प्रकुपितो मारुतिः पुच्छवेष्टनम्। चकार समरोपान्ते लवस्य बलिनःकृती॥५४॥
स्वं पुच्छेन समाविद्धं वीक्ष्य स्वाम्बां हृदि स्मरन्।
मुष्टिना ताडयामास लाङ्गूलं मारुतेर्बली ॥५५॥
तन्मुष्टिघातव्यथितो मारुतिस्तममूमुचत्। समुक्तः पुच्छतो युद्धे शरान्मुञ्चन्नभूद्बली॥५६॥
दुर्वारशरघातेन सम्पीडिततनुः कपिः। बाणवर्षं मन्यमानो दुःसहं समरे बहु ॥५७॥
किंकर्तव्यमितोऽस्माभिः पलाय्य यदि गम्यते।
तदा मे स्वामिनो लज्जा ताडयेद् बालकोऽत्र माम् ॥५८॥
ब्रह्मदत्तवरत्वात्तु मूर्च्छा न मरणं न हि। दुःसहा बाणपीडाऽत्र किंकर्तव्यं मयाऽधुना॥५९॥
शत्रुघ्नः समरे गत्वा जयं प्राप्नोतु बालकात्।
अहं तावज्जयाकाङ्क्षी शये कपटमूर्च्छया ॥६०॥
इत्येवं मानसे कृत्वा पपात रणमण्डले। पश्यतां सर्व वीराणां कपटेन विमूर्च्छितः ॥६१॥

दिए।।४७।। क्रोध से युक्त हनुमानजी महाबलवान् लव को जीतने के लिए सेमर का वृक्ष लेकर गये ।।४८।। बलवान् हनुमानजी ने लव के शिर पर वृक्ष से प्रहार किया, किन्तु उस वृक्ष का लव ने सैकड़ों टुकड़े कर दिया।।४९।। उस वृक्ष के कट जाने पर क्रोध करके फिर वृक्षों को उखाड़कर हनुमानजी ने लव के हृदय और मस्तक पर प्रहार किया ।।५०।। बलवान हनुमानजी जिन-जिन वृक्षों को मारने के लिए लेते थे उन वृक्षों को वेग पूर्वक लव अपने झुके हुए पर्व वाले बाणों से काट देते थे ।।५१।। उसके बाद हनुमानजी ने पर्वत के समान शिला को उखाड़ कर अत्यन्त वेग से लव के शिर पर फेंका ।।५२।। शिलाओं से मारे गये लव, धनुष धारण किए हुए उन सबों को उसी तरह से चूर-चूर कर दिया जैसे वे शिलाए यंत्र में पीस दी गयी हों ।।५३।। उसके बाद अत्यन्त कुपित होकर हनुमानजी ने बलवान् लव को अपनी पूंछ में लपेट लिया ।।५४।। अपने को पूंछ में लिपटे हुए देखकर अपनी माता का स्मरण करते हुए लव ने अपनी मुट्ठी से उनकी पूंछ पर प्रहार किया ।।५५।। उस मुष्टिका प्रहार से पीड़ित होकर हनुमानजी ने उन्हें छोड़ दिया पूंछ से मुक्त होकर लव बाणों को चलाने लगे।।५६।। कठोर बाणों के प्रहार से पीड़ित होकर हनुमानजी ने माना कि यह बाणों की वर्षा असह्य है ।।५७।। अव मैं क्या करूँ? यदि भाग कर जाता हूँ तो लज्जा होगी कि मुझको बालक ने मार दिया ।।५८।। ब्रह्माजी के वरदान से मुर्छा न तो मूर्छा है और न मृत्यु होने वाली है, किन्तु बाणों की पीड़ा दुःसह है क्या करूँ ?।।५९।। शत्रुघ्नजी ही आकर बालक पर विजय प्राप्त करें विजय प्राप्त करने की इच्छा वाला मैं मूर्छा का वहाना करके सो जाता हूँ ।।६०।। इस तरह से मन में सोचकर वे युद्ध स्थल में मूर्छा का बहान करके सबों के सामने गिर

तं मूर्च्छितं समाज्ञाय हनूमन्तं महाबलम्। जघान सर्वान्नृपतीञ्छरमोक्षविचक्षणः ॥६२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
हनुमत्पतनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

* * *

बासठवाँ अध्याय

शेष उवाच

मूर्च्छितं मारुतिं श्रुत्वा शत्रुघ्नः शोकमाययौ ।
किं कर्तव्यं मया सङ्ख्ये बालकोऽयं महाबलः ॥१॥
स्वयं रथे हेममये तिष्ठन्वीरवरैःसह। योद्धुं प्रागाल्लवो यत्र विचित्ररणकोविदः॥२॥
लवं ददर्श शिशुतां प्राप्तं राममिव क्षितौ। धनुर्बाणकरं वीरान्क्षिपन्तं रणमूर्धनि॥३॥
विचारयामासस तदा कोऽयं रामस्वरूपधृत् ।
नीलोत्पलदलश्यामं वपुर्बिभ्रन्मनोहरम् ॥४॥
एष वैदेहतनुजासुतो भवति नान्यथा। अस्मान्विजित्य समरे यास्यते मृगराडिव॥५॥
अस्माकं नो जयो भाव्यः शक्त्या विरहितात्मनाम् ।
अशक्ताः किं करिष्यामः समरे रणकोविदाः ॥६॥

पड़े॥६१॥ महाबलवान् हनुमानजी को मूर्छित जानकर बाणों को चलाने में निपुण लव ने सभी राजाओं को बाणों से मारा ॥६२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में हनुमानजी के पतन वर्णन नामक एकसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६१।।

* * *

शत्रुघ्नजी के साथ युद्ध में लव की मूर्छा

शेषजी ने कहा— हनुमानजी को मूर्छित सुनकर शत्रुघ्नजी शोक सन्तप्त हो गये। वे सोचने लगे कि मुझे युद्ध में क्या करना चाहिए ? यह बालक महाबलवान् है ॥१॥ स्वयं रथपर बैठकर श्रेष्ठ वीरों के साथ विचित्र युद्ध के ज्ञाता वे लव के साथ युद्ध करने के लिए गये ॥२॥ उन्होंने पृथिवी पर शिशुत्व प्राप्त श्रीराम के समान लव को देखा। लव धनुष बाण हाथ में धारण करके वीरों पर बाण चला रहे थे ॥३॥ उन्होंने विचार किया कि यह राम के स्वरूप को धारण करने वाला कौन है ? जो नीलकमल दल के समान शरीर को धारण किए हुए है ॥४॥ निश्चय ही यह जानकीजी का पुत्र है दूसरा कोई नहीं हो सकता है। यह हमलोगों को युद्ध में परास्त करके मृगराज के समान हो जायेगा ॥५॥ हमलोग शक्ति रहित हो गये हैं अतएव हमलोग विजयी नहीं हो सकते हैं। युद्ध कला के ज्ञाता होने पर भी शक्तिहीन हमलोग क्या कर सकते हैं ?॥६॥ इस तरह से विचार करके

इत्येवं स विचार्याथ बालकं तु वचोऽब्रवीत् ।
रणे कुतुककर्तारं वीरकोटिनिपातकम् ॥७॥
कस्त्वं बाल ! रणेऽस्माकं वीरान्पातयसि क्षितौ ।
न जानीषे बलं राज्ञो रामस्य दनुजार्दिनः ॥८॥
का ते माता पिता कस्ते सुभाग्यो जयमाप्तवान् ।
नाम किं विश्रुतं लोके जानीयां ते महाबल ! ॥९॥
मुञ्च वाहं कथं बद्धःशिशुत्वात्तत्क्षमामि ते। आयाहि रामं वीक्षस्व दास्यते बहुलं तव ॥१०॥
इत्युक्तो बालको वीरो वचः शत्रुघ्नमादरात् ।
किं ते नाम्नाऽथ पित्रा वा कुलेन वयसा तथा ॥११॥
युध्यस्व समरे वीर ! चेत्त्वं बलयुतोभवेः । कुशं वीरं नमस्कृत्य पादयोर्याहि नान्यथा ॥१२॥
भ्राता रामस्य वीरोऽभूर्नावयोर्बलिनांवरः । वाहं विमोचय बलाच्छक्तिस्ते विद्यते यदि ॥१३॥
इत्युक्त्वा शरसन्धानं कृत्वा प्राहरदुद्भटः । हृदये मस्तके चैव भुजयो रणमण्डले॥१४॥
तदा प्रकुपितो राजा धनुः सज्यमथाकरोत्। नादयन्मेघगम्भीरं त्रासयन्निव बालकम्॥१५॥
बाणानपरिसङ्ख्यातान्मुमोच बलिनां वरः। बालो बलेन चिच्छेद सर्वांस्तान्सायकव्रजान् ॥१६॥
लवस्याकेकधा मुक्तैर्बाणैर्व्याप्तं महीतलम् । व्यतीपाते प्रदत्तस्य दानस्येवाक्षयं गताः ॥१७॥
ते बाणा व्योमसकलं व्याप्नुवंल्लवसंहिताः। सूर्यमण्डलमासाद्य प्रवर्तन्ते समन्ततः ॥१८॥
मारुतोनाविशद्यत्र बाणपञ्जरगोचरे। मनुष्याणां तु का वार्ता क्षणजीवितशंसिनाम् ॥१९॥
तद्बाणान्विस्तृतान्दृष्ट्वा शत्रुघ्नो विस्मयं गतः ।
अच्छिनच्छतसाहस्रं बाणमोचनकोविदः ॥२०॥

उन्होंने कौतुक पूर्ण युद्ध करने वाले तथा करोड़ों वीरों को मारने वाले उस बालक से पूछा ॥७॥ बालक तुम कौन हो ? जो हमारे वीरों को पृथिवी पर गिरा रहे हैं ? तुम दानवों को मारने वाले राजा राम के बल को नहीं जानते हो ॥८॥ तुम्हारे माता-पिता कौन है ? तुम सौभाग्य वशात् जय प्राप्त कर लिए हो । हे महाबलवान् ! तुम्हारा लोक विख्यात नाम हम नहीं जानते हैं ॥९॥ तुम अश्व को छोड़ दो लड़कपन के कारण तुमने उसे बाँध लिया है, मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ । तुम मेरे साथ आओ राम का दर्शन करो तुम्हें राम बहुत कुछ प्रदान करेंगे ॥१०॥ आदर पूर्वक कहे गये शत्रुघ्न के वचन को सुनकर लव ने कहा— आपको मेरे माता-पिता वंश और अवस्था से क्या मतलव है ?॥११॥ वीर यदि तुम वलवान् हो तो युद्ध करो । अन्यथा कुश के चरणों में नमस्कार करके चले जाओ ॥१२॥ तुम राम के भाई हो हमलोगों के नहीं । यदि तुम में शक्ति है तो अश्व को खोल लो ॥१३॥ इस तरह से कहकर रणमण्डल में बाण का सन्धान करके उस वीर ने शत्रुघ्नजी के हृदय, मस्तक तथा दोनों भुजाओं में बाणों से प्रहार किया ॥१४॥ उस समय राजा शत्रुघ्न क्रुद्ध हो गये और गम्भीर नाद करते हुए बाल को भयभीत सा करते हुए उन्होंने धनुष को चढ़ाया ॥१५॥ बलवानों में श्रेष्ठ उन्होंने असंख्य बाणों को छोड़ा बलवान् बालक ने उन सभी वाणों को काट दिया ॥१६॥ लव के द्वारा अनेक प्रकार के छोड़े गये बाण पृथिवी में उसी तरह व्याप्त हो गये जिस तरह व्यतीपात काल में दिया गया दान अक्षय हो जाता है ॥१७॥ लव के द्वारा संधान किए गये वे बाण सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त हो गये । वे सूर्यमण्डल पर्यन्त चारों ओर फैल गये॥१८॥ उस बाण पञ्जर में हवा भी नहीं प्रवेश कर सकती थी क्षणभर जीवित रहने वाले मनुष्य की कौन सी बात हैं ?॥१९॥ लाखों बाणों को छोड़ने वाले लव के फैले हुए बाणों को देखकर शत्रुघ्नजी आश्चर्यित हो गये और उन्होंने उन सबों को काट दिया ॥२०॥ अपने उन सभी बाणों को कटे हुए देखकर लव ने राजा शत्रुघ्न के धनुष

ताञ्छिन्नान्सायकान्सर्वान्स्वीयान्दृष्ट्वा कुशानुजः ।
धनुश्चिच्छेद तरसा शत्रुघ्नस्य महीपतेः ॥२१॥
सोऽन्यद्धनुरुपादाय यावन्मुञ्चति सायकान् । ताद्बभञ्ज स रथं सायकैःशितपर्वभिः ॥२२॥
करस्थमच्छिनच्चापं सुदृढं गुणपूरितम् । तत्कर्मा पूजयन्वीरा रणमण्डलवर्तिनः ॥२३॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । अन्यं रथं समास्थाय ययौ योद्धुं लवं बलात्॥२४॥
अनेकबाणनिर्भिन्नः स्रवद्रक्तकलेवरः। पुष्पितःकिंशुक इव शुशुभे रणमध्यगः ॥२५॥
शत्रुघ्नबाणप्रहतःपरंकोपमुपागमत् । बाणसन्धानचतुरः कुण्डलीकृतचापवान्॥२६॥
विशीर्णकवचं देहं शिरो मुकुटवर्जितम्। स्रवद्रक्तपरिप्लुष्टं शत्रुघ्नस्य चकार सः ॥२७॥
तदा रामानुजः क्रुद्धो दशबाणाञ्छिताग्रकान् ।
मुमोच प्राणसंहारकारकान्कुपितो भृशम् ॥२८॥
स तांस्तांस्तिलशःकृत्वा बाणैर्निशितपर्वभिः ।
ताडयामास हृदये शत्रुघ्नस्याष्टभिःशरैः ॥२९॥
अत्यन्तं बाणपीडार्तो लवं बलिनमुत्स्मरन्। दुःसहं मन्यमानस्तं शरान्मुञ्चन्नभूत्तदा ॥३०॥
तदा लवेन तीक्ष्णेन हृदिभिन्नो विशालके । अर्धचन्द्रसमानेन तीक्ष्णपर्वसुशोभिना ॥३१॥
स विद्धो हृदि बाणेन पीडां प्राप्तः सुदारुणाम् ।
पपात स्यन्दनोपस्थे धनुष्पाणिः सुशोभितः ॥३२॥
शत्रुघ्नं मूर्च्छितं दृष्ट्वा नृपाश्च सुरथादयः। दुद्रुवुर्लवमुद्युक्ता जयप्राप्त्यै रणे तदा॥३३॥
सुरथो विमलो वीरो राजा वीरमणिस्तथा। सुमदो रिपुतापाद्याःपरिवव्रुश्च संयुगे ॥३४॥
केचित्क्षुरप्रैर्मुसलैःकेचिद्बाणैःसुदारुणैः । प्रासैःपरशुभिःकेचित्सर्वतःप्राहरन्नृपाः ॥३५॥

को बल पूर्वक काट दिया ॥२१॥ वे भी दूसरे धनुष को लेकर जब तक तीक्ष्ण बाणों को छोड़ते तब तक लव ने उनके रथ को तोड़ दिया ॥२२॥ फिर शत्रुघ्नजी के हाथ में विद्यमान तथा प्रत्यञ्चा से युक्त धनुष को उन्होंने काट दिया । लव के उस कर्म की प्रशंसा युद्ध स्थल में विद्यमान वीरों ने की ॥२३॥ कटे हुए धनुष वाले रथ से विहीन जिनके अश्व और सारथि मार दिए गये थे ऐसे शत्रुघ्नजी दूसरे रथ पर बैठकर लव के साथ युद्ध करने के लिए गये ॥२४॥ अनेक बाणों से उनका शरीर छिद गया था, शरीर से खून चू रहा था । वे युद्ध में विकसित हुए पलाश वृक्ष के समान सुशोभित हो रहे थे ॥२५॥ शत्रुघ्नजी के बाण से मारे गये लव अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। बाणों का सन्धान करने में चतुर वे अपने धनुष को कुण्डलाकार बना लिए ॥२६॥ उन्होंने शत्रुघ्नजी को विशीर्ण कवच वाला और उनके शिर को मुकुट से रहित, खून से लथपथ वना दिया ॥२७॥ उसके पश्चात् शत्रुघ्नजी ने क्रुद्ध होकर अत्यन्त तीक्ष्ण दश प्राणों का संहार करने वाले बाणों को छोड़ा ॥२८॥ लव ने शत्रुघ्नजी के बाणों को काटकर शत्रुघ्नजी के हृदय में आठ बाणों से प्रहार किया ॥२९॥ बाणों की पीड़ा से अत्यन्त आर्त शत्रुघ्नजी वलवान् लव को दुःसह मानते हुए बाणों का प्रहार करने लगे ॥३०॥ उस समय लव ने उनके विशाल हृदय को अत्यन्त तीक्ष्ण पर्व वाले अर्द्धचन्द्र बाणों से भेद दिया ॥३१॥ हृदय के विद्ध हो जाने से अत्यन्त पीड़ित शत्रुघ्नजी हाथों में धनुष धारण किये हुए रथ के उपस्थ भाग में गिर पड़े ॥३२॥ शत्रुघ्नजीको मूर्छित देखकर सुरथ आदि राजा विजय प्राप्त करने के लिए लव पर टूट पड़े ॥३३॥ राजा सुरथ, विमल, वीरमणि, सुमद तथा रिपुताप इत्यादि वीर लव को युद्ध में घेर लिए ॥३४॥ कुछ क्षुरप्र बाणों से, कुछ मुसल से, प्रासों परसुओं से लव पर चारों ओर से सब प्रहार करने लगे ॥३५॥ उन सबों को अधर्म पूर्वक युद्ध करते देखकर वीर शिरोमणि

तानथर्मेण युद्धोत्कान्दृष्ट्वा वीरशिरोमणिः । दशभिर्दशभिर्बाणैस्ताडयामास संयुगे ॥३६॥
ते बाणवर्षविहता रणमध्ये सुकोपनाः। केचित्पलायिताःकेचिन्मुमुहुर्युद्धमण्डले ॥३७॥
तावत्स राजा शत्रुघ्नो मूर्च्छां सन्त्यजय सङ्गरे ।
लवं प्रायान्महावीरं योद्धुं बलसमन्वितः ॥३८॥
आगत्य तं लवं प्राह धन्योऽसि शिशुसन्निभः ।
न बालस्त्वं सुरः कश्चिच्छलितुं मां समागतः ॥३९॥
केनापि न हि वीरेण पातितो रणमण्डले । त्वयाऽहं प्रापितो मूर्च्छां समक्षं ममपश्यतः ॥४०॥
इदानीं पश्य मे वीर्यं त्वां सङ्ख्ये पातयाम्यहम् ।
सहस्व बाणमेकं त्वं मा पलायस्व बालक ! ॥४१॥
इत्युक्त्वा समरे बालं शरमेकं समाददे। यमवक्त्रसमं घोरं लवणो येन घातितः ॥४२॥
सन्धाय बाणं निशितं हृदिभेत्तुं मनोदधत्। लवं वीरसहस्राणां वह्निवत्सर्वदाहकम्॥४३॥
तं बाणं प्रज्वलन्तं स द्योतयन्तं दिशोदश । दृष्ट्वा सस्मार बलिनं कुशं वैरिनिपातिनम् ॥४४॥
यद्यस्मिन्समये वीरो भ्रातास्याद्बलवान्मम। तदा शत्रुघ्नवशता न मे स्याद्भयमुल्बणम् ॥४५॥
एवं तर्कयतस्तस्य लवस्य च महात्मनः। हृदि लग्नो महाबाणो घोरः कालानलोपमः ॥४६॥
मूर्च्छां प्राप तदा वीरो भूपसायकसंहतः । सङ्गरे सर्ववीराणां शिरोभिःसमलङ्कृते॥४७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
लवमूर्च्छानाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

* * *

लव ने सबों को दश-दश बाणों से मारा ॥३६॥ बाणों की वर्षा से मारे गये तथा युद्ध में क्रोध करने वाले वे कुछ तो पलायन कर गये और कुछ मूर्छित हो गये ॥३७॥ तब तक राजा शत्रुघ्न मूर्छा से जगकर सेना से युक्त लव से युद्ध करने के लिए गये ॥३८॥ आकर उन्होंने कहा— बालक धन्य हो, तुम बालक नहीं कोई देवता हो, मुझसे छल करने के लिए आये हो ॥३९॥ तुमको कोई भी वीर युद्ध मण्डल में मूर्छित नहीं कर सका और सबों के समक्ष तुमने मुझे मूर्छित कर दिया ॥४०॥ अब तुम मेरे पराक्रम को देखो तुम्हे मूर्छित करता हूँ। बालक भागना मत मेरे एक बाण को बर्दास्त करो ॥४१॥ इसतरह से बालक को कहकर उन्होंने एक बाण उठाया। वह यमराज के मुख के समान भयङ्कर था तथा उसी से उन्होंने लवणासुर को मारा था ॥४२॥ उन्होंने तीक्ष्ण बाण का सन्धान करके लव के हदय का भेदन करने का मन बनाया। वह अग्नि के समान हजारों वीरों को भस्म कर देने वाला था ॥४३॥ उस बाण को जलते हुए और हजार शत्रुओं को मारने वाले तथा दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए देखकर लव ने कुश का स्मरण किया ॥४४॥ यदि इस समय मेरे बलवान् भाई कुश होते तो मुझे शत्रुघ्न के बाण से भयङ्कर भय नहीं होता ॥४५॥ इसतरह से विचार करते हुए लव के हृदय में जाकर वह बाण लगा वह कलानल के समान बाण था ॥४६॥ राजा के बाणों से मारे जाकर लव मूर्छित हो गये। उस समय समराङ्गण में वीरों के शिर पड़े हुए थे ॥४७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत श्रीरामाश्वमेध के प्रकरण में लव की मूर्छा प्राप्ति वर्णन नामक बासठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६२।।

* * *

तिरसठवाँ अध्याय

शेष उवाच

लवं विमूर्च्छितं दृष्ट्वा बलिवैरिविदारणम् । शत्रुघ्नो जयमापेदे रणमूर्ध्नि महाबलः ॥१॥
लवं बालं रथे स्थाप्य शिरस्त्राणाद्यलङ्कृतम् ।
रामप्रतिनिधिं मूर्त्या ततो गन्तुमियेष सः ॥२॥
स्वमित्रं शत्रुणाग्रस्तमितिदुःखसमन्विताः । बालमात्रेऽस्य सीतायै त्वरिताःसंन्यवेदयन्॥३॥

बाला ऊचुः

मातर्जानकि ! ते पुत्रो बलाद्वाहमपाहरत् । कस्यचिद्भूपवर्यस्य बलयुक्तस्य मानिनः ॥४॥
ततो युद्धमभूद्धोरं तस्य सैन्येन जानकि। तदा वीरेण पुत्रेण तव सर्वं निपातितम्॥५॥
पश्चादपि जयंप्राप्तःसुतस्तव मनोहरः। तं भूपं मूर्च्छितं कृत्वा जयमाप रणाङ्गणे ॥६॥
ततो मूर्च्छा विहायैष राजा परमादारुणः। सङ्कुप्य पातयामास तव पुत्रं रणाङ्गणे ॥७॥
अस्माभिर्वारितः पूर्वं मा गृहाण हयोत्तमम्। अस्मान्सर्वांश्च धिक्कृत्य ब्राह्मणान्वेदपारगान्॥८॥
इतिवाक्यं शिशूनां सा समाकर्ण्य सुदारुणम् ।
पपात भूतलोपस्थे दुःखयुक्ता रुरोद ह ॥९॥

सीतोवाच

कथं नृपो दयाहीनो बालेन सह युध्यति । अधर्मकृतदुर्बुद्धिर्यो मद्बालं न्यपातयत् ॥१०॥
लववीर ! भवान्कुत्र वर्ततेऽतिबलान्वितः। कथं त्वं निष्कृपस्याहो राज्ञोऽहार्षीर्हयोत्तमम्॥११॥
त्वं बालस्ते दुराक्रान्ताः सर्वशस्त्रविशारदाः। रथस्था विरथास्त्वं वै कथं युद्धं समं भवेत्॥१२॥

लव के मूर्छित होने से सीताजी का शोक करना तथा कुश एवं शत्रुघ्नजी का युद्ध एवं शत्रुघ्नजी का मूर्छित होना

शेषजी ने कहा— बलवान् शत्रु को मारने वाले लव को मूर्छित देखकर संग्राम में शत्रुघ्नजी विजयी हो गये ॥१॥ शिरस्त्राण इत्यादि से अलंकृत, शरीर से रामजी के प्रतिनिधि बालक लव को रथ पर स्थापित करके शत्रुघ्नजी जाना चाहे ॥२॥ शत्रु से ग्रस्त अपने मित्र को देखकर दुःखी बालकों ने लव की माता को जाकर शीघ्र बतलाया ॥३॥ **बालकों ने कहा**— हे माँ जानकि ! आपके पुत्र लव ने बलपूर्वक अश्व को पकड़ लिया था । वह अश्व किसी बलवान् राजा का था ॥४॥ हे जानकि ! उसके बाद भयङ्कर युद्ध हुआ । उस समय आपके वीर पुत्र ने सारी सेना को मार दिया ॥५॥ उसके बाद आपके पुत्र ने विजय भी प्राप्त कर लिया था ।लव ने उस राजा को भी मूर्छित करके विजय प्राप्त कर लिया था ॥६॥ उसके बाद मूर्छा त्याग करके भयङ्कर राजा ने क्रोध करके आपके पुत्र को मूर्छित कर दिया ॥७॥ हमलोगों ने रोका था कि अश्व को मत पकड़ो तो लव ने हम वेद पारंगत ब्राह्मणों को धिक्कृत कर दिया ॥८॥ बच्चों की इस भयङ्कर बात को सुनकर सीताजी दुःखी होकर पृथिवी पर गिरकर रोने लगीं ॥९॥ **सीताजी ने कहा**— दयाहीन राजा बालक के साथ कैसे युद्ध करता है ? उस अधार्मिक तथा दुर्बुद्धि राजा ने मेरे बालक को गिरा दिया है ॥१०॥ अत्यन्त बलवान् वीर लव तुम कहाँ हो ? तुमने क्यों निष्ठुर राजा के अश्व को पकड़ लिया? ॥११॥ तुम तो बालक हो और वे सब सभी शस्त्रों में निपुण तथा

तताहंतु त्वया सार्द्धं रामत्यागासुखं जहौ । इदानीं रहिता युष्मन्कथं जीवामि कानने ॥१३॥
एहि मां मुञ्च यज्ञाश्वं गच्छत्वेष महीपतिः । मद्दुखं नाभिजानासि मम दुःखप्रमार्जकः ॥१४॥
कुशो यद्यभविष्यत्स रणे वीरशिरोमणिः । अमोचयिष्यदधुना भवन्तं भूपपार्श्वतः ॥१५॥
सोऽपि मद्दैवतो नासि समीपे किं करोम्यतः ।
दैवमेव ममाप्यत्र कारणं दुःखसम्भवे ॥१६॥
एवमादि बहुश्रीमत्येषा वै विललाप ह । पादाङ्गुष्ठेन लिखती भूमिं नेत्रद्वयाश्रुभिः ॥१७॥
बालान्प्रति जगादासौ पृथुकाःस च भूपतिः ।
कथं मत्सुतमापात्य रणे कुत्र गमिष्यति ॥१८॥
इति वाक्यं वदत्येषा जानकी पतिदेवता । तावत्कुशस्तु सम्प्राप्त उज्जयिन्या महर्षिभिः ॥१९॥
माघासितचतुर्दश्यां महाकालं समर्च्य च । प्राप्य भूरिवरांस्तस्मादागमन्मातृसन्निधौ॥२०॥
जानकीं विह्वलां दृष्ट्वा नेत्रोद्भूताश्रुविक्लवाम् ।
शोकविह्वलदीनाङ्गीं बभाषे यावदुत्सुकः ॥२१॥
तदा स्वबाहुरवदत्स्फुरन्युद्धाभिशंसनः । हृदये च रणोत्साहो बभूवातिरथस्य हि ॥२२॥
स प्रत्युवाच जननीं दीनगद्गदभाषिणीम् । मातस्तव गतं दुःखं मयि पुत्र उपस्थिते ॥२३॥
मयि जीवति ते नेत्रादश्रूणि भुवि नोऽपतन् ।
प्रसुं चोवाचाश्रुखिन्नां दीनगद्गदभाषिणीम् ॥२४॥
कुशो दुःखमितःसद्यो दुःखितां धीरमानसः ।
मम भ्राता लवःकुत्र वर्तते वैरिमर्दनः ॥२५॥

दुराक्रान्त हैं । वे सब रथ पर थे और तुम रथहीन थे दोनों में समानता का युद्ध कैसे हो सकता है ?॥१२॥ तात तुम्हारे ही साथ राम के द्वारा त्याग देने से मैंने सुख का परित्याग कर दिया अब तुम्हारे बिना मैं वन में कैसे जीऊँगी ?॥१३॥ तुम चले आओ यज्ञ के घोड़े को छोड़ दो; यह राजा चला जाय । हे मेरे दुःख को दूर करने वाले ! तुम मेरे दुःख को नहीं जानते हो ॥१४॥ यदि वीर शिरोमणि कुश रण में होते तो तुम्हारे वगल में रहकर तुम्हारी रक्षा किए होते ॥१५॥ मेरे दुर्भाग्यवशात् कुश भी मेरे पास नहीं है । अतएव मैं क्या करूँ ? इस दुःख की उत्पत्ति में भी दैव ही कारण है ॥१६॥ इस तरह से जानकीजी ने बहुत अधिक विलाप किया वे दोनों आँखों में आँसू भरकर पैरों के अङ्गूठे से भूमि को कुरेद रही थीं ॥१७॥ उस राजा ने बच्चे के प्रति वचो कहा । वह मेरे पुत्र को गिरा कर कहाँ जायेगा ॥१८॥ इस तरह से जब पतिव्रता जानकीजी कह रही थी उसी समय उज्जयिनी से महर्षि के साथ कुश आ गये ॥१९॥ माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन महाकाल की पूजा करके तथा उनसे अनेक प्रकार के वरों को प्राप्त करके वे अपनी माता के पास आये ॥२०॥ जानकीजी को विह्वल तथा उनके आँसू भरे नेत्रों को देखकर तथा शोक से विह्वल अङ्गों वाली देखकर उत्सुकता पूर्वक वे उसका कारण पूछे ॥२१॥ उसी समय फड़कती हुयी भुजाओं ने उन्हें युद्ध की सूचना दे दी । उन अतिरथ के हृदय में युद्ध का उत्साह भर गया॥२२॥ उन्होंने दीन तथा गद्गद स्वर में बोलने वाली अपनी माता से कहा— माँ ! मैं तुम्हारा पुत्र आ गया हूँ। तुम्हारा दुःख समाप्त हो गया ॥२३॥ माँ मेरे रहते तुम्हारी आँखों से आँसू नहीं गिरना चाहिए । इस तरह आँसुओं से तथा दीन होकर गद्गद भाषिणी अपनी माताँ से उन्होंने कहा ॥२४॥ धीर बुद्धि वाले कुश अपनी दुखिता माता

सदा मामागतं ज्ञात्वा प्रहर्षन्सन्निधावियात् । न दृश्यते कथं वीरःकुत्ररन्तुं गतोबली ॥२६॥
केन वा सह बालत्वाद्गतो मां वै निरीक्षितुम् ।
किं त्वं रोदिषि मे मातर्लवः कुत्र स वर्तते ॥२७॥
तन्मे कथय सर्वं यत्तव दुःखस्य कारणम्। तच्छ्रुत्वा पुत्रवाक्यं सा दुःखिता कुशमब्रवीत्॥२८॥

जानक्युवाच

लवोधृतो नृपेणात्र केनचिद्धयरक्षिणा। बबन्ध बालको मेऽत्र हयं यागक्रियोचितम् ॥२९॥
तद्रक्षकान्बहूञ्जिग्य एकोऽनेकान्रिपून्बली। राजा तं मूर्च्छितं कृत्वा बबन्ध रणमूर्धनि ॥३०॥
बालका इति मामूचुःसहगन्तार एव हि। ततोऽहं दुःखिता जाता निशम्य लवमाधृतम् ॥३१॥
त्वं मोचय बलात्तस्मात्काले प्राप्तो नृपोत्तमात् ।
निशम्य मातुर्वचनं कुशःकोपसमन्वितः ॥
जगाद तां दशन्नोष्ठं दन्तैर्दन्तान्विनिष्पिषन् ॥३२॥

कुश उवाच

मातर्जानीहि तं मुक्तं लवं पाशस्य बन्धनात् ।
इदानीं हन्मि तं बाणैःसमग्रबलवाहनम् ॥३३॥
यदि देवोऽमरो वापि यदि शर्वःसमागतः । तथापि मोचये तस्माद्बाणैर्निशितपर्वभिः ॥३४॥
मा रोदिषि मातरिह वीराणां रणमूर्जितम् । कीर्तयेऽत्र भवत्येव पलायनमकीर्तये ॥३५॥
देहि मे कवचं दिव्यं धनुर्गुणसमन्वितम् । शिरस्त्राणं च मे मातः करवालं तथाशितम्॥३६॥
इदानीं यामि समरे पातयामि बलं महत्। मोचयामि भ्रातरं स्वं रणमध्याद्विमूर्च्छितम् ॥३७॥
न मोचयाम्यद्य पुत्रं तव मातर्महारणात्। तदा तौ मे भवत्पादौ संरुष्टौ भवतां क्षितौ ॥३८॥

से कहे कि वैरियों का विनाश करने वाले मेरे छोटे भाई कहाँ गये हैं कि तुम दुःखी हो ?॥२५॥ वे तो मुझे आये हुए जानकर सदैव मेरे पास आते थे । वे दिखायी नहीं पड़ते हैं, वे बलवान् खेलने के लिए कहाँ गये हैं ॥२६॥ बालक होने के कारण किसके साथ मुझे देखने गये है ? हे माँ ! तुम रोती क्यों हो लव कहाँ है ?॥२७॥ तुम अपने दुःख का सारा कारण बतलाओ । उसको सुनकर जानकीजी ने कुश से कहा ॥२८॥ **जानकीजी ने कहा—** किसी अश्वरक्षी राजा ने लव को पकड़ लिया है । यज्ञ के लिए उचित अश्व को मेरे बालक ने बाँध लिया था ॥२९॥ अकेले लव ने अनेक शत्रुओं को जीत लिया परन्तु राजा ने संग्राम में उसको मूर्छित करके बाँध दिया है॥३०॥ उसके साथ जो बालक गये थे उन बालकों ने मुझे बतलाया है । लव को बँधे हुए सुनकर मैं दुःखी हो गयी हूँ, तुम इस समय राजा से उसको छुड़ा लो ॥३१॥ अपनी माता की वाणी सुनकर क्रुद्ध होकर अपने दाँतों को पीसते हुए और ओष्ठ को चबाते हुए कुश ने कहा ॥३२॥ **कुश ने कहा—** माँ समझो कि लव पाश से मुक्त हो गये मैं अब उस राजा की सारी सेना और वाहन के साथ मार देता हूँ ॥३३॥ माँ यहाँ तुम रोओ मत। वीरों के लिए युद्ध तो कर्तव्य है । यदि अमर देवता या शङ्करजी ही आये हों तो भी मैं अपने बाणों से उसे छुड़ा लूँगा ॥३४॥ लोक में युद्ध से यश बढ़ता है, और पलायन से अयश होता है ॥३५॥ मुझे मेरा दिव्य कवच दो तथा प्रत्यञ्चा से युक्त धनुष दो । माँ शिरस्त्राण तथा तीक्ष्ण तलवार दो ॥३६॥ अभी युद्ध में जा रहा हूँ और विशाल सेना को मारकर युद्ध में मूर्छित हुए अपने भाई को छुड़ाता हूँ ॥३७॥ माँ यदि मैं उस महारण से आपके

शेष उवाच

इति वाक्येन सन्तुष्टा जानकी शुभलक्षणा। सर्वं प्रादादस्त्रवृन्दं जयाशीर्भिर्नियुज्य तम् ॥३९॥
प्रयाहि पुत्र ! सङ्ग्रामं लवं मोचय मूर्च्छितम् ।
इत्याज्ञप्तः कुशः सङ्ख्ये कवची कुण्डली बली ॥४०॥
मुकुटी करवाली च चर्मधारी धनुर्धरः। अक्षयाविषुधी कृत्वा स्कन्धयोःसिंहवीर्ययोः ॥४१॥
जगाम तरसा नत्वा मातृपादौ रथाग्रणीः। वेगेन यावद्युद्धाय गच्छति क्षिप्रमाहवे ॥४२॥
तावद्ददर्श सलवं वैरिवृन्दनिपातितम्। आयान्तं तं कुशं वीरा ददृशुःसुमहाभटाः ॥४३॥
कृतान्तमिव संहर्तुं सर्वं विश्वमुपस्थितम्। लवो महाबलं दृष्ट्वा कुशं भ्रातरमागतम् ॥४४॥
अत्यन्तं वह्निवद्युद्धे दिदीपे वायुना समम्। रथादुन्मुच्य चात्मानं युद्धाय स विनिर्गतः ॥४५॥
कुशः सर्वान्रणस्थान्वै वीरान्पूर्वदिशि क्षिपन् ।
पश्चिमायां दिशि लवः कोपात्सर्वान्समैरयत् ॥४६॥
कुशबाणव्यथाव्याप्ता लवसायकपीडिताः। सैन्येजनामुनेसर्वउत्कल्लोलाम्बुधिभ्रमाः ॥४७॥
कुशेन च लवेनाथ शरव्रातैःप्रपीडितम्। न शर्म लेभे सकलं सैन्यं वीरप्रपूरितम् ॥४८॥
इतस्ततःप्रभग्नं तद्बलं त्रस्तं पुनःपुनः। न कुत्रचिद्रणे स्थित्वा युद्धमैच्छद्बलान्वितः ॥४९॥
एतस्मिन्समये राजा शत्रुघ्नःपरतापनः। कुशं वीरं ययौ योद्धुं तादृशं लवसन्निभम् ॥५०॥
कुशं दृष्ट्वा बलाक्रान्तं राममूर्तिसमप्रभम्। रथे तिष्ठन्हेममये जगाद परवीरहा॥५१॥

पुत्र को नहीं छुड़ा लाऊँ तो जानो कि आपके चरण मुझसे रुष्ट हो गये हैं ॥३८॥ **शेषजी ने कहा—** इस वाक्य से शुभ लक्षणों वाली जानकीजी सन्तुष्ट हो गयीं। विजय के आशीर्वाद पुरस्सर अस्त्र समूह को उन्होंने प्रदान किया ॥३९॥ पुत्र संग्राम में जाकर लव को छुड़ाओ। इस तरह आज्ञा प्राप्त करके कुश कवच और कुण्डल धारण किए हुए युद्ध में गये ॥४०॥ मुकुट, तलवार और ढाल धारण किए हुए धनुर्धारी होकर अपने सिंह के पराक्रम वाले कन्धों पर अक्षय तुणीर बाँधे हुए ॥४१॥ रथियों में अग्रगण्य कुश युद्ध में गये। वे शीघ्रता पूर्वक वेग से युद्ध में जा रहे थे ॥४२॥ उन्होंने लव के बाण से गिरे हुए वैरी समूह को देखा। उनको आते हुए बड़े-बड़े वीरों ने देखा ॥४३॥ मानो कुश यमराज के समान सम्पूर्ण विश्व का संहार करने के लिए आये हों। लव ने महाबलवान् अपने भाई कुश को देखकर ॥४४॥ उसी तरह देदीप्यमान हो गये है जिस तरह वायु का संयोग पाकर अग्नि विदीप्त हो जाती है, वे रथ से अपने को उन्मुक्त करके युद्ध करने के लिए निकल गये ॥४५॥ कुश युद्धस्थल के पूर्व दिशा में विद्यमान वीरों पर अस्त्रों का प्रहार करने लगे और लव पश्चिम दिशा में विद्यमान वीरों पर क्रोध करके अस्त्रों का प्रहार किए ॥४६॥ हे मुने ! कुश के बाणों से व्यथित और लव के बाणों से पीड़ित सेना के सभी लोगों को लग रहा था जैसे समुद्र में बड़ी-बड़ी लहरे उठ रही हैं ॥४७॥ कुश तथा लव के बाण समूह से पीड़ित वीरों से परिपूर्ण सेना में किसी को भी शान्ति नहीं मिल रही थी ॥४८॥ डरकर सारी सेना इधर-उधर भागने लगी, कोई भी युद्ध में खड़ा होकर युद्ध नहीं करना चाहता था ॥४९॥ उसी समय शत्रुओं को संतप्त करने वाले राजा शत्रुघ्नजी लव के ही समान कुश के साथ युद्ध करने के लिए गये ॥५०॥ श्रीरामजी के ही समान शरीर वाले बलवान कुश को देखकर रथ पर बैठे हुए उन्होंने कहा ॥५१॥ **शत्रुघ्नजी ने कहा—** हे महाबलवान्! अपने भाई लव के समान तुम कौन हो ? महावीर ! तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारे माता-पिता का नाम क्या

शत्रुघ्न उवाच

कोऽसि त्वं सन्निभो भ्रात्रा लवेन सुमहाबल ! ।
किन्नामऽसि महावीर ! कस्ते तातः क्व ते प्रसूः ॥५२॥
कथं वने द्विजैर्जुष्टे तिष्ठसि त्वं नरर्षभ ! । सर्वं शंस यथा युध्ये त्वया सह महाबल !॥५३॥
इतिवाक्यं समाकर्ण्य कुशःप्रोवाच भूमिपम् ।
मेघगम्भीरया वाचा नादयन्रणमण्डलम् ॥५४॥
केवलं सुषुवे सीता पतिव्रतपरायणा । वने वसावो वाल्मीकेश्चरणार्चनतत्परौ ॥५५॥
मातृसेवासमुद्युक्तौ सर्वविद्याविशारदौ । कुशो लव इति प्रख्यामागतौ भूपतेऽनघ ! ॥५६॥
कस्त्वं वीरो रणश्लाघी किमर्थं हयसत्तमः । मुक्तोऽस्ति समरे त्वद्य जेतासि बलसंयुतः ॥५७॥
युद्धयस्व त्वं मया सार्द्धं यदि वीरोऽसि भूमिप ! ।
इदानीं पातयिष्यामि भवन्तं रणमूर्धनि ॥५८॥
शत्रुघ्नस्तं सुतं ज्ञात्वा सीताया रामसम्भवम् ।
विसिष्मिये स्वयं चित्ते कोपाद्धनुरुपाददत् ॥५९॥
तमात्तधनुषं दृष्ट्वा कुशःकोपसमन्वितः । विस्फारयामास धनुःस्वीयं सुदृढमुत्तमम्॥६०॥
मुमोच बाणान्निशिताञ्छत्रुघ्नःसर्वशस्त्रवित् । तांश्चिच्छेद कुशः सर्वाल्लीलया प्रहसन्रणे ॥६१॥
बाणाश्च शतसाहस्राःकुशस्य च नृपस्य च । भुवनं व्याप्नुवन्सर्वं तच्चित्रमभवन्मुने॥६२॥
अग्न्यस्त्रेण नृपःसर्वान्ददाह तरसा बली । शमयामास तं कुशःपर्जन्यास्त्रेण वीर्यवान् ॥६३॥
शनथामास तं भूपःवायव्येनातिविक्रमः । तदा वायुरभूत्तीव्रःसर्वतो रणमण्डले ॥६४॥

है ?॥५२॥ हे नरश्रेष्ठ ! तुम ब्राह्मणों से सेवित इस वन में क्यों रहते हो ? इन सारी बातों को तुम बतलाओ जिससे कि मैं तुम्हारे साथ युद्ध कर सकूँ ॥५३॥ इस वाक्य को सुनकर कुश ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से राजसमूह को ध्वनित करते हुए कहा ॥५४॥ पतिव्रता सीताजी ने केवल हम को जन्म दिया है । हमदोनों महर्षि वाल्मीकि के चरणों की अर्चना करते हुए वन में निवास करते हैं ॥५५॥ हमलोग माता की सेवा करते हैं और सभी विद्याओं में निपुण हैं । राजन् ! हमदोनों का प्रख्यात नाम कुश और लव है ॥५६॥ हे रणश्लाघी वीर ! आप कौन हैं ? यह श्रेष्ठ अश्व किसलिए छूटा हुआ है । सेना सहित आप जीतने वाले हैं ॥५७॥ राजन् ! यदि वीर हो तो मेरे साथ युद्ध करो । इस समय मैं आपको संग्राम में गिरा दूँगा ॥५८॥ शत्रुघ्नजी ने जान लिया कि यह सीताजी से उत्पन्न श्रीरामजी का पुत्र है । उनको मन में आश्चर्य हुआ और उन्होंने क्रोध करके धनुष उठाया॥५९॥ धनुष धारण किए हुए शत्रुघ्नजी को देखकर कुश क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपने सुदृढ धनुष का टङ्कार किया॥६०॥ सभी शस्त्रों के ज्ञाता शत्रुघ्नजी ने तीक्ष्ण बाणों को छोड़ा और कुश ने उन सबों को आसानी से हँसते हुए काट दिया ॥६१॥ हे मुने ! कुश तथा शत्रुघ्नजी के लाखों बाण सम्पूर्ण भुवनों में व्याप्त हो गये यह अद्भुत कर्म था ॥६२॥ पराक्रमी राजा ने आग्नेयास्त्र के द्वारा उन सभी बाणों को जला दिया और कुश ने पार्जन्यास्त्र से आग्नेयस्त्र को शान्त कर दिया ॥६३॥ शत्रुघ्नजी ने वायव्यास्त्र से पार्जन्यास्त्र को शान्त कर दिया और सम्पूर्ण रणमण्डल में तीव्र वायु चलने लगी ॥६४॥ कुश ने पर्वतास्त्र के द्वारा उस वायु को रोक दिया । शत्रुघ्नजी ने वज्रास्त्र से पर्वतों को विनष्ट कर दिया ॥६५॥ उस समय उद्भट कुश ने नारायणास्त्र को छोड़ा शत्रुघ्नजी को

पर्वतास्त्रेण तं वायुं स कुशस्तु समावृणोत् ।
वज्रास्त्रेण नृपः सङ्ख्ये विच्छेद स नगोपलान् ।।६५।।
तदा नारायणास्त्रं स मुमोच कुश उद्भटः । नारायणं तदा भूपं नाशकत्परिवाधितुम्।।६६।।
तदा प्रकुपितोऽत्यन्तं कुशःकोपपरायणः । उवाच भूपं शत्रुघ्नं महाबलपराक्रमम् ।।६७।।
जानामि त्वां महावीरं सङ्ग्रामे जयकारिणम् ।
यत्त्वां नारायणास्त्रं मे न बबाधे भयानकम् ।।६८।।
इदानीं पातयाम्यद्य भूमौ त्वां नृपते शरैः । त्रिभिश्चेन्न करोम्येतत्प्रतिज्ञां तर्हि मे शृणु ।।६९।।
यो मनुष्यवपुःप्राप्य दुर्लभं पुण्यकोटिभिः । तन्नाद्रियेत संमोहात्तस्य मेऽस्त्वत्र पातकम् ।।७०।।
सावधानो भवानत्र भवतु प्रधनाङ्गणे। पातयामि क्षितौ सद्य इत्युक्त्वा स्वशरासने ।।७१।।
शरं संरोपयामास घोरं कालानलप्रभम्। लक्षीकृत्य रिपोर्वक्षो विपुलं कठिनं महत् ।।७२।।
तं संहितं शरं दृष्ट्वा शत्रुघ्नःकोपमूच्छितः। मुमोच बाणान्निशितान्कुशत्वग्भेदकारकान् ।।७३।।
स बाणो हृदयं तस्य भेत्तुं तत्प्रचचाल वै । घोररूपो वह्निसम आशीविषवदुच्छ्वसन् ।।७४।।
स बाणो नृपवर्येण रामं स्मृत्वाऽऽशु लक्षितः ।
चिच्छेद कुशमुक्तं स सायकं शितपर्वकम् ।।७५।।
तदाऽत्यन्तं प्रकुपितःकुशो बाणस्य कृन्तनात् ।
अपरं सायकं चापे दधारशितपर्वकम् ।।७६।।
स यावत्तदुरोभेत्तुं करोति च बलोद्धुरः । तं तावदच्छिनत्तस्य शरं कालानलप्रभम् ।।७७।।
तदा कुशो मातृपादौ स्मृत्वा रोषसमन्वितः। तृतीयं चापके स्वीये दधार शरमद्भुतम्।।७८।।
शत्रुघ्नस्तमपि क्षिप्रं छेत्तुं बाणं समाददे । तावद्विद्धः शरेणासौ पपात धरणीतले।।७९।।

नारायणास्त्र नहीं कष्ट दे सका ।।६६।। उसके बाद अत्यन्त कुपित कुश ने अत्यन्त वल और पराक्रम सम्पन्न शत्रुघ्नजी से कहा ।।६७।। मैं जानता हूँ कि आप संग्राम में विजय प्राप्त करने वाले है; क्योंकि आपको भयानक नारायणास्त्र बाधित नहीं कर सका ।।६८।। राजन् ! मैं अपने तीन बाणों से आपको युद्ध में गिरा दे रहा हूँ । यदि ऐसा नहीं मैं कर सका तो आप मेरी प्रतिज्ञा सुनें ।।६९।। करोड़ों पुण्यों के द्वारा मानव शरीर प्राप्त करके भी जो उसका समादर नहीं करता है, उसको जो पाप लगता है, वही पाप मुझे लगे ।।७०।। अब आप समराङ्गण में सावधान हो जायँ । मैं आपको शीघ्र ही गिराता हूँ यह कहकर उन्होंने वाण को अपने धनुष पर चढ़ाया ।।७१।। उन्होंने कालाग्नि के समान भयङ्कर वाण को शत्रु के कठिन तथा विस्तृत वक्षस्थल को लक्ष्य बनाकर चढ़ाया।।७२।। उस संहित बाण को देखकर क्रुद्ध होकर शत्रुघ्नजी ने कुश के शरीर को छेद देने वाले बाणों को चलाया ।।७३।। वह बाण शत्रुघ्नजी के हृदय के छेदने के लिए चला उसका अग्नि के समान भयङ्कर रूप था और वह सर्प के समान फुफकार रहा था ।।७४।। शत्रुघ्नजी श्रीरामजी का स्मरण करके कुश के द्वारा छोड़े गये उस तीक्ष्ण बाण को काट दिए ।।७५।। वाण के काटने से कुश अत्यन्त कुपित हुए और उन्होंने दूसरे तीक्ष्ण बाण को धनुष पर चढ़ाया ।।७६।। जब तक वह वाण शत्रुघ्नजी के हृदय को छेदना ही चाहता था तब तक शत्रुघ्नजी ने उसे काट दिया ।।७७।। उसके बाद कुश क्रुद्ध होकर अपनी माता के चरणों का स्मरण करके अपने धनुष पर तीसरा अद्भुत बाण चढ़ाए ।।७८।। शत्रुघ्नजी उसको भी काटने के लिए शीघ्रता से बाण लिए तब तक उस बाण

हाहाकरो महानासीच्छत्रुघ्ने विनिपातिते । जयमाप कुशस्तत्र स्वबाहुबलदर्पितः ॥८०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
शत्रुघ्नमूर्च्छने कुशजयो नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

* * *

चौंसठवाँ अध्याय

शेष उवाच

शत्रुघ्नं पतितं वीक्ष्य सुरथः प्रवरो नृपः । प्रययौ मणिना सृष्टे रथे तिष्ठन्महाद्भुते ॥१॥
पुष्कलस्तु रणे पूर्वं पातितःस विचारयन् । लवं ययौ तदायोद्धुं महावीरबलोन्नतम् ॥२॥
सुरथःकुशमासाद्य बाणान्मुञ्चन्ननेकधा । व्यथयामास समरे महावीरशिरोमणिः ॥३॥
सुरथं विरथं चक्रे बाणैर्दशभिरुच्छिखैः । धनुश्चिच्छेद तरसा सुदृढं गुणपूरितम् ॥४॥
अस्त्रप्रत्यस्त्रसंहारैःक्षेपणैःप्रतिक्षेपणैः । अभवत्तुमुलं युद्धं वीराणां रोमहर्षणम् ॥५॥
अन्यन्तं समरोद्युक्ते सुरथे दुर्जये नृपे। कुशः सञ्चिन्तयामास किं कर्तव्यं रणे मया॥६॥
विचार्य निशितं घोरं सायकं समुपाददे । हननाय नृपस्यास्य महाबलसमन्वितः ॥७॥
तमागतं शरं दृष्ट्वा कालानलसमप्रभम्। छेत्तुं मतिं चकाराशु तावल्लग्नो महाशरः ॥८॥

ने उन्हें बेध दिए और वे पृथिवी पर गिर पड़े ॥७९॥ शत्रुघ्नजी के गिरते ही महान् हाहाकार मच गया। अपने बाहुबल से दृप्त कुश ने विजय प्राप्त कर लिया ॥८०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत शत्रुघ्नजी की मूर्छा वर्णन नामक तिरसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६३।।

* * *

लव और कुश का हनुमान और सुग्रीव को बाँधकर सीताजी को दिखाना और युद्ध का वृत्तान्त बतलाना

शेषजी ने कहा— शत्रुघ्नजी को गिरे हुए देखकर श्रेष्ठ राजा सुरथ मणिनिर्मित रथ पर बैठकर युद्ध करने के लिए गये ॥१॥ रण में पुष्कल पहले ही गिर चुके थे । वे मूर्छा त्याग करके महावलवान् वीर लव के साथ युद्ध करने के लिए आये ॥२॥ अनेक प्रकार के बाणों को छोड़ते हुए महावीर शिरोमणि राजा सुरथ कुश को व्यथित कर दिए ॥३॥ कुश ने भी अपने बाणों के प्रहार से सुरथ को रथ विहीन बना दिया और उनके सुदृढ़ प्रत्यंचा से युक्त धनुष को काट दिया ॥४॥ अस्त्रों तथा प्रत्यस्त्रों के क्षेपण और प्रतिक्षेपण के द्वारा वहाँ वीरों को रोमाञ्चित करने वाला भयङ्कर युद्ध हुआ ॥५॥ युद्ध में अत्यन्त उद्धत तथा दुर्जय राजा सुरथ के विषय में कुश ने सोचा कि मुझे क्या करना चाहिए ॥६॥ महाबलवान् कुश ने राजा सुरथ को मारने के लिए तीक्ष्ण और भयङ्कर बाण ले लिया ॥७॥ आते हुए उस बाण को राजा ने ज्यों हि करने

मुमूर्च्छ समरे वीरो महावीरबलस्ततः । पपात स्यन्दनोपस्थे सारथिस्तमुपाहरत् ॥९॥
सुरथे पतिते दृष्ट्वा कुशं जयसमन्वितम् । त्रासयन्तं वीरगणं नियाय पवनात्मजः॥१०॥
समीरसूनुं प्रबलमायान्तं वीक्ष्य वानरम् । जहास दर्शयन्दन्तान्कोपयन्निव तं क्रुधा ॥११॥
उवाच च हनूमन्तमेहि त्वं मम संमुखम्। भेत्स्ये बाणसहस्रेण मृतो यास्यसि यामिनीम् ॥१२॥
इत्युक्तो हनुमाञ्ज्ञात्वा रामसूनुं महाबलम् । स्वामिकार्यं प्रकर्तव्यमिति कृत्वा प्रधावितः ॥१३॥
शालमुत्पाट्य तरसा विशालं शतशाखिनम् ।
कुशं वक्षसि संलक्ष्य ययौ योद्धुं महाबलः ॥१४॥
शालहस्तं समायान्तं हनूमन्तं महाबलम् । त्रिभिः क्षुरप्रैर्विव्याध सोऽर्धचन्द्रोपमैर्बली ॥१५॥
स बाणविद्धस्तरसा कुशेन बलशालिना । शालेन हृदि सञ्जघ्ने दन्तान्निष्पिष्य मारुतिः ॥१६॥
शालाहतस्तदा बालः किञ्चिन्नाकम्पत स्मयात् ।
तदा वीराः प्रशंसां तु प्रचक्रुस्तस्य बाल्यतः ॥१७॥
स शालेन हतो वीरःसंहारास्त्रं समाददे । संहर्तुं वैरिणं कोपात्कुशःस परमास्त्रवित् ॥१८॥
संहारास्त्रं समालोक्य दुर्जयं कुशमोचितम् । दध्यौ रामं स्वमनसा भक्तविघ्नविनाशकम् ॥१९॥
तदा मुक्तं कुशेनाशु तदस्त्रं हृदि मारुतेः । लग्न महाव्यथाकारि तेन मूर्च्छामितःपुनः ॥२०॥
मूर्च्छां प्राप्तं तु तं दृष्ट्वा प्लवगं बलसंयुतः ।
विव्याध सायकैस्तीक्ष्णैः सैन्यं तत्सकलं महत् ॥२१॥
तस्य बाणायुतैर्भग्नं बलं सर्वं रणाङ्गणे । पलायनपरं जातं चतुरङ्गसमन्वितम् ॥२२॥

के लिए सोचा त्यों ही बाण सुरथ को लगा ॥८॥ उसके कारण अत्यन्त धैर्यवान् वीर सुरथ रथ पर ही गिर पड़े और सारथि उनको ले गया ॥९॥ सुरथ के गिर जाने पर विजयी कुश के पास हनुमानजी युद्ध करने आये ॥१०॥ प्रबल वानर हनुमानजी को आते देखकर उनको दाँत दिखाकर क्रुद्ध करते हुए के समान कुश जोर से हँसे ॥११॥ हनुमानजी से उन्होंने कहा— तुम मेरे सामने आओ मैं हजारों बाणों से छेद दूँगा और तुम मरकर यमलोक चले जाओगे ॥१२॥ इसतरह से कहने पर उनको महाबलवान् श्रीरामजी का पुत्र जानकर स्वामी का कार्य करना चाहिए यह कहकर हनुमानजी दौड़ पड़े ॥१३॥ सैकड़ों शाखाओं वाले विशाल साल वृक्ष को उखाड़कर और कुश के वक्षस्थल को निशाना बनाकर वे युद्ध करने के लिए गये॥१४॥ हाथ में साल लेकर आते हुए महाबलवान् हनुमानजी को कुश ने अर्द्धचन्द्र के समान तीन क्षुरप्र बाणों से छेद दिया ॥१५॥ बलवान् कुश के द्वारा बाणों से विद्ध हनुमानजी दाँतो को पीसकर शाल से उनके हृदय में प्रहार किए ॥१६॥ शाल से मारे जाने पर भी कुश टस से मस नहीं हुए । उस समय उस बालक की वीरों ने प्रशंसा की ॥१७॥ साल वृक्ष से मारे जाकर परमास्त्र वेत्ता कुश ने सबों का संहार करने के लिए संहारास्त्र को उठाया ॥१८॥ कुश के द्वारा छोड़े गये संहारास्त्र को देखकर हनुमानजी ने भक्तों के विघ्न का विनाश करने वाले श्रीरामचन्द्रजी का मन से ध्यान किया ॥१९॥ उसी समय कुश ने उस अस्त्र से हनुमानजी के हृदय में प्रहार किया और उस महाव्यथा करने वाले बाण के लगने से हनुमानजी मूर्छित हो गये ॥२०॥ हनुमानजी को मूर्छित देखकर बलवान् कुश ने अपने तीक्ष्ण बाणों से सारी सेना को वेध

तदा कपिपतिः कोपात्सुग्रीवो रक्षको महान् ।
अभ्यधावन्नागान्नैकानुत्पाट्य कुशमुद्भटम् ॥२३॥
कुशःसर्वान्प्रचिच्छेदलीलया प्रहसन्नगान् । पुनरप्यागतान्वृक्षांश्चिच्छेद तरसा बली ॥२४॥
अनेकबाणव्यथितः सुग्रीवःसमराङ्गणे । जग्राह पर्वतं घोरं कुशमस्तकमध्यतः ॥२५॥
कुशस्तं नगमायान्तं वीक्ष्य बाणैरनेकधा । निष्पिपेष चकाराशु महारुद्राङ्गयोग्यताम्॥२६॥
सुग्रीवस्तन्महत्कर्म दृष्ट्वा बालेन निर्मितम् । जायाशं प्रतिनिर्वृत्तो बभूव समराङ्गणे ॥२७॥
रणमध्ये दुराक्रान्तं कुंशं लाङ्गूलताडकम्। अत्यमर्षी रुषाक्रान्तस्तं हन्तुं नगमाददे ॥२८॥
आत्मानं हन्तुमुद्युक्तं वीक्ष्य सुग्रीवमादरात् । ताडयामास बहुभिःसायकैःशितपर्वभिः ॥२९॥
स ताडितो बहुविधैःशरैःपीडासमन्वितः । कुशं हन्तुं समारब्धो ययौ शालं समाददे ॥३०॥
तदाऽपि च कुशोवीरो वारुणास्त्रं समाददे । बबन्ध तं च पाशेन दृढेन स लवाग्रजः ॥३१॥
स बद्धःपाशकैःस्निग्धैःकुशेन बलशालिना। पपात रणमध्ये वै महावीरैरलङ्कृते ॥३२॥
सुग्रीवं पतितं दृष्ट्वा वीराः सर्वत्र दुद्रुवुः । जयमाप लवभ्राता महावीरविरोमणिः ॥३३॥
तावल्लवो भटाञ्जित्वा पुष्कलं चाङ्गदं तथा ।
प्रतापाग्यं वीरमणिं तथाऽन्यानपिभूभुजः ॥३४॥
जयं प्राप्य रणे वीरो लवो भ्रातरमागतम् । सङ्ग्रामे जयकर्तारं वैरिकोटिनिपातकम् ॥३५॥
परस्परं प्रहर्षितौ परिरम्भं प्रकुर्वतः । जयं प्राप्तौ तदा वार्तां मुने चक्रतुरुन्मदौ ॥३६॥

लव उवाच

भ्रातस्तव प्रसादेन निस्तीर्णो रणतोयधिः । इदानीं वीर ! रणकं शोधयावः सुशोभितम् ॥३७॥

दिया ॥२१॥ कुश के दशों हजार बाणों से भग्न होकर चतुरङ्गिणी सेना भागने लगी ॥२२॥ उस समय महान् रक्षक वानरों के स्वामी सुग्रीव अनेक वृक्षों को उखाड़कर कुश के सामने दौड़े ॥२३॥ हँसते हुए कुश ने लीला पूर्वक सभी वृक्षों को काट दिया ॥२४॥ अनेक बाणों से व्यथित होकर सुग्रीव ने रण में कुश के मस्तक पर प्रहार करने के लिए पर्वत को उठाया ॥२५॥ उस आते हुए पर्वत को कुश बाणों से पीसकर भस्म बना दिए ॥२६॥ बालक के द्वारा किए गये उस महान् कर्म को देखकर सुग्रीव विजय की आशा को त्याग दिए ॥२७॥ युद्ध में अपराजेय कुश को देखकर पूंछ से प्रहार करने वाले सुग्रीव क्रुद्ध होकर पर्वत उठाये ॥२८॥ मारने के लिए उद्यत सुग्रीव को कुश ने अनेक तीक्ष्ण बाणों से मारा ॥२९॥ अनेक बाणों के भार से पीड़ित सुग्रीव कुश को मारने के लिए सालवृक्ष को ले लिए, उसी समय वीर कुश वरुणास्त्र ले लिए और सुग्रीव को पाश में बाँध दिए ॥३०-३१॥ बलशाली कुश के द्वारा बाँधे जाकर सुग्रीव महान् वीरों से अलंकृत युद्ध में गिर पड़े ॥३२॥ सुग्रीव को गिरे हुए देखकर सभी वीर भाग चले और महावीर शिरोमणि कुश विजयी हो गये ॥३३॥ तब तक लव भी पुष्कल अङ्गद, प्रतापाग्रय, वीरमणि तथा दूसरे राजाओं को जीतकर ॥३४॥ विजय प्राप्त करके अपने बड़े भाई संग्राम विजयी तथा करोड़ों शत्रुओं को गिराने वाले कुश के पास आये ॥३५॥ अत्यन्त हर्षित दोनों ने एक दूसरे को गले से लगाया। उन दोनों ने विजय प्राप्त करके बातें की ॥३६॥ **लव ने कहा**— भैया आपकी कृपा से युद्ध सागर को पार कर लिया गया । अब हमदोनों सुन्दर युद्ध भूमि को देख लें ॥३७॥ यह कहकर लव और कुश राजा

इत्युक्त्वा राजसविधे जगाम स लवः कुशः ।
राज्ञो मौलिमणिं चित्रं जग्राह कनकाचितम् ॥३८॥
पुष्कलस्य लवो वीरो जाग्रह मुकुटं शुभम् ।
अङ्गदे च महानर्घ्ये शत्रुघ्नस्यापरस्य च ॥३९॥
गृहीत्वा शस्त्रसङ्घातं हनूमन्तं कपीश्वरम् । सुग्रीवं सविधे गत्वा उभावपि बबन्यतुः ॥४०॥
पुच्छे वायुसुतस्यायं गृहीत्वा तु कुशानुजः । भ्रातरं प्रत्युवाचेदं नेष्यामि स्वकमन्दिरम् ॥४१॥
आवयोर्जननीप्रीत्यै गृहीत्वा पुच्छकेत्वहम् । क्रीडार्थमृषिपुत्राणां कौतुकार्थं ममैव च ॥४२॥
एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यमुवाच च कुशो लवम् ।
अहमेनं ग्रहीष्यामि वानरं बलिनं दृढम् ॥४३॥
इत्येवं भाषमाणौ तो बद्ध्वा तो बलिनां वरौ ।
पुच्छयोर्बलिनौ धृत्वा जग्मतुः स्वाश्रमम्प्रति ॥४४॥
स्वाश्रमाय प्रगच्छन्तौ वीक्ष्य तौ कपिसत्तमौ ।
कम्पमानौ जगदतुरन्योन्यं भीतया गिरा ॥४५॥
हनूमान्कपिराजानं प्रत्युवाच भयार्द्रधीः । एतौ रामसुतावस्मान्नेष्यतः स्वाश्रमम्प्रति ॥४६॥
मयापूर्वं कृतं कर्म जानकीम्प्रति गच्छता । तत्र मे जानकीदेवी संमुखाऽभून्मनोहरा ॥४७॥
सा मां द्रक्ष्यति वैदेही बद्धं पाशेन वैरिणा ।
तदा हसिष्यति वरा त्रपा मेऽत्र भविष्यति ॥४८॥
मया किमत्र कर्तव्यं प्राणत्यागो भविष्यति । महद्दुःखं चापतितं स रामः किं करिष्यति ॥४९॥
सुग्रवीस्तद्वचःश्रुत्वा ममाप्येवं महाकपे ! । नेष्यते यदि मामेवं निधनं तु भविष्यति॥५०॥

शत्रुघ्न के पास गये । उन दोनों ने राजा के सुवर्ण जटित मौलमणि को ले लिया ॥३८॥ लव ने पुष्कल का मुकुट ले लिया और उनके अनन्त मूल्य वाले दोनों अङ्गदों (विजाइठ) को ले लिया ॥३९॥ शस्त्र समूह को लेकर हनुमानजी तथा सुग्रवीजी के सन्निकट जाकर उन दोनों की पूंछ को वे बाँध दिए ॥४०॥ उनकी पूँछ पकड़कर लव ने कहा इन दोनों को अपने घर ले चलूँगा ॥४१॥ हमदोनों की माता की प्रसन्नता के लिए इन दोनों की पूंछ पकड़कर और ऋषि पुत्रों और मेरी क्रीड़ा इनसे होगी ॥४२॥ इस बात को सुनकर कुश ने लव से कहा— इस बलवान् वानर को मैं पकडूंगा ॥४३॥ इस तरह दोनों बलवान उन दोनों श्रेष्ठ बलवानों की पूंछ पकड़कर अपने घर गये ॥४४॥ अपने घर जाते हुए उन दोनों को देखकर वे दोनों श्रेष्ठ वानर काँप रहे थे । वे भयभीत होकर कहे ॥४५॥ भयभीत होकर हनुमानजी ने सुग्रीवजी से कहा ये दोनों श्रीरामजी के पुत्र हैं और ये अपने आश्रम में हमदोनों को ले जायेंगे ॥४६॥ मैं जानकीजी के लिए पहले मनोहर कर्म किया था, उस समय मनोहरा जानकी देवी मेरे सम्मुख हुयीं ॥४७॥ वही जानकी देवी वैरी के द्वारा पाश में बँधे मुझे देखेंगी, वे मुझको देखकर हँसेगी और मैं लज्जित होऊँगा ॥४८॥ मुझे क्या करना चाहिए मेरे तो प्राण निकल जायेंगे । मेरे ऊपर महान् दुःख आ गया । वे श्रीरामजी क्या करेंगे?॥४९॥ हनुमानजी की बातें सुनकर सुग्रीव ने कहा हे कपे ! मेरी भी यही हालत है । यदि ये इसी तरह ले जायेंगे

एवं कथयतोरेव ह्यन्योन्यं भयभीतयोः । कुशोलवश्च भवनं मातुः प्रापतुरोजसा ॥५१॥
तावायातौ समीक्ष्यैव जहर्ष जननी तयोः । अन्योन्यं परमप्रीत्या परिरेभे निजौ सुतौ ॥५२॥
ताभ्यां पुच्छगृहीतौ तौ वानरौ वीक्ष्य जानकी ।
हनूमन्तं च सुग्रीवं सर्ववीरं कपीश्वरम् ॥५३॥
जहास पाशबद्धौ तौ वीक्षमाणा वराङ्गना । उवाच च विमोक्षार्थं वदन्ती वचनं परम् ॥५४॥
पुत्रौ ! प्रमुञ्चतं कीशौ महावीरौ महाबलौ । द्रक्ष्यतो मां यदि स्फीतौ प्राणत्यागं करिष्यतः॥५५॥
अयं वै हनुमान्वीरो यो ददाह दनोः पुरीम्। अयमप्यृक्षराजो हि सर्ववानरभूमिपः ॥५६॥
किमर्थं विधृतौ कुत्र किंवा कृतमनादरात् ।
पुच्छे युवाभ्यां विधृतौ स महान्विस्मयोऽस्ति मे ॥५७॥
इति मातुर्वचःश्लक्ष्णं श्रुत्वा तां पुत्रकौ तदा ।
ऊचतुर्विनयश्रेष्ठौ महाबलसमान्वितौ ॥५८॥
मातःकश्चन भूपालो रामो दाशरथिर्बली । तेन मुक्तो हयःस्वर्णभालपत्रःसुशोभितः ॥५९॥
तत्रैवं लिखितं मातरेकवीरा प्रसूर्मम । ये क्षत्त्रियास्ते गृह्णन्तु नोचेत्पादतलार्चकाः ॥६०॥
तदा मया विचारो वै कृतः स्वान्ते पतिव्रते ! ।
भवती क्षत्त्रिया किं न वीरसूः किं न वा भवेत् ॥६१॥
धाष्टर्यं तद्वीक्ष्य भूपस्य गृहीतोऽश्वो मया बलात् ।
जितं कुशेन वीरेण सैन्यं तत्पातितं रणे ॥६२॥
मुकुटोऽयं भूमिपतेर्जानीहि पतिदेवते ! । अयमप्यन्यवीरस्य पुष्कलस्य महात्मनः ॥६३॥

तो मेरी मृत्यु हो जायेगी ॥५०॥ भयभीत वे दोनों इसी तरह बातें कर रहे थे उसी समय कुश और लव अपनी माता के घर आ गये ॥५१॥ उन दोनों को घर आये देखकर उनकी माता प्रसन्न हो गयीं । उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नता से अपने पुत्रों को गले लगाया ॥५२॥ उन दोनों के द्वारा पूंछ पकड़े हुए दो वानरों हनुमान और सुग्रीव को देखकर तथा उन दोनों को पाश में वँधे देखकर जानकीजी ने श्रेष्ठ वचन बोलते हुए उन दोनों को छोड़ देने के लिए कहा ॥५३-५४॥ बच्चों ! महावीर और महाबलवान् इन दोनों वानरों को छोड़ दो । इस तरह से मेरे द्वारा देखे जाने पर ये अपना प्राण त्याग देंगे ॥५५॥ ये वीर हनुमान हैं इन्होंने ही राक्षस रावण की नगरी को जला दिया था । ये वानरों के स्वामी सुग्रीव हैं ॥५६॥ इन दोनों को तुमलोग क्यों पकड़े हो और क्यों अनादर किए ? तुमलोगों ने इन दोनों की पूंछ को पकड़ा है इसके लिए मुझे बहुत आश्चर्य है ॥५७॥ इस तरह से अपनी माता के मधुर वचन को सुनकर उनके पुत्रों ने कहा अत्यन्त बलवान् होकर भी वे दोनों श्रेष्ठ विनीत थे ॥५८॥ माँ कोई बलवान् राजा दशरथि राम हैं, उन्होंने सुवर्ण निर्मित भालपत्र से सुशोभित अश्व छोड़ा है ॥५९॥ माँ उसमें लिखा है कि मेरी माँ ही वीर प्रसवा है । इसको समर्थ क्षत्त्रिय ही पकड़े अन्यथा इसके पैरों की पूजा करें ॥६०॥ हे पतिव्रते ! मैंने मन में विचार किया कि आप क्षत्त्रिया तथा वीरों की माता नहीं हैं क्या ?॥६१॥ उस राजा की धृष्टता को देखकर मैंने बलपूर्वक अश्व को पकड़ लिया । वीर कुश ने उनकी सेना को गिरा कर विजय प्राप्त किया है ॥६२॥ हे पतिदेवते ! यह उसी राजा का मुकुट है और यह दूसरे वीर महात्मा पुष्कल का मुकुट है ॥६३॥ यह

जानीहि मुकुटं त्वन्यं मणिमुक्ताविराजितम्। अश्वोऽयं मे मनोहारी कामयानो हि भूपतेः ॥६४॥
आरोहणाय मद्भ्रातुर्जानीहि बलिनोवरे। इमौ कीशौ मयारन्तुमानीतौ बलिनांवरौ ॥६५॥
कौतुकार्थं तवैवैतौ सङ्ग्रामे युद्धकारकौ। इति वाक्यं समाकर्ण्य जानकी पतिदेवता ॥६६॥
जगाद पुत्रौ तौ वीरौ वीरवानरमुक्तये ॥६७॥

सीतोवाच

युवाभ्यामनयःसृष्टो हतो रामहयो महान्। अनेके पातिता वीरा इमौ बद्धौ कपीश्वरौ ॥६८॥
पितुस्तव हयो वीरौ यागार्थं मोचितोऽमुना। तस्यापि हतवन्तौ किं वाजिनं मखसत्तमे ॥६९॥
मुञ्चतं प्लवगावेतौ मुञ्चतं वाजिनांवरम्। क्षाम्यतां भूपतेर्भ्राता शत्रुघ्नः परकोपनः ॥७०॥
जनन्यास्तद्वचः श्रुत्वा ऊचतुस्तां बलान्वितौ। क्षात्रधर्मेण तं भूपं जितवन्तौ बलान्वितम् ॥७१॥
नास्माकमनयो भावि क्षात्रधर्मेण युध्यताम्। वाल्मीकिना पुरा प्रोक्तमस्माकं पठतांपुरः ॥७२॥
दुष्यन्तेन समंयुद्धं भरतेन कृतं पुरा। कण्वस्याश्रमके वाहं धृत्वा यागक्रियोचितम्॥७३॥

तस्मात्सुतः स्वपित्राऽपि युद्धेद् भ्रात्राऽपि चानुजः।
गुरुणा शिष्य एवापि तस्मान्नो पापसम्भवः ॥७४॥
त्वदाज्ञातोऽधुना चावां दास्यावो हयमुत्तमम्।
मोक्ष्यावः कीशावेतौ हि करिष्यावो वचस्तव ॥७५॥

इत्युक्त्वा मातरं वीरौ गतौ रणे कपीश्वरौ। अमुञ्चतां हयं चापि हयमेधक्रियोचितम्॥७६॥

सीतादेवी स्वपुत्राभ्यां श्रुत्वा सैन्यं निपातितम्।
श्रीरामं मनसा ध्यात्वा भानुमैक्षत साक्षिणम् ॥७७॥

मुकुट मणियों एवं मुक्ताओं से सुशोभित है। राजा का यह अश्व मनोहर काम के समान वेगवान् है ॥६४॥ यह मेरे भाई कुश के चढ़ने के काम आयेगा। इन दोनों बलवान् वानरों को मैंने खेलने के लिए लाया है ॥६५॥ ये तुम्हारे मनोरञ्जन का भी काम करेंगे और ये युद्ध भी करते हैं। इस बात को सुनकर पतिदेवता जानकी ने ॥६६॥ अपने पुत्रों को उन वीर वानरों को छोड़ देने को कहा ॥६७॥ **सीताजी ने कहा—** श्रीराम के अश्व का हरण करके तुमलोगों ने अन्याय किया है। तुमलोगों ने अनेक वीरों को मारा है और इन दोनों कपीश्वरों को बाँधा है ॥६८॥ वीरों यह तुम्हारे पिता का अश्व है। उन्होंने इसे याग के लिए छोड़ा है। उनके भी श्रेष्ठ याग के अश्व का तुमलोगो ने हरण किया ॥६९॥ इन दोनों वानरो को तथा श्रेष्ठ अश्व को छोड़ दो महाराज के भाई तथा परम क्रोधी शत्रुघ्न से क्षमा माँगो ॥७०॥ माता की बात को सुनकर उन दोनों बलवानों ने कहा। धर्मतः उन राजा को जानकर जिन्हें उन दोनों ने जीत लिया था॥७१॥ क्षात्र धर्म के अनुसार युद्ध करने वाले हमलोगों को पाप नहीं लगेगा। हमलोगों को पढ़ते समय महर्षि वाल्मीकि ने कहा था ॥७२॥ प्राचीन काल में महर्षि कण्व के आश्रम में दुष्यन्त के यज्ञ के अश्व को पकड़कर भरत ने उनके साथ युद्ध किया था ॥७३॥ अतएव पुत्र को अपने पिता से तथा अनुज को अपने बड़े भाई से युद्ध करना चाहिए। इसी तरह शिष्य को भी अपने गुरु से युद्ध करना चाहिए, अतएव हमलोगों को पाप नहीं लगेगा ॥७४॥ तुम्हारी आज्ञा से हमलोग अश्व को दे रहे हैं। तुम्हारी आज्ञा का पालन करते हुए इन दोनों वानरों को छोड़ रहे हैं ॥७५॥ इस तरह से कहकर दोनों वानर रण में चले गये

यद्यहं मनसावाचा कर्मणा रघुनायकम् । भजामि नान्यं मनसा तर्हि जीवेदयं नृपः ॥७८॥
सैन्यं चापि महत्सर्वं यन्नाशितमिदं बलात् । पुत्राभ्यां तत्तु जीवेत मत्सत्याज्जगताम्पते !॥७९॥
इति यावद्वचो ब्रूते जानकी पतिदेवता। तावद्बलं च तत्सर्वं जीवितं रणमूर्द्धनि॥८०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे सैन्यजीवनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

पैंसठवाँ अध्याय

शेष उवाच

क्षणान्मूर्च्छां जहौ वीरः शत्रुघ्नः समराङ्गणे ।
अन्येऽपि वीरा बलिनो मूर्च्छां प्राप्ताःसुजीविताः ॥१॥
शत्रुघ्नो वाजिनांश्रेष्ठं ददर्श पुरतःस्थितम्। आत्मानं च शिरस्त्रणरहितं सैन्यजीवितम् ॥२॥
वीक्ष्य चित्रमिदं स्वान्ते चकार च जगाद ह ।
सुमतिं मन्त्रिणां श्रेष्ठं मूर्च्छाविरहितं तदा ॥३॥
कृपां कृत्वा हयं प्रादाद् बालो यज्ञस्य पूर्तये ।
गच्छाम रामं तरसा हयागमनकाङ्क्षिणम् ॥४॥

और अश्वमेध याग के लिए उचित अश्व को वे छोड़ दिए ॥७६॥ सीता देवी ने सुना कि दोनों ने सारी सेना को गिरा दिया है, उन्होंने मन से श्रीरामचन्द्रजी का ध्यान करके सूर्यदेव को साक्षी बनाया ॥७७॥ उन्होंने कहा यदि मैं मन, वाणी और कर्म से श्रीरामचन्द्रजी का ही भजन करती हूँ तो ये राजा जीवित हो जायँ ॥७८॥ मेरे पुत्रों द्वारा बल पूर्वक जो सेना विनष्ट कर दी गयी है हे जगताम्पते ! मेरे सत्य से वह जीवित हो जाय ॥७९॥ इस तरह से जानकीजी ने जब कहा उसी समय संग्रामस्थल में सारी सेना जीवित हो गयी ॥८०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवे पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में सैन्य जीवन वर्णन नामक चौसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६४॥

अश्व के साथ शत्रुघ्नजी आदि का अयोध्या आना

शेषजी ने कहा— क्षणभर में वीर शत्रुघ्न ने समराङ्गण में मूर्छा का त्याग कर दिया दूसरे बलवान् वीर जो मूर्छित हो गये थे वे भी जीवित हो गये ॥१॥ शत्रुघ्नजी ने अपने सामने उस श्रेष्ठ अश्व को देखा और अपने को शिरस्त्राण से रहित तथा जीवित हुयी सेना को देखा ॥२॥ यह देखकर वे आश्चर्य किए और उस समय मूर्छा से रहित मन्त्री सुमति से कहे ॥३॥ बालक ने कृपा करके यज्ञ की पूर्ति के लिए अश्व

इत्युक्त्वा स रथे स्थित्वा हयमादाय वेगतः ।
ययौ तदाश्रमाद्दूरं भेरीशङ्खविवर्जितः ॥५॥
तत्पृष्ठतो महासैन्यं चतुरङ्गसमन्वितम् । चचाल कुर्वन्सम्भग्नं स्वभारेण फणीश्वरम् ॥६॥
जवेन जाह्नवीं तीर्त्वा कल्लोलजलशालिनीम् ।
जगाम विषये स्वीये स्वकीयजनशोभिते ॥७॥
पुष्कलेनयुतो राजा सुरथेन समन्वितः। रथे मणिमये तिष्ठन्महाकोदण्डधारकः ॥८॥
हयं तं पुरतःकृत्वा रत्नमालाविभूषितम्। श्वेतातपत्रं तस्यैव मूर्ध्नि चामरभूषितम् ॥९॥
अनेकरथसाहस्रैःपरीतो बलिभिर्नृपैः । उद्यत्कोदण्डललितैर्वीरनादविभूषितैः ॥१०॥
क्रमेण नगरीं प्राप सूर्यवंश विभूषिताम्। अनेकैःकेतुभिःश्रेष्ठैर्भूषितां दुर्गराजिताम् ॥११॥
रामःश्रुत्वा हयं प्राप्तं शत्रुघ्नेन सहामुना। पुष्कलेन च वीरेण ययौ हर्षमनेकधा ॥१२॥
कटकं निर्दिदेशासौ चतुरङ्गं महाबलम् । लक्ष्मणं प्रेषयामास भ्रातरं बलिनांवरम् ॥१३॥
लक्ष्मणः सैन्यसहितो गत्वा भ्रातरमागतम् । परिरेभे मुदाक्रान्तः क्षत शोभितगात्रकम्॥१४॥
सर्वत्र कुशलं पृष्ठो वार्ता चात्र चकार सः ।
परमं हर्षमापन्नः शत्रुघ्नः सङ्गतो मुदा ॥१५॥
सौमित्रिः स्वरथे स्थित्वा भ्रात्रा सह महामनाः ।
सैन्येन महता वीरो ययौ स्वनगरीं प्रति ॥१६॥
सरयूपुण्यसलिला पवित्रितजगत्त्रया। रामपादरजःपूता शरच्चन्द्रसमप्रभा ॥१७॥

को दे दिया है । हमलोग शीघ्र अश्व के आगमन को चाहने वाले श्रीरामचन्द्रजी के पास चलें ॥४॥ इस तरह से कहकर और रथ पर बैठकर वे भेरी, नाद और शङ्ख ध्वनि किए बिना ही आश्रम से दूर चले गये॥५॥ उनके पीछे चतुरङ्गिणी सेना शेषजी के शिर को झुकाती हुयी चल पड़ी ॥६॥ लहराती हुयी जल वाली गङ्गा को शीघ्रता से पार करके अपनी प्रजा से सुशोभित अपने राज्य में वे चले गये ॥७॥ पुष्कल तथा राजा सुरथ के साथ महान धनुष धारण किए हुए और मणिमय रथ पर बैठे हुए शत्रुघ्नजी ॥८॥ रत्नों की माला से सुशोभित उस अश्व को आगे किये थे उसके शिर पर चामर और श्वेत आतपत्र लगा था ॥९॥ उनके साथ बलवान् राजाओं के अनेक हजार रथ थे । वे सभी धनुष धारण किए थे तथा वीरनाद कर रहे थे ॥१०॥ वे क्रमशः सूर्यवंश से सुशोभित नगरी अयोध्या में पहुँच गये । वह नगरी अनेक पताकाओं और दुर्गों से सुशोभित थी ॥११॥ श्रीरामजी ने जब सुना कि शत्रुघ्न तथा पुष्कल के साथ अश्व आ गया है तो वे अत्यन्त हर्षित हुए ॥१२॥ उन्होंने चतुरङ्गिणी सेना के साथ महाबलवान् अपने भाई लक्ष्मणजी को आदेश दिया कि वे शत्रुघ्नजी से मिलने के लिए जायँ ॥१३॥ लक्ष्मणजी सेना के साथ आये हुए अपने भाई के पास गये और घावों से सुशोभित शरीर वाले अपने भाई का आलिङ्गन किए ॥१४॥ हर प्रकार का कुशल पूछकर उन्होंने वातें की और शत्रुघ्नजी से मिलकर प्रसन्न हुए ॥१५॥ लक्ष्मणजी अपने रथ पर बैठकर अपने भाई के साथ विशाल सेना के साथ अपनी नगरी में गये ॥१६॥ तीनों लोकों को पवित्र करने वाली श्रीरामचन्द्रजी के चरणों की धूलि से पवित्र बनी हुयी तथा शरत् कालीन चन्द्रमा के समान कान्ति वाली हंसों तथा कारण्डव पक्षियों से भरी हुयी, चक्रवाक पक्षियों से सुशोभित, अद्भुत पङ्खों वाले पक्षियों

हंसकारण्डवाकीर्णा चक्रवाकोपशोभिता। विचित्रतरत्रवर्णैश्च पक्षिभिर्नादिता भृशम् ॥१८॥
मण्डपास्तत्र बहुशो रामचन्द्रेण कारिताः। ब्राह्मणानां वेदविदां पृथक्पाठनिनादकाः ॥१९॥
क्षत्रियास्तत्र बहवो धनुष्पाणिसुशोभिताः। ज्याटङ्कारेण बहुना नादयन्तो महीतलम्॥२०॥
भुञ्जते ब्राह्मणा यत्र विचित्रान्नैर्मनोहरैः। परस्परं प्रपश्यन्तो वार्ता चक्रुर्मनोहराम् ॥२१॥
पयसाऽन्नानि शुभ्राणि चन्द्रकान्तिसमानि च ।
क्षीराज्यबहुयुक्तानि शर्करामिश्रितानि च ॥२२॥
अपूपास्तत्र बहुलाश्चन्द्रबिम्बसमाःश्रिया। कर्पूरादि सुगन्धेन वासिताःसुमनोहराः॥२३॥
फेनिका घटकाःस्निग्धाः शतच्छिद्रा विरन्ध्रकाः ।
शष्कुल्यो मण्डकामृष्टा मधुरान्नसमन्विताः ॥२४॥
भक्तं कुमुदसङ्काशं मुद्गदालि विमिश्रितम्। सुगन्धेन समायुक्तमत्यन्तं प्रीतिदायकम् ॥२५॥
कपूरेणान्वितो दध्ना यथेष्टं सिक्तओदनः। स्वादुपाककरैःसृष्टःपात्रेमुक्तःप्रवेषकैः ॥२६॥
तत्र केचिद् द्विजाःपात्रे निक्षिप्तं वीक्ष्य पायसम् ।
परस्परं ते प्रत्यूचुःकिमिदं दृश्यतेऽद्भुतम् ॥२७॥
किं चन्द्रबिम्बं नभसःपतितं तमसोभयात्। अमृतं तु भवत्यत्र मृत्युनाशकमद्भुतम् ॥२८॥
तच्छ्रुत्वा रोषताम्राक्षः प्रोवाचान्यो द्विजोत्तमः ।
न भवत्येव चन्द्रास्यविम्बं त्वमृतविप्लुतम् ॥२९॥
एकमिन्दोर्वपुस्त्वेतद्दृश्यते सदृशं कथम्। ब्राह्मणानां सहस्रस्य पात्रे पात्रे पृथक्पृथक् ॥३०॥

से निनादित, पवित्र सलिला सरयू नदी थी ॥१७-१८॥ श्रीरामचन्द्रजी ने वहाँ पर बहुत से मण्डपों को बनवा दिया था। वेदज्ञ ब्राह्मणों एवं पाठ करने वालों के मण्डप अलग-अलग थे ॥१९॥ वहाँ पर हाथ में धनुष धारण किए हुए बहुत से क्षत्रिय बार-बार ज्याघोष के द्वारा पृथिवी को निनादित कर रहे थे ॥२०॥ वहीं पर विचित्र तथा मनोहर अन्नों से ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था। वे परस्पर में एक दूसरे को देखकर मनोहर बातें करते थे ॥२१॥ दूध से अन्न शुभ्र तथा चन्द्रमा की कान्ति के समान लगते थे। उनमें बहुत अधिक दूध और घी पड़ा रहता था तथा चीनी मिली होती थी ॥२२॥ वहाँ पर पूआ जो चन्द्रमा की कान्ति के समान चमकते थे तथा कपूर आदि की सुगन्धि से सुगन्धित किए गये रहते थे ॥२३॥ फेनिक, स्निग्ध, घटक, तथा सैकड़ों छिद्रों वाली रन्ध्रिका पूड़ी, मीठा छांछ तथा मीठे अन्न से युक्त भोजन होता था ॥२४॥ कुमुद पुष्प के समान श्वेत भात, जो मूंग की दाल से मिश्रित होता था वह सुगन्धित तथा प्रसन्न करने वाला होता था ॥२५॥ यथेष्ट मात्रा में कर्पूर की सुगन्धि से युक्त दही से सना हुआ भात स्वादिष्ट पाक बनाने वालों के द्वारा निर्मित और परोसने वालों के द्वारा परोसा जाता था ॥२६॥ वहाँ पर कुछ ब्राह्मण पात्र में डाले गये पायस को देखकर परस्पर में कहते थे यह कौन सी अद्भुत वस्तु है ॥२७॥ तमस् के भय से डरकर चन्द्रविम्ब गिर पड़ा है क्या ? यहाँ पर अद्भुत अमृत मृत्यु का नाश करने वाला है॥२८॥ उसको सुनकर क्रोध से आँखे लाल करके दूसरे ब्राह्मण श्रेष्ठ ने कहा न तो यह चन्द्रबिम्ब है और न अमृत ॥२९॥ चन्द्रमा का शरीर एक है वह प्रत्येक पात्र में कैसे हो सकता है ?॥३०॥ अतएव समझो

ततो जानीहि कुमुदं कर्पूरं वा भविष्यति। मा जानीहि मृगाङ्कस्य बिम्बं शुभ्रश्रियान्वितम्॥३१॥
तावदन्यो रुषा क्रान्तो धुन्वन्स्वं मस्तकं तथा ।
न जानन्ति द्विजा मूढाःस्वादुज्ञानविचक्षणाः ॥३२॥
इदं तु क्षौद्रकन्दस्य रसेन परिपाचितम्। जानीहि शतपत्रस्य पुष्पाणि मधुराणि च॥३३॥
एवं परस्परं विप्राःकन्दमूलफलाशिनः। तर्कयन्ति मुने प्रीता रसज्ञानेऽतिलोलुपाः ॥३४॥
तावदन्यो द्विज प्राहः क्षत्त्रियाणां वरं जनुः ।
भोक्ष्यन्ते तादृशं त्वन्नं महापुण्यैरूपस्कृतम् ॥३५॥
तदा तं प्राब्रवीद्विप्रो दत्तस्य फलमीदृशम्। ये ददत्यग्रजन्मभ्यःप्राप्नुवन्ति तदीप्सितम् ॥३६॥
यैरर्चितो नैव हरिर्नैवेद्यैर्विविधैर्मुहुः। तेषामेतादृशं भोज्यं न भवेदक्षिगोचरम् ॥३७॥
यैर्नरैरग्रजन्मानो भोजिता विविधैरसैः। भुञ्जते ते स्वादुरसं पापिनां चक्षुरुज्झितम् ॥३८॥
एवंविधै रसैर्मिष्टैर्भोजिता द्विजसत्तमाः। मण्डपे विपठन्तस्ते शब्दब्रह्मविचक्षणाः ॥३९॥
नृत्यन्त्येके हसन्त्येके नदन्त्येके प्रहर्षिताः। उत्सवो बहुरुद्भाति तत्र शत्रुघ्न आगमत् ॥४०॥
रामःशत्रुघ्नमायान्तं पुष्कलेन समन्वितम्। निरीक्ष्यमुदमुद्भूतां रक्षितुं नाशकत्तदा॥४१॥
यावदुत्तिष्ठते रामो भ्रातरं हयपालकम्। तावद्रामपदेलग्नःशत्रुघ्नो भ्रातृवत्सलः॥४२॥
पादयोपतितं वीक्ष्य भ्रातरं विनयान्वितम्। परिरेभे दृढं प्रीतःक्षतसंशोभिताङ्गकम् ॥४३॥
अश्रूणि बहुधा मुञ्चन्हर्षाच्छिरसि राघवः। अत्यन्तं परमां प्राप मुदं वचनदूरगाम् ॥४४॥

यह तो कुमुद है या कर्पूर है । शुभ्र ऐश्वर्य से युक्त इसे चन्द्रविम्ब मत जानो ॥३१॥ तब तक दूसरा ब्राह्मण क्रुद्ध होकर अपना शिर पीटते हुए जो स्वादिष्ट वस्तु के ज्ञान में चतुर था, मूर्ख, ब्राह्मण नहीं जानते हैं॥३२॥ क्षौद्र (मधुमखी के छत्ते) के रस में पकाये गये ये सबके सब मधुर कमल के पुष्प हैं ॥३३॥ इस तरह कन्द, मूल तथा फल खाने वाले, प्रसन्न होकर तथा रस ज्ञान के विषय में अत्यन्त लोलुप ब्राह्मण तर्क करते थे ॥३४॥ तब तक दूसरे ब्राह्मण ने कहा कि कोई श्रेष्ठ क्षत्रिय ही महापुण्य से प्राप्त होने वाले अन्न का भोजन करते हैं ॥३५॥ उस समय उसको ब्राह्मण ने कहा कि ऐसा फल दान का ही होता है । जो ब्राह्मणों को दान देता है वही अभिप्रेत वस्तुओं को प्राप्त करता है ॥३६॥ जो श्रीहरि को अनेक प्रकार का नैवेद्य नहीं निवेदित करता है उसको इस प्रकार का भोजन देखने को भी नहीं मिलता है ॥३७॥ जिन लोगों ने अनेक प्रकार के रसों वाला भोजन ब्राह्मण को कराया है वे स्वादिष्ट रस वाला भोजन करते हैं। वह पापियों को देखने को भी नहीं मिलता है ॥३८॥ इस तरह से मधुर पदार्थों का भोजन करने वाले वेदज्ञान निपुण ब्राह्मण मण्डप में पाठ करत थे ॥३९॥ हर्षित होकर कुछ लोग नाचने लगते थे, कुछ हँसते थे, कुछ बोलते थे । वहाँ पर शत्रुघ्नजी के आने से बहुत अधिक उत्सव हो रहा था ॥४०॥ पुष्कल के साथ आये हुए शत्रुघ्नजी को देखकर श्रीरामजी अपने आनन्द को छिपा नहीं सके ॥४१॥ जब तक शत्रुघ्नजी को देखकर रामजी खड़ा होना चाहते थे तब तक भातृवत्सल शत्रुघ्नजी श्रीरामजी के चरणों पर गिर पड़े ॥४२॥ विनीत अपने अनुज को अपने पैरों पर गिरे हुए देखकर श्रीरामजी ने घावों से सुशोभित अङ्गों वाले शत्रुघ्नजी का आलिङ्गन किए ॥४३॥ उनके शिर पर अपने हर्ष के आँसू को बहुत बहाये अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव किये उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥४४॥ अपने पैरों पर झुके हुए

पुष्कलं स्वीयपदयोर्नम्रं विनयविह्वलः । सुदृढं भुजयोर्मध्ये विनीयापीडयद् भृशम् ॥४५॥
हनूमन्तं तथा वीरं सुग्रीवं चाङ्गदं तथा । लक्ष्मीनिधिं जनकजं प्रतापाग्र्यं रिपुञ्जयम् ॥४६॥
सुबाहुं सुमदं वीरं विमलं नीलरत्नकम् । सत्यवन्तं वीरमणिं सुरथं रामसेवकम् ॥४७॥
अन्यानपि महाभागान्रघुनाथःस्वयं तदा । परिरेभे दृढं स्निग्धान्पादयोः प्रणतान्नृपान् ॥४८॥
सुमतिःश्रीरघुपतिं भक्तानुग्रहकारकम् । परिरभ्य दृढं प्रीतःसंमुखेऽतिष्ठदुन्नतः ॥४९॥

तदा रामो निजामात्यं वीक्ष्य सान्निध्यमागतम् ।
उवाच परमप्रीत्या मन्त्रिणं वदतां वरः ॥५०॥

श्रीराम उवाच

सुमते मन्त्रिणां श्रेष्ठ शंस मे वाग्मिनां वर ! ।
क एते भूमिपाःसर्वे कथमत्र समागताः ॥५१॥
कुत्र कुत्र हयःप्राप्तःकेन केन नियन्त्रितः। कथं वै मोचितो भ्रात्रा महाबलसुशालिना ॥५२॥

शेष उवाच

इत्युक्तो मन्त्रिणां श्रेष्ठः सुमतिः प्राह राघवम् ।
प्रहसन्मेघगम्भीरनादेन च सुबुद्धिमान् ॥५३॥

सुमतिरुवाच

सर्वज्ञस्य पुरस्तेऽद्य मया कथमुदीर्यते । पृच्छसि त्वं लोकरीत्या सर्वं जानासि सर्वदृक् ॥५४॥
तथापि तवनिर्देशं शिरस्याधाय सर्वदा । ब्रवीमि तच्छृणुष्वाद्य सर्वराज शिरोमणे॥५५॥
त्वत्प्रसादादहो स्वामिन्सर्वत्र जगतीतले। परिबभ्राम ते वाहो भालपत्रसुशोभितः ॥५६॥
न कश्चित्तं निजग्राह स्वनाम बलदर्पितः। स्वं स्वं राज्यं समर्प्याथ प्रणेमुस्ते पदाम्बुजम्॥५७॥

तथा विनय से विह्वल वने हुए पुष्कल को रामजी ने अपने भुजाओं में भरकर गाढालिङ्गन किए ॥४५॥ उस समय श्रीरामजी ने वीर हनुमानजी, सुग्रीवजी, अङ्गद, जनकजी के पुत्र लक्ष्मीनिधि, प्रतापाग्र्य, रिपुञ्जय॥४६॥ सुवाहु, सुमद, वीरविमल, नीलरत्न, सत्यवान्, वीरमणि तथा राम सेवक सुरथ का तथा दूसरे वीरों का स्वयं गाढालिङ्गन किए एवं सभी राजा जो श्रीरामजी को प्रणाम करने वाले थे उनको उन्होंने गले लगाया ॥४७-४८॥ भक्तों पर कृपा करने वाले श्रीरामजी का आलिङ्गन करके सुमति प्रेम पूर्वक उनके सामने खड़े हो गये ॥४९॥ तव श्रीरामजी सन्निकट में आये हुए अपने मन्त्री को देखकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहे ॥५०॥ **श्रीरामजी ने कहा**— हे मन्त्रियों में श्रेष्ठ तथा बोलने वालों में श्रेष्ठ सुमति ! ये सभी राजा कहाँ के है ? और यहाँ कैसे आये हैं ?॥५१॥ अश्व कहाँ गया और उसको किसने-किसने रोका और मेरे महा वलवान् भाई ने उसे कैसे छुड़ाया ॥५२॥ **शेषजी ने कहा**— इस तरह से कहे जाने पर मन्त्रियों में श्रेष्ठ वुद्धिमान सुमति ने श्रीरामजी से हँसकर मेघ के समान गम्भीर वाणी में कहा ॥५३॥ **सुमति ने कहा**— आप सर्वज्ञ हैं, आपके सामने मैं क्या कहूँ ? आप सब जानते हैं, केवल लोकरीति से पूछ रहे हैं ॥५४॥ फिर भी आपके आदेश को शिरोधार्य करके मैं बोलता हूँ । हे सर्वराज शिरोमणि ! उसे आप सुनें ॥५५॥ आपकी कृपा से यह अश्व सम्पूर्ण पृथिवी पर घूमते हुए भाल पत्र से सुशोभित था ॥५६॥ कोई भी अपने

को वा रावणदैत्येन्द्र निहन्तुर्वाजिसत्तमम्। गृह्णाति विजयाकाङ्क्षी जरामरणवर्जितः ॥५८॥
अहिच्छत्रां गतस्तावत्तव वाजी मनोरमः। तद्राजा सुमदःश्रुत्वा हयं प्राप्तं तव प्रभो ॥५९॥
सपुत्रःप्रबलःसर्वसैन्येन बलिनावृतः। सर्वं समर्पयामास राज्यं निहतकण्टकम् ॥६०॥
यो राजा जगतांनेत्रीं मातरं जगदम्बिकाम्। प्रसाद्य चिरमायुष्यं लेभे राज्यमकण्टकम् ॥६१॥
स एष त्वां प्रणमति सुमदःप्रभुसेवितम्। तं गृहाण कृपादृष्ट्या चिराद्दर्शनकाङ्क्षकम् ॥६२॥
ततःसुबाहुःभूपस्य नगरे बलपूरिते। दमनस्तस्य वै पुत्रःप्रजग्राह हयोत्तमम् ॥६३॥
तेन साकं महद्युद्धं बभूव दमनेन च। पुष्कलो जयमापेदे संमूछर्य सुभुजात्मजम् ॥६४॥
ततःसुबाहुःसङ्क्रुद्धो रणे पवनजं बलात्। ययुधे तव पादाब्जसेवकं बलिनां वरम् ॥६५॥
तस्य पादाहतो ज्ञानं प्राप्य शापतिरस्कृतम्। तुभ्यं समर्प्य सकलं वाजिनः पालकोऽभवत् ॥६६॥
एष त्वां सुभुजोराजा प्रणमत्युन्नताङ्गकः। कृपादृष्ट्याभिषिञ्च त्वं सुबाहुं नयकोविदम् ॥६७॥
ततो मुक्तो हयो रेवाह्रदे स निममज्ज ह। तत्र प्राप्तं मोहनास्त्रं शत्रुघ्नेन बलीयसा ॥६८॥
ततो देवपुरे प्रागाच्छिववासविभूषिते। तत्रत्यं तु विजानासि यतस्त्वं तत्र चागतः ॥६९॥
विद्युन्माली हतोदैत्यःसत्यवान्सङ्गतस्ततः। सुरथेन समंयुद्धं जानासि त्वं महामते ॥७०॥
ततःकुण्डलकान्मुक्तो हयो बभ्राम सर्वतः। न कश्चित्तं निजग्राह स्ववीर्यबलदर्पितः ॥७१॥
वाल्मीकेराश्रमे रम्ये हयःप्राप्तो मनोरमः। तत्र यत्कुतुकं जातं तच्छृणुष्व नरोत्तम ! ॥७२॥

नाम और बल से दृप्त राजा ने उसे नहीं पकड़ा। वे अपना राज्य समर्पित करके इसके चरणों में प्रणाम किए ॥५७॥ रावण नामक दैत्य श्रेष्ठ को मारने वाले आपके अश्व को कौन जरा और मृत्यु से रहित राजा विजय प्राप्त की आकांक्षा से पकड़ सकता है ?॥५८॥ आपका अश्व अहिछत्रा में गया आपके अश्व को आये हुए वहाँ के राजा सुमद ॥५९॥ वह अपने पुत्रों तथा सेना के साथ अपने निःसपत्न राज्य को समर्पित कर दिया ॥६०॥ उस राजा ने जगन्माता जगदम्बिका की आराधना करके अकण्टक राज्य को प्राप्त किया है ॥६१॥ वे ही सुमद आपको प्रणाम कर रहे हैं, उनको दीर्घकाल से आपके दर्शन की लालसा बनी हुयी है उन्हें आप अनुगृहीत करें ॥६२॥ उसके बाद सेना से परिपूर्ण सुबाहु के नगर में अश्व गया, उनके पुत्र दमन ने इस उत्तम अश्व को पकड़ लिया ॥६३॥ उस दमन के साथ बहुत वड़ा युद्ध हुआ, उस राजा के पुत्र को मूर्छित करके पुष्कल ने विजय प्राप्त किया उसके बाद सुबाहु क्रुद्ध होकर आपके सेवक हनुमानजी जो बलवानों में श्रेष्ठ हैं, के साथ युद्ध किया ॥६४-६५॥ हनुमानजी के पैर के प्रहार से राजा का ज्ञान जो शाप के कारण तिरोहित हो गया था वह उद्भूत हो गया। आपको अपना सवकुछ समर्पित करके सुबाहु आपके अश्व के रक्षक बन गये ॥६६॥ ये उन्नत अङ्गों वाले राजा सुबाहु आपको प्रणाम करते हैं, नीति के ज्ञाता सुबाहु को आप अपनी कृपा दृष्टि से अभिषिक्त करें ॥६७॥ वहाँ से छूटा हुआ अश्व रेवाह्रद में डूब गया वहाँ पर जाकर बलवान् शत्रुघ्नजी ने मोहनास्त्र को प्राप्त किया ॥६८॥ वहाँ से अश्व शिवजी के द्वारा अधिष्ठित देवपुर में गया, वहाँ की सारी बात आप जानते हीं है, क्योंकि वहाँ आप गये थे ॥६९॥ विधुन्माली नामक दैत्य मारा गया और वहीं पर सत्यवान की प्राप्ति हुयी। सुरथ के साथ जो युद्ध हुआ उसे आप जानते ही है ॥७०॥ उसके बाद कुण्डल पुर से मुक्त हुआ अश्व सर्वत्र गया, कोई भी अपने वल तथा पराक्रम से दृप्त राजा उसको नहीं पकड़ा ॥७१॥ वह सुन्दर अश्व महर्षि वाल्मीकि के सुन्दर आश्रम

तत्रार्भस्तव सारूप्यं बिभ्रत्षोडशवार्षिकः । जग्राह वीक्ष्यपत्राङ्कं वाजिनं बलवत्तमः ॥७३॥
तत्र कालजिता युद्धं महज्जातं नरोत्तम । निहतस्तेन वीरेण शितधारेण हेतिना॥७४॥
अनेके निहताःसङ्ख्ये पुष्कलाद्या महाबलाः ।
मूर्च्छितं चापि शत्रुघ्नं चक्रे वीरशिरोमणिः ॥७५॥
तदा राजा महद्दुखं विचार्य हृदि संयुगे। कोपेन मूर्च्छितं चक्रे वीरो हि बलिनांवरः॥७६॥
स यावन्मूर्च्छितो राज्ञा तावदन्यःसमागतः । तेनैतेन च सञ्जीव्य नाशितं कटकं तव॥७७॥
सर्वेषां मूर्च्छितानां तु शस्त्राण्याभरणानि च ।
गृहीत्वा वानरौ बद्धौ जग्मतुःस्वाश्रमं प्रति ॥७८॥
कृपां कृत्वा पुनस्तेन दत्तोऽश्वो यज्ञियो महान् ।
जीवनं प्रापितं सर्वं कटकं नष्टजीवितम् ॥७९॥
वयं गृहीत्वा तं वाहं प्राप्तास्तव समीपतः । एतदेव मया ज्ञातं तदुक्तं ते पुरोवचः ॥८०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे
सुमतिनिवेदनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

* * *

में आया । हे नरोत्तम ! वहाँ जो कौतुक हुआ उसे आप सुनें ॥७२॥ वहाँ पर सोलह वर्ष का बालक जिसका रूप आपके ही रूप के समान था, उसने पत्र और अश्व को देखकर उसे पकड़ लिया ॥७३॥ हे नरोत्तम ! वहाँ कालजित् के साथ घोर युद्ध हुआ । उस बालक ने तीक्ष्ण धार वाले शस्त्र से कालजित् को मार दिया ॥७४॥ वहाँ पर अनेक पुष्कल आदि वीर मारे गये । उस वीर शिरोमणि ने शत्रुघ्नजी को भी मूर्छित कर दिया ॥७५॥ उस समय शत्रुघ्नजी ने हृदय में विचार करके युद्ध में क्रोध करके उसको मूर्छित कर दिया ॥७६॥ जब तक राजा ने उसको मूर्छित किया तब तक दूसरा बालक आ गया । वे दोनों मिलकर पूरी सेना को मार दिए । सभी मूर्छितों के शस्त्र एवं आभरण को लेकर तथा सुग्रीव एवं हनुमानजी को बाँधकर वे अपने आश्रम में ले गये ॥७७-७८॥ उसके बाद उसने कृपा करके यज्ञीय अश्व को दे दिया और सारी सेना जो मर गयी थी जीवित हो गयी ॥७९॥ हमलोग आपके अश्व को लेकर आपके पास आये हैं ॥८०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में सुमति के द्वारा निवेदन नामक पैंसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६५॥

* * *

छियासठवाँ अध्याय

शेष उवाच

कथितौ वै सुमतिना वाल्मीकेराश्रमे शिशू ।
पुत्रौ स्वीयाविति ज्ञात्वा वाल्मीकिम्प्रति सङ्गगौ ।।१।।

श्रीराम उवाच

कौ शिशू मम सारूप्यधारकौ बलिनांवरौ। किमर्थं तिष्ठतस्तत्र धनुर्विद्याविशारदौ ।।२।।
आमात्य कथितौ श्रुत्वा विस्मयो मम जायते ।
यौ शत्रुघ्नं हनूमन्तं लीलयाङ्गं वबन्धतु: ।।३।।
तस्माच्छंस मुने सर्वं बालयोश्च विचेष्टितम्। यथा मे परमाप्रीतिर्भवत्येवमभीप्सिता ।।४।।
इति तत्कथितं श्रुत्वा राजराजस्य धीमतः। उवाच परमं वाक्यं स्पष्टाक्षर समन्वितम्।।५।।

वाल्मीकिरुवाच

तवान्तर्यामिणो नृणां कथं ज्ञानं च नो भवेत् ।
तथापि कथयाम्यत्र तव सन्तोषहेतवे ।।६।।
राजन्यौ बालकौ मह्यमाश्रमे बलिनांवरौ। त्वत्सारूप्यधरौ स्वाङ्ग मनोहरवपुर्धरौ।।७।।
त्वया यदा वने त्यक्ता जानकी वै निरागसी ।
अन्तर्वत्नी वने घोरे विलपन्ती मुहुर्मुहुः ।।८।।
कुकरीमिव दुःखार्ता वीक्ष्याहं तव वल्लभाम् ।
जनकस्य सुतां पुण्यामाश्रमे त्वानयं यदा ।।९।।

श्रीरामजी का वाल्मीकि महर्षि के साथ संवाद और सीताजी को वन से लाने के लिए लक्ष्मणजी का वन में जाना

शेषजी ने कहा— सुमति ने महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के बालकों का वर्णन किया, उन दोनों को अपना पुत्र जानकर श्रीरामजी महर्षि वाल्मीकि के पास गये ।।१।। **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** बलवानों में श्रेष्ठ तथा मेरे ही समान रूप वाले कौन दो बालक हैं ? धनुर्विद्या विशारद वे आपके यहाँ कैसे रहते हैं?।।२।। आमात्य की बात को सुनकर मुझको आश्चर्य हुआ है । जिन दोनों ने शत्रुघ्न तथा हनुमान को लीला पूर्वक बाँध दिया था ।।३।। अतएव हे मुने ! उन दोनों बालकों की चेष्टाओं को आप बतलायें । उसके कारण उन दोनों के विषय में मुझे अत्यन्त प्रेम हो रहा है ।।४।। राजा राम की बातों को सुनकर महर्षि वाल्मीकि ने स्पष्ट अक्षरों में कहा ।।५।। **वाल्मीकि महर्षि ने कहा—** आप अन्तर्यामी हैं आपको मनुष्यों का ज्ञान क्यों नहीं होगा ? फिर भी आपके सन्तान के विषय में मैं कह रहा हूँ ।।६।। मेरे आश्रम में क्षत्रियों में श्रेष्ठ तथा आपके ही समान अङ्ग तथा रूप से युक्त एवं महाबलवान् दो बालक रहते हैं ।।७।। आपने निष्पाप जानकी का वन में त्याग कर दिया । वह गर्भिणी घोर वन में बार-बार विलाप करती थीं।।८।। कुररी के समान विलाप करती हुयी आपकी पत्नी तथा जनक की पुत्री को मैं अपने आश्रम में लाया ।।९।। मुनि पुत्रों ने उसके लिए मनोहर पर्णकुटी बना दिया । उसी कुटी में दशों दिशाओं को

तस्याःपर्णकुटिरम्या रचिता मुनिपुत्रकैः। तस्यामसूतपुत्रौ द्वौ भासयन्तौ दिशो दश॥१०॥
तयोरकरवं नाम कुशो लव इति स्फुटम्। ववृधातेऽनिशं यत्र शुक्लपक्षे यथा शशी॥११॥
कालेनोपनयाद्यानि सर्वाणि कृतवानहम्। वेदान्साङ्गानहं सर्वान्ग्राहयामास भूपते !॥१२॥
सर्वाणि सरहस्यानि शृणुष्व मुखतो मम। आयुर्वेदं धनुर्विद्यां शस्त्रविद्यां तथैव च॥१३॥
विद्यां जालन्धरीं चाथ सङ्गीतकुशलौ कृतौ।
गङ्गाकूले गायमानौ लताकुञ्जवनेषु च॥१४॥
चञ्चलौ चलचित्तौ तौ सर्वविद्याविशारदौ। तदाऽहमतिसन्तोषं प्राप्तःपरमबालयोः॥१५॥
दत्त्वा सर्वाणि चास्त्राणि मस्तके निहितःकरः।
अतीवगानकुशलौ दृष्ट्वा लोको विसिष्मिये॥१६॥
षड्जमध्यमगान्धारस्वरभेदविशारदौ। तथाविधौ विलोक्याहं गापयामि मनोहरम्॥१७॥
भविष्यज्ञानयोगाच्च कृतं रामायणं शुभम्। मृदङ्गपणवाद्यादि यन्त्रवीणा विशारदौ॥१८॥
वने वने च गायन्तौ मृगपक्षि विमोहकौ। अद्भुतं गीतामाधुर्यं तव रामकुमारयोः॥१९॥
श्रोतुं तौ वरुणो बालावानिनाय विभावरीम्।
मनोहरवयोरूपौ गानविद्याब्धिपारगौ॥२०॥
कुमारौ जगदुस्तत्र लोकेशादेशतः कलम्। परमं मधुरं रम्यं पवित्रं चरितं तव॥२१॥
शुश्राव वरुणःसार्द्धं कुटुम्बेन च गायकैः। शृण्वन्नैवगतस्तृप्तिं मित्रेणवरुणःसह॥२२॥
सुधातोऽपि परं स्वादु चरितं रघुनन्दन। गानानन्दमहालोभहृतप्राणेन्द्रियक्रियः॥२३॥

प्रकाशित करती हुयी जानकी ने दो पुत्रों को जन्म दिया ॥१०॥ उन दोनों का एक शब्द में नाम कुश और लव है। वे दोनों शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगे ॥११॥ समयानुसार उन दोनों का मैंने उपनयनादि संस्कार सम्पन्न किया। राजन् उन दोनों को मैंने सम्पूर्ण वेदों को पढ़ाया ॥१२॥ मैंने आयुर्वेद, धनुर्वेद तथा शस्त्र विद्या को रहस्यों के साथ पढ़ाया। उन दोनों को जालन्धरी विद्या पढ़ाया और सङ्गीत में कुशल बनाया। वे गङ्गा तट पर लताकुञ्जों और वनों में गाते हैं ॥१३-१४॥ वे दोनों चञ्चल और चलचित्त हैं, सभी विद्याओं में निपुण हैं। इससे मुझे दोनों बालकों के विषय में परम सन्तोष हुआ ॥१५॥ सभी अस्त्रों को प्रदान करके मैंने उन दोनों के शिर पर हाथ रख दिया। गान विद्या में अत्यन्त कुशल उन दोनों को देखकर संसार आश्चर्य करता है ॥१६॥ वे दोनों षडज्ञ, मध्यम, गान्धार आदि स्वरों के विषय में विशारद हैं। इस तरह के उन दोनों को देखकर मैं उनसे मनोहर गीत गवाता हूँ ॥१७॥ भविष्य का ज्ञान होने से मैंने रामायण की रचना की। वे दोनों मृदङ्ग तथा पणव आदि तथा वीणा के विषय में निपुण हैं। वे प्रत्येक वन में गाते हुए वे मृगों और पक्षियों को मोहित करते हैं। राम आपके दोनों पुत्रों का गीतमाधुर्य अद्भुत है ॥१८-१९॥ उन दोनों के गान को सुनने के लिए वरुण विभावरी को लाये, उन दोनों का रूप मनोहर है तथा गान विद्या सागर में वे पारङ्गत हैं ॥२०॥ लोकेश (वरुण) के आदेश से दोनों कुमार परम मधुर तथा मनोहर आपके चरित का गायन किया ॥२१॥ वरुण ने अपने परिवार के साथ उन दोनों के गायन को सुना, किन्तु उनको सुनने से तृप्ति नहीं हुयी उनके साथ मित्र देवता भी थे ॥२२॥ हे रघुनंदन! आपका चरित अमृत से भी अधिक मधुर है गान, आनन्द तथा महालोभ से युक्त तथा प्राणों तथा इन्द्रियों

प्रत्यागन्तुं दिदेशासौ कुमारौ न हि तावकौ ।
रमणीय महाभोगैर्लोभितावपि बालकौ ॥२४॥
चलितौ न गुरोश्चात्ममातुःपादाम्बुजस्मृतेः । अहं चापि गतःपश्चाद्वरुणालयमुत्तमम् ॥२५॥
वरुणः प्रेमसहितः पूजां चक्रे मम प्रभो । पृच्छते जन्मकर्मादि सर्वज्ञायापि बालयौः ॥२६॥
वरुणायाब्रुवं सर्वं जन्मविद्याद्युपागमम् । श्रुत्वा सीतासुतौ देवः सचक्रेऽम्बरभूषणैः ॥२७॥
देवदत्तमतोग्राह्यमिति मद्वाक्यगौरवात् । आहृतं राजपुत्राभ्यां यद्दत्तं वरुणेन तत् ॥२८॥
प्रसन्नेन तयोर्वाद्य गानविद्यावयोगुणैः । ततो मामब्रवीत्सीतामुद्दिश्य वरुणः कृती ॥२९॥
सीता पतिव्रता धुर्या रूपशीलवयोऽन्विता । वीरपुत्रा महाभागा त्यागं नार्हतिकर्हिचित् ॥३०॥
महती हानिरेतस्य स्त्यागे हि रघुनन्दन । सिद्धीनां परमासिद्धिरेषा तेह्यनपायिनी ॥३१॥
पामरैर्महिमा नास्या ज्ञायते यदि दूषितैः । काहानिस्तावता राम ! पुण्यश्रवणकीर्तन ! ॥३२॥
अस्मत्साक्षिकमेतस्याः पावनं चरितं सदा । सद्यस्ते सिद्धिमायान्ति ये सीतापदचिन्तकाः ॥३३॥
यस्याःसङ्कल्पमात्रेण जन्मस्थितिलयादिकाः । भवन्ति जगतां नित्यं व्यापारा ऐश्वरा अमी ॥३४॥
सीता मृत्युःसुधाचेयं तपत्येषा च वर्षति । स्वर्गो मोक्षस्तपो योगो दानं च तव जानकी ॥३५॥
ब्रह्माणं शिवमन्यांश्च लोकपालान्मदादिकान् ।
करोत्येषाकरोत्येव नान्या सीता तव प्रिया ॥३६॥
त्वं पिता सर्वलोकानां सीता च जननीत्यतः ।
कुदृष्टिरत्र तु क्षेमयोग्या न तव कर्हिचित् ॥३७॥

की क्रियाओं का हरण करने वाला है ॥२३॥ उन्होंने दोनों कुमारों को आने के लिए कहा; किन्तु रमणीय महाभोगों के लोभ से युक्त होने पर भी दोनों बालक अपने गुरु तथा माता के चरण कमल का स्मरण करने के कारण नहीं जा सके । वाद में मैं भी उत्तम वरुण के गृह में गया ॥२४-२५॥ हे प्रभो ! वरुण ने प्रेमपूर्वक मेरी पूजा की, सर्वज्ञ होने पर भी उन दोनों बालकों के जन्म तथा कर्म आदि के विषय में उन्होंने पूछा ॥२६॥ मैंने वरुण को उन दोनों के जन्म आदि के विष्य में बतलाया । इन दोनों को सीता का पुत्र सुनकर वरुण ने उन दोनों को वस्त्र एवं आभूषण प्रदान किया ॥२७॥ देवताओं के द्वारा प्रदत्त वस्तु को ले लेना चाहिए इस मेरी वात के मानकर वरुण द्वारा वस्तुओं को बालकों ने ले लिया ॥२८॥ उन दोनों की गानविद्या, अवस्था तथा गुणों से प्रसन्न होकर चरुण ने मुझसे सीता के विषय में कहा ॥२९॥ सीता पतिव्रताओं में श्रेष्ठ, रूप, शील तथा अवस्था से युक्त तथा वीर पुत्रों को जन्म देने वाली हैं उन महाभागा का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए ॥३०॥ हे रघुनन्दन ! सीता का त्याग करने पर आपकी बहुत बड़ी क्षति होगी, सीता आपकी सिद्धियों में सर्वश्रेष्ठ अनपायिनी सिद्धि हैं ॥३१॥ हे पुण्यश्रवण कीर्तनः राम ! यदि मूर्ख जीव उनकी महिमा को जाने बिना निन्दा करते हैं तो उससे आपकी कौन सी हानि हैं ?॥३२॥ उसके पावन चरित के विषय में मैं साक्षी हूँ । सीता के चरणों का चिन्तन करने वाले को सद्यः सिद्धि मिल जाती है ॥३३॥ जिसके सङ्कल्प मात्र से संसार की सृष्टि स्थिति और लय आदि जो ईश्वर के व्यापार हैं; होते हैं॥३४॥ सीता ही आपकी मृत्यु तथा अमृत हैं । यही तपती है और वर्षा करती है । जानकी आपका स्वर्ग, मोक्ष, तपस्या, योग तथा दान हैं ॥३५॥ यही ब्रह्मा, शिव, तथा दूसरे मद हम जैसे लोक पालों को

वेत्ति सीतां सदा शुद्धां सर्वज्ञो भगवान्स्वयम् ।
भवानपि सुतां भूमेः प्राणादपि गरीयसीम् ॥३८॥
आदर्तव्या त्वया तस्मात्प्रिया शुद्धेति जानकी ।
न च शापपराभूतिः सीतायां त्वयि वा विभो ॥३९॥
इमानि मम वाक्यानि वाच्यानि जगतांपतिम् ।
रामम्प्रति त्वया साक्षाद्वाल्मीके ! मुनिसत्तम ! ॥४०॥
इत्युक्तो वरुणेनाहं सीतासङ्ग्रहकारणात्। एवमेवहि सर्वैश्च लोकपालैरपि प्रभो !॥४१॥
श्रुतं रामयणोद्गानं पुत्राभ्यां ते सुरासुरैः। गन्धर्वैरपि सर्वैश्च कौतुकाविष्टमानसैः ॥४२॥
प्रसन्ना एव सर्वेऽपि प्रशशंसुःसुतौ च ते। त्रैलोक्यं मोहितं ताभ्यां रूपगानवयोगुणैः ॥४३॥
दत्तं यल्लोकपालैस्तु सुताभ्यां स्वीकृतं हि तत् ।
ऋषिभिश्च वरा आभ्यामन्येभ्यः कीर्तिरिव च ॥४४॥
एकरामं जगत्सर्वं पूर्वं मुनिविलोकितम्। त्रिराममधुना जातं सुताभ्यांतेऽखिलेक्षितम् ॥४५॥
एककामपरामूर्तिलोके पूर्वमवेक्षिता। कामैश्चतुर्भिरद्यायं जायते च यतस्ततः॥४६॥
सर्वत्रान्यत्र राजेन्द्र ! रामपुत्रौ कुशीलवौ। गीयेते अत्र सङ्कोचःकिं कृतो विदुषि त्वयि॥४७॥
कृतेषु तव सर्वेषु श्रूयते महतीस्तुतिः। त्यागादन्यत्र सीतायाः पुण्यश्लोकशिरोमणे॥४८॥
त्वया त्रैलोक्यनाथेन गार्हस्थ्यमनुकुर्वता। अङ्गीकार्यौ सुतौ राम विद्याशीलगुणान्वितौ ॥४९॥
न तौ स्वाम्मातरं हित्वा स्थास्यतो भवदन्तिके ।
जनन्या सहितौ तस्मादाकार्यौ भवता सुतौ ॥५०॥

उत्पन्न करती है, दूसरी कोई नहीं । सीता आपकी प्रियतमा हैं ॥३६॥ इस लोक के आप पिता हैं और सीता जगत् की माता हैं । इसके विषय में कुदृष्टि करना आपके लिए उचित नहीं है ॥३७॥ आप स्वयं भगवान् हैं और सीता को शुद्ध जानते हैं । आप भी पृथिवी पुत्री को प्राणों से अधिक प्रिय मानते हैं।॥३८॥ अतएव आपको अपनी शुद्धा पत्नी सीता का समादर करना चाहिए । हे मुनि श्रेष्ठ वाल्मीकि प्रभो ! आप पर अथवा शाप का कोई प्रभाव नहीं है ॥३९॥ मेरे इन वचनों को संसार के स्वामी श्रीराम को साक्षात् कहना चाहिए ॥४०॥ इस तरह से वरुण ने सीता की सुरक्षा करने के कारण कहा । इस तरह से सभी लोकपालों और देवताओं ने आपके पुत्रों से रामायण का गायन सुना । कौतुकाविष्ट मन वाले सभी देवों, असुरों, गन्धर्वों ने भी रामायण सुना ॥४१-४२॥ प्रसन्न होकर सबों ने आपके पुत्रों की प्रशंसा की । उन दोनों ने अपने रूप, गायन, अवस्था और गुणों के द्वारा त्रैलोक्य को मोहित कर दिया ॥४३॥ आपके पुत्रों को लोकपालों ने जो कुछ भी प्रदान किया उसे उन दोनों ने स्वीकार कर लिया । ऋषियों ने तथा दूसरों ने इन्हें कीर्ति प्रदान किया ॥४४॥ सम्पूर्ण संसार ने पहले एक राम को देखा है । इस समय तुम्हारे दोनों पुत्रों को मिलाकर सबों ने तीन रामों को देखा है ॥४५॥ संसार में पहले एक काम का शरीर देखा गया इस समय संसार चार कामदेवों से युक्त है ॥४६॥ हे राजेन्द्र ! सर्वत्र ये दोनों कुश, लव राम के पुत्र कहे जाते हैं, अतएव इस विषय में आपको क्यों सङ्कोच है ? आप तो ज्ञानी हैं ॥४७॥ हे पुण्य श्लोक शिरोमणि ! सीता के त्याग को छोड़कर आपके सभी कार्यों की लोग प्रशंसा करते हैं ॥४८॥ गार्हस्थ्य का

दत्त एव तयेदानीं सेनासञ्जीवनात्पुनः। प्रत्ययःसर्वलोकानां पावनःपततामपि ॥५१॥
नाज्ञातं तेन चास्माकं नामराणाञ्च मानद । शुद्धौ तस्यास्तु लोकानां यन्नष्टं तदिह ध्रुवम् ॥५२॥

शेष उवाच

इति वाल्मीकिना रामः सर्वज्ञोऽप्यवबोधितः ।
स्तुत्वा नत्वा च वाल्मीकिं प्रत्युवाच सलक्ष्मणम् ॥५३॥
गच्छ ताताधुना सीतामानेतुं धर्मचारिणीम् । सपुत्रां रथमास्थाय सुमन्तसहितःसखे !॥५४॥
श्रावयित्वा ममेमानि मुनेश्च वचनान्यपि । सम्बोध्य च पुरीमेतां सीतां प्रत्यानयाशु ताम् ॥५५॥

लक्ष्मण उवाच

यास्यामि तव सन्देशात्सर्वेषां नः प्रभोर्विभो ।
देव्यायास्यति चेद्देव यात्रा मे सफला ततः ॥५६॥
मयि सा साभ्यसूयैव पूर्वदोषवशात्सती । अनागतायां तस्यां तु क्षमस्वागन्तुकं हि माम्॥५७॥
इत्युक्त्वा लक्ष्मणो रामं रथे स्थित्वा नृपाज्ञया ।
सुमित्रमुनिशिष्याभ्यां युतोऽगाद्भूमिजाश्रमम् ॥५८॥
कथं प्रसादनीया स्यात्सीताभगवती मया । पूर्वदोषं विजानन्ती रामाधीनस्य मे सदा ॥५९॥
एवं सञ्चिन्तयन्नन्तर्हर्षसङ्कोच मध्यगः । लक्ष्मणःप्राप सीताया आश्रमं श्रमनाशनम्॥६०॥
रथात्सोऽथावरुह्यारादश्रुरुद्धविलोचनः । आर्ये पूज्ये भगवति शुभे इति वदन्मुहुः॥६१॥

अनुसरण करने वाले आप त्रैलोक्य नाथ हैं । अतएव आपको विद्या, गुण तथा शील से युक्त अपने इन दोनों पुत्रों को स्वीकार करना चाहिए !।४९।। ये दोनों अपनी माता को छोड़कर आपके साथ नहीं रह सकते हैं, अतएव माता के साथ ही आपको इन दोनों को बुलाना चाहिए ॥५०॥ उसने सारी सेना को जीवित करके सम्पूर्ण संसार के समक्ष पवित्रता का विश्वास दिला दिया है ॥५१॥ यह वृतान्त मुझे और देवताओं को भी अज्ञात नही है, अतएव संसारियों की उसकी शुद्धि के विषय में शङ्का नष्ट हो गयी है ॥५२॥ **शेषजी ने कहा—** इस तरह से महर्षि वाल्मीकि ने सर्वज्ञ श्रीराम को समझाया । महर्षि वाल्मीकि की स्तुति करके और नमस्कार करके श्रीरामचन्द्र ने लक्ष्मणजी से कहा ॥५३॥ हे तात ! तुम धर्माचरण करने वाली सीता के पास उन्हें लाने के लिए जाओ । पुत्रों के साथ उसे रथ पर बैठाकर सुमन्त्रके साथ ॥५४॥ मेरे तथा मुनि के इन वचनों को सम्पूर्ण अयोध्या नगरी को सुनाकर सीता को तुम शीघ्र लाओ ॥५५॥ **लक्ष्मणजी ने कहा—** हे प्रभो ! आपके तथा सबों के कहने से मैं जाऊँगा । यदि देवी आ जाती हैं तो हमारी यात्रा सफल हो जायेगी ॥५६॥ पहले के दोष के कारण मेरे भी विषय में उनके मन में असूया होगी ही । यदि वे नहीं आयी तो भी आप मेरे आगमन को क्षमा करेंगे ॥५७॥ इस तरह से लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजी को कहकर उनकी आज्ञा से रथ पर बैठकर लक्ष्मणजी मुनि के दो शिष्यों के साथ सीताजी के आश्रम में गये ॥५८॥ भगवती सीता को मैं कैसे प्रसन्न करूँ ? क्योंकि वे मेरे पहले से ही सदा राम के अधीन रहने के दोष को जानती हैं, इस तरह से मन में सोचते हुए हर्ष तथा सङ्कोच से युक्त लक्ष्मणजी श्रम को विनष्ट करने वाली सीताजी के आश्रम में पहुँच गये ॥६०॥ वे दूर से ही रथ से उतरकर आँखों में आँसू भरे हुए हे पूज्ये, भगवति आर्ये ! बार-बार कहकर सीताजी के पैरों पर गिर पड़े । उस समय

पपात पादयोस्तस्या वेपमानाखिलाङ्गकः । उत्थापितस्तया देव्या प्रीतिविह्वलया स च ।।६२।।

सीतोवाच

किमर्थमागतः सौम्य ! वनं मुनिजनप्रियम् । आस्ते स कुशली देवःकौशल्याशुक्तिमौक्तिकः ।।६३।।

अरोषो मयि कच्चित्स कीर्त्या केवलायादृतः ।
कीर्त्यते सर्वलोकैश्च कल्याणगुणसागरः ।।६४।।
अकीर्तिभीतिमापन्नस्त्यक्तुं मां त्वां नियुक्तवान् ।
यदि ततश्च लोकेषु कीर्तिस्तस्यामलाऽभवत् ।।६५।।
मृत्वाऽपि पतिसत्कीर्तिं कुर्वन्त्या मे हि सुस्थिरा ।
पतिसामीप्यमेवाशु भूयादेव हि देवर ! ।।६६।।
त्यक्तयाऽपि मया तेन नासौ त्यक्तो मनागपि ।
फलं हि साधनायत्तं हेतुःफलवशो न तु ।।६७।।
कौशल्याशल्यशून्याऽसौ कृपापूर्णा सदा मयि ।
आस्ते कुशलिनी यस्याः पुत्रस्त्रैलोक्यपालकः ।।६८।।
सर्वे कुशलिनः सन्ति भरताद्याश्च बान्धवाः ।
सुमित्रा च महाभागा यस्याःप्राणदहं प्रिया ।।६९।।
मद्वत्किं त्वमपि त्यक्तः सर्वलोकेषु कीर्तये ।
राज्ञः किं दुस्त्यजं तस्य स्वात्माऽपि यस्य न प्रियः ।।७०।।

इत्येवं बहुधा पृष्टस्तया रामानुजः स ताम्। उवाच कुशली देवः कुशलं त्वयि पृच्छति ।।७१।।

कौशल्या च सुमित्रा च याश्चान्या राजयोषितः ।
पप्रच्छुः कुशलं देवि प्रीत्या त्वामाशिषा सह ।।७२।।

उनके सारे अङ्ग काँप रहे थे । प्रेम से विह्वल होकर देवी ने लक्ष्मणजी को उठाया ।।६१-६२।। **सीताजी ने कहा—** हे सौम्य ! मुनिजनों को प्रिय वन में कैसे आये हो ? कौसल्या नन्दन महाराज श्रीराम सकुशल हैं न ?।।६३।। केवल यश का समादर करने वाले महाराज का हम पर अब तो रोष नहीं है ? सारा संसार उनको कल्याण गुण सागर कहता है ।।६४।। अयश के भय से भयभीत होकर उन्होंने मेरा त्याग करने के लिए तुमको नियुक्त किया । उससे उनकी कीर्ति निर्मल हो गयीं ?।।६५।। मैं मर कर भी स्वामी की कीर्ति को सुस्थिर करना चाहती हूँ । वैसा करके मैं शीघ्र पति के सन्निकट पहुँच जाऊँगी ।।६६।। उन्होंने मुझको त्याग दिया, किन्तु मैंने उनको विल्कुल नहीं त्यागा फल तो साधन के अधीन होता है किन्तु साधन फल के अधीन नहीं होता है ।।६७।। दुःख से रहित कौसल्या माता की मेरे ऊपर कृपा है क्या ? जिनके पुत्र त्रैलोक्य पालक हैं; वे तो कुशल पूर्वक हैं ।।६८।। भरत आदि सभी बन्धु सकुशल तो हैं मुझको प्राणों से भी प्रिय मानने वाली सुमित्रा माता सकुशल हैं न ?।।६९।। सभी लोकों में यश प्राप्त करने के लिए मेरे ही समान तुम भी त्याग दिए गये हो क्या ? महाराज को तो अपनी आत्मा भी प्रिय नहीं है अतएव उनके लिए दुस्त्याज्य कुछ भी नहीं है ।।७०-७१।। इस तरह से बहुत सी बातें पूछे जाने पर लक्ष्मणजी ने कहा

कुशलप्रश्नपूर्वं हि तव पादाभिवन्दनम् । निवेदयामि शत्रुघ्नभरताभ्यां कृतं शुभे ! ॥७३॥
गुरुभिर्गुरुपत्नीभिःसर्वाभिरपि ते शुभे। दत्ताशीःकुशलप्रश्नः कृतश्च त्वयि जानकि ॥७४॥
आकारयति देवस्त्वां निर्व्यलीकेन चात्मना। अलभ्यान्यरतिस्त्वत्तोऽन्यत्र सर्वत्र भामिनि ॥७५॥
शून्या एव दिशः सर्वास्त्वां बिना जनकात्मजे ।
पश्यन्रोदिति नाथो नो रोदयन्नितरानपि ॥७६॥
यत्र देविस्थितासि त्वं नित्यं स्मरति राघवः ।
अशून्यं तु तमेवासौ मन्यमानो विदेहजे ॥७७॥
धन्योऽयमाश्रमो जातो वाल्मीकेर्यत्र जानकी ।
कालं क्षपति वार्ताभिर्मदीयाभिर्वदन्निति ॥७८॥
उक्तवान्यद्रुदन्किञ्चित्स्वामीनस्त्वयि तच्छृणु । व्यक्तीभवति वक्तुर्यद्धृद्गतं तदसंशयम् ॥७९॥
लोका वदन्ति मामेव सर्वेषामीश्वरेश्वरम् । अहं त्वदृष्टमेवैषां स्वतन्त्रं कारणं ब्रुवे ॥८०॥
अदृष्टमेव कार्येषु सर्वेशोऽप्यनुगच्छति । ईशनीयाःकुतो नैतदन्वीयुः सुखदुःखयोः ॥८१॥
धनुर्भङ्गे मतिभ्रंशे कैकेय्या मरणे पितुः । अरण्यगमने तत्र हरणे तव वारिधेः ॥८२॥
तरणे रक्षसांभर्तुर्मारणेऽपि रणेरणे। सहायीभवने मह्यमृक्षवानररक्षसाम् ॥८३॥
लाभे तव प्रतिज्ञायाः सत्यत्वे च सतीमणे ! ।
पुनः स्वबन्धुसम्बन्धे राज्यप्राप्तौ च भामिनि ! ॥८४॥
पुनः प्रियावियोगे च कारणं यदवारणम्। प्रसीदति तदेवाद्य संयोगे पुनरावयोः॥८५॥

महाराज सकुशल हैं और आपका कुशल चाहते हैं ॥७१॥ कौसल्या, सुमित्रा आदि जो राजरानियाँ है वे सबके सब आपको प्रिय आशीर्वाद प्रदान करके आपका कुशल जानना चाहती हैं ॥७२॥ हे शुभे ! कुशल प्रश्न पूर्वक मैं शत्रुघ्न और भरतजी की ओर से आपको प्रणाम करता हूं ॥७३॥ हे शुभे ! सभी गुरुजनों तथा गुरुपत्नियों ने आपको आशीर्वाद दिया है और आपका कुशल पूछा है ॥७४॥ महाराज श्रीराम शुद्ध मन से आप को बुला रहे हैं । उनको आपसे भिन्न कहीं भी स्नेह नहीं मिलता है ॥७५॥ हे जनकात्मजे! आपके बिना उनको सारी दिशाएँ शून्य दिखती हैं । हमलोगों के स्वामी दिशाओं में देखकर रोते हैं और हम सबों को रुलाते हैं ॥७६॥ हे देवि ! आप जहाँ स्थित हैं वे सदा आपको याद करते हैं, वे उसी स्थान को अशून्य मानकर कहते हैं महर्षि वाल्मीकि का आश्रम धन्य हो गया जहाँ जानकी का निवास है । वे हमलोगों से बातें करके समय बिताते हैं ॥७७-७८॥ रोते हुए स्वामी आपको जो कहे हैं, उसे आप सुनें, कहने वाले के हृदय में जो रहता है, वही अभिव्यक्त होता है इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है॥७९॥ लोग मुझको ही सबों का स्वामी वतलाते हैं, मैं तो इन सभी कार्यों का अदृष्ट को स्वतंत्र कारण मानता हूँ ॥८०॥ सर्वेश भी कार्यों के विषय में अदृष्ट का ही अनुसरण करते है तो नियाम्य क्यों नहीं अदृष्ट सुख दुख के विषय में अनुसरण करें ॥८१॥ धनुर्भङ्ग के विषय में, कैकेयी के भतिभ्रंश में, पिताजी की मृत्यु में, प्रत्येक युद्धों में ऋक्षों तथा वानरों के सहायक होने में, वन में जाने में, तुम्हारे हरण में, समुद्र को पार करने में, रावण को मारने में, तुम्हें प्राप्त करने में और प्रतिज्ञा के सत्य होने में, फिर अपने

वेदोऽन्यथा कृतो येन लोकोत्पत्तिलयौ यतः ।
लोलाननुगतस्तस्मात्कारणं प्रथमं त्वहम् ॥८६॥
अदृष्टमनुवर्तन्ते लोका:सम्प्रति बोधकाः। भोगेन जीर्यतेऽदृष्टं तत्तद्भुक्तं त्वया वने॥८७॥
स्नेहोऽकारणकः सीते वर्धमानो मम त्वयि ।
लोकादृष्टे तिरस्कृत्य त्वामाह्वयत आदरात् ॥८८॥
शङ्कितेनापि दोषेण स्नेहनैर्मल्यमज्जनम् । भवतीति स वै शुद्धं आस्वाद्यो विबुधैः सदा॥८९॥
स्नेहशुद्धिरियं भद्रे ! कृता मे त्वयि नान्यथा ।
मन्तव्यं रक्षितोऽप्येषः लोकः शिष्टानुवर्तिना ॥९०॥
आवयोर्निन्दया देवि ! सर्वावस्थासु शुद्धये। लोको नश्येद्धि संमूढश्चरितैर्महतामयम् ॥९१॥
आवयोरुज्ज्वला कीर्तिरावयोरुज्ज्वलो रसः ।
आवयोरुज्ज्वलौ वंशावावयोरुज्ज्वलाः क्रियाः॥९२॥
भवेयुरावयोःकीर्तिर्गायका उज्ज्वला भुवि । आवयोर्भक्तिमन्तो ये ते यान्त्यन्तेभवाम्बुधेः ॥९३॥
इत्युक्ता भवती तेन प्रीयमाणेन ते गुणैः । पत्युःपादाम्बुजे द्रष्टुं करोतु सदयं मनः ॥९४॥
वासांसि रमणीयानि भूषणानि महान्ति च। अङ्गरागस्तथा गन्धा मनोज्ञास्त्वयि योजिताः॥९५॥
रथोदास्यश्च रामेण प्रेषिता उत्सवाय ते। छत्रं च चामरे शुभ्रे गजा अश्वाश्च शोभने॥९६॥
स्तूयमाना द्विजश्रेष्ठैःसूतमागधबन्दिभिः । वन्द्यमाना पुरस्त्रीभिःसेव्यमाना च योद्धृभि॥९७॥

बान्धवों से सम्बन्ध होने में, पुनः राज्य की प्राप्ति में और पत्नी का वियोग होने में जो दुर्वार कारण है वही अदृष्ट आज हम दोनों के संयोग में प्रसन्न हो गया है ॥८२-८५॥ जिसने संसार की उत्पत्ति और प्रालय को तथा वेदों को अन्यथा कर दिया है, उन चंचल पदार्थों के अनुगमन करने में मैं प्रधान कारण हूँ ॥८६॥ इस समय बोधक लोग अदृष्ट का ही अनुसरण करते हैं । भोग के द्वारा अदृष्ट समाप्त होता है, उसे तुमने वन में भोग लिया है ॥८७॥ हे सीते ! तुम्हारे विषय में बढ़ने वाला मेरा स्नेह अकारण है । वह लौकिक अदृष्ट को तिरस्कृत करके तुमको आदर पूर्वक बुला रहा है ॥८८॥ दोष की शङ्का होने पर उसका मार्जन निर्मल स्नेह के द्वारा हो जाता है । वह शुद्ध योग क्षेम देवताओं के भी लिए आस्वाद्य होता है ॥८९॥ मैंने तुम्हारे विषय में स्नेह की शुद्धि की है, दूसरी कोई बात नहीं है । वह शिष्ट पुरुषों का अनुसरण करने के कारण ही संसार रक्षित है ॥९०॥ हे देवि ! हमदोनों की निन्दा के द्वारा सभी अवस्था में शुद्धि के लिए महापुरुषों के चरित से अज्ञानी बना हुआ संसार ही विनष्ट हो जायेगा ॥९१॥ हम दोनों का उज्जवल यश, हम दोनों का उज्ज्वल रस (प्रेम) हमदोनों के विशुद्ध दोनों वंश, और हम दोनों की निर्दोष क्रियायें हैं । गान करने वाले हमदोनों की उज्जवल कीर्ति का गान करें और हमदोनों की भक्ति करने वाले संसार से पार चले जायँ ॥९१-९३॥ आपके गुणों से प्रसन्न अदृष्ट के द्वारा आप अपने पति के चरणों का दर्शन करने के लिए दयायुक्त मन बनायें ॥९४॥ मनोहर वस्त्र, बड़े-बड़े भूषण अङ्गराग तथा गन्ध ये सब आपके लिए भेजे गये हैं ॥९५॥ आपके उत्सव के लिए श्रीरामचन्द्र ने रथों और दासियों को भेजा है । छत्र, चामर हाथी तथा घोड़े भी उन्होंने भेजा है ॥९६॥ श्रेष्ठ ब्राह्मणों, सूतों और मगधों द्वारा स्तुति की जाती हुयी, नगर की नारियों द्वारा वन्दित की जाती हुयी तथा योद्धाओं के द्वारा सेवित ॥९७॥

पुष्पैः संछाद्यमाना च देवी देवाङ्गनादिभिः। धनानि ददती तेभ्यो द्विजातिभ्यो यथेप्सितम् ॥९८॥
गजारूढौ कुमारौ च पुरस्कृत्य जनेश्वरी। मयानुगम्यमाना च गच्छायोध्यां निजां पुरीम् ॥९९॥
त्वयि तत्र गतायां तु सङ्गतायां प्रियेण ते। सर्वास्त्रा राजनारीणामागतानां च सर्वशः ॥१००॥
सर्वासामृषिपत्नीनां कौसलानां तथैव च। मङ्गलैर्वाद्यगीताद्यैर्भवत्वद्य महोत्सवः॥१०१॥

शेष उवाच

इति विज्ञापनां देवी श्रुत्वा सीता तमाह सा।
नाहं कीर्तिकरी राज्ञो ह्यपकीर्तिः स्वयं त्वहम् ॥१०२॥
किं मया तस्य साध्यं स्याद्धर्मकामार्थशून्यया।
सत्येवं भवतां भूपे को विश्वासो निरङ्कुशे ॥१०३॥
प्रत्यक्षा वा परोक्षा वा भर्तुर्दोषा मनःस्थिताः।
न वाच्या जातु मादृश्या कल्याणकुलजातया ॥१०४॥
पाणिग्रहणकाले मे यद्रूपो हृदये स्थितः। तद्रूपो हृदयान्नासौ कदाचिदपसर्पति ॥१०५॥
लक्ष्मणेमौ कुमारौ मे तत्तेजोंशसमुद्भवौ। वंशाङ्कुरौ महाशूरौ धनुर्विद्याविशारदौ॥१०६॥
नीत्वा पितुःसमीपं तु लालनीयौ प्रयत्नतः। तपसा राधयिष्यामि रामंकाममिहस्थिता ॥१०७॥
वाच्यं त्वया महाभाग पूज्यपादाभिवन्दनम्। सर्वेभ्यः कुशलं चापि गत्वेतो मदपेक्षया ॥१०८॥
पुत्रौ समादिशत्सीता गच्छतं पितुरन्तिकम्। शुश्रूषणीय एवासौ भवद्भ्यांस्वपदप्रदः ॥१०९॥
आज्ञाप्तावप्यनिच्छन्तौ तौ कुमारौ कुशीलवौ।
वाल्मीकिवचनात्तत्रजग्मतुश्च सलक्ष्मणौ ॥११०॥

हे देवि ! देवाङ्गनाओं के द्वारा पुष्पों से आच्छादित, ब्राह्मणों को इप्सित मात्रा में धन दान करती हुयी॥९८॥ हाथी पर बैठे हुए कुमारों द्वारा आगे की गयी हे स्वामिनी ! मेरे (लक्ष्मण) द्वारा अनुगत आप अपनी नगरी अयोध्या में चलें ॥९९॥ आपके वहाँ जाकर अपने पति से मिल जाने पर, सभी आयी हुयी रानियों के तथा सभी ऋषि पत्नियों के द्वारा कोसल देश वासियों का मङ्गलमय, वाद्यों, गीतों से महोत्सव मने॥१००॥ **शेषजी ने कहा—** इस प्रकार की विज्ञापना सुनकर सीताजी ने उनसे कहा मैं तो स्वयम् अपकीर्ति हूँ मैं उनकी कीर्ति को बढ़ाने वाली नहीं हूँ ॥१०२॥ धर्म, अर्थ एवं काम से रहित मैं उनका कौन सा कार्य करूँगी ?। ऐसा होने पर भी आप के निरङ्कुश राजा पर कौन सा विश्वास है ?॥१०३॥ पति के दोष प्रत्यक्ष हों अथवा परोक्ष हों उसे उन्हें मेरी जैसे कल्याणमय वंश में उत्पन्न नारियों को नहीं कहना चाहिए॥१०४॥ पाणिग्रहण के समय वे जैसे मेरे हृदय में स्थित हुए, उसी तरह के वे कभी मेरे हृदय से दूर नहीं जाते हैं॥१०५॥ हे लक्ष्मण ! ये मेरे दोनों पुत्र उन्हीं के तेजांश से उत्पन्न हैं। ये उनके वंश के अङ्कुर हैं, महावीर हैं तथा धनुर्विद्या में निपुण हैं ॥१०६॥ इनके पिता के समीप ले जाकर इनका अच्छी तरह से पालन करना चाहिए। मैं यहीं राम रूपी काम की आराधना करूँगी ॥१०७॥ हे महाभाग ! तुम उन पूज्यपाद को मेरा प्रणाम कहना। यहाँ से जाकर सबों को मेरा कुशल बतलाना ॥१०८॥ सीताजी ने अपने दोनों पुत्रों को आदेश दिया कि तुमलोग अपने पिता के पास जाओ। तुम दोनों उनकी सेवा करना। वे तुमलोगों को अपना पद प्रदान करेंगे ॥१०९॥ आज्ञा देने पर भी नहीं जाना चाहने वाले कुश और लव

वाल्मीकेरेव पादाब्जसमीपं तत्सुतौ गतौ। लक्ष्मणोऽपि ववन्दे तं गत्वा बालकसंयुतः॥१११॥
वाल्मीकिर्लक्ष्मणस्तौ तु कुमारौ मिलिता अमी ।
सभायां संस्थितं रामं ज्ञात्वा ते जग्मुरुत्सुकाः ॥११२॥
लक्ष्मणः प्रणिपत्याथ सीतावाक्यादि सर्वशः ।
कथयामास रामाय हर्षशोकयुतःसुधीः ॥११३॥
सीता सन्देशवाक्येभ्यो रामो मूर्च्छां समन्वभूत् ।
संज्ञामवाप्य चोवाच लक्ष्मणं नयकोविदम् ॥११४॥
गच्छ मित्र पुनस्तत्र यत्नेन महता च ताम्। शीघ्रमानय भद्रं ते मद्वाक्यानि निवेद्य च ॥११५॥
अरण्ये किन्तपस्यन्त्या गतिरन्या विचिन्तिता ।
श्रुता दृष्टाऽथ वा मत्तो यन्नागच्छसि जानकि ॥११६॥
त्वदिच्छया त्वमेवेतो गतारण्यं मुनिप्रियम्। पूजिता मुनिपत्न्यस्ता दृष्टा मुनिगणास्त्वया॥११७॥
पूर्णो मनोरथस्तेऽद्य किं नागच्छसि भामिनि ! ।
न दोषं मयि पश्येस्त्वं स्वात्मेच्छाया विलोकनात् ॥११८॥
गत्वा गत्वाऽथ वामोरु ! पतिरेव गतिः स्त्रियाः ।
निर्गुणोऽपि गुणाम्भोधिः किं पुनर्मनसेप्सितः ॥११९॥
या या क्रियाकुलस्त्रीणां सा सा पत्युः प्रतुष्टये ।
पूर्वमेव प्रतुष्टोऽहमिदानीं सुतरां त्वयि ॥१२०॥
यागो जपस्तपो दानं व्रतं तीर्थं दयादिकम्। देवाश्च मयि सन्तुष्टे तुष्टमेतदसंशयम् ॥१२१॥

कुमार वाल्मीकि महर्षि की आज्ञा से लक्ष्मणजी के साथ गये ॥११०॥ महर्षि वाल्मीकि के ही चरण कमल के पास वे दोनों बालक गये । लक्ष्मणजी भी बालकों के साथ जाकर महर्षि की वन्दना किए । वाल्मीकि महर्षि लक्ष्मणजी तथा दोनों बालक आपस में मिलकर सभा में बैठे हुए श्रीरामजी को जानकर उत्सुक होकर उनके पास गये ॥१११-११२॥ लक्ष्मणजी प्रणाम करके सीताजी की सारी बातों को सुनाये उस समय वे हर्ष और शोक से युक्त थे ॥११३॥ सीताजी के सन्देश वाक्यों को सुनकर रामजी मूर्छित हो गये । होश में आकर नीति के ज्ञाता लक्ष्णमजी से उन्होंने फिर कहा ॥११४॥ हे मित्र ! तुम फिर जाओ और प्रयत्न पूर्वक सीता को लाओ । तुम उन्हें मेरे वाक्यों को सुनाना ॥११५॥ अरण्य में तपस्या करने वाली की दूसरी ही गति देखी, सुनी एवं विचारी गयी है, जिसके कारण तुम मेरे पास नहीं आ रही हो ॥११६॥ यहाँ से तुम अपनी ही इच्छा से मुनियों के प्रिय अरण्य में गयी हों । तुमने मुनि पत्नियों की पूजा कर ली और मुनियों का दर्शन कर लिया ॥११७॥ आज तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो गया अब क्यों नहीं आ रही हो । अपनी इच्छा का अवलोकन करके तुम मुझमें दोष का दर्शन न करो ॥११८॥ हे सुन्दरि ! कहीं भी जाने पर नारी की गति तो उसका पति ही होता है । चाहे वह निर्गुण हो या गुण सागर हो, मुझ जैसे मनोनुकूल पति के विषय में क्या कहना है ॥११९॥ कुलस्त्रियों द्वारा की जाने वाली सारी क्रियायें पति के सन्तोष के ही लिए होती हैं । यज्ञ, तप, दान, तीर्थ तथा दया आदि सबके सब पति के सन्तोष के लिए होते हैं । मेरे सन्तुष्ट होने पर सभी देवता सन्तुष्ट होंगे ॥१२०-१२१॥ **शेषजी ने कहा—** जगत्पति

शेष उवाच

इति सन्देशमादाय सीतां प्रति जगत्पतेः । आह लक्ष्मण आत्मेशमानतः प्रणयाद्धरौ॥१२२॥
सीतानयनमुद्दिश्य प्रसन्नस्त्वं यदूचिवान् । कथयिष्यामि तद्वाक्यं विनयेन समन्वितम् ॥१२३॥
इत्युक्त्वा पादयोर्नत्वा रघुनाथस्य लक्ष्मणः। जगाम त्वरितः सीतां रथे तिष्ठन्महाजवे ॥१२४॥
वाल्मीकिः श्रीयुतौ वीक्ष्य रामपुत्रौ महौजसौ ।
उवाच स्मितमाधाय मुखं कृत्वा मनोहरम् ॥१२५॥
युवां प्रगायतं पुत्रौ रामचारित्रमद्भुतम् । वीणां प्रवादयन्तौ च कलगानेन शोभितम् ॥१२६॥
इत्युक्तौ तौ सुतौ रामचरित्रं बहुपुण्यदम् । अगायतां महाभागौ सुवाक्यपदचित्रितम् ॥१२७॥
यस्मिन्धर्मविधिः साक्षात्पातिव्रत्यं तु यत्स्थितम् ।
भ्रातृस्नेहो महान्यत्र गुरुभक्तिस्तथैव च ॥१२८॥
स्वामिसेवकयोर्यत्र नीतिर्मूर्तिमती किल । अधर्मकरशास्तिंवै यत्र साक्षाद्रघूद्वहात् ॥१२९॥
तद्गानेन जगद्व्याप्तं दिवि देवा अपि स्थिताः ।
किन्नरा अपि यद्गानं श्रुत्वा मूर्च्छामिताः क्षणात् ॥१३०॥
वीणाया रणितं श्रुत्वा तालमानेन शोभितम् ।
निखिला परिषत्तत्र शालभञ्जीव चित्रिता ॥१३१॥
हर्षादश्रूणि मुञ्चन्तो रामाद्याभूमिपास्तथा। तद्गानपञ्चमालापमोहिताश्चित्रितोपमाः ॥१३२॥
तत्र रामः सुतौ दृष्ट्वा महागानविमोहकौ। अदात्ताभ्यां सुवर्णस्य लक्षं लक्षं पृथक्पृथक्॥१३३॥
तदा दानपरं दृष्ट्वा वाल्मीकिं मुनिसत्तमम्। अब्रूतां प्रहसन्तौ तौ किञ्चिद्वक्रभ्रुवौ ततः ॥१३४॥

के इस सन्देश को लेकर लक्ष्मणजी विनत होकर अपने स्वामी को प्रणाम करके प्रेम पूर्वक कहे ॥१२२॥ सीताजी को लाने के उद्देश्य से आपने जो कहा है उसको मैं नम्रता पूर्वक कहूँगा ॥१२३॥ इस तरह से कहकर श्रीरामजी के चरणों में प्रणाम करके लक्ष्मणजी अत्यन्त वेग सम्पन्न रथ पर बैठकर सीताजी के पास गये ॥१२४॥ महर्षि वाल्मीकि श्रीसम्पन्न, महाओजस्वी श्रीराम के पुत्रों को देखकर मुस्कुराते हुए कहे ॥१२५॥ पुत्रों ! तुम दोनों अद्भुत रामचरित का गायन करो जो वीणा को बजाते हुए मनोहर गान से सुशोभित हो॥१२६॥ इस तरह से कहने पर वे दोनों बालक अत्यधिक पुण्यप्रद अमृतमय वाक्य तथा पद से सुशोभित रामचरित का गायन किए ॥१२७॥ जिसमें साक्षात् धर्म का वर्णन है, जिसमें पतिव्रता धर्म का वर्णन है, जिसमें श्रेष्ठ भातृ प्रेम का वर्णन है तथा गुरु भक्ति का वर्णन है ॥१२८॥ जिसमें स्वामी तथा सेवक धर्म मूर्तिमान रूप से वर्णित है तथा जिसमें साक्षात् श्रीराम के द्वारा अधार्मिक रावण का नाश वर्णित है॥१२९॥ उस रामायण के गान से जगत् व्याप्त हो गया स्वर्गलोक में स्थित देवताओं ने उसका श्रवण किया । जिस गान को सुनकर किन्नर भी क्षणभर में मूर्छित हो गये ॥१३०॥ ताल तथा मात्रा से सुशोभित वीणा की ध्वनि को सुनकर सम्पूर्ण सभी कठपूतली के समान हो गयी थी ॥१३१॥ राम आदि सभी राजागण हर्षजन्य अश्रु को बहा रहे थे ! उस गान के पञ्चम आलाप से सभी चित्र लिखित के समान हो गये थे॥१३२॥ वहाँ पर महागान से मोहित करने वाले पुत्रों को देखकर श्रीरामजी ने दोनों को अलग-अलग लाख-लाख सुवर्ण मुद्राएँ प्रदान किया ॥१३३॥ उस समय श्रीरामजी को दान देते देखकर महर्षि श्रेष्ठ वाल्मीकि मुनि

मुने महानयोऽनेन क्रियते भूमिपेन वै। यदावाभ्यां सुवर्णानि दातुमिच्छति लोभयन्॥१३५॥
प्रतिग्रहो ब्राह्मणानां शस्यते नेतरेषु वै। प्रतिग्रहपरो राजा नरकायैव कल्पते॥१३६॥
आवयोः कृपया मुक्तं राज्यं भुङ्क्ते महीपतिः ।
कथं दातुं सुवर्णानि वाञ्छति श्रेयसाञ्चितः ॥१३७॥
इत्युक्तवन्तौ तो दृष्ट्वा वाल्मीकिः कृपयायुतः ।
असंशद्युष्मत्पितरं जानीथां नीतिवित्तमौ ॥१३८॥
इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं बालकौ नृपपादयोः। लग्नौ विनयसंयुक्तौ मातृभक्त्याऽतिनिर्मलौ॥१३९॥
रामो बालौ दृढं स्वाङ्गे परिरभ्य मुदान्वितः ।
मेने स्वीयौ तदा धर्मौ मूर्तिमन्ताबुपस्थितौ ॥१४०॥
सभाऽपि रामसुतयोर्वीक्ष्य वक्त्रे मनोरमे। जानकीपतिभक्तित्वं सत्यं मेने मुनीश्वर ! ॥१४१॥
इति शेषमुखप्रोक्तं श्रुत्वा वात्स्यायनोऽब्रवीत् ।
रामायणं श्रोतुमनाः सर्वधर्मसमन्वितम् ॥१४२॥

वात्स्यायन उवाच

कस्मिन्कालेःकृतं स्वामिन्रामायणमिदं महत् ।
कस्माच्चकार किन्तत्र वर्णनं तद्वदस्व मे ॥१४३॥

शेष उवाच

एकदागतवान्विप्रो वाल्मीकिर्विपिनं महत्। यत्र तालास्तमालाश्च किंशुका यत्र पुष्पिता॥१४४॥
केतकी यत्र रजसा कुर्वती सौरभं वनम्। शशिप्रभेव महती दृश्यते शुभ्रकर्णभृत्॥१४५॥

को देखकर जोर से हँसते हुए तथा कुछ टेढ़ी भृकुटी करके लव और कुश कहे ॥१३४॥ मुने ! ये राजा महान् अनर्थ कर रहे हैं कि हमलोगों को लुभाते हुए सुवर्ण देना चाहते हैं ॥१३५॥ दान तो ब्राह्मणों को दिया जाता है दूसरों को नहीं । दान लेने वाला क्षत्रिय नरक में जाता है ॥१३६॥ हमदोनों ने कृपा करके जिसे छोड़ दिया उस राज्य का राज भोग ये करते हैं अतएव ये कल्याणयुक्त सुवर्ण क्यों देना चाहते हैं॥१३७॥ इस तरह से कहने वाले उन दोनों को देखकर कृपा युक्त महर्षि वाल्मीकि कहे, नीति के जानकारों जानो ये तुम दोनों के पिता हैं ॥१३८॥ मुनि के इस वाक्य को सुनकर दोनों बालक अत्यन्त निर्मल मातृभक्ति से युक्त तथा विनयान्वित होकर श्रीरामचन्द्रजी के चरणों पर गिर पड़े ॥१३९॥ प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्रजी ने उन दोनों बालकों का अपने हृदय से लगाकर गाढ़ालिङ्गन किया । उनको लगा कि उनके दो मूर्तिमान धर्म उपस्थित हो गये हैं ॥१४०॥ पूरी सभा ने भी श्रीरामचन्द्रजी के पुत्रों के मनोहर मुख को देखकर हे मुनीश्वर वात्स्यायन ! जानकीजी की पति भक्ति को सत्य माना ॥१४१॥ इस तरह से शेषजी के मुख से सुनकर सभी धर्मो से युक्त श्रीरामायण सुनने की इच्छा से वात्स्यायन मुनि ने कहा ॥१४२॥ **वात्स्यायन महर्षि ने कहा—** हे स्वामिन् ! किस समय में इस महान् रामायण की रचना हुयी । मुनि ने उसे क्यों बनाया तथा उसमें किसका वर्णन है ? यह हमें बतलायें ॥१४३॥ **शेषजी ने कहा—** एक बार विप्र वाल्मीकि बड़े बन में गये । वहाँ पर साल तमाल तथा पलाश के वृक्ष विकसित थे ॥१४४॥ केतकी अपने पराग पुञ्ज से वन को सुगन्धित बना रही थी वह ध्वल कर्णों वाली के समान और चन्द्रमा की प्रभा

चम्पको बकुलश्चापि कोविदारः कुरण्टकः ।
अनेके पुष्पिता यत्र पादपाःशोभने वने ॥१४६॥
कोकिलानां विरावेण षट्पदानां च शब्दितैः ।
सङ्घुष्टं सर्वतो रम्यं मनोहरवयोन्वितम् ॥१४७॥
तत्र क्रौञ्चीव्याधहतं स्वपतिं वीक्ष्य दुःखिता ।
परस्परं प्रहृषितं रेमे स्निग्धतया स्थितम् ॥१४८॥
तदा व्याधः समागत्य तयोरेकं मनोहरम्। अवधीन्निर्दयः कश्चिन्मांसास्वादनलोलुपः ॥१४९॥
तदा क्रौञ्चीव्याधहतं स्वपतिं वीक्ष्य दुःखिता ।
विललाप भृशं दुःखान्मुञ्चन्ती रावमुच्चकैः ॥१५०॥
तदा मुनिः प्रकुपितो निषादं क्रौञ्चघातकम्। शशाप वार्युपस्पृश्य सरितः पावनं शुभम् ॥१५१॥
मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समा ।
यत्क्रौञ्चपक्षिणोरेकमवधीः काममोहितम् ॥१५२॥
तदा प्रबन्धं श्लोकस्य जातं मत्वा ह्यनुद्विजाः ।
ऊचुर्मुनिं प्रहृष्टास्ते शंसन्तः साधुसाध्विति ॥१५३॥
स्वामिच्छापोदिते वाक्ये भारती श्लोकमातनोत् ।
अत्यन्तं मोहनो जातः श्लोकोऽयं मुनिसत्तम ॥१५४॥
तदा मुनिः प्रहृष्टात्मा बभूव वाडवर्षभ !। तस्मिन्काले समागत्य ब्रह्मा पुत्रैः समन्वितः॥१५५॥
वचो जगाद वाल्मीकिं धन्योऽसि त्वं मुनीश्वर ! ।
भारती त्वन्मुखे स्थित्वा श्लोकत्वं समपद्यत ॥१५६॥

के समान दिखती थीं ॥१४५॥ उस सुन्दर वन में चम्पा, वकुल, कोविदार तथा कुरण्टक आदि के वृक्ष विकसित थे ॥१४६॥ कोयलों की कूक तथा भ्रमरों की गुनगुनाहट की ध्वनि से मनोहर अवस्था से युक्त वह वन हर तरह से मनोहर था ॥१४७॥ वहाँ पर मनोहर क्रौञ्च पक्षी के जेड़े कामार्त होकर प्रेम पूर्वक स्थित होकर आनन्द पूर्वक रमण करते थे ॥१४९॥ उसी समय एक मांस का लोभी व्याध आकर उन दोनों में से एक को मार दिया ॥१४८॥ उस समय क्रौञ्ची व्याध के द्वारा मारे गये अपने पति को देखकर दुःखी होकर अपने जोर-जोर के शब्दों के द्वारा दुःख को व्यक्त करती हुयी विलाप की ॥१५०॥ उस समय क्रोध करके मुनि क्रौञ्च को मारने वाले व्याध को नदी के पवित्र जल से आचमन करके शाप दिए ॥१५१॥ हे निषाद ! तुम कभी भी प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त करोगे, क्योंकि तुमने काम मोहित क्रौञ्च पक्षियों में से एक को मार दिया है ॥१५२॥ उसी समय श्लोक की रचना हो गयी यह मान करके उनके शिष्यगण, प्रसन्न होकर कहे बहुत अच्छा, बहुत अच्छा ॥१५३॥ शाप के वाक्य के निकलते ही सरस्वती देवी ने श्लोक का विस्तार किया । हे मुनिश्रेष्ठ ! यह श्लोक अत्यन्त मनोहर हो गया ॥१५४॥ उस समय प्रसन्न हुए मुनि ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हो गये । उसी समय ब्रह्माजी अपने पुत्रों के साथ आये ॥१५५॥ उन्होंने वाल्मीकि से कहा मुनीश्वर ! आप धन्य हैं । तुम्हारे मुख में बैठकर भारती ही श्लोक बन गयीं हैं ॥१५६॥ श्लोकों में तुम

तस्माद्रामायणं रम्यं कुरुष्व मधुराक्षरम् । येन ते विमलाकीर्तिराकल्पान्तं भविष्यति ॥१५७॥
धन्या सैव मुखे वाणी रामनाम्ना समन्विता ।
अन्या कामकथा नृणां जनयत्येव पातकम् ॥१५८॥
तस्मात्कुरुष्व रामस्य चरितं लोकविश्रुतम् । येन स्यात्पापिनां पापहानिरेव पदेपदे ॥१५९॥
इत्युक्त्वान्तर्दधे स्रष्टा सर्वदेवैः समन्वितः । ततः स चिन्तयामास कथं रामायणं भवेत्॥१६०॥
तदा ध्यानपरो जातो नदीतीरे मनोरमे । तस्य चेतस्यथो रामः प्रार्दुभूतो मनोहरः॥१६१॥
नीलोत्पलदलश्यामं रामं राजीवलोचनम् । निरीक्ष्य तस्य चरितं भूतं भावि भवच्च यत्॥१६२॥
तदाऽत्यन्तं मुदं प्राप्तो रामायणमथासृजत् । मनोरमपदैर्युक्तं वृत्तैर्वहुविधैरपि ॥१६३॥
षट्काण्डानि सुरम्याणि यत्र रामायणेऽनघ ! ।
बालमारण्यकं चान्यत्किष्किन्धासुन्दरं तथा ॥१६४॥
युद्धमुत्तरमन्यच्च षडेतानि महामते । शृणुयाद्यो नरः पुण्यात्सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१६५॥
तत्र बाले तु सन्तुष्टः पुत्रेष्ट्या चतुरस्सुतान्। प्राप पङ्क्तिरथः साक्षाद्धरिं ब्रह्म सनातनम्॥१६६॥
स कौशिकमखं गत्वा सीतामुद्वाह्य भार्गवम् ।
आगत्य पुरमुत्कृष्टो यौवराज्यप्रगल्भकः ॥१६७॥
मातृवाक्याद्वनं प्रागाद्गङ्गामुत्तीर्य पर्वतम् । चित्रकूटं महिलया लक्ष्मणेन समन्वितः ॥१६८॥

मधुर अक्षरों से युक्त रामायण की रचना करो उससे तुम्हारी कीर्ति कल्प पर्यन्त बनी रहेगी । जिसके मुख में राम नाम से युक्त वाणी है, वही वाणी धन्य है । दूसरी वाणी तो काम कथा है और उससे पाप ही होता है ॥१५८॥ अतएव तुम लोक विख्यात रामचरित का निबन्धन करो, जिससे की पापियों के पाप ही हानि पद-पद पर हो जाती है ॥१५९॥ यह कहकर ब्रह्माजी सभी देवों के साथ अन्तर्धान हो गये । उसके वाद महर्षि सोचने लगे कि रामायण का निर्माण कैसे हो ?॥१६०॥ उसी समय वे नदी के मनोहर तट में ध्यान करने लगे उसके बाद उनके अन्तःकरण में श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हो गये ॥१६१॥ नील कमल दल के समान सुन्दर वर्ण वाले तथा कमल के समान नेत्र वाले श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करके मुनि भूत कालिक भविष्यत् कालिक तथा वर्तमान कालिक उनके चरित को जान लिए ॥१६२॥ उस समय वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और मनोहर पदों से युक्त तथा अनेक प्रकार के छन्दों से युक्त रामायण की रचना किए ॥१६३॥ हे अनघ ! उस रामायण में छह मनोहर काण्ड हैं, बालकाण्ड, अरण्य काण्ड, किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर काण्ड, युद्ध काण्ड और उत्तर काण्ड ये ही छह काण्ड हैं । इसको सुनने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥१६४-१६५॥ **(नोट— यहाँ अयोध्या काण्ड का नाम इसलिए नहीं लिया गया है कि अयोध्या काण्ड में भी अरण्य की ही कथा का विशेष रूप से वर्णन होने के कारण प्राधान्य न्याय से अयोध्या काण्ड का भी अरण्य काण्ड में ही अन्तर्भाव कर दिया गया है ।)** बालकण्ड में सन्तुष्ट राजा पंक्तिरथ (दशरथ) पुत्रेष्टि याग के द्वारा सनातन श्रीहरि को चार पुत्रों के रूप में प्राप्त किए ॥१६६॥ वे महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ में जाकर सीताजी से विवाह करके तथा परशुरामजी का गर्व मर्दन करके अपनी नगरी में आकर यौवराज्य पद को प्राप्त करने वाले थे ॥१६७॥ वे माता (कैकेयी) की आज्ञा से वन में चले गये । गङ्गा नदी को पार करके अपनी पत्नी तथा भाई लक्ष्मणजी के साथ चित्रकूट पर्वत पर वे चले

भरतस्तं वने श्रुत्वा जगाम भ्रातरं नयी। तमप्राप्य स्वयं नन्दिग्रामे वासमचीकरत् ॥१६९॥
बालमेतच्छृणुष्वान्यदारण्यकसमुद्भवम् । मुनीनामाश्रमे वासस्तत्र तत्रोपवर्णनम् ॥१७०॥
नासाच्छेदः शूर्पणख्याः खरदूषणनाशनम् । मायामारीचहननं दैत्याद्रामापहारणम्॥१७१॥
वने विरहिणा भ्रान्तं मनुष्यचरितं भृतम् । कबन्धप्रेक्षणं तत्र पम्पायां गमनं तथा ॥१७२॥
हनूमता सङ्गमनमित्येतद्वनसंज्ञितम् ! अपरं च शृणु मुने ! संक्षिप्य कथयाम्यहम्॥१७३॥
सप्ततालप्रभेदश्च बालेर्मारणमद्भुतम् । सुग्रीवे राज्यदानं च नगवर्णनमित्युत् ॥१७४॥
लक्ष्मणात्कर्मसन्देशः सुग्रीवस्य विवासनम्। तथा सैन्यसमुद्देशः सीतान्वेषणमप्युत ॥१७५॥
सम्पातिप्रेक्षणं तत्र वारिधेर्लङ्घनं तथा । परतीरे कपिप्राप्तिः कैष्किन्धं काण्डमद्भुतम्॥१७६॥
सुन्दरं शृणु काण्डं वै यत्र रामकथाद्भुता । प्रतिगेहं परिभ्रान्तिः कपेश्चित्रस्य दर्शनम् ॥१७७॥
सीतासन्दर्शनं तत्र जानक्या भाषणं तथा। वनभङ्गः प्रकुपितैर्बन्धनं वानरस्य च ॥१७८॥
ततो लङ्काप्रज्वलनं वानरैः सङ्गतिस्ततः। रामाभिज्ञानदान्नं च सैन्यप्रस्थानमेव च ॥१७९॥
समुद्रे सेतुकरणं शुकसारणसङ्गतिः । इति सुन्दरमाख्यातं युद्धे सीतासमागमः ॥१८०॥
उत्तरे ऋषिसम्वादो यज्ञप्रारम्भ एव च । तत्रानेका रामकथाः शृण्वतां पापनाशिकाः॥१८१॥
इति षट्काण्डमाख्यातं ब्रह्महत्यापनोदनम् । संक्षेपतो मया तुभ्यमाख्यातं सुमनोहरम् ॥१८२॥

गये॥१६८॥ न्याय के ज्ञाता भरतजी श्रीरामचन्द्रजी को वन में गये हुए सुनकर उनके पास उन्हें लाने के लिए गये । उनको प्राप्त न करके वे स्वयं नन्दीग्राम में निवास करने लगे ॥१६९॥ यह बालकाण्ड की कथा हुयी । अब अरण्यकाण्ड की कथा सुनो । अरण्य काण्ड में उनके विभिन्न मुनियों के निवास का वर्णन है ॥१७०॥ शूर्पणखी के नाक-कान को काटना, खर दूषण आदि का वध, तथा मारीच का वध, रावण नामक दैत्य के द्वारा सीता का हरण, मानुष चरित करते हुए वन में विरही के रूप में श्रीरामचन्द्र का भ्रमण कवन्ध से भेंट, उसके बाद में पम्पासर पर जाना, हनुमानजी से भेंट, यह सब अरण्य काण्ड के अन्तर्गत है । हे मुने ! सुनों मैं संक्षेप में कह रहा हूँ ॥१७१-१७३॥ श्रीराम द्वारा सात ताल वृक्षों का भेदन, बालि का वध, सुग्रीव को राज्य प्रदान करना तथा पर्वत का वर्णन ॥१७४॥ लक्ष्मणजी के द्वारा सुग्रीव को कर्तव्य का सन्देश, सुग्रीव का बाहर निकलना, सेना का वर्णन, सीताजी की खोज ॥१७५॥ सम्पाति से भेंट होना, हनुमानजी का समुद्र पार करना, यहाँ तक किष्किन्धा काण्ड की कथा है ॥१७६॥ अब तुम सुन्दर काण्ड की अद्भुत कथा को सुनो । हनुमानजी का प्रत्येक घर में घूम-घूम कर सीताजी को देखना, वहाँ अद्भुत दर्शन ॥१७७॥ सीताजी का दर्शन होना, हनुमानजी का सीताजी के साथ बाते होना, हनुमानजी द्वारा अशोक वन का विनाश, क्रुद्ध राक्षसों द्वारा हनुमानजी का बाँधा जाना ॥१७८॥ उसके वाद हनुमानजी का लङ्का को जलाना और लौटकर वानरों से मिलना श्रीरामजी को अभिज्ञान प्रदान करना, लङ्का के लिए सेना का प्रस्थान करना ॥१७९॥ समुद्र पर सेतु का निर्माण और शुक तथा सारण का आना । यह सुन्दर काण्ड की कथा है । युद्ध काण्ड में सीता का समागम वर्णित है ॥१८०॥ उत्तर काण्ड में ऋषि के साथ सम्वाद तथा अश्वमेध यज्ञ का प्रारम्भ वर्णित है । उससे श्रीरामजी की अनेक पाप विनाशिनी कथाएँ हैं॥१८१॥ इस तरह से छह काण्डों का वर्णन किया गया है । यह रामायण ब्रह्महत्या का विनाश करने वाला है । इस मनोहर कथा को मैंने तुम्हें संक्षेप में बतलाया ॥१८२॥ इसमें चौबीस हजार श्लोक तथा

चतुर्विंशतिसाहस्रं षट्काण्डपरिचिह्नितम्। तद्वै रामायणं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ।।१८३।।
तच्छुत्वा राघवः प्रीतः पुत्रावाधाय चासने ।
दृढं तौ परिरभ्याथ सीतां सस्मार वल्लभाम् ।।१८४।।

इति श्रीपद्मपुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे रामाश्वमेधे रामायणगानं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।।६६।।

* * *

सड़सठवाँ अध्याय

शेष उवाच

अथ सौमित्रिरागत्य जानकीं नतवान्मुहुः। प्रेमगद्गदया शंसन्वाचं रामप्रणोदिताम्।।१।।
सीता समागतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं विनियान्वितम् ।
तन्मुखाद्रामसन्देशं श्रुत्वोवाच विलज्जिता ।।२।।
सौमित्रे कथमागच्छे रामं त्यक्त्वा महावने। तिष्ठामि रामं स्मरन्ती वाल्मीकेराश्रमेत्वहम् ।।३।।
तस्या मुखोदितं वाक्यं श्रुत्वा सौमित्रिरब्रवीत् ।
मातः ! पतिव्रते ! रामस्त्वामाकारयते मुहुः ।।४।।
पतिव्रता पतिकृतं दोषं नानयते हृदि। तस्मादागच्छ हि मया स्थित्वा स्यन्दन उत्तमे।।५।।
इत्यादिवचनं श्रुत्वा जानकी पतिदेवता। मनो रोषं परित्यज्य तस्थौ सौमित्रिणा रथे।।६।।

छह काण्ड हैं । इसको रामायण कहा गया है । यह महापाप का विनाशक है ।।१८३।। उसको सुनकर श्रीरामजी प्रसन्न होकर अपने दोनों पुत्रों को आसन पर बैठाकर उन दोनों का गाढ़ा लिङ्गन करके सीताजी का स्मरण किए ।।१८४।।

इस तरह श्रीपद्मपुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध वर्णन के प्रसङ्ग में रामायण गान नामक छियासठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६६।।

* * *

लक्ष्मणजी के साथ सीताजी का श्रीरामचन्द्रजी के यज्ञमण्डप में आना और यज्ञ का प्रारम्भ

शेषजी ने कहा— इसके बाद लक्ष्मणजी आकर जानकीजी को बार-बार प्रणाम किए और प्रेम भरी गद्गद वाणी से श्रीरामजी का सन्देश उन्हें सुनाये ।।१।। सीताजी विनीत लक्ष्मणजी को आये हुए देखकर तथा उनके मुख से श्रीरामचन्द्रजी के सन्देश को सुनकर लज्जित हो गयीं और कहीं ।।२।। सौमित्र श्रीरामजी को छोड़कर तुम कैसे महावन में आ गये ? मैं श्रीराम का स्मरण करती हुयी यहाँ वाल्मीकि मुनि के आश्रम में निवास करती हूँ ।।३।। सीताजी की बातों को सुनकर लक्ष्मणजी ने कहा हे पतिव्रते मातः ! श्रीरामजी तुम्हें बार-बार बुला रहे हैं ।।४।। पतिव्रता नारी अपने पति के दोषों पर ध्यान नहीं देती हैं ।

तापसीः सकला नत्वा मुनींश्च निगमोज्ज्वलान् ।
रामं स्मरन्ती मनसा रथे स्थित्वाऽगमत्पुरीम् ॥७॥
क्रमेण नगरीं प्राप्ता महार्हाभरणान्विता। सरयूं सरितं प्राप यत्र रामः स्वयं स्थितः ॥८॥
रथादुत्तीर्य ललिता लक्ष्मणेन समन्विता। रामस्य पादयोर्लग्ना पतिव्रतपरायणा॥९॥
रामस्तामागतां दृष्ट्वा जानकीं प्रेमविह्वलाम्। साध्वि ! त्वया सहेदानीं कुर्वे यज्ञसमापनम् ॥१०॥
वाल्मीकिं सा नमस्कृत्य तथान्यान्विप्रसत्तमान् ।
जगाम मातृपदयोः सन्नतिं कुर्तुमुत्सुका ॥११॥
कौसल्या तामथायान्तीं वीरसूं जानकीं प्रियाम् ।
आशीर्भिरभिसंयुज्य ययौ हर्षमनेकधा ॥१२॥
कैकेयीपदयोर्नम्रां वीक्ष्य वैदेहपुत्रिकम्। भर्त्रा सह चिरं जीव सपुत्रेत्याशिषं व्यधात् ॥१३॥
सुमित्रा स्वपदे नम्रां वीक्ष्य वैदेहपुत्रिकाम् । आशिषं व्यदधात्तस्याः पुत्रपौत्रप्रदायिनीम्॥१४॥
सीता ताः सर्वतो नत्वा रामचन्द्रप्रिया सती ।
परमं हर्षमापन्ना बभूव किल वाडव ! ॥१५॥
समागतां वीक्ष्य पत्नीं रामचन्द्रस्य कुम्भजः ।
सुवर्णपत्नीं धिक्कृत्य तामधाद्धर्मचारिणीम् ॥१६॥
रामस्तदा यज्ञमध्ये शुशुभे सीतया सह। तारयानुगतो यद्वच्छशीव शरदुत्प्रभः ॥१७॥
प्रयोगमकरोत्तत्र काले प्राप्ते मनोरमे। वैदेह्या धर्मचारिण्या सर्वपापापनोदनम्॥१८॥

अतएव इस उत्तम रथ पर बैठकर आप चलें ॥५॥ इस वचन को सुनकर पति को ही देवता मानने वाली जानकीजी मन के क्रोध का परित्याग करके लक्ष्मणजी के साथ रथ पर बैठ गयीं । वेदज्ञ मुनियों तथा सभी तापसियों को नमस्कार करके, मन से श्रीराम का स्मरण करती हुयी वे अयोध्या पुरी में आयीं ॥६-७॥ बहुमूल्य आभरणों से युक्त वे क्रमशः नगर में आकर जहाँ श्रीरामचन्द्रजी स्वयं विद्यमान थे वे उस सरयू तट पर गयीं ॥८॥ रथ से उतर कर लक्ष्मणजी के साथ पतिव्रता सीताजी श्रीरामजी के चरणों में प्रणाम की ॥९॥ श्रीरामचन्द्रजी प्रेम से विह्वल बनी हुयी जानकीजी को देखकर कहे साध्वि ! तुम्हारे साथ ही अब यज्ञ का समापन होगा ॥१०॥ महर्षि वाल्मीकि को नमस्कार करके तथा दूसरे श्रेष्ठ ब्राह्मणों को नमस्कार करके उत्सुक बनी हुयी जानकीजी माताओं के चरणों में प्रणाम करने के लिए गयीं ॥११॥ वीर प्रसविनी जानकीजी को आती हुयी देखकर कौसल्यजी उनको आशीर्वाद देकर अनेक प्रकार के हर्षों का अनुभव की॥१२॥ सीताजी को प्रणाम करती हुयी देखकर कैकेयीजी ने भी आशीर्वाद दियां कि अपने पति के साथ चिरकाल तक जीवित रहो ॥१३॥ अपने पैरों पर गिरी हुयी जानकीजी को देखकर सुमित्राजी ने उनको पुत्र-पौत्र प्रदान करने वाला आशीर्वाद दिया ॥१४॥ हे ब्राह्मण ! श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी सीताजी उन सबों को प्रणाम करके अत्यन्त प्रसन्न हुयीं ॥१५॥ श्रीरामचन्द्र की पत्नी को आयी हुयी देखकर कुम्भजन्मा महर्षि वसिष्ठ ने सुवर्ण पत्नी को हटाकर धर्मचारिणी जानकीजी को बैठाया ॥१६॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजी यज्ञ में सीताजी के साथ उसी तरह सुशोभित हुए जिस तरह शरत् कालीन चन्द्रमा तारा के साथ सुशोभित होते हैं ॥१७॥ समय आने पर उन्होंने धर्माचरण करने वाले जानकीजी के साथ सर्वपापविनाशक यज्ञ को

सीतया सहितं रामं प्रसक्तं यज्ञकर्मणि । निरीक्ष्य जहृषुस्तत्र कौतुकेन समन्विताः ॥१९॥
वसिष्ठं प्राह सुमतिं रामस्तत्र क्रतौ वरे। किं कर्तव्यं मया स्वामिन्नतः परमावश्यकम् ॥२०॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा गुरुः प्राह महामतिः । ब्राह्मणानां प्रकर्तव्या पूजा सन्तोषकारिका ॥२१॥
मरुत्तेन क्रतुः सृष्टः पूर्वं सम्भारसम्भृतः । ब्राह्मणास्तत्र वित्ताद्यैस्तोषिता अभवंस्तदा ॥२२॥
अत्यन्तं वित्तसम्भारं नेतुं तमशकन्नहि । प्राक्षिपन् हिमवद्देशे वित्तभारासहा द्विजाः ॥२३॥
तस्मात्त्वमपि राजाग्र्य लक्ष्मीवान्नृपसत्तम !। देहि दानादि विप्रेभ्यो यथा स्यात्प्रीतिरुत्तमा ॥२४॥
एतच्छ्रुत्वा स राजाग्र्यः पूज्यं मत्त्वा घटोद्भवम् ।
प्रथमं पूजयामास ब्रह्मपुत्रं तपोधनम् ॥२५॥
अनेकरत्नसम्भारैः स्वर्णभारैरनेकधा। देशैर्जनैः परिवृतैरत्यन्तप्रीतिदायकैः ॥२६॥
अगस्त्यं पूजयामास सपत्नीकं मनोरमम् । तथैव रत्नैः स्वर्णैश्च देशैश्च विविधैरपि॥२७॥
व्यासं सत्यवतीपुत्रं तथैव समपूजयत् । च्यवनं भार्यया साकं सुरत्नैः समपूजयत्॥२८॥
अन्यानपि मुनीन्सर्वानृत्विजस्तपसां निधीन्। पूजयामास रत्नौघैः स्वर्णभारैरनेकधा ॥२९॥
अदात्तदाक्रतौ रामो विप्रेभ्यो भूरिदक्षिणाम् ।
लक्षं लक्षं सुवर्णस्यप्रत्येकं त्वग्रजन्मने ॥३०॥
दीनान्धकृपणेभ्यश्च ददौ दानमनेकधा । यथा सन्तोषविहितैर्वित्तै रत्नैर्मनोहरैः ॥३१॥
वासांसि च विचित्राणि भोजनानि मृदूनि च ।
तत्र प्रादाद्यथा शास्त्रं सर्वेषां प्रीतिदायकम् ॥३२॥

श्रीरामचन्द्रजी ने प्रारम्भ किया ॥१८॥ सीताजी के साथ यज्ञ कर्म करने वाले श्रीरामचन्द्रजी को देखकर वहाँ पर विद्यमान सबलोगों ने प्रसन्नता का अनुभव किए ॥१९॥ उस श्रेष्ठ यज्ञ में सुन्दर मति वाले वसिष्ठ महर्षि से श्रीरामचन्द्रजी ने कहा हे स्वामिन् ! अब मुझे कौन सा परमावश्यक कार्य करना चाहिए ॥२०॥ श्रीरामचन्द्रजी की वाणी को सुनकर वसिष्ठजी ने कहा कि ब्राह्मणों की परम सन्तोषप्रद पूजा आपको करनी चाहिए ॥२१॥ प्राचीन काल में मरुत्त ने सम्भारों से परिपूर्ण यज्ञ किया था, उस यज्ञ में उन्होंने ब्राह्मणों को धन आदि से सन्तुष्ट कर दिया था ॥२२॥ बहुत अधिक सम्पत्तियों को वे ब्राह्मण नहीं ले जा सके । वित्त के भार को नहीं सह सकने के कारण उन लोगों ने बहुत अधिक धन सम्पत्ति को हिमालय के सन्निकट फेंक दिया ॥२३॥ अतएव हे राजाओं में श्रेष्ठ ! आप भी ब्राह्मणों को ऐसी सम्पत्ति प्रदान करें कि ब्राह्मणों की अत्यन्त प्रसन्नता हो ॥२४॥ इस बात को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी वसिष्ठजी को पूज्य मानकर उन तपस्वी ब्रह्माजी के पुत्र की सर्वप्रथम पूजा की । रत्नों के अनेक सम्भारों तथा सुवर्ण के अनेक सम्भारों से प्रीति प्रदान करने वाले लोगों से युक्त देशों से सपत्नीक महर्षि वसिष्ठ की पूजा की । उसी तरह रत्नों सुवर्णों तथा देशों के द्वारा उन्होंने सत्यवती के पुत्र व्यास महर्षि की पूजा की, उन्होंने सपत्नीक च्यवन महर्षि की सुन्दर रत्नों से पूजा की ॥२५-२८॥ दूसरे भी सभी मुनियों, सभी ऋत्विजों और तपस्वियों की पूजा श्रीरामचन्द्रजी ने रत्न समूहों तथा सुवर्ण भारों से की ॥२९॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजी ने यज्ञ में ब्राह्मणों को भूमिदान दिया । उन्होंने प्रत्येक ब्राह्मणों को एक-एक लाख सुवर्ण मुद्रा दिया ॥३०॥ दीनों, अन्धों तथा कृपणों को उन्होंने अनेक प्रकार का दान दिया । उन्होंने मनोहर रत्नों के दान से सबों को

हृष्टपुष्टजनाकीर्णं सर्वसत्त्वोपबृंहितम् । अत्यन्तमभवद्धृष्टं पुरं पुंस्त्रीसमावृतम् ।।३३।।
दानं ददन्तं सर्वेषां वीक्ष्य कुम्भोद्भवो मुनिः ।
अत्यन्तपरमप्रीतिं ययौ क्रतुवरे द्विजः ।।३४।।
तदाभिषेकतोयार्थं पानीयममृतोपमम् । आनेतुं च चतुःषष्टिनृपान्सस्त्रीन्समाहृयत् ।।३५।।
रामस्तु सीतया सार्द्धमानेतुमुदकं ययौ। घटेन स्वर्णवर्णेन सर्वालङ्कारशोभया ।।३६।।
सौमित्रिरप्यूर्मिलया माण्डव्या भरतो नृपः । शत्रुघ्नः श्रुतकीर्त्या च कान्तिमत्या च पुष्कलः ।।३७।।
सुबाहुः सत्यवत्या च सत्यवान्वीरभूषया । सुमदस्तत्र सत्कीर्या राज्या च विमलो नृपः ।।३८।।
राजा वीरमणिस्तत्र श्रुतवत्या मनोज्ञया । लक्ष्मीनिधिः कोमलया रिपुतापोऽङ्गसेनया ।।३९।।
विभीषणो महामूर्त्या प्रतापाग्र्यः प्रतीतया। उग्राश्वः कामगमया नीलरत्नोऽधिरम्यया ।।४०।।
सुरथः सुमनोहार्या तथा मोहनया कपिः । इत्यादीन्नृपतीन्विप्रो वसिष्ठः प्राहिणोन्मुनिः ।।४१।।
वसिष्ठः सरयूं गत्वा शिवपुण्यजलाप्लुताम् ।
उदकं मन्त्रयामास वेदमन्त्रेण मन्त्रवित् ।।४२।।
पयः पुनीह्यमुं वाहमुदकेन मनोहृता । यज्ञार्थं रामचन्द्रस्य सर्वलोकैकरक्षितुः ।।४३।।
उदकं तन्मुनिस्पृष्टं सर्वे रामादयो नृपाः । आजह्रुर्मण्डपतले विप्रवर्यैरुपस्तु ते ।।४४।।
पयोभिर्निर्मलैः स्नाप्य वाजिनं क्षीरसन्निभम् ।
मन्त्रेण मन्त्रयामास रामहस्तेन कुम्भजः ।।४५।।

सन्तुष्ट किया ।।३१।। उन्होंने शास्त्रानुकूल सबों को अनेक प्रकार के वस्त्रों तथा मृदु भोजन प्रदान किया जिससे कि सबों को प्रसन्नता हो ।।३२।। उस समय हृष्ट-पुष्ट लोगों से भरे हुए तथा सभी सत्त्वों से भरे हुए स्त्रियों और पुरुषों की बहुत अधिक भीड़ अयोध्या में हुयी ।।३३।। सबों को उस श्रेष्ठ यज्ञ में दान देते हुए देखकर महर्षि अगस्त्य को अत्यन्त प्रसन्नता हुयी ।।३४।। उसके बाद अभिषेक का जल लाने के लिए श्रीरामचन्द्रजी ने चौसठ राजाओं को उनकी पत्नियों के साथ बुलाया ।।३५।। श्रीरामचन्द्रजी सभी अलङ्कारों की शोभा से युक्त सीताजी के साथ सुवर्ण घट से जल लाने के लए गये ।।३६।। लक्ष्मणजी उर्मिलाजी के साथ, राजा भरत को माण्डवीजी के साथ, शत्रुघ्नजी को श्रुति कीर्ति के साथ, पुष्कल को कान्तिमती के साथ ।।३७।। राजा सुबाहु को सत्यवती के साथ, राजा सत्यवान् को वीरभूषा के साथ, राजा सुमद को सत्कीर्ति के साथ, राजा विमल को राज्ञी के साथ ।।३८।। राजा वीरमणि को उनकी सुन्दर पत्नी श्रुतवती के साथ, राजा लक्ष्मीनिधि को कोमला के साथ, राजा रिपुताप को अङ्गसेना के साथ ।।३९।। विभीषण को महामूर्ति के साथ, राजा प्रतापाग्र्य को प्रतीता के साथ, राजा उग्राश्व को कामगमा के साथ, राजा नीलरत्न को अधिरम्या के साथ, राजा सुरथ को सुमनोहारी के साथ, कपि (सुग्रीवजी) को मोहना के साथ इत्यादि सभी राजाओं को महर्षि वसिष्ठ ने जल लाने के लिए भेजा ।।४०-४१।। मन्त्रवेत्ता महर्षि वसिष्ठ ने पुण्य सलिला सरयू में जाकर जल को अभिमन्त्रित किया ।।४२।। उन्होंने कहा— हे जल ! सम्पूर्ण जगत् के एक मात्र रक्षक श्रीरामचन्द्रजी के इस मनोहर अश्व को यज्ञ के लिए पवित्र करो ।।४३।। उन मुनि के द्वारा स्पृष्ट जल को श्रीरामचन्द्रजी आदि राजागण श्रेष्ठ ब्राह्मणों से उपस्कृत मण्डप में लाये ।।४४।। अगस्त्य महर्षि ने श्रीरामचन्द्रजी के हाथ से दुग्ध के समान श्वेत वर्ण के अश्व को स्वच्छ जल से स्नान कराकर ।।४५।।

पुनीहि मां महावाह अस्मिन्ब्रह्मसमाकुले । त्वन्मेथेनाखिला देवा:प्रीणन्तु परितोषिता: ॥४६॥
इत्युक्त्वा स नृपो राम:सीतया सममस्पृशत् ।
तदा सर्वे द्विजाश्चित्रममन्यन्तकुतूहलात् ॥४७॥
परस्परममोचंस्ते यन्नामस्मरणान्नरा:। महापापात्प्रमुच्यन्ते स राम:किं वदत्यहो ॥४८॥
इत्युक्तवति भूमीशे रामे कुम्भोद्भवो मुनि:। करवालं चाभिमन्त्र्य ददौ रामकरे मुनि: ॥४९॥
करवाले धृते स्पृष्टे रामेण सहय:क्रतौ । पशुत्वं तु विहायाशु दिव्यरूपमपद्यत ॥५०॥
विमानवरमारूढश्चाप्सरोभि:समन्तत: । चामरैर्वीज्यमानश्च वैजयन्त्या विभूषित: ॥५१॥
तदा तं वाजितां त्यक्त्वा दिव्यरूपधरं वरम् ।
वीक्ष्य लोका:क्रतौ सर्वे विस्मयं प्राप्नुवंस्तदा ॥५२॥
तदा राम:स्वयं जानञ्ज्ञापयन्सर्वतो नरान् । पप्रच्छ दिव्यरूपं तं सुरं परमधार्मिक: ॥५३॥
कस्त्वं द्रिव्यवपु: प्राप्तं कस्मात्त्वं वाजितां गत: ।
कथं सुरस्त्रीसहित:किं चिकीर्षसि तद्वद ॥५४॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा देव:प्रोवाच भूमिपम् । हसन्मेघरवां वाणीमवदत्सुमनोहराम्॥५५॥
तवाज्ञातं न सर्वत्र बाह्याभ्यन्तरचारिण: । तथापि पृच्छते तुभ्यं कथयामि यथातथम् ॥५६॥
अहं पुरा भवे राम द्विज:परमधार्मिक: । अचरं प्रतिकूलं वै वेदस्य रिपुतापन॥५७॥
कदाचिद्धूतपापायास्तीरेऽहं गतवान्पुरा । अनेकवृक्षललिते सर्वत्र सुमनोरमे॥५८॥

हे महावाह ! मुझको इस ब्रह्म समूह में आप पवित्र बना दें । सर्वत्र विद्यमान तुम पवित्र के द्वारा सभी देवता प्रसन्न हो ॥४६॥ इसतरह से कहकर श्रीरामचन्द्रजी ने उसको सीताजी के साथ स्पर्श किया । सभी ब्राह्मण उसको आश्चर्य जनक माने ॥४७॥ वे सोच रहे थे कि जिनके नाम का स्मरण करने मात्र से मनुष्य महान् पाप से मुक्त हो जाता है, वे राम यह क्या कह रहे हैं ॥४८॥ इस तरह से राजा रामचन्द्र के कहने पर महर्षि अगस्त्य ने अभिमन्त्रित तलवार को श्रीरामचन्द्रजी के हाथ में दिया ॥४९॥ श्रीरामचन्द्रजी ने ज्यों ही तलवार अपने हाथ में लिया; उसी समय यज्ञ में विद्यमान वह अश्व अपने पशुत्व का परित्याग करके देवत्व को प्राप्त कर लिया ॥५०॥ वह श्रेष्ठ अप्सराओं से सुशोभित श्रेष्ठ विमान पर चढकर, चामर से व्यजन किया जाता हुआ तथा वैजयन्ती से सुशोभित था ॥५१॥ उस समय उस अशवत्व का परित्याग करके दिव्य रूप को धारण करने वाले अश्व को देखकर यज्ञ में विद्यमान सभी लोग आश्चर्यित हो गये ॥५२॥ उस समय परम धार्मिक श्रीरामचन्द्रजी स्वयं जानते हुए भी दूसरे लोगों को वतलाने के लिए उस दिव्य रूप धारी देवता से पूछे ॥५३॥ दिव्य शरीरधारी आप कौन है ? और कैसे अश्व हो गये थे ? देव स्त्रियों के साथ कैसे हैं ? और क्या करना चाहते हैं ?॥५४॥ श्रीरामचन्द्रजी के वचन को सुनकर उस देवता ने उनसे हँसते हुए मेघ के समान गम्भीर तथा मनोहर वाणी में कहा ॥५५॥ आप सबों के भीतर बाहर व्याप्त हैं । आपको कुछ भी अज्ञात नहीं है । फिर भी आप पूछते हैं, अतएव मैं कह रहा हूँ ॥५६॥ हे राजन्! पूर्वजन्म में मैं परम धार्मिक ब्राह्मण था । हे शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले ! मैंने वेद विरुद्ध आचरण किया ॥५७॥ एक बार मैं धूतपापा नदी के तट पर गया वह अत्यन्त मनोरम और अनेक वृक्षों से सुशोभित तट था ॥५८॥ वहाँ पर स्नान करके, पितरों का तर्पण करके तथा विधिपूर्वक दान देकर

तत्र स्नात्वा पितॄंस्तृप्त्वा दानं दत्त्वा यथाविधि ।
ध्यानं तव महाबाहो कृतवान्वेदसंमितम् ॥५९॥
तदा जनाःसमायाता बहवस्तत्र भूपते !। तेषां प्रवञ्चनार्थाय दम्भमेनमकारिषम् ॥६०॥
अनेकक्रतुसम्भारैः पूर्णमजिरमुत्तमम् । वासोभिश्छादितं रम्यं चषालादियुतं महत् ॥६१॥
अग्निहोत्रोद्भवोधूमःसर्वतो नभसोऽङ्गणम्। चकार रम्यमतुलं चित्रकारिवपुर्धरः ॥६२॥
अनेकतिलकश्रीभिःशोभिताङ्गो महत्तपाः। दर्भशोभःसमित्पाणिर्दम्भो मूर्तिधरःकिमु ॥६३॥
दुर्वासास्तत्र स्वच्छन्दं पर्यटञ्जगतीतलम् । प्राप तत्र महातेजा धूतपाप सरित्तटे ॥६४॥
ददर्श मां दम्भकरं मौनधारिणमग्रतः । अनर्घ्यकरमुन्मत्तमस्वागतवचःकरम् ॥६५॥
दृष्ट्वाऽतीव क्रुधाक्रान्तः समुद्र इव पर्वणि ।
शशापासौ मुनिस्तीव्रो दम्भिनं मां महामतिः ॥६६॥
दम्भं करोषि यत्तीरे सरितस्त्वं सुदुर्मते । तस्मात्प्राप्नुहि निर्वाच्यं पशुत्वं तापसाधम्॥६७॥
शापं प्रदत्तं संश्रुत्य दुःखितोऽहं तदाऽभवम् ।
अग्राहिषं पदे तस्या मुनेर्दुर्वाससःकिल ॥६८॥
तदा मे कृतवान्राम द्विजोऽनुग्रहमुत्तमम् । वाजितां प्राप्नुहि मखे राजराजस्य तापस !॥६९॥
पश्चात्तद्धस्तसम्पर्काद्याहि तत्परमं पदम् । दिव्यं वपुर्मनोहारि धृत्वा दम्भविवर्जितम्॥७०॥
तेन शापोऽपि सन्दिष्टो ममानुग्रहतां गतः। यदहं तव हस्तस्य स्पर्शं प्राप्तो मनोरमम् ॥७१॥
यदेव राम देवादिदुर्लभं बहुजन्मभिः। तत्तेऽहं करजस्पर्शं प्राप्तवानिह दुर्लभम्॥७२॥

वेदानुकूल मैंने आपका ध्यान किया ॥५९॥ उस समय वहाँ पर बहुत से लोग आये, उन लोगों से छल करने के लिए मैंने यह दम्भ किया था ॥६०॥ यज्ञ की अनेक सामग्रियों से परिपूर्ण आङ्गन को मैंने वस्त्रों से तथा मनोहर ढंग से छाया था, उसमें चषाल आदि विद्यमान थे । अद्भुत शरीर धारण किए हुए मैंने अग्निहोत्र जन्य धूम से आकाश को भर दिया ॥६१-६२॥ अनेक तिलकों से सुशोभित अङ्ग वाला महातपस्वी मैं जिनके हाथ में कुश लिए हुए मूर्तिमान दम्भ के समान बना था॥६३॥ महर्षि दुर्वासा अपनी इच्छा के अनुसार पृथिवी पर पर्यटन करते हुए धूतपापा नदी के तट पर आ गये ॥६४॥ उन्होंने अपने सामने दम्भी तथा मौन धारण किए हुए मुझे देखा । मैंने न तो उनका स्वागत किया और न अर्घ्य प्रदान किया तथा मैं उन्मत्त सा बना था ॥६५॥ मुझे देखकर पूर्णिमा के दिन लहराने वाले समुद्र के समान वे महामति अत्यन्त क्रोध करके मुझ दम्भी को शाप दे दिए ॥६६॥ हे ताप साधम दुष्ट ! तुम नदी के तट पर दम्भ कर रहे हो अतएव तुम अवर्णनीय पशुत्व को प्राप्त करोगे ॥६७॥ उस शाप को सुनकर मैं दुःखी हो गया और महर्षि दुर्वासा के पैरों को मैंने पकड़ लिया ॥६८॥ हे रामजी ! उसके बाद उन्होंने मुझ पर कृपा करके कहा कि तपस्विन् ! राजाओं के राजा श्रीरामचन्द्रजी के यज्ञ का तुम अश्व होओंगे ॥६९॥ उसके वाद उनके हाथ का सम्पर्क होने से तुम दिव्य तथा मनोहर दम्भ रहित शरीर धारण करके परमपद को प्राप्त करोगे ॥७०॥ इस तरह से उनके द्वारा अभिशप्त होकर उनके द्वारा निर्दिष्ट अनुग्रह मैंने प्राप्त कर लिया, क्योंकि मैंने आपके हाथों का मनोहर स्पर्श प्राप्त कर लिया है ॥७१॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! यह देवताओं आदि के लिए अनेक जन्मों के द्वारा भी दुर्लभ है । मैंने आप के हाथो का दुर्लभ स्पर्श प्राप्त कर लिया है ॥७२॥ हे

आज्ञापय महाराज ! त्वत्प्रसादादहं महत्। गच्छामि शाश्वतं स्थानं तव दुःखादिवर्जितम् ॥७३॥
न यत्र शोको न जरा न मृत्युः कालविभ्रमः ।
तत्स्थानं देव गच्छामि त्वत्प्रसादान्नराधिप ! ॥७४॥
इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य विमानवरमारुहत्। अनेकरत्नखचितं सर्वदेवाभिवन्दितम् ॥७५॥
गतोऽसौ शाश्वतं स्थानं रामपादप्रसादतः। पुनरावृत्तिरहितं शोकमोहविवर्जितम् ॥७६॥
तेन तत्कथितं श्रुत्वा रामं ज्ञात्वेतरे जनाः। विस्मयं प्रापिरे सर्वे परस्परमुदुन्मदाः ॥७७॥
शृणु द्विज महाबुद्धे दम्भेनापि स्मृतो हरिः ।
ददाति मोक्षं सुतरां किंपुनर्दम्भवर्जनात् ॥७८॥
यथा कथञ्चिद्रामस्य कर्तव्यं स्मरणं परम्। येन प्राप्नोति परमं पदं देवादिदुर्लभम्॥७९॥
तच्चित्रं वीक्ष्य मुनयः कृतार्थं मेनिरे निजम् ।
यद्रामचरणप्रेक्षा करस्पर्शपवित्रितम् ॥८०॥
गते तस्मिन्सुरे स्वर्गं हयरूपधरे पुरा। उवाच रामस्तपसां निधीन्वेदविदुत्तमान्॥८१॥
किं कर्तव्यं मया ब्रह्मन्हयो नष्टो गतःसुखम् ।
होमः कथं पुरो भावी सर्वदैवततर्पकः ॥८२॥
यथा स्यात्सुरसन्तृप्तिर्यथा मे मख उत्तमः ।
तथा कुर्वन्तु मुनियो यथा मे स्याद्विधिश्रुतम् ॥८३॥
इति वाक्यं समाश्रुत्य जगाद मुनिसत्तमः। वसिष्ठः सर्वदेवानां चित्ताभिज्ञानकोविदः॥८४॥
कर्पूरमाहर क्षिप्रं येन देवाः स्वयं पुरा। प्राप्य हव्यं ग्रहीष्यन्ति मद्वाक्यप्रेरिताधुना ॥८५॥

महाराज ! आप आज्ञा दें, आपकी कृपा से मैं दुःख आदि से रहित आपके शाश्वत स्थान में जा रहा हूँ॥७३॥ हे देव ! हे नराधिप ! जहाँ शोक, जरा, मृत्यु तथा कालविपर्यास आदि कुछ भी नहीं होता है मैं उस स्थान में जाता हूँ ॥७४॥ इस तरह से कहकर उसने श्रीभगवान् की परिक्रमा की और उसके पश्चात् सभी देवताओं से वन्दित तथा अनेक रत्नों से जटित, श्रेष्ठ विमान पर आरूढ़ हो गया ॥७५॥ उसके द्वारा कही हुयी उस बात को सुनकर दूसरे लोग श्रीरामचन्द्रजी को जानकर परस्पर में आनन्दित होकर आश्चर्यित हो गये ॥७७॥ हे महाबुद्धिमान द्विज (वात्स्यायन) ! दम्भ पूर्वक भी श्रीहरि का स्मरण करने पर मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है, यदि विना दम्भ के श्रीहरि का स्मरण किया जाय तो फिर क्या कहना है ?॥७८॥ जिस किसी भी प्रकार से हो सके श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करना चाहिए, ऐसा करने वाला व्यक्ति देवताओं आदि के लिए भी दुर्लभ परमपद को प्राप्त करता है ॥७९॥ उस अद्भुत घटना को देखकर मुनियों ने भी अपने को कृतकृत्य माना; क्योंकि वे श्रीरामचन्द्रजी के चरणों का दर्शन और उनके हाथों का स्पर्श प्राप्त करके पवित्र हो गये थे ॥८०॥ अश्व रूप उस देवता के स्वर्ग चले जाने पर श्रीरामचन्द्रजी श्रेष्ठ वेदज्ञ ऋषियों से कहे ॥८१॥ हे ब्रह्मन् ! मुझे क्या करना चाहिए ? अश्व तो नष्ट होकर सुख प्राप्त कर लिया अब सभी देवताओं को तृप्त करने वाला होम कैसे होगा ?॥८२॥ जिससे कि देवता तृप्त हो जायँ और मेरा उत्तम यज्ञ पूर्ण हो जाय आपलोग विधि के अनुसार उसे करें ॥८३॥ इस वाक्य को सुनकर देवताओं के चित्त को जानने वाले मुनियों में श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठ ने कहा ॥८४॥ आप कर्पूर मंगाइये, उससे मेरे वाक्यों द्वारा

इति वाक्यं समाकर्ण्य रामः क्षिप्रमुपाहरत् ।
कर्पूरं बहुदेवानां प्रीत्यर्थं बहुशोभनम् ॥८६॥
तदा मुनिः प्रहृष्टात्मा देवानाह्वयदद्भुतान्। ते सर्वे तत्क्षणात्प्राप्ताःस्वपरीवारसंवृताः ॥८७॥

इति श्रीपद्म महापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसंवादे रामाश्वमेधे
यज्ञप्रारम्भो नाम सप्तषष्ठितमोऽध्यायः॥६७॥

* * *

अड़सठवाँ अध्याय

शेष उवाच

इन्द्रस्तत्र हविर्मृष्टं रामचन्द्रेण वीक्षितम्। परिस्वाद क्रतौ तृप्तिं न प्राप सुरसंयुतः ॥१॥
नारायणो महादेवो ब्रह्मा तत्र चतुर्मुखः। वरुणश्च कुबेरश्च तथाऽन्ये लोकपालकाः ॥२॥
तत्रास्वाद्य हविः स्निग्धं वसिष्ठेन परिष्कृतम् ।
तत्र पुनर्हि विप्रेन्द्राः क्षुधार्ता इव भोजनात् ॥३॥
सर्वान्देवांश्च सन्तर्प्य हविषा करुणानिधिः। वसिष्ठप्रेरितः सर्वमिति कर्तव्यमाचरत्॥४॥
ब्राह्मणा दानसन्तुष्टाः हविस्तुष्टाः सुरा वराः ।
तृप्ताः सर्वे स्वकं भागं गृहीत्वा स्वालयं ययुः ॥५॥

प्रेरित होकर सभी देवता हविष्य को ग्रहण करेंगे ॥८५॥ इस बात को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बहुत अधिक सुन्दर कर्पूर मंगाये जिससे कि देवताओं को प्रसन्नता हो ॥८६॥ उस समय प्रसन्न होकर देवताओं का आवहन किए और वे देवता भी अपने परिवार के साथ उसी क्षण आ गये ॥८७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के शेषवात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के प्रकरण में यज्ञारम्भ वर्णन नामक सड़सठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६७॥

* * *

श्रीरामचन्द्रजी का यज्ञान्त स्नान

शेषजी ने कहा— उस यज्ञ में श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा दृष्ट और स्पृष्ट हविष्य का देवताओं के साथ आस्वाद ग्रहण करके इन्द्र तृप्त नहीं हुए ॥१॥ वहाँ पर भगवान् नारायण, महादेवजी, चतुर्मुख ब्रह्माजी, वरुण, कुबेर तथा दूसरे लोकपाल ॥२॥ उस यज्ञ में महर्षि वसिष्ठ के द्वारा परिष्कृत स्निध हविष्य का आस्वादन करके हे विप्रेन्द्र भोजन करने के बाद भी भूखे के ही तरह बने रहे ॥३॥ करुणासागर श्रीरामचन्द्रजी सभी देवताओं को हविष्य के द्वारा तृप्त करके महर्षि वसिष्ठ के द्वारा समस्त क्रियाओं को पूर्ण किए ॥४॥ बाह्मण दान से सन्तुष्ट हो गये तथा हविष्य से सन्तुष्ट सभी देवता अपने-अपने भाग को ग्रहण करके अपने

ऋषिभ्यो होतृमुख्येभ्यः प्रादाद्राज्यं चतुर्दिशम् ।
सन्तुष्टास्ते द्विजा राममाशीर्भिरददुः शुभम् ॥६॥
पूर्णाहुतिं ततः कृत्वा वसिष्ठः प्राह सुस्त्रियः ।
वर्धापयन्तु भूमीशं यागपूर्तिकरं परम् ॥७॥
तद्वाक्यं ताःस्त्रियः श्रुत्वा लाजैरवाकिरन्मुदा ।
लावण्यजितकन्दर्पं महामणिविभूषितम् ॥८॥
ततोऽवभृथस्नानार्थं प्रेरयामास भूमिपम् । ययौ रामः सह स्वीयैः सरयूतीरमुत्तमम् ॥९॥
अनेकराजकोटीभिः परीतः पादचारिभिः । जगाम ससरिच्छ्रेष्ठां पक्षिवृन्दसमाकुलाम्॥१०॥
तारापतिरिवस्वाभिभार्याभिर्वृतउत्प्रभः । विरोचते तथा तद्वद्रामो राजगणैर्वृतः ॥११॥
तदुत्सवं समाज्ञाय ययुर्लोकास्त्वरायुताः । सीतापतिमुखालोकनिश्चलीभूतलोचनाः ॥१२॥
राजेन्द्रं सीतया साकं गच्छन्तं सरितम्प्रति । विलोक्य मुदिता लोकाश्चिरं दर्शनलालसाः ॥१३॥
अनेकनटगन्धर्वा गायन्तो यश उज्ज्वलम् । अनुजग्मुर्महीशानं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥१४॥
नर्तक्यस्तत्र नृत्यन्त्यः क्षोभयन्त्यः पतेर्मनः । जलयन्त्रैश्च सिञ्चन्त्यो ययुः श्रीरामसेवनम् ॥१५॥
महाराजं विलिम्पन्त्यो हरिद्राकुङ्कुमादिभिः । परस्परं प्रलिम्पन्त्यो मुदं प्रापुर्महत्तराम्॥१६॥
कुचयुग्मोपरिन्यस्तमुक्ताहारसुशोभिताः । श्रवणद्वन्द्वसंमृष्टस्वर्णकुण्डललक्षिताः ॥१७॥
अनेकनरनारीभिः सङ्कीर्णं मार्गमाचरन् । यथा वत्सरितं प्राप शिवपुण्यजलाप्लुताम् ॥१८॥

घर चले गये ॥५॥ मुख्य होता ऋषियों ने भगवान् श्रीरामचन्द्र को आशीर्वाद प्रदान किया ॥६॥ उसके पश्चात् पूर्णाहुति प्रदान करके महर्षि वसिष्ठ ने सौभाग्यवती स्त्रियों को राजा रामचन्द्रजी के याग की पूर्ति करने वाले वर्धापन को करने के लिए कहा ॥७॥ उनके वाक्यों को सुनकर उन स्त्रियों ने महामणि से अलंकृत तथा अपने सौन्दर्य से कामदेव को जीत लेने वाले श्रीरामचन्द्रजी के ऊपर लावा छींटा ॥८॥ उसके बाद महर्षि ने श्रीरामचन्द्रजी को अवभृभ स्नान करने के लिए भेजा और श्रीरामचन्द्रजी अपने लोगों के साथ सरयूतट पर आये ॥९॥ उनके साथ अनेक करोड़ राजागण पैदल चल रहे थे । भगवान् श्रीराम पक्षिसमूह से परिपूर्ण श्रेष्ठ नदी के तट पर गये ॥१०॥ जिस तरह ताराओं से घिरे हुए चन्द्रमा सुशोभित होते हैं; उसी तरह राजाओं से घिरे हुए श्रीरामचन्द्रजी की शोभा हो रही थी ॥११॥ उस उत्सव को सुनकर सभी लोग वहाँ शीघ्रता से पहुँच गये और वे निर्निमेष नेत्रों से सीतापति रामचन्द्रजी के मुख को देखते रहे॥१२॥ दीर्घ काल से दर्शन के अभिलाषी लोग श्रीसीताजी के साथ रामचन्द्रजी को सरयू नदी जाते हुए देखकर प्रसन्न हो गये ॥१३॥ अनेक नट एवं गन्धर्व उनके उत्तम यश का गान कर रहे थे । वे सभी लोगों के द्वारा नमस्कृत पृथिवीपति श्रीरामचन्द्रजी के पीछे चल रहे थे ॥१४॥ नृत्य करती हुयी नर्तकियाँ अपने पति के मन को क्षुब्ध बना रही थीं । वे जल यन्त्र से सिञ्चन करती हुयी श्रीरामचन्द्रजी की सेवा में लगी थीं ॥१५॥ वे महाराज श्रीराम को हल्दी तथा कुङ्कुम आदि लगा रही थीं, वे आपस में भी एक दूसरे को लगाकर अत्यन्त प्रहृष्ट होती थीं ॥१६॥ अपने स्तनों पर मोती के हार को धारण की हुयी वे सुशोभित होती थीं और अपने कानों में चमकते हुए सुवर्ण के कुण्डलों को धारण की थीं ॥१७॥ अनेक पुरुषों से भरे हुए मार्ग में चलते हुए श्रीरामचन्द्रजी पवित्र जल से परिपूर्ण नदी के तट पर पहुँच गये ॥१८॥ वसिष्ठ

तत्र गत्वा स वैदेह्या रामः कमलोचनः । प्रविवेश जलं पुण्यं वसिष्ठादिभिरन्वितः ।।१९।।
अनुप्रविविशुः सर्वे राजानो जनतास्तथा। तत्पादरजसा पूतजलं लोकैकवन्दितम् ।।२०।।
परस्परं प्रसिञ्चन्तो जलयन्त्रैर्मनोरमैः । सुशोणनयनाः सर्वे हर्षं प्रापुर्मनोऽधिकम् ।।२१।।
सरामः सीतया सार्धं चिरं पुण्यजलप्लवे । क्रीडित्वा जलकल्लोलैर्निरगाद्धर्मसंयुतः ।।२२।।
दुकूलवासाः सकिरीटकुण्डलः केयूरशोभावरकङ्कणान्वितः ।
कन्दर्पकोटिश्रियमुद्वहन्नृपो राजाग्र्यवर्यैरूपसंस्तुतो बभौ ।।२३।।
स यागयूपं वरवर्णशोभितं कृत्वा सरित्तीरवरे महामनाः ।
त्रैलोक्यलोकश्रियमाप ह्यद्भुतामन्यैर्दुरापां नृपतिर्भुजैर्निजैः ।।२४।।
एवं जनकपुत्र्याऽसौ हयमेधत्रयं चरन् । त्रैलोक्ये कीर्तिमतुलां प्राप देवैः सुदुर्लभाम् ।।२५।।
एवंते वर्णितं तात यत्पृष्टो रामसत्कथाम् । विस्तृतः कथितो मेधो भूयः किं पृच्छसे द्विज ।।२६।।
यः शृणोति हरेर्भक्त्या रामचन्द्रस्य सन्मखम् ।
ब्रह्महत्यां क्षणात्तीर्त्वा ब्रह्मशाश्वतमाप्नुयात् ।।२७।।
अपुत्रः लभते पुत्रान्निर्धनो धनमाप्नुयात् । रोगार्तो मुच्यते रोगाद्वद्धो मुच्येत बन्धनात् ।।२८।।
यत्कथाश्रवणाद्दुष्टः श्वपचोऽपि परं पदम् । प्राप्नोति किमुविप्राग्र्यो रामभक्तिपरायणः ।।२९।।
रामं स्मृत्वा महाभागं पापिनः परमं पदम् । प्राप्नुयुः परमं स्वर्गं शक्रदेवादिदुर्लभम् ।।३०।।
ते धन्या मानवा लोके ये स्मरन्ति रघूत्तमम् ।
ते क्षणात्संसृतिं तीर्त्वा गच्छन्ति सुखमव्ययम् ।।३१।।

आदि महर्षियों के साथ जाकर श्रीरामचन्द्रजी सीताजी के साथ जल में प्रवेश किए ।।१९।। उनके पीछे सभी राजागण और जनता भी भगवान् श्रीराम के चरणों की धूलि से पवित्र तथा सभी लोकों से वन्दित जल में प्रवेश किए ।।२०।। वे मनोहर जल यन्त्रों से एक दूसरे पर जल डाल रहे थे । सबों के नेत्र सुन्दर और लाल थे । वे मन ही मन अत्यधिक हर्षित थे ।।२१।। सीताजी के साथ पवित्र जल प्रवाह में जल उछालने की क्रीड़ा देर तक करने के बाद श्रीरामचन्द्रजी बाहर आये ।।२२।। वस्त्रों को धारण किए हुए किरीट, कुण्डल, केयूर तथा कङ्कण से सुशोभित करोड़ों कामदेवों की शोभा को धारण करने वाले श्रीरामचन्द्रजी बड़े-बड़े राजाओं के द्वारा संस्तुत होकर सुशोभित हुए ।।२३।। महामनस्वी श्रीरामचन्द्रजी सरयू तट पर सुन्दर रङ्गों से सुशोभित यज्ञस्तम्भ को अपने हाथों स्थापित करके दूसरे राजाओं के लिए दुष्प्राप्य अद्भुत त्रैलोक्य की शोभा को प्राप्त किए ।।२४।। इस तरह से श्रीजानकीजी के साथ तीन अश्वमेध यागों को करके भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अतुलनीय यश को प्राप्त किए ।।२५।। हे तात ! आपने जो श्रीरामकी सत्कथा को पूछा था उसका वर्णन मैंने कर दिया । मैंने उसका विस्तार से वर्णन किया है, अव आप क्या पूछ रहे हैं ?।।२६।। जो भी व्यक्ति भक्ति पूर्वक श्रीरामचन्द्रजी के यज्ञ की कथा का श्रवण करता है वह उसी क्षण ब्रह्महत्या से मुक्त होकर शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त करता है ।।२७।। पुत्रहीन पुत्र को प्राप्त कर लेता है, निर्धन धन को प्राप्त कर लेता है । रोगी रोग से मुक्त हो जाता है और वद्ध व्यक्ति वन्धन से मुक्त हो जाता है।।२८।। जिसको सुनने मात्र से दुष्ट चाण्डाल भी परम पद को प्राप्त करता है तो फिर भक्ति से युक्त ब्राह्मण के विषय में क्या कहना है ?।।२९।। श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करके पापी जीव भी इन्द्र तथा

प्रत्येकमक्षरं ब्रह्महत्यावंशदवानलः । तं यः श्रावयते धीमास्तं गुरुं सम्प्रपूजयेत् ॥३२॥
श्रुत्वा कथां वाचकाय गवां द्वन्द्वं प्रदापयेत् ।
सपत्नीकाय सम्पूज्य वस्त्रालङ्कारभोजनैः ॥३३॥
कुण्डलाभ्यां विराजन्त्यौ मुद्रिकाभिरलङ्कृते ।
रामसीते स्वर्णमय्यौ प्रतिमे शोभने वरे ॥३४॥
कृत्वा तु वाचकायैव दातव्ये भोद्विजोत्तम । तस्य देवाश्च पितरो वैकुण्ठं प्राप्नुयुस्तदा ॥३५॥
त्वया पृष्टा रामकथा मया ते कथिता पुरा ।
किमन्यत्कथ्यतां ब्रह्मन्पुरतस्तव धीमतः ॥३६॥
शृण्वन्ति ये कथामेतां ब्रह्महत्यौघनाशिनीम् ।
ते यान्ति परमं स्थानं यच्च देवैः सुदुर्लभम् ॥३७॥
गोघ्नश्चापि सुतघ्नश्च सुरापो गुरुतल्पगः । क्षणात्पूतो भवत्येव नात्र संशयितुं क्षमम्॥३८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शेषवात्स्यायनसम्वादे
रामाश्वमेधश्रवणपठनपुण्यवर्णनं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥
इति रामाश्वमेधः समाप्तः

* * *

देवताओं के लिए दुष्प्राप्य परम पद को प्राप्त कर लेते हैं ॥३०॥ वे मनुष्य धन्य हैं जो श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करते हैं वे क्षण भर में ही संसार को पार करके मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं ॥३१॥ इसका (रामकथा का) प्रत्येक अक्षर ब्रह्महत्या समूह के लिए दावाग्नि के समान है । इसको सुनने वाले बुद्धिमान पुरुष को गुरु की पूजा करनी चाहिए ॥३२॥ इस कथा को सुनकर सपत्निक कथा वाचक को वस्त्र, अलङ्कार तथा भोजन से पूजा करके दो गायें प्रदान करे ॥३३॥ कुण्डलों से सुशोभित तथा अङ्गूठियों से अलंकृत सुवर्ण निर्मित राम सीता की सुन्दर मूर्ति को बनाकर वाचक को जो प्रदान करता है, उसके देवता और पितृगण वैकुण्ठ में चले जाते हैं ॥३४-३५॥ हे ब्रह्मन् ! पहले तुमने रामकथा पूछा था उसे मैंने तुम्हें सुना दिया अब बतलाओं मैं तुम्हें क्या सुनाऊँ ॥३६॥ जो लोग ब्रह्महत्याओं को विनष्ट करने वाली रामकथा का श्रवण करते हैं वे देवताओं के लिए भी दुर्लभ श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करते हैं ॥३७॥ इस कथा को सुनने वाले गो हत्यारे, पुत्र को मारने वाले, तथा गुरु की शय्या पर सोने वाले तथा मद्यप भीक्षण भर में पवित्र हो जाते हैं, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥३८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शेष वात्स्यायन संवादान्तर्गत रामाश्वमेध के सुनने और पढ़ने के पुण्य का वर्णन नामक अड़सठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६८॥

इस तरह रामाश्वमेध का प्रकरण सम्पूर्ण हो गया ।

* * *

उनहत्तरवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

सम्यक्छुतो महाभागत्वत्तोरामाश्वमेधकः । इदानीं वद माहात्म्यं श्रीकृष्णस्य महात्मनः ॥१॥

सूत उवाच

श्रृण्वन्तु मुनिशार्दूलाः श्रीकृष्णचरितामृतम् । शिवा पप्रच्छ भूतेशं यत्तद्वः कीर्तयाम्यहम् ॥२॥

एकदा पार्वती देवी शिवं संस्निग्धमानसा ।
प्रणयेन नमस्कृत्य प्रोवाच वचनं त्विदम् ॥३॥

पार्वत्युवाच

अनन्तकोटिब्रह्माण्डे तद्बाह्याभ्यन्तरस्थितेः । विष्णोः स्थानं परं तेषां प्रधानं वरमुत्तमम् ॥४॥

यत्परं नास्ति कृष्णस्य प्रियं स्थानं मनोरमम् ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महाप्रभो ॥५॥

ईश्वर उवाच

गुह्याद्गुह्यतरं पुण्यं परमानन्दकारकम् । अत्यद्भुतं रहः स्थानमानन्दं परमं हितम् ॥६॥
दुर्लभानां च परमं दुर्लभं मोहनं परम् । सर्वशक्तिमयं देवी सर्वस्थानेषु गोपितम् ॥७॥
सात्वतां स्थानमूर्द्धन्यं विष्णोरत्यन्तदुर्लभम् । नित्यं वृन्दावन नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थितम् ॥८॥
पूर्णब्रह्मसुखैश्वर्यं नित्यमानन्दमव्ययम् । वैकुण्ठादि तदंशांशं स्वयं वृन्दावनं भुवि ॥९॥
गोलोकैश्वर्यं यत्किञ्चिद्गोकुले तत्प्रतिष्ठितम् । वैकुण्ठवैभवं यद्वै द्वारकायां प्रतिष्ठितम् ॥१०॥
यद्ब्रह्मपरमैश्वर्यं नित्यं वृन्दावनाश्रयम् । कृष्णधामपरं तेषां वनमध्ये विशेषतः ॥११॥

श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे महाभाग ! आपने हमलोगों को रामाश्वमेध की कथा को अच्छी तरह से सुनाया अब आप हमलोगों को महात्मा श्रीकृष्ण के माहात्म्य को सुनायें ॥१॥ **सूतजी ने कहा**— हे मुनिवर्यो ! आपलोग सुनें । पार्वतीजी ने जो भगवान् शिव से पूछा था । उसे मैं आपलोगों को सुना रहा हूँ ॥२॥ एक बार पार्वती देवी ने अत्यन्त स्नेहिल मन से प्रेम पूर्वक शङ्करजी को प्रणाम करके पूछा ॥३॥ **पार्वतीजी ने कहा**— अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों में उसके भीतर तथा बाहर व्याप्त होने के कारण भगवान् विष्णु का जो सर्वोत्तम स्थान है ॥४॥ भगवान् श्रीकृष्ण का उससे प्रिय और मनोहर कोई दूसरा स्थान नहीं है । हे महाप्रभो ! मैं उसको पूर्णरूप से सुनना चाहती हूँ उसे आप बतलाएँ ॥५॥ **भगवान् शिव ने कहा**— हे देवि ! वह स्थान परमानन्द स्वरूप, अत्यन्त गोपनीय, पवित्र अत्यन्त अद्भुत तथा एकान्त है ॥६॥ दुर्लभों में भी दुर्लभ अत्यन्त मोहक, सर्वशक्तिमय तथा सभी स्थानों में गोपनीय है ॥७॥ यह भागवतों के लिए सर्वश्रेष्ठ भगवान् विष्णु का स्थान है । वह अत्यन्त दुर्लभ है । उसका नाम नित्य वृन्दावन है । वह ब्रह्माण्ड के ऊपर स्थित है ॥८॥ वह ब्रह्म के सुख तथा ऐश्वर्य से परिपूर्ण, नित्य, आनन्द स्वरूप तथा अव्यय है । वैकुण्ठ आदि उसके अंश के भी अंश है जो वृन्दावन रूप से पृथिवी पर विद्यमान है ॥९॥ गोलोक का जो कुछ भी ऐश्वर्य है । वह गोकुल में विद्यमान है । वैकुण्ठ का जो वैभव है वह द्वारका में

तस्मात्त्रैलोक्यमध्ये तु पृथ्वी धन्येति विश्रुता ।
यस्मान्माथुरकं नाम विष्णोरेकान्तवल्लभम् ॥१२॥
स्वस्थानमधिकं नामधेयं माथुरमण्डलम्। निगूढं विविधं स्थानं पुर्यभ्यन्तरसंस्थितम् ॥१३।
सहस्रपत्रकमलाकारं माथुरमण्डलम् । विष्णुचक्रपरिभ्रामद्धामवैष्णवमद्भुतम् ॥१४॥
कर्णिकापर्णविस्तारं रहस्यद्रुममीरितम् । प्रधानं द्वादशारण्यं माहात्म्यं कथितं क्रमात् ॥१५॥
भद्रश्रीलोहभाण्डीरमहातालखदीरकाः । बकुलं कुमुदं काम्यं मधु वृन्दावनं तथा ॥१६॥
द्वादशैतावती सङ्ख्या कालिन्द्याः सप्त पश्चिमे ।
पूर्वे पञ्चवनं प्रोक्तं तत्रास्ति गुह्यमुत्तमम् ॥१७॥
महारण्यं गोकुलाख्यं मधुवृन्दावनं तथा। अन्यच्चोपवनं प्रोक्तं कृष्णक्रीडारसस्थलम् ॥१८॥
कदम्बखण्डनं नन्दवनं नन्दीश्वरं तथा । नन्दनन्दनखण्डं च पलाशाऽशोककेतकी ॥१९॥
सुगन्धमानसं कैलममृतं भोजनस्थलम् । सुखप्रसाधनं वत्सहरणं शेषशायिकम् ॥२०॥
श्यामपूर्वोदधिग्रामश्चक्रभानुपुरं तथा। सङ्केतं द्विपदं चैव बालक्रीडनधूसरम् ॥२१॥
कामद्रुतं सुललितमुत्सुकं चापि काननम् । नानाविधरसक्रीडा नानालीलारसस्थलम् ॥२२॥
नागविस्तारविष्टभ्य रहस्यद्रुममीरितम्। सहस्रपत्रकमलं गोकुलाख्यं महत्पदम् ॥२३॥
कर्णिकातन्महद्धाम गोविन्दस्थानमुत्तमम् । तत्रोपरिस्वर्णपीठे मणिमण्डपमण्डितम् ॥२४॥
कर्णिकायां क्रमाद्दिक्षुविदिक्षु दलमीरितम्। यद्दलं दक्षिणे प्रोक्तं परं गुह्योत्तमोत्तमम् ॥२५॥

स्थित है ॥१०॥ जो ब्रह्म का परम ऐश्वर्य है, वह सदा वृन्दावन में बना रहता है । विशेष रूप से भगवान् श्रीकृष्ण का धाम उन सभी वन में विद्यमान है ॥११॥ इसीलिए त्रैलोक्य में पृथिवी को धन्य कहा गया है । अतएव मथुरा का नाम भगवान् विष्णु को अत्यन्त प्रिय है ॥१२॥ भगवान् श्रीकृष्ण का अपना स्थान मथुरा मण्डल है । उस पुरी में अनेक रहस्यात्मक स्थान हैं ॥१३॥ मथुरा मण्डल सहस्रदल कमल के आकार का है । उस अद्भुत वैष्णव धर्म की रक्षा करने के लिए भगवान् विष्णु का चक्र घूमता रहता है॥१४॥ सहस्रदल कमल की कर्णिका तथा उसके पत्ते का विस्तार एवं रहस्यमय वृक्षों को बतलाया गया है ॥१५॥ उनके नाम हैं भद्रवन, श्रीवन, लोहवन, भाण्डीर वन, महावन तालवन, खादीर वन, बकुल वन, कुमुद वन, काम्य वन, मधुवन और वृन्दावन ॥१६॥ इन वनों की संख्या द्वादश है । इनमें सात यमुना के पश्चिम तट पर हैं । पाञ्च वन पूर्वतट पर हैं जो अत्यन्त गोपनीय हैं । महारण्य, गोकुल, मधुवन, वृन्दावन तथा दूसरे भी उपवन हैं जो भगवान् श्रीकृष्ण के क्रीड़ा के स्थान हैं ॥१७-१८॥ कदम्ब खण्ड, नन्दवन, नन्दीश्वर, नन्दन खण्ड, पलाश वन, अशोक वन, केवड़ा की सुगन्धि से सुगन्धित केलि सुगन्धि वन कैलवन अमृत भोजन स्थान, सुख प्रसाधन, ब्रह्माजी के द्वारा बछड़ों का हरण का स्थान, शेषशय्या का स्थान ॥१९-२०॥ श्याम ग्राम, उदधि ग्राम, चक्रभानुपुर । सङ्केत स्थान, द्विपद स्थान, धूल धूसरित बालक्रीड़ा ॥२१॥ मनोहर कामद्रुम, अत्यन्त सुन्दर वर, अनेक प्रकार की आनन्दप्रद क्रीड़ा तथा अनेक प्रकार के लीलारस के स्थान, नाग (कालीय नाग) के विस्तार को रोकने के स्थान को रहस्य द्रुम कहा गया है । गोकुल को सहस्रदल कमल कहा गया है ॥२२-२३॥ भगवान् गोविन्द का उत्तम स्थान भी वही सहस्रदल कमल की कर्णिका है । उसके ऊपर सुवर्ण पीठ है, वह मणिमण्डप से अलंकृत है ॥२४॥

तस्मिन्दले महापीठं निगमागामदुर्गमम्। योगीन्द्रैरपि दुष्प्राप्यं सर्वात्मा यच्च गोकुलम् ॥२६॥
द्वितीयं दलमाग्नेय्यां तद्रहस्यं दलं तथा। सङ्केतं द्विपदं चैव कुटीद्वौ तत्कुले स्थितौ ॥२७॥
पूर्वं दलंतृतीयं च प्रधानस्थानमुत्तमम्। गङ्गादि सर्वतीर्थानां स्पर्शाच्छतगुणं स्मृतम् ॥२८॥
चतुर्थं दलमैशान्यां सिद्धपीठेऽपि तत्पदम् । कात्यायन्यर्चनाद्गोपी तत्र कृष्णं पतिं लभेत् ॥२९॥
वस्त्रालङ्कारहरणं तद्दले समुदाहृतम्। उत्तरे पञ्चमं प्रोक्तं दलं सर्वदलोत्तमम् ॥३०॥
द्वादशादित्यमत्रैव दलं च कर्णिकासमम् । वायव्यां तु दलं षष्ठं तत्र कालीह्रदः स्मृतः ॥३१॥
दलोत्तमोत्तमं चैव प्रधानं स्थानमुच्यते । सर्वोत्तमदलं चैव पश्चिमे सप्तमं स्मृतम् ॥३२॥
यज्ञपत्नीगणानां च तदीप्सितवरप्रदम्। अत्रासुरोऽपि निर्वाणं प्राप त्रिदशदुर्लभम् ॥३३॥
ब्रह्ममोहनमत्रैव दलं ब्रह्मह्रदाभिधम्। नैर्ऋत्यां तु दलं प्रोक्तमष्टमं व्योमघातनम् ॥३४॥
शङ्खचूडवधस्तत्र नानाकेलि रसस्थलम् । श्रुतमष्टदलं प्रोक्तं वृन्दारण्यान्तरस्थितम् ॥३५॥
श्रीमद्वृन्दावनं रम्यं यमुनायाःप्रदक्षिणम्। शिवलिङ्गमधिष्ठानं दृष्टं गोपीश्वराभिधम् ॥३६॥
तद्बाह्ये षोडशदलं श्रियापूर्णं तमीश्वरम् । सर्वासु दिक्षुयत्प्रोक्तं प्रादक्षिण्याद्यथाक्रमम् ॥३७॥
महत्पदं महद्धाम स्वधामधवसंज्ञकम्। प्रथमैकदलं श्रेष्ठं माहात्म्यं कर्णिकासमम् ॥३८॥
तत्र गोवर्द्धनगिरौ रम्ये नित्यरसाश्रये। कर्णिकायां महल्लीला तल्लीलारसगह्वरौ ॥३९॥

कर्णिका में क्रमशः दिशाओं और विदिशाओं में आठ दल बतलाये गये हैं, दक्षिण दिशा में विद्यमान जो दल है, वह अत्यन्त गोपनीय है ॥२५॥ उस दल पर विद्यमान जो पीठ है वह निगमागमों के लिए दुर्गम है । जो सबों की आत्मा गोकुल है, वह श्रेष्ठ योगियों के लिए भी दुष्प्राप्य है ॥२६॥ अग्निकोण में जो दूसरा दल है वह रहस्य दल है । उसमें दो कुटी हैं । सङ्केत कुटी और द्विपद कुटी ॥२७॥ पूर्व दिशा में विद्यमान जो तीसरा दल है, वह उत्तम और प्रधान स्थान है । गङ्गा आदि जो तीर्थ हैं, उनमें सौ गुना पवित्र कहा गया है ॥२८॥ ईशान कोण में विद्यमान जो चौथा दल है वह स्थान सिद्ध पीठ है । वहाँ पर ही कात्यायनी देवी की अर्चना करके गोपियों ने भगवान् श्रीकृष्ण को पति के रूप में प्राप्त किया था॥२९॥ उसी दल पर भगवान् ने गोपियों के वस्त्र और अलङ्कार का हरण किया था । उत्तर दिशा में विद्यमान दल को सभी दलों में उत्तम कहा गया है ॥३०॥ यहाँ पर कर्णिका के समान द्वादशादित्य हैं । वायव्य कोण में विद्यमान जो छठा दल है वहीं पर कालीय ह्रद बतलाया गया है ॥३१॥ पश्चिम दिशा में विद्यमान जो सातवाँ दल है वह सर्वोत्तम दल बतलाया गया है । वह सभी दलों में उत्तम तथा प्रधान दल कहा गया है ॥३२॥ वह यज्ञ पत्नियों को अभिप्रेत वर प्रदान करने वाला है । यहाँ पर असुर कंस ने भी देवताओं के लिए दुर्लभ निर्वाणपद (मुक्ति) को प्राप्त कर लिया था ॥३३॥ यहीं पर ब्रह्माजी को मोहित करने वाला ब्रह्म ह्रद नामक दल है । नैऋत्य कोण में जो दल है उसको व्योमघातन कहा गया है ॥३४॥ वहीं पर शङ्खचूड़ का वध हुआ वह अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं का स्थल है । इस तरह वृन्दारण्य में स्थित यह आठ दल सुना गया है ॥३५॥ ऐश्वर्य सम्पन्न वृन्दावन मनोहर वन है यह यमुना नदी के दाहिने तट पर स्थित है । वहाँ पर गोपीश्वर नामक शिवलिङ्ग का स्थान है ॥३६॥ उसके बाहर सोलह दल हैं । ऐश्वर्य से परिपूर्ण उस शिवलिङ्ग के प्रदाक्षिण्य क्रम से सभी दिशाओं में माधव को बतलाया गया है ॥३७॥ उसका नाम स्वधा माधव है, वह महान् पद और महान् धाम है । पहले एक दल का माहात्म्य श्रेष्ठ है । वह कर्णिका

यत्र कृष्णो नित्यवृन्दाकाननस्य पतिर्भवेत् । कृष्णो गोविन्दतां प्राप्तःकिमन्यैर्बहुभाषितैः ॥४०॥
दलं तृतीयमाख्यातं सर्वश्रेष्ठोत्तमोत्तमम् । चतुर्थं दलमाख्यातं महाद्भुतरसस्थलम्॥४१॥
नन्दीश्वरवनं रम्यं तत्र नन्दालयः स्मृतः । कर्णिकादलमाहात्म्यं पञ्चमं दलमुच्यते॥४२॥
अधिष्ठाताऽत्र गोपालो धेनुपालनतत्परः। षष्ठं दलं यदाख्यातं तत्र नन्दवनं स्मृतम् ॥४३॥
सप्तमं बहुलारण्यं दलंरम्यं प्रकीर्तितम् । तत्राष्टमं तालवनं तत्र धेनुवधःस्मृतः ॥४४॥
नवमं कुमुदारण्यं दलं रम्यं प्रकीर्तितम्। कामारण्यं च दशमं प्रधानं सर्वकारणम्॥४५॥
ब्रह्मप्रसाधनं तत्र विष्णुच्छद्म प्रदर्शनम्। कृष्णक्रीडारसस्थानं प्रधानं दलमुच्यते॥४६॥
दलमेकादशं प्रोक्तं भक्तानुग्रहकारकम्। निर्माणं सेतुबन्धस्य नानावनमयस्थलम् ॥४७॥
भाण्डीरं द्वादशदलं वनं रम्यं मनोहरम्। कृष्णःक्रीडारतस्तत्र श्रीदामादिभिरावृतः ॥४८॥
त्रयोदशं दलं श्रेष्ठं तत्र भद्रवनं स्मृतम्। चतुर्दशदलं प्रोक्तं सर्वसिद्धिप्रदस्थलम्॥४९॥
श्रीवनं तत्र रुचिरं सर्वैश्वर्यस्य कारणम्। कृष्णक्रीडादलमयं श्रीकान्तिकीर्तिवर्द्धनम्॥५०॥
दलं पञ्चदशं श्रेष्ठं यत्र लोहवनं स्मृतम् । कथितं षोडाशदलं माहात्म्यं कर्णिकासमम् ॥५१॥
महावनं तत्र गीतं तत्रास्ति गुह्यमुत्तमम् । बालक्रीडारतस्तत्र वत्सपालैःसमावृतः ॥५२॥
पूतनादि वधस्तत्र यमलार्जुनभञ्जनम् । अधिष्ठाता तत्र बालगोपालःपञ्चमाब्दिकः ॥५३॥

के समान है ॥३८॥ वहाँ पर निरन्तर आनन्द का आश्रय बने हुए मनोहर गोवर्धन नामक पर्वत की कर्णिका पर महान् लीला होती है । वह लीला रस की गुफा है ॥३९॥ वहीं पर वृन्दावन के पति भगवान् श्रीकृष्ण का निवास है । उसके विषय में बहुत क्या कहें वहीं पर भगवान् श्रीकृष्ण गोविन्द बन गये ॥४०॥ तीसरा दल सभी श्रेष्ठो में उत्तमोत्तम कहा गया है । चौथे दल को अत्यन्त अद्भुत रस का स्थान बतलाया गया है ॥४१॥ वहाँ पर मनोहर नन्दीश्वर वन नन्दजी का घर कहा गया है । पाँचवाँ दल कर्णिकादल का माहात्म्य कहा गया है ॥४२॥ यहाँ के अधिष्ठाता (स्वामी) गायों के पालन में लगे रहने वाले गोपाल कहे गये है । छठा दल जहाँ पर बतलाया गया है, वहीं पर नन्दवन कहा गया है ॥४३॥ सातवाँ मनोहर दल नुकलारण्य कहा गया है । आठवाँ दल ही तालवन है । वहीं पर धेनुकासुर का वध हुआ था ॥४४॥ मनोहर नवाँ दल कुमुदारण्य कहा गया है । दशवाँ दल कामारण्य है, वह सर्वप्रधान कारण है ॥४५॥ वहीं पर ब्रह्म प्रसाधन है और विष्णु पद्म का प्रदर्शन है । वह भगवान् कृष्ण के कीडारस का स्थान और प्रधान दल कहा जाता है । ग्यारहवाँ दल भक्तों पर कृपा करने वाला है । सेतुबन्ध का निर्माण अनेक वन स्वरूप स्थान है ॥४७॥ बारहवाँ दल मनोहर भण्डीर वन है । वहाँ पर भगवान् श्रीकृष्ण श्रीदाभा आदि के साथ क्रीडा किए हैं ॥४८॥ तेरहवें दल पर ही मनोहर भद्रवन है । चौदहवें दल को हर प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाला कहा गया है ॥४९॥ वहाँ सम्पूर्ण ऐश्वर्यो को प्रदान करने वाला मनोहर श्रीवन है । भगवान् श्रीकृष्ण की क्रीडा रूपी दल स्वरूप, श्री, कान्ति ओर कीर्ति को बढाने वाला ॥५०॥ पन्द्रहवाँ श्रेष्ठ दल है । वहीं पर लोहवन है । सोलहवें दल का माहात्म्य कर्णिका के समान बतलाया गया है ॥५१॥ वहीं पर अत्यन्त गोपनीय महावन कहा गया है । वहाँ पर वत्स तथा ग्वालों से घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण बालक्रीडा में रत रहते हैं ॥५२॥ वहीं पर भगवान् ने पूतना आदि का वध किया था तथा यमलार्जुन को तोड़ दिया था । वहाँ के पाँच वर्ष की अवस्था वाले बाल गोपाल अधिष्ठाता हैं । उन भगवान् का नाम

नाम्ना दामोदर:प्रोक्त:प्रेमानन्दरसार्णव: । दलं प्रसिद्धमाख्यातं सर्वश्रेष्ठदलोत्तमम् ॥५४॥
कृष्णक्रीडा च किञ्जल्की विहारदलमुच्यते। सिद्धप्रधानकिञ्जल्कदलं च समुदाहृतम् ॥५५॥

पार्वत्युवाच

वृन्दारण्यस्य माहात्म्यं रहस्यं वा किमद्भुतम् ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महाप्रभो ! ॥५६॥

ईश्वर उवाच

कथितं ते प्रियतमे गुह्याद्गुह्योत्तमोत्तमम्। रहस्यानां रहस्यं यद्दुर्लभानां च दुर्लभम् ॥५७॥
त्रैलोक्यगोपितं देवि देवेश्वरसुपूजितम् । ब्रह्मादि वाञ्छितं स्थानं सुरसिद्धादिसेवितम् ॥५८॥
योगीन्द्रा हि सदा भक्त्या तस्य ध्यानैकतत्परा: ।
अप्सरोभिश्च गन्धर्वैर्नृत्यगीतनिरन्तरम् ॥५९॥
श्रीमद् वृन्दावनं रम्यं पूर्णानन्दरसाश्रयम् । भूरिचिन्तामणिस्तोमममृतं रसपूरितम्॥६०॥
वृक्षं गुरुद्रुमं तत्र सुरभीवृन्दसेवितम् । स्त्रीं लक्ष्मीं पुरुषं विष्णुं तद्दशांशसमुद्भवम्॥६१॥
तत्र कैशोरवयसं नित्यमानन्दविग्रहम्। गीतनाट्यकलालापं स्मितवक्त्रं निरन्तरम्॥६२॥
शुद्धसत्त्वै:प्रेमपूर्णैर्वैष्णवैस्तद्वनाश्रितम् । पूर्णब्रह्मसुखेमग्नं स्फुरत्तन्मूर्ति तन्मयम्॥६३॥
मत्तकोकिलभृङ्गाद्यै:कूजत्कलमनोहरम् । कपोल शुकसङ्गीतमुन्मत्तालि सहस्त्रकम्॥६४॥
भुजङ्गशत्रुनृत्याढ्यं सकलामोदविभ्रमम्। नानावर्णैश्च कुसुमैस्तद्रेणुपरिपूरितम्॥६५॥

दामोदर है, वे प्रेमानन्द के सागर हैं । सभी श्रेष्ठ दलों में यह दल उत्तम है ॥५३-५४॥ भगवान् श्रीकृष्ण की क्रीड़ा ही जिसका किञ्जलक क है उसे विहार दल कहा गया है । वह सिद्ध प्रधान किञ्जल्कदल कहा गया है ॥५५॥ **पार्वतीजी ने कहा**— वृन्दावन का माहात्म्य तथा उसका रहस्य कैसा है ? हे महाप्रभो ! उसे आप मुझे बतलाएँ मैं उससे सुनना चाहती हूँ ॥५६॥ **ईश्वर ने कहा**— हे प्रियतमे ! मैंने अत्यन्त गोपनीय, अत्यन्त दुर्लभ तथा सर्वोत्तम रहस्य वतलाया ॥५७॥ हे देवि ! यह स्थान त्रैलोक्य में गोपनीय है । इसकी पूजा इन्द्र भी करते हैं । यहाँ पर देवों और सिद्धों का निवास है, इसे ब्रह्मा आदि प्राप्त करना चाहते हैं ॥५८॥ बड़े-बड़े योगिजन उसका निरन्तर ध्यान किया करते हैं । वहाँ पर अप्सराओं और गन्धर्वों का सदा नृत्य गीत होता रहता है ॥५९॥ श्रीमद्वृन्दावन मनोहर तथा पूर्ण आनन्द रस का आश्रय है । वहाँ पर चिन्तमणि समूह अत्यधिक अमृत रस से परिपूर्ण है ॥६०॥ वहाँ पर बड़े-बड़े वृक्ष सुरभि गायों से सेवित है । वहा लक्ष्मीजी ही स्त्री है और भगवान् विष्णु पुरुष हैं, उनके ही अंश से सब उत्पन्न हैं॥६१॥ वहाँ पर श्रीभगवान् का किशोरावस्था हैं । उनका सदैव आनन्दमय विग्रह है । वे गीत तथा नाट्य से युक्त मनोहर गीत गाते हैं । उनके मुख पर सदैव मुस्कान वनी रहती है ॥६२॥ उस वन में शुद्ध अन्त:करण वाले तथा प्रेम से परिपूर्ण श्रीवैष्णव रहते हैं । पूर्ण ब्रह्म के आनन्द में मग्न रहने वाले श्रीभगवान् की मूर्ति (शरीर) देदीप्यमान है । वे उसी में तन्मय रहते हैं ॥६३॥ वहाँ पर मदमत्त कोयल तथा भौरों की मनोहर ध्वनि सुनायी पड़ती है । उनकी गलों पर हजारों उन्मत्त भैंरे रूप शुक पक्षी सङ्गीत करते रहते हैं ॥६४॥ स्थान-स्थान पर सम्पूर्ण आनन्दों से भरे मयूर नृत्य करते रहते हैं । अनेक प्रकार के पुष्पों के पराग से वह स्थान भरा रहता है ॥६५॥ सूर्य की मन्दकिरणों से सुसेवित पूर्णचन्द्र नित्य ही उदित होते

पूर्णेन्दु नित्याभ्युदयं सूर्यमन्दांसुशेवितम् । अदुःखं दुःखविच्छेदं जरामरणवर्जितम् ॥६६॥
अक्रोधं गतमात्सर्यमभिन्नमनहङ्कृतम् । पूर्णानन्दामृतरसं पूर्णप्रेम सुखार्णवम् ॥६७॥
गुणातीतं महद्धाम पूर्णप्रेम स्वरूपकम्। वृक्षादि पुलकैर्यत्र प्रेमानन्दाश्रुवर्षितम् ॥६८॥
किं पुनश्चेतनायुक्तैर्विष्णुभक्तैःकिमुच्यते। गोविन्दाङ्घ्रिरजःस्पर्शान्नित्यं वृन्दावनं भुवि ॥६९॥
सहस्त्रदलपद्मस्य वृन्दारण्यं वराटकम् । यस्य स्पर्शनमात्रेण पृथ्वीधन्या जगत्त्रये ॥७०॥
गुह्याद्गुह्यतरं रम्यं मध्येवृन्दावनं भुवि । अक्षरं परमानन्दं गोविन्दस्थानमव्ययम् ॥७१॥
गोविन्द देहतोऽभिन्नं पूर्णब्रह्म सुखाश्रयम् । मुक्तिस्तत्र राजःस्पर्शात्तन्माहात्म्यं किमुच्यते ॥७२॥
तस्मात्सर्वात्मना देवि हृदिस्थं तद्वनं कुरु। वृन्दावनविहारेषु कृष्णं कैशोरविग्रहम् ॥७३॥
कालिन्दी चाकरोद्यस्य कर्णिकायाःप्रदक्षिणाम् ।
लीलानिर्वाणगम्भीरं जलं सौरभमोहनम् ॥७४॥
आनन्दामृततन्मिश्रमकरन्दघनालयम् । पद्मोत्पलाद्यैः कुसुमैर्नानावर्णसमुज्ज्वलम् ॥७५॥
चक्रवाकादि विहगैर्मञ्जु नाना कलस्वनैः । शोभमानं जलं रम्यं तरङ्गातिमनोरमम्।॥७६॥
तस्योभयतटीरम्या शुद्धकाञ्चननिर्मिता । गङ्गा कोटिगुणःप्रोक्तो यत्रस्पर्शवराटकः ॥७७॥
कर्णिकायां कोटिगुणो यत्र क्रीडारतो हरिः ।
कालिन्दी कर्णिका कृष्णमभिन्नमेकविग्रहमम् ॥७८॥

पार्वत्युवाच

गोविन्दस्य किमाश्चर्यं सौन्दर्याकृतिविग्रह । तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व दयानिधे ॥७९॥

हैं । भगवान् कृष्ण दुःख से रहित, दुःखों को विनष्ट करने वाला जरा एवं मृत्यु से रहित, क्रोध तथा मात्सर्य से रहित, अहङ्कार से रहित, पूर्णानन्द रूपी अमृत रस स्वरूप तथा प्रेम से परिपूर्ण सुख के सागर है ॥६६-६७॥ प्रकृति से ऊपर उठे हुए, पूर्ण प्रेम स्वरूप महान् आश्रय स्वरूप वृक्ष आदि रोमाञ्चित होकर आनन्दाश्रु बहाते हैं ॥६८॥ ऐसी स्थिति जब वृक्षों की है तो ज्ञान से युक्त भगवान् विष्णु के भक्तों के विषय में क्या कहना है ? भगवान् गोविन्द के चरण धूलि का स्पर्श करने के कारण पृथिवी पर नित्य ही वृन्दावन बना रहता है ॥६९॥ सहस्त्रदल कमल का वृन्दावन वराटक है । उसका स्पर्श करने मात्र से त्रैलोक्य में पृथिवी धन्य बनी हुयी है ॥७०॥ पृथिवी के बीच में विद्यमान मनोहर वृन्दावन अत्यन्त गोपनीय है । वह भगवान् गोविन्द का अक्षर परमानन्द स्वरूप निर्विकार स्थान है ॥७१॥ वह भगवान् गोविन्द का शरीर है उसमें पूर्ण ब्रह्मानन्द बना रहता है । उसकी धूलि का स्पर्श करने मात्र से ही मुक्ति मिल जाती है, उसका माहात्म्य क्या कहूँ ॥७२॥ अतएव हे देवि ! उस वन को तुम हृदय में धारण करके ध्यान करो। वृन्दावन के विहारों में भगवान् श्रीकृष्ण का शरीर किशोरवस्था का रहता है ॥७३॥ वृन्दावन की कर्णिका की प्रदक्षिणा यमुना नदी करती है । निर्वाण तथा लीला से गम्भीर बना हुआ यमुना का जल मोहक और सुगन्धि से युक्त है ॥७४॥ आनन्दामृत से मिश्रित पराग से परिपूर्ण कमलों तथा नील कमलों आदि पुष्पों के द्वारा वृन्दावन अनेक रूपों वाला प्रतीत होता है ॥७५॥ चक्रवाक आदि पक्षियों के मनोहर अनेक प्रकार की ध्वनियों से तथा तरङ्गों से मनोहर बना हुआ यमुना का जल सुशोभित होता है ॥७६॥ शुद्ध सुवर्ण से निर्मित यमुना के दोनों तट मनोहर है । जहाँ पर वराटक का स्पर्श होता है, वह स्थान

ईश्वर उवाच

मध्ये वृन्दावने रम्ये मञ्जुमञ्जीरशोभिते। योजनाश्रितसद्वृक्ष शाखापल्लवमण्डिते॥८०॥
तन्मध्ये मञ्जुभवने योगपीठं समुज्ज्वलम् । तदष्टकोणनिर्माणं नाना दीप्तिमनोहरम्॥८१॥
तस्योपरि च माणिक्यरत्नसिंहासनं शुभम् । तस्मिन्नष्टदलं पद्मं कर्णिकायां सुखाश्रयम् ॥८२॥
गोविन्दस्य परंस्थानं किमस्य महिमोच्यते। श्रीमद्गोविन्दमन्त्रस्थवल्लवी वृन्दसेवितम् ॥८३॥
दिव्यब्रजवयोरूपं कृष्णं वृन्दावनेश्वरम्। व्रजेन्द्रसन्ततैश्वर्य व्रजबालैकवल्लभम् ॥८४॥
यौवनोद्भिन्नकैशोरं वयसाऽद्भुतविग्रहम्। अनादिमादिं सर्वेषां नन्दगोपप्रियात्मजम् ॥८५॥
श्रुतिमृग्यमजं नित्यं गोपीजनमनोहरम् । परंधाम परंरूपं द्विभुजं गोकुलेश्वरम्॥८६॥
वल्लवीनन्दनं ध्यायेन्निर्गुणस्यैककारणम् । सुश्रीमन्तंनवं स्वच्छं श्यामधाम मनोहरम् ॥८७॥
नवीननीरदश्रेणीसुस्निग्धंमञ्जुकुण्डलम् । फुल्लेन्दीवरसत्कान्ति सुखस्पर्शं सुखावहम् ॥८८॥
दलिताञ्जनपुञ्जाभचिक्कणं श्याममोहनम् । सुस्निग्धनीलकुटिलाशेषसौरभकुन्तलम् ॥८९॥
तदूर्ध्वं दक्षिणे भाले श्यामचूडामनोहरम् । नानावर्णोज्ज्वलं राजच्छिखण्डिदलमण्डितम् ॥९०॥
मन्दारमञ्जुगोपुच्छचूडं चारुविभूषणम्। क्वचिद्बर्हदलश्रेणीमुकुटेनाभिमण्डितम् ॥९१॥

गङ्गा के करोड़ गुना पवित्र बतलाया गया है ॥७७॥ जहाँ पर श्रीहरि क्रीड़ा करते हैं उस कर्णिका पर स्नान का माहात्म्य गङ्गा से करोड़ गुणा अधिक है । यमुना, कर्णिका और कृष्ण इन तीनों का एक ही शरीर है॥७८॥ **पार्वतीजी ने कहा—** श्रीभगवान् सौन्दर्यमय आकार और विग्रह का आश्चर्य क्या है ? हे दयानिधे! आप उसे ही बतलायें मैं उसे सुनना चाहती हूँ ॥७९॥ **ईश्वर ने कहा—** मनोहर वृन्दावन के बीच में मनोहरमञ्जीर (नूपुर) से सुशोभित सुन्दर वृक्ष तथा पल्लवों से मनोहर बने हुए एक योजन विस्तृत एक स्थल है ॥८०॥ उसके बीच में मनोहर भवन में देदीप्यमान योगीपीठ है । वह अनेक प्रकार की कान्तियों से मनोहर बना है । उसका निर्माण आठ कोणों वाला है ॥८१॥ उसके ऊपर मणियों तथा रत्नों से निर्मित सुन्दर सिंहासन है । उस पर अष्टदल कमल है जो कर्णिका पर सुखप्रद है ॥८२॥ वही भगवान् का सर्वोत्कृष्ट स्थान है । उसकी महिमा मैं क्या बतलाऊँ । श्रीमद्गोविन्द; मन्त्र में विद्यमान गोपी समूह से सेवित हैं ॥८३॥ वृन्दावन के स्वामी भगवान् का व्रज, अवस्था और रूप सब दिव्य-दिव्य है । व्रजेन्द्र के ये विस्तृत ऐश्वर्य हैं तथा व्रज के बालकों के प्रिय हैं ॥८४॥ उनकी किशोरावस्था में युवावस्था उद्भूत हो गयी है । उस अवस्था के कारण उनका दिव्य विग्रह अद्भुत लगता है । वे अनादि होकर भी सबों के आदि कारण हैं, नन्दगोप के प्रिय पुत्र हैं ॥८५॥ श्रुतियाँ उनका ही अन्वेषण करती हैं, वे सदैव गोपियों के मन को आकृष्ट किए रहते हैं । वे परं प्राप्य, पर स्वरूप दो भुजाओं वाले तथा गोकुल के स्वामी हैं ॥८६॥ इसी तरह के गोपीनन्दन का निर्गुण के एक मात्र कारण रूप से ध्यान करना चाहिए । वे नवीन, स्वच्छ, श्याम रूप के आश्रय मनोहर और श्रीमान् हैं ॥८७॥ नवीन मेघ समूह के समान अत्यन्त स्निग्ध, मनोहर कुण्डल धारण किए हुए तथा विकसित नील कमल के समान उनकी कान्ति है, उनका स्पर्श सुखप्रद है ॥८८॥ रगड़कर चिकना बनाये गये काजल समूह के समान चिकने और काले मनोहर, स्निग्ध, काले घुघराले तथा पूर्णरूप से सुगन्धित उनके केश हैं ॥८९॥ उसके ऊपर दाहिने ललाट पर श्याम वर्ण की मनोहर चूड़ा है । वह अनेक वर्णों वाले मयूर पिच्छ से सुशोभित है ॥९०॥ मन्दार पुष्प

अनेकमणिमाणिक्यकिरीटभूषणं क्वचित्। लोलालकवृतं राजत्कोटिचन्द्रसमाननम् ॥९२॥
कस्तूरीतिलकं भ्राजन्मञ्जुगोरोचनान्वितम् । नीलेन्दीवरसुस्निगथसुदीर्घदललोचनम् ॥९३॥
आनृत्यद्भ्रूलताश्लेषस्मितं साचिनिरीक्षणम्। सुचारून्नतसौन्दर्यनासाग्रातिमनोहरम् ॥९४॥
नासाग्रगजमुक्तांशुगुग्धीकृतजगत्त्रयम् । सिन्दूरारुणसुस्निग्धाधरौष्ठसुमनोहरम् ॥९५॥
नानावर्णोल्लसत्स्वर्णमकराकृतिकुण्डलम् । तद्रश्मिपुञ्जसद्गण्डमुकुराभसमद्युतिम् ॥९६॥
कर्णोत्पलसुमन्दारमकरोत्तंसभूषितम् । श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्ताहारस्फुरदगलम्॥९७॥
विलसद्दिव्यमणिक्यं मञ्जुकाञ्चनमिश्रितम् । करकङ्कणकेयूरं किङ्किणीकटिशोभितम्॥९८॥
मञ्जुमञ्जीरसौन्दर्यश्रीमदङ्घ्रिविराजितम् । कर्पूरागुरुकस्तूरी विलसच्चन्दनादिकम् ॥९९॥
गोरोचनादिसंमिश्रदिव्याङ्गरागचित्रितम् । स्निग्धपीतपटीराजत्प्रपदान्दोलिताञ्जनम् ॥१००॥
गम्भीरनाभिकमलरोमराजीनतस्त्रजम् । सुवृत्तजानुयुगलं पादपद्ममनोहरम्॥१०१॥
ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजकराङ्घ्रितलशोभितम् । नखेन्दुकिरणश्रेणीपूर्णब्रह्मैककारणम् ॥१०२॥
केचिद्वदन्ति यस्यांशं ब्रह्मचिद्रूपमद्वयम्। तद्दशांशं महाविष्णुं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१०३॥
योगीन्द्रैः सनकाद्यैश्च तदेव हृदि चिन्त्यते। त्रिभङ्गं ललिताशेषनिर्माणसारनिर्मितम्॥१०४॥

से मनोहर गोधूप के समान चढ़ाव-उतराव वाली गो पूछ के समान चूड़ा वाले वे मनोहर अलङ्कारों वाले हैं। कहीं पर वे मयूर पिच्छ समूह से निर्मित मुकुट से सुशोभित होते हैं ॥९१॥ कहीं पर वे अनेक मणियों और माणिक्य से निर्मित किरीट तथा भूषण को धारण करते हैं। चञ्चल अलकावाली से ढँका हुआ उनका मुखड़ा करोड़ों चन्द्रमा के समान सुशोभित होता है ॥९२॥ वे कस्तूरी का तिलक लगाये हैं और उसमें गोरोचन की मनोहर विन्दी भी लगी है। उनके नेत्र नील कमल के समान मनोहर और कमल दल के समान बड़े-बड़े हैं ॥९३॥ वे अपनी भौहों को थोड़ा नचाकर और मुस्कुराकर देखते हैं। उनकी नाक सुन्दर उठी हुयी अत्यन्त सुन्दर है ॥९४॥ नासिका के अग्रभाग में वे गजमोती धारण किए हुए हैं उससे वे त्रैलोक्य को मोहित कर रहे हैं। उनके नीचे का ओठ सिन्दूर के समान चिकना और लाल है ॥९५॥ उनका सुवर्ण निर्मित मकरा कृति कुण्डल अनेक वर्णों वाला है, उसकी रश्मि समूह से श्रीभगवान् का कपोल, दर्पण के समान सुशोभित होता है ॥९६॥ कानों में लगे हुए मन्दार पुष्प से उनका मकराकृति कुण्डल अलंकृत है। उनके वक्षःस्थल पर श्रीवत्सचिह्न और कौस्तुभ मणि सुशोभित होते हैं। मोती की माला उनके गले में सुशोभित हो रही है ॥९७॥ मनोहर सुवर्ण मिश्रित दिव्य माणिक्य से युक्त हाथों के कंङ्कण, केयूर, तथा छोटी घुंघुरू वाली करधनी से उनकी कमर सुशोभित है ॥९८॥ मनोहर नूपुर के सौन्दर्य से उनके श्रीचरण सुशोभित हैं। उनमें कर्पूर, अगरु, कस्तूरी से सुशोभित चन्दन आदि लगे हुए हैं ॥९९॥ गोरोचन मिश्रित अङ्ग रागों से उनमें चित्र बनाये गये हैं। पीले पीताम्बर से सुशोभित उनके प्रपद (चरणों के अग्रभाग) अञ्जन के समान सुशोभित हैं ॥१००॥ उनकी कमलाकृति नाभि गहरी है उनकी रोमावलि पर्यन्त माला लटक रही के समान है। उनके दोनों घुटने मनोहर और गोल हैं। उनके चरण कमल मनोहर हैं ॥१०१॥ उनके हाथ तथा पैर के तलवे ध्वजा, वज्र, अङ्कुश तथा कमल के चिह्न से सुशोभित हैं। उनके नख चन्द्र की कान्तियाँ पूर्ण ब्रह्म के प्रधान कारण हैं ॥१०२॥ कुछ मनीषी ज्ञान स्वरूप अद्वैत ब्रह्म को श्रीभगवान् का अंश बतलाते हैं और महाविष्णु को उनका दशांश बतलाते हैं॥१०३॥

तिर्यग्ग्रीवजितानन्तकोटिकन्दर्पसुन्दरम् । वामांसार्पितसद्गण्डं स्फुरत्काञ्चनकुण्डलम् ॥१०५॥
सहापाङ्गेक्षणस्मेरं कोटिमन्मथसुन्दरम् । कुञ्चिताधरविन्यस्तवंशीमञ्जुकलस्वनैः ॥१०६॥
जगत्त्रयं मोहयन्तं मग्नं प्रेमसुधार्णवे ॥१०७॥

श्रीपार्वत्युवाच

परमं कारणं कृष्णं गोविन्दाख्यं महत्पदम्। वृन्दावनेश्वरंनित्यं निर्गुणस्यैककारणम्॥१०८॥
तत्तद्रहस्यमाहात्म्यं किमाश्चर्यं च सुन्दरम् । तद्ब्रूहि देवेदेवेश श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥१०९॥

ईश्वर उवाच

यदङ्घ्रिनखचन्द्रांशुमहिमान्तो न गम्यते (विद्यते) ।
तन्माहात्म्यं कियद्देवि ! प्रोच्यते त्वं मुदं शृण ॥११०॥
अनन्तकोटिब्रह्माण्डे अनन्तत्रिगुणोच्छये। तत्कलाकोटिकोट्यंशा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥१११॥
सृष्टिस्थित्यादिना युक्तास्तिष्ठन्ति तस्य वैभवाः ।
तद्रूपकोटिकोट्यंशाः कलाः कन्दर्पविग्रहाः ॥११२॥
जगन्मोहं प्रकुर्वन्ति तदण्डान्तरसंस्थिताः। तद्देहविलसत्कान्तिकोटिकोट्यंशको विभुः ॥११३॥
तत्प्रकाशस्य कोट्यंशरश्मयो रविविग्रहाः । तस्य स्वदेहकिरणैः परानन्दरसामृतैः ॥११४॥
परमामोदचिद्रूपैर्निर्गुणस्यैककारणैः । तदंशकोटिकोट्यंशा जीवन्ति किरणात्मकाः॥११५॥
तदङ्घ्रिपङ्कजद्वन्द्वनखचन्द्रमणिप्रभाः । आहुः पूर्णब्रह्मणोऽपि कारणं वेददुर्गमम् ॥११६॥

बड़े-बड़े योगीन्द्र तथा सनकादि महर्षि अपने हृदय में उनका ही ध्यान करते हैं । उनकी त्रिभङ्गी आकृति सम्पूर्ण मनोहर निर्माणों के सारभाग से निर्मित है ॥१०४॥ जब वे आपनी ग्रीवा तिरछी करते हैं तो उनकी सुन्दरता अनन्त करोड़ कामदेवों की शोभा को भी तिरस्कृत कर देती है । जब वे बायीं कन्धे पर चमकते हुए सुवर्ण निर्मित कुण्डल से युक्त गाल को रखते हैं और मुस्कुराते हुए कटाक्षपात करते हैं तो वे करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर लगते हैं । सिकुड़े हुए ओष्ठ पर वंशी की ध्वनि जब वे करते हैं तो वे त्रैलोक्य को प्रेमामृत सागर में सराबोर कर देते हैं ॥१०५-१०७॥ **श्रीपार्वतीजी ने कहा**— गोविन्द नाम वाले भगवान् श्रीकृष्ण ही परम प्राप्य और परमकारण हैं । वे वृन्दावन के स्वामी हैं नित्य तथा निर्गुण के एकामत्र कारण हैं ॥१०८॥ हे देव देवेश ! आप मुझे उनके विभिन्न रहस्यों माहात्म्यों और सुन्दर आश्चर्यों को वतलायें, मैं उसे सुनना चाहती हूँ ॥१०९॥ **ईश्वर ने कहा**— जिनके चरणों के चन्द्रकान्त मणि रूपी नख की महिमा का कोई अन्त नहीं है हे देवि ! उनकी ही महिमा का मैं कुछ वर्णन करता हूँ उसे तुम प्रसन्नता पूर्वक सुनो ॥११०॥ अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड को अनन्त बार तिगुना किया जाय उसकी एक कला का जो करोड़वाँ अंश उसके करोड़वें अंश के समान ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हैं ॥१११-११३॥ उसके प्रकाश के करोड़वें अंश की रश्मि से सूर्यो का शरीर बना है । उन श्रीभगवान् के शरीर की किरणों का जो परमानन्द रस रूपी अमृत हैं, उससे ॥११४॥ परमानन्द स्वरूप, ज्ञान स्वरूप है, तथा निर्गुण के जो एकमात्र कारण हैं, उसके करोड़ों प्रकाशात्मक अंश जीवित रहते हैं ॥११५॥ उनके चरण कमल युगल रूपी चन्द्रकान्तमणि की कान्तियों को पूर्ण ब्रह्म का कारण कहते हैं वह वेदों के लिए दुर्गम है ॥११६॥ उसके एक अंश के सौरभ का करोड़वाँ अंश संसार को मोहित करता है । उसके स्पर्श मात्र से पुष्पों की सुगन्धि आदि अनेक

तदंशसौरभानन्तकोट्यंशो विश्वमोहनः । तत्स्पर्शपुष्पगन्धादि नानासौरभसम्भवः ॥११७॥
तत्प्रिया प्रकृतिस्त्वाद्या राधिका कृष्णवल्लभा ।
तत्कला कोटिकोट्यंशा दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः ॥
तस्या अङ्घ्रिरजः स्पर्शात्कोटिविष्णुः प्रजायते ॥११८॥

इति श्रीपद्मपुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वृन्दावनमाहात्म्ये कृष्णचरित्रं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

सत्तरवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

यदाकरणमेतस्य ये वा परिषदाः प्रभोः । तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व दयानिधे ! ॥१॥

ईश्वर उवाच

राधया सह गोविन्दं स्वर्णसिंहासने स्थितम् ।
पूर्वोक्तरूपलावण्यं दिव्यभूषाम्बरस्त्रजम् ॥२॥
त्रिभङ्गमञ्जुसुस्निग्धं गोपीलोचनतारकम् । तद्बाह्ये योगपीठे च स्वर्णसिंहासनावृते ॥३॥
प्रत्यङ्गरभसावेशाः प्रधानाः कृष्णवल्लभाः । ललिताद्याः प्रकृत्यंशा मूलप्रकृतिराधिका ॥४॥
संमुखे ललिता देवी श्यामला वायुकोणके ।
उत्तरेश्रीमतीधन्या ऐशान्यां श्रीहरिप्रिया ॥५॥

प्रकार की सुगन्धियों की उत्पत्ति होती है ॥११७॥ भगवान् श्रीकृष्ण की प्रियतमा श्रीराधाजी ही उनकी प्रिया प्रकृति हैं । उनकी कला के करोड़ों करोड़वें अंश भूत त्रिगुणात्मिका दुर्गा आदि देवियाँ हैं । उन राधाजी के ही चरण की धूलि के स्पर्श से करोड़ों विष्णु उत्पन्न होते हैं ॥११८॥

इसतरह श्रीपद्मपुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के वृन्दावन माहात्म्यान्तर्गत श्रीकृष्ण चरित्र वर्णन नामक उनहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६९॥

भगवान् श्रीकृष्ण के पार्षदसमूह का वर्णन

पार्वतीजी ने कहा— भगवान् श्रीकृष्ण का जो नाम है तथा उनके जो पार्षद हैं हे प्रभो ! मैं उनको सुनना चाहती हूँ । हे दयानिधे ! उसे आप बतलायें । **ईश्वर ने कहा—** राधाजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण सुवर्ण सिंहासन पर विराजमान हैं । वे पूर्वोक्त रूप, सौन्दर्य, दिव्य भूषणों, वस्त्रों तथा माला को धारण किए हुए हैं ॥१-२॥ उनका मनोहर त्रिभङ्ग रूप अत्यन्त स्निग्ध और गोपियों के नेत्र का तारा है । उसके बाहर योगपीठ पर स्वर्ण सिंहासन से आवृत ॥३॥ जिनके प्रत्येक अङ्ग भगवान् के मिलन के प्रेम से आविष्ट हैं । वे भगवान् श्रीकृष्ण की प्रधान ललिता इत्यादि प्रियतमाएँ हैं । वे प्रकृति के अंश हैं तथा मूलप्रकृति राधिकाजी हैं ॥४॥ उनके सामने ललिता देवी हैं, वायव्य कोण में श्यामला देवी हैं । उत्तर दिशा

विशाखा च तथा पूर्वे शैब्या चाग्नौ ततः परम् ।
पद्मा च दक्षिणे पश्चान्नैर्ऋते क्रमशः स्थिताः ।।६।।
योगपीठे केशराग्रे चारु चन्द्रावती प्रिया । अष्टौ प्रकृतयः पुण्याः प्रधानाः कृष्णवल्लभाः ।।७।।
प्रधानप्रकृतिस्त्वाद्या राधाचन्द्रावती समा। चन्द्रावली चित्ररेखा चन्द्रा मदनसुन्दरी।।८।।
प्रिया च श्रीमधुमती चन्द्ररेखा हरिप्रिया । षोडशाद्याः प्रकृतयः प्रधानाः कृष्णवल्लभाः ।।९।।
वृन्दावनेश्वरी राधा तथा चन्द्रवली प्रिया । अभिन्नगुणलावण्यसौन्दर्याश्चारुलोचनाः ।।१०।।
मनोहराः मुग्धवेषाः किशोरीवयसोज्ज्वलाः ।
अग्रेसरास्तथा चान्या गोपकन्याः सहस्रशः ।।११।।
शुद्धकाञ्चनपुञ्जाभाः सुप्रसन्नाः सुलोचनाः । तद्रूपहृदयारूढास्तदाश्लेषसमुत्सुकाः ।।१२।।
श्यामामृतरसे मग्नाः स्फुरत्तद्भावमानसाः । नेत्रोत्पलार्चिते कृष्णपादाब्जेऽर्पितचेतसः ।।१३।।
श्रुतिकन्यास्ततो दक्षे सहस्रायुतसंयुताः। जगन्मुग्धीकृताकारा हृद्वर्तिकृष्णलालसाः ।।१४।।
नानासत्त्वस्वरालापमुग्धीकृतजगत्त्रयाः । तत्र गूढरहस्यानि गायन्त्यः प्रेमविह्वलाः ।।१५।।
देवकन्यास्ततः सव्ये दिव्यवेषा रसोज्जवलाः ।
नानावैदग्ध्यनिपुणा दिव्यभावभरान्विताः ।।१६।।
सौन्दर्यातिशयेनाढ्याः कटाक्षातिमनोहराः । निर्लज्जास्तत्र गोविन्दे तदङ्गस्पर्शनोद्यताः ।।१७।।

में श्रीमती धन्या है, ईशान कोण में श्रीहरि प्रिया है ।।५।। पूर्व दिशा में विशाखा देवी है, अग्निकोण में शैव्याजी हैं, दक्षिण दिशा में पद्मादेवी है तथा उसके पश्चात् नैऋत्य कोण में योगपीठ पर केसर के अग्रभाग में सुन्दर चन्द्रावती जी हैं । ये आठ प्रकृतियाँ भगवान् श्रीकृष्ण की बल्लभाएँ हैं ।।६-७।। प्रधान प्रकृति राधाजी हैं और चन्द्रावती भी उनके ही समान हैं । चन्द्रवली, चित्ररेखा, चन्द्रा, मदनसुन्दरी, प्रिया, श्रीमधुमती, चन्द्ररेखा, हरिप्रिया, ये कुल सोलह भगवान् की प्रियतमाएँ तथा आद्य प्रकृतियाँ हैं ।।८-९।। राधाजी तथा चन्द्रवतीजी वृन्दावन की अधीश्वरी हैं । इन दोनों एक समान गुण, सौन्दर्य तथा सुन्दर नेत्र वाली हैं ।।१०।। ये सभी मनोहर वेष वाली तथा उज्ज्वल किशोरावस्था वाली हैं । इनके आगे चलने वाली हजारों गोप कन्यायें हैं ।।११।। इन सबों की कान्ति शुद्ध सुवर्ण समूह के समान हैं । ये सदा प्रसन्न रहने वाली और सुन्दर नेत्रों वाली हैं । इनके हृदय में सदा भगवान् श्रीकृष्ण का रूप बना रहता है और ये सदैव उनके आलिङ्गन के लिए उत्सुक बनी रहती हैं ।।१२।। ये श्याम रूपी अमृत के रस में मग्न रहती हैं और इन सबों के मन में उनका भाव बना रहता है । ये अपने नेत्र कमल से भगवान् के चरण कमलों की पूजा करती हैं और इन सबों का मन भगवान् में ही लगा रहता है ।।१३।। उसके बाद एक करोड़ श्रुति कन्यायाँ हैं जो अत्यन्त निपुण हैं । वे अपने आकार से संसार को मोहित करती हैं और उनके मन में भगवान् कृष्ण की लालसा बनी रहती है ।।१४।। अनेक जीवों के स्वर तथा आलाप से युक्त वे त्रैलोक्य को मोहित करती हैं । प्रेम से विह्वल बनी हुयी वे सब भगवान् श्रीकृष्ण के गूढ रहस्यों को गाती रहती हैं ।।१५।। उसके बाद उद्यत्त प्रेम से युक्त दिव्य वेषों वाली देवकन्यायें हैं । अनेक प्रकार की चतुरता में निपुण वे दिव्य भावों से भरी रहती हैं ।।१६।। वे अत्यन्त सुन्दरी तथा मनोहर कटाक्षों वाली हैं । निर्लज्जता पूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण के अङ्गों का स्पर्श करने के लिए वे उत्सुक बनी रहती हैं ।।१७।। उनका मन भगवान् के भावों

तद्भावमग्नमनसः स्मितसाचिनिरीक्षणाः । मन्दिरस्य ततो बाह्ये प्रियया विशदावृते ॥१८॥
समानवेषवयसः समानबलपौरुषाः । समानगुणकर्माणः समानाभरणप्रियाः ॥१९॥
समानस्वरसङ्गीतवेणुवादनतत्पराः । श्रीदामा पश्चिमे द्वारेवसुदामा तथोत्तरे ॥२०॥
सुदामा च तथा पूर्वे किङ्किणे चापि दक्षिणे ।
तद्बाह्ये स्वर्णपीठे च सुवर्णमन्दिरावृत्ते ॥२१॥
स्वर्णवेद्यन्तरस्थे तु स्वर्णाभरणभूषिते । स्तोककृष्णं सुभद्राद्यैर्गोपालैरयुतायुतैः ॥२२॥
शृङ्गवीणावेणुवेत्रवयोवेषाकृतिस्वरैः । तद्गुणध्यानसंयुक्तैर्गायद्भिरपिविह्वलैः ॥२३॥
चित्रार्पितैश्चित्ररूपैः सदानन्दाश्रुवर्षिभिः। पुलकाकुलसर्वाङ्गैर्योगीन्द्रैरिव विस्मितैः ॥२४॥
क्षरत्पयोभिर्गोवृन्दैरसङ्ख्यातैरुपावृतम् । तद्बाह्ये स्वर्णप्राचीरे कोटिसूर्यसमुज्ज्वले ॥२५॥
चतुर्दिक्षुमहोद्यान मञ्जुसौरभमोहिते । पश्चिमे संमुखे श्रीमत्पारिजातद्रुमाश्रयमे ॥२६॥
तत्राधस्तु स्वर्णपीठे स्वर्णमण्डनमण्डिते । तन्मध्ये मणिमाणिक्यदिव्यसिंहासनोज्ज्वले ॥२७॥
तत्रोपरि परानन्दं वासुदेवं जगत्प्रभुम्। त्रिगुणातीतचिद्रूपं सर्वकारणकारणम् ॥२८॥
इन्द्रनीलघनश्यामं नीलकुञ्चितकुन्तलम्। पद्मपत्रविशालाक्षं मकराकृतिकुण्डलम्॥२९॥
चतुर्भुजं तु चक्रासिगदाशङ्खम्बुजायुधम् । आद्यन्तरहितं नित्यं प्रधानं पुरुषोत्तमम्॥३०॥
ज्योतीरूपं महद्धाम पुराणं वनमालिनम्। पीताम्बरधरं स्निग्धं दिव्यभूषणभूषितम्॥३१॥

में मग्न रहता है और वे भगवान् को मुस्कुराती हुयी देखती रहती हैं । प्रियतमा विशद रूप से घिरे हुए मन्दिर से बाहर ॥१८॥ एक समान वेष, अवस्था, बल तथा पौरुष से युक्त समान गुण तथा कर्म वाले तथा एक समान अलङ्कारों को धारण किए हुए ॥१९॥ एक समान स्वर तथा सङ्गीत से युक्त वेणु बजाने में तत्पर रहने वाले पश्चिम द्वार पर श्रीदामा रहते हैं, उत्तर द्वार पर वसुदामा रहते हैं ॥२०॥ पूर्व द्वार पर सुदामा रहते हैं और दक्षिण द्वार पर किङ्किणे हैं । उसके बाहर सुवर्ण पीठ पर सुवर्ण मन्दिर से घिरे हुए॥२१॥ आभूषणों से अलंकृत भीतर के सुवर्ण वेदी पर सुभद्र आदि करोड़ों ग्वाल हैं । वे शृङ्ग, वीणा, वेणु तथा वेत्र धारण करते हैं । सबों की अवस्था तथा आकार एक समान हैं । वे सब बालकृष्ण का सदा ध्यान किया करते हैं और अत्यन्त विह्वल होकर उनके गुणों को गाते रहते हैं ॥२२-२३॥ वे देखने में चित्र के तरह लगते हैं तथा सदा आनन्दाश्रु बहाते रहते हैं । उनके सम्पूर्ण अङ्गों में रोमाञ्च होता रहता है और योगीन्द्रों के समान वे आश्चर्यित रहते हैं ॥२४॥ असङ्ख्य गायें श्रीभगवान् को घेरे रहती हैं और उनके स्तनों से दूध निकलता रहता है । उसके बाहर करोड़ों सूर्य के समान चमकने वाला सुवर्ण की चहरदिवारी है ॥२५॥ उसके चारों ओर मनोहर सुगन्धि से युक्त बड़े-बड़े उद्यान हैं । पश्चिम दिशा में पारिजात वृक्षों का ऐश्वर्य सम्पन्न उद्यान है ॥२६॥ उसके नीचे सुवर्णालङ्कारों से अलंकृत स्वर्णपीठ है । उसके बीच में मणियों एवं माणिक्यों से निर्मित देदीप्यमान दिव्य सिंहासन है ॥२७॥ उसके ऊपर परमानन्द स्वरूप, जगत् के स्वामी, त्रिगुणतीत (शुद्ध सत्त्व स्वरूप) ज्ञान स्वरूप, समस्त कारणों के कारण भगवान् वासुदेव बैठें हैं ॥२८॥ वे इन्द्र नीलमणि के समान श्याम वर्ण के हैं । उनके काले घुंघराले केश हैं । उनके नेत्र कमल दल के समान मनोहर और बड़े-बड़े हैं । वे मकराकृति कुण्डल को धारण किए हुए हैं ॥२९॥ उनकी चार भुजाएँ हैं तथा वे चक्र, खड्ग, गदा, शङ्ख और कमल धारण किए हुए हैं । वे आदि एवं अन्त से रहित,

दिव्यानुलेपनं राजच्चित्रिताङ्गमनोहरम्। रुक्मिणी सत्यभामा च नाग्नजिती सुलक्षणा ॥३२॥
मित्रविन्दाऽनुविन्दा सुनन्दा जाम्बवती प्रिया ।
सुशीला चाष्टमहिला वासुदेवप्रियास्ततः ॥३३॥
उद्भ्राजिताः पारिषदा वृत्तयोर्भक्तितत्पराः। उत्तरे सुमहोद्याने हरिचन्दनसंश्रये ॥३४॥
तत्राधस्तु स्वर्णपीठे मणिमण्डपमण्डिते । तन्मध्ये हेमनिर्माणदले सिंहासनोज्ज्वले ॥३५॥
तत्रैव सहरेवत्या सङ्कर्षणहलायुधम्। ईश्वरस्य प्रियानन्तमभिन्नगुणरूपिणम्॥३६॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशं रक्ताम्बुजदलेक्षणम्। नीलपट्टधरं स्निग्धं दिव्यभूषास्त्रगम्बरम्॥३७॥
मधुपाने सदा सक्तं मधुघूर्णितलोचनम्। प्रावीरदक्षिणे भागे मञ्जुनाऽभ्यन्तरस्थिते ॥३८॥
सन्तानवृक्षमूले तु मणिमन्दिरमण्डितम्। तन्मध्ये मणिमाणिक्यदिव्यसिंहासनोज्ज्वले ॥३९॥
प्रद्युम्नं च रतीदेवं तत्रोपरि सुखस्थितम्। जगन्मोहनसौन्दर्यसारश्रेणीरसात्मकम् ॥४०॥
असिताम्भोजपुञ्जाभमरविन्ददलेक्षणम् । दिव्यालङ्कारभूषाभिर्दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥४१॥
जगन्मुग्धीकृताशेषसौन्दर्याश्चर्यविग्रहम् । पूर्वोद्याने महारण्ये सुरद्रुमसमाश्रये ॥४२॥
तत्राधस्तु स्वर्णपीठे हेममण्डपमण्डिते । तस्य मध्ये स्थिरे राजद्दिव्यसिंहासनोज्ज्वले ॥४३॥
दिव्योषया समं श्रीमदनिरुद्धं जगत्पतिम्। सान्द्रानन्दघनश्यामं सुस्निग्धं नीलकुन्तलम्॥४४॥
सुभ्रून्नतलताभङ्गं सुकपोलं सुनासिकम्। सुग्रीवं सुन्दरं वक्षो मनोहरमनोहरम्॥४५॥

नित्य तथा प्रधान पुरुषोत्तम हैं ॥३०॥ वे ज्योति स्वरूप, अत्यधिक प्रकाश युक्त, पुराण पुरुष हैं और वनमाला धारण किए हैं तथा स्निग्ध पीताम्बर धारण किए हुए दिव्य भूषणों को धारण किए हुए हैं ॥३१॥ उनके अङ्गों में दिव्य अङ्गरागों से मनोहर चित्रकारी की गयी है । उनकी आठ महिलाएँ प्रियतमायें हैं । उनके नाम हैं रुक्मिणी, सत्यभामा, सुन्दर लक्षणों वाली नाग्नजिती, मित्रविन्दा, अनुविन्दा, सुनन्दा, जम्ववती तथा सुशीला ॥३२-३३॥ उनकी सभा में रहने वाले पार्षद भगवान् की भक्ति में लगे रहते हैं । उत्तर की ओर हरिचन्दन वृक्षों का बड़ा उद्यान है ॥३४॥ उसके नीचे मणिमय मण्डप से मण्डित सुवर्ण पीठ है । उसके बीच में सुवर्णमय सिंहासन पर रेवतीजी के साथ हलायुध धारण करने वाले बलरामजी विद्यमान हैं। वे श्रीभगवान् के अत्यन्त प्रिय हैं और उनके गुण श्रीभगवान् के ही समान हैं ॥३६॥ उनका वर्ण शुद्ध स्फटिक मणि के समान है । उनके नेत्र रक्तकमल के समान लाल हैं । वे चिकना नीला वस्त्र धारण किए हैं और दिव्य भूषण एंव माला धारण किए हुए हैं ॥३७॥ निरन्तर मधु (मन्दिर) पीते रहते हैं, उनके नेत्र नशा के कारण घूर्णित होते रहते हैं । चाहारदिवारी के दक्षिण भाग में मञ्जुनाभि के भीतर विद्यमान ॥३८॥ सन्तान वृक्ष के नीचे देदीप्यमान मणिमाण्क्यि निर्मित दिव्य सिंहासन है । उसके बीच में रति देवी के पति प्रद्युम्नजी सुख पूर्वक बैठे हैं । वे संसार को मोहित करने वाले सौन्दर्य के सार समूह स्वरूप हैं ॥३९-४०॥ वे कमल समूह की सुगन्धि से सुगन्धित हैं । कमल के समान उनके मनोहर नेत्र हैं । वे दिव्य अलङ्कारों तथा भूषणों से भूषित हैं तथा दिव्य गन्धों के लेप लगाये हैं ॥४१॥ वे अपने सौन्दर्य से सम्पूर्ण संसार को मोहित कर देने वाले हैं । उनका श्रीविग्रह आश्चर्यमय है । चाहार दिवारी के पूर्व ओर देवद्रुम का महावन है ॥४२॥ उसके नीचे सुवर्ण पीठ पर सुवर्ण मण्डप से अलंकृत सुवर्ण वेदी हैं । उसके बीच में देदीप्यमान दिव्य सिंहासन सुशोभित हो रहा है ॥४३॥ दिव्य गुण सम्पन्न उषा देवी के साथ आनन्दघन

किरीटीनं कुण्डलिनं कण्ठभूषाबिभूषितम् । मञ्जुमञ्जीरमाधुर्यादतिसौन्दर्यविग्रहम् ॥४६॥
प्रियभृत्यगणाराध्यं यत्रसङ्गीतकप्रियम् । पूर्णब्रह्मसदानन्दं शुद्धसत्त्वस्वरूपिणम् ॥४७॥
तस्योद्ध्वें चान्तरिक्षे च विष्णुं सर्वेश्वरम् । अनादिमादिचिद्रूपं चिदानन्दपरं विभुम् ॥४८॥
त्रिगुणातीतमव्यक्तं नित्यमक्षयमव्ययम् । समेघपुञ्जमाधुर्यसौन्दर्यश्यामविग्रहम् ॥४९॥
नीलकुञ्चितसुस्निग्धकेशपाशातिसुन्दरम् । अरविन्ददलस्निग्धसुदीर्घचारुलोचनम् ॥५०॥
किरीटकुण्डलोद्दण्डं शुद्धसत्त्वात्मभिर्वृतम् । आत्मारामैश्च चिद्रूपैस्तन्मूर्तिध्यानतत्परैः ॥५१॥
हृदयारूढतद्ध्यानैर्नासाग्रन्यस्तलोचनैः । क्रियतेऽहैतुकी भक्तिः कायहृद्वृत्तिभाषितैः ॥५२॥
तत्सव्ये यक्षगन्धर्वसिद्धविद्याधरादिभिः । सुकान्तैरप्सरःसङ्घैर्नृत्यसङ्गीततत्परैः ॥५३॥
तदङ्गभजनं कामं वाञ्छद्भिः कृष्णलालसैः । तदग्रे वैष्णवैः सर्वैश्चान्तरिक्षे सुखासने ॥५४॥
प्रह्लादनारदाद्यैश्च कुमारशुकवैष्णवैः । जनकाद्यैर्लसद्भावैर्हृद्बाह्यस्फूर्त्तितत्परैः ॥५५॥
पुलकाकुलसर्वाङ्गैः स्फुरत्प्रेम समाकुलैः । रहस्यामृतसंसिक्तैरर्धयुग्माक्षरो मनुः ॥५६॥
मन्त्रचूडामणिः प्रोक्तः सर्वमन्त्रैककारणम् । सर्वदेवस्य मन्त्राणां कैशोरं मन्त्रहैतुकम् ॥५७॥
सर्वकैशोरमन्त्राणां हेतुश्चूडामणिर्मनुः । जपं कुर्वन्ति मनसा पूर्णप्रेमसुखाश्रयाः ॥५८॥
वाञ्छन्ति तत्पदाम्भोजे निश्चलं प्रेमसाधनम् । तद्बाह्ये स्फटिकाद्युच्चप्राचीरे सुमनोहरे ॥५९॥

स्वरूप श्याम वर्ण वाले अत्यन्त चिकने काले केशों वाले, जगत् के स्वामी अनिरुद्धजी विद्यमान हैं ॥४४॥ उनकी भौंहे ऊपर की ओर उठी हैं । उनके कपोल, नासिका और ग्रीवा सुन्दर हैं । उनका वक्षःस्थल अत्यन्त मनोहर है ॥४५॥ वे किरीट, कुण्डल तथा कण्ठभूषण से अलंकृत हैं । मनोहर नूपुर के सौन्दर्य से उनका शरीर अत्यन्त सुन्दर लगता है ॥४६॥ उनके प्रिय भृत्यगण उनकी आराधना करते है, वे सङ्गीत प्रिय हैं । वे पूर्ण ब्रह्मानन्द स्वरूप और शुद्ध सत्त्व स्वरूप वाले हैं ॥४७॥ उसके ऊपर अन्तरिक्ष में विद्यमान सभी स्वामियों के भी स्वामी अनादि तथा कारणस्वरूप ज्ञान स्वरूप, व्यापक तथा चिदानन्द स्वरूप, प्रकृति से परे, अव्यक्त स्वरूप, नित्य, अक्षय तथा निर्विकार, मेघ समूह के सौन्दर्य से युक्त श्याम वर्ण के शरीर वाले कमल दल के समान सुन्दर तथा विस्तृत नेत्रों वाले किरीट तथा कुण्डल से सुशोभित कपोल वाले, शुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्न मूर्ति श्रीभगवान् का ध्यान आत्माराम ज्ञानस्वरूप योगिजन नासिका के अग्रभाग में अपने नेत्रों को टिकाकर अपने हृदय में करते रहते हैं । वे योगिजन श्रीभगवान् का अहैतुकी (निष्काम) भक्ति अपने शरीर तथा हृदय की वृत्तियों द्वारा करते हैं ॥४८-५२॥ उनकी वायीं ओर यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर तथा सुन्दर अप्सरायें नृत्य तथा सङ्गीत करती रहती हैं ॥५३॥ उनके आगे, भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति की लालसा से श्रीवैष्णवजन अन्तरिक्ष में सुख पूर्वक आसन पर बैठकर उनका भजन करते हैं ॥५४॥ वे वैष्णवजन हैं प्रह्लादजी, नारदजी, सनकादिक ऋषि, शुकदेवजी तथा जनक आदि हैं । ये सभी सद्भाव से भरे हुए हैं तथा इनके हृदय के भीतर तथा बाहर स्फूर्ति बनी रहती है ॥५५॥ उनका सारा अङ्ग रोमाञ्चित रहता है और वे प्रेम से परिपूर्ण रहते हैं । वे रहस्य रूपी अमृत से संसिक रहते है ढाई अक्षर के मन्त्र का जप प्रेमपूर्ण मन से करते रहते हैं । यह मन्त्र चूड़ामणि कहलाता है, यह सभी मन्त्रों का कारण है सभी देवताओं के मन्त्रों का जनक कैशोर मन्त्र है । सभी कैशोर मन्त्रों का कारण चूडामणि मन्त्र है ॥५६-५८॥ वे सबके सब श्रीभगवान् के चरण कमल में निश्चल प्रेम करना चाहते हैं ।

कुङ्कुमैः सितक्ताद्यैश्चतुर्दिक्षुसमाकुलैः । शुक्लं चतुर्भुजं विष्णुं पश्चिमे द्वारपालकम् ॥६०॥
शङ्खचक्रगदापद्मकिरीटादिविभूषितम् । रक्तं चतुर्भुजं पद्मशङ्खचक्रगदायुधम् ॥६१॥
किरीटकुण्डलोद्दीप्तं द्वारपालकमुत्तरे । गौरं चतुर्भुजं विष्णुं शङ्खचक्रगदायुधम् ॥६२॥
किरीटकुण्डलाद्यैश्च शोभितं वनमालिनम् । पूर्वद्वारे द्वारपालं गौरं विष्णुं प्रकीर्तितम् ॥६३॥
कृष्णवर्ण चतुर्बाहुं शङ्खचक्रादिभूषणम् । दक्षिणद्वारपालं तु श्रीविष्णुं कृष्णवर्णकम् ॥६४॥
श्रीकृष्णचरितं ह्येतद्यः पठेत्प्रयतः शुचिः । शृणुयाद्वापि यो भक्त्या गोविन्दे लभते रतिम्॥६५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे श्रीकृष्णचरिते सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

एकहत्तरवाँ अध्याय

श्रीदेव्युवाच

भगवन्सर्वभूतेश ! सर्वात्मन्सर्वसम्भव ! । देवेश्वर ! महादेव ! सर्वज्ञकरुणाकर !॥१॥
त्वयानुकम्पितैवाहं भूयोप्याहानुकम्पया । त्रैलोक्यमोहनामन्त्रास्त्वया मे कथिताःप्रभो ॥२॥
तेन देवेन गोपीभिर्महामोहनरूपिणा । केन केन विशेषेण चिक्रीडे तद्वदस्व मे॥३॥

उसके बाहर स्फटिक आदि चाहार दिवारी जो अत्यन्त मनोहर है ॥५९॥ श्वेत तथा लाल कुङ्कुम आदि से युक्त पश्चिम दिशा के द्वारपाल श्वेत वर्ण के तथा चार भुजाओं वाले विष्णु को उत्तर दिशा के द्वारपाल शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म तथा किरीट आदि से विभूषित रक्त वर्ण वाले तथा चार भुजाओं वाले शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आयुध धारण करने वाले विष्णु जो किरीट और कुण्डल धारण किए हैं; पूर्व दिशा के द्वारपाल गौर वर्ण वाले चतुर्भुज विष्णु हैं । वे शङ्ख, चक्र, और गदा धारण किए हैं ॥६०-६२॥ वनमाला धारण किए हुए वे किरीट और कुण्डल से सुशोभित हैं । दक्षिण द्वार के द्वारपाल कृष्णवर्ण वाले विष्णु हैं । उनकी चार भुजाएँ हैं । वे शङ्ख, चक्र आदि धारण किए हुए हैं ॥६३-६४॥ भगवान् श्रीकृष्ण के इस चरित को जो पवित्रता पूर्वक पढता है अथवा सुनता है उसका भगवान् गोविन्द में प्रेम हो जाता है ॥६५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवे पातालखण्ड के श्रीकृष्ण चरितान्तर्गत सत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७०॥

नारदजी का वृन्दावन में भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीराधाजी का दर्शन करना

श्रीदेवी ने कहा— हे सभी जीवों के स्वामी भगवन् ! हे सर्वात्मन् ! हे सर्वसम्भव ! हे देवेश्वर ! हे महादेव ! हे सर्वज्ञ ! हे करुणाकर ! ॥१॥ आपने मेरे ऊपर कृपा की है । पुनः कृपा करके आपने मुझे त्रैलोक्य मोहन मन्त्रों को बतलाया है ॥२॥ महामोहन स्वरूप वे भगवान् से गोपियों के साथ किस-किस प्रकार से क्रीड़ा किये ? यह मुझे बतलायें ॥३॥ **महादेवजी ने कहा**— मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी को जब इस बात का पता चला कि भगवान् का कृष्णावतार हो गया है तो वे एक बार बीणा बजाते हुए नन्दगोकुल

महादेव उवाच

एकदा वादयन्वीणां नारदो मुनिपुङ्गवः । कृष्णावतारमाज्ञाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥४॥
गत्वा तत्र महायोगमयेशं विभुमच्युतम् । बालनाट्यधरं देवमद्राक्षीन्नन्दवेश्मनि ॥५॥
सुकोमलपटास्तीर्णहेमपर्यङ्किकोपरि । शयानं गोपकन्याभिः प्रेक्षमाणं सदा मुदम्॥६॥
अतीव सुकुमाराङ्गं मुग्धं मुग्धविलोकनम्। विस्त्रस्तनीलकुटिलकुन्तलावलिमण्डलम् ॥७॥
किञ्चित्स्मिताङ्कुरव्यञ्जदेकद्विरदकुड्मलम् । स्वप्रभाभिर्भासयन्तं समन्ताद्भवनोदरम् ॥८॥
दिग्वाससं समालोक्य सोऽतिहर्षमवापह । सम्भाष्य गोपतिं नन्दमाह सर्वप्रभुप्रियः ॥९॥
नारायणपराणां तु जीवनं ह्यतिदुर्लभम् । अस्य प्रभावमतुलं न जानन्तीह केचन ॥१०॥
भवब्रह्मादयोऽप्यस्मिन्रतिं वाञ्छन्ति शाश्वतीम् ।
चरितं चास्य बालस्य सर्वेषामेव हर्षणम् ॥११॥
मुदा गायन्ति शृण्वन्ति चाभिनन्दन्ति तादृशाः ।
अस्मिंस्तवा सुतेऽचिन्त्यप्रभावे स्निग्धमानसाः ॥१२॥
नराः सन्ति न तेषां वै भव बाधा भविष्यति ।
मुञ्चेह परलोकेच्छाः सर्वा वल्लवसत्तम ॥१३॥
एकान्तेनैकभावेन बालेऽस्मिन्प्रीतिमाचर । इत्युक्त्वा नन्दभवनान्निष्क्रान्तो मुनिपुङ्गवः ॥१४॥
तेनार्चितो विष्णुबुद्ध्या प्रणम्य च विसर्जितः ।
अथासौ चिन्तयामास महाभागवतो मुनिः ॥१५॥
अस्य कान्ता भगवती लक्ष्मीर्नारायणे हरौ। विधाय गोपिकारूपं क्रीडार्थं शार्ङ्गधन्वनः ॥१६॥

में गये ॥४॥ वहाँ पर वे महायोगमाया के स्वामी श्रीभगवान् को बाल रूप धारण किए हुए नन्दजी के घर में देखे ॥५॥ सुवर्ण निर्मित पलङ्ग जिस पर अत्यन्त कोमल वस्त्र बिछा था । भगवान् उस पर सोये हुए थे और गोप कन्यायें उनको निरन्तर प्रेम पूर्वक देख रही थीं ॥६॥ उनके अङ्ग अत्यन्त मनोहर और सुकुमार थे । उनके नेत्र भी मनोहर थे । बिखरे हुए काले घुंघराले केश से उनका मुख मण्डल मण्डित था॥७॥ कुछ मुस्कुराने के कारण उनका दाँत दिखायी देता था । वे अपनी कान्तियों सम्पूर्ण भवन को प्रकाशित कर रहे थे ॥८॥ भगवान् को नग्न देखकर नारदजी अत्यन्त प्रसन्न हुए । ग्वालों के स्वामी नन्दजी से सभी स्वामियों के प्रिय नारदजी ने कहा ॥९॥ भगवान् नारायण के भक्त मनुष्यों का जीवन अत्यन्त दुर्लभ है । वे भी इस बालक के विषय में शाश्वत प्रेम प्राप्त करना चाहते थें । इस बालक का चरित सबों को अत्यन्त हर्ष प्रदान करने वाला है ॥१०-११॥ ब्रह्माजी जैसे अचिन्त्य प्रभाव वाले महापुरुष आपके पुत्र के प्रति प्रेम पूर्ण मन वाले हैं । जो मनुष्य प्रेम पूर्वक इसका गायन करते हैं, श्रवण करते हैं और इसका अभिनंदन करते हैं ॥१२॥ उन मनुष्यों को संसार की कोई भी बाधा नहीं लगती है । हे गोप श्रेष्ठ ! आप परलोक सम्बन्धी सारी कामनाओं का त्याग कर दें ॥१३॥ आप ऐकान्तिक भक्तिभाव से इस बालक से प्रेम करें । इस तरह से कहकर मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी नन्दजी के भवन से निकल गये ॥१४॥ नन्दजी ने मुनि की पूजा की और नारदजी विष्णु बुद्धि से उस बालक को प्रणाम किये इसके बाद महाभागवत मुनि ने विचार किया ॥१५॥ नारायण श्रीहरि की पत्नी भगवती लक्ष्मीजी, श्रीभगवान् की क्रीड़ा के लिए गोपिका

अवश्यमवतीर्णा सा भविष्यति न संशयः। तामहं विचिनोम्यद्य गेहे गेहे व्रजौकसाम्॥१७॥
विमृश्यैवं मुनिवरो गेहानि व्रजवासिनाम्। प्रविवेशातिथिर्भूत्वा विष्णुबुद्ध्या सुपूजितः॥१८॥
सर्वेषां वल्लवादीनां रतिं नन्दसुते पराम्। दृष्ट्वा मुनिवरः सर्वान्मनसा प्रणनाम ह॥१९॥
गोपालानां गृहे बालां ददर्शश्वेतरूपिणीम्। स दृष्ट्वा तर्कयामास रमा ह्येषा न संशयः॥२०॥
प्रविवेश ततो धीमान्नन्दसख्युर्महात्मनः। कस्यचिद्गोपवर्यस्य भानुनाम्नो गृहं महत्॥२१॥
अर्चितो विधिवत्तेन सोऽप्यपृच्छन्महामनाः। साधो ! त्वमसि विख्यातो धर्मनिष्ठतया भुवि॥२२॥
तवाहं धनधान्यादिसमृद्धिं संविभावये।
कच्चित्ते योग्यः पुत्रोऽस्ति कन्या वा शुभलक्षणा॥२३॥
यतस्ते कीर्तिरखिलं लोकं व्याप्य भविष्यति।
इत्युक्तो मुनिवर्येण भानुरानीयपुत्रकम्॥२४॥
महातेजस्विनं दृप्तं नारदायाभ्यवादयत्। दृष्ट्वा मुनिवरस्तं तु रूपेणाप्रतिमं भुवि॥२५॥
पद्मपत्रविशालाक्षं सुग्रीवं सुन्दरभ्रुवम्। चारुदन्तं चारुकर्णं सर्वावयवसुन्दरम्॥२६॥
तं समाश्लिष्य बाहुभ्यां स्नेहाश्रूणि विमुच्य च।
ततः स गद्गदं प्राह प्रणयेन महामुनिः॥२७॥

नारद उवाच

अयं शिशुस्ते भविता सुसखा रामकृष्णयोः।
विहरिष्यति ताभ्यां च रात्रिन्दिवमतन्द्रितः॥२८॥
तत आभाष्य तं गोपप्रवरं मुनिपुङ्गवः। यदा गन्तुं मनश्चक्रे तत्रैवं भानुरब्रवीत्॥२९॥

रूप धारण करके अवश्य अवतीर्ण हुयी होंगी इसमें किसी भी प्रकार का संशय नही हैं। उनको आज मैं वज्रवासियों के प्रत्येक गृह में ढूंढूंगा॥१६-१७॥ इस प्रकार से विचार करके नारदजी व्रजवासियों के घरों में अतिथि बनकर गये और सबों ने उनकी पूजा विष्णु बुद्धि से की॥१८॥ सभी गोपों की नन्द पुत्र में श्रेष्ठ प्रेम को देखकर मुनि ने सबों को मन ही मन प्रणाम किया॥१९॥ उन्होंने गोपालों के घर में एक गोरी बालिका को देखा उसको देखकर नारदजी ने सोचा ये निश्चित रूप से लक्ष्मी ही हैं॥२०॥ इसके बाद बुद्धिमान नारदजी नन्दजी के मित्र महात्मा भानु के गृह में गये वह गोपवर्य भानु का गृह बहुत बड़ा था॥२१॥ उन्होंने विधि पूर्वक नारदजी की पूजा की। महामना नारदजी ने भानु से कहा कि आप तो पृथिवी पर परम धार्मिकों में विख्यात हैं॥२२॥ मैं आपके धन धान्य की समृद्धि को जानता हूँ। क्या आपका कोई योग्य पुत्र है अथवा कोई शुभ लक्षणों वाली कन्या हैं?॥२३॥ जिससे कि आपकी सम्पूर्ण लोक में कीर्ति व्याप्त होगी। इस तरह से मुनिवर्य के कहने पर भानु अपने पुत्र को लाये॥२४॥ वह बालक अत्यन्त तेजस्वी और दृप्त था। उन्होंने उससे नारदजी को प्रणाम करवाया। संसार में उसके अप्रतिम रूप को नारदजी ने देखा॥२५॥ उसकी आँखें कमल दल के समान बड़ी-बड़ी थीं, गला और भौंहें सुन्दर थे। उसके दाँत और कान तथा सारे अङ्ग सुन्दर थे॥२६॥ नारदजी ने उसको अपनी भुजाओं में भरकर उसका आलिङ्गन किया और प्रेम का आँसू बहाया। उसके बाद प्रेम पूर्वक नारदजी ने गद्गद स्वर में कहा॥२७-२८॥ भानुजी आपका यह बालक श्रीकृष्ण और बलरामजी का घनिष्ठ मित्र होगा। जब

एकाऽस्ति पुत्रिका देव देवपत्न्युपमा मम । कनीयसी शिशोरस्य जडान्धवधिराकृतिः ॥३०॥
उत्साहाद्वृद्धये याचे त्वां वरं भगवत्तम। प्रसन्नदृष्टिमात्रेण सुस्थिरां कुरु बालिकाम् ॥३१॥
श्रुत्वैवं नारदो वाक्यं कौतुकाकृष्टमानसः। अथ प्रविश्य भवनं लुठन्तीं भूतले सुताम्॥३२॥
उत्थाप्याङ्के निधायातिस्नेहविह्वलमानसः । भानुरप्यcraftयौ भक्तिनम्रो मुनिवरान्तिकम् ॥३३॥
अथ भागवतश्रेष्ठः कृष्णस्यातिप्रियो मुनिः। दृष्ट्वा तस्याः परं रूपमादृष्टाश्रुतमद्भुतम् ॥३४॥
अभूतपूर्वसमं मुग्धो हरिप्रेमा महामुनिः। विगाह्य परमानन्दसिन्धुमेकरसायनम् ॥३५॥
मुहूर्त्तद्वितयं तत्र मुनिरासीच्छिलोपमः। मुनीन्द्रः प्रतिबुद्धस्तु शनैरुन्मील्य लोचने ॥३६॥
महाविस्मयमापन्नस्तूष्णीमेव स्थितोऽभवत् । अन्तर्हृदि महाबुद्धिरेवमेवं व्यचिन्तयत् ॥३७॥

भ्रान्तं सर्वेषु लोकेषु मया स्वच्छन्दचारिणा ।
अस्या रूपेण सदृशी दृष्टा नैव च कुत्रचित् ॥३८॥
ब्रह्मलोके रुद्रलोके इन्द्रलोके च मे मतिः ।
न कोऽपि शोभाकोट्यंशः कुत्राप्यस्या विलोकितः ॥३९॥

महामाया भगवती दृष्टा शैलेन्द्रनन्दिनी । यस्या रूपेण सकलं मुह्यते सचराचरम् ॥४०॥

साप्यस्याः सुकुमाराङ्गी लक्ष्मीं नाप्नोति कर्हिचित् ।
लक्ष्मीः सरस्वती कान्तिविद्याद्याश्च वरस्त्रियः ॥४१॥
छायामपि स्पृशन्त्यस्याः कदाचिन्नैव दृश्यते ।
विष्णोर्यन्मोहिनीरूपं हरो येन विमोहितः ॥४२॥

मुनि वहाँ से जाना चाहे उसी समय भानु ने नारदजी से कहा ॥२९॥ हे देव ! मेरी देवपत्नी के समान सुन्दर एक पुत्री है । वह इस बालक से छोटी है वह आकार से जडा, अन्धी और बहरी के समान है॥३०॥ हे भगवन् ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि उसकी शीघ्र वृद्धि हो । आप अपने प्रसन्न नेत्रों से उस बालिका को सुस्थिर बना दें ॥३१॥ इस तरह की बाणी सुनकर नारदजी का मन कौतुक से भर गया। इसके बाद भवन में प्रवेश करके पृथिवी पर लोटती हुयी अपनी उस बालिका को ॥३२॥ उठाकर अत्यन्त स्नेह भरे मन से उस बालिका को गोद में लेकर भानु भी भक्ति पूर्वक नारदजी के समीप आये ॥३३॥ उसके पश्चात् भगवद् भक्तों में श्रेष्ठ तथा भगवान् श्रीकृष्ण के अत्यन्त प्रिय नारदजी उस बालिका के अदृष्ट और अश्रुत अद्भुत रूप को देखकर ॥३४॥ श्रीहरि से प्रेम करने वाले महामुनि अपूर्व रूप से मोहित हो गये, आनन्द सागर में मग्न होकर ॥३५॥ दो मुहूर्त तक शिला के समान वे जड से बने रहे उसके बाद सावधान होकर तथा अपनी आँखें खोलकर ॥३६॥ अत्यन्त आश्चर्यित होकर वे चुपचाप स्थित रहे । उन्होंने अपने हृदय में इस प्रकार से विचार किया ॥३७॥ स्वच्छन्द विचरण करने वाले मैंने सभी लोकों में भ्रमण किया है, किन्तु इसके समान सुन्दरी मैंने कहीं नहीं देखा है ॥३८॥ मैं ब्रह्मलोक में, रुद्रलोक में तथा इन्द्रलोक में भी जाता हूँ, किन्तु इसकी शोभा के करोड़वें अंश के भी समान शोभा कहीं पर भी मैंने किसी का नहीं देखा ॥३९॥ जिनके रूप को देखकर चराचरात्मक मोहित हो जाता है मैंने उन महामाया भगवती पार्वतीजी को देखा है ॥४०॥ सुकुमार अङ्गों वाली लक्ष्मीजी भी इसके सदृश नहीं हैं । लक्ष्मी, सरस्वती, कान्ति तथा विद्या इत्यादि श्रेष्ठ स्त्रियाँ हैं ॥४१॥ किन्तु वे सब इसकी छाया का भी स्पर्श नहीं

मया दृष्टं च तदपि कुतोऽस्याः सदृशं भवेत् ।
ततोऽस्यास्तत्त्वमाज्ञातुं न मे शक्तिः कथञ्चन ॥४३॥
अन्ये चापि न जानन्ति प्रायेणैनां हरेः प्रियाम् ।
अस्याः सन्दर्शनादेव गोविन्दचरणाम्बुजे ॥४४॥
या प्रेमर्द्धिरभूत्सा मे भूतपूर्वा न कर्हिचित्। एकान्ते नौमि भवतीं दर्शयित्वातिवैभवम्॥४५॥
कृष्णस्य सम्भवत्यस्या रूपं परमतुष्टये। विसृश्यैवं मुनिर्गोपप्रवरं प्रेष्य कुत्रचित् ॥४६॥
निभृते परितुष्टाव बालिकां दिव्यरूपिणीम्। अयि देवि महायोगमायेश्वरि महाप्रभे ॥४७॥
महामोहनदिव्याङ्गि महामाधुर्यवर्षिणि। महाद्भुतरसानन्दशिथिलीकृतमानसे ॥४८॥
महाभाग्येन केनपि गतासि मम दृक्पथम्। नित्यमन्तर्मुखा दृष्टिस्तव देवि विभाव्यते ॥४९॥
अन्तरेवे महानन्दपरितृप्तैव लक्ष्यसे। प्रसन्नं मधुरं सौम्यमिदं सुमुखमण्डनम्॥५०॥
व्यनक्ति परमाश्चर्यं कमप्यन्तः सुखोदयम्। रजः सम्बन्धिकलिकाशक्तिस्तत्त्वातिशोभने॥५१॥
सृष्टिस्थितिसमाहाररूपिणी त्वमधिष्ठिता। तत्त्वं विशुद्धसत्वाशुशक्तिविद्यात्मिकापरा ॥५२॥
परमानन्दसन्दोहं दधती वैष्णवं परम्। का त्वयाश्चर्यविभवे ब्रह्मरुद्रादिदुर्गमे ॥५३॥
योगीन्द्राणां ध्यानपथं न त्वं स्पृशसि कर्हिचित् ।
इच्छाशक्तिर्ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिस्तवेशितुः ॥५४॥
तवांशमात्रमित्येवं मनीषा मे प्रवर्त्तते। मायाविभूतयोऽचिन्त्यास्तन्मायार्भकमायिनः ॥५५॥

कर सकती हैं। जिसको देखकर शङ्करजी मोहित हो गये थे, भगवान् विष्णु के उस मोहिनी रूप को भी मैंने देखा है। किन्तु वह भी इसके सदृश नहीं हो सकता है, अतएव इसके तत्त्व को जानने की मुझमें शक्ति नहीं है ॥४२-४३॥ दूसरे लोग भी श्रीहरि की प्रियतमा रूप से इनको नहीं जानते हैं। इस बालिका को देखने मात्र से मुझमें जो गोविन्द के चरण कमलों में प्रेम उत्पन्न हुआ है वैसा प्रेम मुझमें कभी नहीं उत्पन्न हुआ। इनके अत्यन्त वैभव को देखकर मैं एकान्त में इसको प्रणाम करता हूँ ॥४४-४५॥ इसके रूप को देखकर भगवान् कृष्ण को अत्यन्त सन्तोष होगा। इस तरह से विचार करके नारदजी गोप श्रेष्ठ भानु को कहीं भेज दिए ॥४६॥ एकान्त में उन्होंने उस दिव्य रूप वाली बालिका की स्तुति की। हे महामाये देवि! हे महाकान्ति सम्पन्न स्वामिनि!॥४७॥ हे अत्यन्त मोहित करने वाले दिव्य अङ्गों वाली! हे महामाधुर्य की वर्षा करने वाली! अत्यन्त अद्भुत आनन्द के द्वारा मन को स्थिर बना देने वाली!॥४८॥ किसी बहुत बड़े भाग्य के कारण मुझे आपका दर्शन मिला है। हे देवि! आपकी दृष्टि सदा अन्तर्मुखी से दिखती है ॥४९॥ लगता है कि आप अपने आन्तरिक महानन्द के द्वारा तृप्त हैं। आपका यह सुन्दर मुख मण्डल प्रसन्न एवं मधुर है ॥५०॥ वह आपके किसी आन्तरिक सुख की उत्पत्ति को अभिव्यक्त करता है। हे रजोगुण विषयक कलिका शक्ति स्वरूपिणी! हे अत्यन्त सुन्दरि! ॥५१॥ आप सृष्टि, स्थिति तथा संहार स्वरूपिणी हैं। आप उसकी अधिष्ठातृ देवी हैं। आप शुद्ध सत्त्व तत्त्व हैं। आप सर्वोत्कृष्ट विद्यात्मिका शक्ति हैं ॥५२॥ आप परंब्रह्म के वैष्णव परमानन्द समूह को धारण करती हैं। ब्रह्मा तथा रुद्र के लिए भी दुर्गम आपके ऐश्वर्य के विषय में कौन सा आश्चर्य हैं?॥५३॥ बड़े-बड़े योगीन्द्र के ध्यान में भी आप नहीं आती हैं। आपमें जगन्नियन्ता की इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति विद्यमान है ॥५४॥ माया से

परेशस्य महाविष्णोस्ताः सर्वास्ते कलाकलाः ।
आनन्दरूपिणी शक्तिस्त्वमीश्वरि न संशयः ।।५६।।
त्वया च क्रीडते कृष्णो नूनं वृन्दावने वने। कौमारेणैव रूपेण त्वं विश्वस्य च मोहिनी ।।५७।।
तारुण्यवयसास्पृष्टं कीदृक्ते रूपमद्भुतम् । कीदृशं तव लावण्यं लीलाहासेक्षणान्वितम् ।।५८।।
हरिमानुषलोभेन वपुराश्चर्यमण्डितम्। द्रष्टुं तदहमिच्छामि रूपं ते हरिवल्लभे ।।५९।।
येन नन्दसुतः कृष्णो मोहं समुपयास्यति। इदानीं मम कारुण्यान्निजं रूपं महेश्वरि !।।६०।।
प्रणताय प्रपन्नाय प्रकाशयितुमर्हसि। इत्युक्ता मुनिवर्येण तदनुव्रतचेतसा ।।६१।।
महामाहेश्वरीं नत्वा महानन्दमयीं पराम्। महाप्रेमतरोत्कण्ठां व्याकुलाङ्गीं शुभेक्षणाम् ।।६२।।
ईक्षमाणेन गोविन्दमेवं वर्णयतास्थितम्। जय कृष्ण मनोहारिञ्जयवृन्दावनप्रिय ।।६३।।
जय भ्रूभङ्गललित ! जय वेणुरवाकुल ! । जय बर्हकृतोत्तंस ! जय गोपीविमोहन !।।६४।।
जय कुङ्कुमलिप्ताङ्ग ! जय रत्नविभूषण !। कदाऽहं त्वत्प्रसादेन अनया दिव्यरूपया ।।६५।।
सहितं नवतारुण्यमनोहारिवपुः श्रिया । विलोकयिष्ये कैशोरे मोहनं त्वां जगत्पते ।।६६।।
एवं कीर्त्तयतस्तस्य तत्क्षणादेव सा पुनः । बभूव दधती दिव्यं रूपमत्यन्तमोहनम्।।६७।।
चतुर्दशाब्दवयसा संमितं ललितं परम्। समानवयसश्चान्यास्तदैव व्रजबालिकाः ।।६८।।
आगत्य वेष्टयामासुर्दिव्यभूषाम्बरस्त्रजः । मुनीन्द्रः स तु निश्चेष्टो बभूवाश्चर्यमोहितः।।६९।।

बालक बने हुए मायी (परमात्मा) की मायामयी विभूतियाँ अचिन्त्य हैं । अर्थात् उसका सामान्य बुद्धि से चिन्तन नहीं किया जा सकता है । वह भी आपका अंश मात्र हैं, ऐसा मुझे लगता है ।।५५।। हे स्वामिनि! परमात्मा महाविष्णु की सारी कलाएँ तथा आनन्द स्वरूपिणी शक्ति आप ही हैं, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ।।५६।। निश्चित रूप से भगवान् कृष्ण आपके साथ ही वृन्दावन के प्रत्येक वनों में क्रीड़ा करते हैं । आप अपने कौमार रूप से ही विश्व को मोहित करती हैं ।।५७।। युवावस्था से युक्त आपका अद्भुत रूप कैसा है ? लीला पूर्वक हास तथा अवलोकन से युक्त आपका सौन्दर्य कैसा है ?।।५८।। मनुष्यता को लोभ से श्रीहरि का शरीर आश्चर्य से अलंकृत है । हे हरि बल्लभे ! मैं उसे देखना चाहता हूँ ।।५९।। हे महेश्वरि ! आप इस समय कृपा करके अपने उस रूप को दिखाइये जिसको देखकर नन्दनंदन श्रीकृष्ण मोहित हो जायेंगे ।।६०-६१।। परमानन्दमयी महाप्रेम रूपी वृक्ष की उत्कण्ठा से युक्त अङ्गों वाली तथा सुन्दर नेत्रों वाली ।।६२।। महामाहेश्वरी को देखते हुए नारदजी भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे। हे मन का हरण करने वाले श्रीकृष्ण आपकी जय हो ! हे वृन्दावन के प्रिय ! आपकी जय हो ! हे मनोहर भौहों वाले प्रभो ! आपकी जय हो ! हे सदा वंशी की ध्वनि करने वाले प्रभो ! आपकी जय हो ! हे मयूर पङ्ख से अलंकृत तथा गोपियों को मोहित करने वाले ! आपकी जय हो ।।६३-६४।। हे कुंकुम से लिप्त अङ्गों वाले तथा रत्नों के भूषण से भूषित अङ्गों वाले श्रीकृष्ण ! आपकी जय हो । हे जगत् के स्वामिन्! मैं कब आपकी कृपा से इस दिव्य रूप वाली तथा नवीन युवावस्था से युक्त शरीर के सौन्दर्य से युक्त इस देवी के साथ आपके किशोरावस्था के मोहन रूप का दर्शन करूँगा ।।६५-६६।। जिस समय नारदजी इस तरह से कह रहे थे उसी समय उस देवी ने अपना अत्यन्त मनोहर दिव्य रूप धारण कर लिया ।।६७।। चौदह वर्ष की अवस्था से युक्त अत्यन्त मनोहर उनका रूप था । उनके ही समान अवस्था अन्य व्रज बालिकाओं

बालायास्तास्तदा सख्यश्चरणाम्बुकणैर्मुनिम् । निषिच्य बोधयामासुरूचुश्च कृपयान्विताः ॥७०॥
मुनिवर्य महाभाग महायोगेश्वरेश्वर ! । त्वयैव परया भक्त्या भगवान्हरिरीश्वरः ॥७१॥
नूनमाराधितो देवो भक्तानां कामपूरकः । यदियं ब्रह्मरुद्राद्यैर्देवैः सिद्धमुनीश्वरैः ॥७२॥
महाभागवतैश्चान्यैर्दुर्दर्शा दुर्गमापि च । अत्यद्भुतवयोरूपमोहिनी हरिवल्लभा ॥७३॥
केनाप्यचिन्त्यभाग्येन तव दृष्टिपथं गता । उत्तिष्ठोत्तिष्ठ विप्रर्षे धैर्यमालम्ब्य सत्वरम् ॥७४॥
एनां प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कुरु पुनः पुनः । किं न पश्यसि चार्वङ्गीमत्यन्तव्याकुलामिव ॥७५॥
अस्मिन्नेव क्षणे नूनमन्तर्धानं गमिष्यति । नानया सह संलापः कथञ्चित्ते भविष्यति ॥७६॥
दर्शनं च पुनर्नास्याः प्राप्स्यसि ब्रह्मवित्तम! । किं तु वृन्दावने काऽपि भात्यशोकलता शुभा ॥७७॥
सर्वकालेऽपि पुष्पाढ्या सर्वदिग्व्यापिसौरभा ।
गोवर्द्धनाददूरेण कुसुमाख्यसरस्तटे ॥७८॥
तन्मूले ह्यर्द्धरात्रे च द्रक्ष्यस्यस्मानशेषतः । श्रुत्वैवं वचनं तासां स्नेहविह्वलचेतसाम् ॥७९॥
यावत्प्रदक्षिणीकृत्य प्रणमेद्दण्डवन्मुनिः । मुहूर्त्तद्वितयं बालां नानानिर्माणशोभनाम् ॥८०॥
आहूय भानुं प्रोवाच नारदःसर्वशोभनाम् । एवं प्रभावा बालेयं न साध्या दैवतैरपि ॥८१॥
किं तु यद्गृहमेतस्याः पदचिह्नविभूषितम् । तत्र नारायणो देवः स्वयं वसति माधवः ॥८२॥
लक्ष्मीश्च वसते नित्यं सर्वाभिः सर्वसिद्धिभिः ।
अद्य एनां वरारोहां सर्वाभरणभूषणाम् ॥८३॥

का था ॥६८॥ दिव्य भूषण और माला धारण की हुयी उन सबों ने आकर उन देवी को घेर लिया । उस दृश्य को देखकर मुनीन्द्र नारदजी तो निश्चेष्ट हो गये वे आश्चर्य से मोहित हो गये थे ॥६९॥ उस समय उस बालिका के चरणोदक के कणों से उन सखियों ने सींच कर मुनि को जगाया और कृपा करके उन सबों ने कहा ॥७०॥ हे महाभाग मुनिवर्य ! हे महायोगेश्वर ! आपने परमा भक्ति पूर्वक श्रीभगवान् की आराधना की है । वे सबों के स्वामी हैं ॥७१॥ वे अपने भक्तों की कामना को पूर्ण करने वाले हैं । ब्रह्मा आदि देवताओं, सिद्ध मुनीश्वरों तथा दूसरें महाभागवतों के लिए दुदर्श तथा दुर्गम अपनी अद्भुत अवस्था और रूप से श्रीहरि को मोहित करने वाली उनकी प्रियतमा ने आपके किसी पुण्य विशेष के कारण अपना रूप आपको दिखाया है । हे विप्रर्षे ! आप धैर्य धारण करके शीघ्र जग जाइये ॥७२-७४॥ इन देवी की प्रदक्षिणा करके इन को बार-बार नमस्कार करें । अत्यन्त व्याकुल बनी हुयी इस सुन्दर शरीर वाली का दर्शन आप क्यों नहीं कर रहे हैं ॥७५॥ ये इसी क्षण अन्तर्धान हो जाने वाली हैं । फिर इनके साथ आप बातें नहीं कर पायेंगे ॥७६॥ हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ! आप कभी इनका दर्शन नहीं कर पायेंगे किन्तु वृन्दावन में एक मङ्गलमयी अशोक लता है ॥७७॥ वह हर समय पुष्पों तथा दिव्य सुगन्धि से परिपूर्ण रहती हैं । गोवर्द्धन के सन्निकट कुसुम सरोवर के तट पर वह विद्यमान है ॥७८॥ उसी के मूल में आप आधी रात को हमलोगों को देख पायेंगे । स्नेह से परिपूर्ण मन वाली उन सबों के वचन को सुनकर ॥७९॥ मुनि नारदजी ने उनकी प्रदक्षिणा करके पृथिवी पर दण्ड के समान गिरकर अनेक प्रकार के निर्माण से मनोहर बनी हुयी उस बालिका को दो मुहूर्त तक प्रणाम किया ॥८०॥ उन्होंने भानु को बुलाकर कहा कि यह बालिका ऐसे प्रभाव वाली हैं कि यह देवताओं के भी लिए प्राप्य नहीं है ॥८१॥ इस बालिका के

देवीमिव परां गेहे रक्ष यत्नेन सत्तम !। इत्युक्त्वा मनसैवैनां महाभागवतोत्तमः ॥८४॥
तद्रूपमेव संस्मृत्य प्रविष्टो गहनं वनम्। अशोकलतिकामूलमासाद्य मुनिसत्तमः ॥८५॥
प्रतीक्षमाणो देवीं तां तत्रैवागमनं निशि । स्थितोऽत्र प्रेमविकलश्चिन्तयन्कृष्णवल्लभाम् ॥८६॥
अथ मध्यनिशाभागे युवत्यः परमाद्भुताः। पूर्वदृष्टास्तथान्याश्च विचित्राभरणस्रजः ॥८७॥

दृष्ट्वा मनसि सम्भ्रान्तो दण्डवत्पतितो भुवि ।
परिवार्य मुनिं सर्वास्तास्ताः प्रविविशुः शुभाः ॥८८॥
प्रष्टुकामोऽपि स मुनिः किंचित्स्वाभिमतं प्रियम् ।
नाशकत्प्रेमलावण्यप्रियभाषाप्रधर्षितः ॥८९॥

अथागता मुनिश्रेष्ठं कृताञ्जलिमवस्थितम्। भक्तिभारानतग्रीवं सविस्मयं ससम्भ्रमम्॥९०॥
सुविनीततमं प्राह तत्रैव करुणान्विता। अशोकमालिनी नाम्ना अशोकवनदेवता ॥९१॥

अशोकमालिन्युवाच

अशोककलिकायां तु वसाभ्यस्यां महामुने ! ।
रक्ताम्बरधरा नित्यं रक्तमालानुलेपना ॥९२॥

रक्तसिन्दूरकलिका रक्तोत्पलवतंसिनी। रक्तमाणिक्यकेयूरमुकुटादिविभूषिता ॥९३॥
एकदा प्रियया सार्द्धं विहरन्त्यो मधूत्सवे। तत्रैव मिलिता गोपबालिकाश्चित्रवाससः ॥९४॥
अहं चाशोकमालाभिर्गोपवेषधरं हरिम्। रमारूपाश्च ता सर्वा भक्त्या सम्यगपूजयम् ॥९५॥

चरण चिह्नों से विभूषित जो गृह होता है, उस गृह में लक्ष्मी पति नारायण का निवास होता है ॥८२॥ उस गृह में सभी सिद्धियों के साथ लक्ष्मी सदैव निवास करती है । आप अपने घर में सभी आभरणों से भूषित करके इस सुन्दरी की रक्षा हर प्रकार से करें । इसतरह से कहकर महाभागवत मुनि नारदजी उस देवी को मन से ही प्रणाम करके ॥८४॥ उसके रूप का स्मरण करके धने वन में प्रवेश कर गये । उस अशोक लता के मूल में आकर वे मुनिश्रेष्ठ ॥८५॥ रात्रि में उस देवी के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए प्रेम से परिपूर्ण होकर श्रीकृष्ण प्रिया की चिन्तन करते हुए बैठे रहे ॥८६॥ जब आधी रात हुयी उस समय पहले देवी गयी तथा दूसरी भी विचित्र माला धारण की हुयी अत्यन्त अद्भुत युवतियाँ आयीं ॥८७॥ उन सबों को देखकर मन में अत्यन्त घबराये हुए देवर्षि ने पृथिवी पर दण्ड के समान गिरकर उन सबों प्रणाम किया। वे सब मुनि को घेर कर बैठ गयीं ॥८८॥ मुनि उन सबों से अपने मनोनुकूल बातें पूछना चाहते थें; किन्तु उन सबों के प्रेम, लावण्य और भाषा से अभिभूत हुए मुनि नहीं पूछ सके ॥८९॥ उसके बाद अशोक मालिनी नाम की अशोक वन की देवता करुणा से युक्त होकर हाथ जोड़कर खड़े हुए, भक्ति भाव से अपने गर्दन झुकायें हुए आश्चर्यित तथा अत्यन्त विनीत मुनि से कही ॥९०-९१॥ **अशोक बालिनी ने कहा**— हे महामुने ! मैं इस अशोक कालिका में निवास करती हूँ । मैं लाल वस्त्रों को धारण करती हूँ और लाल माला और अङ्ग रागों को धारण करती हूँ ॥९२॥ लाल सिन्दूर के समान कलियों तथा रक्तक मल को अपने कानों में लगाती हूँ । लाल माणिक्य से निर्मित केयूर (बाजूबन्द) तथा मुकुट से सुशोभित रहती हूँ॥९३॥ एक बार वसन्तोत्सव के समय अपनी प्रियतमा के साथ विहार करती हुयी वहीं पर अनेक प्रकार के वस्त्रों को धारण की हुए गोप बालिकायें मुझसे मिलीं । मैंने गोप वेष धारण किए हुए श्रीहरि की तथा

ततःप्रभृतिचैतासां मध्येतिष्ठामिसर्वदा। भूषाभिर्विवियाभिश्च तोषयित्वा रमापतिम् ॥९६॥
परात्परमहं सर्वं विजानामीहसर्वतः। गोगोपगोपिकादीनां रहस्यं चापि वेद्यहम् ॥९७॥
तव जिज्ञासितं सर्वं हृदि प्रत्यभिभाषितम्। तां देवीमद्भुताकारामद्भुतानन्ददायिनीम् ॥९८॥
हरेः प्रियां हिरण्याभां हीरकोज्ज्वलमुद्रिकाम् ।
कथं पश्यामि लोलाक्षीं कथं वा तत्पदाम्बुजम् ॥९९॥
आराध्यतेऽतिभत्तयेति त्वया ब्रह्मन्विमर्शितम् ।
तत्र ते कथयिष्यामि वृत्तान्तं सुमहात्मनाम् ॥१००॥
मानसे सरसि स्थित्वा तपस्तीव्रमुपेयुषाम् ।
जपतां सिद्धमन्त्रांश्च ध्यायतां हरिमीश्वरम् ॥१०१॥
मुनीनां काङ्क्षतां नित्यं तस्या एव पदाम्बुजम् ।
एकसप्ततिसाहस्रसङ्ख्यातानां महौजसाम् ॥१०२॥
तत्तेऽहं कथयाम्यद्य तद्रहस्यं परं वने ॥१०३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे श्रीराधाकृष्णमाहात्मये एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

* * *

लक्ष्मी स्वरूपिणी उन सभी गोपिकाओं की अशोक की मालाओं से पूजा की ॥९४-९५॥ अनेक प्रकार के आभूषणों से श्रीभगवान् को सन्तुष्ट करके मैं उसी समय से इन सबों के बीच में सदैव रहती हूँ। मैं सम्पूर्ण परात्पर तत्त्वों को जानती हूँ। मैं गौओं, गोपों तथा गोपियों के भी रहस्य को जानती हूँ ॥९६-९७॥ तुम्हारे हृदय में यह जिज्ञासा बनी हुयी है कि अद्भुत आकार वाली तथा अद्भुत आनन्द प्रदान करने वाली हीरों की चमकती हुयी अङ्गूठी को धारण करने वाली एवं सुवर्ण के समान कान्ति वाली श्रीहरि की प्रियतमा उस देवी को जिनके नेत्र अत्यन्त चञ्चल हैं, उनके चरणों का दर्शन कैसे मैं प्राप्त करूँ ॥९८-९९॥ हे ब्रह्मन्! आप विचार करते हैं कि उस देवी की कैसे आराधना की जाती है ? इसके विषय में आपको महापुरुषों के वृत्तान्त को बतलाऊँगी ॥१००॥ वे मुनिगण मानसरोवर के तट पर रहकर तीव्र तपस्या करते हैं। सिद्ध मन्त्रों का जप करते हैं और सदैव श्रीहरि का ध्यान करते हैं ॥१०१॥ वे मुनिगण सदा उस देवी के ही चरणों का दर्शन प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसे महाओजस्वी मुनियों की संख्या एकहत्तर हजार है ॥१०२॥ आज मैं इस वन में आपको उसका रहस्य बतलाती हूँ ॥१०३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के श्रीराधाकृष्ण माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में एकहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७१॥

* * *

बहत्तरवाँ अध्याय

ईश्वर उवाच

तदेकाग्रमना भूत्वा शृणु देवि ! वरानने! । आसीदुग्रतपा नाम मुनिरेको दृढव्रतः ॥१॥
साग्निको ह्यग्निभक्षश्च चचारात्यद्भुतं तपः । जजाप परमं जाप्यं मन्त्रं पञ्चदशाक्षरम् ॥२॥
काममान्त्रेण पुटितं कामं कामवरप्रदात्। कृष्णायेति पदं स्वाहा सहितं सिद्धिदं परम् ॥३॥
दध्यौ च श्यामलं कृष्णं रासोन्मत्तं वरोत्सुकम् ।
पीतपट्टधरं वेणुं करेणाधरमर्पितम् ॥४॥
नवयौवनसम्पन्नं कर्षन्तं पाणिनाप्रियाम्। एवं ध्यानपरःकल्पशतान्ते देहमुत्सृजन् ॥५॥
सुनन्दनामगोपस्य कन्याऽभूत्स महामुनिः । सुनन्देति समाख्याता या वीणां बिभ्रती करे ॥६॥
मुनिरन्यः सत्यतपा इति ख्यातो महाव्रतः । स शुष्कपत्रं भुङ्क्तेयः प्रजजाप परं मनुम् ॥७॥
रत्यन्तं कामबीजेन पुटितं च दशाक्षरम्। स प्रदध्यौ मुनिवरश्चित्रवेषधरं हरिम् ॥८॥
धृत्वा रमाया दोर्वल्लीद्वितयं कङ्कणोज्ज्वलम् ।
नृत्यन्तमुन्मदन्तं च संश्लिष्यन्तं मुहुर्मुहुः ॥९॥
हसन्तमुच्चैरानन्दतरङ्गं जठराम्बरे । दधतं वेणुमहाजानु वैजयन्त्या विराजितम् ॥१०॥
स्वेदाम्भः कणसंसिक्तललाटवलिताननम् ।
त्यक्त्वा त्यक्त्वा स वै देहं तपसा च महामुनिः ॥११॥

भगवान् श्रीकृष्ण के श्रेष्ठ सुन्दरी समूह का वर्णन

ईश्वर ने कहा— हे सुन्दर मुख वाली देवि ! तुम एकाग्र मन से सुनो । एक दृढव्रत वाले उग्रतपा नामक मुनि थे ॥१॥ वे अग्नि से युक्त थे तथा अगिन का भक्षण करते थे, उन्होंने अद्भुत तपस्या की । उन्होंने सर्वश्रेष्ठ जपने योग्य पञ्चदशाक्षर मन्त्र का जप किया । काम मन्त्र से संपुटित करके मनोनुकूल वर प्रदान करने वाले उस मन्त्र में कृष्णाय स्वाहा पद के साथ जप करने से वह मन्त्र सिद्धि प्रदान करने वाला हो जाता है ॥३॥ उन्होंने श्याम वर्ण वाले तथा रास में मस्त रहने वाले एवं वर प्रदान करने के लिए उत्सुक पीताम्बरधारी हाथ से पकड़कर ओष्ठ पर वंशी रखे हुए ॥४॥ नवीन युवावस्था से युक्त तथा अपने हाथ से प्रियतमा को अपनी ओर खींचते हुए भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान किया । इसतरह से सौ कल्पों तक ध्यान करने के बाद उन्होंने अपने शरीर का त्याग कर दिया ॥५॥ वे महामुनि सुनन्द नामक गोप की कन्या बन गये । उस कन्या का नाम सुनन्दा हुआ वह अपने हाथ में बीणा धारण करती थी ॥६॥ दूसरे मुनि का नाम सत्यतपा था, वे महाव्रत थे । वे सूखे पत्तों को खाकर श्रेष्ठ मन्त्र का जप किए ॥७॥ उन्होंने काम बीज से सम्पुटित रति जिसके अन्त में था उस दश अक्षर वाले मन्त्र का जप किया । वे मुनिश्रेष्ठ विचित्र वेषधारी कङ्गन से सुशोभित लक्ष्मीजी के दोनों हाथों को पकड़कर नृत्य करते हुए तथा उन्हें उन्मत बनाते हुए तथा उनका बार-बार आलिङ्गन करते हुए श्रीहरि का ध्यान किए ॥८-९॥ आनन्द के तरङ्ग के कारण जोर से हंसते हुए तथा अपने पेट के वस्त्र में मुरली को खोंसे हुए घुटनों पर्यन्त लटकने वाली वैजयन्ती माला से सुशोभित एवं स्वेद के जल कण से भिंगे ललाट से सुशोभित मुखड़े वाले श्रीहरि का उन्होंने

दशकल्पान्तरे जातो ह्ययं नन्दवनादिह। सुभद्रनाम्नो गोपस्य कन्या भद्रेति विश्रुता ॥१२॥
यस्याः पृष्ठतले दिव्यं व्यजनं परिदृश्यते। हरिधामाभिधानस्तु कश्चिदासीन्महामुनिः ॥१३॥
सोऽप्यतप्यत्तपः कृच्छं नित्यं पत्रैकभोजनम् ।
आशु सिद्धिकरं मन्त्रं विंशत्वर्णं प्रजप्तवान् ॥१४॥
अनन्तरं कामबीजादध्यारूढं तदेव तु । माया तत्पुरतो व्योम हंसासृग्द्युतिचन्द्रकम् ॥१५॥
ततो दशाक्षरं पश्चान्नमोयुक्तं स्मरादिकम् । दध्यौ वृन्दावने रम्ये माधवीमण्डपेप्रभुम् ॥१६॥
उत्तानशायिनं चारु पल्लवास्तरणोपरि । कयाचिदतिकामार्त्तवल्लव्या रक्तनेत्रया ॥१७॥
वक्षोजयुगमाच्छाद्य विपुलोरःस्थलं मुहुः । सञ्चुम्ब्यमानगण्डान्तं तृप्यमानरदच्छम्॥१८॥
कलयन्तं प्रियां दोर्भ्यां सहासं समुदाद्भुतम्। स मुनिश्च बहून्देहांस्त्यक्त्वा कल्पत्रयान्तरे ॥१९॥
सारङ्गनाम्नो गोपस्य कन्याऽभूच्छुभलक्षणा । रङ्गवेणीति विख्याता निपुणा चित्रकर्मणि ॥२०॥
यस्या दन्तेषु दृश्यन्ते चित्रिताः शोणविन्दवः ।
ब्रह्मवादी मुनिः कश्चिज्जावालिरिति विश्रुतः ॥२१॥
सतपःसुरतो योगी विचरन्पृथिवीमिमाम्। स एकस्मिन्महारण्ये योजनायुतविस्तृते ॥२२॥
यदृच्छयाऽऽगतोऽपश्यदेकां बापीं सुशोभनाम् ।
सर्वतः स्फाटिकाबद्धतटां स्वादुजलान्विताम् ॥२३॥
विकासिकमलामोदवायुना परिशीलिताम् । तस्याः पश्चिमदिग्भागे मूले वटमहीरुहः ॥२४॥

ध्यान किया । वे महामुनि बार-बार अपने शरीर का त्याग करके ॥१०-११॥ दश कल्प के बाद वे इस नन्दवन में सुभद्र नामक गोप की भद्रा नाम की विख्यात कन्या हुए ॥१२॥ एक हरिधामा नामक महामुनि थे उनके पीठ पर दिव्य व्यजन दिखायी देता था ॥१३॥ उन्होंने भी कठोर तपस्या की । वे प्रतिदिन एक पत्ता खाते थे । उन्होंने बीस अक्षरों वाले तथा शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले मन्त्र का जप किया । उस मन्त्र के आदि और अन्त में कामबीज का सम्पुट था । उसके आगे माया बीज, व्योमबीज, हंस बीज तथा चन्द्रविन्दु उसके बाद मन्त्र के दश अक्षर थे तथा नमः से युक्त काम बीज से वह मन्त्र युक्त था । उन्होंने ध्यान किया कि श्रीभगवान् मनोहर वृन्दावन के माधवी मण्डप में ॥१४-१६॥ पल्लवों से निर्मित शय्या पर उत्तान सोये हुए हैं । कोई अत्यन्त कामार्त गोपी जिसके लाल नेत्र हैं ॥१७॥ वह अपने दोनों स्तनों से श्रीभगवान् के विस्तृत वक्षस्थल को ढँककर उनके गाल का बार-बार चुम्बन कर रही है । श्रीभगवान् के ओष्ठ तृप्त हो रहे हैं ॥१८॥ वे अपने दोनों हाथों से उस प्रियतमा को पकड़े हुए हैं और हँसते हुए आनन्दित हो रहे हैं । वे मुनि कई बार अपने शरीर का त्याग किये और तीन कल्प के पश्चात् ॥१९॥ सारङ्ग नामक गोप की सुन्दर लक्षणों से युक्त कन्या हुए । वह कन्या रङ्गवेणी के नाम से विख्यात हुयी। वह चित्र बनाने में निपुण थी ॥२०॥ उसके दाँतों में चित्र बनाये गये लाल बिन्दु दिखायी पड़ते थे । एक जाबलि नामक प्रख्यात ब्रह्मवादी मुनि थे ॥२१॥ तपस्या में संलग्न रहने वाले वे योगी इस पृथिवी पर भ्रमण कर रहे थे । वे अचानक एक महान वन में चले गये । वह वन दश हजार योजन विस्तृत था॥२२॥ वहाँ पर उन्होंने एक सुन्दर वावली (वापी) देखा । उसके तट चारो ओर से स्फाटिक मणि से निर्मित थे। उसका जल स्वादिष्ट था ॥२३॥ वहाँ विकसित कमल की सुगन्धि से युक्त हवा चल रही थी । उस बावली

अपश्यत्तापसीं काञ्चित्कुर्वन्तीं दारुणं तपः। तारुण्यवयसायुक्तं रूपेणातिमनोहराम् ॥२५॥
चन्द्रांशुसदृशाभासां सर्वावयवशोभनाम्। कृत्वा कटितटे वामपाणिं दक्षिणतस्तदा ॥२६॥
ज्ञानमुद्रां च विभ्राणामनिमेषविलोचनाम्। त्यक्ताहारविहारां च सुनिश्चलतया स्थिताम् ॥२७॥
जिज्ञासुस्तां मुनिवरस्तस्थौ तत्र शतं समाः। तदन्ते तां समुत्थाप्य चलितां विनयान्मुनिः ॥२८
अपृच्छत्कात्वमाश्चर्यरूपे किंवाऽऽचरिष्यसि।
यदि योग्यं भवेत्तर्हि कृपया वक्तुमर्हसि ॥२९॥
अथाब्रवीच्छनैर्बाला तपसाऽतीव कर्शिता। ब्रह्मविद्याऽहमतुला योगीन्द्रैर्या विमृग्यते॥३०॥
साऽहंहरिपदाम्भोजकाम्यया सुचिरं तपः। चराम्यस्मिन्वने घोरे ध्यायन्ती पुरुषोत्तमम् ॥३१॥
ब्रह्मानन्देन पूर्णाहं तेनानन्देन तृप्तधीः। तथापि शून्यमात्मानं मन्ये कृष्णरतिं बिना ॥३२॥
इदानीमतिनिर्विण्णा देहस्यास्य विसर्जनम्। कर्त्तुमिच्छामि पुण्यायां वापिकायामिहैव तु॥३३॥
तच्छुत्वा वचनं तस्या मुनिरत्यन्तविस्मितः। पतित्वा चरणे तस्याः कृष्णोपासाविधिं शुभम्॥३४॥
पप्रच्छ परमप्रीतस्त्यक्त्वाऽध्यात्मविरोचनम्। तयोक्तं मन्त्रमाज्ञाय जगाम मानसं सरः॥३५॥
ततोऽतिदुश्चरं चक्रे तपोविस्मयकारकम्। एकपादस्थितः सूर्यं निर्निमेषं विलोकयन्॥३६॥
मन्त्रं जजाप परमं पञ्चविंशतिवर्णकम्। दध्यौ परमभावेन कृष्णमानन्दरूपिणम् ॥३७॥
चरन्तं व्रजवीथीषु विचित्रगतिलीलया। ललितैः पादविन्यासैः क्वणयन्तं च नूपुरम् ॥३८॥

के पश्चिम तट पर एक बट का वृक्ष था। उसके मूल में उन्होंने किमी घोर तपस्या करने वाली तापसी को देखा। उसकी युवावस्था थी उसका मनोहर रूप था ॥२४-२५॥ चन्द्रमा की चाँदनी के समान उसका प्रकाश था उसके सारे अङ्ग सुन्दर थे। वह अपने बायें हाथ को कमर पर रखकर दाहिने हाथ से ज्ञान मुद्रा धारण की थी। उसके पलक नहीं गिरते थे। उसने आहार तथा विहार का त्याग कर दिया था और निश्चल होकर खड़ी थी ॥२६-२७॥ उसके विषय में जानने की इच्छा वाले वे मुनिवर वहाँ सौ वर्षों तक रहे। सौ वर्ष के अन्त में जगकर चलने वाली उससे मुनि ने नम्रता पूर्वक ॥२८॥ पूछा कि आप कौन है ? यह क्या कर रही हैं ? यदि बतलाने योग्य हो तो कृपा करके बतलाइये ॥२९॥ तपस्या के कारण अत्यन्त कृश बनी हुयी उस बाला ने धीरे से कहा मैं अतुलनीय ब्रह्मविद्या हूँ। योगीवर्य मेरा अन्वेषण करते हैं॥३०॥ मैं श्रीभगवान् के चरण कमलों को प्राप्त करने की इच्छा से दीर्घकाल से इस वन में तपस्या कर रही हूँ। मैं भगवान् पुरुषोत्तम का ध्यान करती हूँ ॥३१॥ ब्रह्मानन्द से में परिपूर्ण हूँ। उस आनन्द से मेरी वुद्धि तृप्त है। किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण में प्रेम के बिना मैं अपने को शून्य मानती हूँ ॥३२॥ अब मैं अत्यन्त विरक्त होकर इस शरीर का त्याग इस पवित्र वावली में ही कर देना चाहती हूँ ॥३३॥ उसके उस वचन को सुनकर मुनि अत्यन्त विस्मित हुए। उसके चरणों पर गिरकर उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना की विधि को ॥३४॥ अत्यन्त प्रेम पूर्वक पूछा। उन्होंने अध्यात्म ज्ञान का परित्याग कर दिया। उस तापसी के द्वारा बतलाये गये मन्त्र को जानकर वे मान सरोवर पर चले गये ॥३५॥ उसके पश्चात् उन्होंने अत्यन्त आश्चर्यकारी घोर तपस्या की वे एक पैर पर खड़ा होकर बिना पलक गिराये एकटक से सूर्य को देखते थे। वे अत्यन्त प्रेमपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते थे ॥३६-३७॥ वे विचित्रगति से तथा लीला पूर्वक व्रज की गलियों में विचरण करते हुए मनोहर चरण विन्यास के द्वारा नूपुर को बजाते

चित्रकन्दर्पचेष्टाभिः सस्मितापाङ्गवीक्षितैः । समोहनाख्यया वंश्या पञ्चमारुणचित्रया ॥३९॥
बिम्बौष्ठपुटचुम्बिन्या कलालापैर्मनोज्ञया । हरन्तं व्रजरामाणां मनांसि च वपूंषि च ॥४०॥
श्लथन्नीवीभिरागत्य सहसाऽऽलिङ्गिताङ्गकम् ।
दिव्यामाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥४१॥
श्यामलाङ्गप्रभापूरैर्मोहयन्तं जगत्त्रयम् । स एवं बहुदेवेन समुपास्य जगत्पतिम् ॥४२॥
नवकल्पान्तरे जाता गोकुले दिव्यरूपिणी । कन्याप्रचण्डनाम्नस्तु गोपस्यातियशस्विनः ॥४३॥
चित्रगन्धेति विख्याता कुमारी च शुभानना ।
निजाङ्गगन्धैर्विविधैर्मोदयन्ती दिशो दश ॥४४॥
तामेनं पश्य कल्याणीवृन्देशो मधुपायिनीम् ।
अङ्गेषु स्वपतिं कृत्वा रसावेशसमाकुलम् ॥४५॥
अस्याः स्तनपरिष्वङ्गे हारैः सर्वैर्विहन्यते । वक्षःस्थलात्प्रच्यवद्भिश्चित्रगन्धादिसौरभैः ॥४६॥
अपरे मुनिवर्यास्तु सततं पूतमानसाः । वायुभक्षास्तपस्तेपुर्जपन्तः परमं मनुम् ॥४७॥
स्मरः कृष्णाय कामार्तिकलादिवृत्तिशालिने । आग्नेयीसहितं कृत्वामन्त्रं पञ्चदशाक्षरम् ॥४९॥
दध्युर्मुनिवराः कृष्णमूर्तिं दिव्यविभूषणाम् । दिव्यचित्रदुकूलेन पूर्णपीनकटिस्थलाम् ॥५०॥

हुए ॥३८॥ अद्भुत काम चेष्टाओं तथा मुस्कुराकर कटाक्षपात करने वाले, पञ्चमराग में अद्भुत बनी हुयी सम्मोहन नामक वंशी के द्वारा ॥३९॥ अपने लाल-लाल ओठों पर रखकर मनोहर आलापों के द्वारा व्रज की रमणियों के मन तथा शरीर को आकृष्ट करने वाले श्रीभगवान् का ध्यान करते थे; जो भगवान् अचानक आकर उन सबों के अङ्गों का आलिङ्गन करके नीवीबन्ध को खोल देते थे, दिव्य माला और वस्त्र को धारण करने वाले तथा दिव्य चन्दन का लेप लगाये हुए तथा अपने शरीर के श्याम वर्ण की प्रभा से त्रैलोक्य को मोहित करने वाले उन भगवान् का वे ध्यान करते थे । इस प्रकार से वे दीर्घकाल तक जगत् के स्वामी की उपासना किए ॥४०-४२॥ वे महर्षि जाबालि नव कल्पों के पश्चात् गोकुल में प्रचण्ड नामक अत्यन्त यशस्वी गोप की दिव्य रूप वाली कन्या के रूप में जन्म लिए ॥४३॥ वह कन्या कुमारी चित्रगन्धा के नाम से विख्यात हुयी । वह अपने अङ्गो के अनेक प्रकार के गन्धों से दशो दिशाओं को सुगन्धित बना देती थी ॥४४॥ अनेक प्रकार के मधु का पान करने वाली प्रेमरस से आविष्ट उस गोपी को गोपी समूह के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण अपने अङ्गों पर सुलाकर देखते रहते थे ॥४५॥ उसके स्तनों के चारो ओर विद्यमान हारों से तथा उसके वक्ष:स्थल से निकलने वाले अनेक प्रकार के गन्धों से उसके स्तनों के आलिङ्गन में बाधा होती थीं ॥४६॥ दूसरे श्रेष्ठ मुनिगण जिनका मन सदा पवित्र बना रहता था वे वायु पीकर तपस्या करते थे, और सर्वोत्तम मन्त्र का जप करते थे ॥४७॥ वे कामार्ति कला से सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए आग्नेयी बीज से सम्पुटित करके पञ्चदशाक्षर मन्त्र का जप करते थे॥४८॥ वे श्रेष्ठ मुनिगण, दिव्य भूषणों से भूषित, दिव्य तथा अनेक प्रकार के वस्त्रों के द्वारा परिपूर्ण तथा स्थूल कमर वाली, जिसकी चूडा (शिखा) में मयूर पङ्ख लगे रहते है, ऐसी चूडा से युक्त, चमकते हुए कुण्डलों को धारण करने वाली बायी जंङ्घा से लेकर दाहिने पैर को सटाकर भ्रमण करने वाली तथा मनोहर दोनों हाथों को मिलाकर भ्रमण करने वाली, अपने कमर में वंशी को खोंसे रहने वाली, गोपियों के नेत्र तथा

मयूरपिच्छकैः कलृप्तचूडामुज्ज्वलकुण्डलाम् ।
सव्यजङ्घान्त आदायदक्षिणं चरणाम्बुजम् ॥५१॥
भ्रमन्ती सम्पुटीकृत्य चारुहस्ताम्बुजद्वयम् । कक्षदेशविनिक्षिप्तवेणुं परिचलत्पुटीम् ॥५२॥
आनन्दयन्तीं गोपीनां नयनानि मनांसि च। परमाश्चर्यरूपेण प्रविष्टां रङ्गमण्डपे ॥५३॥
प्रसूनवर्षैर्गोपीभिः पूर्यमाणां च सर्वतः। अथकल्पान्तरे देहं त्यक्त्वा जाता इहाधुना ॥५४॥
यासां कर्णेषु दृश्यन्ते ताटङ्का रश्मिदीपिताः ।
रत्नमाल्यानि कण्ठेषु रत्नपुष्पाणि वेणिषु ॥५५॥
मुनिः शुचिश्रवा नाम सुवर्णो नाम चापरः ।
कुशध्वजस्य ब्रह्मर्षेः पुत्रौ तौ वेदपारगौ ॥५६॥
ऊर्ध्वपादौ तपो घोरं तेपतुस्त्र्यक्षरं मनुम् । ह्रींहंस इतिकृत्वैव जपन्तौ यतमानसौ ॥५७॥
ध्यायन्तौ गोकुले कृष्णं बालकं दशवार्षिकम् ।
कन्दर्पसमरूपेण तारुण्यललितेन च ॥५८॥
पश्यन्तीर्व्रजबिम्बोष्ठीर्मोहयन्तमनारतम् । तौ कल्पान्ते तनू त्यत्तवा लब्धवन्तौ जनिं व्रजे॥५९॥
सुवीरनामगोपस्य सुते परमशोभने । ययोर्हस्ते प्रदृश्येते सारिके शुभराविणी॥६०॥
जटिलो जङ्घपूतश्च घृताशी कर्बुरिव च। चत्वारो मुनयो धन्या इहामुत्र च निःस्पृहाः ॥६१॥
केवलं बकभावेन प्रपन्ना वल्लवीपतिम्। तेपुस्ते सलिले मग्ना जपन्तो मनुमेव च॥६१॥
रमात्रयेण पुटितं स्मराद्यन्तं दशाक्षरम्। दध्युश्च गाढभावेन वल्लवीभिर्वने वने॥६२॥
भ्रमन्तं नृत्यगीताद्यैर्मानयन्तं मनोहरम्। चन्दनालिप्तसर्वाङ्गं जपापुष्पावतंसकम् ॥६३॥

मन को आनन्दित करने वाली तथा अत्यन्त आश्चर्यमय रूप से रङ्गमण्डप में जो प्रवेश कर चुकी है । तथा जिस पर चारो ओर से गोपियाँ पुष्पों को डाल रही हैं इस प्रकार की भगवान् कृष्ण की मूर्ति (शरीर) का ध्यान करते थे । वे भी मुनिगण दूसरे कल्प में शरीर का त्याग करके गोकुल में गोपी के रूप में उत्पन्न हो गये ॥४९-५३॥ उन सबों के कानों में कान्ति से चमकते हुए ताटङ्क दिखायी पड़ते हैं, उन सबों के गले में रत्नों की माला तथा चोटी में रत्ननिर्मित पुष्प सुशोभित होते हैं ॥५४॥ ब्रह्मर्षि कुशध्वज के शुचिश्रवा मुनि तथा सुवर्ण मुनि नामक दो वेदपारङ्गत पुत्र थे ॥५५॥ वे ऊपर की ओर पैर करके घोर तपस्या किए और **ह्रीं हंसः** इन तीन अक्षरों वाले मन्त्र का एकाग्रमना होकर जप किए ॥५६॥ वे गोकुल में विद्यमान दशवर्ष की अवस्था वाले बालकृष्ण का ध्यान करते थे । कामदेव के समान रूप वाले तथा ललित युवावस्था से युक्त ॥५७॥ देखने वाली व्रज सुन्दरियों को निरन्तर मोहित करने वाले बालकृष्ण का ध्यान करते थे । वे दोनों शरीर का त्याग करके व्रज में जन्म लिए ॥५८॥ वे दोनों सुधीर नामक गोप की अत्यन्त सुन्दर पुत्रियाँ हुए वे दोनों अपने हाथ में सुन्दर ध्वनि करने वाली सारिकाओं को धारण किए रहती थीं ॥५९॥ जटिल, जङ्घपूत, घृताशी तथा कर्बूर ये चारो मुनिगण धन्य थे । ये लौकिक तथा पारलौकि विषयों से विरक्त थे ॥६०॥ अनन्य मना होकर इन महर्षियों ने गोपीपति भगवान् की शरणागति की । वे जल में डूबकर तपस्या किए और तीन श्रीं बीज से सम्पुटित तथा अन्त में कामबीज लगाकर दशाक्षर मन्त्र का जप करते थे । वे अत्यन्त प्रेम पूर्वक गोपियों के साथ प्रत्येक वन में भ्रमण करने वाले,

कह्लारमालयावीतं नीलपीतपटावृतम् । कल्पत्रयान्ते जातास्ते गोकुले शुभलक्षणाः ॥६४॥
इमास्ताः पुरतो रम्या उपविष्टा नतभ्रुवः । यासां भर्मकृतान्येव वलयानि प्रकोष्ठके ॥६५॥
विचित्राणि च रत्नाद्यैर्दिव्यमुक्ताफलादिभिः। मुनिर्दीर्घतपा नाम व्यासोऽभूत्पूर्वकल्पके ॥६६॥
तत्पुत्रः शुक इत्येव मुनिः ख्यातो वरः सुधीः ।
सोऽपि बालो महाप्राज्ञः सदैवानुस्मरन्पदम् ॥६७॥
विहाय पितृमात्रादि कृष्णं ध्यात्वा वनं गतः ।
स तत्र मानसैर्दिव्यैरूपचारैरहर्निशम् ॥६८॥
अनाहारोऽर्चयद्विष्णुं गोपरूपिणमीश्वरम् । रमया पुटितं मन्त्रं जपन्नष्टादशाक्षरम्॥६९॥
दध्यौ परमभावेन हरिं हैमतरोरधः। हैममण्डपिकायां च हेमसिंहासनोपरि ॥७०॥
आसीनं हेमहस्ताग्रैर्दधानं हेमवंशिकाम्। दक्षिणेन भ्रामयन्तं पाणिना हेमपङ्कजम् ॥७१॥
हेमवर्णेष्टप्रियया परिक्लृप्ताङ्गचित्रकम् । हसन्तमतिहर्षेण पश्यन्तं निजमाश्रमम् ॥७२॥
हर्षाश्रुपूर्णः पुलकाचिताङ्गः प्रसीद नाथेति वदन्नथोच्चैः ।
दण्डप्रणामाय पपात भूमौ संवेपमानस्त्रिजगद्विधातुः ॥७३॥
तं भक्तिकामं पतितं धरण्यामायासितोऽस्मीति वदन्तमुच्चैः ।
दण्डप्रणामस्य भुजौ गृहीत्वा पस्पर्श हर्षोपचितेक्षणेन ॥७४॥
उवाच च प्रियारूपं लब्धवन्तं शुकं हरिः । त्वं मे प्रियतमा भद्रे सदा तिष्ठ ममान्तिके ॥७५॥

नृत्य तथा गीत आदि के द्वारा गोपियों का सम्मान करने वाले, सम्पूर्ण अङ्गों में मनोहर चन्दन लगाये हुए तथा अपने कानों में जपा कुसुम को लगये हुए, कमल की माला से अलंकृत, नीला और पीला वस्त्र धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करते थे । वे तीन कल्प के बाद गोकुल में जाकर शुभ लक्षणों से युक्त गोपी हुए ॥६१-६४॥ ये सभी सुन्दरियाँ आगे बैठती थीं । उन सबों की कलाई में रत्नों तथा दिव्य मुक्ताओं से रचित तेजोमय अद्भुत कङ्गन सुशोभित होते थे । पूर्व कल्प में दीर्घतपा नामक महर्षि व्यास हुए ॥६५-६६॥ उनके पुत्र शुकदेव हुए वे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ थे । वे भी निरन्तर श्रीभगवान् के चरणों का स्मरण करते हुए ॥६७॥ वे अपने माता-पिता आदि का परित्याग करके भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करके वन में चले गये । वे वहाँ पर अनेक प्रकार के मानसिक उपचारों के द्वारा ॥६८॥ निराहार रहकर गोप रूपधारी श्रीहरि भगवान् विष्णु की पूजा करते थे और लक्ष्मीजी के बीज मन्त्र से सम्पुटित अष्टाक्षर मन्त्र का जप करते थे ॥६९॥ वे अत्यन्त भक्तिभाव पूर्वक सुवर्ण वृक्ष के नीचे विद्यमान, सुवर्ण मण्डप में सुवर्ण सिंहासन पर बैठे हुए ॥७०॥ सुवर्णमय हाथों से सुवर्ण निर्मित वंशी को धारण किए हुए तथा दाहिने हाथ से सुवर्ण कमल को घुमाते हुए श्रीहरि का ध्यान करते थे ॥७१॥ गौर वर्ण की प्रियतमा से संश्लिष्ट शरीर तथा अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक हँसते हुए एवं अपने आश्रम को देखते हुए श्रीभगवान् का ध्यान करते थे ॥७२॥ ऐसा ध्यान करके शुकदेवजी हर्षाश्रु से परिपूर्ण हो गये, उनके शरीर में रोमाञ्च हो गया । वे जोर से हे नाथ आप प्रसन्न होइये ! यह कहकर त्रैलोक्य के स्वामी को प्रणाम करने के लिए दण्ड के समान पृथिवी पर गिर पड़े उस समय उनका शरीर काँप रहा था ॥७३॥ मैं थक चुका हूँ इसतरह से जोर से कहकर भक्ति की प्राप्ति की कामना से पृथिवी पर गिरकर दण्डप्रणाम करते हुए उन मुनि को

मद्रूपं चिन्तयन्ती च प्रेमास्पदमुपागता । द्वे च मुख्यतमे गोप्यौ समानवयसी शुभे ॥७६॥
एकव्रते एकनिष्ठे एकनक्षत्रनामनी । तप्तजाम्बूनदप्रख्या तत्रैवान्या तडित्प्रभा ॥७७॥
एका निद्रायमाणाक्षी परा सौम्यायतेक्षणा । सोऽर्चयत्परया भक्त्या ते हरेः सव्यदक्षिणे ॥७८॥
सकल्पान्ते तनुं त्यक्त्वा गोकुलेऽभून्महात्मनः ।
उपनन्दस्यदुहिता नीलोत्पलदलच्छविः ॥७९॥
सेयं श्रीकृष्णवनिता पीतशाटीपरिच्छदा । रक्तचोलिकया पूर्णा शातकुम्भघटस्तनी॥८०॥
दधाना रक्तसिन्दूरं सर्वाङ्गस्यावगुण्ठनम् । स्वर्णकुण्डलविभ्राजद्गण्डदेशा सुशोभना ॥८१॥
स्वर्णपङ्कजमालाढ्या कुङ्कुमालिप्तसुस्तनी । यस्या हस्ते च वर्णीयं दृश्यते हरिणाऽर्पितम् ॥८२॥
वेणुवाद्यातिनिपुणा केशवस्य निषेवणी । कृष्णेन परितुष्टेन कदाचिद्गीतकर्मणि ॥८३॥
विन्यस्ता कम्बुकण्ठेऽस्या भाति गुञ्जावलिः शुभा ।
परोक्षेऽपि च कृष्णस्य कान्तिभिश्च स्मरार्दिता ॥८४॥
सखीभिर्वादयन्तीभिर्गायन्ती सुस्वरं परम् । नर्त्तयेत्प्रियवेषेण वेषयित्वा वधूमिमाम् ॥८५॥
बारं बारं च गोविन्दं भावेनालिङ्ग्य चुम्बति ।
प्रियासौ सर्वगोपीनां कृष्णस्याप्यतिवल्लभा ॥८६॥
श्वेतकेतोः सुतः कश्चिद्वेदवेदाङ्गपारगः । सर्वमेवपरित्यज्य प्रचण्डं तप आस्थितः ॥८७॥

श्रीभगवान् ने प्रसन्नता पूर्वक देखकर हाथ से स्पर्श किया ॥७४॥ प्रियतमा के रूप धारण किए हुए शुकदेवजी को श्रीहरि ने कहा हे भद्रे ! तुम मेरी प्रियतमा हो, सदैव मेरे रूप का चिन्तन करते हुए तथा मेरे प्रेम के पात्र बनी हुयी तुम सदैव मेरे सन्निकट में रहा करो । वे ध्यान करते थे कि दो समान अवस्था वाली अत्यन्त प्रधान गोपियाँ हैं ॥७५-७६॥ उन दोनों का एक ही व्रत था और एक ही निष्ठा थी । उन दोनों का नाम एक ही नक्षत्र वाला था । एक तप्त सुवर्ण के समान शरीर वाली थी तथा दूसरी विद्युत् के समान कान्ति वाली थी । एक की आँखें सदा निद्रित होती रहती थी और दूसरी सुन्दर विशाल नेत्रों वाली थी । शुक मुनि उन दोनों की परा भक्ति पूर्वक उन दोनों की पूजा श्रीहरि के बाँयी और दाहिनी ओर करते थे ॥७८॥ वे शुकदेव मुनि कल्प के अन्त में अपने शरीर का त्याग करके गोकुल में महात्मा उपनन्द की नील कमल के समान शरीर की कान्ति वाली पुत्री हुए ॥७९॥ वे भगवान् श्रीकृष्ण की पीताम्बर धारिणी पत्नी हुयी । वह लाल चोली धारण करती थी और उसके सुवर्ण घट के समान स्तन थे । वह अपने सम्पूर्ण अङ्गों में लेप के रूप से रक्त सिन्दूर को लगाती थी । उसके कपोल सुवर्ण कुण्डल से मण्डित रहते थे ॥८०-८१॥ वह स्वर्णिम कमल की माला धारण करती थी और अपने सुन्दर स्तनों पर कुङ्कुम का लेप लगाती थी । उसके हाथ में श्रीहरि अपनी वंशी दे रखे थे ॥८२॥ बंशी बजाने में निपुण श्रीभगवान् की वह सेविका थी । एक बार उसके गीत से संतुष्ट होकर भगवान् ने उसके शङ्ख के समान गले में अपनी भुजा की माला डाल दी उससे वह सुशोभित रहती थी परोक्ष में भी वह भगवान् श्रीकृष्ण की कान्ति से कामार्त रहती थी ॥८४॥ जब सखियाँ बाद्य बजाती थीं तो वह गाती थी और श्रीभगवान् इसको प्रियतम के वेष से वेष्टित करके नाचते थे, और वह गोविन्द का बार-बार चुम्बन करती थी । यह सभी गोपियों में भगवान् श्रीकृष्ण को अधिक प्रिय थी ॥८५-८६॥ श्वेतकेतु के एक पुत्र वेदों ओर वेदाङ्गों

मुरारे सेवितपदां सुधामधुरनादिनीम् । गोविन्दस्यप्रियां शक्तिं ब्रह्मरुद्रादिदुर्गमाम् ॥८८॥
भजन्तीमेकभावेन श्रियमेव मनोहराम् । ध्यायञ्जजाप सततं मन्त्रमेकादशाक्षरम् ॥८९॥
हसितं सकलं कृत्वा बत मायेषु योजयन् । कान्त्यादिभिर्हसन्तीभिर्वासयन्त्यभितो जगत् ॥९०॥
वसन्ते वसतेत्येव मन्त्रार्थं चिन्तयन्सदा। सोऽपि कल्पद्वयेनैव सिद्धोऽत्र जनिमाप्तवान् ॥९१॥
सेयं बालायते पुत्री कृशाङ्गी कुड्मलस्तनी। मुक्तावलिलसत्कण्ठी शुद्धकौशेयवासिनी ॥९२॥
मुक्ताच्छुरितमञ्जीरकङ्कणांङ्गदमुद्रिका । विभ्रती कुण्डले दिव्ये अमृतस्राविणी शुभे ॥९३॥
वृत्तकस्तूरिकावेणीमध्ये सिन्दूरबिन्दुवत् । दधाना चित्रकं भाले सार्द्धं चन्दनचित्रकैः ॥९४॥
या सैव दृश्यते शान्ता जपन्ती परमं पदम् ।
आसीच्चन्द्रप्रभो नाम राजर्षिः प्रियदर्शनः ॥९५॥
तस्य कृष्णप्रसादेन पुत्रोऽभून्मधुराकृतिः। चित्रध्वज इति ख्यातः कौमारावधिवैष्णवः ॥९६॥
स राजा सुसुतं सौम्यं सुस्थिरं द्वादशाब्दिकम् ।
आदेशयद् द्विजान्मन्त्रं परमष्टादशाक्षरम् ॥९७॥
अभिषिच्यमानः सशिशुर्मन्त्रामृतमयैर्जलैः । तत्क्षणे भूपतिं प्रेम्णा नत्वोदश्रुप्रकल्पितः ॥९८॥
तस्मिन्दिने स वै बालः शुचिवस्त्रधरः शुचिः ।
हारनूपुरसूत्राद्यैग्रैवेयाङ्गदकङ्कणैः ॥९९॥
विभूषितो हरेर्भक्तिमुपस्पृश्यामलाशयः ।
विष्णोरायतनं गत्वा स्थित्वैकाकी व्यचिन्तयत् ॥१००॥

में पारङ्गत थे । वे सब कुछ त्यागकर कठोर तपस्या करने लगे ॥८७॥ वे श्रीभवगान् के चरणों की सेवा करने वाली अमृत के समान मधुर बोलने वाली, भगवान् गोविन्द की प्रिया शक्ति, जो ब्रह्मा तथा रुद्र आदि के लिए भी दुर्गम हैं, उन निरन्तर श्रीभगवान् का ही भजन करने वाली मनोहर श्रीदेवी का ध्यान करते हुए निरन्तर एकादशाक्षर मन्त्र का जप करते थे ॥८८-८९॥ वे मन्त्र के अर्थ का चिन्तन करते थे कि अपनी सम्पूर्ण हँसी को माया से युक्त करके सम्पूर्ण जगत् सौरभमय बनाने वाली हँसती हुयी कान्ति आदि के साथ श्रीभगवान् वसन्त में निवास करते हैं । वे भी (श्वेतकेतु के पुत्र भी) दो कल्प में सिद्धि को प्राप्त करके गोकुल में पुत्री के रूप में जन्म लिए ॥९०-९१॥ उस कृशाङ्गी के स्तन कमल की कलि के समान थे। गले में वह मोती की माला धारण करती थी तथा शुद्ध रेशमी वस्त्र को धारण करती थी । अपने कानों में वह अमृत स्रावी कुण्डलों को धारण करती थी । उसके नूपुर कङ्गन तथा मुद्रिकाएँ मोती से रचित थे ॥९२-९३॥ वह अपनी चोटी के बीच में सिन्दूर के विन्दु के समान गोल कस्तूरी को धारण करती थी और ललाट पर चन्दन के चित्रों के साथ कस्तूरी लगाती थी ॥९४॥ वह शान्त मन से परम पद का जप करती थी । चन्द्रप्रभ नामक देखने में सुन्दर एक राजर्षि थे ॥९५॥ भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से उनको एक सुन्दर पुत्र की प्राप्ति हुयी । उसका प्रख्यात नाम चित्रध्वज था । वह कुमारावस्था में ही श्रीवैष्णव था॥९६॥ राजा चन्द्रप्रभ ने अपने द्वादश वर्षीय सुन्दर पुत्र को श्रेष्ठ अष्टाक्षर तथा दशाक्षर मन्त्र का उपदेश देने के लिए कहा ॥९७॥ मन्त्रमय अमृत जल से अभिषिक्त होता हुआ वह बालक अपनी आँखों में आंसू भर राजा को प्रणाम किया ॥९८॥ उस दिन हार, नूपुर, ग्रैवेयक (कण्ठहार) अङ्गद (विजाइठ) तथा कङ्कण

कथं भजामि तं भक्तं मोहनं गोपयोषिताम् ।
विक्रीडन्तं सदा ताभिः कालिन्दी पुलिने वने ॥१०१॥
इत्थमत्याकुलमतिश्चिन्तयन्नेव बालकः । अथाप परमां विद्यां स्वाप्नं च समपश्यत॥१०२॥
आसीत्कृष्णप्रतिकृतिः पुरतस्तस्य शोभना । शिलामयी स्वर्णपीठे सर्वलक्षणलक्षिता ॥१०३॥
साऽभूदिन्दीवरश्यामा स्निग्धलावण्यशालिनी ।
त्रिभङ्गललिताकारशिखण्डीपिच्छभूषणा ॥१०४॥
कूजयन्ती मुदा वेणुं काञ्चनीमधरेऽर्पिताम् । दक्षसव्यगताभ्यां च सुन्दरीभ्यां निषेविताम् ॥१०५॥
वर्द्धयन्ती तयोः कामं चुम्बनाश्लेषणादिभिः ।
दृष्ट्वा चित्रध्वजः कृष्णं तादृग्वेषविलासिनम् ॥१०६॥
अवनम्य शिरस्तस्मै पुरो लज्जितमानसः । अथोवाच हरिर्दक्षपार्श्वगां प्रेयसीं हसन् ॥१०७॥
सलज्जं परमं चैनं स्वशरीरासनागतम् । निर्मायात्मसमं दिव्यं युवतीरूपमद्भुतम् ॥१०८॥
चिन्तयस्व शरीरेण ह्यभेदं मृगलोचने । अथो त्वदङ्गतेजोभिः स्पृष्टस्त्वद्रूपमाप्स्यति ॥१०९॥
ततः सा पद्मपत्राक्षी गत्वा चित्रध्वजान्तिकम् ।
निजाङ्गैस्तदङ्गानामभेदं ध्यायती स्थिता ॥११०॥
अथास्यास्त्वङ्गतेजांसि तदङ्गं पर्यपूरयन् । स्तनयोर्ज्योतिषां जातौ पीनौ चारुपयोधरौ ॥१११॥
नितम्बज्योतिषां जातं श्रोणिबिम्बं मनोहरम्। कुन्तलज्योतिषा केशपाशोऽभूत्करयोः करौ॥११२॥

से अलंकृत तथा पवित्र वस्त्र धारण किया हुआ श्रीहरि की भक्ति से सम्पन्न तथा शुद्ध अन्तःकरण वाला वह बालक भगवान् विष्णु के मन्दिर में जाकर तथा एकान्त में स्थित होकर सोचने लगा ॥९८-१००॥ मैं गोपियों के भक्त तथा यमुना के तट में गोपियों के साथ क्रीडा करने वाले श्रीकृष्ण का भजन कैसे करूँ॥१०१॥ इसतरह से विचार करते हुए उस बालक को परमा विद्या की प्राप्ति हो गयी । उसने स्वप्न में देखा॥१०२॥ कि उसके सामने सुवर्ण सिंहासन पर समस्त शुभ लक्षणों से युक्त शिलामयी सुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति है ॥१०३॥ वह नीलकमल के समान श्याम वर्ण की तथा स्निग्ध सौन्दर्य से सम्पन्न हो गयी । त्रिभङ्गी से युक्त मनोहर आकार वाली वह मूर्ति है तथा अपनी शिखा में मयूर पिच्छ की भूषा धारण की है॥१०४॥ वह अपने ओठों पर सुवर्ण निर्मित वंशी को रखकर बजा रही है । उसकी सेवा उसके दायें और बायें विद्यमान दो सुन्दरियाँ कर रहीं हैं ॥१०५॥ उन दोनों का बार-बार चुम्बन करके वह मूर्ति उन दोनों के काम को बढ़ा रही है । उस तरह के वेष से सुशोभित भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर चित्रध्वज ॥१०६॥ लज्जित होकर भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करके खड़े रहे । उसके बाद श्रीहरि हँसते हुए अपनी दाहिनी ओर विद्यमान प्रियतमा से कहे ॥१०७॥ अत्यन्त लज्जित तथा अपने शरीर तथा आसन के पास आये हुए इसको (चित्रध्वज को) अपने ही समान दिव्य युवती के रूप वाला बना दो । उन्होंने कहा हे मृगनयनी ! तुम इसकी अपने शरीर से अभिमन्त्रता का चिन्तन करो । उसके बाद यह तुम्हारे अङ्गों के तेज से संस्पृष्ट होकर तुम्हारे रूप को प्राप्त कर लेगा ॥१०८-१०९॥ उसके बाद वह कामल नयनी चित्रध्वज के सन्निकट जाकर अपने अङ्गों से उसके अङ्गों के अभेद का चिन्तन करने लगी ॥११०॥ उसके बाद उस सुन्दरी के अङ्गों के तेज से चित्रध्वज के अङ्ग परिपूर्ण हो गये । उसके सुन्दर दोनों स्तन मोटे और ज्योतिर्मय हो

सर्वमेवं सुसम्पन्नं भूषावासः स्त्रगादिकम् । कलासु कुशला जाता सौरभेनान्तरात्मनि ॥११३॥
दीपाद्दीपमिवालोक्य सुभगां भुवि कन्यकाम् ।
चित्रध्वजां त्रपाभङ्गि स्मितशोभां मनोहराम् ॥११४॥
प्रेम्णा गृहीत्वा करयोः सा तामपरहरन्मुदा ।
गोविन्दवामपार्श्वस्थां नाम चास्याश्च कारय ॥११५॥
उवाच तव दासीयं नाम चास्याश्च कारय । सेवां चास्यै वद प्रीत्या यथाभिरुचितां प्रियाम्॥११६॥
अथ चित्रकलेत्येतन्नाम चात्ममतेन सा । चकार चाह सेवार्थंधृत्वा चापि विपिञ्चिकाम्॥११७॥
सदा त्वं निकटे तिष्ठ गायस्व विविधैः स्वरैः ।
गुणात्मन्प्राणनाथस्य तवायं विहितो विधिः ॥११८॥
अथ चित्रकला त्वाज्ञां गृहीत्वाऽऽनम्य माधवम् ।
तत्प्रेयस्याश्च चरणं गृहीत्वा पादयो रजः ॥११९॥
जगौ सुमधुरं गीतं तयोरानन्दकारणम्। अथ प्रीत्योपगूढा सा कृष्णेनानन्दमूर्तिना॥१२०॥
यावत्सुधाम्बुधौ पूर्णा तावदेवाप्यबुध्यत । चित्रध्वजो महाप्रेमविह्वलः स्मरतत्परः ॥१२१॥
तमेव परमानन्दं मुक्तकण्ठोरुरोद ह । तदाऽऽरभ्य रुदन्नेवमुक्त्वा हारविहारकम् ॥१२२॥
आभाषितोऽपि पित्राद्यैर्नैवावोचद्वचः क्वचित् ।
मासमात्रं गृहे स्थित्वा निशीथे कृष्णसंश्रयः ॥१२३॥

गये॥१११॥ उसके नितम्ब और श्रोणी प्रदेश ज्योतिर्मय मनोहर हो गये । केशों की ज्योति से उसके केशपाश ज्योतिर्मय हो गये और हाथों की ज्योति से युक्त उनके दोनों हाथ हो गये ॥११२॥ इसतरह से आभूषण वस्त्र तथा माला इत्यादि सब कुछ ज्योतिर्मय हो गया । उसकी अन्तरात्मा सुगन्धि से भर गयी और वह कलाओं में कुशल हो गयी ॥११३॥ जिसतरह एक दीप से दूसरा दीपक ज्योतिर्मय हो जाता है उसीतरह उस कन्या को पृथिवी पर लज्जा की भङ्गिमा से युक्त तथा मुसुकान के शोभा से मनोहर चित्र ध्वज रूपी मनोहर कन्या को देखकर ॥११४॥ उसके हाथों को पकड़कर उस सुन्दरी ने भगवान् के वाम भाग में विद्यमान प्रेमिका का आलिङ्गन करके कहीं ॥११५॥ यह तुम्हारी दासी है, इसका नाम अपने मनोनुकूल रखो और इसको अपनी रुचि के अनुसार सेवा बतलाओ ॥११६॥ उसके बाद उसने उसका नाम चित्रकला रखा । सेवा के लिए उसने उसे बीणा देकर कहा ॥११७॥ तुम सदा मेरे सन्निकट में रहकर अनेक स्वरों से मेरे प्राणनाथ के गुणों को गाया करो यही तुम्हारे लिए सेवा है ॥११८॥ इसके बाद चित्रकला आज्ञा प्राप्त करके श्रीभगवान् को प्रणाम करके तथा उनकी प्रेयसी के चरणों की धूलि को अपने शिर पर धारण करके ॥११९॥ उन दोनों को प्रसन्न करने वाले गीत को गायी उसके बाद प्रसन्न होकर आनन्द मूर्ति श्रीभगवान् ने उसका प्रेमपूर्वक आलिङ्गन किया ॥१२०॥ जब वह इसतरह से अमृत सागर में मग्न थी उसी समय चित्रध्वज का स्वप्न समाप्त हो गया । अब वे प्रेम से विह्वल होकर उसी आनन्द को याद करके रोने लगे । उसी समय से वे आहार बिहार का परित्याग करके रोते रहते थे ॥१२१-१२२॥ माता-पिता इत्यादि के द्वारा बुलाये जाने पर भी वे कुछ भी नहीं बोलते थे । वे एक मास तक घर में रहे, उसके बाद कृष्ण परायण वे एक दिन आधी रात को घर से निकल कर जङ्गल में चले गये और कठोर तपस्या करने लगे। वे

निर्गत्यारण्यमचरत्तपो वै मुनिदुष्करम् । कल्पान्ते देहमुत्सृज्य तपसैव महामुनिः ॥१२४॥
वीरगुप्ताभिधानस्य गोपस्य दुहिता शुभा। जाता चित्रकलेत्येव यस्याःस्कन्धे मनोहरा ॥१२५॥
विपञ्ची दृश्यते नित्यं सप्तस्वरविभूषिता । उपतिष्ठति वै वामे रत्नभृङ्गारमद्भुतम्॥१२६॥
दधाना दक्षिणे हस्ते सा वै रत्नपतद्ग्रहम्। अयमासीत्पुरा सर्वतापसैरभिवन्दितः ॥१२७॥
मुनिःपुण्यश्रवा नाम काश्यपः सर्वधर्मवित्। पिता तस्याभवच्छैवः शतरुद्रीयमन्वहम्॥१२८॥
प्रस्तुवन्देवदेवेशं विश्वेशं भक्तवत्सलम्। प्रसन्नो भगवांस्तस्य पार्वत्या सह शङ्करः ॥१२९॥
चतुर्दश्यामर्द्धरात्रे प्रत्यक्षः प्रददौवरम्। त्वत्पुत्रो भविता कृष्णे भक्तिमान्बाल एव हि॥१३०॥
उपनीयाष्टमे वर्षे तस्मै सिद्धमनुस्त्वयम् । उपदिशैकविंशत्या यो मया ते निगद्यते ॥१३१॥
गोपालविद्या नामायं मन्त्रो वाक्सिद्धिदायकः ।
एतत्साधकजिह्वाग्रे लीलाचरितमद्भुतम् ॥१३२॥
अनन्तमूर्तिरायाति स्वयमेव वरप्रदः। काममायारमाकण्ठसेन्द्रादामोदरोज्ज्वलाः ॥१३३॥
मध्ये दशाक्षरीं प्रोच्य पुनस्ता एव निर्दिशेत् ।
दशाक्षरोक्त ऋष्यादि ध्यानं चास्य ब्रवीम्यहम् ॥१३४॥
पूर्णामृतनिधेर्मध्यं द्वीपं ज्योतिर्मयं स्मरेत् । कालिन्द्या वेष्टितं तत्र ध्यायेद् वृन्दावनं वनम्॥१३५॥
सर्वर्तुकुसुमस्राविद्रुमवल्लीभिरावृतम्। नटन्मत्तशिखिस्वानं गायत्कोकिलषट्पदम् ॥१३६॥
तस्य मध्ये वसत्येकः पारिजाततरुर्महान् । शाखोपशाखाविस्तारैःशतयोजनमुच्छ्रितः ॥१३७॥

महामुनि अपनी तपस्या के ही प्रभाव से कल्प के अन्त में अपने देह का परित्याग करके ॥१२३-१२४॥ वीरगुप्त नामक गोप की सुन्दरी पुत्री हुए । उसका नाम चित्रकला हुआ । वह अपने कन्धे पर सप्तम स्वर से विभूषित वीणा को रखती थी । वह वायीं हाथ में रत्नमय भृङ्गार को धारण करती थी ॥१२५-१२६॥ वह अपने दाहिने हाथ में रत्न निर्मित पतद्ग्रह (पिकदान) को धारण करती थी । प्राचीन काल में सभी तपस्वियों से अभिवन्दित ॥१२७॥ कश्यप गोत्रीय पुण्यश्रवा नामक मुनि थे । उनके पिता शैव थे और वे प्रतिदिन शतरुद्रीय का पाठ करते थे ॥१२८॥ वे भक्तवत्सल देवाराध्य शङ्करजी की स्तुति करते थे । उनके ऊपर भगवान् शिव और पार्वतीजी प्रसन्न हो गये ॥१२९॥ चतुर्दशी के दिन आधी रात को वे प्रत्यक्ष होकर वरदान दिए तुम्हारा पुत्र बचपन से ही भगवान् श्रीकृष्ण का भक्त होगा । आठ वर्ष की अवस्था में उसका यज्ञोपवीत संस्कार करके तुम इक्कीस अक्षरों वाले मन्त्र का तुम उसे उपदेश कर देना जिसे मैं तुम्हें वतलाता हूँ ॥१३०-१३१॥ गोपाल विद्या नामक यह मन्त्र वाक्सिद्धि प्रदान करने वाला है । यह साधक की जिह्वा के अग्रभाग में अद्भुत लीला करता है ॥१३२॥ उसके प्रभाव से अनन्तमूर्ति श्रीभगवान् स्वयं वर देने के लिए आते हैं । मन्त्र के आदि में कामबीज, मायाबीज, लक्ष्मीबीज, इन्द्रबीज तथा दामोदर बीज को लगाकर उसके बाद दशाक्षरी मन्त्र को पढे और उसके बाद भी उन बीज मन्त्रों को लगाये । इस मन्त्र के ऋषि आदि वहीं हैं जो दशाक्षरी मन्त्र के हैं । इस मन्त्र का मैं ध्यान बतलाता रहा हूँ ॥१३३-१३४॥ परिपूर्ण अमृत सागर के बीच में प्रकाशमय द्वीप का ध्यान करे । उसीपर यमुना से घिरे हुए वृन्दावन का ध्यान करे ॥१३५॥ वृक्षों तथा लताओं से घिरे हुए सभी ऋतुओं में पुष्पों से परिपूर्ण वह वन है । उसमें मयूर नाचते हुए केका ध्वनि करते हैं । कोयलें बोलती रहती हैं और भौंरे गुञ्जार करते रहते हैं ॥१३६॥

तले तस्याथ विमले परितो धनुमण्डलम्। तदन्तर्मण्डलं गोपबालानां विष्णुशृङ्गिणाम् ॥१३८॥
तदन्तरे तु रुचिरं मण्डलं ब्रजसुभ्रुवाम्। नानोपायनपाणीनां मदविह्वलचेतसाम् ॥१३९॥

कृताञ्जलिपुटानां च मण्डलं शुक्लवाससाम्।
शुक्लाभरणभूषाणां प्रेमविह्वलितात्मनाम् ॥१४०॥

चिन्तयेच्छ्रुतिकन्यानां गृह्णन्तीनां वचःप्रियम्। रत्नवेद्यां ततो ध्यायेद्दुकूलावरणं हरिम् ॥१४१॥
ऊरौ शयानं राधायाः कदलीकाण्डकोपरि। तद्वक्त्रं चन्द्रसुस्मेरवीक्ष्यमाणं मनोहरम् ॥१४२॥
किञ्चित्कुञ्चितवामाङ्घ्रिवेणुयुक्तेन पाणिना। वामेनालिङ्ग्य दयितां दक्षेण चिबुकं स्पृशन् ॥१४३॥
महामारकताभासं मौक्तिकच्छायमेव च। पुण्डरीकविशालाक्षं पीतनिर्मलवाससम् ॥१४४॥
बर्हभारलसच्छीर्षं मुक्ताहारमनोहरम्। गण्डप्रान्तलसच्चारुमकराकृति कुण्डलम् ॥१४५॥
आपादतुलसीमालं कङ्कणाङ्गदभूषणम्। नूपुरैर्मुद्रिकाभिश्च काञ्च्या च परिमण्डितम् ॥१४६॥
सुकुमारतरं ध्यायेत्किशोरवयसान्वितम्। पूजा दशाक्षरोक्तैव बेदलक्षं पुरस्क्रिया ॥१४७॥

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवो देवी च गिरिजा सती।
मुनिरागत्य पुत्राय तथैवोपदिदेशह ॥१४८॥

पुण्यश्रवास्तु तन्मन्त्रग्रहणादेव केशवम्। वर्णयामास विविधैर्जित्वा सर्वान्मुनीन्स्वयम् ॥१४९॥

उसके बीच में एक विशाल पारिजात वृक्ष है। वह सौ योजन ऊँचा है और उसकी शाखाएँ तथा उपशाखायें फैली हुयी हैं ॥१३७॥ उसके नीचे स्वच्छ भूमि पर धनुषाकार मण्डल है। उस मण्डल के भीतर गोप बालों का तथा भगवान् के गायों का मण्डल है। उसके अन्दर व्रज सुन्दरियों का मनोहर मण्डल है। वे सुन्दरियाँ अपने हाथ में अनेक प्रकार के उपहारों को लिए रहती हैं। उनका अन्तःकरण मद से विह्वल बना रहता है ॥१३९॥ वह श्वेत वस्त्र तथा श्वेत आभरणों तथा भूषणों को धारण की हुयी सदा हाथ जोड़े रहती हैं। वे भी प्रेम से विह्वल बनी रहती हैं ॥१४०॥ इसके बाद प्रिय वाणी को स्वीकार करने वाली श्रुति कन्याओं का ध्यान करना चाहिए। उसके बाद श्रीभगवान् का रत्नवेदी पर ध्यान करे कि वे वस्त्र से ढंककर राधाजी के वक्षःस्थल पर सोये हुए हैं। केले के स्तम्भ के ऊपर राधा जी के मुस्कुराते हुए मनोहर मुख चन्द्र को देख रहे हैं ॥१४१-१४२॥ अपने बायें पैर को कुछ मोड़कर वंशी धारण किए हुए बायें हाथ से श्रीराधाजी का आलिङ्गन किए हैं और दाहिने हाथ से उनके चिबुक (ठोढ़ी) का स्पर्श कर रहे हैं॥१४३॥ उनके शरीर की कान्ति महामारकत मणि (नीलमणि) के समान है जिसमें मोतियों की कान्ति मिलि हुयी हैं। उनके कमल के समान बड़े-बड़े नेत्र हैं तथा वे पीताम्बर पहने हैं ॥१४४॥ शिर पर मोर मुकुट विराजमान है तथा वे मोती के मनोहर हार को धारण किए हैं। उनके गालों पर मकराकृति कुण्डल सुशोभित हो रहा है ॥१४५॥ तुलसी की माला चरणों तक लटक रही हैं तथा वे कङ्गन तथा बिजाईठ आदि भूषणों को धारण किए हैं। वे नूपुर, अङ्गूठी तथा करधनी से अलंकृत हैं ॥१४६॥ वे अत्यन्त सुकुमार हैं तथा उनकी किशोरावस्था है। इस प्रकार के श्रीभगवान् की पूजा दशाक्षर मंत्र से करे। उसका चार लाख का पुरश्चरण होता है ॥१४७॥ इसतरह से शैव मुनि को कहकर शङ्करजी तथा पार्वतीजी दोनों अन्तर्धान हो गये। शैव मुनि भी आकर अपने पुत्र को उस मन्त्र का उसी प्रकार से उपदेश दिए ॥१४८॥ पुण्यश्रवा उस मन्त्र को ग्रहण करने मात्र से स्वयं सभी मुनियों को जीतकर भगवानृ केशव का अनेक प्रकार

रूपलावण्यवैदग्ध्यसौन्दर्याश्चर्यलक्षणम् । तदा हृष्टमना बालो निर्गत्य स्वगृहात्ततः ॥१५०॥
वायुभक्षस्तपस्तेपे कल्पानामयुतत्रयम्। तदन्ते गोकुले जाता नन्दभ्रातुर्गृहे स्वयम् ॥१५१॥
लवङ्गा इति तन्नाम कृष्णोङ्गितनिरीक्षणा। यस्या हस्ते प्रदृश्येत मुखमार्जनयन्त्रकम् ॥१५२॥
इति ते कथिताः काश्चित्प्रधानाः कृष्णवल्लभाः ॥१५३॥
हरि विविधरसाद्यैर्युक्तमध्यायमेतं व्रजवरतनयाभिश्चारुहासेक्षणाभिः ।
पठति य इह भक्त्या पाठयेद्वा मनुष्यो व्रजति भगवतः श्रीवासुदेवस्य धाम ॥१५४॥
इति श्रीपद्मपुराणे पञ्चमे पातालखण्डे श्रीकृष्णमाहात्म्ये द्विसप्ततिममोऽध्यायः ॥७२॥

* * *

तिहत्तरवाँ अध्याय

ईश्वर उवाच

यत्त्वया पृष्टमाश्चर्यं तन्मयाभाषितं क्रमात् । यत्र मुह्यन्ति ब्रह्माद्यास्तत्र को वा न मुह्यति ॥१॥
तथापि ते प्रवक्ष्यामि यदुक्तं परमर्षिणा। महाराज्ञेऽम्बरीषाय विष्णुभक्त्यान्विताय च ॥२॥
बदर्याश्रममासाद्य समासीनं जितेन्द्रियम् । राजा प्रणम्य तुष्टाव विष्णुधर्मविवित्सया ॥३॥
वेदव्यासं महाभागं सर्वज्ञं पुरुषोत्तमम्। मां त्वं संसारदुष्पारे परित्रातुमिहार्हसि ॥४॥

से वर्णन किए ॥१४९॥ श्रीभगवान् के रूप सौन्दर्य तथा वैदग्ध्य सौन्दर्य से आकृष्ट मन वाले होकर अपने गृह का वे परित्याग कर दिए ॥१५०॥ वे वायु का भक्षण करते हुए तीस हजार कल्पों तक तपस्या करते रहे। उसके बाद वे गोकुल में नन्दजी के भाई की पुत्री के रूप में जन्म लिए। उनका नाम लवङ्गा हुआ। लवङ्गा भगवान् श्रीकृष्ण के चेष्टाओं को देखती रहती थीं। वे अपने हाथ में मुखमार्जन यंत्र धारण करती थीं ॥१५१-१५२॥ इस तरह से मैंने आपको भगवान् श्रीकृष्ण की प्रधान प्रियतमाओं का कुछ वर्णन सुनाया॥१५३॥ श्रीहरि के अनेक रसों आदि तथा मनोहर हँसी एवं अवलोकन वाली व्रज की श्रेष्ठ गोपियाँ से युक्त इस अध्याय का जो भक्ति पूर्वक पाठ करता है, अथवा किसी से पढ़वाता है, वह शरीर त्याग के बाद भगवान् श्रीकृष्ण के धाम में जाता है ॥१५४॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के श्रीकृष्ण माहात्म्य के अन्तर्गत बहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७२॥

* * *

भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप वर्णन पूर्वक मथुरा का माहात्म्य वर्णन

ईश्वर ने कहा— तुमने जो आश्चर्य पूछा था उसका मैंने क्रमशः वर्णन कर दिया। उसके विषय में जब ब्रह्माजी इत्यादि को भी मोह हो जाता है तो ऐसा कौन है जिसको मोह न हो ॥१॥ फिर भी मैं तुम्हें वह बतलाता हूँ जिसे व्यासजी ने विष्णु भक्त अम्बरीष को बतलाया था ॥२॥ जितेन्द्रिय महर्षि व्यास बदरिकाश्रम में आकर बैठे थे उन महाभाग महर्षि को प्रणाम करके राजा अम्बरीष ने विष्णु धर्म को जानने

विषयेभ्यो विरक्तोऽस्मि नमस्तेभ्यो नमोऽखिलम् ।
यत्तत्पदमनुद्विग्नं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥५॥
परंब्रह्म पराकाशमनाकाशमनामयम्। यत्साक्षात्कृत्य मुनयो भवाम्भोधिं तरन्ति हि ॥६॥
तत्राहं मनसो नित्यं कथं गतिमवाप्नुयाम् ॥७॥

व्यास उवाच

अतिगोप्यं त्वयापृष्टं यन्मया न शुकम्प्रति। गदितं स्वसुतं किं तु त्वां वक्ष्यामि हरिप्रिय ॥८॥
आसीदिदं परंविश्वं यद्रूपं यत्प्रतिष्ठितम् । अव्याकृतमव्यथितं तदीश्वरमयं शृणु ॥९॥
मयाकृतं तपःपूर्वं बहुवर्षसहस्रकम् । फलमूलपलाशाम्बुवाय्वाहारनिषेविणा ॥१०॥
ततो मामाह भगवान्स्वध्याननिरतं हरिः। कस्मिन्नर्थे चिकीर्षा ते विवित्सा वा महामते !॥११॥
प्रसन्नोऽस्मि वृणुष्व त्वं वरं च वरदर्षभात् ।
मद्दर्शनान्तःसंसार इति सत्यं ब्रवीमि ते ॥१२॥
ततोऽहमब्रुवं कृष्णं पुलकोत्फुल्लविग्रहः । त्वामहं द्रष्टुमिच्छामि चक्षुर्भ्यां मधुसूदन ! ॥१३॥
यत्तत्सत्यं परंब्रह्म जगज्ज्योतिर्जगत्पतिम्। वदन्ति वेदशिरसश्चाक्षुषं नाथमद्भुतम्॥१४॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मणैवं पुरापृष्टःप्रार्थितश्च यथापुरा । यदवोचमहं तस्मै तत्तुम्यमपि कथ्यते॥१५॥
मामेके प्रकृतिं प्राहुःपुरुषं च तथेश्वरम् । धर्ममेके धनञ्चैके मोक्षमेकेऽकुतोभयम् ॥१६॥

की इच्छा से स्तुति की ॥३॥ **राजा ने कहा—** इस संसार सागर को पार करना कठिन है, आप मुझे संसार से पार उतार सकते हैं ॥४॥ मैं विषयों से विरक्त हो गया हूँ । उन सभी महर्षियों को प्रणाम करता हूँ जिन्होंने अनुद्विग्न परमपद, तथा सत् चित् आनन्द स्वरूप ॥५॥ जिसे ब्रह्म परमाकाश कहते हैं जो सभी प्रकार के दोषों से रहित है, उसका साक्षात्कार करके संसार सागर को पार कर जाते हैं ॥६॥ उस परंब्रह्म के विषय में मेरी मन से भी गति कैसे हो सकती है ?॥७॥ **व्यासजी ने कहा—** तुमने उस अत्यन्त गोपनीय विषय में प्रश्न किया है जिसको मैंने अपने पुत्र शुकदेव को भी नहीं बतलाया था । किन्तु तुम श्रीहरि के प्रिय हो; अतएव मैं तुम्हें उसे बतलाऊँगा ॥८॥ पूर्वकाल में यह समपूर्ण विश्व जिसके रूप में स्थित रहकर, अव्यक्त और अविकारी रूप से प्रतिष्ठित था । ईश्वर के उसी रूप को तुम सुनो ॥९॥ मैंने पहले के समय में अनेक हजार वर्षों तक फल, मूल, पत्ते खाकर तथा जल पीकर तपस्या की ॥१०॥ उसके बाद अपने ध्यान में संलग्न मुझको भगवान् ने कहा— हे महामते ! तुम क्या करना चाहते हो ? अथवा तुम किस वस्तु को जानना चाहते हो ?॥११॥ मैं तुम पर प्रसन्न हूँ वरदान देने वालों में श्रेष्ठ तुम मुझसे वरदान माँगो । मेरा दर्शन हो जाने पर संसार का बन्धन विनष्ट हो जाता है यह मैं सत्य कह रहा हूँ ॥१२॥ उस समय मेरे शरीर में रोमाञ्च हो गया । मैंने भगवान् कृष्ण से कहा— हे मधुसूदन ! मैं आपको अपने नेत्रों से देखना चाहता हूँ ॥१३॥ हे नाथ ! आपके उस अद्भुत रूप को देखना चाहता हूँ जिसे वेदान्त सत्य, परंब्रह्म, जगज्ज्योति तथा जगत् कहते हैं ॥१४॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने भी ऐसा ही प्रश्न किया था और प्रार्थना की थी, उस समय उनको जो मैंने कहा वही तुम्हें भी बतला रहा हूँ ॥१५॥ मुझको कुछ लोग प्रकृति कहते हैं, कुछ लोग पुरुष कहते हैं, कुछ लोग ईश्वर कहते

शून्यमेके भावमेके शिवमेके सदाशिवम्। अपरे वेदशिरसि स्थितमेकं सनातनम्॥१७॥
सद्भावं विक्रियाहीनं सच्चिदानन्दविग्रहम् । पश्याद्य दर्शयिष्यामि स्वरूपं वेदगोपितम् ॥१८॥
ततोऽपश्यं भूपबालमहं कालाम्बुदप्रभम् । गोपकन्यावृतं गोपं हसन्तं गोपबालकैः ॥१९॥
कदम्बमूल आसीनं पीतवाससमद्भुतम् । वनं वृन्दावनं नाम नवपल्लवमण्डितम् ॥२०॥
कोकिलभ्रमरारावं मनोभवमनोहरम् । नदीमपश्यं कालिन्दीमिन्दीवरदलप्रभाम् ॥२१॥
गोवर्द्धनमथापश्यं कृष्णरामकरोद्धृतम् । महेन्द्रदर्पनाशाय गोगोपालसुखावहम्॥२२॥
गोपालमबलासङ्गमुदितं वेणुवादिनम् । दृष्ट्वाऽतिहृष्टो ह्यभवं सर्वभूषणभूषणम्॥२३॥
ततो मामाह भगवान्वृन्दावनचरः स्वयम् । यदिदं मे त्वया दृष्टं रूपं दिव्यं सनातनम् ॥२४॥
निष्कलं निष्क्रियं शान्तं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
पूर्णं पद्मपलाशाक्षं नातःपरतरं मम ॥२५॥
इदमेव वदन्त्येते वेदाःकारणकारणम् । सत्यं नित्यं परानन्दं चिद्घनं शाश्वतं शिवम् ॥२६॥
नित्यां मे मथुरां विद्धि वनं वृन्दावनं तथा। यमुनां गोपकन्याश्च तथा गोपालबालकाः ॥२७॥
ममावतारो नित्योऽयमत्र मा संशयं कृथाः। ममेष्टा हि सदा राधा सर्वज्ञोऽहं परात्परः ॥२८॥
सर्वकामाश्च सर्वेशः सर्वानन्दः परात्परः । मयि सर्वमिदं विश्वं भाति माया विजृम्भितम् ॥२९॥

हैं, कुछ लोग धर्म कहते हैं, कुछ लोग धन-धान्य कहते हैं, कुछ निर्भय मोक्ष कहते हैं ॥१६॥ कुछ लोग शून्य, कुछ लोग भाव (भक्ति) रूप, कुछ लोग शिव तथा कुछ लोग सदाशिव कहते हैं । दूसरे लोग मुझको वेदान्तों में स्थित् सद्भाव, निष्क्रिय तथा सच्चिदानंद स्वरूप कहते हैं । आज तुम मेरे वेदों में सुरक्षित रूप को देखो उसे मैं दिखलाता हूँ ॥१७-१८॥ हे राजन् ! उसके बाद मैंने काले मेघ के समान कान्ति वाले गोप बालक को देखा । उनको गोप कन्यायें घेरे हुयी थीं और गोप बालकों के साथ वे हँस रहे थे ॥१९॥ कदम्ब वृक्ष के मूल में बैठे हुए, अद्भुत पीताम्बर धारण किए हुए बालक को मैंने देखा। नवीन पल्लवों से सुशोभित वृन्दावन नामक वन को मैंने देखा ॥२०॥ कामदेव के समान सुन्दर उस बालक के सन्निकट में कोयल और भ्रमरों की ध्वनि भी सुनायी पड़ रही थी । नीलकमल के समान कान्ति वाली यमुना नदी को मैंने देखा । इन्द्र के अभिमान को नष्ट करने के लिए गौओं तथा गोपालों को सुख देने वाले राम और कृष्ण के द्वारा हाथ पर उठाये गये गोवर्धन को मैंने देखा ॥२१-२२॥ गोपियों के साथ प्रसन्न, वंशी बजाते हुए तथा सभी भूषणों को भूषित रहने वाले गोपाल को देखकर मैं अत्यधिक प्रसन्न हुआ ॥२३॥ उसके पश्चात् वृन्दावन में विचरण करने वाले भगवान् ने स्वयं मुझसे कहा तुमने जो इस मेरे दिव्य तथा सनातन रूप को देखा है ॥२४॥ मेरा यह रूप निष्कल (भाग रहित) विकार रहित (निष्क्रिय), शान्त (षड्र्मिरहित) तथा सच्चिदानन्द रूप तथा कमल के समान नेत्रों वाला है । इससे बढ़कर कुछ भी नहीं है ॥२५॥ वेद मेरे इसी रूप को सभी कारणों का कारण बतलाते हैं । यह सत्य, नित्य, परमानन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप तथा शाश्वत कल्याण स्वरूप है ॥२६॥ तुम मेरी मथुरा तथा वृन्दावन को नित्य जानो, यमुना, गोपकन्यायें तथा गोप बालक भी नित्य हैं ॥२७॥ मेरा यह अवतार नित्य है, इसके विषय में संदेह नहीं करना चाहिए । मुझको राधा प्रिय है मैं सर्वज्ञ तथा परात्पर हूँ ॥२८॥ मैं सर्वकाम, सर्वेश, सर्वानन्दस्वरूप तथा परात्पर (सर्वश्रेष्ठ) तत्त्व हूँ । माया के द्वारा अविष्कृत यह सारा विश्व मुझमें हीं प्रतीत होता है ॥२९॥

ततोऽहमब्रुवं देवं जगत्कारणकारणम् ।
काश्च गोप्यस्तु के गोपा वृक्षोऽयं कीदृशो मतः ॥३०॥
वनं किं कोकिलाद्याश्च नदी केयं गिरिश्च कः ।
कोऽसौ वेणुर्महाभागो लोकानन्दैकभाजनम् ॥३१॥
भगवानाह मां प्रीतःप्रसन्नवदनाम्बुजः । गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋचो वै गोपकन्यकाः ॥३२॥
देवकन्याश्च राजेन्द्र ! तपोयुक्ता मुमुक्षवः । गोपाला मुनयःसर्वे वैकुण्ठानन्दमूर्त्तयः ॥३३॥
कल्पवृक्षःकदम्बोऽयं परानन्दैकभाजनम् । वनमानन्दकाख्यं हि महापातकनाशनम् ॥३४॥
सिद्धाश्च साध्या गन्धर्वाः कोकिलाद्या न संशयः ।
केचिदानन्दहृदयं साक्षाद्यमुनया तनुम् ॥३५॥
अनादिर्हरिदासोऽयं भूधरो नात्र संशयः। वेणुर्यःशृणु तं विप्रं तवापि विदितं तथा॥३६॥
द्विज आसीच्छान्तमनास्तपःशान्तिपरायणः। नाम्ना देवव्रतो दान्तःकर्मकाण्डविशारदः ॥३७॥
स वैष्णवजनव्रातमध्यवर्ती क्रियापरः। स कदाचन शुश्राव यज्ञेशोऽस्तीति भूपते !॥३८॥
तस्य गेहमथाभ्यागाद्द्विजो मद्गतनिश्चयः। स मद्भक्तःक्वचित्पूजां तुलसीदलवारिणा॥३९॥
कृतवांस्तद्गृहे किञ्चित्फलं मूलं न्यवेदयत्। स्नानवारिफलं किञ्चित्तस्मै प्रीत्या ददौ सुधीः॥४०॥
अश्रद्धयास्मितं कृत्वा सोऽप्यगृह्णाद्द्विजन्मनः ।
तेन पापेन सञ्जातं वेणुत्वमतिदारुणम् ॥४१॥
तेन पुण्येन तस्याथ मदीयप्रियतांगतः । अमुना सोऽपि राजेन्द्र केतुमानिव राजते ॥
युगान्ते तद्विष्णुपरो भूत्वा ब्रह्म समाप्स्यति ॥४२॥

उसके बाद मैंने जगत् के समस्त कारणों के कारण स्वरूप श्रीभगवान् से कहा— ये गोपियाँ कौन हैं ? तथा ये गोप कौन हैं ? तथा यह वृक्ष कैसा हैं ?॥३०॥ यह कोयल आदि, यह नदी और पर्वत भी कौन है ? महाभाग वेणु (वंशी) कौन है ? जो संसार के आनन्द का एकमात्र पात्र है ॥३१॥ मुझ पर प्रसन्न तथा प्रसन्न मुख कमल वाले श्रीभगवान् ने कहा गोपियों को श्रुति स्वरूप जानो और गोपकन्यायें वेद की ऋचायें हैं ॥३२॥ और ये देवकन्यायें हैं । तपस्वी, मुमुक्षु जन वैकुण्ठ की आनन्दमूर्ति रूप तथा सभी मुनिजन ही गोपाल हैं ॥३३॥ परमानन्द स्वरूप कल्पवृक्ष ही यह कदम्ब है । सभी पापों को विनष्ट करने वाला आनन्दवन ही वृन्दावन है ॥३४॥ सिद्ध, साध्य तथा गन्धर्व ही कोकिला आदि हैं, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं हैं कुछ आनन्द हृदय ही यमुना रूप हैं ॥३५॥ श्रीहरि का अनादिदास यह पर्वत है । इसमें कोई संशय नहीं है । हे विप्र ! सुनो जो वेणु है उसे तुम सुनो यह तुमको भी ज्ञात है ॥३६॥ एक शान्त मन वाले ब्राह्मण थे वे तपस्वी और शान्ति परायण थे । वे कर्मकाण्ड में दक्ष थे । उनका नाम देवव्रत था॥३७॥ वैष्णवों के बीच में रहने वाले वे कर्मकाण्ड में लगे रहते थे । हे राजन् ! उन्होंने एक बार यज्ञेश के विषय में सुना ॥३८॥ मेरे विषय में निश्चय वाले वे बाह्मण उस यज्ञेश के घर आये वे मेरे भक्त कहीं पर तुलसीदल तथा जल से मेरी पूजा किए ॥३९॥ वे विद्वान् उन ब्राह्मण को फल-मूल प्रदान कर मेरा तीर्थ उनको दिए ॥४०॥ श्रद्धा से रहित होकर उन ब्राह्मण ने भी कुछ मुस्कुराकर उसको स्वीकार कर लिया। उस पाप के फलस्वरूप वे भयङ्कर बांस हो गये ॥४१॥ उसके बाद उस पुण्य के फलस्वरूप वह

अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः पुरीं मदीयां परमां सनातनीम् ।
सुरेन्द्रनागेन्द्रमुनीन्द्रसंस्तुतां मनोरमां तां मथुरां पुरातनीम् ॥४३॥
काश्यादयो यद्यपि सन्ति पुर्यस्तासां तु मध्ये मथुरैव धन्या ।
यज्जन्ममौञ्जीव्रतमृत्युदाहैर्नृणां चतुर्द्धा विदधाति मुक्तिम् ॥४४॥
यदा विशुद्धास्तपआदिना जनाः शुभाशया ध्यानधनानिरन्तरम् ।
तदैव पश्यन्ति ममोत्तमां पुरीं न चान्यथा कल्पशतैर्द्विजोत्तमाः ॥४५॥
मथुरावासिनो धन्या मान्या अपि दिवौकसाम् ।
अगण्यमहिमानस्ते सर्व एव चतुर्भुजाः ॥४६॥
मथुरावासिनो ये तु दोषान्पश्यन्ति मानवाः ।
तेषु दोषं न पश्यन्ति जन्ममृत्युसहस्रजम् ॥४७॥
अधना अपि ते धन्या मथुरां ये स्मरन्ति ते ।
यत्र भूतेश्वरो देवो मोक्षदःपापिनामपि ॥४८॥
मम प्रियतमो नित्यं देवो भूतेश्वरःपरः। यःकदापि मम प्रीत्यै न सन्त्यजति तां पुरीम्॥४९॥
भूतेश्वरं यो न नमेन्न पूजयेन्न वा स्मरेद् दुश्चरितो मनुष्यः ।
नैनां स पश्येन्मथुरां मदीयां स्वयम्प्रकाशां परदेवताख्याम् ॥५०॥
न कथं मयि भक्तिं स लभते पापपूरुषः । यो मदीयं परं भक्तं शिवं सम्पूजयेन्न हि ॥५१॥
मन्मायामोहितधियः प्रायस्ते मानवाधमाः । भूतेश्वरं न नमन्ति न स्मरन्ति स्तुवन्ति ये ॥५२॥

बांस मेरा प्रिय हो गया। हे राजेन्द्र ! उसके कारण पताका के समान वह सुशोभित होता है। युग के अन्त में विष्णु भक्त होकर यह ब्रह्म को प्राप्त कर लेगा ॥४२॥ आश्चर्य की बात है कि दुष्ट हृदय वाले मनुष्य मेरी सनातनी पुरी इन्द्र, शेष तथा मुनीन्द्रों से संस्तुत मनोहर मथुरापुरी को नहीं जानते हैं ॥४३॥ यद्यपि काशी आदि पुरियाँ हैं, किन्तु उन सबों में मथुरा पुरी ही धन्य है। यह नगरी मनुष्यों को जन्म, मौञ्जीव्रत, मृत्यु तथा दाह इन चार प्रकारों से मुक्ति प्रदान करती है ॥४४॥ निरन्तर ध्यान करने तथा तपस्या आदि के करने से अन्तःकरण शुद्ध हो जाने पर ही मेरी मथुरा नगरी का दर्शन कोई भी कर पाता है हे द्विजोत्तम इसके बिना सैकड़ों कल्पों में भी कोई इस नगरी का दर्शन नहीं कर पाता है ॥४५॥ मथुरावासी धन्य हैं, वे देवताओं के लिए भी समादरणीय हैं। उनकी महिमा अगण्य है सबके सब विष्णु स्वरूप हैं ॥४६॥ मथुरा वासियों के दोषों को नहीं देखना चाहिए क्योंकि मथुरा वासियों के जन्म और मृत्यु जन्य पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥४७॥ मथुरा का स्मरण करने वाले निर्धन भी मनुष्य धन्य हैं। वहाँ पर पापियों को भी मोक्ष प्रदान करने वाले भूतेश्वर भगवान् निवास करते हैं ॥४८॥ भूतेश्वर मुझको अत्यन्त प्रिय हैं, क्योंकि वे मेरी प्रसन्नता के लिए मथुरा पुरी का कभी परित्याग नहीं करते हैं ॥४९॥ जो मनुष्य भूतेश्वर को न तो नमस्कार करता है न उनकी पूजा करता है और न स्मरण करता है वह दुराचारी है। वह कभी पर देवता स्वरूपिणी तथा स्वयम् प्रकाश मेरी नगरी मथुरा पुरी का दर्शन नहीं कर पाता है ॥५०॥ जो मेरे परम भक्त शिव की पूजा नहीं करता है वह पापी पुरुष किसी प्रकार भी मेरी भक्ति को नहीं प्राप्त कर सकता है ॥५१॥ जो भूतेश्वर भगवान् शिव का न तो स्मरण करते हैं, न प्रणाम करते हैं और न उनकी स्तुति करते हैं, उन

बालकोऽपि ध्रुवो यत्र ममाराधनतत्परः। प्राप स्थानं परं शुद्धं यत्र युक्तं पितामहैः ॥५३॥
तां पुरीं प्राप्य मथुरां मदीयां सुरदुर्लभाम्। खञ्जो भूत्वाऽन्धको वापि प्राणानेव परित्यजेत्॥५४॥
वेदव्यास महाभाग मा कृथाःसंशयं क्वचित्।
रहस्यं वेदशिरसां यन्मयाते प्रकाशितम् ॥५५॥
इमं भगवता प्रोक्तमध्यायं यः पठेच्छुचिः।
शृणुयाद्वाऽपि यो भक्त्या मुक्तिस्तस्यापि शाश्वती ॥५६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वृन्दावनादि मथुरामाहात्म्यकथनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

* * *

चौहत्तरवाँ अध्याय

ईश्वर उवाच

एकदा रहसि श्रीमानुद्धवो भगवत्प्रियः। सनत्कुमारमेकान्ते ह्यपृच्छत्पार्षदःप्रभोः ॥१॥
यत्र क्रीडति गोविन्दो नित्यं नित्यसुरास्पदे। गोपाङ्गनाभिर्यत्स्थानं कुत्र वा कीदृशं परम्॥२॥
तत्तत्क्रीडनवृत्तान्तमन्यद्यद्यत्तदद्भुतम्। ज्ञातं चेत्तव तत्कथ्यं स्नेहो मे यदि वर्त्तते॥३॥

सनत्कुमार उवाच

कदाचिद्यमुनाकूले कस्यापि च तरोस्तले। सुवृत्तेनोपविष्टेन भगवत्पार्षदेन वै ॥४॥

अधम मनुष्यों की बुद्धि मेरी माया के द्वारा मोहित रहती है ॥५२॥ मथुरा में ही मेरी आराधना करने वाला बालक ध्रुव ने जिस अत्यन्त शुद्ध स्थान को प्राप्त किया वह ब्रह्माजी के लिए भी दुर्लभ है ॥५३॥ देवताओं के भी लिए दुर्लभ मेरी नगरी मथुरा में जाकर यदि कोई अन्धा या लङ्गड़ा भी होकर अपने प्राणों का परित्याग कर देता है उसकी भी मुक्ति हो जाती है ॥५४॥ मैंने तुमको जिस रहस्य को बतलाया है हे महाभाग ! वेदव्यास वह वेदान्तों का रहस्य है । उसके विषय में कभी भी संशय नही करना ॥५५॥ श्रीभगवान् के द्वारा उपदिष्ट इस अध्याय को जो पढ़ता है अथवा इसका श्रवण करता है, उसकी भी शाश्वत मुक्ति हो जाती है ॥५६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के वृन्दावन तथा मथुरा आदि के माहात्म्य वर्णन नामक तिहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७३॥

* * *

अर्जुन को राधा के स्वरूप का दर्शन पूर्वक स्त्रीत्व की प्राप्ति

श्रीमहादेवजी ने कहा— एक बार श्रीभगवान् के प्रिय पार्षद उद्धवजी ने एकान्त में सनत्कुमार महर्षि से पूछा ॥१॥ जहाँ पर नित्य ही देवताओं का निवास होता है, तथा जहाँ पर भगवान् गोविन्द गोपियों के साथ नित्य क्रीड़ा करते हैं, वह श्रेष्ठ स्थान कैसा है, और कहाँ है ?॥२॥ यदि आपका मुझ पर स्नेह है तो आप श्रीभगवान् के विभिन्न क्रीड़ा वृत्तान्तों को तथा उनके आश्चर्यमय कार्यों को मुझे बतलायें ॥३॥

यद्रहोऽनुभवस्तस्य पार्थेनापि महात्मना । दृष्टं कृतं च यद्यत्तत्प्रसङ्गात्कथितं मयि ॥५॥
तत्तेऽहं कथयाम्येतच्छृणुष्वावहितः परम् । किं त्वेतद्यत्र कुत्रापि न प्रकाश्यं कदाचन ॥६॥

अर्जुन उवाच

शङ्कराद्यैर्विरिञ्च्याद्यैरदृष्टमश्रुतं च यत् । सर्वमेतत्कृपाम्भोधे ! कृपया कथय प्रभो ! ॥७॥
किं त्वया कथितं पूर्वमाभीर्यस्तव बल्लभाः ।
तास्ताः कति विधा देव कति वा सङ्ख्यया पुनः ॥८॥
नामानि कति वा तासां का वा कुत्र व्यवस्थिताः ।
तासां वा कति कर्माणि वयोवेषश्च कः प्रभो ! ॥९॥
काभिःसार्द्धं क्व वा देव विहरिष्यसि भो रहः ।
नित्ये नित्यसुखे नित्यविभवे च वने वने ॥१०॥
तत्स्थानं कीदृशं कुत्र शाश्वतं परमं महत् । कृपा चेत्तादृशी तन्मे सर्वं वक्तुमिहार्हसि ॥११॥
यदपृष्टं मयाऽप्येवमज्ञातं यद्रहस्तव । आर्तार्तिघ्न ! महाभाग ! सर्वं तत्कथयिष्यसि॥१२॥

श्रीभगवानुवाच

तत्स्थानं वल्लभास्ता मे विहारस्तादृशो मम ।
अपि प्राणसमानानां सत्यं पुंसामगोचरः ॥१३॥
कथिते द्रष्टुमुत्कण्ठा तव वत्स भविष्यति । ब्रह्मादीनामदृश्यं यत्किं तदन्यजनस्य वै ॥१४॥
तस्माद्विरम वत्सैतत्किं तु तेन विना तव । एवं भगवतस्तस्य श्रुत्वा वाक्यं सुदारुणम् ॥१५॥

महर्षि सनत्कुमार ने कहा— एक बार यमुना के तट में किसी वृक्ष के नीचे सुन्दर आचरण वाले तथा भगवान् के पार्षद अर्जुन बैठकर उनका जो ऐकान्तिक अनुभव था, उन्होंने जो देखा था और जो किया था उसको प्रसङ्गवशात् मुझको बतलाया ॥४-५॥ उसीको मैं आपको बतलाता हूँ उसे सावधानी पूर्वक सुनें किन्तु इसको जहाँ कहीं भी कभी प्रकाशित नहीं करना चाहिए ॥६॥ **अर्जुन ने श्रीभगवान् से कहा—** हे कृपासागर ! जिस रहस्य को शङ्कर आदि तथा ब्रह्मा आदि देवताओं ने न तो सुना हो और न देखा हो कृपा करके आप मुझे उस रहस्य को बतलायें ॥७॥ आपने पहले कहा था कि आपकी प्रियतमाएँ गोपियाँ है, वे कितने प्रकार की हैं तथा उन सबों की संख्या कितनी हैं ?॥८॥ उन सबों का नाम क्या है ? तथा वे कहाँ रहती हैं ? उन सबों की अवस्था और वेष कैसे हैं ? तथा उन सबों के कर्म कितने हैं ?॥९॥ हे देव ! आप किन सबों के साथ एकान्त में नित्य ही सदा सुखप्रद तथा ऐश्वर्य सम्पन्न प्रत्येक वनों में विहार करते हैं ?॥१०॥ वह महान् तथा शाश्वत श्रेष्ठ स्थान कैसा है ? यदि आपकी मुझ पर कृपा है तो आप मुझे इन सारी बातों को बतलायें ॥११॥ मैंने जो नहीं पूछा हो तथा आपका जो ऐकान्तिक रहस्य अज्ञात हो हे आर्त प्राणियों के कष्ट को दूर करने वाले भगवन् उसे भी आप मुझे बतलायें ॥१२॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे वत्स ! मैं अपने उस स्थान, उन प्रियतमाओं तथा उस प्रकार के विहार को जो मेरे प्राण के समान प्रिय जीव हैं, उन सबों को भी ज्ञान नहीं है । उसको यदि मैं बतलाऊँ तो तुम्हारी भी उसको देखने की उत्कण्ठा हो जायेगी । वह ब्रह्मा आदि के भी लिए अदृश्य है, दूसरे लोगों की कौन सी बात है ?॥१३-१४॥ अतएव हे वत्स ! तुम इस विषय में न पूछो, उसके बिना तुम्हारा क्या बिगड़ रहा

दीनः पादाम्बुजद्वन्द्वे दण्डवत्पतितोऽर्जुनः । ततो विहस्य भगवान्दोर्भ्यामुत्थाप्य तं विभुः ॥१६॥
उवाच परमप्रेम्णा भक्ताय भक्तवत्सलः । तत्किं तत्कथनेनात्र द्रष्टव्यं चेत्त्वया हि यत् ॥१७॥
यस्यां सर्वसमुत्पन्नं यस्यामद्यापि तिष्ठति । लयमेष्यति तां देवीं श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरीम् ॥१८॥
आराध्य परया भक्त्या तस्यै स्वं च निवेदय ।
तां विनैतत्पदं दातुं न शक्नोमि कदाचन ॥१९॥
श्रुत्वैतद्भगवद्वाक्यं पार्थो हर्षाकुलेक्षणः । श्रीमत्यास्त्रिपुरादेव्या ययौ श्रीपादुकातलम् ॥२०॥
तत्र गत्वा ददर्शैनां श्रीचिन्तामणिवेदिकाम् । नानारत्नैर्विरचितैः सोपानैरतिशोभिताम् ॥२१॥
तत्र कल्पतरुं नानापुष्पैः फलभवैर्नतम् । सर्वर्त्तुकोमलदलैः स्रवन्माध्वीकशीकरैः ॥२२॥
वर्षद्भिर्वायुनालोलैः पल्लवैरुज्ज्वलीकृतम् । शुकैश्च कोकिलगणैः सारिकाभिः कपोतकैः ॥२३॥
लीला चकोरकैरम्यैः पक्षिभिश्चनिनादितम् । यत्र गुञ्जद्भृङ्गराजकोलाहलसमाकुलम् ॥२४॥
मणिभिर्भास्वरैरुद्यद्भास्कराभं मनोहरम् । श्रीरत्नमन्दिरं दिव्यं तले तस्य महाद्भुतम् ॥२५॥
रत्नसिंहासनं तत्र महाहैमाभिमोहनम् । तत्र बालार्कसङ्काशां नानालङ्कारभूषिताम् ॥२६॥
नवयौवनसम्पन्नां सृणिपाशधनुःशरैः । राजच्चतुर्भुजलतां सुप्रसन्नां मनोहराम् ॥२७॥
ब्रह्मविष्णुमहेशादिकिरीटमणिरश्मिभिः । विराजितपदाम्भोजामणिमार्भिरावृताम् ॥२८॥
प्रसन्नवदनां देवीं वरदां भक्तवत्सलाम् । अर्जुनोऽहमिति ज्ञातः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥२९॥

है ? इस प्रकार के श्रीभगवान् के कठोर वाक्य को सुनकर ॥१५॥ दीन होकर अर्जुन भगवान् के चरणों पर दण्ड के समान गिर पड़े । उसके बाद भगवान् जोर से हँसकर अपने दोनों हाथों से उन्हें उठाकर॥१६॥ भक्त वत्सल होने के कारण प्रेम पूर्वक कहे । जिसको तुम्हें अपने नेत्रों से देखना है उस वस्तु को कहने से कौन सा लाभ हैं ?॥१७॥ जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है और जिसमें आज भी विद्यमान है तथा जिसमें यह जगत् लीन होगा वह त्रिपुर सुन्दरी हैं ॥१८॥ उनकी परमा भक्ति से आराधना करके तुम अपने को उन्हें समर्पित कर दो । उसके विना मैं तुम्हें इस पद को नहीं प्रदान कर सकता हूँ ॥१९॥ श्रीभगवान् की इस वाणी को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न अर्जुन श्रीमती त्रिपुरादेवी की पादुका के पास गये॥२०॥ वहाँ जाकर अर्जुन ने श्रीचिन्तामणिवेदी को देखा । रत्नों से निर्मित सोपानों से वह वेदी सुशोभित थी॥२१॥ वहाँ पर विद्यमान कल्पतरु अनेक पुष्पों तथा फलों के भार से झुका हुआ था । उसके पत्ते सभी ऋतुओं में कोमल बने रहते थे उससे माध्वीक की बूंदे टपक रही थीं ॥२२॥ वायु से चंचल बने हुए बरसने वाले दलों (पत्तों) से चमक रहा था वह कल्पतरु । शुकपक्षी, कोकिलाओं के समूह, सारिकाएँ, कबूत्तर, ॥२३॥ मनोहर लीला करने वाले चकोर आदि पक्षियों से वह निनादित था । उस पर गूंजते हुए भ्रमरों की ध्वनि आ रही थी ॥२४॥ देदीप्यमान मणियों से वह उगते हुए सूर्य के समान मनोहर लगता था । उसके नीचे अद्‌भुत तथा दिव्य श्रीरत्न मन्दिर था ॥२५॥ वहाँ पर महासुवर्ण से निर्मित मनोहर रत्नसिंहासन था । उसके ऊपर बाल सूर्य के समान तथा अनेक अलङ्कारों से भूषित ॥२६॥ नवीन युवावस्था से सम्पन्न, अङ्कुश, पाश, धनुष तथा बाणों से जिनकी चारों भुजाएँ सुशोभित थीं वे प्रसन्न तथा मनोहर ॥२७॥ तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के मुकुटों की मणियों की किरणों से जिनके चरण कमल सुशोभित थे तथा अणिमा आदि सिद्धियों से घिरी हुयी ॥२८॥ प्रसन्न मुखवाली वरदा तथा भक्तवत्सला त्रिपुरादेवी को बार-बार प्रणाम

विहिताञ्जलिरेकान्ते स्थितो भक्तिभरान्वितः ।
सा तस्योपासितं ज्ञात्वा प्रसादञ्च कृपानिधिः ।
उवाच कृपया देवी तस्य स्मरणविह्वला ॥३०॥

भगवत्युवाच

कि वा दानं त्वया वत्स ! कृतं पात्राय दुर्लभम् ।
इष्टं यज्ञेन केनात्र तपो वा किमनुष्ठितम् ॥३१॥
भगवत्यमला भक्तिः का वा प्राक्समुपार्जिता ।
किं वाऽस्मिन्दुर्लभं लोके किं वा कर्म शुभं महत् ॥३२॥
प्रसादस्त्वयि येनायं प्रपन्ने च मुदा किल ।
गूढातिगूढश्चानन्यलभ्यो भगवताकृतः ॥३३॥
नैतादृङ् मर्त्यलोकानां न च भूतलवासिनाम् ।
स्वर्गिणां देवतादीनां तपस्वीश्वरयोगिनाम् ॥३४॥
भक्तानां नैव सर्वेषां नैव नैव च नैव च। प्रसादस्तु कृतो वत्स ! तव विश्वात्मना यथा ॥३५॥
तदेहि भज बुद्ध्वैव कुलकुण्डं सरो मम। सर्वकामप्रदा देवी त्वनयासह गम्यताम् ॥३६॥
तत्रैव विधिवत्स्नात्वा द्रुतमागम्यतामिह। तदैव तत्र गत्वा स स्नात्वा पार्थस्तथाऽऽगतः॥३७॥
आगतं तं कृतस्नानं न्यासमुद्रार्पणादिकम्। कारयित्वा ततो देव्या तस्य वै दक्षिणश्रुतौ ॥३८॥
सद्यःसिद्धिकरी बाला विद्या निगदितापरा। हकारार्द्धपराद्वीपा द्वितीया विश्वभूषिता॥३९॥
अनुष्ठानं च पूजां च जपञ्चलक्षसङ्ख्यकम् ।
कोरकैःकरवीराणां प्रयोगं च यथातथम् ॥४०॥

करके अर्जुन ने कहा मैं अर्जुन हूँ ॥२९॥ उसके बाद अर्जुन हाथ जोड़कर एकान्त में भक्ति पूर्वक खड़े हो गये। कृपासागर देवी ने अर्जुन की उपासनाओं को जानकर उसके स्मरण से कृपा विह्वल होकर कहा॥३०॥ **भगवती ने कहा—** वत्स ! इस दुर्लभ पात्रता के लिए तुमने कौन सा दान किया है ? तुमने कौन सा यज्ञ, या कौन सी तपस्या, या कौन सा अनुष्ठान किया है ?॥३१॥ श्रीभगवान् की तुमने कौन सी उज्ज्वल (निर्दोष) भक्ति की है ? तुमने इस लोक में कौन सा दुर्लभ तथा महान् कर्म किया है ?॥३२॥ जिसके कारण प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने तुम शरणागत पर प्रसन्न होकर अत्यन्त गूढ तथा अनन्यलभ्य कृपा की है॥३३॥ हे वत्स ! विश्वात्मा श्रीभगवान् ने जिस तरह की कृपा तुम पर की है, उस तरह की कृपा उन्होंने न तो किसी मर्त्य लोक की पृथिवी पर रहने वाले जीव पर, न तो स्वर्ग के किसी देवता पर और न तो किसी श्रेष्ठ तपस्वी अथवा योगीश्वर कर की है उन्होंने किसी भक्त पर भी ऐसी कृपा नहीं की है ॥३४-३५॥ अतएव आओ और इस देवी के साथ मेरे कुलकुण्ड सरोवर में जाओ। यह देवी सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली है ॥३६॥ वहाँ पर विधि पूर्वक स्नान करके शीघ्र यहाँ आओ। उसी समय अर्जुन उस देवी के साथ उस सरोवर पर जाकर स्नान करके चले आए ॥३७॥ स्नान करके आये हुए अर्जुन से उन्होंने न्यास तथा मुद्रा इत्यादि कराया। उसके बाद अर्जुन के दाहिने कान में ॥३८॥ सद्यः सिद्धि प्रदान करने वाली विद्या का दूसरी बाला ने उपदेश किया उन्होंने ह्रीं इस मन्त्र का उपदेश दिया। उस विद्या के

निर्वर्त्य तमुवाचेदं कृपया परमेश्वरी । अनेनैव विधानेन क्रियतां मदुपासनम् ॥४१॥
ततो मयि प्रसन्नायां तवानुग्रहकारणात् । सद्यस्तु कृष्णलीलायामधिकारो भविष्यति ॥४२॥
इत्ययं नियमःपूर्वं स्वयं भगवता कृतः । श्रुत्वैवमर्जुनस्तेन वर्मणा तां समर्चयत् ॥४३॥
ततः पूजां जपश्चैव कृत्वा देवीप्रसादिता । कृत्वा ततःशुभं होमं स्नानञ्च विधिना ततः ॥४४॥
कृतकृत्यमिवात्मानं प्राप्तप्रायमनोरथम् । करस्थां सर्वसिद्धिञ्च स पार्थःसममन्यत ॥४५॥
अस्मिन्नवसरे देवी तमागत्य स्मितानना । उवाच गच्छ वत्स ! त्वमधुनातद्गृहान्तरे ॥४६॥
ततः ससम्भ्रमः पार्थः समुत्थाय मुदान्वितः ।
असङ्ख्यहर्षपूर्णात्मा दण्डवत्तां ननाम ह ॥४७॥
आज्ञप्तस्तु तया सार्द्धं देवी वयस्ययाऽर्जुनः ।
गतो राधापतिस्थानं यत्सिद्धैरप्यगोचरम् ॥४८॥
ततश्च स उपदिष्टो गोलोकादुपरि स्थितम् । स्थिरं वायुधृतं नित्यं सत्यं सर्वसुखास्पदम्॥४९॥
नित्यं वृन्दावनं नाम नित्यं रासमहोत्सवम् । अपश्यत्परमंगुह्यं पूर्णप्रेमरसात्कम्॥५०॥
तस्या हि वचनादेव लोचनैर्वीक्ष्य तद्रहः । विवशः पतितस्तत्र विवृद्धप्रेमविह्वलः ॥५१॥
ततः कृच्छ्राल्लब्धसंज्ञो दोर्भ्यामुत्थापितस्तया ।
सान्त्वनावचनैस्तस्याः कथञ्चित्स्थैर्यमागतः ॥५२॥
ततस्तपः किमन्यन्मे कर्त्तव्यं विद्यते वद । इति तद्दर्शनोत्कण्ठाभरेण तरलोऽभवत्॥५३॥
ततस्तया करे तस्य धृत्वा तत्पददक्षिणे। प्रतिपेदे सुदेशेन गत्वा चोक्तमिदं वचः ॥५४॥

अनुष्ठान, पूजा एक लाख जप तथा करवीर पुष्प की कलियों से प्रयोग पूरा करके परमेश्वरी ने अर्जुन से कहा । तुम इसी विधि से मेरी उपासना करो ॥३९-४१॥ उसके बाद तुम पर प्रसन्न होकर कृपा करने के कारण तुम्हारा कृष्ण लीला में अधिकार होगा ॥४२॥ इस प्रकार का नियम श्रीभगवान् ने पहले से ही कर रखा है । इस तरह की बात सुनकर अर्जुन ने उसी प्रकार से उस देवी की पूजा की ॥४३॥ उसके बाद पूजा और जप करके उन्होंने देवी को प्रसन्न किया । उसके बाद उन्होंने होम किया, उसके बाद उन्होंने स्नान किया ॥४४॥ उसके बाद अर्जुन ने मान लिया कि मैं कृतकृत्य हो गया हूँ मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया है । अब मुझको सभी प्रकार की सिद्धि मिल गयी ॥४५॥ उसी समय मुस्कुराती हुयी अर्जुन के पास आकर कहीं कि वत्स ! तुम उस गृह के भीतर जाओ ॥४६॥ उसके बाद अर्जुन शीघ्रता से प्रसन्नता पूर्वक उठकर अत्यन्त हर्षित होकर उस देवी को दण्डवत् प्रणाम किए ॥४७॥ देवी की उस सखी की आज्ञा प्राप्त करके अर्जुन राधापति के स्थान में गये जो सिद्धों के लिए भी अज्ञात है ॥४८॥ उसके बाद उनको गोलोक के ऊपर विद्यमान, स्थिर, वायु पर टिके हुए, सत्य तथा सभी सुखों से युक्त ॥४९॥ नित्य वृन्दावन का उपदेश दिया गया जहाँ नित्य ही रास महोत्सव होता है । पूर्ण प्रेम तथा पूर्ण रस से युक्त, अत्यन्त गोपनीय वृन्दावन का अर्जुन ने दर्शन किया ॥५०॥ उस देवी के कहने से ही अपने नेत्रों से उस रहस्य को देखकर प्रेम के अत्यन्त बढ़ जाने के कारण अर्जुन मूर्छित होकर वहीं पर गिर पड़े ॥५१॥ बड़ी मुश्किल से अर्जुन होश में आये । देवी ने अपने दोनों हाथों से उन्हें उठाया । उसके सन्त्वना भरे वचनों से वे किसी तरह स्थिर हुए ॥५२॥ उसके बाद उन्होंने कहा कि आप मुझे बतलायें कि मुझे कौन सी दूसरी तपस्या करनी

स्नानायैतच्छुभं पार्थ विश त्वं जलविस्तरम् ।
सहस्रदलपद्मस्थसंस्थानं मध्यकोरकम् ॥५५॥
चतुःसरश्चतुर्धारमाश्चर्यकुलसङ्कुलम् । अस्यान्तरे प्रविश्याथ विशेषमिह पश्यसि ॥५६॥
एतस्य दक्षिणे देशे एषचात्र सरोवरः। मधुमाध्वीकपानं यन्नाम्ना मलयनिर्झरः ॥५७॥
एतच्च फुल्लमुद्यानं वसन्ते मदनोत्सवम् । कुरुते यत्र गोविन्दो वसन्तकुसुमोचितम् ॥५८॥
यत्रावतारं कृष्णस्य स्तुवन्त्येव दिवानिशम्। भवेद्यत्स्मरणादेव मुनेः स्वान्ते स्मराङ्कुरः॥५९॥
ततोऽस्मिन्सरसि स्नात्वा गत्वा पूर्वसरस्तटम् ।
उपस्पृश्य जलं तस्य साधय स्वमनोरथम् ॥६०॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा तस्मिन्सरसि तज्जले। कह्लारकुमुदाम्भोजरक्तनीलोत्पलच्युतैः ॥६१॥
परागैरञ्जिते मञ्जुवासिते मधुबिन्दुभिः । तुन्दिले कलहंसादि नादैरान्दोलिते ततः॥६२॥
रत्नाबद्धवचतुस्तीरे मन्दानिलतरङ्गिते । मग्ने जलान्तः पार्थे तु तत्रैवान्तर्दधेऽथ सा ॥६३॥
उत्थाय परितो वीक्ष्य सम्भ्रान्ता चारुहासिनी ।
सद्यः शुद्धस्वर्णरश्मि गौरकान्ततनूलताम् ॥६४॥
स्फुरत्किशोरवर्षायां शारदेन्दुनिभाननाम्। सुनील्कुटिलस्निग्धविलसद्रत्नकुन्तलाम् ॥६५॥
सिन्दूरबिन्दूकिरणप्रोज्ज्वलालकपट्टिकाम् । उन्मीलद्भ्रूलताभङ्गिजितस्मरशरासनाम् ॥६६॥
घनश्यामलसल्लोलखेलल्लेचनखञ्जनाम् । मणिकुण्डलतेजोंशुविस्फुरद्गण्डमण्डलाम् ॥६७॥

चाहिए । वे उस वृन्दावन के दर्शन की उत्कण्ठा से व्याकुल हो गये ॥५३॥ देवी अर्जुन का हाथ पकड़कर उस स्थान की दाहिनी ओर गयी, सुन्दर स्थान में जाकर उसने कहा ॥५४॥ हे अर्जुन ! तुम स्नान करने के लिए इस विस्तृत जल में प्रवेश करो । सहस्र दल कमल के बीच में कली है ॥५५॥ वहाँ पर आश्चर्य से भरे हुए चार धाराओं से युक्त चार सरोवर हैं, उसके भीतर प्रवेश करके तुम विशेषता को देखोगे॥५६॥ इसके दक्षिण में यह सरोवर है । यह मलय निर्झर है और इसका नाम मधुमाध्वीकपान है ॥५७॥ यह विकसित पुष्पों से युक्त उद्यान है । इसमें वसन्त कुसुमानुकूल भगवान् गोविन्द वसन्त ऋतु में मदनोत्सव मनाते हैं ॥५८॥ वहाँ पर लोग रात-दिन कृष्णावतार की प्रशंसा करते रहते हैं । उसका स्मरण करने मात्र से ही मुनियों के मन में काम का अङ्कुर उत्पन्न हो जाता है ॥५९॥ उसके बाद इस सरोवर में स्नान करके पूर्व सरोवर के तट पर जाकर उसके जल से आचमन करके तुम अपने मनोरथको सिद्ध करो ॥६०॥ उसके बाद उनके वचन को सुनकर कह्लार, कुमुद रक्तकमल तथा नीलकमल से गिरे हुए पराग से रञ्जित तथा मधु की विन्दुओं से सुगन्धित, कलहंस आदि की ध्वनियों से निनादित उस सरोवर के जल में जिसके चारों तट रत्नों से बंधे थे, तथा मन्द वायु से तरङ्गित था, उसके जल में जब पार्थ डुबकी लगाये उसी समय वह देवी अन्तर्धान हो गयी ॥६३॥ जल से निकलकर अर्जुन ने चारो ओर देखकर अपने को स्त्रीरत्न के रूप में देखा । वह मधुर मुस्कान से युक्त शुद्ध सुवर्ण की कान्ति के समान उसका गोरा शरीर था॥६४॥ उसकी किशोरावस्था थी शरत्कालीन चन्द्रमा के समान उसका मुखमण्डल था । उसके काले घुंघराले तथा चिकने रत्न के समान केश थे ॥६५॥ सिन्दूर की बिन्दू से सुशोभित उसकी केशपट्टिका थी । वह अपने उन्नत भ्रूलता के द्वारा कामदेव के धनुष को भी तिरस्कृत कर रही थी ॥६६॥ मेघ के समान उसके काले

मृणालकोमलभ्राजदाश्चर्य भुजवल्लरीम् । शरदम्बुरुहां सर्वश्रीचौरपाणिपल्लवाम् ।।६८।।
विदग्धरचितस्वर्णकटिसूत्रकृतान्तराम् । कूजत्काञ्चीकलापान्तविभ्राजज्जघनस्थलाम् ।।६९।।
भ्राजद्दुकूलसंवीतनितम्बोरुसुमन्दिराम् । शिञ्जानमणिमञ्जीरसुचारुपदपङ्कजाम् ।।७०।।
स्फुरद्विविधकन्दर्पकलाकौशलशालिनीम् । सर्वलक्षणसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम्।।७१।।
आश्चर्यललनां श्रेष्ठामात्मानं च व्यलोकयत् ।
विसस्मार च यत्किञ्चित्पौर्वदेहिकमेव च ।।७२।।
मायया गोपिकाप्राणनाथस्य तदनन्तरम् । इतिकर्त्तव्यता मूढा तस्थौ तत्र सुविस्मिता ।।७३।।
अत्रान्तरेऽम्बरे धीरध्वनिराकस्मिकोऽभवत् । अनेनैव पथा सुभ्रु ! गच्छ पूर्वसरोवरम् ।।७४।।
उपस्पृश्य जलं तस्यसाधय स्वमनोरथम् । तत्र सन्ति हि सख्यस्ते मा सीद वरवर्णिनी।।७५।।
ता हि सम्पादयिष्यन्ति तत्रैव वरमीप्सितम् । इति दैवीं गिरं श्रुत्वा गत्वा पूर्वसरोऽथ सा ।।७६।।
नानापूर्वप्रवाहं च नानापक्षिसमाकुलम् । स्फुरत्कैरवकह्लारकमलेन्दीवरादिभिः ।।७७।।
भ्राजितं पद्मरागैश्च पद्मसोपानसत्तटम् । विविधैःकुसुमोद्दामैर्मञ्जुकुञ्जलताद्रुमैः ।।७८।।
विराजितचतुस्तीरमुपस्पृश्य स्थिता क्षणम् । तत्रान्तरे क्वणत्काञ्चीमञ्जुमञ्जीररञ्जितम् ।।७९।।
किङ्किणीनां झणत्कारं शुश्रावोत्कर्णसम्पुटे । ततश्च प्रमदावृन्दमाश्चर्ययुतयौवनम्।।८०।।

नेत्र खञ्जन पक्षी के समान चञ्चल थे । मणि निर्मित कुण्डल उसकी गालों की शोभा को बढ़ा रहे थे ।।६७।। उसकी बाहुलता मृणाल के (कमलनाल) के समान कोमल थी । उसकी हथेली शरत् कालीन कमल की शोभा से युक्त थी ।।६८।। दक्ष व्यक्ति के द्वारा निर्मित सुवर्ण कटिसूत्र को वह धारण की थी । उसकी दोनों जंङ्घायें बजने वाली करधनी से सुशोभित थीं ।।६९।। सुन्दर वस्त्र से उसके नितम्ब और जङ्घे ढँके थे । वजते हुए मणि निर्मित नूपूर से चरणकमल मनोहर लगते थे ।।७०।। अनेक प्रकार की कामकला की कुशलता से वह सुशोभित थी रमणी के समस्त लक्षणों से युक्त तथा सभी भूषणों से भूषित ।।७१।। आश्चर्यमयी रमणी के रूप में अर्जुन ने अपने को देखा । वे अपने पूर्व देह सम्बन्धी सारी बातों को भूल गये थे ।।७२।। गोपियों के प्राणनाथ की माया के द्वारा मोहित उनको इस बात का भी पता नहीं था कि अब उनको क्या करना है । वे अत्यन्त आश्चर्यित थे ।।७३।। उसी समय गम्भीर ध्वनि में अचानक आकाशवाणी हुयी हे सुन्दरि ! इसी मार्ग से तुम पूर्व सरोवर में जाओ ।।७४।। उस सरोवर के जल से आचमन करके अपने मनोरथ को सिद्ध करो । हे सुन्दरि ! दुखी मत होओ, वहाँ तुम्हारी सखियाँ हैं।।७५।। वे सब वहीं पर तुम्हें वरदान को प्रदान करेंगी । इस तरह से देववाणी को सुनकर वह सुन्दरी पूर्वसरोवर पर गयी ।।७६।। उस सरोवर में अनेक पूर्वप्रवाह थे । वह सरोवर अनेक प्रकार के पक्षियों से भरा था । वह सुन्दर कैरव, कह्लार तथा कमलों आदि से सुशोभित था । उस सरोवर के किनारे पद्मराग मणियों के बने कमलों से बंधे थे । उस सरोवर के चारो तट अनेक प्रकार के पुष्पों की उत्कृष्ट सुगन्धि से युक्त लता कुञ्जों और वृक्षों से सुशोभित था । वहाँ आचमन करके वह क्षण भर बैठी ही थीं कि उस समय उसने बजने वाले नूपुरों तथा करधनी की ध्वनि से मनोहर ।।७७-७८।। घुंघुरुओं की ध्वनि को सुना उसके बाद उसने रमणियों के समूह को देखा जिन सबों की जवानी आश्चर्यमयी थी । उन सबों के अलङ्कार आकार तथा बातें आश्चर्यमयी थीं । उन सबों के अङ्ग अद्भुत, अपूर्व और अलग प्रकार के हाव-भावों से युक्त

आश्चर्यलङ्कृतिन्यासमाश्चर्याकृति भाषितम् । अद्भुताङ्गमपूर्वं सा पृथगाश्चर्यविभ्रमम् ॥८१॥
चित्रसम्भाषणं चित्रहसितालोकनादिकम् । मधुराद्भुतलावण्यं सर्वमाधुर्यसेवितम् ॥८२॥
चिल्लावण्यगतानन्तमाश्चर्याकुलसुन्दरम् । आश्चर्यस्निग्धसौन्दर्यमाश्चर्यानुग्रहादिकम् ॥८३॥
सर्वाश्चर्यं समुदयमाश्चर्यालोकनादिकम् । दृष्ट्वा तत्परमाश्चर्यं चिन्तयन्ती हृदा कियत् ॥८४॥
पादाङ्गुष्ठेनालिखन्ती भुवं नम्रानना स्थिता । ततस्तासां सम्भ्रमोऽभूद दृष्टीनां च परस्परम् ॥८५॥
केयं मदीयजातीया चिरेण न्यस्तकौतुका । इति सर्वाःसमालोक्य ज्ञातव्येयमितिक्षणम् ॥८६॥
आमन्त्र्य मन्त्रणाभिज्ञाः कौतुकाद् द्रष्टुमागताः ।
आगत्य तासामेकाथ नाम्ना प्रियमुदा मता ॥८७॥
गिरा मधुरया प्रीत्या तामुवाच मनस्विनी ॥८८॥

प्रियमुदोवाच

काऽसि त्वं कस्य कन्याऽसि कस्य त्वं प्राणवल्लभा ।
जाता कुत्राऽसि केनास्मिन्नानीता वाऽऽगता स्वयम् ॥८९॥
एतच्च सर्वमस्माकं कथ्यतां चिन्तया किमु ।
स्नानेऽस्मिन्परमानन्दे कस्यापि दुःखमस्ति किम् ॥९०॥
इति पृष्टा तया सा तु विनयावनतिंगता। उवाच सुस्वरं तासां मोहयन्ती मनांसि च ॥९१॥

अर्जुन उवाच

का वाऽस्मि कस्य कन्या वा प्रजाता कस्य वल्लभा ।
आनीता केन वा चात्र किं वाऽथ स्वयमागता ॥९२॥

थे ॥७९-८१॥ उन सबों की बातें, हँसी तथा देखने की कला अद्भुत थी । उन सबों का मधुर तथा अद्भुत सौन्दर्य सभी प्रकार के माधुर्यों से युक्त था ॥८२॥ उन सबों का ज्ञान स्वरूप सौन्दर्य अनन्त आश्चर्य से परिपूर्ण था । उन सबों का मनोहर सौन्दर्य तथा अनुग्रह इत्यादि भी आश्चर्यकारी था ॥८३॥ उन सबों के सब कुछ देखने आदि की कला आश्चर्यमय देखकर वह अपने हृदय में कुछ सोचती हुयी अपना मुख नीचे करके तथा पैर के अङ्गूठे से पृथिवी को कुरेदती हुयी स्थित थी । उसके बाद उन सबों की आँखों का परस्पर में मिलन हुआ । अर्थात् उन सुन्दरियों ने इसको देखा और इसने भी उन सबों को देखा ॥८४-८५॥ दीर्घकाल से यह कौतुक से युक्त कौन सुन्दरी है । इसतरह से उन सबों ने उसे देखकर इस बात को जानना चाहिए ॥८६॥ मन्त्रणा करने में चतुर वे सब मन्त्रणा करके उसको देखने के लिए गयीं । उनसबों में से एक प्रियमुदा नाम की मनस्विनी सुन्दरी ने आकर मधुर वाणी से उसे कहा ॥८७-८८॥ **प्रियमुदा ने कहा**— तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? तुम किसकी प्रियतमा हो ? कहाँ उत्पन्न हुयी हो ? किसने तुम्हें यहाँ लाया हैं ? अथवा तुम स्वयम् यहाँ आयी हो ?॥८९॥ इन सारी बातों को तुम हमलोगों को बतलाओ, चिन्ता क्यों करती हो ? इस परमानन्द में स्नान कर लेने पर किसी का कष्ट है क्या ?॥९०॥ इस तरह से उसके द्वारा पूछे जाने पर वह विनय से नम्र हो गयी और उन सबों के मन को मोहित करती हुयी मधुर स्वर में उसने कहा ॥९१॥ **अर्जुन ने कहा**— मैं कौन हूँ, किसकी पुत्री हूँ, कहा मेरा जन्म हुआ है, मैं किसकी प्रियतमा हूँ, किसने मुझे यहाँ लाया है ? अथवा मैं स्वयम् यहाँ आ गयी हूँ ॥९२॥ इन

एतत्किञ्चिन्न जानामि देवी जानातु तत्पुनः। कथितं श्रूयतां तन्मे मद्वाक्ये प्रत्ययो यदि ॥९३॥
अस्यैव दक्षिणेपार्श्वे एकमस्ति सरोवरम्। तत्राहं स्नातुमायाता जाता तत्रैव संस्थिता ॥९४॥
विषमोत्कण्ठिता पश्चात्पश्यन्ती परितो दिशम्।
एकमाकाशसम्भूतं ध्वनिमश्रौषमद्भुतम् ॥९५॥
अनेनैव पथा सुभ्रु ! गच्छ पूर्वसरोवरम्। उपस्पृश्य जलं तस्य साधय स्वमनोरथम् ॥९६॥
तत्र सन्ति हि सख्यस्ते मा सीद वरवर्णिनी !।
ता हि सम्पादयिष्यन्ति तत्र ते वरमीप्सितम् ॥९७॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तस्मादत्र समागता। विषादहर्षपूर्णात्मा चिन्ताकुलसमाकुला॥९८॥
आगताऽस्य जलं स्पृष्ट्वा नानाविधशुभध्वनिम्।
अश्रौषञ्च ततःपश्चादपश्यं भवतीःपराः ॥९९॥
एतन्मात्रं विजानामि कायेन मनसा गिरा। एतदेव मया देव्यः ! कथितं यदि रोचते ॥१००॥
का यूयं तनुजाः केषां क्व जाताः कस्य वल्लभाः।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः सा वै प्रियमुदाऽब्रवीत् ॥१०१॥
अस्त्वेवं प्राणसख्यः स्म तस्यैव च वयं शुभे !।
वृन्दावनकलानाथविहारदारिकाः सुखम् ॥१०२॥
ता आत्ममुदितास्तेन ब्रजबाला इहागताः। एताःश्रुतिगणाः ख्याता एताश्चमुनयस्तथा ॥१०३॥
वयं बल्लवबाला हि कथितास्ते स्वरूपतः। अत्र राधापतेरङ्गात्पूर्वायाः प्रेयसीतमाः ॥१०४॥
नित्यानित्यविहारिण्यो नित्यकेलिभुवश्चराः। एषा पूर्णरसा देवी एषा च रसमन्थरा॥१०५॥

सारी वातों में से मैं कुछ नहीं जानती हूँ। इस बात को देवी जानें। यदि आप लोगों को मेरी बातों पर विश्वास हो तो आपलोग मेरी बात सुनें ॥९३॥ इस सरोवर के दाहिने पार्श्व में एक सरोवर है। वहाँ पर मैं स्नान करने के लिए आयी और वहीं स्थित थी ॥९४॥ अत्यधिक उत्कण्ठा से युक्त मैं चारो दिशाओं में देख रही थी। वहाँ मैंने एक अद्भुत आकाशवाणी सुना ॥९५॥ हे सुन्दरि ! इसी मार्ग से तुम पूर्व सरोवर पर जाओ। वहाँ जल का आचमन करके तुम अपने मनोरथ को पूरा करो ॥९६॥ सुन्दरि ! वहाँ पर तुम्हारी सखियाँ हैं, दुःखी मत होओ। वहाँ पर वे तुम्हारे अभिप्रेत वरदान को पूरा करेंगी ॥९७॥ उस वाणी को सुनकर मैं यहाँ आयी हूँ। विषाद तथा हर्ष से परिपूर्ण मन वाली मैं चिन्तित हूँ ॥९८॥ यहाँ आकर इस जल का स्पर्श करके मैंने अनेक प्रकार की सुन्दर ध्वनियों को सुना, उसके वाद मैंने आपलोगों को देखा ॥९९॥ मैं मन, वाणी और शरीर से इतनी ही बातों को जानती हूँ। हे देवियों ! यदि आप लोगों को अच्छा लगे तो मैंने सारी वात बता दी ॥१००॥ आपलोग कौन हैं ? किसकी पुत्रियाँ है ? आपलोग कहाँ उत्पन्न हुयी है ? किसकी पत्नियाँ हैं ? उसके उस वचन को सुनकर प्रियमुदा ने कहा॥१०१॥ हमलोग प्रण की सखियाँ हैं, हे शुभे ! हमलोग उनकी ही बल्लभाएँ है, हमलोग वृन्दावन चन्द्र की सुखविहार बालिकाएँ हैं ॥१०२॥ ये अपने आप प्रसन्न रहने वाली ब्रज बालाएँ यहाँ आयी हैं। ये सभी श्रुतियाँ हैं और ये सव मुनिगण हैं ॥१०३॥ हम सभी गोपियाँ है, यह मैंने स्वरूप बतलाया यहाँ पर राधापति के पूर्वरङ्ग की हम सभी प्रियतमाएँ हैं ॥१०४॥ हमलोग नित्य ही विहार करने वाली तथा नित्य

एषा रसालया नाम एषा च रसवल्लरी । रसपीयूषधारेयमेषा रसतरङ्गिणी ॥१०६॥
रसकल्लोलिनी चैषा इयं च रसवापिका। अनङ्गसेना एषैव इयं चानङ्गमालिनी ॥१०७॥
मदयन्ती इयं बाला एषा च रसविह्वला । इयं च ललिता नाम इयं ललितयौवना॥१०८॥
अनङ्गकुसुमा चैषा इयं मदनमञ्जरी। एषा कलावती नाम इयं रतिकला स्मृता॥१०९॥
इयं कामकला नाम इयं हि कामदायिनी । रतिलोला इयं बाला इयं बाला रतोत्सुका॥११०॥
एषा चरति सर्वस्वा रतिचिन्तामणिस्त्वसौ । नित्यानन्दाः काश्चिदेताः नित्यप्रेमरसप्रदाः ॥१११॥
अतः परं श्रुतिगणास्तासां काश्चिदिमाः शृणु ।
उद्गीतैषा सुगीतेयं कलगीतात्त्वियं प्रिया ॥११२॥
एषा कलसुरा ख्याता बालेयं कलकण्ठिका ।
विपञ्चीयं क्रमपदा एषा बहुहुता मता ॥११३॥
एषा बहुप्रयोगेयं ख्याता बहुकलाऽबला । इयं कलावती ख्याता माता चैषा क्रियावती॥११४॥
अतः परं मुनिगणास्तासां कतिपया इह । इयमुग्रतपा नाम एषा बहुगुणा स्मृता॥११५॥
एषा प्रियव्रता नाम सुव्रता च इयं मता। सुरेखेयं मता बाला सुपर्वेयं बहुप्रदा ॥११६॥
रत्नरेखा त्वियं ख्याता मणिग्रीवा त्वसौ मता ।
सुपर्णा चेयमाकल्पा सुकल्पा रत्नमालिका ॥११७॥
इयं सौदामिनी सुभ्रूरियं च कामदायिनी । एषा च भोगदा ख्याता इयं विश्वमता सती॥११८॥

क्रीड़ा भूमि में रहने वाली हैं । यह देवी पूर्णरसा है । ये रसमन्थारा देवी हैं ॥१०५॥ इनका नाम रसालया है, इनका नाम रसबल्लरी है । इस गोपी का नाम रस पीयूषधारा है, और यह रसतरङ्गिणी हैं ॥१०६॥ इनका नाम रस कल्लोलिनी है और यह रसवापिका है । इसका नाम अनङ्गसेना है और यह अनङ्गमालिनी है ॥१०७॥ इस बाला का नाम मदयन्ती है और इसका नाम रस विह्वला है । इसका नाम ललिता है और इसका नाम ललित यौवना है ॥१०८॥ इसका नाम अनङ्गकुसुमा है और यह मदनमञ्जरी है । इसका नाम कलावती है और इसका नाम रतिकला है ॥१०९॥ इसका नाम कामकला है और यह कामदायिनी है । इस बाला का नाम रतिलोला है और इस बाला का नाम रतोत्सुक है ॥११०॥ यह रति सर्वस्वा है और यह रतिचिन्तामणि है । इन सबों का नाम नित्यानन्दा है ये सब सदैव प्रेम रस प्रदान करने वाली हैं॥१११॥ इसके बाद यह श्रुतियों का समूह है, इन सबों में से कुछ का नाम सुनो इसका नाम उद्गीता है, यह सुगीता है और यह कलगीता है ॥११२॥ इसका नाम कलसुरा है । इस बाला का नाम कलकण्ठिका है, यह विपञ्ची है, यह क्रमपदा है और यह बहुहुता है ॥११३॥ यह बहुप्रयोगा है और यह बहुकला कहलाती है। इसका नाम कलावती है और यह माता है और यह क्रियावती है ॥११४॥ इसके बाद ये मुनिगण हैं । इन सबों में से कुछ का नाम सुनो । इसका नाम उग्रतपा है, यह बहुगुणा कहलाती है ॥११५॥ इसका नाम प्रियव्रता है और यह सुब्रता कहलाती है । इस बाला का नाम सुरेखा है यह बहुप्रदा सुवर्णा है॥११६॥ इसका नाम रत्नरेखा है और इसका नाम मणिग्रीवा है । यह सुपर्णा है और ये सब आकल्पा, सुकन्या और रत्नमालिका हैं ॥११७॥ यह सुन्दरी सौदामिनी है और ये कामदायिनी हैं । यह भोगदा के नाम से विख्यात है और इस सुन्दरी का नाम विश्वमाता है । ये धारिणी हैं और ये धात्री, सुमेधा और कान्ति हैं । ये अपर्णा

एषा च धारिणी धात्री सुमेधाकान्तिरप्यसौ ।
अपर्णेयं सुपर्णैषा मतैषा च सुलक्षणा ॥११९॥
सुदतीयं गुणवती चैषा सौकलिनी मता ।
एषा सुलोचना ख्याता इयं च सुमनाः स्मृता ॥१२०॥
अश्रुता च सुशीला च रतिसौख्यं प्रदायिनी ।
अतः परं गोपबाला वयमत्रागतास्तु याः ॥१२१॥
तासां च परिचीयन्तां काश्चिदम्बुरुहानने। असौ चन्द्रावली चैषा चन्द्रिकेयं शुभा मता॥१२२॥
एषा चन्द्रावली चन्द्ररेखेयं चन्द्रिकाऽप्यसौ ।
एषा ख्याता चन्द्रमाला मता चन्द्रालिका त्वियम् ॥१२३॥
एषा चन्द्रप्रभा चन्द्रकलेयमबला स्मृता। एषा वर्णावली वर्णमालेयं मणिमालिका॥१२४॥
वर्णप्रभा समाख्याता सुप्रभेयं मणिप्रभा। इयं हारावली तारा मालिनीयं शुभा मता ॥१२५॥
मालतीयमियं यूथी वासन्ती नवमल्लिका। मल्लीयं नवमल्लीयमसौ शेफालिका मता ॥१२६॥
सौगन्धिकेयं कस्तूरी पद्मिनीयं कुमुद्वती। एषैव हि रसोल्लासा चित्रवृन्दा समा त्वियम्॥१२७॥
रम्भेयमुर्वशी चैषा सुरेखा स्वर्णरेखिका। एषा काञ्चनमालेयं सत्यसन्ततिकापरा॥१२८॥
एताः परिकृताः सर्वाः परिचेयाः परा अपि ।
सहितास्माभिरेताभिर्विहरिष्यसि भामिनि ॥१२९॥
एहि पूर्वसरस्तीरे तत्र त्वां विधिवत्सखि! ।
स्नापयित्वाऽथ दास्यामि मन्त्रं सिद्धिप्रदायकम् ॥१३०॥
इति तां सहसा नीत्वा स्नापयित्वा विधानतः ।
वृन्दावनकलानाथप्रेयस्यामन्त्रमुत्तमम् ॥१३१॥

हैं और ये सुपर्णा हैं और ये सुलक्षणा हैं ॥११८-११९॥ ये सुदती हैं, ये गुणवती हैं और ये सौकलिनी हैं । इसका नाम सुलोचना है और यह सुमना कहलाती हैं ॥१२०॥ ये अश्रुता, सुशीला तथा ये रति सौख्य प्रदायिनी हैं । इसके बाद हम सब आयी हुयी गोपियाँ हैं ॥१२१॥ हे कमल के समान मुख वाली! तुम इन सबों को पहचानों यह चन्द्रावली है और यह सुन्दरी चन्द्रिका है ॥१२२॥ यह चन्द्रावली है, यह चन्द्ररेखा है और यह चन्द्रिका है । इसका नाम चन्द्रमाला है । यह वर्णमाला है, और यह चन्द्रालिका है॥१२३॥ यह चन्द्रप्रभा है, यह चन्द्रकला है, यह वर्णावली है, यह वर्णमाला है और यह मणिमालिका है ॥१२४॥ यह वर्णप्रभा कहलाती है, यह सुप्रभा है, यह हारावली है, यह तारा है और यह मालिनी है॥१२५॥ यह मालती है, यह जूही है, और यह नव्र मल्लिका है । इसका नाम मल्ली है, यह नवमल्ली है और इसका नाम शेफालिका है ॥१२६॥ यह सौगन्धिका है, यह कस्तूरी है, यह पद्मिनी है और यह कुमुद्वती है । इसका नाम रसोल्लासा है, यह चित्रवृन्दा है और यह समा है ॥१२७॥ हे सखि ! आओ पूर्व सरोवर पर विधिपूर्वक स्नान कराकर मैं तुम्हें सिद्धिप्रद मन्त्र प्रदान करूँगी । इस तरह से उसको अचानक लाकर और विधिपूर्वक स्नान कराकर वृन्दावन के स्वामी की प्रियतमा (राधाजी) की संक्षेप में दीक्षा विधि को करके उत्तम मन्त्र प्रदान किया । उसके आदि में चतुर्थस्वर तथा अनुस्वार से युक्त अग्नि बीज (रां)

ग्रहयामास संक्षेपाद्दीक्षाविधिपुरस्सरम्। परं वरुणबीजस्य वह्निवीजपुरस्कृतम् ॥१३२॥
चतुर्थस्वरसंयुक्तं नादबिन्दुविभूषितम्। पुटितं प्रणवाभ्यां च त्रैलोक्ये चातिदुर्लभम्॥१३३॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण सिद्धिः सर्वा प्रजायते। पुरश्चर्याविधिर्ध्यानं होमसङ्ख्याजपस्य च ॥१३४॥
तप्तकाञ्चनगौराङ्गीं नानालङ्कारभूषिताम्। आश्चर्यरूपलावण्यां सुप्रसन्नां वरप्रदाम् ॥१३५॥
कल्हारैः करवीराद्यैश्चम्पकैः सरसीरुहैः। सुगन्धकुसुमैरन्यैः सौगन्धिकसमन्वितैः ॥१३६॥
पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च धूपदीपैर्मनोहरैः। नैवेद्यैर्विविधैर्दिव्यैः सखीवृन्दाहृतैर्मुदा ॥१३७॥
सम्पूज्य विधिवद्देवीं जप्त्वा लक्षं मनुं ततः। हुत्वा च विधिनास्तुत्वा प्रणम्य दण्डवद्भुवि ॥१३८॥
ततः सा संस्तुता देवी निमेषरहितान्तरा। परिकल्प्य निजां छायां माययात्मसमीहया॥१३९॥
पार्श्वेऽथ प्रेयसीं तत्र स्थापयित्वा बलादिव। सखीभिरावृता हृष्टा शुद्धैः पूजाजपादिभिः ॥१४०॥
स्तवैर्भक्त्या प्रणामैश्च कृपयाऽऽविरभूत्तदा। हेमचम्पकवर्णाभा विचित्राभरणोज्ज्वला ॥१४१॥
अङ्गप्रत्यङ्गलावण्यलालित्यमधुराकृतिः। निष्कलङ्का शरत्पूर्णकलानाथशुभानना ॥१४२॥
स्निग्धमुग्धस्मितालोकजगत्त्रयमनोहरा। निजया प्रभयाऽत्यन्तं द्योतयन्ती दिशो दश ॥१४३॥
अब्रवीदथ सा देवी वरदा भक्तवत्सला ॥१४४॥

देव्युवाच

मत्सखीनां वचः सत्यं तेन त्वं मे प्रियासखी ।
समुत्तिष्ठ समागच्छ कामं ते साधयाम्यहम् ॥१४५॥

लगाकर तथा उसके अन्त में वरुण बीज (ह्रीं) लगाकर तथा प्रणव (ओम्) से सम्पुटित त्रैलोक्य में अत्यन्त दुर्लभ राधाजी का मन्त्र प्रदान किया ॥१२८-१३३॥ उसके ग्रहण करते ही सभी प्रकार की सिद्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं । पुरश्चरण की विधि, ध्यान, होम तथा जप की संख्या का ज्ञान हो जाता है॥१३४॥ कह्लार, करवीर, चम्पा, कमल तथा दूसरे सौगन्धिक सुगन्धित पुष्पों से, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, धूप, दीप तथा मनोहर एवं दिव्य नैवेद्य जो उसकी सखियों द्वारा लाये गये थे उन सबों से, तप्त काञ्चन के समान गौर वर्ण के अङ्गों वाली, अनेक प्रकार के अलङ्कारों से अलंकृत प्रसन्न तथा वर प्रदान करने वाली ॥१३५-१३७॥ देवी की प्रसन्नता पूर्वक पूजा करके तथा मन्त्र का विधि पूर्वक एक लाख जप करके, उसके बाद होम तथा स्तुति करके फिर दण्डवत् प्रणाम किया ॥१३८॥ स्तुति करने के बाद देवी अपनी अभिप्रेत माया के द्वारा क्षणभर में ही अपनी दूसरी छाया की कल्पना करके मानो बलपूर्वक उसके पास स्थापित करके शुद्ध पूजा इत्यादि तथा भक्ति पूर्वक की गयी स्तुति तथा प्रणामादि के कारण कृपा करके प्रकट हो गयीं । वह अपनी सखियों से घिरी हुयी थी । उसकी कान्ति सुवर्ण चम्पा के समान थी तथा वह अद्भुत अलङ्कारों से सुशोभित थी ॥१३९-१४१॥ प्रत्येक अङ्गों के सौन्दर्य तथा लालित्य के कारण उसका आकार मनोहर था । उसका मुखमण्डल शरत् कालीन निष्कलङ्क चन्द्रमा के समान आह्लादक था ॥१४२॥ स्निग्ध तथा मनोहर मुस्कान के कारण वह त्रैलोक्य में सुन्दर था । वह अपनी कान्ति से दशों दिशाओं को अत्यन्त प्रकाशित कर रही थी ॥१४३॥ उसके बाद वरदान देने वाली भक्तवत्सला देवी ने कहा ॥१४४॥ **देवी ने कहा—** हमारी सखियों की वाणी सत्य है अतएव तुम मेरी प्रिय सखी हो । उठो और आओ मैं तुम्हारी कामना पूर्ण करती हूँ ॥१४५॥ देवी की उस अपने मनोऽनुकूल वाणी को सुनकर अर्जुन के संपूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो आया

अर्जुनी सा वचो देव्याः श्रुत्वा चात्ममनीषितम् ।
पुलकाङ्कुरमुग्धाङ्गी बाष्पाकुलविलोचना ॥१४६॥
पपात चरणे देव्याः पुनश्च प्रेमविह्वला । ततः प्रियम्वदां देवी समुवाच सखीमिमाम् ॥१४७॥
पाणौ गृहीत्वा मत्सङ्गे समाश्वास्य समानय। ततः प्रियम्वदादेव्या आज्ञया जातसम्भ्रमा ॥१४८॥
तां तथैव समादाय सङ्गे देव्या जगाम ह। गत्वोत्तरसरस्तीरे स्नापयित्वा विधानतः॥१४९॥
सङ्कल्पादिकपूर्वन्तु पूजयित्वा यथाविधि। श्रीगोकुलकलानाथमन्त्रं तच्च सुसिद्धिदम् ॥१५०॥
ग्राहयामास तां देवी कृपया हरिवल्लभा। व्रत गोकुलनाथाख्यं पूर्वं मोहनभूषितम् ॥१५१॥
सर्वसिद्धिप्रदं मन्त्रं सर्वतन्त्रेषु गोपितम्। गोविन्देरितविज्ञाऽसौ ददौ भक्तिमचञ्चलाम् ॥१५२॥
ध्यानञ्च कथितं तस्यै मन्त्रराजञ्च मोहनम् । उक्तञ्च मोहने तन्त्रे स्मृतिरप्यस्य सिद्धिदा ॥१५३॥
नीलोत्पलदलश्यामं नानालङ्कारभूषितम् ॥१५४॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं ध्यायेद्रासरसाकुलम् । प्रियम्वदामुवाचेदं रहस्यं पावनेच्छया॥१५५॥

श्रीराधिकोवाच

अस्या यावद्भवेत्पूर्णं पुरश्चरणमुत्तमम्। तावद्धि पालयैनां त्वं सावधाना सहालिभिः॥१५६॥
इत्युक्त्वा सा ययौ कृष्णपादाम्बुरुहसन्निधिम् ।
छायामात्मभवामात्मप्रेयसीनां निधाय च ॥१५७॥
तस्थौ तत्र यथापूर्वं राधिका कृष्णवल्लभा ।
अत्र प्रियम्वदादेशात्पद्ममष्टदलं शुभम् ॥१५८॥
गोरोचनाभिर्निर्माय कुङ्कुमेनापि चन्दनैः । एभिर्नानाविधैर्द्रव्यैः संमिश्रैः सिद्धिदायकम् ॥१५९॥

और उसके बड़े-बड़े नेत्रों में आंसू भर गया ॥१४६॥ प्रेम में विह्वल बनी हुयी वह फिर देवी के चरणों पर गिर पड़ी । उसके बाद देवी ने प्रियम्वदा से कहा कि इस सखी को ॥१४७॥ इसके हाथों को पकड़कर इसको आश्वस्त करो और मेरे साथ लाओ । उसके बाद देवी की आज्ञा से प्रियम्वदा ने शीघ्रता से उसको उसी प्रकार से पकड़कर देवी के सङ्ग ले गयी । उत्तर सरोवर पर ले जाकर उसको विधि पूर्वक स्नान कराया ॥१४८-१४९॥ फिर सङ्कल्पादि पूर्वक सविधि पूजा करके सुन्दर सिद्धि प्रदान करने वाले गोकुल के चन्द्रमा (भगवान् श्रीकृष्ण) का मन्त्र का उपदेश श्रीहरि की प्रियतमा देवी ने कृपा करके दिया । गोकुल नाथ का व्रत बतलाया और सभी तन्त्रों में गोपित सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाले मोहन मन्त्र का उपदेश दिया । उसने भगवान् गोविन्द के द्वारा उपदिष्ट निश्चल भक्ति प्रदान किया ॥१५०-१५२॥ उसने मोहन मन्त्र को बतलाकर उसका ध्यान बतलाया । वह ध्यान मोहन तन्त्र में वर्णित है । उसका स्मरण भी सिद्धि प्रदान करने वाला है ॥१५३॥ नीलकमल दल के समान श्यामवर्ण के अनेक प्रकार के अलङ्कारों से अलंकृत करोड़ों कामदेव के समान सौन्दर्य सम्पन्न रसानन्द में मग्न श्रीभगवान् का ध्यान करना चाहिए। अर्जुन को पवित्र करने की इच्छा से राधाजी ने प्रियम्वदा से कहा ॥१५४-१५५॥ **श्रीराधिकाजी ने कहा—** जब तक इसका उत्तम पुरश्चरण पूरा होता है तब तक इसकी रक्षा अपनी सखियों के साथ सावधानी पूर्वक करना ॥१५६॥ इस तरह से कहकर अपनी छाया को सखियों के पास रखकर श्रीराधाजी स्वयम् श्रीभगवान् के चरण कमलों के सन्निकट चली गयीं ॥१५७॥ पहले के ही समान भगवान् कृष्ण की

लिखित्वा यन्त्रराजञ्च शुद्धं मन्त्रं तमद्भुतम्। कृत्वा न्यासादिकं पाद्यमर्घ्यं चापि यथाविधि॥१६०॥
नानर्तुसम्भवैः पुष्पैः कुङ्कुमैरपि चन्दनैः। धूपदीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलैर्मुखवासनैः ॥१६१॥
वासोऽलङ्कारमाल्यैश्च सम्पूज्य नन्दनन्दनम्। परिवारैः समं सर्वैः सायुधं च सवाहनम् ॥१६२॥
स्तुत्वा प्रणम्य विधिवच्चेतसा स्मरणं ययौ ।
ततो भक्तिवशो देवो यशोदानन्दनः प्रभुः ॥१६३॥
स्मितावलोकितापाङ्गतरङ्गिततरेङ्गितम् । उवाच राधिकां देवीं तामानय इहाशु च ॥१६४॥
आज्ञाप्ताचैव सा देवी प्रस्थाप्य शारदां सखीम् ।
तामानिनाय सहसा पुरोवासुरसात्मनः ॥१६५॥
श्रीकृष्णस्य पुरस्तात्सा समेत्य प्रेमविह्वला। पपात काञ्चनी भूमौ पश्यन्ती सर्वमद्भुतम् ॥१६६॥
कृच्छात्कथञ्चिदुत्थाय शनैरुन्मील्यलोचने। स्वेदाम्भःपुलकोत्कम्पभावभाराकुला सती ॥१६७॥
ददर्श प्रथमं तत्र स्थलं चित्रं मनोरमम्। ततः कल्पतरुस्तत्र लसन्मरकतच्छदः॥१६८॥
प्रवालपल्लवैर्युक्तः कोमलो हेमदण्डकः। स्फटिकप्रवालमूलश्च कामदः कामसम्पदाम्॥१६९॥
प्रार्थकाभीष्टफलदस्तस्याधो रत्नमन्दिरम्। रत्नसिंहासनं तत्र तत्राष्टदलपद्मकम् ॥१७०॥
शङ्खपद्मनिधी तत्र सख्यापसव्यसंस्थितौ। चतुर्दिक्षु यथास्थानं सहिताः कामधेनवः॥१७१॥
परितो नन्दनोद्यानं मलयानिलसेवितम्। ऋतूनां चैव सर्वेषां कुसुमानां मनोहरैः ॥१७२॥
आमोदैर्वासितं सर्वं कालागुरुपराजितम्। मकरन्दकणावृष्टिशीतलं सुमनोहरम्॥१७३॥

प्रियतमा श्रीराधाजी वहाँ ठहर गयीं। यहाँ पर प्रियम्वदा के आदेश से गोरोचन, कुङ्कुम, चन्दन आदि अनेक द्रव्यों के मिश्रण से शुभ अष्टदल कमल तथा सिद्धिप्रद यन्त्रराज तथा उस अद्भुत मन्त्र को शुद्ध लिखकर विधि पूर्वक न्यास आदि तथा पाद्य एवं अर्घ्य आदि करके ॥१५८-१६०॥ सभी आयुधों तथा वाहनों एवं परिवार के साथ ऋतु के अनुसार पुष्पों, कुङ्कुम, चन्दन, धूप, द्वीप, नैवेद्य, ताम्बूल, मुखवास, वस्त्र अलङ्कार तथा मालाओं से नन्दनन्दन श्रीकृष्ण की पूजा करके, स्तुति तथा प्रणाम करके अपने अन्तःकरण में उनका वह ध्यान करने लगी। उसके बाद भक्तिपरवश भगवान् यशोदानन्दन ने ॥१६१-१६३॥ राधिका देवी से मुसुकुराते हुए कटाक्षपात पूर्वक कहा कि उसको यहाँ शीघ्र लाओ ॥१६४॥ भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर राधाजी ने अपनी शारदा नाम की सखी को भेजा। वह भी शीघ्र ही उसको भगवान् के समक्ष लायी ॥१६५॥ प्रेम से विह्वल बनी हुयी वह भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष आकर अत्यन्त अद्भुत श्रीभगवान् को देखती हुयी उस सुवर्णमय भूमि पर गिर पड़ी ॥१६६॥ धीरे-धीरे उठकर उसने अपनी आँखों को खोला। उस समय वह पसीने-पसीने और रोमाञ्च से भर गयी थी ॥१६७॥ उसने सर्वप्रथम अद्भुत और मनोहर स्थल को देखा। उसके बाद उसने कल्पतरु को देखा जो मरकतमणि की शाखाओं से सुशोभित था ॥१६८॥ वह प्रबाल (मुंगा) मय पत्तों से युक्त था, वह कोमल सुवर्ण दण्डों वाला था। उसकी जड़ें स्फटिक और प्रवालमय थीं। वह समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला था ॥१६९॥ वह प्रार्थना करने वालों को अभिप्रेत फल प्रदान करने वाला था। उसके नीचे रत्न निर्मित मन्दिर था। उसमें रत्न से निर्मित सिंहासन था और उस पर अष्टदल कमल बना था ॥१७०॥ उसके बायें, दायें शङ्ख तथा पद्म ये दो निधियाँ विद्यमान थीं। चारों दिशाओं में यथास्थान काम धेनुएँ थीं ॥१७१॥ उसके चारों ओर मलयानिल

मकरन्दरसास्वादमत्तानां भृङ्गयोषिताम् । वृन्दशो झङ्कृतैः शश्वच्चैव मुखरितान्तरम् ॥१७४॥
कलकण्ठीकपोतानां सारिकाशुकयोषिताम्। अन्यासां पत्रिकान्तानां कलनादैर्निनादितम् ॥१७५॥
नृत्यैर्मत्तमयूराणामाकुलं स्मरवर्द्धनम् । रसाम्बुसेकसंसृष्टतमाञ्जनतनुद्युतिम् ॥१७६॥
सुस्निग्धनीलकुटिलकषायावासिकुन्तलम् । मदमत्तमयूराद्यशिखण्डाबद्धचूडकम् ॥१७७॥
भृङ्गसेवितसव्योपक्रमपुष्पावतंसकम् ।
लोलालकालिविलसत्कपोलादर्शकाशितम् ॥१७८॥
विचित्रतिलकोद्दामभालशोभाविराजितम् । तिलपुष्पपतङ्गेशचञ्चुमञ्जुलनासिकम् ॥१७९॥
चारुबिम्बाधरं मन्दस्मितदीपितमन्मथम्। वन्यप्रसूनसङ्काशग्रैवेयकमनोहरम् ॥१८०॥
मदोन्मत्तभ्रमद्भृङ्गीसहस्रकृतसेवया । सुरद्रुमस्रजा राजन्मुग्धपीनांशुकद्वयम् ॥१८१॥
मुक्ताहारस्फुरद्वक्षःस्थलकौस्तुभभूषितम् । श्रीवत्सलक्षणं जानुलम्बिबाहु मनोहरम् ॥१८२॥
गम्भीरनाभिपञ्चास्यमध्यमध्यातिसुन्दरम् । सुजातद्रुमसद्वृत्तमदूरजानुमञ्जुलम् ॥१८३॥
कङ्कणाङ्गदमञ्जीरैर्भूषितं भूषणैः परैः। पीतांशुकलयाविष्टनितम्बघटनायकम् ॥१८४॥
लावण्यैरपि सौन्दर्यजितकोटिमनोभवम् । वेणुप्रवर्त्तितैर्गीतरागैरपि मनोहरैः ॥१८५॥
मोहयन्तं सुखाम्भोधौ मज्जयन्तं जगत्त्रयम्। प्रत्यङ्गमदनावेशधरं रासरसालसम् ॥१८६॥
चामरं व्यजनं माल्यं गन्धं चन्दनमेव च । ताम्बूलं दर्पणं मानपात्रं चर्वितपात्रकम् ॥१८७॥

से सेवित नन्दनवन था। सभी ऋतुओं के पुष्पों की सुगन्धि से वह सुवासित था, जो कालागरु की सुगन्धि से भी अधिक सुगन्धित था। उसमें शीतल और मनोहर परागकण की वृष्टि होती थी ॥१७२-१७३॥ उस उद्यान का भीतरी भाग परागरस के पान से मत्त बनी हुयी भ्रमरियों के समूह की ध्वनि से निरन्तर ध्वनित होता रहता था ॥१७४॥ कोयल, कबूतर, सारिका, शुक पक्षी तथा दूसरे पक्षियों की मनोहर ध्वनि से वह निनादित था ॥१७५॥ मत्त मयूरों के नृत्यों से व्याप्त तथा कामोत्तेजक, रस रूपी जल के सींचन से युक्त श्याम वर्ण के ॥१७६॥ चिकने काले घुंघराले तथा सुगन्धित केशों वाले, जिनकी चूडा में मदमत्त मयूर का पङ्ख लगा है ॥१७७॥ जिनके बायें कान में लगे हुए पुष्प पर भँवेर मंडरा रहे हैं, चञ्चल केश समूह जिनके कपोल पर लहरा रहे हैं ॥१७८॥ अद्भुत तिलक के द्वारा जिनका उत्कृष्ट ललाट सुशोभित था जिनकी नाक तिलपुष्प अथवा पक्षिराज की चोंच के समान उठी हुयी थी ॥१७९॥ जिनका मनोहर विम्ब फल के समान अधर (ओष्ठ) मन्दमुसुकान के द्वारा काम को दीप्त कर रहा था, वन्य पुष्प के समान उनके गले का हार मनोहर था ॥१८०॥ घूमती हुयी हजारों भ्रमरियाँ जिसका सेवन कर चुकी हैं ऐसे देव पुष्पों से निर्मित माला से जिनका पीताम्बर और उत्तरीय सुशोभित हो रहा था ॥१८१॥ मोती के हार से देदीप्यमान वक्ष:स्थल कौस्तुभमणि से सुशोभित था, श्रीवत्सचिह्न से तथा घुटनों तक लटकने वाली भुजाओं से मनोहर ॥१८२॥ जिनकी नाभि गहरी थी तथा कमर सिंह की कमर के समान पतली थी सुन्दर वृक्ष के समान सद्वृत्ता था तथा मनोहर सटे हुए घुटनों वाले ॥१८३॥ कङ्कण, अङ्गद तथा नूपुर आदि श्रेष्ठ भूषणों से भूषित जिनके दोनों नितम्ब पीताम्बर से आच्छादित था ॥१८४॥ अपने सौन्दर्य के द्वारा करोड़ों कामदेव की शोभा को तिरस्कृत करने वाले, वंशीपर गाये गये मनोहर गीतों के रागों द्वारा त्रैलोक्य को मोहित करने वाले और आनन्द सागर में निमग्न करने वाले, प्रत्येक अङ्गों में कामावेश को धारण करने

अन्यत्क्रीडाभवं यद्यत्तत्सर्वं च पृथक्पृथक् । रसालं विविधं यन्त्रं कलयन्तीभिरादरात्॥१८८॥
यथास्थाननियुक्ताभिः पश्यन्तीभिस्तदिङ्गितम् ।
तन्मुखाम्भोजदत्ताक्षि चञ्चलाभिरनुक्रमात् ॥१८९॥
श्रीमत्या राधिकादेव्या वामभगे ससंभ्रमम् । आराधयन्त्या ताम्बूलमर्पयन्त्या शुचिस्मितम्॥१९०।
समालोक्यार्जुनीयाऽसौ मदनावेशविह्वला ।
ततस्तां च तथा ज्ञात्वा हृषीकेशोऽपि सर्ववित् ॥१९१॥
तस्याः पाणिं गृहीत्वैव सर्वक्रडावनान्तरे । यथाकामं रहो रेमे महायोगेश्वरो विभुः ॥१९२॥
ततस्तस्याः स्कन्धदेशे प्रदत्तभुजपल्लवः । आगत्य शारदां प्राह पश्चिमेऽस्मिन्सरोवरे ॥१९३॥
शीघ्रं स्नापय तन्वङ्गीं क्रीडाश्रान्तां मृदु स्मिताम् ।
ततस्तां शारदादेवी तस्मिन्क्रीडासरोवरे ॥१९४॥
स्नानं कुर्वित्युवाचैनां सा च श्रान्तातथाऽकरोत् ।
जलाभ्यन्तरमाप्ताऽसौपुनरर्जुनतांगता ॥१९५॥
उत्तस्थौ यत्र देवेशः श्रीमद्वैकुण्ठनायकः । दृष्ट्वा तमर्जुनं कृष्णो विषण्णं भग्नमानसम्॥१९६॥
मायया पाणिना स्पृष्ट्वा प्रकृतं विदधे पुनः ॥१९७॥

श्रीकृष्ण उवाच

धनञ्जयत्वामाशंसे भवान्प्रियसखो मम । त्वत्समो नास्तिमेकोऽपिरहो वेत्ता जगत्त्रये ॥१९८॥
यद्रहस्यं त्वया पृष्टमनुभूतं च तत्पुनः । कथ्यते यदि तत्कस्मै शपसे मां तदाऽर्जुन ॥१९९॥

वाले तथा रास के रस से आलस्य युक्त; ॥१८५-१८७॥ चामर, व्यजन, माला, गन्ध, चन्दन, ताम्बूल, दर्पण, मानपात्र तथा चर्वित पात्र ॥१८८॥ तथा क्रीड़ा के लिए उपयोगी सारी चीजें अलग-अलग तथा रसमय अनेक यन्त्रों को आदर पूर्वक धारण करने वाले श्रीभगवान् के मुख कमल को देखने वाली चञ्चल रमणियों के द्वारा क्रमशः सेवित ॥१८९॥ श्रीमती राधा देवी जिनके वामभाग में विराजमान होकर जिनकी आराधना करती थीं, और मन्दमुसुकान पूर्वक जिनको ताम्बूल समर्पित करती थी ॥१९०॥ उन श्रीभगवान् को देखकर यह अर्जुन कामार्त हो गयी । उसके बाद उसको वैसी जानकर सर्वज्ञ श्रीभगवान् भी ॥१९१॥ उसके हाथ को पकड़कर सर्वक्रीडा वन में प्रवेश करके महायोगेश्वर श्रीहरि अपनी इच्छा के अनुसार उसके साथ रमण किए ॥१९२॥ उसके पश्चात् उसके कन्धे पर अपना हाथ रखकर आये और शारदा से कहे कि पश्चिम सरोवर में मनोहर मुसुकान करने वाली तथा क्रीड़ा से थकी हुयी इसको शीघ्र स्नान कराओ । उसके बाद शारदा देवी ने उसको उस क्रीड़ा सरोवर में स्नान करो यह कहा और थकी हुयी उसने भी वैसा ही किया । जल के भीतर जाकर वह फिर अर्जुन हो गयी ॥१९३-१९५॥ अर्जुन वहाँ आये जहाँ पर श्रीवैकुण्ठ नाथ थे । उदास तथा भग्न मन वाले अर्जुन को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने ॥१९६॥ माया पूर्वक अपने हाथ से अर्जुन का स्पर्श करके उसे प्राकृत बना दिया ॥१९७॥ **श्रीकृष्ण ने कहा—** अर्जुन मैं तुमसे कहता हूँ आप मेरे प्रिय मित्र हों । तुम्हारे समान मेरे रहस्य को जानने वाला त्रैलोक्य में कोई भी नहीं है ॥१९८॥ तुमने जिस रहस्य को पूछा था उसका तुमने अनुभव भी कर लिया । इस बात को यदि किसी को बतलाओगे तो तुम मेरी निन्दा करोगे ॥१९९॥ **सनत्कुमार महर्षि ने कहा—** इस तरह से श्रीभगवान् की

सनत्कुमार उवाच

इति प्रसादमासाद्य शपथैर्जातनिर्णयः। ययौ हृष्टमनास्तस्मात्स्वधामाद्भुतसंस्मृतिः ॥२००॥
इति ते कथितं सर्व रहो यज्ञोचरं मम। गोविन्दस्य तथा चास्मै कथने शपथस्तव॥२०१॥

ईश्वर उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य सिद्धिमौपगविर्गतः। नरनारायणावासं वृन्दारण्यमुपाव्रजत्॥२०२॥
तत्रास्तेऽद्यापि कृष्णस्य नित्यलीलाविहारवित् ।
नारदेनापि पृष्टोऽहं नाब्रवं तद्रहस्यकम् ॥२०३॥
प्राप्तं तथापि तेनेदं प्रकृतित्वमुपेत्य च। तुभ्यं यत्तु मया प्रोक्तं रहस्यं स्नेहकारणात्॥२०४॥
तन्न कस्मैचिदाख्येयं त्वया भद्रे स्वयोनिवत् ।
इमं श्रीभगवद्भक्तमहिमाध्यायमद्भुतम् ॥२०५॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि स रतिं विन्दते हरौ ॥२०६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पातालखण्डेऽर्जुन्यनुनयो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

* * *

कृपा को प्राप्त करके तथा शपथों के द्वारा निर्णय करके अर्जुन प्रसन्नता पूर्वक अद्भुत सस्मरण के साथ अपने धाम में चले गये ॥२००॥ इस तरह से मैंने आपको इस रहस्य को बतलाया जो मुझको ज्ञात है। तुमको भी शपथ है कि गोविन्द के इस रहस्य को तुम किसी को नहीं बतलाना ॥२०१॥ **महादेवजी ने कहा—** इस बात को सुनकर उपगव के पुत्र उद्धवजी नर-नारायण के निवास स्थान वृन्दावन में चले गये॥२०२॥ भगवान् के नित्य लीला विहार के ज्ञाता वहीं पर वे आज भी हैं ॥२०३॥ नारदजी के द्वारा पूछे जाने पर भी मैंने उन्हे इस रहस्य को नहीं बतलाया था ॥२०४॥ फिर भी नारदजी ने प्रकृतित्व को प्राप्त करके इस रहस्य को जान लिया । तुम्हें मैंने प्रेम के कारण इस रहस्य को बतलाया है ॥२०५॥ हे भद्रे ! तुम्हें इस रहस्य को किसी को नहीं बतलाना चाहिए इसको आपनी योनि के समान छिपाये रहना चाहिए । यह अध्याय भगवद् भक्त की महिमा से युक्त है ॥२०६॥ इसको जो कोई भी पढ़ता अथवा सुनता है उसकी श्रीहरि में भक्ति होती है ॥२०७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के अर्जुन अनुनय नामक चौहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७४॥

* * *

पचहत्तरवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

वृन्दावनरहस्यं च बहुधा कथितं विभो। केन पुण्यविशेषेण नारदः प्रकृतिं गतः ॥१॥

ईश्वर उवाच

एकदाश्चर्यवृत्तान्तं मया जिज्ञासितं पुरा। ब्रह्मणा कथितं गुह्यं श्रुतं कृष्णमुखाम्बुजात् ॥२॥
नारदः पृष्टवान्मह्यं तदाऽहं प्रोक्तवानिदम्। अहं वक्तुं न शक्नोमि तन्माहात्म्यं कथञ्चन॥३॥
किं कुर्वे शपनं तस्य स्मृत्वा सीदामि मानसे ।
इति श्रुत्वा मम वचो दुर्मनाः सोऽभवद्यदा ॥४॥
तदा ब्रह्माणमाहूय अहमादिष्टवान्प्रिये। त्वया यत्कथितं मह्यं नारदाय वदस्व तत् ॥५॥
ब्रह्मा तदा मम वचो निशम्य सह नारदः । जगाम कृष्णासविधं नत्वा पृच्छत्तदेव तु ॥६॥

ब्रह्मोवाच

किमिदं द्वात्रिंशद्वनं वृन्दारण्यं विशांपते ! । श्रोतुमिच्छामि भगवन्यदि योग्योऽस्मि मे वद ॥७॥

श्रीभगवानुवाच

इदं वृन्दावनं रम्यं मम धामैव केवलम्। यत्रेमे पशवः साक्षाद्वृक्षाः कीटा नरामराः ॥८॥
ये वसन्ति ममान्त्येते मृता यान्ति ममान्तिकम् ।
अत्र या गोपपत्न्यश्च निवसन्ति ममालये ॥९॥
योगिन्यस्तास्तु एवं हि मम देवाः परायणाः ।
पञ्चयोजनमेवं हि वनं मे देवरूपकम् ॥१०॥

नारदजी को स्त्रीत्व की प्राप्ति

पार्वतीजी ने कहा— हे प्रभो ! आपने वृन्दावन के अनेक प्रकार के रहस्यों को बतलाया है । किस पुण्य विशेष के कारण नारदजी प्रकृति को प्राप्त कर लिए ॥१॥ **महादेवजी ने कहा**— एक बार मेरी इस आश्चर्य वृत्तान्त को जानने की इच्छा हुयी तो भगवान् श्रीकृष्ण के मुख कमल से सुने हुए उस रहस्य को मुझे ब्रह्माजी ने बतलाया ॥२॥ नारदजी ने मुझसे उसके विषय में पूछा तो मैंने कहा कि उसके महात्म्य को मैं किसी भी हालत में नहीं कह सकता हूँ ॥३॥ मैं क्या करूँ ? उसके विषय में शाप को याद करके मैं अपने मन में दुःखी हूँ । मेरी इस बात को सुनकर नारदजी दुःखी हो गये ॥४॥ हे प्रिये ! उस समय ब्रह्माजी को बुलाकर मैंने आदेश दिया कि आपने जो मुझे रहस्य बतलाया है । उसको नारद को बतला दें ॥५॥ नारदजी के साथ ब्रह्माजी मेरी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण के सन्निकट जाकर उनको नमस्कार करके उसके विषय में पूछे ॥६॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— यह बत्तीस वनों वाला वृन्दावन क्या है ? हे भगवन्! यदि मेरी योग्यता हो तो उसे आप मुझे बतलायें ॥७॥ **श्रीभगवान् ने कहा**— यह मनोहर वृन्दावन केवल मेरा धाम है । वहाँ पर रहने वाले वृक्ष, पशु, कीड़े तथा मनुष्य ये सबके सब देवता हैं॥८॥ जो यहाँ रहते हैं, वे मृत्यु के बाद मेरे पास जाते हैं । इस मेरे गृह में जो गोपियाँ रहती हैं ॥९॥

कालिन्दीयं सुषुम्नाख्या परमामृतवाहिनी। यत्र देवाश्च भूतानि वर्तन्ते सूक्ष्मरूपतः ॥११॥
सर्वतो व्यापकश्चाहं न त्यक्ष्यामि वनं क्वचित् ।
आविर्भावस्तिरोभावो भवेदत्र युगेयुगे ॥१२॥
तेजोमयमिदं स्थानमदृश्यं चर्मचक्षुषाम्। रहस्यं मे प्रभावञ्च पश्य वृन्दावनं युगे ॥
ब्रह्मादीनां देवतानां न दृश्यं तत्कथञ्चन ॥१३॥

ईश्वर उवाच

तच्छ्रुत्वा नारदो नत्वा कृष्णं ब्रह्माणमेव च ।
आजगाम ह भूलोके मिश्रकं नैमिषवनम् ॥१४॥
तत्रासौ सत्कृतश्चापि शौनकाद्यैर्मुनीश्वरैः। पृष्टश्चाप्यागतो ब्रह्मन्कुतस्त्वमधुना वद ॥१५॥
तच्छ्रुत्वा नारदः प्राह गोलोकादागतोऽस्म्यहम् ।
श्रुत्वा कृष्णमुखाम्भोजाद् वृन्दावनरहस्यकम् ॥१६॥

नारद उवाच

तत्र नानाविधाः प्रश्नाः कृताश्चैव पुनः पुनः ।
समस्ता मनवास्तत्र योगाश्चैव मया श्रुताः ॥१७॥
तानेव कथयिष्यामि यथाप्रश्नं च तत्त्वतः ॥१८॥

शौनकादय ऊचुः

वृन्दारण्यरहस्यं हि यदुक्तं ब्रह्मणा त्वयि। तदस्माकं समाचक्ष्व यद्यस्मासु कृपा तव ॥१९॥

नारद उवाच

कदाचित्सरयूतीरे दृष्टोऽस्माभिश्च गौतमः। मनस्वी च महादुःखी चिन्ताकुलितचेतनः ॥२०॥
मां दृष्ट्वा गौतमो देवः पपात धरणीतले। उत्तिष्ठ वत्सवत्सेति तमुवाचाहमेव हि ॥२१॥

वे सबके सब योगिनियाँ हैं वे सब देवता मेरे भक्त हैं। पाँच योजन विस्तृत यह वन देव स्वरूप है ॥१०॥ यमुना अमृत वाहिनी सुषुम्ना नाड़ी हैं जिसमें सूक्ष्म रूप से सभी देवता और जीव व्यवहार करते हैं ॥११॥ मैं यहाँ सर्वत्र व्यापक हूँ कभी वृन्दावन का त्याग नहीं करता हूँ। यहाँ पर प्रत्येक युग में केवल आविर्भाव और तिरोभाव होता है। वह देवताओं आदि को किसी भी प्रकार नहीं दिखायी पड़ता है ॥१२-१३॥ **ईश्वर ने कहा**— उसको सुनकर नारदजी भूलोक में नैमिष नामक मिश्रक में आये ॥१४॥ वहाँ पर शौनक आदि महर्षियों ने उनका सत्कार किया। उन लोगों ने पूछा ब्रह्मन्! आप कहाँ से आ रहे हैं? उसे बतलायें॥१५॥ उसको सुनकर नारदजी ने कहा कि मैं गोलोक से भगवान् श्रीकृष्ण के मुख कमल से वृन्दावन का रहस्य जानकर आ रहा हूँ ॥१६॥ **नारदजी ने कहा**— वहाँ मैंने बार-बार उनसे अनेक प्रकार का प्रश्न किया। वहाँ पर मैंने सभी मन्त्रों और योगों को सुना ॥१७॥ मैं आपलोगों के प्रश्न के अनुसार ठीक-ठीक बतलाऊँगा ॥१८॥ **शौनकादि महर्षियों ने कहा**— ब्रह्माजी ने आपको जो वृन्दावन का रहस्य बतलाया है। यदि हमलोगों पर आपकी कृपा है तो आप हमलोगों को उसे बतलाइये ॥१९॥ **नारदजी ने कहा**— एक बार मैंने सरयू नदी के तट पर गौतम महर्षि को देखा। वे मनस्वी दुःखी तथा अत्यन्त चिन्तित थे॥२०॥ मुझको देखकर गौतम महर्षि मुझे साष्टाङ्ग प्रणाम किए। मैंने कहा वत्स! उठो उठो ॥२१॥ आप

कथं भवान्मनस्वीति प्रोच्यतां यदि रोचते ॥२२॥

गौतम उवाच

श्रुतं तव मुखादेव कृष्णतत्त्वं च तादृशम्। द्वारकाख्यं माथुराख्यं रहस्यं बहुशो मया ॥२३॥
वृंदावनरहस्यं तु नश्रुतं त्वन्मुखाम्बुजात्। यतो मे मनसः स्थैर्य्यं भविष्यति च सद्गुरो ॥२४॥

नारद उवाच

इदं तु परमं गुह्यं रहस्यातिरहस्यकम्। पुरो मे ब्रह्मणा प्रोक्तं तादृग्वृन्दावनोद्भवम् ॥२५॥
रहस्यं वद देवेश ! वृण्दारण्यस्य मे पितः ! ।
इति जिज्ञासितं श्रुत्वा क्षणं मौनी स चाभवत् ॥२६॥
ततोमाऽऽह महाविणुं गच्छ वत्सप्रभुं मम। मयाऽपि तत्र गन्तव्यं त्वया सह न संशयः ॥२७॥
इत्युक्त्वा मां गृहीत्वा च गतो विष्णोश्च धामनि ।
महाविष्णौ च कथितं मयोक्तं यत्तदेव हि ॥२८॥
तच्छ्रुत्वा च महाविष्णुः स्वयम्भुवमथादिशत् ।
त्वमेवादेशतो मह्यं नीत्वा वै नारदं मुनिम् ॥२९॥
स्नानाय विनियुङ्क्ष्वामुं सरस्यमृतसंज्ञके। महाविष्णुसमादिष्टः स्वयम्भूर्मा तथाऽकरोत् ॥३०॥
तत्रामृतसरश्चाहं प्रविश्य स्नानमाचरम्। तत्क्षणात्तत्सरः पारे योषितं सविधेऽभवम् ॥३१॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना योषिद्रूपातिविस्मिता। मां दृष्ट्वा ताः समायान्तीमपृच्छंश्च मुहुर्मुहुः ॥३२॥

स्त्रिय ऊचुः

का त्वं कुतः समायाता कथमात्मविचेष्टितम् ।
तासां प्रियकथां श्रुत्वा मयोक्तं तन्निशामय ॥३३॥

बतलायें कि आप मनस्वी दुःखी क्यों हैं ?॥२२॥ **गौतम महर्षि ने कहा—** मैंने आपके मुख से हर प्रकार के कृष्ण तत्त्व का श्रवण किया है । द्वारका और मथुरा के अनेक प्रकार के रहस्यों को भी मैंने सुना है॥२३॥ मैंने आपके मुख कमल से वृन्दावन के रहस्य को नहीं सुना है । हे सद्गुरो ! जिससे कि मेरा मन स्थिर हो सके ॥२४॥ **नारदजी ने कहा—** यह रहस्य अत्यन्त गोपनीय है । वृन्दावन के उस रहस्य को मैंने ब्रह्माजी से सुना है ॥२५॥ मैंने उनसे कहा पिताजी आप मुझे वृन्दावन के रहस्य को बतलाइये। मेरी इस जिज्ञासा को सुनकर ब्रह्माजी क्षणभर के लिए मौन हो गये ॥२६॥ उसके बाद उन्होंने मुझसे कहा कि वत्स ! तुम मेरे स्वामी महाविष्णु के पास जाओ । मैं भी तुम्हारे साथ वहाँ चलूँगा इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥२७॥ मुझको लेकर ब्रह्माजी भगवान् विष्णु के धाम में गये और भगवान् महाविष्णु से उसी प्रश्न को किए जो मैंने पूछा था ॥२८॥ उसको सुनकर महाविष्णु ने ब्रह्माजी से कहा इस नारदमुनि को लेकर आप मेरे आदेशानुसार ॥२९॥ अमृत सरोवर में स्नान करायें । भगवान् विष्णु की आज्ञा से ब्रह्माजी ने मुझे स्नान कराया ॥३०॥ उस अमृत सरोवर में प्रवेश करके मैंने स्नान किया उसी समय मैं उस सरोवर के तट पर स्त्री हो गया ॥३१॥ सभी लक्षणों से सम्पन्न मेरे स्त्री रूप को देखकर तथा उनके सन्निकट आती हुयी मुझको देखकर मुझसे वहाँ पर विद्यमान उन स्त्रियों ने बार-बार पूछा ॥३२॥ **स्त्रियों**

कुतः कोऽहं समायातः कथं वा योपिदाकृतिः ।
स्वप्नवद् दृश्यते सर्वं किं वा मुग्धोऽस्मि भूतले ॥३४॥
तच्छुत्वा मद्वचो देवी प्रोवाचमधुरस्वनैः । वृन्दा नाम्नी पुरी चेयं कृष्णचन्द्रप्रियासदा ॥३५॥
अहं च ललितादेवी तुर्यातीता च निष्कला। इत्युक्त्वाच महादेवी करुणासान्द्रमानसा ॥३६॥
मां प्रत्याह पुनर्देवी समागच्छ मया सह । अन्याश्च योपितः सर्वाः कृष्णपादपरायणाः ॥३७॥
ताश्च मां प्रवदन्त्येवं समागच्छानया सह । ततोऽनुकृष्णचन्द्रस्य चतुर्दशाक्षरो मनुः ॥३८॥
कृपया कथितस्तस्या देव्याश्चापि महात्मनः। तत्क्षणादेव तत्साम्यमलभं विवियोपमा ॥३९॥
ताभिः सह गतास्तत्र यत्र कृष्णः सनातनः ।
केवलं सच्चिदानन्दः स्वयं योपिन्मयः प्रभुः ॥४०॥
योषिदानन्दहृदयो दृष्ट्वा मां प्राब्रवीन्मुहुः ।
समागच्छ प्रिये ! कान्ते ! भत्तया मां परिरम्भय ॥४१॥
रेमे वर्षप्रमाणेन तत्र चैव द्विजोत्तम ! । तदोक्तं रमणेशेन तां देवीं राधिकां प्रति ॥४२॥
इयं मे प्रकृतिस्तत्र चासीन्नारदरूपधृत् । नीत्वाऽमृतसरो रम्यं स्नानार्थं सन्नियोजय॥४३॥
तया मे रमणस्यान्ते गदितं प्रियभाषितम् । अहं च ललिता देवीं राधिका या च गीयते॥४४॥
अहं च वासुदेवाख्यो नित्यं कामकलात्मकः ।
सत्यं योपित्स्वरूपोऽहं योषिच्चाहं सनातनी ॥४५॥
अहं च ललिता देवी पुंरूपा कृष्णविग्रहा । आवयोरन्तरं नास्ति सत्यं सत्यं हि नारद ॥४६॥

ने कहा— तुम कौन हो ? कहाँ से आयी हो ? तुम्हारी ऐसी चेष्टाएँ क्यों हैं ? उन सबों की मनोहर बातों को सुनकर मैंने कहा— मैं कहा से आया हूँ ? कौन हूँ ? मेरा स्त्री का आकार क्यों हो गया ? ये सारी बातें मुझे स्वप्न के समान प्रतीत होती हैं । अथवा मैं पृथिवी पर मोहित हो गया हूँ ॥३३-३४॥ मेरी उस वाणी को सुनकर देवी ने मधुर वाणी में कहा— यह पहले वृन्दा नाम की नगरी है । यह सदा कृष्णचन्द्र की प्रियतमा है ॥३५॥ मैं तुर्यातीत तथा अखण्ड ललिता देवी हूँ । इस तरह से करुणाक्रान्त मन वाली महादेवी ने कहा ॥३६॥ उसके बाद देवी ने मुझसे कहा कि तुम मेरे साथ आओ । दूसरी नारियाँ भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ता हैं ॥३७॥ उन सबों ने मुझसे कहा कि इसके साथ तुम जाओ । उसके वाद भगवान् श्रीकृष्ण तथा देवी का चौदह अक्षरों वाला मन्त्र मुझको बतलाया गया । उसी क्षण मैं अनेक प्रकार से उनके समान हो गया ॥३८-३९॥ उन सबों के साथ मैं सनातन भगवान् श्रीकृष्ण के पास गया । सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीभगवान् स्वयं स्त्री स्वरूप थे ॥४०॥ योषित आनन्द से युक्त हृदय वाले भगवान् ने मुझे बार-बार कहा प्रिये ! कान्ते आओ और भक्ति पूर्वक मेरा आलिङ्गन करो ॥४१॥ वे मेरे साथ एक वर्ष तक रमण करते रहे । उसके बाद रमणेश श्रीभगवान् ने राधिकाजी से कहा ॥४२॥ यह मेरी नारदरूपधारिणी प्रकृति है । इसको ले जाकर अमृत सरोवर में स्नान कराओ ॥४३॥ उस देवी ने श्रीभगवान् के सन्निकट कहा मैं ललिता देवी हूँ, मैं ही राधिका कहलाती हूँ ॥४४॥ मैं कमला स्वरूप वासुदेव हूँ । मैं सत्य, स्त्री स्वरूप हूँ और मैं सनातनी योषित (स्त्री) हूँ ॥४५॥ मैं ललिता देवी हूँ पुरुष रूप में मैं कृष्णशरीर वाली हूँ । नारद यह बिल्कुल सत्य है कि हमदोनों में कोई भेद नहीं है ॥४६॥ जो व्यक्ति मेरे तत्त्व, मेरी प्रतिज्ञा

एवं यो वेत्ति मे तत्त्वं समयं च तथा मनुम् ।
ससमाचारसङ्केतं ललितावत्स मे प्रियः ॥४७॥
इदं वृन्दावनं नाम रहस्यं मम वै गृहम् ।
न प्रकाश्यं कदा कुत्र वक्तव्यं न पशौ क्वचित् ॥४८॥
ततोऽनु राधिका देवी मां नीत्वा तत्सरोवरे ।
स्थित्वा सा कृष्णचन्द्रस्य चरणान्ते गता पुनः ॥४९॥
ततो निमज्ज्नादेव नारदोऽहमुपागतः। वीणाहस्तो गानपरस्तद्रहस्यं मुहुर्मुदा ॥५०॥
स्वयम्भुवं नमस्कृत्य तत्रागां विष्णुपार्षदम् । स्वयम्भुवा तथा दृष्टं नोक्तं किञ्चित्तदा पुनः ॥५१॥
इति ते कथितं वत्स ! सुगोप्यं च मया त्वयि ।
त्वयाऽपि कृष्णचन्द्रस्य केवलं धाम चित्कलम् ॥५२॥
गोपनीयं प्रयत्नेन मातुर्जार इव प्रियम्। यथा प्रोक्तं मया शिष्ये गौतमे सरहस्यकम् ॥५३॥
तथा भवत्सु कात्स्न्येंन कथितं चातिगोपितम् ।
यत्र कुत्र कदाचित्तु न प्रकाश्यं मुनिपुङ्गवाः ॥५४॥
तदा शापो भवेद्विप्राः कृष्णचन्द्रस्य निश्चितम् ।
इमं कृष्णस्य लीलाभिर्युतमध्यायमुत्तमम् ॥५५॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि य याति परमं पदम् ॥५६॥

इति श्रीपद्मपहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वृन्दावनमाहात्म्ये नारदीयानुनयो नाम
पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

* * *

और मेरे मन्त्र तथा समाचार सङ्केत को जानता है, हे वत्स ! वह मेरा और ललिता का प्रिय है ॥४७॥ यह रहस्यमय वृन्दावन मेरा गृह हैं । इस वात को कभी किसी पशु (जीव) को नहीं बतलाना.॥४८॥ उसके वाद राधिका देवी मुझको लेकर उस सरोवर पर लाकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों के सन्निकट चली गयीं॥४९॥ उसके वाद स्नान करते मैं नारद हो गया और हाथ में वीणा लेकर उस रहस्य का प्रसन्नता पूर्वक गान करने लगा ॥५०॥ व्रह्माजी को नमस्कार करके मैं भगवान् विष्णु के पार्षद के पास में गया । यह देखकर व्रह्माजी कुछ नहीं कहे ॥५१॥ वत्स ! मैंने अत्यन्त गोपनीय रहस्य को तुम्हें वतलाया है तुम भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के इस ज्ञान स्वरूप तेज को माता के प्रिय जार के समान गोपनीय ही रखना । जिस तरह से मैंने अपने प्रिय शिष्य गौतम को इसका उपदेश दिया था । उसी तरह से मैंने आपलोगों को अत्यन्त गोपनीय रहस्य को वतलाया है । मुनि श्रेष्ठों ! इसका सर्वत्र प्रकाशन नहीं करना चाहिए ॥५२-५४॥ अन्यथा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का शाप लगेगा यह निश्चित है । यह अध्याय भगवान् कृष्णचन्द्र की लीलाओं से युक्त है । जो इसको पढ़ता अथवा सुनता है वह परम पद को प्राप्त करता है ॥५५-५६॥

इस तरह श्रीपद्मपहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के वृन्दावन माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में नारदजी के अनुभव वर्णन नामक पचहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७५॥

* * *

छिहत्तरवाँ अध्याय

ईश्वर उवाच

अत्र शिशुपालं निहतं श्रुत्वा दन्तवक्त्रः कृष्णेन योद्धुं मथुरामाजगाम ॥१॥ कृष्णस्तु तच्छ्रुत्वा रथमारुह्य तेन सह मथुरामाययौ ॥२॥ अथ तं हत्वा यमुनामुत्तीर्य नन्दव्रजं गत्वा पितरावभिवाद्याश्वास्य ताभ्यामालिङ्गितःसकलगोपवृद्धान्परिष्वज्य तानाश्वास्य वहुवस्त्राभरणादिभिस्तत्रस्थान्सर्वान्सन्तर्पयामास॥३॥ कालिन्द्याः पुलिने रम्ये पुण्यवृक्षसमाकीर्णे गोपस्त्रीभिरहर्निशं क्रीडासुखेन त्रिरात्रं तत्र समुवास॥४॥ तत्र स्थले नन्दगोपादयः सर्वे जनाः पुत्रदार सहिताः पशु-पक्षि-मृगादयोऽपि-वासुदेव-प्रसादेन दिव्यरूपधरा विमानसमारूढाः परमं लोकं वैकुण्ठमवापुः ॥५॥ श्रीकृष्णस्तु नन्दगोपव्रजौकसां सर्वेषां निरामयं स्वपदं दत्त्वा देवगणैः स्तूयमानः श्रीमतीं द्वारावतीं विवेश ॥६॥ तत्र वसुदेवोग्रसेन-सङ्कर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्धाक्रूरादिभिः प्रत्यहं सम्पूजितः षोडशसहस्राष्टाधिकमहिषीभिश्च विश्वरूपधरो दिव्यरत्नमयलता गृहान्तरेषु सुरतरु-कुसुमाचित-श्लक्ष्णतर-पर्यङ्केषु रमयामास ॥७॥ एवं हितार्थाय सर्वदेवानां समस्तभूभारविनाशाय यदुवंशेऽवतीर्य सकलराक्षसविनाशं कृत्वा महान्तमुर्वीभारं नाशयित्वा नन्दव्रजद्वारिकावासिनः स्थावर-जङ्गमान्भवबन्धनान्मोचयित्वा परमे शाश्वते योगिध्येये रम्ये धाम्नि संस्थाप्य नित्यं दिव्यमहिष्यादिभिःसंसेव्यमानो वासुदेवोऽखिलेषूवाच ॥८॥

भगवान् श्रीकृष्ण का गद्यमय संक्षिप्त चरित

श्रीमहादेवजी ने कहा— शिशुपाल के वध का समाचार सुनकर दन्तवक्त्र युद्ध करने के लिए आया। भगवान् कृष्ण भी उसके साथ युद्ध करने के लिए रथ पर चढ़कर मथुरा आये ॥१॥ उसके बाद उसको मार कर यमुना को पार करके भगवान् नन्दवन में गये । वहाँ अपने माता-पिता (नन्द-यशोदा) को प्रणाम करके तथा उन दोनों को आश्वासन प्रदान करके, उन दोनों के द्वारा आलिङ्गित होने के बाद सभी गोप वृद्धों का आलिङ्गन करके तथा उन लोगों को आश्वासन प्रदान करके वहाँ के सभी लोगों को उन्होंने अनेक प्रकार के वस्त्रों एवं अलङ्कारों से सन्तुष्ट किया ॥२-३॥ वृक्षों से भरे हुए यमुना के मनोहर तट में गोपियों के साथ रात-दिन क्रीड़ा सुख का अनुभव करते हुए वहाँ तीन रात्रियों तक उन्होंने निवास किया॥४॥ वहाँ पर नन्दगोप आदि सभी लोग अपने पुत्रों तथा पत्नियों आदि के साथ पशु, पक्षी तथा मृग आदि भी भगवान् वासुदेव की कृपा से विमान पर आरूढ होकर दिव्य रूप धारण करके परमपद वैकुण्ठ लोक में चले गये ॥५॥ भगवान् श्रीकृष्ण नन्दगोप व्रज में रहने वाले सभी लोगों को निरामय (व्याधि रहित) अपना पद प्रदान करके, देवताओं द्वारा स्तुति किए जाते हुए द्वारका में चले गये ॥६॥ वहाँ पर वासुदेव, उग्रसेन, संकर्षण (बलरामजी) प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अक्रूर आदि से प्रतिदिन पूजित होते हुए सोलह हजार आठ रानियों के साथ विश्वरूप धारण करके दिव्य रत्नमय लता गृहों में देव वृक्षों के पुष्पों से परिपूर्ण मृदु पर्यङ्कों पर रमण करते रहे ॥७॥ इस तरह देवताओं का कल्याण करने के लिए तथा सम्पूर्ण पृथिवी के भार को विनष्ट करने के लिए यदुवंश में अवतार लेकर सभी राक्षसों का विनाश करके, पृथिवी के महान भार का नाश करके, नन्दव्रज तथा द्वारका में रहने वाले स्थावरों तथा जङ्गम जीवों को संसार के बन्धन से मुक्त करके, योगिजन जिस का ध्यान करते हैं उस शाश्वत परमधाम में उन सबों को स्थापित करके सदा दिव्य महिषी

असीदव्याकृतं व्रह्मकरकाघृतयोरिव । प्रकृतिस्थो गुणान्मुक्तो द्रवीभूत्वा दिवं गतः ॥९॥

इति श्रीपद्मपुराणे पञ्चमें पातालखण्डे वृन्दावनमाहात्म्ये पार्वतीशिवसंवादे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

* * *

सतहत्तरवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

विस्तरेण समाचक्ष्व नामार्थपदगौरवम् । ईश्वरस्य स्वरूपं च तत्स्थानानां विभूतयः ॥१॥
तद्विष्णोः परमं धाम व्यूहभेदास्तथा हरेः । निर्वाणाख्याहि तत्त्वेन मम सर्वं सुरेश्वर ॥२॥

ईश्वर उवाच

सारे वृन्दावने कृष्णं गोपीकोटीभिरावृतम् । तत्र गङ्गा पराशक्तिस्तत्स्थमानन्दकाननम् ॥३॥
नानासुकुसुमामोदसमीरसुरभीकृतम् । कलिन्दतनयादिव्यतरङ्गरागशीतलम् ॥४॥
सनकाद्यैर्भागवतैः संसृष्टं मुनिपुङ्गवैः । आह्लादिमधुरारावैर्गोवृन्दैरभिमण्डितम् ॥५॥
रम्यस्त्रग्भूषणोपेतैर्नृत्यद्भिर्बालकैर्वृतम् । तत्र श्रीमान्कल्पतरुर्जाम्बूनदपरिच्छदः ॥६॥
नानारत्नप्रवालाढ्यो नानामणिफलोज्ज्वलः । तस्य मूले रत्नवेदीरत्नदीधितिदीपिता ॥७॥
तत्र त्रयीमयं रत्नसिंहासनमनुत्तमम् । तत्रासीनं जगन्नाथं त्रिगुणातीतमव्ययम् ॥८॥

आदि से सेवित होते हुए भगवान् वासुदेव सबों में निवास किए ॥८॥ अव्याकृत व्रह्मा करका (भोला) और घृत के समान प्रकृति में रहकर भी प्रकृति के गुणों से रहित रहे । वे द्रवीभूत होकर परंपद चले गये ॥९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के वृन्दावन माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में शिव पार्वती संवाद वर्णन नामक छिहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७६॥

* * *

श्रीकृष्ण तीर्थ का वर्णन

पार्वतीजी ने कहा— हे सुरेश्वर ! आप मुझे ईश्वर (परमात्मा) के नाम का अर्थ और पद की महिमा, स्वरूप, स्थान, विभूति, भगवान् विष्णु के परम धाम, व्यूहों के भेद, तथा निर्वाण को विस्तार से बतलायें ॥१-२॥ **श्रीमहादेवजी ने कहा—** सम्पूर्ण वृन्दावन कृष्ण तथा उनकी एक करोड़ गोपियों से भरा है । वहाँ पर गङ्गा नाम की पराशक्ति है । उस स्थान का नाम आनन्दकानन हैं ॥३॥ अनेक सुन्दर पुष्पों की सुगन्धि से परिपूर्ण वायु से वह (वृन्दावन) सुगन्धित हैं । यमुना नदी दिव्य तरङ्गों की ध्वनि से शीतल बनी है ॥४॥ वह सनकादिक श्रेष्ठ महर्षियों से संसृष्ट है । आह्लादक मधुर ध्वनि करने वाली जो समूह से वह अलंकृत है ॥५॥ मनोहर माला तथा भूषण से युक्त नृत्य करते हुए बालकों से वह घिरा हुआ है । उस पर विद्यमान कल्पवृक्ष की शाखायें आदि सुवर्णमय हैं ॥६॥ वह अनेक रत्नों तथा प्रवालों से भरा है तथा वह अनेक प्रकार के मणि रूपी फलों से देदीप्यमान है । उसकी जड़ में रत्न निर्मित वेदी रत्नों की

कोटिचन्द्रप्रतीकाशं कोटिभास्करभास्वरम् । कोटिकन्दर्पलावण्यं भासयन्तं दिशोदश ॥९॥
त्रिनेत्रं द्विभुजं गौरंतप्तजाम्बूनदप्रभम् । शिलष्यमाणामङ्गनाभिः सुदामानं च सर्वशः ॥१०॥
ब्रह्माद्यैः सनकाद्यैश्च ध्येयं भक्तवशीकृतम् । सदाघूर्णितनेत्राभिर्नृत्यन्तीभिर्महोत्सवैः ॥११॥
चुम्बन्तीभिर्हसन्तीभिः शिलष्यन्तीभिर्मुहुर्मुहुः । अवाप्तगोपीदेहाभिः श्रुतिभिः कोटिकोटिभिः ॥१२॥
तत्पादाम्बुजमाध्वीकचित्ताभिः परितोवृतम्। तासां तु मध्ये या देवी तप्तचामीकरप्रभा ॥१३॥
द्योतमाना दिशः सर्वाः कुर्वती विद्युदुज्ज्वलाः ।
प्रधानं या भगवती यया सर्वमिदं ततम् ॥१४॥
सृष्टिस्थित्यन्तरूपा या विद्याऽविद्या त्रयी परा ।
स्वरूपा शक्तिरूपा च मायारूपा च चिन्मया ॥१५॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां देहकारणकारणम् । चराचरं जगत्सर्वं यन्मायापरिरम्भितम् ॥१६॥
वृन्दावनेश्वरी नाम्ना राधा धात्राऽनुकारणात्। तामालिङ्ग्य वसन्तं तं मुदा वृन्दावनेश्वरम् ॥१७॥
अन्योन्यचुम्बनाश्लेषमदावेषविघूर्णितम् । ध्यायेदेवं कृष्णदेवं स च सिद्धिमवाप्नुयात् ॥१८॥
मन्त्रराजमिमं गुह्यं तस्य मन्त्रं च मन्त्रवित् । योजपेच्छृणुयाद्वाऽपि स महात्मा सुदुर्ल्लभः ॥१९॥
राधिका चित्ररेखा च चन्द्रा मदनसुन्दरी । श्रीप्रिया श्रीमधुमती शशिरेखा हरिप्रिया ॥२०॥

कान्ति से प्रकाशित होती है ॥७॥ वह त्रयी (ऋग, यजुःसाम) स्वरूप उत्तम रत्न सिंहासन है । उस पर त्रिगुणातीत (प्रकृति से परे) निर्विकार जगत् स्वामी बैठे हुए हैं ॥८॥ करोड़ों चन्द्रमा के समान (आह्लादक) तथा करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर वे दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हैं । उनके तीन नेत्र हैं, दो भुजाएँ हैं, तप्त सुवर्ण की कान्ति के समान उनकी कान्ति है । रमणियाँ तथा सुदामा आदि उनका आलिङ्गन करते हैं ॥९-१०॥ ब्रह्मा आदि तथा सनकादिक महर्षि उनका पूर्णरूप से ध्यान करते हैं । वे भक्तों के वशवर्ती हैं । जिनके नेत्र सदा सनकादिक महर्षि उनका पूर्णरूप से ध्यान करते हैं । वे भक्तों के वशवर्ती हैं । जिनके नेत्र सदा घूर्णित होते रहते हैं ऐसी नृत्य करने वाली नारियों के महोत्सवों से वे घिरे हैं । श्रुतियाँ गोपी का शरीर धारण करके हँसती हुयी उनकी चुम्बन करती हैं और बार-बार उनका आलिङ्गन करती हैं । इस तरह की करोड़ों श्रुतियाँ जिनका मन श्रीभगवान् के चरण कमलों के पराग में ही लगा रहता है, उन सबों से घिरे हुए हैं श्रीभगवान् उन सबों में तप्त सुवर्ण के समान कान्ति वाली जो देवी, जो विद्युत् के समान देदीप्यमान है तथा दशों दिशाओं को प्रकाशित करती है, जो सबों में प्रधान हैं तथा जिनसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है ॥११-१४॥ जो सृष्टि, स्थिति और संहार स्वरूपिणी हैं, जो विद्या तथा अविद्या स्वरूपिणी हैं जो त्रयी से परस्वरूपा हैं, जो शक्ति रूपिणी, माया रूपिणी तथा ज्ञान स्वरूपिणी हैं ॥१५॥ जो ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि के देह को धारण करने के कारण स्वरूपिणी है, सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् जिनकी माया का परिणाम है, जो वृन्दावन की स्वामिनी हैं, उनका नाम राधा है । परमात्मा के द्वारा अनुकरण किए जाने के कारण वृन्दावन के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण सदा उनका आलिङ्गन किए रहते हैं ॥१६-१७॥ एक दूसरे के आलिङ्गन और चुम्बन जन्य मद के आवेश से घूर्णित होते रहने वाले श्रीभगवान् कृष्ण है, इस तरह से उनका ध्यान करना चाहिए । इस तरह से ध्यान करने वाला सिद्धि को प्राप्त कर लेता है । जो मन्त्रज्ञ पुरुष इस रहस्यात्मक मन्त्र को जपता अथवा सुनता है, वैसा

सुवर्णशोभा संमोहा प्रेमरोमाञ्चराजिता। वैवर्ण्यस्वेदसंयुक्ता भावासक्ता प्रियंवदा ॥२१॥
सुवर्णमालिनी शान्ता सुरा सरसिका तथा। सर्वस्त्रीजीवनादीनवत्सला विमलाशया ॥२२॥
निपीतनामपीयूषा सा राधा परिकीर्तिता। सुदीर्घस्मितसंयुक्ता तप्तचामीकरप्रभा ॥२३॥
मूर्च्छत्प्रेमनदी राधा चरणालोचनाञ्जना। मायामात्सर्यसंयुक्ता दानसाम्राज्यजीवना ॥२४॥
सुरतोत्सवसङ्ग्रामा चित्ररेखा प्रकीर्तिता। गौराङ्गी नतिदीर्घा च सदावादनतत्परा ॥२५॥
दैन्यानुरागनटना मूर्च्छारोमाञ्चविह्वला। हरिदक्षिणपार्श्वस्था सर्वमन्त्रप्रिया तथा ॥२६॥
अनङ्गलोभमाधुर्या चन्द्रा सा परिकीर्तिता। सलीलमन्थरगतिर्मञ्जुमुद्रितलोचना ॥२७॥
प्रेमधारोज्ज्वलाकीर्णा दलिताञ्जनशोभना। कृष्णानुरागरसिका रासध्वनिसमुत्सुका ॥२८॥
अहङ्कारसमायुक्ता मुखनिन्दितचन्द्रमाः। मधुरालापचतुरा जितेन्द्रियशिरोमणिः ॥२९॥
सुन्दरस्मितसंयुक्ता सा वै मदनसुन्दरी। विविक्तरासरसिका श्यामाश्याममनोहरा ॥३०॥
प्रेम्णा प्रेमकटाक्षेण हरेश्चित्तविमोहिनी। जितेन्द्रिया जितक्रोधा सा प्रिया परिकीर्तिता ॥३१॥
सुतप्तस्वर्णगौराङ्गी लीलागमनसुन्दरी। स्मरोत्थप्रेमरोमाञ्च वैचित्रमधुराकृतिः ॥३२॥
सुन्दरस्मितसंयुक्तमुखनिन्दितचन्द्रमाः। मधुरालापचतुरा जितेन्द्रियशिरोमणिः ॥३३॥
कीर्तिता सा मधुमती प्रेमसाधनतत्परा। संमोहज्वररोमाञ्चप्रेमधारासमन्विता ॥३४॥

महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है ॥१८-१९॥ राधिका, चित्ररेखा, चन्द्रा मदनसुन्दरी, श्रीप्रिया, श्रीमधुमती, शशिरेखा, हरिप्रिया, सुवर्णशोभा, संमोहा, प्रेमरोमाञ्चराजिता, वैवर्ण्य तथा स्वेद से युक्त भावों में आसक्त रहने वाली प्रियम्वदा सुवर्णमालिनी, शान्ता, सुरा तथा सरसिका समस्तस्त्रीजीवना, दीनवत्सला, तथा विमल अन्तःकरण वाली जिसने नाम रूपी अमृत का पान कर लिया जिसको राधा कहते हैं, वे दीर्घ मुसुकान से युक्त हैं तथा उनकी कान्ति तप्त सुवर्ण की कान्ति के समान हैं ॥२०-२३॥ राधाजी प्रवाहित होने वाली नदी हैं तथा अपने काले नेत्रों से श्रीभगवान् के चरणों को देखा करती हैं । वे माया तथा मात्सर्य से युक्त हैं और दान साम्राज्य का जीवन हैं ॥२४॥ सुरतोत्सव संग्राम करने वाली चित्ररेखा कही गयी हैं । जो गौर वर्ण वाली है वे बहुत अधिक लम्बी नहीं हैं । वे सदा वाद्य बजाती रहती हैं ॥२५॥ दैन्य तथा अनुराग का जो अभिनय करती है, जो मूर्छा तथा रोमाञ्च से विह्वल बनी रहती हैं, जो श्रीहरि के दाहिने पार्श्व में बनी रहती हैं, जिनको सभी मन्त्र प्रिय हैं ॥२६॥ जिनमें काम के लोभ का माधुर्य बना रहता है, उनका नाम चन्द्रा है । जो लीला पूर्वक मन्दगति से चलती हैं, जिनके मनोहर नेत्र बन्द रहते हैं, प्रेम की धारा से जो देदीप्यमान हैं, जो अंजन की शोभा को तिरस्कृत करने वाली हैं जो भगवान् श्रीकृष्ण के अनुराग रूप रस के रसिक हैं, रस की ध्वनि के लिए जो उत्सुक बनी रहती है ॥२७-२८॥ जो अहङ्कार से युक्त तथा अपने मुख की शोभा से चन्द्रमा को भी तिरस्कृत करने वाली हैं; जो मधुर आलाप करने में चतुर था जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ हैं ॥२९॥ तथा जो सुन्दर ढंग से मुस्कुराती हैं उनका नाम मदनसुन्दरी है । जो ऐकान्तिक रास के प्रेमी हैं तथा श्यामा एवं श्याम के मन को आकृष्ट करने वाली हैं ॥३०॥ प्रेम पूर्वक कटाक्षपात के द्वारा जो श्रीहरि के चित्त को मोहित करती हैं जो इन्द्रियों तथा क्रोध पर विजय पा चुकी हैं, उनका नाम प्रिया हैं ॥३१॥ जो सतत् सुवर्ण के समान गोरे अङ्गों वाली हैं लीलापूर्वक चलती हैं, काम जन्य प्रेम के कारण उनके शरीर में रोमाञ्च होता रहता है, उनका अद्भुत मनोहर आकार है ॥३२॥ उनका सुन्दर मुस्कान से

दानधूलिविनोदा च रासध्वनिमहानटी । शशिरेखा च विज्ञेया गोपालप्रेयसी सदा॥३५॥
कृष्णात्मा सोत्तमा श्यामामधुपिङ्गललोचना । तत्पादप्रेमसंमोहात्क्वचित्पुलकचुम्बिता ॥३६॥
शिवकुण्डे शिवानन्दा नन्दिनी देहिकातटे। रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने॥३७॥
देवकीमथुरायां तु जाता मे परमेश्वरी । चन्द्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विन्ध्यनिवासिनी ॥३८॥
वाराणस्यां विशालाक्षी विमला पुरुषोत्तमे । वृन्दावनाधिपत्यं च दत्तं तस्यै प्रसीदता ॥३९॥
कृष्णेनान्यत्र देवी तु राधा वृन्दावने वने । नित्यानन्दतनुःशौरिर्योऽशरीति भाष्यते॥४०॥
वाय्वग्निनाकभूमीनामङ्गाधिष्ठितदेवता । निरूप्यते ब्रह्मणोऽपि तथा गोविन्दविग्रहः ॥४१॥
सेन्द्रियोऽपि यथा सूर्यस्तेजसा नोपलक्ष्यते । तथा कान्तियुतः कृष्णः कालं मोहयति ध्रुवम्॥४२॥
न तस्य प्राकृती मूर्तिर्मेदोमांसास्थिसम्भवा ।
योगी चैवेश्वरश्चान्यः सर्वात्मा नित्यविग्रहः ॥४३॥
काठिन्यं दैवयोगेन करकाघृतयोरिव। कृष्णस्यामिततत्त्वस्य पादपृष्ठं न देवता॥४४॥
वृन्दावनरजोवृन्दे तत्र स्युर्विष्णुकोटयः। आनन्दकिरणे वृन्दव्याप्तविश्वकलानिधिः ॥४५॥
गुणात्मताऽऽत्मनि यथा जीवास्तत्किरणाङ्गकाः ।
भुजद्वयवृतः कृष्णो न कदाचिच्चतुर्भुजः ॥४६॥

सुशोभित मुख चन्द्रमा के भी सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाला है । जो मधुर आलाप करने में चतुर तथा जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ हैं ॥३३॥ जो प्रेम की साधना में तत्पर रहने वाली हैं उनका नाम मधुमती है । संमोह जन्य ज्वर के कारण जिनको रोमाञ्च होता रहता है तथा जो प्रेम की धारा से युक्त हैं ॥३४॥ दान और धूलि से विनोद करने वाली जो रास ध्वनि की महानदी हैं, उनका नाम शशिरेखा है वे गोपाल की सदैव प्रेयसी हैं ॥३५॥ भगवान् कृष्ण की आत्मा स्वरूपिणी, उत्तम युवती श्यामा हैं । उनके नेत्र मधु के समान पीले हैं । श्रीभगवान् के चरणों में प्रेमजन्य संमोह के कारण उनके अङ्गों में रोमाञ्च होता रहता है ॥३६॥ शिवकुण्ड में शिवानन्दा देवी हैं, देविका नदी के तट पर नन्दिनी देवी हैं । द्वारका में रुक्मिणी देवी हैं, राधाजी वृन्दावन के वन में हैं ॥३७॥ मथुरा में मेरी परमेश्वरी देवकी जी उत्पन्न हुयी । चन्द्रकूट पर सीताजी उत्पन्न हुयी और विन्ध्यगिरि पर विन्ध्येश्वरी देवी का निवास है ॥३८॥ वाराणसी में विशालाक्षी देवी हैं, पुरुषोत्तम क्षेत्र में विमला देवी हैं । उन पर प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने वृन्दावन का उन्हें आधिपत्य प्रदान किया है ॥३९॥ अन्यत्र तो वृन्दावन के वन में राधा देवी हैं भगवान् शौरि नित्यानन्द स्वरूप हैं, उनको शरीर रहित कहा जाता है ॥४०॥ वे वायु, अग्नि तथा स्वर्ग भूमि के अधिष्ठातृ देवता हैं । वे गोविन्द शरीरक हैं ब्रह्माजी के भी अधिष्ठातृ देवता है ॥४१॥ जहाँ पर इन्द्रियों से युक्त भी सूर्य नहीं प्रतीत होते हैं, इस प्रकार की कान्ति से युक्त भगवान् श्रीकृष्ण हैं वे काल को भी मोहित कर देते हैं ॥४२॥ भगवान् का शरीर; मेदा, मांस तथा अस्थियों से बना हुआ प्राकृत नहीं है । वे योगी, ईश्वर, सर्वात्मा तथा नित्य शरीर वाले हैं ॥४३॥ जिस तरह से करका (ओले) तथा घी में दैव योग से कठिनता आ जाती है, उसी तरह भगवान् में काठिन्य आ जाता है । अपरिमित तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण के पैर के तलवे के समान भी देवता नहीं है ॥४४॥ वृन्दावन की धूलि समूह में करोड़ों विष्णु हो सकते हैं । उनके आनन्द के एक किरण में सारे चन्द्रमा हो सकते हैं ॥४५॥ जिस तरह से आत्मा में गुणयुक्तता होती है, उसी तरह से जीवों के अङ्ग

गोप्यैकया वृतस्तत्र परिक्रीडती सर्वदा। गोविन्द एव पुरुषो ब्रह्माद्याः स्त्रिय एव च॥४७॥
तत एव स्वभावोऽयं प्रकृतेर्भावईश्वरः। पुरुषः प्रकृतिश्चाद्यौ राधावृन्दावनेश्वरौ ॥४८॥
प्रकृतेर्विकृतं सर्वं बिना वृन्दावनेश्वरम् ॥४९॥
समुद्भवेनैव समुद्भवेदिदं भेदं गतं तस्य विनाशतो हि ।
स्वर्णस्य नाशो न हि विद्यते तथा मत्स्यादिनाशेऽपि न कृष्णविच्युतिः ॥५०॥
त्रिगुणादिप्रपञ्चोऽयं वृन्दावनविहारिणः। ऊर्मीवाब्धेस्तरङ्गस्य यथाब्धिर्नैव जायते ॥५१॥
न राधिका समानारी न कृष्णसदृशः पुमान् ।
वयः परं न कैशोरात्स्वभावःप्रकृतेःपरः ॥५२॥
ध्येयं कैशोरकं ध्येयं वनं वृन्दावनं वनम् । श्याममेव परं रूपमादिदेवं परो रसः ॥५३॥
बाल्यं पञ्चमवर्षान्तं पौगण्डं दशमावधि। अष्टपञ्चककैशोरं सीमापञ्चदशावधि ॥५४॥
यौवनोद्भिन्नकैशोरं नवयौवनमुच्यते। तद्वयस्तस्य सर्वस्वं प्रपञ्चमितरद्वयः ॥५५॥
बाल्यपौगण्डकैशोरं वयो वन्दे मनोहरम्। बालगोपालगोपालं स्मर गोपालरूपिणम्॥५६॥
वन्दे मदनगोपालं कैशोराकारमद्भुतम्। यमाहुर्यौवनोद्भिन्नश्रीमन्मदनमोहनम् ॥५७॥
अखण्डातुलपीयूषरसानन्दमहार्णवम् । जयति श्रीपतेर्गूढं वपुः कैशोररूपिणः ॥५८॥
एकमप्यव्ययं पूर्वं वल्लवीवृन्दमध्यगम् । ध्यानगम्यं प्रपश्यन्ति रुचिभेदात्पृथग्धियः ॥५९॥

श्रीभगवान् के किरण स्वरूप हैं। भगवान् कृष्ण ने दो भुजाओं को ही अपनाया वे कभी भी चतुर्भुज नहीं होते हैं ॥४६॥ वे केवल गोपी के द्वारा स्वीकृत हैं और उसी के साथ सदा क्रीड़ा करते हैं। गोविन्द ही पुरुष हैं ब्रह्मा आदि तो स्त्रियाँ ही हैं। उसके कारण ही यह प्रकृति का स्वभाव है। आद्य पुरुष और प्रकृति श्रीराधाजी हैं और वृन्दावनेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं ॥४७-४८॥ वृन्दावन के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण के बिना सम्पूर्ण जगत् प्रकृति का विकार होगा। सृष्टिकाल के आने पर यह जगत् उत्पन्न ही नहीं होयेगा उनके विनाश से सारा भेद समाप्त हो जायेगा। जिस तरह मत्स्य आदि का नाश हो जाने पर सरोवर का नाश नहीं होता है, उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण का नाश नहीं होता है ॥४९-५०॥ यह सम्पूर्ण त्रिगुण आदि का विस्तार वृन्दावन विहारी का कार्य है। जिस तरह समुद्र से ही तरङ्गे उत्पन्न होती हैं, तरङ्ग से समुद्र नहीं उत्पन्न है उसी तरह ॥५१॥ राधिका के समान कोई नारी नहीं है और न तो भगवान् श्रीकृष्ण के समान कोई पुरुष है। किशोरावस्था से बढ़कर कोई अवस्था नहीं होती है उनका स्वभाव प्रकृति से श्रेष्ठ है ॥५२॥ श्रीभगवान् की किशोरावस्था का ध्यान करना चाहिए वृन्दावन नामक वन का ध्यान करना चाहिए श्याम रूप ही सबसे श्रेष्ठ रूप है आदि देव ही सर्वश्रेष्ठ रस हैं ॥५३॥ पाँच वर्ष तक बाल्यावस्था होती है, दश वर्ष तक पौगण्डावस्था होती है, तेरह वर्ष की अवस्था तक किशोरावस्था होती है और वह अवस्था पन्द्रह वर्ष की अवस्था तक रहती है ॥५४॥ जिसमें किशोरावस्था उद्भूत हो गयी है वह जवानी नवीन जवानी कहलाती है। वही अवस्था युवावस्था का सार है उसके अतिरिक्त अवस्था तो प्रपञ्च मात्र है ॥५५॥ मैं श्रीभगवान् की बाल्य, पौगण्ड और किशोर इन तीनों अवस्थाओं की वन्दना करता हूँ। गोपाल शरीर धारी बालगोपाल भगवान् का स्मरण करो ॥५६॥ मैं अद्भुत किशोरावस्था वाले मदन गोपाल की वन्दना करता हूँ। जिनको उद्भुत युवावस्था वाला मदन मोहन कहा गया है ॥५७॥ अखण्ड तथा अतुलनीय अमृत रस

यन्नखेन्दुरुचिर्ब्रह्मध्येयं ब्रह्मादिभिः सुरैः। गुणत्रयमतीतं तं वन्दे वृन्दावनेश्वरम् ॥६०॥
वृन्दावनपरित्यागो गोविन्दस्य न विद्यते। अन्यत्र यद्वपुस्तत्तु कृत्रिमं तन्न संशयः ॥६१॥
सुलभं व्रजनारीणां दुर्ल्लभं तन्मुमुक्षुणाम्। तं भजे नन्दसुनुं यन्नखतेजः परं मनुः ॥६२॥

पार्वत्युवाच

भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत्पिशाची हृदि वर्त्तते। तावत्प्रेमसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत् ॥६३॥

ईश्वर उवाच

साधुपृष्टं त्वया भद्रे ! यन्मे मनसि वर्त्तते। तत्सर्वं कथयिष्यामि सावधाना निशामय ॥६४॥
स्मृत्वा गुणान्स्मरन्नामगानं वा मनरञ्जनम्। बोधयत्यात्मनात्मानं सततं प्रेम्णि लीयते ॥६५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वृन्दावनमाहाम्ये पार्वतीशिवसम्वादे
श्रीकृष्णारूपवर्णनं नाम सप्तसप्तातितमोऽध्यायः ॥७७॥

◆

के महासागर किशोर रूप वाले लक्ष्मीपति के गूढ शरीर की जय हो ॥५८॥ निर्विकार एक तथा एक ही गोपियों के बीच में विद्यमान तथा ध्यान के विषय भूत श्रीभगवान् को योगिजन अपनी रुचि की भिन्नता के कारण पृथक्-पृथक् देखते हैं ॥५९॥ जिनके नखचन्द्र की कान्ति का ध्यान ब्रह्मा आदि देवताओं द्वारा ब्रह्म रूप से किया जाता है। उन त्रिगुणातीत वृन्दावन के स्वामी श्रीभगवान् की मैं वन्दना करता हूँ ॥६०॥ श्रीभगवान् गोविन्द कभी भी वृन्दावन का त्याग नहीं करते हैं। उनका अन्यत्र जो शरीर रहता है वह कृत्रिम शरीर है। इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥६१॥ वह ब्रजवनिताओं के लिए सुलभ हैं और मुमुक्षुओं के लिए दुर्लभ है। मैं नन्दजी के पुत्र का भजन करता हूँ उनके नख का तेज परम मन्त्र हैं। **पार्वतीजी ने कहा—** जब तक भोग तथा मोक्ष की अभिलाषा रूपी पिशाच हृदय में बनी हुयी है, तब तक हृदय में प्रेम जन्य सुख कैसे उत्पन्न हो सकता है ? **ईश्वर ने कहा—** हे भद्रे ! मेरे हृदय में जो बात है उसी को तुमने कहा है, उन सारी बातों को मैं बतलाऊँगा तुम सावधान होकर सुनो ॥६२-६४॥ मन को प्रसन्न करने वाले श्रीभगवान् के गुणों का स्मरण करके तथा उनके नामों का गायन करके, आत्मा अपने आपको ज्ञान प्रदान करके प्रेम में लीन हो जाता है ॥६५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के वृन्दावन माहात्म्य के अन्तर्गत शिव पार्वती संवाद के प्रसङ्ग में श्रीकृष्ण के रूप वर्णन नामक सतहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७७॥

◆

अठहत्तरवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

वैष्णवानां च यद्धर्मं सर्वं तथ्यं च मे वद। यत्कृत्वा मानवाः सर्वे भवाम्भोधिं तरन्ति हि ॥१॥

ईश्वर उवाच

अथ द्वादशधा शुद्धिर्वैष्णवानामिहोच्यते। गृहोपलेपनं चैव तथानुगमनं हरेः ॥२॥

भक्त्या प्रदक्षिणा चैव पादयोः शोधनं पुनः ।
पूजाऽथपत्रपुष्पाणां भक्त्यैवोत्तोलनं हरेः ॥३॥

करयोः सर्वशुद्धीनामियं शुद्धिर्विशिष्यते। तन्नामकीर्तनं चैव गुणानामपि कीर्त्तनम् ॥४॥
भक्त्या श्रीकृष्णदेवस्य वचसःशुद्धिरिष्यते। तत्कथा श्रवणञ्चैव तस्योत्सवनिरीक्षणम्॥५॥
श्रोत्रयोर्नेत्रयोश्चैव शुद्धिःसम्यगिहोच्यते। पादोदकं च निर्माल्यं मालानामपि धारणम् ॥६॥
उच्यते शिरसः शुद्धिः प्रणतस्य हरेः पुरः। आघ्राणां तस्य पुष्पादेर्निर्माल्यस्य तथा प्रिये ॥७॥

विशुद्धिः स्यादन्तरस्य घ्राणस्यापि विधीयते ।
यत्र पुष्पादिकं यच्च कृष्णपादयुगार्पितम् ॥८॥

तदेकं पावनं लोके तद्धि सर्वं विशोधयेत्। पूजा च पञ्चधा प्रोक्ता तासां भेदं शृणुष्व मे ॥९॥

अभिगमनमुपादानं योगः स्वाध्याय एव च ।
इज्या पञ्च प्रकारार्चा क्रमेण कथयामि ते ॥१०॥

तत्त्वाभिगमनं नाम देवतास्थानमार्जनम्। उपलेपं च निर्माल्यं दूरीकरणमेव च ॥११॥

वैष्णव के धर्म और शालग्राम शिला के लक्षण आदि

पार्वतीजी ने कहा— हे प्रभो ! आप वैष्णवों के उस धर्म का वर्णन कीजिये जिसका पालन करके मनुष्य संसार सागर को पार कर जाते है ॥१॥ **श्रीमहादेवजी ने कहा—** बारह प्रकार से श्रीवैष्णवों की शुद्धि बतलायी गयी है । श्रीभगवान् के मन्दिर को लिपना, श्रीहरि का अनुगमन करना, भक्ति पूर्वक श्रीभगवान् की प्रदक्षिणा करना, श्रीभगवान् के चरणों को धोना, पात्रों, पुष्पों से श्रीभगवान् की पूजा करना, श्रीभगवान् को भक्ति पूर्वक उठाना, अच्छी तरह से दोनों हाथों की शुद्धि करना, यह शुद्धि सभी शुद्धियों से अधिक महत्त्वपूर्ण है, भगवान् श्रीकृष्ण के नामों तथा गुणों का कीर्तन करना, यह वाणी की शुद्धि है, उनकी कथाओं को सुनना यह कानों की शुद्धि है, श्रीभगवान् के उत्सवों का दर्शन करना नेत्रों की शुद्धि है । भगवान् के चरणामृत को तथा उन पर चढ़ायी हुयी माला को अपने शिर पर धारण करना यह श्रीभगवान् के समक्ष झुके हुए शिर की शुद्धि है । श्रीभगवान् के पैरों पर चढ़े पुष्प आदि को सूंघना ॥२-७॥ यह अन्तःकरण और नासिका की शुद्धि है । जहाँ श्रीभगवान् के चरणों पर चढ़ाये गये पुष्प आदि पड़े हों वही संसार में सबसे शुद्ध स्थान है, उस स्थान को साफ रखें । श्रीभगवान् की पूजा भी पाँच प्रकार की बतलायी गयी है, उसके भेदों को सुनो ॥८-९॥ अभिगमन, उपादान, योग, स्वाध्याय और इज्या । इन पाञ्चों को मैं क्रमशः बतलाता हूँ ॥१०॥ देवता के स्थान को साफ करना, उसको लिपना और देवता पर चढ़ी हुयी वस्तु को हटाना यही अभिगमन कहलाता है ॥११॥ देवता पर चढ़ाये गये चन्दन तथा पुष्प आदि को

उपादानं नाम गन्धपुष्पादिचयनं तथा। योगो नाम स्वदेवस्य स्वात्मनैवात्मभावना ॥१२॥
स्वाध्यायो नाम मन्त्रार्थानुसन्धापूर्वको जपः। सूक्तस्तोत्रादिपाठश्च हरेःसङ्कीर्त्तनं तथा ॥१३॥
तत्त्वादिशास्त्राभ्यासश्च स्वाध्यायः परिकीर्तितः ।
इज्या नाम स्वदेवस्य पूजनं च यथार्थतः ॥१४॥
इति पञ्च प्रकारार्चा कथिता तव सुव्रते ! ।
सार्ष्टिसामीप्यसालोक्य सायुज्यसारूप्यदा क्रमात् ॥१५॥
प्रसङ्गात्कथयिष्यामि शालग्रामशिलार्चनम् । केशवादेश्चतुबाहोर्दक्षिणोर्ध्वकरक्रमात् ॥१६॥
शङ्खचक्रगदापद्मी केशवाख्यो गदाधरः । नारायणःपद्मगदाचक्रशङ्खायुधैः क्रमात् ॥१७॥
माधवश्चक्रशङ्खाभ्यां पद्मेन गदया भवेत्। गदाब्जशङ्खचकी च गोविन्दाख्यो गदाधरः ॥१८॥
पद्मशङ्खारिगदिने विष्णुरूपाय ते नमः। सशङ्खाब्जगदाचक्रमधुसूदनमूर्तये ॥१९॥
नमो गदारिशङ्खाब्जयुक्तत्रिविक्रमाय च। सारिकौमोदकीपद्मशङ्ख वामनमूर्त्तये॥२०॥
चक्राब्जशङ्खगदिने नमः श्रीधरमूर्त्तये। हृषीकेशसारिगदाशङ्खपद्मिन्नमोऽस्तु ते ॥२१॥
साब्जशङ्खगदाचक्रपद्मनाभस्वमूर्त्तये । दामोदर ! शङ्खगदाचक्रपद्मिन्नमोऽस्तुते ॥२२॥
शङ्खाब्जचक्रगदिने नमः सङ्कर्षणाय च । सारिशङ्खगदाब्जाय वासुदेव ! नमोऽस्तुते ॥२३॥
शङ्खचक्रगदाब्जाय धृतप्रद्युम्नमूर्त्तये। नमोऽनिरुद्धाय गदाशङ्खाब्जारिविहारिणे॥२४॥

चुनना यही उपादान है । अपने देवता का अपनी आत्मा से अभेद की भावना करना यही योग कहलाता है ॥१२॥ अर्थानुसन्धान पूर्वक मन्त्र का जप करना ही स्वाध्याय है । सूक्तों तथा स्तोत्र आदि का पाठ करना, श्रीहरि का संकीर्तन करना तथा तत्त्वशास्त्रों का अभ्यास करने को भी स्वाध्याय कहते हैं । अपने देवता का यथोचित विधि से पूजन करना ही इज्या है ॥१३-१४॥ हे सुव्रते ! इस तरह से मैंने पाञ्च प्रकार की पूजा बतलाया । इस तरह से की गयी पूजा क्रमशः साष्टि, सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य तथा सामीप्य तथा सारूप्य प्रदान करती है ॥१५॥ अब मैं प्रसङ्गतः शालग्राम शिला की अर्चना विधि को बतलाता हूँ। चार भुजाओं वाले केशव आदि के दाहिने तथा ऊपर की भुजाओं के क्रम से ये क्रमशः आयुध रहते हैं॥१६॥ भगवान् केशव शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म को अपने हाथों में धारण करते हैं । नारायण भगवान् अपने हाथों में क्रमशः पद्म, गदा, चक्र तथा शङ्ख नामक आयुधों को धारण करते हैं ॥१७॥ भगवान् माधव अपने हाथों में क्रमशः चक्र, शंङ्ख, पद्म तथा गदा धारण करते हैं । भगवान् गोविन्द अपनी भुजाओं में क्रमशः गदा, कमल, शङ्ख तथा चक्र धारण करते हैं ॥१८॥ अपने हाथों में क्रमशः पद्म, शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले भगवान् विष्णो आपको नमस्कार है । शंङ्ख, कमल, गदा तथा चक्र धारण करने वाले भगवान् मधुसूदन को नमस्कार है ॥१९॥ गदा, चक्र, शङ्ख तथा कमल से सुशोभित भगवान् त्रिविक्रम को नमस्कार है । चक्र के साथ कौमोदकी गदा, पद्म तथा शङ्ख धारण करने वाले वामन मूर्ति श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥२०॥ चक्र, कमल, शङ्ख तथा गदा धारण करने वाले श्रीधर मूर्ति श्रीभगवान् को नमस्कार है । चक्र के साथ गदा, शङ्ख तथा पद्म धारण करने वाले भगवान् हृषीकेश को नमस्कार है॥२१॥ कमल के साथ शङ्ख, गदा और चक्र धारण करने वाले भगवान् पद्मनाभ को नमस्कार है । शङ्ख, गदा, चक्र तथा पद्म धारण करने वाले भगवान् दामोदर को नमस्कार है ॥२२॥ शङ्ख, पद्म, चक्र तथा गदाधारी भगवान् सङ्कर्षण को नमस्कार हैं । चक्र के साथ शङ्ख, गदा और पद्म धारण करने वाले भगवान् वासुदेव को नमस्कार है ॥२३॥ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करने वाले भगवान् प्रद्युम्न को नमस्कार है । गदा, शङ्ख, कमल और चक्र धारण करने वाले भगवान् अनिरुद्ध को नमस्कार है ॥२४॥ कमल के

साब्जशङ्खगदाचक्रपुरुषोत्तममूर्त्तये । नमोऽथोक्षजरूपाय गदाशङ्खारिपद्मिने ॥२५॥
नृसिंहमूर्त्तये पद्मगदाशङ्खारिधारिणे। पद्मारिशङ्खगदिने नमोऽस्त्वच्युतमूर्त्तये ॥२६॥
सगदाब्जारिशङ्खाय नमः श्रीकृष्णमूर्त्तये । शालग्रामशिलाद्वारगतलग्नद्विचक्रधृत् ॥२७॥
शुक्लाभरेखः शोभाढ्यः स देवः श्रीगदाधरः ।
लग्नद्विचक्रोरक्ताभः पूर्वभागस्तु पुष्कलः ॥२८॥
सङ्कर्षणोऽथ प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतकः। सुदीर्घसुपरिच्छिद्रो ह्यनिरुद्धस्तु वर्त्तुलः॥२९॥
नीलोद्वारे त्रिरेखश्च अथ नारायणोऽसितः । मध्ये गदाकृती रेखा नाभिपद्मंमहोन्नतम् ॥३०॥
पृथुचक्रो नृसिंहो यः कपिलो यस्त्रिबिन्दुकः ।
अथवा पञ्चबिन्दोस्तु पूजनं ब्रह्मचारिणः ॥३१॥
वराहः सत्रिलिङ्गो यो विषमद्वयचक्रकः। नीलस्त्रिरेखः स्थूलोऽथकूर्ममूर्तिःसबिन्दुकः॥३२॥
कृष्णः सवर्तुलावर्त्तपाण्डुरो धृतपृष्ठकः। श्रीधरः पञ्चरेखश्च वनमाली गदाङ्कितः॥३३॥
वामनो वर्तुलो नाम मध्यश्चकः सनीलकः। नानावर्णानेकमूर्तिर्नागभोगी त्वनन्तकः॥३४॥
स्थूलो दामोदरो नीलो मध्ये चक्रः सनीलकः ।
सङ्कर्षणद्वारकोऽव्यादथब्रह्मासुलोहितः ॥३५॥
सुदीर्घरेखासुषिर एकचक्राम्बुजःपृथुः । पृथुचक्रः स्थूलछिद्रः कृष्णोत्रिन्दुश्च बिन्दुमान्॥३६॥
हयग्रीवोऽङ्कुशाकारः पञ्चरेखः सकौस्तुभः। वैकुण्ठोऽमलवद्भाति एकचक्रमयोऽसितः॥३७॥

साथ शङ्ख, गदा और चक्र धारण करने वाले भगवान् पुरुषोत्तम को नमस्कार है । गदा, शङ्ख, चक्र तथा कमल धारण करने वाले भगवान् अधोक्षज को नमस्कार है ॥२५॥ पद्म, गदा, शङ्ख और चक्र धारण करने वाले नृसिंह मूर्ति श्रीभगवान् को नमस्कार है । पद्म, शङ्ख, गदा और कमल धारण करने वाले भगवान् अच्युत को नमस्कार है ॥२६॥ शुक्ल आभा वाली रेखा से सुशोभित शालग्राम भगवान् की गदाधर नाम की मूर्ति होती है । उनका लाल आभा लिए हए दो चक्रों वाला आगे का भाग बड़ा होता है ॥२७-२८॥ सङ्कर्षण और प्रद्युम्न की शालग्राम मूर्ति में पीला तथा सूक्ष्म चक्र होता है । बहुत बड़े परिच्छदों वाले अनिरुद्ध नामक भगवान् की मूर्ति गोल होती है ॥२९॥ नीले द्वार पर तीन रेखाओं वाली शालग्राम शिला भगवान् नारायण की मूर्ति होती है । वे काले होते हैं उनके बीच में गदा के समान रेखा होती है उनका नाभि कमल अधिक उठा हुआ रहता है ॥३०॥ नृसिंह नामक शालग्राम शिला का चक्र बड़ा रहता है और उनका रङ्ग पीला सा रहता है तीन बिन्दु अथवा पाञ्च विन्दु वाले शालग्राम ब्रह्मचारी हैं ॥३१॥ जो वाराह हैं उनके तीन लिङ्ग होते है, उनके दो विषम चक्र होते हैं नीला तीन रेखाओं वाले जो स्थूल होते हैं वे कूर्म मूर्ति शालग्राम होते हैं । वे बिन्दु से युक्त होते हैं ॥३२॥ श्रीधर नामक शालग्राम काले, गोल गढे वाले होते हैं और उनका पृष्ठ भाग पाण्डुर वर्ण का होता है । वनमाली नामक शालग्राम पर पाँच रेखाएँ होती हैं और उन पर गदा का चिह्न होता है ॥३३॥ वामन नामक शालग्राम के बीच में नील चक्र होता है । अनेक वर्णों वाले शालग्राम का नाम अनेक मूर्ति है । जिनका नाग के सदृश आभोग रहता है वे अनन्त भगवान् होते हैं ॥३४॥ दामोदर नाम शालग्राम स्थूल और पीले होते हैं, उनके मध्य में नीला चक्र होता है । सङ्कर्षण द्वार की रक्षा करें और ब्रह्मा का रङ्ग लाल है ॥३५॥ उनकी रेखा लम्बी और छिद्र रूपी होती है । उनमें एक बड़ा चक्र होता है बिन्दुमान् नामक शालग्राम मूर्ति का छिद्र बड़ा होता है, चक्र भी बड़ा होता है बिन्दु काली होती है ॥३६॥ हयग्रीव नामक शिला का आकार अङ्कुश के समान होता है ।

मत्स्यो दीर्घाम्बुजाकारो दीर्घरेखश्चपाण्डुरः । रामचक्रो दक्षरेखो यःश्यामःसत्रिविक्रमः ॥३८॥
शालग्रामद्वारकायां (?) स्थिताय गदिने नमः ।
एकेन लक्षितो योऽव्याद्गदाधारीसुदर्शनः ॥३९॥
लक्ष्मीनारायणो द्वाभ्यां त्रिभिश्चैव त्रिविक्रमः ।
चतुर्भिश्च चतुर्व्यूहो वासुदेवश्चपञ्चभिः ॥४०॥
प्रद्युम्नःषड्भिरेवाव्यात्सङ्कर्षणश्च सप्तभिः । पुरुषोत्तमोऽष्टभिश्च स्यान्नवव्यूहोनवोहितः ॥४१॥
दशावतारो दशभिरनिरुद्धोऽवतादथ । द्वादशात्मा द्वादशभिरत स्यान्नवव्यूहोनवोहितः॥४२॥
ब्रह्मा चतुर्मुखो दण्डी कमण्डलुस्त्रगुन्नतः । महेश्वरः पञ्चवक्त्रो दशबाहुर्वृषध्वजः ॥४३॥
यथायुधस्तथा गौरी चण्डिका च सरस्वती ।
महालक्ष्मीर्मातरश्च पद्महस्तोदिवाकरः ॥४४॥
गजास्यश्च गजस्कन्यः षण्मुखोऽनेकधा गणाः ।
एते स्थिताः स्थापिताः स्युः प्रासादे वाऽथपूजिताः ॥४५॥
धर्मार्थकामामोक्षा हि प्राप्यन्ते पुरुषेण च ॥४६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शालग्रामनिर्णयो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

* * *

उनमें पाँच रेखाएँ होती हैं, कौस्तुभ का चिह्न होता है । वैकुण्ठ नामक शिला स्वच्छ के समान प्रतीत होती हैं । उसमें एक काला चक्र होता है ॥३७॥ मत्स्य मूर्ति का आकार बड़ा होता है । वह कमला कृति होती हैं । वे पीले और लम्बी रेखा वाले शालग्राम होते हैं त्रिविक्रम मूर्ति शालग्राम में तीन चक्र तथा दाहिनी ओर रेखा होती है । यह श्याम वर्ण की मूर्ति होती है ॥३८॥ द्वारका में स्थित गदाधारी शालग्राम को नमस्कार है । एक गदा के द्वारा दिखायी देने वाले शालग्राम सुदर्शन हैं ॥३९॥ दो गदाओं वाले शालग्राम लक्ष्मी नारायण हैं, तीन गदाओं के चिह्न वाले शालग्राम त्रिविक्रम हैं । चार गदाओं वाले चतुर्व्यह हैं । पाञ्च चिह्नों वाले वासुदेव हैं । छह रेखाओं वाले प्रद्युम्न होते हैं, सात रेखाओं वाले सङ्कर्षण होते हैं । आठ रेखाओं वाले पुरुषोत्तम होते है, नव रेखाओं वाले नव व्यूह होते हैं ॥४०-४१॥ दश रेखाओं वाले दशावतार नामक शालग्राम होते हैं, ग्यारह रेखाओं वाले अनिरुद्ध रक्षक हैं । द्वादश रेखाओं वाले शालग्राम द्वादशात्मा होते हैं, इससे अधिक रेखाओं वाले अनन्त होते हैं ॥४२॥ दण्ड, कमण्डलु, माला इत्यादि के चिह्नों वाले शालग्राम ब्रह्मा है । उनके चार मुख होते है । पाञ्च मुख वाले महेश्वर हैं । भुजाओं के दश चिह्न वाले वृषध्वज होते हैं ॥४३॥ आयुध के अनुसार गौरी, चण्डिका और सरस्वती और महालक्ष्मी आदि मातृकाएँ होती हैं । सूर्य के हाथ में कमल रहता है । गजास्य, गजस्कन्ध तथा षणमुख आदि अनेक प्रकार के गण हैं । इन सबों को भवन में स्थापित करके पूजा करनी चाहिए ॥४४-४५॥ ऐसा करने वाला पुरुष धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक पुरुषार्थों को प्राप्त कर लेता हे' ॥४६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के शालग्राम शिला का निर्णय नामक अठहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७८॥

* * *

उनासीवाँ अध्याय

ईश्वर उवाच

शालग्रामे मणौ यन्त्रे मण्डले प्रतिमासु च। नित्यं तु श्रीहरेः पूजा केवले भवने न तु ॥१॥
गण्डक्यामेकदेशे तु शालग्रामस्थलं महत्। पाषाणं तद्भवं पातु शालग्राममिति स्थितम्॥२॥
शालग्रामशिला स्पर्शात्कोटिजन्माघनाशनम् ।
किं पुनः पूजनं तत्र हरेः सान्निध्यकारणम् ॥३॥
शालग्रामैकयजनाच्छतलिङ्गीफलं लभेत्। बहुभिर्जन्मभिः पुण्यैर्यदिकृष्णाशिलां लभेत् ॥४॥
गोष्पदेन च चिह्नेन जनुस्तेन समाप्यते ।
आदौ शिलां परीक्षेत स्निग्धां श्रेष्ठां च मेचकाम् ॥५॥
आकृष्णा मध्यामा प्रोक्ता मिश्रामिश्रफलप्रदा ।
सदा काष्ठे स्थितो बह्निर्मथनेन प्रकाश्यते ॥६॥
यथा तथा हरिर्व्यापी शालग्रामे प्रतीयते। प्रत्यहं द्वादश शिलाः शालग्रामस्य योऽर्चयेत्॥७॥
द्वारवत्याः शिलायुक्ताः स वैकुण्ठे महीयते ।
शालग्रामशिलायां तु गह्वरं लक्षते नरः ॥८॥
पितरस्तस्य तिष्ठन्ति तृप्ताः कल्पान्तकं दिवि ।
वैकुण्ठभवनं तत्र यत्र द्वारावाती शिला ॥९॥
मृतो विष्णुपुरं याति तत्तीर्थं योजनत्रयम्। जपः पूजा च होमश्च सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥१०॥

वैष्णवों के तिलक धारण आदि अनेक विधियों का वर्णन

श्रीमहादेवजी ने कहा— शालग्राम में, मणि में, यन्त्र में और प्रतिमाओं में श्रीहरि की नित्य ही पूजा करनी चाहिए, केवल भवन में ही नहीं ॥१॥ गण्डकी नदी के एक स्थान में शालग्राम नामक महान स्थल है । उससे उत्पन्न पत्थर शालग्राम कहलाता है ॥२॥ जब शालग्राम शिला का स्पर्श करने मात्र से करोड़ों जन्मों का पाप विनष्ट हो जाता है तो फिर शालग्राम की पूजा के विषय में क्या कहना है ? उससे श्रीहरि का सान्निध्य प्राप्त होता है ॥३॥ केवल शालग्राम की पूजा करने से सैकड़ों प्रकार के फल प्राप्त होते हैं । अनेक जन्मों के पुण्य से शालग्राम शिला की प्राप्ति होती है । गौ के खुर के चिह्न वाले शालग्राम के द्वारा जन्मों का चक्र समाप्त हो जाता है । पहले शिला का परीक्षण करे । काली शिला श्रेष्ठ होती है ॥४-५॥ काली के समान शिला मध्यम कोटि की मानी गयी है । मिश्रित शिला मिश्रित फल प्रदान करने वाली होती है जैसे अग्नि काष्ठ में सदैव रहती है; किन्तु वह मन्थन करने पर ही प्रकट होती है॥६॥ उसी तरह शालग्राम में व्यापक श्रीहरि की प्रतीति होती है, जो व्यक्ति प्रतिदिन बारह शालग्राम की पूजा गोमती चक्र के साथ करता है, वह वैकुण्ठ में पूजित होता है । जो मनुष्य शालग्राम शिला में गढा को देखता है ॥७-८॥ उसके पितृगण तृप्त होकर कल्प पर्यन्त स्वर्गलोक में निवास करते हैं । जहाँ पर गोमती चक्र रहता है वहाँ पर श्रीभगवान् का मन्दिर होता है ॥९॥ वहाँ पर मरने वाला मनुष्य विष्णुलोक में जाता है । वहाँ की तीन योजन पर्यन्त भूमि तीर्थ होती है । वहाँ पर किये गये जप, होम तथा पूजा का करोड़

मनस्कामसमाभीष्टं क्रोशमात्रं न संशयः । कीटकोऽपि मृतो याति वैकुण्ठभवनं यतः ॥११॥
शालग्रामशिलायां यो मूल्यमुद्धाटयेन्नरः। विक्रेता चानुमन्ता च यः परीक्षानुमोदकः ॥१२॥
सर्वे ते नरकं यान्ति यावत्सूर्यश्च सम्पल्वः। अतस्तद्वर्जयेद्देवि चक्रक्रयणविक्रयम् ॥१३॥
शालग्रामोद्भवो देवो यो देवोद्वारकोद्भवः। उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ॥१४॥
द्वारकोद्भवचक्राढ्यो बहुचक्रेण चिह्नितः । चक्रासनशिलाकारचित्स्वरूपो निरञ्जनः ॥१५॥
नमोऽस्त्वोङ्काररूपायसदानन्दस्वरूपिणे । शालग्राममहाभाग भक्तस्यानुग्रहं कुरु ॥१६॥
तवानुग्रहकामस्य ऋणग्रस्तस्य मे प्रभो । अतः परं प्रवक्ष्यामि तिलकस्य विधिं मुदा ॥१७॥
यच्छ्रुत्वा मानवाः सर्वे विष्णुसारूप्यमाप्नुयुः ।
ललाटे केशवं विद्यात्कठे श्रीपुरुषोत्तमम् ॥१८॥
नाभौ नारायणं देवं वैकुण्ठं हृदये तथा । दामोदरं वामपार्श्वे दक्षिणे च त्रिविक्रमम् ॥१९॥
मूर्ध्नि चैव हृषीकेशं पद्मनाभं च पृष्ठतः। कर्णयोर्यमुनां गङ्गां बाह्वोः कृष्णं हरिं तथा॥२०॥
यथास्थानेषु तुष्यन्ति देवता द्वादश स्मृताः । द्वादशैतानि नामानि कर्तव्ये तिलके पठेत् ॥२१॥
सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति। ऊर्ध्वपुण्ड्रमूद्धर्वरेखं ललाटे यस्य दृश्यते ॥२२॥
चण्डालोऽपि स शुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः ।
यस्योद्धर्वपुण्ड्रं दृश्येत न ललाटे नरस्य हि ॥२३॥

गुना फल होता है ॥१०॥ उसके एक कोश पर्यन्त तो सारी मन:कामना की प्राप्ति होती है । वहाँ पर मरने वाला कीडा भी वैकुण्ठ में जाता है ॥११॥ जो मनुष्य शालग्राम शिला का मूल्य निर्धारित करता है वह; शालग्राम बेचने वाला, उसका अनुमोदन करने वाला तथा उसकी परीक्षा का अनुमोदन करने वाला ॥१२॥ ये सब नरक में जाकर तब तक निवास करते हैं जब तक सूर्य का लय नहीं होता है । अतएव शालग्राम शिला को न तो खरीदे और न बेंचे ॥१३॥ शालग्राम शिला तथा गोमती चक्र दोनों जहाँ पर रहते हैं वहाँ पर मुक्ति में किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥१४॥ जो गोमती चक्र अनेक चक्रों से चिह्नित होता है तथा जो चक्र के आसन के आकार की शिला होती है वह निरञ्जन और निर्दोष होती है ॥१५॥ ओङ्कार स्वरूप सदा आनन्द स्वरूप, शालग्राम महाभाग भगवान् आप मुझ भक्त के ऊपर कृपा करें ॥१६॥ हे प्रभो ! मैं आपका अनुग्रह प्राप्त करना चाहता हूँ । मैं ऋणग्रस्त हूँ । इस तरह से भगवान् की प्रार्थना करें । अव मैं तिलक लगाने की विधि को बतलाता हूँ ॥१७॥ उसका श्रवण करने मात्र से मनुष्य भगवान् विष्णु के सारूप्य को प्राप्त कर लेता है । ललाट में केशव का स्थान है, कण्ठ में श्रीपुरुषोत्तम का स्थान है ॥१८॥ नाभि में नारायण देव का निवास है तथा हृदय में वैकुण्ठ का स्थान है । बायीं बगल में भगवान् दामोदर को जाने तथा दायीं बगल में भगवान् त्रिविक्रम को जाने ॥१९। शिरोभाग में भगवान् हृषीकेश को जाने, पीठ पर पद्मनाभ का स्थान जाने, उसके कानों में गङ्गा और यमुना का निवास होता है ॥२०॥ स्थानानुसार सभी देवता तिलक लगाने से सन्तुष्ट होते हैं । देवताओं की संख्या बारह है । तिलक लगाते समय उन नामों को पढ़ना चाहिए ॥२१॥ ऐसा करने वाला सभी पापों से रहित होकर विष्णु लोक में जाता है । जिसके ललाट पर ऊर्ध्वरेखा वाला ऊर्ध्वपुण्ड्र दिखता है वह ॥२२॥ शुद्ध आत्मा वाला चाण्डाल भी पूज्य होता है । जिस मनुष्य के ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्र नहीं दिखता है ॥२३॥ उस मनुष्य को नहीं देखना चाहिए और

तद्दर्शनं न कर्त्तव्यं दृष्ट्वा सूर्यं निरीक्षयेत् । त्रिपुण्ड्रं यस्य विप्रस्य ऊर्द्ध्वपुण्ड्रं न दृश्यते॥२४॥
तं दृष्ट्वाऽप्यथवा स्पृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत् ।
सान्तरालं प्रकर्त्तव्यं पुण्ड्रं हरिपदाकृति ॥२५॥
निरन्तरालं यः कुर्यादूर्द्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः । ललाटे तस्य सततं शुनः पादो न संशयः ॥२६॥
नासादिकेशपर्यन्तमूर्द्ध्वपुण्ड्रं सुशोभनम् । मध्ये छिद्रसमायुक्तं तं विद्याद्धरिमन्दिरम् ॥२७॥
वामभागे स्थितो ब्रह्मा दक्षिणे तु सदाशिवः ।
मध्ये विष्णुं विजानीयात्तस्मान्मध्यं न लेपयेत् ॥२८॥
वीक्ष्यादर्शे जले वापि यो विदध्यात्प्रयत्नतः ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं महाभागः स याति परमां गतिम् ॥२९।
अग्निरापश्च वेदाश्च चन्द्रादित्यौ तथाऽनिलः ।
विप्राणां नित्यमेते हि कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥३०॥
गङ्गा च दक्षिणे श्रोत्रे नासिकायां हुताशनः ।
उभयोरपिसंस्पर्शात्तत्क्षणादेव शुध्यति ॥३१॥
कृत्वा चैवोदकं शङ्खे वैष्णवानां महात्मना । तुलसीमिश्रितं दद्यात्पिबेन्मूर्ध्नाऽभिवन्दयेत्॥३२॥
प्राश्नीयात्प्रोक्षयेद्देहं पुत्रमित्रपरिग्रहम् । विष्णोः पादोदकं पीतं कोटिजन्माघनाशनम्॥३३॥
तदेवाष्टगुणं पापं भूमौ बिन्दूनिपातनात् । जलशङ्खं करे कृत्वास्तुत्वा नत्वा प्रदक्षिणम्॥३४॥
सततं धार्यते वारि तेनाप्तं जन्मनः फलम् । शङ्खो यस्य गृहे नास्ति घण्टा वा गरुडान्विता॥३५॥

उसके दिख जाने पर सूर्य को देखे । जिस ब्राह्मण के ललाट पर त्रिपुण्ड्र दिखायी पड़े या ऊर्ध्वपुण्ड्र नहीं दिखे ॥२४॥ उसको देखकर अथवा स्पर्श करके सवस्त्र स्नान करे । तिलक को अन्तराल युक्त तथा श्रीहरि के चरण के आकार का लगाना चाहिए ॥२५॥ जो द्विजाधम बिना अन्तराल के ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाता है, उसके ललाट पर सदा कुत्ते के पैरों का चिह्न होता है ॥२६॥ नाक से प्रारम्भ करके केश पर्यन्त सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाना चाहिए । वह छिद्र (अन्तराल) युक्त होने पर श्रीहरि का मन्दिर बन जाता है ॥२७॥ तिलक के वामभाग में ब्रह्माजी और दाहिनी ओर सदा शिवजी का स्थान होता है । तिलक के बीच में भगवान् विष्णु का स्थान होता है; अतएव बीच के अन्तराल में चन्दन न लगाये ॥२८॥ जो दर्पण अथवा जल में देखकर प्रयत्न पूर्वक ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाता है वह महाभाग परमा गति (मुक्ति) को प्राप्त कर लेता है॥२९॥ ब्राह्मणों के दाहिने कान में अग्नि, जल, वेद, चन्द्रमा, सूर्य तथा वायु का नित्य ही निवास रहता॥३०॥ दाहिने कान में गङ्गाजी भी रहती है, नासिका में अग्नि का निवास रहता है । इन दोनों का संस्पर्श होने पर भी दक्षिण श्रोत्र से ही वह शुद्ध होता है ॥३१॥ वैष्णव महात्माओं के शङ्ख में तुलसी मिश्रित जल कोई दे तो उसको पी जाय तथा शिर झुकाकर अभिवादन करे ॥३२॥ उससे आचमन करे और पुत्र, मित्र तथा पत्नी के शरीर को पोंछे । भगवान् का चरणोदक पीने से करोड़ों जन्म के पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥३३॥ यदि भगवान् के चरणोदक का एक बिन्दु भी पृथिवी पर गिर जाय तो उसके आठ गुना पाप होता है । शङ्ख का जल हाथ में लेकर भगवन् की स्तुति करे, नमस्कार करे और प्रदक्षिणा करे ॥३४॥ जो हमेशा शङ्ख में जल रखता है, वह अपने जन्म का फल प्राप्त कर लेता है । जिसके घर में शङ्ख नहीं

पुरतो वासुदेवस्य न स भागवतः कलौ। यानैर्वा पादुकाभिर्वा यानं भगवतो गृहे॥३६॥
देवोत्सवेषु सेवा च अप्रणामस्तदग्रतः। उच्छिष्टे चैव चाशौचे भगवद्वन्दनादिकम्॥३७॥
एकहस्तप्रणामश्च तत्पुरस्तात्प्रदक्षिणम्। पादप्रसारणञ्चाग्रे तथा पर्यङ्कसेवनम्॥३८॥
शयनं भक्षणं चापि मिथ्याभाषणमेव च। उच्चैर्भाषामिथो जल्पो रोदनानि च विग्रहः॥३९॥
निग्रहानुग्रहौ चैव स्त्रीषु साकूतभाषणम्। कम्बलावरणं चैव परनिन्दा परस्तुतिः॥४०॥
अश्लीलभाषणञ्चैव अधोवायुविमोक्षणम्। शक्तौ गौणोपचारश्चाप्यनिवेदितभक्षणम्॥४१॥
तत्तत्कालोद्भवानां च फलादीनामनर्पणम्। विनियुक्तावशिष्टस्य प्रदानं व्यञ्जनस्य यत्॥४२॥
स्पष्टीकृत्याशनं चैव परनिन्दा परस्तुतिः। गुरौ मौनं निजस्तोत्रं देवतानिन्दनं तथा॥४३॥
अपराधास्तथा विष्णोर्द्वात्रिंशत्परिकीर्तिताः॥४४॥
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया। तवाहमिति मां मत्वा क्षमस्व मधुसूदन॥४५॥
इति मन्त्रं सामुच्चार्य प्रणमेद्दण्डवद्भुवि। अपराधसहस्राणि क्षमते सर्वदा हरिः॥४६॥
सायं प्रातर्द्विजातीनां श्रुत्युक्तमशनं तथा। विष्णुभक्तावशिष्टस्य दिनपापात्प्रमुच्यते॥४७॥

अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुः खादयेन्मां समुच्चरन्।
एवं ज्ञात्वा तु यो भुङ्क्ते सोऽन्नदोषैर्न लिप्यते॥४८॥

अलावुं वर्त्तुलाकारं मसूरं च सवल्कलम्। तालं शुक्लं च वृन्ताकं न खादेद्वैष्णवो नरः॥४९॥

है, या जो गरुड घंटी को भगवान् वासुदेव के समक्ष नहीं रखता है, वह कलियुग में भागवत नहीं है। सवारी से या खडाऊँ पहनकर जो मन्दिर में जाता है, या देवोत्सव में सेवा करता है, भगवान् के सामने प्रणाम नहीं करता है, जूठे मुँह या अपवित्रावस्था में श्रीभगवान् की वन्दना आदि करता है॥३५-३७॥ एक हाथ से भगवन् को प्रणाम करता है, या भगवान् के सामने पैरा फैलाकर बैठता है, भगवान् के सामने पलङ्ग पर बैठता है ये भगवदपराध है॥३८॥ भगवान् के सामने सोना भोजन करना, झूठ बोलना, जोर-जोर से परस्पर में बोलना, भगवान् के सामने रोना या झगड़ा करना, किसी का निग्रह करना या किसी पर अनुग्रह करना, स्त्रियों के साथ गुप्त बातें करना, कम्बल का पर्दा लगाना, दूसरों की निन्दा या स्तुति करना॥३९-४०॥ अश्लील बातें करना, या अपना वायु छोड़ना, शक्ति रहने पर गौणोपचार करना, भगवान् के भोग लगाये बिना किसी चीज को खा लेना॥४१॥ विभिन्न कालों में उत्पन्न होने वाले फलों का भोग नहीं लगाना; बाँटने से बँचे हुए व्यञ्जन को प्रदान करना॥४२॥ सबों के समक्ष खाना, दूसरे की निन्दा करना अथवा स्तुति करना, गुरु को देखकर भी मौन रहना, प्रणाम न करना, आत्म प्रशंसा करना, देवता की निन्दा करना, ये भगवान् विष्णु के प्रति बत्तीस अपराध हैं॥४३-४४॥ हे भगवन् मधुसूदन! मैं रात-दिन हजारों अपराध करता हूँ मैं आपकी अपनी वस्तु हूँ यही मानकर आप मुझे क्षमा करें॥४५॥ इस मन्त्र का उच्चारण करके श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करें। श्रीहरि हजारों अपराधों को सदा क्षमा करते रहते हैं॥४६॥ ब्राह्मण को चाहिए कि वह सायं काल और प्रातःकाल श्रुति विहित भोजन करे। भगवान् विष्णु के भक्त के खाने से वचे हुए अन्न को खाने वाला पापों से मुक्त हो जाता है॥४७॥ अन्न ब्रह्मा है अन्न का रस विष्णु स्वरूप है, यह सोचकर जो मेरा स्मरण करते हुए भोजन करता है इस तरह से जानने वाला अन्न के दोषों से मुक्त हो जाता है॥४८॥ गोल लौकी, छिलके से युक्त मसूर, ताल फल,

वटाश्वत्थार्कपत्रेषु कुम्भीतिन्दुकपत्रयोः। कोविदारे कदम्बे च न खादेद्वैष्णवो नरः ॥५०॥
श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे त्यजेत्। आश्विने मासि दुग्धं च कार्तिके चामिषं त्यजेत्॥५१॥
दग्धमन्नं तु जम्बीरं यद्विष्णोरनिवेदितम्। बीजपूरं च शाकं च प्रत्यक्षलवणं तथा ॥५२॥
यदि दैवाच्च भुञ्जीत तदा तन्नाम संस्मरेत्। हैमन्तिकं सिता स्विन्नं धान्यं मुद्गास्तिला यवाः॥५३॥
कलापकङ्गुनीवाराः शाकं च हिमलोचिका ।
कालशाकं च वास्तूकं मूलकं रक्तकेतरम् ॥५४॥
लवणे सिन्धुसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी। पयोऽनुद्धृतसारं च पनसाम्रहरीतकी ॥५५॥
पिप्पलीजीरकं चैव नागरङ्गकतिन्तिडी। कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम्॥५६॥
अतैलपक्वं मुनयो हविष्यान्नं प्रचक्षते। तुलसीपत्रपुष्पाद्यैर्माल्यं वहति यो नरः॥५७॥
विष्णु तमपि जानीयात्सत्यं सत्यं न संशयः ।
धात्रीवृक्षं समारोप्य विष्णुतुल्यो भवेन्नरः ॥५८॥
कुरुक्षेत्रं विजानीयात्सर्द्धं हस्तशतत्रयम्। तुलसीकाष्ठघटितै रुद्राक्षाकारकारितैः॥५९॥
निर्मितां मालिकां कण्ठे निधायार्चनमारभेत् ।
तथाऽऽमलकमालां च सम्यक्पुष्करमालिकाम् ॥६०॥
कण्ठे मालां च यत्नेन धारयोद्विष्णुपूजकः ।
निर्माल्यं तुलसीमालां शिरस्यपि च धारयेत् ॥६१॥
निर्माल्यचन्दनेनाङ्गमङ्कयेत्तस्य नानभिः। ललाटे च गदा धार्या मूर्ध्नि चापं शरस्तथा ॥६२॥

बैगन, इन सबों को वैष्णवों को नहीं खाना चाहिए ॥४९॥ बड़, पीपल तथा आक के पत्ते में, कुम्भी तथा तिन्दुक के पत्ते पर कोविदार और कदम्ब के पत्ते पर वैष्णव को नहीं खाना चाहिए ॥५०॥ श्रावण के महीने में शाक त्याग दे, भाद्रपद के महीने में दही न खाय, आश्विन के महीने में दुग्ध न पिये, और कार्तिक के महीने में मांस का त्याग कर देना चाहिए ॥५१॥ जला हुआ अन्न, जाम्बीर, भगवान् को भोग नहीं लगाया गया अन्न, बीजपूर, शाक, ऊषर (रेह) ॥५२॥ यदि दैववशात् इन सबों को खा भी ले तो भगवान् के नामों का स्मरण करना चाहिए। हेमन्तमास का फल, पिघली हुयी चीनी, धान्य, मूङ्ग और तिल, यव ॥५३॥ कलाप, कङ्गु, नीवार, शाक, हिलमोचिका, काला साग, वास्तूक, मूली, रक्तकेतर, सिन्धु तथा समुद्र के नमक, गौं की दही तथा घी जिसमें से मक्खन नहीं निकाला गया हो इस प्रकार का दूध, कटहल, आम तथा हरे ॥५४-५५॥ पिप्पली, जीरा, नारङ्गी, इमली, केले का फल, लवली, आँवला ये सभी फल ईख का रस ॥५६॥ बिना तेल में पकाये हुए भी इन सबों को मुनियों ने हविष्य कहा है। भगवान् के लिए तुलसी पत्र, पुष्प तथा माला आदि को जो मनुष्य लाता है ॥५७॥ उसको भी विष्णु ही जानना चाहिए इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है। आँवले का पेड़ रोपने वाला मनुष्य विष्णु के समान हो जाता है ॥५८॥ उसके सन्निकट की साढे तीन सौ हाथ की भूमि कुरुक्षेत्र के समान पवित्र हो जाती है। रुद्राक्ष के आकार के बनाये गये तुलसी की लकड़ी से बनायी माला को गले में धारण करके पूजन करे। आँवले की माला, और कमल की माला ॥५९-६०॥ को भगवान् विष्णु की पूजा करने वाले को अपने गले में धारण करना चाहिए। उसे भगवान् पर चढ़ायी हुयी तुलसी की माला को अपने शिर पर धारण

नन्दकं चैव हृन्मध्ये शङ्खं चक्रं भुजद्वये । शङ्खचक्रान्वितो विप्रः श्मशाने म्रियते यदि ॥६३॥
प्रयागे या गतिः प्रोक्ता सा गतिस्तस्य निश्चिता ।
यो धृत्वा तुलसीपत्रं शिरसा विष्णुतत्परः ॥६४॥
करोति सर्वकार्याणि फलमाप्नोति चाक्षयम् ।
तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितः कर्म आचरन् ॥६५॥
पितॄणां देवतानां च कृतं कोटिगुणं भवेत्। निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठनिर्मिताम्॥६६॥
वहते यो नरो भक्त्या तस्य नश्यति पातकम् ।
पाद्यादिभिरथाभ्यर्च्य इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥६७॥
या दृष्टा निखिलाघसङ्घशमनी स्पृष्टा वपुः पावनी,
रोगाणामभिवन्दितानिरसनी सिक्तांतकत्रासिनी ।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता,
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः ॥६८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वृन्दावनमाहात्म्ये देवीश्वरसंवादे
तिलकादिनिर्णयो नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

* * *

करना चाहिए ॥६१॥ भगवान् पर चढ़ाये गये चन्दन को भगवान् के नामों का उच्चारण करके अपने अङ्गों में लगाना चाहिए । ललाट में गदा धारण करे और शिर पर धनुष बाण धारण करे ॥६२॥ हृदय में नंदक को धारण करे, दोनों भुजाओं पर शङ्ख और चक्र धारण करना चाहिए । शङ्ख चक्रधारी ब्राह्मण यदि श्मशान में भी मर जाय तो ॥६३॥ उसकी भी वही गति होती है जो गति प्रयाग में मरने वालों की होती है । जो भगवान् विष्णु का भक्त अपने शिर पर तुलसी पत्र को धारण करके ॥६४॥ सभी कार्यों को करता है, उसको अक्षय फल की प्राप्ति होती है । तुलसी की लकड़ी की माला को धारण करके देवकार्य और पितृकार्य करने वाले को करोड़ गुना फल प्राप्त होता है । तुलसी के काष्ठ से बनी हुयी माला को भगवान् केशव को चढ़ाकर ॥६५-६६॥ जो भक्तिपूर्वक उस माला को धारण करता है उसके पाप विनष्ट हो जाते हैं तुलसी की माला पाद्य आदि उपचारों से पूजा करके निम्नांकित मंत्र को पढ़ ॥६७॥ **या दृष्टा० इत्यादि** अर्थात् जिसको देखने मात्र से सभी पाप समूह विनष्ट हो जाते हैं, जिसका स्पर्श करने से शरीर पवित्र हो जाता है, वन्दना करने से जो रोगों का विनाश करती हैं, सींचने से जो यमराज को भयभीत बना देती है, रोपने वाले को भगवान् कृष्ण का सान्निध्य प्रदान करती हैं, तथा श्रीभगवान के चरणों पर चढ़ाये जाने पर मोक्ष प्रदान करती है, उस तुलसी देवी को नमस्कार है ॥६८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवे पतालखण्ड के वृन्दावन माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में शिव-पार्वती संवादान्तर्गत तिलक आदि का निर्णय नामक उनासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७९॥

* * *

अस्सीवाँ अध्याय

पार्वत्युवाच

घोरे कलियुगे प्राप्ते विषयग्राहसङ्कुले। पुत्रदारधनाद्यार्त्तैस्तत्कथं धार्यते विभो ! ॥
तदुपायं महादेव ! कथयस्व कृपानिधे ! ॥१॥

ईश्वर उवाच

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्। हरे राम हरेकृष्ण कृष्णकृष्णेति मङ्गलम्॥२॥
एवं वदन्ति ये नित्यं न हि तान्बाधने कलिः।
अन्तरान्तरकर्माणि कृत्वा नामानि च स्मरेत् ॥३॥
कृष्णकृष्णेति कृष्णेति कृष्णेत्याह पुनः पुनः।
मन्नाम चैव त्वन्नाम योजयित्वा व्यतिक्रमात् ॥४॥
सोऽपि पापात्प्रमुच्येत तूलराशेरिवानलः। जयाद्येतत्त्वया वाऽप्यथवा श्रीशब्दपूर्वकम्॥५॥
तच्च मे मङ्गलं नाम जपन्पापात्प्रमुच्यते। दिवा निशि च सन्ध्यायां सर्वकालेषु संस्मरेत् ॥६॥
अहर्निशं स्मरन्रामं कृष्णं पश्यति चक्षुषा। अशुचिर्वा शुचिर्वाऽपि सर्वकालेषु सर्वदा॥७॥
नामसंस्मरणादेव संसारान्मुच्यते क्षणात्। नानापराधयुक्तस्य नामापि च हरत्यघम् ॥८॥
यज्ञव्रततपोदानं साङ्गं नैव कलौ युगे। गङ्गास्नानं हरेर्नामनिरपायमिदं द्वयम्॥९॥
हत्यायुतं पापसहस्रमुग्रं गुर्वङ्गनाकोटिनिषेवणञ्च।
स्तेयान्यथान्यानि हरेः प्रियेण गोविन्दनाम्ना न च सन्ति भद्रे ! ॥१०॥

कलियुग में श्रीहरि नाम का माहात्म्य

पार्वतीजी ने कहा— हे विभो ! विषय रूपी ग्राहों से भरे हुए भयङ्कर कलियुग के आने पर पुत्र पत्नी तथा धन आदि के द्वारा आर्त बने जीव कैसे जीवन धारण करते हैं ? हे महादेव ! उसका उपाय आप कृपा करके बतलायें ॥१॥ **ईश्वर महादेवजी ने कहा**— जो लोग सदैव, हरे राम ! हरे कृष्ण इत्यादि श्रीभगवान् का मङ्गलमय नाम का उच्चारण करते है उनको कलियुग बाधित नहीं करता है। बीच-बीच में कर्मों को करते हुए श्रीभगवान् के नामों का स्मरण करते रहना चाहिए ॥२-३॥ मेरे तथा तुम्हारे (पार्वतीजी के) नामों को जोड़कर बिना किसी क्रम के ही बार-बार कृष्ण-कृष्ण इस नाम का उच्चारण करना चाहिए। भगवान् के नाम के साथ श्रीशब्द जोड़े और जय आदि शब्दों का उच्चारण करे। इस तरह से मेरे मङ्गलमय नाम का जप करने वाला मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है। अतएव दिन में रात में संध्या के समय भी सभी कालों में नामों का स्मरण करता रहे ॥४-६॥ जो रात में भगवान् श्रीराम के नाम का जप करता है वह अपनी आँखों से श्रीभगवान् का सदा साक्षात्कार करता है। चाहे चह पवित्र हो या अपवित्र हो ॥७॥ अनेक प्रकार के अपराधों को करने वाले के भी पापों को नाम विनष्ट कर देते हैं वह नाम का स्मरण करने मात्र से संसार से मुक्त हो जाता है ॥८॥ कलियुग में अङ्गों सहित, यज्ञ, दान, तप और व्रत का होना असम्भव है, किन्तु श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण करने में और गङ्गाजी में स्नान करने में किसी प्रकार की बाधा नहीं है ॥९-१०॥ मनुष्य पवित्र हो, अपवित्र हो चाहे किसी भी अवस्था में हो, जो मनुष्य भगवान्

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥११॥
नामसंस्मरणादेव तथा तस्यार्थचिन्तनात्। सौवर्णीं राजतीं वापि तथा पैष्टीं स्रगाकृतिम् ॥१२॥
पादयोश्चिह्नितां कृत्वा पूजां चैव समारभेत्। दक्षिणस्य पदोऽङ्गुष्ठमूले चक्रं बिभर्ति यः ॥१३॥
तत्र नम्रजनस्यापि संसारच्छेदनाय च। मध्यामाङ्गुलिमूले तु धत्ते कमलमच्युतः ॥१४॥
ध्यातृचित्तद्विरेफाणां लोभनायातिशोभनम्। पद्मस्याधो ध्वजं धत्ते सर्वानर्थजयध्वजम् ॥१५॥
कनिष्ठामूलतो वज्रं भक्तपापौधभेदनम्। पार्श्वमध्येऽङ्कुशं भक्तचित्तेभमदकारणम् ॥१६॥
भोगसम्पन्मयं धत्ते यवमङ्गुष्ठपर्वणि । मूले गदां च पापाद्रिभेदनीं सर्वदेहिनाम् ॥१७॥
सर्वविद्याप्रकाशाय धत्ते स भगवानजः । पद्मादीन्यपि चिह्नानि तत्र दक्षेण यत्पुनः ॥१८॥
वामपादे वसेत्सोऽयं बिभर्ति करुणानिधिः। तस्माद्गोविन्दमाहात्म्यमानन्दरससुन्दरम् ॥१९॥
शृणुयात्कीर्त्तयेन्नित्यं स निर्मुक्तो न संशयः। मासकृत्यं प्रवक्ष्यामि विष्णोः प्रीतिकरं परम्॥२०॥
ज्येष्ठे तु स्नापनं कुर्याच्छ्रीविष्णोर्यत्नतः शुचिः ।
दैनन्दिनं तु दुरितं पक्षमासर्त्तुवर्षजम् ॥२१॥
ब्रह्महत्यासहस्राणि ज्ञाताज्ञातकृतानि च । स्वर्णस्तेयसुरापानगुरुतल्पायुतानि च ॥२२॥
कोटिकोटिसहस्राणि ह्युपपापानि यानि च । सर्वाण्यथ प्रणश्यन्ति पौर्णमास्यां तु वासरे ॥२३॥

पुण्डरीकाक्ष का नाम स्मरण करता है, वह भीतर तथा बाहर से शुद्ध हो जाता है ॥११॥ श्रीभगवान् के नाम का स्मरण तथा उन नामों के अर्थों का चिन्तन, सुवर्ण अथवा चाँदी की पैष्टी की माला के समान है । श्रीभगवान् के चरणों का चिह्न बनाकर (तिलक लगाकर) पूजा प्रारम्भ करनी चाहिए । श्रीभगवान् के दाहिने पैर के अङ्गूठे के मूल में जो चक्र रहा करता है ॥१२-१३॥ उसका नमस्कार करने वाले भक्त का संसार का बन्ध विच्छिन्न हो जाता है । भगवान् के दाहिने चरण की मध्यमाङ्गुलि के मूल में कमल का चिह्न है॥१४॥ वह ध्यान करने वाले मनुष्य के चित्त रूपी भ्रमर को आकृष्ट करने वाला है । उस पद्म के नीचे ध्वज का चिह्न है । वह सभी अनर्थों पर विजय प्राप्त करने का विजय ध्वज है ॥१५॥ कनिष्ठा अङ्गुलि के मूल में भक्तों के पाप समूह को विनष्ट करने वाला वज्र का चिह्न है । उसके बगल में अङ्कुश का चिह्न है, जो भक्तों के चित्त रूपी हाथी को मदमत्त बना देता है ॥१६॥ अङ्गूठे के पर्व में यव का चिह्न है जो भोगों की सम्पन्नता को सूचित करता है । उसके मूल में गदा का चिह्न है जो समस्त शरीरधारियों के पाप रूपी पहाड़ को विनष्ट करने वाला है ॥१७॥ अजन्मा श्रीभगवान् दाहिने पैर में जो पद्म इत्यादि के चिह्नों को धारण करते हैं उससे सभी विद्याओं का प्रकाश होता है ॥१८॥ वे ही चिह्न श्रीभगवान् के बायें पैर में भी है । अतएव भगवान् गोविन्द का माहात्म्य आनन्द रूपी रस से सुन्दर है ॥१९॥ इसका जो स्मरण करता है अथवा कीर्त्तन करता है वह मुक्त हो जाता है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । अब मैं भगवान् विष्णु को अत्यधिक प्रसन्न करने वाले मासों के कृत्यों को बतलाता हूँ ॥२०॥ ज्येष्ठ मास में भगवान् विष्णु को प्रतिदिन, स्नान कराना चाहिए उससे प्रतिदिन के मास भर के या ऋतुभर के या वर्ष भर के पापों का विनाश होता है ॥२१॥ ऐसा करने से हजारों ब्रह्म हत्यायें जो जानकर अथवा बिना जाने ही हो जाते हैं, सुवर्ण की चोरी, सुरापान तथा दशो हजार गुरुतल्प गमन, करोड़ों-करोड़ उपपातक होते

आसिञ्चेदच्युतं मूर्ध्नि तदैतत्कलशोदकम् । पुरुयसूक्तमन्त्रेण पावमानीभिरेव च ॥२४॥
नालिकेरोदकेनाथ तथा तालफलाम्बुना । रत्नोदकेन गन्धेन तथा पुष्पोदकेन च ॥२५॥
पञ्चोपचारैराराध्य यथा विभवविस्तरैः। घं घण्टायै नम इति घण्टावाद्यं प्रदापयेत् ॥२६॥
पतितस्य महाध्वानध्वस्तपातकसञ्चय । पाहि मां पापिनं घोरसंसारार्णवपातिनम्॥२७॥
य एवं कुरुते विद्वान्ब्राह्मणः श्रोत्रियः शुचिः ।
सर्वपापैः प्रमुच्येत विष्णुलोकं स गच्छति ॥२८॥
आषाढशुक्लैकादश्यां कुर्यात्स्वापमहोत्सवम् ।
आषाढे च रथं कुर्याच्छ्रावणे श्रवणाविधिम् ॥२९॥
भाद्रे च जन्मदिवस उपवासपरो भवेत् । प्रसुप्तस्य परीवर्तमाश्विने मासि कारयेत्॥३०॥
उत्थानं श्रीहरेः कुर्यादन्यथा विष्णुद्रोहकृत। शुभे चैवाश्विने मासि महामायां च पूजयेत् ॥३१॥
सौवर्णी राजतीं वाऽपि विष्णुरूपां बलिं बिना ।
हिंसाद्वेषौ न कर्तव्यौ धर्मात्मा विष्णुपूजकः ॥३२॥
कार्त्तिके पुण्यमासे च कामतः पुण्यमाचरेत् ।
दामोदराय दीपं च प्रांशुस्थाने प्रदापयेत् ॥३३॥
सप्तवर्तिप्रमाणेन दीपः स्याच्चतुरङ्गुलः । पक्षान्ते च प्रकर्तव्या दीपमालावलिः शुभा ॥३४॥
मार्गशीर्षे सिते पक्षे षष्ठ्यां च सितवस्त्रकैः ।
पूजयेज्जगदीशं च ब्रह्माणं च विशेषतः ॥३५॥

हैं वे सबके सब पूर्णिमा के दिन विनष्ट हो जाते हैं ॥२२-२३॥ उस समय कलश में जल भर कर पुरुषसूक्त तथा पावमानी सूक्त पढ़ते हुए भगवान् के शिर पर जल डालना चाहिए ॥२४॥ श्रीभगवान् की पहले पञ्चोपचार से पूजन अपने विभव के अनुसार करके **'घं घण्टायै नमः'** इस मन्त्र से घण्टा बजाते हुए भगवान् को पहले नारियल के जल से फिर ताल फल के जल से, फिर रत्नोदक से, उसके बाद गन्धोदक से अन्त में पुष्पोदक से श्रीभगवान् को स्नान कराये ॥२५-२६॥ फिर **पतितस्य इत्यादि** मन्त्र को पढ़े । इस मन्त्र का अर्थ है कि हे पतितों के पाप समूह को विनष्ट करने वाले महा ध्वान ! भयङ्कर संसार सागर में गिरे हुए मुझ घोर पापी की रक्षा आप करें ॥२७॥ जो पवित्र वैदिक विद्वान ऐसा करते हैं, वे सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाते हैं ॥२८॥ आषाढ शुक्ल एकादशी के दिन शयन महोत्सव करना चाहिए । आषाढ में श्रीभगवान् को रथ पर बैठाये और श्रावण मास में श्रवणविधि को करना चाहिए॥२९॥ भाद्रपद में जन्माष्टमी के दिन उपवास करना चाहिए । सोए हुए श्रीभगवान् का पार्श्वपाखिर्तन महोत्सव आश्विन मास में करना चाहिए ॥३०॥ उसके बाद कार्तिक मास में शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन भी भगवान् का उत्थापन महोत्सव करे । ऐसा नहीं करने वाला भगवान् का द्रोह करने वाला होता है । आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में महामाया की पूजा करनी चाहिए ॥३१॥ सुवर्ण अथवा चाँदी की विष्णुमूर्ति से बलि के बिना ही न तो हिंसा करे न द्वेष करे । धर्मात्मा भगवान् विष्णु की पूजा करने वाले को पवित्र कार्तिक मास में अपनी इच्छानुसार पुण्य करना चाहिए । किसी ऊँचे स्थान पर भगवान् दामोदर की प्रसन्नता के लिए दीपदान करना चाहिए ॥३२-३३॥ उसमें सात बत्तियाँ लागये दीपक को चार अङ्गुल ऊँचा

पौषे पुष्पाभिषेकं च वर्जयेच्चन्दनशलथम्। सङ्क्रान्त्यां माघमासे च साधिवासिततण्डुलान्॥३६॥
नैवेद्यं विष्णवे दद्यादिमंमन्त्रमुदीरयेत्। ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या देवदेवपुरःस्थितान् ॥३७॥
अभ्यर्च्य भगवद्भक्तान्द्विजांश्च भगवद्धिया। एकस्मिन्भोजिते भक्ते कोटिर्भवति भोजिता ॥३८॥
विप्रभोजनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं ध्रुवं भवेत्। पञ्चम्यां शुक्लपक्षे तु स्नापयित्वा च केशवम्॥३९॥
पूजयित्वा विधानेन चूतपल्लवसंयुतैः। फलचूर्णैश्च विविधैर्वासितैः पटसाधितैः॥४०॥
काननं रमणीयं च प्रदीप्त दीपदीपितम्। द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बीरनारङ्गं च पूगकम् ॥४१॥
नालिकेरं च धात्रीं च पनसं च हरीतकीम् ।
अन्यैश्च वृक्षखण्डैश्च सर्वर्तुकुसुमान्वितैः ॥४२॥
अन्यैश्च विविधैश्चैव फलपुष्पसमन्वितैः। वितानैः कुसुमोद्दामैर्वारिपूर्णघटैस्तथा॥४३॥
चूतशाखोपशाखाभिः शोभितं छत्रचामरैः। जयकृष्णेतिसंस्मृत्यप्रदक्षिणपुरस्सरम् ॥४४॥
विशेषतः कलियुगे दोलोत्सवो विधीयते। फाल्गुने च चतुर्दश्यामष्टमे यामसंज्ञके॥४५॥
अथवा पौर्णमास्यां तु प्रतिपत्सन्धिसंज्ञके। पूजयेद्विधिवद्भक्तया फलगुचूर्णैश्चतुर्विधैः ॥४६॥
सितरक्तैर्गौरपीतैः कर्पूरादिविमिश्रितैः। हरिद्रारागयोगाच्च रङ्गरूपैर्मनोहरैः ॥४७॥
अन्यैर्वारङ्गरूपैश्च प्रीणयेत्परमेश्वरम्। एकादश्यां समारभ्य पञ्चम्यां तं समापयेत्॥४८॥
पञ्चाहानि त्र्यहानि वा दोलोत्सवो विधीयते ।
दक्षिणाभिमुखं कृष्णं दोलमानं सकृन्नराः ॥४९॥

होना चाहिए। कृष्ण पक्ष के अन्त में दीपमालिका महोत्सव करना चाहिए ॥३४॥ अगहन के महीने में शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को भगवान् विष्णु तथा ब्रह्माजी की विशेष रूप से उजले वस्त्र से पूजन करना चाहिए ॥३५॥ पौष मास में श्रीभगवान् को न तो पुष्पाभिषेक करे और न गीला चन्दन लगाये। माघ मास में सङ्क्रान्ति के दिन भगवान् को चावल में अधिवास कराये, भगवान् विष्णु को नैवेद्य समर्पित करे तथा श्रीभगवान् के समक्ष बैठे हुए ब्राह्मणों को भोजन कराये ॥३६-३७॥ भगवद् बुद्धि से भगवद् भक्तों तथा ब्राह्मणों की पूजा करें। एक भी भक्त को भोजन कराने से करोड़ों ब्राह्मणों को भोजन कराने का फल होता है ॥३८॥ ब्राह्मणों को भोजन कराने से पूजा में जो कमी होती है, उसकी पूर्ति हो जाती है। शुक्ल पक्ष की पञ्चमी तिथि को श्रीभगवान् को स्नान कराकर ॥३९॥ फल तथा पुष्प से युक्त आम के पल्लवों, फल के चूर्णों तथा अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्यों तथा वस्त्रों से विधि पूर्वक पूजा करके ॥४०॥ विशेष रूप से कलियुग में दोलोत्सव ऐसे मनोहर वन में करना चाहिए जिसमें द्राक्षा, ईख, केला, जम्बीर, नारङ्गी, सुपारी, नारियल, आँवला, कटहल, हरे तथा दूसरे प्रकार के वृक्ष, सभी ऋतुओं के पुष्प तथा दूसरे अनेक प्रकार के फल पुष्प विद्यमान हों। जिसमें चन्दोवा लगे हों, पुष्पों की सुगन्धि से युक्त जल से भरे-भरे घड़े हों। जो आम की शाखाओं और उपशाखाओं तथा छत्र एवं चामर से सुशोभित हो। भगवान् श्रीकृष्ण का जय-जयकार करते हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिए। फाल्गुनमास की चतुर्दशी तिथि को आठवे प्रहर में ॥४१-४५॥ अथवा प्रतिपत् तिथि से युक्त पूर्णिमा तिथि को थोड़े-थोड़े चार प्रकार के चूर्णों से जो उजले, लाल, पीले तथा गौर वर्ण के हों, उनमें कर्पूर इत्यादि को मिश्रित कर दे, हल्दी के रङ्ग से मनोहर बने हुए रङ्गों से अथवा दूसरे रङ्गों से पूजा करके श्रीभगवान् को प्रसन्न करना चाहिए। इस उत्सव को

दृष्ट्वाऽपराधनिचयैर्मुक्तास्ते नात्र संशयः। निक्षिप्य जलपात्रे च मासि माधवसंज्ञके ॥५०॥
सौवर्णपात्रे रौप्ये वा ताम्रे वाप्यथ मृण्मये। तोयस्थं योऽर्चयेद्देवं शालग्रामसमुद्भवम् ॥५१॥
प्रतिमां वा महाभागे तस्य पुण्यं न गण्यते।
दमनारोपणं कृत्वा श्रीविष्णौ च समर्पयेत् ॥५२॥
वैशाखे श्रावणे भाद्रे कर्तव्यं वा तदर्पणम्।
पूर्वे पूर्वे तु वातस्थे दमनादिषु कर्मसु ॥५३॥
प्रकर्तव्यं विधानेन अन्यथा निष्फलं भवेत्। वैशाखे च तृतीयायां जलमध्ये विशेषतः ॥५४॥
अथवा मण्डले कुर्यान्मण्डपे वा बृहद्वने। सुगन्धचन्दनेनाङ्गं सुपुष्टं च दिने दिने ॥५५॥
यथा प्रयत्नतः कुर्यात्कृशाङ्गस्येव पुष्टिदम्। चन्दनागुरुह्रीबेरकृष्णकुङ्कुमरोचना ॥५६॥
जटामांसीमुरा चैव विष्णोर्गन्धाष्टकं विदुः। तैस्तैर्गन्धयुतैश्चापि विष्णोरङ्गानि लेपयेत् ॥५७॥
घृष्टं च तुलसीकाष्ठं कर्पूरागुरुयोगतः। अथवा केसरैर्योज्यं हरिचन्दनमुच्यते ॥५८॥
यात्राकाले च ये कृष्णं भक्त्या पश्यन्ति मानवाः।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥५९॥
सुगन्धमिश्रितैस्तोयैर्देवदेवं गलन्ति ये। अथवा पुष्पमध्ये तु स्थापयेज्जगदीश्वरम् ॥६०॥
वृन्दावनं तत्र गत्वा उपस्कृत्य फलानि च। विष्णुभक्तेन योग्येन भोजयेत्तदशेषतः ॥६१॥
नालिकेरफलं बीजकोशं चोद्धृत्य दापयेत्। घोण्टाफलं च पनसं कोशमुद्धृत्य दापयेत् ॥६२॥

एकादशी तिथि से प्रारम्भ करके पञ्चमी तिथि को समाप्त करे ॥४६-४८॥ अथवा पाँच दिन का या तीन दिन का दोलोत्सव करे। दक्षिणाभिमुख होकर झूलते हुए श्रीभगवान् का एक बार दर्शन करके मनुष्य अपराध समूहों से छूट जाता है इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है। चैत्र के महीने में हे महाभागे! श्रीभगवान् की प्रतिमा को जलपात्र में या सुवर्णपात्र में, या चाँदी के पात्र में या मिट्टी के पात्र में जल में स्थित करके शालग्राम भगवान् की पूजा करे। इस तरह जो श्रीभगवान् की पूजा करता है उसके पुण्य को बतलाता हूँ। दमनारोपण करके उसे भगवान् विष्णु को समर्पित करना चाहिए ॥४९-५२॥ अथवा उसके वैशाख मास में या श्रावण मास में या भाद्रपद मास में उसे समर्पित करे। अथवा पूर्व-पूर्व की हवा में दमनादि कर्मों को करना चाहिए। अन्यथा किया गया कर्म निष्फल हो जाता है। विशेष रूप से वैशाख शुक्ल तृतीया को ॥५३॥ जल में या मण्डल पर या मण्डल के भीतर या वन में सुगन्धित चन्दन से करने से अङ्गों की पुष्टि होती है। ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि श्रीभगवान् के कृश अङ्ग पुष्ट हों। चन्दन, अगरु, ह्रीबेर, काला कुङ्कुम, गोरोचन, जटामांसी और मुरा ये भगवान् विष्णु के अष्टगन्ध हैं। इन गन्धों का भगवान् विष्णु के अङ्गों में लेप करना चाहिए ॥५४-५७॥ कर्पूर और अगरु मिलाकर घिसे हुए तुलसी के काष्ठ के चन्दन को, अथवा केसर मिश्रित काष्ठ के चन्दन को हरिचन्दन कहते हैं ॥५८॥ जो मनुष्य यात्रा के समय भक्ति पूर्वक भगवान् कृष्ण का दर्शन करते हैं वे करोड़ों कल्प के पश्चात् भी संसार में नहीं आते हैं ॥५९॥ जो लोग सुगन्धित जल में श्रीभगवान् को बैठाते हैं अथवा जगदीश्वर को पुष्पों के बीच में स्थापित करते हैं, उनको जिस फल की प्राप्ति होती है, उसी फल की प्राप्ति के लिए वृन्दावन में जाकर उन्हीं फलों को विष्णु भक्त को खिलाना चाहिए उन्हें नारियल और बीजपूर को सुधार कर दे, घोण्टा फल

दध्ना विमिश्रितं चान्नं धृतेनाप्लुत्य दापयेत्। पाचितं पिष्टकं पूपमष्टादशघृतेन च॥६३॥
तैलैश्च तिलसंमिश्रैः फलं पक्वं प्रदापयेत् । यद्यदेवात्मनः प्रीतं तत्तदीशाय दापयेत्॥६४॥
दत्त्वा नैवेद्य वस्त्रादिनाददीतकथञ्चन । त्यक्तं च विष्णुमुद्दिश्य तद्भक्तेभ्यो विशेषतः॥६५॥
इति ते कथितं किञ्चित्समासेन महेश्वरि। गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति ॥६६॥

श्रीकृष्णरूपगुणवर्णनशास्त्रवर्णबोधाधिकार इह चेदलमन्यपाठैः ।
तत्प्रेमभावरसभक्तिविलासनामहारेषु चेत्खलु मनः किमु कामिनीभिः ॥
तच्चेतसा प्रभजतां व्रजवालकेन्द्रं वृन्दावनक्षितितलं यमुनाजलं च ।
तल्लोकनाथपदपङ्कजधूलिमिश्रलिप्तं वपुः किल वृथाऽगरुचन्दनाद्यैः ॥६८॥

इति श्रीपद्मपुराणे पञ्चमे पातालखण्डे उमामहेश्वरसंवादे वृन्दावनमाहात्म्येऽशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

◆

एकासीवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

सूत जीव चिरं साधो श्रीकृष्णचरितामृतम्। त्वया प्रकाशितं सर्वं भक्तानां भवतारणम् ॥१॥

और कटहल का कोआ खिलाये ॥६०-६२॥ दही मिलाकर तथा घी डालकर भोजन दे, अठारह पीण्डो या अठारह पूआ, तेल और तिल मिश्रित पका हुआ फल घी मिलाकर खिलाये । जो-जो वस्तु अपने को अच्छी लगे उन सबों को श्रीभगवान् को समर्पित करे ॥६३-६४॥ नैवेद्य तथा वस्त्र इत्यादि भगवान् को चढ़ाकर उसे कभी नहीं लेना चाहिए । छोड़े गये उन वस्त्रों आदि को विशेष रूप से भक्तों को प्रदान कर देना चाहिए ॥६५॥ हे महेश्वरि ! मैंने तुम्हें संक्षेप में वतलाया । इन वातों को अपनी योनि के समान गोपनीय रखना चाहिए ॥६६॥ भगवान् के रूप तथा गुणों का वर्णन करने वाले शास्त्रों के अध्ययन में मन लगे तो दूसरे पाठों से कोई लाभ नहीं है । श्रीभगवान् के प्रेम भाव, भक्ति विलास तथा नामों में मन लगा है तो फिर कामिनियों से उसे कौन सा प्रयोजन है ॥६७॥ व्रज के वालकों के स्वामी श्रीभगवान् का भजन करने वालों के लिए वृन्दावन की मिट्टी, यमुनाजी का जल तथा वृन्दावन के स्वामी के चरणों की धूलि से धूसरित शरीर के सामने अगरु एवं चन्दन आदि व्यर्थ हैं ॥६८॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के उमामहेश्वर संवादान्तर्गत वृन्दावन माहात्म्य वर्णन नामक अस्सीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८०॥

◆

श्रीकृष्ण मन्त्रों के अर्थ का वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे साधो ! सूतजी आप चिरंजीवी हों, आपने भक्तों को संसार से पार करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के चरित का प्रकाशन किया है ॥१॥ हे प्रभो ! जिसका श्रवण करने से भगवान्

श्रीकृष्णलीलां निखिलां ब्रूहि दैनन्दिनीं प्रभो ।
ययाऽऽकर्णितया साधो कृष्ण भक्तिर्विवर्द्धते ॥२॥
गुरोः शिष्यस्य मन्त्रस्य विधानं लक्षणं पृथक् ।
वदास्माकं महाभाग त्वं हि नः परमः सुहृत् ॥३॥

सूत उवाच

एकदा यमुनातीरे समासीनं जगद्गुरुम् । नारदः प्रणिपत्याह देवदेवं सदाशिवम् ॥४॥

नारद उवाच

देवदेव ! महादेव ! सर्वज्ञ ! जगदीश्वर! । भगवन्धर्मतत्त्वज्ञ ! कृष्णमन्त्रविदांवर ! ॥५॥
कृष्णमन्त्रा मया लब्धास्त्वत्तो ये च पितुः परे ।
ते सर्वे साधिता यत्नान्मन्त्रराजादयो मया ॥६॥
बहुवर्षसहस्रैस्तु शाकमूलफलाशिना । शुष्कपर्णाम्बुवाय्वादिभोजिना च निराशिना ॥७॥
स्त्रीणां सन्दर्शनालापवर्जिना भूमिशायिना । कामादिषड्गुणं जित्वा बाह्येन्द्रियनियम्यता ॥८॥
एवं कृतेऽपि नैवात्मा सन्तुष्टो मम शङ्कर । तद् ब्रूहि यत्प्रसिध्येत संस्काराद्यैर्विना प्रभो॥९॥
सकृदुच्चारणादेव ददाति फलमुत्तमम् । यदि योग्योऽस्मि देवेश ! तदा मे कृपया वद॥१०॥

शिव उवाच

साधु पृष्टं महाभाग त्वया लोकहितैषिणा । सुगोप्यमपि वक्ष्यामि मन्त्रचिन्तामणिं तव॥११॥
रहस्यानां रहस्यं यद् गुह्यानां गुह्यमुत्तमम्। न मया कथितं दैव्यै नाग्रजेभ्यः पुरा तव॥१२॥
वक्ष्यामि युगलं तुभ्यं कृष्णमन्त्रमनुत्तमम् । मन्त्रचिन्तामणिर्नाम युगलं द्वयमेव च ॥१३॥

श्रीकृष्ण में भक्ति बढ़ती है, आप श्रीकृष्ण भगवान् की सम्पूर्ण दैनन्दिनी लीला का वर्णन करें ॥२॥ आप अलग-अलग गुरु तथा शिष्य के विधान को तथा लक्षण को बतलायें । हे महाभाग ! आप हमलोगों के सर्वश्रेष्ठ सुहृद् हैं ॥३॥ **सूतजी ने कहा—** एक बार यमुनाजी के तट पर बैठे हुए जगद्गुरु सदाशिव से नारदजी ने साष्टाङ्ग प्रणाम करके पूछा ॥४॥ **नारदजी ने कहा—** हे देवदेव महादेव ! सर्वज्ञ जगदीश्वर ! हे धर्मतत्त्व के ज्ञाता भगवन् ! हे भगवान् श्रीकृष्ण के मन्त्रों को जानने वालों में श्रेष्ठ ॥५॥ मैंने आपसे तथा अपने पिताजी से जिन कृष्ण मन्त्रों को प्राप्त किया है उन मन्त्रराज आदि सभी मन्त्रों की मैंने प्रयत्न पूर्वक साधना की है ॥६॥ मैंने अनेक हजार वर्षो तक शाक, मूल और फलों को खाया, सूखे पत्ते, जल तथा वायु का भोजन किया, निराहार रहा ॥७॥ स्त्रियों का दर्शन और उनसे बातचित नहीं किया, पृथिवी पर सोता था, काम आदि छहों गुणों को जीतकर अपनी बाह्य इन्द्रियों को नियमित किया ॥८॥ हे शङ्करजी! ऐसा करने पर भी मेरे मन में सन्तोष नहीं हुआ । अतएव आप ऐसे मन्त्रों को बतलायें जिन सबों के लिए संस्कार आदि अपेक्षित न हों और सिद्धि की प्राप्ति हो जाय ॥९॥ तथा जो एक बार ही उच्चारण करने से उत्तम फल देता हो । हे देवेश ! यदि मैं योग्य अधिकारी हूँ तो कृपा करके आप मुझे उसे बतलाएँ॥१०॥ **शिवजी ने कहा—** हे महाभाग ! आप संसार का कल्याण करने वाले हैं, अतएव आप बहुत अच्छा प्रश्न किए हैं । मैं अत्यन्त गोपनीय भी मन्त्र चिन्तामणि को तुम्हें बतलाता हूँ ॥११॥ जो सर्वोत्तम रहस्य और सर्वाधिक गोपनीय हैं । उसको न तो मैंने पार्वती देवी को बतलाया है और न तो सनकादिक महर्षियों को

पर्याया अस्य मन्त्रस्य तथा पञ्चपदीति च । गोपीजनपदं वल्लभान्तं तु चरणानिति ॥१४॥
शरणं च प्रपद्ये च एष पञ्चपदात्मकः । मन्त्रचिन्तामणिः प्रोक्तः षोडशार्णो महामनुः ॥१५॥
नमो गोपीजनेत्युक्त्वा वल्लभाभ्यां वदेत्ततः ।
एतद्द्वयात्मको मन्त्रो दशार्णः खलु कथ्यते ॥१६॥
एतां पञ्चपदीं जप्त्वा श्रद्धयाऽश्रद्धया सकृत् ।
कृष्णप्रियाणां सान्निध्यं गच्छत्येव न संशयः ॥१७॥
न पुरश्चरणापेक्षा नास्यन्यासविधिक्रमः । न देशकालनियमो नारिमित्रादिशोधनम् ॥१८॥
सर्वेऽधिकारिणश्चात्र चाण्डालान्ता मुनीश्वर । स्त्रियः शूद्रादयश्चापि जडमूकादिपङ्गवः ॥१९॥
अन्ये हूणाः किराताश्च पुलिन्दाः पुष्कलसास्तथा ।
आभीरा यवनाः कङ्काः खसाद्याः पापयोनयः ॥२०॥
दम्भाहङ्कारपरमाः पापाः पैशून्यतत्पराः । गोब्राह्मणादिहन्तारो महोपपातकान्विताः ॥२१॥
ज्ञानवैराग्यरहिताः श्रवणादिविवर्जिताः । एते चान्ये च सर्वे स्युर्मनोरस्याधिकारिणः ॥२२॥
यदिभक्तिर्भवेदेषां कृष्णे सर्वेश्वरेश्वरे । तदाधिकारिणः सर्वे नान्यथा मुनिसत्तम ! ॥२३॥
याज्ञिको दाननिरतः सर्वतन्त्रोपसेवकः । सत्यवादी यतिर्वापी वेदवेदाङ्गपारगः ॥२४॥
ब्रह्मनिष्ठः कुलीनो वा तपस्वी व्रततत्परः । अत्राधिकारी न भवेत्कृष्णभक्तिविवर्जितः ॥२५॥
तस्मादकृष्णभक्ताय कृतघ्नाय न मानिने । न च श्रद्धाविहीनाय वक्तव्यं नास्तिकाय च ॥२६॥

वतलाया है ॥१२॥ मैं तुमको दो सर्वोत्तम कृष्ण मन्त्रों को वतलाता हूँ । उसी को मन्त्र चिन्तामणि मन्त्र युगल मन्त्र और द्वयमन्त्र भी कहते हैं ॥१३॥ इस मन्त्र को पञ्चपदी मन्त्र भी कहते हैं । इस मन्त्र का पहला और दूसरा पद है गोपीजन वल्लभ, चरणान्, तीसरा पद है । चौथा पद है शरणं और प्रपद्ये पाँचवाँ पद है । इस तरह इस मन्त्र का स्वरूप है— **गोपीजनवल्लभचरणान्शरणं प्रपद्ये** इसे चिन्तामणि मन्त्र कहते हैं। इस महामन्त्र में सोलह वर्ण हैं ॥१४-१५॥ इसीतरह **नमो गोपीजन** कहकर **बल्लभाभ्याम्** **'नमो गोपीजनबल्लभाभ्याम्'** यह दो पदों वाला मन्त्र है । इसमें दश अक्षर हैं ॥१६॥ पञ्चपदी का श्रद्धापूर्वक अथवा विना श्रद्धा के ही एक वार जपकर मनुष्य भगवान् श्रीकृष्ण के भक्तों का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥१७॥ इनके न तो पुरश्चरण की अपेक्षा है और न न्यास विधि की आवश्यकता है । देश काल तथा शत्रु एवं मित्र के भी शोधन की आवश्यकता नहीं है ॥१८॥ हे मुनीश्वर! चाण्डाल आदि सभी मनुष्य इस मन्त्र के अधिकारी हैं । स्त्री, शूद्र, जड़, गूंगे, लङ्गडे, हूंण, किरात, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, यवन, कङ्क तथा खस आदि ये पापियों की जो योनियाँ है उन योनियों के जीव हैं ॥१९-२०॥ दम्भी, अहङ्कारी, पापी, चुगलखोर, गौ और ब्राह्मणों को मारने वाले, महान् उपपातकों से युक्त जीव ॥२१॥ ज्ञान तथा वैराग्य से रहित, श्रवण इत्यादि से रहित जीव, ये सभी तथा दूसरे भी मनुष्य इस मन्त्र के अधिकारी हैं ॥२२॥ भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति यदि इन सवों में है तव ही ये सब जीव इस मन्त्र के अधिकारी होते हैं, अन्यथा नहीं । याज्ञिक, दानी सभी शास्त्रों के ज्ञाता, सत्यवादी, संन्यासी, वेदों तथा वेदान्तों में पारङ्गत विद्वान, ब्रह्मनिष्ठ, कुलीन, तपस्वी, व्रती भी यदि भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति से रहित हैं तो वे इस मन्त्र के अधिकारी नहीं हैं ॥२३-२५॥ अतएव जो भगवान् श्रीकृष्ण का भक्त नहीं हैं, ऐसे कृतघ्न, घमण्डी तथा

नचाशुश्रूषवे वाच्यं नासंवत्सरसेविने । श्रीकृष्णोऽनन्यभक्ताय दम्भलोभविवर्जिने ॥२७॥
कामक्रोधविमुक्ताय देयमेतत्प्रयत्नतः । ऋषिश्चैवाहमेतस्य गायत्री च्छन्द उच्यते ॥२८॥
देवतावल्लवीकान्तो मन्त्रस्य परिकीर्तितः । सप्रियस्य हरेर्दास्ये विनियोग उदाहृतः ॥२९॥
अचक्राद्यैस्तथा मन्त्रैः पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत् ।
अथवाऽपि स्वबीजेन कराङ्गन्यासकौ चरेत् ॥३०॥
मन्त्रस्य प्रथमो वर्णो बिन्दुना मूर्ध्नि भूषितः ।
गमित्येवं भवेद्बीजंनमः शक्तिरिहोदिता ॥३१॥
अन्तिमार्णैर्दशाङ्गानि तैरेव च तथाऽर्चनम् । गन्धपुष्पादिभिस्तञ्च जलैरैवाप्यसम्भवे ॥३२॥
न्यासपूर्वविधानेन कर्तव्यं हरितुष्टये । अत एवास्य मन्त्रस्य न्यासाद्यन्ये वदन्ति च ॥३३॥
सकृदुच्चारणादेव कृतकृत्यत्वदायिनः । तथाऽपि दशधा नित्यं जपाद्यर्थं प्रविन्यसेत् ॥३४॥
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रस्यास्य द्विजोत्तम ! ।
पीताम्बरं घनश्यामं द्विभुजं वनमालिनम् ॥३५॥
बर्हिबर्हकृतोत्तंसं शशिकोटिनिभाननम् । घूर्णायमाननयनं कर्णिकारावतंसिनम् ॥३६॥
अभितश्चन्दनेनाथ मध्ये कुङ्कुमबिन्दुना । रचितं तिलकं भाले बिभ्रतं मण्डलाकृतिम् ॥३७॥
तरुणादित्यसङ्काशकुण्डलाभ्यां विराजितम् । घर्माम्बुकणिकाराजद्दर्पणाभकापोलकम् ॥३८॥

श्रद्धा विहीन व्यक्ति को इस मन्त्र को नहीं बतलाना चाहिए । नास्तिक तथा जो सुनना न चाहे, जिसने संवत्सर पर्यन्त गुरु की सेवा नहीं की है, उस को भी इसको नहीं बतलाना चाहिए । जो भगवान् श्रीकृष्ण का आनन्य भक्त हो, दम्भ और लोभ से रहित हो, काम और क्रोध से रहित हो उसीको इस मन्त्र को प्रयत्न पूर्वक बतलाना चाहिए । इस मन्त्र का ऋषि मैं (शिवजी) हूँ, इसका गायत्री छन्द हैं ॥२६-२८॥ इस मन्त्र के देवता गोपीकान्त हैं । इस मन्त्र का श्रीहरि की प्रियतमा सहित श्रीभगवान् की दासता के प्रदान में विनियोग होता है ॥२९॥ आचक्र आदि मन्त्रों से इसके पञ्चाङ्ग की कल्पना करे अथवा श्रीभगवान् के बीज मन्त्रों से करन्यास तथा अङ्गन्यास करे ॥३०॥ इसका अनुस्वार से युक्त प्रथम वर्ण गं बीज है, नमः शक्ति है ॥३१॥ अन्तिम वर्णों के साथ दश अङ्ग होते हैं । उन सबों से ही इसकी पूजा गन्ध तथा पुष्प आदि से करे, अथवा इन सबों के अभाव में केवल जल से ही पूजा करे ॥३२॥ श्रीहरि की प्रसन्नता के लिए न्यास पूर्वक जप करना चाहिए । दूसरे लोग इस मन्त्र के न्यास आदि को बतलाते हैं ॥३३॥ एक बार ही उच्चारण करने से यह मन्त्र कृतकृत्यता प्रदान करने वाला है फिर भी जप आदि करने के लिए इसका दश प्रकार से न्यास करना चाहिये ॥३४॥ हे द्विजोत्तम ! अब मैं इस मन्त्र का ध्यान बतलाता हूँ। श्रीभगवान् मेघ के समान श्याम वर्ण के है, पीताम्बर धारण किए हैं, उनकी दो भुजाएँ है और वे वनमाला धारण किए हैं ॥३५॥ वे मोर मुकुट धारण किए हुए हैं, करोड़ों चन्द्रमा के समान उनका आह्लादक मुख है । उनके नेत्र अधमुंदे हुए हैं; कानों में कर्णिकार (कनेर) के पुष्प को लगाये हुए हैं ॥३६॥ दोनों तरफ ललाट पर चन्दन लगाये हैं, बीच में कुङ्कुम का बिन्दु है । इस प्रकार वे मण्डलाकार तिलक लगाये हैं॥३७॥ वे दोपहर के सूर्य के समान चमकने वाले दोनों कुण्डलों से सुशोभित है, दर्पण के समान कान्ति वाले गालों पर स्वेद की बिन्दुएँ निकल आयी हैं ॥३८॥ वे अपनी प्रियतमा के मुख को देख रहे हैं ।

प्रियास्यन्यस्तनयनं लीलापाङ्गोन्नतभ्रुवम् । अग्रभागन्यस्तमुक्ताविस्फुरत्प्रोच्चनासिकम् ॥३९॥
दशनज्योत्स्नया राजत्पक्वविम्बफलाधरम् । केयूराङ्गदसद्रत्नमुद्रिकाभिर्लसत्करम् ॥४०॥
बिभ्रतं मुराली वामे पाणौ पद्मन्तथैव च । काञ्चीदामस्फुरन्मध्यं नूपुराभ्यां लसत्पदम् ॥४१॥
रतिकेलिरसावेशचपलं चपलेक्षणम् । हसन्तं प्रियया सार्द्धं हासयन्तं च तां मृदुः ॥४२॥
इत्थं कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनोपरि । वृन्दारण्ये स्मरेत्कृष्णं संस्थितं प्रियया सह॥४३॥
वामपार्श्वे स्थितां तस्य राधिकां च स्मरेत्ततः ।
नीलचैलकसंवीतां तप्तहेमसमप्रभाम् ॥४४॥
पट्टाञ्चलेनावृतार्द्धसुस्मेराननपङ्कजाम् । कान्तवक्त्रे न्यस्तनेत्रां चकोरीचञ्चलेक्षणाम्॥४५॥
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां च निजकान्तमुखाम्बुजे । अर्पयन्तीं पूगफलं पर्णचूर्णसमन्वितम् ॥४६॥
मुक्ताहारस्फुरच्चारुपीनोन्नतपयोधराम् । क्षीणमध्यां पृथुश्रोणीं किङ्किणीजालमण्डिताम्॥४७॥
रत्नताटङ्ककेयूरमुद्रावलयधारिणीम् । रणत्कटकमञ्जीररत्नपादाङ्गुलीयकाम् ॥४८॥
लावण्यसारमुग्धाङ्गीं सर्वावयवसुन्दरीम् । आनन्दरससंमग्नां प्रसन्नां नवयौवनाम्॥४९॥
सख्यश्च तस्या विप्रेन्द्र ! तत्समान वयोगुणाः ।
तत्सेवनपरा भाव्याश्चामरव्यजनादिभिः ॥५०॥
अथ तुभ्यं प्रवक्ष्यामि मन्त्रार्थं शृणु नारद । वहिरङ्गप्रपञ्चस्य स्वांशैर्मायादिशक्तिभिः ॥५१॥
अन्तरङ्गैस्तथानित्यविभूतेस्तैश्चिदादिभिः । गोपनादुच्यते गोपी राधिका कृष्णवल्लभा॥५२॥

लीलापूर्वक उनकी भौंहे कुछ उठी हुयी हैं, उनकी नासिका के अग्रभाग में मोती का आभूषण लगा है॥३९॥ दाँतों की कान्ति से विम्बफल के समान लाल-लाल ओठ सुशोभित हो रहे हैं । उनके हाथ केयूर अङ्गद तथा मुद्रिकाओं से सुशोभित हैं ॥४०॥ वे अपने बायें हाथ में मुरली धारण किए हैं और दूसरे हाथ में कमल धारण किए हैं । उनके कमर में करधनी सुशोभित हो रही है, उनके दोनों पैर नूपुरों से सुशोभित है ॥४१॥ रति केलिजन्य आनन्द के आवेश से चञ्चल वने हुए श्रीभगवान् के नेत्र अत्यन्त चञ्चल हैं । अपनी प्रियतमा श्रीराधाजी के साथ वे हँस रहे हैं और वे उनको वार-वार हँसा भी रहे हैं ॥४२॥ इस तरह से वृन्दावन में कल्पतरु के नीचे रत्न सिंहासन पर अपनी प्रियतमा के साथ वैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए ॥४३॥ उसके वाद ध्यान करना चाहिए कि श्रीभगवान् के वाम भाग में श्रीराधाजी वैठी हैं । वे नीला वस्त्र धारण की हैं, उनकी कान्ति तप्त सुवर्ण के समान है ॥४४॥ आञ्चल के अर्द्धभाग से वे मुस्कान मण्डित अपने मुख को ढँके हुयी हैं । वे श्रीभगवान् के मुख को देख रही हैं । उनके नेत्र चकोरी के नेत्र के समान चञ्चल हैं ॥४५॥ अपने अङ्गूठे और तर्जनी से पकड़कर श्रीभगवान् के मुख में पान खिला रही हैं ॥४६॥ उनके उन्नत तथा मनोहर स्तन मोती के हार से सुशोभित हो रहे हैं । उनकी कमर पतली है और स्थूल श्रोणीभाग किंकिणी (छोटे-छोटे घुंघरुओं) से अलंकृत है ॥४७॥ वे रत्न निर्मित ताटङ्क, केयूर, मुद्रिका तथा कङ्गन धारण किए हुयी हैं । पैरों में विद्यमान नूपुर से मधुर ध्वनि हो रही है और उनके पैर में रत्न निर्मित अङ्गूठियाँ हैं ॥४८॥ उनके सारे अङ्ग सौन्दर्य प्रधान और मनोहर है । प्रसन्न तथा आनन्द रस में मग्न श्रीराधाजी की नवीन जवानी है ॥४९॥ हे विप्रेन्द्र ! (नारदजी) उनकी सखियाँ उनके समान ही अवस्था और गुणों वाली हैं और चामर इत्यादि से उनकी सेवा कर रही हैं ॥५०-५१॥ हे नारदजी ! अव

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका परदेवता। सर्वलक्ष्मी स्वरूपा सा कृष्णाह्लादस्वरूपिणी ॥५३॥
ततः सा प्रोच्यते विप्र ह्लादिनीति मनीषिभिः ।
तत्कलाकोटिकोट्यंशदुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः ॥५४॥
सा तु साक्षान्महालक्ष्मीः कृष्णो नारायणः प्रभुः ।
नैतयोर्विद्यते भेदः स्वल्पोऽपि मुनिसत्तम ! ॥५५॥
इयं दुर्गा हरी रुद्रः कृष्णः शक्र इयं शची ।
सावित्रीयं हरिर्ब्रह्मा धूमोर्णाऽसौ यमोहरिः ॥५६॥
बहुना किं मुनिश्रेष्ठ विना ताभ्यां न किञ्चन ।
चिदचिल्लक्षणं सर्वं राधाकृष्णमयं जगत् ॥५७॥
इत्थं सर्वं तयोरेव विभूतिं विद्धि नारद। न शक्यते मया वक्तुं वर्षकोटिशतैरपि ॥५८॥
त्रैलोक्ये पृथिवी मान्या जम्बद्वीप ततो वरम् ।
तत्रापि भारतं वर्षं तत्रात्रि मथुरा पुरी ॥५९॥
तत्र वृन्दावनं नाम तत्र गोपीकदम्बकम्। तत्र राधासखीवर्गस्तत्रापि राधिकावरा ॥६०॥
सान्निध्याधिक्यतस्तस्या आधिक्यं स्याद्यथोत्तरम् ।
पृथिवी प्रभृतीनान्तु नान्यत्किञ्चिदिहोदितम् ॥६१॥
सैषा हि राधिका गोपी जनस्तस्याः सखीगणः ।
तस्याः सखीसमूहस्य वल्लभौ प्राणनायकौ ॥६२॥

मैं आपको मन्त्र का अर्थ बतलाता हूँ आप सुनें । राधाजी अपने अन्तरङ्ग अंशभूत माया आदि शक्तियों तथा चैतन्य आदि के द्वारा बाह्य प्रपञ्च की रक्षा करती हैं, इसीलिए वे गोपी कहलाती हैं । वे भगवान् श्रीकृष्ण की प्रियतमा हैं ॥५१-५२॥ परा देवता राधा देवी कृष्णमयी कही गयी हैं । वे सम्पूर्ण लक्ष्मी स्वरूपिणी तथा भगवान् कृष्ण की आह्लाद स्वरूपिणी हैं ॥५३॥ हे विप्र ! इसीलिए उनको मनीषीगण ह्लादिनी कहते हैं । उनकी कला के करोड़-करड़वें अंश में त्रिगुण से युक्त दुर्गा आदि देवियाँ हैं ॥५४॥ वे साक्षात् महालक्ष्मी हैं और भगवान् कृष्ण नारायण हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! उन दोनों में थोड़ा सा भी भेद नहीं हैं ॥५५॥ राधाजी दुर्गा हैं तो श्रीहरि रुद्र हैं । भगवान् कृष्ण इन्द्र हैं तो राधाजी शची स्वरूप हैं । राधाजी सावित्री देवी हैं तो श्रीहरि ब्रह्मा स्वरूप हैं । श्रीराधाजी यदि धूमोर्णा हैं तो श्रीहरि यम स्वरूप हैं ॥५६॥ हे मुनिश्रेष्ठ! बहुत कहने से क्या लाभ है ? कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो श्रीराधा कृष्ण से रहित हो । चेतनाचेतनात्मक जगत् राधाकृष्णमय है ॥५७॥ हे नारदजी ! आप सम्पूर्ण जगत् को श्रीराधाकृष्ण की विभूति जानें । उन दोनों का वर्णन मैं सैकड़ों करोड़ वर्षों में भी नहीं कर सकता हूँ ॥५८॥ त्रैलोक्य में पृथिवी समादरणीय है । उससे भी श्रेष्ठ जम्बूद्वीप है । उसमें भी भारत श्रेष्ठ हैं । भारतवर्ष में भी मथुरापुरी श्रेष्ठ है ॥५९॥ उसमें भी वृन्दावन श्रेष्ठ है, उसमें गोपियों का समूह श्रेष्ठ है । उसमें भी राधाजी का सम्पूर्ण समुदाय श्रेष्ठ है और उन सबों में भी श्रीराधाजी श्रेष्ठ है ॥६०॥ राधाजी के जो जितना ही सन्निकट है, वह उतना ही श्रेष्ठ है। यहाँ पर पृथिवी आदि का कुछ भी वर्णन नहीं किया गया है ॥६१॥ वे राधा देवी ही सब कुछ हैं और उनकी सखियाँ ही जन समुदाय है । राधाजी के सखी समुदाय के प्राणनायक श्रीराधा और कृष्ण हैं ॥६२॥

राधाकृष्णौ तयो:पादा:शरणं स्यादिहाश्रये। प्रपद्ये गतवानस्मि जीवोऽहं भृशदु:खित: ॥६३॥

सोऽहं य: शरणं प्राप्तो मम तस्य यदस्ति च ।
सर्वं ताभ्यां तदर्थं हि तद्भोग्यं न ह्यहं मम ॥६४॥
इत्यसौ कथितो विप्र ! मन्त्रस्यार्थ: समासत: ।
युगलार्थस्तथा न्यास: प्रपत्ति: शरणागति: ॥६५॥

आत्मार्पणमिमे पञ्च पर्यायास्ते मयोदिता:। अयमेव चिन्तनीयो दिवानक्तमतन्द्रितै: ॥६६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वृन्दावनमाहात्म्य एकाशीतितमोऽध्याय: ॥८१॥

* * *

बयासीवाँ अध्याय

शिव उवाच

अथ दीक्षाविधिं वक्ष्ये शृणु नारद तत्त्वत:। श्रवणादेव मुच्येत बिना तस्य विधानत:॥१॥
आविरिञ्चिजगत्सर्वं विज्ञाय नश्वरं बुध: । आध्यात्मिकादित्रिविधदु:खमेवानुभूय च ॥२॥
अनित्यत्वाच्च सर्वेषां सुखानां मुनिसत्तम !। दु:खपक्षे विनिक्षिप्य तानि तेभ्यो विवर्जित: ॥३॥
विरज्य संसृतेर्हानौ साधनानि विचिन्तयेत्। अनुत्तमसुखस्यापि सम्प्राप्तौ भृशनिर्वृत: ॥४॥

मै राधा और कृष्ण और उन दोनों के चरणों की शरणागति करता हूँ क्योंकि मैं अत्यनत दु:खी जीव हूँ॥६३॥ उनकी शरणागति करने वाला मैं तथा मेरी जो कुछ भी वस्तुएँ है वे सबके सब उनसे ही प्राप्त हैं, उनके लिए है और उनका ही भोग्य है मैं भी अपने लिए नहीं हूँ ॥६४॥ हे विप्र ! मैंने इस तरह से मन्त्र के अर्थ का संक्षेप में वर्णन किया यही युगलार्थ है । इसी को न्यास, प्रपति तथा शरणागति कहते हैं ॥६५॥ इसी को आत्म समर्पण कहते हैं । ये पाञ्चों एक दूसरे के पर्याय हैं । कल्याणकारी को रात-दिन निरालस होकर इसी अर्थ का चिन्तन करना चाहिए ॥६६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के वृन्दावन माहात्म्य वर्णन के एकासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८१॥

* * *

मन्त्र दीक्षा की विधि

शिवजी ने कहा— हे नारदजी ! अव मैं दीक्षा की विधि का तत्त्वत: निरूपण करता हूँ उसे आप सुनें। उसका विधान किए बिना भी केवल जिसका श्रवण करने मात्र से मनुष्य मुक्त हो जाता है ॥१॥ विद्वान् मनुष्य को चाहिए कि वह ब्रह्माजी पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् को नश्वर समझकर आध्यात्मिक (आदि भौतिक तथा आधिदैविक) दु:खों का अनुभव करके ॥२॥ संसार में प्राप्त होने वाले सभी सुखों को दु:खमय जानकर उन सबों का त्याग कर देना चाहिए ॥३॥ संसार से विरक्त होकर संसार के बन्धन के साधनों के विनष्ट करने के साधनों का विचार करे अत्यन्त निर्वृत हुआ वह जाने कि सर्वोत्तम सुख की

नराणां दुष्करत्वं हि विज्ञाय च महामतिः। भृशमार्त्तस्ततो विप्रः श्रीगुरुं शरणं व्रजेत्॥५॥
शान्तो विमत्सरः कृष्णे भक्तोऽनन्यप्रयोजनः ।
अनन्यसाधनः श्रीमान्कामलोभविवर्जितः ॥६॥
श्रीकृष्णरसतत्त्वज्ञः कृष्णमन्त्रविदांवरः । कृष्णमन्त्राश्रयो नित्यं मन्त्रभक्तः सदा शुचिः ॥७॥
सद्धर्मशासको नित्यं सदाचारनियोजकः। सम्प्रदायी कृपापूर्णो विरागी गुरुरुच्यते ॥८॥
एवमादिगुणप्रायः शुश्रूषुर्गुरुपादयोः। गुरौ नितान्तभक्तश्च मुमुक्षुः शिष्य उच्यते ॥९॥
यत्साक्षात्सेवनं तस्य प्रेम्णा भगवतो भवेत्। स मोक्षः प्रोच्यते प्राज्ञैर्वेदवेदाङ्गवादिभिः ॥१०॥
आश्रित्य स्वगुरोः पादौ निजवृत्तं निवेदयेत् ।
स सन्देहानपाकृत्य बोधयित्वा पुनः पुनः ॥११॥
स्वपादप्रणतं शान्तं शुश्रूषं निजपादयोः । अतिहृष्टमनाःशिष्यं मनुमध्यापयेत्परम् ॥१२॥
चन्दनेन मृदा वाऽपि विलिखेद् बाहुमूलयोः ।
वामदक्षिणयोर्विप्र शङ्खचक्रं यथाक्रमम् ॥१३॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं ततः कुर्यात्फालादिषु विधानतः। ततो मन्त्रद्वयं तस्य दक्षकर्णे विनिर्दिशेत् ॥१४॥
मन्त्रार्थं च वदेत्तस्मै यथावदनुपूर्वशः। दासशब्दयुतं नाम धार्यं तस्य प्रयत्नतः ॥१५॥
ततोऽतिभक्त्या सस्नेहं वैष्णवान्भोजयेद्बुधः। श्रीगुरुं पूजयेच्चापि वस्त्रालङ्करणादिभिः ॥१६॥
सर्वस्वं गुरवे दद्यात्तदर्द्धं वा महामुने। स्वदेहमपि निक्षिप्य गुरौ स्थेयमकिञ्चनैः ॥१७॥

प्राप्ति करना मनुष्यों के लिए अत्यन्त कठिन है । अतएव वह अत्यन्त आर्त बनकर आचार्य की शरणागति करे ॥४-५॥ आचार्य को शान्त, मत्सर रहित, केवल भगवान् की भक्ति को अपना प्रयोजन मानने वाला, दूसरे साधनों से रहित, काम तथा लोभ से रहित होना चाहिए ॥६॥ आचार्य को श्रीकृष्ण रस का ज्ञाता होना चाहिए तथा भगवान् कृष्ण के मन्त्रों के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ होना चाहिए । आचार्य को सदा पवित्र रहने वाला, कृष्ण मन्त्र को ही अपना आश्रय मानने वाला तथा श्रीकृष्ण मन्त्र का भक्त होना चाहिए ॥७॥ उन्हें सद्धर्म का उपदेष्टा और शिष्यों को सदाचार में लगाने वाला होना चाहिए । सम्प्रदायोक्त नियमों का पालन करने वाला, कृपा से परिपूर्ण तथा संसार से विरक्त होना चाहिए ॥८॥ शिष्य में भी इन्हीं सब गुणों को होना चाहिए । उसे गुरु के चरणों का सेवक होना चाहिए । उसे गुरु का नितान्त भक्त तथा मुमुक्षु होना चाहिए ॥९॥ श्रीभगवान् की साक्षात् प्रेमपूर्वक सेवा करने को ही मोक्ष कहते हैं । इसी बात को वेदों एवं वेदान्तों के ज्ञाता पुरुष भी कहते हैं ॥१०॥ शिष्य को चाहिए कि वह आचार्य के चरणों का समाश्रयण प्राप्त करके अपना सारा वृत्तान्त आचार्य के समक्ष बतलाये । आचार्य को भी चाहिए कि वह उस शिष्य के समस्त सन्देहों को दूर करके उसे बार-बार ज्ञान का उपदेश दें ॥११॥ अपने चरणों में शरणागत शान्त तथा शिष्य को प्रसन्नता पूर्वक मन्त्रोपदेश करें ॥१२॥ वे चन्दन अथवा मिट्टी से शिष्य के दोनों बायें और दायें भुजमूल में शङ्ख और चक्र का चिह्न बना दें ॥१३॥ उसके पश्चात् विधिपूर्वक शिष्य के ललाट आदि में ऊर्ध्वपुण्ड्र लगायें । उसके बाद वे शिष्य के कान में दो मन्त्रों का उपदेश करें ॥१४॥ उसके बाद मात्र के आनुपूर्वी के अनुसार शिष्य को मन्त्रार्थ का उपदेश करें । उसके बाद में आचार्य उसका ऐसा नाम रखें जिसके अन्त में दास शब्द लगा रहे ॥१५॥ उसके बाद शिष्य को चाहिए कि शिष्य अत्यन्त भक्ति तथा

य एत्तैः पञ्चभिर्विद्वान्संस्कारैः संस्कृतो भवेत् ।
दास्यभागी स कृष्णस्य नान्यथा कल्पकोटिभिः ॥१८॥
अङ्कनं चोर्द्ध्वपुण्ड्रश्च मन्त्रो नामविधारणम्। पञ्चमो याग इत्युक्ताः संस्काराः पूर्वसूरिभिः॥१९॥
अङ्कनं शङ्खचक्राद्यैः सच्छिद्रं पुण्ड्रमुच्यते। दासशब्दयुतं नाममन्त्रो युगलसंज्ञकः॥२०॥
गुरुवैष्णवयोः पूजा याग इत्यभिधीयते। एते परमसंस्कारा मया ते परिकीर्त्तिताः ॥२१॥
अथ तुभ्यं प्रपन्नानां धर्मान्वक्ष्यामि नारद !। यानास्थाय गमिष्यन्ति हरिधामनराः कलौ॥२२॥
इत्थं गुरोर्लब्धमन्त्रो गुरुभक्तिपरायणः। सेवमानो गुरुं नित्यं तत्कृपां भावयेत्सुधीः॥२३॥
सतां धर्मास्ततः शिक्षेत्प्रपन्नानां विशेषतः। स्वेष्टदेवधिया नित्यं वैष्णवान्परितोषयेत्॥२४॥
ताडनं भर्त्सनं कामी भोग्यत्वेन यथास्त्रियः। गृह्णाति वैष्णवानां च तत्तद्ग्राह्यं तथा बुधैः ॥२५॥
ऐहिक्यामुष्मिकी चिन्ता नैव कार्या कदाचन ।
ऐहिकं तु सदा भाव्यं पूर्वाचरितकर्मणा ॥२६॥
आमुष्मिकं तथा कृष्णः स्वयमेव करिष्यति ।
अतो हि तत्कृते त्याज्यः प्रयत्नः सर्वथा नरैः ॥२७॥
सर्वापायपरित्यागः 'कृष्णीयात्मतयार्चनम्। सुचिरं प्रोषिते कान्ते यथा पतिपरायणा ॥२८॥

स्नेह पूर्वक श्रीवैष्णवों को भोजन कराये । उसके बाद वह आचार्य की पूजा वस्त्रों एवं अलङ्कारों से करे॥१६॥ वह अपना सर्वस्व गुरु को समर्पित कर दे अथवा उसके आधे भाग को गुरु को समर्पित करे। वह अपना देह भी गुरु को समर्पित करके स्वयं अकिञ्चन बन जाय ॥१७॥ जो व्यक्ति इन पाँचों संस्कारों से संस्कृत होता है, वही भगवान् श्रीकृष्ण के दास्य का पात्र होता है । दूसरे साधनों से वह भगवद् दास्य को करोड़ों कल्पों में भी नहीं होता है ॥१८॥ शङ्ख, चक्र के चिह्न को धारण करना ऊर्ध्वपुण्ड्र को लगाना, मन्त्र ग्रहण करना, दासान्त नाम धारण करना तथा आत्मानिक्षेप रूपी याग करना इन पञ्चों को ही पूर्वाचार्यो ने पञ्च संस्कार कहा है ॥१९॥ शङ्ख, चक्र से अङ्कित करना, छिद्र युक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करना, दासान्त नाम तथा युगल मन्त्र, ॥२०॥ गुरु तथा श्रीवैष्णवों की पूजा करना ही याग कहलाता है । ये ही सर्वोत्कृष्ट संस्कार हैं, जिनको मैंने तुमको बतलाया है ॥२१॥ हे नारद ! अब मैं आपको प्रपन्नों के धर्मों को बतला रहा हूँ । उन सबों को अपनाकर मनुष्य कलियुग में श्रीहरि के धाम में जायेंगे ॥२२॥ इस तरह से जिसने गुरु के मन्त्र को प्राप्त कर लिया है तथा जो गुरु की भक्ति करता है वह प्रतिदिन गुरु की सेवा करते हुए अपने ऊपर गुरु की कृपा की भावना करे ॥२३॥ उसके बाद आचार्य को चाहिए कि वे अपने शरणागत शिष्यों को सज्जनों के धर्मों का उपदेश दें । शिष्य को चाहिए कि वह श्रीवैष्णवों को अपना इष्टदेव मानकर उनको सन्तुष्ट करे ॥२४॥ जिस तरह से कामी पुरुष स्त्रियों के ताडन और डाँट को भी वर्दास्त करता है उसी तरह वह आचार्य के ताडन तथा डाँट को भी सहे ॥२५॥ उसको कभी भी लौकिक तथा पारलौकिक चिन्ता नहीं करनी चाहिए । पूर्वकृत कर्मों के अनुसार लौकिक फलों की प्राप्ति होएगी ही पारलौकिक भोगों को भगवान् श्रीकृष्ण अवश्य प्रदान करेंगे । अतएव लौकिक एवं पारलौकिक फलों की प्राप्ति के लिए प्रयास त्याग देना चाहिए ॥२६-२७॥ भगवान् श्रीकृष्ण के भक्तों की पूजा आत्मा के समान करने से सभी पापों की निवृत्ति हो जाती है । जिस तरह से दीर्घकाल से परदेश में रहने वाले पति के दर्शन

प्रियानुरागिणी दीना तस्य सङ्गैककाङ्क्षिणी ।
तद्गुणान्भावयेन्नित्यं गायत्यपि शृणोति च ॥२९॥
श्रीकृष्णगुणलीलादि स्मरणादि तथा चरेत् ।
न पुनः साधनत्वेन कार्यं तत्तु कदाचन ॥३०॥
चिरं प्रोष्यागतं कान्तं प्राप्य कान्तधिया यथा ।
चुम्बन्तीवाश्लिष्यन्तीव नेत्रान्तेन पिबन्त्यपि ॥३१॥
ब्रह्मानन्दगते वाऽऽशुसेवते परया मुदा । श्रीमदर्चावतारेण तथा परिचरेद्धरिम् ॥३२॥
अनन्यशरणो नित्यं तथैवानन्यसाधनः । अनन्यसाधनार्थत्वात्स्यादनन्यप्रयोजनः ॥३३॥
नान्यं च पूजयेद्देवं न नमेत्तं स्मरेन्न च । न च पश्येन्न गायेच्च न च निन्देत्कादाचन ॥३४॥
नान्योच्छिष्टं च भुञ्जीत नान्यशेषं च धारयेत् ।
अवैष्णवानां सम्भाषावन्दनादि विवर्जयेत् ॥३५॥
ईशवैष्णवयोर्निन्दां शृणुयान्न कदाचन । कर्णौ पिधाय गन्तव्यं शक्तौ दण्डं समाचरेत् ॥३६॥
आश्रित्य चातकीं वृत्तिं देहपातावधिं द्विज ! ।
द्वयस्यार्थं भावयित्वा स्थेयमित्येव मे मतिः ॥३७॥
सरः समुद्रनद्यादीन्विहाय चातको यथा । तृषितो म्रियते वापि याचते वा पयोधरम् ॥३८॥
एवमेव प्रयत्नेन साधनानि विचिन्तयेत् । स्वेष्टदेवः सदा याच्यो गतिस्त्वं मे भवेरिति ॥३९॥

के विषय में अनुराग करने वाली तथा केवल अपनी पति का सङ्ग प्राप्त करना चाहने वाली पतिव्रता, दीन वनी रहती है उसी तरह से भगवद् भक्त को चाहिए कि वह श्रीभगवान् के गुणों का सदा गायन करे और उसका दूसरों से श्रवण भी करे ॥२८-२९॥ उसी तरह से भगवद् भक्त भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों और लीलाओं का स्मरण करें । किन्तु उसको किसी दूसरे फल की प्राप्ति का साधन उसे नहीं बनना चाहिए॥३०॥ जिस तरह से पतिव्रता दीर्घकाल के बाद आये हुए अपने पतिदेव का एकान्त में चुम्बन, आलिङ्गन और दर्शन करती है ॥३१॥ उसी तरह से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो जाने पर भक्त अत्यन्त प्रेम से श्रीहरि के आर्चावतार के विषय उसी तरह से व्यवहार करता है ॥३२॥ वह सदा अनन्य शरण होकर अनन्य साधन हो जाता है और अनन्य साधन होने के कारण वह अनन्य प्रयोजन (केवल भगवत् प्राप्ति को ही अपना प्रयोजन) मान लेता है ॥३३॥ वह न तो दूसरे देवता की पूजा करता है, न दूसरे देवता का स्मरण करता है, न नमस्कार करता है । वह दूसरे देवता को न तो देखता है, न उसकी निन्दा करता है ॥३४॥ वह दूसरे का जूठा नहीं खाता है और न तो दूसरे को शेष धारण कराता है । वह अवैष्णवों से न तो बातें करता है और न तो उनको नमस्कार करता है ॥३५॥ उसे श्रीभगवान् तथा वैष्णवों की कभी निन्दा भी नहीं सुननी चाहिए । यदि सामर्थ्य हो तो निन्दा करने वाले को दण्ड दे अथवा अपने कानों को बन्द करके उसे अन्यत्र चले जाना चाहिए ॥३६॥ वह चातक के समान आजीवन दोनों मन्त्रों की भावना करता रहे। यही मेरी धारणा है ॥३७॥ जिस तरह से चातक पक्षी सरोवर, समुद्र तथा नदियों को छोड़कर मर जाता है किन्तु वह स्वाति के मेध से ही जल की याचना करता रहता है ॥३८॥ इसी तरह वह प्रयास करके साधनों की चिन्ता करे और श्रीभगवान् से प्रार्थना करे कि हे भगवन् ! आप ही मेरे एक मात्र आश्रय

स्वेष्टदेवतदीयानां गुरोरपि विशेषतः । आनुकूल्ये सदास्थेयं प्रातिकूल्यं विवर्जयेत् ॥४०॥
सकृत्प्रपन्नो वक्ष्यामि कल्याणगुणतां तयोः। विचिन्त्य विश्वसेदेतौ मामिमावुद्धरिष्यतः ॥४१॥
संसारसागरान्नाथौ मित्रपुत्रगृहाकुलात् । गोप्तारौ मे युवामेव प्रपन्नभयभञ्जनौ ॥४२॥
योऽहं ममास्ति यत्किञ्चिदिह लोके परत्र च ।
तत्सर्वं भवतोरद्य चरणेषु समर्चितम् ॥४३॥
अहमस्म्यपराधानामालयस्त्यक्तसाधनः । अगतिश्च ततो नाथौ भवन्तावेव मे गतिः ॥४४॥
तवास्मिराधिकाकान्त कर्मणा मनसा गिरा। कृष्णकान्ते तवैवास्मि युवामेव गतिर्मम॥४५॥
शरणं वां प्रपन्नोऽस्मि करुणानिकराकरौ । प्रसादं कुरुतं दास्यं मयि दुष्टेऽपराधिनि ॥४६॥
इत्येवं जपता नित्यं स्थातव्यं पद्यपञ्चकम् । अचिरादेव तद्दास्यमिच्छता मुनिसत्तम !॥४७॥
बाह्यधर्मा मया ह्येते संक्षेपेणोपवर्णिताः । आन्तरः परमो धर्मः प्रपन्नानामथोच्यते ॥४८॥
कृष्णप्रियासखीभावं समाश्रित्य प्रयत्नतः । तयोः सेवां प्रकुर्वीत दिवानक्तमतन्द्रितः॥४९॥
उक्तो मन्त्रस्तदङ्गानि तथा तस्याधिकारिणः। तद्धर्माश्च तथा तेभ्यः फलं मन्त्रस्य नारद ! ॥५०॥
अनुतिष्ठ त्वमप्येतत्तयोर्दास्यमवाप्स्यसि। स्वाधिकारक्षये विप्र सन्देहो नात्र कश्चन॥५१॥
सकृन्मात्रप्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । निजदास्यं हरिर्दद्यान्न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥५२॥
अत्र ते वर्णयिष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । श्रुतपूर्वं मया कृष्णात्साक्षाद्भगवतः परम्॥५३॥

हैं॥३९॥ वह विशेष रूप से अपने गुरु, इष्टदेव तथा श्रीवैष्णवों के अनुकूल बना रहे, वह इन सबों के प्रतिकूल कभी न होए ॥४०॥ एक बार भगवत शरणागत होकर श्रीराधाकृष्ण के कल्याण गुणों का चिन्तन करते हुए इस बात का सुदृढ विश्वास रखे कि श्री राधा कृष्ण हमारा उद्धार अवश्य करेंगे ॥४१॥ यह श्रीभगवान् राधा कृष्ण से प्रार्थना करना चाहिए कि मित्र, पुत्र तथा गृह (पत्नी) से परिपूर्ण संसार रूपी सागर से रक्षा करने वाले आप ही हैं शरणागत जीवों के भय को विनष्ट करने वाले आप दोनों ही हमारे स्वामी हैं ॥४२॥ मैं तथा मेरा इस लोक में तथा परलोक में जो कुछ भी है, उन सबों को आज मैं आप दोनों के चरणों में समर्पित कर रहा हूँ ॥४३॥ मैं सभी साधनों से रहित तथा अपराधों का खजाना हूँ । मेरा कोई भी रक्षक नहीं है, अतएव हे नाथ ! आप ही दोनों मेरे आश्रय हैं ॥४४॥ हे राधिकाकान्त ! मैं मन, वाणी तथा कर्म से आपका ही हूँ, हे भगवान् श्रीकृष्ण की बल्लभे ! मैं आपका हूँ । आप दोनों ही एक मात्र हमारे आश्रय हैं ॥४५॥ हे करुणा के आकर स्वरूप ! मैं आप दोनों की शरणागति करता हूँ । मुझ दुष्ट तथा अपराधी दास पर आप दोनों कृपा करें ॥४६॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! श्रीराधाकृष्ण की दासता शीघ्र प्राप्त करने की इच्छा वाले को इन पाँच पद्यों का सदैव जप करते रहना चाहिए ॥४७॥ मैंने संक्षेप में इन बाह्य धर्मों का वर्णन किया है, अब मैं शरणागत जीवों के सर्वोत्कृष्ट आन्तर धर्म का वर्णन करता हूँ ॥४८॥ प्रयत्न पूर्वक कृष्णप्रिया श्रीराधाजी की सखी भाव को अपनाकर, बिना किसी आलस्य के रात-दिन उन दोनों की सेवा करनी चाहिए ॥४९॥ हे नारदजी ! मैंने आपको, मन्त्र, उसके अङ्गों, मन्त्रों के अधिकारी, अधिकारी के धर्म तथा उन धर्मों के फल को बतलाया ॥५०॥ तुम इन सबों का अनुष्ठान करो ऐसा करके आप अपने अधिकार की समाप्ति होने पर श्रीराधाकृष्ण की दासता को प्राप्त कर लेंगे इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है ॥५१॥ जो एक बार श्रीभगवान् का शरणागत होकर श्रीभगवान् से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो!

एष ते कथितो थर्म आन्तरो मुनिसत्तम । गुह्यादेष गुह्यतमो गोपनीयः प्रयत्नतः ॥५४॥
मन्त्ररत्नमहं पूर्वं जपन्कैलासमूर्धनि । ध्यायन्नारायणं देवमवसं गहने वने ॥५५॥
ततस्तु भगवांस्तुष्टः प्रादुरास ममाग्रतः । व्रियतां वर इत्युक्ते मयाप्युद्धाट्य लोचने ॥५६॥
दृष्टो देवः प्रियायुक्तः संस्थितो गरुडोपरि । प्रणिपत्यावोचमहं वरदं कमलापतिम्॥५७॥
यद्रूपं ते कृपासिन्थो परमानन्ददायकम् । सर्वानदाश्रयं नित्यं मूर्तिमत्सर्वतोऽथिकम् ॥५८॥
निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं यद्ब्रह्मेति विदुर्बुथाः ।
तदहं द्रष्टुमिच्छामि चक्षुर्भ्यां परमेश्वर ! ॥५९॥
ततो मामाह भगवान्प्रपन्नं कमलापतिः। तदद्य द्रक्ष्यसे रूपं यत्तेमनसि काङ्क्षितम् ॥६०॥
यमुनापश्चिमे तीरे गच्छ वृन्दावनं मम। इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवः प्रियायुक्तो जगत्पतिः ॥६१॥
अहमप्यागतस्तर्हि यमुनायास्तटं शुभम्। तत्र कृष्णमपश्यं च सर्वदेवेश्वरेश्वरम्॥६२॥
गोपवेषधरं कान्तं किशोरवयसान्वितम् । प्रियास्कन्धे सुविन्यस्तवामहस्तं मनोहरम् ॥६३॥
हसन्तं हासयन्तं तां मध्ये गोपीकदम्बके । स्निग्धमेघसमाभासं कल्याणगुणमन्दिरम् ॥६४॥
प्रहस्य च ततः कृष्णो मामाहामृतभाषणः । अहं ते दर्शनं यातो ज्ञात्वा रुद्र तवेप्सितम् ॥६५॥
यदद्य मे त्वया दृष्टमिदं रूपमलौकिकम् । घनीभूतामलप्रेमसच्चिदानन्दविग्रहम् ॥६६॥
नीरूपं निर्गुणं व्यापि क्रियाहीनं परात्परम्। वदन्त्युपनिषत्सङ्घा इदमेवममानघम् ॥६७॥

मैं आपका हूँ तो श्रीहरि उसको अपनी दासता प्रदान कर देते हैं, इसमें मुझको कोई संशय नहीं है ॥५२॥ इस विषय में मैं आपको अत्यन्त अद्भुत रहस्य को सुनाता हूँ जिसे मैंने श्रीभगवान् के ही मुख से पहले सुना था ॥५३॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं यह आपको सर्वाधिक रहस्य बतलाता हूँ उसको प्रयत्न पूर्वक गोपनीय रखना चाहिए ॥५४॥ एक बार मैं कैलास पर्वत के शिखर के गहन वन में मन्त्र रत्न का जप करते हुए तथा भगवान् नारायण का ध्यान करते हुए रह रहा था ॥५५॥ उससे प्रसन्न होकर श्रीभगवान् प्रकट हो गये और जब उन्होंने कहा कि वरदान माँगो तो मैंने अपनी आँखों को खोला ॥५६॥ मैंने देखा कि श्रीभगवान् अपनी प्रियतमा के साथ गरुड पर विराजमान हैं । मैंने साष्टाङ्ग प्रणाम करके लक्ष्मीपति श्रीहरि से कहा॥५७॥ हे परमेश्वर ! हे कृपासिन्धो ! आपका जो रूप परम आनन्द प्रदान करने वाला है, जो सभी आनन्दों का आश्रय है, नित्य है तथा सर्वाधिक मूर्तिमान है, निर्गुण, निष्क्रिय शान्त है, जिसको विद्वज्जन ब्रह्मरूप से जानते हैं, आपके उसी रूप को मैं अपने नेत्रों से देखना चाहता हूँ ॥५८-५९॥ उसके बाद भगवान् कमलापति ने मुझसे कहा तुम्हारे मन में जो है, मेरे उस रूप को तुम आज देखोगे ॥६०॥ यमुना नदी के पश्चिम तट पर मेरा वृन्दावन है तुम वहाँ जाओ इस तरह से कहकर जगत् के स्वामी अपनी प्रियतमा के साथ अन्तर्धान हो गये ॥६१॥ उसके बाद मैं भी यमुना के शुभ तट पर चला आया और वहाँ पर सभी देवों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन किया ॥६२॥ गोपवेष धारण किए हुए उनकी मनोहर किशोरावस्था थी और वे अपना बायाँ हाथ अपनी प्रियतमा के कन्धे पर रखे थे ॥६३॥ गोपी समूह के बीच में विद्यमान वे हँस रहे थे और श्रीराधाजी को हँसा रहे थे । कल्याणगुणों के आश्रय स्वरूप श्रीभगवान् की कान्ति मेघ के समान मनोहर थी ॥६४॥ अमृत के समान मधुर बोलने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने जोर से हँसकर कहा हे रुद्र ! आपके अभिप्रेत अर्थ को जानकर मैने आपको दर्शन दिया है ॥६५॥ आपने जो

प्रकृत्युत्थगुणाभावादनन्तत्वात्तथेश्वरम् । असिद्धत्वान्मद्गुणानां निर्गुणं मां वदन्ति हि ॥६८॥
अदृश्यत्वान्ममैतस्य रूपस्य चर्मचक्षुषा। अरूपं मां वदन्त्येते वेदाः सर्वे महेश्वर ! ॥६९॥
व्यापकत्वाच्चिदंशेन ब्रह्मेति च विदुर्बुधाः । अकर्तृत्वात्प्रपञ्चस्य निष्क्रियं मां वदन्ति हि ॥७०॥
मायागुणैर्यतो मेऽशाः कुर्वन्ति सर्जनादिकम् ।
न करोमि स्वयं किञ्चित्सृष्ट्यादिकमहं शिव ! ॥७१॥
अहमासां महादेव गोपीनां प्रेमविह्वलः। क्रियान्तरं न जानामि नात्मानमपि नारद !॥७२॥
विहराम्यनया नित्यमस्याः प्रेमवशीकृतः। इमां तु मत्प्रियां विद्धि राधिकां परदेवताम् ॥७३॥
अस्याश्च परितः पश्यः सख्यः शतसहस्त्रशः ।
नित्याः सर्वा इमा रुद्र ! यथाहं नित्यविग्रहः ॥७४॥
गोपा गावो गोपिकाश्च सदावृन्दावनं मम । सर्वमेतन्नित्यमेव चिदानन्दरसात्मकम् ॥७५॥
इदमानन्दकन्दाख्यं विद्धि वृन्दावनं मम। यस्मिन्प्रवेशमात्रेण न पुनः संसृतिं विशेत् ॥७६॥
मद्वनं प्राप्य यो मूढः पुनरन्यत्र गच्छति। स आत्महा भवेदेव सत्यं सत्यं मयोदितम्॥७७॥
वृन्दावनं परित्यज्य नैव गच्छाम्यहं क्वचित् ।
निवसाम्यनया सार्द्धमहमत्रैव सर्वदा ॥७८॥
इत्येवं सर्वमाख्यातं यत्ते रुद्र ! हृदि स्थितम् ।
कथयस्व ममेदानीं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥७९॥
ततस्तमब्रवं देवमहं च मुनिसत्तम ! । ईदृशस्त्वं कथं लभ्यस्तमुपायं वदस्व मे ॥८०॥
ततो मामाह भगवान्साधु रुद्र ! तवोदितम्। अति गुह्यतमं ह्येतद्गोपनीयं प्रयत्नतः ॥८१॥

मेरा यह अलौकिक रूप देखा है वह प्रेमघन स्वरूप तथा सच्चिदानन्द स्वरूप है ॥६६॥ उपनिषदें मेरे इसी रूप को अनघ (निर्दोष) परात्पर, (सर्वश्रेष्ठ) निष्क्रिय, व्यापक, निर्गुण (प्राकृतिक गुणों से रहित) और नीरूप बतलाती हैं ॥६७॥ प्राकृत गुणों से रहित होने के कारण वे मुझे अनन्त और ईश्वर कहती हैं, मेरे गुण के सिद्ध नहीं होने के कारण वे मुझे निर्गुण बतलाती हैं ॥६८॥ हे महेश्वर ! मेरे इस रूप को कोई अपनी चर्म चक्षुओं से नहीं देख सकता है अतएव सभी वेद मुझे अरूप कहते हैं ॥६९॥ चिदंश (चैतन्यांश) से व्यापक होने के कारण विद्वान् मुझे ब्रह्म कहते हैं । प्रपञ्च का कर्ता नहीं होने के कारण वे मुझे निष्क्रिय बतलाते हैं ॥७०॥ चूकि मेरे अंश सृष्टि आदि करते हैं, हे शिव ! मैं सृष्टि आदि का कार्य स्वयं नहीं करता हूँ ॥७१॥ महादेव ! मैं इन गोपियों के प्रेम में विह्वल बने रहने के कारण किसी दूसरी क्रिया को नहीं जानता हूँ, मैं अपने को भी नहीं जानता हूँ ॥७२॥ राधा के प्रेम के वशवर्ती मैं इसके साथ सदा विहार करता हूँ । मेरी प्रियतमा इस राधा को तुम परा देवता (सर्वश्रेष्ठ देवता) जानो ॥७३॥ इसके चारो ओर तुम सैकड़ों सखियों को देखो । रुद्र ! जैसे मैं नित्य शरीर वाला हूँ, उसी तरह ये सब सभी नित्य शरीर वाली हैं ॥७४॥ गोप, गायें, गोपिकायें, मेरा वृन्दावन, ये सबके सब नित्य तथा चिदानन्द रस स्वरूप हैं ॥७५॥ मेरे इस वृन्दावन को आप आनन्द कन्द स्वरूप जानें । इसमें प्रवेश करने मात्र से फिर संसार का बन्धन नहीं होता है ॥७६॥ जो मूर्ख मेरे वन में जाने के बाद कहीं अन्यत्र जाता है, वह आत्मघाती है, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥७७॥ मैं वृन्दावन छोड़कर कहीं भी नहीं जाता हूँ, मैं सदा श्रीराधा के साथ यहीं निवास करता हूँ ॥७८॥ हे रुद्र ! तुम्हारे मन में जो था उन सारी बातों को मैंने कह दिया अब बतलाओ कौन सी दूसरी बात जानना चाहते हो ॥७९॥ उसके बाद हे मुनिश्रेष्ठ नारद ! मैंने श्रीभगवान् से पूछा कि आप इस रूप में किस साधन से प्राप्त हो सकते हैं ?॥८०॥ उसके बाद श्रीभगवान् ने मुझसे

सकृदावां प्रपन्नो य उपास्ते त्यक्तसाधनः। गोपीभावेन देवेश स मामेति न चेतरः ॥८२॥
सकृदावां प्रपन्नो वा मत्प्रियामेकिकामुत। सेवतेऽनन्यभावेन स मामेति न संशयः॥८३॥
यो मामेव प्रपन्नश्च मत्प्रियां न महेश्वर। न कदापि स चाप्नोति मामेवं ते मयोदितम् ॥८४॥
सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति वदेदपि। साधनेन विनाऽप्येवमामाप्नोति न संशयः ॥८५॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मत्प्रियां शरणं व्रजेत्। आश्रित्य मत्प्रियां रुद्र मां वशीकर्त्तुमर्हसि॥८६॥
इदं रहस्यं परमं मया ते परिकीर्तितम्। त्वयाऽप्येतन्महादेव गोपनीयं प्रयत्नतः॥८७॥
त्वमप्येनां समाश्रित्य राधिकां मम वल्लभाम् ।
जपन्मे युगलं मन्त्रं सदा तिष्ठ मदालये ॥८८॥

शिव उवाच

इत्युक्त्वा दक्षिणे कर्णे मम कृष्णो दयानिधिः ।
उपदिश्य परं मन्त्रं संस्कारांश्च विधाय हि ॥८९॥
सगणोऽन्तर्दधे विप्र तत्रैव मम पश्यतः। अहमप्यत्र तिष्ठामि तदारभ्य निरन्तरम्॥९०॥
सर्वमेतन्मया तुभ्यं साङ्गमेव प्रकीर्तितम्। अधुना वद विप्रेन्द्र ! किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥९१॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वृन्दावनमाहात्म्ये द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

* * *

कहा रुद्र ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया यह अत्यन्त रहस्यात्मक है तथा यह प्रयत्न पूर्वक गोपनीय है ॥८१॥ जो मनुष्य हम दोनों की शरणागति एक बार करके हम दोनों की उपासना गोपीभाव से करता है, वह मुझको निश्चित रूप से प्राप्त करता है दूसरा कोई नहीं ॥८२॥ अथवा एक बार शरणागति करके केवल मेरी प्रिया की ही उपासना करता है और उनकी अनन्य भाव से सेवा करता है, वह निश्चित रूप से मुझको प्राप्त करता है ॥८३॥ जो शरणागत केवल मेरी ही उपासना करता है, वह मुझको नहीं प्राप्त कर पाता है, यह मैंने तुम्हें बतला दिया ॥८४॥ जो एक बार ही शरणागति करके यह कहता है कि हे प्रभो ! मैं आपका ही हूँ, वह साधन विहीन पुरुष मुझको प्राप्त कर लेता है; इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है॥८५॥ अतएव हर प्रकार के प्रयास के द्वारा मेरी प्रियतमा की शरणागति करनी चाहिए। हे रुद्र ! मेरी प्रियतमा को अपना आश्रय बनाकर तुम मुझे अपने वश में कर सकते हो ॥८६॥ मैंने आपको यह अत्यन्त गोपनीय रहस्य बतलाया है । महादेव ! आप भी इसको गोपनीय ही बनाये रखेंगे ॥८७॥ आप भी मेरी इस बल्लभा राधिका का आश्रयण करके युगल मन्त्र को जपते हुए मेरे लोक में निवास करें ॥८८॥ **शिवजी ने कहा—** इस तरह से कहकर दयासागर भगवान् श्रीकृष्ण मुझे संस्कारों से संस्कृत करके मेरे दाहिने कान में युगल मन्त्र का उपदेश दिए ॥८९॥ हे विप्र ! वे मेरी आँखों के सामने ही अपने गण के साथ वहीं अन्तर्धान हो गये मैं भी उसी समय से यहाँ निवास करता हूँ ॥९०॥ हे विप्र ! मैंने आपको सारी बातों को साङ्गोपाङ्ग बतला दिया अब आप क्या सुनना चाहते हैं ॥९१॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के वृन्दावन माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में बयासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८२॥

* * *

तिरासीवाँ अध्याय

नारद उवाच

भगवन्सर्वमाख्यातं यद्यत्पृष्टं मया गुरो !। अधुना श्रोतुमिच्छामि भावमार्गमनुत्तमम् ।।१।।

शिव उवाच

साधु विप्र त्वया पृष्टं सर्वलोकहितैषिणा। रहस्यमपि वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु।।२।।
दास्यः सखायः पितरौ प्रेयस्यश्च हरेरिह। सर्वे नित्या मुनिश्रेष्ठ वसन्ति गुणशालिनः ।।३।।
यथा प्रकटलीलायां पुराणेषु प्रकीर्तिताः । तथा ते नीत्यलीलायां सन्ति वृन्दावने भुवि ।।४।।
गमनागमने नित्यं करोति वनगोष्ठयोः । गोचारणं वयस्यैश्च बिनाऽसुरविघातनम् ।।५।।
परकीयाभिमानिन्यस्तथा तस्य प्रिया जनाः। प्रच्छन्नेनैव भावेन रमयन्ति निजप्रियम् ।।६।।
आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्। रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम् ।।७।।
नानाशिल्पकलाभिज्ञां कृष्णभोगानुरूपिणीम् ।
प्रार्थितामपि कृष्णेन तत्र भोगपराङ्मुखीम् ।।८।।
राधिकानुचरीं तत्र तत्सेवनपरायणाम्। कृष्णादप्यधिकं प्रेम राधिकायां प्रकुर्वतीम् ।।९।।
प्रीत्याऽनुदिवसं यत्नात्तयोःसङ्गमकारिणीम् । तत्सेवनसुखाह्लादभावेनातिसुनिर्वृताम् ।।१०।।
इत्यात्मानं विचिन्त्यैव तत्र सेवां समाचरेत्। ब्राह्मं मुहूर्तमारभ्य यावत्स्यात्तु महानिशा ।।११।।

नारद उवाच

हरेर्दैनन्दिनीं लीलां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। लीलामजानता सेव्यो मनसा तु कथं हरिः ।।१२।।

वृन्दावन में भगवान् की प्रतिदिन की लीला का वर्णन

नारदजी ने कहा— हे भगवन् ! हे गुरो ! मैंने जो कुछ भी पूछा था उसे आपने बतला दिया अब मैं सर्वोत्तम भावमार्ग को जानना चाहता हूँ ।।१।। **शिवजी ने कहा**— हे सम्पूर्ण संसार का कल्याण चाहने वाले विप्र ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, वह रहस्यमय है, फिर भी मैं उसे बतलाता हूँ उसे आप सुनें ।।२।। श्रीहरि की दासियाँ, सखागण, माता-पिता तथा बल्लभायें हे मुनिश्रेष्ठ ये सबके सब गुणसम्पन्न तथा नित्य हैं और वृन्दावन में रहते हैं ।।३।। पुराणों में श्रीभगवान् की प्रकट लीला में वे जैसे वर्णित हैं, उसी तरह वे भूलोक में वृन्दावन में नित्य लीला में भी रहते हैं ।।४।। वे नित्य ही वन तथा गोशाला में आते-जाते रहते हैं तथा अपने सखाओं के साथ गोचारण करते हैं, केवल असुरों का वे विनाश नहीं करते हैं ।।४।। परकीयाभिमान से युक्त गोपियाँ तथा उनके प्रियजन प्रच्छन्न रूप से अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को बिहारी कराते हैं ।।६।। उन सबों के बीच में शरणागत उपासक को अपना भी रूप यौवन से सम्पन्न किशोरावस्था वाली रमणी के रूप में चिन्तन करना चाहिए ।।७।। अपने को अनेक कलाओं की अभिज्ञा, कृष्ण के भोग के अनुकूल तथा भगवान् कृष्ण के द्वारा मनाये जाने पर भी भोग पराङ्मुखी के रूप में चिन्तन करना चाहिए ।।८।। श्रीराधिकाजी की अनुचरी, उनकी ही सेवा में सदा लगी रहने वाली और भगवान् श्रीकृष्ण से भी अधिक श्रीराधिकाजी से प्रेम करने वाली के रूप में अपना ध्यान करे ।।९।। प्रतिदिन प्रेमपूर्वक उन दोनों का सप्रयास संयोग कराने वाली तथा उन दोनों की सेवाजन्य सुख तथा आह्लद के

शिव उवाच

नाहं जानामि तां लीलां हरेर्नारद ! तत्त्वतः ।
वृन्दादेवीमितो गच्छ सा ते लीलां प्रवक्ष्यति ॥१३॥
अविदूर इतः स्थानात्केशीतीर्थसमीपतः। सखीसङ्घवृता साऽस्ते गोविन्दपरिचारिका ॥१४॥

सूत उवाच

इत्युक्तस्तंपरिक्रम्य हृष्टो नत्वा पुनः पुनः। वृन्दाश्रमं जगामाथ नारदो मुनिसत्तमः॥१५॥
वृन्दाऽपि नारदं दृष्ट्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ।
उवाच च मुनिश्रेष्ठकथमत्रागतिस्तव ॥१६॥

नारद उवाच

त्वत्तो वेदितुमिच्छामि नैत्यकं चरितं हरेः। तदादितो मम ब्रूहि यदि योग्योऽस्मि शोभने !॥१७॥

वृन्दोवाच

रहस्यानि प्रवक्ष्यामिकृष्णभक्तोऽसि नारद। न प्रकाश्यं त्वयाप्येतद् गुह्याद्गुह्यतरम्महत्॥१८॥
मध्ये वृन्दावने रम्ये पञ्चाशत्कुञ्जमण्डिते । कल्पवृक्षनिकुञ्जे तु दिव्यरत्नमये गृहे ॥१९॥
निद्रितो तिष्ठतस्तल्पे निबिडालिङ्गितौ मिथः ।
मदाज्ञाकारिभिः पश्चात्पक्षिभिर्बोधितावपि ॥२०॥
गाढालिङ्गनजानन्दमाप्तौ तद्भङ्गकातरौ । न मनः कुरुतस्तल्पात्समुत्थातुं मनागपि॥२१॥
ततश्च सारिकासङ्घैः शुकाद्यैः परितो मुहुः ।
बोधितौ विविधैर्वाक्यैः स्वतल्पादुदतिष्ठताम् ॥२२॥

कारण अत्यन्त सन्तुष्ट रहने वाली इस तरह से अपना चिन्तन करके ही श्रीभगवान् की सेवा करे । ब्राह्ममूहुर्त से लेकर आधी रात पर्यन्त इसी तरह से अपना चिन्तन करे ॥१०-११॥ **नारदजी ने कहा**— मैं भी भगवान् की दैनन्दिनी लीला को सुनना चाहता हूँ, लीला को जाने बिना केवल सेवा कैसे की जा सकती है ?॥१२॥ **शिवजी ने कहा**— हे नारद ! मैं उस लीला को तत्त्वतः नहीं जानता हूँ, तुम यहाँ से वृन्दा देवी के पास चले जाओं वे ही तुम्हें उस लीला को बतलायेंगी ॥१३॥ यहाँ से थोड़ी दूरी पर केशी तीर्थ के सन्निकट भगवान् गोविन्द की वह परिचारिका अपनी सखियों के साथ रहती हैं ॥१४॥ **सूतजी ने कहा**— इस तरह से कहे जाने पर नारदजी ने प्रसन्नतापूर्वक शिवजी की बार-बार परिक्रमा की और वे वृन्दावन में चले गये ॥१५॥ वृन्दा ने भी नारद को देखकर उन्हें बार-बार प्रणाम करके कहा— हे मुनिश्रेष्ठ ! आपका यहाँ आगमन कैसे हुआ ?॥१६॥ **नारदजी ने कहा**— हे सुन्दरि ! मैं तुमसे श्रीहरि की नित्य लीला को जानना चाहता हूँ । यदि मैं उसके योग्य होऊँ तो उसे मुझे बतलाओ ॥१७॥ **वृन्दा ने कहा**— हे नारदजी ! आप भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त हैं; अतएव मैं आपको गोपनीय बातों को बतलाती हूँ । यह अत्यन्त गोपनीय है, इसे आप भी किसी को नहीं बतलायेंगे ॥१८॥ पचास कुञ्जों से सुशोभित वृन्दावन के बीच में कल्पवृक्षों का निकुञ्ज है । दिव्य रत्नों से निर्मित गृह में शय्या पर परस्पर में एक दूसरे का गाढा लिङ्गन किए हुए श्रीराधा-कृष्ण सोते हैं । उसके बाद मेरी आज्ञा का पालन करने वाले पक्षिगण उनको जगाते हैं ॥१९-२०॥ गाढालिङ्गन जन्य आनन्द को प्राप्त करके उसको भङ्ग होने देना नहीं

उपविष्टौ ततो दृष्ट्वा सख्यस्तल्पे मुदान्वितौ ।
प्रविश्य सेवां कुर्वन्ति तत्काले ह्युचितां तयोः ॥२३॥
पुनश्च सारिका वाक्यैस्तावुत्थाय स्वतल्पतः ।
गच्छतः स्वस्वभवनं भीत्युत्कण्ठाकुलौ ततः ॥२४॥
प्रातश्च बोधितो मात्रा तल्पादुत्थाय सत्वरः। कृत्वा कृष्णो दन्तकाष्ठं बलदेवसमन्वितः ॥२५॥
मात्रानुमोदितो याति गोशालां सखिभिर्वृतः ।
राधाऽपि बोधिता विप्र वयस्याभिः स्वतल्पतः ॥२६॥
उत्थाय दन्तकाष्ठादि कृत्वाऽभ्यङ्गं समाचरेत् ।
स्नानवेदीं ततो गत्वा स्नापिता सा निजालिभिः ॥२७॥
भूषागृहे व्रजेत्तत्र वयस्या भूषयन्त्यपि । भूषणैर्विविधैर्दिव्यैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥२८॥
ततः सखीजनैस्तस्याः श्वश्रूं सम्प्रार्थ्य यत्नतः ।
पक्तुमाहूयते स्वन्नं ससखी सा यशोदया ॥२९॥

नारद उवाच

कथमाहूयते देवी पाकार्थं तु यशोदया। सतीषु पाककर्त्रीषु रोहिणीप्रमुखास्वपि ॥३०॥

वृन्दोवाच

पूर्वं दुर्वाससा दत्तो वरस्तस्यै महामुने ! । इति कात्यायनीवक्त्राच्छ्रुतमासीन्मया पुरा॥३१॥
त्वया यत्पच्यते देवि तदन्नं मदनुग्रहात् । मिष्टं स्यादमृतस्पर्द्धि भोक्तुरायुष्करं तथा ॥३२॥
इत्याह्वयति तां नित्यं यशोदा पुत्रवत्सला । आयुष्मान् मे भवेत्पुत्रः स्वादुलोभात्तथा सती ॥३३॥

चाहने के कारण वे शय्या से बिल्कुल नहीं उठना चाहते हैं ॥२१॥ उसके बाद चारों ओर विद्यमान शुक पक्षियों तथा सारिकाओं द्वारा बार-बार अनेक प्रकार के वाक्यों द्वारा जगाये जाने पर श्रीराधा-कृष्ण अपनी शय्या से उठते हैं ॥२२॥ उन दोनों को शय्या पर बैठे हुए तथा प्रसन्न देखकर सखियाँ प्रवेश करके उस समय के लिए उचित उन दोनों की सेवा करती हैं ॥२३॥ उसके पश्चात् सारिका के वाक्यों को सुनकर वे दोनों अपनी शय्या से उठकर भय तथा उत्कण्ठा पूर्वक अपने-अपने भवन में जाते हैं ॥२४॥ प्रातःकाल होने पर अपनी माता के द्वारा जगाये जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण बलदेवजी के साथ शीघ्रता से दतौन करते हैं ॥२५॥ उसके बाद वे माता की आज्ञा प्राप्त करके मित्रों के साथ गोशाला में जाते हैं । हे विप्र ! श्रीराधाजी भी अपनी सखियों द्वारा जगाये जाने पर अपनी शय्या से उठकर दतौन आदि करके अपने शरीर में तेल लगाती हैं । उसके बाद वे स्नान की वेदी पर जाती हैं और सखियाँ उनको स्नान कराती हैं ॥२६-२७॥ उसके बाद वे अलङ्कार गृह में जाती हैं, और वहाँ पर उनको सखियाँ अनेक प्रकार के दिव्य भूषणों, चन्दनों और मालाओं से अलंकृत करती हैं ॥२८॥ उसके बाद भी सखियाँ राधाजी की सासु (यशोदाजी) की प्रार्थना करती हैं तो यशोदाजी उनको सखियों के साथ सुन्दर भोजन बनाने के लिए बुलाती हैं ॥२९॥ **नारदजी ने कहा**— जब रोहिणी आदि सती नारियाँ भोजन बनाने वाली हैं ही तो उनको यशोदाजी भोजन बनाने के लिए क्यों बुलाती हैं ॥३०॥ **वृन्दा ने कहा**— हे महामुने ! मैंने कात्यायनी देवी के मुख से सुना है कि पूर्वकाल में श्रीराधाजी को महर्षि दुर्वासा ने वरदान दिया था कि ॥३१॥ हे

श्रुत्वाऽनुमोदिता हृष्टा साऽपि नन्दालयं व्रजेत् ।
स सखीप्रकरा तत्र गत्वा पाकं करोति च ॥३४॥
कृष्णोऽपि दुग्ध्वा गाः काश्चिद्दोहयित्वा जनैः पराः ।
आगच्छति पितुर्वाक्यात्स्वगृहं सखिभिर्वृतः ॥३५॥
अभ्यङ्गमर्दनं कृत्वा दासैः संस्नापितो मुदा। धौतवस्त्रधरः स्रग्वी चन्दनाक्तकलेवरः ॥३६॥
द्विफालबद्धचिकुरैर्ग्रीवाभालोपरि स्फुरन्। चन्द्राकारस्फुरद्भालतिलकालकरञ्जितः ॥३७॥
कङ्कणाङ्गदकेयूररत्नमुद्रालसत्करः । मुक्ताहारस्फुरद्वक्षा मकराकृतिकुण्डलः ॥३८॥
मुहुराकारितो मात्रा प्रविशेद्भोजनालयम्। अवलम्ब्य करं सख्युर्बलदेवमनुव्रतः ॥३९॥
भुङ्क्तेऽथ विविधान्नानि भ्रात्रा च सखिभिर्वृतः ।
हासयन्विविधैर्हास्यैः सखींस्तैर्हसति स्वयम् ॥४०॥
इत्थं भुक्त्वा तथाऽऽचम्य दिव्यखट्वोपरि क्षणम् ।
विश्रम्य सेवकैर्दत्तताम्बूलं विभजन्नदन् ॥४१॥
गोपवेषधरः कृष्णो धेनुवृन्दपुरस्सरः। व्रजवासिजनैः प्रीत्या सर्वैरनुगतः पथि ॥४२॥
पितरं मातरं नत्वा नेत्रान्तेनापि तं गणम्। यथायोग्यं तथा चान्यान्विनिवर्त्य वनं व्रजेत् ॥४३॥

देवि ! तुम जिस अन्न को पकाओगी वह मेरी कृपा से अमृत के समान मधुर तथा भोजन करने वाले की आयु को बढ़ाने वाला होगा ॥३२॥ इसीलिए पुत्र वत्सला यशोदाजी उनको प्रतिदिन भोजन बनाने के लिए बुलाती हैं कि वह भोजन स्वादिष्ट हो और उनके पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण आयुष्मान् हों ॥३३॥ उसको सुनकर राधाजी भी प्रसन्नता पूर्वक नन्दजी के गृह में जाती हैं और वे सखियों के समूह के साथ भोजन बनाती हैं॥३४॥ भगवान् श्रीकृष्ण भी कुछ गायों को स्वयं दूह कर तथा दूसरी गायों को दूसरे लोगों से दुहवाकर अपने पिता की आज्ञा प्राप्त करके मित्रों के साथ अपने घर आते हैं ॥३५॥ वहाँ उनके दासवृन्द प्रसन्नता पूर्वक उनके शरीर में तेल लगाकर स्नान कराते हैं । फिर धोती पहनकर माला धारण करके एवं शरीर में चन्दन लगाकर ॥३६॥ दो भागों में बंधे हुए केश उनकी ग्रीवा और ललाट पर लटकते रहते हैं । चन्द्रमा के समान आकार वाला तथा तिलक एवं केशों से रञ्जित ललाट सुशोभित होता है ॥३७॥ उनका हाथ कङ्कण, अङ्गद, केयूर तथा रत्नों से निर्मित मुद्रिकाओं से सुशोभित होता है उनका वक्षःस्थल मोती के हार से सुशोभित होता है । कानों में मकराकृति कुण्डल सुशोभित होते हैं ॥३८॥ माता यशोदा के द्वारा बार-बार पुकारे जाने पर वे भोजनालय में प्रवेश करते हैं । वे बलदेवजी के पीछे अपने सखाओं का हाथ पकड़कर भोजनालय में जाते हैं ॥३९॥ वे अपने भाई तथा सखाओं के साथ अनेक प्रकार के अन्नों का भोजन करते हैं । अनेक प्रकार के हँसी करने वाले वाक्यों से सखाओं को हँसाते हैं तथा स्वयं हँसते भी हैं ॥४०॥ इस तरह से भोजन करके तथा आचमन करके दिव्य खाट पर क्षणभर विश्राम करके सेवकों के द्वारा प्रदत्त पान को बाँटकर खाते हुए ॥४१॥ श्रीकृष्ण गोपवेष धारण करके तथा गौओं को आगे करके एवं वज्रवासियों द्वारा मार्ग में अनुगन किए जाते हुए वे ॥४२॥ माता-पिता को नमस्कार करके अपने आँखों के इशारे से व्रजवासी समूह को लौटाकर वन में जाते हैं ॥४३॥ वन में जाकर मित्रों के साथ कुछ क्षण तक क्रीड़ा करके अनेक प्रकार के विहारों से वे वन में प्रसन्नतापूर्वक क्रीड़ा करते हैं ॥४४॥ उसके

वनं प्रविश्य सखिभिः क्रीडयित्वा क्षणं ततः ।
विहारैर्विविधैस्तत्र वने विक्रीडते मुदा ॥४४॥
वञ्चयित्वा ततःसर्वान्द्वित्रैःप्रियसखैर्वृतः। सङ्केतकं व्रजेद्धर्षात्प्रियासन्दर्शनोत्सुकः ॥४५॥
सापि कृष्णं वनं यातं दृष्ट्वा स्वगृहमागता ।
सूर्यादिपूजाव्याजेन कुसुमाहृतये तथा ॥४६॥
वञ्चयित्वा गुरून्याति प्रियसङ्गेच्छया वनम् । इत्थं तौ बहुयत्नेन मिलित्वा कानने ततः ॥४७॥
विहारैर्विविधैस्तत्र दिनं विक्रीडतो मुदा । दोलायां च समारूढौ सखिभिर्दोलितौ क्वचित्॥४८॥
क्वापि वेणुं करस्त्रस्तं प्रिययापह्नुतं हरिः। अन्वेषयन्नुपालब्धो विप्रलब्धप्रियागणैः ॥४९॥
हसितैर्बहुधा ताभिर्हासितस्तत्र तिष्ठति । वसन्तवायुना जुष्टं वनखण्डं मुदा क्वचित् ॥५०॥
प्रविश्य चन्दनाम्भोभिः कुङ्कुमादिजलैरपि। निषिञ्चतो यंत्रमुक्तैस्तत्पङ्कैर्लिम्पतो मिथः॥५१॥
सख्योऽप्येवं निषिञ्चन्ति ताश्च तौ सिञ्चतः पुनः ।
वसन्तवायुजुष्टेषु वनषण्डेषु सर्वतः ॥५२॥
तत्तत्कालोचितैर्नानाविहारैः सगणौ द्विज। श्रान्तौ क्वचिद्वृक्षमूलमासाद्य मुनिसत्तम ॥५३॥
उपविश्यासने दिव्ये मधुपानं प्रचक्रतुः। ततो मधुमदोन्मत्तौ निद्रया मीलितेक्षणौ ॥५४॥
मिथः पाणी समालम्ब्य कामबाणवशं गतौ ।
रिरंसू विशतः कुञ्जं स्खलद्वाङ्मनसौ पथि ॥५५॥
क्रीडतश्च ततस्तत्र करिणी यूथपौ यथा। सख्योऽपि मधुभिर्मत्ता निद्रया पीडितेक्षणाः ॥५६॥

बाद सवों को भुलावा देकर दो तीन सखाओं के साथ अपनी प्रियतमा को देखने की उत्कण्ठा से सङ्केत स्थल पर जाते हैं ॥४५॥ अपने घर आयी हुयी श्रीराधाजी भी वन में जाते हुए श्रीकृष्ण भगवान् को देखकर सूर्य आदि की पूजा के लिए फूल लाने के बहाने अपने गुरुजनों को भुलावा देकर प्रियतम के सङ्ग की इच्छा से वन में जाती हैं । इस तरह से वे दोनों बहुत प्रयास के द्वारा वन में एक दूसरे से मिलकर ॥४६-४७॥ दिन में अनेक प्रकार से प्रसन्नता पूर्वक क्रीड़ा करते है । कहीं पर झूले पर बैठे हुए सखियों के द्वारा झुलाये जाते हैं ॥४८॥ कहीं पर हाथ से गिरी हुयी तथा राधाजी के द्वारा छिपा ली गयी वंशी को श्रीहरि वंशी को खोजते हुए प्रियागणों के द्वारा वंचित होकर उपलब्ध होते हैं ॥४९॥ कहीं पर हँसती हुयी सखियाँ श्रीभगवान् को हँसाती हैं । कहीं पर वासन्ती हवा से वन खण्ड में प्रसन्नता पूर्वक प्रवेश करके चन्दन के जल तथा कुङ्कुम आदि के जल से पिचकारी द्वारा एक दूसरे को भिंगो देते हैं और परस्पर एक दूसरे पर चन्दन पोतते हैं ॥५०-५१॥ सखियाँ भी उन दोनों (श्रीराधा और श्रीकृष्ण) को इसी तरह से भिंगो देती हैं और वे दोनों भी सखियों को उसी तरह भिंगो देते हैं । हे द्विज ! वासन्ती वायु से सर्वत्र व्याप्त वन खण्डों में ॥५२॥ विभिन्न कालानुसार अनेक प्रकार के बिहारों को करने के कारण थके हुए वे दोनों किसी वृक्ष के नीचे दिव्य आसन पर बैठकर मधुपान करते हैं । उसके बाद मधु के नशे में मत्त उन दोनों के नेत्र निद्रा के कारण बन्द हो जाते हैं ॥५३-५४॥ एक दूसरे का हाथ पकड़कर, कामार्त बने हुए तथा रास्ते में बातें करते हुए रमण करने की इच्छा से वे कुञ्ज में प्रवेश कर जाते हैं ॥५५॥ वहाँ पर वे करिणी (हस्तिनी) और गजराज के समान क्रीड़ा करते हैं । सखियाँ भी मधुपान करने के कारण मत्त

अभितोमञ्जुकुञ्जेषु सर्वा एवापि शिश्यिरे। पृथगेकेन वपुषा कृष्णोऽपि युगपद्विभुः॥५७॥
सर्वासां संनिधि गच्छेत्प्रियया प्रेरितो मुहुः। रमयित्वा च ताः सर्वाःकरिणीर्गजराडिव ॥५८॥
प्रियया च तथा ताभिः क्रीडार्थं च सरो व्रजेत् ।
जलसेवैर्मिथस्तत्र क्रीडतः सगणौ ततः ॥५९॥
दासः स्रक्चन्दनैर्दिव्यैर्भूषणैरपि भूषितौ। तत्रैव सरसस्तीरेदिव्यरत्नमये गृहे॥६०॥
प्रागेव फलमूलानि कल्पितानि मया मुने। हरिस्तु प्रथमं भुक्त्वा कान्तया परिवेष्टितः ॥६१॥
द्वित्राभिः सेवितो गच्छेच्छय्यां पुष्पविनिर्मिताम् ।
ताम्बूलैर्व्यजनैस्तत्र पादसंवाहनादिभिः ॥६२॥
सेव्यमानो हसंस्ताभिर्मोदते प्रेयसीं स्मरन्। राधिकापि हरौ सुप्ते सगणा मुदितान्तरा॥६३॥
अपि तत्र गतप्राणा तदुच्छिष्टं भुनक्ति च। किञ्चिदेव ततो भुक्त्वा व्रजेच्छय्यानिकेतनम्॥६४॥
द्रष्टुं कान्तमुखाम्भोजं चकोरीव निशाकरम् ।
ताम्बूलचर्वितं तस्य तत्रत्याभिर्निवेदितम् ॥६५॥
ताम्बूलान्यपि चाश्नाति विभजन्ती प्रियालिषु ।
कृष्णोऽपि तासां शुश्रूषुः स्वच्छन्दभाषितं मिथः ॥६६॥
प्राप्तनिद्र इवाभाति विनिद्रोऽपि पटावृतः । ताश्च क्ष्वेलीक्षणं कृत्वा कुतश्चिदनुमानतः॥६७॥
विदश्य रसनां दद्भिः पश्यन्त्योऽन्योन्यमाननम् ।
विलीना इव लज्जाब्धौ क्षणमूचुर्न किञ्चन ॥६८॥

बनी हुयी निद्रित हो जाती हैं ॥५६॥ चारों ओर मधुकुञ्जों में सबके सब सो जाते हैं, एक अलग शरीर से प्रभु श्रीकृष्ण भी अपनी प्रियतमा के द्वारा प्रेरित होकर एक ही समय में सबों के पास जाते हैं, उन सबों के साथ उसी तरह से रमण करते हैं जिस तरह गजराज करिणियों के साथ रमण करता है ॥५७-५८॥ उसके बाद अपनी प्रियतमा तथा उन सखियों के साथ, क्रीड़ा करने के लिए वे सरोवर पर जाते हैं और वे दोनों अपने गणों के साथ एक दूसरे पर जल उछालकर क्रीड़ा करते हैं ॥५९॥ उसके बाद वस्त्र, माला एवं चन्दन तथा दिव्य भूषणों से भूषित वे सरोवर के तट पर ही दिव्य रत्न मय गृह में, मेरे द्वारा पहले से ही उपस्थापित तथा श्रीराधाजी से परोसे गये फलों तथा मूलों को श्रीहरि पहले खाकर ॥६०-६१॥ दो तीन सखियों के साथ पुष्प निर्मित छाया में चले जाते हैं। वहाँ पर ताम्बूल, व्यजन तथा पैर दबाना (पाद संवाहन) आदि के द्वारा सेवित श्रीहरि ॥६२॥ अपनी प्रियतमा को स्मरण करते हुए तथा सखियों द्वारा सेवित होकर उन सबों के साथ हँसते हुए आनन्दानुभव करते हैं। राधिकाजी भी श्रीहरि के सो जाने पर अपने गण के साथ प्रसन्नता का अनुभव करती हैं ॥६३॥ उनका मन श्रीभगवान् में ही लगा रहता है, श्रीभगवान् के भुक्तावशिष्ट को वे खाती हैं। थोड़ा सा खाकर वे छायागृह में श्रीभगवान् का मुखड़ा उसी तरह से देखने के लिए चली जाती हैं; जिस तरह से चकोरी चन्द्रमा को देखती है। श्रीभगवान् के द्वारा चबाये गये पान को सखियाँ उन्हें निवेदित करती हैं। राधाजी भी अपनी सखियों को बाँटकर उस पान को खाती हैं। भगवान् श्रीकृष्ण भी उन सबों के स्वच्छन्द भाषण को सुनने की इच्छा से ॥६४-६५॥ जगकर भी कपड़े से अपने मुख को ढंककर सोने का बहाना बनाते हैं। सखियाँ भी भाव पूर्वक उनको देखकर

क्षणादेव ततो वस्त्रं दूरीकृत्य तदङ्गतः। साधुनिद्रां गतोऽसीति हासयन्त्यो हसन्ति च॥६९॥
एवं तैर्विविधैर्हास्यै रममाणौ गणैः सह। अनुभूय क्षणं निद्रा सुखं च मुनिसत्तम॥७०॥
उपविश्यासने दिव्ये सगणौ विस्तृते मुदा। पणीकृत्य मिथोहारचुम्वाश्लेषपरिच्छदान् ॥७१॥
अक्षैर्विक्रीडतः प्रेम्णा नर्मालापपुरस्सरम्। पराजितोऽपि प्रियया जितोऽहमिति वै ब्रुवन् ॥७२॥
हारादिग्रहणे तस्याः प्रवृत्तस्ताड्यते तया। तयैवं ताडितः कृष्णः करेणास्य सरोरुहे ॥७३॥
विषण्णमानसो भूत्वा गन्तुं प्रकुरुते मतिम्। जितोऽस्मि चेत्त्वया देवि गृह्यतां यत्पणीकृतम्॥७४॥
चुम्बनादि मया दत्तमित्युक्त्वा सा तथाचरेत् ।
कौटिल्यं तद्भ्रुवोर्द्रष्टुं श्रोतुं तद्भर्त्सनं वचः ॥७५॥
ततः सारीशुकानां च श्रुत्वा वागाहवं मिथः ।
निर्गच्छतस्ततः स्थानाद्गन्तुकामौ गृहं प्रति ॥७६॥
कृष्णः कान्तामनुज्ञाप्य गवामभिमुखं व्रजेत् ।
सा तु सूर्यगृहं गच्छेत्सखीमण्डलसंयुता ॥७७॥
कियद्दूरं ततो गत्वा परावृत्य हरिं पुनः। विप्रवेषं समास्थाय याति सूर्यगृहं प्रति ॥७८॥
सूर्यं प्रपूजयेत्तत्र प्रार्थितस्तत्सखीजनैः। तदैवकल्पितैर्वेदैः परिहासविगर्भितैः ॥७९॥
ततस्ताः ज्ञापितं कान्तं परिज्ञाय विचक्षणाः। आनन्दसागरे मग्ना न विदुः स्वं न चापरम् ॥८०॥
विहारैर्विविधैरेवं सार्द्धयामद्वयं मुने। नीत्वा गृहं व्रजेयुस्ताः स च कृष्णो गवांव्रजेत्॥८१॥

अनुमान लगाती हैं कि ये जगे हैं ॥६६-६७॥ वे दाँतों से जीभ को दबाकर एक दूसरे का मुख देखती हैं। अत्यन्त लज्जित होकर वे क्षणभर कुछ नहीं बोलती हैं ॥६८॥ क्षणभर में वे श्रीभगवान् के शरीर से वस्त्र को हटाकर कहती हैं, बहुत सोए हो और स्वयं हँसती हुयी श्रीभगवान् को भी हँसाती हैं और स्वयं हँसती हैं। इस तरह से वे दोनों अनेक प्रकार की हँसाने वाली बातों से अपने गणों के साथ रमण करते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ ! क्षणभर निद्रा का अनुभव करके ॥६९-७०॥ विस्तृत आसन पर बैठकर नर्मालाप (कामुकता भरी बातें) करते हुए वे द्यूतक्रीड़ा करते हैं। हार जाने पर परस्पर में एक दूसरे का चुम्बन और आलिङ्गन करने की शर्त (दाव) लगाते हैं और राधाजी के जीत जाने पर भी वे कहते हैं कि मैं जिता हूँ ॥७१-७२॥ वे राधाजी का हार आदि लेने लगते हैं तो राधाजी उनको मारती हैं। श्रीराधाजी के हस्त कमल से प्रताडित भगवान् उदास हो जाते हैं और वहाँ से जाने का मन बनाते हैं। वे कहते हैं हे देवि तुमने जीत लिया तो मैंने जो दाव पर लगाया था वह ले लो ॥७३-७४॥ मैं तुम्हें चुम्बन इत्यादि देता हूँ और राधाजी उनका चुम्बन करती हैं। श्रीराधाजी की भौंहों की कुटिलता और उनकी व्यंग्य वाणी को सुनने के लिए ॥७५॥ उसके बाद सारिकाओं तथा शुकों के वाक्कलह को सुनकर वे दोनों घर जाने के लिए वहाँ से निकल पड़ते हैं ॥७६॥ भगवान् श्रीकृष्ण श्रीराधाजी से विदा लेकर गायों की ओर चले जाते हैं और श्रीराधाजी सखियों के समुदाय के साथ सूर्यमन्दिर में चली जाती हैं ॥७७॥ उसके बाद कुछ दूर जाकर श्रीभगवान् ब्राह्मण का वेष बनाकर सूर्य मन्दिर में जाते हैं ॥७८॥ श्रीराधाजी की सखियों से प्रार्थना किए जाने पर श्रीभगवान् उसी समय परिहास से युक्त तथा कल्पित वेदों के द्वारा सूर्य की पूजा करते हैं ॥७९॥ उसके बाद चतुर सखियाँ श्रीभगवान् को पहचान कर इतना आनन्दमग्न हो जाती हैं कि उन सबों को अपने और दूसरे का ज्ञान भी

सङ्गम्य स्वसखीन्कृष्णो गृहीत्वा गाः समन्ततः ।
आगच्छति व्रजं हर्षान्नादयन्मुरलीं मुने ! ॥८२॥
ततो नन्दादयः सर्वे श्रुत्वा वेणुरवं हरेः । गोधूलिपटलव्याप्तं दृष्ट्वा चापि नभस्तलम् ॥८३॥
विसृज्य सर्वकर्माणि स्त्रियो बालादयोऽपि च ।
कृष्णस्याभिमुखं यान्ति तद्दर्शनसमुत्सुकाः ॥८४॥
राजमार्गे व्रजद्वारि यत्र सर्वे व्रजौकसः । कृष्णोऽपि तान्समागम्य यथावदनुपूर्वशः ॥८५॥
दर्शनस्पर्शनैवार्चास्मितपूर्वावलोकनैः । गोपवृद्धान्नमस्कारैः कायिकैर्वाचिकैरपि ॥८६॥
अष्टाङ्गपातैः पितरौ रोहिणीमपि नारद ! । नेत्रान्तसूचितेनैव विनयेन प्रियां तथा ॥८७॥
एवं तैस्तद्यथायोग्यं व्रजौकोभिः प्रपूजितः । गवालये तथा गाश्च सम्प्रवेश्य समन्ततः ॥८८॥
पितृभ्यामर्थितो याति भ्रात्रा सह निजालयम् ।
स्नात्वा पीत्वा तत्र किञ्चिद्भुक्त्वा मात्राऽनुमोदितः ॥८९॥
गवालयं पुनर्याति दोग्धुकामो गवां पयः । ताश्च दुग्ध्वा दोहयित्वा पाययित्वा च काश्चन॥९०॥
पित्रा सार्द्धं गृहं याति तत्र भावशतानुगः । तत्र पित्रा पितृव्यैश्च तत्पुत्रैश्च बलेन च ॥९१॥
भुनक्ति विविधान्नानि चर्व्यचोष्यादिकानि च ।
तन्मतिः प्रार्थनात्पूर्वं राधिका च तदैव हि ॥९२॥
प्रस्थापयेत्सखीद्वारा पक्वान्नानि तदालयम् । श्लघयंश्च हरिस्तानि भुक्त्वा पित्रादिभिः सह॥९३॥

नहीं रह जाता है ॥८०॥ इस तरह ढाई प्रहर तक अनेक प्रकार के विहारों को करके वे सब अपने घर जाती हैं और भगवान् श्रीकृष्ण गौओं के पास चले जाते हैं ॥८१॥ हे मुने ! भगवान् श्रीकृष्ण अपने सखाओं से मिलकर तथा गायों को एकत्रित करके प्रसन्नता पूर्वक मुरली को बजाते हुए व्रज में आते हैं ॥८२॥ उसके पश्चात् श्रीहरि की वंशी की ध्वनि को सुनकर तथा गायों के खुरों से उड़ी धूलि से व्याप्त आकाश को देखकर ॥८३॥ नन्द आदि स्त्रियाँ और बालक भी सभी कामों को छोड़कर उनको देखने के लिए उत्सुक होकर भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष जाते हैं ॥८४॥ राजमार्ग पर व्रज के द्वार पर जहाँ सभी व्रजवासी रहते हैं उन सबों से क्रमशः मिलकर भगवान् श्रीकृष्ण भी ॥८५॥ सबों को देखते हैं, स्पर्श करते हैं, मुस्कुराकर सबों से बोलते हैं और सबों को देखते हैं । वे वृद्ध गोपों को शरीर और वाणी से नमस्कार करते हैं ॥८६॥ अपने माता-पिता (नन्द यशोदा) और रोहिणी माता को साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं तथा नम्रता पूर्वक अपने कटाक्षपात से अपनी प्रियतमा को सन्तुष्ट करते हैं ॥८७॥ इस तरह से यथायोग्य व्रजवासियों के द्वारा समादृत भगवान् श्रीकृष्ण गायों को गोष्ठ (गोशाला) में प्रवेश कराकर ॥८८॥ माता पिता के कहने पर अपने बड़े भाई बलदेवजी के साथ अपने घर में जाते हैं । वहाँ पर स्नान करके जलपान करके तथा थोड़ा कुछ खाकर माता की आज्ञा प्राप्त करके फिर गोशाला में गाय दूहने के लिए जाते हैं। कुछ गायों को स्वयं दूहकर और कुछ को दुहवा कर और बछड़ों को पिलाकर ॥८९-९०॥ श्रीभगवान् अनेक भावों से भरे हुए अपने पिता (नन्दजी) के साथ घर जाते हैं । वहाँ पर वे पिता, चाचा उनके पुत्र तथा बलरामजी के साथ अनेक प्रकार चर्व्य (चबाने योग्य) तथा चूसने योग्य कुछ भोजन करते हैं । अपनी अभिप्रेत वस्तु को पूछने से पहले ही श्रीराधिकाजी भी अपनी सखी द्वारा श्रीनन्दजी के घर कुछ पक्वान्न भेज

सभागृहं व्रजेत्तैश्च जुष्टं वन्दिजनादिभिः । पक्वन्नानि गृहीत्वा याः सख्यस्तत्र पुरा गताः ॥९४॥
बहूनि च पुनस्तानि प्रदत्तानि यशोदया । सख्यस्तत्र तया दत्तं कृष्णोच्छिष्टं नयन्ति च ॥९५॥
सर्वं ताभिः समानीय राधिकायै निवेद्यते। सापि भुक्त्वा सखीवर्गयुता तदनुपूर्वशः ॥९६॥
सखीभिर्मण्डिता तिष्ठेदभिसर्तुं समुद्यता। प्रस्थाप्यते मया काचिदित एव ततः सखी ॥९७॥
तयाभिसारिता साथ यमुनायाः समीपतः । कल्पवृक्षनिकुञ्जेऽस्मिन्दिव्यरत्नमये गृहे ॥९८॥
सितकृष्णनिशायोग्यवेषा याति सखीवृता। कृष्णोऽपि विविधं तत्र दृष्ट्वा कौतूहलं ततः॥९९॥
कात्यायन्या मनोज्ञानि श्रुत्वा सङ्गीतकान्यपि ।
धनधान्यादिभिस्ताश्च प्रीणयित्वा विधानतः ॥१००॥
जनैराराधितो मात्रा याति सख्या निकेतनम् ।
मातरि प्रस्थितायां च भोजयित्वा ततो गृहम् ॥१०१॥
सङ्केतकं कान्तयात्रऽसमागच्छेदलक्षितः । मिलित्वा तावुभावत्र क्रीडतो वनराजिषु ॥१०२॥
विहारैर्विविधैरासलास्यहासपुरस्सरैः । सार्द्धयामद्वयं नीत्वा रात्रेरेवं विहारतः ॥१०३॥
सुषुप्सू विशतः कुञ्जपक्षिणीभिरलक्षितौ। एकान्ते कुसुमैः क्लृप्ते केलितल्पे मनोहरे ॥
सुप्तावातिष्ठतस्तत्र सेव्यमानौ निजालिभिः ॥१०४॥
इति ते सर्वमाख्यातं नैत्यकं चरितं हरेः। पापिनोऽपि विमुच्यन्ते श्रवणादस्य नारद !॥१०५॥

देती हैं और श्रीहरि उन सबों की प्रशंसा करते हुए अपने पिता इत्यादि के साथ खाते हैं ॥९१-९३॥ उसके बाद श्रीभगवान् वन्दिजनों से स्तुति किए जाते हुए सभागृह में जाते हैं । पक्वान्नों को लेकर जो पहले सखियाँ आयी रहती हैं, उन सबों को यशोदाजी बहुत अधिक पक्वानों को प्रदान करती हैं । सखियाँ उन सबों को तथा भगवान् श्रीकृष्ण के उच्छिष्ट को लेकर जाती हैं और उन समस्त पक्वान्नों को श्रीराधिकाजी को प्रदान करती हैं । राधिकाजी भी उन सभी वस्तुओं को सखियों के साथ क्रमशः खाती हैं ॥९४-९६॥ उसके बाद सखियों द्वारा अलंकृत श्रीराधाजी श्रीभगवान् के पास जाने के लिए तैयार होती हैं । उसी समय मैं यहाँ से एक सखी को भेजती हूँ, वह श्रीराधाजी को यमुना नदी के समीप कल्पवृक्ष के निकुञ्ज में दिव्य रत्नमय गृह में श्रीभगवान् के पास ले जाती है । श्रीराधाजी शुक्ल तथा कृष्ण रात्रियों के अनुकूल वेष में सखियों के साथ जाती हैं । भगवान् श्रीकृष्ण अनेक प्रकार के कौतूहलों को देखकर उसके पश्चात् ॥९७-९८॥ कात्यायनी के मनोहर सङ्गीत को सुनकर उन सबों को धन-धान्य प्रदान करके विधिपूर्वक प्रसन्न करते हैं॥९९-१००॥ दासजनों के द्वारा सेवित भगवान् माता के साथ सखी के घर जाते हैं । उसके बाद भोजन कराकर माता के घर चले जाने पर श्रीभगवान् श्रीराधिकाजी के साथ सङ्केत स्थान पर चले जाते हैं, उन्हें जाते हुए कोई देख भी नहीं पाता है । वहाँ मिलकर वे दोनों वन पंक्तियों में क्रीड़ा करते हैं । वे रात्रि के ढाई प्रहर को रास, लास्य (नृत्य) और हास पूर्वक अनेक प्रकार के बिहारों में बिता देते हैं ॥१०१-१०२॥ वे दोनों एकान्त में पुष्प रचित मनोहर केलिशय्या पर सोने की इच्छा से कुञ्ज में प्रवेश कर जाते हैं । उस समय उन दोनों को पक्षी भी नहीं देख पाते हैं ॥१०३॥ वहाँ दोनों सोते हैं और सखियाँ उन दोनों की सेवा करती हैं ॥१०४॥ इस तरह से श्रीहरि की दैनन्दिनी लीला को मैंने आपको पूर्ण रूप से बतला दिया।

नारद उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि त्वया देवि ! न संशयः ।
हरेर्दैनन्दिनी लीला यतो मेऽद्य प्रकाशिता ॥१०६॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तां परिक्रम्य तया चापि प्रपूजितः ।
अन्तर्धानं गतो ब्रह्मन्नारदो मुनिसत्तमः ॥१०७॥

मयाप्येतच्चानुपूर्व्यात्सर्वमेव प्रकीर्तितम्। जपेन्नित्यं प्रयत्नेन मन्त्रयुग्ममनुत्तमम् ॥१०८॥
कृष्णवक्त्रादिदं लब्धं पुरा रुद्रेण यत्नतः । तेनोक्तं नारदायापि नारदेन ममोदितम् ॥१०९॥
संस्कारांश्च विधायैव मयाप्येतत्तवोदितम्। त्वयाप्येतद्गोपनीयं रहस्यं परमाद्भुतम् ॥११०॥

शौनक उवाच

कृतकृत्योऽभवं साक्षात्त्वत्प्रसादादहं गुरो । रहस्यानां रहस्यं यत्त्वया मह्यं प्रकाशितम् ॥१११॥

सूत उवाच

धर्मनितानुपातिष्ठञ्जलपन्मन्त्रमहर्निशम् । अचिरादेवतद्दास्यमवाप्स्यसि न संशयः ॥११२॥
मयापि गम्यते ब्रह्मन्नित्यमायतनं विभोः। गुरोर्गुरोर्भानुजायाः कूले गोपीश्वरस्य च ॥११३॥
इदं चरित्रं परमं पवित्रं प्रोक्तं महेशेन महानुभावम् ।
शृणवन्ति ये भक्तियुता मनुष्यास्ते यान्ति नित्यं पदमच्युतस्य ॥११४॥
धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्याभीष्टसिद्धिदम्। स्वर्गापवर्गसम्पत्तिकारणं पापनाशनम् ॥११५॥

हे नारदजी ! इसका श्रवण करके पापी जीव भी मुक्त हो जाते हैं ॥१०५॥ **नारदजी ने कहा**— देवि ! आपने मुझ पर कृपा की । मैं धन्य हो गया हूँ क्योंकि आपने मुझे श्रीहरि की दैनन्दिनी लीला को बतलाया है ॥१०६॥ **सूतजी ने कहा**— यह कहकर नारदजी ने वृन्दा की परिक्रमा की । वृन्दा ने भी नारदजी की पूजा की । हे ब्रह्मन् ! मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी अन्तर्धान हो गये ॥१०७॥ मैंने भी इन सारी बातों को आप लोगों को क्रमशः सुना दिया । प्रयास पूर्वक युगल मन्त्र का जप करना चाहिए ॥१०८॥ उसके बाद इस लीला को शिवजी ने भगवान् श्रीकृष्ण के मुख से सुना । उन्होंने इसे नारदजी को सुनाया और नारदजी ने मुझको सुनाया ॥१०९॥ मैंने संस्कारों से संस्कृत करके आपको सुनाया है । आप भी इस परम अद्भुत रहस्य को गोप्य ही रखेंगे ॥११०॥ **शौनक महर्षि ने कहा**— हे गुरो ! आपकी कृपा से मैं कृत-कृत्य हो गया, क्योंकि आपने मुझे अत्यन्त रहस्यमय लीला को सुनाया है ॥१११॥ **सूतजी ने कहा**— इन धर्मों का अनुष्ठान तथा रात-दिन मन्त्र जप करते हुए आप शीघ्र ही श्रीभगवान् की दासता को प्राप्त कर लेंगे इसमें कोई संशय नहीं है ॥११२॥ मैं भी गुरुओं के गुरु भगवान् सूर्य की पुत्री यमुना के तट पर गोपीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के नित्यगृह में जा रहा हूँ ॥११३॥ महान् प्रभाव सम्पन्न अत्यन्त पवित्र श्रीभगवान् के इस चरित्र को शङ्करजी ने कहा है, इसको जो मनुष्य भक्ति पूर्वक सुनते हैं वे श्रीभगवान् के नित्य धाम में जाते हैं ॥११४॥ धन्य, यश प्रदान करने वाले, आयु तथा आरोग्य प्रदान करने वाले एवं अभिप्रेत अर्थ को प्रदान करने वाले, पापों का विनाश करने वाले तथा स्वर्ग एवं अपवर्ग (मोक्ष) रूपी सम्पत्ति को प्रदान

भक्त्या पठन्ति ये नित्यं मानवा विष्णुतत्पराः ।
न तेषां पुनरावृत्तिर्विष्णुलोकात्कथञ्चन ॥११६॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे श्रीवृन्दावनमाहात्म्ये त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

चौरासीवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग ! रोमहर्षणनन्दन ! । कथा रम्या त्वया प्रोक्ता लोकस्यानन्ददायिनी ॥१॥
श्रीकृष्णस्य महाभाग ! चरितं महदद्भुतम् । श्रुतं सर्वं त्वया प्रोक्तं निर्वृतिस्तेन चाभवत् ॥२॥
अहो श्रीकृष्णमाहात्म्यं भक्तानां गतिदायकम् ।
यतस्तेन महाभाग ! निर्वृतिं को न चाप्नुयात् ॥३॥
अतः पुनरपि श्रीमत्कृष्णस्य चरितं महत् । श्रोतुमिच्छामहे चान्यद् व्रतदानार्हणादिकम् ॥४॥
स्नानं वापि महाभाग ! यथा येन कृतं पुरा ।
तत्सर्वं विस्तराद् ब्रूहि यथा नो निर्वृतिर्भवेत् ॥५॥

सूत उवाच

साधु पृष्टं द्विजश्रेष्ठा ! लोकानां तारणं परम् ।
यूयं कृतार्थाः कृष्णस्य भक्त्या सम्पूर्णमानसाः ॥६॥

करने वाले इस प्रसङ्ग को जो भगवद् भक्त नित्य ही भक्ति पूर्वक पढ़ते हैं, वे भगवान् विष्णु के लोक से कभी भी इस संसार में नहीं आते हैं ॥११५-११६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के श्रीवृन्दावन माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में तिरासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८३॥

भगवद् ध्यान का वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे महाभाग सूत ! हे रोमहर्षण नन्दन ! आपने संसार को आनन्द प्रदान करने वाली मनोहर कथा को कहा है ॥१॥ भगवान् श्रीकृष्ण के अद्भुत चरित को हमलोगों ने सुना उससे अत्यधिक सुख की प्राप्ति हुयी ॥२॥ हे महाभाग ! भगवान् श्रीकृष्ण का माहात्म्य भक्तों को मुक्ति प्रदान करने वाला है अतएव उसके द्वारा किसको शान्ति नहीं मिलेगी ?॥३॥ अतएव हमलोग भगवान् श्रीकृष्ण के महान् चरित्र को सुनना चाहते हैं । व्रत एवं दान आदि की योग्यता के विषय में भी सुनना चाहते हैं॥४॥ हे महाभाग ! प्राचीन काल में जिसने जहाँ पर जैसे स्नान भी किया उन सारी बातों को आप बतलायें जिससे हमलोगों को शान्ति मिले ॥५॥ **सूतजी ने कहा**— हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! आपलोगों ने संसार संतारक वस्तु के विषय में अच्छा प्रश्न किया है । आप लोगों का मन भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति से

श्रीकृष्णचरितं पुण्यं साधूनां हर्षदं परम् । प्रवक्ष्यामि द्विजश्रेष्ठा महदाख्यानमुत्तमम् ॥७॥
एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः । मथुरायामम्वरीषं कृष्णाराधनतत्परम् ॥८॥
महाभागं व्रतपरं ददर्श मुनिसत्तमः । स आगतं मुनिवरं सत्कृत्य मुनिसत्तमः ॥
भगवत इव पप्रच्छ श्रद्धया हृष्टमानसः ॥९॥

अम्वरीष उवाच

यन्मुने परमं ब्रह्म वेदवादिभिरुच्यते । स देवः पुण्डरीकाक्षः स्वयं नारायणः परः ॥१०॥
योऽमूर्तो मूर्तिमानीशो व्यक्तोऽव्यक्तःसनातनः ।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यो ध्यातव्यः स कथं हरिः ॥११॥
यस्मिन्सर्वमिदं विश्वमोतं प्रोतं प्रतिष्ठितम् । अव्यक्तमेकं परमं परमात्मेति विश्रुतम् ॥१२॥
यतो जन्मादि जगतो योनिर्मायस्वयम्भुवम् । ददौ तस्मै च निगमानात्मन्येव व्यवस्थितान् ॥१३॥
कथमाराध्यते सोऽयं समग्रपुरुषार्थदः । योगिनामापि दुर्गम्यस्तदेतत्कृपया वद ॥१४॥
अनाराधितगोविन्दो न विदन्ति हितोदयम् । न तपो यज्ञदानानां लभते फलमुत्तमम् ॥१५॥
अनास्वादितगोविन्दपदाम्बुजरसश्च यः । मनोरथपथातीतं स्फीतं नाकलयेत्फलम् ॥१६॥
हरेराराधनं हित्वा दुरितौधनिवारणम् । नान्यत्पश्यामि जन्तूनां प्रायश्चितं परं मुने ॥१७॥
यद्भ्रूनर्तनवर्तिन्यः श्रूयन्ते सिद्धयोऽखिलाः । कथमाराध्यते सोऽयं केशवः क्लेशनाशनः ॥१८॥
उपास्यते स भगवान्कथं नारायणो नरैः । प्रीतश्च सर्वमेतन्मे हिताय जगतो वद ॥१९॥

परिपूर्ण है अत: आपलोग कृतकृत्य हैं ॥६॥ भगवान् श्रीकृष्ण का चरित पवित्र तथा सज्जनों को हर्षित करने वाला है । हे द्विजश्रेष्ठों ! मैं सर्वोत्तम आख्यान सुनाता हूँ ॥७॥ एक वार भगवत् प्रिय नारदजी लोकों में भ्रमण करते हुए, भगवान् कृष्ण की आराधना करने वाले व्रत किए हुए महाभाग अम्वरीष को मथुरा में देखे । हे मुनिश्रेष्ठों ! आये हुए मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी का सत्कार करके आपलोगों के ही समान श्रद्धा पूर्वक प्रसन्न मन से पूछे ॥८-९॥ **अम्वरीष ने कहा—** हे मुने ! वेदज्ञ महापुरुष कहते हैं कि जिनको परंब्रह्म कहा जाता है, वे श्रीपुण्डरीकाक्ष भगवान् स्वयं नारायण ही हैं ॥१०॥ जो अमूर्त, मूर्तिमान, और सवों के नियामक हैं, सनातन व्यक्त तथा अव्यक्त हैं, सर्वभूतमय, अचिन्त्य, (जिनका सानान्य बुद्धि से चिन्तन नही किया जा सकता है ।) उन श्रीहरि का ध्यान कैसे करना चाहिए ?॥११॥ उनमें ही यह सम्पूर्ण जगत् ओत-प्रोत और प्रतिष्ठित हैं, वे अव्यक्त, एक तथा सर्वश्रेष्ठ परमात्मा हैं यह सुना जाता है ॥१२॥ जिससे जगत् की उत्पत्ति आदि होते हैं, जो ब्रह्माजी की सृष्टि करके उनको अपने में ही विद्यमान् वेदों का उन्हें उपदेश दिए ॥१३॥ वे समस्त पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले तथा योगियों के लिए भी दुर्गम्य श्रीभगवान् की आराधना कैसे की जाती है ? इसे आप कृपा करके बतलायें ॥१४॥ भगवान् गोविन्द की आराधना किए बिना किसी का कल्याण नहीं होता है । तपस्या, यज्ञ तथा दानों का उत्तम फल भी नहीं प्राप्त होता है ॥१५॥ श्रीभगवान् के चरणोदक का आस्वाद लिए विना कोई भी मनोरथातीत फल को नहीं प्राप्त कर सकता है ॥१६॥ हे मुने ! पाप समूह को विनष्ट करने वाली श्रीहरि की आराधना से भिन्न कोई भी श्रेष्ठ प्रायश्चित मैं नहीं जानता हूँ ॥१७॥ जिनके भौहों के विलास मात्र सिद्धियाँ सुनी जाती हैं उन सवों के द्वारा क्लेशों को विनष्ट करने वाले श्रीभगवान् की आराधना कैसे की जा सकती हैं ?॥१८॥ मनुष्यों

भक्तिप्रियोऽसौ भगवान्कया भक्त्या प्रसीदति ।
कथं तस्मिन्भवेद्भक्तिः सर्वैराराध्यते कथम् ॥२०॥
वैष्णवोऽसि हरेस्तस्य प्रियोऽसि परमार्थवित् ।
तेन त्वामेव पृच्छामि ब्रह्मन्ब्रह्मविदुत्तम ! ॥२१॥
श्रोतारमथ वक्तारं प्रष्टारं पुरुषं हरेः ।
प्रश्नः पुनाति कृष्णस्य तदङ्घ्रिसलिलं यथा ॥२२॥
दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः। तत्रापि दुर्ल्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥२३॥
संसारेऽस्मिन् क्षणार्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम् ।
यस्मादवाप्यते सर्वं पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥२४॥
भगवन्भगवतो यात्रास्वस्तये सर्वदेहिनाम्। बालानां तु यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम्॥२५॥
भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च। सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम् ॥२६॥
भजन्ति ये यथा देवान्देवा अपि तथैव तान् ।
दायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः ॥२७॥
तस्मात्त्वं भगवन्मह्यं वैष्णवं धर्ममादिश। यस्योपदेशदानेन लभते वेदजं फलम् ॥२८॥

नारद उवाच

साधु पृष्टं महीपाल विष्णुभक्तिमता त्वया। जानता परमंधर्ममेकं माधवसेवनम् ॥२९॥

के द्वारा भगवान् नारायण की उपासना कैसे की जाती हैं ? इन सारी बातों को आप मेरे तथा संसार का कल्याण करने के लिए आप प्रसन्नता पूर्वक बतलायें ॥१९॥ श्रीभगवान् को भक्ति प्रिय है, वे भक्ति के द्वारा कैसे प्रसन्न होते हैं ? श्रीभगवान् में भक्ति कैसे होती है ? और लोग श्रीहरि की आराधना कैसे करते हैं?॥२०॥ हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ! आप परमार्थ के ज्ञाता तथा श्रीभगवान् के प्रिय वैष्णव हैं इसीलिए मैं आपसे इन सारी बातों को पूछता हूँ ॥२१॥ श्रीहरि के विषय में श्रवण करने वाले, तथा प्रश्न करने वाले दोनों प्रकार के पुरुषों को श्रीभगवान् के चरणोदक के समान प्रश्न भी पवित्र बना देता है ॥२२॥ शरीरधारियों को क्षणभङ्गुर मानव शरीर मिलना दुर्लभ है, उसमें भी भगवद् भक्तों का दर्शन मैं दुर्लभ मानता हूँ ॥२३॥ इस संसार में मनुष्यों को आधे क्षण की सत्सङ्गति भी दुर्लभ है । क्योंकि सत्सङ्गति से चारो प्रकार के पुरुषार्थों की प्राप्ति हो जाती है ॥२४॥ हे भगवन् ! आपका आगमन श्रीभगवान् के मार्ग पर चलने वाले सभी शरीरधारियों को उसीतरह से कल्याण कारक होता है जिसतरह बालकों के लिए उनके माता-पिता का दर्शन कल्याणप्रद होता है ॥२५॥ देवताओं का चरित जीवों के लिए दुःखप्रद और सुखप्रद दोनों प्रकार का होता है; किन्तु आप जैसे भगवदात्मक साधु पुरुषों का चरित तो केवल सुखप्रद ही होता है ॥२६॥ जो देवताओं की जैसी सेवा करता है, वे भी उसकी वैसी ही सेवा करते हैं; किन्तु दीन वत्सल साधु पुरुष तो छाया के समान कर्मों के साक्षी होते हैं ॥२७॥ अतएव हे भगवन् ! आप मुझे वैष्णव धर्म का उपदेश दें, उसके सुनने मात्र से ही वैदिक फल की प्राप्ति होती है ॥२८॥ **नारदजी ने कहा—** भगवद् भक्ति से सम्पन्न राजन् ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । आप जानते हैं कि सर्वोत्कृष्ट श्रीभगवान् के केवल सेवा ही है ॥२९॥ श्रीहरि सर्वदेवमय हैं, उनकी आराधना करने से सम्पूर्ण विश्व की आराधना हो जाती

यस्मिन्नाराधिते विष्णौ विश्वमाराधितं भवेत्। तुष्टे चराचरं तुष्टं सर्वदेवमये हरौ ॥३०॥
यस्य स्मरणमात्रेण महापातकसंहतिः। तत्क्षणान्नाशमायाति स सेव्यो हरिरेव हि॥३१॥
को नु राजन्निन्द्रियवान्मुकुन्दचरणाम्बुजम्। न भजेत्सर्वतो मृत्युरुपास्यमृषिदैवतैः॥३२॥
श्रुतोऽनुपठितोध्यात आदृतश्चानुमोदितः। सद्यः पुनाति सद्धर्मो वीरो विश्वद्रुहोऽपि हि॥३३॥
योऽयं कारणकार्यादि कारणस्यापि कारणम् ।
अनन्यकारणं योगी जगज्जीवो जगन्मयः ॥३४॥
अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो निर्गुणो गुणभृन्महान् ।
अजो जन्मलयातीतो ध्यातव्यः स हरिः सदा ॥३५॥
सम्यगेतद्व्यवसितं भवता पुरुषर्षभ। यत्पृच्छसे भागवतान्धर्मांस्त्वं विश्वभावनान्॥३६॥
प्रसङ्गेन सतामात्ममनः श्रुतिरसायनाः। भवन्ति कीर्तनीयस्य कथाः कृष्णस्य निर्मलाः ॥३७॥
भावसाध्यो ह्ययं देवः स्वयं जानाति तद्भवान् ।
तथापि वक्ष्ये जगतो हिताय तव गौरवात् ॥३८॥
यदाहु परमं ब्रह्म प्रधानपुरुषात्परम्। यन्मायया ततं सर्वं सर्वं यच्छति सोऽच्युतः॥३९॥
पुत्रान्कलत्रं दीर्घायू राज्यं स्वर्गापवर्गकम्। स दद्यादीप्सितं सर्वं भक्त्या सम्पूजितोऽजितः॥४०॥
कर्मणा मनसा वाचा तत्परा ये हि मानवाः ।
तेषां व्रतानि वक्ष्यामि प्रीतये भूपसत्तम ॥४१॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमकल्पता। एतानि मानसान्याहुर्व्रतानि हरितुष्टये ॥४२॥

है, श्रीभवगान् के प्रसन्न हो जाने पर सम्पूर्ण चराचर प्रसन्न हो जाता है ॥३०॥ जिनका स्मरण करने मात्र से उसी क्षण समस्त पापों का नाश हो जाता है, उन्हीं श्रीभगवान् की आराधना करनी चाहिए ॥३१॥ हे राजन् ! कौन ऐसा इन्द्रियवान् होगा जो श्रीभगवान् के चरण कमलों की उपासना न करे, ऋषियों तथा देवताओं के द्वारा काल ही उपास्य है ॥३२॥ सद्धर्म का श्रवण, पठन, ध्यान तथा समादर करने से (सद्धर्म) संसार के द्रोही को भी पवित्र बना देता है ॥३३॥ श्रीहरि ही कारण, कार्य, कारणों का भी कारण, अनन्य कारण, योगी, संसार के प्रेरणा स्वरूप तथा जगत् स्वरूप है, अणु परिमाणक, बृहत् परिमाणक, कृश स्थूल, निर्गुण, (हेयगुण रहित) गुणवान् (कल्याणगुण सम्पन्न) अजन्मा, जन्म तथा लय से रहित हैं, उन्हीं का ध्यान करना चाहिए ॥३४-३५॥ आपने संसार का कल्याण करने वाले भागवत धर्मों के विषय में प्रश्न किया है, यह बहुत अच्छा काम किया है ॥३६॥ सज्जनों के समागम से भगवान् श्रीकृष्ण की निर्मल तथा कीर्तनीय कथाएँ आत्मा मन और कानों के लिए रसायन का काम करती है।॥३७॥ श्रीभगवान् भाव के द्वारा ही आराध्य हैं, इस बात को आप स्वयं जानते हैं । फिर भी मैं जगत् का कल्याण करने के लिए तथा आपके गौरव को दृष्टिपथ में रखकर कहता हूँ ॥३८॥ जिनको परंब्रह्म, प्रधान तथा पुरुष से श्रेष्ठ कहा गया है, जिनकी माया से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है तथा जो सबकुछ प्रदान करते हैं, वे भगवान् अच्युत ही हैं ॥३९॥ भक्ति के द्वारा पूजित श्रीभगवान्; पुत्रों, पत्नी, दीर्घायु, राज्य, स्वर्ग, मुक्ति तथा समस्त अभिप्रेत वस्तुओं को प्रदान करते हैं ॥४०॥ जो मनुष्य मन, वाणी तथा कर्म से जिनके भक्त हैं हे राजश्रेष्ठ ! मैं उन मनुष्यों के व्रतों को आपकी प्रसन्नता के लिए बतलाऊँगा ॥४१॥ अहिंसा,

एकभक्तं तथा नक्तमुपवासमयाचितम् । इत्येवं कायिकं पुंसां व्रतमुक्तं नरेश्वर ॥४३॥
वेदस्याध्ययनं विष्णोः कीर्तनं सत्यभाषणम् ।
अपैशुन्यमिदं राजन्वाचिकं व्रतमुत्तमम् ॥४४॥
चक्रायुधस्य नामानि सदा सर्वत्र कीर्तयेत् । नाशौचं कीर्तने तस्य स पवित्रकरो यतः ॥४५॥
वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् । विष्णुराराध्यते पन्था नान्यः सन्तोषकारणम्॥४६॥
पतिप्रियहिताभिश्च मनोवाक्कायसंयमैः। व्रतैराराध्यते स्त्रीभिर्वासुदेवो दयानिधिः ॥४७॥
आगमोक्तेन मार्गेण स्त्रीशूद्रैरपि पूजनम्। कर्तव्यं कृष्णचन्द्रस्य द्विजातिवररूपिणः ॥४८॥
त्रयोवर्णास्तु वेदोक्तमार्गाराधनतत्पराः। स्त्रीशूद्रादय एव स्युर्नाम्नाऽऽराधनतत्पराः ॥४९॥
न पूजनै र्न यजनै र्न व्रतैरपि माधवः। तुष्यते केवलं भक्तिप्रियोऽसौ समुदाहृतः॥५०॥
स्त्रीणां पतिव्रतानां तु पतिरेवहि दैवतम्। स तु पूज्यो विष्णुभक्त्या मनोवाक्कायकर्मभिः॥५१॥
कर्तव्यं श्रद्धया विष्णोश्चिन्तयित्वा पतिं हृदि ।
शूद्राणां चैव भवति नाम्ना वै देवतार्चनम् ॥५२॥
सर्वेप्यागममार्गेण कुर्युर्वेदानुकारिणा। स्त्रीणामप्यधिकारोस्ति विष्णोराराधनादिषु॥५३॥
पतिप्रियरतानां च श्रुतिरेषा सनातनी। स्वकुलोचितधर्मेण यद्यस्य विहितं व्रतम् ॥५४॥
तत्तदेवाचरेद्यस्तु तेन तुष्यति केशवः। हविषाग्नौ जले पुष्पैर्ध्यानेन हृदये हरिम् ॥५५॥

सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) तथा अकल्पता (किसी से द्वेष न करना) ये सभी श्रीभगवान् को प्रसन्न करने वाले मानसिक व्रत है ॥४२॥ बिना माँगे ही मिलने वाला दिन में एक बार अथवा सायंकाल भोजन करना या उपवास करना चाहिए। हे नरेश्वर ! ये मनुष्यों के कायिक व्रत बतलाये गये हैं ॥४३॥ हे राजन्! वेद का अध्ययन करना, भगवान् विष्णु का कीर्तन करना, सत्य बोलना तथा किसी की चुगुली नहीं करना ये वाणी के उत्तम व्रत हैं ॥४४॥ श्रीभगवान् के नामों का सदैव और सर्वत्र गाते रहे। कीर्तन में कोई अपवित्रता नहीं होती है। कीर्तन तो पवित्र बनाने वाला है ॥४५॥ अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुकूल धर्म का पालन करने वाला मनुष्य भगवान् विष्णु की आराधना करता है। भगवान् विष्णु की आराधना का कोई दूसरा मार्ग नहीं है ॥४६॥ स्त्रियाँ मन वाणी और कर्म से अपने पति के प्रिय तथा उनके लिए कल्याणकारी कार्यो को हीं करके भगवान् की आराधना करती हैं उसी से भगवान् वासुदेव प्रसन्न होते हैं ॥४७॥ स्त्रियों तथा शूद्रों को भी श्रीहरि की आराधना करनी चाहिए। द्विजातियों में श्रेष्ठ रूप वाले श्रीहरि की आराधना आगमोक्त मार्ग से करना चाहिए ॥४८॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य इन तीन वर्णो के लोगों को वेदोक्त मार्ग से श्रीहरि की पूजा करनी चाहिए और शूद्रों को नाम मन्त्रों से भगवान् की पूजा करनी चाहिए ॥४९॥ पूजन, यज्ञ तथा व्रत से भगवान् माधव नहीं प्रसन्न होते हैं। वे भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं, भगवान् को भक्ति ही प्रिय है ॥५०॥ पतिव्रता स्त्रियों के तो उनके पति ही देवता होते हैं स्त्रियों को अपने पति की पूजा भगवान् विष्णु के ही समान भक्ति पूर्वक मन, कर्म और वाणी से करना चाहिए ॥५१॥ स्त्रियों को अपने हृदय में पति का ध्यान करके भगवान् विष्णु की श्रद्धा पूर्वक पूजा करनी चाहिए। शूद्रों को नाम उच्चारण करके देवता की पूजा करनी चाहिए ॥५२॥ सबों को आगमोक्त विधि से पूजा करनी चाहिए, स्त्रियों का भी भगवान् विष्णु की आराधना आदि में अधिकार है ॥५३॥ जो पति का प्रिय कार्य करती हैं उन स्त्रियों

यजन्ति सूरयो नित्यं जपेन रविमण्डले। अहिंसा प्रथमं पुष्पं द्वितीयं करणग्रहः ॥५६॥
तृतीयकं भूतदया चतुर्थं क्षान्तिरेव च। शमस्तु पञ्चमं पुष्पं दमः षष्ठं च सप्तमम् ॥५७॥
ध्यानं सत्यं चाष्टमञ्च ह्येतैस्तुष्यति केशवः। एतैरेवाष्टभिः पुष्पैस्तुष्यत्येवार्चितो हरिः॥५८॥
पुष्पान्तराणि सन्त्येव बाह्यानि मनुजोत्तम। भक्त्या कृतानि यैर्विष्णु पूजितः परितुष्यति॥५९॥
वारुणं सलिलं पुष्प सौम्यं घृतपयोदधि। प्राजापत्यं तथान्नादि आग्नेयं धूपदीपकम्॥६०॥
फलपुष्पादिकं चैव वानस्पत्यं तु पञ्चमम्। पार्थिवं कुशमूलाद्यं वायव्यं गन्धचन्दनम्॥६१॥
श्रद्धाख्यं विष्णुपुष्पं च वाद्यं विष्णुपदं स्मृतम्।
एभिस्तु पूजितः पुष्पैरपि विष्णुः प्रसीदति ॥६२॥
सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम्।
भूरात्मा सर्वभूतानि पूजास्थानानि वा हरेः ॥६३॥
सूर्ये तु मन्त्रजाप्येन हविषाग्नौ यजेत्ततः। आतिथ्येन तु विप्राग्र्ये गोषु ग्रासरसादिना॥६४॥
वैष्णवे बन्धुसत्कृत्या हृदये ध्याननिष्ठया। वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः॥६५॥
स्थण्डिले मन्त्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि। क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेनार्चयेद्विभुम् ॥६६॥

के विषय में सनातन श्रुति कहती है कि उन्हें अपने वंश के अनुसार जिसका जो व्रत बतलाया गया है। उसको उन व्रतों को करना चाहिए उससे भगवान् केशव प्रसन्न होते हैं। विद्वज्जन अग्नि में हविष्य से, जल में पुष्प से तथा हृदय में ध्यान के द्वारा श्रीहरि ॥५४-५५॥ का पूजन करते हैं। वे जप के द्वारा नित्य ही रविमण्डल में पूजन करते हैं। अहिंसा प्रथम पुष्प है, इन्द्रियों का निग्रह (अपने वश में करना) दूसरा पुष्प है ॥५६॥ जीवों पर दया करना तीसरा पुष्प है, क्षमा चौथा पुष्प है, शम (शान्ति) पाँचवाँ पुष्प है, दम (मन को अपने वश में रखना) छठा पुष्प है। ध्यान सातवाँ पुष्प है, सत्य का पालन करना आठवाँ पुष्प है। इन पुष्पों के द्वारा भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। इन्हीं आठ पुष्पों से अर्चना करने से श्रीहरि प्रसन्न होते हैं ॥५७-५८॥ हे मनुष्यों में श्रेष्ठ ! दूसरे पुष्प तो बाह्य पुष्प हैं, भक्ति पूर्वक जो पूजा की जाती है, उससे भगवान् केशव सन्तुष्ट होते हैं ॥५९॥ जल वरुण पुष्प है, घी, दुग्ध और दधि सौम्य पुष्प है, अन्न आदि प्राजापत्य पुष्प हैं, धूप दीप आग्नेय पुष्प हैं ॥६०॥ पाञ्चवें फल पुष्प आदि वानस्पत्य बाह्य पुष्प हैं। कुश तथा मूल पार्थिव पुष्प हैं, गन्ध तथा चन्दन वायव्य वाह्य पुष्प हैं ॥६१॥ श्रद्धा विष्णु पुष्प है, वाद्य को विष्णुपद कहा गया है। इन पुष्पों से पूजा करने से भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं ॥६२॥ सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, आकाश, वायु, जल, पृथिवी, आत्मा तथा सभी जीव श्रीहरि के पूजा स्थान है ॥६३॥ सूर्य में मन्त्र के जप के द्वारा श्रीहरि की पूजा करे, अग्नि में हविष्य से श्रीहरि की पूजा करे, श्रेष्ठ ब्राह्मण में उसका अतिथि सत्कार करके श्रीहरि की पूजा करे, गौओं को घास तथा रस आदि प्रदान करके उनमें श्रीहरि की पूजा करे ॥६४॥ वैष्णव में अपने बन्धु के समान उसका सत्कार करके श्रीहरि की पूजा करे, ध्यान में नित्य के द्वारा हृदय में श्रीहरि की पूजा करे। वायु में मुख्यत्व की बुद्धि से श्रीहरि की पूजा करे; जल प्रधान द्रव्यों के द्वारा जल में श्रीहरि की पूजा करे ॥६५॥ वेदी पर मन्त्र प्रधान के द्वारा श्रीहरि की पूजा करे और आत्मा में सर्वात्मा श्रीहरि की पूजा भोगों के द्वारा करनी चाहिए। सभी जीवों में एक समान आत्मा मानकर श्रीहरि की पूजा करे ॥६६॥ इन्हीं स्थानों में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करने वाले

धिष्ण्येष्वेतेषु तद्रूपं शङ्खचक्रगदाम्बुजैः। युक्तं चतुर्भुजं शान्तं ध्यायन्नर्च्चेत्समाहितः ॥६७॥
ब्राह्मणैः पूजितैरेव पूजितोऽयं न संशयः। निर्भर्त्सितैश्चतैर्भूप भवेन्निर्भर्त्सितो विभुः ॥६८॥
निगमो धर्मशस्त्रं च यदाधारे प्रवर्तते। विप्रास्ते वैष्णवीमूर्तिः पावनी परमामता॥६९॥
सर्वं शुभं जगति धर्मत एव लभ्यं धर्मो गतिर्निगमतो नृप ! धर्मशास्त्रात् ।
नूनं तयोरपि गतिर्भुविभूमिदेवास्तैरर्चितरिह जगत्पतिरर्चितः स्यात् ॥७०॥
न यज्ञयोगैर्नतपोभिरन्यैर्न योगयुक्त्या न समर्चनेन ।
तथा विभुस्तुष्यति देवदेवो यथा मही दैवततोषणेन ॥७१॥
ब्रह्मण्यो ब्रह्मविद् ब्रह्मा ब्रह्मवेद प्रवर्तकः। ब्राह्मणैरेव तुष्येत तोषितैर्ब्रह्मदैवतैः ॥७२॥
नरकेऽपि चिरं मग्नाः पूर्वजा ये कुलद्वये । तदैव यान्ति ते स्वर्गं यदाऽर्च्चति सुतो हरिम्॥७३॥
किं तेषां जीवितेनेह पशुवच्चेष्टितेन किम् । येषां न प्रवणं चित्तं वासुदेवे जगन्मये ॥७४॥
ध्यानं तस्य प्रवक्ष्यामि यन्नदृष्टं तु केनचित्। श्रूयतां भूप कैवल्यं केवलं मलवर्जितम् ॥७५॥
यथा दीपो निवातस्थो निश्चलो वायुवर्जितः ।
प्रज्वलन्नाशयेत्सर्वमन्धकारं महामते ॥७६॥
तद्वद्दोषविहीनात्मा भवत्येव निरामयः। निराशो निश्चलो वीरो न मित्रं न रिपुस्तथा ॥७७॥
शोकहर्षौ विषादश्च न लोभो मत्सरो भ्रमः ।
सम्भ्रमालापमोहैश्च सुखदुःखैर्विमुच्यते ॥७८॥

श्रीहरि की पूजा करे । उस समय चतुर्भुज तथा शान्त स्वभाव वाले श्रीहरि का ध्यान करते हुए पूजन करे॥६७॥ ब्राह्मणों के द्वारा पूजा करवाने पर श्रीहरि पूजित हो जाते हैं, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है । राजन् ! ब्राह्मणों को डाँटने से श्रीभगवान् ही डाँटे जाते हैं ॥६८॥ जिनके आधार पर धर्मशास्त्रों का प्रवर्तन होता है वे भगवान् की मूर्ति ब्राह्मण ही हैं । वे अत्यन्त पवित्र हैं ॥६९॥ संसार में समस्त कल्याणों की प्राप्ति धर्म से ही होती है । राजन् ! वेदों एवं धर्मशास्त्रों से ही धर्म को जाना जाता है । इन दोनों के भूलोक में गति ब्राह्मण ही हैं, अतएव ब्राह्मणों की पूजा से जगत् पति श्रीभगवान् ही पूजित होते हैं ॥७०॥ यज्ञ, योग, तपस्या तथा दूसरी योग वाक्यों से अथवा पूजन के द्वारा श्रीहरि उतना प्रसन्न नहीं होते हैं जितना के ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने से वे प्रसन्न होते हैं ॥७१॥ ब्राह्मण भक्त (ब्रह्मण्य) ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मा तथा ब्रह्मवेद के प्रवर्तक श्रीभगवान् ब्राह्मणों को पूज्य मानने वाले ब्राह्मणों से ही सन्तुष्ट होते हैं ॥७२॥ माता और पिता दोनों के वंश दीर्घ काल से नरकों में डूबे हुए पूर्वज उसी समय स्वर्ग में चले जाते हैं, जिस समय उस वंश का पुत्र श्रीहरि की पूजा करता है ॥७३॥ जिन लोगों का जगदात्मा श्रीहरि में मन नहीं लगता है उन लोगों के जीवन अथवा पशु के समान चेष्टाओं से कौन सा लाभ है ?॥७४॥ हे राजन् ! मैं श्रीभगवान् के निर्मल तथा कैवल्य स्वरूप ध्यान को बतलाता हूँ जिसे कोई नहीं जानता है उसे आप सुनें ॥७५॥ हे महामते ! जिस तरह निर्वात स्थान में वायु रहित दीप निश्चिल रूप से जलता हुआ सम्पूर्ण अन्धकार को विनष्ट कर देता है ॥७६॥ उसी तरह दोष रहित आत्मा निरामय होता है वह किसी से कोई आशा नहीं रखता है और निश्चल रहता है । उसका न तो कोई मित्र होता है और न कोई शत्रु होता है॥७७॥ वह शोक, हर्ष, विषाद, लोभ, मत्सर, भ्रम, सम्भम, आलाप, मोह, सुख तथा दुःख से रहित

विषयैश्चापि सर्वैश्च इन्द्रियाणां प्रमुच्यते। तदा स केवलज्ञानी कैवल्यत्वं प्रजायते॥७९॥
ज्वालाकर्मप्रसङ्गेन दीपस्तैलं प्रशोषयेत्। वर्त्याधारेण राजेन्द ! निर्द्वन्दो वायुवर्जितः ॥८०॥
कज्जलं वमते पश्चात्तैलस्यापि महामते। कृष्णासन्दृश्यते रेखा दीपस्याग्रे महामते ॥८१॥
स्वयमाकृष्य तत्तैलं तेजसा निर्मलो भवेत्। काये चान्तः स्थितस्तद्वत्कर्मतैलं प्रशोषयेत्॥८२॥
विषयान्कज्जलं कृत्वा प्रत्यक्षान्सम्प्रदर्शयेत्। ज्वालावन्निर्मलो भूत्वा स्वयमेव प्रकाशयेत् ॥८३॥
क्रोधलोभादिभिः संज्ञैर्वायुभिः परिवर्जितः। निःस्पृहो निश्चलो भूत्वा तेजश्च स्वयमुज्जवलेत्॥८४॥
त्रैलोक्यं पश्यते सर्वं स्वस्यात्मस्थं स्वतेजसा ।
केवलज्ञानरूपोऽयं मया ते परिकीर्तितः ॥८५॥
ध्यानं चैव प्रवक्ष्यामि द्विविधं तस्य चक्रिणः ।
केवलज्ञानरूपेण दृश्यते परचक्षुषा ॥८६॥
योगयुक्ता महात्मानः परमार्थपरायणाः। यं न पश्यन्ति मुग्धास्तु सर्वज्ञं सर्वदर्शकम् ॥८७॥
हस्तपादविहीनश्च सर्वत्र परिगच्छति। सर्वं गृह्णाति त्रैलोक्यं स्थावरं जङ्गमं पुनः॥८८॥
नासामुखविहीनस्तु घ्राति भक्षति भूपते। अकर्णः श‍ृणुते सर्वं सर्वसाक्षी जगत्पतिः ॥८९॥
अरूपो रूपसम्बद्धः पञ्चवर्गवशं गतः। सर्वलोकस्य यः प्राणः पूज्यते स चराचरैः ॥९०॥
अजिह्वो वदते सर्वं वेदशास्त्रनुगं तथा। अत्वचः स्पर्शमेवापि सर्वेषामेव विन्दति ॥९१॥
सदानन्दो विविक्ताक्ष एकरूपो निराश्रयः। निर्गुणो निर्ममो व्यापी सगुणो निर्मलोऽनघः ॥९२॥

होता है ॥७८॥ वह इन्द्रियों के सभी विषयों से मुक्त रहता है। उस समय वह केवल ज्ञानी होता है और उसमें कैवल्य उद्भुत हो जाता है ॥७९॥ दीपक ज्वालारूपी कर्म के द्वारा तेल को सोख लेता है। हे राजेन्द्र ! वार्ती के आधार पर वह वायु से हीन और निर्द्वन्द बना रहता है ॥८०॥ हे महामते ! बाद मे वह तेल की कालिमा को उगल देता है। वह दीप के आगे काली रेखा के रूप में दिखायी देता है ॥८१॥ वह स्वयं तेज के द्वारा तेल को खींचकर निर्मल हो जाता है, उसी तरह शरीर के भीतर विद्यमान निर्मल आत्मा कर्म रूपी तेल को सोख लेता है ॥८२॥ वह विषयों को कज्जल के समान प्रत्यक्षतः प्रदर्शित कर देता है। वह स्वयं ज्वाला के समान निर्मल होकर स्वयम् प्रकाशित होता है ॥८३॥ क्रोध, लोभ आदि वायुओं से रहित वह स्पृहा रहित और निश्चल होकर स्वयं तेज के द्वारा प्रकाशित होता है ॥८४॥ वह अपने भीतर ही त्रैलोक्य को स्थित देखता है मैंने आपको बतलाया है कि आत्मा केवल ज्ञानस्वरूप है॥८५॥ उस चक्रधारी श्रीभगवान् के दो प्रकार के ध्यानों को मैं बतलाता हूँ। दूसरे के नेत्र द्वारा वह केवल ज्ञान रूप से दिखायी देता है ॥८६॥ योग से युक्त, परमार्थ परायण महात्मागण मोहित होने के कारण उस सर्वज्ञ और सर्वप्रकाशक आत्मा को नहीं देख पाते हैं ॥८७॥ हाथ तथा पैर से रहित परमात्मा सर्वत्र जाते हैं वे स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण त्रैलोक्य को ग्रहण करते हैं ॥८८॥ हे राजन् ! नाक तथा मुख से रहित होने पर भी सूंघने और खाने का काम वे करते हैं। कान रहित परमात्मा सबकुछ सुनते हैं। वे जगत् के स्वामी तथा सबों के साक्षी हैं ॥८९॥ रूप रहित भी वे रूप से सम्बद्ध हैं, वे पञ्चवर्ग के अधीन हो जाते हैं। वे सम्पूर्ण जगत् का प्राण (आत्मा) है उनकी ही पूजा चराचर जीव करते हैं ॥९०॥ जिह्वा से रहित होने पर भी वे सम्पूर्ण वेद शास्त्रानुसार बातों को बोलते हैं। वे त्वगिन्द्रिय से रहित होकर

अवश्य:सर्ववश्यात्मा सर्वद: सर्ववित्तम: । तस्य माता न चैवास्ति स वै सर्वमयो विभु:॥९३॥
एवं सर्वमयं ध्यानं यश्च पश्यत्यनन्यधी: । स याति परमं स्थानममूर्त्तममृतोपमम् ॥९४॥
द्वितीयं तु प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व महामते। मूर्त्ताकारं तु साकारं निराकारं निरामयम् ॥९५॥
ब्राह्माण्डं सर्वमतुलं वासितं यस्य वासनात्। स तस्माद्वासुदेवस्तु प्रोच्यते नृपनन्दन !॥९६॥
वर्षमाणस्य मेघस्य यद्भासा तस्य तद्भवेत् । सूर्यतेज:प्रतीकाशं चतुर्बाहुसुरेश्वरम्॥९७॥
दक्षिणे शोभते शङ्खो हेमरत्नविभूषित: । कौमोदकी गदा तस्य महासुर विनाशिनी ॥९८॥
वामे च शोभते वीर हस्ते तस्य महात्मन:। महापद्मं सुगन्धाढ्यं तस्य दक्षिणहस्तगम्॥९९॥
शोभमानं सदैवास्ते सायुधं कमलश्रियम्। कम्बुग्रीवं सुवृत्तास्यं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ॥१००॥
राजमानं हृषीकेशं दशनै: कुन्दसन्निभै:। गुडाकेशस्य यस्यास्त अधरो विद्रुमाकृति: ॥१०१॥
शोभते पुण्डरीकाक्ष: किरीटेनापि भास्वता ।
विशालेनापि रूपेण केशवस्तु सुवक्षसा ॥१०२॥
कौस्तुभेनाङ्कितेनैव राजमानो जनार्दन:। सूर्यतेज:प्रतीकाशकुण्डलाभ्यां प्रभाति च ॥१०३॥
श्रीवत्साङ्केन पुण्येन सर्वदा राजते हरि: । केयूरकङ्कणैर्हारैर्मौक्तिकैर्ऋक्षसन्निभै: ॥१०४॥
वपुषा भ्राजमानस्तु विजयो जयतां वर: । भ्राजते सोऽपि गोविन्दो हेमवर्णेन वाससा ॥१०५॥

भी सबों का स्पर्श करते हैं ॥९१॥ वह सदा आनन्द स्वरूप तथा एकान्त में स्थित रहते हैं । वे सदा एक समान रूप वाले हैं, उनका कोई भी आश्रय नहीं है । वह निगुण, निर्मम, व्यापक, सगुण, निर्मल एवं निर्दोष हैं ॥९२॥ वे किसी के वश में नहीं रहते हैं तथा सभी वश्यों की वे आत्मा हैं, वह सबकुछ देने वाला तथा सब कुछ जानने वाला है । उसका कोई माता नहीं है, वही सर्व व्यापक स्वरूप है ॥९३॥ जो अनन्य बुद्धि पुरुष इस प्रकार से ध्यान करता है वह अमृत के समान अमूर्त तथा सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करता है ॥९४॥ हे महामते ! मैं दूसरा ध्यान बतला रहा हूँ उसे आप सुनें । वह परमात्मा, मूर्त आकार वाला साकार, निराकार तथा निरामय है ॥९५॥ उसी की वासना से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड वसित है, हे राजन्! इसीलिए वह वासुदेव शब्द से अभिहित किया जाता है । वर्षुक बलाहक (बरसने वाले मेघ) की कान्ति के समान उसकी कान्ति है । उसका तेज सूर्य के समान प्रकाशक है । वह चार भुजाओं वाला परमात्मा है । वे ही सुरेश्वर हैं ॥९६-९७॥ उनके दाहिने हाथ में सुवर्ण तथा रत्नों से अलंकृत शङ्ख सुशोभित होता है । श्रीभगवान् की कौमोदकी गदा बड़े-बड़े असुरों का विनाश करने वाली है ॥९८॥ हे वीर ! श्रीभगवान् के बायें हाथ में सुगन्ध से परिपूर्ण महापद्म सुशोभित होता हे । उनके दाहिने हाथ में ॥९९॥ सदा कमल की शोभा होती है तथा वे आयुध से सुशोभित होते हैं । उनकी ग्रीवा शङ्ख के समान है तथा मुख गोल है, नेत्र कमल दल के समान मनोहर हैं ॥१००॥ भगवान् हृषीकेश कुन्द के समान सुशोभित होते हैं । उन गुडाकेश श्रीभगवान् के अधर विद्रुम के समान लाल-लाल हैं ॥१०१॥ भगवान् पुण्डरीकाक्ष देदीप्यमान किरीट से सुशोभित होते हैं । विशाल रूप तथा वक्षःस्थल वाले भगवान् जनार्दन कौस्तुभमणि तथा श्रीवत्स चिह्न से सुशोभित होते हैं । सूर्य के समान प्रकाश वाले श्रीभगवान् देदीप्यमान हैं ॥१०२-१०३॥ श्रीवत्स चिह्न के द्वारा श्रीहरि सदैव सुशोभित रहते हैं । तारों के समान देदीप्यमान केयूर, कङ्कण, हार तथा मोतियों के द्वारा वे सुशोभित शरीर वाले श्रीभगवान् विजयी हैं । भगवान् गोविन्द सुवर्ण के समान चमकने वाले

मुद्रिकाभिस्तु युक्ताभिरङ्गुलीषु विराजते। सर्वायुधैः सुसम्पूर्णैर्द्दिव्यैराभरणैर्हरिः ॥१०६॥
वैनतेयसमारूढो लोककर्त्ता जगत्पतिः। एवं यो ध्यायते नित्यमनन्यमनसा नरः॥१०७॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।
एतत्ते सर्वमाख्यातं ध्यानभेदं जगत्पतेः ॥१०८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे
भगवद्ध्यानवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

पचासीवाँ अध्याय

अम्बरीष उवाच

साधु साधु मुनिश्रेष्ठ ! लोकानुग्रहकारक ! ।
विष्णोर्ध्यानं त्वया प्रोक्तं सगुणं निर्गुणं च यत् ॥१॥
अधुना लक्षणं ब्रूहि भक्तेः साधु कृपाकर। यादृशी क्रियते येन यथा यत्र यदा तथा॥२॥

सूत उवाच

इत्युक्तमाकर्ण्य नृपोत्तमस्य मुनिः प्रहृष्टो निजगाद भूपम् ।
शृणुष्व राजन्निखिलाघहारिणीं भक्तिं हरेस्ते प्रवदामि सम्यक् ॥३॥
अथ भक्तिं प्रवक्ष्यामि विविधा पापनाशिनीम् ।
विविधा भक्तिरुद्दिष्टा मनोवाक्कायसम्भवा ॥४॥

पीताम्बर से भी सुशोभित होते हैं । मुद्रिकाओं से श्रीभगवान् की अङ्गुलियाँ सुशोभित हैं । सभी आयुधों तथा समस्त आभरणों से सुशोभित श्रीहरि ॥१०४-१०६॥ लोककर्ता, जगत्पति गरुड पर बैठे हुए हैं । अनन्यमना होकर जो इस प्रकार से श्रीहरि का ध्यान काता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर श्रीहरि के लोक में जाता है । इस तरह से मैंने आपको जगत् के स्वामी के ध्यानों के भेदों को बतला दिया ॥१०८॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के नारद अम्बरीष सम्वाद के अन्तर्गत भगवद् ध्यान वर्णन नामक चौरासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८४॥

भक्ति का लक्षण और उसका भेद

अम्बरीष ने कहा— हे संसार पर कृपा करने वाले मुनिश्रेष्ठ ! आपने भगवान् विष्णु के सगुण एवं निर्गुण ध्यान को बतलाकर बहुत अच्छा काम किया है ॥१॥ हे कृपा के आकर स्वरूप मुने ! अब आप भक्ति का लक्षण बतलायें, जो जैसी और जहाँ पर भक्ति करता है उसे भी आप बतलाएँ ॥२॥ **सूतजी ने कहा—** राजा की इस वाणी को सुनकर नारदजी राजा से प्रसन्नता पूर्वक कहे । हे राजन् ! आप सुनें मैं

लौकिकी वैदिकी चापि भवेदाध्यात्मिकी तथा ।
ध्यानधारणया बुद्ध्या वेदानां स्मरणं हि यत् ॥५॥
विष्णुप्रीतिकरी चैषा मानसी भक्तिरुच्यते । मन्त्रवेदसमुच्चारैरविश्रान्तविचिन्तनैः ॥६॥
जाप्यैश्चारण्यकैश्चैव वाचिकी भक्तिरुच्यते । व्रतोपवासनियमैः पञ्चेन्द्रियजयेन च ॥७॥
कायिकी सैव निर्दिष्टा भक्तिः सर्वार्थसाधिनी ।
भूषणैर्हेमरत्नाड्यैश्चित्राभिर्वाग्भिरेव च ॥८॥
वासः प्रतिसरैः सूत्रैः पावकव्यजनोच्छ्रितैः। नृत्यवादित्रगीतैश्च सर्वबल्युपहारकैः ॥९॥
भक्ष्यभोज्यान्नपानैश्च या पूजा क्रियते नरैः। नारायणं समुद्दिश्य भक्तिः सा लौकिकी मता॥१०॥
कायिकी सैव निर्दिष्टा भक्तिः सर्वार्थसाधिका ।
ऋग्यजुःसामजात्यानि संहिताध्ययनानि च ॥११॥
क्रियन्ते विष्णुमुद्दिश्य वैदिकी भक्तिरुच्यते। वेदमन्त्रहविर्यागैःक्रियाया वैदिकीमता ॥१२॥
दर्शे च पौर्णमास्यां च कर्त्तव्यं चाग्निहोत्रकम् ।
प्राशनं दक्षिणादानं पुरोडाशं चरुक्रिया ॥१३॥
इष्टिर्धृतिः सोमपानं याज्ञियं कर्मसर्वशः। अग्निभूम्यनिलाकाशद्युतिशङ्करभास्करम् ॥१४॥
तमुद्दिश्य कृतं कर्म तत्सर्वंविष्णुदैवतम् । आध्यात्मिकीतिविविधाब्रह्मभक्तिस्थितानृप ॥१५॥
साङ्ख्याख्यां योगसञ्ज्ञातां शृणुभूप ! यथोदिताम् ।
चतुर्विंशतितत्त्वानि प्रधानादीनि सङ्ख्यया ॥१६॥

आपको श्रीहरि की सर्वपाप विनाशिनी भक्ति को बतलाता हूँ ॥३। अब मैं आपको अनेक प्रकार की पापविनाशिका भक्ति को बतलाता हूँ । मन, वाणी और शरीर से की जाने वाली अनेक प्रकार की भक्ति बतलायी गयी हैं ॥४॥ भक्ति लौकिकी, वैदिकी तथा अध्यात्मिकी होती है । ध्यान, धारण तथा बुद्धि के द्वारा किये जाने वाले वेदों के स्मरण को भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाली मानसी भक्ति कयी गयी है। मन्त्रों तथा वेदों के उच्चारण तथा निरन्तर चिन्तन के द्वारा ॥५-६॥ तथा आरण्यक ग्रन्थों के पाठ के द्वारा की जाने वाली वाचिकी कहलाती है । व्रतों, भक्ति, उपवासों तथा नियमों के पालन तथा पाञ्चों इन्द्रियों को अपने वश में रखने के द्वारा ॥७॥ की जाने वाली सभी प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली भक्ति कायिकी कहलाती है । सुवर्णों तथा रत्नों से निर्मित भूषणों से, विभिन्न प्रकार की वाणियों से, ॥८॥ वस्त्र, प्रतिसर, सूत्र तथा व्यजन (पङ्खा) के द्वारा की जाने वाली हवा के द्वरा, नृत्य, वाद्य तथा गीत के द्वारा, सभी बल्लियों के उपहार के द्वारा ॥९॥ भक्ष्य-भोज्य अन्न और जल के द्वारा जो मनुष्यों द्वारा जो पूजा भगवान् नारायण की प्रसन्नता के लिए की जाती है वह लौकिक भक्ति कहलाती है ॥१०॥ कायिकी भक्ति को सभी प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली कहा गया है । ऋक्, यजुः तथा सामवेद की संहिताओं का अध्ययन॥११॥ जो भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए की जाती है, वह वैदिकी भक्ति कहलाती है । वेद, मन्त्र तथा हविर्याग के द्वारा की जाने वाली भक्ति वैदिकी है ॥१२॥ आमावस्या तथा पूर्णिमा के दिन अग्निहोत्र करना चाहिए । प्राशन करना, दक्षिणा देना, पुरोडाश तथा चरु का निर्माण ॥१३॥ इष्टि, धृति, सोमपान तथा सम्पूर्ण याज्ञिक कार्य, अग्नि, भूमि, वायु, आकाश, तेज, शङ्करजी तथा सूर्य की प्रसन्नता के लिए जो कोई

अचेतानि भोग्यानि पुरुषः पञ्चविंशकः। चेतनः ससमुद्दिष्टो कर्ताभोक्ता च कर्मणाम् ॥१७॥
आत्मा नित्योऽव्ययश्चैव अधिष्ठाता प्रयोजकः ।
पुरुषोऽव्यक्तनित्यः स्यात्कारणं च महेश्वरः ॥१८॥
तत्त्वसर्गो भावसर्गो भूतसर्गश्च तत्त्वतः ।
सङ्ख्यायाः परिसङ्ख्यायाः प्राधानं च गुणात्मकम् ॥१९॥
ज्ञात्वा साधर्म्यवैधर्म्यं प्रधानं च विधिर्मि च ।
कारणं ब्रह्मणश्चैव कामित्वमिदमुच्यते ॥२०॥
प्रयोज्यत्वं प्रधानस्य वैधर्म्यमिदमुच्यते। सर्वत्र कर्तृता ब्रह्मपुरुषस्याप्यकर्तृता ॥२१॥
अचेतनप्रधानेन समत्वमिदमुच्यते। तत्त्वान्तरं च तत्त्वानां कार्यकारणमेव च ॥२२॥
प्रयोजनं प्रयोज्यत्वं ज्ञात्वा तत्त्वप्रसङ्ख्यया। सङ्ख्यातमुच्यते प्राज्ञैर्विजयार्थं विचिन्तकैः ॥२३॥
इति मत्वास्यद्भावतत्त्वंसङ्ख्यं च तत्त्वतः। ब्रह्मतत्त्वाधिकंचापि भूततत्त्वंविदुर्बुधाः ॥२४॥
साङ्ख्यैः कृता भक्तिरेषा भक्तिराध्यात्मिकी स्मृता ।
योगजामपि ते भूप ! श‍ृणुभक्तिं वदाम्यहम् ॥२५॥
प्राणायामपरो नित्यं ध्यानवान्नियतेन्द्रियः । भैक्ष्यभक्षव्रती चापि सर्वप्रत्याहृतेन्द्रियः ॥२६॥
धारणं हृदये कृत्वा ध्यायमानो महेश्वरम्। हृत्पद्मकर्णिकासीनं पीतवस्त्रं सुलोचनम् ॥२७॥
पश्यन्नुद्द्योतितमुखं ब्रह्मसूत्रकटीतटम्। श्वेतवर्णं चतुर्बाहुं वरदाभयहस्तकम्॥२८॥

भी कर्म किए जाते हैं वे सब विष्णु देवता के होते हैं । राजन् ! आध्यात्मिकी भक्ति अनेक प्रकार की होती है ॥१४-१५॥ राजन् ! मैं अब सांख्य भक्ति तथा योग भक्ति को बतलाता हूँ आप सुनें । प्रधान (प्रकृति) आदि तत्त्वों की संख्या चौवीस हैं ॥१६॥ वे सबके सब अचेतन हैं । पच्चीसवाँ तत्त्व पुरुष है । वह चेतन है तथा कर्मों को करने वाला तथा कर्मों के फल को भोगने वाला कहा गया है ॥१७॥ आत्मा, नित्य, अव्यक्त, प्रकृति का अधिष्ठाता और उसका प्रयोजक है । पुरुष, अव्यक्त, नित्य तथा कारण और महेश्वर है ॥१८॥ संख्या तथा परिसंख्या के तत्त्वसर्ग (तत्त्वों की सृष्टि) भावसर्ग तथा भूतसर्ग को ठीक-ठीक जानकर तथा गुणात्मक (गुणस्वरूप) प्रधान (प्रकृति) को ॥१९॥ उन सबों में होने वाले साधार्म्य एवं वैधर्म्य तथा धर्म रहित प्रधान (अव्यक्त) ब्रह्म (मह्मदादि) के कारण को कामित्व कहा जाता है ॥२०॥ प्रकृति का प्रयोज्य होना ही पुरुष से वैधर्म्य है । ब्रह्म और पुरुष दोनों का अकर्ता होना यह उन दोनों का साम्य कहलाता है । महदादि तत्त्वों का एक दूसरे तत्त्व को उत्पन्न होना कार्य कारण भाव कहलाता है॥२१-२२॥ तत्त्वों की संख्या के द्वारा प्रयोजन तथा प्रयोज्यत्व को जानने को विजयार्थ का चिन्तन करने वाले मनीषी संख्यात कहते हैं ॥२३॥ इस तरह से तत्त्वों और उनकी संख्या का मनन करके विद्वानों ने उन सबों से भिन्न ब्रह्मतत्त्व तथा भूततत्त्वों को कहा है । सांख्यों के द्वारा की गयी यह भक्ति अध्यात्मिकी कही गयी है । हे भूप ! आप योगजन्य भक्ति को भी सुनें । उसे मैं बतलाता हूँ ॥२४-२५॥ प्राणायाम करते हुए सदा अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर ध्यान करना चाहिए । भिक्षा का ही अन्न खाय, और अपनी समस्त इन्द्रियों को वश में रखे ॥२६॥ ध्यान करते हुए महेश्वर को सदा अपने हृदय में धारण करे । ध्यान करना चाहिए कि पीताम्बर धारी तथा सुन्दर नेत्रों वाले परमात्मा हृदय कमल की कर्णिक पर बैठे हैं॥२७॥

योगजा मानसी सिद्धिर्विष्णुभक्तिः परा स्मृता ।
य एवं भक्तिमान्देवं विष्णुभक्तिः स उच्यते ॥२९॥
एवं भक्तिः समुद्दिष्टा विविधा नृपनन्दन । सात्त्विकीराजसीचैवतामसीभेदतस्त्विमाः ॥३०॥
नानाप्रकारा विज्ञेया विष्णोरमिततेजसः ।
यथाग्निः सुसमृद्धार्च्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ॥३१॥
पापानि भगवद्भक्तिस्तथा दहति तत्क्षणात् ॥३२॥
यावज्जनो न शृणुते भुवि विष्णुभक्ति साक्षात्सुधारसमशेषरसैकसारम् ।
तावज्जरामरणजन्मशताभिघातदुःखानि तानि लभते बहुदेहजानि ॥३३॥
सञ्चिन्तितः कीर्तित एवं नित्यं श्रुतानुभावो भगवाननन्तः ।
समन्ततोऽघं विनिहन्ति मेघं वायुर्यथा भानुरिवान्धकारम् ॥३४॥
न दानदेवार्चनयागतीर्थस्नानश्रुताचारतपःक्रियाभिः ।
तथा विशुद्धि लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ॥३५॥
कथा विशुद्धा नरनाथ ! तथ्यास्ता एव पथ्या हरिनाथ पथ्याः ।
सङ्कीर्तिता यत्र पवित्रमूर्ते संश्रूयते च श्रुतसाधुकीर्तिः ॥३६॥
धन्योऽसि धीर ! धरणीधर ! धर्मधुर्य ! ध्यानैकतानहृदयः पुरुषोत्तमस्य ।
यन्नैष्ठिकी मतिरसौ तव सौभगश्रीः श्रीकृष्णनाथसुकृतश्रवणे प्रवृत्ता ॥३७॥

उनका मुख प्रकाशित हो रहा है । ब्रह्मसूत्र कमर तक लटक रहा है । उनका श्वेत वर्ण है, चार भुजाएँ हैं। हाथ में वे वरदमुद्रा धारण किए हैं ॥२८॥ यही योगजन्य श्रेष्ठ मानसी भक्ति है । भगवान् विष्णु की इस तरह की भक्ति विष्णुभक्ति कहलाती है ॥२९॥ हे नृपनन्दन ! इस तरह से अनेक प्रकार की भक्ति वतलायी गयी है । इन सवों के तीन प्रकार के भेद होते हैं सात्त्विकी, राजसी और तामसी ॥३०॥ निस्सीम तेजस्वी भगवान् विष्णु की अनेक प्रकार की भक्ति होती है । जिस तरह से अच्छी तरह से जलती हुयी अग्नि इन्धनों को जलाकर भस्म कर देती है ॥३१॥ उसी तरह श्रीभगवान् की भक्ति क्षणभर में ही पापों को भस्म कर देती है ॥३२॥ मनुष्य जब तक समस्त रसों के सार स्वरूप विष्णु भक्ति रूपी अमृत रस का श्रवण नहीं किए रहता है तब तक ही उसको जन्म, जरा, मरण आदि अनेक प्रकार के दुःखों का कष्ट सहना पड़ता है तथा उसको अनेक प्रकार के शरीर भी धारण करने पड़ते हैं ॥३३॥ श्रीभगवन् का यह प्रभाव सुना गया है कि उनका चिन्तन और कीर्तन करने मात्र से ही वे उसी तरह से समस्त पापों को दूर कर देते हैं, जिस तरह वायु मेघों को तितर-वितर कर देती है और सूर्य अन्धकार को विनष्ट कर देते हैं ॥३४॥ श्रीभगवान् के हृदय में स्थिर हो जाने पर अन्तरात्मा की जैसी शुद्धि होती है उस तरह की शुद्धि दान, देवार्चन, याग, तीर्थ, स्नान, श्रवण सदाचार पालन तथा तपस्या आदि की क्रियाओं से नहीं होती है॥३५॥ हे राजन् ! श्रीहरि की वे ही कथाएँ पूर्णरूप से शुद्ध तथा पथ्य हैं जहाँ पर पवित्र कीर्ति श्रीभगवान् की पवित्र कीर्तियों का वर्णन होता है ॥३६॥ हे धैर्य सम्पन्न पृथिवी पते ! तथा धर्मधुर्य राजन् ! आप धन्य हैं क्योंकि आपका हृदय भगवान् पुरुषोत्तम के ही ध्यान में लगा रहता हैं और सौभाग्य सम्पन्न आपकी नैष्ठिकी बुद्धि भगवान् श्रीकृष्ण की सुन्दर कथाओं के सुनने में लगी रहती है ॥३७॥ हे राजन् ! भगवान् गोविन्द

अनाराध्य हरिं भक्त्या वरदं विष्णुमव्ययम् ।
कुतः श्रेयोभवेद्भूप पुरुषस्यात्ममानिनः ॥३८॥
मायाजनिरमायोऽसौ भक्त्या राजन्नमायया। साध्यते साधुपुरुषः स्वयं जानाति तद्भवान् ॥३९॥
न विद्यते ते नृपधर्मतत्त्वमज्ञातमेतद्विमलं पुनर्माम् ।
त्वं पृच्छसे तीर्थपदं प्रसङ्गत्कथारसं वैष्णवगौरवेण ॥४०॥
नातः परं परमतोषविशेषपोषं पश्यामि पुण्यमुचितं च परस्परेण ।
सन्तः प्रसह्य यदनन्तगुणाननन्तश्रेयोनिधीनधिकभावभुजो वदन्ति ॥४१॥
ब्राह्मणाः सुरभी सत्यं श्रद्धा यागतपांसि च ।
श्रुतिस्मृति दया दीक्षा शान्तयस्तनवो हरेः ॥४२॥
आदित्यश्चन्द्रमा वायुर्भूमिरापोऽम्बरंदिशः। ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्च सर्वभूतमयो विभुः ॥४३॥
विश्वरूपः स्वयं चक्रे जगदेतचचराचरम्। स्वयं ब्राह्मणमाविश्य सदान्नमुपभुङ्क्ते ॥४४॥
ततस्तु तीर्थास्पदपादरेणून्धराधरात्मालयभूमिदेवान् ।
परात्मनः पूजय पुण्यलक्ष्मीसर्वस्वभूतानखिलात्मभूतान् ॥४५॥
ब्राह्मणं विष्णुबुद्ध्या यो विद्वासं साधु पश्यति ।
स एव वैष्णवो यश्च स्वस्वकर्मैकनिष्ठितः ॥४६॥
किञ्चिदेतन्मया प्रोक्तं रहस्यं समयो हि मे। स्नातुं गन्तुं च गङ्गायां न कथावसरोऽधिकः ॥४७॥
प्राप्तोऽयं माधवोमासः पुण्यो माधववल्लभः ।
तस्यापि सप्तमी शुक्ला गङ्गायामतिदुर्ल्लभा ॥४८॥

की आराधना किए विना आत्ममानी पुरुष का कल्याण कैसे सम्भव है ?॥३८॥ हे राजन् ! आप साधु पुरुष हैं और इस बात को स्वयं जानते हैं कि श्रीभगवान् माया को उत्पन्न करने वाले हैं तथा माया से रहित है । वे निष्कपट भक्ति के ही द्वारा प्राप्त होते हैं ॥३९॥ राजन् ! यह विमल धर्म आपको अज्ञात नहीं है फिर भी आप वैष्णव की गरिमा के कारण प्रसङ्गवशात् मुझसे श्रीभगवान् की कथा रस के विषय में मुझसे पूछते हैं ॥४०॥ इससे बढ़कर परम सन्तोषप्रद उचित पुण्य कोई नहीं हो सकता है कि सज्जन पुरुष अधिक भावों का अनुभव करने वाले होते हैं । अतएव परस्पर में हठ करके अनन्त कल्याण करने वाले, अनन्त गुण सम्पन्न श्रीभगवान् के विषय में चर्चा करते हैं ॥४१॥ ब्राह्मण, गौ, सत्य, श्रद्धा, याग, तपस्या श्रुतियाँ, स्मृतियाँ, दया, दीक्षा तथा शान्ति ये श्रीभगवान् के शरीर हैं ॥४२॥ सूर्य, चन्द्रमा, वायु, भूमि, जल, आकाश, दिशाएँ, ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र ये सब भगवत्स्वरूप हैं ॥४३॥ जगच्छरीरक श्रीभगवान् ने स्वयं इस चराचर जगत् की सृष्टि की है । वे स्वयं ब्राह्मण के शरीर में प्रवेश करके सदन्न का भोग करते हैं ॥४४॥ इसीलिए हे राजन् ! जिनके चरणों की धूलि पवित्र कारक होती है, जो सम्पूर्ण जगत् की आत्मा परमात्मा के पुण्य रूपी लक्ष्मी के सर्वस्व हैं, उन ब्राह्मणों की आप पूजा करें ॥४५॥ जो विद्वान् ब्राह्मण को विष्णु की बुद्धि से समादर पूर्वक देखता है वह तथा जो अपने वर्ण एवं आश्रम के कर्मों के अनुष्ठान में लगा रहता है वही वैष्णव है ॥४६॥ मैंने आपको कुछ रहस्यों को बतलाया अब यह मेरे गङ्गा में स्नान करने के लिए जाने तथा कथा में जाने की बेला है ॥४७॥ वैशाख का महीना आ गया है यह भगवान्

वैशाखशुक्लसप्तम्यां जाह्नवी जह्नुना पुरा। क्रोधात्पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरन्ध्रात्तुदक्षिणात् ॥४९॥
तस्यां समर्चयेद्देवीं गङ्गां गगनमेखलाम्। स्नात्वा सम्यग्विधानेन स धन्यः सुकृति नरः॥५०॥
तस्यां यस्तर्पयेद्देवान्पितॄन्मर्त्यो यथाविधि । साक्षात्पश्यति तं गङ्गा स्नातकं गतपापकम् ॥५१॥
न माधवसमो मासो न गङ्गा सदृशी नदी। दुर्ल्लभः खलुयोगोऽयं हरिभक्त्यैव लभ्यते॥५२॥
विष्णुपादोदकोद्भूता ब्रह्मलोकादुपागता। त्रिभिः स्रोतोभिरश्रान्ता या पुनाति जगत्त्रयम् ॥५३॥
स्वर्गारोहणनिःश्रेणी सततानन्दकारिणी । अनेकदुरितोद्गारहारिणी दुर्गतारिणी॥५४॥
श्रीमहेशजटाजूटवासिनी दुःखनाशिनी । भजमानजनस्वान्तकान्तकेलिविनाशिनी ॥५५॥
सगरान्वयनिर्वाणकारिणी धर्मधारिणी। त्रिमार्गचारिणी देवी लोकालङ्कृतिकारिणी॥५६॥
दर्शनस्पर्शनस्नानकीर्त्तनध्यानसेवनैः । पुण्यानपुण्यान्पुरुषान्पावयन्ती सहस्रशः ॥५७॥
गङ्गागङ्गेति गङ्गेति यैस्त्रिसन्ध्यमितीरितम्। सुदूरस्थैश्च तत्पापं हन्ति जन्मत्रयार्जितम् ॥५८॥
योजनानां सहस्रेषु गङ्गां यः स्मरते नरः। अपि दुष्कृतकर्मासौ लभते परमां गतिम्॥५९॥
वैशाखे शुक्लसप्तम्यां दुर्ल्लभा सा विशेषतः ।
प्राप्यते जगतीपाल ! हरिविप्रप्रसादतः ॥६०॥
न माधवसमो मासो न माधवसमो विभुः। गतो हिदुरिताम्भोधौ मज्जमानजनस्य यः॥६१॥

लक्ष्मीपति को प्रिय मास है । गङ्गा नदी के तट पर वैशाख शुक्ल सप्तमी तिथि का मिलना कठिन होता है ॥४८॥ वैशाख शुक्ल सप्तमी के ही दिन महर्षि जहु ने क्रोध करके गङ्गा को पी लिया था और बाद में उन्होंने अपने दाहिने कान के रास्ते से गङ्गा को निकाला था ॥४९॥ उस दिन आकाश ही जिसकी मेखला है उस गङ्गाजी की पूजा करनी चाहिए । विधि पूर्वक स्नान करके गङ्गाजी का पूजन करने वाला मनुष्य धन्य और पुण्यवान् होता है ॥५०॥ उस दिन गङ्गा में स्नान करके पितरों का तर्पण करने वाले स्नातक तथा निष्पाप मनुष्य को गङ्गाजी साक्षात् देखती हैं ॥५१॥ वैशाख के समान कोई महीना नहीं है और गङ्गा के समान कोई नदी नहीं है । यह दुर्लभ योग श्रीहरि की भक्ति के द्वारा ही प्राप्त होता है ॥५२॥ भगवान् विष्णु के पादोदक से उत्पन्न तथा ब्रह्मलोक से आयी हुयी तीन धाराओं में प्रवाहित होने वाली गङ्गाजी तीनों लोकों को पवित्र बनाती हैं ॥५३॥ गङ्गाजी स्वर्ग में जाने की सीढ़ी हैं, सदा आनन्द प्रदान करने वाली हैं, विपत्ति से पार करने वाली तथा अनेक प्रकार के पापों की उत्पत्ति को विनष्ट करने वाली हैं ॥५४॥ वे भगवान् शिव के जटाजूट में निवास करने वाली, दुःखों का विनाश करने वाली, भजन करने वाले मनुष्य के अन्तःकरण में विद्यमान काम कला का विनाश करने वाली हैं ॥५५॥ वे राजा सगर के वंश को मुक्ति प्रदान करने वाली, धर्म को धारण करने वाली, तीन मार्गों में संचरण करने वाली तथा संसार को अलंकृत करने वाली हैं ॥५६॥ वे दर्शन, स्पर्श, स्नान, कीर्तन, ध्यान तथा सेवा करने वाले हजारों पुण्यवान् तथा पापी जीवों को पवित्र बनाती हैं ॥५७॥ अत्यन्त दूर रहकर भी जो तीनों (प्रातः, दोपहर और शाम) सन्ध्याओं में गङ्गा-गङ्गा कहता है उसके तीन जन्मों के पापों को गङ्गा जी हर लेती हैं॥५८॥ जो मनुष्य हजारों योजन दूर से गङ्गाजी का स्मरण करता है, यदि वह पापी भी हो तो मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥५९॥ हे राजन् ! वैशाख शुक्ल सप्तमी के दिन तो विशेष रूप से गङ्गाजी की प्राप्ति श्रीहरि तथा ब्राह्मणों की कृपा से ही होती है ॥६०॥ वैशाख के समान न तो कोई महीना है और न माधव

दत्तं जप्तं हुतं स्नातं यद्भक्त्या मासि माधवे ।
तदक्षयं भवेद् भूप पुण्यं कोटिशताधिकम् ॥६२॥
यथादेवेषु विश्वात्मा देवोनारायणो हरिः। यथा जपेषु गायत्री सरितां जाह्नवी तथा॥६३॥
यथोमा सर्वनारीणां तपतां भास्करो यथा । आरोग्यलाभो लाभानां द्विपदां ब्राह्मणो यथा ॥६४॥
परोपकारः पुण्यानां विद्यानां निगमो यथा। मन्त्राणां प्रणवो यद्वद्ध्यानानामात्मचिन्तनम्॥६५॥
सत्यं स्वधर्मवर्तित्वं तपसां च यथावरम् । शौचानामर्थशौचं च दानानामभयं यथा॥६६॥
गुणानां च यथा लोभक्षयो मुख्यो गुणः स्मृतः ।
मासानां प्रवरो मासस्तथाऽसौ माधवो मतः ॥६७॥
तत्र यत्क्रियते श्राद्धं यज्ञदानमुपोषणम्। तपोऽध्ययनपूजादि तदक्षयफलं स्मृतम् ॥६८॥
वैशाखान्तानि पापानि सूर्यान्तानि तमांसि च ।
परापकारपैशून्यप्रान्तानि सुकृतानि च ॥६९॥
कार्त्तिके मासि यत्किञ्चित्तुलासंस्थे दिवाकरे ।
स्नानदानादिकं राजंस्तत्परार्धगुणं भवेत् ॥७०॥
तस्मात्सहस्रगुणितं माघे मकरगे रवौ। ततोऽपि शतसङ्ख्यातं वैशाखे मेषगे रवौ ॥७१॥
ते धन्यास्ते सुकृतिनो नरा वैशाखमासि ये ।
प्रातः स्नात्वा विधानेन पूजयन्ति मधुद्विषम् ॥७२॥
प्रातः स्नानं च वैशाखे यज्ञदानमुपोषणम् । हविष्यं ब्रह्मचर्यं च महापातकनाशनम्॥७३॥

(लक्ष्मीपति) के समान कोई व्यापक है । पाप सागर में संलग्न व्यक्ति भी यदि वैशाख के महीने में दान, जप, होम तथा स्नान करता है तो उससे अक्षय पुण्य होता है और वह सामान्य दिनों की अपेक्षा सौ करोड़ गुना से भी अधिक फल देने वाला होता है ॥६१-६२॥ जिस तरह सभी देवों में भगवान् नारायण श्रेष्ठ हैं, जपों में गायत्री का जप श्रेष्ठ है, नदियों में गङ्गाजी श्रेष्ठ हैं ॥६३॥ सभी नारियों में पार्वतीजी श्रेष्ठ हैं, चमकने वालों में सूर्य श्रेष्ठ हैं, सभी लाभों में आरोग्य की प्राप्ति श्रेष्ठ है, और मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं॥६४॥ पुण्यों में परोपकार श्रेष्ठ है, विद्याओं में वेद श्रेष्ठ है, मन्त्रों में प्रणव श्रेष्ठ है, ध्यानों में आत्मा (परमात्मा) का ध्यान श्रेष्ठ हैं ॥६५॥ तपस्याओं में सत्य का तथा अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन श्रेष्ठ है, पवित्रताओं में अर्थ की पवित्रता श्रेष्ठ है, दानों में अभयदान श्रेष्ठ है, गुणों में निर्लोभता का गुण श्रेष्ठ है, उसी तरह सभी मासों में वैशाख का महीना श्रेष्ठ है ॥६६-६७॥ इस मास में जो यज्ञ, दान, उपवास, तपस्या, अध्ययन तथा पूजा आदि किए जाते हैं उन सबों का अक्षय फल होता है ॥६८॥ सभी पाप वैशाख मास के द्वारा विनष्ट हो जाते हैं, सभी अन्धकारों को सूर्य विनष्ट कर देते हैं । परोपकार जन्य पुण्य, चुगुली जन्य पाप को विनष्ट कर देता है ॥६९॥ कार्तिक मास में जब सूर्य तुला राशि में विद्यमान हों हे राजन् ! उस समय किये गये स्नान दान आदि का फल परार्द्ध गुणा होता है ॥७०॥ जब माघ के महीने में सूर्य मकर राशि में हों उस समय स्नान तथा दान का फल उसकी अपेक्षा हजार गुणा होता है यदि सूर्य वैशाख के महीने में मेष राशि पर हों तो उस समय स्नान तथा दान का फल उसके भी सौ गुणा होता है ॥७१॥ जो लोग वैशाख के महीने में प्रातःकाल स्नान करके भगवान् मधुसूदन की पूजा करते

पुनः कलियुगे राजन्नेतद्गोप्यं भविष्यति। अश्वमेधादिकं यस्मान्माहात्म्यं माधवस्य यत्॥७४॥
अश्वमेधमखः पुण्यः कलौ नैव प्रवर्तते। एष माधव मासस्य हयमेधसमो विधिः॥७५॥
अश्वमेधस्य यत्पुण्यं स्वर्गमोक्षफलप्रदम्। न वेत्स्यन्ति कलौ पापा जना दुरितबुद्धयः॥७६॥
तस्मिन्भवैर्नरैः पापैर्गन्तव्यं नरकार्णवे। अतस्तु विरलास्तस्य प्रचारो येन निर्मितः॥७७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वैशाखमाहात्म्ये पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥८५॥

छियासीवाँ अध्याय

सूत उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा नारदस्य महात्मनः। अम्बरीषश्च राजर्षिर्विस्मितो वाक्यमब्रवीत्॥१॥

अम्बरीष उवाच

मार्गशीर्षादिकान्मासान्हित्वा पुण्यान्महामुने!। सर्वमासाधिकं मासं वैशाखं किं प्रशंससि॥२॥
सर्वेभ्योऽप्यधिकः कस्मान्माधवो माधवप्रियः।
को विधिस्तत्र किं दानं किं तपः का च देवता॥३॥
त्वत्पादाम्भोजरजसा पावितस्य च मे मुने!।
उपदेशप्रसादेन प्रसादं कर्तुमर्हसि॥४॥

हैं वे लोग धन्य हैं॥७२॥ वैशाख के महीने में प्रातःस्नान करना यज्ञ, दान तथा उपवास करना ये सबके सब हविष्य का भोजन करना तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना ये सबके सब महान् पापों को भी विनष्ट कर देते हैं॥७३॥ हे राजन्! कलियुग में अश्वमेध याग, भगवान् माधव का माहात्म्य ये सब गोपनीय हो जायेंगे। कलियुग में पवित्र अश्वमेध याग नहीं होगा। वैशाख मास की यह विधि अश्वमेध याग के समान फलद है॥७४-७५॥ अश्वमेध का जो स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाला फल है उसको पापी पुरुष नहीं जानेंगें क्योंकि कलियुग में उनकी बुद्धि पाप के कारण दूषित हो जायेगी॥७६॥ कलियगु में उत्पन्न होने वाले पापी मनुष्य नरकगामी होंगे। इसीलिए इसका (वैशाख मास के माहात्य का) बहुत कम प्रचार होगा॥७७॥

इसतरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के वैशाख माहात्म्य के प्रसङ्ग में पचासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥८५॥

◆

वैशाख माहात्म्य एवं स्नान विधि का वर्णन

सूतजी ने कहा— माहात्मा नारदजी के इस तरह के वाक्य को सुनकर आश्चर्य चकित राजा अम्बरीष ने कहा॥१॥ **अम्बरीष ने कहा—** हे महामुने! आप मार्गशीर्ष आदि अत्यन्त पवित्र महीनों को छोड़कर वैशाख मास की ही इतनी प्रशंसा क्यों कर रहे है? सभी महीनों से भगवान् माधव को प्रिय तथा श्रेष्ठ वैशाख का महीना क्यों हैं? उसकी विधि क्या है? उसमें क्या दान करना चाहिए? उसमें कौन सी

धर्मज्ञो धर्ममार्गाणामुद्धर्ताऽसि महामुने ! । त्वमेकोऽखिलतत्त्वार्थवेत्ता धर्मोपदेशकः ॥५॥
कर्तोपदेष्टा मन्ता वाऽनुमन्ताऽपि प्रयोजकः ।
शास्त्रविद्भिर्मुनिवरस्मर्यन्ते समभागिनः ॥६॥
व्रतसत्रतपोदानैर्यत्फलं समवाप्यते । धर्मोपदेशनेनैव तत्सर्वमुपलभ्यते ॥७॥
तीर्थस्नानं तपोयज्ञकर्मयत्कुरुते मुने । अपि तत्फलभागीस्याद्यः प्रवर्तयिता भवेत् ॥८॥
यद्यदा चरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः । सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥९॥
तदर्हति भवान्धर्ममुपदेष्टुं तदद्भुतम् । दुर्ल्लभो गुरुसम्बोधो देशकालोपपत्तयः ॥१०॥
न केचन तथा भावाश्चेतः शीतलयन्ति नः । राज्यलाभादयोऽप्येते यथा तव समागमः ॥११॥

सूत उवाच

अथ मन्दमृदुस्मेरस्फुरद्दन्तप्रभानुगः । अम्बरीषं प्रत्युवाच नारदो मुनिसत्तमः ॥१२॥

नारद उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि हिताय जगतस्तव । विधिर्माधवमासस्य यच्छ्रुतो ब्रह्मणः पुरा ॥१३॥
दुर्ल्लभं भारते वर्षे जन्म तस्मान्मनुष्यता । मानुष्ये दुर्ल्लभे लोके स्वस्वधर्मप्रवर्त्तनम् ॥१४॥
ततोऽपि भक्तिर्भूपाल वासुदेवेऽति दुर्ल्लभा ।
तत्रापि दुर्ल्लभो मासो माधवो माधवप्रियः ॥१५॥

तपस्या करनी चाहिए ? तथा उस मास के देवता कौन हैं ?॥२-३॥ हे मुने ! आपके चरण कमलों की धूलि से मैं पवित्र हो गया हूँ अतएव आप कृपा करके इन बातों का मुझे उपदेश दें ॥४॥ हे महामुने ! आप अकेले ही धर्म मार्गों का उद्धार करने वाले हैं । केवल आप ही समस्त तत्त्वों के ज्ञाता तथा धर्मों का उपदेश करने वाले हैं ॥५॥ हे मुनिवर ! शास्त्रों के जानकारों का कहना है कि धर्म करने वाले उसका उपदेश करने वाले, उपदेश का मनन करने वाले, उसका अनुमोदन करने वाले तथा धर्म कर्म में लगाने वाले ये सबके सब एक समान फल के भागी होते हैं ॥६॥ मनुष्य व्रत, सत्र, तपस्या तथा दान करके जिस फल को प्राप्त करता है, उस सम्पूर्ण फल को उपदेष्टा पुरुष भी प्राप्त करता है ॥७॥ हे मुने ! मनुष्य जो तीर्थ में जाकर स्नान करता है, तपस्या करता है, यज्ञ करता है, उसको जिस फल की प्राप्ति होती है, उस फल की प्राप्ति उस मनुष्य को भी होती है, जो उसे उसको उस कार्य में लगाता है ॥८॥ श्रेष्ठ पुरुष जिस तरह का आचरण करते हैं, दूसरे लोग भी उसी का आचरण करते हैं । वह जिसको प्रमाणित करता है, उसी का अनुसरण सबलोग करते हैं ॥९॥ अतएव आप भी उस अद्भुत धर्म का उपदेश करें । गुरु का सम्बोधन तथा देश एवं काल की उपयुक्तता ये सभी दुर्लभ होते हैं ॥१०॥ राज्य के लाभ आदि के द्वारा मुझको उस तरह की शान्ति नहीं मिलती है जिस तरह की शान्ति की प्राप्ति आपके समागम से हुयी है ॥११॥ **सूतजी ने कहा—** मन्द मुसुकान के द्वारा जिनको दाँतों की कान्ति प्रकाशित हो रही थी वे मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी राजा अम्बरीष से कहने लगे ॥१२॥ **नारदजी ने कहा—** हे राजन् ! प्राचीन काल में जिसे मैंने ब्रह्माजी से सुना था उस वैशाख मास की विधि को मैं आपके तथा जगत् के कल्याण के लिए कह रहा हूँ उसे आप सुनें ॥१३॥ भारत वर्ष में जन्म मिलना कठिन हैं, उसमें भी मनुष्य का जन्म मिलना और कठिन है । मनुष्य होने पर भी अपने वर्ण एवं आश्रम के लिए विहित धर्मों में प्रवृत्ति का

तमवाप्य ततो मासं स्नानदानजपादिकम् । कुर्वन्ति विधिना ये तु धन्यास्ते कृतिनो नराः ॥१६॥
तेषां दर्शनमात्रेण पापिनोऽपि विकिल्विषाः। भवन्ति भगवद्भावभाविता धर्मकाङ्क्षिणः ॥१७॥
माधवे मासि यैः स्नातं प्रातर्नियमसंयुतैः । ते कोटिवर्षपर्यन्तं क्रीडन्ते नन्दने वने ॥१८॥
यथा न वारिधिसमो लोके कोऽपि जलाशयः ।
तथा मासो न वैशाखसदृशो माधवप्रियः ॥१९॥
तावत्पापानि तिष्ठन्ति मनुष्यानां कलेवरे । यावत्कलिमलध्वंसी मासो नायाति माधवः ॥२०॥
अवशिष्टदिनान्येव पञ्च मासस्य तस्य वै । एकादशीं समारभ्य सर्वमाससमानि वै ॥२१॥
वैशाखे पूजितो देवो माधवो मधुहा तु यैः ।
नानोपचारे राजेन्द्र तै प्राप्तं जन्मनः फलम् ॥२२॥
किं किं न दुर्ल्लभतरं प्राप्यते मासि माधवे ।
स्नानेन परमेशस्य पूजनेन यथाविधि ॥२३॥
न दत्तं न हुतं जप्तं न तीर्थे मरणं कृतम्। यैर्हि नारायणो नैव ध्यातो निखिलपापहा ॥२४॥
तेषां जन्मनृणां लोके ज्ञातव्यं निष्फलं नृप। द्रव्येषु विद्यमानेषु कृपणो यो भवेन्नरः ॥२५॥
अदत्त्वा म्रियते यो हि तस्य द्रव्यं निरर्थकम् ।
तीर्थ स्नानादि तपसा सत्कुले जन्म लभ्यते ॥२६॥
न दानेन बिना भूप किञ्चिदप्युपतिष्ठति । वैशाखस्नानमाहात्म्यादपि पञ्चदिनात्मकात् ॥२७॥

होना और दुर्लभ है ॥१४॥ राजन् ! उससे भी दुर्लभ भगवान् वासुदेव की भक्ति का मिलना है । भगवान् की भक्ति होने पर भी भगवान् लक्ष्मीपति के प्रिय वैशाख मास का मिलना दुर्लभ है ॥१५॥ उस वैशाख मास को प्राप्त करके जो लोग उस महीने में विधिपूर्वक, स्नान, दान तथा जप आदि करते हैं; वे मनुष्य धन्य तथा कृत कृत्य हैं ॥१६॥ ऐसे लोगों का केवल दर्शन करके भगवान् की भक्ति की भावना से भरकर धर्म चाहने वाले पापी जीव भी निष्पाप हो जाते हैं ॥१७॥ जो मनुष्य वैशाख के महीने में नियमपूर्वक प्रातःस्नान करते हैं वे करोड़ों वर्षों तक नन्दन वन में क्रीड़ा करते हैं ॥१८॥ जिस तरह संसार में समुद्र के समान कोई दूसरा जलाशय नहीं है, उसी तरह भगवान् लक्ष्मीपति को प्रिय वैशाख के समान कोई दूसरा प्रिय महीना नहीं है ॥१९॥ मनुष्य के शरीर में तव तक ही पापों का निवास रहता है जब तक कि कलि के दोषों को विनष्ट करने वाला वैशाख का महीना नहीं आ जाता है ॥२०॥ वैशाख महीने के अन्तिम पाँच दिन एकादशी से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त के दिन सम्पूर्ण महीनें के समान होते हैं ॥२१॥ हे राजेन्द्र ! जो लोग वैशाख के महीने में भगवान् मधुसूदन की पूजा अनेक उपचारों के द्वारा करते हैं, वे लोग अपने जन्म का फल प्राप्त कर लेते हैं ॥२२॥ वैशाख के महीने में विधि पूर्वक स्नान करने तथा भगवान् जनार्दन की पूजा करने से किस दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति नहीं होती हैं ?॥२३॥ जिसने न तो दान किया, न होम किया, न जप किया और न तो तीर्थ में जाकर मृत्यु प्राप्त किया तथा जिसने पापों का विनाश करने वाले भगवान् नारायण का ध्यान भी नहीं किया ॥२४॥ हे राजन् ! उस मनुष्य का संसार में जन्म निष्फल ही जानना चाहिए । द्रव्यों के रहने पर भी जो मनुष्य कृपण हो जाता है ॥२५॥ जो उन द्रव्यों का दान किए बिना ही मर जाता है, उसका वह द्रव्य व्यर्थ है । तीर्थों में स्नान आदि तपस्या के द्वारा सद्वंश में जन्म मिलता

सत्कुले प्राप्यते जन्म वैभवं विविधं तथा। सुपुत्रः सुकुलं भूप धनं धान्यं वरस्त्रियः ॥२८॥
सुजन्ममरणंचापि सुभोगाः सुखमेव च। सदा दानेऽधिका प्रीतिरौदार्यं धैर्यमुत्तमम् ॥२९॥
प्रसादात्तस्य देवस्य विष्णोश्चैव महात्मनः। नारायणस्य जायन्ते सिद्धयो भूपवाञ्छिता ॥३०॥
ऊर्जे मासि तपोमासि माधवे माधवप्रिये। स्नात्वा दामोदरं भक्त्या माधवं मधुसूदनम् ॥३१॥
विशेषेण समभ्यर्च्य दत्त्वा दानानि शक्तितः।
ऐहिकं सुखमासाद्य नरो हरिपदं व्रजेत् ॥३२॥
अनेकजन्मार्जितपातकावली विलीयते माधवमज्जनेन।
सूर्योदये भूप यथा तमिस्त्र वचः स्वयम्भुरिदमादिशन्मे ॥३३॥
चकार विष्णुर्विपुलप्रचारं मासस्य वै माधवसंज्ञकस्य।
यमस्य गुप्तं वचसा विचिन्त्य मनुष्यलोकं गमितं चकार ॥३४॥
तस्मादस्मिन्समायाते माधवे मासि वैष्णवैः।
स्नात्वा पुण्यजले तीर्थे गङ्गायाः पावने नृणाम् ॥३५॥
रेवाया वा महाराज यामुने शारदेऽथवा। प्रातस्त्वनुदिते भानौ विधानेन नृपोत्तम ! ॥३६॥
पूजयित्वा च देवशं मुकुन्दं मधुसूदनम्। पुत्रपौत्रधनैःश्रेयो वाञ्छितानि सुखानि च ॥३७॥
अनुभूय तपस्त्वन्ते स्वर्गमक्षयमाप्नुयात्। एवं ज्ञात्वा महाभाग मधुसूदनमर्चय ॥३८॥
स्नात्वा सम्यग्विधानेन वैशाखे तु विशेषतः।
देवमाराध्य गोविन्दं नारायणमनामयम् ॥३९॥

है ॥२६॥ हे राजन् ! दान किए बिना कुछ भी नहीं मिलता है। पाञ्च दिनों तक वैशाख स्नान की महिमा के द्वारा ॥२७॥ सद्वंश में जन्म मिलता है और अनेक प्रकार का ऐश्वर्य भी मिलता है। सपुत्र, सद्वंश धन-धान्य सम्पत्ति, तथा सुन्दर स्त्रियों की प्राप्ति होती है ॥२८॥ सुन्दर जन्म तथा सुन्दर मृत्यु की प्राप्ति होती है, सुन्दर भोगों तथा सुख की प्राप्ति होती है। निरन्तर दान करते रहने में अधिक प्रेम होता है, उत्तम औदार्य तथा धैर्य की प्राप्ति होती है ॥२९॥ हे राजन् ! भगवान् विष्णु की कृपा से ही ये सारी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। भगवान् नारायण की कृपा से अभिप्रेत सिद्धियों की प्राप्ति होती है ॥३०॥ कार्तिक के महीने में, माघ के महीने में तथा वैशाख के महीने में प्रातःकाल स्नान करके अपनी शक्ति के अनुसार दान करने वाला तथा भक्तिपूर्वक भगवान् दामोदर, माधव तथा मधुसूदन की विशेष रूप से पूजा करने वाला मनुष्य लौकिक सभी सुखों को प्राप्त करके अन्त में भगवान् श्रीहरि के लोक में जाता है ॥३१-३२॥ वैशाख के महीने में प्रातः स्नान करने से अनेक जन्मों में किये गये पापों का नाश उसी तरह से हो जाता है, जिस तरह से सूर्योदय के हो जाने पर अन्धकार का नाश हो जाता है, यह ब्रह्माजी ने कहा है ॥३३॥ भगवान् विष्णु ने वैशाख के महीने का खूब प्रचार किया और यमराज की गुप्त वाणी का विचार करके वे मर्त्यलोक में आये ॥३४॥ हे महाराज ! इसीलिए वैशाख के महीने के आने पर वैष्णवों को चाहिए कि वे गङ्गाजी के पवित्र जल में, या नर्मदा में, या यमुना जल में या शारदा नदी के जल में, सूर्योदय से पहले विधिपूर्वक स्नान करके देवताओं के स्वामी मुकुन्द भगवान् मधुसूदन की पूजा करें। ऐसा करके वे पुत्र, पौत्र धन तथा अभिप्रेत कल्याणों तथा सुखों का भोग करके अन्त में अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करते

प्राप्यसि त्वं सुखं पुत्रं धनानि च हरेः पदम् ।
देवदेवं नमस्कृत्य माधवं पापनाशनम् ॥४०॥
प्रारभेत व्रतमिदं पौर्णमास्यां मधौर्नृप। यमैश्च नियमैर्युक्तःशक्त्या किञ्चित्प्रदाय च॥४१॥
हविष्यभुग्भूमिशायी ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः। कृच्छ्रादि तपसा क्षामो ध्यायन्नारायणं हृदि ॥४२॥
एवं प्राप्य च वैशाखीं दद्यान्मधु तिलादिकम् ।
भोजनं द्विजमुख्येभ्यो भक्त्या धेनुं सदक्षिणाम् ॥४३॥
अच्छिद्रं प्रार्थयेच्चापि तस्य स्नानस्य भूसुरान् ।
यथा लक्ष्मीःप्रिया भूप ! माधवस्य जगत्पतेः ॥४४॥
तथैव माधवो मासो मधुसूदनवल्लभः। एवं विधियुतो मर्त्यःस्नात्वा द्वादशवत्सरम्॥४५॥
उद्यापनं चरेच्छक्त्या मधुसूदनतुष्टये । इदं महाधवमासस्य माहात्म्यं कथितं तव ॥४६॥
यत्पुरा ब्रह्मणो वक्त्राच्छ्रुतमासीन्मया नृप ! ॥४७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पाताल खण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

* * *

हैं । हे महाराज अम्बरीष ! इस बात को जानकर आप भगवान् मधुसूदन की अर्चा करें ॥३५-३८॥ विशेष रूप से वैशाख के महीने में तुम विधि पूर्वक स्नान करके तथा अनामय भगवान् गोविन्द की आराधना करके ॥३९॥ सुख, पुत्र तथा धनों को प्राप्त करके अन्त में श्रीहरि के लोक में जाओगे । पापों का नाश करने वाले भगवान् माधव को नमस्कार करके ॥४०॥ चैत्र पूर्णिमा के दिन इस व्रत को प्रारम्भ करना चाहिए । यम तथा नियम का पालन करते हुए कुछ दान करना चाहिए ॥४१॥ हविष्य का भोजन करे, पृथिवी पर सोये तथा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे । कृच्छ्र आदि तपस्या के द्वारा अपने शरीर को दुर्बल करे तथा हृदय में भगवान् नारायण का ध्यान करे । इस तरह से करते हुए वैशाखी पूर्णिमा के आने पर शहद तथा तिल आदि का दान करे । श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भक्तिपूर्वक भोजन कराये गोदान करे और ब्राह्मणों को दक्षिणा दे ॥४२-४३॥ उन ब्राह्मणों से प्रार्थना करे कि हमारा यह स्नान व्रत निर्दोष हो । जिस तरह जगत् के स्वामी श्रीभगवान् को लक्ष्मीजी प्रिय है, उसी तरह से उनको वैशाख का महीना प्रिय है । इस तरह से जो मनुष्य बारह वर्षों तक विधि पूर्वक स्नान करता है ॥४४-४५॥ उसे भगवान् मधुसूदन की प्रसन्नता के लिए अपनी शक्ति के अनुसार व्रत का उद्यापन करना चाहिए । हे राजन् ! जिसे पहले ब्रह्माजी के मुख से मैंने सुना था; उस वैशाख मास के माहात्म्य को मैंने आपको सुनाया ॥४६-४७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के वैशाख माहात्म्य के अन्तर्गत छियासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८६॥

* * *

सतासीवाँ अध्याय

सूत उवाच

इति तस्य वचःश्रुत्वा नारदस्य स भूपतिः। प्रणम्य विस्मितःप्राह चिन्तयन्मनसा हरिम् ॥१॥

अम्बरीष उवाच

कथमेतद्विमुह्याम:स्वल्पायासेन वै मुने !। प्राप्यते स्नानमात्रेण फलं चैवातिदुर्ल्लभम्॥२॥

नारद उवाच

सत्यमुक्तं त्वया राजन्नल्पायासेन यन्महत्। फलं सम्प्राप्यते तत्र श्रद्धत्स्व विधिभाषितम् ॥३॥
धर्मस्य गतयःसूक्ष्माः दुर्ज्ञेयाहीश्वरैरपि। मुह्यन्ते चात्र विद्वांसोऽचिन्त्यशक्तिः हरेः कृतौ ॥४॥
विश्वामित्रादयो राजन्धर्माधिक्येन बाहुजाः। ब्राह्मण्यं समुपायाताः सूक्ष्मा धर्मगतिस्त्वतः ॥५॥
अजामिलोऽपि भूषाल ! दासीपतिरिति श्रुतः ।
धर्मपत्नीपरित्यागी नित्यं पापपथि स्थितः ॥६॥
म्रियमाणःसुतस्नेहात्प्रोच्य नारायणेति च । तद्ध्याननामग्रहणात्पदं लेभे सुदुर्ल्लभम्॥७॥
अनिच्छयापि दहति स्पृष्टो हुतबहो यथा। तथा दहति गोविन्द नामव्याजादपीरितम् ॥८॥
कानीनस्य मुनेः पौत्रा भ्रातृजायाभिगामिनः ।
गोलकस्य च वै पाण्डोः कुण्डाः स्वयं तथा ॥९॥
ते पञ्चापि च भूपाल पाण्डवा द्रौपदीरताः ।
तेषां च पुण्यश्लोकत्वं सूक्ष्मा धर्मगतिस्ततः ॥१०॥

देवशर्मा का वृत्तान्त

सूतजी ने कहा— नारदजी की इस तरह की वाणी को सुनकर राजा अम्बरीष उनको प्रणाम किए तथा श्रीहरि का चिन्तन करते हुए कहे ॥१॥ **अम्बरीष ने कहा**— हे मुने ! मुझे इस बात का आश्चर्य हो रहा है कि केवल स्नान रूपी थोड़े से प्रयास के द्वारा दुर्लभ फल की प्राप्ति कैसे होती है ?॥२॥ **नारदजी ने कहा**— राजन् ! आपने सत्य ही कहा है कि थोड़े प्रयास से महान् फल की प्राप्ति कैसे होती है ? किन्तु यह ब्रह्माजी की उक्ति है, इस पर आपको विश्वास करना चाहिए ॥३॥ धर्म की गति सूक्ष्म तथा यह वड़े-बड़े लोगों के लिए भी दुर्ज्ञेय है, अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न श्रीहरि के कार्य के विषय में विद्वानों को भी मोह हो जाता है ॥४॥ राजन् ! बहुत अधिक धर्म करने के कारण विश्वामित्र आदि महर्षि ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लिए अत: धर्म की गति सूक्ष्म हैं ॥५॥ राजन् ! अजामिल भी दासीपति था, उसने अपनी धर्मपत्नी का परित्याग कर दिया था । वह महापापी था ॥६॥ मरते समय उसने अपने पुत्र नारायण का नाम लेकर तथा उसी का ध्यान करके बुलाया और उसके फल स्वरूप दुर्लभ पद को प्राप्त कर लिया ॥७॥ जिस तरह अनिच्छा से भी छू लेने पर अग्नि जलाने का काम करती है, उसी तरह से व्याजान्तर से भी उच्चारण करने पर श्रीहरि का नाम पाप पुञ्ज को भस्म ही कर देता है ॥८॥ व्यासजी कानीन कन्या के पुत्र थे, वे अपने भाई की पत्नियों के साथ सहगमन किए, उससे उनके पौत्र धृतराष्ट्र आदि उत्पन्न हुए । गोलक पाण्डु के पुत्र कुण्ड कोटि के थे ॥९॥ राजन् ! ये पाँचों पाण्डव द्रौपदी में आसक्त थे, किन्तु वे पुण्यश्लोक कहे

विचित्राणि च कर्माणि विचित्रा भूतभावनाः ।
विचित्राणि च भूतानि विचित्राः कर्मशक्तयः ॥११॥
कदाचित्सुकृतं कर्म कूटस्थं यदवस्थितम् । केनचित्कर्मणा भूप ! शुभेन परिवर्धते ॥१२॥
फलं ददाति सुमहत्कस्मिन्नापि च जन्मनि । सूक्ष्मो धर्मोऽतिगहनो मीयते न यथातथा ॥१३॥
नैतस्य फलदानस्य श्रूयते भूपनिश्चयः । यत्किञ्चित्सुकृतं कर्म च्छन्नं पापान्तरैरपि ॥१४॥
तदागत्य कुतः क्वापि स्वं फलं च प्रयच्छति ।
कृतस्य नेह नाशोऽस्ति पुण्यस्य दुरितस्य च ॥१५॥
तथापि बहुभिःपुण्यैर्दुरितं याति दारुणम् । यदुक्तं भवता राजन्नायासाधिक्यतो भवेत् ॥१६॥
महत्पुण्यं च तत्रापि कारणं मे निशामय । स्वल्पायासमहायासौ ययदल्पत्वमहत्त्वयोः ॥१७॥
महापुण्यास्ततस्तेस्युः सन्ततं कर्षकादयः । मन्त्रोचारं च सिंहादेरायासं बहुलं त्वतः ॥१८॥
पञ्चगव्यं प्रशस्तं हि व्रताङ्गत्वेन नो भवेत् । इति कर्तव्यबाहुल्यं महत्त्वं च तदल्पता ॥१९॥
जलाग्न्यादि प्रवेशस्य प्रसज्येत व्रतान्तरात् । इदमल्पं महच्चैतदिति नैव नियामकम् ॥२०॥
फलं यच्चोदितं शास्त्रे तदेवस्यान्महन्नृप । यथाल्पनाशो महता महन्नाशस्तथाल्पतः ॥२१॥
किं त्वल्पविस्फुलिङ्गेन तृणराशिःप्रदह्यते ॥२२॥
हत्यायुतं पापसहस्रमुग्रं गुर्वङ्गना कोटिनिषेवणं च ।
स्तेयादि पापानि च कृष्णभक्तैरज्ञानजातानि लयं हियन्ते ॥२३॥
विष्णुभक्तिमता वीर यत्किञ्चित्क्रियतेऽल्पकम् ।
सुकृतं साधुविदुषा तदक्षयफलं लभेत् ॥२४॥

गये हैं, अतएव धर्म की गति सूक्ष्म है ॥१०॥ कर्म विचित्र होते हैं, भूतों की भावना भी विचित्र है । सभी भूत भी विचित्र हैं और कर्मों की शक्ति भी विचित्र है ॥११॥ हे राजन् ! पुण्य कर्म जो सदा कूट के समान अविकृत बना रहता है । वही किसी पुण्य कर्म से बढ़ता रहता है ॥१२॥ वह किसी दूसरे जन्म में जाकर महान् फल प्रदान करता है । अतएव धर्म की गति अत्यन्त महान् है, उसे आसानी से नहीं जाना जा सकता है ॥१३॥ राजन् ! कर्म कब फल प्रदान करे यह कोई निश्चय नहीं है कोई भी पुण्य कर्म दूसरे पापों से ढँक जाता है ॥१४॥ और वह कर्म कहीं से भी कभी भी आकर अपना फल प्रदान करता ही है । संसार में किए गये पुण्य अथवा पाप कर्मों के करने में जो स्वल्पायास और महायास होते हैं ॥१५-१७॥ वे कर्म कर्ताओं के आयास के महापुण्य हो जाते हैं । सिंह आदि के मन्त्र का उच्चारण करने में वहुत अधिक आयास होता है ॥१८॥ पञ्चगव्य श्रेष्ठ है, वह व्रत का अङ्ग नहीं है । इसी तरह से कर्तव्य की बहुलता और अल्पता दूसरे व्रत के प्रवेश के कारण जल एवं अग्नि आदि के प्रवेश के कारण होता है। किसी भी कर्म के महत्त्व अल्पत्व का कोई भी मापदण्ड नहीं है ॥१९-२०॥ राजन् ! शास्त्र में जो फल बतलाया गया है, वही महान् हो सकता है । जिस तरह से महान् के द्वारा अल्प का नाश होता है, उसी तरह से अल्प का भी महान् से नाश होता है ॥२१॥ देखा जाता है कि छोटी सी चिनगारी से तृण का समूह जलकर भस्म हो जाता है ॥२२॥ हत्या इत्यादि हजारों उग्रपाप तथा करोड़ों बार गुरुपत्नी के सेवन रूप उग्रपाप तथा चोरी आदि पाप जो अज्ञानवशात् हो गये हों तो भगवान् कृष्ण की भक्ति उन सबों को विनष्ट

सन्देहो नात्र कर्त्तव्यो माधवे मासि माधवम् ।
समाराध्य नरो भक्त्या तत्तद्वाञ्छितमाप्नुयात् ॥२५॥
अपत्यद्रविणं रत्नं दाराहर्म्यं हयागजाः । सुखानि स्वर्गमोक्षौ च न दूरे हरिभक्तितः॥२६॥
एवं शास्त्रोक्त विधिना स्वल्पेनापि न संशयः ।
पापस्य महतोऽपि स्यात्क्षयो वृद्धिः सुकर्मणः ॥२७॥
फलाधिक्यंभवेद्भूप त्वाधिक्याद्भावकर्मणोः ।
सूक्ष्मा धर्मस्य विज्ञेया गतिस्तु विविधैरपि ॥२८॥
प्रियो माधवमासोऽयं माधवस्य महात्मनः । एकोऽप्यनुष्ठितो लोकैः समग्रेप्सितदायकः ॥२९॥
पुण्येन गाङ्गेन जलेन काले देशेऽपि यः स्नानपरोऽपि भूप ! ।
आजन्मतो भावहतोऽपि दाता न शुद्धिमेतीति मतं ममैतत् ॥३०॥
गङ्गादितीर्थेषु वसन्ति जीवा देवालये पक्षिगणाश्च नित्यम् ।
विनाशमायान्ति कृतोपवासा भावोज्झिता नैव गतिं लभन्ते ॥३१॥
भावं ततो हृत्कमले निधाय श्रीमाधवं माधवमासि भक्त्या ।
यजेत यः स्नानपरो विशुद्धः पुण्यं न भक्ता वयमस्य वक्तुम् ॥३२॥
प्रज्वाल्य वह्निं घृततैलसिक्तं प्रदक्षिणावर्तशिखं स्वकाले ।
प्रविश्य दग्धः किल भावदुष्टो न स्वर्गमाप्नोति फलं न चान्यत् ॥३३॥

कर देती है ॥२३॥ हे राजन् ! भगवान् विष्णु का भक्त जो थोड़ा सा भी पुण्य करता है, उससे उसको अक्षय फल की प्राप्ति होती है ॥२४॥ इस विषय में कोई भी सन्देह नहीं करना चाहिए कि वैशाख के महीने में भगवान् माधव की आराधना करके भक्त अपने समस्त अभिलषित फलों को प्राप्त कर लेता है॥२५॥ श्रीहरि की भक्ति से पुत्र, धन, रत्न, पत्नी, गृह, घोड़े, हाथी, सुख, स्वर्ग तथा मोक्ष इन सबों की प्राप्ति हो जाती हैं ॥२६॥ इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है कि छोटी सी भी शास्त्रविधि के अनुसार किए गये पुण्य से महान्-से-महान् पाप का भी नाश हो जाता है ॥२७॥ राजन् ! भाव तथा कर्म की अधिकता होने पर फल की भी वृद्धि हो जाती हैं । धर्म की गतियाँ सूक्ष्म तथा अनेक प्रकार की होती हैं ॥२८॥ वैशाख का महीना भगवान् माधव को अत्यन्त प्रिय है । एक बार भी इसका अनुष्ठान कर लेने से सभी अभिप्रेत अर्थों की प्राप्ति हो जाती है ॥२९॥ मेरा यह मानना है कि जो भाव रहित व्यक्ति पवित्र देश और पवित्र काल में जीवन भर गङ्गाजल से स्नान करता है तथा आजीवन दान करता है, वह भी शुद्ध नहीं होता है ॥३०॥ गङ्गा आदि तीर्थों में विभिन्न प्रकार के जीवों का निवास होता है, मन्दिरों में पक्षियों का भी निवास होता है । भक्ति भाव से रहित होने के कारण उन सबों का विनाश भी हो जाता है किन्तु उन सबों की सद्गति नहीं होती है ॥३१॥ अतएव वैशाख के महीने में भक्तिभाव पूर्वक भगवान् माधव की स्नान करके पवित्रता पूर्वक पूजा करने वाले को जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन मैं भी नहीं कर सकता हूँ ॥३२॥ भगवद्भक्ति से रहित व्यक्ति यदि घी तथा तेल से इन्धन को सींचकर उसमें अग्नि लगा दें और अग्नि की शिखा दक्षिणावर्त निकलने लगे उस समय वह उसमें प्रवेश कर जाय तो भी उसे न तो स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है और न किसी दूसरे फल की प्राप्ति हो सकती है ॥३३॥ अतएव राजन्!

श्रद्धत्स्व भूप तस्मात्त्वं माधवस्य फलं प्रति ।
स्वल्पं चापि शुभंकर्म विकर्मशत नाशनम् ॥३४॥
यथा हरेर्नाम भयेन भूप ! नश्यन्ति सर्वे दुरितस्य वृन्दाः ।
नूनं रवौ मेषगते विभाते स्नानेन तीर्थे च हरिस्तवेन ॥३५॥
तेजसा वैनतेयस्य पाप्मानःपन्नगा इव । विद्रवन्ति च वैशाखस्नानेनोषसि निश्चितम् ॥३६॥
गङ्गायां नर्मदायां वा स्नात्वा मेषगते रवौ । पापप्रशमनस्तोत्रं यःपठेद्भक्तिभावतः ॥३७॥
एककालं द्विकालं वा त्रिसन्ध्यमपि भूपते ! ।
स याति परमं स्थानं सर्वपापविवर्जितः ॥३८॥
अम्बरीष ! महापुण्यप्राप्तये कुरु वीक्षणम्। माधवे मासि वै स्नानं प्रातर्नियमसंस्थितः ॥३९॥
यदानर्त्तपुरे प्रोक्तं वसतां वर्षकोटिभिः। तत्प्रातर्माधवे मासि स्नानेनैकेन लभ्यते ॥४०॥
इहार्थे यत्पुरावृत्तं तदाकर्णय भूपते । भार्ययासह संवादं देवशर्मद्विजन्मनः ॥४१॥
रेवातीरे सुपुण्ये च तीर्थे चामरकण्टके। कौशिकस्य सुतो जातो देवशर्मा द्विजोत्तमः ॥४२॥
धनपुत्रविहीनस्तु बहुदुःखसमन्वितः। दारिद्र्येण सुदुःखेन सर्वदैव प्रपीडितः ॥४३॥
पुत्रोपायं धनस्यापि दिवारात्रौ प्रचिन्तयेत्। एकदा तु प्रिया तस्य सुमना नाम सुव्रता ॥४४॥
भर्तारं चिन्तयोपेतमधोमुखमलक्षयत् । समालोक्य तदाकान्तं तमुवाच यशस्विनी ॥४५॥
दुःखजालैरसङ्ख्यैस्तु तवचित्तं प्रकर्शितम्। व्यामोहेन प्रमूढोऽसि त्यज चिन्तां महामते ॥४६॥

आप वैशाख मास के फल के विषय में विश्वास करें । छोटा सा भी पुण्य कर्म सैकड़ों पापों को विनष्ट कर देता है ॥३४॥ हे राजन् ! जिस तरह श्रीहरि के नाम के भय से पापों के समूह विनष्ट हो जाते हैं उसी तरह से जब सूर्य मेंष राशि के होते हैं उस समय प्रातःस्नान करने से तथा श्रीहरि की स्तुति करने से पापों का विनाश हो जाता है ॥३५॥ जिस तरह गरुड के तेज से सर्प पलायन कर जाते हैं उसी तरह वैशाख के महीने में सूर्योदय से पहले तीर्थ में स्नान करने से पाप भी पलायन कर जाते हैं ॥३६॥ मेष राशि के सूर्य होने पर गङ्गाजी में अथवा नर्मदा नदी में स्नान करके जो मनुष्य पाप प्रशमन स्तोत्र का भक्ति पूर्वक ॥३७॥ एक बार या दो बार या तीनों काल में पाठ करता है, वह समस्त पापों से रहित होकर परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥३८॥ हे अम्बरीष ! महान् पुण्य को प्राप्त करने के लिए वैशाख के महीने में तुम प्रातःस्नान नियम पूर्वक करो ॥३९॥ द्वारकापुरी में करोड़ों वर्षो तक निवास करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उस पुण्य की प्राप्ति वैशाख के महीने में केवल प्रातः स्नान करने मात्र से होती है ॥४०॥ इस विषय में देवशर्मा नाम के ब्राह्मण का अपनी पत्नी के साथ संवाद रूपी इतिहास को आप सुनें ॥४१॥ रेवा नदी के तट पर विद्यमान अमरकण्टक तीर्थ में कौशिक नामक ब्राह्मण के पुत्र द्विजश्रेष्ठ देवशर्मा थे ॥४२॥ धन तथा पुत्र से विहीन होने के कारण वे अत्यन्त दुःखी थे । वे दारिद्रय नामक भयङ्कर दुःख के कारण सदैव पीड़ित रहते थे ॥४३॥ वे दिन रात इसी बात की चिन्ता करते थे कि पुत्र तथा धन की प्राप्ति कैसे हो? एक बार उनकी पतिव्रता सुमना नामक पत्नी ने अपने पति को नीचे मुख किए हुए देखा । उस यशस्विनी ने अपने पति को देखकर कहा ॥४३-४५॥ असंख्य दुःख समूह के कारण आपका मन उसी में लगा रहता है । व्याहोमह के कारण आप मूढ़ हो गये हैं । आप चिन्ता का परित्याग कर दें ॥४६॥ मेरे दुःख

मम दुःखं समाचक्ष्व स्वस्थो भव सुखं व्रज ।
नास्ति चिन्तासमं दुःखं कायशोषणमेव हि ॥४७॥
तां सन्त्यज्य प्रवर्तेत स सुखेन प्रमोदते। चिन्तायाःकारणं विप्र कथयस्व ममप्रभो॥४८॥

नारद उवाच

प्रिया वाक्यं स संश्रुत्य देवशर्मा महामतिः ।
उवाच वचनं प्रीतो दुःखितोऽपि सतीसखः ॥४९॥

देवशर्मोवाच

यत्त्वया चिन्तितं भद्रे ! किञ्चिद्दुखस्य कारणम् ।
तत्सर्वं तु प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ॥५०॥
न जाने केन पापेन धनहीनोऽस्मि सुव्रते। तथा पुत्रविहीनोऽस्मि एतद्दुःखस्यकारणम्॥५१॥

सुमनोवाच

श्रूयतामभिधास्यामि सर्वसन्देहनाशनम्। स्वरूपमुपदेशस्य सर्वविज्ञानदर्शनम्॥५२॥
सन्तोष एव परमं पुण्यं सौख्यादि कारणम् ।
असन्तोषःपरं पापमित्याह भगवान्हरिः ॥५३॥
लोभः पापस्य बीजोऽयं मोहो मूलं च तस्य वै ।
असत्यं तस्य हि स्कन्धो महाशाखा सुविस्तरात् ॥५४॥
मदकौटिल्यपत्राणि कुबुद्ध्या पुष्पितःसदा । अनृतं तस्य सौगन्ध्यमज्ञानं फलमेव च॥५५॥
कुद्ध्यं पाषण्डचौराश्च क्रूराः कूटाश्च पापिनः ।
पक्षिणो मोहवृक्षस्य महाशाखासमाश्रिताः ॥५६॥

को देखें आप सुखी हो जायँ। चिन्ता से बड़ा कोई दुःख नहीं है। वह शरीर को सुखा देता है ॥४७॥ जो व्यक्ति चिन्ता को छोड़ देता है वह सुखी और आनन्दित हो जाता है। प्रभो ! आप अपनी चिन्ता का कारण बतलायें ॥४८॥ **नारदजी ने कहा—** दुःखी होने पर भी उस सती के पति महाबुद्धिमान देवशर्मा आपनी पत्नी की बातों को सुनकर कहे ॥४९॥ **देवशर्मा ने कहा—** भद्रे ! तुमने जो दुःख के कारण के विषय में सोचा है तो उसे मैं पूर्णरूप से बतलाता हूँ उसे सुनकर तुम निश्चित करो ॥५०॥ सुव्रते ! मैं न जाने किस पाप के कारण धनहीन हूँ। मेरा कोई पुत्र भी नहीं है, यही मेरे दुःख का कारण है ॥५१॥ **सुमना ने कहा—** आप मेरी बात सुनें। मेरा वह उपदेश समस्त विज्ञानों का प्रकाशक और समस्त सन्देहों को विनष्ट करने वाला है ॥५२॥ भगवान् श्रीहरि ने कहा है कि सन्तोष ही सबसे बड़ा पुण्य है और सुख आदि को प्रदान करने वाला है। असन्तोष सबसे बड़ा पाप है ॥५३॥ पाप का बीज लोभ है और उसका मूल मोह है। असत्य भाषण उसकी शाखा है वही विस्तृत होकर महाशाखी हो जाता है ॥५४॥ मद तथा कुटिलता उस पाप वृक्ष के पत्ते हैं, वह (पापवृक्ष) कुबुद्धि के द्वारा विकसित होता है, झूठ ही उसकी सुगन्धि है तथा अज्ञान ही उस पाप वृक्ष का फल है ॥५५॥ पाखण्डी, चोर, क्रूर, कूट और पापी उस मोहरूपी वृक्ष की महाशाखाओं में रहने वाले पक्षीगण है ॥५६॥ अजान ही उस पापवृक्ष का सुन्दर लगने

अज्ञानं सुफलं तस्य रसोऽधर्मं फलस्य हि ।
भावोदकेन संवृद्धिस्तस्य श्रद्धा क्रतुप्रिया ॥५७॥
अधर्मेषु रसस्तस्य उत्क्लेदैर्मधुरायते । तादृशैश्च फलैश्चैव सफलो लोभपादपः ॥५८॥
तस्य च्छायां समाश्रित्य यो नरः परिवर्तते। फलानि तस्य सोऽश्नानि स्वपक्वानि दिनेदिने॥५९॥
फलानां च रसेनापि अधर्मेण तु पोषितः । स सम्पुष्टो भेवन्मर्त्यःपतनाय प्रयच्छति ॥६०॥
तस्माच्चिन्तां परिश्रित्य स्वमिन् लोभं न कारयेत् ।
धनपुत्रकलवाणां चिन्तामेतां न कारयेत् ॥६१॥
यो हि विद्वान्न चेत्कान्त ! मूर्खाणां पथमेव हि ।
मृषा चिन्तयते नित्यं दिवारात्रौ विमोहितः ॥६२॥
शुभार्थं च प्रविन्दामि कथं पुत्रानहं लभे। एवं चिन्तयते नित्यं दिवारात्रौ विमोहितः ॥६३॥
क्षणमेकं प्रपश्येत्स चिन्तामध्ये महत्सुखम्। पुनश्चैतन्यमायाति महादुःखेन पीड्यते ॥६४॥
चिन्तामोहौ परित्यज्य अनुवर्तस्व तं द्विज। संसारे नास्ति सम्बन्धः केनसार्धं महामते ॥६५॥
मित्राणि बान्धवाः पुत्राः पिता माता सुतास्तथा ।
स्वसम्बन्धा भवन्त्येते कलत्रादि तथैव च ॥६६॥

देवशर्मोवाच

सम्बन्धः कीदृशो भद्रे तं मे विस्तरतो वद ।
ये न जायन्ति ते सर्वे धनपुत्रादि बान्धवाः ॥६७॥

सुमनोवाच

भर्तःपञ्चविधाःपुत्रा जायन्ते तान्वदाम्यहम्। नयासपहारकं चैकमृणसम्बन्धिनंपरम् ॥६८॥
रिपुं लभ्यमुदासीनमिति कान्त ! भवन्ति ते ।
लक्षणानि प्रवक्ष्यामि तेषामीश ! पृथक्पृथक् ॥६९॥

वाला फल है, उस फल का रस अधर्म है । उसकी (वृक्ष की) वृदि भावरूपी जल से होती है और उसकी क्रतुप्रिया अधर्मों में श्रद्धा है । किसी को दुःख देने में ही उसका रस मधुर होता है । इस तरह के फलों से लोभ रूपी वृक्ष फलवान होता है ॥५७-५८॥ उस लोभ रूपी वृक्ष की छाया का जो मनुष्य सेवन करता है वह उसके पके हुए अधर्म रूपी फल का प्रतिदिन भोग करता है ॥५९॥ उन फलों के अधर्म रूपी रस से पोषित हुआ मनुष्य पुष्ट होकर पतित हो जाता है ॥६०॥ अतएव हे स्वामिन् ! चिन्ता को अपनाकर लोभ नहीं करना चाहिए । वह धन, पुत्र तथा पत्नी की चिन्ता न करे ॥६१॥ हे कान्त ! जो विद्वान् होता है, वह मूर्खों के मार्ग को अपना कर रात-दिन मिथ्या चिन्ता करता है ॥६२॥ कि मैं अपने कल्याण के लिए पुत्रों को कैसे प्राप्त कर सकूँगा; इस प्रकार से अज्ञानी होकर जो रात-दिन चिन्ता करता है, ॥६३॥ वह एक क्षण तक चिन्ता में पड़कर महान् सुख का अनुभव करता है । जब वह सावधान होता है तो उसको बहुत अधिक कष्ट होता है ॥६४॥ आप चिन्ता और मोह का परित्याग करके इसी का अनुभव करें संसार में किसी का भी किसी के साथ सम्बन्ध नहीं है ॥६५॥ मित्र, बन्धु, पुत्र, पिता, माता, पुत्रियाँ तथा पत्नी इन सबों का अपने से संसार में सम्बन्ध होता है ॥६६॥ **देवशर्मा ने कहा**— हे भद्रे ! तुम मुझे विस्तार पूर्वक बतलाओ कि सम्बन्ध कैसा होता है । जिसके कारण धन, पुत्र तथा बन्धु आदि उत्पन्न होते हैं॥६७॥ **सुमना ने कहा**— हे पतिदेव ! मैं आपको बतलाती हूँ । पुत्र आदि पाञ्च प्रकार के होते हैं । १. न्यासपहारक, २. ऋण सम्बन्धी, ३. शत्रु, ४. लभ्य तथा ५. उदासीन । हे नाथ ! मैं उन सबों का

पुत्रा मित्रं प्रिया भार्या पिता माता च बान्धवाः ।
स्वेन स्वेन हि जायन्ते सम्बन्धेन महीतले ॥७०॥
न्यासापहारभावेन यस्य येन हृतंभुवि । न्यासस्वामीभवेत्पुत्रो गुणवान्रूपवान्भुवि ॥७१॥
येनह्यपहृतं न्यासं तस्य गेहे न संशयः । न्यासापहरणं दुःखं स दत्त्वा दारुणं गतः ॥७२॥
न्यासस्वामी सुपुत्रोऽभून्न्यासापहारकस्य च । गुणवान्रूपवांश्चैव सर्वलक्षणसंयुतः ॥७३॥
भक्तिं च दर्शयेतस्य पुत्रो भूत्वा दिने दिने। प्रियावाङ् मधुरो वाग्मी बहुस्नेहं विदर्शयेत् ॥७४॥
स्वीयं द्रव्यं समुद्ग्राह्य प्रीतिमुत्पाद्य चातुलाम् ।
यथा तेन प्रदत्तं तन्न्यासापहरणात्परम् ॥७५॥
दुःखमेवं महाभाग दारुणं प्राणनाशनम्। तादृशं तस्य सो दद्यात्पुत्रो भूत्वा महागुणः ॥७६॥
अल्पायुष्कस्तथा भूत्वा मरणं चोपगच्छति। दुःखं दत्त्वा प्रयात्येवं प्रहृत्यैवं पुनःपुनः ॥७७॥
यदाह पुत्रपुत्रेति प्रलापं हि करोति यः । तदाहास्यं करोत्येष कस्तु पुत्रो हि कस्य च ॥७८॥
अनेनापहृतं न्यासं मदीयं पापचारिणा। द्रव्यापहरणेनापि मम प्राणा गताःकिल॥७९॥
दुःखेन महता चैव असह्येन च वै पुरा। तदादुःखं मया दत्त्वा द्रव्यमुद्ग्राह्यमुत्तमम् ॥८०॥

इति श्रीपद्मपुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वैशाखमाहात्म्ये सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

* * *

लक्षण भी अलग-अलग बतलाती हूँ ॥६८-६९॥ संसार में पुत्र, मित्र, प्रिय पत्नी, पिता, माता और बान्धव ये सभी अपने-अपने सम्बन्ध के कारण होते हैं ॥७०॥ जिसका धरोहर कोई ले लिए रहता है, उसे नहीं लौटाता है, उस न्यास का जो स्वामी होता है वही गुणवान् और रूपवान् पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है । वह पुत्र न्यासापहारक होता है ॥७१॥ जो न्यास का अपहरण कर लिए रहता है, उसी के घर में वह उत्पन्न होता है । न्यास का अपहरण जन्य दुःख देकर वह मर जाता है ॥७२॥ उस न्यास का स्वामी उस न्यास का अपहरण करने वाले का सभी लक्षणों से सम्पन्न, रूपवान् और गुणवान् पुत्र होता है ॥७३॥ वह उसका पुत्र बनकर अपनी भक्ति भी प्रदर्शित करता है । वह प्रिय तथा मधुर बोलने वाला, बोलने में चतुर होता है तथा अपने पिता के प्रति बहुत स्नेह भी प्रदर्शित करता है ॥७४॥ वह अपना द्रव्य लेकर, अतुलनीय प्रेम उत्पन्न करके जिस तरह से उसके न्यास (धरोहर) का अपहरण करके अत्यधिक कष्ट दिए रहता है उसी तरह का भयङ्कर कष्ट उसको पुत्र बनकर ॥७५-७६॥ देकर अल्पायु हो जाता है उस न्यासापहारी से अपना न्यास लेकर तथा उसको भयङ्कर कष्ट देकर वह मर जाता है ॥७७॥ जब वह पुत्र-पुत्र कहकर चिल्लाता है उस समय उसकी आत्मा हँसती है । अतएव कोई भी किसी का पुत्र नहीं है ॥७८॥ इस पापी ने मेरे न्यास का अपहरण किया था । उस द्रव्यापहरण के कारण मेरे प्राण निकल गये थे ॥७९॥ उस समय मुझे असह्य कष्ट हुआ था उसी द्रव्य को लेकर मैंने इसे इस प्रकार का कष्ट दिया यह कहकर उसकी आत्मा हँसती है ॥८०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के वैशाखमास माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में देवशर्मा और सुमना संवादान्तर्गत सत्तासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८७॥

* * *

अठासीवाँ अध्याय

सुमनोवाच

ऋणसम्बन्धिनं पुत्रं प्रवक्ष्यामि तवाग्रतः। ऋणं यस्य गृहीत्वा यः प्रयाति मरणं किल ॥१॥
अर्थदाता सुतो भूत्वा भ्रातावाथ पिताप्रिया। मित्ररूपेण वर्तेत अन्तर्दुष्टःसदैव सः ॥२॥
गुणंनैव प्रपश्येत सक्रूरो निष्ठुराकृतिः । जल्पते निष्ठुरं वाक्यं सदैव स्वजनेषु च ॥३॥
मिष्टंमिष्टं समश्नाति भोगान्भुङ्क्ते न नित्यशः। द्यूतकर्मरतो नित्यं चौरकर्मणि सस्पृहः ॥४॥
गृहाद् द्रव्यं चोरयति वार्यमाणःस कुप्यति। पितरं मातरं चैव कुत्सते च दिने दिने ॥५॥
द्रावकस्त्रासकश्चैव बहुनिष्ठुरजल्पकः। एवमुद्ग्राह्य तद्द्रव्यं सुखेन परितिष्ठति ॥६॥
जातकर्मादिभिर्बाल्ये द्रव्यं गृह्णाति दारुणम्। पुनर्विवाहसंयोगान्नानाभेदैरनेकदा ॥७॥
एवं संक्षीयते द्रव्यमेवमेतद्वदत्यपि। गृहंक्षेत्रादिकं सर्व ममैव हि न संशयः ॥८॥
पितरं मातरं चैव हिनस्त्येव दिने दिने । सुदण्डैर्मुसलैश्चैव केशोत्पाटैश्च दारुणैः ॥९॥
मृते तु तस्मिन्पितरि मातरि चातिनिष्ठुरः। निःस्नेहो निष्ठुरश्चैव जायते नात्र संशयः ॥१०॥
श्राद्धकार्याणि दानानि न करोति सदैव सः ।
एवंविधाः प्रियाः पुत्रा भवन्ति च महीपते ॥११॥
रिपुं पुत्रं प्रवक्ष्यामि करोति द्विजसत्तम !। बाल्ये वयसि सम्प्राप्ते पुत्रत्वे वर्तते सदा॥१२॥
पितरं मातरं चैव क्रीडमानो हि ताडयेत्। ताडयित्वा प्रयात्येव प्रहस्यैवं पुनःपुनः ॥१३॥

ऋण सम्बन्धी आदि पुत्रों का तथा संसार की निःसारता का वर्णन

सुमना ने कहा— अब मैं आपको ऋण सम्बन्धी पुत्र को बतलाती हूँ। जो किसी से ऋण लेकर उसे चुकाये बिना ही मर जाता है ॥१॥ तो वह धन देने वाला उसका पुत्र होता है, या भाई होता है, या पिता होता है, या पत्नी होती है या मित्र होता है। उसके मन में सदा दुष्टता बनी रहती है ॥२॥ वह उसके गुण को नहीं देखता है सदा निष्ठुर और क्रूर बना रहता है, वह अपने लोगों से सदा निष्ठुर वाणी ही बोलता है ॥३॥ वह अच्छी-अच्छी वस्तुओं को खाता है और सदैव सुख भोगता है। वह जूआ खेलता है चोरी करता है ॥४॥ वह घर की सम्पत्ति को चुरा लेता है और रोकने पर क्रोध भी करता है। वह प्रतिदिन अपने माता-पिता को कोसता रहता है ॥५॥ वह माता-पिता को भगा देता है और उन सबों को भयभीत भी करता है और अत्यन्त निष्ठुर वाणी बोलता है। इस तरह से वह अपने ऋण को द्रव्य और अत्यन्त मौज आदि करके चुका लेता है ॥६॥ वह जातकर्म आदि के द्वारा बाल्यावस्था में द्रव्य लेता है। उसके बाद विवाद आदि के समय वह अनेक प्रकार से अनेक बार धन वसूलता है ॥७॥ इस तरह से घर की सम्पत्ति क्षीण हो जाती है तो वह कहता है कि घर खेत इत्यादि सबकुछ मेरा है इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥८॥ वह प्रतिदिन माता-पिता को त्यागते जाता है, वह दण्डे और मुसल से उन्हें मारता है तथा केश उखाड़कर दुःख देता है ॥९॥ माता-पिता के मर जाने पर वह स्नेह रहित और निष्ठुर बना रहता है॥१०॥ वह उनका न तो श्राद्ध करता है और न माता-पिता के लिए दान करता है। हे राजन् ! अम्बरीष! इस प्रकार से प्रिय पुत्र होते हैं ॥११॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! अब मैं शत्रु पुत्र का वर्णन करती हूँ।

पुनरायाति तं तत्र पितरं मातरं पुनः। सक्रोधो वर्तते नित्यं कुत्सते च दिने दिने ॥१४॥
एवं संवर्तते नित्यं वैरकर्मणि सम्पदा। पितरं ताडयित्वा च भ्रातरं च ततःपुनः ॥१५॥
प्रयात्येवं स दुष्टात्मा पूर्ववैरानुभावतः। अथातःसम्प्रवक्ष्यामि यथालभ्यो भवेत्प्रियः ॥१६॥
जातमात्रःप्रियं कुर्याद्बाल्ये क्रीडनताडनैः। वयःप्राप्य प्रियं कुर्यान्मातापित्रोरनन्तरम् ॥१७॥
भक्त्या सन्तोषयेन्नित्यं तावुभौ परितोषयेत्। स्नेहेन वचसा चैव प्रियसम्भाषणेन च ॥१८॥
मृतौ गुरूसमाज्ञाय स्नेहेन रुदते पुनः। श्राद्धकर्माणि सर्वाणि पिण्डदानादिकां क्रियाम् ॥१९॥
करोत्येव सुदुःखार्तस्तेभ्यो यात्रां प्रयच्छति। ऋणत्रयान्वितः स्नेहान्मोचयेद्यस्तु निश्चितः ॥२०॥
यस्माल्लभ्यं भवेत्कान्त प्रयच्छति न संशयः।
पुत्रोभूत्वा महाप्राज्ञ अनेनविधिना किल ॥२१॥
उदासीनं प्रवक्ष्यामि तवाग्रे प्रियसाम्प्रतम्। उदासीनेन भावेन सदैव परिवर्तते ॥२२॥
ददाति नैव गृह्णाति न च कुप्यति तुष्यति। नो वा प्रयाति सन्त्यज्य उदासीनो द्विजोत्तम ! ॥२३॥
भृत्याश्चापि समाख्याताः पशवस्तुरगास्तथा। गजामहिष्यो दास्यश्च ऋणसम्बन्धिनस्त्वमी ॥२४॥
गृहीतं मायया किञ्चिदावाभ्यां तु न कस्य हि।
न्यासमेवं न कस्यापि कृतंवै पूर्वजन्मनि ॥२५॥
राधयामि न कस्यापि क्षणं कान्त श्रृणुष्व हि।
न वैरमस्ति केनापि पूर्वजन्मनि वै कृतम् ॥२६॥

वह बाल्यावस्था में पुत्र वना रहता है ॥१२॥ वह खेलते समय अपने माता-पिता को मारता है। वह उन्हें बार-बार मार कर हँसते हुए भाग जाता है ॥१३॥ उसके बाद वह अपने माता-पिता के पास आता है। वह सदैव अपने माता-पिता से क्रोध करता है और उनकी निन्दा करता है ॥१४॥ वह सम्पत्ति के लिए पिता से बैर करता है। वह अपने पिता को पीटता है और भाई को भी पीटता है ॥१५॥ वह दुष्ट अपने पहले के बैर के प्रभाव से इस प्रकार का व्यवहार करता है। अब मैं लभ्य पुत्र का वर्णन करती हूँ वह भी अपने माता-पिता को प्रिय होता है ॥१६॥ वह उत्पन्न होने मात्र से अपने माता-पिता को प्रसन्न करता है, क्रीड़ा करता है। जब वह बड़ा होता है तो अपने माता-पिता का प्रिय कार्य करता है ॥१७॥ वह अपनी भक्ति के द्वारा माता-पिता को सदा सन्तुष्ट रखता है। वह स्नेह भरी वाणी बोलता है और अच्छी लगने वाली बातें करता है ॥१८॥ माता-पिता के मर जाने पर स्नेह के कारण रोता है श्राद्ध कर्म करते समय पिण्ड दान आदि की सारी क्रियाओं को सम्पन्न करता है। वह दुःखी होकर माता-पिता के लिए तीर्थ यात्रा करता है और स्नेहाधिक्य के कारण माता-पिता को तीनों प्रकार के ऋणों से मुक्त कर देता है ॥१९-२०॥ हे महाप्राज्ञ ! इस प्रकार से पुत्र होकर माता-पिता को प्राप्त होने वाले सारे कार्य को करता है ॥२१॥ हे प्रिय। अब मैं आपके समक्ष उदासीन पुत्र का वर्णन करती हूँ। वह सदैव अपने माता-पिता के विषय में उदासीन बना रहता है ॥२२॥ वह न देता है न लेता है न तो क्रोध करता है और न प्रसन्न होता है। वह अपने माता-पिता को त्याग कर उदासीन होकर घर से निकल जाता है ॥२३॥ इसी तरह भृत्य, पशु, घोड़े, हाथी, पत्नियाँ तथा दासियाँ भी ऋण सम्बन्धी होती हैं ॥२४॥ हम दोनों ने पूर्वजन्म में कपट करके किसी का भी कुछ नहीं लिया है। हे कान्त ! हमलोगों ने किसी से क्षण भर भी न तो

अबाल्येन तु विप्रेन्द्र ! न च त्यक्तो मया पतिः ।
एवं ज्ञात्वा शमं गच्छ त्यज चिन्तामनर्थिकाम् ॥२७॥
हृतं नैव च कस्यापि नैव दत्तं त्वया पुनः। कथं ते धनमायाति विस्मयं व्रज मा विभो ॥२८॥
प्राप्तमेवहि यत्रैव रक्षितुश्च न तिष्ठति। एवं ज्ञात्वा शमं गच्छ त्यज चिन्तामनर्थिकाम्॥२९॥
कस्य पुत्राः प्रिया भार्या कस्य स्वजनबान्धवाः ।
कः कस्य नास्ति संसारे न सम्बन्धो द्विजोत्तम ! ॥३०॥
मायामोहेन संमूढा मानवाःपापचेतनाः। इदं गृहमयं पुत्र इयं भार्या ममैज हि॥३१॥
अनृतं दृश्यते कान्त संसारस्य हि बन्धनम् ॥३२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वैशाखमाहात्म्येऽष्टाशीतितितमोऽध्यायः ॥८८॥

* * *

नवासीवाँ अध्याय

नारद उवाच

एवं सम्बोधितो विप्रो देवशर्मा द्विजोत्तमः । पुनः प्राह प्रियांभार्यां सहितां ज्ञानवादिनीम्॥१॥
सत्यमुक्तं त्वया भद्रे ! सर्वसन्देहनाशनम्। तथा हि वंशमिच्छान्ति साधवःसत्यपण्डिताः॥२॥

प्रेम किया है और न बैर किया है ॥२५-२६॥ बचपन से ही मैंने अपने पति का परित्याग नहीं किया, इन सारी बातों को सोचकर शान्त हो जायँ और इस अनर्थकारिणी चिन्ता को त्याग दें ॥२७॥ आपने भी किसी का कुछ नहीं लिया है और न तो किसी को कुछ दिया है । अतएव आपके पास सम्पत्ति कैसे आ सकती है ? आप विस्मय न करें ॥२८॥ रक्षा करने वाले को प्राप्त होकर भी सम्पत्ति नहीं ठहरती हैं, इसी बात को जानकर आप शान्त हो जाएँ और अनर्थकारिणी चिन्ता को छोड़ दें ॥२९॥ हे द्विजोत्तम ! कौन किसका पुत्र है और कौन किसका पिता है ? किसी के साथ किसी का कोई सम्बन्ध नहीं है ॥३०॥ पापी जीव माया और मोह से मोहित बने रहते हैं । वे सोचते हैं, यह मेरा गृह है, यह मेरा पुत्र है और यह मेरी पत्नी है ॥३१॥ हे कान्त ! संसार के सारे सम्बन्ध झूठे हैं ॥३२।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के वैशाख माहात्म्य वर्णन के प्रसङ्ग में अठासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८८॥

* * *

देवशर्मा और सुमना संवाद

नारदजी ने कहा— इस प्रकार से संवोधित किए जाने के बाद द्विजश्रेष्ठ देवशर्मा, कल्याण करने वाली तथा ज्ञानवादिनी अपनी प्रियतमा भार्या से फिर कहे ॥१॥ तुमने समस्त सन्देहों को दूर करने वाली सत्य बात को कहा है फिर भी मैं चाहता हूँ कि मेरे वंश में साधु और सत्यवादी पण्डित पुत्र हो मुझे जितनी चिन्ता पुत्र की है, उतनी चिन्ता धन की नहीं है । मैं चाहता हूँ कि मैं किसी भी प्रकार से पुत्र

यथा पुत्रस्य चिन्ता मे न धनस्य तथा प्रिये ।
येन केनाप्युपायेन पुत्रमुत्पादयाम्यहम् ॥३॥

सुमनोवाच

पुत्रेण लोकाञ्जयति पुत्रस्तारयते कुलम्। सुपुत्रेण महाभाग ! पिता माता प्रजीवतः ॥४॥
एकःपुत्रो वरः कान्त बहुभिर्निर्गुणैस्तु किम् ।
एकस्तारयते वंशमन्ये सन्तापकारकाः ॥५॥
पूर्वमेव मया प्रोक्तमन्ये सम्बन्धभागिनः। पुण्येन प्राप्यते पुत्रःपुण्येन प्राप्यते कुलम् ॥६॥
सुगर्भ प्राप्यते पुण्यैर्दुर्मृत्युःपातकैस्तथा। सुखानां निचयं कान्त ! सत्यमेव वदाम्यहम् ॥७॥
ब्रह्मचर्येण सत्येन तपसा नित्यवर्तनैः। दानेन नियमैश्चापि क्षमाशौचेन बल्लभ !॥८॥
अहिंसया च शक्त्या वाऽस्तेयेनापि प्रवर्तते ।
एतैर्दशभिरङ्गैश्च धर्ममेवं प्रसूयते ॥९॥
सम्पूर्णो जायते धर्मो ह्यङ्गैर्गर्भो यथोदरे। धर्म सृजति धर्मात्मा त्रिविधेनैव कर्मणा ॥१०॥
तस्य धर्मः प्रसन्नात्मा पुण्यसौख्यं प्रयच्छति ।
यं यं चिन्तयते प्राज्ञस्तं तं प्राप्नोति दुर्लभम् ॥११॥

देवशर्मोवाच

सर्वं देवि समाख्यातं धर्माख्यं ज्ञानमुत्तमम्। कथं पुत्रमहं विद्यां वैष्णवं गुणसंयुत्तम्॥१२॥
वद त्वं मे महाभागे ! यदि जानासि सुव्रते ! ।
धर्ममार्गस्त्वया सर्वः पितुःप्राप्तःपुराऽनघे ! ॥१३॥
ममैतद्विदितं कान्ते ! भवती ब्रह्मवादिनी। च्यवनस्य प्रसादेन विष्णोस्तुष्टस्य ते पुरा॥१४॥

उत्पन्न करूँ ॥२-३॥ **सुमना ने कहा—** हे महाभाग ! मनुष्य सुपुत्र के द्वारा लोकों को जीत लेता है, सुपुत्र वंश का उद्धार कर देता है और सुपुत्र के द्वारा माता-पिता जीवित रहते हैं ॥४॥ हे कान्त ! एक सुपुत्र श्रेष्ठ है, अनेक निर्गुण पुत्रों से कोई लाभ नहीं है । एक ही गुणवान् पुत्र वंश को तार देता है, अनेक निर्गुण पुत्र केवल दुःख ही देते हैं ॥५॥ मैंने पहले ही आपको बतलाया है कि दूसरे प्रकार के पुत्र तो सम्बन्ध वाले होते हैं । पुण्य के द्वारा ही सुपुत्र की प्राप्ति होती और पुण्य से ही वंश की प्राप्ति होती है॥६॥ पुण्य से सुन्दर गर्भ की प्राप्ति होती है और पाप से दुर्मृत्यु की प्राप्ति होती है, हे कान्त ! मैं आपको सुखों के समूह को बतला रही हूँ ॥७॥ हे प्रियतम ! ब्रह्मचर्य, सत्यपालन, तपस्या, दान, नियमों का पालन, क्षमा, शौच ॥८॥ अंहिसा, शान्ति, अस्तेय (चोरी न करना) इन दश अङ्गों के द्वारा धर्म की उत्पत्ति होती है ॥९॥ इन अङ्गों के द्वारा धर्म उसी तरह से सम्पूर्ण होता है जिस तरह अङ्गों के द्वारा गर्भ पेट में सम्पूर्ण होता है । मनुष्य अपने तीन प्रकार के कर्मो से धर्म की सृष्टि करता है ॥१०॥ उसका धर्म प्रसन्न होकर पवित्र सुख प्रदान करता है । वह प्राज्ञ पुरुष जिन-जिन अर्थो की चिन्ता करता है, उन सभी दुर्लभ वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है ॥११॥ **देवशर्मा ने कहा—** हे देवि ! आपने सम्पूर्ण धर्म नामक उत्तम ज्ञान को कहा है । अब तुम यह बतलाओ कि मैं वैष्णव तथा गुणवान् पुत्र को कैसे प्राप्त कर सकता हूँ ?॥१२॥ हे सुव्रते ! महाभागे ! यदि तुम जानती हो तो उसी को बतलाओ । हे अनघे ! तुमने अपने

सुमनोवाच

वसिष्ठं गच्छधर्मज्ञ तं प्रार्थय महामुनिम् । तस्मात्प्राप्स्यसि तं पुत्रं धर्मज्ञं धर्मवत्सलम् ॥१५॥
एवमुक्ते तया वाक्ये देवशर्मा द्विजोत्तमः । करिष्ये तव कल्याणि मतमेवं न संशयः ॥१६॥
एवमुक्त्वा जगामासौ देवशर्मा द्विजोत्तमः । वसिष्ठं सर्ववेत्तारं दीप्यन्तं तपतांवरम् ॥१७॥
गङ्गा तीरेस्थितं पुण्यमासनस्थं द्विजोत्तमम् । तेजोज्वालासमाकीर्णं द्वितीयमिव भास्करम् ॥१८॥
राजमानं महात्मानं ब्रह्मसिहं द्विजोत्तमम् । भक्त्या प्रणम्य स मुनिं दण्डवत्तं पुनः पुनः ॥१९॥
तमुवाच महातेजा ब्रह्मसूनुमकल्मषम् । उपविशासने पुण्ये सुखेन सुमहामते ! ॥२०॥

नारद उवाच

उपविष्टःस योगीन्द्रःपुनःप्राह तपोधनम् । गृहे पुरुष ते वत्स दारभृत्येषु सर्वदा ॥२१॥
क्षेममस्ति महाभाग पुण्यकर्मषु चाग्निषु । निरामयोऽसि चाङ्गेषु धर्मं पालयसे सदा ॥२२॥
एवमुक्त्वा महाप्राज्ञः पुनः प्राह महीसुरम् । किं करोमि प्रियं काम सुप्रियन्ते द्विजोत्तम ॥२३॥

नारद उवाच

एवं सम्भाष्य तं विप्रं विरराम शुभं वचः । ततो विप्रो महाभागो वसिष्ठं मुनिपुङ्गवम् ॥२४॥
स होवाच महात्मानं वसिष्ठं तपतांवरम् । भगवञ्छ्रू यतां वाक्यं यतःप्राप्तो द्विजोत्तम! ॥२५॥
दारिद्र्य केन भावेन पुत्रसौख्यं कथं न हि ।
एष मे संशयस्तात कस्मात्पापाद्वदस्व मे ॥२६॥
महामोहेन संमुग्धः प्रियया बोधितो द्विज !। तयाऽहं प्रेषितस्तात तव पार्श्वं समागतः॥२७॥

पिता की सन्निधि में सम्पूर्ण धर्म को जान लिया है ॥१३॥ कान्ते ! मैं जानता हूँ कि तुम महर्षि च्यवन की कृपा से तथा अपने सन्तुष्ट पिता की कृपा से ब्रह्मवादिनी हो गयी हो ॥१४॥ **सुमना ने कहा—** हे धर्मज्ञ ! आप महर्षि वसिष्ठ के पास जायँ उनसे प्रार्थना करें उनकी कृपा से ही आप धर्मज्ञ तथा धर्मवत्सल पुत्र को प्राप्त करेंगे ॥१५॥ पत्नी के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर देवशर्मा ने कहा— हे कल्याणि ! मैं तुम्हारे अभिमत कार्य को करूँगा ॥१६॥ इस तरह से कहकर ब्राह्मणों में श्रेष्ठ देवशर्मा, सर्वज्ञ, देदीप्यमान और तपस्वियों में श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठ के पास गये ॥१७॥ उस समय महर्षि वसिष्ठ गङ्गा के तट पर अपने पवित्र आसन पर बैठे थे । वे दूसरे सूर्य के समान तेज की ज्वाला से व्याप्त थे ॥१८॥ सुशोभित होने वाले ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्रह्मसिंह महात्मा वसिष्ठ को प्रणाम करके बार-बार साष्टाङ्ग प्रणाम किए ॥१९॥ महातेजस्वी ब्रह्माजी के पुत्र महर्षि वसिष्ठ ने निष्पाप देवशर्मा से कहा महामते ! आप आसन पर सुख पूर्वक बैठें ॥२०॥ **नारदजी ने कहा—** बैठ जाने के बाद योगीन्द्र तपोधन महर्षि वसिष्ठ ने कहा— वत्स तुम्हारे घर में पत्नी और भृत्य सुख से है न ? आपका पुण्य कर्मों तथा अग्निहोत्र सुख पूर्वक चल रहा है न ? आपका शरीर निरोग तो है न ? धर्म का पालन करते हो न ?॥२१-२२॥ इस तरह से कहने के बाद महाप्राज्ञ महर्षि ने पुनः ब्राह्मण से कहा द्विजोत्तम ! मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ॥२३॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह से उस ब्राह्मण से कहकर महर्षि चुप हो गये । उसके बाद महाभाग मुनियों में श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठ से ॥२४॥ उस ब्राह्मण ने तपस्वियों में श्रेष्ठ महात्मा वसिष्ठ से कहा हे भगवन् ! मैं जिसलिए आपके पास आया हूँ उसे बतलाता हूँ आप सुनें ॥२५॥ मुझे किस कारण से दरिद्रता है और

तत्सर्वं हि समाचक्ष्व सर्वसन्देहनाशकम्। मुक्तिदाताभवस्य त्वं मम संसारबन्धनात् ॥२८॥

वसिष्ठ उवाच

पुत्रो मित्रं तथा भ्राता अन्ये स्वजनबान्धवाः ।
पञ्च भेदास्तु सम्बन्धाः पुरुषस्य भवन्ति ते ॥२९॥
ते ते सुमनया प्रोक्ताः पूर्वमेव तवाग्रतः। ऋणसम्बन्धिनः सर्वे ते कुपुत्रा द्विजोत्तम ! ॥३०॥
पुत्रस्य लक्षणं पुण्यं तवाग्रे प्रवदाम्यहम् । पुण्यप्रसक्तो यस्यात्मा सत्यधर्मरत:सदा ॥३१॥
शुद्धिमाञ्ज्ञानसम्पन्नस्तपस्वी वाग्विदांवरः । सर्वकर्मसु संवीतो वेदाध्ययनतत्परः ॥३२॥
सर्वशास्त्रप्रवेदी च देवब्राह्मणपूजकः । याज्ञिकः सर्वयज्ञानां दाता त्यागी प्रियंवदः ॥३३॥
विष्णुध्यानपरो नित्यं शान्तो दान्तः सुहृत्सदा ।
पितृमातृपरो नित्यं सर्वस्वजनवत्सलः ॥३४॥
कुलस्य तारको विद्वान्स्वकुलस्य च पोषकः ।
एवं गुणैस्तु संयुक्त:सुपुत्रः सुखदायकः ॥३५॥
अन्ये सम्बन्धयुक्ताश्च शोकसन्तापकारकाः । उदासीनेन किं कार्यं फलहीनेन तेऽनघ ॥३६॥
आयान्ति यान्ति ते सर्वे दुःखं दत्त्वा सुदारुणम् ।
पुत्ररूपेण ते सर्वे संसारे द्विजसत्तम ॥३७॥
पूर्वजन्मकृतं कर्म यत्त्वया परिपालितम् । तत्सर्वं हि प्रवक्ष्यामि श्रूयतामद्भुतं पुनः ॥३८॥
भवाञ्छूद्रो महाप्राज्ञ ! पूर्वजन्मनि नान्यथा । कृषिकर्त्ता ज्ञानहीनो महालोभेन संयुतः ॥३९॥

किस कारण से मुझको पुत्र का सुख नहीं है ? हे तात ! यह सब किस कारण से है ? इस बात को आप मुझे बतलाएँ ॥२६॥ हे तात ! मैं महामोह से मोहित हूँ मेरी पत्नी ने मुझे समझाया, उसी ने मुझे आपके पास भेजा है ॥२७॥ समस्त सन्देहों का विनाश करने वाली इन सारी बातों को आप बतलाएँ । आप मुझे संसार के बन्धन से मुक्ति प्रदान करें ॥२८॥ **महर्षि वसिष्ठ ने कहा—** पुत्र, मित्र, भाई तथा दूसरे बान्धव पाँच प्रकार के सम्बन्ध के कारण होते हैं ॥२९॥ उन सबों को सुमना ने तुमको बतलाया ही है । ऋण सम्बन्धी जितने पुत्र होते हैं वे कुपुत्र होते हैं ॥३०॥ मैं पवित्र पुत्र का लक्षण तुम्हें बतलाता हूँ। जिसका मन सदा पुण्यकर्मों में लगा रहता है तथा जो सत्य धर्म का पालन करता है ॥३१॥ शुद्धि से युक्त रहने वाला, ज्ञानी, तपस्वी, बोलने वालों में श्रेष्ठ, सभी कर्मों में चतुर, वेदाध्ययन करने वाला ॥३२॥ समस्त शास्त्रों को जानने वाला, देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करने वाला, सभी यज्ञों को करने वाला, दान देने वाला, त्यागी और प्रिय बोलने वाला ॥३३॥ सदा भगवान् विष्णु का ध्यान करने वाला, शान्त, दान्त, सुन्दर हृदय वाला, माता-पिता की सेवा करने वाला और अपने समस्त लोगों के प्रति वात्सल्य प्रदर्शित करने वाला ॥३४॥ अपने वंश का उद्धार करने वाला, विद्वान तथा अपने वंश का पोषण करने वाला इन सभी गुणों से जो सम्पन्न होता है, वही सुख देने वाला सुपुत्र है ॥३५॥ हे अनघ ! दूसरे सम्बन्ध युक्त पुत्र तो शोक तथा सन्ताप प्रदान करने वाले ही होते हैं । फलहीन उदासीन पुत्र से भी कौन सा लाभ है ?॥३६॥ वे सब आते हैं और भयङ्कर दुःख देकर चले जाते हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! वे पुत्र के रूप में आते हैं ॥३७॥ पूर्व जन्म में जो आपने कर्म करके एकत्रित किया है उन सभी कर्मों को मैं बतलाता

एकभार्यः सदाद्वेषी बहुपुत्रो ह्यदत्त्वान्। धर्मं नैव विजानासि सत्यं च परिनिष्ठितम् ॥४०॥
दानं नैव त्वया दत्तं शास्त्रं नैव परिश्रुतम् । कृतं नैव त्वया तीर्थं न च यात्रा महामते ॥४१॥
एवं कृतस्त्वया विप्र कृषिमार्गःपुनःपुनः । पशूनां पालनं पूर्वं गच्छंश्चैव द्विजोत्तम ! ॥४२॥
महिषीणां तथाश्वीनां पालनं च पुनः पुनः । एवं पूर्वं कृतं कर्म त्वयैव च द्विजोत्तम ! ॥४३॥
विपुलं तु धनं तद्वल्लोभेन परिसञ्चितम्। तस्य व्ययस्तु पुण्येन न कृतस्तु त्वया कदा ॥४४॥
पात्रे दानं न दत्तं हि दृष्ट्वा वा दुर्बलं च तत् ।
कृषिं कृत्वा न दत्तं तु भवता धनमेव हि ॥४५॥
गोमयं हि त्विदं सर्वं पशूनां सञ्चयं च वै। विक्रीय च धनं विप्र सञ्चितं विपुलं त्वया ॥४६॥
तक्रं घृतं तथा क्षीरं विक्रीतं सततं दधि। दुष्कालश्चिन्तितो विप्र ! मोहितो विष्णुमायया॥४७॥
कृत्वा महार्घमेवैतद्धनं ब्राह्मणसत्तम। निर्दयेन त्वया दानं न दत्तं तु तदा किल ॥४८॥
देवानां पूजनं विप्र ! भवता न कृतं कदा। पर्वाणि प्राप्य विप्रेभ्यो द्रव्यं नैव समर्पितम् ॥४९॥
श्राद्धकालं च सम्प्राप्य श्रद्धया न कृतं त्वया ।
भार्या वदति ते साध्वी दिनमध्ये समागते ॥५०॥
श्वशुरश्राद्धकालश्च श्वश्र्वाश्चैव महामते। तच्छ्रुत्वा तद्वचस्तेषां गृहं त्यत्तवा पलायसे ॥५१॥
धर्ममार्गो न दृष्टो हि श्रुतो नैव कदा त्वया ।
लोभो माता पिता भ्राता लोभः स्वजनबान्धवाः ॥५२॥
पालितो लोभ एवैकस्त्यत्तवा धर्मं सदैव हि ।
तस्माद्दुःखी भवाञ्जातो दारिद्र्येणातिपीडितः ॥५३॥

हूँ, उन अद्भुत कर्मों को तुम सुनो ॥३८॥ आप पूर्व जन्म में शूद्र थे । आप कृषि करने वाले, अज्ञानी और महालोभी थे ॥३९॥ तुम्हारी एक ही पत्नी थी लोगों से तुम सदा द्वेष करते थे तुम्हारे अनेक पुत्र थे और किसी को तुमने दान नहीं दिया । तुम धर्म और सत्य को जानते ही नहीं थे ॥४०॥ तुमने दान भी नहीं दिया और न शास्त्रों का श्रवण किया । हे महामते ! तुमने तीर्थ यात्रा भी नहीं की ॥४१॥ हे विप्र! आपने बार-बार कृषि कर्म को किया आपने पूर्व जन्म में पशुओं का पालन भी किया ॥४२॥ तुमने भैंस तथा घोड़ियों का बार-बार पालन किया । हे द्विजोत्तम ! पूर्वजन्म में ऐसा ही कर्म तुमने किया है ॥४३॥ लोभ के कारण तुमने विपुल मात्रा में सम्पत्ति एकत्रित की, किन्तु उसका पुण्य कर्मों में व्यय नहीं किया॥४४॥ तुमने किसी योग्य पात्र को अथवा किसी दुर्बल व्यक्ति को देखकर भी दान नहीं दिया । आपने कृषि करके धन का भी दान किसी को नहीं दिया ॥४५॥ हे विप्र ! तुमने पशुओं के गोबर को भी बेचकर धन एकत्रित किया ॥४६॥ तुम सदा मट्ठा, घी, दूध तथा दधि को बेचते रहे । हे विप्र ! तुम भगवान् विष्णु की माया से मोहित थे । दुष्काल को देखकर तुमने मँहगे मूल्य पर बेंचकर धन इकट्ठा किया । निर्दय होने के कारण तुमने दान नहीं दिया ॥४७-४८॥ तुमने कभी देवताओं की पूजा भी नहीं की और पर्वों के समय पर तुमने ब्राह्मणों को दान भी नहीं दिया ॥४९॥ श्राद्ध करने के समय तुमने श्रद्धा पूर्वक श्राद्ध भी नहीं किया । तुम्हारी साध्वी पत्नी अपनी सासु तथा श्वसुर का श्राद्ध करने के लिए कहती थी तो तुम घर छोड़कर भाग जाते थे ॥५०-५१॥ तुमने कभी धर्म का रास्ता न तो देखा और न उसको कभी सुना । तुम्हारे माता-

दिने दिने महातृष्णा हृदये ते प्रवर्तते । यदा यदा गृहे द्रव्यं वृद्धिमायाति ते सदा ॥५४॥
तृष्णाया दह्यमानस्तु तदा त्वं वह्निरूपया । रात्रौ वा त्वं प्रसुप्तस्तु लोभं चिन्तयसेऽधिकम्॥५५॥
दिनं प्राप्य महामोहैर्व्यापितो हि सदैव हि । सहस्रलक्षतःकोटिःकदावार्बुदमेव च ॥५६॥
भाविष्यति कदा खर्वो निखर्वश्चाथ मे गृहे ।
एवं सहस्रलक्षं च कोटिरर्बुदमेव च ॥५७॥
खर्वो निखर्वःसञ्जातस्तृष्णा नैव प्रगच्छति । एवं कालं परित्यज्य वृद्धिमायाति सर्वदा ॥५८॥
नैव दत्तं हुतं विप्र भुक्तं नैव कदा त्वया। निश्चितं भूमिमध्ये तत्क्षिप्तं पुत्रा न जानते ॥५९॥
अन्यमेवमुपायं तु द्रव्यागमनकारणात् । कुरुषे सर्वदा विप्र लोकान्पृच्छसि बुद्धिमान्॥६०॥
खनित्रमञ्जनंवादं धातुवादमतःपरम् । पृच्छमानो भ्रमस्येकतृष्णाया परिमोहितः ॥६१॥
सर्वांश्चिन्तयसे नित्यं कल्पान्सिद्धिप्रदायकान् ।
प्रवेशं चित्रवर्णानां चिन्तामणिं च पृच्छसि ॥६२॥
तृष्णानलेन दग्धोऽसि सुखंनैव प्रगच्छसि। तृष्णानलप्रदीप्तोऽसि हाहाभूतोऽप्रचेतनः॥६३॥
एवं भूतोऽसि विप्रेन्द्र गतस्त्वं कालवश्यताम् ।
दारपुत्रेषु तद्द्रव्यं पृच्छमानेषु वै त्वया ॥६४॥
कथितं नैव तद्दत्तं प्राणांस्त्यक्त्वा गतो यमम् ।
एवं सर्वं मया ख्यातं वृत्तान्तं तव पूर्वकम् ॥६५॥

पिता, स्वजन भाई तथा बन्धु सव कुछ लोभ ही था ॥५२॥ तुमने धर्म का त्याग करके केवल लोभ का ही पालन किया । इसी कारण तुम दारिद्र्य से अत्यन्त पीड़ित दुःखी हो गये ॥५३॥ जब-जब तुम्हारे घर में द्रव्य आता था, तब-तब तुम अग्नि स्वरूपिणी लालच से जलते जाते थे । रात में सोकर भी तुम लोभ की ही चिन्ता करते थे ॥५४-५५॥ दिन होते ही तुम सोचते थे कि मुझको कब हजार, दश हजार, एक लाख अथवा दश लाख या एक अरव की सम्पत्ति मिल जायेगी । एक खरब, या दश खरब या हजार लाख, या करोड़ अरब की सम्पत्ति कव मिलेगी ॥५६-५७॥ खरब तथा निखर्ब (दश खर्व) की सम्पत्ति हो जाने पर भी तुम्हारी लालच कम नहीं हुयी । इसी तरह से समय से तुम्हारी वृद्धि होती रही ॥५८॥ किन्तु तुमने कभी भी उस सम्पत्ति का न तो दान दिया और न स्वयं तुमने उसका भोग किया । उसको तुमने जमीन खोदकर गाड़ दिया । उसको तुम्हारे पुत्र भी नहीं जान पाये ॥५९॥ तुम द्रव्य प्राप्ति के दूसरे ही उपायों को करते रहे और धन प्राप्ति के उपायों को लोगों से तुम पूछते रहते थे ॥६०॥ उसके बाद कुदाल से खोदकर आँखो में सिद्धाञ्जन लगाकर तथा धातुवाद के माध्यम से धन प्राप्ति के साधन को पूछते हुए लालच से मोहित होकर तुम घूमते रहे ॥६१॥ तुम सदैव सिद्धि प्रदान करने वाले उपायों का चिन्तन करते रहते थे । अद्भुत वर्णों में प्रवेश के विषय में तथा चिन्तामणि के विषय में तुम पूछते थे ॥६२॥ तुम सदा लालच की अग्नि से जलते रहते थे तुमको कभी सुख नहीं मिलता था । तृष्णा की आग में जलते हुए हाय ! हाय !! करते हुए तुम घूमते रहते थे ॥६३॥ हे ब्राह्मण ! इस तरह से आचरण करते हुए तुम्हारी मृत्यु हो गयी । तुम्हारी पत्नी और पुत्र जब सम्पत्ति के विषय में पूछते थे तुमने उन लोगों को भी नहीं बतलाया और न दिया इसके बाद तुम यमलोक में चले गये । इस तरह से मैंने तुम्हारे सम्पूर्ण

अनेन कर्मणा विप्र दरिद्रोऽपि च निर्धनः। संसारे यस्य सत्पुत्रा भक्तिवन्तःसदैव हि॥६६॥
सुशीला ज्ञानसम्पन्नाःसत्यधर्मरताः सदा। सम्भवन्ति गृहे तस्य यस्य विष्णुः प्रसीदति॥६७॥
धनं धान्यं कलत्रं तु पुत्रपौत्रमनन्तकम्। स भुङ्क्ते मर्त्यलोके वै यस्य विष्णुः प्रसन्नवान्॥६८॥
विना विष्णोःप्रसादेन दाराःपुत्रा भवन्ति न। सुजन्म च कुले विप्र तद्विष्णोःपरमंपदम्॥६९॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वैशाखमाहात्म्ये देवशर्मोपाख्याने एकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

नबेवाँ अध्याय

देवशर्मोवाच

पूर्वजन्मकृतं पापं त्वयाऽऽख्यातं ममैव तत्।
शूद्रत्वेन हि विप्रेन्द्र मयैवं धनमर्जितम्॥१॥

विप्रत्वं हि मया प्राप्तं तत्कथं द्विजसत्तम। तत्सर्वं कारणं ब्रूहि ज्ञानविज्ञानपण्डित !॥२॥
दुर्ल्लभं भारतेवर्षे जन्म तस्मान्मनुष्यता। मानुष्ये ब्राह्मणत्वं च सुतरां सत्कुलोदितम्॥३॥
तत्रापीदृग्विधा भार्या सर्वज्ञा प्रियवादिनी। सती सर्वगुणोपेता दुर्लभा सा कुतोऽभवत्॥४॥

पूर्वजन्म के वृत्तान्त को बतला दिया ॥६४-६५॥ हे विप्र ! इसी प्रकार के कर्मों के कारण दरिद्र और निर्धन हुए हो। संसार में जिसके भक्ति से युक्त सत्पुत्र हैं ॥६६॥ सुशील, ज्ञानी, सत्यधर्म का पालन करने वाले हैं, उस पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं ॥६७॥ जिस पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते है, वह मनुष्य मर्त्यलोक में धन, धान्य, पत्नी, पुत्र तथा पौत्र आदि के सुख का भोग करता है ॥६८॥ भगवान् विष्णु की कृपा के बिना पत्नी और पुत्र की प्राप्ति नहीं होती है। न तो सुन्दर वंश में जन्म होता है और भगवान् विष्णु के परम पद की प्राप्ति भी नहीं होती है ॥६९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के वैशाख माहात्म्य के अन्तर्गत देवशर्मोपाख्यान का नवासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥८९॥

देवशर्मा के विप्रत्व प्राप्ति के कारण का वर्णन

देवशर्मा ने कहा— हे विप्र ! आपने मेरे पूर्वजन्म के पापों का वर्णन किया। विप्र शूद्र होकर मैंने इस प्रकार से धन कामाया ॥१॥ हे ज्ञान विज्ञान पण्डित ! आप इसका कारण बतलाइये कि मैं शूद्र से ब्राह्मण कैसे हो गया ?॥२॥ भारतवर्ष में जन्म होना ही दुर्लभ है उसमें भी मनुष्य होना और दुर्लभ है, मनुष्यों में ब्राह्मणों के सद्वंश में जन्म होना अत्यन्त दुर्लभ है ॥३॥ उसमें भी इस तरह की सर्वज्ञ, प्रिय बोलने वाली, सती साध्वी, समस्त गुणों से युक्त पत्नी का प्राप्त होना और दुर्लभ है यह कैसे हो गया?॥४॥ **महर्षि वशिष्ठ ने कहा—** हे विप्र ! आपने जिस पुण्य कर्म को किया है, उसे मैं बतलाता

वशिष्ठ उवाच

यत्त्वया चेष्टितं पूर्वं धर्मकर्मकृतं द्विज। तदहं सम्प्रवक्ष्यामि श्रूयतां यदि मन्यसे ॥५॥
ब्राह्मणोऽभूत्सुधर्मात्मा सदाचारः सुपण्डितः ।
विष्णुभक्तस्तु धर्मात्मा नित्यं विष्णुपरायणः ॥६॥
स्नानार्थमपि तीर्थानां भ्रमत्येकःस मेदिनीम् ।
अटमानः समायातस्तवगेहे महामतिः ॥७॥
तस्य दर्शनमात्रेण समुत्पन्ना सुधीस्तव। यतो धर्मगते गेहे सतामागमनं भवेत्॥८॥
किं किं न लभ्यते विप्र ! विप्रवैष्णवसेवया ।
दुर्ल्लभं यच्च लोके स्यान्मोक्षस्थानमपि स्थिरम् ॥९॥
याचितं स्थानमेकं वै वासार्थं तेन सत्तम। तवैव भार्यया दत्तं त्वया च सहपुत्रकैः ॥१०॥
एयतामेयतां ब्रह्मन्सुखेन च गृहे ममः। वैष्णवं ब्राह्मणं पुण्यमित्युवाच पुनःपुनः ॥११॥
सुखेन स्थीयतामत्र वेश्मेदं तव सुव्रत। अद्य धन्योऽस्म्यहं पुण्योऽस्म्यद्य तीर्थमहं गतः॥१२॥
अद्य तीर्थफलं प्राप्तं मया ते विप्रदर्शनात्। गवां स्थानं परं पुण्यं वासस्थानं प्रदर्शितम् ॥१३॥
अङ्गसंवाहनं सम्यक्पादौ चैव प्रमर्दितौ । क्षालितौ च पुनस्तोयैः स्नातःपादोदकेन हि ॥१४॥
सद्यो घृतं दधिक्षीरमन्यमन्यं प्रदत्तवान्। ब्राह्मणाय तदा तस्मै त्वं तथाऽदृष्टनोदितः ॥१५॥
एवं सन्तोषितो विप्रस्त्वयैव सह भार्यया। पुत्रैःसार्धं महाभागो वैष्णवो ज्ञानपण्डितः ॥१६॥
अथ प्रभाते विमले स्नानार्थं मासि माधवे। गङ्गां तु गच्छता तेन तुष्टेन दयया किल ॥१७॥

हूँ, तुम्हें यदि विश्वास है तो सुनो ॥५॥ एक सदाचरण करने वाले तथा ज्ञानी सुधर्मा नामक ब्राह्मण थे। वे भगवान् विष्णु के भक्त, धर्मात्मा तथा सदैव भगवान् विष्णु की भक्ति में लगे रहते थे ॥६॥ वे तीर्थों में स्नान करने के लिए पृथिवी पर भ्रमण कर रहे थे। वे भ्रमण करते हुए तुम्हारे घर आये ॥७॥ उनका केवल दर्शन करके तुममें सुन्दर बुद्धि (सद्‌बुद्धि) उत्पन्न हो गयी, क्योंकि जिसके घर मे धर्म का आगमन हो जाता है या सज्जन पुरुष घर में आ जाते हैं उसकी सद्‌बुद्धि हो जाती है ॥८॥ हे विप्र ! वैष्णव की सेवा करने से किस वस्तु की प्राप्ति नहीं हो जाती है ? संसार की दुर्लभ वस्तु के साथ-साथ मोक्ष की भी प्राप्ति हो जाती है ॥९॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! उन्होंने अपने रहने के लिए स्थान की याचना की तुमने अपनी पत्नी और पुत्रों के साथ उन्हें रहने के लिए स्थान प्रदान करते हुए कहा— हे ब्रह्मन् ! आप सुख पूर्वक मेरे घर आइये, इस तरह से तुमने उस वैष्णव ब्राह्मण से बार-बार कहा ॥१०-११॥ आप यहाँ सुख पूर्वक ठहरें, यह आपका ही घर है। आज मैं धन्य हो गया और आज मैंने तीर्थ यात्रा कर ली ॥१२॥ हे ब्राह्मण! आपके दर्शन से मुझे तीर्थ का फल प्राप्त हो गया। तुमने अत्यन्त पवित्र गोशाला का स्थान दिखाया ॥१३॥ तुमने उनके शरीर को दबाया और उनके पैरों को दबाया। उसके बाद तुमने उनके दोनों पैरों को धोया और उसी से तुमने स्नान भी कर लिया ॥१४॥ तुमने उनको शीघ्र ही दूध, दही, घी तथा दूसरी वस्तुओं को प्रदान कीं। तुमने अपने पुण्यादृष्ट के द्वारा प्रेरित होकर इन सारी वस्तुओं को उन्हें प्रदान किया ॥१५॥ इस तरह से तुमने अपनी पत्नी तथा पुत्रों के साथ उन ब्राह्मण को सन्तुष्ट कर दिया। उसके बाद प्रातःकाल होने पर गङ्गाजी में स्नान करने के लिए वैशाख के महीने में जाते हुए उस ब्राह्मण ने दया

वैशाखस्नानमाहात्म्यमुपदिष्टं तवाग्रतः । कारितस्तु यथान्यायं सभार्यातनयो भवान् ॥१८॥
यथा न वारिधिसमो लोके कोऽपि जलाशयः ।
तथा मासो न वैशाखसदृशो माधवप्रियः ॥१९॥
तावत्पापानि तिष्ठन्ति निष्प्रत्यूहं कलेवरे । यावत्कलिमलध्वंसी मासो नैति स माधवः ॥२०॥
तस्य वाक्यं समाकर्ण्य वैशाखे सेवनं कृतम् ।
तुष्टेन मनसा विप्र पूजितो मधुसूदनः ॥२१॥
अवशिष्टदिनान्येव पञ्चमासस्य तस्य वै। एकादशीं समारभ्य स्नानं च विधिवत्कृतम्॥२२॥
ब्राह्मणस्य प्रसङ्गेन रेवायां तु दिने त्वया । प्रातःस्नानं कृतं विप्र ! वैशाखे मासि तावता॥२३॥
पूजितो देवदेवेशो मधुहा परमेश्वरः। नैवाप्तः सकलो मासः स्नानार्थं तव पूर्वतः॥२४॥
एवं स्नानं त्वया चीर्णमपि पञ्च दिनात्कम्। तेन पुण्येन सङ्गत्या ब्राह्मणस्य विशेषतः ॥२५॥
गोविन्दस्य प्रसादेन त्वं तु ब्राह्मणतां गतः। त्वया तन्मासयोगेन प्राप्तमेतन्महत्कुलम् ॥२६॥
दुर्ल्लभं भूमिदेवानां सत्यधर्मसमन्वितम् ।
भार्याऽपि सुमती प्राप्ता साध्वी सर्वगुणान्विता ॥२७॥
च्यवनस्य गृहोत्पन्ना सर्वज्ञा ब्रह्मवादिनी। रूपमेव परस्त्रीणां भूषणं च महामुने ॥२८॥
शीलमेवं द्वितीयं च तृतीयं सत्यमेव च । सदार्यत्वं चतुर्थं तु पञ्चमं पुण्यमुत्तमम् ॥२९॥
मधुरत्वं तथा षष्ठं शुद्धत्वं सप्तमं महत् । बाह्यन्तः सततं स्त्रीणां सर्वाभरणसत्तमम्॥३०॥
अष्टमं तु पतौ भावः शुश्रूषा नवमं किल। सहिष्णुता च दशमं रतिरेकादशं तथा ॥३१॥

करके तुम्हें वैशाख मास के माहात्म्य को सुनाया और पत्नी और पुत्रों के साथ आपसे उन ब्राह्मण ने नियमों को कराया भी ॥१६-१८॥ उन्होंने बतलाया कि जिस तरह समुद्र के समान कोई भी जलाशय नहीं है, उसी तरह वैशाख के समान श्रीभगवान् को कोई दूसरा महीना भी प्रिय नहीं है ॥१९॥ शरीर में तब तक ही सारे पाप शान्ति पूर्वक बने रहते हैं जब तक कि कलि के पापों को विनष्ट करने वाला वैशाख का महीना नहीं आता है ॥२०॥ उस ब्राह्मण के वाक्य को सुनकर सन्तुष्ट मन से आपने वैशाख महीने में भगवान् मधुसूदन की पूजा की ॥२१॥ उस महीने के अन्तिम एकादशी से लेकर पूर्णिमा तक अपने विधि पूर्वक स्नान किया ॥२२॥ उस ब्राह्मण के प्रसङ्ग से आपने वैशाख के महीने में रेवा नदी में प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान किया ॥२३॥ तुमने देवताओं के भी स्वामी भगवान् मधुसूदन की आराधना की । तुमने पूर्व जन्म में सम्पूर्ण महीने भर स्नान नहीं किया ॥२४॥ इस तरह से तुमने पाञ्च दिनों का स्नान व्रत किया। उस पुण्य के कारण तथा ब्राह्मण की सङ्गति के कारण भी ॥२५॥ श्रीभगवान् गोविन्द की कृपा से तुम ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लिए । उस महीने के योग से ही तुमने महान् वंश को प्राप्त किया है ॥२६॥ सत्य धर्म से युक्त ब्राह्मणों का वंश दुर्लभ है और तुमने सुन्दर बुद्धि वाली पत्नी को भी प्राप्त किया॥२७॥ यह महर्षि च्यवन के घर में ब्रह्मवादिनी के रूप में उत्पन्न हुयी है । हे महामुने ! स्त्रियों का सबसे बड़ा भूषण उनका रूप ही होता है ॥२८॥ दूसरा भूषण शील है, तीसरा सत्य है, हमेशा ऋजुता चौथा गुण है, पाञ्चवाँ उत्तम गुण माधुर्य है, छठा गुण शुद्धि है, सातवाँ आभ्यन्तर और ब्राह्य शुद्धि नारियों की सबसे बड़ा भूषण है । आठवाँ गुण पति की भक्ति है, नवाँ गुण पति की सेवा है, दशवाँ गुण सहिष्णुता है,

पतिव्रतत्वं विप्रेन्द्र ! द्वादशं योषितास्मृतम् । एतैःसम्भूषिता भार्या साध्वी ते ब्रह्मवादिनी ॥३२॥
वैशाखस्नानयोगेन लब्धा पुण्येन सादरम् । किं किं न दुर्ल्लभतरं प्राप्यते मासि माधवे ॥३३॥
स्नानेन परमेशस्य पूजनेन यथाविधि। अथ मोहप्रमुग्धोऽसि तृष्णया व्यापितं मनः ॥३४॥
पूर्व जन्मनि ते विप्र द्रव्यमेव प्रसञ्चितम् । न दत्तं ब्राह्मणेभ्यो हि दीनेष्वन्येषु वै त्वया ॥३५॥
न बन्धुवर्गेनोपुत्रदारेषु च कथञ्चन । म्रियमाणेन भवता लोभ एव हि चिन्तितः ॥३६॥
न दत्तं न हुतं जप्तं न तीर्थे मरणं कृतम्। न हि नारायणो देवो ध्यातो वाखिलपापहा॥३७॥
द्रव्येषु विद्यमानेषु कृपणो जायते नरः । अदत्त्वा म्रियते यस्तु ततो दुःखतरं नु किम् ॥३८॥
तीर्थस्नानादि तपसा कुले जन्मैव लभ्यते । नो दानेन बिना विप्र किञ्चिदेवोपतिष्ठति॥३९॥
तस्य पापस्य भावेन दरिद्रत्वमुपागतम्। अपुत्रवान्भवाञ्जातः सततं दुःखपीडितः ॥४०॥
वैशाखस्नानमाहात्म्यादपि पञ्चदिनात्मकात् । तदैव हरिपूजायाः सङ्गत्या ब्राह्मणस्य च॥४१॥
लब्धं जन्म कुले विप्र ! विप्रत्वमपि दुर्ल्लभम् ।
सुपुत्रश्च कुलं विप्र धनं धान्यं वरस्त्रियः ॥४२॥
सुजन्ममरणञ्चैव सुभोगः सुखमेव च। सदा दानेऽधिकाबुद्धिरौदार्यं धैर्यमुत्तमम्॥४३॥
प्रसादात्तस्य देवस्य विष्णोश्चैव महात्मनः। नारायणस्य जायन्ते सिद्धयो विप्रवाञ्छिताः ॥४४॥
ऊर्जे मासि तपो मासि माधवे माधवप्रिये । स्नात्वा दामोदरं भक्त्या माधवं मधुसूदनम् ॥४५॥

ग्यारहवाँ गुण पति से प्रेम करना है ॥२९-३१॥ हे विप्रेन्द्र ! बारहवाँ गुण पतिव्रता होना है । नारियों के ये बारह गुण हैं । आपकी इस ब्रह्मवादिनी पत्नी में सभी गुण विद्यमान हैं ॥३२॥ उसमें ये सभी गुण वैशाख स्नान की महिमा से आये हैं । कौन सी ऐसी दुर्लभ वस्तु है जो वैशाख मास में स्नान करने से तथा श्रीहरि की पूजा करने से नहीं प्राप्त होती हैं आप मोह के कारण अत्यन्त मोहित हो गये हैं, आपका मन तृष्णा से व्याप्त है ॥३३-३४॥ हे विप्र ! आपने पूर्व जन्म में केवल द्रव्यों का ही संचय किया है, तुमने दीनों तथा ब्राह्मणों को दान नहीं दिया है ॥३५॥ आपने बान्धवों और पुत्रों को भी नहीं दिया है । मृत्यु के समय में भी आप केवल लोभ की ही चिन्ता करते थे ॥३६॥ तुमने दान, होम, तीर्थ में जाकर मृत्यु न किया । सभी पापों को विनष्ट करने वाले भगवान् नारायण का तुमने ध्यान भी नहीं किया ॥३७॥ यदि द्रव्य के रहने पर भी मनुष्य कृपण हो जाय और दान किए बिना ही यदि वह मर जाय तो उसके लिए इससे अधिक दुःखद कौन सी बात होगी ॥३८॥ विप्र ! तीर्थ में स्नान आदि तपस्या से सद्वंश में जन्म होता हे, किन्तु दान किए बिना किसी वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है ॥३९॥ उसी पाप की भावना से आप दरिद्र, पुत्र हीन और दुःखी हो गये हैं ॥४०॥ वैशाख मास के अन्तिम पाञ्च दिनों में स्नान की महिमा, श्रीहरि की पूजा तथा ब्राह्मण की सङ्गति के कारण आपका ब्राह्मण वंश में जन्म हुआ और आपने दुर्लभ विप्रत्व भी प्राप्त किया है । हे विप्र ! भगवान् विष्णु की कृपा से ही सुपुत्र, सुन्दर वंश, और धन-धान्य की प्राप्ति तथा श्रेष्ठ स्त्री की प्राप्ति होती है । सुन्दर जन्म मिलता है, सुन्दर मृत्यु होती है, सुन्दर भोगों की प्राप्ति होती है और सुख की प्राप्ति होती है । निरन्तर दान करने की बुद्धि होती है उदारता आती है तथा अभिप्रेत सिद्धियों की प्राप्ति होती हैं ॥४१-४४॥ कार्तिक के महीने में, माघ के महीने में तथा भगवान् माधव को प्रिय वैशाख के महीने में स्नान करके भक्ति पूर्वक भगवान् मधुसूदन की पूजा करके

विशेषेण समभ्यर्च्य दत्त्वा दानानि भक्तितः।
ऐहिकं सुखमासाद्य जनो याति ततो हरिम् ॥४६॥
अनेकजन्मार्जित पातकावली विलीयते माधवमज्जनेन ।
सूर्योदये विप्र यथा तमिस्रा वचःस्वयम्भूरिदमादिदेश ॥४७॥
चकारविष्णुर्विमलं विचारं मासं विधिं माधवमेकमादौ ।
यमस्य गुप्तं मनसा विचिन्त्य मनुष्यलोकैर्गमितुं च नाके ॥४८॥
तस्मादस्मिन्समायाते माधवे मासि माधवे। स्नात्वा पुण्यजले तीर्थे रवावनुदितेऽधुना॥४९॥
पूजयितवा विधानेन मुकुन्दं मधुसूदनम्। पुत्रपौत्रधनश्रेयो वाञ्छितानि सुखानि च॥५०॥
अनुभूय ततस्त्वन्ते स्वर्गमक्षयमाप्स्यसि। पूर्वजन्मकृतं सर्वं यत्त्वया परिचेष्टितम्॥५१॥
तन्मया कथितं विप्र ! तवाग्रेपरिचेष्टितम्। एवं ज्ञात्वा महाभाग ! वैशाखे च विशेषतः॥५२॥
स्नात्वा सम्यग्विधानेन मधुसूदनमर्चय। देवमाराध्य गोविन्दं नारायणमनामयम्॥५३॥
प्राप्स्यसि त्वं सुखं पुत्रं धनानि हरिमव्ययम् ॥५४॥

नारद उवाच

ब्रह्मात्मजेनापि महानुभावः स विप्रवर्यः परिबोधितो हि ।
हर्षेण युक्तः स महानुभावो भक्त्या वसिष्ठं प्रणिपत्य तत्र ॥५५॥
आमन्त्र्य विप्रं स जगाम गेहं तां प्राह भार्यां सुमनां महर्षिः ।
सर्वं हि वृत्तं मम पूर्वचेष्टितं तेनैव विप्रेण तव प्रसादात् ॥५६॥
भद्रे ! वसिष्ठेन विकाशनीतमद्यैव मोहः परिनाशितो मे ।
आराधयिष्ये मधुसूदनं ते श्रीमाधवे मासि निमज्ज्य भक्त्या ॥५७॥

तथा भक्ति पूर्वक दान देकर मनुष्य लौकिक सुखों को प्राप्त करके श्रीहरि के लोक में जाता है ॥४५-४६॥ वैशाख मास में स्नान करने से अनेक जन्मों के पाप समूह उसी तरह से विनष्ट हो जाते हैं जिस तरह सूर्योदय होने से रात्रि विलीन हो जाती है इस बात को ब्रह्माजी ने कहा है ॥४७॥ सर्वप्रथम भगवान् विष्णु ने यम से गुप्त रखकर मन में विचार करके मनुष्यों के स्वर्ग जाने के साधन रूप से केवल माधव (वैशाख) मास का ही विचार किया ॥४८॥ अतएव इस वैशाख के महीने के आने पर सूर्योदय से पहले पवित्र जल में स्नान करके ॥४९॥ विधि पूर्वक भगवान् मुकुन्द की पूजा करके, पुत्र, पौत्र, धन तथा कल्याण तथा अभिप्रेत सुखों का अनुभव करके आप अन्त में अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करेंगे । पूर्व जन्म में आपने जिन कर्मों को किया है सबों को ॥५०-५१॥ मैंने आपको बतला दिया । इस बात को जानकर विप्र ! विशेष रूप से वैशाख के महीने में ॥५२॥ विधि पूर्वक स्नान करके आप भगवान् मधुसूदन की पूजा करें । अनामय भगवान् नारायण की आराधना करके आप सुख, पुत्र, धन तथा श्रीभगवान् को प्राप्त करेंगे ॥५३-५४॥ **नारदजी ने कहा**— ब्रह्माजी के पुत्र महर्षि वसिष्ठ के द्वारा उपदेश प्राप्त करके महानुभाव देवशर्मा महर्षि वसिष्ठ को प्रणाम करके ॥५५॥ उनसे आज्ञा लेकर अपने घर चले गये और उन्होंने अपनी पत्नी सुमना से कहा कि तुम्हारी ही कृपा से महर्षि वसिष्ठ ने मेरे सम्पूर्ण पूर्व जन्म के कर्मों को बतला दिया है । हे भद्रे ! महर्षि वसिष्ठ ने मेरे सम्पूर्ण अज्ञान को विनष्ट कर दिया है । अब मैं वैशाख मास

नारद उवाच

आकर्ण्य वाक्यं परमं पवित्रं सुमङ्गलं मङ्गलहेतुमुच्चैः ।
हर्षेण युक्ता तमुवाच कान्तं धन्योऽसि विप्रेण विवोधितस्त्वम् ॥५८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वैशाखमाहात्म्ये देवशर्मोपाख्याने नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

एकानबेवाँ अध्याय

नारद उवाच

देवशर्ममहाप्राज्ञः समं सुमनया तया । तीर्थे कनखले पुण्ये गङ्गायामतिविश्रुते ॥१॥
वैखाखे विधिना स्नानं चक्रे मेषस्थिते रवौ ।
पूजयामास विधिवन्मधुसूदनमच्युतम् ॥२॥
यमैः सनियमैर्युक्तःशक्त्या किञ्चिद्ददौ ततः। हविष्यभुग्भूमिशायी ब्रह्मचर्यव्रतस्थितः ॥३॥
कृच्छादितपसा क्षामो ध्यायन्नारायणं हृदि ।
तत्र प्राप्य स वैशाखीं दत्त्वा मधु तिलादिकम् ॥४॥
विप्रेभ्यो भोजनं दत्त्वा भक्त्या धेनुं सदक्षिणाम् ।
अच्छिद्रं प्रार्थयामास तत्र स्नानस्य भूसुरान् ॥५॥

में स्नान करके भगवान् मधुसूदन की भक्ति पूर्वक आराधना करूँगा ॥५६-५७॥ **नारदजी ने कहा—** उस अत्यन्त पवित्र तथा मङ्गलमय तथा श्रेष्ठ मङ्गल प्रदान करने वाली वाणी को सुनकर अत्यन्त हर्षित होकर सुमना ने कहा कि महर्षि वसिष्ठ के द्वारा उपदिष्ट होकर आप धन्य हो गये हैं ॥५८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के वैशाख माहात्म्य के अन्तर्गत देवशर्मोपाख्यान के नब्बेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९०॥

भगवान् विष्णु की प्रसन्नता से देवशर्मा और सुमना को पुत्र की प्राप्ति

नारदजी ने कहा— महाप्राज्ञ देवशर्मा, उस सुमना के साथ लोक विख्यात तथा अत्यन्त पवित्र कनखल तीर्थ में गङ्गा में वैशाख के महीने में मेष राशि के सूर्य के होने पर विधिपूर्वक स्नान किए और उन्होंने विधिपूर्वक भगवान् मधुसूदन की पूजा की ॥१-२॥ नियमपूर्वक यमों का पालन करते हुए उन्होंने अपनी शक्ति के अनुसार दान दिया । वे हविष्य का भोजन करते थे, पृथिवी पर सोते थे और ब्रह्मचर्य का पालन करते थे ॥३॥ अपने हृदय में भगवान् नारायण का ध्यान करते हुए वे कृच्छ्रादि तपस्या करने के कारण दुर्बल हो गये थे । भक्ति पूर्वक उन्होंने ब्राह्मणों को भोजन कराया और दक्षिणा पूर्वक गोदान किया उन्होंने वैशाख पूर्णिमा के दिन मधु तथा तिल का दान दिया और ब्राह्मणों से प्रार्थना किया कि उनका वैशाख स्नान निश्छिद्र हो ॥४-५॥ साध्वी तथा सुन्दर श्रोणी वाली देवी सुमना भी पति की भक्ति करते

साऽपि साध्वी च सुश्रोणी पतिभक्तिपरायणा ।
पतिं शुश्रूषते नित्यं स्नात्वा सम्पूज्य केशवम् ॥६॥
तौ दम्पती ततो यातौ स्वगेहं साधुहर्षितम्। कृतकृत्यावथात्मानौ मन्यमानावसंशयम् ॥७॥
तेन पुण्यप्रभावेन कालेन कियता किल। बभूवुरमितास्तस्य धनधान्यानि सम्पदः ॥८॥
तनया विनयोपेताश्चत्वारःश्रुतिकोविदाः। धर्मज्ञा वैष्णवा नित्यं पितृमातृपरायणाः ॥९॥
बभूवुरमितप्रज्ञाःपुरुषार्थाय बोधिताः । विख्याता विधितत्त्वज्ञा ब्रह्मज्ञा ब्रह्मतत्पराः ॥१०॥
समग्रगुणसम्पन्नाः सम्प्रतिष्ठन्ति कीर्तयः ॥११॥
तौ दम्पती सुतसमग्रसमृद्धसौख्यं पुण्योदयं समुपयुज्य ततश्चिरेण ।
स्नानं परं परममीयतुरस्य भक्त्या श्रीमाधवे च सुकृतस्य नृप ! प्रसादात् ॥१२॥
यश्चैव माधवः साक्षाद्विद्यालक्ष्मीधवःस्मृतः । तथैव माधवो मासो मधुसूदनवल्लभः॥१३॥
इदं माधवमाहात्म्यं किञ्चित्संक्षेपतोऽनघ। मया ते कथितं वीर ! यत्पुरा च पितुःश्रुतम्॥१४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पातालखण्डे नारादाम्बरीषसंवादे वैशाखमाहात्म्ये एकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

* * *

हुए प्रतिदिन स्नान करके तथा भगवान् केशव की पूजा करके अपने पति की सेवा करती थी ॥६॥ उसके बाद वे दोनों पति-पत्नी प्रसन्नता पूर्वक अपने घर चले गयें । अब वे अपने को कृत-कृत्य मानते थे । उस पुण्य के प्रभाव से देवशर्मा को कुछ समय बाद बहुत अधिक धन सम्पत्ति की प्राप्ति हुयी ॥७-८॥ उनके नम्रता गुण सम्पन्न चार पुत्र हुए, वे वेदों के ज्ञाता, धर्मज्ञ, भगवान् विष्णु के भक्त तथा माता-पिता के भक्त थे ॥९॥ वे अत्यन्त ज्ञानी थे तथा पुरुषार्थों के बोधक थे । वे विधि शास्त्र के विख्यात ज्ञाता ब्रह्मज्ञानी तथा ब्रह्म परायण थे ॥१०॥ समस्त गुणों से सम्पन्न थे तथा उनका यश प्रतिष्ठित था ॥११॥ वे दोनों पति-पत्नी पुत्र तथा हर प्रकार की समृद्धि जन्य सुख को, तथा अपने पुण्योदय का दीर्घाकाल पर्यन्त उपभोग करके हे राजन् ! अम्बरीष भगवान् माधव की कृपा से तथा पुण्य के फलस्वरूप परमपद को प्राप्त कर लिए।॥१२॥ जिस तरह से भगवान् विद्या तथा लक्ष्मी के पति कहे गये हैं, उसी तरह से वैशाख का महीना भी भगवान् माधव को अत्यन्त प्रिय हैं ॥१३॥ हे अनघ ! मैंने आपको माधव (वैशाख) मास का संक्षेप में थोड़ा सा माहात्म्य बतलाया इसको मैंने अपने पिता ब्रह्माजी के मुख से सुना था ॥१४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के नारद अम्बरीष संवादान्तर्गत वैशाख माहात्म्य के एकानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९१॥

* * *

बानबेवाँ अध्याय

सूत उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा नारदस्य स भूपतिः ।
प्रणम्य विस्मितः प्राह चिन्तयन्मनसा हरिम् ॥१॥

अम्बरीष उवाच

कथमेतद्विमुह्यामः स्वल्पायासेन यन्मुने। शूद्रःपापसमाचारो लेभे ब्राह्मण्यमुत्तमम् ॥२॥
ब्राह्मण्यं दुर्ल्लभं तात ! सुकृतैर्विविधैरपि । कथं माधवमासस्य स्नानेनैवाप सोऽधमः ॥३॥
न यज्ञदानैर्न तपोभिरुग्रैर्न पुण्यसंज्ञैरपरैरपीशैः ।
अस्मादृशो भूषतोऽर्थवन्तो न ते लभन्तऽवनिदैवतत्वम् ॥४॥
स गाधिसूनुर्विविधं तणेऽपि चिरं विधायानिशमेव घोरम् ।
कृच्छ्रेण लेभे शतवर्षपूर्णैरहो कथञ्चिद्बहुभिः प्रयत्नैः ॥५॥
कथं सवर्णाधम एष पापः स्वधर्महीनो धनवानदाता ।
पुण्यादनायासकृतादमुष्मादल्पादिहावाप स रामतत्त्वम् ॥६॥

नारद उवाच

सत्यमुक्तं त्वया राजन्ब्रह्मण्यमतिदुर्ल्लभम्। तथापि गतयः सूक्ष्मा दुर्ज्ञेया धर्मतत्त्वतः ॥७॥
विचित्राणि च कर्माणि विचित्रा भूतभावना ।
विचित्राणि च भूतानि विचित्राः कर्मशक्तयः ॥८॥
कदाचित्सुकृतं कर्मकूटस्थं यदवापि तम्। केनचित्कर्मणा भूप ! शुभेन परिवर्धते ॥९॥
फलं ददाति सुमहत्तस्मिन्नपि न जन्मनि। धर्मो गहनसूक्ष्मोऽयं नीयते न यथा तथा ॥१०॥

वैशाख मास की महिमा और चित्रोपख्यान

सूतजी ने कहा— नारदजी की इस तरह की वाणी को सुनकर मन से श्रीहरि का ध्यान करते हुए राजा अम्बरीष ने कहा ॥१॥ **अम्बरीष ने कहा—** हे मुने ! हम कैसे जानें कि पापाचरण करने वाले शूद्र ने थोड़ा सा ही प्रयास करके ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लिया ?॥२॥ हे तात ! अनेक प्रकार के पुण्यों के द्वारा भी ब्राह्मणत्व की प्राप्ति दुर्लभ है । उसको उस शूद्र ने वैशाख मास में केवल स्नान करके कैसे प्राप्त कर लिया ?॥३॥ यज्ञ, दान, उग्र-तपस्या तथा दूसरे भी पुण्यों से हमारे जैसे राजागण श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं फिर भी ब्राह्मणत्व को नहीं प्राप्त कर पाते हैं ॥४॥ गाधि पुत्र महर्षि विश्वामित्र निरन्तर घोर तपस्या करके भी पूरे सौ वर्ष के बाद बड़े कष्ट से अनेक प्रकार के प्रयत्नों से ब्राह्मणत्व को प्राप्त किए॥५॥ और पापी, अपने धर्म से रहित धनवान् और दान नहीं करने वाला वह शूद्र अनायास किए गये अल्प पुण्य के द्वारा कैसे ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लिया ?॥६॥ **नारदजी ने कहा—** राजन् ! आपने सत्य ही कहा है कि ब्राह्मणत्व अत्यन्त दुर्लभ है, फिर भी धर्म की गतियाँ सुक्ष्म तथा बड़ी कठिनाई से जानने योग्य होती हैं ॥७॥ कर्म विचित्र होते हैं जीव की भावनाएँ भी विचित्र होती हैं, जीव भी विचित्र हैं और कर्मों की शक्तियाँ भी विचित्र हैं ॥८॥ राजन् ! जिस निर्विकार पुण्य कर्म को मनुष्य कभी करता है, वह किसी

न तस्य फलदानस्य श्रूयते कालनिश्चयः। यत्किञ्चित्सुकृतं कर्मच्छन्नं पापान्तरैरपि ।।११।।
तदागत्य कुतः क्वापि सुफलं च प्रयच्छति ।
कृतस्य नेह नाशोऽस्ति पुण्यस्य दुरितस्य च ।।१२।।
तथापि बहुभिः पुण्यैर्दुरितं याति दारुणम्। यदुक्तं भवता राजन्नायासाधिक्यतो भवेत् ।।१३।।
तत्फलं तत्र तत्रापि शृणु सत्यं मयोदितम्। अनायासमहायासौ यद्यल्पत्वमहत्त्वयोः ।।१४।।
महाव्रतास्ततस्ते स्युः सततं कर्मकादयः। सिंहव्याघ्रदिमूत्रादौ प्रयासा वहुलास्ततः ।।१५।।
पञ्चगव्यप्रशस्तत्वं व्रतमध्ये ततो भवेत्। इति कर्तव्यबाहुल्यं महत्त्वं चेत्तदल्पता ।।१६।।
जलाग्न्यादिप्रवेशस्य प्रसज्येत व्रतान्तरात्। इदमल्पं महत्त्वं तदिति नैव नियामकः ।।१७।।
फलं यथोदितं शास्त्रे यदेव स्यान्महोदयम्। यथाऽल्पनाशो महतामहन्नाशस्तथाल्पतः ।।१८।।
किं त्वल्पविस्फुलिङ्गेन तृणनाशः प्रदृश्यते ।
अजामिलोऽपि भूपाल ! दास्याः पतिरिति स्मृतः ।।१९।।
धर्मपत्नी परित्यागी नित्यं पापपथि स्थितः। म्रियमाणः सुताह्वानं चक्रे नारायणेति च।।२०।।
तथा यन्नामग्रहणात्पदं लेभे सुदुर्ल्लभम्। अनिच्छयाऽपि दहति स्पृष्टो हुतवहो यथा ।।२१।।
तथा दहति गोविन्दनामव्याजादपीरितम् ।।२२।।

शुभ कर्म से बढ़ता है ।।९।। वह उस जन्म में भी महान् फल देता है । वह गहन तथा सूक्ष्म धर्म जैसे तैसे नहीं प्राप्त किया जा सकता है ।।१०।। दूसरे पापों से आवृत होने पर भी जो पुण्य कर्म होता है, उसके फल प्रदान करने के विषय में यह नहीं कहा जा सकता है कि वह कब फल देगा । संसार में जो पुण्य अथवा पाप कर्म किए जाते हैं, उन कर्मों का कभी नाश नहीं होता है ।।११-१२।। फिर भी अनेक पुण्यों के द्वारा भयङ्कर पाप विनष्ट हो जाता है । राजन् ! आपने जो कहा है कि बहुत अधिक प्रयास के द्वारा ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है ।।१३।। उस फल की प्राप्ति के विषय में मैं बतलाता हूँ आप सुनें । अनायास तथा महाप्रयास ये दोनों यदि अल्पत्व और महत्त्व के हैं तब तो कर्म महाव्रत हो जायेंगे, सिंह, व्याघ्र आदि के मूत्र आदि को प्राप्त करने में बहुत अधिक प्रयास करना पड़ता है ।।१४-१५।। यदि कर्तव्य की बहुलता का ही महत्त्व है तो फिर पुण्य कार्यों के करने में जो पञ्चगव्य की महत्ता है वह कम हो जायेगी; क्योंकि उसमें बहुत कम प्रयास करना पड़ता है ।।१६।। उसी तरह से दूसरे व्रतों की अपेक्षा जल में तथा अग्नि में प्रवेश करने का भी महत्त्व अल्प हो जायेगा । अतएव यह अल्प है और यह महान् है, इस बात का नियामक कुछ भी नहीं है ।।१७।। शास्त्र में जिसका फल महान् बतलाया गया है, वहीं महान् है । जिस तरह महान् से अल्प का नाश होता है, उसी तरह अल्प से महान् का भी नाश हो जाता है ।।१८।। देखा जाता है कि अल्प चिनगारी से महान् तृण समूह का नाश हो जाता है । राजन् अजामिल तो दासीपति था।।१९।। वह सदा पाप करता था और अपनी धर्मपत्नी का परित्याग कर दिया था; मरते समय उसने अपने नारायण नामक पुत्र को बुलाया ।।२०।। किन्तु उसके नाम ग्रहण मात्र से उसने अत्यन्त दुर्लभ पद को प्राप्त कर लिया । देखा जाता है कि बिना इच्छा के भी यदि अग्नि का स्पर्श किया जाय तो वह जलाने का काम कारती ही है ।।२१।। उसी तरह दूसरे व्याज से भी भगवान् का नाम लेने पर वह पापों को विनष्ट करता ही है ।।२२।। भगवान् का प्रिय नाम गोविन्द है वह हत्या इत्यादि हजारों उग्र पापों तथा करोड़ों गुरुपत्नियों

हत्यायुतं पापसहस्रमुग्रं गुर्वङ्गनाकोटिनिषेवणं च ।
स्तेयान्यशेषाणि हरेः प्रियेण गोविन्द नाम्ना निहतानि सद्यः ॥२३॥
विष्णुभक्तिमयं वीर यत्किञ्चित्क्रियतेऽल्पकम् ।
सुकृतं साधु विदुषा तदक्षयफलं भवेत् ॥२४॥
सन्देहो न च कर्तव्यो माधवे मासि माधवम् ।
समाराध्य जनो भक्त्या तत्तद्वाञ्छितमाप्नुयात् ॥२५॥
अपत्यं द्रविणं दारा धराहर्म्यं हया गजाः । सुखानि स्वर्गमोक्षौ च न दूरे हरिभक्तितः ॥२६॥
एवं शास्त्रोक्तविधिना स्वल्पेनापि न संशयः ।
पापस्य महतोऽपि स्यात्क्षयः सम्यग्विधानतः ॥२७॥
फलाधिक्यं भवेद्विद्वन्नाधिक्याद्भवकर्मणो । सूक्ष्मा धर्मस्य गतयो दुर्ज्ञेया विबुधैरपि ॥२८॥
प्रियो माधवमासोऽयं माधवस्य महात्मनः । एकोऽपि त्रिषु लोकेषु समग्रेप्सितदायकः ॥२९॥
पुण्येन गाङ्गेन जलेन काले देशे बुधः स्नानपरः कथञ्चित् ।
आजन्मनो भावहतोऽपि दाता न शुध्यतीत्येवमतं ममैतत् ॥३०॥
प्रज्वाल्य वह्निं घृततैलसिक्तं प्रदक्षिणावर्तशिखं स्वकाले ।
प्रविश्य दग्धः किल भावदुष्टो न स्वर्गमाप्नोति फलं न चान्यत् ॥३१॥
गङ्गादि तीर्थेषु वसन्ति देवा देवालये यक्षगणाश्च नित्यम् ।
त्रिनाशनं यान्ति कृपोपवासा भावोज्झितास्ते न फलं लभन्ते ॥३२॥
भावं ततो हृत्कमले निधाय श्रीमाधवे माधवमासि भक्तया ।
यजेत यः स्नानपरो विशुद्धः पुण्यं न शक्ता वयमस्य वक्तुम् ॥३३॥

के साथ सङ्गम जन्य पापों को तथा समस्त चोरियों के पापों को भस्म कर देता है ॥२३॥ हे वीर ! भगवान् विष्णु की भक्ति से यदि कोई छोटा सा भी पुण्य कर्म अच्छी तरह से किसी विज्ञ पुरुष से किया जाता है तो उसका अक्षय फल होता ही है ॥२४॥ वैशाख के महीने में भगवान् माधव की भक्तिपूर्वक आराधना करके मनुष्य अपने अभिप्रेत फल को प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए ॥२५॥ श्रीहरि की भक्ति से सन्ताप, धन, पत्नी, भूमि, भवन, घोड़े, हाथी, सुख, स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति हो ही जाती है ॥२६॥ अतएव अच्छी तरह से विधान पूर्वक किए गये अल्प भी शास्त्रोक्त कर्म के द्वारा महान पाप का नाश हो जाता है ॥२७॥ भाव तथा कर्म की अधिकता होने पर अधिक फल की प्राप्ति होती है, धर्म की गति सूक्ष्म है उसे देवता (विद्वान) भी नहीं जान सकते हैं ॥२८॥ वैशाख का महीना भगवान् माधव को प्रिय है, यह अकेले ही त्रैलोक्य के समस्त फलों को प्रदान कर सकता है ॥२९॥ मेरी यह मान्यता है कि भक्तिभाव से रहित कोई विद्वान् भी पवित्र देश और पवित्र काल में पवित्र गङ्गा जल में स्नान करके पवित्र नहीं हो सकता है ॥३०॥ दूषित भावना वाला मनुष्य घी तथा तेल से भिंगोकर अग्नि को जलाकर जब उससे दक्षिणावर्त ज्वाला निकलने लगे तब यदि उसमें प्रवेश कर जाय तो भी वह स्वर्ग को नहीं प्राप्त कर सकता है ॥३१॥ गङ्गा आदि तीर्थों में देवताओं का निवास होता है, मन्दिरों में यक्ष गण रहते है और जिसको भावना दूषित है वह मनुष्य उपवास करके की भी मर जाय तो भी उसे स्वर्गरूपी फल की प्राप्ति

इहार्थेऽपि पुरा वृत्तमाकर्णय महीपते !। विचित्रं कथयिष्यामि फलं किमापि कर्मणाम्॥३४॥
तस्य माधवमासस्य प्रसादान्माधवस्य च ।
यथा हि ब्राह्मणी काचित्स्वैरिण्याप शुभं फलम् ॥३५॥
दिवोदासेति विख्यातः पुरा कान्तीश्वरोऽभवत् ।
तस्यापत्यं महारत्नं नारीणामुत्तमं सदा ॥३६॥
गुणरूपसमायुक्ता सुशीला चारुमङ्गला । दिव्या देवीति विख्याता रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥३७॥
पित्रावालोकिता सा तु रूपलावण्यसंयुता ।
स तां दृष्ट्वा दिवोदासो दिव्यां देवीं सुतां तदा ॥३८॥
कस्मै च दीयते कन्या सुवराय महात्मने। इति चिन्तापरो भूत्वा समालोक्य नरोत्तमः ॥३९॥
रूपदेशस्य राजानं सम्यग्ज्ञात्वा महीपतिः। चित्रसेनं महात्मानं समाहूय ततो नृपः॥४०॥
कन्यां ददौ दिवोदसश्चित्रसेनायधीमते। तस्या विवाहकालस्य सम्प्राप्ते समये नृप ॥४१॥
मृतोऽसौ चित्रसेनस्तु कालधर्मेण वै किल। दिवोदासश्च धर्मात्मा चिन्तयामास भूपतिः ॥४२॥
ब्राह्मणांश्च समाहूय पप्रच्छ नृपनन्दन। अस्या विवाहकाले तु चित्रसेनो दिवं गतः ॥
अस्यास्तु कीदृशं कर्म भविष्यति ब्रुवन्तु मे ॥४३॥

ब्राह्मणा ऊचुः

विवाहो जायते राजन्कन्यायास्तु विधानतः। पतिर्मृत्युं प्रयात्येव यो वा त्यागं करोति च॥४४॥
महाधिव्याधिना भीतस्त्यागं कृत्वा प्रयाति च ।
प्रव्राजितो भवेद्राजन्मधर्मशास्त्रेषु दृश्यते ॥४५॥

नहीं होती है ॥३२॥ अतएव वैशाख के महीने में भावपूर्ण हृदय में भगवान् माधव को स्थापित करके स्नान करे और भक्ति पूर्वक श्रीभगवान् की अर्चा करे ऐसा करने वाले को जिस पुण्य की प्राप्त होती है, मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता हूँ ॥३३॥ राजन् ! इस विषय में मैं आपको एक विचित्र इतिहास को तथा उसके फल को बतलाता हूँ ॥३४॥ इस वैशाख के महीने में भगवान् माधव की कृपा से एक व्यभिचारीणी ब्राह्मणी ने शुभ फल को प्राप्त किया । प्राचीन काल में एक दिवोदास नामक विख्यात कान्ति देश के राजा हुए उनकी पुत्री महारत्न के समान तथा नारियों में उत्तम थी ॥३५॥ गुण तथा रूप से सम्पन्न, सुशील तथा मनोहर मङ्गलों वाली अप्रतिम रूप वाली थी । उसका नाम दिव्या देवी था । भूलोक में वह सौन्दर्य के लिए विख्यात थी । दिव्या देवी ॥३६-३७॥ को रूप तथा लावण्य से युक्त उसके पिता दिवोदास ने देखा । अपनी पुत्री दिव्या देवी को देखकर दिवोदास ने सोचा ॥३८॥ मैं अपनी इस पुत्री का विवाह किस सुन्दर वर के साथ करूँ ? इस तरह से विचार करके राजा दिवोदास ने ॥३९॥ रूप देश के राजा चित्रसेन को उचित वर जानकर बुलाया ॥४०॥ और अपनी पुत्री का विवाह चित्रसेन के साथ निश्चित कर दिया । राजन्! जब उसके विवाह की बेला आयी ॥४१॥ तो कालधर्म के कारण चित्रसेन की मृत्यु हो गयी । यह देखकर राजा दिवोदास चिन्तित हो गये ॥४२॥ उन्होंने ब्राह्मणों को बुलाकर कहा कि इसके विवाह के समय चित्रसेन की मृत्यु हो गयी है । अब आपलोग बतलायें कि इसके विषय में क्या किया जाय ?॥४३॥ **ब्राह्मणों ने कहा—** राजन् ! इस कन्या का आप विधि पूर्वक विवाह कर दें । पति के द्वारा परित्यक्त नारी का

तस्यां रजस्वलायां च अन्यः पतिर्विधीयते। विवाहं तु विधानेन पिता कुर्यान्न संशयः ॥४६॥
एवं राजन्समादिष्टं धर्मशास्त्रे शुभैर्जनैः । विवाहः क्रियतामस्य इत्यूचुस्ते द्विजोत्तमाः॥४७॥
दिवोदासश्च धर्मात्मा ब्राह्मणैस्तु प्रणोदितः । विवाहार्थं महाराज मानसं कृतवान्नृप ॥४८॥
पुनर्दत्ता प्रदानेन दिव्या देवी नृपोत्तम। पुण्यसेनाय पुण्याय तस्मै राज्ञे महात्मने ॥४९॥
मृत्युधर्म गतो राजा विवाहसमयेऽपि सः। यदा यदा महाभागो दिव्या देव्याश्च भूपतिः ॥५०॥
करोति स पितोद्योगं विवाहस्यातिदुःखितः ।
भर्ताऽपि म्रियते काले प्राप्तलग्नस्तदा तदा ॥५१॥
एकविंशतिभर्तारः काले काले मृतास्ततः । ततो राजा महादुःखी सञ्जातः ख्यातविक्रमः॥५२॥
समालोक्य तमाहूय मन्त्रिभिः सह निश्चलः ।
स्वयंवरे महाबुद्धिं चकार पृथिवीपतिः ॥५३॥
अथ तेन समाहूता राजानो विधिना नृपाः । स्वयंवरार्थंवै तस्या बहवो धर्मतत्पराः॥५४॥
तस्यास्तु रूपसंक्षुब्धा मृत्युना प्रेरिता नृपाः ।
संग्रामं चक्रिरे मूढा मृतास्तेऽथ परस्परम् ॥५५॥
एवं तेषां क्षयो जातःक्षत्त्रियाणां नरेश्वरम् । दिव्यादेवी च दुःखार्ता रुरोद करुणं ततः ॥५६॥
बालामालोक्य तां राजा रुदन्तीं चतिदुःखिताम् ।
पुरोधसं च धर्मज्ञं ज्ञानवन्तं तपस्विनम् ॥५७॥
जातूकर्णं प्रणम्यादौ विनयान्वितकन्धरः ॥५८॥

जिसका पति मर जाता है ॥४४॥ अथवा महान् अधिव्याधियों से भयभीत होकर वह पत्नी को त्याग कर चला जाता है और सन्यासी हो जाता है तो ऐसा धर्मशास्त्रों में देखा जाता है ॥४५॥ कि जब वह रजस्वला हो जाती है तो उसका दूसरा पति बना दिया जाता है । उसके पिता को चाहिए कि उसका विवाह विधिपूर्वक कर दे ॥४६॥ राजन् ! इस प्रकार से धर्मशास्त्रों में कहा गया है । अतएव आप इसका विवाह कर दें, इस तरह से ब्राह्मणों ने कहा ॥४७॥ ब्राह्मणों के द्वारा प्रेरित होकर धर्मात्मा दिवोदास भी उसका विवाह करने का मन बना लिए ॥४८॥ उन्होंने दिव्या देवी का विवाह पुष्पसेन नामक राजा के साथ करने का वचन दे दिया ॥४९॥ किन्तु विवाह के समय के आने पर उस राजा की भी मृत्यु हो गयी । राजा जब-जब दिव्या देवी का विवाह करने के लिए प्रयास करते थे, तब तब लग्न आने पर उसके पति मर जाते थे ॥५०-५१॥ इस तरह दिव्या देवी के होने वाले इक्कीस पति मर गये । इसके बाद विख्यात पराक्रम वाले राजा दिवोदास अत्यन्त दुःखी हुए ॥५२॥ यह सब देखकर राजा अपने मन्त्रियों के साथ विचार करके दिव्या देवी का स्वयम्बर किए ॥५३॥ राजा के द्वारा आहूत अनेक राजा स्वयम्बर में आये। वे सबके सब धार्मिक थे ॥५४॥ दिव्या देवी के रूप को देखकर वे क्षुब्ध हुए तथा काल के द्वारा प्रेरित होकर वे सब के सब आपस में युद्ध करने लग गये और सब मर गये ॥५५॥ हे राजन् ! इस प्रकार से उन सभी क्षत्रियों का नाश हो गया । यह देखकर दिव्यादेवी करुण क्रन्दन करने लगी ॥५६॥ अपनी रोती हुयी तथा अत्यन्त दुःखी पुत्री को देखकर राजा धर्म के ज्ञाता तथा ज्ञानी तपस्वी पुरोहित जातूकर्ण को प्रणाम करके नम्रता पूर्वक पूछे ॥५७-५८॥ **दिवोदास ने कहा**— आप कृपा करके बतलायें कि मेरी पुत्री

दिवोदास उवाच

कथयस्व प्रसादेन किमेतस्या हि पातकम्। दिव्या देव्यास्तु मे पुत्र्या यदेतच्चेष्टितं कृतम् ॥५९॥

जातूकर्ण उवाच

तस्यास्तु चेष्टितं वीर ! दिव्या देव्या वदाम्यहम् ।
पूर्वजन्मकृतं सर्वं तन्मे निगदतः शृणु ॥६०॥
आस्ते वाराणसी पुण्या नगरी पापनाशिनी ।
तस्यामास्ते महाप्राज्ञः सुवीरो नाम नामतः ॥६१॥
वैश्यजात्यां समुत्पन्नो धनधान्यसमाकुलः। तस्य भार्या महाप्राज्ञ ! चित्रा नाम सुविस्मृता॥६२॥
कुलाचारं परित्यज्य दुराचारेण वर्तते। न मन्यते हि भर्तारं रौद्रकृत्ये च वर्तते॥६३॥
पुण्यकार्यविहीना तु पापं चरित दुर्मतिः। भर्तारं भर्त्सते नित्यं स्वैरिणी कलहप्रिया ॥६४॥
नित्यं परगृहे वासनिरता भ्रमतेऽधिकम्। परच्छिद्रं समा पश्येद्दुष्टाभूतेषु सर्वदा ॥६५॥
साधुनिन्दारता पापा बहुहास्यकरी सदा। कुसङ्गतिरसा वाचा दुराचारजनप्रिया ॥६६॥
धूर्ता धर्मजनद्वेषकरी चानृतभाषिणी। विज्ञायैवं सुवीरस्तामुपयेमे ततोऽपराम् ॥६७॥
तया नवीनया वीरो भार्यया सहितोऽनिशम् ।
यथासुखं स बुभुजे विषयान्मनसःप्रियान् ॥६८॥
धर्माचारेण पुण्यात्मा सत्यपुण्यमतिःसदा। सत्ययामितयासत्या सुमत्याराधितो वभौ॥६९॥
निरस्ता तेन सा चित्रा विचित्रावरवर्णिनी। स्वैरिणी गुणसंसर्गधर्मविद्वेषिणी ततः ॥७०॥
भ्रमते जारसंयुक्ता मुक्ताचारा गतत्रपा। सा पापरतसंयुक्ता रक्ता दूतीविकर्मणि ॥७१॥

इस दिव्या देवी का कौन सा पाप है जिसके कारण इस तरह की घटना हुयी ॥५९॥ **जातूकर्ण ने कहा—** हे राजन् ! मैं उस दिव्या देवी के उन कर्मो को बतलाता हूँ। आप इसके पूर्वजन्म के कर्मों को सुनें ॥६०॥ सभी पापों का विनाश करने वाली वाराणसी नाम की नगरी में महाप्राज्ञ सुवीर नामक वैश्य रहते थे। वे धनधान्य से सम्पन्न थे उनकी पत्नी का नाम चित्रा था ॥६१-६२॥ वह अपने वंश के आचरण का परित्याग करके दुराचारिणी हो गयी। वह अपने पति को नहीं मानती थी और भयङ्कर कर्मो को करती रहती थी ॥६३॥ वह पुण्य कार्यों को नहीं करती थी वह मूर्खा पाप कर्मो को ही करती थी। वह प्रतिदिन अपने पति की भर्त्सना करती थी और स्वैराचार करती थी। कलह करना उसको प्रिय था ॥६४॥ वह सदा दूसरों के घर में रहा करती थी और घूमती रहती थी। दूसरों के दोषों को देखती थी और सभी जीवों के प्रति दुष्टता का व्यवहार करती थी ॥६५॥ वह पापिनी सज्जनों की निन्दा करती रहती थी और बहुत अधिक हँसती रहती थी वह कुसङ्ग में लगी रहती थी और दुराचारी लोगों से प्रेम करती थी ॥६६॥ वह धूर्त थी और धार्मिक लोगों से द्वेष करती थी, झूठ बोलती थी। उसके इस आचरण को जानकर सुवीर ने दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया ॥६७॥ उस नवीन पत्नी के साथ सुवीर रहते थे और अपने मन को प्रिय लगने वाले भोगों को उन्होंने भोगा ॥६८॥ वे सत्य बोलते थे तथा धर्म का आचरण करते थे। सुमति नाम की सत्यवादिनी उसकी पत्नी अपने पति की आराधना करती थी ॥६९॥ उन्होंने अद्भुत सुन्दरी चित्रा को त्याग दिया क्योंकि वह व्यभिचारिणी और गुणो तथा धर्म के विषय में द्वेष करती थी ॥७०॥ अब वह

कुशला कुट्टिनी कर्मकलासु त्वन्ययोषिताम् ।
गृहभङ्गमसौ चक्रे चक्रेण मनसा हिता ॥७२॥
साध्वीं नारीं समाहूय पापवाक्यैश्च नोदयेत् ।
नर्मलोभकथाकेलिप्रत्ययोत्पत्तिहेतुभिः ॥७३॥
मनांसि चालयेत्पापा पुरुषाणां च योषिताम् ।
साधूनां सा स्त्रियो भव्याः परेभ्यः प्रतिपादयेत् ॥७४॥
कारयत्त्येव कपटं धर्मग्रामविवर्जनम् । एवं वर्षशतं भुक्त्वा पश्चाद्वेश्या विधिस्थिता ॥७५॥
कालेन निधनं प्राप्ता सततं पापनिश्चया। जाता तव गृहे पुत्री दिव्या देवीति सा सुता ॥
सुन्दरीरूपसम्पन्ना पुराऽदृष्टेन नोदिता ॥७६॥

नारद उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा दिवोदासोऽति विस्मितः ।
उवाच राजा मधुरं जातूकर्णं मुनिं वचः ॥७७॥

दिवोदास उवाच

यदीदृशी सा दुरितप्रचारा सदा दुराचाररता प्रयाता ।
कथं मम श्रीपतिदैवतस्य महाकुलीनस्य सुतानुरूपा ॥७८॥
सुदुर्ल्लभं राजकुले विशाले लेभे च सा श्रीमति जन्मधन्यम् ।
पुण्येन केनापि मुने ! पवित्रे चित्रा विचित्रेण च कर्मकर्त्री ॥७९॥

नारद उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा भूमिपस्य मुनिस्ततः ।
किञ्चिद्विहस्य तु प्राज्ञो वचः सूनृतमब्रवीत् ॥८०॥

अपने प्रेमी के साथ निर्लज्जता पूर्वक सदाचार का परित्याग करके घूमती रहती थी । वह सदा पाप कर्मों में लगी रहती थी और दूती का निन्दित काम करती थी ॥७१॥ वह दूसरी नारियों के समान कुशल कुट्टिनी हो गयी थी अपनी कुटिल बुद्धि के द्वारा वह घर फोड़ने का काम करती थी ॥७२॥ वह पापिनी साध्वी नारियों को बुलाकर नर्म (काम कला) विषयक लोभ की चर्चा तथा केलि विषयक विश्वास कराने वाले वाक्यों के द्वारा उन सबों के मन को चञ्चल बनाने का काम करती थी । वह सज्जन पुरुषों की सुन्दर स्त्रियों को दूसरों के हाथ में दे देने का काम करती थी ॥७३-७४॥ धर्म समूह से रहित वह कपट का काम करती थी । इस तरह से सौ वर्ष तक भोगों को भोग करके वह वेश्या वृत्ति में लग गयी ॥७५॥ निरन्तर पाप करने वाली वह समयानुसार मर गयी । वही आपके घर में आपकी पुत्री दिव्या देवी के रूप में उत्पन्न हुयी है । वह अपने पूर्व जन्म के अदृष्ट से प्रेरित होकर रूप सम्पन्न सुन्दरी हुयी है ॥७६॥ **नारदजी ने कहा—** इस तरह की वाणी को सुनकर अत्यन्त आश्चर्यित दिवोदास ने जातूकर्ण मुनि से मधुर शव्दों में पूछा ॥७७॥ **दिवोदास ने कहा—** यदि वह इस प्रकार से पापकर्म तथा दुराचार कर्म को करने वाली थी तो फिर वह लक्ष्मीपति के भक्त मेरे वंश में कुलीन पुत्री कैसे हो गयी ?॥७८॥ ऐश्वर्य से विशाल

जातूकर्ण उवाच

चित्राविचित्रसुरतैरथ वञ्चयन्ती प्रच्छन्नकामुकविटान्धनधीविहीनान् ।
वेश्या बभूव विषयानमितश्चरित्वा कालेन नागनगरे महति प्रसिद्धे ॥८१॥
कोऽपि तत्र समायातः सायं विप्रः श्रमार्दितः ।
अर्दमानो विशुद्धात्मा नगरे नागसंज्ञके ॥८२॥
अपश्यन्नपरं स्थानं मूढश्चित्रागृहं ययौ । तया संमोहितोऽत्यर्थं वेश्यया दृष्टियोगतः ॥८३॥
पादसंवाहनस्नानताम्बूलासनभोजनैः । विलासैस्तोषितः सोऽपि खेदहीनोऽभवतदा ॥८४॥
ततो विचित्रैः सुरतोपचारैरदृष्टबुद्ध्यैव तया स विप्रः ।
संसेवितोऽयं रजनीमशेषामवाहयद्भावविशेषलुब्धः ॥८५॥
प्रातः प्रयाणाभिमुखः कथञ्चिदुवाच चित्रामनुरक्तचित्तः ।
सन्तोषितः स्वैश्चरितैः स्वकृत्यैर्वचस्तया चैकधिया तदानीम् ॥८६॥

ब्राह्मण उवाच

कार्यः प्रत्युपकारस्ते तोषितेन मया प्रिये । स्वदृढं च निजं दुःखं कथयाम्यविशेषतः ॥८७॥
पुरा कथां हि वदतां विप्राणां नर्मदातटे । शुभं यत्सर्वपापघ्नं तदाकर्णय सादरम् ॥८८॥
यो दिनत्रयमपि प्रयत्नतः स्नाति मेष उपयाति भास्करे ।
भास्करेऽनुदित एव माधवे मासि सोऽघनिचयैर्विमुच्यते ॥८९॥

राजवंश में जन्म लेना अत्यन्त दुर्लभ है । हे मुने ! पाप कर्म करने वाली उस चित्रा का जन्म इस वंश में किसी विचित्र पुण्य के कारण ही हुआ होगा ॥७९॥ **नारदजी ने कहा—** राजा की इस वाणी को सुनकर उसके बाद मुनि जातूकर्ण कुछ हँसकर मधुर शब्दों में कहे ॥८०॥ धन और बुद्धि से विहीन, प्रच्छन्न कामुकों (जारों) तथा विटों से विचित्र सुरत क्रीडा के द्वारा धन कमाने वाली चित्रा बहुत अधिक विषयों को भोगकर समयानुसार नागपुर नामक विख्यात नगर में वेश्या बन गयी ॥८१॥ एक दिन परिश्रम करने के कारण श्रान्त तथा दुःखी ब्राह्मण सायंकाल उस नगर में आये । वे अपने रहने के लिए किसी दूसरे स्थान को नहीं देखकर जानकारी नहीं होने के कारण चित्रा के घर में चले गये । उस वेश्या को देखकर वे अत्यन्त मोहित हो गये ॥८२-८३॥ वेश्या जिसने उनका पैर भी दबाया उनको स्नान कराया, पान खाने को दिया, सोने का आसन, भोजन तथा विलास के द्वारा सन्तुष्ट किया । उसके बाद उनकी थकान दूर हो गयी ॥८४॥ उसके बाद उस वेश्या ने उनकी सेवा ऋजुभाव से अनेक प्रकार की काम क्रीड़ाओं के द्वारा की । उस सम्पूर्ण रात्रि को ब्राह्मण ने भाव विशेष (प्रेम विशेष के लोभ में पड़कर) बिताया ॥८५॥ यद्यपि उनका मन चित्रा में ही लगा हुआ था, फिर वे प्रातःकाल किसी प्रकार से जाने के लिए उद्यत हुए । चित्रा ने उन्हें अपने चरितों, कृत्यों तथा वाणियों से संतुष्ट किया था अतएव उनका मन चित्रा में लगा था ॥८६॥ **ब्राह्मण ने कहा—** प्रिये ! तुमने मुझे सन्तुष्ट किया है; अतएव मैं तुम्हारा कौन सा उपकार करूँ ? हमारा जो अपना अत्यन्त कठोर दुःख है, उसे मैं बतलाता हूँ ॥८७॥ प्राचीन काल में नर्मदा नदी के तट पर सभी प्रकार के पापों को विनष्ट करने वाली कथा को कहने वाले ब्राह्मणों मे जो चर्चा हुयी उसे तुम सुनो ॥८८॥ मेष राशि के सूर्य के होने पर जो व्यक्ति सूर्योदय से पहले ही प्रयास

सम्पूर्णमपि वैशाखे यो बहिः स्नानमाचरेत् ।
विधिना माधवं देवमर्चयेत्सोऽपि पापहा ॥९०॥
पुण्यतीर्थे विशेषेण स्नानदानक्रियादिभिः । महापापैर्विमुच्येत मानवो मासि माधवे ॥९१॥
तावन्महापापचयः शरीरे शरीरिणास्तिष्ठिति निर्विशङ्कः ।
यावन्मुदा चोषसि मेषराशिमुपागते मज्जति नो दिनेशे ॥९२॥
एवमाकर्णितस्तेषां विप्राणां वदतां मया । अनेकदुरिताम्भोधितरणे पोत उत्तमः ॥९३॥
अदूरे शिवदेहा च वर्ततेऽसौ सरिद्वरा । तत्र स्नातुं गमिष्येऽहं तदाघौघवधाय च ॥९४॥
यदि ते रोचते कान्ते विरक्तं वा मनो भवेत् ।
तन्मया त्वं समागच्छ वैशाखस्नानहेतवे ॥९५॥
अनित्यं जीवितमिदं यौवनं चातिसुन्दरम् । हेतुर्नरकवासस्य दुर्वारश्च स नो भवेत् ॥९६॥
आराधितस्त्वयाऽहं च पातितो दुरितार्णवे । महतामपि यत्सत्यं दुष्टस्थितशरीरिणाम् ॥९७॥
किमत्र बहुनोक्तेन न बिलम्बोचितःक्षणः । उद्धरिष्येऽपि भवतीं विरक्तिर्यदि ते हृदि ॥९८॥

चित्रोवाच

स्वामिन्नदृष्टयोगेन तव सङ्गतिधर्मतः । ध्रुवं विरक्तं मच्चेतो निन्द्यमेतद्भवं प्रति ॥९९॥
नूनमेवं मया शास्त्रे श्रुतं यत्साधुसङ्गमः । अचिन्त्यायै नमस्तस्यै नियतायै ततः पुनः ॥१००॥

जातूकर्ण उवाच

इत्याभाष्य ततस्तेन समं चित्रा ययौ तदा । विद्यमानं धनं किञ्चिदादाय मुनिनोदिता ॥१०१।

करके तीन दिन भी वैशाख के महीने में स्नान करता है, वह अपने समस्त पापों से मुक्त हो जाता है॥८९॥ जो व्यक्ति सम्पूर्ण वैशाख के महीने में घर से बाहर स्नान करता है और विधि पूर्वक भगवान् लक्ष्मीपति की अर्चना करता है वह भी पाप का विनाश कर देता है ॥९०॥ वैशाख महीने में विशेष रूप से स्नान-दान की क्रियाओं आदि के द्वारा मनुष्य महान् पापों से मुक्त हो जाता है ॥९१॥ मनुष्य के शरीर में पाप समूह तब तक ही शान्ति पूर्वक बना रहता है जब तक वैशाख के महीने में सूर्य मेष राशि पर हों मनुष्य सूर्योदय से पहले स्नान नहीं करता हो ॥९२॥ इस प्रकार से कहने वाले ब्राह्मणों की वाणी को सुनकर अनेक पाप रूपी सागर को पार करने के लिए उत्तम नौका के समान कल्याण कारिणी नदियों में श्रेष्ठ शिवदेहा नदी सन्निकट में विद्यमान है; मैं अपने पाप समूह का नाश करने के लिए उस नदी में स्नान करने जा रहा हूँ ॥९३-९४॥ हे कान्ते ! यदि तुमको अच्छा और विषयों के भोगने में तुमको प्रेम न हो तो भी मेरे साथ वैशाख स्नान करने के लिए चलो ॥९५॥ यह जीवन अनित्य है और यह जवानी हम दोनों को अवश्य नरक में डाल देगी ॥९६॥ तुमने मेरी सेवा करके मुझे पाप सागर में डाल दिया है । यह सत्य है कि पाप महान् पुरुषों के भी शरीर में स्थित रहता है ॥९७॥ इस विषय में बहुत कहने से कोई लाभ नहीं है, अब क्षण भर भी देर नहीं करनी चाहिए । यदि तुम्हारे हृदय में विरक्ति हो तो मैं तुम्हारा भी उद्धार कर दूँगा ॥९८॥ **चित्रा ने कहा**— हे स्वामिन् ! अदृष्ट वशात् ही आपकी सङ्गति प्राप्त हुयी है; मेरा अन्तःकरण संसार के विषय से विरक्त हो गया है ॥९९॥ मैंने शास्त्रों में सुना है कि साधु पुरुषों की सङ्गति अचिन्य एवं नियत है, उसको बारम्बार नमस्कार है ॥१००॥ **जातूकर्ण ने कहा**— इस तरह

ततः परं सोऽपि पुनर्द्विजन्मा वैशाखमासे शिवदेहदेहम् ।
अवाप सस्नौ च दिनेशमस्यै स्नानाय सद्योऽथ ददौ दयालुः ॥१०२॥
हृदयालुरयं विप्रः स्नापयामास तां तदा। यथोचितविधानेन चित्रामुच्चित्रभाषिणीम् ॥१०३॥
वैशाखस्नानमाहात्म्यं तत्र शुश्राव सा मुदा। पठमानेषु विप्रेषु पुराणानि पृथक्पृथक् ॥१०४॥
यस्य श्रवणमात्रेण क्षीयते दुरितान्धकः। यथा सूर्योदयेनैव तिमिरौघः प्रणश्यति ॥१०५॥
सा शिवे शिवजनूजले पुनः स्नानतोऽजनिकरे विधानतः ।
स्नानतो विमलमानसोदया सूर्यकान्तिरिव निर्मला बभौ ॥१०६॥
तत्र मज्जन्ति रेवायां सेवायां निरता हरेः । वैशाखे विविधालोका लोकानन्त्यमभीप्सवः ॥१०७॥
ये नर्मदायामिह शर्मदायामशुद्धकायानपि शोधयन्ति ।
विशेषतो माधवमासि मर्त्या भवन्ति मर्त्याधिपलोकलीलाः ॥१०८॥
आजन्मनौघं स्मरणेन रेवा निहन्ति दृष्टा दशजन्मजं पुनः ।
स्नाता कथञ्चिच्छतयोनिजातं संसेविता यच्छति रुद्रलोकम् ॥१०९॥
सकलं माधवं मासं सा चित्रा नर्मदा जले ।
सस्नौ किञ्चिददौ दानं शक्त्या विप्रेषु नित्यशः ॥११०॥
सर्वपापहरं स्तोत्रं शृणोति श्रद्धया हरेः। विप्राणां तत्र पठतां सङ्गादस्य द्विजन्मनः ॥१११॥
निमज्ज्य सा माधवमासि पूर्णे रेवाजले तत्र महीसुरेभ्यः ।
अच्छिद्रमासाद्य यथा विधानं तत्रापि चित्राऽपि चकार मासम् ॥११२॥
कुटीरकं तं तु नवं विधाय सुदेवनामापि स भूमिदेवः ।
उवास रेवासलिले निमज्जंश्चित्रोपरोधाननिशं दयातः ॥११३॥

से कहकर चित्रा उस ब्राह्मण के साथ उनके द्वारा प्रेरित होकर अपने पास विद्यमान कुछ धन को लेकर चली गयी ॥१०१॥ उसके पश्चात् वह चित्रा तथा वे ब्राह्मण दोनों वैशाख के महीने में पवित्र शिवदेहा नदी में स्नान किए । सूर्योदय से पहले ब्राह्मण ने स्नान किया और बाद में उसको स्नान करने के लिए प्रेरित किया॥१०२॥ वे सहृदय ब्राह्मण विचित्र ढंग से बातें करने वाली चित्रा को विधिपूर्वक स्नान कराये ॥१०३॥ वहाँ पर उसने प्रसन्नता पूर्वक वैशाख मास के स्नान के माहात्म्य को सुना और अलग-अलग ब्राह्मणों द्वारा पढ़े जाते हुए पुराणों को उसने सुना ॥१०४॥ जिसके सुनने मात्र से पाप रूपी अन्धकार उसी तरह विनष्ट हो जाता है जैसे सूर्योदय के द्वारा अन्धकार समूह विनष्ट हो जाता है ॥१०५॥ वह (चित्रा) पवित्र जल वाली शिवदेहा नदी के पवित्र जल समूह में विधि पूर्वक स्नान के द्वारा पवित्र मन वाली हो गयी और सूर्य की कान्ति के समान निर्मल हो गयी ॥१०६॥ वहाँ पर वैशाख के महीने में अनन्त लोक को चाहने वाले अनेक लोग रेवा नदी में स्नान करते हैं और श्रीहरि की सेवा करते हैं ॥१०७॥ वैशाख मास में कल्याण कारिणी नर्मदा नदी में अशुद्ध शरीरों को भी जो लगा शुद्ध करते हैं वे लोग लीला पूर्वक (आसानी से) राजा हो जाते हैं ॥१०८॥ स्मरण करने से रेवा नदी जीवन भर के पापों को विनष्ट कर देती है । दर्शन करने से वह दश जन्मों के पापों को नष्ट कर देती है, स्नान करने से वह सभी जन्मों के पापों को नष्ट कर देती है और अच्छी तरह से सेवन करने से वह रुद्रलोक को प्रदान करती है ॥१०९॥ वह चित्रा पूरे वैशाख के महीने में नर्मदा नदी में स्नान की और प्रतिदिन वह अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को कुछ दान देती थी ॥११०॥ वह श्रद्धापूर्वक पाठ करने वाले विप्रों तथा इस ब्राह्मण के सङ्ग के कारण श्रीहरि के पाप विनाशक स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ सुनती थी ॥१११॥ पूरे वैशाख के महीने में रेवा नदी के जल

अथ कालेन कियता कालधर्ममुपेयिवान्। विप्रस्तदनु सा चित्राऽचिरेणैव मृमृता नृप ॥११४॥
तेन माधवमासस्य सुकृतेन तदैव सा। पुत्री तवाभवन्नूनमदृष्ट्वा यमयातनाम् ॥११५॥
तस्यकर्मविपाकोऽयं यदाप्तं भूपतेः कुलम्। वैष्णवं विशदं वीर ! दुष्प्राप्यं पापकर्मभिः॥११६॥
दिव्या देवी वरं नाम जातं चास्यां नरोत्तम ! ।
यच्च दत्तवती चान्नं भोग्यसौख्यसुखानि च ॥११७॥
ब्राह्मणाय पुरा तस्मै गणिकात्वेऽपि सङ्गता ।
स्नात्वा च माधवं मासि किञ्चित्तत्रापि यद्ददौ ॥११८॥
तस्य दानस्य सा भुक्ते स्नानस्य च फलोदयम् ।
पिबते शीतलं तोयं मिष्टान्नं च तथाऽनिशम् ॥११९॥
दिव्यान्भोगान्प्रभुञ्जाना वर्तते च प्रभोर्गृहे । भुङ्क्तेव विधिदत्तं च दुःखशोकादिपीडिता ॥१२०॥
यत्पुरा नरनारीणां गृहभङ्गरताऽभवत् । तस्य कर्मविपाकोऽयमस्याः किञ्चिदुपस्थितः॥१२१॥
माधवस्नानमाहात्म्याद्विनैव यमयातनाम् ।
महापापाऽपि ते वीर ! सुन्दरी सा सुताऽभवत् ॥१२२॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं तव पुत्र्या विचेष्टितम्। सर्वजन्मभवं वीर ! कर्म दुष्कर्मसम्भवम् ॥१२३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमें पातालखण्डे वैशाखमाहात्म्ये चित्रोपाख्याने द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

* * *

मे स्नान करके तथा ब्राह्मणों से उसकी अच्छिद्रता को प्राप्त करके चित्रा ने स्नान के सारे विधानों को पूरा किया ॥११२॥ सुदेव नामक वे ब्राह्मण भी चित्रा के आग्रहवशात् वहाँ पर रेवा के तट पर नवीन कुटी बनाकर वहीं पर स्नान करके एक मास तक निवास किये ॥११३॥ हे राजन् ! इसके बाद कुछ दिनों के बाद उन ब्राह्मण की मृत्यु हो गयी और उसके बाद चित्रा की भी मृत्यु हो गयी ॥११४॥ उसी कर्म का परिणाम है कि उसने राजवंश में जन्म लिया और यम-यातना को भोगे बिना ही वह आपकी पुत्री हुयी॥११५॥ उसी कर्म का परिणाम है कि जिसे पापी जीव नहीं प्राप्त कर सकते हैं उस विख्यात, वैष्णव राजवंश में उसने जन्म लिया है ॥११६॥ दिव्या देवी ने जो-जो अन्न दान दिया है । हे राजन् ! उसी के फल स्वरूप उसने भोग्य पदार्थों तथा सौख्य सुख को प्राप्त किया है ॥११७॥ वेश्या होने पर भी उसने वहाँ पर स्नान करके ब्राह्मणों को जो थोड़ा सा दान दिया ॥११८॥ उसी दान का तथा स्नान का फल है कि वह राजसुख का भोग करती है । वह शीतल जल पीती है और अच्छा भोजन करती है ॥११९॥ वह राजा के घर में रहती है तथा दिव्य भोगों को प्राप्त करती है । वह भाग्य के द्वारा प्रदत्त दुःख तथा शोक आदि से पीड़ित होती है ॥१२०॥ पूर्वजन्म में इसने जो स्त्री-पुरुषों के घर में फूट डाला है, उसी का फल है कि वह कष्ट भोग रही है ॥१२१॥ वैशाख स्नान की महिमा से वह यम-यातना भोगे बिना ही महान् पापिनी होकर भी आपकी सुन्दर पुत्री हुयी है ॥१२२॥ राजन् ! मैंने आपको इसके सभी जन्मों के कर्मों और पापों का तथा पुण्य कर्मों का पूर्ण रूप से वर्णन किया ॥१२३॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के वैशाख माहात्मय के प्रसङ्ग में चित्रोपाख्यान नामक बानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९२॥

* * *

तिरानबेवाँ अध्याय

नारद उवाच

जातूकर्णवचश्चित्रमेवमाकर्ण्य भूपतिः। तमुवाच नमस्कृत्य ज्ञानिनं मुनिमादरात् ॥१॥

दिवोदास उवाच

कथमेषा विमुच्येत दुःखादस्मान्मुनेऽधुना ॥२॥

जातूकर्ण उवाच

कथयामि महत्पुण्यं येनेयं सुखिता भवेत् । अप्रकाश्यमपि प्रायः प्रवक्ष्यामि तवाग्रतः ॥
स्वल्पमप्यद्भुतं कर्म विकर्मशतनाशनम् ॥३॥

यथा हरेर्ध्यानबलेन पापं विनाशमायाति महत्समग्रम् ।
प्रातस्तदा माधवमासदानस्नानेन घोरं विलयं प्रयाति ॥४॥
यथा हरेर्भीतिभयेन नागा नश्यन्ति सर्वे निचयास्तथैव ।
नूनं रवौ मेषगते विभाति स्नानेन तीर्थे च हरिस्तवेन ॥५॥

तेजसावैनतेयस्य पन्नगा इव पातकाः । विद्रवन्ति च वैशाखस्नानेनोषसि निश्चितम् ॥६॥

तस्माद्देयाऽपि भूपाल दिव्या देवी पुनः स्वयम् ।
कृत्वा वैशाखश्रवणं श्रुत्वा पापहरं स्तवम् ॥७॥

भवित्री भर्तुः संयोगसुखसम्भोगभागिनी । सुदेवोऽपि स जातोऽस्ति पाण्ड्यदेशाधिपो बली॥८॥
वैशाखमासि रेवायां स्नानपुण्येन भूपते। तस्मा एव सुतां देहि विशुद्धां स्नानतस्तथा॥९॥

वैशाख के महीने में रेवा नदी में स्नान करने का महत्त्व

नारदजी ने कहा— इस प्रकार से जातूकर्ण की अद्भुत वाणी को सुनकर राजा ने उन ज्ञानी मुनि को नमस्कार करके कहा ॥१॥ **दिवोदास ने कहा**— हे मुने ! इस समय यह किस प्रकार से इस कष्ट से छूटकारा पा सकती है ?॥२॥ **जातूकर्ण ने कहा**— हे राजन् ! मैं उस अप्रकाश्य पुण्य को बतलाता हूँ जिससे कि यह सुखी हो जायेगी । यद्यपि वह कर्म अत्यन्त छोटा है, किन्तु वह सैकड़ों पापों को नष्ट करने वाला है ॥३॥ जिस तरह प्रातःकाल श्रीहरि का ध्यान करने मात्र से सारे महान्-से-महान् पाप विनष्ट हो जाते है उसी तरह वैशाख के महीने में प्रातःकाल स्नान और दान करने से सारे भयङ्कर पाप भी विनष्ट हो जाते हैं ॥४॥ जिस तरह गरुड़ के भय से सारे नाग विनष्ट हो जाते हैं उसी तरह वैशाख मास में मेष के सूर्य के होने पर तीर्थ में स्नान करने से तथा श्रीहरि की स्तुति करने से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ॥५॥ वैशाख मास में प्रातःकाल स्नान करने से सारे पाप उसी तरह भाग जाते हैं जिस तरह से गरुड़ के भय से सभी सर्प भाग जाते हैं ॥६॥ अतएव राजन् ! दिव्या देवी के वैशाख माहात्म्य को सुनने तथा श्रीहरि के पाप विनाशक स्तोत्र के सुनने के बाद ही आप उसका विवाह करें ॥७॥ ऐसा करने से वह अपने पति का संयोग प्राप्त करके सुख तथा सम्भोग को प्राप्त करेगी । सुदेव नामक ब्राह्मण भी पाण्ड्य देश के राजा हो गये हैं ॥८॥ राजन् ! वैशाख के महीने में रेवा नदी में स्नान करने के पुण्य के कारण वे राजा हुए हैं, आप उन्हीं से स्नान करने के कारण विशुद्ध हुयी अपनी पुत्री का विवाह करें ॥९॥ वैशाख के महीने में माधव

माधवस्य पुनः स्तोत्रं श्रवणान्माधवस्य च। सन्देहो नात्र कर्त्तव्यो विचित्रं पश्य भूपते ॥१०॥
इहामुत्र फलं तस्या समाख्यं पुण्यकर्मणः ॥११॥

नारद उवाच

इत्याकर्ण्यैव मुदितो राजा तमखिलं ततः। कारयामास तां पुत्रीं जातूकर्णोदितं विधिम् ॥१२॥
वीरसेनेन तेनैव पाण्ड्यदेशाधिपेन सा। पुरा जन्मैकसुहृदा दिव्या देवी विवाहिता ॥१३॥
बुभुजे भूरिबिषयांश्चिरं सुचरितव्रता। वीरसेनेन सुहृदा पूर्वजन्मकृतेन च ॥१४॥
एतत्ते किञ्चिदाख्यातमम्बरीष ! समासतः। वैशाखस्नानमाहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ॥१५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पतालखण्डे वैशाखमाहात्मये चित्रोपाख्याने त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

* * *

चौरानबेवाँ अध्याय

अम्बरीष उवाच

पापप्रशमनं स्तोत्रं श्रोतुमिच्छामि तद्विभो !। यस्य श्रवणमात्रेण पापराशिर्विलीयते॥१॥

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि श्रावितोऽस्मि शुभं विधिम् ।
विकर्मोपार्जितं यस्य श्रवणादेव हीयते ॥२॥
चित्रं किमत्र मधुसूदनदैवतस्य मासस्य पुण्यसवनैरिह माधवस्य ।
स्नानैरवश्यविहितैरघराशिनाशः स्याद्यस्य नाम पठनादपि तस्य लोकः ॥३॥

का स्तोत्र सुनने से ऐसा हुआ है । राजन् ! इसके विषय में सन्देह नहीं करना चाहिए ॥१०॥ रेवा नदी में स्नान जन्य पुण्य लोक तथा परलोक में विख्यात है ॥११॥ **नारदजी ने कहा—** इस प्रसङ्ग को सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी पुत्री से उन सारी विधियों को करवाया जिसे जातूकर्ण ने बतलाया था ॥१२॥ उसके बाद राजा ने पाण्ड्य देश के स्वामी वीरसेन के साथ ही कर दिए जो दिव्या देवी के पूर्वजन्म के सुहृद् थे ॥१३-१४॥ हे अम्बरीष मैंने संक्षेप में आपको कुछ वैशाख स्नान का माहात्म्य सुनाया, अब आप क्या सुनना चाहते हैं ?॥१५॥

इसतरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के वैशाख माहात्म्य के अन्तर्गत चित्रोपाख्यान नामक तिरानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९३॥

* * *

पाप प्रशमन स्तोत्र का माहात्म्य और पाँच पापियों का उपाख्यान एवं आठ प्रेतों की मुक्ति का वर्णन

अम्बरीष ने कहा— हे विभो ! मैं उस पापप्रशमन स्तोत्र को सुनना चाहता हूँ जिसके सुनने मात्र से पाप समूह का विनाश हो जाता है । मैं धन्य एवं अनुगृहीत हूँ क्योंकि आपने मुझे शुभ विधि को सुनाया है, जिसके सुनने मात्र से पापों का नाश हो जाता है ॥१-२॥ जिनके नामों के पढ़ने मात्र से वैकुण्ठ लोक

तदेव पुण्यं परमं पवित्रं हृद्यं च लोके सुकृतैकलभ्यम् ।
यदुच्यते केशवनामधेयं मन्ये मुने ! माधवमासि भव्यम् ॥४॥
धन्यास्तुते माधवमासि नाम स्मरन्ति येऽहो मधुसूदनस्य ।
तस्यैव मे किञ्चिदहो चरित्रं पुनः पवित्रं वद विश्वजन्यम् ॥५॥

सूत उवाच

वचः समाकर्ण्य हरिप्रियस्य प्रीतो मुनिस्तस्य नृपोत्तमस्य ।
स माधवस्नानसमुत्सुकोऽपि कथारसेनाह स माधवस्य ॥६॥

नारद उवाच

सत्यं महीपाल ! मिथो मुकुन्दकथारसालापविधिर्विशुद्धः ।
त्वया समं माधवमासधर्मस्नानाधिकोऽयं हरिदैवतेन ॥७॥
जीवितं यस्य धर्मार्थं धर्मो हर्यर्थमेव च । अहोरात्राणि पुण्यार्थं तं मन्ये वैष्णवं भुवि॥८॥
किञ्चिद्वक्ष्यामि ते राजन्वैशाखस्नानजं फलम् ।
अस्मत्पिताऽपि नो वक्तुमलं विस्तरतोऽखिलम् ॥९॥
यत्र मज्जनमात्रेण पापा मुक्तिमुपागताः । माधवे मासि ते पापा नर्मदासलिले परे ॥१०॥
पुरा तीर्थप्रसङ्गेन भ्रमन्कोऽपिमहीसुरः । मुनिशर्मेति विख्यातो धर्मात्मा सत्यवाञ्छुचिः ॥११॥
युक्तः शमदमाभ्यां च क्षान्तिसन्तोषसंयुतः । युक्तः स पितृकार्येषु श्रुतिस्मृतिविधानवान् ॥१२॥

की प्राप्ति होती है, उस श्रीभगवान के प्रिय वैशाख मास में विधिपूर्वक स्नान करने से पापसमूह का नाश हो जाता है, इसमें कौन सा आश्चर्य है ॥३॥ हे मुने ! वही पुण्य परम पवित्र तथा मनोहर है तथा केवल पुण्यों से वह प्राप्त होने वाला है, वैशाख के महीने में श्रीहरि के पवित्र नामों का संकीर्तन अत्यन्त कल्याणकारी है ॥४॥ वे पुरुष धन्य है जो वैशाख के महीने में भगवान् मधुसूदन के नामों का स्मरण करते हैं । आप पुनः उन्हीं श्रीभगवान के कुछ पवित्र चरित्रों को मुझे सुनायें ॥५॥ **सूतजी ने कहा—** श्रीभगवान् के प्रिय उस श्रेष्ठ राजा अम्बरीष की वाणी को सुनकर देवर्षि नारदजी प्रसन्न हो गये और वैशाख मास में स्नान करने के लिए उत्कण्ठित होने पर भी वे प्रेम पूर्वक श्रीभगवान् की कथा कहने लगे ॥६॥ **नारदजी ने कहा—** राजन् ! यह सत्य है कि भगवान् मुकुन्द की कथारस की चर्चा अत्यन्त पवित्र है । श्री हरि की आराधना करने वाले आपके साथ यह चर्चा वैशाख मास के स्नान से भी अधिक पुण्य प्रद है ॥७॥ जो धर्म करने के लिए ही जीवित रहता है, श्रीहरि की प्रसन्नता के लिए ही धर्म करता है, तथा जो दिन-रात का उपयोग पुण्य कार्य करने के लिए करता है, मैं उसको संसार में वैष्णव मानता हूँ ॥८॥ राजन्! मैं वैशाख मास में स्नान करने से होने वाले फल का कुछ वर्णन करता हूँ । वैशाख स्नान से प्राप्त होने वाले सम्पूर्ण फलों का वर्णन तो मेरे पिता ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते हैं ॥९॥ उस वैशाख मास में सर्वोत्तम नर्मदा नदी में स्नान करने मात्र से पापी जीव भी मुक्ति प्राप्त कर लिए ॥१०॥ प्राचीन काल में तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में सत्यवादी तथा विख्यात धार्मिक मुनिशर्मा नामक ब्राह्मण पृथिवी पर भ्रमण कर रहे थे ॥११॥ वे शम, दम, क्षान्ति तथा सन्तोष से सम्पन्न थे । वे पितृकार्यों को श्रुतियों एवं स्मृतियों के विधानानुसार करते थे ॥१२॥ मधुर वाणी बोलते थे और श्रीहरि की पूजा करते रहते थे, वे त्रिकाल के

युक्तो मधुरवाक्येषु संयुक्तो हरिपूजने। युक्तो वैष्णवसंसर्गे त्रिकालज्ञानवान्मुनिः ॥१३॥
स्वकर्मणि रतो धीरो हृदयालु प्रियाप्रियः। दमा लुरतिमेधावी तत्त्वविद् ब्राह्मणप्रियः ॥१४॥
माधवे मासि रेवायां स्नानार्थं प्रतिसञ्चरन्। अग्रतः पञ्चपुरुषान् न्ददर्शातीव दुःखितान् ॥१५॥
परस्परमसंसर्गकारिणः कृष्णविग्रहान्। वटच्छायामुपाश्रित्य समासीनानवस्थितान् ॥१६॥
पश्यतो दिक्षु सर्वासु दुरितोद्विग्नचेतसः। तानालोक्य द्विजश्रेष्ठश्चिन्तयामास विस्मितः ॥१७॥
अत्रैते के नरा भीता विपिने दीनचेष्टिताः। चौरा वा विकृताकारा दृश्यन्ते पापभागिनः ॥१८॥
परस्परं च भाषन्तः कृशाः कृष्णवपुः श्रियः ।
यावदेवं स विप्राग्यो विचारयति धीरधीः ॥१९॥
तावदागम्यते सर्वे दूरस्था मुनिमादरात्। वद्धाञ्जलिपुटा भूत्वा प्रणम्योचुरिति स्फुटम् ॥२०॥

पञ्च पुरुषा ऊचुः

भव्यं भवन्तं पुरुषोत्तमं वै विभ्राजमानं चरितेन मान्यम् ।
मन्यामहे विप्र ! दयालुमुख्यं वाचं समाकर्णय नोऽसि मैत्रः ॥२१॥

सन्तः प्रतिष्ठा दीनानां दैवादुद्भूतपाप्मनाम्। आर्तानामार्तिहन्तरो दर्शनादेव साधवः ॥२२॥
अहं पाञ्चालदेशीयः क्षत्रियो वीरवाहनः। ब्राह्मणं हतवान्मोहाच्छरेण शब्दवेधिना ॥२३॥
शिखासूत्रविहीनस्तु तिलकेन विवर्जितः। अटामि जगतीमेनां बह्मघ्नोऽहमिति ब्रुवन् ॥२४॥
ब्रह्मघ्नायातिपापाय भिक्षामह्यं प्रदीयताम्। एवं सर्वेषु तीर्थेषु भ्रमन्नत्रास्मि चागतः ॥२५॥

ज्ञाता महर्षि थे और श्रीवैष्णवों के संसर्ग में रहते थे ॥१३॥ वे अपने विहित कर्मों को करने वाले, धैर्य सम्पन्न तथा सुहृदय थे । वे अत्यन्त मेधावी, दम का पालन करने वाले, तत्त्ववेत्ता और ब्राह्मणों के प्रिय थे॥१४॥ वैशाख के महीने में नर्मदा नदी में स्नान करने के लिए सञ्चरण करते हुए उन्होंने अपने समक्ष पाञ्च पुरुषों को देखा । वे सभी अत्यन्त दुःखी थे ॥१५॥ उन सबों का परस्पर में कोई सम्बन्ध नहीं था और उन सबों का शरीर काला था । वे सभी एक वटवृक्ष की छाया में बैठे हुए थे ॥१६॥ वे सभी दिशाओं में देख रहे थे । उन सबों का चित्त पाप के कारण उद्विग्न था । उन सबों को देखकर वे ब्राह्मण श्रेष्ठ आश्चर्यित होकर सोचे ॥१७॥ इस वन में दीन बने हुए ये कौन मनुष्य हो सकते हैं ? इनके आकार विकृत क्यों हैं ? क्या ये कोई पापी चोर हैं ?॥१८॥ ये परस्पर में बाते करते हैं, दुर्बल हैं तथा इनके शरीर की शोभा काली पड़ गयी है । जब वे धैर्य सम्पन्न श्रेष्ठ ब्राह्मण इस तरह से विचार कर रहे थे॥१९॥ उसी समय वे सब आकर दूर से हाथ जोड़कर मुनि को प्रणाम करके कहे ॥२०॥ पाञ्चों पुरुषों ने कहा— हम लोग समझते है कि आप भव्य पुरुषों में उत्तम, शोभित होने वाले तथा मान्य चरित वाले हैं । हे विप्र! आपको हमलोग मुख्य दयालु मानते हैं । आप हमारे मित्र है, आप हमारी बात सुनें ॥२१॥ सज्जन पुरुष भाग्यवशात् दर्शन ही देकर दीन तथा पापी जीवों के आधार बन जाते हैं तथा दुःखी जीवों के दुःख को विनष्ट करने वाले होते हैं ॥२२॥ मैं पाञ्चाल देश का क्षत्रिय हूँ । मेरा नाम वीरवाहन है । अज्ञान वशात् मैंने शब्दवेधी बाण से ब्राह्मण को मार दिया है ॥२३॥ शिखा एवं सूत्र से विहीन और तिलक से रहित मैं ब्रह्मघाती हूँ इस प्रकार से कहते हुए मैं पृथिवी पर सञ्चरण करता हूँ ॥२४॥ मुझ ब्रह्मघाती को भिक्षा दीजिये । इस तरह से सभी तीर्थों में घूमते हुए कहता रहता हूँ । इसी प्रसङ्ग में मैं यहाँ आया हूँ ॥२५॥ हे

ब्रह्महत्या न मेऽद्यापि प्रयाति मुनिसत्तम !। एवं मे वर्षमेकं हि व्यतीतं कुर्वतो विभो ॥२६॥
दह्यमानस्य पापेन शोकाकुलितचेतसः। चन्द्रशर्माऽपरो विप्रो योऽयं संलक्ष्यते द्विज !॥२७॥
गुरुघाती स तु ब्रह्मन्मोहाकुलितमानसः। मोहाकुलितचित्तत्वाद्गुरुघातक उच्यते ॥२८॥
निवसन्मागधे देशे सन्त्यक्तः स्वजनैस्ततः। दैवादसावपि मुने ! भ्रमन्निह समागतः ॥२९॥
शिखासूत्रविहीनस्तु विप्रलिङ्गविवर्जितः। मया पृष्टस्तु वृत्तान्तं सत्यमेवावद द्विजः ॥३०॥
वसता यद्गुरोर्गेहे क्रोधाकुलितचेतसा। महामोहगतेनापि यथा वै घातितो गुरुः ॥३१॥
तेन पापेन दग्धोऽसौ वर्त्तते शोकपीडितः। तृतीयोऽयं पुनः स्वामिन्वेदशर्मा समाहितः ॥३२॥
सुरापो ब्राह्मणो जातो मोहाद्वेश्याप्रसङ्गतः। पृष्टो मया यमपि मे यथावृत्तं तथाब्रवीत् ॥३३॥
आत्मनश्चेष्टितं सर्वं मनस्तापेन पीडितः। निरस्तः सर्वलोकैश्च भार्यावन्धुजनैरपि॥३४॥
तेन पापेन संलिप्तो भ्रमन्नत्रायमागतः। चतुर्थो विधुरो नाम वैश्योऽयं गुरुतल्पगः ॥३५॥
मोहान्मासत्रयं यावद्वेश्याभूतां च भारतम्। बुभुजे स विदेहस्थां ज्ञाततत्त्वस्ततश्चरन् ॥३६॥
दुःखितोऽभ्यागमद्भूमिं भ्रमन्निह मुने पुनः। पञ्चमोऽयं महापापी पापिसंसर्गकारकः ॥३७॥
प्रत्यहं धनलोभेन स्तेयादिकृतवानघम् ।
वैश्योऽतिपातकैः क्रान्तस्ततस्त्यक्तो जनैः स्वयम् ॥३८॥
निर्विण्णमानसो दैवान्नन्दनामेह सङ्गतः। एवं पञ्चापि पापिष्ठाः स्थानमेकमुपागताः ॥३९॥
कः कस्यापि न सम्पर्कं भोजनाच्छादनादिभिः ।
करोति च महाभाग ! बिना वार्ता द्विजोत्तम ! ॥४०॥

मुनिश्रेष्ठ ! मुझे ब्रह्महत्या नहीं छोड़ती है । हे विभो ! इस तरह से करते हुए मुझे एक वर्ष बीत गया॥२६॥ मुझे पाप जला रहा है, मेरा अन्तःकरण शोकाकुल है । ये जो दूसरे दिखायी देते हैं, ये चन्द्रशर्मा नामक ब्राह्मण हैं । अज्ञानवशात् इन्होंने अपने गुरु को मार दिया है । अतएव ये गुरुघाती हैं । इनका मन मोह से व्याकुल है ॥२७-२८॥ हे मुने ! ये मगध देश के निवासी हैं, इनके बान्धवों ने उनको त्याग दिया है । दैववशात् घूमते हुए ये भी यहाँ आये हैं ॥२९॥ ये शिखा और सूत्र रूपी ब्राह्मण के चिह्नों से रहित हैं । मैंने इनसे जब पूछा तो इन्होंने मुझे अपना चरित्र बतलाया ॥३०॥ गुरुकुल में रहते हुए इन्होंने क्रोधवशात् जिस तरह से अपने गुरु का वध किया ॥३१॥ उस पाप के कारण दग्ध हुए ये शोक सन्तप्त हैं । हे स्वामिन् ! ये तीसरे वेदशर्मा हैं ॥३२॥ ये वेश्या के सङ्ग में पड़कर अज्ञान वशात् सुरापायी हो गये । मैंने जब इनसे पूछा तो इन्होंने मुझे अपना वृत्तान्त बतलाया ॥३३॥ मानसिक सन्ताप से ये सन्तप्त हैं । इनको सभी लोगों तथा पत्नी एवं बान्धवों ने त्याग दिया है । इन्होंने अपनी सारी कथा बतलायी है ॥३४॥ उसी पाप से संलिप्त होकर ये भी यहाँ आये हैं । ये चौथे पुरुष विधुर नामक वैश्य हैं । ये गुरुतल्पगामी हैं ॥३५॥ इनकी गुरु माता विदेह राज्य में जाकर वेश्या हो गयी थी । ये इस बात को नहीं जानते थे । ये उसका तीन मास तक उपभोग किए । जब इनको वास्तविकता का पता चला तो अपने पाप का प्रायश्चित करने के लिए पृथिवी पर सञ्चरण करने लगे ॥३६॥ हे मुने ! ये भी घूमते हुए यहाँ पर आये हैं । यह पाञ्चवाँ पुरुष महापापी है । पापियों के साथ रहता था ॥३७॥ यह धन के लोभ में प्रतिदिन चोरी करता था । इस बात को जानकर इसके बान्धवों ने इसे त्याग दिया है ॥३८॥ हम पाञ्चों

विशन्त्येकासनेनैव न स्वपन्त्येकसंस्तरे। एवं दुःखसमाक्रान्ता नानातीर्थेषु वै गताः ॥४१॥
नास्माकं पातकं घोरं प्रयाति मुनिसत्तम !। दृष्ट्वा भवन्तं दीप्यन्तं प्रसन्नानि मनांसि नः ॥४२॥
वदन्ति दुरितप्रान्तं साधोस्ते पुण्यदर्शनात्। उपायं वद नः स्वामिन्यथा पापक्षयो हि नः ॥४३॥
ज्ञायते करुणोऽस्माभिर्विप्रवेदार्थवित्प्रभो। आर्तानां मार्गमाणानां पश्चात्तापमुपेयुषाम् ॥
मोहादवाप्तपापानां त्वमुद्धर्ताऽसि निश्चितम् ॥४४॥

नारद उवाच

तेषामिति वचः श्रुत्वा मुनिशर्मा मुनिस्ततः। इदमाह विचार्येति करुणावरुणालयः ॥४५॥

मुनिशर्मोवाच

यूयमज्ञानतः प्राप्तपातकाः सत्यभाषिणः । अनुतापयुतास्तस्मादनुग्राह्या मयाऽधुना ॥४६॥
शृणुध्वं मे वचः सत्यमूर्ध्वबाहुर्वदाम्यहम्। यन्मयाऽङ्गिरसः पूर्वं श्रुतं मुनिसमागमे ॥४७॥
दृष्टं वेदेषु शास्त्रेषु श्रुतं गुरुमुखात्तथा । विष्णुनाराधितेनादौ स्वयमुक्तं च तत्त्वतः ॥४८॥
न तृप्तिरशनादन्या न गुरुर्जनकादपि। न पात्रमन्यद्विप्रेभ्यो न देवः केशवात्परः ॥४९॥
न गङ्गया समं तीर्थं न दानं सुरभीसमम् । न गायत्र्या समं जाप्यं न द्वादश्या समं व्रतम्॥५०॥
न भार्यया समं मित्रं न धर्मो दयया समः। न स्वातन्त्र्यसमं सौख्यं गार्हस्थ्यान्नाश्रमो वरः॥५१॥
न सत्यात्पर आचारो न सन्तोषात्परं सुखम् ।
न माधवसमो मासो महापापहरः परः ॥५२॥

पापी हैं । अत्यन्त दुःखी मन वाले हम सभी भाग्यवशात् यहाँ पर एकत्रित हुए हैं ॥३९॥ हममें से कोई भी किसी के साथ भोजन आदि का सम्बन्ध नहीं रखता है । हमलोग परस्पर में बाते भर करते हैं ॥४०॥ हमलोग न तो एक आसन पर बैठते हैं, न एक बिस्तर पर सोते हैं । इस तरह से दुःखी होकर हमलोग अनेक तीर्थों में गये ॥४१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! हमलोगों का भयङ्कर पाप विनष्ट नहीं होता है । आपको देदीप्यमान देखकर हमलोगों का मन प्रसन्न हो गया है ॥४२॥ सज्जनों के दर्शन से पापों का विनाश हो जाता है । ऐसा लोग कहते हैं । हे स्वामिन् ! आप हमें उस उपाय को बतलायें जिससे कि हमलोगों के पाप का विनाश हो जाय ॥४३॥ हमलोगों को लगता है कि आप करुणा करने वाले वेदज्ञ ब्राह्मण हैं । हमलोग पश्चात्ताप करने वाले तथा उपाय का अन्वेषण करने वाले दुःखी जीव हैं । अज्ञानवशात् हमलोगों से पाप हो गया है । आप हमलोगों का उद्धार करें ॥४४॥ **नारदजी ने कहा—** उन पाँचों की वाणी को सुनकर करुणा-वरुणालय मुनिशर्मा ने विचार करके कहा ॥४५॥ **मुनिशर्मा बोले—** तुमलोग सत्य बोलते हो, तुमलोग अज्ञान वशात् पापी हो गये हो । अपने किए हुए पाप के कारण संताप करते हो । अतएव मेरे अनुग्रह के पात्र हो ॥४६॥ मैं अपनी भुजा उठाकर कहता हूँ कि तुमलोग मेरी बात को सुनो उसे मैंने अङ्गिरा महर्षि से सुना था ॥४७॥ मैंने इसे शास्त्रों में देखा है, गुरुजनों के मुख से सुना है तथा आराधना से प्रसन्न हुए भगवान् विष्णु ने इसे उपदेश भी दिया है ॥४८॥ भोजन से बढ़कर कोई तृप्ति नहीं होती है, और भगवान् केशव से बड़ा कोई देवता नहीं है ॥४९॥ गङ्गा के समान कोई तीर्थ नहीं है, गोदान के समान कोई दान नहीं होता है, गायत्री के समान जपने योग्य कोई मन्त्र नहीं है और द्वादशी के समान कोई व्रत नहीं है ॥५०॥ पत्नी के समान कोई मित्र नहीं है, दया के समान कोई धर्म नहीं होता है स्वतन्त्रता

विधिनऽनुष्ठितो भक्त्या मधुसूदनवल्लभः । गङ्गादिषु च तीर्थेषु विशेषेण सुदुर्लभः ॥५३॥
प्रायश्चित्तानि सर्वाणि द्वादशाब्दमुखानि च । तावद्गर्जन्ति पापानि यावन्नायाति माधवः ॥५४॥
वैशाखमखिलं मासं यः स्नाति हरितत्परः। हरिपादसमुद्भूते सलिले विमलाशयः॥५५॥
स एव सर्वपापैस्तु मुक्तो यायात्परां गतिम् ।
निजपापौघनिष्कृत्यै वक्तव्यं तस्य किन्नरैः ॥५६॥
मासे तु वै माधवसंज्ञकेऽस्मिन्यः स्नाति पापैः स विमुच्यते हि ।
मेषस्थिते सम्प्रति नर्मदायाः शर्मप्रदे वारिणि वारिताघे ॥५७॥
दुर्लभा हि महानद्यो माधवे मासि सर्वशः । ततोऽपि दुर्लभा गङ्गा रेवा च यमुना तथा ॥५८॥
एतासु तिसृषु प्रायः प्राप्यैकामपि सादरम् ।
यः स्नाति माधवे मासि विपापः स हरिं व्रजेत् ॥५९॥
तस्मादहो सह मया सुकृतैकसारे वैशाखमासि च भवन्त उपेत्य रेवाम् ।
मज्जन्तु पातककृतो मुनिवृन्दजुष्टे रेवाजले निखिलपापभयापहत्यै ॥६०॥
एव मुक्तास्ततः सर्वे मुदिता मुनिना सह । जग्मुस्ते पापिनो रेवां शंसन्तोऽद्भुतकारिणीम् ॥६१॥
मुनिशर्मा ततो गच्छंस्तैस्तथानुगतो नरैः । ददर्श पथिसन्त्रस्तान्पिशाचानष्टभीषणान् ॥६२॥
कुर्वतो विविधाञ्छब्दान्भ्रमतोऽपि ततस्ततः । ऊद्‌र्ध्वकेशोद्‌र्ध्वरक्तांश्च कृष्णदन्तकृशोदरान् ॥६३॥
अरण्ये कण्टकाक्रान्ते वृक्षपानीयवर्जिते। सम्मुखं धावतो दृष्ट्वा भयसंविग्नमानसः ॥६४॥

के समान कोई सुख नहीं है और गार्हस्थ्य से बड़ा कोई आश्रम नहीं है ॥५१॥ सत्य से बड़ा कोई आचार (सदाचार) नहीं है, सन्तोष से बढ़कर कोई सुख नहीं है, वैशाख के समान कोई महीना नहीं है वह बड़े-से-बड़े पाप को विनष्ट कर देता है ॥५२॥ यह मास भगवान को प्रिय है, गङ्गा आदि तीर्थो में इसका विधि पूर्वक अनुष्टान कर पाना अत्यन्त दुर्लभ है ॥५३॥ बारह वर्षो तक समस्त प्रायश्चित किए गये पाप तब तक गर्जना करते हैं जब तक कि वैशाख का महीना नहीं आ जाता है ॥५४॥ जो व्यक्ति शुद्ध अन्तःकरण से सम्पूर्ण वैशाख के महीने में श्रीहरि की भक्ति करते हुए गङ्गा नदी में स्नान करता है ॥५५॥ वह सभी पापो से छूटकर मुक्ति को प्राप्त कर लेता है और किन्नर पुरुष उसके पापों के विनाश की उद्घोषण करते हैं ॥५६॥ मेष राशि के सूर्य के होने पर जो व्यक्ति वैशाख के महीने में नर्मदा नदी के पाप विनाशक जल में स्नान करता है वह पापों से मुक्त हो जाता है ॥५७॥ सम्पूर्ण वैशाख के महीने में महानदियों का मिलना दुर्लभ होता है, उसमें भी गङ्गा, रेवा तथा यमुना नदियों का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है ॥५८॥ इन तीनो नदियों में से किसी एक नदी को प्राप्त करके जो वैशाख के महीने में आदर पूर्वक स्नान करता है वह पापों से रहित होकर श्रीहरि के लोक में जाता है ॥५९॥ अतएव हे पापियों ! आपलोग अपने पापों का विनाश करने के लिए पुण्यों के सार स्वरूप वैशाख के महीने में मेरे साथ रेवा नदी मे चलकर मुनिसमूह से सेवित रेवा के जल में स्नान करें ॥६०॥ इस तरह से कहे जाने पर वे सब उन मुनि के साथ प्रसन्नता पूर्वक अद्भुत कर्म को करने वाली रेवा नदी की प्रशंसा करते हुए रेवा नदी में गये ॥६१॥ उन सबों के द्वारा अनुसरण किए जाते हुए मुनि शर्मा रास्ते में अत्यन्त भयभीत भयङ्कर आठ पिशाचों को देखे ॥६२॥ वे सब इधर-उधर घूमते हुए अनेक प्रकार के शब्द कर रहे थे । उनके लाल-लाल केश खड़े-खड़े थे ।

नमोनारायणायेति रक्षरक्षेति चाब्रवीत् ॥६५॥

नारायणायेति नमोऽभिधानमाकर्ण्य धर्मैकनिधानमुच्चैः ।
भवान्तरे ते मनसा पिशाचा ययुर्निजादृष्टवशेन लब्धाः ॥६६॥
विनयान्वितमनसो मुनिशर्मा विलोक्य तान्। उवाच मधुराभाषी के यूयं विकृता नराः ॥६७॥
किं वा केन कृतं कर्म येन प्राप्ता च वैकृतिः ।
कथमेवं विधाः सर्वे दुःखिनोऽतीव भीषणाः ॥६८॥

प्रेता ऊचुः

क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं नानादुःखचया कुलाः ।
कृतबुद्धे हृदि क्रूरा नष्टसंज्ञा विचोतसः ॥६९॥
न जानीमो दिशः क्वापि मूढा मानवघातिनः ।
तदेतद्दुःखमाख्यातमेतदेवासुखं पुनः ॥७०॥
प्रभातमिव सम्भाति भास्करोदयदर्शनात् । श्रुत्वा नारायणेत्युच्चैर्भाषितं तव कोमलम् ॥७१॥
दृष्ट्वा च दर्शनं विप्र शुद्धभावं गता वयम् ।
दर्शनेनैव ते विप्र ! नामश्रवणतो हरेः ॥७२॥
भवान्तरमनुप्राप्ता वयं प्राप्तदयालवः। विनाशयत्यपयशो बुद्धिं विशदयत्यपि ॥७३॥
प्रतिष्ठापयति प्रायो नृणां वैष्णवदर्शनम्। अहं पर्युषितो नाम सूचकोऽयं द्वितीयकः ॥७४॥

उन सबों के दाँत काले थे तथा पेट सट गया था ॥६३॥ वे सब काण्टों से भरे वन में थे और वहाँ न तो कोई वृक्ष था और न कोई जल था । वे सब मुनि के सामने दौड़ रहे थे । उन सबों को देखकर मुनि शर्मा भयभीत हो गये । उन्होंने कहा— हे भगवन् नारायण ! आपको नमस्कार है, आप मेरी रक्षा करें ॥६४-६५॥ जोर से कहे गये नमो नारायणाय धर्मों के आकर इस शब्द को सुनकर अपने अदृष्टवशात् वे सभी पिशाच मन से अपने पूर्व योनि को प्राप्त कर लिए ॥६६॥ उन सबों को विनयावनत् देखकर मधुर वाणी बोलने वाले मुनि ने पूछा कि विकृत आकार वाले तुमलोग कौन हो ?॥६७॥ तुमलोगों ने कौन सा कर्म किया है ? जिसके कारण तुमलोगों का आकार विकृत हो गया है ? तुमलोग इस तरह से भयङ्कर आकार वाले तथा दुःखी क्यों हो ?॥६८॥ **प्रेतों ने कहा**— हमलोग सदा भूख तथा प्यास से व्याकुल रहते हैं, अनेक प्रकार के कष्टों को हमलोग भोगते हैं । हमलोगों का हृदय क्रूर हो गया है, हमारी संज्ञा नष्ट हो गयी है, अतएव हमलोग अचेत रहते हैं ॥६९॥ हमलोगों को दिशाओं का ज्ञान नहीं है, अज्ञानी हैं और मनुष्यों को मार देते हैं । हमलोगों ने अपना दुःख बतलाया, हमलोगों को यही कष्ट है ॥७०॥ सूर्योदय को देखकर हम जानते हैं कि प्रभात काल हो गया । आपके नारायण इस कोमल वाणी को सुनकर॥७१॥ हे ब्रह्मन ! आपका दर्शन करके हमलोगों का भाव शुद्ध हो गया है । हे विप्र ! आपके दर्शन से तथा श्रीहरि के नाम को सुनने से ॥७२॥ हमलोग भावान्तर को प्राप्त करके दयालु हो गये हैं। हमारा अपयश विनष्ट हो गया है और हमलोगों की बुद्धि शुद्ध हो गयी है ॥७३॥ वैष्णव पुरुषों का दर्शन, मनुष्यों को प्रतिष्ठित कर देता है । मेरा नाम पर्युषित है, इस दूसरे का नाम सूचक है ॥७४॥ यह तीसरा शीघ्रग है और चौथा रोधक है । पाँचवें का नाम लेखक है ॥७५॥ छठे का नाम वाग्दुष्ट है, सातवें का

शीघ्रगो रोधकश्चान्यः पञ्चमोऽयं च लेखकः ।
षष्ठोऽयमिति वाग्दुष्टः सप्तमोऽयं विदैवतः ।
नित्यं याचनकश्चायमष्टमः कष्टदायकः ॥७६॥

मुनिशर्मोवाच

प्रेतानां कर्म जातानां नामानि भवतां कुतः। किं तत्कारणमुद्दिश्य ये न यूयं सनामकाः ॥७७॥

प्रेता ऊचुः

मया स्वादु सदा भुक्तं दत्तं पर्युषितं द्विजे ।
आज्ये सति निराज्यं च तेन पर्युषितोऽस्म्यहम् ॥७८॥
मिथ्यामिथ्यापरच्छिद्रमर्मान्वेषी स्वभावतः। सूचयामास तेनाऽसौ सूचकोऽशुचिरातुरः ॥७९॥
शीघ्रं नश्यति विप्रेण याचितः क्षुधितेन वै। एतत्कारणमुद्दिश्य शीघ्रगो द्विजसत्तम ! ॥८०॥
गृहोपरि सदा स्वादु भुक्तमेतेन पापिना। एकाकिना कुमनसा तेनासौ रोधकः स्मृतः ॥८१॥
मौनेनापि स्थितो नित्यं पादेन लिखते महीम् ।
अस्माकमपि पापिष्ठो लेखको लोकसङ्गतः ॥८२॥
गुणिनोऽयं गुणान्द्वेष्टि निर्गुणे च गुणज्ञताम् ।
असंज्ञे ज्ञानयोगी च वाग्दुष्टोऽसौ ततः स्मृतः ॥८३॥
नास्तिक्यभावादनिशं पितृदैवतमानवान् । न मन्यते च सत्कर्मपापस्तेन विदैवतः ॥८४॥
सदा याचनको मिथ्यामिथ्यादौर्गत्यदर्शकः । स भूतोद्वेजको लुब्धस्तेन याचनकस्त्वयम् ॥८५॥
एभिः पूर्वकृतैः पापैर्भुक्त्वा नरकयातनाम्। प्रेतास्ते दर्शनादद्य पुनर्जाताः स्म सुस्थिताः ॥८६॥
एतत्ते सर्वमाख्यातमात्मवृत्तन्तसम्भवम् । पृष्टं च यदि ते श्रद्धा पृच्छाऽन्यत्कथयामि ते॥८७॥

नाम विदैवत है और यह आठवाँ सदा कष्ट देने वाला याचकन है ॥७६॥ **मुनिशर्मा ने कहा**— प्रेत तो कर्म के कारण होते हैं, तुमलोगों का नाम कैसे हुआ ? तुमलोगों के नाम का कारण क्या है ?॥७७॥ **प्रेतों ने कहा**— मैं सदा स्वादिष्ट वस्तुएँ खाता था और ब्राह्मण को जूठा देता था । घी के रहने पर भी घृत रहित भोजन देता था इसीलिए मेरा नाम पर्युषित है ॥७८॥ यह दूसरा दूसरों का मिथ्या छिद्रान्वेषण करता था और उसको सूचित करता था; इसीलिए इसका नामसूचक है । यह सदा अपवित्र और रोगी रहने वाला है ॥७९॥ यदि कोई भूखा ब्राह्मण इससे कुछ माँगता था तो यह वहाँ से शीघ्र ही पलायन कर जाता था । हे द्विज श्रेष्ठ ! इसका नाम शीघ्रग है । यह चौथा पापी कुत्सित मन वाला है अपने घर में अकेले सदैव स्वादिष्ट वस्तुएँ खाता था । अतएव इसका नाम रोधक है ॥८०-८१॥ यह पापी मौन रहकर अपने पैर से पृथिवी को कुरेदते रहता था, यह हमसवों से अधिक पापी है, अतएव इसका लोक सङ्गत नाम लेखक है ॥८२॥ यह गुणी पुरुषों के गुण से द्वेष करता था और गुणहीन को गुणी मानता था । अज्ञानियों को यह उपदेश देता था अतएव इसका नाम वाग्दुष्ट है ॥८३॥ नास्तिकता के कारण यह पितरों तथा देवताओं को नहीं मानता था यह सत्कर्म नहीं मानता था अतएव इसका नाम विदैवत है ॥८४॥ यह सदा झूठी याचना करता था और अपनी झूठी दुर्गति का प्रदर्शन करता था, यह लोभी था तथा जीवों को उद्विग्न करता था अतएव इसका नाम याचनक है ॥८५॥ इन पूर्वकृत कर्मों के फल स्वरूप नारकीय यातनाओं

ब्राह्मण उवाच

ये जीवा भुवि तिष्ठन्ति सर्व आहारमूलकाः ।
युष्माकमपि आहारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥८८॥

प्रेता ऊचुः

श्रृणुष्वाहारमस्माकं सर्वसत्त्वविगर्हितम्। यं श्रुत्वा निन्दसे ब्रह्मन्भूयो भूयश्च नित्यशः ॥८९॥
श्लेष्ममूत्रपुरीषेण योषिदङ्गमलेन च। गृहाणि त्यक्तशौचानि तानि भुञ्जन्ति तत्र वै ॥९०॥
स्त्रीदग्धानि प्रकीर्णानि प्रकीर्णायस्कराणि च ।
कुत्सितानि मलेनापि प्रेता वै तत्र भुञ्जते ॥९१॥
माधवं यत्र नार्चन्ति स्त्रीजीतानि गृहाणि च ।
दयाक्षान्तिविहीनानि प्रेतास्तत्रैव भुञ्जते ॥९२॥
यत्राभद्रा गृहे वाचः शौचहीनाश्च योषितः । कलहो यत्र सततं प्रेतास्ते तत्र भुञ्जते ॥९३॥
न यत्र जामयो गेहे पूज्यन्ते न वराः स्त्रियः ।
यत्र दुर्जनसंसर्गस्तत्र भोक्ष्यामहे वयम् ॥९४॥
न यत्र हरिसेवा वा न कथा यत्र वैष्णवी। न यत्र वैष्णवी प्रीतिः प्रेता वै तत्र भुञ्जते ॥९५॥
येषामेवं गृहे प्रीता भुञ्जते तेऽपि सत्वरम् । प्रेता भवन्ति पापेन निजवंशविनाशकाः ॥९६॥
तस्य मे जायते ब्रह्मन्वदतो भोजनं निजम् । अस्मात्पापतरं चान्यत्किञ्चिद्वक्तुं न शक्यते ॥९७॥
निर्विण्णः प्रेतभावेन पृच्छामि त्वां दृढव्रतम् ।
यथा न जायते प्रेतो मुक्तिः प्रेतत्वतो यथा ॥९८॥

को भोग कर हमलोग प्रेत हो गये हैं । आपका दर्शन करके हमलोग सुस्थिर हो गये ॥८६॥ इस तरह से आपने जो पूछा मैंने अपना सारा वृत्तान्त आपको बतला दिया । आप जो पूछना चाहते हों वह हमसे पूछें मैं बतलाता हूँ ॥८७॥ **ब्राह्मण ने कहा**— संसार में रहने वाले सभी जीवों का मूल आधार भोजन है, तुमलोग ठीक-ठीक बतलाओ कि तुमलोगों का आहार क्या हैं ॥८८॥ **प्रेतों ने कहा**— हमलोगों का आहार सभी जीवों के लिए निन्दित है । उसे आप सुनें । हे ब्रह्मन् ! उसको सुनकर आप बार-बार निन्दा करेंगे। कफ, मूत्र, मल तथा स्त्रियों के अङ्गों के मल, अपवित्र तथा परित्यक्त गृहों में बैठकर हमलोग भोजन करते हैं ॥८९-९०॥ स्त्रियों के द्वारा जलाये, छींटे पड़े, इधर-उधर पड़े हुए निन्दित पदार्थों को तथा मल को प्रेत खाते हैं ॥९१॥ जहाँ पर श्रीहरि की पूजा नहीं की जाती है, जिस घर में स्त्री का ही वर्चस्व हो, जिस घर में दया और क्षमा का अभाव हो, वहाँ पर प्रेत भोजन करते हैं ॥९२॥ जहाँ पर अभद्र बातें कही जाती हैं, स्त्रियाँ अपवित्र रहती हैं, जहाँ सदैव कलह होता है वहीं पर प्रेत भोजन करते हैं ॥९३॥ जिस गृह में न तो कुल स्त्रियों का समादर होता है और श्रेष्ठ स्त्रियों का असमादर होता है जहाँ पर दुष्टों का संसर्ग बना रहता है, वहाँ पर प्रेत भोजन करते हैं ॥९४॥ जहाँ पर न तो श्रीहरि की सेवा होती है और न तो श्रीहरि की कथा होती है । जहाँ पर वैष्णवों का प्रेम नहीं होता है, वहाँ पर प्रेत भोजन करते हैं ॥९५॥ जिन लोगों के घर में प्रेत प्रेम पूर्वक भोजन करते हैं, वे लोग भी अपने पाप के कारण अपने वंश का विनाश करने वाले प्रेत ही होते हैं ॥९६॥ हे ब्रह्मन् ! मुझे अपना भोजन बतलाते हुए बहुत अधिक पाप होता

ब्राह्मण उवाच

एकादश्यादिभिः पुण्यैर्व्रतैरच्युतकीर्तनैः । देवतातिथिपूजाभिर्गुरुपूजादिभिस्तथा ॥९९॥
आचारैः साधुचरितैः श्रुतिस्मृत्युदितैर्दिनैः । एवं श्राद्धक्रियादानैर्यथा विधिविनिर्मितैः ॥१००॥
विधिविनिर्मितै दयादानदमक्षान्तिशीलशिष्टाभिवादनैः ।
इत्येमवादिभिधमैः प्रेता नस्युः कुलेऽपि वै ॥१०१॥
दयादानदमक्षान्तिशीलशिष्टाभिवादनैः । इत्येवा दिभिर्धर्मैः प्रेता न स्युः कुलेऽपि वै॥१०२॥
गोविप्रतीर्थामरपर्वताग्र्यनदीनदाश्वत्थतरूननेकशः ।
यो वन्दते बन्धुजने विनीतः प्रेतो न लोके भवतीह नूनम् ॥१०३॥
कर्मादर्च्चयते युक्तो विशेषादपि मानवः। गङ्गादिपुण्यतीर्थेषु तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥१०४॥
नाहं वर्षसहस्रेण वक्तुं शक्तः स्वयं विभुः। दर्शनादेव तस्यापि मुक्तः प्रेतत्वतो भवेत् ॥१०५॥
ऊर्जमूर्जस्वलं मासमथ दामोदरप्रियम् । तपसामुत्तमं मासं तपोमाधववल्लभम् ॥१०६॥
येनैव साधनेन स्यात्सर्वं कृत्यं हि साधितम् ।
ब्रह्मविद्यामताभ्येति सा लक्ष्मीर्विश्वकारिणी ॥१०७॥
तस्या वासो यतो मासो माधवोऽसौ ततः स्मृतः ।
न माधवसमो देवो यथा देवेषु निश्चितम् ॥१०८॥
तथा मासेषु सर्वेषु न मासो माधवप्रियः । तस्य माधवमासस्य माहात्म्यमपि भक्तितः ॥१०९॥
श्रुत्वा विमुच्यते प्रेतयोनितः किं विधानतः ।
सतां सम्भाषणादेव पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥११०॥

है, अतएव उसे मैं नहीं बतला सकता हूँ ॥९७॥ मैं प्रेत भाव से उदास हो गया हूँ । आप दृढव्रत हैं । आप मुझे उस उपाय को बतलायें जिससे प्रेतत्व की प्राप्ति न हो और प्रेतत्व से मुक्ति मिल जाय ॥९८॥ **ब्राह्मण ने कहा**— एकादशी आदि पवित्र व्रतों के करने से, भगवान् अच्युत का कीर्तन करने से, देवता और अतिथि की पूजा करने से तथा गुरुजनो की पूजा करने से ॥९९॥ सदाचार का पालन करने से, श्रुतियों तथा स्मृतियों में कहे गये दिनों में श्राद्ध आदि क्रियाओं के करने से तथा विधिपूर्वक दान करने से ॥१००॥ दया, दान, दम, क्षमा, शील, शिष्ट पुरुषों का अभिवादन करने से वंश में कोई प्रेत नहीं होता है ॥१०१॥ जो मनुष्य गौ, ब्राह्मण, तीर्थ, देवता, श्रेष्ठ पर्वत, श्रेष्ठ नदियों, नदों तथा पिप्पल के वृक्ष आदि की वन्दना करता है, अपने बान्धवों से नम्र बना रहता है, वह प्रेत नहीं होता है ॥१०२॥ जो मनुष्य गङ्गा आदि तीर्थो में विशेष क्रम से पूजन करता है उसको अनन्त पुण्यों की प्राप्ति होती है ॥१०३॥ मैं स्वयं उस पुण्य का वर्णन नहीं कर सकता हूँ । उस पुरुष का दर्शन भी हो जाने से प्रेतत्व से मुक्ति हो जाती हैं ॥१०४॥ कार्तिक का महीना अत्यन्त पुण्यमय है, यह भगवान् दामोदर को प्रिय है । माघ मास तपस्वियों के लिए उत्तम है तथा भगवान् माधव को प्रिय है ॥१०५॥ वैशाख के महीने को माधव मास कहते हैं, इस मास के अधिष्ठातृ देवता भगवान् मधुसूदन हैं । मुनियों ने इस मास को सभी मासों से उत्तम बतलाया है ॥१०६॥ इस महीने का साधन करने से सारा कार्य सिद्ध हो जाता है । ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हो जाती है, वह सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करने वाली लक्ष्मी है ॥१०७॥ इस मास में चूंकि लक्ष्मी का निवास होता है, इसीलिए इस मास को माधव मास कहा गया है । जिस तरह से भगवान् लक्ष्मीपति के समान कोई देवता नहीं है ॥१०८॥ उसी तरह वैशाख के समान श्रीभगवान् को कोई भी

नारायणेति पठनात्तन्नामश्रवणादपि। मुच्यते पातकैः सर्वैर्जनो भक्तिपरायणः ॥१११॥
यतिष्ये तदहं प्रेता भवतामपि मुक्तये। परोपकारजं पुण्यं यतो नस्यान्मखैरपि ॥११२॥
प्रेता यामि ततः स्नातुं रेवावारिणि माधवम् ।
मासि मेषस्थिते भानावेतैरनुगतो नरैः ॥११३॥
पञ्चैव ते पुनर्मोहाज्जातपातकसञ्चयाः । स्नातुमायान्ति वचसा ममैव करुणावतः ॥११४॥
तावद्भवन्तस्तु निदेशतो मे तिष्ठन्तु तत्रैव बने विशोकाः ।
श्रीनर्मदावारिणि यावदेव गत्वा निजस्नानविधिं विधाय ॥११५॥
निर्माय पुरुषानपि नाम तस्मात्कुशस्वरूपानिह नर्मदाके ।
विधानतो माधवमासि दीनान्निमज्जयामीति दयानिबद्धः ॥११६॥
एवं दिनत्रयेणैव मुक्तिर्वः प्रेतयोनितः । सदर्भबटुकस्नानमात्रेणैव न संशयः ॥११७॥

नारद उवाच

एवमुक्तस्ततस्तैस्तु प्रतीतैरपि पूजितः । मुनिशर्मा ययावेतैरनुयातस्तु पञ्चभिः ॥११८॥
तत्र गत्वा ततः प्रातः स्नात्वा कृत्वा तथा विधिम् ।
स्नापयामास तान्प्रेतान्नामतो दर्भनिर्मितान् ॥११९॥
स्मृताश्च मुनिना तीर्थे स्नापिता नामतस्तथा। प्रेताः पुण्यवता तेन सद्यो मुक्ता दिवं ययुः॥१२०॥
ते पापिनः पञ्च यदैव रेवाजले निमग्ना वचसैव तस्य ।
श्रीमाधवे मासि विवर्णदेहाः सद्यः सुवर्णैकरुचो बभूवुः ॥१२१॥

महीना प्रिय नहीं है । उस वैशाख मास के माहात्म्य को भी भक्ति पूर्वक तथा विधि पूर्वक सुनकर । जीव प्रेतत्व से मुक्त हो जाता है । सज्जन पुरुषों के साथ सम्भाषण करने से पुण्य तीर्थों में निवास करने से ॥१०९-११०॥ भगवान् नारायण का नाम पढ़ने से तथा उसका श्रवण करने से भक्तिमान पुरुष पापों से मुक्त हो जाता है ॥१११॥ हे प्रेतों ! तुमलोगों की भी मुक्ति के लिए मैं प्रयास करूँगा, क्योंकि परोपकार के समान पुण्य यज्ञों से नहीं होता है ॥११२॥ प्रेतों ! मैं वैशाख के महीने में नर्मदा नदी में स्नान करने के लिए जा रहा हूँ । मेष राशि के सूर्य इस समय हैं, ये सभी लोग मेरे साथ जा रहे हैं॥११३॥ ये अज्ञान वशात् पापी हो गये है । करुणा करने वाले मेरे ही कहने से ये लोग स्नान करने के लिए आ रहे हैं ॥११४॥ मेरी आज्ञा से आपलोग इस वन में शोक रहित होकर तब तक निवास करें जब तक कि मैं श्रीनर्मदा नदी में जाकर और अपने स्नान की विधि को सम्पन्न करके तथा कुश कूर्च स्वरूप दीन पुरुषों को बनाकर इस नर्मदा नदी में दयायुक्त होकर विधिपूर्वक वैशाख के महीने में स्नान कराता हूँ ॥११५-११६॥ इस तरह कुशनिर्मित मूर्ति के तीन दिन तक स्नान कराने मात्र से आपलोगों की प्रेतयोनि से मुक्ति हो जायेगी इसमें कोई संशय नहीं है ॥११७॥ **नारदजी ने कहा—** इसतरह से कहे जाने पर तथा उन पर विश्वस्त पाँच पापियों के द्वारा अनुगमन किए जाने पर मुनिशर्मा चले गये ॥११८॥ वहाँ जाकर प्रातःकाल स्नान करके विधि पूर्वक उन्होंने कुश के बने प्रेतों को स्नान कराया ॥११९॥ मुनि ने उन सबों के नाम को स्मरण किया और स्नान कराया । उन पुण्यवान महर्षि के द्वारा स्नान कराये जाने के कारण वे सभी प्रेत मुक्त होकर स्वर्गलोक में चले गये ॥१२०॥ मुनि की आज्ञा से वे पाँचों पापी जब

पापप्रशमनं स्तोत्रं श्राविता मुनिशर्मणा । समक्षं सर्वलोकानां जातास्ते वरकान्तयः ॥१२२॥
तत्रस्था मानवास्तांस्तु विरजान्स्नानमात्रतः। न स्पृशन्ति च राजेन्द्र पापि संसर्गशङ्कया॥१२३॥
मुनिशर्मानुरोधेन ततो धर्मप्रमाणतः। सद्यो दिव्याऽभवद्वाणी यदेते विगतैनसः॥१२४॥
स्नातानां माधवे मासि मुकुन्दहृदयात्मनाम्। पापप्रशमनं स्तोत्रं शृण्वतामिह सादरम्॥१२५॥
चित्रं किमत्र या शुद्धिर्जायते पापसञ्चयात्। सर्वेषामेव पापानां प्रायश्चित्तमिदंपरम् ॥१२६॥
यत्प्रातर्माधवे मासि भक्त्या तीर्थेऽवगाहनम् ।
यतः प्रेतास्तु ते पापाः स्नापिता नाममात्रतः ॥१२७॥
स्मृताः पुण्यवता तेन मोचिता मुनिशर्मणा ॥१२८॥
इत्येवमाकर्ण्य गिरं नभःस्थामत्यद्भुतामाशु ततो मनुष्याः ।
शशंसुरेतान्नपि पञ्च पुण्यान्वैशाखमासं च मुनिं च रेवाम् ॥१२९॥
अथ चाकर्ण्य भूपालः स्तावं दुरितनाशनम् ।
यदाकर्ण्य नरो भक्त्यामुच्यतेपापराशिभिः ॥१३०॥
यस्य श्रवणमात्रेण पापिनः शुद्धिमागताः। अन्येऽपि बहवो मुक्ताः पापादज्ञानसम्भवात्॥१३१॥
परदारपरद्रव्यजीवहिंसादिके यदा। प्रवर्तते नृणां चित्तं प्रायश्चित्तं स्तुतिस्तदा॥१३२॥

अथ पापप्रशमन स्तोत्रम्

विष्णवे विष्णवे नित्यं विष्णवे विष्णवे नमः ।
नमामि विष्णुं चित्तस्थमहंकारगतं हरिम् ॥१३३॥

वैशाख के महीने में रेवा के जल में डुबकी लगाये तो उनका जो विरूप रूप हो गया था उन सबों को पाप प्रशमन स्तोत्र सुनाया तो उन सबों की श्रेष्ठ कान्ति हो गयी ॥१२२॥ वहाँ पर जो मानव विद्यमान थे उन सबों को केवल स्नान करने से निष्पाप देखकर अपने हाथ के सम्बन्ध की शङ्का से उन सबों का स्पर्श नहीं किए ॥१२३॥ मुनिशर्मा के आग्रह से धर्मानुकूल वहाँ पर आकाशवाणी हुयी कि ये सब पाप मुक्त हो गये हैं ॥१२४॥ भगवान् मुकुन्द को अपने हृदय में धारण करने वाले इन सबों ने वैशाख के महीने में आदर पूर्वक पाप प्रशमन स्तोत्र का श्रवण किया है । अतएव यह जो शुद्धि हुयी है, उसमें कौन सा आश्चर्य है ? यह समस्त पाप समूह का सर्वोत्तम प्रायश्चित है कि वैशाख के महीने में प्रातःकाल तीर्थ में स्नान किया जाय । पुण्यवान् मुनिशर्मा ने तो उन पापी प्रेतों को केवल नाम मात्र से स्नान कराकर पापों से मुक्ति दिला दी ॥१२५-१२८॥ इस तरह की आकाशवाणी को सुनकर वहाँ पर विद्यमान मनुष्यों, इन पाँचों की, वैशाख मास की, मुनिशर्मा की तथा रेवा नदी की प्रशंसा की ॥१२९॥ जिसको भक्ति पूर्वक सुनकर मनुष्य पाप समूह से मुक्त हो जाता है राजा अम्बरीष ने भी उस पापप्रशमन स्तोत्र को सुना॥१३०॥ जिसका केवल श्रवण करके सभी प्रेत पाप मुक्त हो गये तथा अज्ञानवशात् पापी हुए दूसरे लोग मुक्त हो गये ॥१३१॥ जब मनुष्य का मन दूसरे की पत्नी, दूसरे की सम्पत्ति तथा जीवों की हिंसा करने में लगे तो उस समय उसके प्रायश्चित के लिए इस स्तुति को करना चाहिए ॥१३२॥

पाप प्रशमन स्तोत्र

भगवान् विष्णु जो सर्वव्यापक हैं, उनको सदैव बार-बार नमस्कार है । मैं अहङ्कार में तथा चित्त में विद्यमान

चित्तस्थमीशमव्यक्तमनन्तमपराजितम् । विष्णुमीड्यमशेषाणामनादिनिधनं विभुम् ॥१३४॥
विष्णुश्चित्तगतो यन्मे विष्णुर्बुद्धिगतश्च यत् । योऽहंकारगतो विष्णुर्योविष्णुर्मयि संस्थितः ॥१३५॥
करोति कर्तृभूतोऽसौ स्थावरस्य चरस्य च ।
तत्पापं नाशमायातितस्मिन्नेवहिचिन्तिते ॥१३६॥
ध्यातो हरति यत्पापं स्वप्ने दृष्टस्तु पापिनाम् ।
तमुपेन्द्रमहं विष्णुं प्रणमामि नतिप्रियम् ॥१३७॥
जगत्यस्मिन्निरालम्बे मधुसूदनमच्युतम् । हस्तावलम्बनं स्तोत्रं विष्णुं वन्दे परात्परम् ॥१३८॥
सर्वेश्वरेश्वर विभो परमात्मन्नधोक्षज ! । हृषीकेश हृषीकेश हृषीकेश नमोऽस्तुते ॥१३९॥
नृसिंहानन्त गोविन्द भूतभावन केशव। दुरुक्तं दुष्कृतं ध्यातं शमयाशु जनार्दन ! ॥१४०॥
यन्मया चिन्तितं दुष्टं स्वचित्तवशवर्तिना। अकार्यमघमत्युग्रं तच्छमं नय केशव ! ॥१४१॥
ब्रह्मण्यदेव गोविन्द परमार्थपरायण ! । जगन्नाथ जगद्धातः पापं शमय मेऽच्युत॥१४२॥
यच्चापराह्ने सायाह्ने मध्याह्ने च तथा निशि ।
कायेन मनसा वाचा कृतं पापमजानता ॥१४३॥
जानता च हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव। नामत्रयोच्चारणतः सर्वं यातु मम क्षयम्॥१४४॥
शारीरं मे हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष मानसम्। पापं प्रशममायातु वाक्कृतं मम माधव॥१४५॥
यद्भुञ्जानः पिबंस्तिष्ठन्स्वपञ्जाग्रद्यदास्थितः। आकार्षं पापमर्थार्थं कायेन मनसा गिरा॥१४६॥

भगवान् विष्णु को नमस्कार करता हूँ ॥१३३॥ चित्त में रहने वाले, सवों के स्वामी, अव्यक्त स्वरूप, अनन्त स्वरूप, किसी से भी पराजित नहीं होने वाले, सबों के लिए स्तोतव्य स्वरूप तथा व्यापक भगवान् विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१३४॥ जो भगवान् विष्णु मेरे चित्त में, बुद्धि में, अहङ्कार में तथा मुझमें अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं ॥१३५॥ वे ही जड़-जंगम वस्तुओं के कर्ता हैं, और वे ही सव कुछ करते हैं । उनका ही ध्यान करने से समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥१३६॥ जो स्वप्न में भी दर्शन देकर तथा ध्यान करने से जो पापियों के पापों को विनष्ट कर देते हैं, उन प्रणाम प्रिय भगवान् विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१३७॥ इस निराधार संसार में अच्युत भगवान् मधुसूदन का यह स्तोत्र ही सहारा है, मैं सर्वोत्कृष्ट तत्त्व भगवान् विष्णु को नमस्कार करता हूँ ॥१३८॥ हे सर्वेश्वर ! हे विभो ! हे परमात्मन् ! हे अधोक्षज ! हे हृषीकेश ! आपको बारम्वार नमस्कार है ॥१३९॥ हे नृसिंह ! हे अनन्त ! हे गोविन्द ! हे भूतभावन ! हे केशव ! हे जनार्दन ! जिन पापों का वर्णन करना कठिन है, ध्यान करने से आप उन पापों को विनष्ट कर दें ॥१४०॥ अपने चित्त के वश में रहने वाले मैंने जो बुरा चिन्तन किया है तथा मेरे जो निषिद्ध कर्म हैं तथा अत्यन्त उग्र कर्म हैं, हे केशव उसे आप विनष्ट कर दें ॥१४१॥ हे ब्रह्मण्यदेव! हे गोविन्द ! हे परमार्थ परायण ! हे जगन्नाथ ! हे जगत् के रक्षक ! हे अच्युत ! आप मेरे पापों को विनष्ट कर दें ॥१४२॥ अज्ञानवशात् मैंने जो अपराह्न में, सायंकाल, मध्याह्न तथा रात्रि में मन वाणी तथा शरीर से पाप किया है ॥१४३॥ अथवा जानकर जो पाप मैंने किया है; हे हृषीकेश ! हे पुण्डरीकाक्ष ! हे माधव! इन तीन नामों के उच्चारण करने मात्र से वे सबके सब पाप विनष्ट हो जायँ ॥१४४॥ हे हृषीकेश ! मेरे शरीर से किए गये, हे पुण्डरीकाक्ष ! मेरे मन से किए गये तथा हे माधव ! मेरी वाणी से हुए पाप विनष्ट

महदल्पं च यत्पापं दुर्योनिनरकावहम् । तत्पापं प्रशमं यातु वासुदेवस्य कीर्तनात् ॥१४७॥
परम्ब्रह्म परन्धाम पवित्रं परमञ्च यत् । तस्मिन्प्रकीर्तिते विष्णौ यत्पापं तत्प्रणश्यतु ॥१४८॥
यत्प्राप्य न निवर्त्तन्ते गन्धस्पर्शादिवर्जिताः । सूरयस्तत्पदं विष्णोस्तत्सर्वं शमयत्वयम् ॥१४९॥
पापप्रशमनं स्तोत्रं यः पठेच्छृणुयान्नरः । शारीरैर्मानसैर्वाग्जैः कृतैः पापैः स मुच्यते ॥१५०॥
मुक्तः पापग्रहादिभ्यो याति विष्णोः परं पदम् ।
तस्मात्पापे कृतं जप्यं स्तोत्रं सर्वाघमर्दनम् ॥१५१॥
प्रायश्चित्तमघौघानां पठितव्यं नरोत्तमैः। प्रायश्चितैः स्तोत्रवरैर्व्रतैर्नश्यति पातकम् ॥१५२॥
ततः कार्याणि संसिद्ध्यै तानि वै भुक्तिमुक्तये ।
पूर्वजन्मार्जितं पापमैहिकं च नरेश्वर ॥१५३॥
स्तवस्य श्रवणादस्य सद्य एव विलीयते । पापद्रुमकुठारोऽयं पापेन्धनदवानलः ॥१५४॥
पापराशितमः स्तोमभानुरेषस्तवो नृप !। मया प्रकाशितस्तुभ्यं तथा लोकानुकम्पया ॥१५५॥
स्तवो योऽयं मया प्राप्तो रहस्यं पितुरादरात् ।
इतिहासमिमं पुण्यं यः शृणोति नराधिप ! ॥१५६॥

हो जायँ ॥१४५॥ मैंने अर्थ की प्राप्ति के लिए मन, वाणी तथा शरीर से, भोजन करते समय, जल पीते समय, खड़ा रहते समय, सोते समय, जागते समय तथा स्थिर रहते समय जो महान् अथवा छोटा पाप किया है, जिसके कारण दुर्योनि तथा नरक की प्राप्ति हो सकती है, वह पाप भगवान् वासुदेव का कीर्तन करने से विनष्ट हो जाय ॥१४६-१४७॥ जो भगवान् विष्णु परंब्रह्म है, परंधाम हैं, तथा परम् पवित्र हैं, उनका कीर्तन कर लेने से सभी पाप विनष्ट हो जायँ ॥१४८॥ गन्ध तथा स्पर्श आदि विषयों से विरक्त ज्ञानी पुरुष भगवान् विष्णु के जिस पद को प्राप्त करके पुनः इस संसार में नहीं आते हैं, वह इस पाप को विनष्ट कर दें ॥१४९॥ जो मनुष्य इस पाप प्रशमन स्तोत्र का पाठ करता है, अथवा श्रवण करता है, शारीरिक, मानसिक तथा वाणी के पापों से मुक्त हो जाता है ॥१५०॥ वह पापग्रह आदि से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के परंपद में जाता है । अतएव पाप हो जाने पर इस स्तोत्र का पाठ करने से सभी पापों का नाश हो जाता है ॥१५१॥ पाप समूह के प्रायश्चित रूप से इस स्तोत्र का पाठ श्रेष्ठ पुरुषों को करना चाहिए । प्रायश्चित्तों, श्रेष्ठ स्तोत्रों तथा व्रतों के द्वारा पापो का नाश होता है ॥१५२॥ अतएव हे राजन् ! कार्यो की सिद्धि के लिए, भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए तथा पूर्वजन्मों में तथा इस जन्म में किए गये जो पाप हैं वे इस स्तोत्र के सुनने मात्र से विनष्ट हो जाते हैं । यह स्तोत्र पाप रूपी वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी है तथा पाप रूपी इन्धन के लिए वनाग्नि के समान है ॥१५३-१५४॥ राजन् ! पाप समूह रूपी अन्धकार के लिए यह स्तोत्र सूर्य के समान है । मैंने तुम्हारे लिए तथा संसार पर दया करने के लिए इसको प्रकाशित किया है ॥१५५॥ मैंने अपने पिता ब्रह्माजी से इस स्तोत्र को आदर पूर्वक प्राप्त किया है, राजन् ! जो इस पवित्र इतिहास को सुनता है ॥१५६॥ उसको भी प्राप्त होने वाले पुण्य के माहात्म्य

तस्यापि पुण्यमाहात्म्यं वक्तुं शक्तः स्वयं हरिः ।
स्वस्ति तेऽस्तु महाराज ! गङ्गायामथ सत्वरम् ॥१५७॥
स्नातुं यामि समायातो मासोऽयं माधवो महान् ॥१५८॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे नारदाम्बरीषसंवादे वैशाखमाहात्म्ये
प्रेतोपाख्याने पापप्रशमनं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

पच्चानबेवाँ अध्याय

सूत उवाच

यातुं तमुद्यतं नत्वा मुनिं राजा ततो मुदा। विधिं पप्रच्छ संक्षिप्तं स्नानदानक्रियोचितम्॥१॥

अम्बरीष उवाच

मुने ! वैशाखमासेऽस्मिन्को विधिः किं तपोऽधिकम् ।
किं च दानं कथं स्नानं कथं केशवपूजनम् ॥२॥
कृपया वद विप्रेर्षे सर्वज्ञस्त्वं हरिप्रियः। विशेषतोऽपि पूजाया विधिं तीर्थपदे वद ॥३॥

नारद उवाच

मेषसङ्क्रमणे भानोर्माधवे मासि सत्तम !। महानद्यां नदीतीरे नदे सरसि निर्झरे ॥४॥
देवखातेऽथ वा स्नायाद्यथाप्राप्ते जलाशये। दीर्घिकाकूपवापीषु नियतात्मा हरिं स्मरन्॥५॥

को श्रीहरि ही बतला सकते हैं । महाराज ! आपका कल्याण हो, मैं शीघ्र ही गङ्गाजी में स्नान करने के लिए जा रहा हूँ । यह वैशाख का महान् महीना आ गया है ॥१५७-१५८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के नारद अम्बरीष के संवाद के अन्तर्गत वैशाख माहात्म्य का प्रेतोपाख्यान तथा पापप्रशमन स्तोत्र वर्णन नामक चौरानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९४॥

संक्षेप में वैशाख मास की विधि का वर्णन

सूतजी ने कहा— जाने के लिए तैयार नारदजी को प्रणाम करके राजा ने उनसे प्रसन्नता पूर्वक स्नान तथा दान आदि के लिए उपयोगी क्रिया को संक्षेप में पूछा ॥१॥ **अम्बरीष ने कहा**— हे मुने ! इस वैशाख के महीने में कौन सी विधि तथा कौन सी तपस्या करनी चाहिए ? क्या दान करना चाहिए और कैसे स्नान करना चाहिए तथा भगवान् केशव की कैसे पूजा करनी चाहिए ?॥२॥ हे विप्रर्षे ! आप कृपा करके मुझे बतलायें आप सर्वज्ञ हैं तथा श्रीहरि के प्रिय हैं तथा श्रीभगवान् की विशेष रूप से की जाने वाली पूजा को आप बतलायें ॥३॥ **नारदजी ने कहा**— राजन् ! वैशाख के महीने में जब सूर्य मेष राशि पर हों तो किसी महानदी में, या नदी के तट पर या, नद में, या सरोवर में, या झरने में या देवकुण्ड

मधुमासस्य शुक्लयामेकादश्यामुपोषितः। पञ्चदश्यां च वा वीर ! मेषसङ्क्रमणेऽपि वा ।।६।।
वैशाखस्नाननियमं ब्राह्मणानामनुज्ञया। मधुसूदनमभ्यर्च्य कुर्यात्सुस्नानपूर्वकम् ।।७।।
वैशाखं सकलं मासं मेषसङ्क्रमणे रवेः । प्रातः सनियमः स्नास्ये प्रीयतां मधुसूदनः ।।८।।
मधुहन्तुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात् । निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्नानमन्वहम् ।।९।।
माधवे मेषगे भानो मुरारे मधुसूदन ! । प्रातःस्नानेन मे नाथ यथोक्तफलदो भव ।।१०।।
यथा ते माधवो मासो वल्लभो मधुसूदन । प्रातःस्नानेन मे तस्मिन्फलदः पापहा भव ।।११।।
एवमुच्चार्य तत्तीर्थं पादौ प्रक्षाल्य वाग्यतः। स्मरन्नारायणं देवं स्नानं कुर्याद्विधानतः ।।१२।।
तीर्थं प्रकल्पयेद्धीमान्मूलमन्त्रमिमं पठन् । ॐ नमो नारायणाय मूलमन्त्र उदाहृतः।।१३।।
दर्भपाणिस्तु विधिवदाचान्तःप्रणतो भुवि । चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ।।१४।।
प्रकल्प्यावाहयेद्गङ्गां मन्त्रेणानेन मानवः। विष्णुपादप्रसूताऽसि वैष्णवी विष्णुदेवता ।।१५।।
त्राहि नस्त्वेनसस्तास्मादाजन्ममरणान्तिकात् ।
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत् ।।१६।।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि ! ।
नन्दिनीत्येव ते नाम वेदेषु नलिनीति च ।।१७।।
दक्षा पृथ्वी च विहगा विश्वगाथा शिवप्रिया ।
विद्याधरी महादेवी तथा लोकप्रसादनी ।।१८।।

में इनमें से जो भी प्राप्त हों उसमें स्नान करना चाहिए, या बावली में या कूएँ पर हो, या तलाव में श्रीहरि का स्मरण करते हुए नियम पूर्वक स्नान करना चाहिए ।।४-५।। हे वीर ! चैत्र मास की शुक्लपक्ष की एकादशी के दिन, या पूर्णिमा के दिन या मेष की संक्रान्ति के दिन उपवास करे ।।६।। अच्छी तरह से स्नेह पूर्वक भगवान् मधुसूदन की पूजा करके, ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर स्नान का नियम करना चाहिए ।।७।। मेष मास सूर्य की संक्रान्ति में सम्पूर्ण वैशाख के महीने मे मैं नियम पूर्वक स्नान करूँगा, इससे भगवान् मधुसूदन प्रसन्न हों ।।८।। भगवान् मधुसूदन की कृपा से तथा ब्राह्मणों की कृपा से मेरा प्रतिदिन वैशाख मास का पवित्र स्नान निर्विघ्न वना रहे ।।९।। हे मुरारे ! हे मधुसूदन ! हे नाथ ! वैशाख मास में सूर्य के मेष राशि में रहने पर प्रातः स्नान के द्वारा आप मुझे उसके उचित फलों को प्रदान करें ।।१०।। हे मधुसूदन! आपको वैशाख का महीना प्रिय है । इस मास में मुझे प्रातः स्नान का फल प्रदान करके आप मेरे पापों का विनाश कर दें ।।११।। इस तरह से उच्चारण करके अपने दोनों पैरों को धोकर उस तीर्थ में मौन होकर तथा भगवान् नारायण का स्मरण करते हुए विधिपूर्वक स्नान करे ।।१२।। बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह मूलमन्त्र को पढ़ते हुए तीर्थ की कल्पना करे । **ओम् नमो नारायणाय** यही मूल मन्त्र है।।१३।। व्रती पुरुष हाथ में कुश धारण करके विधिपूर्वक आचमन करके पृथिवी को प्रणाम करे और चतुरस्र (चौकोर) चार हाथ के मण्डल में ।।१४।। इस मन्त्र से गङ्गाजी का आवाहन करे । आप भगवान् विष्णु के पैरों से उत्पन्न हुयी हैं । आप वैष्णवी हैं । विष्णु ही आपके देवता हैं ।।१५।। अतएव आप मेरे जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के पापों से मेरी रक्षा करें । वायु देवता ने कहा है कि द्युलोक तथा भूलोक में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, वे सभी तीर्थ आप में निवास करते हैं । वेदों में आपका नाम नन्दिनी और

क्षेमङ्करी जाह्नवी च शान्ता शान्तिप्रदायिनी ।
एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत् ॥१९॥
भवेत्सन्निहिता तत्र गङ्गा त्रिपथगामिनी । सप्तवाराभिजप्तेन करसम्पुटयोजिते ॥२०॥
मूर्ध्नि कृत्वा जलं भूपश्चतुर्वा पञ्च सप्त वा ।
स्नानं कृत्वा मुदा तद्वदामन्त्र्य तु विधानतः ॥२१॥
अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे। मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥२२॥
उद्धृताऽसि वराहेण विष्णुना शतबाहुना। नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते॥२३॥
एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य तु विधानतः ।
उत्थाय वाससी शुक्ले शुद्धे तु परिधापयेत् ॥२४॥
ततस्तु तर्पणं कुर्य्यात्त्रैलोक्याप्यायनाय वै । ब्राह्मणं तर्पयेत्पूर्वं विष्णुं रुद्रं प्रजापतिम् ॥२५॥
देवान्यक्षांस्तथा नागान्गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान्। क्रूरान्सर्पान्सुपर्णांश्च तरून्वै जन्तुकान्खगान्॥२६॥
विद्याधराञ्जलधरांस्तथैवाकाशगामिनः । निराधाराश्च ये जीवाः पापकर्मरताश्च ये॥२७॥
तेषामाप्यायनार्थाय दीयते सलिलं मया। कृतोपवीती देवेषु निवीती च भवेन्नरः॥२८॥
मनुष्यांस्तर्पयेद्भक्त्या ब्रह्मपुत्रानृषींस्तथा। सनकः सनन्दनश्चैव तृतीयश्च सनातनः॥२९॥
कपिलश्चासुरिश्चैव बोढुःपञ्चशिखस्तथा । ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा॥३०॥
मरिचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च॥३१॥
देवब्रह्मऋषीन्सर्वांस्तर्पयेदक्षतोदकैः । अपसव्यं ततः कुर्यात्सव्यं जान्वाच्य भूतले॥३२॥

नलिनी है ॥१६-१७॥ स्नान करते समय दक्षा, पृथिवी, विहगा, विश्वगाथा, शिवप्रिया, विद्याधरी, महादेवी, लोकप्रसादनी, क्षेमङ्करी, शान्ता तथा शान्तिप्दायिनी गङ्गाजी के इन पवित्र नामों का उच्चारण करना चाहिए ॥१८-१९॥ हे राजन् ! ऐसा करने से वहाँ त्रिपथगामिनी गङ्गाजी आ जाती हैं । हाथ जोड़कर इस मन्त्र को सात बार पढ़ना चाहिए । उसके बाद उसी तरह से आमन्त्रित करके विधिपूर्वक जल को अपने शिर पर चढ़ाकर, चार बार, या पाञ्च बार या सात बार स्नान करना चाहिए ॥२०-२१॥ इसके बाद पृथिवी की प्रार्थना करे कि असंख्य भुजाओं वाले वराह रूप धारी भगवान् विष्णु ने आपका उद्धार किया है । हे अश्वक्रान्ते ! रथक्रान्ते ! विष्णुक्रान्ते भूदेवि ! मैंने जो पाप किया उसको आप हर लें । हे समस्त लोकों को उत्पन्न करने वाली, सुन्दर व्रत वाली आपको नमस्कार है ॥२२-२३॥ इस तरह से स्नान करके विधिपूर्वक आचमन करे । उसके बाद खड़ा होकर दो श्वेत वस्त्रों को धारण करना चाहिए ॥२४॥ उसके बाद त्रैलोक्य को तृप्त करने के लिए तर्पण करे । पहले ब्रह्माजी का तर्पण करे, उसके बाद विष्णु का तर्पण करे, फिर रुद्र प्रजापति, देवों, यक्षों, नागों, गन्धर्वों, अप्सराओं, असुरों, क्रूरसर्पों, सुपर्णों, वृक्षों, जन्तुओं, पक्षियों ॥२५-२६॥ विद्याधरों, आकाश गामियों, जो निराधार जीव हैं उनको, पापियों को तर्पण के द्वारा तृप्त करके कहे कि इन सबों की तृप्ति के लिए मैं जल दे रहा हूँ । इन सबों का सव्य रहकर तर्पण करके निवीती हो जाय और मरीचि आदि मनुष्यों का तथा ऋषियों का तर्पण करे । तर्पण करते समय कहे, सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि बोढु तथा पञ्चशिख ये सभी मेरे द्वारा दिए गये जल लोकप्रसादनी, क्षेमङ्करी, शान्ता तथा शान्तिप्रदायिनी गङ्गाजी के इन पवित्र नामों का उच्चारण करने से तृप्त हो जायँ ॥२७-३०॥ मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु तथा नारद इन

अग्निष्वात्तास्तथा सौम्या हविष्मन्तस्तथोष्मपाः ।
कव्यवाडनलान्बर्हिषदश्च वाज्यपाः पुनः ॥३३॥
सन्तर्पयेत्पितॄन्भक्त्या सतिलोदकचन्दनैः । यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च॥३४॥
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च। औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने॥३५॥
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः। दर्भपाणिस्तु विधिवत्पितॄसन्तर्पयेत्ततः ॥३६॥
पित्रादीन्नामगोत्रेण तथा मातामहानपि । सन्तर्प्य विधिना सर्वानिमंमन्त्रमुदीरयेत्॥३७॥
येऽबान्धवा बान्धवा वा ये येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते तृप्तिमखिला यान्तु येऽस्मत्तोयकाङ्क्षिणः ॥३८॥
आचम्य विधिवत्सम्यगालिखेत्पद्ममग्रतः । साक्षतैश्च सपुष्पैश्च सलिलारुणचन्दनैः ॥३९॥
अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नेन सूर्यनामानुकीर्तनैः । नमस्ते विष्णुरूपाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥४०॥
सहस्त्ररश्मये सूर्य नमस्ते सर्वतेजसे। नमस्ते रुद्रवपुषे नमस्ते भक्तवत्सल ॥४१॥
पद्मनाभ नमस्तेऽतु कुण्डलाङ्गदभूषिते । नमस्ते सर्वलोकेषु सुप्तानामुद्बोधन ॥४२॥
सुकृतं दृष्कृतं चैव सर्व पश्यसि सर्वदा । सत्यदेव ! नमस्तेऽस्तु ! प्रसीद मम भास्कर !॥४३॥
दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते ! ।
एवं सूर्यं नमस्कृत्य सप्तकृत्वा प्रदक्षिणम् ॥४४॥
द्विजं गां काञ्चनं स्पृष्ट्वा पश्चाच्च स्वगृहं व्रजेत् ।
आश्रमथांस्ततः पूज्य प्रतिमां चापि पूजयेत् ॥४५॥

देव ऋषियों तथा ब्रह्म ऋषियों का तर्पण अक्षत और जल से करना चाहिए । उसके बाद बायीं घुटना को पृथिवी पर सटाकर अपसव्य हो जाय ॥३१-३२॥ और अग्निष्वाता, सोमपा, हविष्यमान्, उष्मपा, कव्यवाट्, अनल, बर्हिषद् तथा आज्यपा पितरों को भक्तिपूर्वक जल, तिल तथा जल से तर्पण करे । उसके बाद यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी ॥३३-३४॥ वृकोदर, चित्र तथा चित्रगुप्त इन चौदह यमों का तर्पण करे । उसके बाद हाथ में कुश लेकर नाम तथा गोत्र के उच्चारण पुरस्सर, पिता, पितामह, प्रपितामह तथा मातामह, प्रमातामह एवं वृद्ध प्रमातामह का भी विधिपूर्वक तर्पण करके, इन मन्त्रों का उच्चारण करे ॥३५-३७॥ **ये बान्यवा० इत्यादि** अर्थात् जो मेरे वान्धव, अबान्धव अथवा दूसरे जन्म में बान्धव थे तथा जो मुझसे जल प्राप्त करना चाहते हों, वे सभी तृप्त हो जायँ ॥३८॥ उसके बाद अच्छी तरह से आचमन करके अपने सामने कमल बनाये और अक्षत, पुष्प, लाल चन्दन मिश्रित जल से सूर्य को इन नामों से अर्घ्य प्रदान करे । विष्णुरूपाय नमः ब्रह्मरूपिणे नमः, सहस्त्ररश्मये नमः, सूर्याय नमः, सर्वतेजसे नमः, रुद्रवपुषे नमः, भक्तवत्सलाय नमः ॥३९-४१॥ पद्मनाभाय नमः, कुण्डलाङ्गद भूषिताय नमः, सर्वलोकेशाय नमः, सुप्तोद्बोधनाय नमः, तथा दिवाकराय नमः । इसके बाद प्रार्थना करे कि हे सत्यदेव ! आप पाप तथा पुण्य सबों को सदा देखते हैं, आपको नमस्कार है । हे भास्कर ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होएँ । हे दिवाकर ! आपको नमस्कार है, हे प्रभाकर ! आपको नमस्कार है । इस तरह से सूर्य को नमस्कार करके उनकी सात बार प्रदक्षिणा करे ॥४२-४४॥ उसके पश्चात् ब्राह्मण, गौ तथा सुवर्ण का स्पर्श करके अपने घर जाय । आश्रम में विद्यमान देवों की पूजा करके प्रतिमा की पूजा

पूर्वं भक्त्यैव गोविन्दं गृही च नियतात्मवान् ।
पूजयेद् भक्तितो राजन्नुभयत्र यथाविधि ॥४६॥
विशेषादपि वैशाखे योऽर्चयेन्मधुसूदनम्। सर्वं संवत्सरं यावदर्चितस्तेन माधवः ॥४७॥
माधवे मासि सम्प्राप्ते मेषस्थे कर्मसाक्षिणि ।
केशवप्रीतये कुर्यात्केशवव्रतसञ्चयम् ॥४८॥
दद्यादनेकदानानि तिलाज्यप्रभृतीन्यपि। जन्मकोटि समुद्भूतपातकान्तकराणि च ॥४९॥
जलान्नशर्कराधेनु तिलधेनुमुखानि च। वित्तमानेन देयानि दानानीप्सितसिद्धये ॥५०॥
वैशाखं सकलं मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः ।
जपन्हविष्यं भुञ्जानं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५१॥
एकभुक्तमथो नक्तमयाचितमतन्द्रितः। माधवे मासि यः कुर्याल्लभते सर्वमीप्सितम् ॥५२॥
वैशाखे विधिना स्नानद्वयं नद्यादिके वहिः। हविष्यं ब्रह्मचर्यं च भूशय्या नियमस्थितिः ॥५३॥
व्रतं दानं जपो होमो मधुसूदनपूजनम्। अपि जन्मसहस्रोत्थं पापं दहति दारुणम्॥५४॥
यथैव माधवो ध्यातो विनाशयति किल्विषम्।
तथैव माधवे स्नानं नियमेन विनिर्मितम् ॥५५॥
तीर्थे चानुदिनं स्नानं तिलैश्च पितृतर्पणम्। दानं धर्मघटादीनां मधुसूदनपूजनम् ॥५६॥
माधवे मासि कुर्वीत मधुसूदनतुष्टिदम्। तिलोदकसुवर्णान्नशर्कराम्बरभूषणम् ॥५७॥
पादत्राणातपत्राम्बुकुम्भान्दद्याद् द्विजातिषु। त्रिसन्ध्यं पूजयेदीशं भक्तितो मधुसूदनम्॥५८॥

करे ॥४५॥ नियम पालन करने वाले गृहस्थ को सर्वप्रथम गोविन्द की पूजा करनी चाहिए । प्रतिमा तथा गोविन्द दोनों की पूजा सविधि करनी चाहिए ॥४६॥ वैशाख मास में विशेष रूप से भगवान् मधुसूदन की पूजा करनी चाहिए । ऐसा करने से भगवान् की पूरे वर्ष भर की पूजा पूरी हो जाती है ॥४७॥ मेष राशि के सूर्य के रहने पर वैशाख के महीने में भगवान् केशव की प्रसन्नता के लिए केशवव्रत करना चाहिए॥४८॥ तिल, घी आदि अनेक प्रकार की वस्तुओं का दान देना चाहिए । इससे करोड़ों जन्मों के पापों का नाश हो जाता है ॥४९॥ अपने अभिप्रेत अर्थ की सिद्धि के लिए अपने धन के अनुसार, जलधेनु, अन्नधेनु, शर्कराधेनु, तथा तिलधेनु का दान करना चाहिए ॥५०॥ पूरे वैशाख मास में प्रतिदिन स्नान करने वाला जप करके तथा हविष्य का भोजन करने वाला मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । शाम को नक्त की बेला में एक बार आयाचित अन्न का भोजन करने वाला जो सावधान मनुष्य इन नियमों का पालन करता है, वह अपने समस्त अभिप्रेत फलों को प्राप्त कर लेता है ॥५१-५२॥ वैशाख के महीने में घर से बाहर नदी आदि में दो बार स्नान करने तथा हविष्य का भोजन, ब्रह्मचर्य का पालन तथा भूमि पर शयन करने से ॥५३॥ एवं व्रत, दान, जप एवं होम तथा भगवान् मधुसूदन की पूजा करने से हजारों जन्मों के भयङ्कर पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥५४॥ जिस तरह से ध्यान करने से श्रीभगवान् समस्त पापों को विनष्ट कर देते हैं उसी तरह वैशाख के महीने का नियम पूर्वक स्नान समस्त पापों का विनाश कर देता है॥५५॥ प्रतिदिन तीर्थ में स्नान, तिलों से पितरों का तर्पण, धर्मघट आदि का दान और भगवान् मधुसूदन का पूजन॥५६॥ वैशाख के महीने में करना चाहिए । इससे भगवान् मधुसूदन को प्रसन्नता होती है । तिल, जल, सुवर्ण,

साक्षाद्विमलया लक्ष्म्या समुपेतं समाहितः। सुवर्णतिलपात्रैश्च ब्राह्मणाञ्छक्तितो बहून् ॥५९॥
तर्पयेदुदपात्रैर्यो ब्रह्महत्यां व्यपोहति। वैशाखे मासि यः स्नात्वा प्रातर्नद्यां समाहितः॥६०॥
पूजयित्वा हरिं भक्त्या पुष्पैः कालोद्भवै फलैः।
पूजयेद् ब्राह्मणं शक्त्या पाखण्डालापवर्जितः ॥६१॥
तर्पयेद्वस्त्रगोदानै रत्नाद्यैर्धनसञ्चयैः। अन्यद्वित्तं यथाशक्ति स्तोकं स्तोकं समाचरेत्॥६२॥
पश्चाद्विनिःस्वः पुरुषो माधवे मासि माधवम्।
पुष्पार्चनविधानेन पूजयेन्मधसूदनम् ॥६३॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः पितृणां तारयेच्छतम्। स जन्मशतसाहस्रं न शोकफलभाग्भवेत्॥६४॥
न च व्याधिभयं तस्य न दारिद्र्यं न बन्धनम्।
स विष्णुभक्तो जायेत धन्यो जन्मनि जन्मनि ॥६५॥
यावद्युगसहस्राणि शतमष्टोत्तरं भवेत्। तावत्स्वर्गे वसेद्वीर! भूपतिश्च पुनर्भवेत् ॥६६॥
भूपते विविधान्भसोगान्भुक्त्वा चैव यथासुखम्।
माधवस्य प्रसादेन माधवे लीयते ततः ॥६७॥
शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि समासान्माधवार्चनम्। वैदिकं तान्त्रिकं वाऽपि मिश्रकं पापनाशनम् ॥६८॥
न ह्यन्तोऽनन्तपारस्य नान्तः पूजाविधेर्नृप!। अथ संक्षिप्य चोच्येत यथावदनुपूर्वशः ॥६९॥
वैदिकस्तान्त्रिको मिश्रः श्रीविष्णोस्त्रिविधो मखः।
त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना हरिमर्चयेत् ॥७०॥

अन्न, चीनी, वस्त्र, आभूषण, पादत्राण, छाता तथा जल का घड़ा ब्राह्मणों को दान देना चाहिए। तीन संध्याओं में भक्तिपूर्वक विमला लक्ष्मी के साथ सदा रहने वाले भगवान् मधुसूदन की पूजा करनी चाहिए। अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण तथा तिल से भरे पात्र ब्राह्मणों को दान देना चाहिए ॥५७-५९॥ तथा जल पात्र के दान से ब्राह्मणों को प्रसन्न करने वाले की ब्रह्महत्या विनष्ट हो जाती है। जो वैशाख के महीने में सावधनी पूर्वक नदी में स्नान करके ॥६०॥ तत्कालीन पुष्पों एवं फलों से श्रीहरि की भक्ति पूर्वक पूजा करके, ब्राह्मण की अपनी शक्ति के अनुसार पूजा करनी चाहिए। स्वयं न तो पाखण्ड करे और न अधिक बातें करे ॥६१॥ वस्त्रदान, गोदान, रत्न आदि धनों के दान तथा थोड़े-थोड़े दूसरे प्रकार के धनों का दान देना चाहिए ॥६२॥ निर्धन मनुष्य को चाहिए कि वह वैशाख मास में पुष्पार्चा की विधि से भगवान् मधुसूदन की पूजा करे ॥६३॥ ऐसा करने वाला मनुष्य अपने एक लाख जन्मों तक किसी प्रकार का शोक नहीं प्राप्त करता है, वह अपने सैंकड़ों पितरों का उद्धार कर देता है ॥६४॥ उसको न तो रोग का भय होता है, न दरिद्रता होती है, न तो उसको कभी बन्धन होता है। वह प्रत्येक जन्मों में धन्य होकर विष्णु भगवान् का भक्त होता है ॥६५॥ हे वीर! वह एक सौ आठ हजार युग तक स्वर्ग में निवास करके पुनः इस संसार में राजा होता है ॥६६॥ राजन्! वह अपने मनोनुकूल समस्त भोगों को भोगकर पुनः श्रीभगवान् की कृपा से उनमें ही लीन हो जाता है। राजन्! मैं आपको वैदिक, तान्त्रिक तथा उभय मिश्रित श्रीभगवान् की या पाप विनाशक पूजा की विधि को बतलाता हूँ। उसे आप सुने ॥६७-६८॥ श्रीभगवान् की पूजा की विधि का कोई भी अन्त नहीं है, अतएव उसको क्रमानुसार संक्षिप्त करके बतलाना चाहिए ॥६९॥ श्रीभगवान्

वैदिको मिश्रको वाऽपि विप्रादीनां विधीयते ।
तान्त्रिको विष्णुभक्तस्य शूद्रस्यापि प्रकीर्तितः ॥७१॥
यथा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः। यजेच्च विधिवद्विष्णुं ब्रह्मचारी समाहितः॥७२॥
अर्चयेत्स्थण्डिलेऽग्नौ वा सूर्येऽप्सु हृदि वा द्विजे ।
द्रव्येण भक्तियुक्तेन स्वगुरुं तदनुज्ञया ॥७३॥
पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौतदन्तोऽङ्गशुद्धये। उभयोरपि च स्नानं मन्त्रैर्मृद्ग्रहणादिना ॥७४॥
सन्ध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदतन्त्रोदितानि वै। पूजान्ते कल्पयेत्सम्यक्सङ्कल्पं कर्मपावनम् ॥७५॥
शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती ।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता ॥७६॥
चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमन्दिरम्। उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायां माधवार्चने ॥७७॥
अस्थिरायां विकल्पः स्यात्स्थण्डिले तु भवेद्द्वयम् ।
स्नापनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम् ॥७८॥
द्रव्यैः प्रसिद्धैर्देवेज्या प्रतिमादिष्वमायिनः । भक्तस्य च यथालब्धैभक्तिभावेन चैव हि ॥७९॥
स्नानालङ्करणं श्रेष्ठमर्चायामेव भूपते। स्थण्डलेष्वपि विन्यासो वह्नावाज्यहुतं हविः॥८०॥
सूर्ये चाभ्यर्हणं श्रेष्ठं स्थण्डिले सलिलादिभिः ।
श्रद्धयोपहृतं श्रेष्ठं हरौ भक्तेन वार्यपि ॥८१॥

की आराधना तीन प्रकार की होती है, वैदिक, तान्त्रिक और उभय मिश्रित इन तीनों में से जो विधि अभिप्रेत हो उसी विधि से उनकी पूजा करें ॥७०॥ ब्राह्मण आदि के लिए वैदिक अथवा मिश्रित विधि बतलायी गयी है तान्त्रिक विधि का विधान भगवान् विष्णु के भक्त शूद्र के लिए भी किया गया है ॥७१॥ शास्त्रीय नियमानुसार द्विजत्वप्राप्त ब्रह्मचारी पुरुष को सावधानी पूर्वक भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए॥७२॥ अपने आचार्य की आज्ञा प्राप्त करके श्रीभगवान् की स्थण्डिल पर या अग्नि में या सूर्य में, या जल में, या अपने हृदय में अथवा ब्राह्मण में भक्तिपूर्वक द्रव्य के द्वारा पूजा करनी चाहिए ॥७३॥ सर्वप्रथम दतौन करके अङ्गों की शुद्धि के लिए स्नान करना चाहिए। दोनों ही सन्ध्याओं में स्नान मन्त्रों तथा मृत्तिका ग्रहण आदि के द्वारा करनी चाहिए ॥७४॥ सन्ध्योपासन आदि कर्म वैदिक तथा तान्त्रिक बतलाये गये हैं। पूजा के अन्त में कर्मों को पवित्र करने वाले सङ्कल्प को करना चाहिए ॥७५॥ प्रतिमा आठ प्रकार की बतलायी गयी है, पत्थर की, लकड़ी की, लोहे की, चित्र की या लिपकर बनायी गयी या बालू की या मनःकल्पित या, मणि निर्मित ॥७६॥ मूर्ति की प्रतिष्ठा भी दो प्रकार की होती है। चल प्रतिष्ठा और अचल प्रतिष्ठा। मूर्ति की अचल प्रतिष्ठा होने पर श्रीभगवान् की पूजा करने में उद्वासन अथवा आवाहन को नहीं करना पड़ता है ॥७७॥ चल प्रतिष्ठा में चाहें तो आवाहन और उद्वासन करें अथवा न करें भी किन्तु स्थण्डिल पर पूजा करने में तो आवाहन और उद्वासन दोनों करना पड़ता है। जो लिपकर अथवा चित्र बनाकर मूर्ति बनायी गयी है, उसको स्नान नहीं कराना चाहिए। केवल मार्जन कर देना चाहिए ॥७८॥ निष्कपट भक्त को चाहिए कि वह यथालब्ध द्रव्यों से ही श्रीभगवान् की पूजा भक्तिभाव से करे ॥७९॥ राजन्! पूजा में स्नान कराना और अलंकृत करना श्रेष्ठ है। स्थण्डिल पर भी न्यास करना चाहिए, अग्नि में पूजन करने

गन्धो धूपः सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुनः ।
शुचिः सम्भृतसम्भारः प्राग्दर्भैः कल्पितासनः ॥८२॥
आसीनः प्रागुदग्वक्त्रो ह्यर्चायामथ सम्मुखः ।
कृतन्यासः कृतन्यासां हर्यर्चां पाणिना स्पृशेत् ॥८३॥
कलशं प्रोक्षणीयं च यथावदुपसाधयेत्। तदद्भिर्देवयजनं द्रव्याण्यात्मानमेव च॥८४॥
प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैस्तु सादयेत् ।
पाद्यार्घ्याचमनीयार्थं त्रीणि पात्राणि दापयेत् ॥८५॥
हृतशीर्ष्णा च शिखया गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ।
पिण्डे वाय्वग्निसंसिद्धे हृत्पद्मस्थां परां विभोः ॥८६॥
अण्वीं जीवकलां ध्यायेन्नादान्ते सिद्धिभाविताम् ।
तयात्मभूतय पिण्डे व्याप्ते सम्पूज्य तन्मयः ॥८७॥
आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्तां गां तां प्रपूजयेत् ।
पाद्यार्घ्यस्नानार्हणादीनुपचारान्प्रकल्पयेत् ॥८८॥
धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वाऽऽसनं हरेः ।
पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ॥८९॥
उभाभ्यां वेदतन्त्राभ्यां हरेरुभयसिद्धये। सुदर्शनं पाञ्चजन्यं गदासीषुधनुर्हलम्॥९०॥
मुसलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत्। नन्दं सुनन्दं गरुडं प्रचण्डं चण्डमेवच॥९१॥

पर घी की आहुति देनी चाहिए ॥८०॥ सूर्य में श्रीभगवान् की पूजा श्रेष्ठ है और स्थण्डिल पर भी जल आदि से पूजा करनी चाहिए भक्त द्वारा श्रद्धा पूर्वक श्रीहरि पर जल चढ़ाना भी श्रेष्ठ है ॥८१॥ यदि चन्दन, धूप, पुष्प, दीप तथा अन्न आदि निवेदित किया जाय तो फिर उसके विषय में क्या कहना है ? सबसे पहले पवित्र होकर सामग्री को एकत्रित करके कुशों के द्वारा आसन की कल्पना करे ॥८२॥ मूर्ति के पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होने पर मूर्ति के सामने मुख करके बैठे । पहले वह अपना न्यास करके, मूर्ति में न्यास करते समय हाथ से उसका स्पर्श करे ॥८३॥ यथोचित रूप से प्रोक्षणीय कलश कर्मपात्र की कल्पना करके उसके ही जल से, पूजन सामग्री, द्रव्यों की तथा अपना भी प्रोक्षण करे । फिर उसी जल से दो तीन पात्रों को स्थापित करे । पाद्य, अर्घ्य तथा आचमनीय के लिए तीन पात्रों को लगाये । उसके बाद व्याहृति रहित गायत्री से उसको अभिमन्त्रित करे । मूर्ति आदि अग्नि अथवा वायु में पकायी गयी हो तो श्रीभगवान् के हृदय कमल में जिसकी सिद्धि नाद के अन्त में बतलायी गयी उस सूक्ष्म जीव कला का ध्यान करना चाहिए । उस जीव कला से व्याप्त पिण्ड में (मूर्ति में) सावधानी पूर्वक पूजन करना चाहिए ॥८४-८७॥ अर्चामूर्ति आदि में अवाहन करके उसमें न्यास करके उस मूर्ति की पूजा करे । उसको, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय इत्यादि उपचारों को प्रदान करे ॥८८॥ श्रीहरि की धर्म आदि नव नामों के द्वारा श्रीहरि के आसन की कल्पना करे । उस आसन पर कर्णिका तथा केसर से युक्त अष्टदल कमल का निर्माण करे ॥८९॥ दोनों प्रकार की सिद्धि के लिए वेद तथा तन्त्र दोनों प्रकार के मन्त्रों से भगवान् के सुदर्शन, पाञ्चजन्य, गदा, कृपाण, बाण, धनुष, हल, मुसल, कौस्तुभ मणि, वैजयन्ती माला, तथा श्रीवत्सचिह्न की

महाबलं बलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम्। दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून्सुरान् ॥९२॥
स्वस्वस्थानेष्वभिमुखान्पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः । चन्दनोशीरकर्पूरकुङ्कुमागुरुवासितैः ॥९३॥
सलिलैः स्नापयेन्मन्त्रैर्नित्यं वा विभवे सति ।
स्वर्णधर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया ॥९४॥
पौरुषेणापि सूक्तेन सामनीराजानादिभिः। वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्त्रग्गन्धलेपनैः ॥९५॥
अलङ्कुर्वीत सप्रेम विष्णुभक्तो यथोचितम्। पाद्यमाचमनीयं च गन्धं च सुमनोऽक्षतान् ॥९६॥
गन्धधूपोपहार्याणि दद्याद्वै श्रद्धयार्चकः। गुडपायससपीर्षि शष्कुलयापूपमोदकान् ॥९७॥
पायसं दधि सर्पिश्च नैवेद्यं सविकल्पयेत्। अभ्यङ्गोन्मर्दनादर्शदन्तधावाभिषेचनम् ॥९८॥
अन्नाद्यं नृत्यगीतानि सर्वाणि स्युरथान्वहम्। विधिना विहिते कुण्डे मेखलावर्तवेदिभिः ॥९९॥
अग्निमाधाय परितः समूहेत्पाणिनोदकम्। परिस्तीर्याथ पर्युक्ष्य दत्त्वा चेध्मं यथाविधि॥१००॥
प्रोक्षण्यासाद्य द्रव्याणि प्रोक्षण्यैवाज्यसेचनम् ।
तप्तजाम्बूनदप्रख्यं शङ्खचक्रगदाम्बुजैः ॥१०१॥
लसच्चतुर्भुजं शान्तं पद्मकिञ्जल्कवाससम्। स्फुरत्किरीटकटककटिसूत्रवराङ्गदम् ॥१०२॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम्। ध्यायन्नभ्यर्च्य दारुणि हविषा सघृतानि च ॥१०३॥
प्रास्याज्यभागावाघारौ दत्त्वा चाज्यप्लुतं हविः ।
अभ्यर्च्याऽथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् ॥१०४॥

पूजा करे । उसके बाद, नन्द, सुनन्द, गरुड़, चण्ड ॥९०-९१॥ महाबल, बल, कुमुद, कुमुदेक्षण, दुर्गा, विनायक, व्यास, विष्वकसेन तथा बड़े-बड़े देवताओं की पूजा करनी चाहिए ॥९२॥ उन देवताओं को अपने-अपने स्थानों पर अपनी ओर मुख करके प्रोक्षण आदि के द्वारा पूजन करे । चन्दन, उशीर (खस) कर्पूर, कुङ्कुम तथ अगरु की सुगन्धि से सुगन्धित ॥९३॥ जल से यदि शक्ति हो तो प्रतिदिन मन्त्रों से स्नान कराये । स्नान स्वर्णधर्मानुवाक, महापुरुषविद्या, पुरुष सूक्त तथा सामनीराजन आदि से करना चाहिए । विष्णु भक्त को चाहिए कि वह, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण पत्र, माला तथा चन्दन से पूजन करे ॥९४-९५॥ भगवान् विष्णु के भक्त को चाहिए कि वह श्रीभगवान् को प्रेम पूर्वक अलंकृत करे । वह श्रद्धापूर्वक श्रीभगवान् को पाद्य, आचमन, चन्दन, अक्षत, पुष्प, गन्ध, धूप आदि उपहारों को प्रदान करे । गुड में बना खीर, पूड़ी, पूआ, मिष्ठान, पायस, दही आदि का नैवेघ भोग लगाना चाहिए । भगवान् के अङ्गों में तेल लगाये, उनके अङ्गों को दबाये, उन्हें दर्पण दिखाये, दतौन कराये, तथा उनका अभिषेक करे ॥९६-९७॥ उन्हे प्रतिदिन अन्न आदि समर्पित करके नृत्य गीत करे । विधि पूर्वक मेखला तथा आवर्त युक्त, वेदियों पर अथवा कुण्ड में अग्नि की स्थापना करके उस पर हाथ से जल का समूह न करे । उसके चारों ओर कुश को बिछाकर नियमानुसार उसमें इन्धन डाले ॥९८-१००॥ फिर प्रोक्षणी पात्र को रखकर प्रोक्षणी के ही जल से घी को सिक्त करे । श्रीभगवान् की तप्त सुवर्ण के समान चारों भुजाओं शङ्ख, चक्र, गदा तथा कमल से सुशोभित हैं । वे स्वयं शान्त, पीताम्बर धारण किए हुए, किरीट, कटक (कंकण) तथा कटीसूत्र उनके श्रेष्ठ अङ्ग से सुशोभित हो रहे हैं ॥१०१-१०२॥ उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्न तथा कौस्तुभमणि से सुशोभित है । श्रीभगवान् वनमाला धारण किए हुए हैं, इस तरह से ध्यान करते हुए श्रीभगवान् की पूजा करके, हविष्य

मूलमन्त्रं जपेद्ब्रह्मन्स्मरन्नारायणात्मकम् । दत्त्वाचमनमुच्छिष्टं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् ॥१०५॥
मुखवासं तु सुरभिं ताम्बूलाद्यमुपाहरेत् । उपगायन्गृणन्नित्यं कर्माण्यभिनवाक्षरैः ॥१०६॥
सत्कथां श्रावयञ्छृण्वन्मुहूर्तं क्षणिको भवेत् ।
स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणैः प्राकृतैपि ॥१०७॥
स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वन्देत दण्डवत् ।
शिरस्तत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् ॥१०८॥
प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात्। इति शेषान्हरेर्दत्ताञ्छिरस्याधाय सादरम् ॥१०९॥
उद्वासयेच्चेदुद्वास्यं ज्योतिर्ज्योतिषि चात्मनः । अर्चादिषु पदं यत्र श्रद्धावांस्तत्र चार्चयेत्॥११०॥
सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्मानमवस्थितम्। एवं क्रियायोगपथैः पुमान्वैदिकतान्त्रिकैः॥१११॥
अर्च्चयेच्च यतः सिद्धिं हरेर्विन्दत्यभीप्सिताम् ।
तामर्चा सम्प्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद्दृढम् ॥११२॥
पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवादिकम् ।
पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् ॥११३॥
क्षेत्रापणपुरग्रामान्दत्त्वा सायुज्यतामियात् । प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम् ॥११४॥
पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिस्तत्साम्यतामियात् ।
तमेव नैरपेक्षेण भक्तियोगेन विन्दते ॥११५॥

तथा घी से युक्त समिधा से आज्य भाग तथा आघार भाग की दो-दो आहुति दे । उसके बाद घृत से प्लुत हविष्य की आहुति दे । उसके बाद पार्षदों की पूजा करके उन्हें बलि प्रदान करे ॥१०३-१०४॥ उसके बाद भगवान् नारायण का ध्यान करते हुए मूलमन्त्र (ओम् नमो नारायणाय) का जप करे । पुनः आचमन प्रदान करके विष्वक्सेन को श्रींगवान् का उच्छिष्ट प्रसाद प्रदान करे ॥१०५॥ उसके बाद श्रीभगवान् को मुखवास तथा सुगन्धित ताम्बूल आदि निवेदित करे । श्रीभगवान् को नवीन-नवीन प्रतिदिन स्तुति सुनाये ॥१०६॥ श्रीभगवान् को कुछ देर तक कथा सुनाये तथा सुने । फिर पुराणोक्त तथा लौकिक स्तुतियों से स्तुति करके श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करके कहे कि भगवन् आप प्रसन्न होइये । श्रीभगवान् के चरणों पर शिर रखकर तथा हाथ रखकर ॥१०७-१०८॥ कहे ''भगवन् मैं मृत्यु रूपी ग्राह से युक्त संसार सागर से भयभीत हूँ आपके शरण में आया हूँ आप मेरी रक्षा करें ।'' उसके बाद श्रीभगवान् के निर्माल्य को अपने शिर पर धारण करके, यदि उद्वासन करना हो तो उद्वासन करके अपनी आत्मज्योति में ज्योति को मिला दे । जहाँ पर पूजा इत्यादि की गयी हो उस स्थान की श्रद्धा पूर्वक पूजा करे ॥१०९-११०॥ परमात्मा सभी भूतों तथा अपनी आत्मा में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं, इस तरह से जानकर वैदिक तथा तान्त्रिक कर्मयोग के मार्ग से श्रीहरि की पूजा करे ऐसा करके वह अपनी अभिप्रेत वस्तु की सिद्धि को प्राप्त कर लेता है । उस मूर्ति की अच्छी तरह से प्रतिष्ठा करके मन्दिर का निर्माण करना चाहिए ॥१११-११२॥ श्रीभगवान् की पूजा आदि चलते रहें एतदर्थ मनोहर पुष्पों का उद्यान बनाये तथा पूजा की यात्रोत्सव इत्यादि कराये। यह कार्य महापर्वों पर अथवा प्रतिदिन कराये ॥११३॥ श्रीभगवान् को खेत, बाजार, नगर तथा ग्रामों का दान देकर मनुष्य श्रीभगवान् के सायुज्य को प्राप्त करता है । प्रतिष्ठा कराकर वह सार्वभौम राजा होता है तथा

भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेद्धरिम् ॥११६॥
यत्कृष्णप्रणिपातधूलिधवलं तद्धर्ष्म तद्वच्छुभम् ।
ते नेत्रे तपसार्जिते सुरुचिरे याभ्यां हरिर्दृश्यते ॥
सा बुद्धिर्विमलेन्दुशङ्खधवला या माधवव्यापिनी ।
सा जिह्वा मृदुभाषिणी नृप ! मुहुर्या स्तौति नारायणम् ॥११७॥
मूलमन्त्रेण कर्तव्यं स्त्रीशूद्रैरपि पूजनम्। श्रद्धया स्वगुरूद्दिष्टमार्गेणान्यैश्च वैष्णवः ॥११८॥
इदं ते सर्वमाख्यातं पावनं माधवार्चनम्। विशेषान्माधवे मासि त्वमेतत्कुरु भूपते॥११९॥

सूत उवाच

इत्येवमाकर्ण्य वचो विचित्रं पुण्यं पवित्रं विधिनन्दनस्य ।
प्रणम्यबद्धाञ्जलिराह राजा सकौतुकी भागवतप्रधानः ॥१२०॥

अम्बरीष उवाच

समस्तभूमीवलयेश्वरोऽहमव्याहताज्ञो विबुधप्रसेवी ।
गोविन्दपादाम्बुजदत्तचित्तः स्वाचित्तसन्तोषितभूमिदेवः ॥१२१॥
विख्यातराजोचितवंशरत्नं निरन्तरं धर्मरुचिर्यशस्वी ।
सौन्दर्यशौर्योदयदानशीलः सुपुत्रवानस्मि जितारिवर्गः ॥१२२॥
केनापि पुण्येन पवित्रबुद्धिर्जातोऽहमीदृग्गुणसङ्गतश्रीः ।
इयं पुनः श्रीरिव पुण्यमूर्तिर्लब्धा कुतः कान्तिमती च कान्ता ॥१२३॥

मन्दिर का निर्माण कराकर वह त्रैलोक्य का स्वामी होता है । पूजा आदि कराकर वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है तथा उपर्युक्त तीनों कार्यो को कराके मुक्ति प्राप्त कर लेता है । निष्काम भक्तियोग के द्वारा मनुष्य श्रीभगवान् को ही प्राप्त कर लेता है ॥११४-११५॥ इस तरह से श्रीहरि की पूजा करने वाला भक्तियोग को प्राप्त कर लेता है ॥११६॥ भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करने के कारण जिसका शरीर धूलि धूसरित हो जाता है, उसका ही शरीर शुभ है । जिन नेत्रों से वह श्रीहरि का दर्शन करता है, उन नेत्रों को वह जीव, तपस्या करके प्राप्त किए रहता है । भगवान् लक्ष्मीपति का चिन्तन करने वाली बुद्धि स्वच्छ चन्द्रमा तथा शङ्ख के समान श्वेत (सात्त्विकी) है । हे राजन् ! जो जीभ भगवान् नारायण की बार-बार स्तुति करती है वही जीभ मधुरभाषिणी है ॥११७॥ स्त्रियों, तथा शूद्रों को तथा श्रीवैष्णवों को भी आचार्योपदिष्ट मार्ग से मूलमन्त्र से श्रीभगवान् की पूजा करनी चाहिए ॥११८॥ राजन् ! वैशाख के महीने में मैंने श्रीभगवान् की जो विशेष पूजा विधि है, उसे आपको पूर्णरूप से सुना दिया आप भी इसे वैशाख मास में करे॥११९॥ **सूतजी ने कहा**— इस तरह की विचित्र वाणी को तथा श्रीभगवान् की पवित्र पूजा की विधि को सुनकर भगवद् भक्तों में प्रधान कौतुकी राजा ने हाथ जोड़कर प्रणाम करके कहा ॥१२०॥ **अम्बरीष ने कहा**— मैं सम्पूर्ण भूमण्डल का स्वामी हूँ; मेरी आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं करता, ब्राह्मणों की सेवा करता हूँ सदा भगवान् गोविन्द के चरणों में अपने चित्त को लगाये रखता हूँ । अपने मनोऽनुकूल ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करता हूँ !!१२१॥ मैं विख्यात राजाओं के वंश में उत्पन्न हूँ । मेरी रुचि सदैव धर्म में रहती है, मैं यशस्वी हूँ । सौन्दर्य और शौर्य से युक्त मैं दान करने वाला हूँ । मैं सुन्दर पुत्र वाला हूँ तथा सभी

इदं मे सुकृतं सर्वं पुरा जन्मनि चेष्टितम्। समादिश मुने सम्यक्सर्वज्ञोऽसि दयानिधे ॥१२४॥

नारद उवाच

इयं रूपवती नाम वेश्याऽसीदन्यजन्मनि । साम्प्रतं तव भार्या या सत्याचारातिसुन्दरी॥१२५॥

वेश्याधर्मेण वर्तेत यथोद्दिष्टेन भाविनी ।
कुर्वती किल कर्माणि शुभानि द्विजशासनात् ॥१२६॥
देवदास इति ख्यातो हेमकारो भवानभूत् ।
पूर्वजन्मनि वै तस्या रुचेर्भर्ता भुजङ्गमः ॥१२७॥

इयं भवन्तं भजते रुची रूपवती पुनः । व्ययार्थमयनं धर्मं स्थिता विज्ञानमुत्तमम् ॥१२८॥

आकर्ण्य चैकदा धर्मं वैशाखस्नानसम्भवम् ।
चक्रे धर्मवती तोये स्नानं मेषगते रवौ ॥१२९॥

दानं दत्तवती दक्षा वेश्या रूपवती सदा । ब्राह्मणाय नमस्कारं भक्त्याऽऽदरपुरःसरम्॥१३०॥
स तया देवदासस्त्वं वोधितःस्नेहयन्त्रितः । कृतवान्वुद्धितः स्नानं माधवे मासि सादरम्॥१३१॥
तत्र त्रेतायुगस्यादौ तृतीयामाप्य निर्मलाम्। सुवर्णकारं सोवाच देवदासं तमादरात् ॥१३२॥

वेश्योवाच

उत्तमं कुरु सौवर्णं मधुसूदनमच्युतम्। पूजयित्वा यवैर्देवमेतैःसन्तर्प्य चानलम् ॥१३३॥
ब्राह्मणाय च दास्यामि ब्राह्मणानामनुज्ञया। दानमेतत्पुराणेषु कथ्यते तत्र चाक्षयम्॥१३४॥
अक्षयेति तृतीयासौ ब्राह्मणेभ्यःश्रुतं मया । शुक्ला वैशाखमासस्य तदक्षयफलप्रदम् ॥१३५॥

शत्रुओं को मैंने जीत लिया है ॥१२२॥ किसी पुण्य विशेष के कारण मेरी वुद्धि पवित्र हो गयी है । मैं इस तरह के पुण्य रूपी ऐश्वर्य से युक्त हूँ । मैंने लक्ष्मीजी के समान सुन्दर शरीर वाली अपनी पत्नी को कैसे प्राप्त किया ?॥१२३॥ मेरे पूर्वजन्म के में किए गये पुण्य कर्मों का ही यह सवकुछ परिणाम है । हे मुने! आप तो सर्वज्ञ हैं, आप उस पुण्य को वतलायें ॥१२४॥ **नारदजी ने कहा—** यह पूर्वजन्म में सुन्दरी वेश्या थी । वही इस जन्म में आपकी सत्य तथा आचार सम्पन्न पत्नी हुयी है ॥१२५॥ ब्राह्मण की आज्ञा के अनुसार यह वेश्या के धर्म का पालन करती थी और उसी के अनुसार कर्मों को भी करती थी॥१२६॥ आप पूर्व जन्म में देवदास नामक सुवर्णकार तथा उस वेश्या के मनोऽनुकूल पति थे ॥१२७॥ यह रूपवती वेश्या आपकी ही सेवा रुचि पूर्वक करती थी । खर्च चलाने के लिए यह अपना धर्म (वेश्या धर्म) का पालन करती थी । इसका ज्ञान उत्तम कोटि का था ॥१२८॥ एक वार इसने वैशाख स्नान का माहात्म्य का श्रवण किया और मेष राशि के सूर्य के होने पर इसने वैशाख में स्नान के धर्म का पालन किया॥१२९॥ रूपवती वेश्या होकर भी यह सदा दान करती रहती थी । यह ब्राह्मण को आदर पूर्वक नमस्कार करती थी ॥१३०॥ आपसे प्रेम होने के कारण इसने आपको वैशाख मास के स्नान के माहात्म्य को वतलाया। और अपने भी आदर पूर्वक वैशाख मास का स्नान किया ॥१३१॥ त्रेतायुग के प्रारम्भ में वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन इसने देवदास नामक सुवर्णकार को आदर पूर्वक कहा ॥१३२॥ **वेश्या ने कहा—** आप सुवर्ण की भगवान् मधुसूदन की उत्तम मूर्ति बनायें । श्रीभगवान् की यव से पूजा करके तथा होम करके मैं ब्राह्मणों को उस मूर्ति को दान दूँगी । पुराणों में इस दान को अक्षय वतलाया गया है ॥१३४॥ मैंने

अस्यां दास्यामि तं हैमं मधुसूदनमव्ययम् ॥१३६॥

नारद उवाच

इति तस्या वचःश्रुत्वा मधुरं हेमकारकः। चक्रे सुवर्णप्रतिमामच्युतस्यापि सुन्दरीम् ॥१३७॥
सत्यभावेन धर्मार्थमिति चौर्यविवर्जितः। यथोद्दिष्टस्य चन्द्रस्य प्रतिमां लक्षणान्विताम्॥१३८॥
ददौ सा च विधानेन स्नात्वा विप्राय सुन्दरीम् ।
पूजयित्वा ततस्तस्यामक्षयायां तिथौ नृप ! ॥१३९॥
कालेन कियता वेश्या सा मृता धर्मनिष्ठिता ।
देवदासोऽपि सततो मृतः स्वीयायुषः क्षये ॥१४०॥
तेन पुण्येन भूपाल ! हेमकारोऽन्यजन्मनि। स त्वं प्राप्तो महीं राजन्नशेषगुणसंयुतः ॥१४१॥
सापि रूपवती वेश्या तेन धर्मेण तेऽभवत्। नाम्ना कान्तिमती कान्ता प्रणयेन परिप्लुता ॥१४२॥
विविधा वासना वीर कर्मणां पूर्वसम्भवाः। विचित्रागतयस्तात ज्ञायन्ते न बुधैरपि ॥१४३॥
तमेनं माधवं मासं प्रतिकार्यं न संशयः। गोपितं तेन देवेन ब्रह्मणा माधवेन च ॥१४४॥
असाधुसङ्गैरनवाप्तविद्यैरसंयतैराश्रमधर्महीनैः ।
अभूततीर्थैरकृतव्रतैस्तैर्न लभ्यते माधवमासधर्मः ॥१४५॥
गोविन्द केशव मुकुन्द हरे मुरारे लक्ष्मीनिवास मधुसूदन कृष्णाविष्णो ।
वाणी वरा न वदने वसतीति येषां वैशाखमासनियमो भवते न तेषाम् ॥१४६॥
ये साधुसाधु वचनानि हिताधिकानि नाकर्णयन्ति च हरेश्चरितामृतानि ।
पश्यन्ति ये न कमलारतिकेतनानि वैशाखमासनियमं न हि ते लभन्ते ॥१४७॥

ब्राह्मणों से सुना है कि यह अक्षय तृतीया तिथि है । यह वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि अक्षय फल प्रदान करती हैं ॥१३५॥ उसी तिथि को मैं भगवान् मधुसूदन की सुवर्ण निर्मित मूर्ति ब्राह्मणों को दान करूँगी । **नारदजी ने कहा—** इस तरह से उस वेश्या की मधुर वाणी को सुनकर सुवर्णकार ने॥१३६॥ सुवर्ण की श्रीभगवान् की सुन्दर मूर्ति को बनाया ॥१३७॥ उसके बनाने में उसने सत्यता का निर्वाह किया, चोरी नहीं की । लक्षणों से युक्त शास्त्रोक्त विधि से निर्मित सुन्दर प्रतिमा को उस वेश्या ने स्नान करके ब्राहाण की भक्ति पूर्वक पूजा करके उस अक्षय तृतीया तिथि को ब्राह्मणों को दान दिया ॥१३८-१३९॥ धर्म में निष्ठा रखने वाली वह वेश्या कुछ दिनों के बाद मर गयी, उसके बाद आयु का क्षय हो जाने से वह देवदास भी मर गया ॥१४०॥ उसी पुण्य के कारण वह सुवर्णकार ही दूसरे जन्म में आप समस्त गुणों से युक्त राजा हुए ॥१४१॥ उसी पुण्य के कारण रूपवती वह वेश्या भी आपसे पूर्णरूप से प्रेम करने वाली आपकी कान्ति नाम वाली पत्नी हुयी ॥१४२॥ हे वीर ! पूर्वजन्म में किए गये कर्मों की वासनायें अनेक प्रकार की होती है, उन कर्मों की विचित्र गतियों को विद्वान् भी नहीं जान पाते हैं ॥१४३॥ अतएव इस वैशाख के महीने में किये जाने वाले कर्मों को भगवान् लक्ष्मीपति और ब्रह्माजी ने रहस्यमय ही रखा है ॥१४४॥ दुष्टों के साथ रहने वाले, मूर्ख, असंयत रहने वाले तथा अपने आश्रम धर्म का परित्याग करने वाले, जिन सबों ने कभी न तो तीर्थ पावित्र्य का पालन किया है और न व्रत किया है वे कभी वैशाख मास के निमयों का पालन नही करते हैं ॥१४५॥ जो लोग सदा हे गोविन्द ! हे

शुश्रूषिता न गुरवो न वराय कन्या दत्ता समाय समये समलङ्कृता यैः ।
अध्यापिता न तनया विनयादिधर्मं वैशाखमासनियमं न हि ते लभन्ते ॥१४८॥

सूत उवाच

इत्येवमादिश्य मुनिर्नरेशमामन्त्र्य तं मन्त्रविदग्रगण्यः ।
स्नातुं ययौ माधवमासि गङ्गामभ्यर्चितस्तेन तदा स विप्राः ॥१४९॥
विधिं स राजाऽपि ततश्चकार वैशाखमासस्य मुनिप्रणीतम् ।
पत्न्या समं पुण्यधिया तमेव संचिन्तयँल्लोकपवित्रकीर्तिः ॥१५०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

छियानबेवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाप्राज्ञ जीव जीव शतं समाः । यद्वयं पुण्यसमयं श्राविता जगतो हितम्॥१॥

माधव! हे मुकुन्द ! हे हरे ! हे लक्ष्मीनिवास ! हे मधुसूदन ! हे कृष्ण ! हे विष्णो ! इस तरह से श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण नहीं करते हैं वे वैशाख मास के नियम का पालन नहीं कर पाते हैं ॥१४६॥ जो लोग साधु पुरुषों के सुन्दर तथा कल्याणकारी वचनों को तथा श्रीहरि के चरितामृत का श्रवण नहीं करते हैं, जो लोग श्रीभगवान् के मन्दिरों का दर्शन नहीं करते हैं उनको वैशाख मास के निमयों की प्राप्ति नहीं होती है ॥१४७॥ जिन लोगों ने गुरुजनों की न तो सेवा की है और न तो किसी सम गुण सम्पन्न वर को समयानुसार अलंकृत करके कन्यदान दिया है, जिन लोगों ने अपनी पुत्री को नम्रता आदि धर्मों का उपदेश नहीं दिया है वे लोग वैशाख मास के नियमों को नहीं प्राप्त कर पाते हैं ॥१४८॥ **सूतजी ने कहा**— इस तरह से देवर्षि नारदजी राजा को उपदेश देकर, मन्त्रज्ञों में अग्रगण्य वे उस राजा से पूजित होकर वैशाख मास में गङ्गा में स्नान करने के लिए चले गये ॥१४९॥ जिनकी संसार में पवित्र कीर्ति फैली थी । वे राजा भी मुनि के द्वारा उपदिष्ट वैशाख मास की विधि का अपनी पवित्र बुद्धि वाली पत्नी के साथ श्रीभगवान् का चिन्तन करते हुए पालन किए ॥१५०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के वैशाख माहाम्त्य के अन्तर्गत नारदजी तथा अम्बरीष के सम्वाद नामक पञ्चानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९५।।

वैशाख के महीने में श्रीभगवान् की पूजा करने के माहात्म्य का वर्णन

ऋषियों ने कहा— हे महाप्राज्ञ सूत ! आप सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहें क्योंकि आपने हमलोगों को पुण्यकारक तथा जगत् का कल्याण करने वाले नियमों को सुनाया है ॥१॥ आप पुनः अन्य बातों को

वद भूयोऽपि भूयिष्ठं पिवामस्तावकं वचः। पायम्पायं न तृप्यामो वयं सूत तदुत्तमम् ॥२॥

सूत उवाच

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । संवादमादिलोकस्य जगतां जगदीशितुः ॥३॥

षट्सहस्राणि चोच्छ्रायो विस्तारेण पुनस्त्रयम् ।
एवं नवसहस्राणि योजनानां विधाय च ॥४॥

वामया दंष्ट्रया गृह्य उद्धृतादौ वसुन्धरा। दिव्यवर्षसहस्रं वै दंष्ट्रयाधारिता मही॥५॥
धर्माख्यानप्रसङ्गेन सोवाच विनयाद्विभुम् ॥६॥

पृथिव्युवाच

एते द्वादशमासा वै षष्टिर्दिनशतत्रयम् । एषां किमुत्तमं पुण्यं प्रियं च तव केशव ! ॥७॥
पवित्रःकार्त्तिकोमासस्तुलासंस्थे दिवाकरे । मकरस्थे रवौ मासः पुराणे पवनःस्मृतः ॥८॥

मेषस्थे माधवो मासो भास्करे पठ्यते बुधैः ।
मार्गशीर्षोऽपि मासानां पावनःपरिकीर्तितः ॥९॥
एवं मासाः पवित्रास्ते वासराः केऽपि कीर्तिताः ।
युगादयो युगान्ताश्च तथा कल्पादयोऽपि च ॥१०॥

सर्वेभ्योऽप्यधिकं मासमेतेभ्यो वद पावनम्। सर्वयज्ञमयः श्रीमन्नेकं निश्चित्य मे वद ॥११॥

वराह उवाच

विधिनाऽविधिना चैव वे यजन्ति नरा धरे ! ।
माधवे मासि मां भक्त्या तैश्च पूज्योऽस्म्यहं सदा ॥१२॥

हिरण्याक्षो वरारोहे ! माधवे तु मधुर्हतः । आदिदैत्यावुभावेतौ हत्वा त्वं तु समुद्धृता ॥१३॥

वतलायें हमलोग आपकी अधिकाधिक वाणी को सुनना चाहते हैं । हमलोगों को आपकी वाणियों को सुनने से तृप्ति नहीं होती है ॥२॥ **सूतजी ने कहा—** इस विषय में प्राचीन इतिहास यह बतलाया जाता है जो आदि लोक के कर्ता तथा संसार के स्वामी के संवाद स्वरूप है ॥३॥ भगवान् वराह ने छह हजार योजन ऊँचा तथा तीन हजार योजन विस्तृत इस तरह नव हजार योजन का अपने दाँतों को बनाकर उन सुन्दर दाँतों से भू देवी का उद्धार किया । उन्होंने देवताओं को एक हजार वर्ष तक पृथिवी को अपने दाँत पर धारण किया ॥४-५॥ धर्म वर्णन के प्रसङ्ग में भूदेवी ने नम्रता पूर्वक वराह भगवान् से कहा ॥६॥ **पृथिवी देवी ने कहा—** हे केशव ! एक वर्ष में जो तीन सौ साठ दिन होते हैं । इन दिनों में से कौन सा दिन उत्तम पुण्यप्रद तथा आपको प्रिय है ?॥७॥ तुला राशि के सूर्य के होने पर कार्तिक का महीना पवित्र माना जाता है । मकर राशि के सूर्य के होने पर माघ का महीना पवित्र कहा गया है ॥८॥ विद्वान् लोग बतलाते हैं कि मेष राशि के सूर्य के होने पर वैशाख का महीना पवित्र होता है और सभी मासों में मार्गशीर्ष का महीना पवित्र बतलाया गया है ॥९॥ इस तरह से ये पवित्र मास हैं और कुछ तिथियाँ भी पवित्र बतलायी गयी हैं, वे हैं युगादि तिथि, युगान्त तिथि तथा कल्यादि तिथि ॥१०॥ आप सर्वयज्ञ स्वरूप हैं; आप निश्चित करके इन सबों में जो सर्वोत्तम मास हो उस किसी एक मास को बतलाइये ॥११॥ **वराह भगवान् ने कहा—** हे पृथिवि ! जो मनुष्य मुझे वैशाख के महीने में विधि पूर्वक अथवा अविधि पूर्वक मेरा भक्ति

त्रेतायुगे त्रयीधर्मो ज्ञानवर्णव्यवस्थितिः। माधवे मासि सम्भूता तेन मे माधवः प्रयिः॥१४॥
त्रेतायुगं तृतीयायां शुक्लायां मासि माधवे। प्रवृत्ताश्च त्रयीधर्मा प्रवृत्तास्ते प्रवर्द्धिताः ॥१५॥
अक्षया सोच्यते लोके तृतीया हरिवल्लभा। स्नाने दानार्चने श्राद्धे जपे पूर्वजतर्पणे॥१६॥

येऽर्चयन्ति यवैर्विष्णुं श्राद्धं कुर्वन्ति यत्नतः ।
तेषां ददाम्यहं सर्वयन्मनोभिष्टमुत्तमम् ॥१७॥
ये ददत्यपि दानानि धन्यास्ते धार्मिका नराः ।
ये यजन्ति हरिं नित्यमध्वरैर्विविधैरपि ॥१८॥
माधवे यजते यो मां तेभ्यस्तदधिकं फलम् ।
स्नानं दानं जपो होमस्तपो यज्ञव्रतादिकम् ॥१९॥
वैशाखे यत्कृतं देवि तस्य पुण्यफलं शृणु ।
मन्वन्तराणां कोट्यो दशपञ्च च सप्तच ॥२०॥
मत्सान्निध्यं गतास्तेऽपि तिष्ठन्ति भयवर्जिताः ।
यद्यपि स्युर्ग्रहाः सर्वे क्रूरा जन्मव्ययाष्टकाः ॥२१॥
प्रातः स्नानेन वैशाखे सर्वे सौम्या भवन्ति ते ।
वैशाखे मासि यो विप्रान्भोजयेद्भक्तितत्परः ।
सिक्थेसिक्थे भवेत्तृप्तिःपितृणां युगसङ्ख्यया: ॥२२॥
यच्छन्ति तत्र मधुराधिकभोजनानि ये वा यवाशनतिलोदकभोजनानि ।
छत्राम्बराणि चरणोचितरक्षणानि धन्यास्त एव परितोषकरा हि विष्णोः ॥२३॥

पूर्वक यजन करते हैं, उन सबों का सदा पूज्य बना रहता हूँ ॥१२॥ हे सुन्दरि ! वैशाख के महीने में मैंने हिरण्याक्ष तथा मधु इन दोनों दैत्यों को मारा । इन दोनों दैत्यों को मारकर तुम्हारा उद्धार किया ॥१३॥ त्रेतायुग में वैशाख के महीने मे ही वैदिक धर्म का ज्ञान तथा वर्णो की व्यवस्था हुयी इसीलिए मुझे वैशाख का महीना प्रिय है ॥१४॥ वैशाख शुक्ल तृतीया तिथि को ही त्रेतायुग और त्रयीधर्म ये दोनों प्रारम्भ हुए और बढ़े भी ॥१५॥ श्रीहरि के प्रिय वह तृतीया तिथि स्नान, दान, पूजन, श्राद्ध, जप तथा पूर्वजों का तर्पण करने के लिए अक्षय कही जाती है । जो लोग यव से भगवान् विष्णु का पूजन करते हैं तथा प्रयास पूर्वक श्राद्ध करते हैं उन लोगों को मैं उनके मनोऽनुकूल सभी वस्तुओं को प्रदान करता हूँ ॥१६-१७॥ जो लोग उस दिन दान देते हैं वे धार्मिक मनुष्य भी धन्य हैं । जो लोग प्रतिदिन श्रीहरि की अनेक प्रकार के यज्ञों से पूजन करते हैं ॥१८॥ उन लोगों की अपेक्षा वैशाख के महीने में पूजा करने वाले को अधिक फल प्राप्त होता है । हे देवि ! वैशाख के महीने में किए गये स्नान, दान, जप, होम तपस्या, यज्ञ तथा व्रत का फल तुम सुनो । मेरे सन्निकट जाकर वे जीव बाइस करोड़ मन्वन्तर पर्यन्त निर्भय होकर निवास करते हैं। यदि जन्मस्थान लग्न, व्यय स्थान तथा आठवें स्थान में क्रूर ग्रह विद्यमान हों ॥१९-२१॥ वैशाख के महीने में प्रातःकाल स्नान करने से वे सभी ग्रह सौम्य हो जाते हैं । वैशाख के महीने में जो भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराता है, उनके पितरों को युग की संख्या के अनुसार प्रत्येक सिक्थ के अवसर पर तृप्ति होती है ॥२२॥ अथवा जो लोग मिष्ठान्न का दान करते है, अथवा यव तथा तिल युक्त भोजन का

विशेषादिह दातव्यास्तिला मधुसमन्विताः। धर्माय बृहते दीर्घदुरितक्षयहेतवे ॥२४॥
एवं कृते तु यत्पुण्यं प्राप्यते मनुजैश्च तैः। तत्कैर्गणयितुं शक्यं वर्षकोटिशतैरपि ॥२५॥
पुत्रपौत्रादि सम्पत्ति दीर्घायूंषि यथेप्सितम्। इहाप्नोति परत्रापि मामेव प्रतिपद्यते॥२६॥
अनेकजन्मार्जितपातकावली विलीयते माधवमज्जनेन ।
जनस्य तत्रोषसि पुण्यतीर्थे यथाविधानं श्रयते तथा वा ॥२७॥
यः परित्यज्य वैशाखं व्रतमन्यदुपाचरेत्। स करस्थं महारत्नं हित्वा लोष्टं हि याचते॥२८॥

सूत उवाच

एवं स भगवान्पूर्वमादिदेवोऽवदद्विभुः। माधवं मासमुद्दिश्य जगत्यां जगतीश्वरः॥२९॥
किमत्र बहुनोक्तेन न तदस्ति महीसुराः। यदप्राप्यं भवेन्मासि माधवे माधवार्चनात्॥३०॥
शृणुध्वं च पुरा वृत्तमिहार्थे परमाद्भुतम्। ब्राह्मणस्य च संवादं यमस्य च महात्मनः॥३१॥
मध्यदेशे महाग्रामो ब्राह्मणानां बभूव ह। गङ्गायमुनयोर्मध्ये यामुनस्य गिरेरधः॥३२॥
विद्वांसस्तत्र भूयिष्ठा ब्राह्मणाश्चावसंस्तदा। अथ प्राह यमः कंचित्पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्॥३३॥
रक्ताक्षमूद्र्ध्वरोमाणां काकजङ्घाक्षिनासिकम् ।
गच्छ त्वं भो महाग्रामं गत्वा ब्राह्मणमानय ॥३४॥
वसिष्ठगोत्रसम्भूतं नामतो यज्ञदत्तकम्। शमे निविष्टं विद्वांसं यज्ञकर्मविशारदम्॥३५॥
न चान्यमानयेथास्त्वं सगोत्रं तस्य पार्श्वतः। स हि तादृग्गुणस्तेन तुल्योऽध्ययनजन्मना॥३६॥

दान करते हैं, छत्र, वस्त्र और उपानह का दान करते हैं, वे भगवान् विष्णु को सन्तुष्ट करने वाले, मनुष्य धन्य हैं ॥२३॥ महान् और दीर्घकालिक पाप का विनाश करने के लिए विशेष रूप से मधुयुक्त तिलों का, धर्मराज की प्रसन्नता के लिए दान करना चाहिए ॥२४॥ इस तरह से करने पर उन मनुष्यों को जिन पुण्यों की प्राप्ति होती है उन सबों को कोई सैकड़ों करोड वर्षो में भी नहीं गिन सकता है ॥२५॥ वह मनुष्य इस लोक में पुत्रों तथा पौत्रों को एवं सम्पत्ति को प्राप्त करता है और परलोक में वह मुझको ही प्राप्त कर लेता है ॥२६॥ वैशाख मास में यदि कोई मनुष्य तीर्थ में जाकर प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान नहीं करता है तो उसके अनेक जन्मों के पुण्य विनष्ट हो जाते हैं ॥२७॥ जो मनुष्य वैशाख के महीने का परित्याग करके दूसरे व्रत को करते हैं वे मानो हस्तस्थित मूल्यवान् रत्न को त्यागकर मिट्टी के ढेले को प्राप्त करना चाहते हैं ॥२८॥ **सूतजी ने कहा**— इस तरह से प्राचीन काल में आदि देव जगदीश्वर श्रीभगवान् ने वैशाख मास के विषय में भूदेवी से कहा ॥२९॥ हे ब्राह्मणों बहुत अधिक कहने से कौन सा लाभ है ? संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो वैशाख के महीने में श्रीभगवान् की पूजा करने से प्राप्त न हो॥३०॥ इस विषय में पहले के समय में यमराज और ब्राह्मण का जो संवाद हुआ उसे आपलोग सुनें॥३१॥ यमुना पर्वत को नीचे, गङ्गा तथा यमुना के बीच में मध्यदेश में ब्राह्मणों का एक महान् ग्राम था ॥३२॥ वहाँ पर बहुत अधिक ब्राह्मण रहते थे । वहाँ पर यमराज ने किसी कृष्ण पिङ्गल (काले तथा पीतवर्ण) के पुरुष यमदूत से कहा ॥३३॥ उस पुरुष की आँखे लाल थी, रोएँ खड़े-खड़े थे, उसके जंङ्घे नेत्र और नाक कौए के नेत्र, जङ्घा और नाक के समान थे । तुम इस ग्राम में जाकर एक ब्राह्मण को लाओ॥३४॥ वह वसिष्ठ गोत्र में उत्पन्न है, उसका नाम यज्ञदत्त हे, वह शास्त्रज्ञ विद्वान् है तथा यज्ञकर्म

आकृत्या च तथा चिह्नैः समस्तेनैव सत्तमः ।
तमानय यथोदिष्टापूजाकार्याहि तस्य मे ॥३७॥
स गत्वा प्रतिकूलं तु चकार यमशासनम्। तमेवमानयामसि प्रतिषिद्धो यमेन यः ॥३८॥
तस्मै यमः समुत्थाय पूजां कृत्वा च धर्मवित् ।
प्रोवाच नीयतामेष सोऽन्य आनीयतामिति ॥३९॥

सूत उवाच

एवमुक्ते तु वचने धर्मराजेन स द्विजः। उवाच धर्मराजं तं निर्विण्णो गमनाय वै॥४०॥

ब्राह्मण उवाच

कस्मादहमिहानीतः कस्मात्प्रेरयसे पुनः। गन्तुं नैवोत्सहे तत्र मर्त्यलोकं पुनः प्रभो ! ॥४१॥

यम उवाच

इह क्षीणायुषां पुंसां वासःपुण्यवतां भवेत्। अयं वै धर्मराजस्य लोके धर्म प्रकीर्तितः ॥४२॥
सौख्यभूमिरियं सर्वा धर्मराजोऽहमीश्वरः। पुण्यापुण्यानुसारेण जन्तूनां सुखदुःखदः ॥४३॥
पापिनां यमरूपोऽस्मि नृणां निरयदायकः। तथा पुण्यवतां सौख्यस्वर्गदो धर्ममूर्तिमान् ॥४४॥
गच्छ विप्रत्वमद्यैव निलये स्वं यथागतः। अद्यापि दशवर्षाणामायुस्ते परिवर्तते ॥४५॥
क्षये तवायुषः प्राप्तिर्लोकस्यास्य भविष्यति ।
प्रष्टव्यं चेत्त्वया ह्यन्यत्पृच्छस्व प्रववीमि ते ॥४६॥

ब्राह्मण उवाच

यत्कृत्वा सुमहत्पुण्यं स्वर्गः स्याद्ब्रूहि तन्मम ।
सर्वस्य हि प्रमाणंत्वं धर्माधर्मविनिश्चये ॥४७॥

करने में दक्ष है ॥३५॥ उसके सन्निकट में रहने वाले उसी के गोत्र के किसी दूसरे ब्राह्मण को मत लाना। उसके सन्निकट में रहने वाला भी उसी के समान गुणवान् अध्ययन करने वाला तथा उसी के समान जन्म वाला है ॥३६॥ उसका भी आकार तथा सभी चिह्न उसी के समान हैं । जिसको मैंने कहा है उसी को लाना, मुझे उसकी पूजा करनी है ॥३७॥ किन्तु वह दूत यम की आज्ञा के प्रतिकूल ही काम किया, यम ने जिसका निषेध किया था उसी को वह लाया ॥३८॥ धर्म के जानकार यमराज ने खड़ा होकर उस ब्राह्मण की पूजा की और कहा इसको ले जाओ जिसे मैंने कहा है उसको लाओ ॥३९॥ **सूतजी ने कहा—** धर्मराज के इस तरह से कहने पर जाने के विषय में उदास होकर उसने यमराज से कहाँ ॥४०॥ **ब्राह्मण ने कहा—** मुझे यहाँ क्यों लाया गया और पुनः क्यों भेजा जा रहा है ? हे प्रभो ! मैं पुनः मर्त्यलोक में नहीं जाना चाहता हूँ ॥४१॥ **यमराज ने कहा—** यहाँ पर उन्हीं पुण्यवान् पुरुषों का निवास होता है जिनकी आयु क्षीण हो गयी रहती है । इसी को धर्मराज के लोक में पुण्य कहा गया है ॥४२॥ यहाँ की सम्पूर्ण भूमि सुखमयी है, इसका स्वामी मैं धर्मराज हूँ । मैं जीवों के पुण्य तथा पाप के अनुसार उन्हें सुख तथा दुःख देता हूँ ॥४३॥ पापियों के लिए मैं नरक प्रदान करने वाला यम स्वरूप हूँ और पुण्यवान् जीवों को मैं धर्मराज के रूप में सुख प्रदान करता हूँ ॥४४॥ हे ब्राह्मण ! तुम जैसे आये हो उसी प्रकार अपने घर लौट जाओ । आज भी तुम्हारी दश वर्षो की आयु बची है ॥४५॥ तुम्हारी आयु

यदि देव मया सम्यग्गन्तव्यं निजमन्दिरे । तद्ब्रूहि कर्मणा केन पतन्ति नरके नराः ॥४८॥
व्रजन्ति केन वै स्वर्गं तत्सर्वं कृपया वद ॥४९॥

यम उवाच

कर्मणा मनसा वाचा ये धर्मविमुखा नराः। विष्णुभक्तिविहीना ये ते वै निरयगामिनः ॥५०॥
पश्यन्ति भेदबुद्ध्या ये ब्राह्मणं शङ्करं हरिम् ।
विरक्ता विष्णुविद्यासु नरा निरयगामिनः ॥५१॥
कुलदेशोचितं कर्म यस्त्यक्त्वाऽन्यत्समाचरेत् ।
कामाद्वा यदि वा मोहात्स याति नरकं नरः ॥५२॥
अयाज्यजाजकश्चैवयाज्यानां च विवर्जकः । विरतोविष्णुविद्यासु स भुङ्क्ते नरकान्बहून्॥५३॥
अदत्त्वा पितृदेवेभ्यो विप्रेभ्यो मर्त्यबन्धुषु । सधनो म्रियते पापः स याति नरकान्बहून्॥५४॥
सर्वाण्यन्नानि सिद्धानि पाकभेदं करोति यः ।
अवैश्वदेवं भुञ्जीत स याति नरकं चिरम् ॥५५॥
बहुद्रोहेण भूतानां येऽर्जयन्ति धनं द्विजः। धनवन्तो निरयगा दाम्भिका दुःखभागिनः ॥५६॥
नास्तिक्यादथवा लोभान्मोहात्काले यथोदिते ।
भक्त्या न श्राद्धदा ये स्युः पच्यन्ते नरकेषु ते ॥५७॥
दीयमानस्य वित्तस्य ब्राह्मणेभ्यस्तुपापकृत्। विघ्नमाचरते योऽसौ नरो निरयगो भवेत् ॥५८॥

क्षय हो जाने पर तुम पुनः इस लोक में आओगे । यदि तुम कोई दूसरी बात पूछना चाहो तो पूछो उसे मैं बतलाऊँगा ॥४६॥ **ब्राह्मण ने कहा—** जिस महान् पुण्य को करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, उसे आप मुझे बतलायें । धर्म तथा अधर्म सबों का निर्णय करने में आप प्रामाणिक पुरुष हैं ॥४७॥ हे देव! यदि मुझे अपने घर जाना है तो आप अच्छी तरह से बतलायें कि किन कर्मों के कारण लोग नरकगामी हो जाते हैं ?॥४८॥ हे देव ! आप कृपा करके बतलायें कि किस कर्म के कारण स्वर्ग में लोग जाते हैं॥४९॥ **यम ने कहा—** जो मनुष्य मन वाणी और कर्म से धर्म विरोधी होते हैं तथा भगवान् विष्णु की भक्ति से रहित होते हैं वे लोग नरकगामी होते हैं ॥५०॥ जो लोग ब्राह्मण, शङ्करजी तथा श्रीहरि में भेद बुद्धि रखते हैं तथा भगवान् विष्णु विषयक विद्याओं से उदासीन रहते हैं वे लोग नरकगामी हैं ॥५१॥ जो मनुष्य अपने वंश तथा देश के लिए उचित कर्म का परित्याग करके उससे भिन्न आचरण का पालन; काम अथवा अज्ञान वशात् करते हैं वे नरक गामी होते हैं ॥५२॥ जो अपूज्य व्यक्ति का पूजन करता है तथा पूज्यों का परित्याग कर देता है तथा भगवान् विष्णु विषयक विद्याओं से उदासीन रहता है, वह अनेक नरकों में जाता है ॥५३॥ जो पापी धनिक पितरों, देवताओं, ब्राह्मणों तथा अपने बांधवों को दान दिए बिना ही मर जाता है वह अनेक नरकों में जाता है ॥५४॥ जो सभी सिद्ध अन्नों में पाक-भेद करता है, तथा बलिवैश्वदेव किए बिना ही जो खाता है वह दीर्घकाल तक नरकों में रहता है ॥५५॥ जो अनेक जीवों से द्रोह करके धन कमाते हैं वे धनवान् तथा दम्भी नरकगामी हैं ॥५६॥ जो लोग नास्तिकता या लोभ या मोह के कारण समयानुसार भक्ति पूर्वक पितरों का श्राद्ध नहीं करते हैं वे लोग दीर्घकाल तक नरक में रहते हैं तथा जो दिए जाने वाले दान में विघ्न उपस्थित करता है, वह मनुष्य नरक में जाता

सामान्यदक्षिणां लब्ध्वा गृह्णात्येको विमोहितः ।
नास्तिक्यभावनिरतो नरः स्यान्नरकालये ॥५९॥
असहिष्णुतया तस्य गुणानां कारणं भवेत्। महत्पापं समुत्पन्नं कारणं नरकस्य तत्॥६०॥
निर्दोषां सुहृदं भार्यां त्यजन्कालेन याति यः ।
न वहते यशस्तेषां स नरो नरके पतेत् ॥६१॥
अधर्मं धर्ममिति यो वदेन्मोहवशं गतः । हैतुको नास्तिको यस्तु स नरो निरयालयः ॥६२॥
मनसा योऽन्यभावेन वचसा चान्यथा वदेत् ।
हृदयं कलुषं कुर्यात्स नरो नरके वसेत् ॥६३॥
अवमन्य च ये यान्ति भगवत्कीर्तन नराः । ते यान्ति नरकं घोरं तेन पापेन कर्मणा ॥६४॥
पश्यन्तो भगवद्द्वारं नामशास्त्रपरिच्छदम् । अकृत्वा तत्प्रणामादि ते यान्ति नरकौकसः ॥६५॥
विनाऽपराधेन नराःकृत्वा पत्न्यधिवेदनम् । त्यजन्ति सुकलत्रं ये ते यान्ति नरके नराः ॥६६॥
न श्रृणोति गुरोर्वाक्यं धर्मशास्त्रं च यो नरः ।
परेषां चेतसःक्लेशकारी निरयगो भवेत् ॥६७॥
पश्यतां बन्धुबालानां प्रकर्षीमिष्टमश्नुते। स याति नरकं घोरं केवलोदरपूरकः ॥६८॥
तुलामकरमेषेषु प्रातः स्नानं न यश्चरेत् । नद्यादिपु च नास्तिक्यात्तस्य स्यान्नरकालयः ॥६९॥
वैष्णवं जनमालोक्य नाभ्युत्थानं करोति यः ।
प्रणयादरतो विप्र ! स नरो नरकातिथिः ॥७०॥

है ॥५७-५८॥ जो सबलोगों की दक्षिणा प्राप्त करके उसे अज्ञान अथवा नास्तिक बुद्धि के कारण अकेले ले लेता है, वह नरक में जाता है ॥५९॥ जो किसी के गुणों के विषय में असहिष्णु होता है, उसके कारण उसे जो महान् पाप लगता है, उससे वह नरक गामी होता ॥६०॥ जो निर्दोष तथा सौहार्द रखने वाली पत्नी का परित्याग करके उसके साथ समयानुसार सम्बन्ध नहीं रखता है और उसके यश को नहीं धारण करता है, वह नरकगामी होता है ॥६१॥ जो अज्ञानी अधर्मो को धर्म बतलाता है तथा जो कुतर्की तथा नास्तिक होता है, वह नरक में निवास करता है ॥६२॥ जिसके मन में दूसरा भाव होता है, वाणी से दूसरी बात कहता है तथा जिसके हृदय में पाप होता है वह मनुष्य नरकगामी होता है ॥६३॥ जो लोग भगवान् के कीर्तन में अनादर पूर्वक जाते हैं, वे उस अपने भयङ्कर पाप कर्म के कारण नरक में जाते हैं॥६४॥ जो भगवान् के मन्दिर, उनके नाम तथा शास्त्र इत्यादि को जानकर उसको प्रणाम किए बिना ही चले जाते हैं वे लोग नरकवासी होते हैं ॥६५॥ जो लोग बिना किसी अपराध के अपनी पत्नी को अधिक दुःख देते हैं तथा उसका परित्याग कर देतें हैं ऐसे लोग नरकगामी होते हैं ॥६६॥ जो व्यक्ति अपने गुरुजनों की बातों को नहीं सुनता है तथा धर्मशास्त्र का भी श्रवण नहीं करता है, तथा दूसरे लोगों के अन्तःकरण को दुःख देता है, वह नरकगामी होता है ॥६७॥ जो अपने बान्धवों के बच्चों के सामने ही अच्छी चीजें खाता है और उन सबों को नहीं देता है, वह केवल अपना पेट भरने वाला नरकगामी होता है ॥६८॥ तुला, मकर तथा मेष राशि के महीने में जो नास्तिकता के कारण नदी आदि में स्नान हीं करता है वह नरकों में निवास करता है ॥६९॥ हे विप्र ! जो भगवद् भक्तों को देखकर भी प्रेम तथा आदर के

काष्ठैर्वा शङ्कुभिर्वापि शूलैरश्मभिरेव च। ये मार्गांश्चैव रुन्धन्ति ते वै निरयगामिनः ॥७१॥
आद्यं पुरुषमीशानं सर्वलोकमहेश्वरम्। न चिन्तयन्ति ये विष्णुं ते वै निरयगामिनः ॥७२॥
क्षेत्रवृत्तिं गृहच्छेदं प्रीतिच्छेदं च ये नराः। आशाच्छेदं च कुर्वन्ति ते नरा नरकौकसः ॥७३॥
आगतान्भोजनार्थं च ब्राह्मणान्वृत्तिकर्शितान् ।
यःपरीक्षेत मूढात्मा स ज्ञेयो नरकातिथिः ॥७४॥
अनाथं वैष्णवं दीनं रोगार्तं वृद्धमेव च। नानुकम्पन्ति ये मूढास्ते वै निरयगामिनः ॥७५॥
नियमांस्तु समादाय ये पश्चादजितेन्द्रियाः। विलोपयन्ति तान्भूयस्ते वै निरयगामिनः ॥७६॥
शृणु विप्र यथा यान्ति नराः स्वर्गं दयालवः ।
समासेनैव वक्ष्यामि किञ्चित्ते गौरवादहम् ॥७७॥
येऽर्चयन्ति हरिं देवं जिष्णुं विष्णुं सनातनम् ।
नारायणमजं कृष्णं विष्वक्सेनं चतुर्भुजम् ॥७८॥
ध्यायन्ति पुरुषं दिव्यमच्युतंये स्मरन्ति च। लभन्ते तेऽच्युतस्थानं श्रुतिरेषा पुरातनी ॥७९॥
इदमेव हि माङ्गल्यमिदमेव धनार्जनम्। जीवितस्य फलं चैतद्यद्दामोदरकीर्तनम् ॥८०॥
कीर्तनाद्देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः। दुरितानि विलीयन्ते तमांसीव दिनोदये॥८१॥
गाथां गायन्ति ये नित्यं वैष्णवीं श्रद्धयान्विताः ।
स्वाध्यायनिरता नित्यं ते नराः स्वर्गगामिनः ॥८२॥
सर्वान्क्लेशान्परित्यज्य विष्णुमेव स्तुवन्ति ये ।
स्वधर्मनिरता धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥८३॥

साथ खड़ा नहीं होता है वह मनुष्य नरकगामी होता है ॥७०॥ जो लोग लकड़ी, कील, या शूल या पत्थर के द्वारा रास्ता को रोक देने का काम करते हैं वे नरकगामी होते हैं ॥७१॥ जो लोग आदि पुरुष, सबों के नियामक तथा सबों के स्वामी भगवान् विष्णु का ध्यान नहीं करते हैं, वे नरकगामी होते हैं ॥७२॥ जो मनुष्य क्षेत्रवृत्ति का काम, घर में वैमनस्य तथा, प्रेम में भङ्ग तथा किसी को निराश करने का काम करते हैं, वे लोग नरकगामी होते हैं ॥७३॥ जो भोजन के लिए आये हुए निर्धन ब्राह्मणों की परीक्षा करता है, उस मूर्ख को नरकगामी ही समझना चाहिए ॥७४॥ जो मूर्ख अनाथ, विष्णुभक्त, दीन, रोगी तथा वृद्ध पर दया नहीं करते हैं वे नरकगामी होते हैं ॥७५॥ जो अजितेन्द्रिय किसी नियम को धारण करके फिर उसका परित्याग कर देते हैं, वे नरकगामी होते हैं ॥७६॥ हे विप्र ! जिस तरह से दयालु पुरुष स्वर्ग में जाते हैं, उसे मैं तुम्हें संक्षेप में तुम्हारे गौरव के कारण बतलाता हूँ ॥७७॥ जो लोग संसार को अपने वश में रखने वाले सनातन भगवान् विष्णु की भक्ति पूर्वक अर्चना करते हैं । वे श्रीभगवान् ही अजन्मा, नारायण, कृष्ण, विष्वक्सेन, चतुर्भुज हैं; ॥७८॥ जो लोग दिव्यपुरुष भगवान् अच्युत का ध्यान और स्मरण करते है वे लोग भगवान् अच्युत के लोक को प्राप्त करते है, यह प्राचीन श्रुति कहती है ॥७९॥ भगवान् दामोदर का कीर्तन ही मङ्गलमय है, यही धनार्जन है, तथा यही जीवन-प्राप्त करने का फल है ॥८०॥ जैसे सूर्योदय हो जाने पर अन्धकार का नाश हो जाता है, उसी तरह से श्रीभगवान् का कीर्तन करने से पापों का नाश हो जाता है ॥८१॥ जो लोग प्रतिदिन श्रद्धा पूर्वक भगवान् विष्णु का गान करते हैं तथा वेदाध्ययन करते

वासुदेवजपासक्तानपि पापकृतो जनान्। नोपसर्पन्ति तान्विप्र ! यमदूताश्च दारुणः ॥८४॥
नान्यत्पश्यन्ति जन्तूनां विहाय हरिकीर्तनम्। सर्वपापप्रशमनं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तम ! ॥८५॥
ये याचिताः प्रहृष्यन्ति प्रियं दत्त्वा वदन्ति च ।
त्यक्तदानफला ये च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥८६॥
वर्जयन्ति दिवास्वापं नराः सर्वसहाश्च ये। पर्वण्याश्रयभूता ये ते मर्त्याः स्वर्गगामिनः॥८७॥
द्विषतामपि ये दोषान्न वदन्ति कदाचन । कीर्तयन्ति गुणांश्चैव ते नराः स्वर्गगामिनः॥८८॥
ये परेषां श्रियं दृष्ट्वा न वितप्यन्ति मत्सरात् ।
प्रहृष्टाश्चाभिनन्दन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥८९॥
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च श्रुतिशास्त्रोक्तमेव च । आदरन्ति प्रतीता ये ते नराः स्वर्गगामिनः ॥९०॥
यस्मिन्कस्मिन्कुले जाता दयावन्तो यशस्विनः ।
सानुक्रोशाः सदाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥९१॥
ये पूताः परदारांश्च कर्मणा मनसा गिरा। रमयन्ति न सत्त्वस्थास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥९२॥
सदा कर्मयथोक्तेन कुर्वन्ति विधिना च ये। आत्मशक्तिञ्च विज्ञाय ते नराःस्वर्गगामिनः॥९३॥
मनोवाक्कायिके धर्मे श्रद्धां यः कुरुते सदा ।
साधूनां सम्मतो यश्च स भवेद्देवतातिथिः ॥९४॥
वचोवेगं मनोवेगं यो वेगमुदरोद्भवम्। उपस्थवेगं सहते स स्वर्गी जायते नरः॥९५॥
येषां गुणेषु सन्तोषो वाणी येषां श्रुतम्प्रति। परमार्थे मतिर्येषां ते शिष्टाः स्वर्गगामिनः ॥९६॥

हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी हैं ॥८२॥ जो लोग सभी क्लेशों का परित्याग करके भगवान् विष्णु की ही स्तुति करते हैं, वे अपने धर्म में सदैव लगे रहने वाले धैर्य सम्पन्न मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं ॥८३॥ हे विप्र ! यदि पापी मनुष्य भी भगवान् वासुदेव का जप करते हैं तो उनके पास भयङ्कर आकार वाले यमदूत नहीं जाते हैं ॥८४॥ हे द्विजोत्तम ! जो लोग सभी पापों को विनष्ट करने वाले श्रीहरि के कीर्तन को छोड़कर किसी दूसरे उपाय को नहीं अपनाते हैं, जो याचना करने पर प्रसन्न होते हैं, दान देकर मधुर वाणी बोलते हैं तथा जो मनुष्य दान के फल की अभिलाषा नहीं करते हैं वे स्वर्गगामी मनुष्य हैं ॥८५-८६॥ जो सर्वसहिष्णु मनुष्य दिन में नहीं सोते हैं तथा पर्वो के आश्रय स्वरूप है, वे मनुष्य स्वर्गगामी हैं ॥८७॥ जो शत्रुओं के भी दोषों का वर्णन नहीं करते हैं; अपितु उनके गुणों को ही बतलाते हैं वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं ॥८८॥ जो दूसरों की सम्पत्ति को देखकर द्वेष के कारण दुःखी नहीं होते हैं, अपितु प्रसन्नतापूर्वक उनका अभिनन्दन करते हैं वे मनुष्य स्वर्गगामी है ॥८९॥ जो मनुष्य श्रुति सम्मत प्रवृत्तियों तथा निवृत्तियों का समादार करते हैं वे मनुष्य स्वर्गगामी हैं ॥९०॥ किसी भी वंश में उत्पन्न होकर जो लोग, दयालु, यशस्वी, किसी के दुख में दुःखी तथा सदाचारी होने वाले होते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं ॥९१॥ जो लोग दूसरों की पत्नी के विषय में मन, वाणी तथा कर्म से पवित्र होते हैं सात्त्विक होने के कारण उनमें रमण नहीं करते हैं वे मनुष्य स्वर्ग जाने वाले हैं ॥९२॥ जो लोग कर्मों को सदा विधिपूर्वक करते हैं तथा आत्मशक्ति को जानते हैं वे मनुष्य स्वर्गगामी हैं ॥९३॥ जो मनुष्य मन, वाणी तथा शरीर के धर्मो में श्रद्धा करते हैं तथा जो सज्जन पुरुषों के अनुकूल रहते हैं, वे देवताओं के अतिथि होते हैं ॥९४॥ जो मनुष्य

व्रतं रक्षन्ति ये कोपाच्छ्रियं रक्षन्ति मत्सरात् ।
विद्यां मानापमानाभ्यामात्मानं तु प्रमादतः ॥९७॥
मतिं रक्षन्ति ये लोभान्मनो रक्षन्ति कामतः ।
धर्मं रक्षन्तिदुःसङ्गात्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥९८॥
एकादश्यां च विधिवदुपवासपरायणाः । शुक्लेऽसिते च ये विप्र ते नराः स्वर्गगामिनः॥९९॥
मातेव सर्वबालानामौषधं रोगिणामिव । रक्षार्थं सर्वलोकानां निर्मितैकादशी तिथिः ॥१००॥
एकादशीसमं किञ्चित् पापत्राणं न विद्यते । तामुपोष्य विधानेन पुरुषाः स्वर्गगामिनः ॥१०१॥
एकादशेन्द्रियैः पापं यत्कृतं भवति द्विज । नरो निर्द्धूयतत्तूर्णम्प्रीतः स्वर्गतिमान्भवेत् ॥१०२॥
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । एकादश्युपवासस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥१०३॥
एकतः क्रतवः सर्वे सर्वतीर्थतपांसि च । महादानादिदानानि व्रतं वैष्णवमेकतः ॥१०४॥
वैष्णवव्रतजपो धर्मो धर्मो यज्ञादि सम्भवः । एकत्र तुलितौ धात्रा तत्र पूर्वो भवेद्गुरुः ॥१०५॥
हरिवासरभक्तानामच्युतानन्तभाषिणाम् । नाहंशास्ताविशेषेण तेभ्यो विप्र ! बिभेम्यहम्॥१०६॥
येषां पुत्रश्च पौत्रश्च एकादश्यामुपोषितः । सहात्मना च पुरुषाञ्छतमुद्धरते बलात् ॥१०७॥
उपोषणन्ततः कुर्यात्पक्षयोरुभयोरपि । एकादश्यां स पुरुषो भुक्तिमुक्त्येकभाजनम्॥१०८॥

वाणी के वेग को, मन के वेग को, पेट के वेग (भूख) को तथा उपस्थ के वेग (कामार्तता) को वर्दास्त (रोक) कर लेते हैं जो स्वर्गी मनुष्य होते हैं ॥९५॥ जिन लोगों को गुणों में सन्तोष होता है, तथा जिनकी वाणी सुनने योग्य होती है तथा जिनकी बुद्धि परोपकार में ही लगी रहती है वे शिष्टपुरुष स्वर्ग जाते हैं॥९६॥ जो लोग व्रत में क्रोध नहीं करते हैं, ऐश्वर्य प्राप्त करके किसी से द्वेष नहीं करते हैं, विद्या प्राप्त करके मानापमान की परवाह नहीं करते हैं तथा आत्मा के विषय में प्रमाद नहीं करते हैं ॥९७॥ लोभ से अपनी बुद्धि को बचाते हैं, काम से अपने मन को बचाते हैं, दुःसङ्ग से धर्म को बचाते हैं, वे मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं ॥९८॥ शुक्ल तथा कृष्ण दोनों पक्ष की एकादशी तिथि को जो विधि पूर्वक उपवास करते हैं हे विप्र ! वे मनुष्य स्वर्ग जाते हैं ॥९९॥ जिस तरह माता सभी बालकों की रक्षा करती है, औषधि सभी रोगियों की रक्षा करती है उसी तरह एकादशी तिथि सभी जीवों की रक्षा करती है ॥१००॥ एकादशी के समान पाप से बचाने वाला कोई भी दूसरा साधन नहीं है । एकादशी तिथि को उपवास करने वाले मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं ॥१०१॥ ग्यारहों इन्द्रियों के द्वारा किए गये पापों को विनष्ट करके एकादशी व्रत करने वाला मनुष्य शीघ्र ही प्रसन्नता पूर्वक स्वर्ग चला जाता है ॥१०२॥ हजारों अश्वमेध तथा सैकड़ों राजसूय यज्ञ से होने वाला पुण्य एकादशी व्रत के षोडशांश के भी बराबर नहीं होता है ॥१०३॥ एक तरफ सभी याग, सभी तीर्थ, सभी तपस्याएँ तथा महादान आदि जन्य फल तथा एक तरफ एकादशी का फल॥१०४॥ वैष्णव्रत, जप तथा धर्म इन सबों को एकत्रित करके ब्रह्माजी ने तौला तो एकादशी का फल अधिक भारी हो गया ॥१०५॥ जो लोग एकादशी व्रत करते हैं तथा अच्युत, अनन्त आदि नाम का जोर से उच्चारण करते रहते हैं, हे विप्र ! मैं उन लोगों का प्रशासन नहीं करता हूँ, अपितु मैं उन लोगों से डरता हूँ॥१०६॥ जिन लोगों के पुत्र तथा पौत्र एकादशी के दिन उपवास करते हैं वह पुरुष अपने सैकड़ों पीढ़ी के पुरुषों का उद्धार कर देता है ॥१०७॥ अतएव मनुष्य को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली एकमात्र

जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी। त्रिस्पृशा वञ्जुला चैव पक्षसम्वर्धिनी वरा ॥१०९॥
तिलदुग्धा परा ज्ञेया अखण्डद्वादशी तथा। मनोरथाख्या च परा भीमद्वादशिका तथा ॥११०॥
इत्येवमादयो भेदा द्वादश्याः सन्त्यनेकशः ।
व्रतेष्वेतेषु ये शक्ता ज्ञेयास्ते ब्रह्मणि स्थिताः ॥१११॥
श्रोतारो धर्मशास्त्राणां धर्मप्रत्ययसङ्गताः। प्रियङ्कराश्च बालानां स्वर्गलोकं व्रजन्ति ते ॥११२॥
मासि मास्येकदिवसे दर्शे श्राद्धव्रता नराः। तृप्यन्ति पितरो येषां ते धन्याः स्वर्गगामिनः ॥११३॥
भोजनेषूपपन्नेषु भोज्यं यच्छन्ति सादरात्। अभिन्नमुखरागेण शिष्टास्ते स्वर्गगामिनः ॥११४॥
ये भक्तिमन्तो मधुसूदनस्य नारायणस्याखिलनायकस्य ।
सत्येन हीना रजसाऽपि युक्ता गच्छन्ति ते नाकमनन्तपुण्याः ॥११५॥
वितस्तां यमुनां सीतां पुण्यां गोदावरीं नदीम् ।
सेवन्ते ये शुभाचाराः स्नानदानपरायणाः ॥११६॥
न ते पश्यन्ति पन्थानं नरकस्य कदाचन ॥११७॥
ये नर्मदायामिह शर्मदायां मज्जन्ति तुष्यन्ति च दर्शनेन ।
विधूय पापानि महेशलोकं गच्छन्ति ते तत्र चिरं रमन्ते ॥११८॥
स्नाताश्चर्मण्वतीतीरे त्रिरात्रं नियता नराः। व्यासाश्रमेविशेषेण ते नरा नाकिनःस्मृताः ॥११९॥
गङ्गाजले प्रयागे च केदारे पुष्करे तथा। व्यासाश्रमे प्रभासे च मृतास्ते विष्णुगामिनः ॥१२०॥
द्वारवत्यां कुरुक्षेत्रे योगाभ्यासेन वा मृताः। हरिरित्यक्षरं वक्त्रे येषां ते न पुनर्भवाः ॥१२१॥

साधन एकादशी तिथि को उपवास करना चाहिए ॥१०८॥ जया तथा विजया जयन्तियाँ पाप का नाश करने वाली हैं। त्रिस्पृशा तथा व्यञ्जुला जयन्तियाँ पक्ष का संवर्धन करती हैं ॥१०९॥ तिल, दुग्ध तथा अखण्ड द्वादशी को सर्वश्रेष्ठ समझना चाहिए मनोरमा द्वादशी तथा भीम द्वादशी। इस तरह से द्वादशी तिथि के अनेक भेद हैं। जो इन व्रतों को करते हैं उन लोगों को ब्रह्मस्थित समझना चाहिए ॥११०-१११॥ जो लोग धर्मशास्त्रों का श्रवण करते हैं, धर्म शास्त्र की बातों पर विश्वास करते हैं एवं बालकों का कल्याण कार्य करते हैं वे स्वर्गलोक में जाते हैं ॥११२॥ जो मनुष्य प्रत्येक मास में आमावस्या के दिन श्राद्ध करते हैं, ऐसा करने से जिनके पितृगण तृप्त रहते हैं वे धन्य मनुष्य स्वर्गलोक में जाते हैं ॥११३॥ भोजन के तैयार होने पर जो प्रसन्नता पूर्वक एवं समादर पूर्वक भोजन प्रदान करते हैं वे शिष्ट पुरुष स्वर्ग जाते हैं॥११४॥ जो लोग सम्पूर्ण जगत् के स्वामी मधुसूदन भगवान् नारायण की भक्ति करते हैं वे यदि मृषावादी तथा दोषी भी हैं तो अनन्तपुण्य से सम्पन्न वे पुरुष स्वर्ग में जाते हैं ॥११५॥ जो सदाचारी पुरुष स्नान तथा दान को करते हुए वितस्ता, यमुना, गङ्गा तथा पवित्र गोदावरी नदी का सेवन करते हैं वे कभी भी नरक में नहीं जाते हैं ॥११६-११७॥ जो मनुष्य कल्याणकारिणी नर्मदा नदी में स्नान करते हैं तथा उसका दर्शन करके संतोष का अनुभव करते हैं, वे अपने पापों को विनष्ट करके शिवलोक में जाकर वहाँ दीर्घ काल तक आनन्दानुभव करते हैं ॥११८॥ जो मनुष्य चर्मण्वती नदी में स्नान करके उसके तट पर विद्यमान व्यासाश्रम में नियमों का पालन करते हुए तीन रात तक निवास करते हैं, वे लोग स्वर्गगामी हैं। जो मनुष्य प्रयाग के गङ्गा जल में, केदार तीर्थ में या पुष्कर तीर्थ में व्यासाश्रम में, या प्रभास क्षेत्र में अपने प्राणों का

त्रिरात्रमपि ये विप्र ! द्वारवत्यां पुरि स्थिताः ।
मज्जन्ति गोमतीतीरे धन्यास्ते केशवप्रियाः ॥१२२॥
नरनारायणावासे त्रिरात्रं ये समाश्रिताः । मर्त्यलोके च नन्दायां धन्यास्ते केशवप्रियः ॥१२३॥
षण्मासमुषिता विप्र पुरुषोत्तमसन्निधौ। ते नूनमच्युतात्मानो दृष्टाः स्युरघहारिणः ॥१२४॥
अनेकजन्मार्जितपुण्यतोये मज्जन्ति तोये मणिकर्णिकायाः ।
नमन्ति विश्वेशमवाप्य काशीं ते वै मयाऽपीह भवन्ति वन्द्याः ॥१२५॥
पूजयित्वा हरिं ये तु भूमौ दर्भतिलैः सह ।
तिलान्विकीर्य लोहञ्च दत्त्वा धेनुं पयस्विनीम् ॥१२६॥
ये मृता विधिवद्विप्र ! ते नरा स्वर्गगामिनः ॥१२७॥
उत्पाद्य पुत्रान्संस्थाप्य पितृपैतामहे पदे। निर्ममा निरहङ्कारा ये मृतास्तेऽपि नाकिनः ॥१२८॥
स्तैन्यान्निवृत्ताः सततं सन्तुष्टाः स्वधनेन च ।
स्वभाग्येनोपजीवन्ति ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१२९॥
श्लक्ष्णां वाणीं निराबाधां मधुरां पापवर्जिताम् ।
स्वागतेनाभिभाषन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१३०॥
शुभानामशुभानाञ्च कर्मणां फलसञ्चये ।
विपाकज्ञाश्च ये विप्र ! ते नराः स्वर्गगामिनः ॥१३१॥
धनधर्मप्रवृत्तानां धर्ममार्गानुयायिनाम्। प्रोत्साहं वर्धयन्ते ये मोदन्ते दिवि ते नराः ॥१३२॥

परित्याग करते हैं, वे विष्णु लोक में जाते हैं ॥११९-१२०॥ जो लोग द्वारका में या कुरुक्षेत्र में या योगाभ्यास करते हुए तथा श्रीहरि का नाम लेकर मर जाते हैं, वे पुनः इस संसार में नहीं आते हैं ॥१२१॥ हे विप्र ! जो लोग द्वारकापुरी में तीन रात्रियों तक रहकर गोमती नदी में स्नान करते हैं भगवान् केशव को प्रिय वे मनुष्य धन्य हैं ॥१२२॥ जो मनुष्य बदरिकाश्रम में अलकनन्दा नदी के तट पर तीन रात्रि तक निवास करते हैं, वे भगवान् केशव को प्रिय मनुष्य धन्य है ॥१२३॥ हे विप्र ! जो लोग पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ पुरी) में छह मास तक रह जाते हैं उन मनुष्यों का दर्शन कर लेने मात्र से पापों का विनाश हो जाता है, क्योंकि वे भगवदात्मक पुरुष हैं ॥१२४॥ अनेक जन्मों में जिन लोगों ने पुण्य रूपी जल का अर्जन किया है, वे ही मणिकर्णिका के पवित्र जल में स्नान करते हैं तथा काशी में जाकर भगवान् विश्वेश्वर को प्रणाम करते हैं, उनको मैं भी प्रणाम करता हूँ ॥१२५॥ जो लोग श्रीहरि की पूजा करके तथा भूमि पर कुश, तिल तथा लोहा छिंटकर तथा दुधारू गौ का दान करके विधिपूर्वक प्राणों का परित्याग करते हैं वे धन्य पुरुष स्वर्गगामी होते हैं ॥१२६-१२७॥ जो मनुष्य पुत्रों को उत्पन्न करके उन्हें अपने पिता पितामहों के पद पर स्थापित करकें अहङ्कार तथा ममकार से रहित होकर अपने प्राणों का परित्याग करते हैं, वे भी स्वर्ग में जाते हैं ॥१२८॥ जो मनुष्य कभी भी चोरी नहीं करते हैं, अपने ही धन से सन्तुष्ट रहते हैं, तथा जो अपने भाग्य के अनुसार अपनी जीविका चलाते हैं वे मनुष्य स्वर्ग में जाते हैं ॥१२९॥ जो मनुष्य मृदु, बाधारहित, पापरहित तथा मधुर वाणी को स्वागत पूर्वक बोलते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी हाते हैं ॥१३०॥ हे विप्र ! जो मनुष्य पुण्य तथा पाप कर्मों के परिणाम को जानते हैं वे मनुष्य स्वर्गगामी

हेमन्ते वह्निदो यश्च तथा ग्रीष्मे जलप्रदः। वर्षास्वाश्रमदाता च स स्वर्गे मोदते चिरम् ॥१३३॥
पुण्यकालेषु सर्वेषु नित्यनैमित्तिकादिषु ।
भक्त्या यः कुरुते श्राद्धं स नूनं सुरलोकभाक् ॥१३४॥
दानं दरिद्रस्य विभो क्षमित्वं यूनां तपोज्ञानवताञ्च मौनम् ।
इच्छानिवृत्तिश्च सुखोचितानां दया च भूतेषु दिवं नयन्ति ॥१३५॥
द्विविधः कर्मसबन्धः पापपुण्यसमुद्भवः। सत्यमेव समाश्रित्य क्रियते ह्यत्र निर्णयः॥१३६॥
तपोध्यानसमायुक्तं तारणाय भवाम्बुधेः। पापन्तु पतनायोक्तं सत्यमेव न संशयः॥१३७॥
बलेन परिवारेण शौर्येणाभियुतस्यच। पुण्यहीनस्य वै पुंसस्तद्बलादि विलीयते॥१३८॥
उन्नता गिरिदुर्गेषु वृक्षाः सन्ति सुपुष्टकाः। पतन्ति वातवेगेन समूलास्तु घना अपि॥१३९॥
सत्यधर्मविहीनास्ते तथा यान्ति यमालयम्। सामान्यं सर्वजन्तूनां बलं धर्मस्तु केवलः ॥१४०॥
येन सन्तरते जन्तुरिह लोके परत्र च। मया सर्वमिदं सम्यक्स्वर्गमार्गप्रदायकम् ॥१४१॥
समासेन समाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१४२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वैशाखमाहात्म्ये षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

* * *

हैं ॥१३१॥ धन एवं धर्म के अर्जन में लगे रहने वाले, धर्म मार्ग का अनुगमन करने वाले मनुष्यों को जो सदा प्रोत्साहित करते हैं तथा उनको देखकर प्रसन्न होते हैं, वे लोग स्वर्गगामी है ॥१३२॥ जो हेमन्त ऋतु में अग्नि का दान करते हैं और ग्रीष्म ऋतु में जल का दान करते हैं। वर्षा के दिनों में जो लोग आश्रम प्रदान करते हैं वे लोग स्वर्ग में चिरकाल तक आनन्दानुभव करते हैं ॥१३३॥ जो मनुष्य नित्य, नैमित्तिक आदि पुण्यकालों में भक्तिपूर्वक श्राद्ध करते हैं वह निश्चित रूप से देव लोक में जाते है ॥१३४॥ दरिद्र के द्वारा किया जाने वाला दान, स्वामी के द्वारा की जाने वाली क्षमा, युवक पुरुष के द्वारा की जाने वाली तपस्या, ज्ञानी पुरुषों के द्वारा पालन किया जाने वाला मौन व्रत, सुख करने के योग्य पुरुषों का इच्छा रहित होना तथा सभी जीवों पर की जाने वाली दया अपने आश्रय को स्वर्ग में ले जाते हैं ॥१३५॥ पाप-पुण्य रूपी कर्मो का सम्बन्ध दो प्रकार का होता है। इस विषय में सत्य को ही अपनाकर निर्णय किया जाता है ॥१३६॥ तपस्या तथा ध्यान से युक्त कर्म संसार सागर से पार कर देता है। पाप कर्म पतन का साधन है, यही सत्य है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥१३७॥ वल, परिवार तथा शौर्य से सम्पन्न किन्तु पुण्यहीन मनुष्य का परिवार आदि से ही विनाश हो जाता है ॥१३८॥ पर्वत की कन्दराओं में विद्यमान ऊँचे वृक्ष मजबूत बने रहते हैं। किन्तु वायु के वेग से घने भी वृक्ष गिर पड़ते ॥१३९॥ जो लोग सत्य तथा धर्म से विहीन होते हैं वे यमलोक में जाते हैं। सभी जीवों के समान रूप से केवल धर्म ही बल है ॥१४०॥ जीव उस धर्म के ही द्वारा इस लोक में तथा परलोक में भी पार उतरता है। मैंने संक्षेप में अच्छी तरह से स्वर्ग एवं नरक के कारणों का वर्णन किया अब तुम क्या सुनना चाहते हो ?॥१४१-१४२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के वैशाख माहात्म्यान्तर्गत छियानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९६॥

* * *

सत्तानबेवाँ अध्याय

ब्राह्मण उवाच

एतन्मूर्खोऽपि जानाति शुभकर्मकरः पुमान् ।
न याति नरकं स्वर्गं तथा पापक्रियारतः ॥१॥
क्रतुभिर्विविधैरिष्टैर्व्रतदानजपादिभिः । सत्येनाचारकुशलैः स्वर्गसौख्यमवाप्यते ॥२॥
विद्याचारधनोपेतैर्ऋषिभिर्वेदपारगैः । प्राप्यते पुण्ययोगेन यज्ञैर्नाकस्ततः क्वचित् ॥३॥
वित्तेन च बिना दानं बहु दातुं न शक्यते । विद्यमानधनेनाऽपि कुटुम्बासक्तचेतसा ॥४॥
अग्निहोत्रादयो धर्मा विशेषेण कलौ युगे । दुष्करा दानधर्मोऽपि दुष्करो भगवन्मतः ॥५॥
अल्पायासेन धर्मेण लभ्यते धर्मसञ्चयः । तन्मे विशेषतो ब्रूहि धर्माधर्मप्रदर्शक ! ॥६॥
तदेकं कथ्यतां धर्मं सर्वधर्मोत्तमोतमम् । कृतेनैकेन येनेह सर्वपापक्षयो भवेत् ॥७॥
धनं धान्यं यशो धर्ममायुर्येनाभिवर्धते ।
मर्त्यलोकेऽपि सौख्यं स्यात्स्वर्गो येनाक्षयो भवेत् ॥८॥
साक्षान्नारायणो येन भक्तानामभयप्रदः । तुष्येदस्य प्रसादेन कामः करतले स्थितः ॥९॥
सर्वयज्ञतपोदानतीर्थसेवाधिकं फलम् । लभ्यते येन यद्यस्ति वैवस्त ! तदादिश ॥१०॥
अनुग्राह्यो ह्यहं देव ! यदि धर्मोपदेशतः । सर्वधर्मक्रियासारं तदेकं कृपया वद ॥११॥
पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा। तथा तथैव संस्मृत्य कथितानि मनीषिभिः ॥१२॥

अनेक प्रकार के व्रतों के नियम तथा स्नान आदि का वर्णन

ब्राह्मण ने कहा— यह तो मूर्ख भी जानता है कि पुण्य कर्म करने वाला मनुष्य नरक में नहीं जाता है । तथा पापी मनुष्य स्वर्ग में नहीं जाता है ॥१॥ अनेक प्रकार के यज्ञों के करने से व्रत, दान तथा जप आदि के करने से, सत्य बोलने तथा सदाचार का पालन करने से स्वर्ग के सुख की प्राप्ति होती है ॥२॥ विद्या, आचार तथा धन सम्पत्ति सम्पन्न पुरुष तथा वेदों में पारङ्गत ऋषिगण पुण्य के द्वारा तथा कभी यज्ञों के द्वारा स्वर्ग को प्राप्त करते हैं ॥३॥ धन के बिना बहुत अधिक दान नहीं किया जा सकता है । धन के रहने पर भी जिसका मन अपने परिवार में ही लगा है वह दान नहीं कर सकता है ॥४॥ अग्निहोत्र आदि धर्मों को करना कलियुग में दुष्कर है और दान धर्म का पालन करना भी कठिन है ॥५॥ हे धर्म! एवं अधर्म के प्रदर्शक आप हैं । अल्प प्रयास पूर्वक किए जाने वाले जिस धर्म के द्वारा धर्म का सञ्चय होता है उस साधन को आप मुझे बतलाएँ ॥६॥ जो सभी धर्मों में उत्तम धर्म है, उसी धर्म को आप मुझे बतलायें । जिस एक ही धर्म के करने से पापों का नाश हो जाय ॥७॥ भक्तों को अभय प्रदान करने वाले भगवान् जिसके द्वारा उपासक पर प्रसन्न हो जायँ उनकी ही कृपा से सभी काम्य वस्तुएँ हस्तगत हो जाती हैं ॥८-९॥ हे वैवस्वत ! यदि कोई ऐसा धर्म हो जिससे कि सभी यज्ञों, दानों, तपस्याओं तथा तीर्थाटनों का फल प्राप्त हो जाय; तो आप उसी धर्म का मुझे उपदेश करें ॥१०॥ हे देव ! यदि आपके उपदेश रूपी कृपा का मैं पात्र हूँ; तो आप कृपा करके समस्त धर्म रूपी क्रिया के सार स्वरूप धर्म को बतलाएँ ॥११॥ जिस पाप के अनुरूप जो प्रायश्चित होता है उसी तरह से स्मरण करके मनीषी पुरुषों ने उसका उपदेश दिया

कर्त्तुं तानि न शक्यन्ते देव ! प्रत्येकशो नरैः ।
सर्वपापहरं पुण्यमेकं चेदस्ति तद्वद ॥१३॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा ब्राह्मणश्रेष्ठो यमं धर्मस्वरूपिणम् ।
तुष्टाव प्रयतो भूत्वा सूक्ष्मधर्माभिकामुकः ॥१४॥

ब्राह्मण उवाच

नमस्ते सर्वशमन ! नमस्ते जगताम्पते ! । नमोस्तु देवरूपाय स्वर्गमार्गप्रदायिने ॥१५॥
धर्मशास्त्रस्वरूपाय धर्मराज ! नमोऽस्तुते । त्वया भूः पाल्यते देवाप्यन्तरिक्षञ्च द्यौर्महः ॥१६॥
जनस्तपस्तथा सत्यं सर्वस्वं पाल्यते त्वया । न त्वया रहितं किञ्चिज्जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥१७॥
विद्यते त्वद्गृहीतं तु सद्यो नश्यति वै जगत् ।
त्वमात्मा सर्वभूतानां सतां सत्त्वस्वरूपवान् ॥१८॥
राजसानां रजस्त्वञ्च तामसानां तमस्तथा । चतुष्पदां भवान्देव चतुःशृङ्गस्त्रिलोचनः ॥१९॥
सप्तहस्तस्त्रिधा बद्धो वृषरूप ! नमोऽस्तुते । सर्वयज्ञमयो धर्मस्त्वयि विग्रहविग्रहः ॥२०॥
साक्षाद् दृष्टोऽसि लोकेश ! देव ! तुभ्यं नमो नमः ।
हृदिस्थः सर्वभूतानां पुण्यपापोक्षिता भवान् ॥२१॥
तेन शास्ता च भूतानां दाता देवप्रशासिता । प्रवर्त्तको हि धर्मस्य देवदण्डधरो भुवि ॥२२॥
सर्वधर्ममयं सारमेकं वद सुनिश्चितम् ॥२३॥

है ॥१२॥ हे देव ! प्रत्येक मनुष्य उन प्रायश्चित्तों को नहीं कर सकते हैं, अतएव जो सभी पापों को विनष्ट करने वाला पुण्य हो उसी को आप मुझे बतलाएँ ॥१३॥ **सूतजी ने कहा**— इस तरह से कहकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने धर्मस्वरूप यम की सावधानी पूर्वक स्तुति सूक्ष्म धर्म को जानने की इच्छा से की ॥१४॥ **ब्राह्मण ने कहा**— हे सर्वशमन ! आपको नमस्कार है । हे जीवों के स्वामी ! आपको नमस्कार है, देव स्वरूप! आपको नमस्कार है तथा स्वर्ग का मार्ग प्रदान करने वाले ! आपको नमस्कार है ॥१५॥ हे धर्मराज ! धर्मशास्त्र स्वरूप आपको नमस्कार है, हे देव ! आप भूलोक, अन्तरिक्ष तथा देवलोक का पालन करते हैं॥१६॥ जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक इन सबों का पालन आप ही करते हैं । आप संसार के समस्त स्थावर जङ्गम पदार्थों में व्यापक हैं ॥१७॥ आप ही इस जगत् को धारण करते हैं, आपके बिना जगत् शीघ्र ही विनष्ट हो जायेगा । सत्त्व स्वरूप आप ही सम्पूर्ण सात्त्विक जगत् की आत्मा हैं ॥१८॥ आप राजसों के अन्दर विद्यमान रजोगुण हैं तथा तामसों के तमोगुण हैं । हे देव ! चार पैर वाले जीवों के आप चार शृङ्ग वाले त्रिलोचन हैं ॥१९॥ आप में ही सात हाथ वाले, तीस स्थानों में बँधे हुए धर्म स्वरूप आपको नमस्कार सर्वयज्ञमय धर्म सशरीर आप में साक्षात् दिखायी पड़ता है । हे लोकेश देव ! आप को नमस्कार है । आप सभी जीवों के हृदय में रहकर आप उन जीवों के पाप तथा पुण्य कर्मों को देखते रहते हैं ॥२०-२१॥ अतएव आप ही जीवों के प्रशासक दान देने वाले तथा देवताओं का प्रशासन करने वाले हैं । आप धर्म के प्रवर्तक, दण्ड धारण करने वाले देव हैं । भूलोक में सर्वधर्ममय जो धर्मों का सार हो उस एक धर्म को आप मुझे बतलायें ॥२२-२३॥ **यम ने कहा**— हे विप्र ! आपके इस स्तोत्र के द्वारा मैं विशेष रूप

यम उवाच

परितुष्टोऽस्मि ते विप्र ! स्तोत्रेण च विशेषतः ।
तथाप्यागमधर्मेण मान्योऽसि मम सत्तम ! ॥२४॥
यन्नकस्यचिदाख्यातं तद्गोप्यं परमं मम । सारमुद्धृत्य सर्वेषां यदेकं निश्चितं मया ॥२५॥
महानिरयसङ्घातान्निर्वासनकरं परम् । अनाख्येयमपि ब्रह्मन्वक्ष्ये विनयतोषितः ॥२६॥
स्युर्मोहाय चराचरस्य जगतस्ते ते पुराणागमा
स्तां तामेवहि देवतां परमिकां जल्पन्तु कल्पे विधौ ।
सिद्धान्ते पुनरेक एव भगवान्विष्णुः समस्तागम
व्यापरेषु विवेकिनां व्यतिकरं नीतेषु निश्चीयते ॥२७॥
भवो ब्रह्मा च विष्णुश्च त्रयमेव त्रयी मता। दीपोऽग्निवर्तिस्नेहैस्तु यथा विप्र तथा हरिः ॥२८॥
समाराध्य हरिम्भक्त्या गोलोकान्प्राप्नुयाच्छुभान् ।
आराधिते हरौ कामाः सर्वे करतले स्थिताः ॥२९॥
दानमेव परं श्रेष्ठं सर्वपुण्येषु वै द्विज ! । दानेन नश्यते पापं सर्वं दानेन लभ्यते ॥३०॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यमन्यदभ्युदयात्मकम्। अन्यच्चपरमं दानमितिपञ्चविधं स्मृतम् ॥३१॥
प्रातर्मध्यापराह्णेषु त्रिषु कालेषु यत्नतः। यत्किञ्चिदपि दातव्यं नित्यमेव प्रकीर्तितम् ॥३२॥
शून्यं दिनं न कर्तव्यमात्मार्थं हितमिच्छताम् ।
यस्मिन्कुले तु दत्तं यत्तत्र तत्रोपतिष्ठति ॥३३॥
यः स्वः भक्षयेन्मोहाददत्त्वा बुद्धिवर्जितः। उत्पादयाम्यहं रोगं तस्य भोगनिवारणम् ॥३४॥

से संतुष्ट हूँ फिर भी हे श्रेष्ठ पुरुष ! आगम धर्म के अनुसार आप मेरे सम्माननीय हैं ॥२४॥ सभी धर्मों के सार को निकालकर जो मैंने एक धर्म को निश्चित किया है, जिसको मैं किसी को भी नहीं बतलाता हूँ, जो परम रहस्य स्वरूप है ॥२५॥ जो महान् नरक समूह को विनष्ट कर देने वाला है, वह किसी को बतलाने योग्य नहीं है, फिर भी मैं आपकी नम्रता से सन्तुष्ट हूँ ॥२६॥ जगत् में विद्यमान चराचर जीवों को मोहित करने के साधन हैं वेद तथा पुराण । वे विभिन्न कल्प के अनुसार भिन्न-भिन्न देवताओं के परत्व का प्रतिपादन करते हैं, किन्तु सिद्धान्त है कि समस्त आगम व्यापारों में विभिन्न प्रकार से भगवान् विष्णु ही समस्त आगमों में वर्णित हैं, यह विवेकी पुरुषों का निश्चय हैं ॥२७॥ शिवजी, ब्रह्माजी तथा भगवान् विष्णु ये तीन ही त्रयी को अभिप्रेत हैं । जैसे अग्नि, बर्तिका (बाती) और तैल इन तीनों का समुदित रूप दीपक है, उसी तरह से ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों के समुदित रूप श्रीहरि हैं ॥२८॥ श्रीहरि की आराधना करके मङ्गलमय गोलोक को प्राप्त करना चाहिए श्रीहरि की आराधना करने से सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती हैं ॥२९॥ हे द्विज ! दान ही सभी पुण्यों में श्रेष्ठ हैं । दान से ही पापों का विनाश होता है और दान से ही सभी वस्तुओं की प्राप्ति हो जाती है ॥३०॥ दान पाँच प्रकार का बतलाया गया है, नित्य दान, नैमित्तिक दान, काम्य दान, अभ्युदयात्मक दान और परमदान ॥३१॥ प्रयास करके प्रातः काल, मध्याह्न में तथा अपराह्न में जो दान प्रतिदिन दिया जाता है वह नित्य दान है ॥३२॥ आत्मकल्याण कामियों के जिस कुल में दान से रहित दिन नहीं किया जाता है, उसको वह वस्तु तत्-तत् स्थानों में प्राप्त

तेषु कार्येषु सन्तुष्टं बहुपीडाप्रदायकम् । मन्दानलेन संयुक्तं द्वारं सन्तापकारकम् ॥३५॥
त्रिषु कालेषु नो दत्तं ब्राह्मणेषु सुरेषु यैः । स्वयं तु भुञ्जते मिष्टं पापं तैस्तु महत्कृतम् ॥३६॥
प्रायश्चित्तेन रौद्रेण तानहं परिशोधये । उपवासैर्महीदेव ! कायशोषकरादिकैः ॥३७॥
चर्मकारो यथा चर्मकुण्डस्योपरि निर्घृणे । शोधयेच्च कशाद्यैश्च कुद्रव्यं स्फोटयेद्यथा ॥३८॥
तथाऽहं पापकर्तारं शोधयामि न संशयः । औषधानां सुयोगैश्च कषायैः कटुकैर्ध्रुवम् ॥३९॥
उष्णोदकैश्च सन्तापैर्वैद्यरूपेण नान्यथा । अन्ये भुञ्जन्ति तस्याग्रे भोगानन्यान्मनोगतान् ॥४०॥
किं करोमि समर्थश्च न दत्तं दानमुत्तमम् । महता रोगरूपेण तमेनं परिवारयेत् ॥४१॥
नित्यकालस्य यद्दानमात्मानं पापिभिर्यथा । न दत्तञ्च महीदेव ! श्रद्धया निजशक्तितः ॥४२॥
तथा यातान्प्रधक्ष्येतानुपायैर्दारुणैः किल । नैमित्तिकं प्रवक्ष्यामि दानकालं तवाग्रतः ॥४३॥
महापर्वणि सम्प्राप्ते तीर्थप्राप्तौ तथैव च । पितुः क्षयाहदिवसे वैशाखादिषु यत्नतः ॥४४॥
मासेषु पुण्यकालेषु दानं नैमित्तिकं स्मृतम् । काम्यकालं प्रवक्ष्यामि यद्दानं फलदायकम् ॥४५॥
व्रतदिनं समुद्दिश्य कामानाफलकल्पितम् । यत्कामं कथितं सम्यक्सर्वाङ्गैरेव सङ्गतम् ॥४६॥
तस्य दानप्रभावेण भावना परिभावितः । तादृक्फलं समश्नाति मानुषस्तत्प्रसादनात् ॥४७॥
आभ्युदयं प्रवक्ष्यामि यच्च यज्ञादिषु स्मृतम् ।
जातकर्मादिकार्येषु मौञ्ज्याद्युद्वाहकर्मसु ॥४८॥

होती है ॥३३॥ जो मूर्ख दान किए बिना स्वयं ही खाता है, उसके शरीर में मैं रोग उत्पन्न कर देता हूँ। जिससे कि वह भोग न कर सके ॥३४॥ विभिन्न कार्यों में सन्तुष्ट अनेक प्रकार के कष्टों को देने वाला, मन्दाग्नि से युक्त तथा सन्ताप प्राप्ति का साधन वह रोग होता है ॥३५॥ जो मनुष्य तीनों कालों में ब्राह्मणों तथा देवताओं को दान नहीं देते हैं, तथा स्वयं अच्छे पदार्थों को खाते हैं वे महापाप करते हैं ॥३६॥ हे ब्राह्मण ! मैं उन जीवों के शरीर को सूखा देने वाले उपवासों आदि भयङ्कर प्रायश्चितों से शुद्ध करता हूँ॥३७॥ जैसे चमड़ा बनाने वाला निष्ठुर चर्मकुण्ड के ऊपर कोड़ों आदि के प्रहार से खराब द्रव्य को बाहर निकाल देता है ॥३८॥ उसी तरह कड़वे तथा कषाय द्रव्य के संयोग के द्वारा मैं पापियों के पाप का शधन करता हूँ ॥३९॥ वैघ का रूप धारण करके मैं सन्ताप कारक गर्म जल के द्वारा शोधित करता हूँ और उसके सामने दूसरे लोग अपने मनोऽनुकूल पदार्थों को खाते हैं ॥४०॥ मैं क्या करूँ ? जब वह समर्थ था उस समय उसने दान नहीं दिया, अतएव महान रोग उसको घेर लेता है ॥४१॥ चूकि पापी मनुष्य अपने स्वरूपानुरूप नित्य दान अपनी शक्ति के अनुसार नहीं देते हैं ॥४२॥ इसीलिए मैं उनके पापों को भयङ्कर उपायों से विनष्ट करता हूँ । अब मैं आपको नैमित्तिक दान का वर्णन सुनाता हूँ ॥४३॥ महापर्व के समय, या तीर्थ में जाने पर, या पिता को क्षयाह्न तिथि पर या वैशाख आदि महीनों में पुण्यकाल के समय प्रयास पूर्वक जो दान दिया जाता है, उस दान को नैमित्तिक दान कहते हैं । अब मैं फल प्रदान करने वाले काम्यंदान का समय बतालाता हूँ ॥४४-४५॥ किसी कामना विशेष से जो व्रत, दान आदि किए जाते हैं उस दान को सर्वाङ्गपूर्ण काम्यदान कहा जाता है ॥४६॥ उस दान के प्रभाव से भावना से सम्पन्न होकर उस दान के प्रभाव से मनुष्य वैसा ही फल प्राप्त करता है ॥४७॥ अब मैं आभ्युदयिक दान को बतलाता हूँ, ये दान यज्ञ आदि में किए जाते हैं । हे ब्राह्मण ! जातकर्म आदि के समान, मौञ्जी बन्धन के समय,

प्रासादध्वजदेवानां प्रतिष्ठासु प्रयत्नतः। इत्यादिकं महीदेव ! दानमभ्युदयात्मकम् ॥४९॥
प्रजावृद्धिकरं भोगयशःस्वर्गसुखप्रदम्। अन्त्यञ्चैव प्रवक्ष्यामि शृणु दानं द्विजोत्तम !॥५०॥
कामस्य संक्षयं ज्ञात्वा जरया परिपीडितः। दद्याद्दानानि यत्नेन कुर्यादाशां न कस्यचित् ॥५१॥
मृते च मयि मे पुत्रा जायाबान्धवसोदराः। कथमेते भविष्यन्ति मां विना सुहृदो मम ॥५२॥
अहं वित्तविहीनो वा कथं जीवन्पुनस्तथा। भविष्यामीतिविज्ञाय न ददाति हि किञ्चन ॥५३॥
आशापाशशतैर्बद्धो भाग्यादेव कुमायया। मृत्युम्प्रयाति मूढात्मा रुदन्ति च ततः सुताः॥५४॥
दुःखेन पीडिताः किञ्चिन्मोहेनाकुलचेतसः। स्वल्पमल्पञ्चवादानंकथञ्चित्कल्पयन्ति ते ॥५५॥
न तत्रास्मिन्गते काले महादुःखगते सति। विस्मरन्ति तदा दानं लोभाद्वा नददत्यपि ॥५६॥
मृतोऽयं च पिता ज्ञात्वा स्नेहपाशो निवर्त्तते।
योऽसौ मृतो महीदेव मम पाशैर्नियन्त्रितः ॥५७॥
तृष्णाक्षुधासमाक्रान्तो बहुदुःखै प्रपीडितः। पच्यते नरके घोरे चिरकालं न संशयः ॥५८॥
तस्माद्दानं प्रदातव्यं स्वयमेव न संशयः। कस्य पुत्राश्च पौत्राश्चकस्यभार्या धनञ्च वा॥५९॥
संसारे नास्ति कः कस्य स्वयंतस्मात्प्रदीयते।
पानमन्नं च ताम्बूलमुदकं काञ्चनन्तथा ॥६०॥
वसनं गाञ्च भूमिञ्च च्छत्रपात्राण्यनेकधा। फलानि भूमिदानानि विविधानि स्वशक्तितः॥६१॥
दातव्यानि महीदेव नात्र कार्या विचारणा। तीर्थानां लक्षणं विप्र ! प्रवक्ष्यामि तवाग्रतः॥६२॥

विवाह के समय, देवमन्दिर के निर्माण तथा ध्वजारोहरण के समय तथा देवताओं की प्रतिष्ठा आदि के समय प्रयत्न पूर्वक दिए जाने वाले दान आभ्युदिक दान कहलाते हैं ॥४८-४९॥ हे द्विजोत्तम ! मैं प्रजाओं की वृद्धि करने वाले, भोग, यश और स्वर्ग का सुख प्रदान करने वाले अन्तिम परम दान को बतालाता हूँ, उसे आप सुनें ॥५०। जब काम का विनाश हो जाय, बुढ़ापे से पीडित हो जाने पर दान करना चाहिए; किन्तु उसके वदले में किसी फल की कामना न करे ॥५१॥ मेरे मर जाने पर मेरे पुत्र, पत्नी वन्धुजन, भाई तथा मेरे सुहृदजन धन के बिना कैसे जीवित रहेंगे, मैं भी यदि जीवित रहा तो कैसे रहूँगा, यह सोचकर मनुष्य बुढ़ापे में दान करना बन्द कर देता है ॥५२-५३॥ वह अनेक प्रकार के आशा रूपी पाश से बँधा रहता है और भाग्यवशात् दुष्टमाया से वह मूर्ख व्यक्ति मर जाता है, उस समय उसके पुत्र रोते हैं ॥५४॥ उस समय उन सवों का अन्तःकरण व्याकुल रहता है और वे दुःख से पीड़ित रहते हैं। वे उस समय उस मृत व्यक्ति के लिए थोड़ा सा दान भी करते हैं ॥५५॥ उस समय के बीत जाने पर तथा विपत्ति के बीत जाने पर वे लोभवशात् उस दान को भूल जाते हैं और उसके लिए वे दान भी नहीं करते हैं ॥५६॥ वे सोचते हैं कि पिता जी मर गये, फलतः उन सबों की आशा भी टूट जाती है। वह मरा हुआ मनुष्य मेरे (यमराज के) पाश में बंध जाता है, वह भूख-प्यास से व्याकुल होकर अत्यन्त दुःखी रहता है और दीर्घकाल तक नरकों में वह पकाया जाता है ॥५७-५८॥ अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह स्वयं दान करे, पुत्र, पौत्र, पत्नी तथा धन किसी के नहीं होते हैं ॥५९॥ संसार में कोई भी किसी का नहीं है, अतएव दान करना चाहिए। मनुष्य को अन्न, जल, ताम्बूल, पेय पदार्थ तथा सुवर्ण का दान देना चाहिए॥६०॥ वस्त्र, गौ, भूमि, छाता, अनेक प्रकार के पात्र, फल तथा अपनी शक्ति के अनुसार भूमिदान

सुतीर्थानि इयं गङ्गा भाति पुण्या सरस्वती ।
रेवा च यमुना तापी नदी चर्मण्वती तथा ॥६३॥
सरयूश्च वरावेणी पूर्णा पापप्रणाशिनी ।
कावेरी कपिला चान्या विशल्या विश्वतारिणी ॥६४॥
गोदावरी समाख्याता तुङ्गभद्रा च गण्डकी ।
पापानां भीतिदा नित्यं नदी भीमरथी स्मृता ॥६५॥
देविका कृष्णगङ्गा च अन्या याः सरितां वराः ।
एतास्तु पुण्यकालेषु सन्तितीर्थान्यनेकशः ॥६६॥
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये नद्यः सर्वत्र पावनाः ।
तत्र तत्रैव कर्त्तव्याःस्नानदानादिकाःक्रियाः ॥६७॥
यदा न ज्ञायते नाम तस्य तीर्थस्य भो द्विज ।
तत्रेत्युच्चारणं कार्यं विष्णुतीर्थमिदं महत् ॥६८॥
तीर्थस्य देवता विष्णुः सर्वत्रापि न संशयः ।
नारायणेति यन्नाम स्मरेत्तीर्थेषु साधकः ॥६९॥
तस्य तीर्थफलं सम्यग्विष्णुनाम्नैव जायते। अज्ञातानां च तीर्थानां देवतानां न संशयः ॥७०॥
विष्णुनाम्नैव नामानि मानवः परिकीर्तयेत् । सर्वास्तु सिद्धयः पुण्यास्तीर्थभूतास्तु सागराः ॥७१॥
सरांसि मानसादीनि निर्झराः पल्वलादयः ।
स्वल्पा नद्योऽपि सर्वास्तास्तीर्थानि हरिनामतः ॥७२॥
पर्वतास्तीर्थरूपाश्च यज्ञो यज्ञमही तथा। ब्राह्मणा यत्र विद्वांस कौतुकेनाप्यवस्थिताः ॥७३॥

करना चाहिए । हे ब्राह्मण ! इसमें विचार नहीं करना चाहिए । हे विप्र ! मैं आपको तीर्थों का लक्षण वतलाता हूँ । सुन्दर तीर्थ हैं- गङ्गा, सरस्वती, रेवा (नर्मदा) नदी, यमुना, तापी तथा चर्मण्वतीनदी, सरयू, त्रिवेणी पापों को नाश करने वाली पूर्णानदी, कावेरी, कपिलानदी, संसार से तारने वाली विशल्या ॥६१-६४॥ विख्यात गोदावरी नदी, तुङ्गभद्रा, गण्डकी नदी तथा पापों को सदैव भयभीत करने वाली भीमरथी नदी॥६५॥ देविका नदी, कृष्णगङ्गा नदी तथा दूसरी श्रेष्ठ नदियाँ ये सभी पुण्य कालों के समय अनेक तीर्थों हो जाते हैं ॥६६॥ नदियाँ चाहे ग्राम में हों अथवा अरण्य में; वे सर्वत्र पवित्र ही होती हैं । अतएव वे नदियाँ जहाँ हों वहीं पर स्नान आदि की क्रियाओं को सम्पन्न करना चाहिए ॥६७॥ जव तीर्थ का नाम न ज्ञात हो तो उसके नाम के वदले में विष्णु तीर्थ कह देना चाहिए ॥६८॥ सभी तीर्थों में देवता रूप से भगवान् विष्णु विद्यमान रहते हैं । अतएव साधक को चाहिए कि वह तीर्थों में उनके नारायण नाम का स्मरण करे ॥६९॥ इसमें कोई भी संदेह नहीं है कि अज्ञात नाम वाले तीर्थों और देवताओं का फल विष्णु नाम से ही मिल जाता है ॥७०॥ अतएव मनुष्य को उसका अभिधान विष्णु नाम से ही करना चाहिए । सभी सिद्धियाँ, तीर्थ स्वरूप समुद्र ॥७१॥ मानसरोवर आदि सरोवर, झरने, पल्लवल (छोटे-छोटे जलाशय) छोटी नदियाँ, ये सबके सब श्रीहरि के नाम से तीर्थ हो जाते हैं ॥७२॥ तीर्थ स्वरूप पर्वत, यज्ञ, यज्ञभूमि जहाँ पर कौतुक

तदेव तीर्थं सुमहत्सर्वपापहरं स्मृतम्। श्राद्धश्च श्राद्धभूमिश्च देवशाला च होमभूः ॥७४॥
यत्र वेदध्वनिः सम्यग् यत्र विष्णुकथाः शुभाः ।
स्वगृहं पुण्यसंयुक्तं गोस्थानमपि पावनम् ॥७५॥
यत्राश्वत्थतरुवनं यत्रागारोऽपि पावनः। एवमादीनि तीर्थानि पिता माता तथैव च ॥७६॥
पच्यते यत्र धर्मार्थं स्वयं तत्र गुरुः स्थितः ।
साध्वी यत्रास्ति वै भार्या तत्र तीर्थं न संशयः ॥७७॥
यत्र धर्मरतिर्नित्यं विद्वान्पुत्रः प्रवर्तते। तत्र तस्य हि तत्तीर्थं तारणाय प्रतिष्ठितम् ॥७८॥
इत्येमादि तीर्थानि राजवेश्म तथैव च। एवमादिषु तीर्थेषु पर्वयोगाद्विशेषतः ॥७९॥
अनाराध्य हृषीकेशं सर्वदं सर्वदेहिनाम्। कोऽपि क्वापि किमप्यत्र न लभेतेतिनिश्चितम्॥८०॥
अपत्यं द्रविणं दारास्तारहर्म्यं हया गजाः। सुखानि स्वर्गमोक्षौ च न दूरे हरिभक्तितः॥८१॥
नारायणः परो देवः सत्यरूपो जनार्दनः। त्रिधाऽऽत्मानं स भगवान्ससर्ज परमेश्वरः॥८२॥
रजस्तमोभ्यां युक्तोऽभूद्रजः सत्त्वादिकं विभुः ।
ससर्ज नाभिकमले ब्रह्माणं कमलासनम् ॥८३॥
रजसा तमसा जुष्टं स रुद्रमसृजद्विभुः। सत्त्वं रजस्तमश्चैव त्रितयं चैतदुच्यते ॥८४॥
सत्त्वेन मुच्यते जन्तुः सत्त्वं नारायणात्मकम् ।
रजसा सत्त्वयुक्तेन भवेच्छ्रीमान्यशोऽधिकः ॥८५॥
यद्वेदवाक्यं धर्मस्य समुद्दिश्योपसेवते। तद्रुद्रमिति विख्यातं विशिष्टं गदितं नृणाम्॥८६॥

वशात् विद्वान् ब्राह्मण रहते हैं वह स्थान, ये सबके सब सभी पापों को विनष्ट करने वाले तीर्थ कहे गये हैं । श्राद्ध, श्राद्ध की भूमि, मन्दिर तथा होम की भूमि ॥७३-७४॥ जहाँ पर वेद ध्वनि होती है, जहाँ पर भगवान् विष्णु की कथा होती है, ऐसा अपना घर भी पवित्र हो जाता है । गोशाला भी पवित्र होती है॥७५॥ जहाँ पर पिप्पल वृक्षों का वन होता है, वहाँ पर विद्यमान गृह भी पवित्र होता है । इसी तरह माता-पिता भी तीर्थ होते हैं । जहाँ पर धर्म के लिए भोजन बनाया जाता है, जहाँ पर गुरु रहते हों, जहाँ पर साध्वी पत्नी रहती हो, वहाँ पर तीर्थ रहता हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ॥७६-७७॥ जहाँ पर धार्मिक प्रवृत्ति वाला विद्वान् पुत्र रहता है, वहाँ पर उसका उद्धार करने के लिए तीर्थ प्रतिष्ठित रहता है ॥७८॥ इस तरह से ये सभी तीर्थ हैं । राजा का घर भी तीर्थ होता है । ये सभी स्थान पर्व के समय विशेष रूप से तीर्थ हो जाते हैं ॥७९॥ सभी शरीरधारियों को सब कुछ प्रदान करने वाले श्रीहरि की आराधना किए बिना कोई भी कहीं भी कुछ भी नहीं प्राप्त कर पाता है, यह निश्चित है ॥८०॥ श्रीहरि की भक्ति से सन्तान, धन, पत्नी, विशाल महल, घोड़े, हाथी, सुख, स्वर्ग तथा मुक्ति ये सबके सह प्राप्त हो जाते हैं॥८१॥ सत्य स्वरूप भगवान नारायण ही सर्वश्रेष्ठ देवता हैं । वे ही जनार्दन हैं । उन श्रीभगवान् ने अपने को तीन भागों में विभक्त कर दिया ॥८२॥ सर्व व्यापक भगवान् रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त होकर अपने नाभि कमल के ऊपर रजोगुण तथा सत्त्वगुण प्रधान तथा कमल के आसन पर बैठने वाले ब्रह्माजी की सृष्टि किए ॥८३॥ उन्होंने रजोगुण तथा सत्त्वगुण प्रधान रुद्र की सृष्टि की । और वे स्वयं रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुण सम्पन्न बतलाये जाते हैं ॥८४॥ सत्त्व के द्वारा जीव संसार के बन्धन से मुक्त हो

तेन राजा भवेल्लोके रजसा तमसा पुनः । यद्धीनं रजसा धर्मं केवलं तामसञ्च यत् ॥८७॥
तच्च दुर्गतिदं नृणामिह लोके परत्र च ।
यो विष्णुः स स्वयं ब्रह्मा यो ब्रह्मा सः स्वयं हरः ॥८८॥
देवास्त्रयोऽपि यज्ञेऽस्मिन्निज्यो देवेषु नित्यशः ।
यो भेदं कुरुते तेषां त्रयाणां द्विजसत्तम ! ॥८९॥
स पापकारी पापात्मा अनिष्टां गतिमाप्नुयात् ।
विष्णुरेव परं ब्रह्म विष्णुरेवजगद् द्विज ॥९०॥
तस्यायं माधवो मासः प्रियः सर्वेषु कर्मसु ।
कीर्त्यते हरमेधादि महाक्रतुफलप्रदः ॥९१॥
तीर्थस्नानतपोदानजपयज्ञफलाधिकः ॥९२॥
स्नानं विभाते नियमेन नद्यामनारतं मेषगते रवौ ये ।
कुर्वन्ति येऽस्मिन्नपि विप्रपूजां मद्दण्डभाजो नहि ते भवन्ति ॥९३॥
हत्वा हत्वा किङ्करौघं पुरो मे लुप्त्वा लुप्त्वा चित्रगुप्तस्य लेख्यम् ।
स्नात्वा स्नात्वा माधवे मासि तीर्थे पूर्वान्पूर्वानुद्धरन्तीह पापात् ॥९४॥
इदं भवच्छेदकरं न तस्मात्प्रकाशनीयं परमं रहस्यम् ।
निर्वासहेतुर्नरकालयस्य ममाधिकारक्षयकारणन्तत् ॥९५॥
भागीरथी नर्मदा च यमुना च सरस्वती ।
विशोका च वितस्ता च विन्ध्यस्योत्तरतः स्थिताः ॥९६॥

जाता है । सत्त्वगुण नारायण स्वरूप हैं । रजोगुण तथा सत्त्वगुण से युक्त मनुष्य श्रीमान् और यशस्वी होता है ॥८५॥ जो वेद वाक्य का सेवन धर्म प्राप्ति के लिए करता है, वह मनुष्यों के बीच में रुद्र रूप से विख्यात होता है ॥८६॥ उसके फल स्वरूप वह मनुष्य रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त राजा होता है । रजोगुण से रहित धर्म केवल तामस ही होता है ॥८७॥ मनुष्यों को वह तामस धर्म इस लोक और परलोक में दुर्गति प्रदान करता है । जो विष्णु हैं वे स्वयं ब्रह्मा हैं, जो ब्रह्मा है वे स्वयं रुद्र हैं ॥८८॥ ये तीनों देवता यज्ञों में पूजनीय हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! जो व्यक्ति उन तीनों में भेद करता है ॥८९॥ वह पाप करने वाला पाप स्वरूप होता है । वह अनिष्ट (बुरी) गति को प्राप्त करता है । हे द्विज ! विष्णु ही परंब्रह्म हैं, वे ही जगत् स्वरूप हैं ॥९०॥ यह वैशाख का महीना भगवान् विष्णु को सभी कर्मों को करने के लिए प्रिय है । इसको अश्वमेध आदि यज्ञों का फल प्रदान करने वाला बतलाया गया है ॥९१॥ इस महीनें में तीर्थ में स्नान करने, तपस्या करने, दान करने, जप करने तथा यज्ञ करने का अधिक फल होता है । जो लोग सूर्य के मेष राशि का होने पर सदैव नदी में स्नान प्रातःकाल करते है तथा ब्राह्मणों की पूजा करते हैं, वे कभी भी यमराज के दण्ड का पात्र नहीं बनते हैं ॥९२-९३॥ वैशाख के महीने में बार-बार स्नान करके, बार-बार मेरे दूतों को मारकर, चित्रगुप्त के द्वारा लिखे गये लेखों को बार-बार मिटा कर वैशाख स्नान करने वाले मनुष्य अपने पूर्वजों का पापों से उद्धार करते हैं । यह वैशाख का स्नान संसार के बन्धन को विनष्ट करने वाला है, यह नरक लोक को विनष्ट कर देने वाला तथा मेरे अधिकार का क्षय करने वाला है, अतएव इस परम रहस्य का कभी प्रकाश नहीं करना चाहिए ॥९४-९५॥ भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका, वितस्ता ये सभी नदियाँ विन्ध्य पर्वत के उत्तर में स्थित हैं ॥९६॥ गोदावरी, भीमरथी,

गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च देविका ।
तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणास्तु प्रकीर्तिताः ॥९७॥
द्वादशैता महानद्यो नित्यं तेनावगाहिताः । वैशाखे विधिना स्नानं नद्यां यः प्रातराचरेत् ॥९८॥
सर्वाः समुद्रगाः पुण्याः सर्वे पुण्या नगोत्तमाः ।
सर्वे चायतनाः पुण्याः सर्वे पुण्यावनाश्रयाः ॥९९॥
तेनावगाहिता दृष्टाः प्रणता बहुसेविताः । स्नानमर्द्धोदिते सूर्ये वैशाखे नियतश्चरेत् ॥१००॥
तस्य पुण्यं महीदेव कश्चिद्वक्तुं न शक्नुयात् ।
यदि वक्त्रसहस्राणां सहस्राणि भवन्ति हि ॥१०१॥
आयुश्च ब्रह्मणा तुल्यं यदिस्याद् द्विजसत्तम ! ।
तदा माधवमासस्य फलं कथयितुं भवेत् ॥१०२॥
महानिरयकर्षाग्निमाधवो माधवो यथा । ब्रह्महत्यादिकं पापमगम्यागमनादिकम् ॥१०३॥
कामाकामकृतं पापमतिपातकमेव च । उपपारहस्यञ्च सङ्करीकरणं परम् ॥१०४॥
जातिभ्रंशकरं घोरमपात्रीकरणन्तथा । मलापहं प्रकीर्णञ्च वाङ्मनःकायसम्भवम् ॥१०५॥
माधवो निर्दहेन्मासो विधिना समुपासितः । कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥१०६॥
वसेद्विष्णुपुरे श्रीमान्माधवे योऽर्चयेद्धरिम् ॥१०७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वैशाखमाहात्म्ये सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

* * *

तुङ्गभद्रा, देविका, तापी, पायोष्णी ये सभी नदियाँ विन्ध्य पर्वत के दक्षिण भाग में विद्यमान हैं ॥९७॥ वैशाख के महीने में जो प्रातःकाल विधि पूर्वक नदी में स्नान करता है, उसको इन बारहों नदियों में स्नान करने का फल मिल जाता है ॥९८॥ जो मनुष्य प्रातःकाल अर्द्ध सूर्योदय की बेला में वैशाख के महीने में नियम पूर्वक स्नान करता है, उसको सभी समुद्र गामिनी नदियों में स्नान करने, सभी पवित्र पर्वतों, सभी पवित्र मन्दिरों तथा सभी पवित्र वनाश्रमों के दर्शन करने एवं गुरुजनों की सेवा करने का फल मिल जाता है ॥९९-१००॥ हे ब्राह्मण ! उसके पुण्यों का वर्णन कोई भी नहीं कर सकता है, चाहे उसके लाखों मुँह क्यों न हों ॥१०१॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! यदि ब्रह्मा के समान लम्बी आयु हो जाय तो भी वैशाख के फल का वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥१०२॥ माधव (वैशाख का महीना) भगवान् माधव के ही समान पाप को विनष्ट करने वाली । वह ब्रह्महत्या आदि पाप को, अगम्या गमन आदि के पाप को, कामना पूर्वक अथवा बिना कामना के ही किए गये पाप को, अतिपातकों को, उपपातकों को तथा रहस्य में किए गये पापों को, सङ्करीकरण जन्य पाप को, जाति भ्रंशकरण जन्य पाप को, भयङ्कर अपात्रीकरण जन्य पाप को छिट-पुट पापों को जो मन, वाणी और शरीर से किए गये हैं उन पापों को ॥१०३-१०५॥ विधि पूर्वक उपासना करने पर यह वैशाख का महीना भस्म कर देता है । वह मनुष्य लाखों करोड़ कल्पों तक भगवान् विष्णु के लोक में निवास करता है ॥१०६-१०७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के वैशाख माहात्म्यान्तर्गत सत्तानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९७।।

* * *

अट्ठानबेवाँ अध्याय

सूत उवाच

एतच्छुत्वा वचस्तस्य धर्मराजस्य भूसुरः । पुनः पप्रच्छ मासस्य माधवस्य विधिं शुभम् ॥१॥

ब्राह्मण उवाच

धर्मराज ! महाभाग सम्यग्गुह्यं प्रकाशितम् ।
माधवस्नानजं पुण्यं नराणां मुक्तिदम्परम् ॥२॥
माधवं माधवे मासि स्नात्व प्रातः समाहितः ।
कथं सम्पूज्येद्देवं कैः पुण्यैस्तद्विधिं वद ॥३॥

धर्मराज उवाच

सर्वेषां पत्रजातीनां तुलसी केशवप्रिया। पुष्करादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥४॥
वासुदेवादयो देवा वसन्ति तुलसीदले। सर्वदा सर्वकालेषु तुलसीविष्णुवल्लभा ॥५॥
त्यक्त्वा तु मालतीपुष्पं मुक्त्वा च सरसीरुहम् ।
गृहीत्वा तुलसीपत्रं भक्त्या माधवमर्चयेत् ॥६॥
तस्य पुण्यफलं वक्तुमलं शेषोऽपि नो भवेत् ।
अस्नात्वा तुलसीं छित्त्वा देवार्थं पितृकर्मणि ॥७॥
तत्सर्वं निष्फलं याति पञ्चगव्येन शुध्यति। दारिद्र्यदुःखभोगादि पापानि सुबहून्यपि ॥८॥
तुलसीं हरते क्षिप्रं रोगानिव हरीतकी। तुलसी कृष्णगौराख्या तयाऽभ्यर्च्यमधुद्विषम् ॥९॥
विशेषेण हरेर्भक्तो नरो नारायणो भवेत्। माधवं सकलं मासं तुलस्या योऽर्चयेद्यतः ॥१०॥

वैशाख के महीने में विष्णुपूजा के विधान का वर्णन

सूतजी ने कहा— धर्मराज के इस वचन को सुनकर उस ब्राह्मण ने वैशाख मास की शुभ विधि को पूछा ॥१॥ **ब्राह्मण ने कहा—** हे महाभाग ! धर्मराज ! आपने मनुष्यों को मुक्ति प्रदान करने वाले वैशाख मास स्नान के पुण्य को अच्छी तरह से बतलाया ॥२॥ वैशाख के महीने में सावधानी पूर्वक प्रातःकाल स्नान करके भगवान् लक्ष्मीपति की किन पुष्पों से पूजा करनी चाहिए आप उसकी विधि को बतलायें ॥३॥ **धर्मराज ने कहा—** सभी पत्तों में तुलसी भगवान् केशव को प्रिय हैं पुष्कर आदि तीर्थ तथा गङ्गा आदि नदियाँ एवं वासुदेव आदि देवताओं का तुलसीदल में निवास होता है । भगवान् विष्णु को सदैव सभी फलों में तुलसी प्रिय है ॥४-५॥ मालती के फूल को त्यागकर तथा कमल का भी परित्याग करके, केवल तुलसी पत्र लेकर भक्ति पूर्वक भगवान् माधव की अर्चना करे ॥६॥ तो उसको जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन शेष भी नहीं कर सकते हैं । यदि बिना स्नान करके कोई पितृ कर्म अथवा देव कर्म के लिए तुलसी दल तोड़ता है ॥७॥ तो उसके द्वारा किए गये सभी कर्म व्यर्थ हो जाते हैं । उसे तोड़ने वाले की शुद्धि पञ्चगव्य पीने से होती है । जिस तरह हरीत की रोगों को हरण कर लेती है, उसी तरह तुलसी, दारिद्र्य, दुःख, भोग तथा अनेक पापों का तुलसी हरण कर लेती है । तुलसी चाहे काली हों या गौर उसके द्वारा श्रीहरि की पूजा करके ॥८-९॥ विशेष रूप से जो श्रीहरि का भक्त होता है

त्रिसन्ध्यं मधुहन्तारं नास्ति तस्य पुनर्भवः। अलाभे पुष्पात्राणामन्नाद्येनापि पूजयेत् ॥११॥
शालितण्डुलगोधूमैर्यवैर्वापि हरिं सदा। प्रातः स्नात्वा विधानेन माधवे माधवप्रिये ॥१२॥
पितृदेवमनुष्यांश्च तर्पयेत्सचराचरम्। योऽश्वत्थमूलं वै सिञ्चेत्तोयेन बहुना सदा ॥१३॥
कुर्यात्प्रदक्षिणं तं तु सर्वदेवमयं ततः। योऽश्वत्थमर्चयेद्देवमुदकेन समन्ततः ॥१४॥
कुलानामयुतं तेन तारितं स्यान्न संशयः। अलक्ष्मीः कालकर्णी च दुःस्वनो दुर्विचिन्ततम्॥१५॥
अश्वत्य तर्पणात्तात सर्वदुःखं विलीयते। तर्पिताः पितरस्तेन तेन विष्णुः समर्चितः॥१६॥
योऽश्वत्थमर्चयेद्धीमान्ग्रहास्तेनैव पूजिताः ॥१७॥

श्वेताश्वपुष्पाणि तथा शमीञ्च हुताशनं चन्दनमर्कबिम्बम्।
अश्वत्थवृक्षञ्च समालभेत ततश्च कुर्यान्निजजातिधर्मान् ॥१८॥
कण्डूयनञ्च गोग्रासं स्नात्वा पिप्पलतर्प्पणम्।
कृत्वा गोविन्दपूजाञ्च न स दुर्गतिमाप्नुयात् ॥१९॥

त्रयोदयशं चतुर्दश्यां वैशाख्याञ्च दिनत्रयम्। सर्वाशक्तोऽपि विधिना नारी वा पुरुषोऽपि वा॥२०॥

पूर्वोक्तनियमैयुक्तः प्रातः स्नात्वा च शक्तितः।
विमुक्तः पातकैः सर्वैः स्वर्गमक्षयमश्नुते ॥२१॥
वैशाखमासे यो भक्त्या भोजयेद् ब्राह्मणान्दश।
त्रिरात्रमुत्थितः स्नात्वा सकृच्च प्रयतः शुचिः ॥२२॥

वह नर नारायण के समान हो जाता है। वैशाख के महीने में जो पूरे महीने तुलसी से श्रीहरि की पूजा तीनों सन्ध्याओं में करता है, उसका इस संसार में फिर जन्म नहीं होता है। यदि पुष्पों और पत्रों की प्राप्ति न हो तो अन्न आदि से श्रीहरि की पूजा करे ॥१०-११॥ भगवान् माधव को प्रिय वैशाख के महीने में प्रातःकाल स्नान करके धान, चावल, गेहूँ अथवा यव से विधिपूर्वक श्रीहरि की पूजा करे ॥१२॥ पितरों, देवों तथा मनुष्यों का तर्पण करे। यह चराचरात्मक जगत् का मूल अश्वत्थ (पिप्पल का वृक्ष) है। उसकी जड़ को सदैव बहुत अधिक पानी से सिंचे ॥१३॥ उस सर्वदेवमय पिप्पल की प्रदक्षिणा करे। जो अश्वत्थ देव की जल से पूजा करता है ॥१४॥ वह अपने दश हजार वंशों का उद्धार कर देता है, इसमें कोई भी संशय नहीं है। कालकर्णी, अलक्ष्मी, बुरे स्वप्न तथा खराब-खराब चिन्ताएँ ॥१५॥ हे तात ! पिप्पल के वृक्ष के सिंचने से ये सबके सब विलीन हो जाते हैं। जो भगवान् विष्णु की अच्छी तरह से अर्चा करता है, उसके पितृगण तृप्त हो जाते हैं ॥१६॥ जो बुद्धिमान् पुरुष पिप्पल के वृक्ष को सिंचता है, उसके द्वारा सभी ग्रह पूजित हो जाते हैं ॥१७॥ जो मनुष्य श्वेताश्वपुष्प शमी, अग्नि, चन्दन, सूर्यमण्डल तथा अश्वत्थ वृक्ष का स्पर्श करता है, उसी से उसके जातिधर्म की पूर्ति हो जाती हैं ॥१८॥ गौ के शरीर को सहलाना, गोग्रास देना, स्नान करके पिप्पल के वृक्ष को सिंचना तथा भगवान गोविन्द की पूजा करना, इन सभी कार्यो को करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती है ॥१९॥ सभी कार्यों के करने में असमर्थ भी वैशाख शुक्ल त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पूर्णिमा इन तीन दिनों को कोई पुरुष या नारी पूर्वोक्त विधि पूर्वक शक्ति के अनुसार प्रातः स्नान करके सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं और अक्षय स्वर्ग को प्राप्त करते हैं ॥२०-२१॥ जो मनुष्य वैशाख के महीने में भक्तिपूर्वक दश ब्राह्मणों को भोजन कराता है, तीन रात्रियों तक जागरण

गौरान्वा यदि वा कृष्णांस्तिलान्क्षौद्रेण संयुतान् ।
दत्त्वा द्वादशविप्रेभ्यस्तैरेव स्वस्ति वाचयेत् ॥२३॥
प्रीयतां धर्मराजो मे पितृन्देवांश्च तर्पयेत्।
यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति। अयुतायुतञ्च तिष्ठेत्स स्वर्गलोकेयथासुखम्॥२४॥
मामेव तु न पश्येत्स पूजितोऽखिलदैवतैः । पाकान्नोदककुम्भादि पितृदैवततुष्टये ॥२५॥
त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां पूर्णायाञ्च दिनत्रयम्। यो दद्याद्भक्तितो विप्र महापापैःप्रमुच्यते॥२६॥
सुवर्णतिलपात्रैस्तु ब्राह्म णाञ्छक्तितोऽन्वहम्। तर्पयेदुदपात्रैस्तु ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥२७॥
वैशाख्यां पौर्णमास्याञ्च सृष्टाःकमलयोनिना। तिला देयाश्च भक्त्या च श्रेयःसन्ततिहेतवे॥२८॥
इहार्थे च पुरावृत्तं तदाकर्णय सुव्रत !। फलं माधवमासस्य पूर्णायां परमाद्भुतम्॥२९॥
मेषसङ्क्रममारभ्य तिथयास्त्रिंशदुत्तमाः। सर्वयज्ञाधिकाः पुण्याः पुराणेषु प्रकीर्तिताः ॥३०॥
विशेषतोऽपि तास्तिस्त्रः पवित्राः पापिदुर्लभाः ।
ततोऽपि पूर्णिमा पुण्या माधवी माधवप्रिया ॥३१॥
एषा वाराहकल्पादि तिथिराद्या महाफला। पुरानारायणेनास्यां दितिजौ द्वाविमौ हतौ॥३२॥
हिण्याक्षमधू विप्र पृथिवी च समुद्धृता । त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यामयं विभुः॥३३॥
क्रमादेतत्त्रयं चक्रे शुक्लेऽस्मिन्मासि माधवे ।
ततः प्रभृति विप्रेन्द्रविशेषादेव पूर्णिमा ॥३४॥

करके सावधानी पूर्वक एक वार स्नान करके पवित्र हो जाता है ॥२२॥ वह श्वेत तिल अथवा काले तिल का शहद के साथ बारह ब्राह्मणों को दान देकर उन ब्राह्मणों से ही स्वरितवाचन कराये ॥२३॥ और कहे कि धर्मराज मुझ पर प्रसन्न हों । इसके बाद वह पितरों तथा देवताओं का तर्पण करे, ऐसा करने वाला व्यक्ति जीवन भर के किए हुए पापों को उसी क्षण विनष्ट कर देता है । वह लाखों वर्ष तक स्वर्गलोक में निवास करता है ॥२४॥ उसकी सभी देवता पूजा करते हैं वह कभी भी मेरे लोक में नहीं आता है । हे विप्र ! जो भक्तिपूर्वक वैशाख शुक्ल त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा तिथि को पितरों तथा देवताओं की तृप्ति के लिए पकाये हुए अन्न और जल का दान करता है वह महापापों से छूट जाता है ॥२५-२६॥ अपनी शक्ति के अनुसार वैशाख के महीने में जो प्रतिदिन सुवर्ण और तिल भरे पात्र को ब्राह्मणों को दान देता है उसकी ब्रह्महत्या विनष्ट हो जाती है ॥२७॥ वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि को ब्रह्माजी ने तिलों की सृष्टि की; अतएव कल्याण तथा सन्तान की प्राप्ति के लिए तिल दान करना चाहिए ॥२८॥ इस विषय में वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि से संबद्ध एक अत्यन्त अद्भुत इतिहास है, उसे आप सुनें ॥२९॥ पुराणों में सभी यज्ञों से अधिक पुण्य प्रदान करने वाली मेष की सङ्क्रान्ति से लेकर तीस उत्तम तिथियाँ वर्णित हैं ॥३०॥ उनमें भी विशेष रूप से वैशाख त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा तिथियाँ पवित्र वतलायी गयी हैं । वे पापी जीवों के लिए दुर्लभ हैं । उनमें भी भगवान् माधव को प्रिय वैशाखी पूर्णिमा तिथि अधिक पुण्यप्रद है ॥३१॥ यह वाराह कल्प की आदि तिथि है तथा महान् फल प्रदान करने वाली है । प्राचीन काल में भगवान् नारायण ने इसी तिथि को दो राक्षसों हिरण्याक्ष और मधु को मारा था और पृथिवी का उद्धार किया था । इस मास के शुक्ल पक्ष के क्रमशः त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पूर्णिमा इन तीन तिथियों

कल्पादि: पावना ख्याता कर्मण:कल्पसाक्षिणी ।
येन स्नातं न वैशाखे प्रातर्नियमशालिना ॥३५॥
किं तस्य जन्मना विप्र ! नूनामात्मापकारिणा ।
त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां विशेषत: ॥३६॥
अपि सम्यग्विधानेन नारी वा पुरुषोऽपि च ।
प्रात: स्नात:सनियम:सर्वपापै: प्रमुच्यते ॥३७॥
स्नानदानार्चनश्राद्धक्रियापुण्यादिवर्जिता । यस्यातीता च वैशाखी स नूनं निरयालय: ॥३८॥
न वेदेन समं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम् ।
न दानं जलगोतुल्यं न वैशाखी समा तिथि: ॥३९॥
जलधेनुञ्च यो दद्याद्वैशाख्यां विष्णुतत्पर:। त्रयाणामपि देवानां चतुर्थोऽयं विशेषत: ॥४०॥
मातृहा पितृहा चैव भ्रूणहा गुरुतल्पग:। जलधेनुं समालोक्य मुच्यते सर्वपातकै: ॥४१॥
दशपूर्वान्परान्वंश्यान्नरकात्तारयन्ति ते। जलधेनुं प्रयच्छन्तिवैशाख्यां विधिनाऽत्रये॥४२॥
शर्कराफलताम्बूलमुपानत्करपत्रिका: । प्रयच्छन्ति द्विजाग्रयेभ्यो धन्यास्तेनात्र कीर्तिता:॥४३॥
मणिकोदककुम्भांश्च पक्वान्नं हैमदक्षिणाम् ।
य: प्रयच्छति वैशाख्यां सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥४४॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। ब्राह्मणस्य च सम्वादं प्रेतै: सार्द्ध महावने॥४५॥

में इस कार्य को श्रीभगवान् ने सम्पन्न किया था इसीलिए वैशाख मास की पूर्णिमा विशेष रूप से पवित्र तथा कल्पादि तिथि मानी गयी है । यह कल्प पर्यन्त कर्मों की साक्षिणी तिथि है । जो व्यक्ति नियमपूर्वक वैशाख के महीने में त्रयोदशी चतुर्दशी और पूर्णिमा तिथि को प्रात: स्नान नहीं करता है, हे विप्र ! उस अपनी आत्मा का अपकार करने वाले पुरुष का जन्म लेना व्यर्थ है ॥३२-३६॥ जो स्त्री अथवा पुरुष वैशाख मास में नियमपूर्वक अच्छी तरह से विधि पूर्वक प्रात: स्नान करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥३७॥ पवित्र स्नान, दान, श्राद्ध और पूजन पुण्यों से रहित जिस व्यक्ति की वैशाख मास की पूर्णिमा बीत जाती है, वह व्यक्ति निश्चित रूप से पाप का घर है ॥३८॥ वेद के समान कोई शास्त्र नहीं है, गङ्गाजी के समान कोई तीर्थ नहीं है, जल दान और गोदान के समान कोई दान नहीं है और वैशाखी पूर्णिमा के समान कोई तिथि नहीं है ॥३९॥ जो भगवान् विष्णु का भक्त वैशाखी के दिन जलधेनु का दान करता है वह त्रिदेवों में विशेष रूप से चौथा देवता हो जाता है ॥४०॥ माता को मारने वाला, पिता को मारने वाला, गर्भ हत्या करने वाला, गुरु की शय्या पर सोने वाला, ये सभी जल धेनु का दान करके सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं ॥४१॥ जो लोग इस तिथि को विधिपूर्वक जल धेनु का दान करते हैं वे अपने से पहले के दश तथा अपने से बाद के दश पीढ़ी के लोगों को तार देते हैं ॥४२॥ जो लोग इस तिथि को चीनी, फल, पान, उपानह तथा छाता श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दान देते हैं वे धन्य हैं ॥४३॥ जो मनुष्य वैशाख पूर्णिमा के दिन मणिक (बड़ा घड़ा कुण्डा) तथा पानी का घड़ा पकाया हुआ अन्न एवं सुवर्ण की दक्षिणा दान में देता है, वह अश्वमेध याग करने का फल प्राप्त करता है ॥४४॥ इस विषय में उदाहरण के रूप में ब्राह्मण का प्रेतों के साथ संवाद रूपी प्राचीन इतिहास कहा जाता है ॥४५॥ हे अनघ ! प्राचीन

ब्राह्मणो धनशर्माऽसीन्मध्यदेशे पुराऽनघ !। कुशाद्यर्थं वनं यातो ददर्शेदमथाद्भुतम्।।४६।।
भीतोऽपश्यदसौ प्रेतान्दुष्टांस्त्रीनतिदारुणान्। ऊर्ध्वकेशान्सरक्ताक्षान्कृष्णदन्तान्कृशोदरान् ।।४७।।
कुर्वतो विविधारावान्धावतोऽपि यतस्ततः। तान्दृष्ट्वा भयसन्त्रस्तो ब्राह्मणो विद्रुतो जवात्।।४८।।
कन्दमानास्ततस्तेऽपि तमेवानुययुस्तदा । सधर्ष्यमाणस्तैःप्रेतैरुवाच मधुरं वचः।।४९।।

धनशर्मोवाच

के यूयं वः कुतोऽवस्था जातेति निरयोचिता ।
भयार्त्तमनुकम्प्यं मां दुःखितं त्रातुमर्हथ ।।५०।।
वैष्णवं बहुभृत्यं च निःस्वं विप्रं वनागतम्। भवतामपि सश्रेयो नूनं दास्यति केशवः ।।५१।।
ब्रह्मण्यो भगवान् विष्णुस्तुष्टो मय्यनुकम्पया ।
अतसीपुष्पसङ्काशो विष्णुः पीताम्बरो हरिः ।।५२।।
यस्य श्रवणमात्रेण नाम्नो याति महातमः। अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः ।।
अक्षयः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदायकः ।।५३।।

यम उवाच

नामश्रवणमात्रेणविष्णोस्तेपरितोषिताः । पिशाचाःपुण्यभावस्था दयादाक्षिण्ययन्त्रिताः ।।५४।।
प्रीणितास्तस्य वचसा तदादिष्टेन नोदिताः। इदमूचुर्द्विजं प्रेताःक्षुत्तृष्णापूरपीडिताः ।।५५।।

प्रेता ऊचुः

दर्शनेनैव ते विप्र ! नामश्रव्दणतो हरेः । भावमन्यमनुप्राप्ता वयं जाता दयालवः ।।५६।।
अपाकरोति दुरितं श्रेयश्च योजयत्यपि। यशोविस्तारयत्त्याशु नूनं वैष्णवसङ्गमः ।।५७।।

काल में मध्य देश में धनशर्मा नामक ब्राह्मण थे । वे कुश इत्यादि लाने के लिए वन में गये थे तो उन्होंने यह अद्भुत दृश्य देखा ।।४६।। वे अत्यन्त भयङ्कर तथा दुष्ट तीन प्रेतों को देखकर भयभीत हो गये, उनके केश खड़े-खड़े थे, आँखे लाल-लाल थीं, दाँत काले थे और पेट सटा हुआ था ।।४७।। वे अनेक प्रकार की ध्वनि करते थे और इधर-उधर दौड़ रहे थे । उन सबों को देखकर ब्राह्मण भयभीत हो गये और जोर से भागे ।।४८।। वे प्रेत भी रोते हुए उनके पीछे दौड़ने लगे और उन सबों ने उनको पकड़ लिया तो उन्होंने मधुर वाणी में कहा ।।४९।। **धनशर्मा ने कहा—** तुमलोग कौन हो ? तुमलोगों की यह नारकीय अवस्था कैसे हो गयी ? मैं भयभीत और दुःखी हूँ । मेरी रक्षा तुमलोग करो ।।५०।। मैं वैष्णव हूँ, मेरे बहुत से भृत्य हैं । मेरे पास धन नहीं है, मैं वन में आया हुआ ब्राह्मण हूँ । भगवान् केशव तुम लोगों को भी अवश्य पुण्य प्रदान करेंगे ।।५१।। भगवान् विष्णु ब्रह्मण्य हैं, मेरे ऊपर कृपा करने से प्रसन्न होंगे । उनका वर्ण अतसी पुष्प के समान मनोहर है तथा वे पीताम्बरधारी हैं ।।५२।। उनके नाम को सुनने मात्र से महान् पाप विनष्ट हो जाता है । वे अनादि अनन्त हैं, वे शङ्ख, चक्र और गदा धारण करते हैं । वे अक्षय हैं, उनकी आँखे कमल के समान सुन्दर हैं । वे प्रेतों को मोक्ष प्रदान करने वाले हैं ।।५३।। **यम ने कहा—** भगवान् विष्णु का केवल नाम सुनकर वे प्रेत सन्तुष्ट हो गये । उन पिशाचों में दया का भाव आ गया तथा वे दाक्षिण्य गुण सम्पन्न हो गये ।।५४।। उस ब्राह्मण की वाणी से वे सब प्रसन्न हो गये और उस ब्राह्मण से प्रेरित होकर वे भूख तथा प्यास से व्याकुल पिशाच ब्राह्मण से कहे ।।५५।। **प्रेतों ने कहा—** हे विप्र!

रसायनमयी शीता परमानन्ददायिनी । नानन्दयति कं नाम वैष्णवामृतचन्द्रिका ॥५८॥
अयं कृतघ्ननामास्ति द्वितीयोऽयं विदैवतः । अवैशाखस्तृतीयोऽयं त्रयाणामपि पापकृत् ॥५९॥
सदैवानुष्ठिताऽनेन पापेनातिकृतघ्नता । तेनास्य कर्मजं नाम कृतघ्नाख्यं व्यवस्थितम् ॥६०॥
सुदास इति नाम्नाऽयं शूद्रोऽभूत्पूर्वजन्मनि । कृतघ्नस्तेन पापेन प्राप्तोऽवस्थामिमां द्विज ! ॥६१॥
अतिपापिनि धूर्ते च गुरुस्वाम्यहितेऽपि च । निष्कृतिर्विद्यते विप्र ! कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥६२॥
नानानिरयसङ्घातं शरीरैर्यातनाक्षमैः । अनुभूय तां त्ववस्थामन्त्यामेतां गतो द्विज ! ॥६३॥
अनेनान्नं सदा भुक्तमकृत्वा देवतार्चनम् । अदत्त्वा गुरुविप्रेभ्यस्तेनैवायं विदैवतः ॥६४॥
अयं दशसहस्राणां ग्रामाणामीश्वरो नृपः। हरिवीर इति ख्यातो नाम्नाऽऽसीत्पूर्वजन्मनि ॥६५॥
रोषाहङ्कारनास्तिक्यैर्गुर्वाज्ञालङ्घनोद्यतः । अकृत्वैव महायज्ञान्भुक्तवान्विप्रनिन्दकः ॥६६॥
कर्मणा तेन पापेन महानरकसङ्कटम् । अनुभूय ततः प्रेतो जातो नाम्ना विदैवतः॥६७॥
अवैशाखस्तृतीयोऽहं त्रयाणामपि पापकृत् । तेन मे कर्मजं नाम ब्राह्मणोऽहं व्यवस्थितः ॥६८॥

मध्यदेशोऽभवं नाम्ना गौतमो गौत्रतोऽप्यहम् ।
विप्रो वासपुरे वासी यज्वाऽऽसं पूर्वजन्मनि ॥६९॥

मया केवलमेवैकं श्रौतमार्गनुसारिणा। उद्दिश्य माधवं देवं न स्नातं मासि माधवे ॥७०॥
न दत्तं न हुतं किञ्चिद्वैशाख्यां चाविशेषतः। नार्चितो मधुहा तत्र तोषिता न मनीषिणः ॥७१॥

आपका दर्शन करने और श्रीहरि का नाम सुनने मात्र से हमलोगों का भाव बदल गया है, हमलोग दयालु हो गये हैं ॥५६॥ वैष्णवों की सङ्गति पापों को दूर करती है, कल्याण प्रदान करती है तथा शीघ्र ही यश का विस्तार करती है ॥५७॥ वैष्णव रूपी अमृत चन्द्रिका रसायन के समान शीतल है, परमानन्द प्रदान करती है, यह सबों को आनन्दित करती हैं ॥५८॥ इसका नाम कृतघ्न है, इस दूसरे का नाम विदैवत है, मैं तीसरा हूँ मेरा नाम अवैशाख है । हम तीनों पापी हैं ॥५९॥ इस पापी ने सदैव कृतघ्नता का काम किया है । इसी लिए इसका कर्मानुसार नाम कृतघ्न है ॥६०॥ यह पूर्वजन्म में सुदास नामक शूद्र था अपनी कृतघ्नता रूपी कर्म के कारण यह इस अवस्था को प्राप्त किया है ॥६१॥ हे विप्र ! अत्यन्त पापी, धूर्त तथा गुरुजनों एंव स्वमी का अकल्याण करने वाले का तो प्रायश्चित होता है, किन्तु कृतघ्न के लिए कोई प्रायश्चित नहीं है ॥६२॥ हे द्विज ! यातना वर्दास्त करने योग्य शरीरों द्वारा अनेक नरक समूह का भोग भोगकर अन्त में यह इस अवस्था को प्राप्त किए हुए है ॥६३॥ यह दूसरा देवताओं का पूजन किए विना ही सदैव अन्न खाता था । इसने गुरु तथा ब्राह्मणों को कभी दान भी नहीं दिया इसीलिए इसका नाम विदैवत है ॥६४॥ यह पूर्वजन्म में यह दश हजार ग्रामों का स्वामी तथा राजा था । इसका नाम हरिवीर था ॥६५॥ क्रोध, अहङ्कार, नास्तिकता के कारण अपने गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन करता था । यह पञ्च महायज्ञों को किए बिना भोजन करता था और ब्राह्मणों की निन्दा करता था ॥६६॥ उस पाप कर्म के फल स्वरूप भयङ्कर नरकों की यातना का अनुभव करके यह विदैवत नामक प्रेत हो गया ॥६७॥ इन तीनों में सर्वाधिक पाप करने वाला मैं अवैशाख हूँ । अपने कर्मों के अनुसार ही मेरा भी नाम हैं । मैं पहले ब्राह्मण था ॥६८॥ मेरा जन्म मध्यदेश में हुआ था । मेरा गौतम गोत्र था । मैं पूर्वजन्म में यज्वा (यज्ञ करने वाला तथा वासपुर का निवासी ब्राह्मण था) ॥६९॥ मैं केवल श्रौतमार्ग का अनुयायी था । भगवान् माधव

मणिकोदककुम्भानां न दानैः पितृदेवताः। तर्पिता न तिला दत्ताः सक्षौद्राः श्रोत्रियेपु च ॥७२॥
न पुष्पफलताम्बूलचन्दनव्यजनाम्बरैः । विद्वांसो नार्चितास्तत्र पितृदैवततुष्टये ॥७३॥
मया नैकाऽपि वैशाखी पूर्णा पूर्णफलप्रदा। स्नानदानक्रियापूजासुकृतैः परिपालिता॥७४॥
तेन मे वैदिकं कर्म सर्वं चैव तु निष्फलम् ।
ततोऽवैशाखनामाहं प्रेतो जातोऽस्मि सर्वतः ॥७५॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं त्रयाणामपि कारणम् । त्वं नो भवसमुद्धर्ता पापाद्विप्रोऽसि वै यतः ॥७६॥
विमुक्तं ब्रह्मतीर्थं च साधवः परमं यतः । तारयन्ति महापापान्निरयेभ्योऽपि संश्रितान् ॥७७॥
गङ्गादि पुण्यतीर्थेषु यो नरः स्नाति सर्वदा। यः करोति सतां सङ्गं तयोः सत्सङ्गमो वरः ॥७८॥
अथवा मम पुत्रोऽस्ति धनशर्मेति विश्रुतः । तं गत्वा बोधयस्वामिन्नस्मदर्थे कृतोद्यमः ॥७९॥
कार्ये समुद्यमं कृत्वा परेषां समुपस्थिते। पुष्कलं फलमाप्नोति यज्ञदानक्रियाधिकम् ॥८०॥

यम उवाच

प्रेतवाक्यं तदाकर्ण्य धनशर्माऽतिदुःखितः । स तं जनकमाज्ञाय पतितं निरये निजम् ॥
आत्मानमभितो निन्दन्निदं वचनमब्रवीत् ॥८१॥

धनशममोंवाच

अहं तव सुतः स्वमिन्गौतमस्य निरर्थकः। यस्तु पुत्रो न निस्तारं पितुः कुर्यादतन्द्रितः ॥८२॥
आत्मनं पावयेन्नासावदाता द्रव्यवानिति । धर्मो हि गहनो ज्ञेयः प्रयत्नेनापि धीमता॥८३॥

की प्रसन्नता के लिए मैंने कभी वैशाखमास में स्नान नहीं किया ॥७०॥ मैंने वैशाखी पूर्णिमा को न तो कभी कुछ दान दिया और न होम किया । मैंने न तो भगवान् मधुसूदन की पूजा की और न तो ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया ॥७१॥ जल भरने के घड़े तथा मणिक के दान से मैंने पितरों तथा देवताओं को कभी तृप्त भी नहीं किया । मैंने क्षौद्र के साथ श्रोत्रिय ब्राह्मणों को कभी तिल (तिलकूट) भी दान नहीं दिया॥७२॥ मैंने कभी पितरों तथा देवताओं की तुष्टि के लिए विद्वानों को पुष्प, फल, ताम्बूल, चन्दन, पङ्खा तथा वस्त्र दान भी नहीं दिया ॥७३॥ मैंने कभी एक भी पूर्ण फल देने वाली वैशाख मास की पूर्णिमा को स्नान, दान तथा पूजा आदि के नियमों का पालन नहीं किया ॥७४॥ उसके कारण मेरे सारे वैदिक कर्म निष्फल हो गये । उसी के फलस्वरूप मैं अवैशाख नाम का प्रेत हो गया हूँ ॥७५॥ इस तरह से मैंने आपको तीनों के कारण को बतलाया । आप ब्राह्मण हैं, आप हमलोगों का पाप से उद्धार करें ॥७६॥ चूकि सज्जन पुरुष विमुक्त ब्रह्मतीर्थ हैं और शरणागत जीवों की नरकों से महापापियों का उद्धार कर देते हैं ॥७७॥ गङ्गा आदि पवित्र तीर्थों में जो मनुष्य सदा स्नान करते हैं तथा जो सज्जनों की सङ्गति करता है उन दोनों प्रकार के मनुष्यों की सङ्गति श्रेष्ठ होती है । अथवा हे स्वामिन् ! मेरा पुत्र धनशर्मा विख्यात है हमलोगों के लिए प्रयास करके आप उसे इस बात को बतला दें ॥७८-७९॥ उद्योग पूर्वक करने योग्य दूसरों के कार्य के आ जाने पर जो उसे करता है, उसे यज्ञ तथा दान करने से भी अधिक फल की प्राप्ति होती हैं ॥८०॥ **यम ने कहा—** प्रेत के उस वाक्य को सुनकर अपने पिता को नरक में पड़े हुए जानकर धनशर्मा अत्यन्त दुःखी हो गये । उन्होंने अपनी निन्दा की और कहे ॥८१॥ **धनशर्मा ने कहा—** हे स्वामिन् ! आप गौतम गोत्रीय का मैं पुत्र हूँ । जो पुत्र अपने पिता का सावधानी पूर्वक उद्धार नहीं करता है वह व्यर्थ पुत्र होता

यथा मम पिता न त्वामिमां प्राप्तोऽसि दुर्गतिम् ।
यदा च सुखसन्तानं न मत्तः प्राप्तवानसि ॥८४॥
लोकयोः सुखसन्ताने तथा न तनयो मतः। द्वौ गुरू पुरुषस्येह पिता माता च धर्मतः ॥८५॥
तयोरपि पिता श्रेयान्बीजप्राधान्यदर्शनात् ।
किं करोमि क्व गच्छामि कथं तात ! गतिस्तव ॥८६॥
धर्मतत्त्वं न जानामि संश्रयामि भवद्वचः ॥८७॥

प्रेत उवाच

शृणु पुत्र वचः सत्यं भाविनोऽर्थस्य मे बलात् ।
अथ पुण्येन केनापि भवित्री सुगतिर्मम ॥८८॥
मया श्रौतानि कर्माणि कुर्वता किल गर्वतः ।
अनादृतं गुरुवचो गुरुस्तत्रावमानितः ॥८९॥
गुरूणामपमानेन प्रहर्षक्रोधविस्मयैः। पुण्यानि क्षयमायान्ति यशांसीव हि दुर्नयैः ॥९०॥
पौराणिकविधानेन कर्मश्रौताविरोधि यत्। केवलं वैदिकं कर्म कृतमज्ञानतो मया ॥९१॥
पापेन्धनदवज्वाला पापद्रुमकुठारिका। कृता नैकाऽपि वैशाखी विधिना पुत्र पूर्णिमा॥९२॥
अव्रता यस्य वैशाखी सोऽवैशाखो भवेन्नरः ।
दश जन्मानि च ततस्तिर्यग्योनिषु जायते ॥९३॥
चिरं भुक्त्वा दुःखमन्ते प्रेतः पर्यायतो भवेत् ।
लभते मानुषं जन्म कथञ्चिदपिदुर्लभम् ॥९४॥

है ॥८२॥ धनी होकर भी दान नहीं देने के कारण वह अपने को पवित्र नहीं कर पाता है । धर्म अत्यन्त गहन है । बुद्धिमान व्यक्ति भी उसे प्रयास पूर्वक ही जान पाता है ॥८३॥ आप मेरे पिता हैं, और इस दुर्गति को प्राप्त किए हैं । आप मुझ जैसे सन्तान से सुख नहीं प्राप्त किए हैं ॥८४॥ इस लोक तथा परलोक में सुख की प्राप्ति के लिए पुत्र उस प्रकार से अभिप्रेत नहीं है । इस संसार में दो धर्म के गुरु बतलाये गये हैं माता और पिता ॥८५॥ बीज की प्रधानता होने के कारण माता की अपेक्षा पिता श्रेष्ठ हैं, हे तात ! मैं कहाँ जाकर क्या करूँ ? जिससे कि आपकी सद्गति हो ॥८६॥ मैं धर्म के तत्त्व को नहीं जानता हूँ आपकी वाणी का अनुसरण करता हूँ ॥८७॥ **प्रेत ने कहा—** हे पुत्र ! भावी अर्थ के विषय में मेरी वाणी को प्रयास पूर्वक सुनो । मैं बतलाता हूँ कि किस पुण्य से मेरी सद्गति होगी ॥८८॥ मैंने अभिमान पूर्वक श्रौत कर्म को किया । गुरुजनों की वाणी का अनादर किया है और गुरुजनों का अपमान किया है ॥८९॥ गुरुजनो के अपमान, प्रहर्ष, क्रोध तथा विस्मय के द्वारा पुण्यों का उसी तरह नाश हो जाता है जिस तरह दुर्नीति के द्वारा यश का नाश होता है ॥९०॥ श्रौत कर्म के अनुकूल पौराणिक विधि से मैंने अज्ञान वशात् वैदिक कर्मों को किया ॥९१॥ हे पुत्र ! मैंने पाप रूपी इन्धन के लिए अग्नि स्वरूप तथा पाप रूपी वृक्ष के लिए कुठार स्वरूपिणी एक भी वैशाखी पूर्णिमा का विधिपूर्वक अनुष्ठान नहीं किया है ॥९२॥ जो वैशाखी पूर्णिमा का व्रत नहीं करता है वह मनुष्य अवैशाख प्रेत होता है । उसके बाद दश जन्मो तक पशु एवं पक्षी की योनि में जाता है ॥९३॥ दीर्घकाल तक दुःख भोगकर क्रमशः प्रेत होता है।

उपायं ते वदिष्यामि प्रेतमोक्षकरम्परम्। श्रुतवान्यदहं पूर्वजन्मनि स्वगुरोर्मुखात् ॥९५॥
गच्छ पुत्र गृहं स्नात्वा यमुनायां विधानतः। अद्यतः सर्वगतिदा कल्पाद्यासाप्युपागता ॥
पश्चिमेऽहनि वैशाखी पितृदेवार्चने हिता ॥९६॥
पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं सहोदकुम्भान्नफलानि भक्त्या ।
दद्यात्पिपतृभ्यो भवतीह दत्तं श्राद्धं सदा तेन समासहस्रम् ॥९७॥
वैशाख्यां पौर्णमास्यां यो भोजयेद् भूमिदेवताः ।
सिक्थे सिक्थे भवेत्तृप्तिः पितृणां युगसङ्ख्यया ॥९८॥
वैशाख्यां विधिना स्नात्वा भोजयेद् ब्राह्मणान्दश ।
पायसं सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥९९॥
गौरान्वा यदि वा कृष्णांस्तिलान्क्षौद्रेण संयुतान् ।
दत्त्वा दशभ्यो विप्रेभ्यस्तेनैव स्वस्ति वाचयेत् ॥१००॥
प्रीयतां धर्मराजेति पितॄन्देवांश्च तर्पयेत्। यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥१०१॥
वैशाख्यां पौर्णमास्याञ्च सृष्टाः कमलयोनिना ।
तिला देयाश्च भक्त्या च स्पृश्याः सर्वाङ्गतो द्विज ! ॥१०२॥
यस्तिलैर्यवसम्मिश्रैःस्नातिसर्वाङ्गतस्तदा । तस्य ब्रह्मा च धर्मोऽत्र ददाति वरमीप्सितम्॥१०३॥
प्रीतये धर्मराजस्य यो दद्यादुदकुम्भकान् । सप्त सप्त कुलं तेन तारितं स्यान्न संशयः॥१०४॥

वह किसी प्रकार अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य का जन्म प्राप्त करता है ॥९४॥ प्रेत से मुक्ति दिलाने वाला उपाय मैं तुमको बतलाता हूँ । मैंने पूर्व जन्म में उस उपाय को अपने गुरु के मुख से सुना था ॥९५॥ पुत्र ! तुम घर जाओ और विधिपूर्वक यमुना में स्नान करके आज से सबों को गति प्रदान करने वाली कल्पादि तिथि हो रही है ॥९६॥ दूसरे दिन पूर्णिमा तिथि है, वह पितरों तथा देवताओं की पूजा के लिए कल्याणकारिणी है ॥९६॥ भक्तिपूर्वक तिलमिश्रित जल तथा जल भरा घड़ा एवं अन्न तथा फल पितरों की तृप्ति के लिए दान करने से हजारों श्राद्ध से भी अधिक पुण्य होता है ॥९७॥ जो व्यक्ति वैशाख की पूर्णिमा तिथि को ब्राह्मण को भोजन कराता है उसके पितरों को प्रत्येक सिक्थों की चार युगों तक तृप्ति बनी रहती है ॥९८॥ वैशाखी पूर्णिमा के दिन विधिपूर्वक स्नान करके दश ब्राह्मणों को पायस भोजन कराना चाहिए । ऐसा करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें कोई भी संशय नहीं है ॥९९॥ शहद से युक्त श्वेत अथवा काले तिलों को दश ब्राह्मणों को दान दे और उन सबों से स्वस्तिवाचन कराये ॥१००॥ और कहे कि इससे धर्मराज प्रसन्न हों । उसके बाद पितरों एवं देवताओं को तृप्त करे । ऐसा करने वाले के जीवन भर के सारे पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं ॥१०१॥ हे द्विज ! वैशाख पूर्णिमा को ही ब्रह्माजी ने तिलों की सृष्टि की है । अतएव उस दिन तिल का दान करना चाहिए और उसका सभी अङ्गों से स्पर्श करना चाहिए ॥१०२॥ जो उस दिन तिल और यव मिलाकर सभी अङ्गों से स्नान करता है उसको ब्रह्माजी तथा धर्मराज सभी प्रकार का वरदान देते हैं ॥१०३॥ जो मनुष्य धर्मराज की प्रसन्नता के लिए जलभरे घड़े का दान करता है वह निश्चित रूप से अपनी माता के सात पीढ़ी के तथा अपने पिता के सात पीढ़ी के पूर्वजों को तार देता है ॥१०४॥ वैशाख शुक्ल त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा पूर्णिमा के दिन भक्तिपूर्वक, स्नान, जप,

त्रयोदश्याञ्चतुर्दश्यां पूर्णायां भक्तितत्परः ।
स्नात्वा जप्त्वा तथा हुत्वा दत्त्वा सम्पूज्य माधवम् ॥१०५॥
यत्फलं जायते पुत्र तदस्माकं प्रयच्छ भोः। नैतौ परिचितौ प्रेतौ हित्वा स्वर्गतिमाश्रये ॥१०६॥
एतयोरपि पापस्य ह्यन्तोऽयं समुपस्थितः ॥१०७॥

यम उवाच

तथेत्युक्त्वा गतः सर्वं ततश्चक्रे स वै द्विजः ।
प्रीतःपरमया भक्तया वैशाख्यां स्नानदानकृत् ॥१०८॥
स्नातः समुदितो भक्त्या प्राप्य माधवपूर्णिमाम् ।
दत्त्वा बहूनि दानानि तेभ्यः पुण्यं ददौ पृथक् ॥१०९॥
तत्क्षणादेव ते सर्वे विमानस्था दिवं ययुः। तत्पुण्यदानयोगेन मुदिता द्विजसत्तम ! ॥११०॥
धनशर्माऽपि विप्रेन्द्रः श्रुतिस्मृतिपुराणवित् । भुक्त्वा भोगांश्चिरं कालं ब्रह्मलोकमवाप्तवान्॥१११॥
एषा पुण्यतमा तस्माद्वैशाखी विश्वपावनी। कथ्यते तु मया विप्र सामसेनातिगौरवात् ॥११२॥
धन्यास्त एव कृतिनश्च त एव जाता लोके त एव पुरुषाः पुरुषार्थभाजः ।
ये माधवे मधुनिषूदनमर्चयन्ति प्रातर्निमज्ज्य नियमेन विशुद्धचित्ताः ॥११३॥
यो माधवे मासि नरः प्रभाते स्नातः समाराधयते रमेशम् ।
यमैरुपेतोनियमैरशेषैर्वृतोऽपि नूनं स निहन्ति पापम् ॥११४॥
तैरेव कालो विजितस्त एव नरेषु धन्या विगतैनसस्ते ।
त एव गर्भे न विशन्ति भूयो मज्जन्ति ये माधवमासि युक्ताः ॥११५॥

होम तथा श्रीभगवान् की पूजा ॥१०५॥ करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह फल; हमलोगों को समर्पित कर देना । इन दोनों अकेले परिचित प्रेतों को छोड़कर मैं स्वर्ग नहीं जाना चाहता हूँ । अब इन दोनों प्रेतों के भी पाप का अन्त आ गया है ॥१०६-१०७॥ **यमराज ने कहा—** ठीक है यह कहकर वह ब्राह्मण अपने घर चला गया वह उन सारे कामों को किया । अत्यन्त भक्ति पूर्वक उसने वैशाखी के दिन स्नान तथा दान किया ॥१०८॥ उन्होंने वैशाख पूर्णिमा के दिन भक्ति पूर्वक स्नान किया अनेक प्रकार का दान देकर उन्होंने उन प्रेतों को उसके पुण्य को समर्पित कर दिया ॥१०९॥ उसी क्षण वे सभी प्रेत विमान पर चढ़कर स्वर्ग चले गये । हे द्विजश्रेष्ठ ! उस पुण्य का दान प्राप्त करके प्रसन्नता पूर्वक वे सब स्वर्ग गये॥११०॥ ब्राह्मणों में श्रेष्ठ धनशर्मा भी श्रुतियों, स्मृतियों और पुराण के ज्ञाता थे । वे दीर्घकाल तक भोगों को भोगकर ब्रह्मलोक में चले गये ॥१११॥ हे विप्र ! यह वैशाखी पूर्णिमा संसार को पवित्र बनाने वाली कही गयी है । यह अत्यन्त गौरव सम्पन्न हैं । इसका वर्णन मैंने संक्षेप में किया है ॥११२॥ जो लोग वैशाख के महीने में प्रातःकाल स्नान करके भगवान् मधुसूदन की प्रतिदिन अर्चना करते हैं, वे ही लोग धन्य हैं, वे कृती, तथा पुरुषार्थो के पात्र हैं ॥११३॥ जो मनुष्य वैशाख के महीने में प्रातःकाल स्नान करके शुद्ध चित्त से भगवान् मधुसूदन की पूजा करते हैं । वे सभी यम तथा नियम आदि का पालन करने वाले मनुष्य अनेक पापों को विनष्ट कर देते हैं ॥११४॥ उन लोगों ने काल पर विजय प्राप्त कर लिया है निष्पाप होने के कारण वे ही सभी मनुष्यों में धन्य हैं । वे ही लोग पुनः गर्भ में नहीं प्रवेश करते हैं, जो

स माधवो गर्जति यज्ञयोगात्तपःक्रियादानविधानयोगात् ।
यस्मिन्कृतं मासि कथञ्चिदल्पं पुण्यं पुनः स्यादिह कल्पतुल्यम् ॥११६॥
मज्जतो हि मनुजस्य माधवे माधवार्चनकृते दिनोदये ।
तामसोऽपि जलविन्दुसङ्गमादङ्गमावहति पावनं यतः ॥११७॥
तानि देहमधिरुह्य देहिनस्तावदेन विचरन्त्यघानि च ।
यावदेति न स माधवाह्वयः श्रीरमारमणवल्लभो विराट् ॥११८॥
स्नातुं पदानि मनुजो गमनेविभाते तीर्थे ददाति मधुसूदनमासि युक्तः ।
भूयो भवन्ति हयमेधसमानि तानि श्रीमाधवस्मरणतः पठतोऽस्य नाम ॥११९॥
मेरुमन्दरतुल्यानि पापान्युग्राण्यनेकशः । दहते माधवो मासः स्नातो माधववल्लभः ॥१२०॥
इदं संक्षेपतः प्रोक्तं मया तेऽनुग्रहाद्द्विज । वैशाखस्नानमाहात्म्यं श्रोतुः पापक्षयङ्करम् ॥१२१॥
यस्तु श्रोष्यति भक्त्यैनमितिहासं मयोदितम्। सोऽपि पापविनिर्मुक्तो न मामालोकयिष्यति॥१२२॥
ब्रह्महत्यादि पापानि बहुशोऽपि कृतान्यपि । वैशाखस्य विधानेन तानि नश्यन्ति निश्चितम्॥१२३॥
त्रिंशत्पूर्वान्परांस्त्रिंशत्त्रिंशच्चैव परावरान्। वैशाखे विधिना स्नातो नरकादुद्धरेत्पितॄन्॥१२४॥
एकतः सर्वतीर्थानि सर्वयज्ञाः सदक्षिणाः। एकतो माधवो मासो नियमादनुपालितः ॥१२५॥
यतो भगवतस्तस्य हरेरुत्कृष्टकर्मणः ।
प्रियोऽसौ माधवो मासःसर्वेभ्यः प्रवरोऽधिकः ॥१२६॥

लोग वैशाख के महीने में स्नान करते हैं ॥११५॥ यह वैशाख का महीना यज्ञ, योग तपस्या तथा दान के विधान इत्यादि से इसलिए गरजता है कि उस महीने में किया गया थोड़ा सा भी पुण्य कल्प के समान होता है ॥११६॥ वैशाख के महीने में प्रातः काल स्नान करके भगवान् माधव की अर्चना करने पर तामसी पुरुष के भी अङ्ग जल के विन्दु के संयोग मात्र से पवित्र हो जाते हैं ॥११७॥ शरीरधारी जीव पर चढ़कर पाप तब तक ही विचरण करते हैं, जब तक कि वैशाख का महीना रूपी विराट् पुरुष नहीं आ जाता है ॥११८॥ प्रातःकाल की बेला में जब मनुष्य तीर्थ में जाकर स्नान करने की इच्छा से अपने पैरों को बढ़ाता है, उस समय उसको अश्वमेध यज्ञ के फल के समान बहुत अधिक पुण्य प्राप्त होते हैं जब कि वह भगवान् मधुसूदन के नामों का स्मरण करता है ॥११९॥ तब उसको मेरु तथा मन्दराचल के समान अत्यन्त उग्र यागों को करने का फल केवल स्नान करने मात्र से मिलता है । श्रीभगवान् को प्रिय वैशाख का महीना उसके समस्त पापों को भस्म कर देता है ॥१२०॥ हे द्विज ! यह मैंने आप पर कृपा करके वैशाख स्नान के माहात्म्य को संक्षेप में कहा यह पापों का विनाश करने वाला है ॥१२१॥ जो पुरुष मेरे द्वारा वर्णित इस इतिहास को भक्ति पूर्वक श्रवण करेगा वह भी पाप से विमुक्त होकर मेरे लोक में नहीं आयेगा ॥१२२॥ वैशाख में विधिपूर्वक स्नान करने से ब्रह्महत्या आदि किए गये अनेक पाप निश्चित रूप से विनष्ट हो जाते हैं ॥१२३॥ वैशाख के महीने में विधिपूर्वक स्नान करने वाला अपने से पहले के तीस और अपने से बाद के तीस एवं दूसरे छोटे बड़े तीस पितरों का उद्धार कर देता है ॥१२४॥ एक तरफ सभी तीर्थ सभी दक्षिणा के साथ सभी यज्ञ तथा दूसरी ओर नियमानुष्ठान पूर्वक वैशाख का महीना ॥१२५॥ जो उत्कृष्ट कर्म करने वाले श्रीभगवान् को प्रिय है, इस लिए वह सबों से अधिक गौरव सम्पन्न होता

संशयं नो विधेहीति महीदेव ! कथञ्चन। वैशाखं प्रति वै मासं समासाद्य मयोदितम् ॥१२७॥
इहार्थे यत्पुरा वृत्तं तदाकर्णय चाद्भुतम्। अनाख्येयमपीदं ते कथयिष्ये कथानकम् ॥१२८॥
इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वैशाखमाहात्म्येऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

निन्यानबेवाँ अध्याय

यम उवाच

बभूव भूपतिः पूर्वं ख्यातो नाम्ना महीरथः। पूर्वपुण्यफलावाप्तप्रभूतैश्वर्यसम्पदः ॥१॥
केवलं कामकलनाललनाललितस्थितः । तदेकव्यसनासक्तिर्न धर्मार्थव्यवस्थितः ॥२॥
मन्त्रिणि न्यस्तराज्यश्रीर्बुभुजे विषयान्नृपः । स कामिनीसहचरो राज्यकार्यपराङ्मुखः ॥३॥
न प्रजा न धनं धर्मं नार्थकार्यं च पश्यति। केवलं कामिनीकेलिकलनोचितवासनः ॥४॥
अथ कालेन महता पुरोधास्तस्य कश्यपः। वचःप्रोवाच तं धर्म्यमिति चेतस्यचिन्तयत् ॥५॥
न वारयति यो मोहादधर्मान्नृपतिं गुरुः । सोऽपि तत्पापभुक्तस्माद्बोधनीयः पुरोधसा ॥६॥
बोधितोऽप्यवजानाति स चेद्वाक्यं पुरोधसः। पुरोधास्तत्र निर्दोषो राजा स्यात्सर्वदोषभाक् ॥७॥
शृणु राजन्मम गुरोर्वचो धर्मार्थसंहितम् । अभिन्नार्थमुपेतार्थमिच्छारागादिवर्जितम् ॥८॥

है ॥१२६॥ हे ब्राह्मण ! आप किसी भी प्रकार का संशय मेरे द्वारा वर्णित वैशाख के महीने के विषय में न करें ॥१२७॥ इस विषय में जो प्राचीन काल में घटना हुयी उस अद्भुत घटना को आप सुनें । यद्यपि यह भी अप्रकाशनीय है फिर भी मै तुम्हें सुना रहा हूँ ॥१२८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पाताल खण्ड के वैशाख माहात्म्य वर्णन के अन्तर्गत अठानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९८।।

राजा महीरथ के वृत्तान्त का वर्णन

यम ने कहा— प्राचीन काल में एक राजा थे । उनका नाम महीरथ था । पूर्वजन्मों में किए गये पुण्य कर्मो के फलस्वरूप वे अत्यधिक धन सम्पत्ति से सम्पन्न थे ॥१॥ वे काम कला में दक्ष रमणियों से घिरे रहते थे, वे सदा काम कला में ही आसक्त रहते थे उनकी धर्म और अर्थ के विषय में प्रवृत्ति नहीं होती थी ॥२॥ मन्त्री के ऊपर राज्य का भार छोड़कर वे विषयोपभोग में लगे रहते थे, राज्य के कार्य का परित्याग करके कामिनियों के साथ सदा रमण करते थे ॥३॥ वे न पूजा करते थे न धर्म करते थे और न तो वे अर्थ के कार्यो को देखते थे । उनकी वासना सदा कामिनियों के साथ क्रीड़ा करने की बनी रहती थी ॥४॥ बहुत समय बीत जाने पर उनके पुरोहित कश्यप ने उनको धर्मोपदेश यह सोचकर दिया कि॥५॥ जो गुरु अज्ञानवशात् राजा को अधर्म करने से नहीं रोकता है वह भी उसके पापों का भागी होता है । अतएव पुरोहित को चाहिए कि वह राजा को उपदेश दे ॥६॥ यदि राजा पुरोहित के द्वारा उपदेश किए जाने

अयमेव परो धर्मो यद्गुरोर्वचसि स्थितिः । गुर्वाज्ञाया लवो राज्ञामायुःश्रीसौख्यवर्द्धनः ॥९॥
न विप्रास्तर्पिता दानैर्विष्णुर्नाराधितस्त्वया । न व्रतं न तपःकिञ्चिन्नतीर्थं हि कृतं त्वया ॥१०॥
हरिनाम त्वया कामवशगेन न चिन्तितम् । हा त्वया भीरुसङ्गत्या नविद्वत्सङ्गतिःकृता ॥११॥
स्मरचामरवाहिन्यो वल्लभाः कस्य न प्रियाः ।
किं तु ताः पवनोल्लोलकदलीदलवच्चलाः ॥१२॥
तरङ्गतरलैरथैंर्भोगैर्भ्रूभङ्गभङ्गुरैः । मुहूर्तपेयैस्तारुण्यैर्न तृप्यन्ते महाशयाः ॥१३॥
किं विद्यया च तपसा किं त्यागेन नयेनवा ।
किं विविक्तेन मनसा स्त्रीभिर्यस्य हृतं मनः ॥१४॥
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेष्वनुयाति यः । सर्वमन्यच्छरीरेण समं नाशं गमिष्यति॥१५॥
धर्मं शनैः सञ्चिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिकाः । धर्मेणाहि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्॥१६॥
अनिलोल्लासितोत्तालजलकल्लोलचञ्चलम् । किं न जानासि राजेन्द्र नृणां जीवितविभ्रमम्॥१७॥
विनयो रत्नमुकुटः सत्यधर्मौ च कुण्डले। त्यागश्च कङ्कणो येषां किं तेषां जडमण्डनैः॥१८॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं भुवि। विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥१९॥

पर भी उसकी अवहेलना कर देता है तो पुरोहित निर्दोष हो जाता है राजा ही सम्पूर्ण दोष का भागी होता है ॥७॥ पुरोहित ने कहा— राजन् आप धर्म तथा धर्म की प्राप्ति के अनुकूल मेरी वाणी को सुनें । उसका कोई दूसरा प्रयोजन नहीं हैं, इच्छा और राग से रहित यह मेरी वाणी है ॥८॥ राजा का सबसे बड़ा धर्म है कि वह अपने आचार्य की वाणी का पालन करे । गुरु का थोड़ा सा भी अपमान करने से राजा के आयु, श्री तथा सुख सम्पत्ति का नाश होता है ॥९॥ आपने ब्राह्मणों को दान नहीं दिया है, आपने भगवान् विष्णु की आराधना भी नहीं की है । आपने कोई व्रत या तपस्या नहीं की है । और न तो तीर्थाटन ही किया है ॥१०॥ काम परतन्त्र होकर आपने श्रीहरि के नाम का भी चिन्तन नहीं किया है, नारी के सङ्ग में पड़े रहने के कारण विद्वानों की सङ्गति भी आपने नहीं की, यह सोचनीय है ॥११॥ काम के वेग को बढ़ाने वाली स्त्रियाँ सबको प्रिय होती हैं । किन्तु वे वायु के वेग से चञ्चल बने हुए केले के पत्ते के समान अत्यन्त चञ्चल होती हैं ॥१२॥ जल के तरङ्ग के समान चञ्चल, तथा भौहों की कुटिलता से मनोहर बने हुए उनका मुहूर्त भर ही सेवन किया जा सकता है । ऐसी कामुकता से कामुक व्यक्ति की कभी तृप्ति नहीं होती है ॥१३॥ जिसके मन को स्त्रियों ने अपने वश में कर लिया है, वह मनुष्य विद्या, तपस्या, त्याग, नीति तथा एकान्त में बैठकर चिन्तन करना छोड़ देता है ॥१४॥ मनुष्य का एकमात्र मित्र धर्म है, वह मृत्यु के पश्चात् भी उसके साथ जाता है । उसको छोड़कर सारी चीजें शरीर के ही साथ विनष्ट हो जाती हैं॥१५॥ जिस तरह चीटियाँ वल्मीक का ही सञ्च करती हैं, उसी तरह मनुष्य को चाहिये कि वह धीरे-धीरे धर्म का सञ्चय करे । धर्म की ही सहायता से मनुष्य भयङ्कर संसार रूपी अन्धकार को पार कर पाता है ॥१६॥ राजन् ! क्या आप नहीं जानते हैं कि मनुष्य का जीवन वायु से चञ्चल बनाये गये जल की लहरियों के समान अत्यन्त चञ्चल हैं ?॥१७॥ नम्रता ही जिनका रत्न निर्मित मुकुट है, सत्य तथा धर्म ही जिनके दोनों कानों के कुण्डल हैं, त्याग ही जिनके हाथों का कङ्कण है, उनके लिए जड़ अलङ्कारों का क्या महत्त्व हैं?॥१८॥ मरे हुए शरीर को काष्ठ और मिट्टी के समान पृथिवी पर ही छोड़कर सभी बान्धव चले जाते

गम्यमानेषु सर्वेषु क्षीयमाणे तथाऽऽयुषि । जीविते लुप्यमाने च किमुत्थाय न धावसि ॥२०॥
कुटुम्बं पुत्रदारादिशरीरं द्रव्यसञ्चयः । पारक्यमध्रुवं किं तु स्वीये सुकृतदुष्कृते ॥२१॥
यदा सर्वं परित्यज्य गन्तव्यमवशेन ते। अनर्थे किं प्रसक्तस्त्वं स्वधर्मं नानुतिष्ठसि ॥२२॥
अविश्राममनालम्बमपाथेयमदेशिकम् । मृतः कान्तारमध्वानं कथमेको गमिष्यति॥२३॥
नहि त्वां प्रस्थितं कश्चित्पृष्ठतोऽनु गमिष्यति ।
सुकृतं दुष्कृतं च त्वां यास्यन्तमनुयास्यति ॥२४॥
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म कुलदेशोचितं हितम्। धर्ममूलं निषेवस्व सदाचारमतन्द्रितः ॥२५॥
परित्यजेदर्थकाम स्यातां चेद्धर्मवर्जितौ । धर्मेण प्राप्यते सर्वमर्थकमादिकं सुखम् ॥२६॥
इन्द्रियाणां जयं योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम्। जितेन्द्रियो हि शक्नोति पथि स्थापयितुं प्रजाः॥२७॥
अतिप्रगल्भललनाकटाक्षचपलाश्रियः । विनये प्रणिधानेन चिरं तिष्ठन्ति भूभुजाम् ॥२८॥
कामदर्पादिशीलनामविचारितकारिणाम् । आयुषा सह नश्यन्ति सम्पदो मूढचेतसाम् ॥२९॥
भूमिभिर्नष्टदृष्टाभिर्नृत्यन्ते न महाशयाः। नागताभिर्नयाताभिर्नदीभिश्चीयतेऽम्बुधिः ॥३०॥
व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते । व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्गाम्यव्यसनी नृपः ॥३१॥
व्यसनानि दुरन्तानि कामजानि विशेषतः । त्यज तस्मान्महाराजा कामन्धर्मविरोधिनम् ॥३२॥
जडानामविवेकानामसुराणां दुरात्मनाम्। भाग्यभोग्यानि राज्यानि सन्त्यनीतिमतामपि॥३३॥

हुए पुण्य और पाप साथ रहते हैं ॥१८-२१॥ जब आपको सब कुछ छोड़कर विवश होकर जाना ही है तो आप धर्म का अनुष्ठान क्यों नहीं करते हैं, अनर्थ में ही क्यों लगे हुए हैं ?॥२२॥ बिना विश्राम किए हुए, बिना किसी आधार के, पाथेय रहित तथा उपदेशक से रहित आप मृत्यु के पश्चात् अरण्यमय मार्ग पर अकेले कैसे जायेंगे ?॥२३॥ आपके प्रस्थान करने पर कोई भी आपके पीछे नहीं जायेगा । आपके पीछे-पीछे तो केवल आपके पुण्य और पाप ही जायेंगे ॥२४॥ अब आप बिना किसी आलस्य के श्रुतियों तथा स्मृतियों में वर्णित कर्मो तथा अपने वंश और देश के अनुकूल कल्याणकारी धार्मिक साधनों का अनुष्ठान करें और सदाचार का पालन करें ॥२५॥ धर्म के विपरीत अर्थ और काम का परित्याग कर देना चाहिए। धर्म से ही अर्थ, काम तथा सुख आदि सबों की प्राप्ति हो जाती है ॥२६॥ इन्द्रियों को अपने वश में करना चाहिए और योग का पालन रात दिन करते रहना चाहिए । जो जितेन्द्रिय होता है, वही अपनी प्रजा को सन्मार्ग पर चला सकता है ॥२७॥ लक्ष्मी अत्यन्त चञ्चल कामिनी के कटाक्ष के समान होती है । उसमें नम्रता का आधान करने से ही राजाओं की लक्ष्मी चिरकाल तक बनी रहती हैं ॥२८॥ काम तथा दर्प (अभिमान) ही जिनका स्वभाव बन गया है, जो बिना विचार किए ही कार्यो को करते रहते हैं ऐसे अज्ञानियों की लक्ष्मी आयु के साथ ही विनष्ट हो जाती है ॥२९॥ जिनको नष्ट होते देखा जा सकता है, उन ऐश्वर्यों के साथ महापुरुष नहीं नाचते रहते हैं । सागर आने और जाने वाली नदियों के साथ नहीं आता जाता है ॥३०॥ व्यसन और मृत्यु दोनों का कष्ट कष्टकारक बतलाया गया है । व्यसनी राजा का सदा पतन ही होता रहता है और जो राजा व्यसनी नहीं होता है, वह स्वर्ग में जाता है ॥३१॥ विशेष रूप से कामजन्य व्यसन अत्यन्त भयङ्कर हैं अतएव हे महाराज ! धर्म विरोधी काम का आप परित्याग कर दें॥३२॥ जड़, विवेकहीन, पापी तथा अनीतिकारी, असुरों को भी भाग्य भोग्य पदार्थ तथा राज्य की प्राप्ति

नैवस्थिराणि तानीह दुरितैरनुसेवितैः। विलीयन्ते यथा वह्निसंसर्गेणेन्धनानि च ॥३४॥
गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा ।
न विचारपरं चेतो यस्यासौ मृत एव सः ॥३५॥
उपदेष्टा श्रुतवतां गुरुरित्युच्यते यतः। किं तु त्वासन्नविपदामुपदेशाः शिरोरुहाः ॥३६॥
विषयज्वरमुत्सृज्य समया स्वस्थया धिया । युत्तया च व्यवहारिण्या स्वार्थः प्राज्ञेन साध्यते॥३७॥
अशुभाच्चलितं याति शुभं तस्मादपीतरम् । जन्तोश्चित्तञ्चशिशुवत्तस्मात्तच्चालयेद्बलात् ॥३८॥
उपधार्यमतिं राजन्वृद्धानां धर्मदर्शिनाम्। नियच्छेत्परया बुद्ध्या चित्तमुत्पथगामि यत् ॥३९॥
न धनान्युपकुर्वन्ति न मित्राणि न बान्धवाः ।
न हस्तापादचलनं न देशान्तरसङ्गतम् ॥४०॥
न कायक्लेशवैधुर्यं न तीर्थायतनादयः । केवलं तन्मनस्कस्य जपेनासाद्यते पदम् ॥४१॥
विषये वर्तमानस्य तस्माच्चित्तस्य संयमे। यत्नं कुर्याद् बुधो राजन्ध्रुवं यन्तेव वाजिनाम्॥४२॥
तत्तत्कुर्याद्यतो राजन्भवता येन वञ्चितः । मुनिभिश्च फलैस्तैस्तैरतोऽप्याकर्णयाधुना ॥४३॥
मुह्यताऽपि मनुष्येण प्रष्टव्याःसुहृदो बुधाः । ते च पृष्टा यथा ब्रूयुस्तत्कर्त्तव्यं यथोचितम् ॥४४॥
सर्वोपायेन कर्त्तव्यो निग्रहः कामकोपयोः। श्रेयोऽर्थिना यतस्तौहि श्रेयोघातार्थमुद्यतौ ॥४५॥
कामोहि बलवान्राजञ्छरीरस्थो रिपुर्महान्। न तस्य वशागो भूयाज्जनःश्रयोऽभिलाषुकः ॥४६॥

होती है ॥३३॥ किन्तु वे पाप पूर्वक उनका सेवन करने के कारण बहुत समय तक वे नहीं टिकते हैं। जिस तरह अग्नि के सम्पर्क से इन्धन विनष्ट हो जाता है, वैसे ही वे विनष्ट हो जाते हैं ॥३४॥ चलते समय कहीं ठहर कर जागते समय तथा सोते समय जो मनुष्य विचार नहीं करता है, वह मरा हुआ ही है ॥३५॥ जो श्रवण करता है, उसको उपदेश करने वाला गुरु कहलाता है, किन्तु जिन लोगों के पास विपत्ति आने वाली होती है, उन लोगों के लिए उपदेश शिर के बाल के समान हैं ॥३६॥ ज्ञानी पुरुष विषयोपभोग रूपी ज्वर का परित्याग करके समयानुकूल अपनी स्वस्थ बुद्धि से तथा व्यवहारनुकूल युक्ति के द्वारा अपने स्वार्थ की सिद्धि करते हैं ॥३७॥ पाप के द्वारा चञ्चल बना हुआ शुभ समाप्त हो जाता है उसके कारण दूसरी वस्तुएँ भी चली जाती हैं। मनुष्य का मन बालक के समान है, अतएव उसको बलपूर्वक रोकना चाहिए ॥३८॥ हे राजन् ! धर्मज्ञ वृद्ध पुरुषों की बुद्धि को अपनाकर उस श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा उन्मार्गगामिनी बुद्धि को नियन्त्रित करना चाहिए ॥३९॥ राजन् ! उस परम पद की प्राप्ति में धन मित्र, बान्धव, हाथ पैर का चलते रहना, देशान्तर की सङ्गति, निरोग शरीर तथा तीर्थों में विद्यमान गृह इन सबों में से कोई भी काम नहीं आता है, उसकी प्राप्ति तो केवल उस परमात्मा में मन लगाकर जप करने से ही होती है ॥४०-४१॥ राजन् ! जिस तरह से सारथि घोड़ों को अपने वश में रखता है, उसी तरह से विषयासक्त मन को संयमित करने का प्रयास करना चाहिए ॥४२॥ राजन् ! आप जिससे वञ्चित हैं, उन सभी कार्यों को करें, मुनियों ने जिन कार्यों के फलों का वर्णन किया है उन सबों को आप सुनें ॥४३॥ अज्ञानी मनुष्यों को भी अपने सुहृद विद्वानों से पूछना चाहिए और पूछने पर वे जो बतलावें उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए ॥४४॥ कल्याण कामी पुरुष को हर प्रकार के उपायों के द्वारा काम तथा क्रोध का नियन्तित्र करना चाहिए, क्योंकि काम और क्रोध कल्याण को ही विनष्ट करने के लिए तैयार रहते

य: कामो देवदेवेन पुरा तेनैव शूलिना। ललाटवह्निना दग्ध: कृतोऽनङ्ग इति स्थिति: ॥४७॥
यदा वाञ्छत्यसो नारीं निहन्तुं स मनोभव: ।
पुसां कायं समाश्रित्य स्वरूपं दर्शयत्यसौ ॥४८॥
चिन्त्यमानस्य वै पुंसो नार्यारूपं पुन: पुन:। तमदृष्टं समाश्रित्य नरमुन्मादयत्यसौ ॥४९॥
तथैवोन्मादयत्येष योषिदङ्गं न संशय: । स्मर: संस्मरणान्नाम जातं तस्य ततो नृप ! ॥५०॥
यादृस्तादृशो रङ्गो वस्त्रं वीरसमाश्रयेत्। आत्मतेज:प्रकाशात्सोऽश्रुधारापेयतां व्रजेत् ॥५१॥
नार्यारूपं समारुह्य धीरं तमपि मोहयेत्। पुरुषं तु समाश्रित्य द्रावयत्येषयोषितम् ॥५२॥
स एव सहजो राजन्नशरीरीशरीरग:। शरीरकस्यापि विभो कथं पापं विधीयते ॥५३॥
यं प्राप्यातिपवित्राणि पञ्चगव्यहवींषि च ।
अशुचित्वं क्षणं यान्ति कोऽन्य: स्यादशुचिस्तत: ॥५४॥
जिघ्रन्नपि स्वदुर्गन्धं पश्यन्नपि मलं स्वकम् ।
न विरज्यति लोकोऽयं पीडयन्नपि नासिकाम् ॥५५॥
हृद्यान्नमन्नपानानि यं प्राप्य सुरभीणि च ।
अशुचित्वं प्रयान्त्याशु कोऽन्य: स्यादशुचिस्तत: ॥५६॥
यस्योदरगतं चान्नं स्वं हि रूपं परित्यजेत्। कृमिमिश्रममेध्यत्वं शीघ्रं प्रज्ञायते किल॥५७॥
तथापि देहे भूपाल ! निजरूपं परित्यजेत्। शुनतां याति वै पश्चात्कृमिदुर्गन्धिसङ्कुले॥५८॥

हैं॥४५॥ राजन् ! काम शरीर में ही रहने वाला महावलवान् शत्रु है; अतएव कल्याण चाहने वाले पुरुष को काम के वशवर्ती नहीं होना चाहिए ॥४६॥ उस काम को देवश्रेष्ठ भगवान् शिव ने अपने ललाट में स्थित अग्नि से भस्म कर दिया तो वह अनङ्ग (शरीर रहित) हो गया ॥४७॥ वह काम जब किसी नारी का वध करना चाहता है तो वह पुरुषों के शरीर में स्थित होकर नारी को अपना रूप दिखाता है ॥४८॥ वह पुरुष उस नारी के रूप का बार-बार चिन्तन करने लगता है और उस आदृष्ट नर को काम उन्मत्त बना देता है ॥४९॥ उसी तरह से काम नारी को भी उन्मत्त बना देता है । राजन् ! स्मरण करने मात्र से उद्रिक्त होने के कारण काम का नाम स्मर है ॥५०॥ वह जैसे तैसे वस्त्र को धारण करता है और वह अपने तेज के प्रकाश से आँसुओं की धारा का पान करने लगता है ॥५१॥ उसी तरह काम नारी के रूप को अपना आश्रय बनाकर पुरुष को भी मोहित करता है और पुरुष को अपना आश्रय बनाकर वह उसको नारी के पास पहुँचा देता है ॥५२॥ राजन् ! वह काम शरीर रहित है, किन्तु स्वाभाविक रूप से शरीर में रहकर भी शरीर में व्यापक रहने वाली आत्मा को भी पापी बना देता है ॥५३॥ जिसके सम्पर्क मात्र से अति पवित्र पञ्चगव्य तथा हविष्य भी क्षण भर में अपवित्र हो जाते हैं, उससे बढ़कर दूसरा कौन अपवित्र हो सकता है ?॥५४॥ अपनी दुर्गन्धि को सूंघ कर तथा अपने मल को देखकर तथा अपनी नाक को दबाने वाला यह संसार जिससे उदासीन नहीं होता है ॥५५॥ जिसको प्राप्त करके हृद्य तथा सुगन्धित अन्न एवं जल शीघ्र ही अपवित्र हो जाते हैं, उस शरीर से बढ़कर कौन अपवित्र हो सकता है ॥५६॥ जिसके पेट में जाकर अन्न अपने रूप को त्याग देता है और वह शीघ्र ही कृमि से युक्त तथा अपवित्र हो जाता है॥५७॥ हे राजन् ! शरीर में जाकर वह अन्न अपना रूप त्याग देता है । उसके बाद कृमि तथा दुर्गन्धि

जायन्ते तत्र वै यूकाः कृमयो वा न संशयः ।
स कृमिःकुरुते स्फोटंकण्डूश्चपरिदारुणः ॥५९॥
व्यथामुत्पादयेद्भूय सर्वाङ्गं परिचालयेत् । नखाग्रैर्घृष्यमाणा साकण्डूःशान्ता प्रजायते ॥६०॥
तद्वत्सुखं भवत्येव सुरतस्य न संशयः । भुञ्जत्येवं रसान्मर्त्यः सुभक्षान्पिबते पुनः ॥६१॥
तत्रस्थं पचते वह्निरपाने पातयेन्मलम् । सारभूतो रसस्तत्र उद्रिक्तस्तु प्रजायते ॥६२॥
निर्मलः शुद्धवीर्यस्तु ब्रह्मस्थानं प्रयाति च । आकृष्टः स समानेन नीतस्तेनापि वायुना॥६३॥
स्थानं न लभते वीर्यं चञ्चलत्वेन वर्तते। प्राणिनां हि कपालेषु कृमयः सन्ति पञ्चवै ॥६४॥
द्वावेतौ कर्णमूले तु नेत्रस्थाने ततः पुनः । कनिष्ठाङ्गुलिमानेन रक्तपुच्छाश्च भूपते ! ॥६५॥
नवनीतस्य वर्णेन कृष्णपुच्छा न संशयः । तेषां नामानि भद्रं ते मत्तो निगदतः शृणु ॥६६॥
पिङ्गली शृङ्गली नाम द्वौ कृमी कर्णमूलयोः ।
शृङ्गली जङ्गली चान्यौ नेत्रयोरन्तरस्थितौ ॥६७॥
कृमीणां शतपञ्चाशत्तादृग्भूता न संशयः । ललाटान्तः स्थिताः सर्वे राजिकायाः प्रमाणतः॥६८॥
कपालरोगिणः सर्वे विकुर्वन्ति न संशयः। अन्यमेवं प्रवक्ष्यामि प्राजापत्यो महाकृमिः ॥६९॥
स तण्डुलप्रमाणेन तद्वद्वर्णेन संशयः। केशद्वयं मुखं तस्य विद्यते शृणु भूपते ! ॥७०॥
प्राणिनां संक्षया बुद्धिस्तत्क्षणाद्धि न संशयः ।
स्वस्थाने संस्थितस्यापि प्राजापत्यस्य वै मुखे ॥७१॥
तद्वीर्यं रसरूपेण पतते नात्र संशयः। सुखेन पिबते वीर्यं तेन मत्तः प्रजायते ॥७२॥

से भरा हुआ मल बन जाता है ॥५८॥ उसमें लीख और कृमि उत्पन्न हो जाते हैं । वह कृमि घाव बना देता है और उससे भयङ्कर खुजली उत्पन्न हो जाती है ॥५९॥ उसके कारण बहुत अधिक कष्ट होता है। वह सारे अङ्गों को चञ्चल बना देता है । नख के अग्रभाग से खुजलाने पर वह खुजली शान्त होती है॥६०॥ उस खुजली के खुजलाते समय जो क्षण भर का सुख होता है उसी तरह का सुख सुरत से होता है । मनुष्य उसी प्रकार के रस (सुख) का यथेष्ट मात्र में उपयोग करता है ॥६१॥ शरीर में विद्यमान अग्नि उसको (अन्न को) पकाती है और मल को अपान वायु में डाल देती है । अन्न का जो सार भाग निकलता है वह शुद्ध एवं निर्मल वीर्य बन जाता है और वह ब्रह्म के स्थान में चला जाता है । समान वायु ही उसको ले जाने और ले आने का काम करती है ॥६२-६३॥ वह चञ्चल वीर्य अपने स्थान को नहीं प्राप्त करता है । प्राणियों के कपाल में पाञ्च कीड़े होते हैं ॥६४॥ दो कीड़े कानो के मूल भाग में रहते हैं तथा नेत्रों के स्थान में होते हैं । उनकी लम्बाई कनिष्ठा अङ्गुलि के बराबर होती है तथा उनकी पूंछ लाल होती है॥६५॥ जिन कृमियों का वर्ण नवनीत के समान होता है, उनकी पूंछ काली होती है । उन सबों का नाम बतलाता हूँ उसे आप सुनें ॥६६॥ कर्णमूल में रहने वाले कृमियों के नाम हैं पिङ्गली और शृङ्गली नेत्रों के स्थान में रहने वाले कृमियों के नाम हैं शृङ्गली और जङ्गली ॥६७॥ ललाट के भी भीतर राई के समान छोटे-छोटे एक सौ पचास कीड़े रहते हैं ॥६८॥ वे सब कपाल का रोगी मनुष्य को बनाने का काम करते हैं । इस तरह से दूसरा प्राजापत्य कृमि होता है । वह बड़ा कृमि है ॥६९॥ वह चावल के बराबर तथा चावल के ही रङ्ग का होता है । उसके मुख में दो केश होते हैं ॥७०॥ अपने स्थान में स्थित भी प्राजापत्य

तालुस्थानं प्रभेद्यैव चञ्चलत्वेन वर्त्तते। इडा च पिङ्गलानाडी सुषुम्ना तत्र संस्थिताः ॥७३॥
स्वबलेनापि तस्यैव कम्पिता नाडिका क्षणम् ।
कामकण्डूर्भवेद्राजन्सर्वेषां प्राणिनां किल ॥७४॥
नरस्य स्फुटते लिङ्गं नार्या योनिश्च भूपते । स्त्रीनरौ च प्रमत्तौ तौ गच्छतः सङ्गमं ततः॥७५॥
कायेन कायं सङ्घृष्य मैथुनेन हि जायते । क्षणमात्रं सुखं तत्र पुनः कण्डूश्च तादृशी ॥७६॥
सर्वत्र दृश्यते वीर भाव एवं विधः किल। विरसः परिपाकोऽयं विषमस्य न संशयः ॥७७॥
धर्म एवं पुनः श्रेयान्विधिना समनुष्ठितः। धैर्यमालम्ब्य च ततो धर्ममेव समाचर॥७८॥
श्वास एव चपलः क्षणमध्ये यो गतागतशतानि विधत्ते ।
जीवितं तनुभृतां तदधीनं कः समाचरति धर्मबिलम्बम् ॥७९॥
दशमीमपि यातस्य चेतो नाद्यापि भूपते। विषयेभ्यो निषिद्धेभ्यो हाहानविरमेच्चलम् ॥८०॥
न जातु कामःकामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णावर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥८१॥
पुंश्चल्यापहृतं चित्तं कश्चान्यो मोचितुं क्षमः। आत्मारामेश्वरमृते भगवन्तं च माधवम् ॥८२॥
तस्मात्सर्वं निष्फलत्वं प्रयातं कामकश्मलात् ।
वयस्तेऽप्यधुना भूप ! समाचर हितं निजम् ॥८३॥
वदाम्यहं तव नृप ! हितं सर्वोत्तमोत्तमम्। पुरोहितो यतस्तेऽहं सदसत्कर्मभागापि॥८४॥

के मुख में वह सुरत जन्य वीर्य जब गिरता है, तो उसको वह सुख पूर्वक पीकर मत्त हो जाता है । उसी समय प्राणियो की नाश की बुद्धि उत्पन्न हो जाती है ॥७१-७२॥ चञ्चल होने के कारण वह वीर्य तालु को छेद देता है । वहीं पर इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना नाम की नाड़ियाँ रहती हैं ॥७३॥ वह अपने बल से उस नाड़ी को कँपा देती है, हे राजन् ! उसी के कारण सभी प्राणियों की काम की खुजली होती है॥७४॥ राजन् ! उसके कारण पुरुष के लिङ्ग में तथा नारी की योनि में स्फोट होने लगता है । उससे स्त्री और पुरुष दोनों प्रमत्त होकर एक दूसरे से सङ्गम करते हैं ॥७५॥ सङ्गम के समय शरीर के शरीर से रगड़ने से क्षण भर के लिए सुख की प्राप्ति होती है और उसके बाद फिर उसी तरह से खुजली होने लगती है ॥७६॥ हे वीर ! सर्वत्र इसी प्रकार का भाव देखा जाता है, यह वस्तु का विरस परिणाम हैं ॥७७॥ अतएव विधिपूर्वक पालन किया गया धर्म ही कल्याणकारी है, अतएव आप धैर्यपूर्वक धर्म का ही अनुष्ठान करें ॥ ७८॥ एक क्षण में सैकड़ों बार आने-जाने वाला श्वास अत्यन्त चञ्चल है । शरीर धारियों का जीवन श्वास के ही अधीन है, अतएव धर्म के आचरण में क्यों विलम्ब किया जाय ?॥७९॥ इस दश को प्राप्त हो जाने पर भी अन्त:करण निषिद्ध विषयों से पराङ्मुख नहीं होता है, यह बड़े कष्ट का विषय है ॥८०॥ काम्य वस्तुओं का भोग करने से कभी भी कामनाएँ शान्त नहीं होती है, अपितु जिस तरह हविष्य को प्राप्त करके अग्नि और प्रदीप्त हो जाती है, उसी तरह से विषयोपभोग के द्वारा भोग की इच्छाएँ बढ़ती ही जाती हैं ॥८१॥ जिसका चित्त कामिनियों के वश में हो गया है, उसके चित्त में आत्मा राम परमात्मा श्रीभगवान् को छोड़कर कौन उन सबों से अलग कर सकता है ?॥८२॥ अतएव राजन् ! काम रूपी दोष के द्वारा आपका आज तक का जीवन व्यर्थ हो गया है अब भी तो आप आत्मकल्याण करें ॥८३॥ राजन् ! मैं आपका पुरोहित हूँ और आपके पुण्य-पाप का भागीदार भी हूँ अतएव मैं आपको सर्वोत्तम कल्याण की बात

एकतः सर्वपुण्यानि पापनाशाय पापिनाम् । एकतो माधवो मासो माधवस्य प्रियःसदा ॥८५॥
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । महान्ति पातकान्येव कीर्तितानि मुनीश्वरैः ॥८६॥
तत्र यन्मनसा काये व्रतेनापि कृतं नरैः । नाशयेन्माधवो मासः सर्वं पापतमो महान् ॥८७॥
दिवाकर इव ध्वान्तं नाशयेन्नृप सर्वशः । तथा श्रीमाधवो मासस्तमाचर विधानतः ॥८८॥
आजन्मनोऽपि विहितानि महान्ति राजन्घोराणि तानि दुरितानि विहाय मर्त्याः ।
वैशाखमासविहिताचरणप्रभावपुण्येन ते हरिपुरं मुदिता लभन्ते ॥८९॥
यद्येकमपि वैशाखमाचरन्ति विधानतः । भावतः पापिनोऽप्यन्ते प्रयान्ति हरिमन्दिरम् ॥९०॥
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र ! मासेऽस्मिन्माधवेऽधुना ।
प्रातः स्नात्वा विधानेन समर्चय मधुद्विषम् ॥९१॥
तण्डुलस्य यथा चर्म यथा ताम्रस्य कालिमा ।
नश्यन्ति क्रियया वीर पुरुषस्यतथामलः ॥९२॥
जीवस्य तण्डुलस्येव सहजोऽपि मलो महान् ।
नश्यत्येव न सन्देहस्तस्मात्कर्मोदितं कुरु ॥९३॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वैशाखमाहात्म्ये नवनवतितमोऽध्यायः ॥९९॥

* * *

बतलाता हूँ ॥८४॥ पापियों के पाप का नाश करने के लिए एक तरफ तो सारे पुण्य कर्म को रखा जाय और दूसरी ओर भगवान् लक्ष्मीपति को प्रिय वैशाख का महीना तो दोनों बराबर होंगे ॥८५॥ ब्रह्महत्या, मदिरा का पान, चोरी, गुरुपत्नी के साथ संयोग जन्य पाप इन सबों को मुनीश्वरों ने महान् पाप बतलाया है ॥८६॥ इस महीने में मनुष्य मन तथा शरीर से जो व्रत करता है उसके सम्पूर्ण पापों को वैशाख का महीना विनष्ट कर देता है ॥८७॥ जिस तरह सूर्य अन्धकर का नाश कर देते हैं उसी तरह वैशाख का महीना पाप का नाश कर देता है; अतएव उसके नियमों का आप पालन करें ॥८८॥ राजन् ! मनुष्य जीवन भर जिस पापों को किए रहता है उन समस्त महान् तथा भयङ्कर पापों को विनष्ट करके मनुष्य वैशाख मास के नियमों के अनुष्ठान के प्रभाव जन्य पुण्य के द्वारा श्रीहरि के लोक में चला जाता है॥८९॥ यदि मनुष्य एक बार भी वैशाख मास के नियमों का विधिपूर्वक पालन करता है तो उसके प्रभाव से पापी पुरुष भी श्रीहरि के लोक में चले जाते हैं ॥९०॥ अतएव राजेन्द्र ! आप भी इस वैशाख के महीने में प्रातःकाल स्नान करके विधिपूर्वक भगवान् मधुसूदन की अर्चना करें ॥९१॥ जैसे चावल की भूसी और ताम्बे की कालिमा कर्म के द्वारा नष्ट होते हैं उसी तरह पुरुष के पाप भी कर्मयोग के द्वारा नष्ट हो जाते हैं ॥९२॥ चावल के समान जीव का स्वाभाविक तथा महान् पाप भी कर्म से नष्ट होता है अतएव आप शास्त्रोदित कर्म करें ॥९३॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के वैशाख माहात्म्यान्तर्गत निन्यानबेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९९।।

* * *

सौवाँ अध्याय

श्रीराजोवाच

क्षीरोदजलतुल्याभिःशीतलामलदृष्टिभिः । तथ्याभिश्च चित्राभिस्त्वया गीर्भिःप्रबोधितः ॥१॥
असागरोत्थं पीयूषमद्रव्यं व्यसनौषधम्। त्वयाऽहं पायितः सौम्य भवरोगनिवारणम्॥२॥
हर्षप्रदो नृणां पापहानिकृज्जीवनौषधम्। जरामृत्युहरो विप्र सद्भिः किल समागमः ॥३॥
यानि यानि दुरापानि वाञ्छितानि महीतले। प्राप्यन्ते तानि तान्येव साधूनामेव सङ्गमात् ॥४॥
यःस्नातःपापहरया साधुसङ्गमगङ्गया। किं तस्य दानैः किंतीर्थैः किंतपोभिः किमध्वरैः॥५॥

निमज्ज्योन्मज्जतां नृणां भवाब्धौ परमायनम् ।
सन्तो धर्मविदः शान्ता नौ दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥६॥
यो मे भावः पुरा ह्यासीत्कामैकसुखलालसः।
दर्शनाद्वचनात्तेऽद्य विपरीतोऽभवद्विभो ॥७॥

एक जन्मसुखस्यार्थे सहस्राणि विलोपयेत्। प्राज्ञो जन्मसहस्राणि सञ्चिनोत्येकजन्मना॥८॥
हाहा कामरसास्वाद सुखलालसचेतसा। मया मूढेन न कृतं किञ्चिदात्महितं द्विज ॥९॥

अहो मे मनसो मोहो येनात्मा योषितां कृते ।
पातितो व्यसने घोरे दुःखोदर्के दुरत्यये ॥१०॥

भगवन्परितुष्टोऽस्मि बोधितो वचनेन ते। उपदेशप्रदानेन मामुद्धर्तुमिहार्हसि॥११॥

कश्यप ब्राह्मण के द्वारा राजा महीधर से वैशाख स्नान करवाना

राजा ने कहा— आपकी क्षीर सागर के जल के समान शीतल तथा निर्मल दृष्टि के द्वारा तथा तथ्यात्मक तथा अद्भुत वाणी के द्वारा मुझे ज्ञान हो गया है ॥१॥ हे सौम्य ! ऐसा अमृत जो समुद्र से नहीं निकला तथा व्यसन रूपी रोग के लिए द्रव्य व्यतिरिक्त औषध के समान इस संसार रूपी रोग को विनष्ट करने वाले उपदेश से आपने मुझे पवित्र बना दिया है ॥२॥ हे विप्र ! सज्जनों का समागम मनुष्यों को हर्ष प्रदान करने वाला, पापों को विनष्ट करने वाला, जरा और मृत्यु को विनष्ट करने वाला तथा जीवन के लिए औषध के समान होता है ॥३॥ जिन वस्तुओं को प्राप्त करना कठिन होता है तथा भूलोक में जो प्राप्त करने योग्य हैं, वे सारी वस्तुएँ सज्जन पुरुषों की सङ्गति से प्राप्त होती हैं ॥४॥ जो मनुष्य पापों को विनष्ट करने वाली सज्जन पुरुषों की सङ्गति रूपी गङ्गा में स्नान कर लेता है उसको दान, तीर्थाटन, तपस्या एवं यज्ञ करने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥५॥ संसार रूपी सागर में डूबते तथा उतराते हुए मनुष्यों के लिए सर्वोत्तम आश्रय स्वरूप शान्त तथा धर्मज्ञ सन्त पुरुष सदृढ़ नौका के समान है ॥६॥ पहले जो मेरा केवल काम प्राप्ति की लालसा से युक्त भाव था, वह आपके दर्शन तथा उपदेश के कारण ठीक उसके विपरीत हो गया है ॥७॥ अज्ञानी जीव एक जन्म में सुख प्राप्त करने के लिए अपने हजारों जन्मों को विनष्ट कर देता है और प्राज्ञ पुरुष अपने एक जन्म के द्वारा हजारों जन्मों को सुधार लेते हैं ॥८॥ काम के स्वाद जन्य सुख की लालसा वाले अन्तःकरण को धिक्कार है । हे द्विज ! मैं मूर्ख हूँ इसीलिए मैंने अपना आज तक कोइ भी कल्याण नहीं किया ॥९॥ मेरे मानसिक मोह (अज्ञान) को धिक्कार है जिसके

पुराऽऽचरितपुण्योऽहं भवता बोधितोऽस्मि यत् ।
त्वत्पादरजसा वाऽपि विशेषादपि पावितः ॥१२॥
विधिं माधवमासस्य ब्रूहि मे वदतां वर !। सर्वपापक्षयकरो यस्त्वया परिकीर्तितः॥१३॥
किं दानं तत्र किं स्नानं को देवो नियमास्तु के ।
एतदाचक्ष्व विप्रर्षे दुरितोत्तारणाय मे ॥१४॥

यम उवाच

इत्येवमुक्तो भगवन्कश्यपः स दयानिधिः । प्रोवाच वचनं विप्र धर्म्यं विश्वहितं शुभम् ॥१५॥

कश्यप उवाच

पूर्वापरसमाधानक्षमबुद्ध्या च ते नृप !। पृष्टं प्राज्ञेन वक्तव्यं नाधमे पापमानसे ॥१६॥
पापप्रवृत्तस्य तथा दत्त्वा भूप शुभां मतिम्। विद्यादानफलं सम्यक्प्राप्यते नात्र संशयः॥१७॥
नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ॥१८॥
विदुषामपि शिष्याणां पुत्राणां च क्रियावताम् ।
अपृष्टमपि वक्तव्यं श्रेयः श्रद्धावतां हितम् ॥१९॥
साम्प्रतं शुद्धहृदयो जातस्त्वं वचनान्मम। पुरा चरितपुण्येन केनापि च महीपते ! ॥२०॥
पापावस्थं शरीरं तद्गतं तव ममाश्रयात्। श्रवणाद्धर्मशास्त्रस्य धर्मावस्थं तु तेऽभवत्॥२१॥

कारण मैं स्त्रियों के लिए अपनी आत्मा को अत्यन्त कठिन दुखप्रद भयङ्कर व्यसन में डाल दिया ॥१०॥ हे भगवन् ! मैं आपकी वाणी से सन्तुष्ट हूँ मुझे ज्ञान हो गया है । आप उपदेश के द्वारा मेरा उद्धार करें॥११॥ अपने पूर्वजन्म के पुण्य के फल स्वरूप मुझे आपका उपदेश सुनने को मिला है । विशेष रूप से आपके चरणों की धूलि से मैं पवित्र हो गया हूँ ॥१२॥ हे उपदेशकों में श्रेष्ठ ! आप मुझे वैशाखमास की उस विधि को बतलायें जिसका आपने वर्णन किया है तथा जो पापों का विनाश करने वाली है ॥१३॥ उस मास में कौन दान करें ? कैसे स्नान करे ? उसके देवता कौन हैं ? उसके नियम क्या हैं ? हे विप्रर्षे! आप इन सारी बातों को मेरा उद्धार करने के लिए बतलायें ॥१४॥ **यम ने कहा**— इस तरह से कहने पर दयानिधि (दया के खजाना) कश्यप ने संसार का कल्याण करने वाली धर्ममयी वाणी कहा॥१५॥ **कश्यप ने कहा**— राजन् ! आगे तथा पीछे का समाधान करने में समर्थ बुद्धि वाले प्राज्ञ पुरुष आपके द्वारा पूछे जाने के कारण मैं बतलाता हूँ । पापी तथा अधम पुरुषों को यह नहीं बतलाया जा सकता है॥१६॥ राजन् ! पाप में लगे रहने वाले व्यक्ति को इस प्रकार की शुभ बुद्धि प्रदान करने से उसी फल की प्राप्ति होती है जो फल विद्या दान करने से प्राप्त होती है ॥१७॥ मेधावी पुरुष को चाहिए कि बिना पूछे किसी को उपदेश न दे और न तो अन्याय पूर्वक पूछने वाले को उपदेश दे, उसे लोक में जड़ के समान आचरण करना चाहिए ॥१८॥ विद्वान् शिष्यों, पुत्रों, सत्कर्म करने वालों तथा श्रद्धावान् व्यक्तियों को ही बिना पूछे भी कल्याणकारी बातों को बतलाना चाहिए ॥१९॥ इस समय मेरी वाणी को सुनकर आप शुद्ध हृदय वाले हो गये हैं । राजन् ! यह आपके पूर्वजन्म में किए गये किसी पुण्य विशेष का फल है॥२०॥ मेरे द्वारा कहे गये धर्मशास्त्र को सुनने से पहले जो आपका पापावस्था में अवस्थित शरीर था वह

पापावस्थमधर्माख्यं धर्मज्ञानविवर्जितम्। अपरं सद्व्रतं यद्धि विज्ञेयं तद्धि धार्मिकम् ॥२२॥
धर्माधर्मोपभोगाय तत्तृतीयमतीन्द्रियम्। तत्त्रिभेदं शरीरं हि धर्मविद्भिरिहोच्यते ॥२३॥
यावता धर्मभोगश्च मुक्तिश्चैतत्त्रिभेदकम्। पापावस्थं शरीरं तत्पापसंज्ञं तदुच्यते ॥२४॥
इदानीं गुरुभक्तिं च कुर्वतश्च वचो मम। शृण्वतो धर्मरूपं तु शरीरं ते व्यवस्थितम्॥२५॥
तेनैव शुद्धिरमला जाता धर्मक्रियोचिता। दैवेन देहिनां नाम चेतांसि चरितानि च॥२६॥
शरीराणि च पुष्यन्ति काले काले विपर्ययम् ।
साम्प्रतं भवतश्चेतो नूनं धर्मे प्रवर्तते ॥२७॥
तेन त्वां कारयिष्यामि माधवस्नानमुत्तमम् ॥२८॥

यम उवाच

ततस्तु कारितस्तेन कश्यपेन पुरोधसा। स नृपो माधवे मासि स्नानं दानं च पूजनम् ॥२९॥
यथा दृष्टं पुरा शास्त्रे वैशाखस्नानजं विधिम् ।
स मुनिः प्रत्युवाचासौ भूपाय च यथोदितम् ॥३०॥
श्रावितः स्तोत्रसारं च पाठितो हरिमेधसः। श्रुते यस्मिन्नधीते च स सम्यक्फलमवाप्नुयात्॥३१॥
स कारितस्तेन विशुद्धभावो राजाऽपि चक्रे विधिवत्तदानीम् ।
श्रीमधवे मासि विधानमीड्यं ततो यथाऽऽकर्णितमादरेण ॥३२॥
प्रातः स्नानं च पाद्यं च हार्घं च हरिपूजनम् ।
नैवेद्यं भक्तिभावेन चकार स नृपोत्तमः ॥३३॥

अव पुण्यावस्था में अवस्थित हो गया है ॥२१॥ धर्मज्ञान से रहित, अधर्म नामक धर्मज्ञान से रहित जो शरीर है वह पापावस्था है । पापावस्था से भिन्न जो सद्व्रत शरीर है उसे ही धार्मिक शरीर जानना चाहिए॥२२॥ वह अतीन्द्रिय है और धर्म तथा अधर्म दोनों के फल को भोगने वाला होता है । इस तरह धर्मज्ञ पुरुष तीन प्रकार के शरीर को वतलाते हैं ॥२३॥ उसके द्वारा धर्म के फल का भोग किया जाता है तथा मुक्ति भी प्राप्त की जाती है । उस शरीर को पाप शरीर कहते हैं जो पापावस्था में रहता है ॥२४॥ इस समय गुरु की भक्ति करने वाले और मेरी बातों को मानने वाले आप हैं । आपका शरीर धर्मरूप हो गया है ॥२५॥ उसके कारण आपकी धर्मकार्यों को करने योग्य निर्मल शुद्धि हो गयी है । दैव ही शरीरधारियों के अन्तःकरण, चरित तथा शरीर को समयानुसार पोषित करता है तथा उनमें परिवर्तन लाता है । इस समय आपका अन्तःकरण निश्चित रूप से धार्मिक हो गया है ॥२६-२७॥ अतएव मैं आपसे वैशाख स्नान करवाऊँगा ॥२८॥ **यम ने कहा**— उसके पश्चात् उस कश्यप गोत्रीय पुरोहित ने राजा से वैशाख के महीने में स्नान, दान और पूजन करवाया ॥२९॥ पहले जो शास्त्रों में वैशाख स्नान की विधि बतलायी गयी है, उसको मुनि कश्यप ने राजा को ठीक-ठीक बतलाया ॥३०॥ उन्होंने स्तोत्रों के सार स्वरूप पाप प्रशमन स्तोत्र को सुनाया तथा भगवद् भक्ति करने वाले राजा से उसको पढ़वाया । उस स्तोत्र को सुनने तथा पढ़ने से ही वैशाख स्नान के पूर्ण फल की प्राप्ति होती है ॥३१॥ उन ब्राह्मण ने राजा को विशुद्धभाव वाला बना दिया और उस समय राजा ने उसका अनुष्ठान किया । उसके बाद राजा ने आदर पूर्वक वैशाख मास के वन्दनीय माहात्म्य का श्रवण किया ॥३२॥ राजा ने भक्तिभाव से पाद्य, अर्ध, आदि पूर्वक श्रीहरि

दानं यथा नियमपालनमादरेण वैशाखमासि विदधाति विधानमेवम् ।
यो भक्तितोऽन्वहमसौ प्रतिवर्षमेवं कृत्वा प्रयाति हरिधाम महीसुराग्रयः ॥३४॥
अथेतरेषु मासेषु कामिनीकुचकेलिवान् । भोगैकलालसो भूपो भवत्येवं यथारुचि ॥३५॥
न धर्मनियमं राजकार्येषु न विचारणम् । करोति कामवशगो हित्वा मासं समाधवम् ॥३६॥
महतामपि विप्राग्रय ! दुर्निवार्यो मनोभवः । शरीरसहजो नूनमनादिर्वासनाक्रमः ॥३७॥
केशकज्ज्लशालिन्यो दुःस्पर्शालोचनप्रियाः । यस्मादग्निशिखा नार्यो दहन्ति तृणवन्नरम्॥३८॥
घोरः शत्रुः शरीरस्थःपुंसां कामो यथोचितम् ।
मोहधूममयः पापो न केषामान्ध्यकारकः ॥३९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये शततमोऽध्यायः ॥१००॥

* * *

एक सौ एकवाँ अध्याय

यम उवाच

अथ कालकटाक्षेण लक्षितो नृपतिस्तदा । मृतोऽतिरतिसेवोत्थक्षयक्षीणकलेवरः ॥१॥
नीयमानो यमगणैस्ताड्यमानो मुहुर्मुहुः । क्रन्दमानो महारावान्सस्मरन्निजपातकम्॥२॥

का पूजन किया तथा नैवेद्य समर्पित किया ॥३३॥ वैशाख के महीने में जो आदर पूर्वक दान करता है तथा नियन का पालन करते है इस विधि को प्रतिवर्ष प्रतिदिन विधि पूर्वक करता है, हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! वह श्रीहरि के लोक में जाता है ॥३४॥ उसके बाद वह राजा वैशाख के महीने को छोड़कर दूसरे महीनों में ही कान के वशवर्ती तथा भोगपरायण होकर कामनियों के स्तनों के साथ क्रीडा करता था वह न तो कोई धार्निक कार्य करता है और न राज्य का कार्य देखता था ॥३५-३६॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! महापुरुषों के लिए भी कान का वेग दुर्निवार्य होता है । अनादि वासना के कारण वह शरीर का स्वाभाविक धर्म हैं ॥३७॥ चूँकि केश तथा काजल से अलंकृत नारियाँ स्पर्श करने और देखने के भी योग्य नहीं हैं । आग की लपट के सनान स्त्रियाँ पुरुषों का तृण के समान जला देने का काम करती हैं ॥३८॥ शरीर में ही रहने वाला काम, पुरुषों को भयङ्कर शत्रु हैं । अज्ञान ही उसका धूम है, वह सवों को अन्धा वना देता है ॥३९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के वैशाख माहात्म्य के अन्तर्गत सौवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१००।।

* * *

महीधर तथा देवदूत का सम्वाद

यम ने कहा— इसके वाद समयानुसार राजा की मृत्यु हो गयी उस समय अत्यधिक रति केलि के कारण उसका शरीर क्षीण हो गया था ॥१॥ यमदूत उसको ले जाते हुए वार-वार पीट रहे थे । वह राजा जोर-जोर से चिल्ला रहा था और अपने पापों को याद करता था ॥२॥ उसी समय भगवान् विष्णु के दूत

विष्णुदूतैः समागम्य ताडयित्वा ममानुगान्। धर्मवानयमित्युक्त्वा विमानमथरोपितः ॥३॥
नीतो हरिपुरं भूपः स्तूयमानोऽप्सरोगणैः। प्रातः स्नानेन वैशाखमासस्य क्षीणपातकः ॥४॥
अथ धर्मविहीनोऽयमिति मत्वा च तै पुनः। देवदूतैर्निदेशेन विष्णोर्भूमिपतिस्तदा ॥५॥
अदूरादेव निरयवर्त्मना स समाहितः। स गच्छन्नपि शुश्राव जीवानां क्रन्दतां पुनः ॥६॥
निरये पच्यमानानामारावं विविधं तदा। पापिनां क्वथ्यमानानामाक्रन्दमति दारुणम् ॥७॥

श्रुत्वा विस्मयवान्विप्र ! राजाऽभूदतिदुःखितः ।
प्रोवाच दूताः किमयमाक्रन्दो दारुणः श्रुतः ।
पुनर्न श्रूयते तन्मे कारणं वक्तुमर्हथ ॥८॥

दूता ऊचुः

जन्तवस्त्यक्तमर्यादाः पापास्त्वाचारवर्जिताः। निरयेषु च घोरेषु तामिस्रादिषु पातिताः ॥९॥
कृतपातकिनस्त्वत्र प्राणत्यागादनन्तरम्। याम्यं पन्थानमाश्रित्य दुःखमश्नन्ति दारुणम् ॥१०॥
यमस्य पुरुषैर्घोरैः कृष्यमाणा इतस्ततः। अन्धकारे निपतिता भक्ष्यन्ते ह्यतिदारुणैः॥११॥

श्वभिः शृगालैः क्रव्यादैःकाककङ्कवकादिभिः ।
अग्नितुण्डैर्वृकव्याघ्रैर्भुजगैर्वृश्चिकादिभिः ॥१२॥

अग्निना दह्यमानाश्च तुद्यमानाश्च कण्टकैः। क्रकचैः पाट्यमानाश्च पीड्यमानाश्च तृष्णाया॥१३॥
क्षुधया बाध्यमानाश्च घोरैर्व्याधिगणैस्तथा। पूयशोणितगन्धेन मूर्छ्यमानाः पदे पदे ॥१४॥

क्वथ्यन्ते च क्वचित्तैले ताड्यन्ते मुशलैः क्वचित् ।
आयसीषु प्रपच्यन्ते शिलासु क्वचिदेव च ॥१५॥

आये और उन सबों ने मेरे दूतों को पीटा । विष्णुदूतों ने कहा— यह धार्मिक है और वे विमान पर उस राजा को बैटाकर ॥३॥ उसे श्रीहरि के लोक में ले गये । उस समय अप्सरायें उसकी स्तुति कर रही थीं। वैशाख के महीने में प्रातःस्नान करने के कारण उस राजा के पाप विनष्ट हो गये थे ॥४॥ उसके बाद उस पुण्य हीन जानकर भगवान् विष्णु की आज्ञा से देवदूत उस राजा को नरक के मार्ग के निकट से ले जा रहे थे । जाते समय राजा ने जीवों के रोने की ध्वनि को सुना ॥५-६॥ वह भयङ्कर ध्वनि अनेक प्रकार से नरक में पकाये जा रहे तथा चिल्लाने वाले पापियों की थी ॥७॥ हे विप्र ! राजा विस्मित होकर अत्यन्त दुःखी हो गये । उन्होंने देवदूत से पूछा यह कैसी भयङ्कर रोने की ध्वनि है ? आप इसका कारण बतलायें जिससे कि मुझे यह फिर न सुनना पड़े ॥८॥ **दूतों ने कहा**— जिन मनुष्यों ने मर्यादा तथा सदाचार का त्याग कर दिया है, वे तामस आदि भयङ्कर नरकों में डाल दिये जाते हैं ॥९॥ यहाँ पर मर जाने के पश्चात् पापी जीव यमराज के मार्ग में आकर भयङ्कर दुःख को भोगते हैं ॥१०॥ यम के भयङ्कर दूत उन सबों को इधर उधर घसीटते रहते हैं । अन्धकार में पड़े हुए उन जीवों को दुःखद जीव काटते रहते हैं ॥११॥ कुत्ते, स्यार, मांस भक्षी कौए, कंक तथा बक आदि उन जीवों को नोचते हैं । उन सबों की चोंच अग्नि के समान गर्म होती हैं । वृक, व्याघ्र, सर्प तथा बीछी उन सबों को काटते हैं ॥१२॥ उन सबों को आग में जलाया जाता है, काण्टे चुभाये जाते हैं, वे आरी से चीर दिए जाते हैं और प्यासे रखे जाते हैं ॥१३॥ वे जीव भूख से व्याकुल रहते हैं । वे अनेक प्रकार की व्याधियों से पीड़ित किए जाते हैं । वे सब पीब तथा खून

क्वचिद्वान्तमथाश्नन्ति क्वचित्पूयमसृक् क्वचित् ।
क्वचिद्विष्ठां क्वचिन्मांसं पूतिगन्धिषु दारुणम् ॥१६॥
कृमिभिर्भक्ष्यमाणाश्चवह्नितुण्डैःक्वचित्क्वचित् ।
केशशोणितमांसासृग्वसास्थिनिकरेषु च ॥१७॥
आस्थिताः कुणपाः कीर्णाः कृमिभिर्भक्षिताः स्फुटम् ।
काककङ्कमहागृध्रवदनैर्ध्वंसितेषु च ॥१८॥
शिवदुर्गन्धनीरन्ध्रसङ्कट्टशतकोटिषु । करपात्रशिलापत्रतप्तनिस्तैलकेषु च ॥१९॥
लोहतैलवसास्तम्भकूटशाल्मलसद्मसु । क्षुरकण्टककीलोग्रज्वालास्तम्भविभातिषु ॥२०॥
तप्तं वैतरणीपूयपूरितेषु पृथक्पृथक् । असिपत्रवनोत्कृत्तनरनारीस्तनेषु च ॥२१॥
घोरान्धकारग्रहणदारुणेषु मुहुर्मुहुः। पापच्यमानाः क्रन्दन्तो दारुणैर्विविधैः स्वरैः॥२२॥
कण्ठेषु बद्धपाशाश्च भुजगावेष्टिताः क्वचित् ।
पीड्यमानास्तथा यन्त्रैः कृष्यमाणाश्च जानुभिः ॥२३॥
भग्नपृष्ठशिरोग्रीवाः स्तब्धकण्ठाः सुदारुणाः ।
कूटागारे भ्राम्यमाणाः शरीरैर्यातनाक्षमैः ॥२४॥
पीड्यन्ते पापिनो राजन्क्रन्दमाना विकर्मिणः ।
सहितं विषयास्वादैः क्रन्दनं तैर्विधीयते ॥२५॥
भुज्यते च कृतं पूर्वमेतत्सर्वैश्च जन्तुभिः। परस्त्रीषु कृतः सङ्गः प्रीयते दुःखदो हि सः ॥२६॥

की दुर्गन्ध से बार-बार मूर्छित होते रहते हैं ॥१४॥ कहीं पर वे तेल में खौलायें जाते हैं, कहीं पर मुशल से मारे जाते हैं, कहीं पर लोहे की शिला पर पटक दिए जाते हैं ॥१५॥ कहीं पर वमन किए गये पदार्थ को वे खाते हैं, कहीं पर पीब और खून पीते हैं । कहीं पर विष्ठा खाते हैं, कहीं पर दुर्गन्धि मय सड़े मांसों को खाते हैं ॥१६॥ कहीं-कहीं पर अग्नि के समान चोंच वाले कीड़े उन सबों को काटते रहते हैं। कहीं पर केश, शोणित, मांस, खून, वसा तथा हड्डी के समूह में स्थित तथा बिखरे हुए मूर्दो को कृमि खाते रहते हैं । वहाँ उन सबों को कौए, कंकपक्षी, बड़े-बडे गृध्रों उन सबों को खा रहे थे ॥१७-१८॥ स्यार दुर्गंधि से भरे हुए सैकड़ों करोड़ करपात्र शिलापात्र तेल रहित एवं संतप्त तेलों में लोह तैल, वसा, स्तम्भ समूह, सेमर के गृहों में तलवार, कण्टक, कील तथा उग्र ज्वालामय स्तम्भों की भीतियों पर जीव सताए जा रहे थे ॥१९-२०॥ कहीं पर संतप्त वैतरणी के पीब से भरे हुए अलग-अलग जीव सताये जाते थे। कहीं पर असिपत्र वन में फेंके गये नरों एवं नारियों के स्तन काट दिए गये थे ॥२१॥ घोर अन्धकार युक्त भयङ्कर कटाहों में बार-बार पकाये जाते हुए तथा भयङ्कर शब्द करके वे जीव चिल्लाते थे ॥२२॥ कहीं पर पुरुषों के गले में पाश बाँधा गया था, और उनके शरीर में साँप लिपटे थे । कहीं पर वे यन्त्रों में पेरे जा रहे थे तो कहीं घुटनों के बल घसीटे जा रहे थे ॥२३॥ कहीं पर जिनके पीठ, शिर और गला, टूट गये थे गला दबा दिया गया था ऐसे अत्यन्त भयङ्कर जीव कूटागार में यातना के योग्य शरीर के द्वारा घुमाये जा रहे थे ॥२४॥ दूतों ने कहा राजन् ! बुरे कर्म करने वाले पापियों को पीड़ित किया जा रहा है और वे ही विषयों के स्वाद के साथ चिल्ला रहे हैं ॥२५॥ ये सभी जीव अपने पूर्वकृत कर्मों का फल

मुहुर्तविषयास्वादो जातोऽनेकाब्ददु:खद: । वपुषस्तव राजेन्द्र प्रात: स्नानस्य माधवे ॥२७॥
विधिना पावनस्यैते मरुत: स्पर्शमाप्यतु। लब्धसौख्या: क्षणं जाता महसाप्यायितास्तव ॥२८॥
आक्रन्दरहितास्तेन जातास्ते निरये स्थिता:। नामापि पुण्यशीलानां श्रुतं सौख्याय कीर्तितम्॥२९॥
जायते तद्वपुस्पर्शवायुस्पर्श: सुखावह: ॥३०॥

यम उवाच

इति दूतवच: श्रुत्वा स राजा करुणानिधि: ।
प्रत्युवाच ह तान्दूतान्विष्णोरद्भुतकर्मण: ॥३१॥
कोमलं हृदयं नूनं साधूनां नवनीतवत्। वह्निसन्तापसन्तप्तं तद्यथा द्रवति स्फुटम् ॥३२॥

राजोवाच

नार्तं जन्तुमहं हित्वा पीडितुं गन्तुमुत्सहे। तं पापिष्ठं धिगार्तानामार्तिशक्तो न हन्ति य: ॥३३॥
मदङ्गसङ्गमोच्छिष्टवायुस्पर्शेन ते यदि। जन्तव: सुखिनो जातास्तस्मात्तत्र नयन्तु माम् ॥३४॥
पवित्रयन्ति जननीमवनीमपि ते नरा:। परतापच्छिदो ये तु चन्दना इव चन्दनम् ॥३५॥
परोपकृतये ये तु पीड्यन्ते कृतिनो हि ते । सन्तस्त एव ये लोके परदु:खविदारणा: ॥३६॥
आर्तानामार्तिनाशार्थं प्राणा येषां तृणोपमा:। तैरियं धार्यते भूमिर्नरै: परहितोद्यतै: ॥३७॥
मनसो यत्सुखं नित्यं तत्स्वर्गो नरकोपम: । तस्मात्परसुखेनैव सुखिन: साधव: सदा ॥३८॥
वरं निरयपातोऽत्र वरं प्राणवियोजनम्। न पुन: क्षणमार्तानामार्तिनाशमृते सुखम् ॥३९॥

भोग रहे हैं । इन सबों ने अपनी प्रसन्नता के लिए दूसरों की स्त्रियों के साथ दुखद सम्बन्ध किया था॥२६॥ क्षणभर तक का विषयों का आस्वाद अनेक वर्षों तक के लिए दु:खद हो गया है । हे राजन् ! वैशाख के महीने में प्रात: स्नान से शुद्ध बने आपके शरीर की हवा इन सबों को लग जाने के कारण इन सबों को सुख मिल गया है और तुम्हारे तेज से ये सब पुष्ट हो गये हैं ॥२७-२८॥ इसीलिए नरक में भी इन सबों ने रोना बन्द कर दिया है । पुण्यवान् व्यक्ति के नाम को भी सुन लेने से इन जीवों को सुख मिल जाता है ॥२९॥ उन पुरुषों के शरीर को छूकर आने वाली हवा से भी इन जीवों को सुख मिल जाता है॥३०॥ **यम ने कहा**— इस तरह से दूत की वाणी को सुनकर करुणासागर उस राजा ने अद्भुत कर्म करने वाले भगवान् विष्णु के दूतों से कहा ॥३१॥ सज्जन पुरुषों का हृदय नवनीत के समान कोमल होता है। नवनीत अग्नि के सन्ताप को पाकर जैसे पिघल जाता है, उसी तरह सज्जनों का हृदय भी दूसरों के दु:ख को देखकर करुणाक्रान्त हो जाता है ॥३२॥ **राजा ने कहा**— इन दु:खी जीवों को दु:खी छोड़कर मैं यहाँ से नहीं जाना चाहता हूँ । जो दु:खी जीवों के दुख को दूर करने में समर्थ होकर उसे दूर नहीं करता है वह अत्यन्त पापी हैं, उसको धिक्कार है ॥३३॥ मेरे अङ्ग से सट कर जाने वाली वायु से यदि वे जीव सुखी हो गये हैं तो मुझको उन सबों के सन्निकट ले चलो ॥३४॥ चन्दन के समान जो जीव दूसरों के सन्ताप को दूर करते हैं वे अपनी माता ओर मातृभूमि दोनों को पवित्र बना देते हैं ॥३५॥ जो लोग परोपकार करने के लिए कष्ट सहते हैं वे भाग्यवान् पुरुष हैं । दूसरों के दु:ख को दूर करने वाले लोग ही सन्त हैं ॥३६॥ दुखियों के दु:ख को दूर करने के लिए जो अपने प्राणों को तृण के समान समझते हैं। उन परोपकारी मनुष्यों पर ही पृथिवी टिकी हुयी है ॥३७॥ अपने मन को सुख देने वाला स्वर्ग सज्जन

दूता ऊचुः

जन्तवो निरये घोरे पच्यन्ते तेऽत्र पापिनः। स्वकर्मैवोपजीवन्ति मोहस्थानं न विद्यते ॥४०॥
यैर्न दत्तं न च हुतं तीर्थे स्नानं न वा कृतम् ।
पुनर्नोपकृतं भक्त्या सुकृतं न कृतं परम् ॥४१॥
नेष्टं न तप्तं नो जप्तं यैर्न हृष्टतया नृप। परस्मिन्निह घोरेपु पच्यन्ते निरयेपु ते ॥४२॥
दुःशीला ये दुराचारा विहाराहारनिन्दिताः। परापकारिणः पापकारिणो दुर्विहारिणः ॥४३॥
विदारिणो हि मर्मोक्त्या पापाः परहृदां हि ये ।
निरये ते विपच्यन्ते ये परस्त्रीविहारिणः ॥४४॥
एहि नूनं महीपाल गच्छामो हरिमन्दिरम्। न ते पुण्यवतो युक्तमिह स्थातुमतःपरम् ॥४५॥

राजोवाच

यद्यहं सुकृती दूताः कस्मादस्मिन्महाभये। नारके पथि वा नीतः किं वा मे सुकृतं परम्॥४६॥
मयाऽपि न कृतं तादृक्सुकृतं कामशालिना ।
कथं पुरिहरेर्गन्ता संशयानोऽहमस्मि वै ॥४७॥

दूता ऊचुः

सुकृतं न कृतं सत्यं त्वया कामवशात्मना। नेष्टं यज्ञैर्न वा यज्ञावशिष्टं भवताऽशितम्॥४८॥
किंतु माधवमासे यद्विधिना वत्सरत्रयम्। प्रातः स्नात्वा गुरुवचः प्रेरितेन पुरा त्वया॥४९॥
भक्त्या सम्पूजितो विष्णुर्विश्वेशो मधुसूदनः ।
महापापातिपापौघनिहन्ता भक्तवत्सलः ॥५०॥

पुरुषों के लिए नरक के समान है इसीलिए साधु पुरुष दुराचारों के ही सुख से सदा दुःखी रहते हैं ॥३८॥ नरक में जाना अथवा प्राण का त्याग करना श्रेष्ठ है, दुःखी जीवों के दुख के नाश को छोड़कर एक क्षण भी सुख नहीं होता है ॥३९॥ **दूतों ने कहा—** जो लोग नरक में पकाये जाते हैं वे ही यहाँ पापी हैं। वे अपने कर्मों का ही फल भोग रहे हैं, इसमें मोह के लिए कोई भी स्थान नहीं है ॥४०॥ जिन लोगो ने न दान किया न होम किया, न तीर्थों में स्नान किया है, जिन लोगों ने किसी का भक्ति पूर्वक उपकार भी नहीं किया है और न कोई पुण्य किया है, जो दुःशील और दुराचारी हैं, निन्दित आहार विहार वाले हैं, दूसरों का अपकार करने वाले हैं, पापी हैं और अनुचित विहार करने वाले हैं ॥४१-४३॥ जो अपनी मर्मोक्ति के द्वारा दूसरों के हृदय को दुःखी करते है, तथा दूसरों की स्त्री के साथ विहार करते हैं, वे ही नरक में पकाये जाते हैं ॥४४॥ राजन् ! आइये अब हमलोग श्रीभगवान् के लोक में चले। आप पुण्यवान् हैं, आपका अब यहाँ रुकना उचित नहीं है ॥४५॥ **राजा ने कहा—** दूतों यदि मैं पुण्यवान् हूँ तो फिर मैं इस अत्यन्त नारकीय मार्ग में क्यों लाया गया अब मेरा क्या पुण्य है ?॥४६॥ कामी मैंने भी ऐसा कोई पुण्य नहीं किया है। अब मैं श्रीहरि के लोक में कैसे जाने वाला हूँ ? यह मुझको संशय है ॥४७॥ **दूतों ने कहा—** यह सत्य हैं कि आप काम के वशवर्ती थे आपने कोई पुण्य नहीं किया है ॥४८॥ किन्तु आप अपने गुरु की वाणी से प्रेरित होकर तीन वर्षों तक जो वैशाख के महीने में प्रातःकाल स्नान करके

सर्वधर्मैकसारेण तेनैकेन नरेश्वर ! । नीयते पुण्यभवनं पूज्यमानो मरुद्गणैः ॥५१॥
महतामपि पापानां निहन्ता माधवोऽर्चितः। तथैव माधवो मासो मर्त्यानां विधिनोदितः ॥५२॥
यथैव विस्फुलिङ्गेन ज्वाल्यते तृणसञ्चयः। प्रातः स्नानेन वैशाखे तथाऽघौघोऽपि दह्यते ॥५३॥
तावद्वपुषि पापानि प्रभवन्ति महान्त्यपि । यावन्न माधवे मासि तीर्थे मज्जति चोषसि ॥५४॥
वैशखे मासि यो युक्तो यथोक्तनियमैर्नरः । हरिभक्त्यैव पापोघैर्मुक्तोऽच्युतगृहं व्रजेत् ॥५५॥
आजन्मनो हि सुकृतं यत्त्वया न पुरा कृतम् ।
तेन त्वं निरयस्थानमार्गं नीतो नरेश्वर ! ॥५६॥
अथ भूमिपते तूर्णमस्माभिस्तु मरुद्गणैः । स्तूयमानो विमानेन गच्छ गोविन्दमन्दिरम्॥५७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वैशाखमाहात्म्ये एकोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

* * *

एक सौ दोवाँ अध्याय

यम उवाच

ततस्तु करुणावार्धिस्तेषां शोकेन पीडितः । भूपतिः श्रीहरेर्दूतान्विनयेनाह बाडव ! ॥१॥

भक्तिपूर्वक विश्व के स्वामी भगवान् विष्णु की पूजा की है । वे भगवान् मधुसूदन महापापों तथा अतिपापों के समूह को विनष्ट करने वाले तथा भक्तवत्सल हैं ॥४९-५०॥ सभी धर्मों के सारभूत एक ही धर्म के कारण आप मरुद्गणों से पूजित होते हुए श्रीभगवान् के लोक में ले जाये जा रहे हैं ॥५१॥ बड़े-बड़े पापों को विनष्ट करने वाले भगवान् माधव की आपने अर्चना की है, उसी तरह मनुष्यों के पाप विनाशक वैशाख मास की आपने विधि पूर्वक पूजा की है ॥५२॥ जिस तरह आग की चिनगारी से तृण समूह जला दिया जाता है, उसी तरह वैशाख मास में प्रातःस्नान करने से पाप समूह भी भस्म हो जाते हैं ॥५३॥ शरीर में तब तक ही बड़े-बड़े पाप बने रहते हैं जब तक कि मनुष्य वैशाख के महीने में प्रातःस्नान नहीं करता है ॥५४॥ वैशाख मास में जो मनुष्य शास्त्रीय नियमों का पालन करता है श्रीहरि की भक्ति के कारण ही वह पाप समूह से मुक्त होकर श्रीभगवान् के लोक में जाता है ॥५५॥ तुमने जो जीवन भर कोई पुण्य नहीं किया है, इसी के कारण तुम इस नरक के मार्ग में लाये गये हो ॥५६॥ राजन् ! अब देवसमूह से स्तुति किए जाते हुए आप हमलोगों के साथ शीघ्र ही श्रीहरि के लोक में चलें ॥५७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के वैशाख माहात्म्य के अन्तर्गत एक सौ एकवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०१।।

* * *

राजा महीधर के द्वारा वैशाख मास के स्नान जन्य एक दिन के पुण्य को देने से नारकीय जीवों के उद्धार का वर्णन

यमराज ने कहा— ब्राह्मण ! उसके बाद उन जीवों के दुःख से पीड़ित देखकर करुणा सागर राजा ने श्रीहरि के दूतों से नम्रता पूर्वक कहा ॥१॥ सज्जन पुरुष ऐश्वर्य, सद्वंश में जन्म तथा पुण्यों की अपेक्षा

ऐश्वर्यस्याभिजात्यस्य गुणानां सुकृतस्य च। सन्तः फलं हि गण्यन्ते यद्भीतपरिरक्षणम्॥२॥
यद्यस्ति सुकृतं किञ्चिन्मम तेनैव जन्तवः। स्वर्गे गच्छन्तु मुक्तौघाः स्थाने तेषां वसाम्यहम्॥३॥
एवं भूपवचः श्रुत्वा तस्य सत्यवतो हि ते। ध्यायन्तः सत्यमौदार्यमब्रुवंस्ते वचो नृपम्॥४॥

दूता ऊचुः

अनेन तव कारुण्यकर्मणा वचसा नृप !। बभूव वृद्धिर्धर्मस्य सञ्चितस्य विशेषतः॥५॥
स्नानं दानं जपो होमस्तपो देवार्चनादिकम्। कृतं यन्माधवे मासि तदनन्तफलं विदुः॥६॥
स्वर्गे यज्वा च दाता च क्रीडते त्रिदशैःसह ।
वापीषु हेमपद्मासु कल्पवृक्षतलेऽपि च ॥७॥
गीयमानो मुदं याति गीर्वाणरमणीगणैः। जलान्नदानतो लोकं लभते वारुणं शुभम्॥८॥
कुलानि हेलया सप्त सन्तारयति गोप्रदः। हयं दत्त्वा रवेर्लोकं याति विद्याप्रदो नरः॥९॥
ब्रह्मलोकं तथा हेमदानाद्याति सुरालये। यो ददाति तथा कन्यां विष्णुलोकं स गच्छति॥१०॥
माधवे मासि यः स्नात्वा दत्त्वा सम्पूज्य माधवम् ।
अवाप्य सकलान्कामान्प्रयाति पदमव्ययम् ॥११॥
एकतोऽपि तपोदानक्रतुसुत्यादिकाःक्रियाः । एकतो विधिवन्मासो माधवश्चरितो महान्॥१२॥
तस्य माधवमासस्य दिनैकस्यापि भूपते !। कृतं यत्सुकृतं तत्ते सर्वदानादिकं पुरा॥१३॥
कारुण्येन दिनैकस्य पुण्यं देहि धरापते। निरये पच्यमानेभ्यो दुःखितेभ्यो दयानिधे !॥१४॥

भयभीत जीवों की रक्षा करने का अधिक महत्त्व देते हैं ॥२॥ यदि मेरा कोई भी पुण्य है तो उसी के प्रभाव से ये सभी जीव पाप से मुक्त होकर स्वर्ग में चले जायँ, इन सबों के स्थान में मैं निवास करता हूँ ॥३॥ इस तरह से सत्यवादी राजा की वाणी को सुनकर उस राजा के सत्य तथा औदार्य का ध्यान करते हुए उन दूतों ने कहा ॥४॥ दूतों ने कहा— राजन् ! आपके इस करुणापूर्ण वाणी से आपके सञ्चित पुण्यों की विशेष रूप से वृद्धि हो गयी है ॥५॥ आपने जो वैशाख के महीने में स्नान, दान, जप, होम, तपस्या तथा देवार्चन इत्यादि किया है, उन सबों का अनन्त फल हो गया है ॥६॥ स्वर्ग में यज्ञ करने वाले, दान देने वाले देवताओं के साथ स्वर्णिम कमल से भरी वापियों में तथा कल्पवृक्ष के नीचे क्रीड़ा करते हैं ॥७॥ देवरमणियों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए वे आनन्दित होते हैं। वे जल तथा अन्न का दान करने के कारण वारुणलोक को प्राप्त करते हैं ॥८॥ गौदान करने वाले बड़ी आसानी से अपने सात पीढ़ी के पूर्वजों को तार देते हैं। घोड़े का दान करने वाला मनुष्य सूर्य के लोक में जाता है। विद्या दान करने वाला ब्रह्मलोक में जाता है, सुवर्ण का दान करने वाला देवलोक में जाता है। कन्यादान करने वाला मनुष्य विष्णुलोक में जाता है ॥९-१०॥ मनुष्य वैशाख के महीने में स्नान करके इन सब वस्तुओं का दान करके तथा श्रीहरि की पूजा करके अपने सभी अभिलषित वस्तुओं को प्राप्त करके अक्षय पद को प्राप्त कर लेता है ॥११॥ एक तरफ तपस्या, दान तथा यम आदि क्रियाओं का फल और दूसरी तरफ विधिपूर्वक वैशाख मास के नियमों का अनुष्ठान, उसकी अपेक्षा महान् होता है ॥१२॥ राजन् ! उस वैशाख के महीने के एक दिन का भी जो पुण्य है वह सभी दानों के बराबर है ॥१३॥ हे दयानिधे राजन् ! कृपा करके एक दिन का पुण्य आप नरकों में पकाये जाने वाले इन दुःखी जीवों को दे दें ॥१४॥ दया के समान न तो कोई

न दयासदृशो धर्मो न दयासदृशं तपः । न दयासदृशं दानं न दयासदृशः सखा॥१५॥
पुण्यदः पुण्यमाप्नोति नरो लक्षगुणं सदा । कारुण्येन विशेषात्तु धर्मवृद्धिस्ततो भवेत्॥१६॥
दुःखितानां हि भूतानां दुःखोद्धर्त्ता नरो हि यः ।
स एवसुकृतीलोके ज्ञेयोनारायणांशजः ॥१७॥
वैशाखे मासि पूर्णायां स्नानदानादिकं त्वया ।
यत्तीर्थे विहितं वीर सर्वाघविनिषूदनम् ॥१८॥
तदेभ्यो देहि विधिवत्कृत्वा साक्ष्ये हरिं प्रभुम् ।
त्रिवाचिकं च निरयाद्येनामी स्वर्गमाप्नुयुः ॥१९॥
कपोतार्थं स्वमांसानि कारुण्येन पुरा शिबिः ।
दत्त्वा दयानिधिःस्वर्गे राजते कीर्तिवारिधिः ॥२०॥
दधीचिरपि राजर्षिर्दत्त्वाऽस्थिचयमात्मनः। त्रैलोक्यकौमुदी कीर्तिं लव्ध्यवान्स्वर्गमक्षयम् ॥२१॥
सहस्त्रजिच्च राजर्षिः प्राणानिष्टान्महायशाः । ब्राह्मणार्थे परित्यज्य गतो लोकाननुत्तमान् ॥२२॥
न स्वर्गे नापवर्गेऽपि वा तत्सुखं लभते नरः ।
यदार्तजन्तुनिर्वाणदानोत्थमिति नो मतिः ॥२३॥
सर्वेषु दातृजातेषु पुराजातोऽसि भूपते ! । कर्मणाऽनेन सङ्ख्यासु धुरिधैर्य नियोज्य च ॥२४॥
दृष्ट्वा तवधियं धर्म दयादानंसुनिश्चलम्। अस्माभिरपि तूत्साहःक्रियते धर्मवादिभिः ॥२५॥
यदि ते रोचते राजन्नविलम्बतया ततः। तदेभ्यो देहि तत्पुण्यं यातनादुःखदाहकम् ॥२६॥

धर्म है और न तो दया के समान कोई तपस्या है । दया के समान कोई न तो दान है और न तो दया के समान कोई मित्र है ॥१५॥ पुण्य दान करने वाला मनुष्य उस पुण्य के लाख गुना पुण्य प्राप्त करता है । करुणा के कारण उसके धर्म की विशेष रूप से वृद्धि होती है ॥१६॥ दुःखी जीवों का दुःख से उद्धार करने वाला जो मनुष्य होता है उसी को भगवान् नारायण के अंश से उत्पन्न पुण्यवान् समझना चाहिए।१७॥ हे वीर ! आपने वैशाखमास की पूर्णिमा के दिन जो दान तथा स्नान आदि सभी पापों को विनष्ट करने वाला तीर्थ में जाकर धर्म किया है, उसी को इन जीवों को आप भगवान् श्रीहरि को साक्षी बनाकर दे दें। जिससे कि आपके तीन वार कहने पर ये सभी जीव नरक से स्वर्ग में चले जायेगें ॥१८-१९॥ कपोत के लिए दयानिधि शिवि अपने मांस को करुणा करके प्रदान किया उसके फलस्वरूप प्रख्यात कीर्ति वाले वे आज भी स्वर्ग में सुशोभित हो रहे हैं ॥२०॥ राजर्षि दधीचि ने भी अपनी हड्डी का दान करके त्रैलोक्य को प्रकाशित करने वाली कीर्ति तथा अक्षय स्वर्ग को प्राप्त किया ॥२१॥ राजा सहस्त्रजित् ब्राह्मण के लिए अपने प्राणों को देकर सर्वोत्तम लोकों में चले गये ॥२२॥ हमारा यह मानना है कि मनुष्य दुःखी मनुष्य को अभयदान देकर जिस सुख को प्राप्त करता है उस सुख को वह न तो स्वर्ग में प्राप्त करता है और न तो आपवर्ग (मोक्ष) में प्राप्त करता है ॥२३॥ राजन् ! सभी दान देने वालों में आप प्रथम पुरुष हैं; इस कार्य को करने से आपका नाम दान दाताओं में सर्वोपरि होगा ॥२४॥ धर्म, दया, और दान में निश्चल आपकी बुद्धि को देखकर हम धर्मवादियों को भी उत्साह होता है ॥२५॥ राजन् ! यदि आपको अच्छा लगे तो आप विलम्ब न करें; आप इन सबों को यातना रूपी दुःख को भस्म कर देने वाले पुण्य का दान दे

इत्युक्तः स तदा देवं कृत्वा साक्ष्ये गदाधरम् ।
तेभ्यस्त्रिवाचिकं पुण्यं दयावान्विधिना ददौ ॥२७॥
दत्ते माधवमासस्य तस्मिन्नेकदिनोद्भवे । सुकृते जन्तवो याम्ययातनापरिवर्जिताः ॥२८॥
विमानवरमारूढाः सर्वे ते त्रिदिवं ययुः। प्रणमन्तः स्तुवन्तश्च पश्यन्तस्तं प्रहर्षिताः ॥२९॥
नृपेण दत्तं तदवाप्य पुण्यं वैशाखमासैकदिनाभिजातम् ।
सर्वे ययुस्ते नरकाद्विमुक्ता दिवं विमानाधिगता हि चित्रम् ॥३०॥
नूनं विचित्रो भुवि भूतवर्गः सम्भूतभावो बहुधा विचित्रः ।
तथा विचित्रोऽखिलकर्मयोगस्तत्कर्मशक्तिप्रचयो विचित्रः ॥३१॥
संस्तूयमानो मुनिदेवसङ्घैर्यस्तद्विशेषाधिकलब्धपुण्यः ।
परं पदं योगिवरैरलभ्यं ययौ जगन्नाथगणाभिवन्द्यः ॥३२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वैशाखमासमाहात्म्ये द्व्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

एक सौ तीसरा अध्याय

यम उवाच

एतन्माधवमासस्यसमासात्किञ्चिदीरितम् । माहात्म्यं पूर्णिमायाश्च विशेषाद् द्विजसत्तम !॥१॥

दें ॥२६॥ इस तरह से कहने पर भगवान् गदाधर को साक्षी बनाकर दयालु राजा ने तीन बार उच्चारण करके उन जीवों के लिए विधिपूर्वक पुण्य का दान दे दिया ॥२७॥ वैशाख के महीने में एक दिन के पुण्य दान देने पर वे सभी नारकी जीव यमयातना से रहित हो गये ॥२८॥ वे सर्वश्रेष्ठ विमान पर बैठकर स्वर्गलोक में चले गये । वे उस समय राजर्षि को प्रणाम कर रहे थे, स्तुति कर रहे थे और प्रसन्नता पूर्वक देख रहे थे ॥२९॥ वैशाख मास के एक दिन में उत्पन्न होने वाले राजा के द्वारा दिये गये पुण्य को प्राप्त करके वे सभी नरक से छूटकर विचित्र विमान पर बैठकर स्वर्ग चले गये ॥३०॥ निश्चित रूप से पृथिवी पर विचित्र जीव समूह हैं, उनका जीवत्व भी विचित्र है, उसी तरह सम्पूर्ण कर्मयोग भी विचित्र है और कर्म का शक्तिसमूह भी विचित्र है ॥३१॥ सबों से अधिक पुण्यवान् होने के कारण मुनियों तथा देवों के समूह से स्तुति किये जाते हुए वे राजा भी श्रीभगवान् के गणों से भी अभिवन्द्य श्रेष्ठ योगियों के भी लिए अलभ्य परं पद में चले गये ॥३२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के वैशाख माहात्म्य वर्णनान्तर्गत एक सौ दोवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०२।।

भगवान् विष्णु का ध्यान और वैशाख माहात्म्य वर्णन की समाप्ति

यम ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ ! यह मैंने संक्षेप में वैशाख मास का तथा वैशाखी पूर्णिमा का माहात्म्य

वैशाखमासे मधुसूदनस्य प्रियं य एनं पठतीतिहासम् ।
स याति कृष्णालयमाशु पूतः कल्पाननेकानिह मोदते च ॥२॥
धन्यं यशस्यमायुष्यमिदं स्वस्त्ययनं महत्। स्वर्ग्यं श्रीदं सौमनस्यं प्रशस्यमघमर्षणम्॥३॥
इदं माधवमासस्य माहात्म्यं माधवप्रियम्। चरित्रं भूपतेस्तस्य संवादं चावयोरपि ॥४॥
श्रुत्वा पठित्वा विधिवदनुमोद्य मनःप्रियम्। भवेद्भक्तिर्भगवति यथा स्यात्पापसंक्षयः ॥५॥
अथ गच्छ महीदेव ! देव लोकाद्यथेच्छया ।
निपात्य भुवि वै देहं रुदन्त्याद्यापि बान्धवाः ॥६॥
विलप्यमानैरपि बन्धुभिस्तैर्न यावदग्नौ तव तच्छरीरम् ।
प्रक्षिप्यते हन्त जवैर्न तावद्याहि स्वयं सुप्त इव प्रबुद्धः ॥७॥
मम प्रसादादिह पुण्ययोगः श्रुतो यथावत्तमिमं विधेहि ।
विधानतो वै समये समन्ते समागमोऽन्ते भविता सुरैश्च ॥८॥

सूत उवाच

इति देववचः श्रुत्वा नत्वा धर्माधिपं ततः। पुनः पपात स इह परितुष्टमना द्विजः॥९॥
धर्मराजप्रसादेन ततस्तत्र महीतले। संसुप्त इव चोत्तस्थौ बन्धुवर्गसमन्वितः॥१०॥
विधिमेनं द्विजो भूमौ वर्षे वर्षे च स स्वयम् ।
चकार कारयामास माधवस्नापनंजनम् ॥११॥
यमब्राह्मणासंवादो मयाऽयं परिकीर्तितः। तस्य माधवमासस्य पुण्यस्नानप्रसङ्गतः॥१२॥

विशेष रूप से बतलाया ॥१॥ वैशाख के महीने में जो व्यक्ति भगवान् मधुसूदन को प्रिय इस इतिहास को पढ़ता है, वह शीघ्र ही पवित्र होकर भगवान् मधुसूदन के लोक में चला जाता है, और वहाँ पर अनेक कल्पों तक आनन्दानुभव करता है ॥२॥ यह वैशाख मास का माहात्म्य, धन्य, यश प्रदान करने वाला, आयु बढ़ाने वाला तथा महान् कल्याण प्रदान करने वाला है । यह स्वर्ग देने वाला, लक्ष्मी प्रदान करने वाला, सौमनस्य, प्रशंसनीय तथा पापों का विनाश करने वाला है ॥३॥ यह माहात्म्य भगवान् लक्ष्मीपति को प्रिय है । राजा का चरित्र और हमदोनों (यम और ब्राह्मण) का संवाद भी श्रीभगवान् को प्रिय है ॥४॥ इसको सुनकर पढ़कर तथा अनुमोदन करके, इसके मन को अच्छा लगने वाला होने पर श्रीभगवान् में भक्ति बढ़ती है, और उससे पाप का नाश हो जाता है ॥५॥ ब्राह्मण अब आप अपनी इच्छा के अनुसार भू लोक में जायँ । आपके शरीर को पृथिवी पर रखकर आपके वन्धव जन रो रहे हैं ॥६॥ विलाप करने वाले वे सब जब तक आपके उस शरीर को अग्नि में नहीं डाल देते हैं तब तक आप सोकर जगे हुए के समान पहुँच जाय ॥७॥ मेरी कृपा से, इस पुण्य के प्राप्त हो जाने से तुमने जैसा सुना है वैसा ही करो विधान के अन्त में समयानुसार देवताओं से तुम्हारी भेंट होगी ॥८॥ **सूतजी ने कहा**— इस तरह धर्मराज की वाणी को सुनकर और उनको नमस्कार करके वे ब्राह्मण सन्तुष्ट मन से भूलोक में गिर पड़े ॥९॥ धर्मराज की कृपा से वे पृथिवी पर गिरे और सोये से जगे के समान अपने बान्धवों के साथ उठ गये ॥१०॥ वे ब्राह्मण प्रत्येक वर्ष वैशाख स्नान की इस विधि को करते थे और दूसरे लोगों से भी करवाते थे ॥११॥ वैशाख मास के पवित्र स्नान के प्रसङ्ग में मैंने इस ब्राह्मण और यम के संवाद का वर्णन किया ॥१२॥

वैशाखमासे सततं हरिप्रिये स्नानं विदध्याच्च ददाति भक्त्या ।
दानञ्च होमं सुकृतं तथा बुधो हरेः पदं तस्य न दुर्ल्लभं कदा ॥१३॥
यः श्रृणोत्येकचित्तेन माहात्म्यं मेषसूर्यजम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोःपरंपदम् ॥१४॥

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाप्राज्ञ ! त्वयाऽतिकरुणात्मना। वैशाखमासमाहात्म्यं कीर्तितं पापनाशनम् ॥१५॥
नियमा मधुहन्तुर्ये माधवे कथितास्त्वया। पूजनं स्नानदानाद्यं श्रौतस्मार्तविधानतः॥१६॥
यथा च माधवो देवः प्रीयते पापनाशनः। अधुना श्रोतुमिच्छामो ध्यानं तस्य महात्मनः॥१७॥
कृष्णस्य भक्तवृन्दानां प्रियस्य भवतारणम् ॥१८॥

सूत उवाच

श्रृणुध्वं मुनयःसर्वे कृष्णस्य जगदात्मनः। गोगोपगोपीप्राणस्य वृन्दावनचरस्य च॥१९॥
एकदा नारदः पृष्टो गौतमेन द्विजोत्तमः। स तस्मै प्राहयद्ध्यानं तद्वक्ष्ये पापनाशनम् ॥२०॥

नारद उवाच

सुमप्रकरसौरभोद्गलितमाध्विकाद्युल्लसत्सुशाखिनवपल्लवप्रकरनम्रशोभायुतम् ।
प्रफुल्लनवमञ्जरीललितवल्लीवेष्टितं स्मरेत सततं शिवं शितमतिः सुवृन्दावनम् ॥२१॥
विकासिसुमनोरसास्वदनमञ्जुलैः सञ्चरच्छिलीमुखमुखोद्गतैर्मुखरितान्तरंझङ्कृतैः ।
कपोतशुकसारिकापरभृतादिभिः पत्रिभिर्विराणितमितस्ततो भुजगशत्रुनृत्याकुलम् ॥२२॥

श्रीभगवान् को प्रिय वैशाख के महीने में प्रातः स्नान करना चाहिए और भक्तिपूर्वक दान देना चाहिए। जो मनुष्य दान और होम करता है, उसके लिए श्रीहरि का पद दुर्लभ नहीं होता है ॥१३॥ मेष के सूर्य विषयक माहात्म्य का जो व्यक्ति एकाग्र मन से श्रवण करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक में जाता है ॥१४॥ **ऋषियों ने कहा**— हे महाभाग सूतजी ! आपने अत्यधिक कृपा करके पाप विनाशक वैशाख माहात्म्य का वर्णन किया है ॥१५॥ भगवान् मधुसूदन के प्रिय वैशाख मास में आपने जो नियम बतलाया है, श्रौत तथा स्मार्त विधि से पूजन, स्नान तथा दान को जो आपने बतलाया है॥१६॥ पाप विनाशक भगवान् लक्ष्मीपति जैसे प्रसन्न होकर प्राप्त होते हैं उनका वैसा ही ध्यान अब हमलोग सुनना चाहते हैं ॥१७॥ भगवान् कृष्ण (विष्णु) भक्त समूह को प्रिय हैं, उनका संसार से पार करने वाला ध्यान आप हमलोगों को बतलायें ॥१८॥ **सूतजी ने कहा**— हे सभी मुनिगण ! जगत् के आत्मा तथा गौ, गोपी तथा गोपों के प्राण स्वरूप, वृन्दावन में विचरण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के ध्यान को आपलोग सुनें। हे ब्राह्मणश्रेष्ठों ! एक बार महर्षि गौतम ने नारदजी से पूछा तो नारदजी ने उनको जिस ध्यान को बतलाया उसी ध्यान को मैं बतलाता हूँ ॥१९-२०॥ **नारदजी ने कहा**— पुष्प समूह से निकली हुयी माध्वीक से सुशोभित वृक्षों के नवीन पल्लव के समान शोभा से सम्पन्न, विकसित नवीन मञ्जरी से मनोज्ञ बनी हुयी लता से वेष्टित श्रीवृन्दावन का बुद्धिमान मनुष्य को स्मरण करना चाहिए ॥२१॥ उस वृन्दावन में विकसित पुष्पों के पराग का आस्वादन करने के कारण मनोहर बने हुए भौंरे इधर-उधर सञ्चरण कर रहे हैं और उनकी गुञ्जन ध्वनि हो रही है । कबूतर, शुक, सारिका (मैना) तथा कोयल इत्यादि पक्षिगण उसमें बोल रहे हैं, जहाँ तहाँ मयूर समूह नृत्य कर रहे हैं ॥२२॥ काम के वेग को बढ़ाने वाले व्रज की विलासिनियों

कलिन्ददुहितुश्चलल्लहरिविप्लुषां वाहिभिर्विनिद्रसरसीरुहोदररजश्चयोद्धूसरैः ।
प्रदीपितमनो भवव्रजविलासिनीवाससां विलोलनपरैर्निषेवितमनारतं मारुतैः ॥२३॥
प्रवालनवपल्ल्वं मरकतच्छदं मौक्तिकप्रभाप्रकरकोरकं कमलरागनानाफलम् ।
स्थविष्ठमखिलर्तुभिः सततसेवितं कामदं तदन्तरपि कल्पकाङ्घ्रिपमुदञ्चितं चिन्तयेत् ॥२४॥
सुहेमशिखराचले उदितभानुवद्भासुरामथोऽस्य कनकस्थलीममृतशीकरासारिणः ।
प्रदीप्तमणिकुट्टिमां कुसुमरेपुणपुञ्जोज्ज्वलां स्मरेत्पुनरतन्द्रितो विगतषट्तरङ्गाम्बुधः ॥२५॥
तद्रत्नकुट्टिमनिविष्टमहिष्ठयोगपीठेऽष्टपत्रमरुणं कमलं विचिन्त्य ।
उद्यद्विरोचनसरोचिरमुष्यमध्ये सञ्चिन्तयेत्सुखनिविष्टमथो मुकुन्दम् ॥२६॥
सुत्रामहेतिदलिताञ्जनमेघपुञ्जप्रत्यग्रनीलजलजन्मसमानभासम् ।
सुस्निग्धनीलधनकुञ्चितकेशजालं राजन्मनोज्ञशितिकण्ठशिखण्डचूडम् ॥२७॥
रोलम्बलालितसुरद्रुमसूरसम्पद्युक्तं समुत्कचनवोत्पलकर्णपूरम् ।
लोलालिभिः स्फुरितभालतलप्रदीप्तगोरोचनातिलकमुज्ज्वलचिल्लिचापम् ॥२८॥
आपूर्णशारदगताङ्कशशाङ्कबिम्बकान्ताननं कमलपत्रविशालनेत्रम् ।
रत्नस्फुरन्मकरकुण्डलरश्मिदीप्तगण्डस्थलीमुकुरमुन्नतचारुनासम् ॥२९॥

के वस्त्र को फड़-फड़ाने वाली हवा वहाँ निरन्तर चल रही है, यमुनाजी की चञ्चल लहरियों के जलकण को लेकर चलने वाली वह हवा कमल के पराग से धूमिल सी बनी हुयी है ॥२३॥ उस वृन्दावन के भीतर विद्यमान कल्पवृक्ष नवीन पल्लव प्रवाल के समान लाल-लाल हैं उनकी टहनियाँ मरकत मणि के समान हरी-हरी हैं, उसकी कलियाँ मोती समूह के समान श्वेत वर्ण के हैं, उनमे कमल के समान लाल-लाल अनेक फल लगे हुए हैं, और वे बड़े-बड़े हैं । सभी ऋतुएँ वहाँ पर सदा विराजमान रहती हैं । ऐसा कामनाओं को पूर्ण करने वाला कल्पवृक्ष वहाँ सुशोभित हो रहा है । इस तरह से ध्यान करना चाहिए॥२४॥ ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि वह ध्यान करे कि अमृत की बूंदो को बारसाने वाले उस कल्पवृक्ष के नीचे सुमेरु पर्वत के शिखर पर उदित हुए सूर्य के समान देदीप्यमान सुवर्णमयी भूमि है, उसके फर्श में लगी हुयी मणियाँ चमक रही हैं, फर्श पर पुष्पों के पराग बिछे हुए हैं, इस प्रकार की वह भूमि (अस्ति, जायते, वर्द्धते, परिणमते, अपक्षीयते तथा विनश्यति) इन अनित्यता के द्योतक षट्तरङ्गों से रहित है, इस तरह से सावधानी पूर्वक चिन्तन करें ॥२५॥ उस रत्नमय फर्श पर ध्यान करके उस विशाल कमल के बीच में उगते हुए सूर्य के समान कान्ति वाले श्रीभगवान् मुकुन्द सुखपूर्वक बैठे हुए हैं ॥२६॥ इन्द्र के वज्र की कालिमा को भी तिरस्कृत करने वाले नवीन मेघ समूह के समान नील कमल के समान श्रीभगवान् की कान्ति है । उनके कोमल नीले घने तथा घुंघराले केश हैं । उनकी चोटी (शिखण्डक) में मयूर का पङ्ख सुशोभित हो रहा है । जिस पर भौंरे मँडरा रहे हैं ऐसे कल्पवृक्ष की रस सम्पत्ति से युक्त नवीन नील कमल से जिनका कर्णपूर बना हुए ऐसे भगवान् का ध्यान करे । चञ्चल भौंरे जिस पर मँडरा रहे हैं ऐसे श्रीभगवान् के ललाट पर गोरोचन का तिलक कामदेव के धनुष के समान चमक रहा है ॥२७-२८॥ शरत्कालीन पूर्ण चन्द्रमा के समान मनोहर श्रीभगवान् का मुख मण्डल है । कमल दल के समान उनके बड़े-बड़े नेत्र हैं । जड़े गये रत्नों से देदीप्यमान श्रीभगवान् के मकराकृति कुण्डल की कान्ति से चमकती हुयी उनकी गाल

सिन्दूरसुन्दरतराधरमिन्दुकुन्दमन्दारमन्दहसितद्युतिदीपिताशम् ।
वन्यप्रवालकुसुमप्रचयावक्लृप्तग्रैवेयकोज्ज्वलमनोहरकम्बुकण्ठम् ॥३०॥
मत्तभ्रमद्भ्रमरघुष्टविलम्बमानसन्तानकप्रसरदामपरिष्कृतांसम् ।
हारावलीभगणराजितपीवरोरुव्योमस्थलीललसितकौस्तुभभानुमन्तम् ॥३१॥
श्रीवत्सलक्षणसुलक्षितमुन्नतांसमाजानुपीनपरिवृत्तसुजातबाहुम् ।
आबन्धुरोदरमुदारगभीरनाभिं भृङ्गाङ्गनानिकरमञ्जुलरोमराजिम् ॥३२॥
नानामणिप्रघटिताङ्गदकङ्कणोर्मिग्रैवेयसारसननूपुरतुन्दबन्धम् ।
दिव्याङ्गरागपरिपिञ्जरिताङ्गयष्टिमापीतवस्त्रपरिवीतनितम्बबिम्बम् ॥३३॥
चारूरुजानुमनुवृत्तमनोज्ञजङ्घं कान्तोन्नयप्रपदनिन्दितकूर्मकान्तिम् ।
माणिक्यदर्पणलसन्नखराजराजद्रक्ताङ्गुलिच्छदनसुन्दरपादपद्मम् ॥३४॥
मत्स्याङ्कुशारिदरकेतुयवाब्जवज्रैः संलक्षितारुणकराङ्घ्रितलाभिरामम् ।
लावण्यसारसमुदायविनिर्मिताङ्गं सौन्दर्यनिन्दितमनोभवदेहकान्तिम् ॥३५॥
आस्यारविन्दपरिपूरितवेणुरन्ध्रलोलतराङ्गुलिसमीरितदिव्यरागैः ।
शश्वद्द्रवैः कृतनिविष्टसमस्तजन्तुसन्तानसन्नतिमनन्तसुखाम्बुराशिम् ॥३६॥

दर्पण के समान है और उनकी नाक उठी हुयी है तथा मनोहर है ॥२९॥ सिन्दूर के समान सुन्दर ओष्ठों से युक्त चन्द्रमा, कुन्द तथा परिजात को भी तिरस्कृत करने वाली श्वेतवर्ण की हँसी से दिशाएँ प्रकाशित हो रही हैं, शङ्ख के समान मनोहर उनकी गला में वन में उत्पन्न प्रवाल पुष्प समूह से निर्मित हार सुशोभित हो रहा है ॥३०॥ परागपान से मदमत्त बने हुए भौंरे जिस पर मँडरा रहे हैं ऐसी पारिजात पुष्प की माला से श्रीभगवान् का कन्धा सुशोभित हो रहा है । हार समूह रूपी तारों से श्रीभगवान् का पुष्ट वक्षस्थल रूपी व्योम (अकाश) कौस्तुभमणि रूपी सूर्य से देदीप्यमान है ॥३१॥ और वह श्रीवत्सचिह्न से सुशोभित है । उनके कन्धे उठे हुए हैं तथा मोटी तथा गोल श्रीभगवान् की भुजाएँ घुटनों तक लटक रही हैं । सुन्दर उदर में विद्यमान उनकी गहरी नाभि अत्यन्त सुन्दर है । उनकी काली-काली रोमावली भ्रमरी समूह के समान सुशोभित होती है ॥३२॥ जिसमें अनेक रत्न जड़े गये हैं ऐसे अङ्गद (विजायिठ) कङ्कण, सुन्दर हार तथा नूपुर श्रीभगवान् धारण किए हुए हैं । उनका सम्पूर्ण शरीर दिव्य अङ्गरागों से सुशोभित हो रहा है । वे श्रीभगवान् पीले पीताम्बर को पहने हुए हैं ॥३३॥ मनोहर ऊरू तथा घुटना से युक्त श्रीभगवान् की जङ्घा मनोहर लग रही है । कान्ति युक्त तथा उठी हुयी उनके पैरों की सुपली कच्छप की भी शोभा को तिरस्कृत करती है । माणिक्य तथा दर्पण के समान देदीप्यमान नख समूह से सुशोभित लाल-लाल अङ्गुलियों से उनके चरण कमल अत्यन्त मनोहर लगते हैं ॥३४॥ मत्स्य, अङ्कुश, चक्र, शङ्ख, पताका, यव, कमल तथा वज्र के चिह्न से चिह्नित उनके पैरों तथा हाथों के लाल-लाल तलवे अत्यन्त मनोहर हैं । सौन्दर्य के सारभाग के समुदाय से निर्मित श्रीभगवान् के अङ्गों का सौन्दर्य कामदेव के भी शरीर के सौन्दर्य को तिरस्कृत कर रहा है ॥३५॥ वे अपने मुख कमल पर रखकर वंशी बजा रहे हैं और अपने चञ्चल हाथों की अङ्गुलियों से दिव्य रागों को ध्वनित कर रहे हैं । निरन्तर उत्पन्न होने वाले उन रागों से श्रीभगवान् समस्त जीवों को मानो मन्त्रमुग्ध बना रहे हैं, ऐसे श्रीभगवान् अनन्त सुख के सागर हैं ॥३६॥ सारी गायें

गोभिर्मुखाम्बुजविलीनविलोचनाभिरूधोभरस्खलितमन्थरमन्दगाभिः ।
दन्ताग्रदष्टपरिशिष्टतृणाङ्कुराभिरालम्बिवालधिलताभिरथाभिवीतम् ॥३७॥
सम्प्रस्तुतस्तनविभूषणपूर्णनिश्चलास्यद्दृढक्षरतिफेनिलदुग्धमुग्धैः ।
वेणुप्रवर्तितमनोहरमन्दगीतदत्तेच्चकर्णयुगलैरपि तर्णकैश्च ॥३८॥
प्रत्यग्रशृङ्गमृदुमस्तकसम्प्रहारसंरम्भभावनविलोलखुराग्रपातैः ।
आमेदुरैर्बहुलसास्नगलैरुदग्रपुच्छैश्च वत्सतरवत्सतरी निकायैः ॥३९॥
हम्भारवक्षुभितदिग्वलयैर्महद्भिरप्युक्षभिः पृथुककुद्भरभारखिन्नैः ।
उत्तम्भितः श्रुतिपुटीपरिपीतवंशध्वानामृतोद्धतविकासिविशालघोणैः ॥४०॥
गोपैः समानगुणशीलवयोविलासवेशैश्चमूर्च्छितकलस्वनवेणुवीणैः ।
मन्दोच्चतारपटुगानपरैर्विलोलदोर्वल्लरीललितलास्यविधानदक्षैः ॥४१॥
जङ्घान्तपीवरकटीरतटीनिबद्धव्यालोलकिङ्किणिघटारणितैरटद्भिः ।
मुग्धैस्तरक्षुनखकल्पितकान्तभूषैरव्यक्तमञ्जुवचनैःपृथुकैः परीतम् ॥४२॥
अथ सुललितगोपसुन्दरीणां पृथुकवरीघनितम्बमन्थराणाम् ।
गुरुकुचभरभङ्गुरावलग्नत्रिवलिविजृम्भितरोमराजिभाजान् ॥४३॥
तदतिरुचिरचारुवेणुवाद्यामृतरसपल्लविताङ्गजाङ्घ्रिपस्य ।
मुकुलविमलरम्यरुढरोमोद्गमसमलङ्कृतगात्रवल्लरीणाम् ॥४४॥

अपने निर्निमेष नेत्रों से श्रीभगवान् के मुख कमल को देख रही हैं । उधस् के भार से नीचे की ओर लटकने के कारण वे धीरे-धीरे चल रही हैं । वे अपने दाँतों के अग्र भाग से कोमल घासों को पकड़े हुयी हैं, श्रीभगवान् भी लटकने वाली वालधि लताओं से लिपटे हुए हैं ॥३७॥ गायों के स्तन रूपी विशेष अलङ्कार से दूध चू रहा है गिरते हुए फेन से युक्त मनोहर दुग्ध को देखकर वे निश्चल खड़ी हैं । भगवान् की वंशी से निकलने वाले मनोहर तथा मधुर गीत को सुनने में बछड़े भी अपने कान को लगाये हुए हैं अर्थात् सुन रहे हैं ॥३८॥ जिनके सींग अभी जम रहे हैं ऐसे कोमल मस्तक के प्रहार से तथा अपने खुर के अग्रभाग से उनके चञ्चल भाव अभिव्यक्त होते हैं । मनोहर हुंभारव युक्त गलों वाले गायों के बछड़े बौर बछड़ियाँ अपनी पूँछ उठाये हुए हैं ॥३९॥ वे सांद्र भी अपने हुम्भा ध्वनि से दिशाओं को ध्वनित कर रहे हैं । वे अपने ककुद (डील) के भार से आलसाये हुए हैं । वे भी अपने दोनों कानों को उठाये हुए हैं और वंशी की ध्वनि रूपी अमृत का पान करके अपने विशाल नाक को ऊपर उठाकर फैला रहे हैं ॥४०॥ एक समान गुण, शील तथा अवस्था, विलास तथा वेष वाले गोप भी अपनी वंशी से उसी तरह की ध्वनि कर रहे हैं । वे सब मन्द, उच्च तथा जोर से गीत गाते हैं वे चञ्चल भुजा रूपी लता से मनोहर नृत्य करने में निपुण है ॥४१॥ वे अपने स्थूल कमर में जङ्घा पर्यन्त चञ्चल घुंघूरुओं और घण्टी बाँधे हुए हैं । उन सबों से ध्वनि भी हो रही है । वे मनोहर बाघों के नखों के आभूषण से भूषित हैं और उन सबों से भी ध्वनि हो रही हैं । इस प्रकार के ग्वाल बाल श्रीभगवान् को घेरे हुए हैं ॥४२॥ इसके बाद नितम्ब पर्यन्त लटकने वाली चोटीयों सुन्दर गोपियाँ नितम्ब के भार से मन्दगति वाली हो गयी हैं, वे बड़े-बड़े स्तनों के भार से झुक सी गयी हैं तथा उनकी त्रिवली रोम पंक्ति से सुशोभित है ॥४३॥ अत्यन्त मनोहर तथा सुन्दर

तदतिरुचिरमन्दहासचन्द्रातपपरिजृम्भितरागवारिराशेः ।
तरलतरतरङ्गभङ्गविप्रुट्प्रकरघनश्रमबिन्दुसन्ततानाम् ॥४५॥
तदतिललितमन्दचिल्लिचापच्युतनिशितेक्षणमारबाणवृष्ट्या ।
दलितसकलमर्मविह्वलाङ्गप्रविसृतदुःसहवेपथुव्यथानाम् ॥४६॥
तदतिरुचिरवेषरूपशोभामृतरसपानविधानलालसानाम् ।
प्रणयसलिलपूरवाहिनीनामलसविलोलविलोचनाम्बुजानाम् ॥४७॥
विस्त्रंसत्कबरीकलाप विगलत्फुल्लप्रसूनास्रव-
न्माध्वीलम्पटचञ्चरीकघटयासंसेवितानां मुहुः ।
मारोन्मादमदस्खलन्मृदुगिरामालोलकाञ्च्युल्लस-
न्नीवीविश्लथमानचीनसिचायान्तार्चिर्नितम्बत्विषाम् ॥४८॥
स्खलितलसितपादाम्भोजमन्दाभिघातच्छुरितमणितुलाकोट्याकुलाशामुखानाम् ।
चलदधरदलानां कुड्मलापक्ष्मलाक्षिद्वयसरसिरुहाणामुल्लसत्कुण्डलानाम् ॥४९॥
द्राघिष्ठश्वसनसमीरणाभितापप्रम्लानीभवदरुणौष्ठपल्लवानाम् ।
नानोपायनविलसत्कराम्बुजानामालीभिः सततनिषेवितं समन्तात् ॥५०॥
तासामायतलोलनीलनयनव्याकोशलीनाम्बुज-
स्रग्भिः सम्परिपूजिताखिलतनुं नानाविलासास्पदम् ।
तन्मुग्धाननपङ्कजप्रविगलन्माध्वीरसास्वादिनीं,
विभ्राणं प्रणयान्मदाक्षिमधुहृन्मालां मनोहारिणीम् ॥५१॥

मुरली की अमृत ध्वनि के रस से मानो शरीर रूपी वृक्ष की पल्लवित, मुकुलित, स्वच्छ सुन्दर रोमोद्गम से जिनकी शरीर लता समलंकृत है ॥४४॥ वह अत्यन्त मनोहर मन्दमुसुकान रूपी चन्द्रिका से उन्नत तरङ्गों वाले प्रेम सागर के चञ्चल तरङ्गों के टकराने से निकलने वाले जल विन्दु समूह के समान स्वेद कणों से युक्त हो गया है ॥४५॥ वह भी अत्यन्त मनोहर तथा मन्द कामदेव के धनुष से छूटे हुए तीक्ष्ण नेत्र रूपी काम बाण की वर्षा से जिनका सम्पूर्ण मर्मस्थल विद्ध हो जाने के कारण जिनके सम्पूर्ण शरीर में कँपकपी की व्यथा हो गयी है, इस प्रकार की गोपियाँ हैं ॥४६॥ उसके कारण अत्यन्त मनोहर वेष तथा रूप की शोभा रूपी अमृत रस के पान की लालसा वाली गोपियाँ मानो प्रेम रूपी जल प्रवाह से परिपूर्ण हैं, उनके चञ्चल नेत्रकमल अलसाये से हैं ॥४७॥ उन गोपियों की चोटी के खुल जाने से उनके केशों से विकसित पुष्प गिर रहे हैं और उनके पराग का पान करने के लिए भ्रमरवृन्द उन गोपियों पर बार-बार मँडरा रहे हैं। कामोन्माद के कारण उन गोपियों की मधुर वाणी भी लड़खड़ा रही है, चञ्चल करधनी से सुशोभित उनकी नीवी का बन्धन शिथिल हो रहा है तथा चीनांशुक की शोभा से उनके नितम्ब भाग की कान्ति और बढ़ रही है ॥४८॥ लड़खड़ाते चरण कमलों के मन्द प्रहार से निस्सृत मणितुला से वे दिशाओं को प्रकाशित कर रही हैं, उनके ओष्ठ चञ्चल हैं, और उनके दोनों नेत्र कमल की कली मानों कोरकित हो गयी है। उनके कानों के कुण्डल सुशोभित हो रहे हैं ॥४९॥ अत्यन्त लम्बे श्वास की वायु के संताप से जिनके लाल-लाल ओष्ठ मुरझा से रहे हैं; इस प्रकार की सखियाँ अपने कर कमल में अनेक प्रकार का उपहार लिए हुयी हैं, इस प्रकार की गोपियों से श्रीभगवान् सेवित हैं ॥५०॥ उनके विशाल चञ्चल विकसित कजरारे नेत्र कोश में विद्यमान कमल माला से श्रीभगवान् का सम्पूर्ण शरीर मानो चारों ओर से पूजित है

गोपीगोपपशूनां बहिः स्मरेदग्रतोऽस्य गीर्वाणघटाम् ।
वित्तार्थिनीं विरिञ्चित्रिनयनशतमन्युपूर्विकां स्तोत्रपराम् ॥५२॥
तद्वद्दक्षिणतो मुनिनिकरं दृढधर्मवाञ्छया समाम्नायपरम् ॥५३॥
योगीन्द्रानथ पृष्ठे मुमुक्षमाणान्समाधिना तु सनकाद्यान् ॥५४॥
सव्ये सकान्तानथ यक्षसिद्धगन्धर्वविद्याधरचारणांश्च ।
सकिन्नरानप्सरसश्च मुख्याः कामार्थिनीर्नर्तनगीतवाद्यैः ॥५५॥
शङ्खेन्दुकुन्दधवलं सकलागमज्ञं सौदामिनीततिपिशङ्गजटाकलापम् ।
तत्पादपङ्कजगताममलाञ्च भक्तिं वाञ्छन्तमुज्झिततरान्यसमस्तसङ्गम् ॥५६॥
नानाविधिश्रुतिगुणान्वितसप्तरागग्रामत्रयीगतमनोहरमूर्छनाभिः ।
सम्प्रीणयन्तमुदिताभिरपि प्रभक्त्या सञ्चिन्तयन्नभसि मां द्रुहिणप्रसूतम् ॥५७॥
इति ध्यात्वाऽऽत्मानं पटुविशदधीर्नन्दतनयं नरो बुद्ध्यैवाऽर्घप्रभृतिभिरनिन्द्योपहृतिभिः ।
यजेद् भूयो भक्त्या स्ववपुषि बहिष्ठैश्च विभवैरिति प्रोक्तं सर्वंयदभिलषितं भूसुस्वराः ॥५८॥

इति श्रीपाद्मे महापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे वैशाखमाहात्म्ये त्र्युत्तरशततमोऽध्यायः
इति वैशाखमासमाहात्म्यं समाप्तम् ॥१०३॥

* * *

तथा वह अनेक प्रकार के विलासों के योग्य हैं । इस प्रकार के श्रीभगवान् के मनोहर मुख कमल से निकलने वाली माध्वी रस का आस्वादन करने वाली प्रेम के कारण, अधखुले नेत्र मधुर हृदय मनोहर माला को धारण करने वाले ॥५१॥ गोपियों, गोपों तथा पशुओं के बाद स्थित ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि देव समूह श्रीभगवान् की स्तुति कर रहे हैं ॥५२॥ श्रीभगवान् की दाहिनी ओर अत्यधिक पुण्य प्राप्त करने की इच्छा से मुनियों का समूह वेद पाठ कर रहा है ॥५३॥ इस तरह से योगीन्द्रों के पीछे मोक्ष की कामना वाले समाधिस्थ सनकादिक महर्षि विद्यमान हैं ॥५४॥ श्रीभगवान् की बायीं ओर अपनी पत्नियों के साथ; यक्ष, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारणगण, किन्नर, मुख्य अप्सरायें आदि गीत तथा वाद्य के साथ नृत्य कर रहे हैं ॥५४॥ शङ्ख, चन्द्रमा तथा कुन्द के समान श्वेत वर्ण वाले, सम्पूर्ण आगमों के ज्ञाता, विद्युत् समूह के समान पीली-पीली जटा वाले श्रीभगवान् के चरण कमलों की निर्मल भक्ति को चाहने वाले तद् व्यतिरिक्त समस्त वस्तुओं की अभिलाषा से रहित ॥५५॥ अनेक प्रकार के श्रुतियों में वर्णित गुणों से युक्त सातो रागों, तीनों ग्रामों तथा मनोहर मूर्छनाओं से वर्णित भी श्रेष्ठ भक्ति के द्वारा आकाश में विद्यमान तथा श्रीभगवान् को प्रसन्न करने वाले ब्रह्माजी के पुत्र मेरा (नारदजी का) भी ध्यान करना चाहिए ॥५६॥ दक्ष तथा विशदबुद्धि वाले उपासक को चाहिए कि वह इस प्रकार से सर्वात्मा श्रीनन्दनन्दन का ध्यान करके, उत्तम अर्घ आदि उपहारों से मानसिक रूप से अपने शरीर में तथा वाह्य विभवों के द्वारा श्रीभगवान् की पूजा करे । हे ब्राह्मणों ! आपलोग जो चाहते थे उसका मैंने इस प्रकार से वर्णन किया ॥५७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के वैशाख माहात्म्य के अन्तर्गत एक सौ तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०३॥

* * *

एक सौ चारवाँ अध्याय

ऋषय ऊचुः

भूयो वद महाभाग रामचारित्रमद्भुतम्। राममाहात्म्यसर्वस्वं भक्तानां प्रीतिदायकम्॥१॥

सूत उवाच

अश्वमेधं क्रतुवरं कृत्वा दाशरथिर्यथा। प्रवृत्तो लोककृत्येषु शास्त्रकृत्येषु कोविदः॥२॥
अयोध्यां गन्तुकामेन शङ्करेण महात्मना। पार्वत्या सह देवेन उषितं सरयूतटे॥३॥
मुनयस्तं समभ्येत्य शङ्करं विश्वरूपिणम्। कश्यपाद्या महात्मानःपप्रच्छुरमितौजसः॥४॥
स्वागतं ते मुनिश्रेष्ठ सभमार्यःकुत आगतः।
किमागमनकृत्यं ते कं देशं गन्तुमुद्यतः॥५॥

शङ्कर उवाच

अहं शम्भुरिति ख्यातो विप्रो हिमगिरिस्थितः।
द्रष्टुं च राघवं गच्छे मम कार्यं महत्ततः॥६॥
मामाह्वयति राजाऽसौ पुराणश्रवणेरतः। आगच्छन्तु भवन्तोऽपि राघवः परितुष्यति॥७॥
ततस्ते मुनयःशम्भुर्ययू रामदिदृक्षया। तानागतान्बसिष्ठस्तु ज्ञात्वा रामाय चोक्तवान्॥८॥
ततःसत्वरमुत्थाय निर्ययौ स पुरोहितः। अर्घ्यपाद्यादिकैस्सर्वान्पूजयामास तानृषीन्॥९॥
गृहराजं ततःसर्वान्प्रावेशयदरिन्दमः। प्रत्येकमासनं दत्त्वा स्वागतोक्त्याऽऽसनस्थितान्॥१०॥
क्रमेण रघुशार्दूलःपूजयामास तानृषीन्। वाचा मधुरया प्रीणन्त्रिदमाहासनस्स्थितान्॥११॥

श्रीरामचन्द्रजी का श्रीरङ्गनगर में जाकर विभीषणजी को बन्धन मुक्त करना

ऋषियों ने कहा— हे महाभाग ! आप पुनः श्रीराम माहात्म्य के सर्वस्वभूत तथा भक्तों को प्रसन्नता प्रदान करने वाले श्रीराम के अद्भुत चरित्र का वर्णन करें ॥१॥ **सूतजी ने कहा**— श्रेष्ठ अश्वमेघ याग करके शास्त्रीय कार्यों के ज्ञाता महाराज दशरथनन्दन लौकिक कार्यों को करने में प्रवृत्त हुए । उसी समय अयोध्या जाने की इच्छा वाले महात्मा शङ्करजी पार्वतीजी के साथ सरयू तट पर निवास कर रहे थे । उस समय विश्वरूपधारी अत्यन्त तेजस्वी शङ्करजी के पास कश्यप आदि मुनिगण आकर उनसे पूछे । हे मुनिश्रेष्ठ ! आपका स्वागत है, आप अपनी पत्नी के साथ कहाँ से आये हैं ?॥२-५॥ आपके आने का प्रयोजन क्या है ? आप कहाँ जाने के लिए तैयार हैं ? **शङ्करजी ने कहा**— मैं शम्भु नाम वाला ब्राह्मण हूँ । हिमालय पर्वत पर मेरा निवास स्थान है ॥६॥ मैं श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन करने जा रहा हूँ । उनसे मेरा बहुत बड़ा काम है । सदा पुराण सुनने वाले वे राजा रामचन्द्र मुझे बुलाये हैं ॥७॥ आपलोग भी मेरे साथ आइये इससे श्रीरामचन्द्रजी को अत्यन्त सन्तोष होगा । उसके बाद वे सभी मुनिगण तथा शङ्करजी भगवान् राम का दर्शन करने के लिए गये ॥८॥ उन लोगों को आये जानकर महर्षि वसिष्ठ ने श्रीरामचन्द्रजी को बतलाया । उनके आगमन को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी शीघ्रता से उठकर अपने पुरोहित के साथ वहाँ गये॥९॥ उन्होंने ऋषियों की पूजा अर्घ पाद्य इत्यादि उपचारों से की । इसके बाद अपने शत्रुओं का दमन करने वाले श्रीरामचन्द्र उन ऋषियों को अपने राजगृह में ले गये ॥१०॥ उन्होंने स्वागतोक्ति पूर्वक सभी ऋषियों को

श्रीराम उवाच

अद्य मे सफलं जन्म प्राप्तमद्य तपःफलम्। अद्याभ्यासस्य विद्यानां फलकालोऽयमागतः॥१२॥
अद्य मे पितरस्तुष्टा राज्यं च सफलं मम। अद्य मे सफलं वृत्तमद्य मे सफलं श्रुतम् ॥१३॥
एवं वदन्तं राजानं ब्राह्मणाःकश्यपादयः। ऊचुःप्रियतरं वाक्यं रामं राजीवलोचनम्॥१४॥

ऋषयः ऊचुः

अयं शम्भुर्द्विजःप्राप्तःसर्वशास्त्रविशारदः। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञःसर्वभूतहिते रतः ॥१५॥
कैलासवासी सततं तपसे कृतनिश्चयः। ब्रह्मणा ब्रह्मवर्चस्के तुल्यो ब्रह्मविदांवरः ॥१६॥
हरिणा ब्रह्मवात्सल्ये प्रसादे शङ्करोपमः। एवंविधो महातेजाःशम्भुर्ब्राह्मणपुङ्गवः ॥१७॥
अष्टादशपुराणज्ञो मीमांसान्यायकोविदः। त्वद्भाग्यगौरवादेव प्राप्तोऽयं मुनिसत्तमः ॥१८॥
त्वयाऽऽहूतो मुनिवरः कैलासादागतःप्रभो। अतःपृच्छ महाभाग पुराणाख्यानमुत्तमम् ॥१९॥
श्रोतुकामा वयं प्राप्तास्त्वामद्य रघुनन्दन। अन्तं गतस्य वेदानां सर्वशास्त्रार्थवेदिनः ॥२०॥
पुंसोऽश्रुतपुराणस्य न सम्यग्याति दर्शनम् ॥२१॥

सूत उवाच

एवमुक्तो रघुश्रेष्ठो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। प्रहर्षमतुलं लेभे पुराणश्रवणोत्सुकः ॥२२॥

श्रीराम उवाच

लिङ्गार्चनप्रकारं च लिङ्गमाहात्म्यमेव च। महेशनाममाहात्म्यं पूजामाहात्म्यमेव च॥२३॥

आसन प्रदान किया और आसन पर बैठे हुए उन ऋषियों की रंघुवसियों में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ने पूजा की॥११॥ आसनों पर बैठे हुए उन ऋषियों को प्रसन्न करते हुए उन्होंने कहा। **श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—** आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरी तपस्या भी सफल हो गयी ॥१२॥ मेरे द्वारा अभ्यास की गयी विद्याओं के फल की प्राप्ति का काल आज ही आ गया है। आज मेरे पितृगण सन्तुष्ट हो गये और मेरा राज्य भी सफल हो गया ॥१३॥ आज मेरे आचरण सफल हो गये और आज मेरा श्रवण भी सफल हो गया। इस तरह से जब राजा रामचन्द्रजी बोल रहे थे उस समय कश्यप आदि ऋषियों ने अत्यन्त प्रिय वाणी से कमल के समान नेत्र वाले श्रीरामचन्द्रजी से कहा। **ऋषियों ने कहा—** ये सभी शास्त्रों के ज्ञाता शंभु नामक ब्राह्मण आये हैं ॥१४-१५॥ ये वेदों तथा वेदान्तों के ज्ञाता हैं तथा सभी जीवों का कल्याण करने वाले हैं। ये सदा कैलास पर्वत पर तपस्या करते रहते हैं ॥१६॥ तेजस्विता के विषय में ये ब्रह्माजी के समान हैं, ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ है, वात्सल्य के विषय में श्रीहरि के समान है, प्रसन्नता के विषय में ये शङ्करजी के समान है ॥१७॥ इस तरह के ब्रह्मतेज से युक्त हैं ये शम्भु नामक ब्राह्मण। ये अठारहों पुराणों के ज्ञाता है, मीमांसा और न्याय के ज्ञाता हैं ॥१८॥ आपके सौभाग्य से ही ये मुनिश्रेष्ठ आये हैं, हे प्रभो! आपने इन्हें बुलाया है और ये कैलास से आये हैं ॥१९॥ हे महाभाग ! आप इनसे पुराणों के उत्तम आख्यान को पूछें। हे रघुननन्दन ! हमलोग आपसे सुनने की इच्छा से आज आये हैं ॥२०॥ वेदों में पारङ्गत व्यक्ति भी यदि पुराणों को नहीं जानता है तो उसको सम्यक् ज्ञान नहीं होता है ॥२१॥ **सूतजी ने कहा—** तत्त्वज्ञ मुनियों द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर श्रीरामचन्द्रजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुयी, वे पुराणों का श्रवण करने के लिए उत्सुक थे ॥२२॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** हे मुनिवरों में श्रेष्ठ ! मैं आपसे

नमस्कारस्य माहात्म्यं दृष्टिमाहात्म्यमेव च । जलदानस्य माहात्म्यं धूपदानस्य सत्तम !॥२४॥
दीपागन्धादि दानस्य पुष्पमाहात्म्यमेव च । नानाख्यानेतिहासानां कथां पापप्रणाशिनीम्॥२५॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्च तदुपायांश्च सुव्रत। तत्सर्व श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो मुनिवरोत्तम॥२६॥

शम्भुरुवाच

राम राम महाबाहो पुण्यवानसि राघव । राज्यासक्तस्य ते जाता पुराणश्रवणे मतिः ॥२७॥
स्यान्महत्सेवया राम पुण्यतीर्थनिषेवणात् । सा जिह्वा या शिवं गायेत्तच्चित्तं यत्तदर्पितम् ॥२८॥
तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ ।
सुजन्मदेहमत्यर्थं तदेवाशेषजन्मसु ॥२९॥
यदेवोत्पुलको भासि हरनामानुकीर्तनात् । कृतार्थोऽसि महाराज तत्प्रश्नानुगता मतिः ॥३०॥
अनन्तरं समाजग्मुर्जाङ्घिकाःसत्वरश्रमाः । तत्करात्पत्रिकां गृह्य पपाठ रघुसत्तमः ॥३१॥
मनसाऽचिन्तयद्रामःकथमेतदभूदिति । रामं शम्भुस्तदा प्राह देव्या ब्राह्मणवेषवान्॥३२॥

शम्भुरुवाच

किं चिन्तयसि काकुत्स्थ ! मुनिष्वग्रे वसत्स्वपि ।
तद्वाक्यं राघवः श्रुत्वा पप्रच्छ मुनिपुङ्गवान् ॥३३॥

श्रीराम उवाच

विभीषणःकथमसौबद्धःशृङ्खलया नृभिः । मत्स्थापितं शिवं लिङ्गं दृष्ट्वा रामेश्वरं त्वहो ॥३४॥

लिङ्ग के अर्चन के प्रकार, लिङ्ग का माहात्म्य, शङ्करजी के नाम का माहात्म्य, उनकी पूजा का माहात्म्य, शङ्करजी को नमस्कार करने का माहात्म्य, शङ्करजी के दर्शन का माहात्म्य, शङ्करजी को जल देने का महात्म्य,उनको धूप देने का माहात्म्य, उनको दीप देने तथा गन्ध देने का माहात्म्य, पुष्प चढ़ाने का माहात्म्य, इन सारी बातों को आप अनेक आख्यानों तथा इतिहासों से युक्त इस पापविनाशिनी कथा को कहें ॥२३-२५॥ हे सुव्रत ! आप धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों तथा इन सबों की प्राप्ति के उपायों को बतलाएँ ॥२६॥ **शम्भु ने कहा**— हे महाबाहो श्रीरामचन्द्रजी ! आप अत्यन्त पुण्यवान् हैं, क्योंकि राज्य में आसक्त रहने पर भी आपको पुराण का श्रवण करने में प्रेम हो गया है ॥२७॥ महापुरुषों की सेवा करने और तीर्थों की सेवा करने से ही ऐसी बुद्धि होती है । वही जीभ धन्य है जो शिव के नामों का गायन करती है, वही चित्त धन्य है जो सदा शिवजी के ही चिन्तन में लगा रहता है ॥२८॥ केवल वे ही हाथ श्लाधनीय हैं जिन हाथों से शिवजी की पूजा की जाती है । ऐसे ही मनुष्य के जन्म तथा देह सभी जन्मों में अत्यन्त शलाधनीय है ॥२९॥ शङ्करजी के नाम का उच्चारण करके जो आप उत्कण्ठित प्रतीत हो रहे हैं और शङ्करजी के विषय में ही प्रश्न करके हे महाराज ! आप कृतार्थ हो गये हैं ॥३०॥ उसके बाद शीघ्रगामी कुछ दूत वहाँ आये । उनके हाथ से पत्रिका को लेकर श्रीरामचन्द्रजी पढ़े ॥३१॥ श्रीरामचन्द्रजी ने सोचा यह कैसे हो गया; देवी पार्वतीजी के साथ विद्यमान ब्राह्मण रूप धारी शङ्करजी ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा ॥३२॥ हे काकुत्स्थ ! मुनियों के सामने रहने पर भी आप क्या सोच रहे हैं ? उनकी वाणी सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने उन मुनिश्रेष्ठों से पूछा ॥३३॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— अरे मेरे द्वारा स्थापित रामेश्वर का दर्शन करके भी विभीषण मनुष्यों के द्वारा वेणी में कैसे बाँध दिए गये ॥३४॥

द्राविडै:कुटिलैर्दुष्टैरात्मना तद्विचार्य ताम्। विचार्य मुनिवार्यास्ते नेशास्तज्ज्ञातुमल्पत: ।।३५।।
न जानीम इति प्राहू रामं रागस्तदाऽब्रवीत् ।
पुराणं वीक्ष्यविधिना तत्सर्वं ब्रूत सत्तमा: ।।३६।।
भवदज्ञानहेतुश्च विचार्यस्तदनन्तरम् । किं किं पुराणं प्रेक्ष्यं स्याद्वर्जनीयं तथैव किम्।।३७।।
प्रशस्त: कीदृश: श्लोकस्तदन्य:कीदृशो भवेत् ।
कीदृशेषु च कार्येषु कीदृश:पूजकस्तथा ।।३८।।
पूजा च कीदृशीर्भक्तै: कार्या निर्णयदर्शने। इति रामस्य वचनं श्रुत्वा ते द्विजसत्तमा: ।।३९।।
प्रत्यूचुस्तं रघुश्रेष्ठं चिन्ता व्याकुलमानसम् । न वक्तारो वयं राम ! वीक्ष्यतां तु पुराणवित्।।४०।।
तच्छुत्वा राघव:शम्भुं प्रपच्छ विनयान्वित:। सोऽपि तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रत्युवाच महामति: ।।४१।।

शम्भुवाच

पुराणजीवी पूजार्ह:स्वशाखाध्ययन:शुचि: । मीमांसातत्त्वविज्ञान:श्रोत्रियोऽनृतदूषक: ।।४२।।
देवेषु च समस्तेषु समदृष्टि:शिवे रत:। शतरुद्रियजापी च साग्निकश्चातिवाचक: ।।४३।।
यजुर्वेदी विशेषेण पूजयेत्पुस्तकं सुधी: । श्रीतालपत्रलिखितं देवलिप्यन्वितं शुभम् ।।४४।।
बन्याद्यतिप्रपञ्चं यद्युगपत्प्रणवाक्षरम्। प्रागूदर्ध्वं रेखयो:प्रान्ते प्रणवस्याग्रयोजिका ।।४५।।
रेखाभवेदेवमेका अकारस्तस्य पार्श्वत:। शिरोभागमुपक्रम्य सकोणाध:प्रलम्बिनी ।।४६।।

आपलोग विचार करें कि कुटिल द्राविड यह कार्य कैसे कर सके ? विचार करके भी वे मुनिगण उस कारण को नहीं जान सके ।।३५।। उन लोगों ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा कि हमलोग इसे नहीं जान पा रहे हैं । उसके बाद श्रीरामचन्द्रजी ने कहा— हे श्रेष्ठ पुरुषों ! आप सभी पुराण का अवलोकन करके मुझे बतलायें।।३६।। उसके बाद आप लोगों के अज्ञान के कारण का विचार करना चाहिए । इसके विषय में किस-किस पुराण को देखना चाहिए और किस पुराण को नहीं देखना चाहिए ।।३७।। किस प्रकार का श्लोक प्रशस्त होता है और दूसरे श्लोक कैसे होते हैं ? किस प्रकार के कार्य में पूजा करने वालों को कैसा होना चाहिए ?।।३८।। किस प्रकार के भक्तों को पूजा करनी चाहिए ? इस निर्णय के विषय में श्रीरामचन्द्रजी के वचन को सुनकर वे श्रेष्ठ ब्राह्मण ।।३९।। चिन्ता से व्याकुल मन वाले श्रीरामचन्द्रजी से कहे, हे रामचन्द्रजी ! हमलोगों में से कोई भी श्रेष्ठ वक्ता नहीं है, आप किसी पुराणज्ञ पुरुष को देखें।।४०।। इस बात को सुनकर विनयान्वित होकर वे शम्भु से पूछे वे भी महामति श्रीरामचन्द्रजी के वाक्य को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी से कहे ।।४१।। **शम्भु ने कहा—** जो पुराणजीवी होता है वह पूजनीय होता है, वह अपनी शाखा का अध्ययन करता है तथा पवित्र होता हैं । मीमांसा के तत्त्व को वह जानता है तथा वह मिथ्या की निन्दा करने वाला वेदज्ञ होता है ।।४२।। उसकी सभी देवताओं की समान दृष्टि होती है, जो शिव का भक्त होता है वह शतरुद्रिय का पाठ करता है, अग्निहोत्र करता है ।।४३।। बुद्धिमान को चाहिए कि वह विशेष रूप से यजुर्वेदी और उसके पुस्तक की पूजा करे । उस पुस्तक को देवनागरी लिपि में और तालपत्र पर लिख होना चाहिए ।।४४।। बन्धन आदि प्रपञ्च से युक्त तथा एक ही समय प्रणव से युक्त होना चाहिए। मन्त्र को पहले और अन्त में जो रेखाएँ होती है उसके बगल में प्रणव लिखा होना चाहिए ।।४५।। एक रेखा ऐसी होनी चाहिए कि उसके बगल में आकार हो उस रेखा को ऊपर से लेकर नीचे तक आना

आकारःस हि विज्ञेयः पट्टिकादशरेखया ! ।
वामे षड्वक्रविन्दूद्वाविकार इति कीर्तितः ॥४७॥
तस्य वामशिरोरेखा लम्बिन्या ई उदाहृतः। सर्वाक्षरे शिरोरेखा अवक्रा प्रणवं विना ॥४८॥
तस्यां तु लम्बरेखान्या तदन्ते च लवित्रवत् ।
उकारःसहि विख्यातो लवित्रद्वयतस्तदु ॥४९॥
एवमन्यानि सर्वाणि अक्षराण्याह भारती। लिप्याऽनयैव लिखितं पुराणं तु प्रशस्यते ॥५०॥
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च मार्तण्डं नारदेरितम्। मार्कण्डयेमथाग्नेयं कौर्मं वामनमेव च ॥५१॥
गारुडं लैङ्गमाख्यातं स्कान्दं मात्स्यं नृसिंहकम् ।
तथैवगदितं राम पुराणं कपिलं तथा ॥५२॥
वाराहं ब्रह्मवैवर्तं शकुनेषु प्रशस्यते। शैवं भागवतं दौर्गं भविष्योत्तरमेव च॥५३॥
भविष्यं चोपसंज्ञानि त्वन्यानि च विवर्जयेत् ।
विमुच्य पुस्तकं रत्नपीठे निक्षिप्य संस्कृतम् ॥५४॥
धौतवस्त्रधरः स्नात्वाशुचिरक्रोधनोऽज्वरः। आदावात्मानमभ्यर्च्यकृत्वासङ्कल्पमेव च ॥५५॥
अङ्कुशं चाक्षसूत्रं च पाशं पुस्तकमेव च। धारयन्तीं सितां ध्यायेत्प्रसन्नास्यां सरस्वतीम्॥५६॥
गोक्षीरसदृशाकारं त्रिनेत्रं वृषवाहनम्। सहासवदनं शान्तं शुक्लाम्बरधरं शिवम्॥५७॥
हरिणं चाभयं चोद्ध्र्वबाहुयुग्मं किरीटिनम् ।
व्याख्यामुद्रां च दक्षेऽधो वामहस्ते वरप्रदम् ॥५८॥
नानारत्नविभूषाढ्यं गिरिजार्द्धाम्बुजासनम्। बहुभिर्मुनिमुख्यैस्तु ध्यायमानपदाम्बुजम् ॥५९॥

चाहिए।।४६।। पट्टिका तथा अक्ष रेखा के द्वारा उसको ही आ समझना चाहिए । उसकी वायीं ओर छह स्थानों में टेढ़ा दो विन्दु होना चाहिए, उसी को इकार कहते हैं ।।४७।। उसके बायें भाग के शिरोभाग में लटकने वाली जो रेखा हो उसी को ईकार कहा गया है । सभी अक्षरों पर जो शिरोरेखा होती है वह प्रणव के बिना अवक्र रूप हैं ।।४८।। उसके ऊपर दूसरी लम्बी जो रेखा है, उसके अन्त में हँसिए के समान रेखा है वही उकार है । वह दो हसियों से युक्त होता है ।।४९।। इसी तरह से सरस्वती ने सभी अक्षरों का उपदेश किया है । इसी लिपि में लिखा हुआ पुराण श्रेष्ठ होता है ।।५०।। ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, सूर्यपुराण, नारदीय पुराण, मार्कण्डेय पुराण, अग्निपुराण, कूर्मपुराण, वामन पुराण, गरुडपुराण, लिङ्गपुराण, स्कन्दपुराण, मत्स्य पुराण, नृसिंह पुराण तथा कपिल पुराण ।।५१-५२।। वाराह पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, ये सभी शकुन के विषय में श्रेष्ठ हैं । शिवपुराण, भागवतपुराण, दुर्गापुराण (देवीभागवत) भविष्योत्तर पुराण तथा भविष्य संज्ञक दूसरे पुराणों को त्याग देना चाहिए । संस्कार युक्त पुस्तक को खोलकर रत्न निर्मित चौकी पर रखे । पूजा करने वाले को स्नान करके पवित्र होकर धोती पहने रहना चाहिए, क्रोध नहीं करना चाहिए । सर्वप्रथम अपनी पूजा करके सङ्कल्प करे ।।५३-५५।। अङ्कुश, अक्षसूत्र, पाश तथा पुस्तक धारण करने वाली श्वेतवर्ण की तथा प्रसन्न मुख वाली सरस्वती का ध्यान करे ।।५६।। गौ के दुग्ध के समान श्वेत आकार वाले तीन नेत्र वाले, तथा वृषभ वाहन वाले शिवजी का ध्यान करे । उनका मुख हँसी से युक्त है, शान्त तथा एवं श्वेत वस्त्र धारण किए हुए शिवजी का ध्यान करे ।।५७।। वे शङ्करजी किरीट धारण

मूर्तिमद्भिस्तथा वेदैः स्तूयमानं पुराणकैः। अन्यैः समस्तलोकैश्च संसेवितपदाम्बुजम् ॥६०॥
ध्यात्वैवं पूजकः सम्यगादौ पूजां समारभेत् ।
आपो वा इदमित्येतत्कलशस्याभिमन्त्रणम् ॥६१॥
तज्जलं च गृहीत्वा च पात्रस्थमभिमन्त्रयेत्। तत्सद्ब्रह्मेति मन्त्रेण प्रशस्य प्रणवेन तु ॥६२॥
आत्मानं सर्वपात्राणि तत आवाहयेदिति। यद्वागितित्यृचेनैव भारती षोडशार्चनम् ॥६३॥
पुरुषसूक्तेन वा कुर्याद् गायत्र्या वा समर्चयेत् ।
ओं नमो भगवते अमुक पुराणायेति पुराणमर्चयेत् ॥६४॥
काण्डादिति हि मन्त्रेण दूर्वामानीय पूजयेत् ।
ओं नमो भगवत्यै दूर्वायै इति ॥६५॥
सलोकपालपूजास्यादथ कन्यासमर्चनम् । वत्सरात्पञ्चकादूद्र्ध्वं दशवर्षादधः शुभाः ॥६६॥
अनुत्पन्नऋतुर्वाऽपि तां प्रयत्नेन पूजयेत्। गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैदीपताम्बूलभूषणैः ॥६७॥
पाठयेदप्यमुं मन्त्रं पूजकः कन्यकामिमाम् ॥६८॥
सत्यं ब्रूहि प्रियं ब्रूहि भगवति सरस्वति नमस्ते नमस्त इति ॥६९॥
गायत्र्यानुक्रमार्थात्तुदृर्वायुग्मं तु कारयेत्। सन्निधौ पुस्तकस्याधः सहस्रपरमेत्र्यृचा ॥७०॥
दुर्वायुग्मत्रयंदद्यात्तस्या हस्ते विचक्षणः। साऽपि क्षिपेत्पुस्तसन्धौ शलाका त्रयमन्वनु॥७१॥

किए हुए है । शङ्करजी की ऊपर की दोनों भुजाओं में हरिण तथा अभय मुद्रा विद्यमान है । नीचे का दाहिना हाथ व्याख्या मुद्रा से युक्त है और बायाँ हाथ वरद मुद्रा से अलंकृत है ॥५८॥ उनका कमल निर्मित अनेक प्रकार के रत्नों से अलंकृत आधा शरीर पार्वतीजी का है । वे कमल के आसन पर विराजमान हैं। अनेक श्रेष्ठ मुनिगण शङ्करजी के चरण कमलों का ध्यान कर रहे हैं ॥५९॥ वेद तथा पुराण अपना शरीर धारण करके शङ्करजी की स्तुति कर रहे हैं । दूसरे जीव भी उनके चरणों की सेवा कर रहे हैं ॥६०॥ इस तरह से ध्यान करके पूजा करने वाले को पूजन प्रारम्भ करना चाहिए । **आपो वा इदम् इत्यादि** मन्त्र से कलश को अभिमन्त्रित करे ॥६१॥ उसी जल को लेकर पात्र में विद्यमान जल को अभिमंत्रित करे । उसके बाद **ओम् तत् सत्** इस मन्त्र से अपने शरीर तथा सभी पात्रों को अभिमंत्रित करे । उसके बाद सरस्वतीजी का आवाह्न करे तथा **यद वाक्** इत्यादि तीन मन्त्रों से सरस्वतीजी का षडशोपचार पूजन करे ॥६२-६३॥ अथवा पुरुष सूक्त से या गायत्री मन्त्र से सरस्वतीजी का पूजन करे । उसके बाद **ओम् नमो भागवते अमुक पुराणाय** इस मन्त्र से पुराण की अर्चना करे । फिर **काण्डात् काण्डात्** इस मन्त्र से दूर्वा लाकर **नमो भगवत्यै दुर्वायै** इस मन्त्र से दुर्वा की पूजा करे ॥६४-६५॥ इसके बाद लोकपालों की पूजा करके कन्या पूजन करे । पूजन के लिए पाँच वर्ष से अधिक और बारह वर्ष पर्यन्त की कन्यायें शुभ होती हैं ॥६६॥ प्रयास करना चाहिए कि कन्याएँ कभी ऋतुमती नहीं हुयी हों । उन कन्याओं का पूजन चन्दन, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, ताम्बूल तथा भूषणों से करनी चाहिए ॥६७॥ पूजा करने वाले को चाहिए कि वह कन्या से इस मन्त्र का उच्चारण करवायें । **सत्यं ब्रूहि प्रियं ब्रूहि भगवति सरस्वति नमस्ते नमस्ते** अर्थात् हे भगवती सरस्वती ! आप सत्य और प्रिय बोलें, आपको बारम्बार नमस्कार हैं ॥६८-६९॥ उसके बाद दो दूबों को गायत्री अथवा **गायत्री त्रिष्टुपम इत्यादि** मन्त्र से अभिमन्त्रित करे । पुस्तक के सन्निकट में नीचे

विसृज्यतां पुनर्दद्याच्छिवाभ्यां नमइत्यथ। पत्रयोर्मध्यम:श्लोक: कार्यसिद्धेर्हि सूचक:॥७२॥
पूर्वपत्रे समाप्तिः स्याच्छ्लोकस्य यदि राघव ! ।
परपत्रे पठेच्छ्लोकं विविच्यार्थमुदीरयेत् ॥७३॥
शनैः शनैः पठेत्प्राज्ञो व्याख्यायेच्च शनैः शनैः ।
त्वरेह नहि कर्तव्या कुप्यति त्वरया तु गीः ॥७४॥
घटिकावास्तुपाद:स्यादत्वरास्यात्ततोऽधिका। त्वरयेन्नच वक्तारं ज्ञातं व्यासमनुद्विजम् ॥७५॥
विविच्य पाठं श्लोकस्यनिश्चित्यार्थं च मानसे ।
प्रतीपं तत्र वक्तव्यं विविच्य रघुनन्दन ॥७६॥
यदि युक्तमयुक्तं वा श्लोकमन्यं पठेदसौ। पुस्तकस्थं च हित्वैव पूजकः स द्विजोयदि ॥७७॥
तत्तथैव हि विज्ञेयं विसंवादो न शस्यते। दैवागतो हि स श्लोको दैवं हि बलवत्तरम् ॥७८॥
उपश्रुतिषु यद्वच्च नापराधो द्विजस्य तु । विस्मयो न च कर्तव्यो दैवस्य कुटिला गति:॥७९॥
यत्तत्पदविपर्यासे पत्रे चोपरि वारिणि। तमादेशं तिरस्कृत्य द्वितीयं तु पठेदतः ॥८०॥
ततस्तृतीयं पाठ्यं स्यात्तत:कार्यं विवेचनम्। अविसर्गान्तपूर्वास्ते पवर्गेतरपञ्चमाः ॥८१॥
स्तुतिलिङ्वर्जितः श्लोकः शकुनेषु प्रशस्यते ।
अध्यायादिः समाप्तिश्च वृथा पत्रं वृथा लिपिः ॥८२॥

सहस्त्र परम् इस मन्त्र से तीन जोड़े दूबो को उस कन्या के हाथ में दे । वह तीनों दूर्वों को पुस्तक के ऊपर शालाका के रूप में डाले ॥७०-७१॥ उसको छोड़कर **शिवाभ्यां नमः** इस मंत्र से उसे पुनः दे । यदि दो पत्रों के बीच में श्लोक आ जाय तो वह कार्य की सिद्धि का सूचक होता है ॥७२॥ हे राघव ! यदि पहले पत्ते के प्रारम्भ में श्लोक की समाप्ति हो जाय तो दूसरे पत्ते पर विद्यमान श्लोक का विवचेन करके उसका अर्थ बतलाना चाहिए ॥७३॥ प्राज्ञ पुरुष को धीरे-धीरे पढ़ना चाहिए और उसकी व्याख्या भी धीरे-धीरे करनी चाहिए । उसमें शीघ्रता नहीं करनी चाहिए क्योंकि शीघ्रता करने पर सरस्वती क्रुद्ध हो जाती हैं ॥७४॥ वह एक घटी में एक पाद की व्याख्या करे । उससे अधिक समय लगने पर त्वरा नहीं होती है । ज्ञातव्य अंश को जानने के विषय में ब्राह्मण को शीघ्रता नहीं करना चाहिए ॥७५॥ हे रघुनंदन! श्लोक के पाठ का विवेचन करके, और उसके अर्थ का मन में निश्चय करके उसके विपरीत कोई बात नहीं कहना चाहिए ॥७६॥ वह अर्थ यदि अनुकूल हो अथवा प्रतिकूल हो, तो दूसरे श्लोक को पढ़ना चाहिए। यदि पूजा करने वाला ब्राह्मण हो तो पुस्तक के श्लोक को छोड़कर दूसरा श्लोक पढना चाहिए ॥७७॥ उसका अर्थ वैसा ही समझना चाहिए उसमें तर्क करना उचित नहीं होता है । यदि भाग्यवशात् वही श्लोक दूसरा भी आ जाय तो भाग्य को ही बलवान् समझना चाहिए ॥७८॥ उन श्रुतियों में जैसा होता है, उसमें ब्राह्मण का कोई आपराध नहीं होता है । भाग्य की गति कुटिल होती है, इस बात को सोचकर उसके विषय में कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिए ॥७९॥ पत्रे की ऊपर वाली पंक्ति में जो कुछ भी पद का विपर्यास होता है तो उस आदेश को त्यागकर उसके बाद की पंक्ति को पढ़ना चाहिए ॥८०॥ उसके बाद तीसरे शलाका वाले श्लोक को पढ़ना चाहिए और उसका विवेचन करना चाहिए । जिनका पूर्वपद विसर्ग रहित हो तथा पाँचवाँ पद पर्वग का न हो ॥८१॥ वह श्लोक यदि स्तुति परक न हो तो वह शकुन के

उक्तानुवचनं चैव ह्यपस्तुतमथैव च। दग्धपत्रं नष्टलिपिः सन्दिग्धाक्षरमेव च ॥८३॥
एतानि शकुने नित्यं वर्जनीयानि पण्डितैः। प्रश्नो हि द्विविधो ज्ञेयो दीप्तशान्तप्रभेदतः ॥८४॥
शान्तं च द्विविधं ज्ञेयमुत्पत्तिस्थितिवृद्धिजः। तत्र शान्तं प्रशस्तं स्याल्लक्षितं पूर्वलक्षणैः ॥८५॥
कार्यभेदास्तु वर्ण्यन्ते केचिन्मर्त्योपयोगिनः। कस्यचित्कार्यमादाय कश्चित्प्रष्टा भवत्यपि ॥८६॥
स करोति तदा प्रश्नं समेत्य स्मरतेऽत्र किम्।
स पुनर्धार्यपत्रं तत्तस्मिन्पत्रं प्रशस्यते ॥८७॥
अथवा तत्क्षमोपेतं वैराग्यं परमेव च। यतः कुतश्चिद्दृष्टस्तु स्तुतिपादकमेव च॥८८॥
परिहृत्य परं चापि तस्मिन्नर्थे शुभावहम्। मृतो गृह्णाति वागर्थमिति प्रश्नोऽशुभप्रदः॥८९॥
विवादे विजयप्रश्ने जयद्योतकमिष्यते। सृष्टिरप्यत्र शस्ता स्यात्क्रूरायां क्लेशतोजयः ॥९०॥
प्रशान्तायामुपायैस्तु मिश्रायां विड्वरो भवेत्।
पुरादिवर्णनं यत्तु मध्यमं यदि चोत्तमम् ॥९१॥
कलिसम्भावनायास्तु शृङ्गारस्योपवर्णने। राज्यनिर्वाहचिन्तायां राज्यलिङ्गं शुभावहम्॥९२॥
यस्यापि यादृशं योग्यं विचार्यतादृशं बुधैः। स्तुतिवैराग्ययोःकार्यं विलयः परिकीर्तितः ॥९३॥
कार्याल्पसिद्धि स्खलिते न च निर्वाहमृच्छति।
तस्यान्यार्थस्यान्यभावो राम ! शान्तिविचारणे ॥९४॥

कार्य में उत्तम होता है। जिस अध्याय के आदि और अन्त में व्यर्थ पत्र तथा व्यर्थ वर्ण हो ॥८२॥ कहे गये वचन का अनुवाद हो अथवा कोई बात दोहरिया कर कही गयी हो। वह ग्रन्थ का पत्रा जला हुआ हो, या उसकी लिपि नष्ट हो गयी हो, अथवा उसका अक्षर संदेहास्पद हो तो पण्डितों को चाहिए कि वे ऐसे ग्रन्थ का उपयोग शकुन के कार्य में न करें। प्रश्न भी दो प्रकार के होते हैं दीप्त और शान्त ॥८३-८४॥ शान्त प्रश्न भी दो प्रकार के होते हैं उत्पत्ति एवं स्थिति विषयक और वृद्धि विषयक शान्त प्रश्न पूर्वोक्त लक्षण से युक्त प्रशस्त एवं ललित होता है ॥८५॥ अब मनुष्यों के लिए उपयोगी कार्यों के कुछ भेदों का निरूपण किया जा रहा है। किसी दूसरे के कार्य के विषय में यदि कोई दूसरा प्रश्न करता है ॥८६॥ तो वह जब प्रश्न करता है तो वह पूर्ण रूप से उसे स्मरण करता है कि नहीं। वह पुनः उस पत्र को लेकर यदि प्रश्न करता है तो उस प्रश्न में पत्र का होना प्रशस्त होता है ॥८७॥ अथवा वह क्षमा से युक्त है, अथवा संसार से विरक्त है, या उसकी स्तुति (प्रशंसा) करने वाला है ॥८८॥ इन तीनों में से स्तुति पाठक को छोड़कर शेष दो प्रश्न कर्ता शुभ होते हैं। यदि उसकी वाणी का सम्बन्ध मृत व्यक्ति से हो तो वह अशुभ होता है ॥८९॥ विवाद विषयक तथा विजय विषयक प्रश्नों में विजय विषयक प्रश्न श्रेष्ठ होता है। इस विषय में सृष्टि भी प्रशस्त होती है। क्रूर सृष्टि विषयक प्रश्न के होने पर कठिनाई से विजय प्राप्त होता है ॥९०॥ प्रशान्त सृष्टि विषयक प्रश्न के होने पर उपाय के द्वारा विजय मिलती है। प्रशान्त तथा क्रूर दोनों को मिश्रित होने पर विड्वर (संशयास्पद) ही होता है। यदि उस श्लोक में इतिहास आदि का वर्णन हो तो वह प्रश्न मध्यम अथवा उत्तम कोटि का होता है ॥९१॥ यदि उसका सम्बन्ध शृङ्गार के वर्णन से होता हो तो उसमें कलह की सम्भावना होती है। यदि उसका सम्बन्ध राज्य के निर्वाह विषयक होता है तो वह राज्य कार्यों के लिए शुभावह होता है ॥९२॥ जिसके लिए जो योग्य होता है, उसी तरह से

विसर्गान्तिश्च पूर्वार्द्धविपर्यासौ भविष्यतः। सङ्कल्पितान्यथाभावो ह्यध्यायस्य समापने॥९५॥
काण्डादेस्तु समाप्तौ तु स्यात्तत्कार्यविनाशनम् ।
तस्मादेतादृशे दोषे शकुनस्य विपर्ययः ॥९६॥
क्षुते पुस्तकपाते च त्वाहते मस्तकादिषु। वक्ता वैमाननं याति ततः शकुननाशनम्॥९७॥
तस्मादेतादृशे दोषे शकुनं परिवर्जयेत्। उपमायां भवेद्राम कार्याभासो न वस्तुतः॥९८॥
सन्तानं भोऽन्यत्र चोक्ता सृष्टिर्मध्यफलप्रदा। स्तुतिःप्रशस्ता कुत्रापि गुणवत्कार्यनिर्णये॥९९॥
विवाहे चौषधे दानेव्यवहारे कृषौ तथा। यथार्था च स्तुती राम निर्वहेऽपि न दूषणम्॥१००॥
अयथार्था स्तुतिर्याहि तत्र कार्यं न सिध्यति ।
अबुद्धार्थे तथा पद्ये पुराणादिष्वनादृते ॥१०१॥
पलायने देशभावे व्याधिसम्भव एव च। चौराद्यभिभवे तस्मिन्घोरकार्यविनाशनम् ॥१०२॥

राम उवाच

अबुद्धार्थं कथं पद्मं पुराणज्ञो वदिष्यति ।
अनुक्तो न श्रुतः सम्यक् श्रोतृणामिति निश्चयः ॥१०३॥
तदुदाह्रियतां मह्यमर्थश्चापि विचार्यताम्। भागाबोधकमप्यत्र वक्तुमर्हसि पण्डित !॥१०४॥

विचार कर विद्वानों को उसका पर्यवसान स्तुति अथवा वैराग्य में करना चाहिए ॥९३॥ किसी वर्ण के स्खलित होने पर कार्य की अल्पसिद्धि जाननी चाहिए। कार्य का निर्वाह नहीं हो पाता है। हे राम ! यदि दूसरे अर्थ का भाव यदि दूसरा हो तो उसका विचार करने पर शान्ति रूप फल होता है ॥९४॥ यदि उस श्लोक के पूर्वार्द्ध के अन्त में विसर्ग हो या वर्णों का विपर्यास हो अथवा अध्याय का अन्तिम श्लोक होने पर सङ्कल्पित अर्थ के विपरीत ही फल होता है ॥९५॥ यदि वह श्लोक काण्ड आदि का आदि श्लोक हो अथवा काण्ड का अन्तिम श्लोक हो तो वह उस कार्य का विनाश करने वाला होता है। इस तरह का दोष होने पर शकुन का फल उलटा होता है ॥९६॥ पुस्तक के छूट जाने पर या पुस्तक के गिर जाने पर, अथवा किसी के द्वारा मस्तक पर मारे जाने पर वक्ता का अपमान होता है और उसके कारण शकुन का नाश हो जाता है ॥९७॥ अतएव इस तरह का दोष होने पर शकुन नहीं करना चाहिए हे राम ! उपमा के होने पर कार्य के होने का अभास मात्र होता है, किन्तु कार्य होता नहीं है ॥९८॥ गुणवान् कार्य का निर्णय करने में, दूसरे स्थान में संतान (विस्तार) होता है। सृष्टि का वर्णन होने पर वह मध्यम कोटि का फल प्रदान करने वाली होता है। स्तुति रूप अर्थ होने पर वह प्रशस्त होता है ॥९९॥ हे राम ! विवाह, औषधि, दान, व्यवहार तथा कृषि के विषय में प्रश्न होने पर स्तुति यथार्थ होती है, और उसके निर्वाह में भी किसी प्रकार का दोष नहीं होता है ॥१००॥ जिस विषय में स्तुति यथार्थ नहीं होती है, उस विषय में कार्य की सिद्धि नहीं होती है। पुराणों के पद्य के अर्थ को जाने बिना अथवा किसी पुराण आदि का अनादर करने पर ॥१०१॥ अथवा देश से पलायन करने पर अथवा व्याधि की उत्पत्ति होने पर चोर आदि के द्वारा अभिभव हो जाने पर कार्य का भयङ्कर विनाश होता है ॥१०२॥ इतिहासज्ञों ने कहा कि यदि प्रश्न शान्त हो तो ऐसा होता है। **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** पुराण का ज्ञाता पद्य के अर्थ को जाने बिना कैसे कह सकता है ?॥१०३॥ जो कहा ही न गया हो, जो श्रोताओं को अच्छी तरह सुनायी नहीं पड़ा हो।

शम्भुरुवाच

मधूनि च मधून्यत्र मधुर्मधुभुजं मधुः । मधुनामधुनादर्थविषाणि च विशाणि च ॥१०५॥
अबुद्धार्थस्त्वयं श्लोकः शकुनेन हि शस्यते ॥१०६॥
रुते रुते रुते रोरौ रीरीरारंररीररम् । एवं करोति शुद्धात्मा ब्राह्मणो ब्रह्मतोऽतिथिः॥१०७॥
भागाबुद्धस्त्वयं श्लोकः शकुनेन प्रशस्यते। एवमादीनि पद्यानि पुराणेषु रघूत्तम ! ॥१०८॥
सन्ति तेषां न च व्याख्या तत्पाठस्तु परं भवेत् ।
वक्तुः श्रोतुरवैगुण्यं व्रतेषु नियमेषु च ॥१०९॥
वेदवच्च पुराणानि न चिन्त्यानि कथंन्विति ।
त्रिरुक्तादिवशादर्थधीरप्यस्तु विचारतः ॥११०॥
श्लोकार्थं प्रक्रियां चैवविचार्य परमार्थतः। बलवांस्तत्र हि श्लोकःप्रक्रिया तु ततो लघुः॥१११॥
वृथा पत्रे वृथायासे दग्धपत्रे विनाशनम्। स्यादन्तरितनिर्वाहपत्रे कार्यविसूत्रता ॥११२॥
शीर्णपत्रे व्ययः प्रोक्तः प्रनष्टलिपिके तथा। वृथाक्षरे बृथायासः पुनरुक्ते विसंविदे ॥११३॥
उपमाने तु तत्कार्यं सिध्यति वा न सिध्यति ।
विलम्बेनाथ वा सिद्धिरस्पष्टाक्षरके पुनः ॥११४॥
कार्यं संशयमाप्नोति निर्दिष्टदिवसेष्वपि। न प्रत्यहं निरीक्षेत पुराणशकुनं नृपः ॥११५॥

इसी को अबुद्धार्थ कहते हैं क्या ? इसे आप मुझे बतलायें और उसके अर्थ का विचार करें आप ॥१०४॥ हे पण्डित । आप भागावोधक पद्य भी कहें । **शङ्करजी ने कहा**— निम्नाङ्कित श्लोक अबुद्धार्थक हैं— **मधूनि च मधून्यत्र मधुर्मधुभुजं मधुः । मधुना, मधुनाद्यर्थं विषाणि च विशणि च ।** इसतरह के श्लोक शकुन के कार्य में प्रशस्त नहीं होते हैं । निम्नाङ्कित श्लोक भागाबुद्ध हैं— **रुते रुते रुते रो रौ री री रा रं ररीरम् । एवं करोति शुद्धात्मा ब्राह्मणो ब्रह्मणोऽतिथिः ।** इस तरह के भी श्लोक शकुन में प्रशस्त नहीं होते हैं । हे श्रीराम ! इस तरह के श्लोक पुराणों में पाये जाते हैं ॥१०५-१०८॥ इसतरह के जो श्लोक हैं उनकी व्याख्या न करे उन श्लोकों का पाठ ही कर देना श्रेष्ठ हैं । ऐसा करने से श्रोता तथा वक्ता दोनों के व्रतों और नियमों में कोई दोष नहीं होता है ॥१०९॥ वेदों के समान पुराणों का भी चिन्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है; क्योंकि तीन बार कहने से उसके अर्थ का ज्ञान हो जाता है तथा विचार करने से भी अर्थ का ज्ञान हो जाता है ॥११०॥ परमार्थतः श्लोक के अर्थ की प्रक्रिया का विचार करना ही बलवान होता है, श्लोक की प्रक्रिया तो उसकी अपेक्षा दुर्वल होती है ॥१११॥ शकुन ग्रन्थ के पत्रे के व्यर्थ होने पर, व्यर्थ के प्रयास करने पर तथा पन्ना के जला हुआ होने पर कार्य का विनाश होता है। उसके बीच में निर्वाह करने के लिए पन्ना लगाये जाने पर कार्य विशृंखलित हो जाता है ॥११२॥ यदि ग्रन्थ का पन्ना सड़ गया हो तो कार्य के होने में व्यय होगा, लिपि के नष्ट हो जाने पर भी वैसा ही फल होता है यदि उसके अक्षर व्यर्थ हैं तो कार्य के लिए प्रयास करना व्यर्थ होता है, पुनरुक्ति, विसंवाद तथा उपमा होने पर संशय होता है कि कार्य सिद्ध होगा कि नहीं होगा । अक्षर के अस्पष्ट होने पर इस बात की सूचना होती है कि हो सकता है कि कार्य विलम्ब से सिद्ध हो ॥११३-११४॥ निर्दिष्ट दिनों के होने पर कार्य होने में संशय बना रहता है । राजन् ! प्रतिदिन शकुन का भी विचार नहीं करना चाहिए ॥११५॥

भुक्त्वोत्तिष्ठंस्तथा नैव निरीक्षेत पुराणकम् ।
पूर्वस्य दिवसस्याथ रात्रौ पूजां विधाय च ॥११६॥
प्रातःकाले परेद्युश्च शकुने रघुनन्दन । पश्चान्निरीक्षणं कार्यं सद्यः कालमथापि वा ॥११७॥
प्रक्रियादिविशेषेण विशेषं शकुनं वदेत् । शुभकार्येषु सर्वेषु प्रेतश्राद्धादिवर्जनम् ॥११८॥
दण्डप्रणयनं शापो देशानां च विपर्ययः । रक्षसां दुष्टसत्त्वानां शुद्धं प्राणिविहिंसनम् ॥११९॥
दहनादेव निर्माणं ष्ठीवनं वमनं रुदीः । हासो बीभत्सता दुःखदुःस्वप्नभ्रमपापकाः ॥१२०॥
पटादिपूरणं पीडा कलहो मरणं तथा । क्रूराणामागमश्चापि महतां भयमेव च ॥१२१॥
एवमाद्यास्तथा चान्याः प्रक्रियास्तु विवर्जयेत् ।
श्रियः प्राप्तिविचारे च राजसृष्टिः सुखावहा ॥१२२॥
ग्रहाणामुदयो रोगशान्तिरप्यत्र शस्यते । किमत्र बहुनोक्तेन तत्तद्योगं विचारयेत् ॥१२३॥
सर्वेषु च पुराणेषु स्कान्दमत्र प्रशस्यते । वैष्णवं केचिदिच्छन्ति रामायणमथापरे ॥१२४॥
सत्यादिसर्वदोषाणां वैष्णवे नैव दोषता । स्कान्दे रामायणे चैवदोषत्वमपि चाल्पता ॥१२५॥
किं तु पूजयितुं शक्यं वैष्णवं नैव केनचित् ।
सदाचारविहीनेन पूजितं यदि चेद्भवेत् ॥१२६॥
तदा शुभमिवायाति शकुनं नैव सिध्यति । सर्वाचारसमोपेते शाखाबन्धे यथा वृषः ॥१२७॥

सूत उवाच

इत्थं शम्भुद्विजेनाथ बोधितो राघवस्तदा । विभीषणपरीक्षायां शकुनायोपचक्रमे ॥१२८॥

भोजन करके उठने पर भी पुराण को नहीं देखना चाहिए । पूर्वदिन की पूजा रात्रि में करके ॥११६॥ हे रघुनंदन! दूसरे दिन शकुन होने पर उसके पश्चात् सद्यः ही अथवा कुछ काल बाद पुराण का निरीक्षण करना चाहिए॥११७॥ विशेष शकुन को विशेष प्रक्रिया से ही करना चाहिए किसी भी शुभ कार्य में हुए मरे का श्राद्ध आदि नहीं करना चाहिए ॥११८॥ किसी को दण्ड देना, शाप देना, देश से निकालना, राक्षस तथा दुष्ट प्राणियों की हिंसा करना शुद्ध है । अग्नि से निर्माण करना, थूकना, वमन करना, रोना, हँसना, वीभत्सता जन्य दुःख, खराब स्वप्न देखना ये सब पाप हैं ॥११९-१२०॥ वस्त्र आदि वनाना, पीड़ा, कलह, मृत्यु, क्रूर जीव का आना, महापुरुषों के लिए उपस्थित होना ॥१२१॥ ये सभी तथा इसी तरह की दूसरी प्रकियों का त्याग कर देना चाहिए । लक्ष्मीप्राप्ति का विचार करने पर राजसृष्टि सुखद होती है॥१२२॥ इस विषय में ग्रहों का उदय होना तथा रोग की शान्ति हो जाना अच्छा शकुन है । इस विषय में बहुत अधिक क्या कहना है, इसी तरह से विभिन्न योगों का विचार करना चाहिए ॥१२३॥ शकुन का विचार के लिए स्कन्द पुराण को सबसे अच्छा पुराण माना जाता है । कुछ लोग विष्णु पुराण को अच्छा मानते हैं और कुछ लोग रामायण को अच्छा मानते हैं ॥१२४॥ सत्य आदि सभी दोषों को वैष्णव पुराण के अनुसार दोष माना जाता है । स्कन्द पुराण तथा रामायण में दोष भी अल्प हो जाता है ॥१२५॥ किन्तु विष्णु पुराण की पूजा कोई नहीं कर सकता है । यदि कोई सदाचार विहीन व्यक्ति उसका पूजन करता है तो ॥१२६॥ तो फिर अशुभ होता है और शकुन सिद्ध नहीं होता है । जैसे सभी सदाचारों का पालन करने वाला व्यक्ति यदि किसी बैल को शाखा में बाँधता है तो उसको पाप ही होता है ॥१२७॥ **सूतजी ने**

वसिष्ठं सर्वतत्त्वज्ञं पुराणेषु विशारदम्। बभाषे राघवो वाक्यं पुराणं वीक्ष्यतामिति ॥१२९॥
वसिष्ठोऽप्याह रामं तं मुनेश्चामुष्यसन्निधौ। वक्तुं निरीक्षितुं राम न शक्तिर्मम विद्यते ॥१३०॥
शम्भुं प्राह ततो रामो मुनिसम्प्रेक्षिताननम्। भवन्तोऽपि हि तत्त्वज्ञाः पुराणेषु विशारदाः॥१३१॥
तद्वदन्तु पुराणस्थं शकुनं मम कार्यतः ।
तथेति शम्भुरुक्त्वा तु शुचिर्भूत्वाऽर्चकोऽभवत् ॥१३२॥
स्कान्दमभ्यर्च्य विधिवत्प्रश्नं कृत्वोति तत्त्वतः ।
स किं शृङ्खलया बद्धो मम भक्तो विभीषणः ॥१३३॥
अमी दृष्टास्तदा श्लोकास्त्रय आदेशकास्त्रिधा ॥१३४॥
बद्ध्वा समुद्रं स तु राघवेन्द्रो रुरोध पुर्यां क्षणदाचरेन्द्रान् ।
योद्धुं विनिर्गत्य समाययुस्ते लङ्कापुरश्चाप्यतिकायमुख्याः ॥१३५॥
अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः। प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यन्ति कलौ युगे॥१३६॥
एवं स्तुतो महेशस्तु देवताः प्राह वै शिवः ।
मोचयिष्ये भवत्पत्नीर्मल्लासुरनिरोधिताः ॥१३७॥
श्लोकत्रयं निरीक्ष्याथ बन्ध्यनिश्चयमुक्तवान् । मोचनं त्वरया राम भविष्यति न संशयः ॥१३८॥
इति श्रुत्वामुनेर्वाक्यं रामः स मुनिवानरः । कर्तुं विनिर्ययौ शीघ्रं विभीषणगवेषणम् ॥१३९॥
श्रीरङ्गनामनगरं त्वरया प्रविवेश ह। रामं ते पूजयामासुः पार्थिवास्तत्र ये स्थिताः॥१४०॥

कहा— इस तरह से शम्भु नामक व्राह्मण के द्वारा कहे जाने पर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी विभीषण की परीक्षा के विषय में शकुन करना प्रारम्भ किए ॥१२८॥ सभी तत्त्वों के ज्ञाता तथा पुराणों में निपुण महर्षि वसिष्ठ को उन्होंने पुराण देखने के लिए कहा ॥१२९॥ महर्षि वसिष्ठ ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा कि इन मुनि के सन्निकट में पुराणों का निरीक्षण करने और उसका फल बतलाने की शक्ति मुझमें नहीं है ॥१३०॥ उसके बाद श्रीरामचन्द्रजी ने शम्भु मुनि का मुख देखकर उनसे कहा आप भी तो तत्त्वज्ञ और पुराणों के विषय में निपुण हैं ॥१३१॥ अतएव आप ही मेरे कार्य के विषय पुराण में विद्यमान शकुन बतलायें । उसके बाद शम्भु ने कहा ठीक है । उसके बाद वे पवित्र होकर पूजन किये ॥१३२॥ उन्होंने स्कन्द पुराण की पूजा सविधि की उसके बाद उन्होंन तात्त्विक रूप से प्रश्न किया कि मेरा भक्त विभीषण वेणी में कैसे बँध गया?॥१३३॥ उसके बाद वहाँ तीन आदेशों के द्वारा तीन श्लोक देखे गये ॥१३४॥ वे श्लोक थे राघवेन्द्र श्रीराम ने समुद्र को बाँधकर राक्षस श्रेष्ठों को घेर लिया । उसके बाद लङ्कापुरी से निकलकर अतिकाय आदि युद्ध करने के लिए आये ॥१३५॥ कलियुग में सभी जनपद अट्टालिका प्रधान हो जायेंगे। सभी व्राह्मण दान लेने वाले हो जायेंगे, नारियों का प्रधान आभूषण केश ही हो जायेगा । इसतरह से स्तुति करने पर महेश ने कहा कि आपके देवता शिव हैं । मैं बड़े-वड़े असुरों का निरोध करके आपकी पत्नी को मुक्त करूँगा ॥१३६-१३७॥ इस तरह से इन तीन श्लोकों को देखकर शम्भु ने कहा कि विभीषण का बंधन निश्चित है; किन्तु हे राम ! विभीषण की मुक्ति भी शीघ्र हो जायेगी इसमें कोई संशय नहीं है॥१३८॥ इस तरह से मुनि के वाक्य को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी मुनि तथा वानर के साथ विभीषण को खोजने के लिए शीघ्र चल पड़े । वे शीघ्रता पूर्वक श्रीरङ्गम् नामक नगर में प्रवेश किये । वहाँ पर जितने राजा थे उन

पूजितस्तानुवाचाथ क्व स्थितोऽसौ विभीषणः ।
देव ! श्रीराम ! न वयं जानीमस्तु कथामिमाम् ॥१४१॥
प्रेषयामास काकुत्स्थो वानरान् सर्वतो दिशः ।
ततो गत्वा कपिवरा दृष्टवन्तो न चैव तम् ॥१४२॥
अथ रामो मुनिं प्राह शम्भुं पश्चाद्वदस्व मे। तथेति रामसहितो मुनिः शम्भुर्द्विजान्वितः ॥१४३॥
दर्शयेति तथैवेति विप्रघोषं जगाम सः । पृष्टास्तेऽपि द्विजास्तत्र दर्शयामासुरर्चिताः ॥१४४॥
अन्तर्भूमिगृहे बद्धं राक्षसं बहुशृङ्खलैः । अथाह राघवो विप्राः किमनेन कृतं त्विति ॥१४५॥
तैरुक्तं ब्रह्महत्येति वृद्धो ब्राह्मणसत्तमः ।
द्विजोऽतिधार्मिकः कश्चिदेकान्ते प्रवयाः कृशः ॥१४६॥
ध्यानायोपवने तस्थौ तत्र गत्वा विभीषणः ।
पादेनाधर्षयद्विप्रं स विप्रोऽप्यतिचूर्णितः ॥१४७॥
पदमेकमतो गन्तुं न शशाक विभीषणः । अस्माभिस्ताडितो दुष्टो न ममार वधैरपि ॥१४८॥
अतो राम ! निहन्यैनं पापात्मानं वृषी भव ।
रामः संशयमापन्नो विप्रानिदमुवाच ह ॥१४९॥
वरं ममैव मरणं मद्भक्तो हन्यते कथम् । राज्यमायुर्मया दत्तं तथैव स भविष्यति॥१५०॥
भृत्यापराधे सर्वत्र स्वामिनां दण्ड इष्यते। रामवाक्यं द्विजाःश्रुत्वा विस्मयादिदमब्रुवन्॥१५१॥

द्विजा ऊचुः

न पट्टबद्धमरणं भो राम मुनिसंमतम् । वसिष्ठादिमुनीन्द्रैस्तु विचारं कुरु यद्धितम्॥१५२॥

सबों ने श्रीरामचन्द्रजी की पूजा की ॥१३९-१४०॥ पूजित होने के बाद श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा कि विभीषणजी कहाँ है ? इस पर उन लोगों ने कहा महाराज श्रीराम ! इस विषय में हमलोग कुछ भी नहीं जानते हैं॥१४१॥ श्रीरामचन्द्रजी ने वानरों को विभीषणजी का पता लगाने के लिए सभी दिशाओं में भेजा । वहाँ से जाकर वे वानरश्रेष्ठ विभीषणजी का पता नहीं लगा पाये ॥१४२॥ उसके बाद भगवान् श्रीराम ने शम्भु मुनि से पता बतलाने के लिए कहा । ठीक है इस तरह से कहकर शम्भु मुनि किसी ब्राह्मण की झोपड़ी में गये । पूछने तथा पूजा करने पर वे ब्राह्मण विभीषणजी को दिखलाये ॥१४३-१४४॥ वहाँ पर विभीषणजी अनेक प्रकार की बेड़ियों से भूमि के नीचे बँधे हुए थे । इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी ने कहा— ब्राह्मणों इन्होंने कौन सा अपराध किया है ?॥१४५॥ उन ब्राह्मणों ने कहा कि इन्होंने ब्रह्महत्या की है । एक वृद्ध ब्राह्मण श्रेष्ठ थे । वे अत्यन्त वृद्ध, दुर्बल थे और एकान्त में वे ध्यान करने के लिए उपवन में गये थे । वहाँ पर विभीषण उस ब्राह्मण को इन्होंने अपने पैरों से रगड़कर चूर-चूर कर दिया ॥१४६-१४७॥ उसके कारण विभीषण एक डग भी नहीं चल सके । हमलोगों ने इस दुष्ट को मारा और मार डालना चाहा किन्तु मर नहीं सके ॥१४८॥ अतएव हे श्रीराम ! आप इसका वध करके धर्मवान् बन जायँ यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजी संशयग्रस्त हो गये, उन्होंने ब्राह्मणों से कहा ॥१४९॥ मेरा ही मर जाना अच्छा है, मेरा भक्त कैसे मरेगा ? मैंने इसे राज्य और आयु प्रदान किया है, और वह वैसा हो गया ॥१५०॥ जब भृत्य अपराध करता है तो सर्वत्र उसके स्वामी को दण्ड दिया जाता है । श्रीरामचन्द्रजी के वाक्य को सुनकर

रामपृष्टा मुनिवराः प्रायश्चित्तमथोचिरे। अज्ञानब्रह्महत्या तु प्रायश्चित्तैरपोह्यते ।।१५३।।
इयमज्ञानतो हत्या प्रायश्चित्तमपेक्षते । गवां च त्रिशतं षष्टिं ददातु च विभीषणः ।।१५४।।
बन्धकाश्चापि ते विप्रास्तथेत्यूचुः परस्परम्। मोचयिष्यामस्तद्रक्षः प्रायश्चित्तं करोतु सः ।।१५५।।
विमुच्य राक्षसं विप्रा राघवस्य न्यवेदयन्। रामोऽपि नाभिभाषेत्तं प्रासङ्गिकमभाषत।।१५६।

स्नात्वा पृष्ट्वामुनीन्कुद्धान्प्रायश्चित्तमतः परम् ।
द्विजानुमतितःपापीमामुपैक्षतु राक्षसः ।।१५७।।

श्रुत्वेति राघववचो राक्षसः पापसंयुतः । प्रायश्चित्तमृषिप्रोक्तं कृत्वा राममथाभ्यगात् ।।१५८।।
प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा ननाम रघुनन्दनम्। रामस्तं प्रहसन्वाक्यमिदमाह सभान्तरे।।१५९।।

श्रीराम उवाच

अद्य प्रभृति पौलस्त्य विमृश्य कुरु यद्धितम् ।
अस्माकं त्वत्कृते रक्षःप्रयासोऽयमभूद्यतः ।।१६०।।

कृपालुर्भव सर्वत्र भृत्यो मम यतो भवान्। अथ ते मुनयः सर्वे निश्चितार्थे रघूत्तमे।।१६१।।
ऊचुरस्माकमज्ञानं कथं शीघ्रमुपागतम् ।।१६२।।

शम्भुरुवाच

विप्रावज्ञानतो विप्रा अज्ञानं नाशमेष्यति (ना समेष्यति) ।।१६३।।

ब्राह्मण आश्चर्यित हो गये और कहे ।।१५१।। **ब्राह्मणों ने कहा—** श्रीरामचन्द्रजी ! मुनियों के अनुसार पट्टाभिषिक्त राजा को नहीं मारना चाहिए । अतएव आप वसिष्ठ आदि मुनीन्द्रों से हितकारी विचार करें । इसके बाद पूछने पर मुनीन्द्रों ने प्रायश्चित्त बतलाया । अज्ञान वशात् ब्रह्महत्या हो जाने पर प्रायश्चित के द्वारा वह विनष्ट हो जाती है ।।१५२-१५३।। यह हत्या अज्ञान वशात् हुयी है अतएव इसका प्रायश्चित करना चाहिए। विभीषण को तीन सौ साठ गायें दान करनी चाहिए ।।१५४।। बाँधने वाले उन ब्राह्मणों ने भी कहा ठीक है । हमलोग इस राक्षस को छोड़ देते हैं, यह उस दान को करे ।।१५५।। विभीषण को खोलकर ब्राह्मणों ने उन्हें श्रीरामचन्द्रजी को निवेदित कर दिया । श्रीरामचन्द्रजी ने विभीषण से बातें नहीं की । उन्होंने प्रासङ्गिक बात कही ।।१५६।। स्नान करके, क्रुद्ध मुनियों से आज्ञा लेकर उसके बाद प्रायश्चित करना चाहिए फिर ब्राह्मणों से अनुमति प्राप्त करके विभीषण मेरे पास आयें ।।१५७।। श्रीरामचन्द्रजी की वाणी को सुनकर पापयुक्त विभीषणजी ऋषियों के द्वारा बतलाये गये नियम के अनुसार प्रायश्चित करके भगवान् श्रीराम के पास गये ।।१५८।। प्रायश्चित कर लेने के कारण विशुद्ध हुए विभीषणजी ने भगवान् श्रीराम को प्रणाम किया । जोर से हँसते हुए श्रीराम ने सभा में ही विभीषण से कहा ।।१५९।। **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** हे पौलस्त्य ! आज से आप विचार करके वही कार्य करेंगे जो कल्याणकारी हो; क्योंकि आपके लिए हमलोगों को इस तरह का प्रयास करना पड़ा ।।१६०।। आप मेरे दास हैं, अतएव सबों पर दया किया करें। इसके बाद वे सभी ऋषिगण श्रीरामचन्द्रजी का कार्य निश्चित हो जाने पर ।।१६१।। कहे कि हमलोगों को इतना शीघ्र कैसे अज्ञान हो गया ? **शम्भु ने कहा—** ब्राह्मण का अपमान करने के कारण यह अज्ञान हुआ है । यह अज्ञान विनष्ट हो जायेगा ।।१६२।। **ऋषियों ने कहा—** त्रेतायुग में ये सारे पुराण सुन्दर हैं । किन्तु द्वापर युग में महाभारत ही शकुन के लिए प्रशस्त कैसे होगा ?।।१६३।। **सूतजी ने कहा—** महर्षि

ऋषय ऊचुः

त्रेतायुगेऽभिरामोऽसौपुराणानि च कृत्स्नशः ।
द्वापरान्ते भारतं च कथमेतद्धि युज्यते ॥१६४॥

सूत उवाच

पुराणानि तथाप्येवं सन्तित न्नामकानि तु। व्यासेरितानि त्वद्यैव पुराणानि न चान्यथा ॥१६५॥
अद्यापि च विथानं तत्पुराणश्रवणे फलम् । महाभारतमप्यत्र शकुनाय विशिष्यते॥१६६॥
आदिपर्वैकमभ्यर्च्य निरीक्षेत विनिश्चयम्। अथवा सर्वपर्वाणि प्रशस्तान्यर्थनिर्णये ॥१६७॥
श्लोकादि लक्षणं सर्वं पूर्वोक्तं तदिहापि तु ।
श्लोकानामन्वयादेकस्तात्पर्यादथवाऽपरः ॥१६८॥
अर्थः सम्प्रतिपद्येत तत्परं तत्र गृह्यते। अर्थादेव हि सर्वत्र वस्त्वादेस्तु निरूपणम्॥१६९॥
यत्रार्थो दृश्यते तत्र धातुः स समुदाहृतः। अत्रार्थदेव शब्दानां न मिथ्यैव निरूपणम् ॥
तस्मात्सर्वत्र नान्योऽर्थो गृहीतव्यो मनीषिभिः ॥१७०॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शिवराघवसंवादे चतुरुत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

* * *

व्यास के द्वारा प्रोक्त ये सभी पुराण हैं, ये सभी पुराण भी उन्हीं के नाम के हैं ॥१६४॥ आज भी पुराणों का वही फल है और उसका विधान भी वही है । इस समय शकुन के लिए महाभारत ग्रन्थ का विशेष महत्त्व है ॥१६५॥ केवल आदि पर्व की ही पूजा करके शकुन का निश्चय करना चाहिए । अथवा अर्थ का निर्णय करने के लिए महाभारत के सभी पर्वा_ प्रशस्त हैं ॥१६६॥ श्लोक आदि का जैसा लक्षण पहले बतलाया गया है, वैसा ही सब कुछ है । एक अर्थ श्लोक का अन्वय करने से होता और दूसरा अर्थ तात्पर्यवशात् होता है ॥१६७॥ जो अर्थ ज्ञात हो उसके तात्पर्य को ही स्वीकार करना चाहिए । सर्वत्र वस्तु आदि का निरूपण अर्थ से ही करना चाहिए ॥१६८॥ जहाँ पर अर्थ की प्रतीति होती है, उसे धातु कहते हैं । वस्तु का निरूपण शब्द के अर्थ से ही करना चाहिए मिथ्या निरूपण नहीं करना चाहिए ॥१६९॥ अतएव मनीषियों को कहीं भी मिथ्या अर्थ को नहीं स्वीकार करना चाहिए ॥१७०॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शिवराघवसंवाद के अन्तर्गत एक सौ चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचर्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०४।।

* * *

एक सौ पाँचवाँ अध्याय

मुनय ऊचुः

अतःपरं महाभाग ! किं चकार स राघवः ।
मुनयस्ते महात्मानः किमकुर्वंस्ततःपरम् ॥१॥

सूत उवाच

रामचन्द्रे सुखासीने विभीषणकपीश्वरे । शम्भुमूचुर्मुनिवराः कथां पुण्यां वदस्व नः ॥२॥
तेषमाकर्ण्य वचनं पार्वतीमाह शङ्करः । इदं कस्यापि विप्रस्य गृहं परमशोभनम्॥३॥
रम्योपवनवापीभिर्वीरुद्भिरुपशोभितम् । कूजन्मधुकरश्रेण्या आहूतकुसुमायुधम् ॥४॥
मध्याह्नसन्ध्यामारोढुमिव सूर्यः प्रवर्त्तते। स्वच्छवापीजलस्नातौ परिधाय सुवाससी ॥५॥
मृगनाभिसमुद्घृष्टघनसारसुचन्दनम् । आलिप्य सल्लकीदामदृढधाम्मिल्लसंयुतौ ॥६॥
अनल्पघनसारं तु ताम्बूलं प्रतिखादितम्। आस्वाद्यमाद्यन्मुदितौ यत्र धारागृहे शुभे ॥७॥
मयूरनादबहुले बर्हिर्मधुरगीतकैः । शय्यायामास्तृतायां च परस्परसुखस्थितौ॥८॥
विशालस्मितरक्तोष्ठमाननं चुम्बितं यदि । संसारफलमाघ्रातमावयोस्तु भविष्यति ॥९॥
इतीरितमथ श्रुत्वा कुपिता मुनयस्तु ते । उक्तं वा स शुभं वाक्यमस्मासु किमिदं त्वया॥१०॥
विप्रलापः प्रियासक्तेः कृतो नोऽस्मद्वचः कृतम् ।
अथ कोपपराच्छम्भोराननात्परमाऽद्भुता ॥११॥

भस्म का माहात्म्य वर्णन

मुनियों ने कहा— हे महाभाग ! इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी ने क्या किया ? उसके बाद मुनियों और माहात्माओं ने कौन सा कार्य किया ?॥१॥ **सूतजी ने कहा—** जब श्रीरामचन्द्रजी, विभीषणजी तथा कपीश्वर सुख पूर्वक बैठे थे सभी मुनियों ने मुनिवर शम्भु से कहा कि आप हमलोगों को श्रेष्ठ कथाएँ सुनायें॥२॥ उन ऋषियों के वचन को सुनकर शङ्करजी ने पार्वतीजी से कहा यह एक ब्राह्मण का सुन्दर गृह हैं ॥३॥ यह मनोहर उपवन, वापी तथा लताओं से सुशोभित है । इसमें गुञ्जार करते हुए भौंरे मानो कामदेव का आह्वान करते हैं ॥४॥ लग रहा है कि सूर्य रूपी नायक मध्याह्न संध्या रूपी नायिका पर आरोहण करने की तैयारी कर रहा है । छाया से शीतल बने बावली के जल में स्नान करके दोनों (सन्ध्या और सूर्य) सुन्दर वस्त्र धारण करके ॥५॥ कस्तूरी मिलाकर रगड़े गये सुन्दर चन्दन का लेप लगाकर सल्लकी के सूत से बनी चोटी धारण किए हुए हैं जिसमें खूब कपूर मिलाया गया है ऐसे ताम्बूल को दोनों ने खा लिया है । उसका आस्वादन करके प्रसन्नता का अनुभव करने वाले ये दोनों सुन्दर धारा गृह में ॥६-७॥ जहाँ पर बार-बार मयूर ध्वनि कर रहे हैं, वहीं पर बिछायी गयी शय्या पर दोनों सुखपूर्वक बैठे हुए हैं ॥८॥ इस समय अत्यधिक मुसुकान से युक्त लाल-लाल ओष्ठ का चुम्बन कर लेने पर तो हमदोनों को संसार का फल मिल जायेगा ॥९॥ शङ्करजी की इस वाणी को सुनकर वे सभी मुनिगण क्रुद्ध हो गये । और कहे कि क्या तुम यही हमलोगों को सुन्दर कथा सुना रहे हो ?॥१०॥ अपनी पत्नी में आसक्त होकर तुम अभद्र बाते कर रहे हो, हगलोगों की बातों को तुम नहीं माने । इसके बाद शङ्करजी

ज्वलाविनिर्गता साऽपिकरालवदनाऽभवत् । कस्यचित्तुमुनेर्भार्यामाससादाथसत्वरम् ॥१२॥
पलायनपरा चासीद्रामं दृष्ट्वा च विभ्यती । रामोऽपि ब्राह्मणीं शुद्धां मोचयामीत्यभाषत ॥१३॥
जगाम पुष्पकेणैव ब्रुवन्मुक्तिं पुनः पुनः। बाणं च धनुषा योक्तुं न च सस्मार राघवः ॥१४॥
शम्भुरप्यति पुण्यानि वनान्यायतनानि च । पुराणि च विचित्राणि दृष्ट्वा रामं न चास्मरत्॥१५॥
क्षणेन च तदा प्राप्तो लोकालोकं महागिरिम् ।
दृष्ट्वाऽथ राघवःशैलं गृहमार्गसमाकुलम् ॥१६॥
विप्रयोषिन्महाभागा क्व गता वदत द्विजाः ।
इतो गतेति ते प्रोचुस्तमो भागं गिरेरिति ॥१७॥
रामो विवर्णवदनः कष्टमित्यभिचिन्तयन्। अथशम्भुर्महातेजाःप्रकाशमतुलं ददौ ॥१८॥
तत्प्रकाशप्रभावेन रामः कृत्यां ययावनु । तमोमयी महाभूमिः सर्वजन्तुविवर्जिता ॥१९॥
आब्रह्माण्डकटाहान्ता शतयोजनकोटितः । महारजतभूमिश्च तमोमध्ये व्यवस्थिता ॥२०॥
तत्र नारायणपुरं सूर्यकोटिसमप्रभम्। स राममुनिवर्यास्तु तं दृष्ट्वा विस्मयं ययुः ॥२१॥
किमेतदितिचाचिन्त्य नःप्रवेशःकथं भवेत् । किमेष प्रलयाग्निः स्यान्मायया परमात्मनः ॥२२॥
किं वा नो मरणं त्वद्य उत श्रेयो भविष्यति ।
इति चिन्ताकुलेष्वेव सरामेषु मुनिष्वथ ॥२३॥
शम्भुराह शृणुष्वाद्य राघवैतद्वदामि ते । प्रकल्पिता मया माया त्वत्कृते नैतदद्भुतम् ॥२४॥
नारायणीयमेतत्तु परमं धाम भास्वरम् । उष्णशीताद्यविच्छेद्यं ज्ञानगम्यं न चाक्षुषम् ॥२५॥

क्रुद्ध हो गये और उनके मुख से आश्चर्यमयी ज्वाला निकली, और वह भी भयङ्कर मुख वाली हो गयी उसने एक मुनि की पत्नी को शीघ्र ही पकड़ लिया ॥११-१२॥ वह श्रीरामचन्द्रजी को देखकर डरती हुयी भाग जाना चाहती थी । श्रीरामचन्द्रजी शुद्धा ब्राह्मणी को कहे कि मैं अभी तुमको बचाता हूँ ॥१३॥ वे उसे छोड़ देने के लिए बार-बार कहते है उसका पीछा पुष्पक विमान से किए । वे अपने धनुष पर बाण चढ़ाना चाहते थे; किन्तु याद नहीं कर सके ॥१४॥ शम्भु भी अत्यन्त पवित्र बने भवनों तथा विचित्र नगरों को देखकर श्रीराम को स्मरण नहीं किए ॥१५॥ क्षणभर में लोकालोक नामक पर्वत आ गया श्रीराम भी उस पर्वत को जो गृह के मार्ग से भरा था उसको देखकर कहे॥१६॥ हे ब्राह्मणो ! आपलोग बतलायें कि वह ब्राह्मण की पत्नी कहाँ गयी ? उन ऋषियों ने कहा कि यहाँ से वह अन्धकार से युक्त भाग में चली गयी॥१७॥ उदास होकर श्रीराम ने कहा कि यह तो अत्यन्त कष्ट की बात है । उसी समय महातेजस्वी शम्भु ने अतुलनीय प्रकाश उत्पन्न कर दिया ॥१८॥ उस प्रकाश के प्रभाव से श्रीरामचन्द्रजी उस कृत्या के पीछे दौड़े । वह भूमि अन्धकार से भरी थी और वहाँ कोई भी जीव नहीं था ॥१९॥ उस अन्धकार में ब्रह्माण्ड से लेकर अण्डकटाह पर्यन्त सौ करोड़ योजन विस्तृत महाराजतमयी भूमि थी ॥२०॥ वहाँ पर करोड़ों सूर्य की कान्ति के समान कान्ति वाली भगवान् नारायण की नगरी थी । श्रीरामचन्द्रजी तथा वे मुनिगण उस नगरी को देखकर आश्चर्यित हो गये ॥२१॥ वे विचार करके चिन्ता करने लगे कि इस नगरी में हमलोगों का प्रवेश कैसे हो सकता है ? यह परमात्मा की माया की प्रलयाग्नि है क्या ?॥२२॥ आज हम सबों का मरण होने वाला है अथवा कल्याण होने वाला है ? श्रीरामचन्द्रजी के साथ सभी मुनियों के

तत्तु पूजयतश्चोर्ध्वं पश्य ब्रह्मपुरागमान्। दिक्षु सर्वासु च मुनीन्पश्य पूजयतोऽमलान् ॥२६॥
चतुरो निगमान्पश्य स्तुवतः परमं पदम् । योगिनः सनकाद्यास्तु योगामास्थाय यत्नतः ॥२७॥
ध्यायन्ति परमं तेजस्तदिदं पश्य राघव ! । अमुं च रोमशं पश्य प्रदक्षिणनमस्क्रियाः ॥२८॥
कुर्वाणं कोटिकोटिश्च बालखिल्यान्मुनीश्वरान् ।
लक्ष्म्यादि सर्ववनिता पूज्यमानं परं पदम् ॥२९॥
साकारं च निराकारं ब्रह्मयत्परिकीर्तितम्। अज्ञानिनो न पश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥३०॥
शम्भुवाक्यादतः सर्वे पूजयामासुरच्युतम् । गिरिकर्णी च तुलसीं मल्लिकां मारुतं तथा ॥३१॥
नीलोत्पलैरम्बुजैश्च कृष्णास्फुटजलैरपि। पूजयन्तो महात्मानो महात्मानं जनार्दनम् ॥३२॥
नारदं खेऽथ ददृशुर्जटिलं सविपञ्चिकम् । नारायणपदाघोषं लम्बकूर्चोपवीतिनम्॥३३॥
स चापि मनसा दध्यौ क एष इति नारदः ।
स पपात प्रभोः पाद शम्भोरानन्दनिर्भरः ॥३४॥
शैवीं पञ्चाक्षरीं विद्यां जजाप मनसा मुनिः ।
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि जन्माद्य सफलं मम ॥३५॥
ब्रह्मादिवन्द्यं चागम्यं ज्ञातवानस्मि ते पदम्। नारदं तमथ प्राह शम्भुर्मैवं वदेति हि॥३६॥
यथा च मां न जानन्ति तथा मे कुरु वर्तनम् ।
गच्छ शीघ्रं हरिं ब्रूहि ममागमनमल्पतः ॥३७॥

इस तरह से चिन्तित हो जाने पर ॥२३॥ **शम्भु ने कहा—** राघव ! आप मेरी बात सुनें मैं आपको बतलाता हूँ । इस माया की कल्पना मैंने की है, यह आपके लिए अद्भुत नहीं है ॥२४॥ यह अत्यन्त देदीप्यमान भगवान् नारायण का धाम है । यहाँ न तो गर्मी होती है और न ठंढी; यह ज्ञान के द्वारा ही जानने योग्य है । इसे नेत्रों के द्वारा नहीं देखा जा सकता हैं ॥२५॥ आप इसकी पूजा करें उसके बाद आपलोग ब्रह्मा आदि देवताओं का दर्शन करेंगे । आप देखें सभी दिशाओं मे निर्मल मुनिगण पूजन कर रहे हैं ॥२६॥ आप देखें चारों वेद इस परम पद की स्तुति कर रहे हैं । सनकादिक महर्षिगण प्रयास पूर्वक योग धारण करके ॥२७॥ परमतेज का ध्यान कर रहे हैं, हे राघव ! इसे आप देखें । आप रोएँ के समान अत्यन्त सूक्ष्म करोड़ों-करोड़ बलखिल्य मुनियों को देखें जो प्रदक्षिणा करते हुए नमस्कार कर रहे हैं । लक्ष्मी आदि वनिताएँ परमपद की पूजा कर रही हैं ॥२८-२९॥ जिसे साकार तथा निराकार ब्रह्म कहा गया है उसे अज्ञानी पुरुष नहीं देख पाते हैं । ज्ञानी पुरुष ही अपने ज्ञानमय नेत्रों से देख पाते हैं ॥३०॥ शङ्करजी की बातों को सुनकर सबों ने भगवान् अच्युत की गिरिकर्णी तथा तुलसी, मल्लिका तथा मरुत की भी पूजा की ॥३१॥ नीलकमल, कमल तथा वहाँ पर विद्यमान जल से महात्माओं ने भगवान् जनार्दन की पूजा की॥३२॥ इसके बाद उन लोगों ने आकाश में जटाधारी नारदजी को देखा । वे अपने हाथ में वीणा लिए हुए थे । वे भगवान् नारायण के नाम का उच्चारण कर रहे थे । वे यज्ञोपवीत धारण किए हुए थे तथा उनकी दाढी लम्बी थी ॥३३॥ नारदजी ने ध्यान किया कि ये कौन हैं ? और वे आनन्द मग्न होकर शङ्करजी के चरणों में प्रणाम किए ॥३४॥ नारदजी ने मन से ही शिवजी के पञ्चाक्षरी मन्त्र **ओम् नमः शिवाय** का जप किया । उन्होंने कहा आज मैं धन्य हो गया आपने मुझ पर कृपा की । आज मेरा जन्म

अथ स त्वरया गत्वा सर्वं व्यज्ञापयद्धरिम्। अथ स त्वरया विष्णुरादायार्घोदकं शुभम्॥३८॥
कमलासहितो योगिकोटिकोटिसमावृतः। निर्ययौ नारदं हस्ते गृहीत्वा गरुडध्वजः ॥३९॥
नमो नमो नमोऽस्त्वस्मै शङ्करायेत्युदीरयन्। अर्घपाद्यादिना सर्वान्पूजयामास केशवः॥४०॥
प्रावेशयदमेयात्मा नारायणपुरं शुभम्। गृहराजे ततः स्थित्वा नारायण उवाच ह ॥४१॥
कथमेते समायाताः कोऽयं राजा महायशाः ।
अमानुषप्रवेशोऽयं ब्रह्माद्यैरप्यगोचरः ॥४२॥

शम्भुरुवाच

मुनिवेषा यथा प्राप्ता वयमेते नृपस्तथा। तवांशो नृपतिश्चायं रामचन्द्रः प्रतापवान् ॥४३॥
एनां संवीक्षितुं पत्नीं तव केशव काङ्क्षति ।
नारायणस्तथेत्युक्त्वा प्रविशेत्याह राघवम् ॥४४॥
अथ प्रविश्य भवनं लक्ष्मीं वीक्ष्य नमस्य च ।
विनयावनतो भूत्वा वाचमाह सुचारिणीम् ।
कृतार्थोऽस्मि न सन्देहो वद त्वं किं तु मन्यसे ॥४५॥

श्रीदेव्युवाच

त्वं युवा कामकृष्टश्च रूपवानसि राघव। सीता सा चारुसर्वाङ्गी तव पत्नी तथा भवान्॥४६॥
वियुक्तोऽस्ति पुरा चासीदतीव विरहाकुलः। ममापि वद सर्वं तदथवा न च लप्स्यसि ॥४७॥

सफल हो गया ॥३५॥ जिसकी ब्रह्मादि देवता वन्दना करते हैं ऐसे अगम्य आपके चरणों का दर्शन मुझे मिला । इसके बाद शङ्करजी ने नारदजी से कहा आप ऐसी बात न कहें ॥३६॥ मेरे साथ ऐसा ही व्यवहार करें कि ये सब मुझे पहचाने नहीं । आप शीघ्रता से जाकर संक्षेप में मेरे आगमन की सूचना श्रीहरि को दें ॥३७॥ इसके बाद नारदजी शीघ्रता से जाकर सारी बातें श्रीहरि को बतलायें । उसके बाद शीघ्रता से भगवान् विष्णु के साथ शुभ अर्घोदक लेकर लक्ष्मीजी के साथ करोड़ों परिजनों के साथ नारदजी का हाथ पकड़कर भगवान् विष्णु बाहर आये ॥३८-३९॥ वे कह रहे थे शङ्करजी को वारम्बार नमस्कार है । भगवान् केशव ने सबों की पूजा अर्घ पाद्य आदि से की ॥४०॥ जिनको कोई जान नहीं सकता है, ऐसे भगवान् केशव सबों को नारायणपुर में ले गये । उसके बाद अपने राजगृह में खड़ा होकर भगवान् नारायण ने कहा॥४१॥ ये सभी कैसे आये हैं ? और ये महायशस्वी राजा कौन हैं ? यहाँ पर कोई मनुष्य तो आ नहीं सकता है, यहाँ पर ब्रह्मा आदि देवताओं का भी आना सम्भव नहीं है ॥४२॥ **शम्भु ने कहा—** हम सभी मुनिवेश में विद्यमान तथा ये राजा जैसे आये हैं उसे बतलाता हूँ । ये प्रतापी राजा रामचन्द्रजी हैं, ये आपके अंश हैं ॥४३॥ हे केशव ! ये आपकी पत्नी लक्ष्मीजी का दर्शन करना चाहते हैं । भगवान् नारायण ने कहा बहुत अच्छी बात है और उन्होंने भगवान् श्रीरामचन्द्रजी से कहा कि आइये ॥४४॥ उसके बाद उस भवन में प्रवेश करके श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मीजी का दर्शन किया और उनको प्रणाम किया । उसके बाद उन्होंने सुन्दर संचरण करने वाली लक्ष्मीजी से नम्रता पूर्वक कहा ॥४५॥ मैं निश्चित रूप से कृतार्थ हो गया हूँ । आप मुझे कैसा मानती हैं ? **श्रीदेवी ने कहा—** हे राम ! आप युवा, कामदेव से भी सुन्दर और रूपवान हैं ॥४६॥ आपकी पत्नी सर्वाङ्ग सुन्दरी सीताजी हैं, और वे भी वैसी ही हैं । जब आप उनसे

सहासान्यथ वाक्यानि यूनां चित्तहराणि च ।
श्रुत्वा तु तानि सर्वाणि रामभद्रो यतात्मवान् ॥४८॥
निर्गन्तुं काङ्क्षते तत्र आनम्यतन्मुखाम्बुजम् ।
स्मरबाणेन पद्मेन सम्पीड्य रघुशेखरम् ॥४९॥
अन्वेव निर्ययौ देवी पद्मा पद्मवनप्रिया। एकपत्नीव्रतं ज्ञात्वा रामं ते समुपागमन् ॥५०॥
अथ वेपितसर्वाङ्गं स्खलत्पदगतिं नृपम् । शिवनारायणौ दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतौ ॥५१॥
अहोऽस्य द्रढिमाचित्ते मायिनोऽप्यवशात्मनः ।
धैर्यं पश्येह नियतं तेन रामःसुकीर्तिमान् ॥५२॥
सर्वतःशिवमेवास्य नाशिवं विद्यते क्वचित् ।
अथ रामो वचःप्राह गच्छेऽहंभगवन्प्रभो ! ॥५३॥
अनुज्ञातोऽथ हरिणा पुष्पकेण स राघवः । स मुनिःसहशम्भुश्च जम्बूद्वीपं पुनर्गतः ॥५४॥
लोकालोकं गतः शीघ्रं ततः स्वादूदधिंगतः । ततो द्वीपसमुद्रांश्च जम्बूद्वीपं पुनर्गतः ॥५५॥
भरद्वाजाश्रमपदे तस्थिवान्गौतमीतटे । अथ स्नात्वा महानद्यां भरद्वाजो मुनीश्वरः ॥५६॥
शिष्यैः श्रीमान्परिवृतः पुष्पकं दृष्ट्वान्मुनिः। तत्र रामं महाबाहुं शिवनारायणवृषीन् ॥५७॥
यथावत्पूजयित्वा तु तानुवाच महामुनिः । ममाश्रमपदे यूयं भोक्तुमर्हथ सत्तमाः ॥५८॥
रामस्तु मुनिवाक्येन तथेत्याह कथञ्चन । अथ स्नात्वा महानद्यां कृत्वा देवादि तर्पणम् ॥५९॥
भोक्तुकामं तदा रामं वसिष्ठो वाक्यमुक्तवान् ।
धर्मत्यागो भवेद्राम न श्राद्धं क्रियते यदि ॥६०॥

अलग हो गये थे तो आप पहले विरह से व्याकुल थे ॥४७॥ आप मुझे भी उन सारी बातों को बतलायें, अन्यथा उन्हें आप प्राप्त नहीं कर सकेगें । युवकों के चित्त का हरण करने वाले हँसकर कहे गये उन वाक्यों को सुनकर अपने पर नियन्त्रण रखने वाले श्रीरामचन्द्रजी अपने मुख को झुकाकर वहाँ से चले जाना चाहे ॥४८-४९॥ काम के बाण से श्रीराम को पीड़ित करके जिनको कमलवन ही प्रिय है, वे लक्ष्मीजी दूसरी स्त्री के समान वहाँ से चली गयीं ॥५०॥ श्रीरामचन्द्रजी के एक पत्नीव्रत को जानकर वे सभी महर्षि वहाँ आ गये । उसके बाद जिनका सारा शरीर काँप रहा था, पैर लड़खड़ा रहे थे ऐसे श्रीरामचन्द्रजी को शिवजी तथा नारायण ने देखा और वे दोनों अत्यन्त आश्चर्यित हो गये । **शम्भु ने कहा**— आप तो माया के स्वामी हैं और आपका चित्त इतना चञ्चल हो गया है । आपने आप पर नियन्तत्रण नहीं कर पा रहे हैं ॥५१-५२॥ श्रीराम ! आप सुन्दर कीर्ति वाले हैं, धैर्य धारण करें । आप पूर्ण रूप से कल्याणमय हैं यहाँ किसी का अकल्याण नहीं होता है ॥५३॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— हे प्रभो ! हे भगवन् ! मैं जाना चाहता हूँ । श्रीहरि की आज्ञा प्राप्त करके श्रीरामचन्द्रजी वहाँ से मुनिगण, शम्भुमुनि तथा श्रीनारायण के साथ पुष्पक विमान से वहाँ से चल पड़े । वे शीघ्र ही लोकालोक पर्वत पर गये इसके बाद स्वादिष्ट क्षीरसागर पर आये ॥५४-५५॥ उसके बाद वे द्वीपों तथा समुद्रों के वाद फिर जम्बूद्वीप में आ गये । वे गौतमी नदी के तट पर विद्यमान भरद्वाजाश्रम में आये ॥५६॥ महानदी में स्नान करके शिष्यों के साथ विद्यमान महर्षि भरद्वाज ने पुष्पक विमान को देखा ॥५७॥ वहाँ पर उन्होंने शिवजी, नारायण भगवान् तथा श्रीरामचन्द्रजी की यथोचित पूजा की ॥५८॥ **उन्होंने कहा**— हे महापुरुषों ! आपलोग में इस आश्रम में

श्रीराम उवाच

अमायां ग्रहणे तीर्थे व्यतीपातेऽथ संक्रमे। व्यतीतं यदिचेच्छ्राद्ध भगवन्क्रियतेः पुनः ।।६१।।
नित्यश्राद्धं पुनर्नैव कुर्यादिति वचस्तव। यथा ममैव मातृणां मरणे समुपस्थिते।।६२।।
आशौचे च समायाते नित्यश्राद्धं न वै कृतम् ।
व्यतीपातादि कालेषु कृतन्तु वचनात्तव ।।६३।।

वसिष्ठ उवाच

एते हि मुनयः सर्वे तथा शम्भुरयं द्विजः। एतन्मुखादशेषेण निर्णयस्तु भविष्यति ।।६४।।
सह सर्वे विनिश्चित्य मुनयः शम्भुमब्रुवन। वदास्माकमशेषं त्वं द्विजवर्य ! महानसि ।।६५।।

शम्भुरुवाच

त्यक्तव्यं यच्च वै श्राद्धं पुनः कर्तव्यमेव च ।
सूतके समनुप्राप्ते विघ्नेषु च वदाम्यहम् ।।६६।।
मासिकान्युदकुम्भानि श्राद्धानि सकलानि च ।
प्रतिसाम्वत्सरं श्राद्धं सूतकानन्तरं विदुः ।।६७।।
त्यक्तान्यन्यानि यावन्ति सूतके विघ्नसम्भवे। अनन्तरं हि कार्याणि सर्वाणीति न संशयः ।।६८।।
मासिकानि समस्तानि श्राद्धं प्रत्याब्दिकं तथा ।
सूतकानन्तरं कार्यं विघ्नेऽन्यस्मिन्यतोऽन्यथा ।।६९।।
एकादश्यां कृष्णपक्षे कर्तव्यं शुभमिच्छता। तत्र व्यतिक्रमे हेतावमायां क्रियते तु तत्।।७०।।
यथोत्तरदिनेष्वेव कर्तव्यं यद्यविघ्नतः। कृष्णपक्षे त्वमायां तु कर्तव्यं राम ! नो कृतम्।।७१।।

भोजन करें। मुनि के वाक्य को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने किसी तरह कहा ठीक हैं ।।५९।। उसके बाद उस महानदी में स्नान करके तथा देवताओं आदि का तर्पण करके, जब श्रीरामचन्द्रजी भोजन करना चाहे तो महर्षि वसिष्ठ ने कहा ।।६०।। हे श्रीराम ! यदि आप श्राद्ध नहीं करते हैं तो धर्म का त्याग हो जायेगा। **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** अमावस्या, ग्रहण के समय, तीर्थ में, व्यतीपाप योग के होने पर, संक्रान्ति के समय ।।६१।। यदि श्राद्ध छूट जाय तो फिर उसको बाद में कर लेना चाहिए। आपने ही कहा है कि नित्य श्राद्ध पुनः किया जा सकता है ।।६२।। जैसे जब मेरी माताओं के मरण की वेला आयी उस समय अशौच होने के कारण मैंने नित्य श्राद्ध नहीं किया ।।६३।। आप की आज्ञा के अनुसार मैंने व्यतीपात इत्यादि के समय नित्य श्राद्ध किया। **महर्षि वसिष्ठ ने कहा—** ये सभी मुनिगण हैं और ये मुनि शम्भु हैं ।।६४।। इन्हीं के मुख से पूर्णरूप से निर्णय होगा। सभी मुनियों ने निश्चित करके शम्भु मुनि से कहा ।।६५।। हे द्विजवर्य ! आप महान् हैं आप इन सारी बातों को बतलायें। **शङ्करजी ने कहा—** जो कोई श्राद्ध छूट जाता है, उसको फिर से कर लेना चाहिए ।।६६।। सूतक आ जाने पर तथा किसी प्रकार का विघ्न आ जाने पर मासिक जलघट तथा सभी प्रकार के श्राद्धों को ।।६७।। सूतक के बाद सांवत्सरिक श्राद्ध जो सूतक आदि विघ्नों के आ जाने से छूट जाते हैं ।।६८।। उन सबों को उसके बाद कर लेना चाहिए इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है। मासिक श्राद्ध तथा प्रत्येक वर्ष में किए जाने वाले श्राद्ध सूतक के बाद कर लेना चाहिए। अथवा कल्याण चाहने वाले को कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन कर लेना चाहिए ।।६९-७०।। उस

मृताहस्य यदामासो न ज्ञायेत कथञ्चन । मार्गशीर्षेऽथवा माघे श्राद्धं तद्दिवसे स्मृतम् ॥७२॥
यदा तु वासराज्ञानं मासस्य ज्ञानमेव च । अमायामेव तन्मासे श्राद्धं सांवत्सरं भवेत् ॥७३॥
दिनमासापरिज्ञाने प्रोषितस्य मृतस्य च। तत्तिथ्यां तद्दिनं ग्राहं तत्राज्ञानं यदा भवेत् ॥७४॥
आश्विनामा च मार्गामा माघामा च दिनत्रयम् ।
तत्र वान्यतमं ग्राह्यं दिनमासाप्रतीतितः ॥७५॥
वृद्धिसप्तमसीमन्त प्रेताश्राद्धानुमासिकम् । नित्योदकुम्भश्राद्धं च मासे स्युरधिकेऽपि च ॥७६॥
ग्रहणे पुत्रजन्मादौ कर्मण्यपि च शान्तिके । सङ्कल्पिते च सर्वस्मिन्नधिमासो न दुष्यति ॥७७॥
रोगी यदा मनुष्यः स्वाच्छ्राद्धकर्मण्युपस्थिते ।
भार्यां वा भ्रातरं वापि शिष्यं वापि नियोजयेत् ॥७८॥
तस्याभावेन हानिः स्यात्कर्मणः श्राद्धसंज्ञिनः ।
नित्यश्राद्धे यथाशक्ति भोक्तारं तु नियोजयेत् ॥७९॥
अमावास्या मासिकं च मृताहव्यतिरेकि यत् ।
स्वयं कर्मण्यशक्तश्चेत्सुतं विप्रं नियोजयेत् ॥८०॥
राजकार्यनियुक्तस्य दासग्रहणवर्तिनः । व्यसनेषु समस्तेषु श्राद्धं विप्रेण कारयेत् ॥८१॥
प्रातःकाले तु न श्राद्धं प्रकुर्वन्ति द्विजोत्तमाः ।
नैमित्तिकेषु श्राद्धेषु न कालनियमःस्मृतः ॥८२॥

दिन भी यदि किसी प्रकार का व्यतिक्रम हो जाय तो अमावस्या के दिन कर लेना चाहिए । यदि कोई विघ्न न हो तो बाद वाले ही दिन श्राद्ध कर लेना चाहिए ॥७१॥ हे श्रीराम ! जो श्राद्ध छूट गया हो उसे कृष्णपक्ष की अमावस्या तिथि को ही करना चाहिए । यदि मृताह का महीना किसी कारणवश न ज्ञात हो तो ॥७२॥ मार्गशीर्ष (अगहन) अथवा माघ के महीने में उस तिथि को श्राद्ध कर लेना चाहिए । यदि दिन भी ज्ञात न हो और महीना ज्ञात हो तो ॥७३॥ उस महीने की अमावस्या को ही सांवत्सरिक श्राद्ध होता है । यदि कोई विदेश गया हो और वहीं मर गया हो उसकी मृत्यु का महीना और दिन दोनों ज्ञात न हो तो ॥७४॥ उसकी तिथि तथा दिन उसी को मानना चाहिए जो आश्विन, या मार्गशीर्ष, या माघ के महीने की अमावस्या तिथि को हो । इन तीनों में किसी भी अमावस्या को होने वाले उसके दिन तिथि और मास को उसकी मृत्यु तिथि मान लेनी चाहिए । और प्रत्येक मास में सप्तमी तिथि को उसका वृद्धि श्राद्ध करना चाहिए ॥७५-७६॥ नित्य उद्कुम्भ श्राद्ध महीने भर पर अथवा उसके बाद में भी किया जा सकता है । ग्रहण लगने पर या पुत्र जन्म होने पर अथवा शान्ति कर्म के द्वारा अथवा किसी भी संकल्पित कार्य से, अधिमास सङ्कल्प दूषित नहीं होता है । यदि श्राद्ध कर्म के समय मनुष्य रोगी जो जाय ॥७७-७८॥ तो उस समय वह श्राद्ध को करने के लिए पत्नी या भाई या अपने शिष्य को नियुक्त कर दे । उसके अभाव में श्राद्ध कर्म की हानि नहीं होती है ॥७९॥ नित्य श्राद्ध में अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराये । अमावस्याश्राद्ध या मासिकश्राद्ध जो मृत्यु तिथि के श्राद्ध से भिन्न श्राद्ध हो, उसमे स्वयम् असमर्थ होने पर अपने पुत्र को अथवा किसी ब्राह्मण को श्राद्ध करने के लिए नियुक्त कर दे । जो राजकार्य में लगे व्यक्ति अथवा जो दास कर्म करने वाला व्यक्ति हो ॥८०-८१॥ सभी प्रकार के विपत्तियों में ब्राह्मण के द्वारा

ग्रहादिव्यतिरिक्तस्य प्रक्रमः कुतपः स्मृतः । कुतपादथवाप्यर्वागासन्नकुतपो भवेत् ॥८३॥
मासे मासे यथाश्राद्धेऽपराह्णस्पृग्विधीयते । अपराह्णव्यापिनी स्यादुभयत्र यदा त्वमा ॥८४॥
क्षये पूर्वा तु कर्तव्या वृद्धौ साम्ये परा स्मृता ।
अमावास्या तु या हि स्यादपराह्णद्वये समा ॥८५॥
क्षये पूर्वा परावृद्धौ साम्येऽपि च परा भवेत् ।
क्षीणस्तु चन्द्रमा यत्र तत्र श्राद्धं तु पार्वणम् ॥८६॥
अमाष्टभागे सूक्ष्मोऽसौ भूताष्टांशे स नास्ति चेत् ।
मध्याह्नव्यापिनी सा स्यादेकोद्दिष्टे तिथिर्भवेत् ॥८७॥
सायाह्नव्यापिनी या स्यात्पार्वणे सा तिथिर्भवेत् ।
अल्पापराह्णगा याऽमा ग्राह्या श्राद्धादिके भवेत् ॥८८॥
मृताहे त्रिमुहूर्ता च सायङ्काले तिथिर्भवेत् । परे ह्यस्तङ्गता यत्र त्रिमुहूर्ते तु पूर्ववत् ॥८९॥
तत्रापरेद्यु श्राद्धं स्याज्जयेष्ठपुत्रस्य नाशनम् । अमाश्राद्धं यथाकुर्यान्मृताहे समुपस्थिते ॥९०॥
मध्याह्नव्यापिनी तत्र ह्यद्विजस्य विधीयते ॥९१॥

राम उवाच

श्राद्धक्रममशेषेण मर्त्यकर्मक्रमं तथा । प्रासङ्गिकानां धर्माणां निर्णयं वक्तुमर्हसि ॥९२॥

शम्भुरुवाच

श्राद्धस्य दिवसे प्राप्ते पूर्वेद्युर्नियमान्वितः । निमन्त्रयीत विप्रेन्द्रान्विप्रलक्षणसंयुतान् ॥९३॥

ही श्राद्ध करवाना चाहिए । हे द्विजश्रेष्ठों ! प्रात:काल श्राद्ध नहीं करना चाहिए ॥८२॥ नैमित्तिक श्राद्धों में काल का कोई नियम नहीं है ॥८३॥ घर से भिन्न स्थान में किए जाने वाले श्राद्ध की बेला कुतप ही होता है । वह बेला कुतप अथवा कुतप से थोड़ा पहले का भी समय हो सकती है ॥८४॥ प्रत्येक मास में किए जाने वाले श्राद्ध को ऐसा होना चाहिए कि उस समय अपराह्न होने लगे । यदि पूर्वाह्न और अपराह्न दोनों में अमावस्या हो तो अपराह्न व्यापिनी अमावास्या में ही श्राद्ध करें ॥८५॥ अमावस्या का क्षण होने पर पहले की अमावस्या को श्राद्ध करे यदि अमावस्या की वृद्धि हो अथवा पूरे दिन अमावस्या हो तो बाद वाली अमावस्या को श्राद्ध करे । चाहे जो अमावस्या हो वह दोनों अपराह्न में एक समान होती है । क्षय होने पर पहले वाली तथा वृद्धि तथा साम्य होने पर बाद वाली अमावस्या श्राद्ध के लिए होती है । जव चन्द्रमा क्षीण हो उस दिन पार्वण श्राद्ध किया जाता है ॥८६-८७॥ यदि दिन के आठवें भाग में ही अमावस्या हो तो वह सूक्ष्म अंश से युक्त होती है तो फिर एकोदष्टि श्राद्ध में मध्याह्न व्यापिनी ही अमावस्या को एकोदिष्ट तिथि माननी चाहिए ॥८८॥ यदि अमावस्या सायंकाल पर्यन्त हो तो वही पार्वण की तिथि होती है । अपराह्न में जो अमावस्या थोड़ी ही देर हो तो उस अमावस्या को श्राद्ध में नहीं लेना चाहिए॥८९॥ मृत्यु तिथि को तीन मुहुर्त तक जो अमावस्या हो तो वह तिथि सायंकाल पर्यन्त होती है । बाद वाले दिन सूर्यास्त के बाद यदि तीन मूर्हूत तक अमावस्या हो तो वह भी पहले के ही समान होती है ॥९०॥ उस अमावस्या में यदि बाद वाले दिन श्राद्ध किया जाय तो ज्येष्ठ पुत्र का नाश होता है । मृताह्न के दिन किया जाने वाला श्राद्ध अमावस्या श्राद्ध के समान ही करना चाहिए ॥९१॥ मध्याह्न व्यापिनी अमावस्या में ब्राह्मण

एकभुक्तं ब्रह्मचर्यमन्त्यजाद्यैरभाषणम्। दन्तधावनमभ्यङ्गनखकेशनिकृन्तनम् ॥९४॥
कर्ता कुर्वीत पूर्वेद्युस्त्यक्त्वा चैव परेऽहनि। गृह्णीत नियमानुक्तान्सर्वमेतत्परित्यजेत् ॥९५॥
त्रिकालं चैव पूजाचेत्प्रातर्देवं यजेत्स्वकम्। अरुणोदयबेलायां करोति यदि पूजनम् ॥९६॥
अधःशायी तथाभूतः प्रातरुत्थाय कर्मवित्। प्रातस्त्यमपि यत्कर्म तत्कृत्वा स्नानपूर्वकम्॥९७॥
ऋणत्रयविनिर्मुक्तो यास्यति ब्रह्मतत्परम्। सूर्यस्योदयवेलायां शिवपूजां करोति यः ॥९८॥
सूर्येण समतेजस्वी शिवलोके महीयते। उदिते भास्करे पश्चाद्धटिकान्तरपुजनम्॥९९॥
रुद्रेण समतेजस्वी शिवलोके महीयते। द्वितीयघटिकायां तु यदि पूजनमीशितुः ॥१००॥
वायुना समतेजस्वी शिवलोके महीयते। तृतीयघटिकायां तु शिवपूजां समाचरेत् ॥१०१॥
कुबेरसमतेजस्वी शिवलोके महीयते। चतुर्थीपञ्चमीषष्ठीसप्तमीघटिकासु यः ॥१०२॥
शिवं पूजयते भक्त्या शिवलोके मरुत्समः ।
तत्काल एव क्रियते पूजां यत्कालनोदिता ॥१०३॥
यथाप्रतिज्ञमथवा गृहीतनियमो यजेत्। उपचारेषु शक्त्या वै नियमं परिपालयेत्॥१०४॥
नियमातिक्रमे वापि यागश्च स्याद्विभोर्यदि ॥१०५॥

श्रीराम उवाच

क्व पूजा देवदेवस्य शङ्करस्यामितौजसः। स्मरणात्पापनाशस्य स्मरणान्मोक्षदस्य च ॥१०६॥

व्यतिरिक्त का श्राद्ध करना चाहिए । **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— आप पूर्ण रूप से श्राद्ध कर्म, मर्त्यकर्म तथा प्रसङ्गतः प्राप्त समस्त धर्मों का निर्णय क्रमशः करे । **शङ्करजी ने कहा**— जब श्राद्ध का समय आये तो उसके एक दिन पहले नियमों का पालन करना चाहिए ॥९२-९३॥ विप्रलक्षण से सम्पन्न ब्राह्मणों को उसी दिन निमन्त्रित करना चाहिए । उस दिन एक बार भोजन करे ब्रह्मचर्य का पालन करे और अन्त्यजों से बातें न करे ॥९४॥ दन्तधावन, शरीर में तेल लगाना, नख एवं केश काटना इन सबों के श्राद्ध के पहले दिन ही कर लेना चाहिए और दूसरे दिन इन सब कार्यों को न करे ॥९५॥ स्वीकृत नियम जो बतलाये गये हैं उन सबों को त्याग दे । यदि त्रिकाल पूजन करना हो तो प्रातःकाल अपने देवता का पूजन कर ले॥९६॥ अरुणोदय की बेला में वह पूजन करे वह पृथिवी पर सोये और प्रातःकाल जगकर स्नान करके प्रातःकालीन समस्त कर्मो को करे । ऐसा करने वाला ब्राह्मकर्मों को करके तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है ॥९७-९८॥ जो सूर्योदय की बेला में शिवजी की पूजा करता है, वह सूर्य के समान तेजस्वी होकर सूर्यलोक में पूजित होता है ॥९९॥ जो सूर्योदय होने के एक घटी पश्चात् पूजा करता है वह रुद्र के समान तेजस्वी होकर शिवलोक में पूजित होता है ॥१००॥ यदि वह सूर्योदय के पश्चात् दूसरी घड़ी में परमात्मा की पूजा करता है, वह वायु के समान तेजस्वी होकर शिवलोक में पूजित होता है ॥१०१॥ जो तीसरी घड़ी में शिवजी की पूजा करता है वह कुबेर के समान तेजस्वी होकर शिवलोक में पूजित होता है॥१०२॥ जो चौथी, पाँचवी या छठी घड़ियों में पूजा करता है वह मरुत के समान तेजस्वी होकर शिवलोक में पूजित होता है ॥१०३॥ जिस समय को नहीं कहा गया है, उस समय में जो पूजा करता है वह अपनी प्रतिज्ञा अथवा अपने द्वारा स्वीकृत निमयों के अनुसार पूजा करे ॥१०४॥ उपचारों के विषय में वह अपनी शक्ति के अनुसार नियमों का पालन करें । नियम का अतिक्रमण हो जाने पर शिवयाग करे ॥१०५॥ **श्रीरामचन्द्रजी**

शिवस्य शिवरूपाय शिवतत्त्वार्थवेदिनः। सोमस्य सोमभूपस्य सोमनेत्रस्य राजितुः ॥१०७॥
वेदमूर्तेरमूर्तेश्च वेदसारस्य वेदिनः। वेदवेदांगवित्तस्य वेद्यावेद्यस्य योगिनः ॥१०८॥
गोक्षीरसमदेहस्य गोक्षीरस्नानमोदिनः। गोपालिनस्त्रिनेत्रस्य त्रयीनेत्रस्य मायिनः ॥१०९॥
प्रश्नमध्ये तथा रामं शिवज्ञानमथादिशत्। स्थाणुभूत इवासीनो नासाग्रन्यस्तलोचनः ॥११०॥
आनन्दनिष्यन्दविलोचनाश्रुप्रवाहसंस्पृष्टकपोलदेशः ।
दधार देवं गिरिशं हृदम्बुजे गोक्षीरसुस्निग्धसुचारुगात्रम् ॥१११॥
प्रतिबिम्बमथो गात्रे रामस्य समदृश्यत। दृष्ट्वैव बिम्बितं शम्भुं चतुर्बाहुं त्रिलोचनम् ॥११२॥
विस्मयं परमं याताःसर्वे मुनिहरीश्वराः ।
शम्भोर्वक्षःस्थितं रामं दृष्ट्वा दीप्ताकृतिं शुभम् ॥११३॥
तूष्णीं वभूवुर्यामार्द्धमथ राममुदैक्षत। स्वप्रश्नमनुसन्धाय प्राह सर्वं वदेति च ॥११४॥

शम्भुरुवाच

अचले या सदा पूजा चलेवापि यथेच्छया ।
लिङ्गसम्पूजनं मुख्यमलाभे प्रतिमादिषु ॥११५॥
अधिकारविशेषेण तत्र तत्रापि पूजनम्। विगुणं सगुणं वापि सफलं लिङ्गपूजनम् ॥११६॥
प्रतिमादौ कृता पूजा विगुणा सफला न हि ।
अचलेवाचलेवापि पूजा लिङ्गे प्रशस्यते ॥११७॥

ने कहा— स्मरण करने मात्र से पापों का नाश करने वाले तथा मोक्ष प्रदान करने वाले अमित तेजस्वी शिवजी की पूजा कहाँ करनी चाहिए ॥१०६॥ शिवजी तो शिवस्वरूप हैं तथा शिव तत्त्व के वेत्ता हैं । वे सोम स्वरूप है चन्द्रमा ही उनका भूषण है तथा चन्द्रमा उनका नेत्र हैं ॥१०७॥ मूर्ति रहित भी होकर वे वेदमूर्ति हैं वेद के सार अर्थ के वेत्ता हैं । वे वेदों तथा वेदाङ्गों के ज्ञाता है वे जानने योग्य तथा नहीं जानने योग्य वस्तु को जानने वाले तथा योगी हैं । दुग्ध के समान उनका शरीर धवल है, वे गौ के दुग्ध से स्नान करके आनन्दित होते हैं । वे गौ का पालन करने वाले हैं तथा उनके तीन नेत्र हैं । त्रयी ही उनका नेत्र हैं तथा वे माया करने वाले हैं ॥१०८-१०९॥ प्रश्न के बीच में राम को शिवजी ने ज्ञान प्रदान किया। वे स्थाणु के समान बैठकर अपनी नासिका के अग्रभाग को देखते हुए ॥११०॥ श्रीरामचन्द्रजी को आनन्दजन्य नेत्रों से निकलने वाली आंसू की धारा गालों तक बहकर चली आयी थी । वे अपने हृदय में गौ के दुग्ध से स्नान करने के कारण अत्यन्त स्निग्ध शरीर वाले शिवजी का ध्यान कर रहे थे ॥१११॥ उसके बाद श्रीरामचन्द्रजी के शरीर में शङ्करजी का प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ रहा था । चार भुजाओं और तीन नेत्रों वाले शङ्करजी के प्रतिबिम्ब को देखकर ॥११२॥ सभी मुनीश्वर आश्चर्यित हो गये । शिवजी के वक्षःस्थल में विधमान श्रीरामचन्द्रजी के देदीप्यमान आकार को देखकर आधे प्रहर तक सबके सब मौन रहे । उसके बाद सबों ने श्रीरामचन्द्रजी को देखा । अपने प्रश्न का अनुसन्धान करके श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि आप कहें॥११३-११४॥ **श्रीशङ्करजी ने कहा—** पूजा चाहे अचल की हो अथवा चल की हो, अपनी इच्छा के अनुसार वह होती है । लिङ्ग की पूजा ही मुख्य है । लिङ्ग के अभाव में प्रतिमा आदि पर शङ्करजी की पूजा करनी चाहिए ॥११५॥ अधिकारानुसार विभिन्न स्थानों पर पूजा होती है । निर्गुण अथवा सगुण की

चलस्य पूजनं वक्ष्ये स्थापनोद्वासने तथा । ते उभे न विजानाति कश्चिन्मुनिरपि क्वचित्॥११८॥

स्थापयन्ति हृदब्जे वै गोपयन्ति यजन्ति च ।
उद्वासयन्ति देवेशं शङ्करं योगिनःसदा ॥११९॥
क्रियां चातीव होतृणां वह्नौ देवं त्रियम्बकम् ।
पूजकानामशेषाणां शिवलिङ्गे महेश्वरम् ॥१२०॥
सज्जिकं परमोत्कृष्टं स्वर्णं चैव विनिर्मितम् ।
राजतैर्वा दलैःकार्यं राजतैर्वैणवैस्तु यत् ॥१२१॥

लतासूत्रैरथो वापि रचितं दारुणाऽथवा। वस्त्रेण वाऽथ रचितं मृदा विरचितं भवेत् ॥१२२॥
तत्र संवेष्ट्य वस्त्रेण सुगन्धेन समन्विते । धौतवस्त्रयुगे शुद्धे मृद्धासनसमन्विते ॥१२३॥
तत्र संवेष्ट्य वस्त्रेण सुगन्धेन समन्विते । धौतवस्त्रयुगे शुद्धे मृद्वासनसमन्विते॥१२४॥
शीतोष्णरहिते पादचतुष्टयसमन्विते । प्रावृत्तिच्छेदनोपेते कृमिकीटविवर्जिते॥१२५॥
धौतेन मृदुवस्त्रेण सर्वतो वेष्ट्यं तं शिवम् । विन्यस्य सज्जिकामध्ये प्रावृत्य च पुनर्विभुम्॥१२६॥

एषा हि सज्जिका राम देवस्याग्रेऽतिकीर्तिता ।
तस्य च स्थापनं पाठो रहस्ये च महेशितुः ॥१२७॥

अथवा भित्तिमूले स्याद्देववेद्यामथापि वा । सुरक्षिते तथादेशे रक्षकं च नियोजयेत् ॥१२८॥
प्राणादेरविनाभावं कुर्वीत नियमैःसह । एतद्धि राजसं प्रोक्तं स्थापनं परमात्मनः ॥१२९॥

पूजा लिङ्ग पर ही सफल होती है ॥११६॥ प्रतिमा आदि पर की गयी निर्गुण पूजा सफल नहीं होती है। लिङ्ग अचल हो या सचल लिङ्ग पर ही शङ्करजी की पूजा श्रेष्ठ होती है ॥११७॥ अब मैं चल लिङ्ग की पूजा उसकी स्थापना तथा उसके उद्वासन का वर्णन करता हूँ । उन दोनों को कोई मुनि भी नहीं जानता है ॥११८॥ योगिजन अपने हृदय कमल में ही देवेश शङ्करजी की स्थापना करते है, पूजन करते हैं, उनकी रक्षा करते है, तथा अन्त में उनका उद्वासन करते हैं ॥११९॥ अग्निहोत्र करने वाले अग्नि में ही त्र्यम्वक भगवान् शिव की सारी क्रिया करते हैं । सभी पूजन करने वाले शिव लिङ्ग पर ही शङ्करजी की पूजा की सारी क्रिया करते हैं ॥१२०॥ लिङ्ग की स्थापना, पूजा, उद्वासन करना चाहिए लिङ्ग ही महेश्वर का आश्रय है ॥१२१॥ सज्जिक लिङ्ग सबसे उत्कृष्ट होता है, सुवर्ण निर्मित लिङ्ग चाँदी के पत्र से निर्मित लिङ्ग अथवा चाँदी के बाँस से भी लिङ्ग का निर्माण किया जाता है । या लताओं से जो लिङ्ग बनाया जाता है, अथवा काष्ठ निर्मित लिङ्ग या वस्त्र से वनाया गया लिङ्ग, अथवा मिट्टी से बनाया गया लिङ्ग हो सकता है ॥१२२-१२३॥ लिङ्ग को सुन्धित वस्त्र से वेष्टित करके उसे धोती पर अथवा कोमल आसन पर, शीत तथा ऊष्ण से रहित चार पैरों वाली तथा क्रिमि तथा कीड़ों से रहित चौकी पर स्थापित करे ॥१२४-१२५॥ शिवजी को धोती तथा कोमल वस्त्र से लपेट दे । फिर उनको सज्जिका के बीच में स्थापित करके शिवजी को घेर दे ॥१२६॥ हे श्रीरामचन्द्र भगवान् ! के आगे इसी को सज्जिका कहते हैं । शङ्करजी की स्थापना और उनका पाठ एकान्त में करना चाहिए ॥१२७॥ अथवा दिवार के मूल में उनकी स्थापना करे अथवा देववेदी पर करे । उस स्थान को सुरक्षित होना चाहिए और वहाँ किसी को रक्षक रूप से नियुक्त कर दे॥१२८॥ उसके बाद नियम पूर्वक उनकी प्राण प्रतिष्ठा इत्यादि करे । यही श्रीभगवान् की राजस्थापना

सात्त्विकं स्वसमीपस्थं धारणं तामसं पुनः। धारणं गात्रसंस्पर्शमशेषदेहगोपनम् ॥१३०॥
मस्तके धारणं मुख्यं ब्रह्मणा च तथा कृतम् ।
विन्यस्य मुकुटस्यान्ते धारणं शुभमुच्यते ॥१३१॥
ललाटे धारणं शस्तं यथा लक्ष्म्या धृतं शुभम् ।
बाणेन च धृतं मूर्ध्नि दक्षिणोरसि वा पुनः ॥१३२॥
कर्णे च हरकर्णेन मुनिना परमर्षिणा। विनिर्भिद्य तथागात्रं लोहस्थानं प्रकल्प च ॥१३३॥
धारयन्ति तथालिङ्ग राक्षसा:केचिदुत्तमाः । अनिकेतनमर्त्यानामशक्तानां शिरोधृतिः ॥१३४॥
अधमाधममाख्यातं नीविबन्धादि धारणम्। तेषु तूच्छिष्टसंप्राप्तौ मस्तके धारणं भवेत् ॥१३५॥
अधमाधमवृत्तीनां सदा वै लिङ्गधारणम्। पापिनामपि चाश्चर्यं यमलोके न विद्यते ॥१३६॥

श्रीराम उवाच

चित्रगुप्तेन लिखिता ललाटे या लिपिर्दृढा। तथा तु लिप्या नियतं नरकं कथमन्यथा ॥
करोति पूजनं शम्भोः पापं नाशयते कथम् ॥१३७॥

शम्भुरुवाच

पापं नाशयते कृत्स्नमपि जन्मशतार्जितम्। भर्त्सनात्सर्वपापानां स्मरणाच्च महेशितुः ॥१३८॥
भस्मेति पदमाख्यातं तस्य धारणमुत्तमम् । यथाविधि ललाटे वै वह्निवीर्यप्रधारणात् ॥१३९॥
नाशयेल्लिखितां यामीं पटस्थामिव हव्यभुक् ।
कर्णोपरि कृतं पापं नष्टं स्यान्मुखधारणे ॥१४०॥

कहा गया है ॥१२९।अपने सन्निकट स्थापना करना सात्त्विक कहलाती है और उस लिङ्ग को धारण किए रहना तामस होता है । शरीर का संस्पर्श करना ही धारण है । उस समय सम्पूर्ण शरीर को छिपाये रखे॥१३०॥ लिङ्ग को अपने शिर पर धारण करना ही मुख्य हैं । ब्रह्माजी ने ही शिवलिङ्ग को अपने शिर पर धारण किया था । अपने मुकुट के ऊपर स्थापित करके उस मुकुट को धारण करना शुभ है ॥१३१॥ शिवलिङ्ग को ललाट पर धारण करना शुभ है । जैसा कि लक्ष्मीजी ने धारण किया था । बाण ने अपने शिर पर शिवलिङ्ग को धारण किया था अथवा अपने हृदय में धारण करे ॥१३२॥ हरकर्ण मुनि ने अपने कानों में शिवलिङ्ग को धारण किया था । कान में भी शिवलिङ्ग को धारण करना शुभ है । शरीर को छेद कर उसमें लौह निर्मित स्थान बनाकर ॥१३३॥ कुछ उत्तम कोटि के राक्षस अपने शरीर में शिवलिङ्ग को धारण करते हैं । जिन मनुष्यों को कोई अपना गृह नहीं है ऐसे लोगों को अपने शिर पर शिवलिङ्ग धारण करना चाहिए ॥१३४॥ अपने नीवी बंध में लपेट कर शिवलिङ्ग को धारण करना अत्यन्त अधम कोटि का धारण है । उन सबों को भोजन आदि के समय शिवलिङ्ग को अपने शिर पर धारण करना पड़ता है॥१३५॥ जिनकी अधमाधम वृत्ति है, उन लोगों के द्वारा सदैव लिङ्ग का धारण किया जाना, यह पापियों की क्रिया अलौकिक है ॥१३६॥ **श्रीराचमन्द्रजी ने कहा**— चित्रगुप्त ने जो ललाट में अमिट अक्षर लिख दी है उसके द्वारा तो निश्चित रूप से नरक की प्राप्ति होती है दूसरे प्रकार से कैसे नरक हो सकता है?॥१३७॥ पापी शङ्करजी की पूजा करके पाप का नाश कैसे करता है ? **शङ्करजी ने कहा**— वह पापो की निन्दा करके तथा शङ्करजी का स्मरण करके अपने सैकड़ों जन्म के पापों का नाश कर देता है । भस्म

कण्ठे च धारणात्कण्ठभोगादि कृतपातकम् ।
बाह्वोर्बाहुकृतं पापं वक्षसि मनसा कृतम् ॥१४१॥
नाभ्यां शिश्नकृतं पपं पृष्ठे गुदकृतं तथा। पार्श्वयोर्धारणाद्राम परस्त्र्यालिङ्गनादिजम्॥१४२॥
तद्भस्मधारणं शस्तं सर्वत्रैव त्रिपुण्ड्रकम् । ब्रह्मविष्णुमहेशानां त्र्यग्नीनां च धारणम्॥१४३॥
गुप्त्यै लोकत्रयाणां च धारणं तेन वै कृतम् ।
धृतं पञ्चदशस्थाने शुद्धं भस्माभिमन्त्रितम् ॥१४४॥
कोष्ठयुग्मे बाहुयुग्मे कोष्ठोपरियुगे तथा। धारणं सर्वदेहानां पूजार्थं धर्मसमतम्॥१४५॥
भस्माशना भस्मशय्या भस्मोद्धूलितविग्रहाः ।
भस्मस्नानाः सदापापैर्मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥१४६॥
आदौ ब्राह्मणदीक्षायां त्रियायुषमिति स्मृतम्। प्रसवे च मनुष्याणां भूतावेशेऽपि रक्षकम्॥१४७॥
सर्पादि विषहान्यर्थं सर्वेषां साधनं त्विदम् । अपि वा वैष्णवो मर्त्य अथवापीतरो जनः ॥१४८॥
भस्मस्नायी भस्मयुक्तः कर्मस्वधिकरोति वै ॥१४९॥

श्रीराम उवाच

भस्ममाहात्म्यमादौ मे भस्मायुष्यं हि कस्य वै ।
कथं हि रक्षते ह्येतत्सर्वमेतद्वदस्व मे ॥१५०॥

को धारण करना उत्तम है ॥१३८-१३९॥ उसको वह्नि बीज के साथ ललाट में धारण करने से ललाट में लिखि हुयी यम की लिपि उसी तरह से नष्ट हो जाती है जिस तरह वस्त्र पर लिखी हुयी लिपि को अग्नि जला देती है ॥१४०॥ कान के ऊपर तथा मुख में भस्म लगाने से भी पाप नष्ट होता है। भस्म को गले में धारण करने से भोगादि जन्य पाप का नाश होता है ॥१४१॥ दोनों भुजाओं में भस्म लगाने से हाथों से किए गये पाप का नाश होता हें वक्षःस्थल पर भस्म लगाने से मन के द्वारा किए गये पाप का नाश होता है। नाभि में भस्म लगाने से शिश्न के द्वारा किए गये पाप का नाश होता है। पीठ पर भस्म लगाने से गुदाजन्य पाप का नाश होता है ॥१४२॥ हे श्रीराम ! बगल में भस्म लगाने से परस्त्री के आलिङ्गन जन्य पाप का नाश होता है। इन सभी स्थानों में भस्म को त्रिपुण्ड्र के आकार का ही लगाना चाहिए॥१४३॥ अपने शरीर के पन्द्रह स्थानों में अभिमन्त्रित शुद्ध भस्म को लगाने वाले व्यक्ति को ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनो अग्नियों के त्रयी रक्षा करने के लिए तीनों लोकों के धारण करने का फल होता है। भस्म दोनों कुक्षियों में, दोनों भुजाओं में, दोनों कोष्ठों के ऊपर लगाना चाहिए ॥१४४-१४५॥ सभी शरीरों पर भस्म धारण पूजा के लिए धर्म सम्मत है। भस्म को खाने वाले, भस्म पर सोने वाले तथा भस्म स्नान करने वाले तथा भस्मोद्धूलन करने वाले सदा पाप मुक्त रहते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। ब्राह्मण की प्रथम दीक्षा में त्र्यायुष बतलाया गया है ॥१४६-१४७॥ यह मनुष्यों के प्रसव काल में तथा भूत का आवेश होने से भी रक्षा करता है। सर्प आदि के विष का नाश करने का भी भस्म साधन है ॥१४८॥ जो वैष्णव नहीं हैं उनके पितृगण भस्म स्नान करने वाले तथा भस्म से युक्त व्यक्ति का कर्म करने में अधिकार होता है॥१४९॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** आप मुझे यह बतलायें कि भस्म का माहात्म्य क्या है ? भस्म किसको आयु प्रदान करता है, तथा भस्म कैसे रक्षा करता है ? इन सारी बातों को आप बतलायें॥१५०॥

शम्भुरुवाच

आयुष्यवर्द्धनेहेस्त्रिविधस्यापि देहिनः । पापघ्नं शीतमुष्णं च स्पर्शाच्छिवपदप्रदम्॥१५१॥
अत्र ते कीर्तयिष्यामि चेतिहासं पुरातनम्। आसीद्वासिष्ठवंशयस्तु धनञ्जय इति द्विजः ॥१५२॥
तस्य भार्याशतं चासीद्रूपलावण्यसंयुतम्। तासामेका तु सुषुवे शामाका करुणं मुने ॥१५३॥
भार्याणां सङ्ख्यया राम ! सुताश्चसंस्तपस्विनः ।
पित्रा विभागस्तेषां च विषमः परिकल्पितः ॥१५४॥
भ्रातृणां च तथाह्येव वैरबन्यो महानभूत । नराणामेकजातीनां वैरं नियतमेव तु॥१५५॥
अथासौ करुणो गत्वा भवनाशिनिकातटे। नानामुनिगणौः सार्द्धं नरसिंहदिदृक्षया॥१५६॥
नृसिंहदशनार्थन्तु ब्राह्मणेन तु केनचित्। उत्कृष्टालजम्बीरमानीतं रूपगन्धवत्॥१५७॥
करुणस्तु तदादाय व्यजिघ्रत्फलमुत्तमम् । तत्र स्थिता द्विजगणाः शापेन तमोजयन्॥१५८॥
मक्षिका भव पापात्मन्वर्षाणां शतमप्यतः। शापावासनं भविता दधीचेन महात्मना ॥१५९॥
अथ मक्षिकतां प्राप्तो भार्यामिदमभाषत् ।
मक्षिकात्वमहं प्राप्तो मां शुभे ! पालयस्व भोः ॥१६०॥
इत्युक्त्वा स तथा भूतो वभ्राम च ततस्ततः ।
अथैवं विधमाज्ञाय ज्ञातयः पापनिश्चयाः ॥१६१॥
तद्वधे यत्नमास्थाय तैलमध्ये ह्यपातयन् । मृतं पतिमथादाय दुःखिता सा कृशोदरी ॥१६२॥
तद्दुःखशमनार्थाय प्राह देवी त्वरुन्धती । अमुं सञ्जीवयाम्यद्य भस्मनैव शुचिस्मिते ॥१६३॥

शम्भु ने कहा— भस्म तीनों प्रकार के मनुष्यों की आयु को वढ़ाते हैं । यह पाप का विनाश करता है, शीत और ऊष्ण से भी रक्षा करता है, तथा स्पर्श करने से भस्म शिवलोक को प्रदान करता है ॥१५१॥ इस विषय में मैं आपका प्रचीन इतिहास सुनाता हूँ । वसिष्ठ गोत्रीय धनञ्जय नामक ब्राह्मण थे ॥१५२॥ उनकी रूप तथा लावण्य सम्पन्न सौ पत्नियाँ थीं । उनमें से एक पत्नी ने शामका करुण को जन्म दिया॥१५३॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जितनी पत्नियाँ थीं उतने ही उनके पुत्र थे । वे सबके सब तपस्वी थे । पिता ने उन सबों को एक बराबर धन सम्पत्ति नहीं दिया ॥१५४॥ उसके कारण सभी भाइयों में भयङ्कर वैर हो गया। एक जाति के मनुष्यों में तो स्वभावत: वैर होता है ॥१५५॥ इसके बाद करुण भावनाशिनि नदी के तट पर भगवान् नृसिंह का दर्शन करने की इच्छा से मुनियों के साथ चले गये ॥१५६॥ भगवान् नृसिंह का दर्शन पाने के लिए कोई ब्राह्मण उत्कृष्ट जम्बीर का फल लाया । वह फल सुगन्धित और देखने में सुन्दर था ॥१५७॥ करुण उस फल को लेकर सूंघ लिए । यह देखकर वहाँ जो ब्राह्मण थे वे उसे शाप दे दिए॥१५८॥ कि अरे पापी ! आज से सौ वर्षों तक तुम मक्खी हो जाओ । महात्मा दधीच तुम्हारे शाप का उद्धार करेंगे ॥१५९॥ इसके बाद वह करुण मक्खी हो गया और अपनी पत्नी से कहा । हे शुभे ! मैं मक्खी हो गया हूँ तुम मेरी रक्षा करो ॥१६०॥ इस तरह से कहकर वह मक्खी होकर इधर-उधर घूमने लगा । इस बात को जानकर उसके पापी जो दायाद थे ॥१६१॥ वे उसको मार देने के लिए उसे तेल में डाल दिए । अपने मरे हुए पति को लेकर उसकी पत्नी दुःखी हो गयी ॥१६२॥ उसके दुःख को दूर करने के लिए अरुन्धती देवी ने कहा— हे सुन्दरि ! इसको मैं भस्म के ही द्वारा जीवित कर देती हूँ ॥१६३॥

अथाग्निहोत्रजं भस्म अरुन्धत्यै न्यवेदयत्। मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण मृतजन्तौ तथाऽक्षिपत्॥१६४॥
मन्दवायुं तथा चक्रे व्यजनेन शुचिस्मिता। उदतिष्ठत्ततो जन्तुर्भस्मनोऽस्य प्रभावतः ॥१६५॥
ततो वर्षशते पूर्णे ज्ञातिरेको ह्यमारयत् ।
मृते भर्तरि सा साध्वी दुःखिता च शुचिस्मिता ॥१६६॥
दधीचं नाम विप्रेन्द्रं महामाहेश्वरं मुनिम्। जगाम शरणं साध्वी प्राह विप्रस्तपोधनः ॥१६७॥
त्रियायुषविहीनं तु जमदग्निं तपोनिधिम् । भस्मैवजीवयामास कश्यपं च तथाविधम् ॥१६८॥
देवानपि तथाभूतान्मामप्येतादृशं पुरा। तस्मात्तु भस्मना जन्तुं जीवयामि तवानघे!॥१६९॥
इत्येवमुक्त्वा भगवान्दधीचो महेश्वरं वै शरणं जगाम ।
भस्माभिमन्त्र्याथ करे गृहीत्वा सञ्जीवयामास धवं सुसाध्व्याः ॥१७०॥
महेशस्य करस्पर्शाद्विशापः करुणोऽभवत्। स्वरूपं च ततो गत्वा स्वमाश्रमपदं ययौ ॥१७१॥
दधीचमपि सा साध्वी गृहमानीय भोजने। प्रार्थयामास विप्रर्षिमुक्तवानथ स द्विजः॥१७२॥
भुक्तवत्यथविप्रेन्द्रे कोटिशिष्याः समागताः । अथ देवाः समायाताभस्मोद्धूलितविग्रहाः ॥
नमस्कृत्य दधीचं तु पप्रच्छुः शिवकाङ्क्षया ॥१७३॥

देवा ऊचुः

अस्माकं तु पुराज्ञानं नष्टमासीन्महामते। गौतमस्य तु भार्या वै दृष्ट्वाकामातुरा वयम्॥१७४॥
तथा च धर्षिता देवी विवाहकृतमङ्गला। तां वै कामयमानानां नष्टं ज्ञानमभूच्च नः ॥१७५॥

इसके बाद उन्होंने अग्निहोत्र जन्य भस्म को लेकर अरुन्धती को दिया। उन्होंने मृत्युंजय मन्त्र पढ़कर भस्म को उस पर डाला ॥१६४॥ उसके बाद शुचिस्मिता ने उस पर पङ्खे से धीरे-धीरे हवा की। उस भस्म के प्रभाव से वह जीव जी गया ॥१६५॥ उसके बाद सौ वर्ष पूरा होने पर उसके एक दायाद ने उसे मार दिया। अपने पति के मर जाने पर शुचिस्मिता दुःखी हो गयी ॥१६६॥ वह दधीच नामक शङ्कर भक्त मुनि के शरण में चल गयी तो उन तपोधन ने कहा ॥१६७॥ त्र्यायुष से रहित तपोनिधि जमदग्नि को तथा उसी प्रकार के कश्यप ऋषि को भस्म ने जीवित कर दिय। । इसीतरह से देवताओं को तथा मुझको भी भस्म ने जीवित कर दिया था। हे अनघे ! इसीलिए मैं इस जन्तु को भस्म से ही जीवित कर दे रहा हूँ ॥१६८-१६९॥ इस तरह से कहकर भगवान् दधीच ने भगवान् शङ्कर की शरणागति की। उन्होंने हाथ में लेकर भस्म को अभिमन्त्रित कर दिया और उस साध्वी के पति को जीवित कर दिया ॥१७०॥ महेश के हाथ का स्पर्श होते ही करुण शाप रहित हो गये और अपने स्वरूप को प्राप्त करके अपने आश्रम में चले गये ॥१७१॥ वह साध्वी दधीच को भी अपने घर लायी और उनसे भोजन करने के लिए प्रार्थना की और महर्षि दधीच ने उसके घर भोजन किया ॥१७२॥ विप्रर्षि के भोजन कर लेने के बाद उनके एक करोड़ शिष्य आये। इसके बाद देवता भी उसके घर देवता आये। उन सबों का शरीर भस्मोद्धूलित था॥१७३॥ उन सबों ने दधीच को नमस्कार करके कल्याण प्राप्ति की कामना से पूछा। **देवताओं ने कहा—** हे महामते ! हमलोगों का ज्ञान पहले नष्ट हो गया था ॥१७४॥ गौतम महर्षि की पत्नी को देखकर हम सभी कामातुर हो गये थे। उस समय देवी का विवाह हो गया था हमलोगों ने उसको प्राप्त करना चाहा। उसको प्राप्त करने की इच्छा वाले हमलोगों का ज्ञान नष्ट हो गया। उसके बाद अज्ञानी बने

ततः सर्वे वयं भीता गता दुर्वाससं मुनिम् ।
स उवाचाधुना सर्वमपनेष्यामि वो मलम् ॥१७६॥
शतरुद्रियमन्त्रेण मन्त्रितं शम्भुना स्वयम् । ममापि दत्तं तेनैव ब्रह्महत्यादिशान्तये ॥१७७॥
इत्येवमुक्त्वा दुर्वासा दत्तवान्भस्म चोत्तमम्। अथ तद्वचनात्सर्वे वयं विकृतचेतनाः ॥१७८॥
शतरुद्रियमन्त्रेण भस्मोद्धूलितविग्रहाः। निर्धूतपातकाः सर्वे संवृत्तास्तत्क्षणेन हि ॥१७९॥
आश्चर्यमेतज्जानीमो भस्मसामर्थ्यमीदृशम् ॥१८०॥

दधीच उवाच

शैवस्य भस्मनः शक्तिं संक्षेपेण वदामि वः ।
विस्तरेण न शक्येत वक्तुं वर्षशतैरपि ॥१८१॥
अत्र वः कीर्तयिष्यामि पुरा वृत्तं तु देवयोः ।
हरिशङ्करयोः सर्वे ब्रह्महत्यादिनाशनम् ॥१८२॥
पुरा चैकार्णवे घोरे ब्रह्मणः प्रलये सति। महाविष्णुस्तु भगवाञ्छेते स्म प्रलयाम्भसि॥१८३॥
तस्यपार्श्वद्वयं प्राप्य ब्रह्माण्डानां शतद्वयम् । विंशतिः पादयोः विंशतिर्मस्तकान्तरे ॥१८४॥
नासामैक्तिकभावेन ब्रह्माण्डमदधात्प्रभुः । तन्नाभिमण्डले केचिल्लोमशाद्या मुनीश्वरः ॥१८५॥
तपस्तपन्तः सुमहदीश्वरं पर्युपासते। अथ विष्णुर्महातेजाश्चिन्तामाप सिसृक्षया ॥१८६॥
ध्यानयोगपरो भूत्वा न किञ्चित्पर्यपश्यत। अथ दुःखेन महता रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ॥१८७॥
एतस्मिन्नन्तरे दीप्तिः काचिल्लोकविलक्षणा ।
दृष्ट्वा च हरिणा भीत्या लोचने च निमीलिते ॥१८८॥

हमलोग महर्षि दुर्वासा के पास गये ॥१७५-१७६॥ महर्षि दुर्वासा ने कहा कि मैं अभी-अभी तुमलोगों के सम्पूर्ण अज्ञान को विनष्ट कर देता हूँ इस भस्म को स्वयं शम्भु ने शतरुद्रिय मन्त्र से अभिमन्त्रित किया है ॥१७७॥ उन्होंने ब्रह्महत्या आदि की शान्ति के लिए मुझे भी उस भस्म को दिया है । इस तरह से कहकर महर्षि दुर्वासा ने उस उत्तम भस्म को प्रदान किया ॥१७८॥ उसके बाद उनके कहने से विकृत ज्ञान वाले हमलोग भी शतरुद्रिय मन्त्र से अपने शरीर को भस्म से उद्धूलित किये ॥१७९॥ हमसवों का उसी समय सारा पाप नष्ट हो गया इस आश्चर्य को हमलोग जानते हैं । और भस्म के सामर्थ्य को भी जानते हैं ॥१८०॥ **दधीच ने कहा**— शिवजी के भस्म की शक्ति को मैं आपलोगों को संक्षेप में बतला रहा हूँ उसका विस्तार से वर्णन तो सैकड़ों वर्षों में नहीं किया जा सकता है ॥१८१॥ इस विषय में मैं आपलोगों को दो देवताओं का इतिहास सुनाता हूँ । श्रीहरि और शङ्करजी का वह इतिहास है वह ब्रह्महत्या आदि का नाश करने वाला है ॥१८२॥ प्राचीनकाल में जब भयङ्कर एकार्णव हो गया था और ब्रह्माजी का प्रलय हो गया था । उस महाप्रलय के समय भगवान् महाविष्णु शयन कर रहे थे ॥१८३॥ उनके पास दो सौ ब्रह्माण्ड आये । बीस तो पैरों के पास आये और बीस उनके मस्तक के नीचे ॥१८४॥ उन ब्राह्मण्डों को मोती समझकर भगवान् ने धारण कर लिया । उनके नाभिकमल में लोमश आदि कुछ मुनीश्वर ॥१८५॥ तपस्या करते हुए श्रीभगवान् की उपासना कर रहे थे । इसके बाद महातेजस्वी भगवान् सृष्टि करने की इच्छा किये ॥१८६॥ वे ध्यान योग परायण हो गये; किन्तु उनको कोई पता नहीं चला । इसके बाद दुःखी

आगम्यमानो गोक्षीरसमतेजाः सुगात्रवान्। संग्रथ्य कोटिव्रह्माण्डदामयुग्मं करद्वये॥१८९॥
दधानमुरसा धामकोटिव्रह्माण्डकल्पितम्। व्रह्माण्डमेकं निपतदुत्पतच्च करद्वये॥१९०॥
सर्वाभरणसंयुक्तं तथाभूतं तमव्ययम्। विष्णुस्तुष्टाव च दृष्ट्वा दर्शनाय च तस्य वै॥१९१॥

विष्णुरुवाच

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते शाश्वताव्यय।
न जानेऽहं भवन्तं भोस्त्वं च वेत्सि नमो नमः॥१९२॥
जानामि न च ते भावं दुर्निरीक्ष्या च ते द्युतिः।
माणिक्यकुण्डलं हेमदामजालविभूषितम्॥१९३॥
रत्नाङ्गुलीयं सुभगं वाहुकोष्ठविभूषणम्। तनुरक्तोत्तमाकीर्णदीप्तायतविलोचनम्॥१९४॥
वाणलोचनसङ्काशं भाललोचनमव्ययम्। कन्दर्पकामुकभ्रान्तिजनकंभ्रुवमीश्वरम्॥१९५॥
स्निग्धाधोन्नतचार्वङ्गनासमच्छकपोलकम्। मन्दस्मितं प्रसन्नास्यं विभुं वालेन्दुदर्शनम्॥१९६॥
विज्ञानरक्तवसनवेदकल्पितभूषणम्। शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मिचक्षुर्मे दीयतां विभो!॥१९७॥
दीनान्धकृपणाज्ञाननष्टस्य शरणं भव। अथ दिव्यं ददौ चक्षुः स्वात्मदर्शनशक्तिमत्॥१९८॥
अथ दृष्ट्वा हरिः शम्भुं त्रिनेत्रं पुरतः स्थितम्।
को भवानित्युवाचाथ न जाने त्वां महायशाः॥
प्रणामं केवलं कर्तुं शक्तोऽस्मि न हि वेदितुम्॥१९९॥

होकर वे वार-वार रोए ॥१८७॥ उसी समय एक लोकविलक्षण प्रकाश को देखकर श्रीभगवान् भय से अपनी आँखे को वन्द कर लिए ॥१८८॥ आने वाले गोक्षीर के समान तेजस्वी शरीर वाले पुरुष को जो दो करोड़ों व्रह्माण्डों की माला वनाकर अपने दोनों हाथों में ॥१८९॥ धारण किए हुए था करोड़ों व्रह्माण्डों के तेज से युक्त एक व्रह्माण्ड को अपने हृदय पर धारण किए हुए था। तथा दोनों हाथों से एक व्रह्माण्ड को नीचे गिराता और उठा रहा था। वह समस्त भूषणों से भूषित था, ऐसे अव्यय पुरुष को देखे विना ही देखने के लिए विष्णु ने उसकी स्तुति की ॥१९०-१९१॥ **विष्णु ने कहा**— देव देवेश को नमस्कार है, अव्यय पुरुष को मैं नमस्कार करता हूँ। मैं आपको नहीं जानता हूँ और आप मुझे जानते हैं। आपको मेरा वार-वार नमस्कार है ॥१९२॥ मैं आपके भाव को नहीं जानता हूँ, आपके आकार को देख पाना वहुत कठिन है। माणिक्य कुण्डल को धारण किए हुए, आप सुवर्ण के हार से सुशोभित है ॥१९३॥ आप रत्न निर्मित अङ्गूठियों से सुशोभित हैं तथा आप अपनी भुजाओं के प्रकोष्ठ में भूषण धारण किए हुए हैं। आपके वड़े-वड़े नेत्रों में थोड़ी-थोड़ी लालिमा फैली हुयी हैं ॥१९४॥ आपके ललाट में विद्यमान नेत्र वाण नेत्र के समान हैं। आपकी नियानिका भौंहे कामदेव के धनुष के समान कुटिल हैं ॥१९५॥ आपकी नाक सुन्दर तथा नीचे के भाग में उठी हुयी है। आपके कपोल चमक रहे हैं। आपका मुख मन्द मुस्कान से प्रसन्न है तथा वाल चन्द्रमा के समान आपका दर्शन है ॥१९६॥ आपके वस्त्र विज्ञान से रञ्जित है और आपके अलङ्कार वेद कल्पित हैं। हे विभो! मैं आपकी शरणागति करता हूँ। आप मुझे नेत्र प्रदान करें॥१९७॥ दीन, अंध तथा भयभीत मेरी आप रक्षा करें उसके वाद उस अव्यय पुरुष ने भगवान् विष्णु को अपने दर्शन की शक्ति से युक्त नेत्र प्रदान किया ॥१९८॥ इसके वाद श्रीहरि ने अपने सामने खड़े हुए

सदाशिव उवाच

तव ज्ञानं प्रदास्यामि कुरु स्नानं च वारुणम् ।
भस्मस्नानं ततः पश्चात्ततो ज्ञानं वदाम्यहम् ॥२००॥

श्रीभगवानुवाच

मत्स्नानयोग्यं सलिलं न च तिष्ठति कुत्रचित् ।
इत्युक्तोऽथ निषण्णस्तु ब्रह्माण्डासक्तविग्रहः ॥२०१॥
ऊरुदघ्नजले स्नानं न योग्यमभवद्धरेः। शम्भुर्जहास स्नानाय जलमत्यधिकं त्वहो ॥२०२॥

दधीच उवाच

अथ देवः शिवो विष्णुं भालाक्षेण व्यलोकयत् ।
विलीनसूक्ष्मावयवं वामाक्षेणं व्यलोकयत् ॥२०३॥
ततः सूक्ष्मतनुर्विष्णुःशीतदेहश्च शम्भुना ।
उक्तश्च स्नाहि भो विष्णो ह्रद एष विकल्पितः ॥२०४॥
ततो हदे हरिः स्नातुं हराङ्के कल्पिते तदा। प्रवेष्टुं न शशाकाथगम्भीरे तद्ध्रदस्य तु॥२०५॥
हरिराह च नो पन्थाह्लदस्यास्य प्रवेशने। मार्गो मे दीयतां देव तमथो शम्भुरब्रवीत्॥२०६॥
कोटियोजनगम्भीरं जलमेतन्महत्पुरा । निविष्टस्यैव भवत ऊरुदघ्नं जलं विभो !॥२०७॥
इदानीं तिष्ठतश्चापि न प्रवेशो ह्लदे कथम्। अष्टाङ्गुलप्रमाणोऽयमूरुस्तस्मिन्ह्लदे च मे ॥२०८॥
पश्यामि प्रविशत्वं च पादस्पर्शं ददामि ते। वाक्यमेकं तु सोपानं वेदं मद्वाक्यनिस्सृतम्॥२०९॥

तीन नेत्र वाले शिवजी को देखा । भगवान् विष्णु ने पूछा आप कौन हैं ? हे महायशस्वी ! मैं आपको नहीं जानता हूँ ॥१९९॥ मैं आपको केवल प्रणाम कर सकता हूँ मैं आपको जानने में समर्थ नहीं हूँ । **सदाशिव ने कहा—** मैं आपको ज्ञान प्रदान करूँगा आप वारुण स्नान करें ॥२००॥ उसके बाद भस्म स्नान करें उसके बाद मैं ज्ञानोपदेश करूँगा । **श्रीभगवान् ने कहा—** मेरे स्नान करने योग्य जल कहीं भी विद्यमान नहीं है ॥२०१॥ इस तरह से कहकर भगवान् विष्णु बैठ गये । उनका शरीर ब्रह्माण्ड से सटा हुआ था। सर्वत्र जंङ्घा भर ही जल था अतएव श्रीहरि के स्नान करने योग्य नहीं था ॥२०२॥ यह देखकर शम्भु जोर से हँसकर कहे कि स्नान करने के लिए तो जल बहुत अधिक है । **दधीच ऋषि ने कहा—** इसके बाद शिवजी ने भगवान् विष्णु को अपने ललाटस्थ नेत्र से देखा ॥२०३॥ उस समय भगवान् विष्णु का शरीर विलीन हो गया था । उनका शरीर सूक्ष्म हो गया था । उनको सदा शिव ने अपने बायें नेत्र से देखा शङ्करजी ने विष्णु भगवान् के शरीर को सूक्ष्म और शीतल बना दिया ॥२०४॥ उन्होंने कहा— हे विष्णो! आप स्नान करें आपके लिए यह मैंने कुण्ड निर्मित कर दिया है । उसके बाद शङ्करजी के अङ्क (गोद) में निर्मित कुण्ड में भगवान् विष्णु स्नान करने के लिए प्रवेश किए ॥२०५॥ वे उस गहरे कुण्ड में प्रवेश नहीं कर सके । श्रीहरि ने कहा कि इस कुण्ड में प्रवेश करने का कोई मार्ग नहीं हैं ॥२०६॥ हे देव ! आप मुझे मार्ग प्रदान करें; उसके बाद शम्भु ने कहा करोड़ों योजन गहरा यह महान् जल पहले था॥२०७॥ उसमें प्रवेश करते ही जङ्घे भर कैसे हो गया । इस समय स्थित ह्रद में आप कैसे नहीं प्रवेश कर पा रहे हैं ?॥२०८॥ यह मेरा जङ्घा आठ अङ्गल का है, उसी में यह ह्रद है । मैं देख रहा हूँ, तुम मेरे पैर के

हरिरुवाच

शब्दारोहणसामर्थ्यं कस्यापीह न विद्यते । मूर्तस्य रोहणं शक्यग्रहणं वा कथं श्रुतेः ॥२१०॥

शम्भुरुवाच

पुंसः शक्तिर्न वस्तूनां धारणारोहणादिषु । गृहाणेमं महावेदं जग्राह हरिरप्यथ ॥२११॥
नम्रकरश्चाशक्तेर्हि पतन्निव जनार्दनः ।न च शक्यं मया धर्तुमिति प्राह शिवं हरिः॥२१२॥
शिवः प्रहस्य निपतीपात्यतेव (?) महाह्रदे ।
तत्सोपानमथारुह्य स्नातुमर्हसि केशव ॥२१३॥

दधीच उवाच

वेदे सोपानभूते हि ऊरुदघ्नोपलब्धिनि ।
तत्र स्नात्वा स विधिना बहिरुत्तीर्य चोक्तवान् ॥२१४॥
स्नातोऽस्मि किमतः कार्यं शम्भुराह हरिं ततः ।
ध्यायसे हृदये किं त्वं न च किञ्चिद्वदस्व मे ॥२१५॥
हरिर्न किञ्चिदित्याह तमथो शम्भुरुक्तवान् । भस्मस्नानेन संशुद्धो वेत्स्यसे परमं शुभम्॥२१६॥
दीक्षितस्य हि तच्छस्तं तद्रक्षां करवाण्यहम् ॥२१७॥

दधीच उवाच

स्ववक्षःस्थितभस्मैकं नखेनादाय शङ्करः । प्रणवेनाभिमन्त्र्याथ गायत्र्या ब्रह्मभूतया ॥२१८॥
अङ्गुलिभ्यामुपादाय शिवः पञ्चाक्षरेण वै । हरिमस्तकगात्रेषु सर्वेष्वपि समाक्षिपत्॥२१९॥
शान्तदृष्ट्या निरीक्ष्याथ जीवेत्याह हरिं हरः ।
ध्यायस्व किं ते हृदये स च ध्यानपरोऽभवत् ॥२२०॥

सहारे प्रवेश करो ॥२०९॥ मेरी वाणी ही सीढ़ी है । वेद मेरे वाक्य से निकला है । श्रीहरि ने कहा शब्द पर आरोहण करने का सामर्थ्य किसी में भी नहीं है ॥२१०॥ मूर्त पदार्थ को तो ग्रहण किया जा सकता है वेद का ग्रहण कैसे किया जा सकता है ? **शम्भु ने कहा—** वस्तुओं को धारण करने और उस पर आरोहण करने की शक्ति पुरुष में नहीं है ॥२११॥ तुम इस महावेद को धारण करो, इसके बाद श्रीहरि ने उसको धारण किया । शक्ति के अभाव के कारण उनका हाथ झुक गया लग रहा था वह गिर जायेगा। जनार्दन ने ॥२१२॥ शिवजी से कहा— इसको धारण करने में मैं समर्थ नहीं हूँ । शिवजी ने जोर से हँसकर उस गिरते हुए महावेद को महाह्रद में डाल दिया ॥२१३॥ उन्होंने कहा— हे केशव ! आप उस सोपान पर चढ़कर स्नान करें । **दधीच ऋषि ने कहा—** जो वेद सोपान बन गया तो उस ह्रद में जङ्घा भर पानी में ॥२१४॥ स्नान करके श्रीहरि ने स्नान करके शिवजी से कहा । मैंने स्नान कर लिया है, अब मुझे क्या करना है ? तब शिवजी ने श्रीहरि से कहा ॥२१५॥ तुम अपने हृदय में क्या ध्यान कर रहे हो और मुझे उसे बतला नहीं रहे हो । श्रीहरि ने कहा मैं कुछ भी ध्यान नहीं कर रहा हूँ उसके बाद शिवजी ने कहा। भस्म स्नान करके तुम अत्यन्त शुद्ध हो जाओगे तब परम शुभ को जान पाओगे । दीक्षित हो जाने पर ही मैं श्रेष्ठ वस्तु की रक्षा करूँगा ॥२१६-२१७॥ **दधीच ने कहा—** अपने वक्षस्थल में विद्यमान एक भस्म को शम्भु ने अपने नख से लेकर उसे पहले प्रणव से अभिमन्त्रित किया, उसके बाद ब्रह्म स्वरूपिणी

अपश्यद्धृदये दीपं दीर्घाकारमतिप्रभम् । हरिराह शिवं साक्षाद्दीपो दृष्टो मयेति च ॥२२१॥
शिवः प्राह न ते ज्ञानं परिपक्कमथो हरे । भस्म भक्षय ते ज्ञानं समग्रं सम्भविष्यति ॥२२२॥

हरिरुवाच

भक्षयिष्ये शुभं भस्मस्नातोऽहं भस्मना पुरा ।
दृष्ट्वेश्वरं भक्तिगम्यं भस्माभक्षयदच्युतः ॥२२३॥
तत्राश्चर्यमतीवासीत्पक्वविम्बसमद्युतिः । वासुदेवः शुद्धमुक्ताफलवर्णोऽभवत्क्षणात् ॥२२४॥
ततः प्रभृति शुक्लोऽसौ वासुदेवः प्रसन्नवान् ।
पुनर्ध्यानपरो भूत्वा दीपमध्ये च पूरुषम् ॥२२५॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशं त्रिनेत्रं द्विभुजं शिवम् । वरदं दक्षिणे हस्ते वामे चाभयदं विभुम् ॥२२६॥
पञ्चवर्षीयवपुषं शरच्चन्द्रयुतद्युतिम् । माणिक्यकुण्डलं हेमदामजालविभूषितम् ॥२२७॥
रत्नाङ्गुलीयसुभगं बाहुकोष्ठसुभूषणम् । तनुरक्तोष्ठमाकर्णदीर्घायतविलोचनम् ॥२२८॥
बाणलोचनसङ्काशं भाललोचनमव्ययम्। कन्दर्पकार्मुकभ्रान्तिजनकभ्रुवमीश्वरम् ॥२२९॥
विज्ञानरक्तवसनं वेदकल्पितनूपुरम्। वामाङ्गुलीयमध्यस्थमणिप्रणवमव्ययम् ॥२३०॥
स्निग्धोन्नतसुचावर्ङ्कनासमच्छकपोलकम् । वामाङ्गुलीयमध्यस्थमणिप्रणवमव्ययम् ॥२३१॥
दृष्टवानथ तं विष्णुः कृतकृत्योऽभवत्तदा । अथाह शम्भुर्भो विष्णो हृदि दृष्टं त्वया किमु ॥२३२॥

गायत्री से उसे अभिमन्त्रित किया ॥२१८॥ उसके बाद दो अङ्गुलियों से उठाकर शिव पञ्चाक्षर मन्त्र से श्रीहरि के मस्तक तथा सम्पूर्ण शरीर पर उसको डाला ॥२१९॥ उसके बाद शान्त दृष्टि से श्रीहरि को देखकर शङ्करजी ने कहा जीते रहो । अब ध्यान करो कि तुम्हारे हृदय में क्या है ? उसके बाद श्रीहरि ध्यानस्थ हो गये ॥२२०॥ उन्होंने अपने हृदय में बहुत बड़े तथा अत्यन्त प्रभा से सम्पन्न दीप को देखा। श्रीहरि ने कहा मैंने साक्षात् दीप को देखा है ॥२२१॥ शिवजी ने कहा हे हरे ! अभी आपका ज्ञान परिपक्व नहीं हुआ है । अब भस्म को खाओ तो तुम्हारा ज्ञान सम्पूर्ण होगा ॥२२२॥ **श्रीहरि ने कहा**— मैं शुभ भस्म को खा लेता हूँ, मैंने भस्म से स्नान किया है । जिनको भक्ति से जाना जा सकता है, उन शिवजी को देखकर भगवान् अच्युत ने भस्म को खा लिया ॥२२३॥ उस समय अत्यन्त आश्चर्य की बात हुयी पके हुए विम्बाफल के समान वासुदेव शुद्ध मोती के समान श्वेत वर्ण के हो गये ॥२२४॥ उसी समय से वासुदेव प्रसन्नता युक्त हो गये उसके बाद ध्यान मग्न होकर उन्होंने भीतर शुद्ध स्फटिक के समान तीन नेत्र वाले दो भुजाओं वाले शिव को देखा । उनके दाहिने हाथ में वरद मुद्रा और बायें हाथ में अभय मुद्रा थी ॥२२५-२२६॥ उनका शरीर पाँच वर्ष का था और वे दशो हजार शरत् कालीन चन्द्रमा की कान्ति से सम्पन्न थे । वे माणिक्य कुण्डल को धारण किए थे और सुवर्ण जाल से समलंकृत थे ॥२२७॥ उनकी सुन्दर अङ्गुठियाँ रत्न निर्मित थीं और वे अपने प्रकोष्ठ में वे सुन्दर भूषणों को धारण किए हुए थे । उनके ओष्ठ पर हल्की लालिमा थी और उनकी बड़ी-बड़ी आँखे कानों तक फैली हुयी थी । उनके ललाट में स्थित नेत्र बाण नेत्र के समान था और वे निर्विकार स्वरूप थे । उनकी कुटिल भौहें काम के धनुष की भ्रान्ति को उत्पन्न कर रही थीं ॥२२८-२२९॥ उनका सुन्दर अवयवों वाला शरीर था उनकी नाक और कपोल सुन्दर थे । मन्दमुसुकान से उनका मुखड़ा मनोहर था उनका दर्शन चन्द्रमा के समान आह्लादक था॥२३०॥

हरिराह पुरा दृष्टः पुरुषः शान्तविग्रहः। इत्युदीर्य महाविष्णुः शिवपादे पपात ह ॥२३३॥

हरिरुवाच

न शक्तिं भस्मनो जाने प्रभावं वा कुतस्तव ।
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु त्वामेव शरणं गतः ॥२३४॥

सदाशिव उवाच

वरं वृणु महाभाग ! मनसा यं त्वमिच्छसि ।
शिववाचमथाकर्ण्य हरिर्वव्रे वरोत्तमम् ॥२३५॥

हरिरुवाच

त्वत्पादयुगले शम्भो भक्तिरस्तु सदा मम । अथ दत्त्वा वरं शम्भुरिदमाह वचो हरिम् ॥
भस्मधारणसम्पन्नो मम भक्तो भविष्यसि ॥२३६॥

दधीच उवाच

इत्थमुक्तं महाज्ञानं भस्मसम्भवमादितः। तस्माद्यूयं सुराः सर्वे धारयध्वं तदादरात् ॥२३७॥
विस्मयोत्फुल्लनयनादेवाऽऽश्चासंस्तदस्त्विति। य इदंशृणुयान्त्यिं पुण्याख्यानमनुत्तगम् ॥२३८॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो यात्यासौ शाङ्करं पदम् ॥२३९॥

इति श्रीपद्मममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शिवराघवसंवादे भस्ममाहात्म्ये पञ्चोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

* * *

उनका वस्त्र विज्ञान से रंजित था। उनके नूपुर वेद के द्वारा कल्पित थे। बायें हाथ के बीच में निर्विकार मणि प्रणव था ॥२३१॥ उनका दर्शन करके भगवान् विष्णु कृत-कृत्य हो गये। इसके बाद शिवजी ने कहा हे विष्णो ! आपने अपने हृदय में क्या देखा है ?॥२३२॥ श्रीहरि ने कहा मैंने जो शान्त विग्रह वाले पुरुष को देखा था उसी को मैंने देखा है। यह कहकर भगवान् विष्णु शिवजी के चरणों पर गिर पड़े॥२३३॥ **श्रीहरि ने कहा—** मैं भस्म की शक्ति को नहीं जानता हूँ तो मैं आपके प्रभाव को कैसे जान सकता हूँ? आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ मैं आपके शरणागत हूँ ॥२३४॥ **सदाशिव ने कहा—** आप अपने मनोऽनुकूल वरदान माँगे। शिवजी के वचन को सुनकर श्रीहरि ने उत्तम वरदान माँगा ॥२३५॥ **श्रीहरि ने कहा—** हे शम्भो ! आपके दोनों चरणों में मेरी भक्ति सदैव बनी रहे। इसके बाद वरदान देकर शिवजी ने श्रीहरि से कहा ॥२३६॥ तुम भस्म धारण करने वाले मेरे भक्त होओगे। **दधीच ने कहा—** इस तरह से मैंने भस्म के प्रभाव को आपलोगों को सुनाया ॥२३७॥ अतएव आपलोग सदा आदर पूर्वक भस्म धारण किया करें। यह सुनकर देवताओं के भी नेत्र आश्चर्य से चकित थे, उनलोगों ने कहा ठीक है॥२३८॥ जो इस सर्वोत्तम पवित्र आख्यान को सुनता है वह समस्त पापों से रहित होकर शङ्करजी के लोक में जाता है ॥२३९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शिवराघवसम्वाद के अन्तर्गत एक सौ पाञ्चवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०५॥

* * *

एक सौ छठा अध्याय

शुचिस्मितोवाच

आयुष्यर्द्धनं भस्माशनं दृष्टं महामुने। परलोकगतिं दातुं शक्तमेतं वदस्व मे ॥१॥

दधीच उवाच

अत्र ते कथयिष्यामि इतिहासं पुरातनम् । चित्रगुप्तयमाभ्यां च यद्विख्यातं बभूव ह ॥२॥
मिथिलायां पुरा कश्चिच्छुनः पर्यटते क्षुधा। पुरा जन्मशतात्पूर्वं ब्राह्मणः पापनिश्चयः ॥३॥
पूर्वे वयसि वेदाढ्यः शास्त्राढ्यश्च सुबुद्धिमान् ।
स स्नातुं जाह्नवीं गत्वा स्नानं कृत्वा पितॄनपि ॥४॥
देवानृषीन्समभ्यर्च्य ययौ प्रात्तलिकापुरम्। प्रतिश्रयमथोचक्रे ब्राह्मणस्य निवेशने ॥५॥
तत्रैका क्षत्रियसुता यौवनस्था हतप्रिया। भ्रष्टराज्या च षट्कोटिनिष्कद्रव्येण संयुता ॥६॥
भुक्त्वाऽथ शयितं विप्रं सर्वावयवसुन्दरम्। रात्रौ चन्द्रोदये शुद्धे ज्योत्स्नाहसितदिङ्मुखे ॥७॥
ब्राह्मणाभ्याशमागत्य तमुदीक्ष्येदमब्रवीत्। कुतस्त्वमागतो विप्र कं वा देशं गमिष्यति॥८॥

ब्राह्मण उवाच

अकालचर्या सर्वेषां शङ्कामुत्पादयेद् ध्रुवम्। वयःस्थयोर्मिथो वादो रहस्यं दास्यमन्दिरे॥९॥

क्षत्रियोवाच

कथाप्रसङ्गे यात्रायां तीर्थे देशादिविप्लवे। दुर्भिक्षे ग्रामदहने रहोवादो न दूषितः ॥१०॥
प्रतिश्रयस्तु मद्गेहे भवतैव पुरा कृतः । मद्गेहवासिनी चाहं न शङ्कात्विह कस्यचित् ॥११॥

भस्म द्वारा कुत्ते को सुगति प्रदान वर्णन

शुचिस्मिता ने कहा— हे महामुने ! यह तो मैंने जान लिया कि भस्म का अशन (खाना) आयु को बढ़ाता है । आप यह बतलायें कि भस्म किस प्रकार परलोक की गति को प्रदान करता है ?॥१॥ **महर्षि दधीच ने कहा—** इस विषय में मैं तुम्हे पुराना इतिहास सुनाता हूँ । वह इतिहास चित्रगुप्त तथा यम के द्वारा विख्यात हो गया है ॥२॥ एक बार मिथिला में कोई भूखा कुत्ता घूम रहा था । वह पहले के सौ जन्म का पापी ब्राह्मण था ॥३॥ वह अपनी पूर्वावस्था में वेदों तथा शास्त्रों का ज्ञाता तथा बुद्धिमान था । वह स्नान करने के लिए गङ्गाजी में जाकर स्नान करके देवताओं ऋषियों एवं पितरों का तर्पण करके मात्तलिकापुर में गया । वहाँ जाकर वह किसी ब्राह्मण के घर में ठहर गया ॥४-५॥ वहाँ पर एक क्षत्रिय की पुत्री थी, उसका पति मर गया था । उसका राज्य भ्रष्ट हो गया था । उसके पास छह करोड़ सुवर्ण मुद्रायें थीं ॥६॥ सर्वाङ्ग सुन्दर ब्राह्मण भोजन करके सो रहा था । रात्रि में सारी दिशाओं में चाँदनी छिटक गयी थी ॥७॥ उसी समय वह ब्राह्मण के सन्निकट आयी और उसको देखकर कही हे विप्र ! आप कहाँ से आये हैं ? और कहाँ जा रहे हैं ?॥८॥ **ब्राह्मण ने कहा—** बिना ठीक समय के इस तरह के आचरण से सबों के मन में शङ्का उत्पन्न हो सकती है । उसमें एकान्त गृह में युवक और युवती की बातों से शङ्का होगी ही ॥९॥ **क्षत्रिया ने कहा—** बातचित के प्रसङ्ग में, यात्रा में, देश में विप्लव होने पर, आकाल पड़ने पर, गाँव के आग से जल जाने पर, एकान्त में बातचित करने में कोई दोष नहीं होता है ॥१०॥

ब्राह्मण उवाच

तूष्णीम्भावो मया कार्यो गच्छ त्वं शीघ्रमग्रतः ।
इत्युक्त्वा ब्राह्मणेनासौ मनसेदमचिन्तयत् ॥१२॥
अनेन सङ्गमो मह्यं यथा भूयात्तथाविधि ।
रोदनं तु करिष्यामि तथा यास्यति सान्त्वितुम् ॥१३॥
मां च सान्त्वयितुं प्राप्तो मां समुत्थापयिष्यति ।
अहमुत्तिष्ठमानैव दोर्लताकण्ठसङ्गिनी ॥१४॥
कुचयुग्मेन तद्गात्रं स्पर्शयन्ती विमूर्च्छिता । गतभानां हि मां दृष्ट्वा निषण्णां स्वयमेव सः॥१५॥
उत्सङ्गे मामकं देहं निधास्यति द्विजाग्रणीः । अचेतनेव वसनमपास्य रुदतीव च ॥१६॥
सुस्निग्धं रोमरहितं पक्वाश्वत्थदलाकृति। दर्शयिष्यामि तत्स्थानं कामगेहं सुगन्धि च॥१७॥
मयैव विलुठन्त्याङ्गे तस्य वस्त्रमपास्यते । विलुप्य मानसं तस्य करिष्ये स्ववशं द्विजम् ॥१८॥
अदृष्टौ यादृशं चित्तं दृष्टौ नैतादृशं भवेत्। दर्शने यादृशं चित्तं संलापे नैव तादृशम् ॥१९॥
संलापे यादृशं चित्तं हास्योक्तौ नैव तादृशम् ।
हास्योक्तौ यादृशं चित्तं स्पर्शने नैव तादृशम् ॥२०॥
स्पर्शने यादृशं चित्तं योनिदृष्टौ न तादृशम्। तद्दृष्टौ यादृशं चित्तं योनिस्पर्शे न तादृशम्॥२१॥
बाहुमूलकुचद्वन्द्वस्वयोनिस्पर्शदर्शनात् । कस्य न स्खलते चेतो रेतःस्कन्नं च नो भवेत्॥२२॥

और मेरे घर में पहले आपने ही निवास किया है, अपने घर में मैं अकेली हूँ । अतएव किसी के शङ्का करने का कोई अवसर ही नहीं है ॥११॥ मुझको चुप रहना चाहिए और तुम मेरे सामने से चली जाओ। ब्राह्मण के इस तरह से कहने पर उसने मन में विचार किया ॥१२॥ जिस तरह से इसके साथ मेरा सङ्गम हो सके वैसा ही मुझे करना चाहिए । मैं जब रोने लगूंगी तब यह मुझको सान्त्वना प्रदान करने के लिए मेरे पास आयेगा ॥१३॥ मुझको सान्त्वना प्रदान करने के लिए यह मुझे उठायेगा । उठती हुयी मैं इसके गले में अपने हाथों को डाल दूंगी ॥१४॥ अपने दोनों स्तनों से इसका स्पर्श करती हुयी मूर्छित हो जाऊँगी। मुझको बेहोश देखकर यह स्वयं बैठकर ॥१५॥ मुझको यह ब्राह्मण अपनी गोद में ले लेगा । वेहोश के ही समान मैं रोती हुयी अपने वस्त्र को हटाकर इसको अपनी सुन्दर, कोमल तथा सुगन्धित योनि प्रदर्शित करूँगी ॥१६-१७॥ लोटती हुयी मैं उसके भी शरीर के वस्त्र हटा दूँगी । इस तरह से मैं उसके मन के धैर्य को नष्ट करके उस ब्राह्मण को अपने वश में कर लूँगी ॥१८॥ बिना देखे जैसा चित्त होता है, देख लेने पर वह वैसा नही रह जाता है । देखने के समय जैसा चित्त होता है, वार्तालाप के समय वैसा चित्त नहीं होता है ॥१९॥ बातचित करते समय जैसा चित्त होता है, हँसकर बातें करते समय वैसा ही नहीं होता है । हँसकर बातें करते समय जैसा चित्त होता है, वैसा चित्त स्पर्श करने पर नहीं होता है॥२०॥ स्पर्श करते समय जैसा चित्त होता है योनि को देख लेने पर वह वैसा नहीं होता है । योनि को देखने पर जैसा चित्त होता है योनि का स्पर्श करने पर वह वैसा नहीं होता है ॥२१॥ काँख, दोनों स्तन तथा योनि को देख लेने पर किसका चित्त स्वलित नहीं होता है और उसका वीर्यपात नहीं होता है ॥२२॥

दधीच महर्षि ने कहा— इस तरह से विचार करके वह क्षत्रिया गृह के भीतर चली गयी और अपने घर

दधीच उवाच

इति सञ्चिन्त्य मनसा क्षत्त्रिया गृहमभ्यगात् ।
स्वगृहद्वारमासाद्य मन्दं मन्दं रुरोद वै ॥२३॥
चिरं कालं च रुदितं ब्राह्मणः करुणानिधिः ॥२४॥
स्त्रीबालवृद्धातुरराजयोगिनां विषाग्नितोयाद्रिनिपातनादिना ।
दुःखस्य चैवोद्धरणं प्रशस्यते कूपस्य खातेन समं वदन्ति ॥२५॥
इत्थं विचार्य विप्रोऽसौ शुचिर्भूतः प्रसन्नधीः ।
तस्याः समीपमगमत्तामुवाच ततो द्विजः ॥२६॥
अलं शोकेन महता इहामुत्र विरोधिना। शरीरशोषणे ह्येतच्चित्तविध्वंसनं तथा ॥२७॥
त्यज शोकमिमं बाले न चार्थः शोचितेन वै ।
शोकस्य कारणं किं वा येनेत्थं रुद्यते त्वया ॥२८॥

दधीच उवाच

एवमुक्ता द्विजेनाथ न सा किञ्चिदुवाच ह। मूर्च्छितेवापतद्भूमौ तमदृष्ट्वेव वीक्षते ॥२९॥
तामथोत्थापयामास ब्राह्मणः परमार्थवित्। उत्थितोत्थापिता तेन निपपात पुनः पुनः ॥३०॥
पतितां पतितां विप्रो निषिध्योत्थाप्य तां पुनः ।
अङ्कमारोपयामास प्रममार्ज विलोचने ॥३१॥
अथ सा मूर्च्छितेवाऽऽशुवसनं परिमुच्यतम्। दर्शयन्ती स्तनौ गुह्यं बाहुमूले विलोचने ॥३२॥
आलम्व्य कण्ठे बाहुभ्यां स्तनाभ्यामस्पृशद् द्विजम् ।
चन्द्रातपश्च विशदो मन्दमारुतसम्भवः ॥३३॥
अथ चिन्तापरो विप्रो नैव कार्यमिदं मम। पितुर्वा मातुरुचितं पत्युर्वाथ गुरोस्तथा ॥३४॥

के दरवाजे पर आकर मन्द-मन्द रोने लगी ॥२३॥ देर तक रोते रहने पर करुणासागर ब्राह्मण ॥२४॥ ने सोचा स्त्री, बाल, वृद्ध, रोगी, राजा तथा योगी की विष, अग्नि, जल तथा पर्वत आदि को दुःख से बचाने को श्रेष्ठ बतलाया गया है । इन सभी कार्यों को कूपदान के समान पुण्यमय कहा गया है ॥२५॥ इस तरह से विचार करके वे पवित्र ब्राह्मण प्रसन्न बुद्धि से उसके पास गये और उससे कहे ॥२६॥ बहुत अधिक शोक नहीं करना चाहिए, शोक, लोक और परलोक दोनों का विरोधी होता है । इससे शरीर सूख जाता है और चित्त भ्रष्ट हो जाता है ॥२७॥ बाले ! शोक त्याग दो, शोक करने से कोई लाभ नहीं होता है । तुम्हारे शोक का कारण क्या है ? जिसके कारण तुम इस प्रकार से रोती हो ॥२८॥ **दधीच ने कहा—** ब्राह्मण के इस तरह से कहने पर वह कुछ नहीं बोली । वह उसको देखे बिना ही मूर्छित के समान पृथिवी पर गिर पड़ी ॥२९॥ उसके बाद परमार्थ के ज्ञाता उस ब्राह्मण ने उसे उठाया । उठाये जाने पर वह बार-बार गिर जाती थी ॥३०॥ बार-बार गिरती हुयी उसको ब्राह्मण बार-बार उठाता था । उसको उन्होंने अपनी गोद में बैठाया और उसके नेत्रों को पोंछा ॥३१॥ उसके बाद वह मूर्छित के समान अपने वस्त्रों को हटाकर अपने गोपनीय स्तनों तथा बाहुमूल को दिखायी ॥३२॥ उसके गले में दोनों भुजाओं से पकड़कर अपने दोनों

असंबुद्धस्य मे सर्वं विपरीतं विभाति वै। अथ कामः समायातो रहस्ये स्थितयोस्तयोः ॥३५॥
विव्याध निशितैर्बाणैर्द्विजं कामो दुरात्मवान् ।
स्मरबाणातुरो विप्रश्चिन्तयामास कामुकः ॥३६॥
इयं सुचारुसर्वाङ्गी कामिनीव प्रदृश्यते। नोचेद्योनिमुखे ह्यस्याः कथं रोमाञ्चसम्भवः ॥३७॥
तदेतस्याः कुचस्पर्शात्सर्वं व्यक्तं भविष्यति ।
इति सञ्चिन्त्य मनसा कुचौ योनिं द्विजोऽस्पृशत् ॥३८॥
साऽपि मूर्च्छितरूपेव मन्दस्तिममुखाऽभवत् ।
आलिलिङ्ग द्विजं गाढमाननं च चुचुम्ब ह ॥३९॥
तयोरथ समायोगो वर्षाणां शतमप्यभूत्। गते वर्षशते पश्चादेकस्मिन्दिवसे द्विजः ॥४०॥
स्नातुं ययौ नदीं प्रातः साऽपि विप्रप्रसङ्गतः ।
स्नानं तत्र तथा चक्रे पुराणं श्रुतवानथ ॥४१॥
कौर्मं समस्तपापानां नाशनं शिवभक्तिदम्। इदं च पद्यं शुश्राव पुराणज्ञेन भाषितम् ॥४२॥
ब्रह्महा मद्यपः स्तेनस्तथैव गुरुतल्पगः। कौर्मं पुराणं श्रुत्वैव मुच्यते पातकात्ततः ॥४३॥
श्रुत्वैतद्वचनं विप्रः पौराणिकमभाषत ।
मया कृतानां पापानां न च सङ्ख्यास्तिऽकाचन ।
अशेषपापसन्दोहनाशनं तदिहोच्यताम् ॥४४॥

पौराणिक उवाच

आराधयस्व देवेशं शङ्करं त्रिदशेश्वरम्। तस्य सम्पूजनाद्विप्र सर्वं पापं विनश्यति॥४५॥

स्तनों का ब्राह्मण से स्पर्श कराया । उस समय चाँदनी चमक रही थी और हवा धीरे-धीरे चल रही थी॥३३॥ इसके बाद वे ब्राह्मण सोचने लगे कि मुझको यह काम नहीं करना चाहिए । यह पिता-माता के लिए अथवा पति-पत्नी के लिए ही उचित हैं । अथवा गुरुजनों को उचित हैं ॥३४॥ अज्ञानी मुझको तो यह सब विपरीत ही प्रतीत होता है । उस समय वे दोनों एकान्त में थे, उस समय काम का आवेश हुआ॥३५॥ दुष्ट काम ने तीक्ष्ण बाणों से उस ब्राह्मण को बेध दिया । काम के बाणों से आतुर तथा कामुक ब्राह्मण ने सोचा ॥३६॥ यह सर्वाङ्ग सुन्दरी कामिनी के तरह प्रतीत होती है । अन्यथा इसकी योनि के अग्रभाग में रोमाञ्च कैसे होता ?॥३७॥ अब इसके स्तनों का स्पर्श करने से सारी बातें स्पष्ट हो जायेंगी। इस तरह से सोचकर उस ब्राह्मण ने उसके दोनों स्तनों तथा योनि का स्पर्श किया ॥३८॥ वह भी मूर्छित के ही समान रहकर मुस्कुराने लगी । उसने ब्राह्मण का गाढ़ालिङ्गन किया और उस ब्राह्मण के मुख को चूम ली ॥३९॥ इस तरह से उन दोनों का संयोग सौ वर्षों तक बना रहा । सौ वर्ष बीत जाने पर एक दिन वह ब्राह्मण ॥४०॥ स्नान करने के लिए नदी गया और उस ब्राह्मण के साथ वह भी गयी । वहाँ पर ब्राह्मण ने स्नान किया उसके बाद उसने पुराण का श्रवण किया ॥४१॥ ब्राह्मण ने शिवजी की भक्ति को प्रदान करने वाले तथा सम्पूर्ण पापों को विनष्ट करने वाले कूर्म पुराण को सुना । उसने पुराण पुरुष के द्वारा कहे गये इस श्लोक को सुना ॥४२॥ ब्रह्मघाती, शराबी, चोर तथा गुरु की शय्या पर शयन करने वाला कूर्म पुराण का श्रवण करके सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥४३॥ इस वाक्य को सुनकर उस

पापमेव तमः प्रोक्तं ज्ञानदीपेन नश्यति । अथवा पूजया विप्र ! समस्ताघविनाशनम् ॥४६॥
ज्ञानपूजाविहीनानां नरके पतनं ध्रुवम् ॥४७॥

दधीच उवाच

अथ द्विजो ह्यभिगतः शिवालयमनुत्तमम् । द्रोणपुष्पसहस्रेण पूजयामास शङ्करम्॥४८॥
गृहं जगाम च ततो भोजनं कृतवानथ । विहाय क्षत्त्रियां विप्रो जगामेष्टां भुवं ततः ॥४९॥
हविष्यमन्नमादाय भुक्त्यशक्तेःशिवालयम् । गत्वा दीपस्थिताज्येन भोजनं कृतवान्बहिः ॥
अथ मृत्युवशं प्राप्तो यमलोकं जगाम वै ॥५०॥

यम उवाच

त्वया कृतानां पापानां केषांचिन्नाशनं पुरा । त्वयैक दिवसे पूजा शङ्करस्य यतः कृता ॥५१॥
तव पापसहस्रं च प्रनष्टं भवतो द्विज !। स्थितानामपि पापानां फलं नरकपातनम् ॥५२॥
वर्षकोटिद्वयं विप्र ! श्वानजन्मशतं पुनः । शिवदीपाज्यहरणात्फलं नरकसेवनम्॥५३॥
नरके च स्थितिस्तस्य शतवर्षं सुभीषणम् । कुम्भीपाके च काष्ठत्वं भस्म भूत्वा पुनः पुनः॥५४॥
वर्षाणां दशनं त्वेवं कृमिभुक्तिः परं दश । पुनश्च दीपवर्तित्वं वर्षाणां च तथा दश ॥५५॥
श्लेष्मामेध्यपुरीषेषु मूत्ररेतोह्रदेषु च। उन्मज्ज्य च निमज्ज्याथ श्लेष्मविण्मलभोजनम्॥५६॥
ततो नरकशेषेण श्वानजन्मशतं परम् । यमवाक्यमिति श्रुत्वा ब्राह्मणो निपपापत ॥५७॥

ब्राह्मण ने पौराणिक से कहा, मैंने जिन पापों को किया है, उन पापों की कोई संख्या नहीं है, वे असंख्य हैं ॥४४॥ आप उस साधन को बतलायें जिससे कि मेरे सारे पाप विनष्ट हो जायँ । **पौराणिक ने कहा**— तुम देवताओं के स्वामी त्रिदशेश्वर शङ्करजी की पूजा करो ॥४५॥ हे विप्र ! शिवजी की पूजा करने से सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं । पाप को ही अन्धकार कहा गया है, वह ज्ञान रूपी दीप से नष्ट हो जाता है॥४६॥ अथवा हे विप्र ! पूजा करने से ही सारा पाप नष्ट हो जाता है । जो लोग ज्ञान से रहित हैं और पूजा भी नहीं करते हैं, उनको नरक में अवश्य जाना पड़ता है ॥४७॥ **दधीच ने कहा**— उसके बाद वह ब्राह्मण सर्वोत्तम शिव मन्दिर में गया । और एक हजार द्रोण पुष्प से शिवजी की पूजा किया ॥४८॥ उसके बाद वह घर गया और भोजन किया । उसके बाद उस क्षत्रिया का परित्याग करके वह ब्राह्मण अपने अभिप्रेत स्थान में चला गया ॥४९॥ शक्ति के अभाव के कारण वह हविष्यान्न को लेकर शिव मन्दिर में ही भोजन करता था । दीपक में विद्यमान घी से ही वह मन्दिर से बाहर जाकर उसने भोजन किया ॥५०॥ इसके बाद मरकर वह यमलोक में गया । **यम ने कहा**— तुम्हारे द्वारा किए गये कुछ पाप तो इसलिए विनष्ट हो गये है कि तुमने एक दिन शङ्करजी की पूजा की है । उसके कारण हे द्विज ! तुम्हारे एक हजार पाप विनष्ट हो गये ॥५१-५२॥ किन्तु जो पाप बचे हुए हैं उनके फलस्वरूप तुमको नरक में जाना होगा । हे विप्र! दो करोड़ वर्षों में तुम्हें सौ बार कुत्ते का जन्म मिलेगा ॥५३॥ शिव के दीपक में विद्यमान घी के खाने के कारण तुम्हें नरक में जाना होगा । तुम्हें भयङ्कर नरक में सौ वर्षों तक रहना होगा ॥५४॥ कुम्भी पाक नरक में तुम बार-बार भस्म होओगे । दश वर्ष तक तुमको क्रिमि खाते रहेंगे ॥५५॥ उसके बाद दश वर्ष तक तुम दीप की बाती होओगे । फिर उसके बाद दश वर्षों तक तुम अपवित्र कफ, मूत्र, तथा रेतस् (वीर्य) के कुण्ड में पड़े रहोगे ॥५६॥ तुम डूबकर तथा उतराकर कफ, विष्ठा आदि का भोजन करोगे । उसके

अथ तस्य प्रियाभार्या पतिचिन्तापराऽभवत् ।
एतस्मिन्नन्तरे तस्याः समीपं नारदोऽभ्यगात् ॥५८॥
नारदस्य पपातासौ पादयोरतिदुःखिता। तामुत्थाप्य मुनिः शुद्धां गतायुषमभाषत॥५९॥
अयि मुग्धे ! विशालाक्षि ! भर्तारं गन्तुमर्हसि ।
भर्ता ते हि विशालाक्षि मृतो बन्धुविवर्जितः ॥६०॥
न रोदितव्यं ते भद्रे जवलनं प्रविशस्व भोः ॥६१॥

ब्राह्मण्युवाच

अशक्यं यदि वा शक्यं मया गन्तुं मुने वद ।
अग्निप्रवेशकालो वै व्यतीतो न भवेद्यथा ॥६२॥

नारद उवाच

योजनानां शतं त्वेकमितः स्थानात्पुरं हि तत् ।
श्वोदाहः किल विप्रस्य भविता गन्तुमर्हसि ॥६३॥

अव्ययोवाच

दूरस्थितं कायनाथं गन्तुमर्हामि हे मुने। तद्वचस्तु समाकर्ण्य नारदस्तामभाषत॥६४॥
विपञ्चीनालसंस्था त्वं भव गच्छाम्यहं क्षणात् ।
इत्युदीर्य तदा गत्वा त्वरां चक्रे गतं च तत् ॥६५॥
देशं नष्टद्विजस्थानं तामुवाचाव्ययां मुनिः। रोदनं नेह कर्तव्यं यदि तत्राग्निमेष्यसि॥६६॥
पापं यदि कृतं भद्रे परपुरुषसेवनम्। एतद्विशुद्धये पुत्रि ! प्रायश्चित्तं समाचार॥६७॥
तवोपपातकव्रातनाशो वह्निप्रवेशनात्। नान्यत्पश्यामि नारीणां सर्वपापोपशान्तये ॥
अग्निप्रवेशं मुक्त्वैकं प्रायश्चित्तं जगत्त्रये ॥६८॥

बाद तुम सौ जन्मों में कुत्ता होओगे ॥५७॥ यम की उस वाणी को सुनकर वह ब्राह्मण गिर पड़ा। उसके बाद उसकी प्रिया पत्नी अपने पति की चिन्ता से चिन्तित हो गयी ॥५८॥ उसी समय उसके सन्निकट नारदजी आ गये। अत्यन्त दुःखी बनी हुयी वह नारदजी के चरणों पर गिर पड़ी ॥५९॥ उसको उठाकर मुनि ने कहा सुन्दरि ! बड़े-बड़े नेत्रों वाली तुम अपने पति के पास जाओ ॥६०॥ हे विशालाक्षि ! तुम्हारा मरा हुआ पति अपने बाँधवों से रहित है। हे भद्रे ! तुम रोओ मत अग्नि में प्रवेश कर जाओ ॥६१॥ **ब्राह्मणी ने कहा—** हे मुने ! आप मुझे अशक्य अथवा शक्य कोई भी उपाय बतलाइये। जिससे मैं जा सकूं। जिससे कि मेरे अग्नि में प्रवेश करने का समय व्यतीत न हो जाय ॥६२॥ **नारदजी ने कहा—** वह नगर यहाँ से एक सौ एक योजन की दूरी पर है। कल उस ब्राह्मण का दाह होगा तुम चाहो तो चली जाओ ॥६३॥ **अव्यया ने कहा—** हे मुने ! मेरे शरीर के स्वामी दूर हैं, किन्तु मैं जाना चाहती हूँ। उसकी वाणी को सुनकर नारदजी ने उससे कहा ॥६४॥ तुम मेरी वीणा के नाल पर बैट जाओ मैं क्षण भर में वहाँ पहुँच जाता हूँ। इस तरह से कहकर उन्होंने जाने की जल्दीबाजी की ॥६५॥ उस द्विज के स्थान का देश नष्ट हो गया था मुनि ने अव्यया से कहा। जब वहाँ अग्नि में प्रवेश करोगी तो तुम वहाँ रोना मत ॥६६॥ हे भद्रे ! यदि तुमने दूसरे पुरुष का सेवन रूप पाप किया है तो मैं तुम्हें शुद्ध बना देता हूँ।

दधीच उवाच

अथ नारदवाक्येन नोदिता सा वचोऽब्रवीत् ।
अग्निप्रवेशे नारीणां किंकर्तव्यं महामुने ॥६९॥

नारद उवाच

स्नानं मङ्गलसंस्कारो भूषणाञ्जनधारणम्। गन्धपुष्पं तथाधूपं हरिद्राक्षतधारणम्॥७०॥
मङ्गलं च तथा सूत्रं पादालक्तमेवच। शक्त्या दानं प्रियोक्तिश्च प्रसन्नास्यत्वमेवच॥७१॥
नानामङ्गलवाद्यानां श्रवणं गीतकस्य च। व्यभिचारकृते पापे तत्पापस्य प्रशान्तये ॥७२॥
अतीतं पातकं पृष्ट्वा प्रायश्चित्तं तदीरितम्। कुर्यादथ स्वकां भूषां विप्राय प्रतिपादयेत्॥७३॥
भूषाभावे स्वकीयेन प्रायश्चित्तं तु कारयेत्। नान्यथा तस्य पापस्य नाशनं वेति कुत्रचित् ॥७४॥

अव्ययोवाच

सर्वमेतत्करिष्यामि हरिद्रा मे न विद्यते। भूषणं किमुत ब्रह्मन्सर्वमेतत्प्रदीयताम् ॥७५॥

नारद उवाच

नह्यस्ति किञ्चित्सौभाग्यद्रव्यमन्यत्त्वपेक्षया ॥७६॥

दधीच उवाच

अथ क्षेणनाभ्यगमत्कैलासं शिवमन्दिरम्। गिरिजामथ दृष्ट्वाऽसौ प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥
हरिद्रां दीयतां मातर्भूषणानि च सूत्रकम् ॥७७॥

पार्वत्युवाच

विधावायै मया किञ्चिद्भूषणं दीयतां कथम् ।
मया दत्ते हि तस्मिन्वै वैधव्यं नोपपद्यते ॥७८॥

तुम प्रायश्चित कर लो ॥६७॥ अग्नि में प्रवेश करने से तुम्हारे उपपातकों का नाश हो जायेगा स्त्रियों के सभी पापों के नाश का दूसरा कोई उपाय नहीं है। केवल अग्नि प्रवेश को छोड़कर त्रैलोक्य में कोई उपाय नहीं है। **दधीच ने कहा—** इसके बाद नारदजी की वाणी से प्रेरित होकर उसने कहा ॥६८-६९॥ हे महामुने ! अग्नि प्रवेश के समय नारियों को क्या करना चाहिए। **नारदजी ने कहा—** स्नान करके मङ्गल संस्कार करे, फिर वह भूषण तथा अञ्जन को धारण करे ॥७०॥ वह चन्दन, पुष्प, धूप, हल्दी तथा अक्षत धारण करे। वह मङ्गल सूत्र धारण करे पैरों में आलता लगाए ॥७१॥ यह सब अपनी शक्ति के अनुसार करे और प्रियवाणी बोले। उसका मुख प्रसन्न रहना चाहिए। अनेक मङ्गलमयवाद्यों तथा गीतों का श्रवण करना चाहिये ॥७२॥ यह व्यभिचार रूपी पाप को करने पर उस पाप का नाश करने के लिए भूत कालिक पापों के विषय में प्रायश्चित्त बतलाया गया है ॥७३॥ जिन आभूषणों को वह धारण की हो अपने उन आभूषणों को वह ब्राह्मण को दान कर दे। यदि आपना कोई अलङ्कार न हो तो अपने से उसका प्रायश्चित करे। उसके अतिरिक्त उसके पाप का कोई दूसरा प्रायश्चित्त नहीं है। **अव्यया ने कहा—** इन सभी कामों को मैं करूँगी किन्तु मेरे पास हल्दी नहीं है ॥७४-७५॥ हे ब्रह्मन् ! आभूषण आदि जितने सामान है, उन सबों का दान कर दीजिये। **नारदजी ने कहा—** इसकी अपेक्ष दूसरा कोई भी सौभाग्य द्रव्य नहीं है ॥७६॥ **दधीच ने कहा—** इसके बाद वह क्षणभर में कैलास पर शिवजी के लोक में आ गयी। पार्वतीजी को

नारद उवाच

मातर्न विधवा यावद्धवाङ्गं वर्तते स्त्रियः। आदाहात्सूतकं नास्ति तिष्ठेत्सौभाग्यमुत्तमम् ॥७९॥

पार्वत्युवाच

न चान्यदेहो मद्भूषां हरिद्रां धर्तुमर्हति। भूषणादौ मया दत्ते चिरंजीवितमिष्यते॥८०॥
दीयते हि जयन्त्यैव सर्वमेतत्त्वयोदितम्। जयन्तीं स जगामाथ तया दत्तमथाहरत्॥८१॥
स्नाताया अव्ययायै तु हरिद्रां दत्तवान्मुनिः। ततः स सूक्ष्मवसनभूषणानि मुनिर्ददौ ॥८२॥
आह चैनां तवान्तेष्टिं कः करोति नियुङ्क्ष्वतम् ॥८३॥

अव्ययोवाच

त्वमेव मे समस्तानां क्रियाणां कारणं मुने ! ।
पिताऽसि सर्वं कुर्वद्य नमस्ते मुनिसत्तम ! ॥८४॥

दधीच उवाच

अत तं ब्राह्मणं दग्ध्वा नारदस्तामुवाच ह। अव्यये गच्छ दहनं प्रविश त्वं यदीच्छसि ॥८५॥
अथ सा भूषिता साध्वी त्रिःप्रदक्षिणपूर्वकम् ।
नारदं तु नमस्कृत्य सा गौर्यामर्पयन्मनः ॥८६॥
सुसूक्ष्मं मङ्गलं सूत्रं हरिद्रामक्षतांस्तथा। कुसुमानि च वासांसि कस्तूरी चन्दनं तथा ॥८७॥
सौवर्णकङ्कतिकां च फलानि विविधानि च ।
स्वदक्षिणादि वस्त्रान्तं स्पर्शयित्वा पृथक्पृथक् ॥८८॥

देखकर उसने उन्हें प्रणाम करके कहा ॥७७॥ हे माँ ! आप मुझे हल्दी तथा सूत्र दीजिए। **पार्वतीजी ने कहा**— विधवा को मैं कोई भूषण कैसे दे सकती हूँ ॥७८॥ यदि मैं उसे प्रदान कर दूँ तो फिर उसका वैधव्य नहीं रह जायेगा। **नारदजी ने कहा**— माँ जब तक स्त्री का पति रूपी अङ्ग नही जला है तब तक स्त्री विधवा नहीं होती है। मङ्गलसूत्र के बने रहने पर जब तक दाह नहीं हो जाता है तब तक सूतक नहीं लगता है। **पार्वतीजी ने कहा**— दूसरा शरीर मेरे आभूषण और हरिद्रा को नहीं धारण कर सकता है॥७९-८०॥ मेरे द्वारा भूषण आदि देने के लिए दीर्घकालीन जीवन अपेक्षित होता है। जो तुमने कहा है, उन सारी वस्तुओं को जयन्ती ही देती है ॥८१॥ उसके बाद नारदजी जयन्ती के पास गये और उसके द्वारा प्रदत्त उन वस्तुओं को लाये। स्नान करने वाली अव्यया को नारदजी ने हरिद्रा प्रदान किया ॥८२॥ उसके बाद मुनि उसे सूक्ष्म वस्त्रों और भूषणों को प्रदान किया। उन्होंने कहा कि तुम्हारी अन्त्येष्टि कौन करेगा? उसको तुम निश्चित कर दो ॥८३॥ **अव्यया ने कहा**— हे मुने ! आप ही मेरी समस्त क्रियाओं को करने वाले हैं। आप मेरे पिता हैं, आज आप सबकुछ करें। आपको नमस्कार है। **दधीच महर्षि ने कहा**— इसके बाद उस ब्राह्मण का दाह करके नारद मुनि ने अव्यया से कहा। अव्यये यदि तुम चाहो तो जाओ और अग्नि में प्रवेश कर जाओ ॥८४-८५॥ उसके बाद अलंकृत हुयी वह साध्वी पहले तीन बार प्रदक्षिणा की उसने नारदजी को नमस्कार किया और उसके बाद गौरीजी में अपने मन को लगा दिया ॥८६॥ सूक्ष्म मङ्गल सूत्र, हरिद्रा, अक्षत, पुष्प, वस्त्र, कस्तूरी, चन्दन ॥८७॥ सोने की कंघी तथा अनेक प्रकार के फल तथा वस्त्रों में दक्षिणा अलग-अलग ॥८८॥ सौभाग्यवती नारियो को पार्वतीजी की प्रसन्नता के लिए प्रदान

पार्वती प्रीतिकामा सा पुरन्ध्रीभ्योऽखिलं ददौ ।
जवालामालाभिराकाशं दहन्तमिव चानलम् ॥८९॥
त्रिः प्रदक्षिणमागत्य स्थित्वाऽग्नेःपुरतःसती ।
इदं प्राह तदावाक्यं प्राञ्जलिः प्रहसन्मुखी ॥९०॥

अव्ययोवाच

इन्द्रादयो दिशां पाला मातर्मेदिनि भास्कर। धर्मादयः सुराःसर्वे शृणुध्वं ममभाषितम् ॥९१॥
पाणिपीडनमारभ्य चैतदन्तमहर्निशम् । वाङ्मनः कर्मभिभर्ता सेवितो यदि भक्तितः ॥९२॥
व्यभिचारो यथा न स्यादवस्थात्रितये मम । तेन सत्येन मे पत्या सार्द्धं यानं प्रयच्छत॥९३॥
इत्युक्त्वाऽथ स्वहस्ताग्रपुष्पकं द्रुतमाक्षिपत्। प्रविष्टा ज्वलनं दीप्तमथापश्यद्विमानकम् ॥९४॥
सूर्येण सममुत्कृष्टमप्सरोगीतशोभितम् । आरुरोह विमानं सा भर्त्रा साकं दिवं ययौ॥९५॥
यमः प्राहाथ सम्पूज्य वनितां तां पतिव्रताम् ।
अक्षयःस्वर्ग एवेह न च पापं तवास्ति वै ॥९६॥
कोटिद्वयसमास्तत्र नरके हन्तपातकम् । मृष्टमेव न सन्देहः किं तु पातकमेव च ॥९७॥
एकं शिवस्य दीपाज्यभक्षणेन समार्जितम् । तवापि नरके पातः श्वानजन्मशतं भवेत् ॥९८॥

अव्ययोवाच

अग्निप्रवेशशुद्धानां पुनश्च नरकः कथम्। अग्निप्रवेशात्सर्वेषां पापानां नाशनं भवेत् ॥९९॥

यम उवाच

शिवद्रव्यापहारस्य पातकं नैव नश्यति । इत्थमाह पुरा शम्भुरन्येषां नाशनं भवेत् ॥१००॥

किया । उस समय अग्नि की ज्वाला मानो आकाश को छू रही थी । उसने चिता की तीन बार प्रदक्षिणा की और उसके आगे खड़ी हो गयी । उसने मुस्कुराते हुए कहा ॥८९-९०॥ **अव्यया ने कहा**— इन्द्र आदि दिक्पालों, माता पृथिवी, सूय धर्म आदि सभी देवता आप सभी लोग मेरी वाणी को सुनें ॥९१॥ पाणिग्रहण संस्कार से लेकर आज पर्यन्त यदि मैंने भक्ति पूर्वक अपने पति की सेवा वाणी, मन और कर्म से की है ॥९२॥ तीनों अवस्थाओं में विना किसी व्यवधान के सेवा की है तो इस सत्य के द्वारा मुझे आप मेरे पति के साथ विमान प्रदान करें ॥९३॥ इस तरह से कहकर उसने अपने हाथ के अग्रभाग से पुष्प को चिता में डाल दिया । और वह जलती हुयी अग्नि में प्रवेश कर गयी । उसी समय उसने विमान को देखा॥९४॥ वह विमान सूर्य के समान उत्कृष्ट था और उसमें अप्सराएँ गीत गा रही थीं । वह विमान पर चढ़कर अपने पति के साथ स्वर्गलोक चली गयी ॥९५॥ उसके बाद यमराज ने उस पतिव्रता स्त्री की पूजा करके कहा तुमको अक्षय स्वर्ग प्राप्त हो तुम में कोई पाप नहीं है ॥९६॥ तुम्हारे दो करोड़ वर्षों के पाप को तो मैंने नष्ट कर दिया है किन्तु एक पाप वचा हुआ है । उस पाप को तुमने शिव के घृत को खाकर कमाया है । तुमको नरक नहीं मिलेगा किन्तु तुमको सौ वार कुत्ते का जन्म लेना होगा ॥९७-९८॥ **अव्यया ने कहा**— जो व्यक्ति अग्नि में प्रवेश करके शुद्ध हो गया हो उसको नरक की प्राप्ति कैसे हो सकती है? अग्नि में प्रवेश करने से तो सभी पापों का नाश हो जाता है ॥९९॥ **यम ने कहा**— शिवजी के द्रव्य

अथ स श्वानतामाप्य शताब्दं स्यात्ततः परम् ।
दधीचमन्दिरं प्राप्तो मृत्योरास्थगतो हि सः ॥१०१॥
तस्य भित्तिसमीपे तु भस्मास्ते ह्यभिमन्त्रितम् ।
भस्मनि श्वा पपाताथ ममार च गतो यमम् ॥१०२॥
यमः सम्पूज्यावनतो भवान्पुण्यतमो मुनिः । मद्गेहे भवतःस्थानं न योग्यं गम्यतां बहिः॥१०३॥
अथ गत्वा बहिस्तस्थौ सारमेयो यमोदितः। सन्तापावस्थितं तं च नारदो दृष्टवानमुम्॥१०४॥
पप्रच्छ च किमर्थं त्वमिह तिष्ठसि दीप्तिमान् ।
शिवभस्मास्थितमृतं शैवं जाने महामते ॥१०५॥
शैवानां पापिनां चापि साहसेन तनुत्यजाम् ।
यमलोको न चास्तीति शिवाज्ञा शिवनोदिता ॥१०६॥

दधीच उवाच

इत्थमाभाष्य तं श्वानं कैलासमगमन्मुनिः । दण्डवत्प्रणिपत्येशं व्यज्ञापयदथो हरम् ॥१०७॥
देव ! कश्चिद्यमपुराद्बहिरास्ते सकुक्कुरः। भस्मन्येव मृतस्तद्वद्भवलोकं स चार्हति॥१०८॥
अथ मुख्यगणाविष्टो वीरभद्रः शिवेरितः। आनयामास तं श्वानं दिव्यरूपधरं तदा॥१०९॥
महेशपादप्रणतं देवायाथ व्यजिज्ञपत्। आह माहेश्वरो देवं गणमेनं कुरुष्व मे॥११०॥
तथेति च शिवः प्राह गणः श्वानमुखोऽभवत् ॥१११॥

का अपहरण करने से जो पाप होता है, वह पाप नहीं नष्ट होता है । इस तरह से शम्भु ने कहा है अन्य पापों का तो नाश हो जाता है ॥१००॥ इसके बाद वह सौ वर्षो तक कुत्ते की योनि में रहता । जब मृत्यु की बेला आयी तो वह दधीच मुनि के घर चला गया ॥१०१॥ उनकी दिवार के समीप अभिमंत्रित भस्म था । वह उस भस्म के ही ऊपर गिर पड़ा और मर कर यमलोक में गया ॥१०२॥ यम उसकी पूजा करके प्रणाम किए और नम्रता पूर्वक कहे मुने ! आप अत्यन्त पुण्यवान् हैं । मेरे गृह में आप के योग्य स्थान नहीं है, आप बाहर चले जाइये ॥१०३॥ यम के कहने पर वह कुत्ता बाहर चला गया । वह सन्ताप कर रहा था उसको नारदजी ने देखा और कहा ॥१०४॥ हे देदीप्यमान ! आप यहाँ क्यों खड़ें हैं । जो शिव के भस्म पर मरता है वह तो शिव भक्त हो जाता है ॥१०५॥ पापी भी शैव यदि शरीर त्याग करता है वह यमलोक में नहीं रहता है, यह शिवजी की आज्ञा है ॥१०६॥ इस तरह से नारदजी उस कुत्ते को कहकर कैलास पर आये । उन्होंने शिवजी को साष्टाङ्ग प्रणाम करके शङ्करजी से निवेदन किया ॥१०७॥ देव ! एक कुत्ता यमलोक से बाहर निकाल दिया गया है । वह भस्म के ऊपर मरा है, अतएव वह शिवलोक के योग्य है ॥१०८॥ इसके बाद शिवजी अपने मुख्य गणों में प्रधान वीरभद्र को बुलाये । उसके बाद वीरभद्र उस दिव्य रूपधारी कुत्ते को लाये ॥१०९॥ शङ्करजी के चरणों में प्रणाम करने वाले उसके विषय में शङ्करजी को निवेदित किया । शङ्करजी ने कहा कि इसको मेरा गण बना दो ॥११०॥ ठीक है

दधीच उवाच

अतुलं भस्म माहात्म्यं मयोक्तं ते शुचिस्मिते ! ।
इतः परं हि किंभूयः श्रोतुमिच्छसि सुव्रते ॥११२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शिवराघवसंवादे विभूतिमाहात्म्ये षडुत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

एक सौ सातवाँ अध्याय

शुचिस्मितोवाच

कश्यपं जमदग्निं च देवानां च पुरा कथम् ।
ररक्ष भस्म तद् ब्रह्मन्समाचक्ष्व मुने ! मम ॥१॥

दधीच उवाच

कश्यपादियुता देवाः पूर्वमभ्यागमन्गिरिम्। शौकरं नाम विख्यातं गिरिमध्ये सुशोभनम् ॥२॥
नानाविहङ्गसङ्कीर्णं नानामुनिगणाश्रयम् । वासुदेवाश्रयं रम्यमप्सरोगणसेवितम् ॥३॥
विचित्रवृक्षसंवीतं सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलम्। तथाविधं प्रविश्यैते गिरिं वयमथापरे॥४॥
स्तुवन्तः केशवं तत्र गताः स्म गिरिशेखरम् ।
दृष्ट्वा तत्र महाज्वालां प्रविष्टाश्च वयं च ताम् ॥५॥
मामेकं तु तिरस्कृत्य ह्यदहद्देवता मुनीन्। मां ददाह ततःपश्चाद्भस्मीभूता वयं शुभे ! ॥६॥

इस तरह से कहकर वह कुत्ता शिवजी का मुख्य गण हो गया । **दधीच महर्षि ने कहा—** मैंने तुमको भस्म का अतुलनीय माहात्म्य सुनाया है ॥१११॥ अब इसके बाद क्या सुनना चाहती हो ॥११२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शिवराघव संवाद के अन्तर्गत भस्म के माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०६।।

भस्म की महिमा वीरभद्र कृत भस्म के द्वारा मुनियों तथा देवताओं को जीवन प्रदान

शुचिस्मिता ने कहा— प्राचीन काल में भस्म ने कश्यप, जम्दग्नि और देवताओं की कैसे रक्षा की? हे ब्रह्मन् ! इसे आप मुझे बतलाइये ॥१॥ **दधीच महर्षि ने कहा—** कश्यप आदि ऋषियों के साथ देवता शौकर नामक पर्वत पर आये । उस पर्वत के बीच में अनेक पक्षियों से भरा हुआ था तथा अनेक मुनियों का आश्रय भूत भगवान् वासुदेव का मनोहर मन्दिर था । वह अप्सराओं से सेवित था ॥२-३॥ सभी ऋतुयों के पुष्पों से सुशोभित वह मन्दिर विचित्र वृक्षों से घिरा था । उस प्रकार के पर्वत पर पहुंचकर हम सभी तथा दूसरे भी ॥४॥ भगवान् केशव की स्तुति करते हुए उस पर्वत पर गये । वहाँ पर जलती हुयी महाज्वाला को देखकर हमसब उसमें प्रवेश कर गये ॥५॥ केवल मुझको छोड़कर उस ज्वाला ने सभी

अस्मानेतादृशान्दृष्ट्वा वीरभद्रः प्रतापवान्। केनापि कारणेनासौ गतवान्पर्वतं चतम् ॥७॥
भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो मस्तकस्थशिवः शुचिः ।
एकाकी निःस्पृहः शान्तो हाहाशब्दमथाश्रृणोत् ॥८॥
अथ चिन्तापरश्चासीन्म्रियमाणशवध्वनिः। श्वानामिवगन्धश्च दृश्यते तन्निरीक्षणे ॥
इति निश्चित्य मनसा जगामाग्निमतिप्रभम्। सवह्निवीरभद्रं च दग्धुमारब्धवानथ ॥ ॥
तृणाग्निरिव शान्तोऽभूदासाद्य सलिलं यथा। ततोऽपरां महाज्वालां वीरभद्रस्तु दृष्टवान् ॥११॥
खेगच्छन्तीं महाकालोज्वालां निपतितामपि। मनसा चिन्तयच्चापि वीरभद्रः प्रतापवान्॥१२॥
सर्वेषां नाशिनी ज्वाला प्राणिनां शतकोटिशः ।
तत्सर्वं रक्षणार्थं हि पिपासुश्चाप्यहं त्विमाम् ॥१३॥
प्राश्नामि महतीं ज्वालां सलिलं तृषितो यथा ।
एतस्मिन्नन्तरे वीरं वागाह चाशरीरिणी ॥१४॥

भारत्युवाच

वीर ! मा साहसं कार्षीः क्व तृषा का शुशुक्षणिः ।
तृषितानां जलेनार्थो विपरीतो वनाग्निना ॥१५॥
निकामं योजनशिराः प्रनष्टो राक्षसेश्वरः। शतयोजनवक्त्रश्च शतबाहुस्तथापरः ॥१६॥
अगस्त्यश्च महाभागो निःशेषं पीतसागरः। एतानन्यानसङ्ख्यातांज्वालेयं तानमारयत् ॥१७॥

मुनियों को जला दिया । सबों के बाद उस ज्वाला ने मुझको भी जला दिया और हम सभी जलकर भस्म हो गये ॥६॥ हमसबों को इस प्रकार देखकर प्रतापी वीरभद्र किसी कार्य के लिए उस पर्वत पर गये थे॥७॥ उनके सम्पूर्ण शरीर में भस्म लगा था अपने शिर पर शिवजी को धारण किए थे । वे अकेले और निस्पृह थे । उन्होंने उस हाय-हाय शब्द को सुना ॥८॥ वे उन मरने वालों शवों की ध्वनि को सुनकर आश्चर्यित हो गये । उन्होंने देखा तो उन्हें शव का गन्ध भी प्रतीत हुआ ॥९॥ इस तरह से मन से निश्चित करके वे अत्यन्त तेजस्वी उस अग्नि के पास गये । उस अग्नि ने वीरभद्र को भी जलाना प्रारम्भ किया॥१०॥ किन्तु वह अग्नि उसी तरह शान्त हो गयी जैसे कोई तृण की अग्नि जल को पाकर बुझ जाती है । उसके वाद वीरभद्र ने दूसरी महाज्वाल को देखा ॥११॥ आकाश में वह महाज्वाला चल रही थी और आकाश से गिर रही थी । प्रतापी वीरभद्र ने उसका मन से चिन्तन किया कि ॥१२॥ सैकड़ों करोड़ प्राणियों को मारने वाली इस ज्वाला को मैं पी जाऊँ जिससे कि इन सबों की रक्षा हो जाय ॥१३॥ जिस तरह कोई प्यासा व्यक्ति जल को पी जाता है, उसी तरह मैं इस ज्वाला को पी जाता हूँ । उसी समय वीरभद्र को सम्वोधित करके आकाशवाणी ने कहा ॥१४॥ **आकाशवाणी ने कहा**— वीर साहस मत करो अग्नि से कहीं प्यास बुझती है क्या ? प्यासे को जल से मतलब होता है, वानाग्नि तो उसके ठीक विपरीत है॥१५॥ यह निश्चित है कि योजन शिरा राक्षस मर चुका है । सौ योजन मुख वाला शतयोजन भी मर चुका है ॥१६॥ महाभाग अगत्स्य ने सम्पूर्ण सागर को पी लिया था इन सबों को तथा दूसरे असंख्य जीवों को इस ज्वाला ने मार दिया है ॥१७॥ **वीरभद्र ने कहा**— हे महाज्वाले ! तुम्हारे कहने से मुझको भय नहीं होता है । हे सरस्वति ! तुम पर तो मुझे क्रोध ही आता है ॥१८॥ मैं सभी देवताओं से पूजित

वीरभद्र उवाच

भीषिकेयं महाज्वाला त्वदुक्ता न हि जायते ।
सरस्वति भवत्यां च मम रोषश्च जायते ॥
सर्वदेवार्चितपदं वीरभद्रमवेहि माम् ॥१८॥

भारत्युवाच

मयोक्तं हितभावेन न द्वेषान्नान्यतो मुने । कोपमुत्सृज वीरत्वमात्मनो हितमाचर ॥१९॥
इत्युक्त्वान्दर्धे देवी भारती वीरभीतितः । अथ वीरो महाज्वालमपासील्लीलयैव तु ॥२०॥
क्षणेन महती ज्वाला शतयोजनविस्तृता । एकेन वीरभद्रेण पीता परमदुःसहा ॥२१॥
अथ चेन्द्रमुखानां च मुनीनां भस्मराशयः । दृष्ट्वा वै वीरभद्रेण आहूताश्च महात्मना ॥२२॥
न चाब्रुवन्प्रतिवचो मृता मुनिदिवौकसः । वीरभद्रस्तु विज्ञाय नाशं मुनिदिवौकसाम् ॥२३॥
दध्यावमून्कथं सर्वाञ्जीवयाम्यद्य कोविदः । ध्यानेन दृष्टवांश्चापि जीवितं भस्मदेहिनाम् ॥२४॥
आचम्य मृतानां तु भस्मान्यथ च भस्मना ।
मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण मन्त्रितेन ह्यमन्त्रयत् ॥२५॥
अथोत्थिता मुनिवराः स्वं स्वं रूपमुपाश्रिताः ।
अथ ते गतवन्तश्च गिरिपार्श्वं महाप्रभम् ॥२६॥
तत्रापि भक्षिताः सर्वे सर्पेणाति शरीरिणा । अथ वीरो महासर्पसमीपमगमत्प्रभुः ॥२७॥
वीरमागतमालोक्य भुजगो योद्धुमारभत् । युयुधे वर्षमेकं तु नानारूपधरः फणी ॥२८॥
अथ वीरः प्रगृह्यौष्ठयुगं करयुगेन च । द्विधा चक्रे समस्ताङ्गं देवांस्तत्र गतायुषः ॥२९॥
दृष्ट्वाऽथ भस्मनैवैताञ्जीवयामास शङ्करः । अथ देवाः स मुनयो वीरभद्रं प्रणम्य तु ॥३०॥

वीरभद्र हूँ । भारती ने कहा— हे मुने ! मैंने जो कुछ भी कहा है; कल्याणकारी भावना से कहा है द्वेष अथवा किसी दूसरी भावना से नहीं कहा है ॥१९॥ वीर आप क्रोध को त्यागकर आप अपने कल्याण का काम करें । इस तरह से कहकर वीरभद्र के डर से वह ज्वाला अन्तर्धान हो गयी ॥२०॥ उसके बाद वीरभद्र ने बड़ी आसानी से उस महाज्वाला को पी लिया । सौ योजन में फैली हुयी उस महाज्वाला को अकेले वीरभद्र ने पी लिया । उसके बाद इन्द्र इत्यादि देवताओं तथा मुनियों की भस्मराशि को ॥२१-२२॥ देखकर महात्मा वीरभद्र ने उन सबों को बुलाया । किन्तु मरे हुए मुनिगण और देवताओं ने कोई उत्तर नहीं दिया ॥२३॥ मुनियों और देवताओं के नाश को जानकर वे विचार करने लगे कि मैं किस उपाय से इन सबों को जीवित करूँ ॥२४॥ उन्होंने भस्म हुए शरीर धारियों को ध्यान के द्वारा देख लिया । उसके बाद आचमन करके मरे हुओं के भस्म को मृत्युंजन मंत्र से अभिमन्त्रित भस्म के द्वारा अभिमन्त्रित किया । उसके बाद सभी मुनिगण अपने-अपने रूप को धारण करके जीवित हो गये ॥२५-२६॥ उसके बाद वे पर्वत के पास विद्यमान महाप्रभा के पास गये । वहाँ पर उन लोगों को विशाल शरीर वाले साँप ने खा लिया॥२७॥ उसके बाद वीरभद्र उस महासर्प के पास आये । आये हुए वीरभद्र को देखकर वह सर्प उनसे युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया ॥२८॥ वह सर्प अनेक रूपों को धारण करके एक वर्ष तक युद्ध करता रहा उसके बाद

गतवन्तो यथा मार्गं ददृशू रक्ष आगतम् । पञ्चमेढ्रं महाकायं दोर्भिश्च दशभिर्युतम् ॥३१॥
पञ्चपादसमोपेतं शिरोभिर्युतमष्टभिः । काङ्क्षमाणं महाहारं युध्यमानो हि वालिना ॥३२॥
महावराहवपुषो वासुदेवस्य यद्बलम् । तादृशं द्विगुणीभूतं कपौ वालिनिर्निश्चितम् ॥३३॥
तादृशं वानरश्रेष्ठं ससुग्रीवं सराक्षसः । मुष्टियुद्धे पञ्चापादैः सहसाऽऽहत्य वालिनम् ॥३४॥
सुग्रीवं च कराभ्यां स हन्तुमेव प्रचक्रमे । आस्ये निक्षिप्य सुग्रीवमग्रसत्कवलं यथा ॥३५॥
वालिसुग्रीवग्रसनं दृष्ट्वा चिन्तामवाप ह । कथमेनं हनिष्यामि रक्षयिष्ये कथं कपिम् ॥३६॥
एवं चिन्तयमानं तं वानरं राक्षसेश्वरः । अग्रसीदेकयत्नेन तथा भूतं चराक्षसम् ॥३७॥
दृष्ट्वा देवर्षयः सर्वे पलायनपरास्तथा । पलायमानांस्तान्दृष्ट्वा पञ्चमेढ्रः सराक्षसः ॥३८॥
हस्तैः समस्तैस्तान्सर्वानादायाभक्षयत्तदा । वीरभद्रस्ततो दृष्ट्वा वानरर्षिसुरादनम् ॥३९॥
पञ्चाशद्योजनशिलां करेणादाय तं रुषा । निजघान शिरो मध्येमध्यमं पतितं शिरः ॥४०॥
तत आदाय शैलस्य शृङ्गं तच्छतयोनजम् । स्थापयित्वा दृढतरं राक्षसेन्द्रं तथा हरत् ॥४१॥
राक्षसोऽथ वभाषे तं वीरभद्रं त्रिलोचनम् । मम वाहुवलं पश्य वीक्षितं त्वद्बलं मया ॥४२॥
असिद्वयं तैलयौतं पञ्चाशद्योजनोन्नतम् । एकयोजनविस्तारं सुदृढं लक्षणान्वितम् ॥४३॥
एकं गृहाणाभिमतमवशिष्ठं तन्मम प्रियम् । वीरभद्रस्तथेत्युक्त्वा गृहीत्वासिं महावलः ॥४४॥

वीरभद्र ने अपने दोनों हाथों से उसके दोनों ओष्ठों को पकड़कर ॥२९॥ उसके सम्पूर्ण शरीर को फाड़ दिया । उसके शरीर के भीतर मरे हुए देवताओं को देखकर वीरभद्र ने उन सबों को भस्म के द्वारा जीवित कर दिया ॥३०॥ इसके वाद देवता तथा मुनिगण वीरभद्र को प्रणाम करके अपना रास्ता पकड़कर चले गये; किन्तु उनलोगों ने देखा कि उनके सामने एक राक्षस आ गया है ॥३१॥ उस राक्षस के पाँच अण्डकोश थे, उसका विशाल शरीर था और दश भुजाएँ थीं । उसके पाँच पैर थे और आठ शिर थे॥३२॥ वह महा आहार प्राप्त करना चाहता था । इसके लिए वह वालि नामक वानर से युद्ध कर रहा था । उसका महावराह के समान शरीर था और वह भगवान् वासुदेव के समान वलवान था ॥३३॥ इस तरह का वह वालि से दो गुना वलवान् था । वह वालि तथा सुग्रीव दोनों को मुष्टि युद्ध में अपने पाँच पैरों से वालि को मारकर अपने दो हाथों से सुग्रीव को मारना प्रारम्भ किया ॥३४-३५॥ वह सुग्रीव एक कवल के समान मुँह नें डाल कर खा गया । वालि और सुग्रीव को निगलते हुए देखकर वीरभद्र चिन्तित हो गये॥३६॥ मैं कैसे इसको मारकर सुग्रीव की रक्षा करूँ । इस तरह से विचार करते हुए वह राक्षसेश्वर॥३७॥ एक ही प्रयास में वालि को भी निगल गया । उस राक्षस को देखकर सभी देवता और ऋषिगण वहाँ से भाग चले ॥३८॥ भागते हुए उन सबों को देखकर पाँच अण्डकोशों वाला वह राक्षस अपने सभी हाथों से सबों को पकड़कर खा गया ॥३९॥ उसके वाद वानर, देवता और ऋषियों को खाते हुए देखकर वीरभद्र क्रोध करके पचास योजन की शिला को अपने हाथ में लेकर ॥४०॥ उसके शिरों के वीच में मारे उसके कारण उसके वीच का शिर टूट गया । उसके वाद उस पर्वत के सौ योजन विस्तृत शिला को लेकर वे अच्छी तरह से उसको राक्षस के ऊपर रख दिये । उसके वाद उस राक्षस ने तीन नेत्र वाले वीरभद्र से कहा॥४१-४२॥ मैंने तुम्हारे बल को देख लिया अव तुम मेरी भुजाओं का बल देखो । तेल में घोये गये पचास योजन लम्बा और एक योजन चौड़ा दो तलवारों को जो अच्छी तरह से सुदृढ़ थे । तथा समस्त लक्षणों

करेणाचालयत्तीक्ष्णं क्ष्वेलीं चक्रे ततः क्रुधा ।
गृहीतासिस्तथाक्ष्वेलीं चक्रे राक्षसपुङ्गवः ॥४५॥
वीरभद्रं समभ्येत्य कण्ठं प्रतिसमर्पयत् । तद्गात्रं भिन्नमभवच्छोणितं निर्गतं बहु ॥४६॥
राक्षसस्त्वेकहस्तेन पपौ तच्छोणितं ततः । वीरभद्रः कण्ठदेशे राक्षसं प्राहरद्रुषा ॥४७॥
शिरोद्वयं तथा च्छिन्नं पतमानं ततोऽग्रहीत् । न्यभक्षयदमेयात्मा सिहनादं चकार ह ॥४८॥
तेन नादेन महताक्षुब्ध्यमासीज्ज्गत्त्रयम् । अन्योन्यमसिघातेन भिन्नागात्रौ विकस्वरौ ॥४९॥
किंशुकाविव दृश्येते पुष्पितौ रुधिरोक्षितौ । वर्षमेकं तु संयुध्यसासीदेवासुरौ तदा ॥५०॥
अतः परं वर्षमेकं गदायुद्धमभूत्तयोः । असिपुत्रिकया पश्चाद्वर्षमेकमभूद्रणः ॥५१॥
पुनर्गृहीत्वाऽसियुगं युयुधाते परस्परम् । शं ब्रुवाणो महाखड्गं दंष्ट्राकारो गणेश्वरः ॥५२॥
सरोषरक्तनयनश्चालयित्वाऽसिमग्रतः । तस्य कण्ठवनं सर्वं चिच्छेद कदलीं यथा ॥५३॥
शिरांसिसर्वाण्यादाय बभक्ष भगनेत्रहा । तस्य गात्रं करुरुहैर्विदार्याहृत्य देवताः ॥५४॥
कपीन्द्रौ च तथा चान्या अद्राक्षीत्परमेश्वरीम् ।
एतद्युद्धं महाघोरं नारदो वीक्ष्य चाभ्यगात् ॥५५॥
ब्रह्मणे वासुदेवाय शङ्कराय व्यजिज्ञपत् । मुनयो रक्षिता देवा वालिसुग्रीववानरौ ॥५६॥
एतौ सञ्जीवयामास ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । रक्षसे शम्भुना दत्तो वरः परमदारुणः ॥५७॥
हिरण्यकशिपो राज्ये बलवानेकराक्षसः । देवैः सार्द्धं तु युयधे वर्षाणां शतमद्भुतम् ॥५८॥

से युक्त थे लेकर कहा— इनमें से एक तो तुम ले लो जो बचेगी वह मेरी तलवार होगी ॥४३-४४॥ वीरभद्र ने कहा ठीक है, और उसमें से एक को उन्होंने ले लिया ॥४५॥ तलवार लेकर वह राक्षस भी उसी तरह से पैंतड़ा चलने लगा ॥४६॥ वह वीरभद्र के सन्निकट आकर उस तलवार से उनके गले पर प्रहार किया॥४७॥ उससे उनका शरीर कट गया और बहुत अधिक खून निकला और वह राक्षस अपने एक हाथ से उस खून को पी लिया ॥४८॥ वीरभद्र ने क्रोध करके उस राक्षस के गले पर प्रहार किया । उससे उसके दो शिर कट कर जब गिर रहे थे उसको पकड़कर वे खा गये ॥४९॥ उसको खाकर अमेय वीरभद्र ने सिंहनाद किया । उस भयङ्कर गर्जन से त्रैलोक्य काँप गया ॥५०॥ तलवार के परस्पर प्रहार से दोनों के शरीर कट गये थे और उनका स्वर भी धीमा पड़ गया था । खून से लथपथ शरीर वाले वे दोनों विकसित पलास वृक्ष के समान दिखते थे ॥५१॥ इस तरह से वे दोनों देवता और असुर तलवार से एक वर्ष तक युद्ध किए । उसके बाद उनमें एक वर्ष तक गदा युद्ध चला ॥५२॥ उसके बाद वे दोनों एक वर्ष तक कटार से युद्ध करते रहे । उसके बाद वे तलवार लेकर दोनों युद्ध किए ॥५३॥ उस महाखड्ग को टकराते हुए गणेश्वर वीरभद्र की आँखे क्रोध से लाल हो गयी थीं, वे तलवार के अग्रभाग को चलाकर ॥५४॥ उस राक्षस के सम्पूर्ण शिरों को कदली वन के समान काट डाले । भग देवता की आँख फोड़ देने वाले वीरभद्र उन सभी शिरों को खा गये ॥५५॥ उसके शरीर को नखों से फाड़कर सभी देवताओं और दोनों वानरों को तथा दूसरों को परमेश्वरी (पार्वतीजी) ने देखा ॥५६॥ इस अत्यन्त भयङ्कर युद्ध को देखकर नारदजी आये । उन्होंने ब्रह्माजी को, भगवान् वासुदेव को तथा शङ्करजी को सुनाया ॥५७॥ मुनियों, देवताओं तथा बालि एवं सुग्रीव इन दोनों वानरों को, विष्णवात्मक और शिवात्मक वीरभद्र ने जीवित कर दिया ॥५८॥

पलायिताश्च बहुधा मृताश्च शतशोऽसुराः। शुक्रेण रक्षितः सोऽथ गुरुणाऽचिन्तयत्त्विदम्॥५९॥
मृतोऽस्मि शतशः शुक्रजीवितोऽस्मि त्वयैव हि ।
अमृत्यवे त्वमेतस्मादुदरस्थमृताय च ॥६०॥
अन्यथा मरणं मह्यं भविष्यति न संशयः । गुरो यमेन साकं ये युद्धमासीत्सुदारुणम्॥६१॥
मयाऽसौ ग्रसितो युद्धे यमराजः प्रतापवान्। ममोदरं प्रविश्यासौ बिभेद च ननाद च ॥६२॥
अहं मृतस्तदा चासं त्वया सञ्जीवितः पुनः ।
तस्मादुदरसंस्थानो मरणाय तपे तपः ॥६३॥

शुक्र उवाच

एवमेतन्न सन्देहो यथावत्त्वं समाचर । स्यमन्तपञ्चकं तीर्थं तत्र त्वं तप्तुमर्हसि ॥६४॥

राक्षस उवाच

तपे महत्तपो घोरं यन्न चीर्णं सुरासुरैः । गुल्फप्रदेशे पादान्ते त्वयः पाशैः प्रबध्य च ॥६५॥
अयः स्तम्भयुगं कृत्वा अयः पट्टिकयान्वितम् ।
पट्टिकायां पादबन्धं कृत्वाधः शीर्षतां तथा॥६६॥
विवृतास्यं तथाकल्पं कृत्वाधोमुखमुच्चकैः। स्तम्भोत्तरेण ज्वालायां चक्रिकायामितस्ततः ॥६७॥
अधःशिरास्तथा तिष्ठन्नुन्मील्यैव विलोचने । एवं तपश्चरिष्यामि वरदः कोऽपि मे भवेत् ॥६८॥
ब्रह्मा वा वरदः सोऽस्तु शङ्करो विष्णुरेव च ।
वरदेन तु मे भाव्यं यो वा को वा वरप्रदः ॥६९॥
इत्थमाभाष्य मुनिना गुरुणा भार्गवेण सः । तथाऽतपच्च षण्मासं पुनरन्यच्चकार ह ॥७०॥

उस राक्षस को शङ्करजी ने अत्यन्त भयङ्कर वरदान प्रदान किया था । वह हिरण्यकशिपु के राज्य में एक बलवान राक्षस था । उसने देवताओं के साथ एक सौ वर्ष तक अद्भुत युद्ध किया । अनेक देवता युद्ध से भाग चले और सैकड़ों देवता मारे गये ॥५९॥ उसकी रक्षा दैत्यगुरु शुक्राचार्य करते थे । उसने **शुक्राचार्य से कहा**— कि मैं सैकड़ों बार मरकर आपके द्वारा जीवित कर दिया गया हूँ ॥६०॥ मृत्यु रहित आप मेरे उदर में अमृत के साथ रहें । यदि ऐसा नहीं होता तो मैं निश्चित रूप से मर जाता ॥६१॥ हे गुरो ! एक बार मेरा यमराज से भयङ्कर युद्ध हुआ । मैंने उस प्रतापी यमराज को युद्ध में निगल लिया ॥६२॥ वह मेरे पेट में प्रवेश करके उसको फाड़ दिया और गर्जना किया । उस समय तो मैं मर ही गया था किन्तु आपने मुझको जीवित कर दिया ॥६३॥ इसलिए मेरे उदर में विद्यमान जीवों के मर जाने के लिए मैं तपस्या करता हूँ । **शुक्राचार्य ने कहा**— तुम जो कह रहे हो वह सत्य है, अतएव इसके लिए तुम उचित प्रयास करो ॥६४॥ तुम स्यमन्त पञ्चक तीर्थ में जाकर तपस्या करो । **राक्षस ने कहा**— मैं ऐसी तपस्या करूँगा कि वैसी तपस्या कोई भी देवता या असुर न किया हो ॥६५॥ अपने गुलफों को तथा पैरों के अन्तिम भाग को लोहे के पाश से बाँधकर लोहे के दो खम्भों को बनाकर जो लोहे की पट्टिका से युक्त होंगे ॥६६॥ उस पट्टिका में अपने दोनों पैरों को बाँधकर शिर नीचे करके अपना मुख खोलकर उसी तरह मुँह नीचे किये रहूँगा ॥६७॥ स्तम्भ के ऊपर वाले भाग में ज्वाला चक्र में नीचे शिर किए हुए रहूँगा जिससे कि मेरी आँखें खुली रहें ॥६८॥ मैं इसी तरह की तपस्या करूँगा । मुझको वरदान देने वाले ब्रह्मा,

नखाभ्यां स्वशिरश्छित्त्वा जुहावाग्नौ समन्त्रकम् ।
नमो भद्राय मन्त्रेण चत्वारि च शिरांसि सः ॥७१॥
पञ्चमं तु शिरोहातुं यतमाने च राक्षसे । वह्निमध्यात्समुत्तस्थौ भगवानम्बिकापतिः ॥७२॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशो बालचन्द्रविभूषणः । अधःशिरस्कं तद्रक्ष इदमाह महेश्वरः ॥७३॥
मा साहसं कृथा रक्षो वरदोऽस्मि वरं वृणु ॥७४॥

राक्षस उवाच

बहूनां च वराणां त्वं दाता नूनं महेश्वरः । हतशीर्षसमुत्पत्तिं ग्रस्तजीवमृतिं तथा ॥७५॥
वराहवपुषो विष्णोरस्तु शक्तिश्चतुर्गुणा। मयि ते न हिरोषःस्यात्सन्निधिस्तु सदा मम ॥७६॥
त्वज्जटोत्पातनेनैकः पुरुषः सम्भविष्यति । तेनैव मरणं नान्यैरिदमस्तु वृतं मम ॥७७॥
भविष्यत्येवमेवैतदित्युक्त्वाऽन्तर्हितो हरः । एवं लब्धवरः पापी राक्षसो निहतस्त्वया॥७८॥
अथालिङ्ग्य हरिवीवीरं शङ्करश्च पितामहः । यथागतमथो जम्मुरथ देवादियोषितः॥७९॥
निपत्य दण्डवद्भूमौ वीरभद्रमथाब्रुवन् ।
नमस्ते देवदेवेश ! नमस्ते करुणाकर ! । नमस्ते शाश्वतानन्त नमस्ते वरदो भव॥८०॥

वीरभद्र उवाच

भस्मना जीवयिष्यामि सुरान्समुनिवानरान्। भवतीभिःप्रतोष्टव्यं शोकःकार्यो न चाधुना ॥८१॥
इत्युक्त्वा वीरभद्रस्तु भस्मनाऽजीवयत्स तान् ।
उत्थिता मुनिदेवाश्च वानरौ चोत्थितौ ततः ॥८२॥

विष्णु और शङ्कर में से कोई भी हो सकता है ॥६९॥ इन तीनों में से कोई भी मुझको वरदान देने वाला हो सकता है । इस तरह से शुक्राचार्य से कहकर वह राक्षस ॥७०॥ छह मास तक तपस्या किया उसके बाद उसने दूसरी तपस्या की । वह अपने दो नखों से शिर को काटकर अग्नि में **नमो भद्राय इत्यादि** मन्त्र से चार शिरों का होम कर दिया । जब वह राक्षस पाँचवें शिर का होम करने का प्रयास कर रहा था॥७१-७२॥ उस समय अग्नि के बीच से भगवान् शिव प्रकट हो गये । उनका शरीर शुद्ध स्फटिक मणि के समान था । तथा वे चन्द्रमा को भूषण रूप से धारण किए हुए थे ॥७३॥ नीचे शिर किए हुए उस राक्षस से शिवजी ने कहा— राक्षस साहसिक कार्य मत करो मैं तुम्हें वरदान देने के लिए आया हूँ तुम वरदान माँगो॥७४॥ **राक्षस ने कहा—** हे महेश्वर ! आप तो अनेक वरदानों को प्रदान करने वाले हैं । मेरे कटे हुए शिर उत्पन्न हो जायँ और यदि कोई मेरे शिर को खा जाय तो ही मेरी मृत्यु हो ॥७५॥ वराह रूपधारी विष्णु के चार गुना मेरा बल हो । मुझ पर आप कभी भी क्रोध न करें आप सदा मेरे पास बने रहें ॥७६॥ आप जब अपनी एक जटा को उखाड़ेंगे तो एक पुरुष उत्पन्न होगा । उसी के द्वारा मेरी मृत्यु हो दूसरे से नहीं यहीं मैं वरदान माँगता हूँ ॥७७॥ ऐसा ही होगा यह कहकर शिवजी अन्तर्धान हो गये । इस प्रकार के वरदान प्राप्त करने वाले पापी को आपने मारा है ॥७८॥ इसके बाद श्रीहरि ने वीरभद्र का आलिङ्गन किया फिर शङ्करजी और ब्रह्माजी ने वीरभद्र को गले से लगाया । इसके बाद सभी देवता आदि तथा उनकी पत्नियाँ जैसे आये थे वे चले गये ॥७९॥ उन लोगों ने वीरभद्र को साष्टाङ्ग प्रणाम करके कहा हे देव देवेश, हे करुणाकर ! आपको नमस्कार है ॥८०॥ हे शाश्वत ! हे अनन्त ! आपको नमस्कार हैं ।

इदमूचुर्वचो हृष्टाःशिरःस्थाञ्जलयोऽनमन् । त्वयाऽत्र जीवितास्तात पिता त्वंधर्मतो हि नः॥८३॥
अस्माकं शरणं नित्यं भव शङ्करसम्भव । शिशूनां दुष्टचरितं दृष्ट्वा शिक्षेस्तथा च तान्॥८४॥
रक्षेःपरकृताबाधा व्याधिभ्यश्च यथोरसान्। दक्षाध्वरे कृतागस्काः शिक्षिता भवतानऽघ !॥८५॥
इदानीं रक्षितास्तात वयं शिशुवदेव ते ॥८६॥

वीरभद्र उवाच

सत्यमेतन्न सन्देहो यत्र बाधा भवेत्तु वः । तत्र मां स्मरत क्षिप्रं बाधानाशं गमिष्यति ॥८७॥
वीरभद्रपदं येऽपि पठन्त्यष्टशतं ततः । प्रणवादिं नमोऽन्तं च चतुर्थीसहितं तथा ॥८८॥
तेषां राक्षसपीडानां नाशनं च भविष्यति । ब्रह्मराक्षसपीडासु पिशाचादिभयेषु च ॥८९॥
नामानुस्मणात्सर्वबाधानां च विनाशनम् ॥९०॥

विद्युत्प्रभालोचनमुग्रमीशं बालेन्दुदंष्ट्रारुणशोभिताधरम् ।
सुनीलगात्रं च जटाकृतस्रजं दधानमङ्गे भासितत्रिपुण्ड्रकम् ॥९१॥

ब्रह्मराक्षसमुक्त्यर्थं स्मरणं त्विदमीरितम्। मन्त्रे च वीरभद्रस्य सर्वमेतदुदीरितम्॥९२॥

दधीच उवाच

अथैवं विदधे वीरो मुनिदेवास्तथागताः । एतत्त्रियायुषं प्रोक्तं भस्ममाहात्यमुत्तमम् ॥९३॥
पठतः श्रृण्वतो वापि स्मरतोऽघविनाशनम्। शिवभक्तिप्रदं पुण्यमायुरारोग्यवर्द्धनम् ॥९४॥

आप वर प्रदान करें । **वीरभद्र ने कहा**— मैं भस्म के द्वारा देवताओं, मुनियों तथा वानरों को जीवित कर दूँगा ॥८१॥ आप सभी प्रसन्न रहें आपलोगों को शोक नहीं करना चाहिए । इस तरह से कहकर वीरभद्र ने उन सबों को जीवित कर दिया ॥८२॥ देवता, मुनिगण और दोनों वानर जीवित हो गये, वे सभी हाथ जोड़कर तथा शिर झुकाकर कहे ॥८३॥ हे तात ! आपने हम सबों को जीवित कर दिया है, आप हमारे धर्म के पिता हैं । हे शङ्कर पुत्र ! आप हमलोगों की सदैव रक्षा करें । जिस तरह बच्चों के दूषित आचरण को देखकर माता-पिता उनको शिक्षा देते हैं उसी तरह आप शिक्षा दें किन्तु शत्रुओं के द्वारा उत्पन्न बाधा से आप हमलोगों की वैसे ही रक्षा करें जिस तरह औषधियाँ व्याधियों से शरीर के रसों की रक्षा करती हैं॥८४-८५॥ हे अनघ ! जब दक्ष के यज्ञ में देवताओं ने अपराध किया तो आपने उन सबों को दण्डित किया, किन्तु इस समय आपने हमलोगों की वैसे ही रक्षा की है जिसतरह माता-पिता अपने बच्चों की रक्षा करते हैं ॥८६॥ **वीरभद्र ने कहा**— यह सत्य है कि जब कभी आपलोगों पर विपत्ति आये तो आपलोग मेरा स्मरण करें आपलोगों की विपत्ति शीघ्र दूर हो जायेगी ॥८७॥ जब कोई भी **वीरभद्राय नमः** इस मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करेगा तो उसकी राक्षस जन्य पीड़ा का नाश हो जायेगा । ब्रह्मराक्षस जन्य पीड़ा के होने पर अथवा पिशाच आदि का भय उपस्थित होने पर ॥८८-८९॥ मेरे नाम का स्मरण करने मात्र से उन सभी बाधाओं का नाश हो जायेगा ॥९०॥ विद्युत् की प्रभा के समान कान्ति युक्त नेत्र वाले उग्र शङ्कर, बाल चन्द्रमा के समान धवल दाँत वाले तथा लाल-लाल ओष्ठों वाले, काले शरीर वाले, जटाओं की माला धारण करने वाले भस्म से सुशोभित अङ्ग वाले त्रिपुण्ड्रधारी ॥९१॥ ब्रह्मराक्षस से मुक्ति प्राप्त करने के लिए इस प्रकार का वीरभद्र का स्मरण बतलाया गया है । वीरभद्र के मन्त्र में ये सारी बातें कही गयी हैं ॥९२॥ **महर्षि दधीच ने कहा**— वीरभद्र ने ऐसा काम किया और सभी देवता और मुनिगण चले गये।

शुचिस्मितोवाच

अहं कृतार्था धन्या च नारीणामुत्तमाऽस्मयहम् ।
हतपापा तथा चास्मि नमस्ते मुनिपुङ्गव ! ॥९५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शिवराघवसंवादे सप्तोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०७॥

एक सौ आठवाँ अध्याय

श्रीराम उवाच

भस्मोत्पतिं महाभाग भस्ममाहात्म्यमेव च । भस्मसन्धारणे पुण्यं भस्मदाने च तद्वद ॥१॥

शम्भुरुवाच

भस्मोत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् । स्मरणात्कीर्तनाद्राम तां शृणुष्व नराधिप ॥२॥

य एकः शाश्वतो देवो ब्रह्मवन्द्यः सदाशिवः ।
त्रिलोचनो गुणाधारो गुणातीतोऽक्षरोव्ययः ॥३॥
सिसृक्षा तस्य जाताऽथ वीक्ष्यात्मस्थं गुणत्रयम् ।
वेदत्रयमिदं ज्ञेयं वेदत्रयगुणं हि यत् ॥४॥
पृथक्कृत्वात्मनस्तात तत्र स्थानं विभज्य च ।
दक्षिणाङ्गेऽसृजत्पुत्रं ब्रह्माणं वामतो हरिम् ॥५॥

इस तरह से त्र्यायुष और भस्म का उत्तम माहात्म्य मैंने बतलाया है ॥९३॥ इसको पढ़ने, सुनने अथवा स्मरण करने से पापों का नाश होता है । यह पवित्र आख्यान शिवजी की भक्ति को प्रदान करने वाला तथा आरोग्य को बढ़ाने वाला है ॥९४॥ **शुचिस्मिता ने कहा—** मैं तो कृतार्थ, धन्य और नारियों में उत्तम हो गयी । मेरे सारे पाप विनष्ट हो गये, हे मुने ! आपको नमस्कार है ॥९५॥

इस तरह से श्रीपद्ममहापुराण के पाताल खण्ड के शिवराघव संवादान्तर्गत एक सौ सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०७॥

भस्म की महिमा

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा— हे महाभाग ! आप मुझे भस्म की उत्पत्ति, भस्म का माहात्म्य, भस्म के धारण करने तथा भस्म का दान करने से होने वाले पुण्य को बतलायें ॥१॥ **शम्भु ने कहा—** मैं समस्त पापों को विनष्ट करने वाली भस्म की उत्पत्ति का वर्णन करूँगा । वह स्मरण करने तथा वर्णन करने से भी पापों का नाश करती है । अतएव हे श्रीरामचन्द्रजी ! उसे आप सुनें ॥२॥ सदाशिव एकमात्र देव हैं जो शाश्वत एवं ब्रह्मवन्द्य हैं । उनके तीन नेत्र हैं, वे तीनों गुणों के आधार है, गुणातीत, अक्षर और निर्विकार हैं ॥३॥ वे अपने में तीनों गुणों को देखकर सृष्टि करने की इच्छा किए । वे सोचे कि ये जो

पृष्ठदेशे महेशानं त्रीन्पुत्रानसृजद्विभुः। जातमात्रास्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥६॥
इदमूचुर्वचः स्पष्टं को भवान्के वयं त्विति। तानाह च शिवः पुत्रान्यूयं पुत्रा अहं पिता॥७॥
इदं गुणत्रयं पुत्रा भजध्वं कर्महेतुकम् ॥८॥

पुत्रा ऊचुः

कं वा गुणं को भजतां कियन्तं कालमीश्वरम् ।
कथं गुणनिवृत्तिश्च भवेदेतद्वदस्वनः ॥९॥

शिव उवाच

यावज्ज्ञानं हि भवतां यावदायुरथापि वा। धारणं तावदेवस्यादेकैकस्य गुणस्य च॥१०॥
सत्त्वं ब्रह्मा रजो विष्णुर्भजेन्महेश्वरस्तमः। इत्युक्तमात्रे देवेशे ब्रह्मा सत्त्वमथाग्रहीत्॥११॥
न च चालयितुं शक्तो धारणे किमु शक्तिमान् ।
ते गुणं तु तिरस्कृत्य रजोगुणमथाग्रहीत् ॥१२॥
न च चालयितुं शक्तो जग्राहाथ तमोगुणम् ।
न च चालयितुं शक्तो निपपात रुरोद च ॥१३॥
विष्णुश्च वामहस्तेन रजोगुणमधारयत्। अङ्गुलीभ्यां महेशोऽपि तमोगुणमधारयत्॥१४॥
सत्त्वमेकोऽङ्गुलीभ्यां च सत्त्वं विष्णुमथादधात् ।
ब्रह्माणं पादपीठे च दधार च ननर्त च ॥१५॥
नृत्यन्तमत्यन्तविलासरूपं गोक्षीररूपं तरुणं त्रिनेत्रम् ।
सर्वं दधानं कृतकौतुकं शिवं समीक्ष्य पुत्रं वरदो वभाषे ॥१६॥

तीनों गुण हैं वे तीनों वेद स्वरूप हैं ॥४॥ हे तात ! इसके बाद अपने शरीर को पृथक् करके वे उसमें विद्यमान गुणों का विभाग किए । वे अपने दाहिने अङ्ग से ब्रह्मा नामक पुत्र की सृष्टि किए । अपने बायें अङ्ग से उन्होंने श्रीहरि की सृष्टि की ॥५॥ वे अपने पृष्ठ भाग से महेश की सृष्टि किए । इस तरह से उन्होंने तीन पुत्रों की सृष्टि की । उत्पन्न होते ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीनों देवता पूछे कि आप कौन हैं तथा हमलोग कौन हैं ? यह सुनकर सदाशिव ने कहा कि तुमलोग मेरे पुत्र हो और मैं तुम सबों का पिता हूँ ॥६-७॥ हे पुत्रों ! तुमलोग इन कर्मजन्य तीनों गुणों को धारण करो । **पुत्रों ने कहा—** हे ईश्वर ! हमलोगों में से किस गुण को कौन कितने समय तक धारण करे ?॥८॥ इन गुणों की निवृत्ति भी कैसे होगी ? इस बात को भी आप हमलोगों को बतलायें । **सदाशिव ने कहा—** जब तक आप सबों का ज्ञान बना रहता है अथवा जब तक आपलोगों की आयु रहे ॥९॥ तब तक आपलोग एक-एक गुण को धारण किए रहें । सत्त्व गुण को ब्रह्मा धारण करें, रजोगुण को विष्णु धारण करें और तमोगुण को महेश्वर धारण करें॥१०॥ इस तरह से कहते ही ब्रह्माजी ने सत्त्वगुण को पकड़ लिया । किन्तु वे उसको हिला भी नहीं सके धारण करने की कौन बात है ॥११॥ वे उस गुण को छोड़कर रजोगुण को पकड़े । वे उसको भी हिला नहीं सके । उसके बाद उन्होंने तमोगुण को पकड़ा ॥१२॥ वे उसको भी हिला नहीं सकें वे गिरकर रोने लगे । भगवान् विष्णु अपने बायें हाथ से रजोगुण को उठा लिए और अपनी दो अङ्गुलियों से महेश ने भी तमोगुण को उठा लिया । केवल सत्त्वगुण को विष्णु ने भी अपनी दो अङ्गुलियों से उठा

शिव उवाच

प्रीतोऽस्मि तव पुत्राहं वरं वृणु यथेप्सितम्। अथाह पितरं पुत्रो वरमेनं ददस्व मे ॥१७॥
मामुद्दिश्य कृता पूजा तव पूजा भवेच्छिव। तिष्ठेर्मयि सदात्वं च त्वमेवाहं च वाव्ययः ॥१८॥

शिव उवाच

एवमेतन्महाभाग भविष्यति न संशयः। रक्तगौराविमौ पुत्रौ ब्रह्मविष्णू ममैव तु ॥१९॥
बाहुमूलस्थिरौ रम्यौ ममाकारौ तथानघौ। अथ ब्रह्माणमाहेदं भजत्वेकं गुणं भवान् ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

त्वन्निर्दिष्टं गुणमहं धर्तुं शक्तो नहीश्वर।
धारियिष्ये रजो देवसत्त्वं भजतु वै हरिः। अवशिष्टं गुणं चायमीश्वरो धारयिष्यति ॥२१॥

शम्भुरुवाच

गुणानादाय ते देवा न शेकुर्नित्यधारणम् । कर्त्तुं भरणशक्त्यर्थं शिवमित्यवदत्पुनः ॥२२॥
गुणान्वयं सर्वकालं न च धारयितुं क्षमाः। दीयतांभगवञ्छक्तिर्यदि भोस्त्वं वरप्रद ॥२३॥

शिव उवाच

अथ तद्वचनं श्रुत्वा शिवो वाक्यमभाषत ॥२४॥
विद्याशक्तिः समस्तानां शक्तिरित्यभिधीयते ।
गुणत्रयाश्रया विद्या अविद्या च तदाश्रया ॥२५॥
गुणत्रयं च दग्ध्वैव तत्सारं धर्तुमर्हथ। यच्चकिञ्चिद्भवेत्तत्र भवद्भिर्ध्रियतां हि तत्॥२६॥

लिया ॥१३-१४॥ वे ब्रह्माजी को अपनी धारण चौकी पर रखकर नृत्य करने लगे ॥१५॥ गौ के दुग्ध के समान वर्ण वाले तरुण शङ्करजी को अत्यन्त विलास रूप नृत्य करते हुए सबकुछ धारण करने वाले तथा अलंकृत शिव को देखकर वरदान देने वाले सदाशिव ने कहा ॥१६॥ **सदाशिव ने कहा**— हे पुत्र! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । तुम अपने मनोऽनुकूल वरदान माँगो । इसके बाद शङ्करजी ने कहा कि आप मुझे यह वरदान दीजिये कि ॥१७॥ मुझको उद्दिष्ट करके जो पूजा की जाय । वह आपकी पूजा हो जाय । आप मेरे भीतर सदैव निवास करें । हे अव्यय ! आप और मुझमें कोई अन्तर न रहे ॥१८॥ सदा शिव ने कहा इसमें कोई संशय नहीं हैं कि ऐसा ही होगा । ये लाल और गौर वर्ण के ब्रह्मा और विष्णु भी तो मेरे ही समान होंगे । इसके बाद सदाशिव ने ब्रह्माजी से कहा कि तुम एक गुण को धारण करो ॥१९-२०॥ **ब्रह्माजी ने कहा**— आपने जिस गुण को बतलाया है उसको धारण करने में मैं समर्थ नहीं हूँ । मैं रजोगुण को धारण करूँगा और श्रीहरि सत्त्वगुण को धारण करें ॥२१॥ और बचे हुए तमोगुण को शिवजी धारण करेंगे । **शम्भु ने कहा**— उन गुणों को लेकर वे देवता उन गुणों को सदैव धारण नहीं कर सकते थे॥२२॥ उसको सदा धारण करने के लिए वे सब सदाशिव से कहे— हमलोग इन गुणों को सदैव धारण करने में समर्थ नहीं है ॥२३॥ आप यदि वरदान देने वाले हैं तो आप हमलोगों को शक्ति प्रदान करें । उस वाक्य को सुनकर सदाशिव बोले । **सदाशिव ने कहा**— सभी शक्तियों में विद्याशक्ति श्रेष्ठ कहीं जाती है । तीनों गुणों का आधार विद्या अविद्या दोनों हैं ॥२४-२५॥ तीनों गुणों को जलाकर आपलोग उसके सार भाग को धारण कर सकते हैं । वहाँ जो कुछ भी रहे उसे ही आपलोग धारण करें ॥२६॥ उसके बाद उन

अथाहुस्तत्सुता वाक्यं न दाहोज्वलनं विना ।
शिवः प्राहमहेशस्य लोचने वह्निरस्तिवै ॥२७॥
गुणत्रयमिदं धेनुर्विद्यास्याद्गोमयं शुभम्। मूत्रं चोपनिषत्प्रोक्तं कुर्याद्भस्म ततः परम् ॥२८॥
वत्सास्तु स्मृत्यो यस्यास्तत्सम्भूतं तु गोमयम् ।
आगाव इति मन्त्रेण धेनुं तत्राभिमन्त्रयेत् ॥२९॥
गावोभगो गाव इति प्राशयेत्तु तृणं जलम्। उपोष्य च चतुर्दश्यां शुक्ले कृष्णेऽथ वा व्रती॥३०॥
परेद्युः प्रातरुत्थाय शुचिर्भूत्वा समाहितः । कृतस्नानो धौतवस्त्रो गोमयार्थं व्रजेत्तु गाम्॥३१॥
उत्थाप्य तां प्रयत्नेन गायत्र्या मूत्रमाहरेत् । सौवर्णे राजते ताम्रे धारयन्मृन्मये घटे ॥३२॥
पौष्करे वा पलाशे वा पात्रेगोशृङ्ग एव वा ।
आदधीत हि गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ॥३३॥
अभूमिपातं गृह्णीयात्पात्रे पूर्वोदितेऽधिके। गोमयं शोधयेद्विद्वाञ्छ्रीर्मे भजतु मन्त्रतः ॥३४॥
अलक्ष्मीर्मयीतिमन्त्रेण गोमयस्यापमार्जनम्। सन्त्वा सिञ्चमि मन्त्रेण गोमूत्रं गोमये क्षिपेत् ॥३५॥
पञ्चानां त्वेति मन्त्रेण पिण्डांश्चैव चतुर्दश। कुर्यात्संशोष्यकिरणैस्तरणेराहरेत्तु तान्॥३६॥
निदध्यादथपूर्वोक्तपात्रे गोमयपिण्डकान् । स्वगृह्योक्तविधानेन प्रतिष्ठाप्याग्निमिन्धयेत् ॥३७॥
पिण्डान्विनिक्षिपेत्तत्तदर्णदेवाय पिण्डकान् । आघारावाज्यभागौ च प्रक्षिप्य जुहुयात्सुधीः ॥३८॥
ततो निधनपतये त्रयोदश जयादयः। होतव्याः पञ्च ब्रह्माणि नमो हिरण्यबाहवे ॥३९॥
इति सर्वाहुतीर्हुत्वा चतुर्थ्यन्तैस्तु मन्त्रकैः । ततः शर्वाय रुद्राय यस्य चैकङ्कतीति च ॥४०॥

पुत्रों ने कहा कि अग्नि के बिना तो जलाने का काम नहीं हो सकता है । सदा शिव ने कहा कि शिव के नेत्र में अग्नि स्थित है ॥२७॥ ये तीनों गुण धेनु स्वरूप हैं और विद्या भी गोस्वरूपिणी है । उपनिषदें उस विद्या धेनू के मूत्र स्वरूप हैं, उसीसे श्रेष्ठ भस्म का निर्माण करें ॥२८॥ स्मृतियाँ ही उस धेनु के वत्स हैं, उससे उत्पन्न गोमय है । **आगाव** इस मन्त्र से गौ को अभिमन्त्रित करे ॥२९॥ **गावो गावो गाव** इस मन्त्र से तृण और जल का प्राशन करे । व्रती को चाहिए कि वह शुक्ल पक्ष की अथवा कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन उपवास करे ॥३०॥ उसके दूसरे दिन प्रात:काल उठकर सावधानी पूर्वक पवित्र होए । स्नान करके धोती पहनकर गौ के पास गोबर प्राप्त करने के लिए जाय ॥३१॥ प्रयास पूर्वक गौ को उठाकर गायत्री मन्त्र पढ़कर उसके मूत्र को एकत्रित करे । उसको सोना या चाँदी अथवा ताम्बे के पात्र में या मिट्टी के घड़े में ॥३२॥ अथवा कमल के पत्ते के बने पात्र में या गौ के शृङ्ग में गोमूत्र को रखे फिर **गन्धद्वारां दुराधर्षाम्** इस मन्त्र से उस गोबर को ले जो भूमि पर नहीं गिरा हो और उसको उसी पात्र में डाल दे । उसके बाद विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वे **'श्रीर्मेभजतु** इस मंत्र से गोबर का शोधन करे ॥३३-३४॥ **अलक्ष्मीर्मयि** इस मन्त्र से उस गोमय का अपमार्जन करे । **संत्वा सिंचामि** इत्यादि मन्त्र से गोमूत्र को गोबर में डाले ॥३५॥ **पञ्चानां त्वां** इस मन्त्र से उसके चौदह पिण्डों को बनाये । फिर उसे सूर्य की किरणों से सुखाये ॥३६॥ फिर पूर्वोक्त पात्र से उन पिण्डों को ढँक दे । उसके बाद अपने गृह्य सूत्रोक्त विधि से अग्नि की स्थापना करके उसको प्रज्ज्वलित करे ॥३७॥ विभिन्न अर्णदेवों के निमित्त पिण्डों को उस अग्नि में डाले तथा आधार आज्य भाग की दो-दो आहुति उसके बाद दे ॥३८॥ उसके बाद **निधनपतये** इस मन्त्र से तेरह आहुतियाँ

एतैस्तु जुहुयाद्विद्वाननाज्ञातत्रयं तथा। व्याहृतीरथ हुत्वा तु ततः स्विष्टकृतं हुनेत्॥४१॥
इध्मशेषं तु निर्वर्त्य पूर्णापात्रोदकं ततः। पूर्णमासान्तयजुषा जलेनान्येन बृंहयेत् ॥४२॥
ब्राह्मणेष्वमृतमिति तज्जलं शिरसि क्षिपेत् । प्राच्यामिति दिशां लिङ्गैर्दिक्षु तोयं विनिक्षिपेत्॥४३॥
ब्रह्मणे दक्षिणां दत्त्वा शान्ते पुलकमाहरेत् ॥४४॥
आहरिष्यामि देवानां सर्वेषां कर्मगुप्तये। जातवेदसमेनं त्वं पुलकच्छादयाद्य मे ॥४५॥
मन्त्रेणानेन तं वह्निं पुलकैश्छादयेदथ। त्रिदिनं ज्वलनास्थित्यै छादनंपुलकैःस्मृतम् ॥४६॥
ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ।
भस्माधिकमभीप्संस्तु ह्यधिकं गोमयं हरेत् ॥४७॥
दिनत्रयेण यदि वा एकस्मिन्दिवसे बहु। तृतीये वा चतुर्थे वा प्रातः स्नात्वा सिताम्बरः॥४८॥
शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः । शुक्लदन्तो भस्मदिग्धो मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्॥४९॥
तद्वेति चोच्चारयित्वा भस्मसत्यं न सन्त्यजेत् ।
तत आवाहनमुखा उपचारास्तु षोडश ॥५०॥
कर्तव्या हुतदानेन ततोऽग्निमुपसंहरेत्। अग्ने भस्मेति मन्त्रेण गृह्णीयाद्भस्मचोद्भवम्॥५१॥
अग्निरस्मीति मन्त्रेण प्रमृज्य च ततः परम् ।
संयोज्य गङ्गासलिलैः कपिलापयसाथ वा ॥५२॥

देनी चाहिए। फिर जयादि का होम करे। पाञ्च ब्रह्मदैवताक आहुतियाँ **नमो हिरण्य बाहवे** इस मन्त्र से देनी चाहिए ॥३९॥ इस तरह से सभी आहुतियों का होम करके चतुर्थ्यन्त मन्त्रों से शर्व, रुद्र और जिसकी कंकतिका (कङ्घी) हो उसके लिए आहुति दे ॥४०॥ इन सभी मन्त्रों से विद्वान् को चाहिए कि आहुति देकर **अनाज्ञात त्रय** दे इत्यादि तीन मंत्रों से बाहुतियाँ प्रदान करे। फिर व्याहृतियों से होम करके स्विष्टकृत् होम करे ॥४१॥ बचे हुए इन्धन को पूरा करके उसके बाद पूर्ण पात्र आदि को पूरे मास तक यजुर्वेद के मंत्रों से उसे दूसरे जल से बढ़ाते रहे ॥४२॥ उस जल को ब्राह्मणों के शिर पर **अमृतम् इत्यादि** मन्त्र से छिड़के। **प्राच्चै नमः** इत्यादि दिशा सूचक मन्त्र से उस जल को दिशाओं में छिड़के ॥४३॥ शान्त ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करके पुलाक को लाये। उसके बाद सभी देवताओं के कर्मो की रक्षा करने के लिए पुलाक को ला रहा हूँ। हे अग्निदेव! आप आज मेरे पुलाक को आच्छादित करें। इस मन्त्र से अग्नि को पुलाक पर डाल दे ॥४४-४५॥ तीन दिन तक अग्नि पुलकों के बने रहने के लिए छादन कहा गया है। उसके बाद ब्राह्मणों को भक्ति पूर्वक भोजन कराकर स्वयं मौन होकर भोजन करे ॥४६॥ यदि अधिक भस्म प्राप्त करने की इच्छा हो तो अधिक गोबर को लाये। तीन दिनों में अथवा एक ही दिन में अधिक गोबर लाये॥४७॥ तीसरे दिन अथवा चौथे दिन प्रातःकाल स्नान करके श्वेतवस्त्र तथा श्वेत यज्ञोपवीत धारण करे। श्वेत माला और अङ्गों में श्वेत चन्दन लगाये ॥४८॥ उसका दाँत श्वेत होना चाहिए। शरीर में भस्म लगाये हुए मन्त्रज्ञ पुरुष को चाहिए कि वह **तद्वा** इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करे तथा **भस्म सत्यं** इत्यादि मंत्र का भी उच्चारण करे ॥४९॥ उसके बाद आवाहन इत्यादि षोडश उपचारों से पूजन करें। उसके बाद हुतदान के द्वारा अग्नि को उपसंहृत करे ॥५०। उसके बाद **अग्ने भस्म** इस मन्त्र से भस्म को ग्रहण करे। उसके बाद **अग्निरस्मि** इस मन्त्र से उस भस्म को मसले उसके पश्चात् ॥५१॥ फिर उसको गङ्गाजल अथवा

चन्द्रकुङ्कुमकाश्मीरमुशीरचन्दनं तथा। अगुरुद्वितयं चैव चूर्णयित्वा तु सूक्ष्मतः ॥५३॥
क्षिपेद्भस्मनि तच्चूर्णमोमिति ब्रह्ममन्त्रतः। ततः पयःसेचने च गदितः कपिला मनु; ॥५४॥
अमृतं देवि ते क्षीरं पवित्रमिह बुद्धिदम्। तव प्रसादान्मुच्यन्ते मनुजाः सर्वपाप्मनः ॥५५॥
प्रणवेनावहेद्विद्वान्भस्मनो वटकानथ। अणोरणीयानिति हि मन्त्रेण तु विचक्षणः ॥५६॥

शम्भुरुवाच

इत्थं तु भस्मसम्पाद्य शुष्कमादाय मन्त्रवित्।
प्रणवेन विमृज्याथ सप्तप्रणवमन्त्रितम् ॥५७॥
ईशानेन शिरो देशं मुखं तत्पुरुषेण च। उरो देशमघोरेण गुह्यं वामेन मन्त्रयेत् ॥५८॥
सद्योजातेन वै पादौ सर्वाङ्गं प्रणवेन तु। तत उद्धूल्य सर्वाङ्गमापादतलमस्तकम् ॥५९॥
तत आचम्य वसनं धौतं श्वेतं प्रधारयेत्। पुनराचम्य कर्म स्वं कर्तुमर्हति सर्वतः ॥६०॥
ततो भस्म समादाय प्रमृज्य प्रणवेन तु। त्रिनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रयाणां जनकं विभुम् ॥६१॥
स्मरन्नमः शिवायेति ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम्।
नमः शिवाभ्यामित्युक्त्वा बाह्वोर्वापि त्रिपुण्ड्रकम् ॥६२॥
अघोराय नम इति उभाभ्यां च प्रकोष्ठयोः।
भीमायेति ततः पृष्ठे शिरोऽधिपश्चिमे तथा ॥६३॥
नीलकण्ठाय शिरसि क्षिपेत्सर्वात्मने नमः। प्रक्षाल्याथ ततो हस्तौ कर्मानुष्ठानमाचरेत् ॥६४॥

शिव उवाच

यूयमेवं प्रकारेण भस्म कृत्वा प्रधृष्य च। गुणान्धारयितुं शक्तास्ततः स्त्रक्ष्यथ वै प्रजाः ॥६५॥

कपिला गौ के दुग्ध में मिला दे। फिर चन्दन, कुङ्कुम, केशर, खस तथा कर्पूर उसके दो गुना अगरु इन सबों का अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण बनाकर उस भस्म में ओम् इस ब्रह्म मन्त्र को पढ़कर मिला दे। उसके बाद कपिला मन्त्र से उसका दुग्ध से चन बतलाया गया है ॥५२-५३॥ वह मन्त्र हैं **अमृतं देवि** इत्यादि अर्थात् हे देवि ! आपका दुग्ध अमृत के समान पवित्र है और इस संसार में बुद्धि प्रदान करने वाला है ॥५४॥ तुम्हारी ही कृपा से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं। उसके बाद प्रणव का उच्चारण करके भस्म के गोलों को ले-ले ॥५५॥ अथवा **अणोरणीयान्** इस मन्त्र से उसे ले। शम्भु मुनि ने कहा— इस तरह से भस्म का निर्माण करके, मन्त्र वेत्ता पुरुष शुष्क भस्म को लेकर ॥५६॥ प्रणव का उच्चारण करके उसको मसले उसके बाद उसको प्रणव से सात बार अभिमन्त्रित करे। उसको ईशान मन्त्र से शिर पर चढाये, तत्पुरुष मन्त्र से मुख में लगाये ॥५७॥ अधोर मन्त्र से ऊरु प्रदेश में उसे लगाये और बायें हाथ से गुप्ताङ्गों में भस्म लगाये। **सद्योजात** मन्त्र से दोनों पैरों में भस्म लगाये। उसके बाद सम्पूर्ण शरीर में प्रणव से भस्म लगाये ॥५८-६०॥ उसके बाद तीन नेत्र वाले, तीनों गुणो के आधार तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश इन तीनों को उत्पन्न करने वाले व्यापक सदाशिव का स्मरण करते हुए **ओम नमः शिवाय** इस मन्त्र से ललाट में त्रिपुण्ड्र को लगाये ॥६१॥ नमः शिवाभ्याम् का उच्चारण करके दोनों भुजाओं में त्रिपुण्ड्र लगाये। **अधोराय नमः** का उच्चारण करके दोनों प्रकोष्ठों में त्रिपुण्ड्र लगाये ॥६२॥ **भीमाय नमः** इस मन्त्र से पीठ में तथा शिर के पीछे त्रिपुण्ड्र लगाये **नीलकण्ठाय नमः** का उच्चारण करके लगाये। **सर्वात्मने नमः** मन्त्र

शम्भुरुवाच

इत्थंशिवोदितादेव ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। तथा कृत्वा च विधिनाऽहमहमिकया तदा ॥६६॥
अन्योन्यबोधनाशक्ताःप्रणम्यशिवमूचिरे । कं गुणं धारयेत्को वा शिवः प्राह सुतानथ ॥६७॥
कर्मशक्तिं तथाज्ञानं मुखरेमैव नश्यति । अल्पायुर्दृश्यते ब्रह्मा मनुभिश्चास्य जीवितम् ॥६८॥
योऽहं ब्रह्माण्डमालाभिर्भूषितो ब्रह्मगोपनम्। रजोगुणमवष्टभ्य न च जानासि मां तदा ॥६९॥
ब्रह्माधिकबलो विष्णुरायुषि ब्रह्मणोऽधिकः। ब्रह्माण्डमालाभरणे महेशस्य ममैव तु ॥७०॥
चतुर्निःश्वासमात्रेण विष्णोरायुरुदाहृतम्। ब्रह्मणोऽधिकसत्त्वत्वात्सत्त्वमालम्बतां हरिः ॥७१॥
जानाति सर्वकालं मां क्वचिदेव न विस्मरेत् ।
सात्त्विकैकैव पूजाऽस्य राजसी तामसी न तु ॥७२॥
शान्तं शिवं सत्त्वगुणं राजवक्त्रावमानतः। नभो नीलं तथा चैव गुणं शम्भुस्तथाभजन् ॥७३॥
सत्त्वं रजस्तमश्चापि दधार च पुरा किल। अतोऽस्य त्रिविधा पूजा शङ्करस्य विधीयते ॥७४॥
रजश्च तमसा युक्तं दारुणं परिकीर्तितम् । दारुणापि ततः पूजा शङ्करे गतिदा मता॥७५॥
रजश्च तमसायुक्तमलं शास्त्रप्रवर्तकम्। विच्छिन्नाऽपि ततः पूजा शङ्करे फलदा मता ॥७६॥
तमश्च सत्त्वसंयुक्तं मिश्रकं च प्रवर्तकम् । मिश्रपूजा विफलदा शङ्करे लोकशङ्करे ॥७७॥

से शिर पर भस्म को डाले । उसके बाद दोनों हाथों को धोकर कर्मानुष्ठान प्रारम्भ करे । **शिवजी ने कहा—** आपलोग इस प्रकार से भस्म का निर्माण करके तथा उसे अच्छी तरह घिसकर ॥६३-६४॥ गुणों तथा प्रजाओं को धारण करने में समर्थ हो जायेंगे । **शम्भु मुनि ने कहा—** इस तरह से सदाशिव के द्वारा कहे जाने पर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश ये तीनों देवता ॥६५॥ मैं पहले, मैं पहले इस तरह से कहकर वैसा ही विधि पूर्वक परस्पर में एक दूसरे को बतलाने में असमर्थ सदा शिव को नमस्कार करके कहे कि॥६६॥ किस गुण को कौन धारण करें ? उसके बाद सदाशिव ने कहा कर्मशक्ति तथा ज्ञान मुखरत्व से ही नष्ट हो जाते हैं ॥६७॥ ब्रह्मा तो अल्पायु प्रतीत होते हैं, इनका जीवन मनुओं से ही सम्बद्ध है । मैं ब्रह्माण्ड की मालाओं से भूषित हूँ और ब्रह्मा की रक्षा करता हूँ । रजोगुण को धारण करके तुम मुझे नहीं जानते हो । विष्णु के ब्रह्मा से बल तथा आयु दोनों अधिक हैं ॥६८-६९॥ ब्रह्माण्ड की माला को धारण करने में तो महेश और मेरा ही सामर्थ्य है । विष्णु की आयु मेरे चार निःश्वास मात्र है ॥७०॥ ब्रह्मा से अधिक बल सम्पन्न होने के कारण श्रीहरि सत्त्वगुण को धारण करें । वे मुझको सदैव जानते हैं वे मुझको कभी भी नहीं भूलते हैं ॥७१॥ इनकी पूजा केवल सात्त्विकी होती है, कभी भी राजसी और तामसी नहीं होती है । अजवक्त्र के द्वारा अपमनित होने पर भी शान्त रहने वाले शिव सत्त्वगुण सम्पन्न हैं ॥७२॥ अतएव कृष्णवर्ण को तमोगुण को महेश धारण करें । प्राचीनकाल में इन्होंने सत्त्वगुण, रजोगुण, तथा तमोगुण तीनों गुणों को धारण किया था अतएव इनकी पूजा तीनों प्रकार की होती है । तमोगुण से युक्त रजोगुण भयङ्कर होता है ॥७३-७४॥ अतएव शङ्करजी की भयङ्कर पूजा भी गति प्रदान करने वाली होती है । तमोगुण से युक्त रजोगुण शास्त्र का प्रवर्तन करने में समर्थ है ॥७५॥ अतएव शङ्करजी की पूजा यदि विच्छिन्न भी हो जाय तो वह फल प्रदान करने वाली होती है । सत्त्वगुण से संयुक्त होकर सत्त्वगुण मिश्रगुण का प्रवर्तक होता है ॥७६॥ लोक कल्याणकारी शङ्करजी की मिश्र पूजा फलद नहीं होती है । शङ्करजी की जिस किसी

यादृशं तादृशं वापि नियमेनार्चनं विभोः। शङ्करस्याशु फलदं यादृशस्यापि देहिनः ॥७८॥

शम्भुरुवाच

एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं विधानं भस्मनोऽनघ ।। वक्तृश्रोतृजनानां च समस्ताघविनाशनम् ॥७९॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शिवराघवसंवादे भस्मोत्पत्तिविधानं
नामाष्टोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

* * *

एक सौ नवाँ अध्याय

शम्भुरुवाच

अत्र ते कीर्तयिस्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।
श्रुत्वा यां पाप धर्मात्मा शिवभक्तिमनुत्तमाम् ॥१॥
इक्ष्वाकुर्नाम विप्रेन्द्रः पुरा ह्यासीन्महामतिः। बहुशास्त्रप्रवीणश्च नीतिशास्त्रविशारदः॥२॥
न यष्टा न च दाता च न देवानां च पूजकः ।
न चाध्यापयिता वेदं न व्याख्याता श्रुतस्य च ॥३॥
न पुराणेतिहासानां श्रुतीनामागमस्य वा। यत्नाद्भोक्ता तथा देहसंस्कारैकप्रवर्तकः ॥४॥
तादृशस्य द्विजस्याथ समालक्षा (क्ष्या) युरत्यगात् ।
लक्षान्तरे तथैकस्मिन्वत्सरे मासि पञ्चमे ॥५॥

भी प्रकार नियमतः की जाने वाली पूजा शीघ्र ही फल प्रदान करने वाली मानी जाती है । शम्भु ने कहा— हे अनघ ! इस तरह मैंने संक्षेप में भस्म के विधान का वर्णन किया है ॥७७-७८॥ यह वक्ताओं और श्रोताओं के समस्त फलों को प्रदान करने वाला है ॥७९॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शिवराघव संवादान्तर्गत भस्म के विधान तथा उत्पत्ति का वर्णन नामक एक सौ आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुअ ॥१०८॥

* * *

भस्म माहात्म्य

शम्भु मुनि ने कहा— अब मैं आपको उस पापविनाशिनी कथा को सुना रहा हूँ जिसको सुनकर धर्मात्मा विप्र ने सर्वोत्तम भक्ति को प्राप्त किया ॥१॥ एक महाविद्वान् और महाबुद्धिमान् ईक्ष्वाकु नामक ब्राह्मण थे । वे अनेक शास्त्रों में निपुण तथा नीतिशास्त्र में विशारद थे ॥२॥ वे न तो यज्ञ किए न दान किए और न तो देवताओं की पूजा ही किए । वे वेदों का न तो अध्ययन किए और अपने ज्ञान की व्याख्या किए ॥३॥ उन्होंने पुराणों, इतिहासों, श्रुतियो, आगमों की भी उन्होंने व्याख्या नहीं की । वे बहुत अच्छा भोजन करते थे और अपने शरीर को सजाये रखते थे ॥४॥ इस तरह के ब्राह्मण की एक लाख वर्षो

तृतीयदिवसे रात्र्यां पुराणं श्रुतवानिदम् । स्वसम्पादितवित्तस्य येन दानं न वै कृतम् ॥६॥
दिने दिने भुज्यमानं निःसारं स्यात्क्रमेण हि ।
वर्षाण्येव च तावन्ति नरके पच्यते ध्रुवम् ॥७॥
कृमियोनिसहस्रं च अनुभूय ततः परम्। दरिद्रो व्याधितोऽबन्धुर्दुष्टभार्यो बहुप्रजाः॥८॥
दिने दिने भिक्षितेन याचितेन च जीवनम् । यन्न क्वापि च बीजानां मग्नानामथ मार्गणात् ॥९॥
लब्धेन जीवनं कर्म भृत्यानामथ जीवनम्। मध्ये श्रोत्रविहीनश्च नेत्रहीनः स्खलन्मलः॥१०॥
एवं पुराणं श्रुत्वाऽसाविक्ष्वाकुर्भृशदुःखितः ।
मनसाऽचिन्तयच्चेदं स्मारं स्मारं द्विजाधमः ॥११॥
रूपपुष्पैर्माहिष्मयी दुर्गाऽपि फलवर्जिता। तथा पुराणरहिता विद्या नो गतिदर्शिनी ॥१२॥
बहुशास्त्रं समभ्यस्य बहुवेदान्सविस्तरान्। पुंसोऽश्रुतपुराणस्य सम्यग्याति न दर्शनम् ॥१३॥

शम्भुरुवाच

एवं चिन्तयतस्तस्य अकालमरणं त्वभूत् । यमलोकं गतश्चाथ यमेन परिभाषितः ॥१४॥

यम उवाच

अनेकपापयुक्तोऽसि पुण्येनैव महत्तव। न वेदाध्यापनात्प्राप्तं पापं च विदितं तव॥१५॥
कोटिवर्षाणि नरके तव स्थितिरिति द्विज ! ।
आयुरस्ति तवात्यल्पं गम्यतां पौर्विकीं तनुम् ॥१६॥
कुरु पुण्यं हितं दानं देवतापूजनं जपम्। साङ्गमध्यापनं विप्र भोजनं भस्मधारणम् ॥१७॥

की आयु बीत गयी । दूसरे लाख के पहले वर्ष के पाञ्चवें महीने के तीसरे दिन रात्रि में वे पुराण में सुने कि जो अपने द्वारा अर्जित धन का दान नहीं करता है उसके द्वारा ॥६॥ प्रतिदिन खाया जाता हुआ वह धन व्यर्थ हो जाता है । वह अपनी आयु के दिनों की संख्या के बराबर ही वर्षों तक नरकों में पकाया जाता है ॥७। वह एक हजार क्रिमियों की योनियों को भोगकर उसके बाद रोगी और दरिद्र होता है । उसका कोई बान्धव नहीं होता है । उसकी पत्नी दुष्ट स्वभाव वाली होती है । उसकी अनेक सन्तानें होतीं हैं ॥८॥ वह प्रतिदिन भीख माँगकर अथवा याचना करके अपना जीवन चलाता है । वह अपने पूरे जीवन में दूसरों का नौकर बन कर रहता है । बीच में वह अन्धा और बहरा होकर मल में गिरता रहता है ॥९-१०॥ इस तरह से पुराण को सुनकर वे ईक्ष्वाकु अत्यन्त दुःखी हुए । इस बात को बार-बार याद करके वह मन में ही चिन्ता करने लगे वे सोचे कि दुर्गा भी फल प्रदान करने वाली नहीं हैं, वे भी रूप पुष्पों तथा भैंस स्वरूपिणी हैं । उसी तरह पुराण से रहित विद्या भी गति प्रदान करने वाली नहीं हैं ॥११-१२॥ अनेक शास्त्रों का अच्छी तरह से अभ्यास करके तथा विस्तार के साथ वेदों का विस्तार करके भी जिसने पुराणों का श्रवण नहीं किया है उसको सम्यक् ज्ञान नहीं होता है ॥१३॥ **शम्भु ने कहा—** इस प्रकार से चिन्ता करते हुए उस ब्राह्मण की आकाल मृत्यु हो गयी । जब वह यमलोक में गया तो यमराज ने उससे कहा ॥१४॥ **यम ने कहा—** तुम बहुत अधिक पाप किए हो, तुमने पुण्य बिल्कुल नहीं किया है । तुमने वेदाध्ययन करके पुण्य नहीं प्राप्त किया है और तुम्हारा पाप तो विख्यात हैं ॥१५॥ हे ब्राह्मण ! तुमको करोड़ वर्षो तक नरक में रहना होगा । अभी तुम्हारी बहुत थोड़ी आयु बची हुयी है, तुम अपने पहले वाले शरीर में

भज विश्वेश्वरं देवं देवदेवमुमापतिम् । तस्य प्रयत्नमात्रेण मम लोकं न गच्छसि॥१८॥
यत्किञ्चित्प्रत्यहं पापिन्पुराणं शृणु सादरम् । ततस्तच्छ्रवणादेव नेक्षसे मम यातनाः ॥१९॥
यमस्य वचनं श्रुत्वा ब्राह्मणः स्वां ययौ तनुम् ।
अथेशपूजनकृते यत्नमास्थाय सद्द्विजः ॥२०॥
अगमन्मुनिवर्यं तु जाबालिं शिवपूजकम् । तपःस्वाध्यायसम्पन्नं श्रुतिस्मृतिविवेचकम् ॥२१॥
पुराणतत्त्ववेत्तारं लक्षशिष्यसमावृतम् । जराशिथिलसर्वाङ्गं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥२२॥
द्रष्टुकामो ययौ शैलं सुन्दरं चारु कन्दरम् । नानाविहगसम्पूर्णं नानापुष्पलतावृतम् ॥२३॥
सर्वर्तुकुसुपोपेतं नानागन्धोपशोभितम् । किन्नराणां च मिथुनैर्गीतंपूर्णमहागुहम् ॥२४॥
अनेकरूपलावण्यवनितोषितपादपम् । लम्बमानविचित्राभिस्ताभिः शोभितपादपम् ॥२५॥
रतिश्रमप्रसुप्तानां बोधनादितषट्पदम् । कूजन्ति च पिकाः कामं वियुक्तानां युजे किल॥२६॥
नानामुनिगणाकीर्णं प्रशान्तमृगचारिणम् । अप्सरोगणसङ्कीर्णं गन्धर्वगणसेवितम् ॥२७॥
नानासिद्धमुखोद्धुतगीतपूर्णवनान्तरम् । विचित्रफलसम्पूर्णं नानादेवालयान्वितम् ॥२८॥
प्रासादशतसम्बाधं नानागृहसमन्वितम् । सिंहाननैर्गजमुखैरुलूकवदनैरथ ॥२९॥
अमुखैर्विमुखैरुग्रैरर्द्धवक्त्रैर्मृगीमुखैः । रुरुजन्तुकगोधाऽहिवानरर्क्षमुखैरपि ॥३०॥

चले जाओ ॥१६॥ जाकर पुण्य करो, दूसरों का कल्याण करो, दान करो, देवता का पूजन करो, जप करो। साङ्गवेदाध्ययन करो, ब्राह्मणों को भोजन कराओ और भस्म धारण करो ॥१७॥ देवताओं के आराध्य पार्वती पति का भजन करो । इसका प्रयत्न करने मात्र से तुम मेरे लोक में नहीं आओगे ॥१८॥ हे पापी! प्रतिदिन थोड़ा सा ही कही पुराण का आदर पूर्वक अवश्य श्रवण करो उसका श्रवण करने मात्र से ही तुमको यमयातना नहीं सहनी पड़ेगी ॥१९॥ यम की वाणी को सुनकर वह ब्राह्मण अपने पहले के शरीर में चला गया । उसके बाद शङ्करजे की पूजा करने के लिए प्रयास करने वाला वह ब्राह्मण शिवजी की पूजा करने वाले जाबालि मुनि के आश्रम में गया । वे मुनि, श्रुतियों तथा स्मृतियों के ज्ञान से सम्पन्न तपस्वी थे ॥२०-२१॥ वे पुराण तत्त्व के ज्ञाता थे, उनके साथ उनके एक लाख शिष्य रहते थे । उनका सारा शरीर बुढ़ापे के कारण शिथिल हो गया था और वे वेदों तथा वेदाङ्गों में पारङ्गत थे ॥२२॥ इक्ष्वाकु सुन्दर कन्दराओं वाले मन्दराचल पर्वत पर उन्हें देखने के लिए गये । वह पर्वत अनेक प्रकार के पक्षियों से भरा था । तथा अनेक प्रकार की पुष्पतलाओं से घिरा था ॥२३॥ सभी ऋतुओं के पुष्पों से युक्त अनेक प्रकार की सुगन्धियों से युक्त था । उसकी बहुत बड़ी गुफा किन्नरों के गीतों की ध्वनि से पूर्ण थी ॥२४॥ अनेक प्रकार के रूप तथा सौन्दर्य से युक्त वनिताओं से वहाँ के वृक्ष सुसेवित थे । झूलती हुयी उन विचित्र वनिताओं से वहाँ के वृक्ष सुशोभित होते थे ॥२५॥ रतिकेलि की श्रान्ति के कारण सोयी हुयी वनिताओं को भौरे अपनी गुञ्जन से जगा रहे थे । वह बहुत अधिक पिक पक्षी वियुक्त हुए लोगों को मिलाने के लिए मानो बोल रहे थे ॥२६॥ वहाँ पर अनेक मुनिगण थे और अत्यनत शान्त मृगचर रहते थे । वहाँ पर अप्सराओं का तथा गन्धर्वों का समूह भरा हुआ था ॥२७॥ अनेक सिद्धों के मुख से उद्भूत गीतों की ध्वनि से बन का भीतरी भाग ध्वनित था । विचित्र प्रकार के फलों से परिपूर्ण वहाँ पर अनेक देवालय थे ॥२८॥ अनेक गृहों वाले वहाँ अनेक प्रासाद (भवन) बने हुए थे । वहाँ पर विद्यमान शिवगणों में से कुछ के मुख

व्याघ्रवृश्चिकभल्लोष्ट्रश्वानगर्दभतुण्डकैः । समस्तजीववदनसदृशास्यैर्गणेश्वरैः ॥३१॥
वल्लीमुखैर्वृक्षमुखैः शिलावक्त्रैरयोमुखैः । शङ्खमुक्तादिजलजवदनैरुपशोभितम् ॥३२॥
अधिकाङ्गैरनङ्गैश्च जटिलैः शिखिमुण्डितैः । पवित्रवक्त्रैर्द्विषड्वक्त्रैस्त्रिविग्रहमुखैरपि ॥३३॥
घटास्यैः शूर्पवदनकर्णपादमुखैरपि । घण्टामुखैर्वेणुमुखैःकिङ्किणीवदनैरपि ॥३४॥
यादृग्वस्तु जगत्यस्ति तादृशास्यैरयोमुखैः । कैश्चिन्निभृतकन्दर्परूपलावण्यकोमलैः ॥३५॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशैश्चन्द्रकोटिसमप्रभैः । नानावर्णैर्विश्वमुखैर्विश्वरूपैश्चतुर्मुखैः ॥३६॥
द्विमुखैः पञ्चवक्त्रैश्च त्रिमुखैः षण्मुखैरपि । एकानेकमुखैः शान्तैः सर्वदा सुखिभिर्युतम् ॥३७॥
नानाभोगसमृद्धैश्च रतिकामसमैरपि । लक्ष्मीनारायणमुखैरुमेशसमविग्रहैः ॥३८॥
नानारूपधरेश्चान्यैः सेवितं मन्दराचलम् । धेनवो यत्र वेदाश्च मीमांसावत्ससंयुताः ॥३९॥
धर्मादयः सवर्ष्माणः पुराणानि च कर्मणा । स्मृतीतिहासजातानि आममाश्च शरीरिणः ॥४०॥
स्थिताश्च मन्दरे यत्र सशैलः पापनाशनः । तस्य मध्ये महापुण्यं पुरं परमशोभितम् ॥४१॥

सिंह के मुख के समान थे, कुछ के हाथी के मुख के समान मुख थे । कुछ के उल्लू के समान मुख थे॥२९॥ कुछ का मुँह ही नहीं था, कुछ का विरूप मुख था, कुछ के उग्र मुख थे तो कुछ के आधे मुख थे । कुछ के मुख मृगियों के समान था । कितनों का मुख रुरु के समान था, कुछ का मुख गोधा (गोह) के समान था, कुछ का मुख वानर के समान तथा कुछ का मुख ऋक्ष के समान था ॥३०॥ व्याघ्र, वृश्चिक, भालू, ऊँट, कुक्कुर तथा गर्दभ आदि के समान मुख वाले समस्त जीवों के मुख के समान मुख वाले गणेश्वरों तथा लता और वृक्ष के समान मुख वाले, शिला के समान मुख वाले लोहे के समान मुख वाले गणेश्वरों से वह पर्वत सुशोभित था । उनमें से किसी का मुख कमल के समान था, किसी का मुख मोती के समान था, किसी का मुख शङ्ख के समान था । कुछ के अधिक अङ्ग थे तो कुछ के अङ्ग थे ही नहीं । कुछ जटाधारी थे, तो कुछ शिखाधारी थे और कुछ मुण्डित थे ॥३१-३२॥ कुछ के मुख पक्षी के समान थे, कुछ के बारह मुख थे तो कुछ के तीन मुख और तीन शरीर थे । कुछ के मुँह घण्टा के समान थे, कुछ के मुख कान और पैर भी शूर्प (सूप) के समान थे । संसार में जितने प्रकार के वस्तु हैं, उतने प्रकार के उनके मुख थे ॥३३-३४॥ कुछों का रूप तथा सौन्दर्य कामदेव के समान था तथा उनका शरीर कोमल था । कुछ करोड़ों सूर्य के समान देदीप्यमान थे तो कुछ की कान्ति करोड़ों चन्द्रमा के समान आह्लादक थी ॥३५॥ उनके अनेक प्रकार के वर्ण थे, तथा संसार के सभी मुखों के समान उनके मुख थे। संसार के सभी रूपों के समान उनके रूप थे । कुछ के चार मुख थे, कुछ के दो मुख थे, कुछ के पाँच मुख थे, कुछ के छह मुख थे ॥३६-३७॥ किसी का एक मुख था तो किसी के अनेक मुख थे । वे सदा शान्त तथा सुखी रहने वाले थे । कुछ अनेक प्रकार के भोगों से सम्पन्न तथा रति एवं काम के समान भी थे ॥३८॥ कुछ के मुख लक्ष्मीनारायण के समान थे और शरीर शङ्करजी के समान था । इस तरह से अनेक प्रकार के रूपों वाले गणेश्वरों के द्वारा मन्दराचल सुसेवित था ॥३९॥ वहाँपर वेद ही गौ रूप थे और मीमांसा ही उनके बछड़े थे । शरीरधारी धर्म आदि, सभी पुराण तथा कर्मों के साथ स्मृतियाँ, इतिहास समूह तथा आगम भी शरीर धारण करके वहाँ विद्यमान थे । इस प्रकार का मन्दराचल पर्वत पापों का विनाश करने वाला था ॥४०॥ उसके बीच में अत्यन्त अत्यन्त सुशोभित नगर था । वह अनेक बावली, तटाक,

वापीतडागोपवनप्रासादशतशोभितम् । सप्त प्राकारपरिखं रत्नाट्टालकसंयुतम् ॥४२॥
गोपुरैर्नवभिर्युक्तं विचित्रगृहसंयुतम् । यस्य चाप्रतिमं तेज उष्णाशीतादिवर्जितम् ॥४३॥
तन्मध्ये नगरी पुण्या तन्मध्ये च सभा शुभा ।
तस्यां भद्रासनं मध्ये वेदपादविचित्रितम् ॥४४॥
सर्वोपनिषदाक्लृप्तं पादपीठं सुशोभनम् । पुराणान्यागमास्तस्यस्वस्तीति शिवपादयोः ॥४५॥
तत्रासीनो महायोगी गोक्षीरसदृशाकृतिः । मन्दस्मितसुचार्वास्यो द्व्यष्टवर्षवयाः प्रभुः ॥४६॥
दधानं उरसा मालां मणिरुद्राक्षकल्पिताम् । विभ्राणं उपवीतं च कर्णिकारसमद्युतिः ॥४७॥
सुरत्नकुण्डलो देवः किरीटकनकाम्बरः । नानाभूषणसंयुक्तो नानागन्धविलेपनः ॥४८॥
वामाङ्कन्यस्तगिरिजो वीक्षमाणस्तदाननम् । मुग्धां च सुमुखीं बालां नवयौवनशोभिताम् ॥४९॥
भूषितां चारुसर्वाङ्गीं बिभ्रतीं कनकाम्बुजम् ।
आलिङ्ग्य वामेन करेण देवीं दक्षेण तस्या मुखमुन्नमय्य ।
स्पृष्ट्वा शिरो वामकरेण तस्या दक्षेण कुर्वंस्तिलकं च देवः ॥५०॥
भक्तिर्वीजयते देवं प्रणवव्यजनेन च । पूजाकान्ताऽपि कुसुमैर्मालां देवाय बिभ्रती ॥५१॥
ज्ञप्तिर्विरक्तिर्वनितेबिभ्रत्यौ योगचामरे । समाधिः कार्यकर्ताऽस्य धारणा योषिदस्य च ॥५२॥
यमाश्च नियमाश्चैव किङ्करास्तस्य कीर्तिताः । प्राणायामः पुरोधास्तु प्रत्याहारः सुवर्णधृत् ॥५३॥

उपवन तथा महलों से सुशोभित तथा ॥४१॥ वह सात परकोटों और परखाओं से सुशोभित था । वहाँ की अट्टालिकाएँ रत्नमयी थीं । उस नगर के नव गोपुर (सिंहद्वार) थे । उसमे विद्यमान गृह विचित्र प्रकार के थे ॥४२॥ उस नगर का अप्रतिम तेज उष्ण तथा शीत दोनों प्रकारों से रहित था । उस नगर के बीच में सुन्दर नगरी थी और उस नगरी के बीच में सुन्दर सभा मण्डप था ॥४३॥ उस सभा मण्डप के बीच में सिंहासन था । वेद ही उस सिंहासन के चारों पैर थे । उसकी चरण चौकी सभी उपनिषदों से सम्पन्न थी इसके कारण वह सिंहासन विचित्र था ॥४४॥ शिवजी के चरणों के स्वास्तिक चिह्न पुराण और आगम स्वरूप थे । उस पर महायोगी शङ्करजी बैठे थे उनका आकार गोदुग्ध के समान था ॥४५॥ उनका मन्द मुसुकान से मुख सुशोभित था, तथा उनकी सोलह वर्ष की अवस्था थी । वे अपने वक्षःस्थल पर माला धारण किए हुए थे। वह माला मणियों तथा रुद्राक्ष से बनी हुयी थी ॥४६॥ वे कर्णिकार पुष्प के समान कान्ति वाले पीला यज्ञोपवीत धारण किए हुए थे । उनका कुण्डल सुन्दर रत्न से निर्मित था और वे सुवर्ण निर्मित किरीट (मुकुट) तथा वस्त्र धारण किए थे ॥४७॥ वे अनेक प्रकार के भूषणों को धारण किए थे तथा अनेक प्रकार के सुगन्धित लेपों को लगाये थे । वे अपने बायें भाग में पार्वतीजी को बैठाकर उनके मुख को देख रहे थे ॥४८॥ मनोहर, सुन्दर मुख वाली नवीन जवानी से सुशोभित तथा समलंकृत बाला पार्वतीजी सर्वाङ्ग सुन्दरी थीं वह सुवर्ण कमल को धारण की थीं ॥४९॥ बायें हाथ से पार्वती देवी का आलिङ्गन करके दाहिने हाथ से उनके मुख को उठाकर, बायें हाथ से उनके शिर का स्पर्श करके शङ्करजी दाहिने हाथ से पार्वतीजी को तिलक कर रहे थे ॥५०॥ भक्ति देवी शङ्करजी को प्रणवाकार व्यजन से हवा कर रही थीं। पूजाकान्ता भी पुष्प निर्मित माला को शङ्करजी को पहना रही थी ॥५१॥ ज्ञप्ति तथा विरक्ति नाम की दो वनिताएँ योग चामर को धारण की हुयी थी । समाधि तथा धारणा नामक स्त्रयाँ इनके कार्य को करने वाली

ध्यानं च द्रविणाध्यक्षः सत्यं सेनापतिस्तथा ।
ब्रह्मप्रभृतिकीटान्ताः पशवस्तत्पतिः शिवः ॥५४॥
पशूनां पालको धर्मः स्यादधर्मश्च तस्करः। मायापाशेन ते बद्धा मोचनी काशिकामृतिः ॥५५॥
नानाविधाश्च प्रमदा देवदेवमुमापतिम्। एतादृशमुमानाथं कोटिजन्तुरनुस्मरेत् ॥५६॥
इष्टान्भोगानवाप्याथ शिवलोके महीयते। ब्रह्मविष्णुमहेन्द्राद्यास्तत्पुरद्वारपालकाः ॥५७॥
लक्ष्मीसरस्वतीदेव्यौ देहल्यर्च्चन उक्षितौ। नियुक्ते देवदेवस्य देवाश्च सुरयोषितः ॥५८॥
दास्यो देवाः समस्ताश्च दासा यस्य महात्मनः ।
एतादृशमहाशैलमिक्ष्वाकुः सन्ददर्श ह ॥५९॥
मुनिं प्रणम्य जाबालिमिदमाह वचस्तदा। गन्तुकामो महाशैलं शक्तोऽस्म्यस्मिन्न वा मुने !॥६०॥
ममायुरल्पं कथितं यमेन ज्ञानिना पुरा। नरकश्च बहुः प्रोक्तः कथं श्रेयो भविष्यति ॥६१॥

जाबालिरुवाच

मयाऽपि सर्वमेतत्ते ज्ञातं दिव्येन चक्षुषा। आयुर्दशदिनं ब्रह्मन्विद्वानपि न धर्मकृत् ॥६२॥
न तपस्तेह्यनभ्यासान्न च योगोऽल्पकामतः। न दानं द्रविणाभावादसामर्थ्यात्तिंथाऽर्हणा ॥६३॥
न यज्ञो न व्रतं पूर्तं न च पुण्यमनायुषः। न चाध्यापनतीर्थादिसेवाकालविरोधतः॥६४॥
तस्मात्तत्पापनाशाय प्रायश्चित्तं न विद्यते। गतिप्रदं तथा धर्मं गच्छ वा तिष्ठ वा मुने ॥६५॥

इक्ष्वाकुरुवाच

यावज्जीवं प्रतिज्ञाय क्रियते यो वृषो द्विज। तेन पापपरीहारो भविष्यति सुनिश्चितम् ॥६६॥

थीं ॥५२॥ यम तथा नियम शिवजी के किङ्कर बतलाये गये हैं । प्राणायाम ही उनका पुरोहित है और प्रत्याहार उनका सुवण धारक है ॥५३॥ ध्यान ही उनका द्रविणाध्यक्ष (धनाध्यक्ष) है तथा सत्य सेनापति का काम करता है । ब्रह्मा से लेकर एक कीट पर्यन्त पशु हैं और सदाशिव उनके पति हैं ॥५४॥ पशुओं का पालन करने वाला धर्म है और अधर्म चोर है । वे सब माया के पाश में बँधे है और काशी में मृत्यु का होना ही उन सबों को माया के बन्धन से छुड़ाने वाली है ॥५५॥ अनेक प्रकार की प्रमदाएँ देवाराध्य उमापति की पत्नी हैं । इस तरह के उमानाथ का करोड़ों जीवों के साथ स्मरण करना चाहिए ॥५६॥ ऐसा करने वाला उपासक इस लोक में अपने समस्त अभिप्रेत भोगों को प्राप्त करके अन्त में शिवलोक में पूजित होता है । ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र आदि उनके नगर के द्वारपाल हैं ॥५७॥ लक्ष्मीजी तथा सरस्वतीजी उनके द्वारा देहली तथा भूमि की पूजा करती हैं । ये सब देव देव शिवजी के कार्य में देवस्त्रियाँ लगायी गयी हैं॥५८॥ वे सब सदाशिव की दासियाँ हैं और सभी देव उनके दास हैं । इस तरह के उस महाशैल को ईक्ष्वाकु नामक ब्राह्मण ने देखा ॥५९॥ उन्होंने जाबालि मुनि को प्रणाम करके कहा— हे महामुने ! यदि हम इस महाशैल पर जाना चाहें तो जा सकते हैं कि नहीं ॥६०॥ ज्ञानी यम ने बतलाया है कि मेरी आयु अल्प हैं ॥६१॥ उन्होंने बहुत अधिक नरकों को बतलाया है मेरा कल्याण कैसे हो सकता है ? **जाबालि महर्षि ने कहा**— मैंने तुम्हारी इन सारी बातों को अपने ज्ञान नेत्र से जान लिया है ॥६२॥ हे ब्रह्मन् ! अब आपकी आयु दश दिन की बची हुयी है आपका न तो कोई पुण्य है और न आयु बची हैं ॥६३-६४॥ न तो आप ने अध्यापन किया है और न आपका तीर्थ सेवा का समय बचा है आपने तीर्थों का विरोध

तं ब्रूहि येन धर्मेण मम पापं प्रणश्यति । केन वा पुण्ययोगेन स्वर्गतिश्च भविष्यति॥६७॥
शरणं भव विप्रर्षे ! नरकादति बिभ्यतः। सर्वधर्मफलं प्राहुः शरणागतपालनम्॥६८॥

जाबालिरुवाच

सत्यं स्वल्पेन कालेन न तादृग्लभ्यते वृषः। अमृते त्वनृते शक्यं वक्तुं स्वप्नान्तरेष्वपि ॥६९॥
रहस्यमेकं किञ्चित्तु यस्य कस्यापि नोच्यते ॥७०॥

इक्ष्वाकुरुवाच

शरणं पालय मुने ! कालो मे निर्गमिष्यति ॥७१॥

जाबालिरुवाच

मम प्राणाधिकं विप्र रहस्यं श्रुतिचोदितम् । शिवलिङ्गार्चनं नामब्रह्मादिभिरनुष्ठितम्॥७२॥
समस्तपापशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्। भुक्तिमुक्तिप्रदं तस्माच्छिवपूजां समाचर ॥७३॥
नातिक्रामेद्यदि मुने शिवलिङ्गार्चनं शुभम् ।
यः शम्भुपूजां विच्छिन्द्यात्तेन च्छिन्नं हि ते शिरः ॥७४॥
वरं शूलविनिक्षेपो वरं शाल्मलिकर्षणम्। वरं प्राणपरित्यागो नैव पूजाव्यतिक्रमः ॥७५॥
वरं वह्निप्रपतनं वरं चाधःशिरःकृतम्। वरं स्वमलभुक्तिर्वा नेशपूजाव्यतिक्रमः ॥७६॥
अपूजयित्वा चेशानं योहि भुङ्क्ते नराधमः । पापानामन्नरूपाणां तस्य भोजनमुच्यते ॥७७॥

ही किया है । अतएव उस पाप का नाश करने का कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है ॥६५॥ अतएव सद्गति प्रदान करने वाला कोई धर्म भी नहीं है । अतएव आप चाहें तो रहें अथवा चले जायँ । **इक्ष्वाकु ने कहा**— जीवन पर्यन्त करने के लिए जिस धर्म की प्रतिज्ञा की जाती है उससे तो पाप का परिहार निश्चित रूप से होगा ही । आप उस धर्म को मुझे बतलायें जिससे कि मेरे पाप का नाश हो जाय ॥६६-६७॥ अथवा किस पुण्य के योग से मैं स्वर्ग में जा सकता हूँ । हे विप्रर्षे ! आप मेरी रक्षा करें, मुझे नरक से बहुत डर लगता है । शरणागत जीव की रक्षा करने को ही सभी धर्मों का फल बतलाया गया है । **जाबालि ने कहा**— यह तो सत्य है कि अत्यन्त थोड़े दिनों में उस प्रकार के पुण्य को प्राप्त किया जा सकता है ॥६८-६९॥ बिना मरे तो स्वप्नों में भी मिथ्या कहा जा सकता है । किन्तु रहस्यमय एक ऐसी वस्तु है जिसको सबों को नहीं बतलाया जा सकता है ॥७०॥ **इक्ष्वाकु ने कहा**— हे मुने ! मैं शरणागत हूँ, आप मेरी रक्षा करें नहीं तो मेरा समय बीत जायेगा । **महर्षि जाबालि ने कहा**— हे विप्र ! श्रुत्युक्त रहस्य मेरे प्राणों से भी मुझे अधिक प्रिय है । उसका नाम शिवलिङ्ग की पूजा है उसका अनुष्ठान ब्रह्मा आदि ने भी किया है। वह सभी पापों को विनष्ट करने वाला है तथा सभी उपद्रवों को नष्ट करने वाला है ॥७१-७२॥ वह भोग तथा मोक्ष दोनों को प्रदान करने वाला है, अतएव तुम शिवलिङ्ग की पूजा करो । हे मुने ! शिवलिङ्ग की पूजा का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए ॥७३॥ जो शिव की पूजा का विच्छेद करता है उसको मेरा शिर काटने का पाप लगे । शूल का विनिक्षेप ठीक है और सेमर के काँटों पर घसीटा जाना ठीक है, प्राणों का परित्याग कर देना भी अच्छा है किन्तु शिव की पूजा में किसी भी प्रकार का व्यतिक्रम नहीं करना चाहिए। अग्नि में गिर कर जल जाना ठीक है, नीचे शिर करके रहना भी ठीक हैं ॥७४-७५॥ अपने ही मल को खाना भी ठीक है किन्तु शिवजी की पूजा में किसी भी प्रकार का व्यतिक्रम करना ठीक नहीं हैं । जो अधम

अनुच्चार्य पदं शम्भोर्भुङ्क्ते यदि च खादति ।
शिवेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते ॥७८॥
भस्मीभवन्ति तस्याशु महापातककोटयः । शिवं प्रदक्षिणीकृत्य यो नमस्याति मानवः॥७९॥
भूमेः प्रदक्षिणं कृत्वा यत्तत्पुण्यमवाप्नुयात्। प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा नमस्कारं च पञ्चधा ॥८०॥
पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा नत्वा मुच्येत पातकैः ।
सर्ववाद्यानि यः कुर्यात्कारयेद्वा शिवालये ॥८१॥
बलेन महता युक्तो वेदसेव्यत्र जायते । श्रावयेद्यः पुराणानि देवदेवं त्रिलोचनम्॥८२॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो वसेच्छिवपुरे कृती। तं नित्यमादरेणोशो वक्ति वाक्यं प्रियं सदा ॥८३॥
एतत्संक्षेपतः प्रोक्तमीशपूजनमुत्तमम्। अल्पायुश्च भवान्विप्र शिवपूजनमाचर ॥८४॥
त्रिकालं वा द्विकालं वा एककालमथापि वा ।
यामं यामार्धमथवा शिवपूजनमाचर ॥८५॥
वानप्रस्थाश्रमो भूत्वा वानप्रस्थकृताश्रयः। वानप्रस्थप्रसूनैश्च प्रातः पूजय शङ्करम्॥८६॥
श्रीफलैः शतपत्रैश्च पद्मसौगन्धिकैरपि । नीपैर्जपाभिः पुन्नागैः करवीरैश्च पाटलैः ॥८७॥
तुलस्या च रविदलैरपराजितया तथा । अपामार्गदलै रुद्रजटादमनकेन च॥८८॥
सर्वैरेभिः समफलैर्बिल्वपत्रैश्च धूर्तकैः । द्रोणैः शिरीषैः शक्रैश्च दूर्वया कोरकैरपि॥८९॥
नन्द्यावर्तैरक्षतैश्च तिलमिश्रैश्च केवलैः। अन्यैरपि यथाशक्तिप्रातः सम्पूजयेच्छिवम् ॥९०॥

मनुष्य शिवजी की पूजा किए बिना ही भोजन करता है ॥७६॥ वह अन्न रूपी पापों को ही खाता है । यदि कोई शम्भु का नामोच्चारण किए बिना ही भोजन करता है अथवा खाता है ॥७७॥ जिसकी वाणी में शिव यह मङ्गलमय नाम आता रहता है, उसके करोड़ों महापाप शीघ्र ही भस्म हो जाते हैं ॥७८॥ जो मनुष्य शिवजी की प्रदक्षिणा करके उनको नमस्कार करता है, उसको उसकी पुण्य की प्राप्ति होती है, जिस पुण्य की प्राप्ति पृथिवी की परिक्रमा करने से होती है ॥७९॥ तीन बार शिवजी की परिक्रमा करके पाँच बार नमस्कार करे, फिर प्रदक्षिणा करके नमस्कार करे ऐसा करने वाला पापों से मुक्त हो जाता है । जो मनुष्य शिवजी के मन्दिर में सभी प्रकार के वाद्यों को बजाता है अथवा बजवाता है, वह महान् बल से सम्पन्न होकर इस लोक में वेद की सेवा करने वाला होता है ॥८०-८१॥ जो देवाराध्य त्रिलोचन शिवजी को पुराणों को सुनाता है वह सभी पापों से मुक्त होकर शिवलोक में निवास करता है ॥८२॥ उससे शिवजी अत्यन्त आदर के साथ प्रिय वाक्य बोलते हैं । **जाबालि महर्षि ने कहा—** इस तरह से मैंने तुमको संक्षेप में शिवजी की उत्तम पूजा को बतलायी ॥८३॥ हे विप्र ! तुम अल्पायु होकर भी शिवजी की पूजा करो। तुम शिवजी की त्रिकाल पूजा करो या द्विकाल पूजा करो या एक काल पूजा करो ॥८४॥ अथवा एक प्रहर तक या आधा प्रहर तक शिवजी की पूजा करो । तुम वानप्रस्थाश्रम को अपनाकर बानप्रस्थी हो जाओ ॥८५॥ बानप्रस्थ पुष्पों से ही प्रातःकाल शङ्करजी की पूजा करो श्रीफलों से अथवा शतपत्र सौगन्धिक कमलों से॥८६॥ कदम्ब पुष्पों से जया पुष्पों, पुन्नाग पुष्पों से, करवीर पुष्पों से, या गुलाब के पुष्पों से, तुलसी से या रविपत्रों से या अपराजिता से अथवा अपमार्ग पत्रों से, या जटा मासी से या दावने से, पूजा करो। इन सबों का एक समान फल है । बिल्वपत्र तथा धत्तूर से पूजा करो ॥८७-८८॥ द्रोण पुष्प से, शिरीष

कर्णिकारैश्च सौवर्णदूर्वयापि शिवार्चनम् । मुकुलैर्नार्चयेद्देवं चम्पकैर्जलजं बिना ॥९१॥
जलजानां च सर्वेषां पत्राणामक्षतस्य च । कुशपुष्पस्य रजतसुवर्णकृतयोरपि॥९२॥
अन्यत्कृत्वा यथा यत्तु तैलपक्वं भवेन्नृप । न तत्पर्युषितं प्रोक्तमपूपादि गमिष्यति ॥९३॥
उक्षितं यत्फलायुक्तं तैलक्षाराम्लजीरकैः । जले तत्प्रोक्षितं मूलफलशाकादिकं नृप ! ॥९४॥
न च पर्युषितं प्रोक्तं गङ्गातोयं च सागरम् । महानदीजलं सर्वं केदारजलमेव च ॥९५॥
ह्रदरूपेण यत्तीर्थं कूपतीर्थेन बाडव । तडागवापीसरसां कूपेनापां च यद्भवेत् ॥९६॥
तत्तीर्थयोग्यं सर्वं च न च पर्युषितं भवेत् । न रात्रौ जलमाहार्य दिवा सम्पादयेज्जलम्॥९७॥
ससैकतं तथा धार्यं न च पर्युषितं हि तत् ।
एवं विदित्वा पूजां त्वं शिवलिङ्गे समाचर ॥९८॥

शम्भुरुवाच

एवमुक्तोऽथ मुनिना इक्ष्वाकुर्ब्राह्मणप्रियः । शिवपूजापरो भूत्वा दिनाष्टकमतिष्ठत ॥९९॥
नवमेऽथ दिने प्राप्ते प्रातः काले कृतार्चनः ।
मरणावसरे प्राप्ते शिवपूजां विधाय सः ॥१००॥
स्वान्प्राणानुपहाराय तत्याजैव महेशितुः । मृतं तमथ विज्ञाय यमदूता समागताः ॥१०१॥
यमलोकप्रापका ये यत्नमास्थाय तस्थिरे । शैवाश्चापि समायाता दूतावह्निमुखादयः ॥१०२॥
तेषामन्योन्यवादोऽभून्मामको मामकस्त्विति । अथ यामः पाशपाणिःशिवदूतमथार्दयत्॥१०३॥

पुष्पों से, शक्ति से या दूर्वा से तथा कलियों से, नंद्यावर्त से तिल मिश्रित अक्षतों से या केवल अक्षतों से शिवजी की पूजा करो ॥८९॥ इसके अतिरिक्त अपनी शक्ति के अनुसार प्रातःकाल शिवजी की पूजा करे। कर्णिकार तथा सौवर्ण दूर्वा से भी शिवजी की अर्चा करो ॥९०॥ कमल के बिना चम्पा की कलियों से शिवजी की पूजा नहीं करनी चाहिए । कमल के दलों से पूजा करे, बिना कटे हुए कुश के पुष्पों से पूजा करे, सुवर्ण तथा चाँदी के पात्र में रखे गये तथा तेल में पकाये गये पूआ आदि वासी नहीं होते हैं । फल तेल खटाई तथा जीरे से छौंकी गयी वस्तु भी वासी नहीं होती है । जल में धोए गये मूल, फल शाक आदि भी वासी नहीं होते हैं । गङ्गा तथा सागर का जल भी वासी नहीं होता है ॥९१-९४॥ सभी महानदियों का जल और केदार तीर्थ का जल, कुण्ड रूपी जो तीर्थ हैं, तथा कूएँ का जल भी वासी नहीं होता है ॥९५॥ तटाक, बाबली तथा सरोवर का भी जल तथा कुओं का जली भी वासी नहीं होता है क्योंकि ये सबके सब तीर्थ के जल माने जाते हैं ॥९६॥ रात्रि में जल नहीं लाना चाहिए, दिन में ही जल एकत्रित कर लेना चाहिए । उसे बालू के साथ लाना चाहिए वह वासी नहीं होता है ॥९७॥ इन सारी बातों को जानकर तुम शिवलिङ्ग की पूजा करो । **शम्भु ने कहा—** इस तरह से मुनि के द्वारा कहे जाने पर ब्राह्मण ईक्ष्वाकु ॥९८॥ शिवजी की पूजा में ही लगे रहकर आठ को बिता दिये । नवें दिन उन्होंने प्रातःकाल पूजा की ॥९९॥ जब मृत्यु की बेला आयी तो शिवजी की पूजा करके वह अपने प्राणों को शङ्करजी के उपहार के रूप में परित्याग कर दिये ॥१००॥ उसको मरा हुआ जानकर उसको लेने के लिए यम के दूत आये । उसको यमलोक में पहुँचाने के लिए वे सब प्रयास करने लगे ॥१०१॥ उसी समय शिवजी के भी दूत बह्निमुख आदि आये । दोनों में विवाद होने लगा । दोनों कहते थे कि यह मेरा है,

अथ वह्निमुखः क्रुद्धो यमदूतशतं ततः। महाकायस्तथा भूत्वा गृहीत्वा च करेण तत्॥१०४॥
शिरांसि च तथैकेनापीड्य चिच्छेदशष्पवत्। मारयित्वा ततो दूतानादायेक्ष्वाकुमभ्यगात् ॥१०५॥
निवेदयामास च तं वीरभद्राय धीमते। स चापि शङ्करायाथ तं प्राह च महेश्वरः ॥१०६॥
त्वयाष्टदिनपूजैव कृता कृष्णादिने दिने। त्वमनिन्दः पुरा मां च लिङ्गं शिश्नाग्रमित्युत॥१०७॥
तेनैव पापयोगेन शिश्नवक्त्रो भविष्यसि। शिश्नाग्रे विवरं चक्रं जिह्वानासादिवर्जितः ॥१०८॥
पूर्वं मन्नामवक्तृत्वाद्वक्ता चापि भविष्यसि। अथेशवचनात्सोऽपि तथाभूतोऽभवत्क्षणात् ॥१०९॥

शम्भुरुवाच

य इदं शृणुयान्नित्यं पुराणाख्यानमुत्तमम्। विमुक्तपापबन्धश्च शिवभक्तो भविष्यति ॥११०॥
स याति च शिवस्थाने वक्ता चापि तथा भवेत्।
यश्च वक्ति कथामेनां हरेण सदृशो भवेत् ॥१११॥
उक्त्वा कथामिमां पूर्वमधीरो नाम भूमिपः।
स्वर्गं स गतवान्राजाकृतपापाऽथ भार्यया ॥११२॥

इति श्रीपद्मपुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शिवराघवसंवादे विभूतिमाहात्म्ये नवोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

* * *

यह मेरा है ॥१०२॥ उसके बाद पाश हाथ में लिए यमदूत ने शिवदूत पर प्रहार किया। उसके बाद महाकाय वह्निमुख ने क्रुद्ध होकर सौ यमदूतों को अपने हाथ से पकड़ लिया। ओर वह अकेले ही उन सबों के शिर को घास के समान काट दिया ॥१०३-१०४॥ उन दूतों को मारकर वह इक्ष्वाकु को लेकर चला गया ओर उसको वीरभद्र को समर्पित कर दिया ॥१०५॥ वीरभद्र ने उसे शङ्करजी को समर्पित किया और सारी बातें बतलायी महेश्वर ने कहा। तुम लगातार आठ दिन तक मेरी पूजा करते रहे ॥१०६॥ तुम पापी नहीं हो तुम पूर्वकाल में मेरे लिङ्ग की तथा मेरी निन्दा किए थे उसी पाप के कारण तुम्हारा शिश्न (लिङ्ग) टेढा हो जायेगा ॥१०७॥ शिश्न के अग्रभाग में जिह्वा तथा नाम आदि से रहित छिद्र और च्रक होगा। तुमने पहले नाम का उच्चारण किया है अतएव तुम वक्ता भी होओगे ॥१०८॥ उसके बाद इक्ष्वाकु भी शङ्करजी के कथन के अनुकूल क्षणभर में हो गया। **शम्भु ने कहा—** जो व्यक्ति इस पवित्र पौराणिक तथा उत्तम आख्यान का नित्य श्रवण करता है ॥१०९॥ वह पाप के बन्धन से मुक्त होकर शिव का भक्त होता है। वह शिवलोक में जाता है तथा वह वक्ता भी होता है ॥११०॥ जो इस कथा का वर्णन करता है वह शङ्करजी के समान होता है। प्राचीन काल में अधीर नाम का राजा यद्यपि उसने अपनी पत्नी से पाप किया था इस कथा का वर्णन करके स्वर्ग चला गया ॥१११-११२॥

इस तरह श्रीपद्मपुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शिवराघव संवादान्तर्गत विभूति माहात्म्य के वर्णन के प्रसङ्ग में एक सौ नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०९॥

* * *

एक सौ दशवाँ अध्याय

श्रीराम उवाच

अयमग्निशिखो नाम वह्निः शिवगणश्चवै । स कथं तादृशो भूतस्तन्मे वद नमोऽस्तु ते ॥१॥

शम्भुरुवाच

अयमासीत्पुरा कश्चित्क्षत्रियःक्रोधनः सदा । नष्टभार्यो नष्टसेनो नष्टराष्ट्रोऽतिदुःखितः ॥२॥
लब्ध्वा लुलायद्वितयं कृषिं चक्रे सहात्मजैः ।
ऋणेन महता युक्तः पुनश्चातीवदुःखितः ॥३॥
पुनश्च दुःखितो राजा सर्पेण सुतनाशनात् । तथाभूतो महीपालस्तत्याज कृषिमप्युत ॥४॥
परित्यज्य सुतौ चापि त्यक्ताहारो रुरोदह। सुतावथ समागम्य प्राहतुः पितरं त्विदम ॥५॥
किमर्थं रुद्यते तात नष्टो नायाति रोदनात् । शरीरशोषणायाथ शोकस्तेऽद्य भविष्यति ॥६॥
शोकेन चक्षुषी नष्टे कण्ठो नष्टस्तथा तव । अनुष्ठानं तथा नष्टं किमर्थं परितप्यसे ॥७॥
एक नष्टो न चायाति रक्ष पञ्च स्थितानसून् ।
बहूनां रक्षणं पुण्यमाश्रितानां विशेषतः । अन्याश्रितममुं शत्रुं कथं शोचितुमर्हसि ॥८॥

पितोवाच

पुत्रः शत्रुः कथं पुत्रो युवां शत्रू तथा च मे ।
अत्यन्तसुखिनं पुत्रं कथं शत्रुमभाषतम् ॥९॥

सुतावूचतुः

जायमानो हरेद्भार्यां वर्द्धमानो हरेद्धनम् । म्रियमाणस्तथा प्राणाञ्छत्रुत्वं किमतःपरम् ॥१०॥

शिवपूजन महात्म्य

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा— यह अग्निशिख नामक जो शिवजी का था वह वैसा कैसे हो गया ? इसे आप मुझे बतलायें ॥१॥ **शम्भु ने कहा—** प्राचीन काल में एक सदा क्रुद्ध रहने वाला क्षत्रिय था । उसकी पत्नी, सेना और राष्ट्र सबके सब नष्ट हो गये थे उसके कारण वह अत्यन्त दुःखी था ॥२॥। वह दो भैसों को प्राप्त करके अपने पुत्रों के साथ कृषि का कार्य करता था । अत्यधिक ऋणवान् होकर वह अत्यन्त दुःखी हो गया ॥३॥ उसके बाद सर्प ने उसके पुत्र को काट लिया और उसका पुत्र मर गया । उसके कारण वह और अधिक दुःखी हो गया । इसके बाद उस राजा ने कृषि करना भी छोड़ दिया ॥४॥ वह अपने दो पुत्रों को छोड़कर तथा भोजन करना छोड़कर रोता रहा । उसके दोनों पुत्र आकर अपने पिता से कहे ॥५॥ हे तात ! आप क्यों रो रहे हैं, जो मर गया है अव आ नहीं सकता है । आप जो शोक कर रहे हैं इससे तो आपका शरीर ही सूखेगा ॥६॥ शोक के कारण आपकी दोनों आँखें अंधी हो गयी हैं तथा गला भी रोने के कारण रुंध गया है । आपके अनुष्ठान भी नष्ट हो गये हैं आप क्यों शोक कर रहे हैं?॥७॥ एक जो नष्ट हो गया है, वह नहीं आ सकता है । आप अपने पञ्च प्राणों की रक्षा करें । बहुतों की रक्षा कल्याणकारी होती है और आश्रितों की रक्षा करना तो विशेष रूप से कल्याण्कारी होती है ॥८॥ दूसरे के अधीन रहने वाले उस शत्रु के विषय में आप क्यों सोचते हैं ? **पिता ने कहा—** पुत्रों ! वह पुत्र

यत्सुखं च त्वया प्रोक्तं स्पर्शनालिङ्गनादिभिः ।
दुःखोदर्कमिदं राजन्सर्वमेतद्वदामि ते ॥११॥
प्रसूतिकाले पुत्रस्य भार्यानाशविचारणा । जीवितायामथो पत्न्यामात्मनः सुखनाशनम् ॥१२॥
योन्यशुद्धौ तु जातायां संयोगो नोपपद्यते । आलिङ्गनपरे गाढं स्तन्येनाङ्गपरिप्लुत ॥१३॥
तथापि यदि संयोगः शिशुरोदनतः स्त्रियाः ।
दृढं शिशुगतं चित्तं ततो वैरस्यमेव च ॥१४॥
अथ चेत्पतितो डिम्भो मध्ये मैथुनमुद्गतिः । रतिमध्ये तु विच्छेदे दुःखं किञ्चिदसन्निभम् ॥१५॥
सर्वकाले परिमिते कदाचिद्रतिसम्भवः ।
तत्काले भोजनं नास्ति स्वापो नास्ति च भार्यया ॥१६॥
शिशूनां रक्षणे दुःखं व्याधितर्षग्रहादिभिः । तन्मयं यत्सुखं चित्रं यथाङ्कारोहणं पितुः ॥१७॥
आलिङ्गनकृतं तात चुम्बनादिकृतं तथा । अत्यन्तमधुरोक्त्यादि यत्सुखानि नरेश्वर ! ॥१८॥
रतिमध्ये विरामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
अन्यान्यपि च दुःखानि सन्ति पुत्रे सहस्रशः ॥१९॥
अनेन त्वं किं कुरुषे इहामुत्रविरोधिना । त्यजशो मिदं तस्मादावां पुत्रौ स्थिताविह ॥२०॥

श्रीराजोवाच

त्यजामि शोकं दुर्धारं सर्वकार्यविरोधिनम् । आत्मनश्च हितं कार्यमिहामुत्र सुतौ मम ॥२१॥

शत्रु कैसे है ? तथा तुम दोनों कैसे शत्रु हो ?॥९॥ अत्यन्त सुख देने वाले पुत्र को तुम दोनों शत्रु कैसे कहे ? **दोनों पुत्रों ने कहा—** जो उत्पन्न होते समय पत्नी को मार दे और बड़ा होकर जो धन का हरण कर ले ॥१०॥ मरकर जो प्राणों का अपहरण करे उससे बढ़कर शत्रुता कैसी होगी । आपने जो स्पर्श करने तथा आलिङ्गन करने से जिस सुख को बतलाया है ॥११॥ इन सबों का परिणाम दुख में ही होता है, उसे मैं बतला रहा हूँ । पुत्र के प्रसवकाल में भार्या के नाश का विचार करना पड़ा ॥१२॥ यदि पत्नी जी भी गयी तो अपना सुख तो नष्ट ही हो गया । उस समय योनि अशुद्ध हो जाती है अतएव संयोग नहीं हो सकता है ॥१३॥ पत्नी का गाढ़ालिङ्गन करने पर उसके दूध से अङ्ग भर जाता । उसके बाद भी यदि संयोग किया जाय तो स्त्री का बच्चा रोने लगता है ॥१४॥ उसके कारण स्त्री का चित्त बच्चे में लग जाता है । फलतः संयोग में विस्सता आ जाती है । यदि बच्चा नीचे गिर जाय तो फिर मैथुन के बीच में ही उठना पड़ता है ॥१५॥ बीच में रति का विच्छेद हो जाने पर कुछ दुःख तो होता ही है । सभी समय के सीमित होने के कारण कभी ही रति हो पाती है ॥१६॥ उस समय तो भोजन हो पाता है और न नींद ही आती है । रोग, तर्ष तथा ग्रह आदि से बच्चों की रक्षा करने में भी कष्ट होता है ॥१७॥ पिता के गोद में जो पुत्र चढ़ता है उसको भी सुख मानना अत्यन्त आश्चर्य की बात है । हे तात ! बच्चे के आलिङ्गन तथा चुम्बन आदि से तथा मीठी बोली के सुनने से जो सुख उत्पन्न होता हैं, वह रति के बीच में होने वाले विराम से जो कष्ट होता है, उसके सोलहवें भाग के भी बराबर नहीं हो सकता है ॥१८-१९॥ पुत्र से दूसरे प्रकार के भी सैकड़ों प्रकार के दुख प्राप्त होते हैं । अतएव इस लोक एवं परलोक विरोधी शोक को करके आप क्या कर रहे हैं ?॥२०॥ अतएव आप इस शोक का परित्याग कर दें । आपके हम दोनों

पुरोधसं तु गच्छामि ममपूर्वं महागुरुम् । वसिष्ठं मुनिवर्यं च स दास्यति गतिं मम ॥२२॥
एवमुक्त्वागतो विप्रं वाराणस्यां स्थितं गुरुम् ।
दण्डवत्प्रणनामाथ मुनिना परिपूजितः ॥२३॥
आलिङ्गितः शिरोघ्रातो दत्तासनपरिग्रहः । उक्तश्चागमनं किं ते किंकार्यं करवाणि वै॥२४॥

राजोवाच

गतिं प्रयच्छ मे विप्र ! संसारतरणाय हि । खिन्नोऽहं कर्मणा शश्वद्भवन्तं शरणं गतः ॥२५॥

वसिष्ठ उवाच

गतिं पश्य महालिङ्गं विश्वेश्वरमिति स्थितम्। एनं पूजय राजेन्द्र देवदेवं पिनाकिनम्॥२६॥
यमाराध्य पुरा शक्तिररुन्धत्याः सुतो मुनिः ।
रक्षसा भक्षितश्चापि यमलोकं गतो न सः ॥२७॥
किञ्चित्कालगतः स्वर्गं ब्रह्मलोकमगादतः। ब्रह्मलोकाद्विष्णुलोके क्रीडन्नास्ते सुतो मम ॥२८॥
अमुं पश्य महाराज लुब्धकं वनचारिणम् । पूजयन्तं हि विश्वेशं पत्रमात्रैः स्वसम्भृतैः॥२९॥
शमीवृक्षस्य सम्भूतैस्तथा पूगप्रसूनकैः । कदम्बकुसुमैरर्ककुसुमैर्यूथिकाभवैः ॥३०॥
एतैरन्यैर्महेशानं पूजयन्तं विलोकय। इतोऽर्द्धयाममात्रेण मरिष्यति तदद्भुतम्॥३१॥
अन्तकाले समायाते लुब्धकोऽपि शिवाय वै ।
उपहारप्रदानाय दृष्टवान्पार्श्वतो घटम् ॥३२॥

पुत्र हैं ही । **राजा ने कहा—** जिसको छोड़ पाना कठिन है । उन सभी कार्यों के विरोधी शोक का मैं परित्याग कर रहा हूँ ॥२१॥ पुत्रों अब मुझे इस लोक में तथा परलोक में जो कल्याणकारी हो ऐसे ही कार्यों को करना चाहिए । जो मेरे पहले के महागुरु हैं, उन पुरोहित के पास मैं जा रहा हूँ ॥२२॥ मुनियों में श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठ हैं, वे ही मुझे गति प्रदान करेंगे । इस तरह कहकर वे राजा वाराणसी में विद्यमान अपने गुरु वसिष्ठ महर्षि के पास गये ॥२३॥ राजा ने महर्षि को दण्डवत प्रणाम किया महर्षि ने राजा का सत्कार किया । उन्होंने राजा का आलिङ्गन करके उनके शिर को सूंघा और राजा को बैठने के लिए आसन प्रदान किया ॥२४॥ उन्होंने पूछा— तुम्हारा आगमन कैसे हुआ ? मैं तुम्हारा कौन सा कार्य करूँ ? **राजा ने कहा—** हे विप्र ! मुझे ऐसा मार्ग बतलाएँ जिससे कि मेरा संसार से उद्धार हो सकें ॥२५॥ मैं कर्मो को सदा करते हुए थक गया हूँ अतएव आपके शरण में आया हूँ । **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** तुम्हारे लिए एक मात्र गति महालिङ्ग विश्वेश्वर है । वे यहाँ विद्यमान हैं ॥२६॥ राजेन्द्र ! तुम देवाराध्य पिनाकधारी भगवान् शिव की आराधना करो । उन्हीं की आराधना करके अरुन्धती के पुत्र शक्ति मुनि ॥२७॥ राक्षस के द्वारा खा लिए जाने पर भी यमलोक मे नहीं गये । वे कुछ समय के लिए स्वर्ग लोक में गये उसके बाद वे ब्रह्मलोक में चले गये ॥२८॥ ब्रह्मलोक के बाद इस समय वे मेरे पुत्र विष्णुलोक में क्रीड़ा कर रहे हैं । हे महाराज ! वन में रहने वाले इस व्याध को आप देखें ॥२९॥ यह विश्वेश्वर की पूजा अपने से एकत्रित किये गये सभी पुष्पों के द्वारा सुपारी के पुष्पों से करता है ॥३०॥ कदम्ब के पुष्प, आक के पुष्प तथा जूही के फूल से भी विश्वेश्वर की पूजा करता है । इन सबों के अतिरिक्त दूसरे पुष्पों से भी उनकी पूजा करता है । इसको आप देखें ॥३१॥ इसके बाद आधे प्रहर में ही यह मरने वाला है । अन्तकाल

तं चूतफलसम्पूर्णं शुना स्पृष्टं विगर्हितम्। सङ्कल्पितोपहारस्य ह्यभावाल्लुब्धकस्तथा ॥३३॥
इदं जगौ शुभं वाक्यं लोकानां भक्तिसूचकम् ।
पुष्पाभावेहरिर्नेत्रं फलाभावेऽगुलं रविः ॥३४॥
लिङ्गविस्रंसने कं च जमदग्निऋषिस्तथा। लिङ्गपीठविभेदे च गात्रं निर्भिद्य दत्तवान्॥३५॥
अन्यैर्महिश्वरैरन्यत्साहसं परमं कृतम्। ममापि तत्तथा कार्यमन्यथा दोषभागहम् ॥३६॥
एतस्मिन्नन्तरे कश्चिदुन्मतः शिवमभ्यगात्। अथ लुब्धकृतां पूजामाहृत्याभक्षयत्क्षणात् ॥३७॥
वमनं च तथा चक्रे शिवपीठेऽथ लुब्धकः ।
शिवापकारिणं चैनं हन्मि नो वेत्यचिन्तयत् ॥३८॥
अथ स्वात्मवधायैव यत्नमास्थाय शङ्करः। उन्मत्तेनयथोद्धुक्ता शिवपूजा मया कृता ॥३९॥
लिङ्गप्रावरणे ह्येषा तदहं मम देहिनः। प्रावृतिस्त्वगियं त्वद्य निर्मोक्तव्या मया द्रुतम्॥४०॥
पूजाविमोचनायैतत्फलहानेर्गलं त्यजेत्। इत्थं सङ्कल्प्यसतथातीक्ष्णस्वधितिनाद्भुतम्॥४१॥
चक्रे त्वचं दक्षपादं त्वचं छित्त्वा कटेरधः। वामपादं तथा चक्रे कटिपर्यन्तमाशु च ॥४२॥
हृष्टश्चावेपितश्चैव तत ऊर्ध्वमथाच्छिनत्। करांसोदरहृत्कण्ठत्वचं निर्भिद्यलुब्धकः ॥४३॥
मस्तकस्य त्वचं चापि निर्बिभेद प्रहृष्टवान्। तयोरन्तरतस्तस्माद्गात्रं निर्भिद्य वर्तुलम् ॥४४॥
छित्त्वाऽङ्गुलिं समादाय देवायार्पितवांस्त्वचम् ।
आरादेव तथा दिव्यरूपः स्वक्षश्चतुर्भुजः ॥४५॥

आने पर उस लुब्धक ने भी शिवजी को । उपहार प्रदान करने के लिए अपने बगल में स्थित घड़े को देखा। वह घड़ा आम के फल से भरा था; किन्तु कुत्ते ने उसे चाट लिया था अतएव निन्दित था ॥३२-३३॥ उपहार के अभाव में उस व्याधे ने उसका ही सङ्कल्प कर दिया । उसने लोगों में भक्ति के इस वाक्य को कहा ॥३४॥ पुष्प के अभाव में श्रीहरि ने अपने नेत्र को शिवजी को समर्पित कर दिया, सूर्य ने अपनी अङ्गुलि को समर्पित कर दिया लिङ्ग के गिर जाने पर जमदग्नि ऋषि ने लिङ्ग को समर्पित कर दिया और पीठ के टूट जाने पर उन्होंने अपने शरीर को काटकर समर्पित कर दिया । दूसरे भी शिवभक्तों ने दूसरे प्रकार से साहस को प्रदर्षित किया ॥३५-३६॥ मुझको भी उसी प्रकार का कार्य करना चाहिए नहीं तो मैं दोष का भागी होऊँगा । उसी समय एक पागल आया ॥३७॥ उसने व्याध के द्वारा की गयी पूजा को लेकर खा गया और उस शिवपीठ पर ही उसने वमन कर दिया । यह देखकर उस व्याध ने विचार किया शिव का अपकार करने वाले को मैं मार दूँ कि नहीं । वह अपना ही वध करने के लिए प्रयास करता हुआ कहा ॥३८-३९॥ हे शङ्कर ! मेरे द्वारा की गयी शिवजी की पूजा को जैसे इस पागल ने खा लिया है, लिङ्ग को ढँकने के लिए यह मेरी प्रवृत्ति है अतएव मुझसे शीघ्र ही उसके लिए अपनी त्वचा को छिल देना चाहिए । पूजा को ही छोड़ने के लिए फल के अभाव में अपने शिर को त्याग देना चाहिए ॥४०-४१॥ इस तरह से सङ्कल्प करके उसने ही तीक्ष्ण चाकू से अपने दाहिने पैर के कमर से नीचे के चमड़े को छील दिया ॥४२॥ इसी तरह उसने कमर से नीचे अपने वायें पैर के भी चमड़े को छील दिया उसने बिना काँपे ही प्रसन्नता पूर्वक ऊपर के भी भाग को ऐसे ही छिल दिया ॥४३॥ उसने हाथ कन्धा, पेट, हृदय तथा कण्ठ की त्वचा को छिलकर अन्त में प्रसन्नता पूर्वक अपने मस्तक के भी चमड़े को छील दिया ॥४४॥

नानाभूषणसंयुक्तः स्थितो वियति शाङ्करः। अथ शैवाः समायाता दूताः शतसहस्रशः ॥४६॥
विचित्रमुकुटाकाराः सर्वाभरणभूषिताः। त्रिशूलपाणयः सर्वे शुद्धस्फटिकसन्निभाः ॥४७॥
चतुर्भुजाः सुरूपाश्च विमानवरसंस्थिताः। सर्वे सूर्यसमाः शान्तारम्भावत्प्रियायुताः ॥४८॥
सूनुपत्नीबलोत्साहविलासस्त्रीशतान्वितः। तेजसा सूर्यसदृशाः पुष्पवृष्टिमवाकिरन् ॥४९॥
तैराहूतो लुब्धकश्च नागच्छदवदच्चतान्। भार्याबन्धुजनोपेतो गच्छेऽहमथवा न वा ॥५०॥
शैवास्तद्वचनं श्रुत्वा वाक्यमेतदथोचिरे। येन पुण्यं कृतं पापं तेन भोग्यं हि तत्फलम्॥५१॥

लुब्धक उवाच

अशौचानां च सर्वेषां धर्माणामेककर्तृकम्। माहेश्वराणां धर्माणां फलं च द्विबहुष्वपि ॥५२॥
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो वीरभद्रः शतार्भकः। नानाकोटिगणोपेत एहि लुब्धकबन्धुयुक् ॥५३॥
सर्वं त्वयोक्तं च तथा सभार्यो ज्ञातिबन्धुयुक्।
आरुह्येदं विमानं च शिवं गच्छ शिवं तु वः ॥५४॥
अथ तद्वचनात्प्राप्तः शिवलोकं विमानगः ॥५५॥

वसिष्ठ उवाच

दृष्टवानसि सर्वं त्वमीशपूजां समाचर। विमुक्तपापबन्धस्त्वं शिवलोकं गमिष्यसि ॥५६॥
यदि राज्यं त्वया प्रार्थ्यं मार्जयेशाङ्गणं नृप।
गोमयोदकलेपं च नित्यमेव समाचर ॥५७॥

उसके बाद उसने अपने शरीर को गोल-गोल काटकर अपनी अङ्गुलि को लेकर शङ्करजी को त्वचा भी चढ़ा दिया ॥४५॥ वह शीघ्र ही स्वच्छ चार भुजाओं वाला हो कर अनेक प्रकार के भूषणों से भूषित हो गया और आकाश में स्थित हो गया ॥४६॥ उसके बाद सैकड़ों हजार शिवजी के दूत आये। उन सवों के मुकुट और आकार अद्भुत थे। वे सभी अलङ्कारों से अलंकृत थे ॥४७॥ सब अपने हाथ में त्रिशूल लिए थे तथा सब शुद्ध स्फटिक के समान थे। उन सबों की चार भुजाएँ थी, सुन्दर उनका रूप था तथा वे श्रेष्ठ विमान पर बैठे थे ॥४८॥ सब-के-सब सूर्य के समान देदीप्यमान थे, वे शान्त आकार वाले थे तथा उनकी पत्नियाँ रम्भा के समान देखने में सुन्दर थीं। पुत्र, पत्नी, बल तथा उत्साह से वे सम्पन्न थे। उनके साथ सैकड़ों विलास की स्त्रियाँ थीं ॥४९॥ उनका तेज सूर्य के समान था, उन सवों ने फूलों की वर्षा की। उन सबों के द्वारा बुलाये जाने पर भी वह व्याध नहीं गया और उन सबों से कहा ॥५०॥ मैं अपनी पत्नी और बांधवों के साथ ही जाऊँगा नहीं तो नहीं जाऊँगा। उसकी वाणी को सुनकर शिवदूतों ने कहा ॥५१॥ जो कोई पुण्य अथवा पाप करता है वही उसके फल को भोगता है। **व्याधे ने कहा—** अपवित्र कर्मों का फल ही अकेले भोगा जाता है ॥५२॥ माहेश्वर धर्म का फल तो दो अथवा अनेक लोग भोगते हैं। उसी समय वहाँ पर सैकड़ों सूर्य के समान कान्ति वाले वीरभद्र आ गये ॥५३॥ उनके साथ अनेक करोड़ गण विद्यमान थे। उन्होंने कहा लुब्धक अपने बाधवों के साथ आओ। तुमने जो कुछ कहा है वैसा ही है। तुम अपनी पत्नी तथा बांधवों के साथ आओ ॥५४॥ इस विमान पर चढ़कर शिवजी के पास चलो। वीरभद्र की आज्ञा से वह व्याध विमान से शिवजी के लोक में चला गया ॥५५॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—** तुगने तो सब कुछ देख लिया है, अब शिवजी की पूजा करो। तुम पाप के बन्धन से मुक्त होकर

एतावता भूमिराज्यं ध्रुवं तव भविष्यति। यावदायुश्च ते राज्यमन्ते शिवपदं भवेत् ॥५८॥
नैतस्मिंस्तु भवेद्राज्यसंसिद्धिरनुमृत्युतः । अतो देहान्तरं प्राप्य शिवसेवाप्रभावतः ॥
भविष्यति च ते राज्यं शिवभक्तिः स्थिरा तथा ॥५९॥

शम्भुरुवाच

अथ कृत्वा तथा पूजां मृतः स्वर्गंगतस्ततः ।
राजजन्मः पुनः प्राप्य राज्यं चक्रे शिवे रतः ॥६०॥
कदाचिदथ देवस्य गृहमभ्यगमन्नृपः । नानादीपसमोपेतं मणिभिर्नागराडिव ॥६१॥
भटानामथ संमर्द एको दीपोऽपतन्नृपे । तदाऽसौ कुपितो राजा दीपमादायसत्वरम् ॥६२॥
देवालयपुरे रम्ये न्यक्षिपत्कोपसंयुतः । दग्धं देवगृहं तेन एनश्च समपद्यत ॥६३॥
अथ तेन पुनस्तत्र दग्धं वेश्मगृहादिकम् । निर्मापयामास नृपो महेशानमथायजत् ॥६४॥
अथ मृत्युदिने प्राप्ते राजाऽऽराधितशङ्करः । भस्मस्नायी भस्मशायी जपन्नुद्रं ममार ह ॥६५॥
शिवलोकं गतःसोऽयं वीरभद्रेण भाषितः । भव त्वं गणशार्दूलो मम वै परिचारकः ॥६६॥
शाङ्करान्मम निर्देशादानयस्व ममान्तिकम् ।
शिरोहीनो भवांश्चापि ज्वालावक्त्रो भविष्यति ॥६७॥
स तूवाच महात्मानं वीरभद्रं गणेश्वरम् । चक्षुःश्रोत्रं तथा जिह्वानासिकास्यं शिरोगणः ॥६८॥
एतैर्विना व्यवहृतिः कथं मे सम्भविष्यति ।
अभावे शिरसः किं वा मया पापं कृतं विभो ! ॥६९॥

शिवलोक में जाओगे ॥५६॥ यदि तुम राज्य प्राप्त करना चाहते हो तो तुम शङ्करजी के गणों को धोने का काम करो । इन सबों को जल और गोवर का लेप लगाओ ॥५७॥ ऐसा करने से तुमको पृथिवी का राज्य अवश्य मिलेगा । तुम जीवनभर राज्य करोगे और अन्त में तुम शिवजी के लोक में जाओगे ॥५८॥ यदि इस जन्म में राज्य नहीं भी मिला तो मृत्य के बाद तुम्हे मुक्ति मिलेगी । उसके बाद शिवजी की सेवा के प्रभाव से दूसरे जन्म में तुमको राज्य अवश्य मिलेगा और तुम्हारी शिवजी में स्थिर भक्ति होगी । **शम्भु ने कहा—** उसके बाद वह राजा शिवजी की पूजा करके मर कर स्वर्ग चला गया ॥५९-६०॥ फिर राजा का जन्म प्राप्त करके शिवजी की भक्ति करते हुए राज्य किया । एक बार वह राजा देवगृह (मन्दिर) में गया । वह मन्दिर अनेक दीपों से उसी तरह से सुशोभित था जिस तरह नागराज अनेक मणियों से सुशोभित रहते हैं। उसके बाद सिपाहियों के भीड़ होने के कारण एक दीपक राजा के ऊपर ही गिर पड़ा ॥६१-६२॥ उसके बाद वह राजा दीप को शीघ्र ही लेकर मन्दिर के सामने ही क्रोध पूर्वक फेंक दिया॥६३॥ उसके कारण वह मन्दिर जल गया और वह राजा भी पाप से युक्त हो गया । उसके बाद राजा ने जले हुए गृह आदि को बनवाया और शङ्करजी की उसने पूजा की । शङ्करजी की पूजा करने वाला वह राजा जब मृत्यु का दिन आया तो ॥६४-६५॥ भस्म से स्नान करके भस्म पर सोकर रुद्र मन्त्र का जप करते हुए मर गया। वह शिवलोक में गया तो वीरभद्र ने कहा ॥६६॥ तुम गणों में श्रेष्ठ तथा मेरा सेवक बनो । मेरी आज्ञा के अनुसार शिवभक्तों को मेरे पास लाया करो ॥६७॥ तुम शिर से हीन होओगे तथा तुम्हारे मुख में अग्नि

वीरभद्र उवाच

त्वयैव स्वीकृता पूर्वं देवी परमसुन्दरी। महेशभवनं नित्यं चातुर्वर्णकरङ्गकैः ॥७०॥
स्वस्तिकं सर्वतोभद्रं नन्द्यावर्तादिकं शुभम्। पद्ममुत्पलमान्दोलपादौ व्यजनचामरे ॥७१॥
त्रिशूलं शङ्खचक्रेचगदाधनुरथैव च। त्रिशूलं डमरुं खड्गं वृषं भृङ्गिरिटिं शिवम् ॥७२॥
तथाष्टत्रं कमलमन्यद्यन्त्रादिकं तथा। कल्पयन्ती प्रतिदिनं सेवते वृषभध्वजम् ॥७३॥
कदाचिदथ सावेश्या देवसद्मन्युपस्थिता। राज्ञः काराङ्किकः कश्चिद्देववेश्मसमाविशत् ॥
अथ तां दृष्टवांस्तत्र स इदं वाक्यमुक्तवान् ॥७४॥

काराङ्किक उवाच

एकान्तसंस्थिता वेश्या युवाऽहं स्थविरश्च न ॥७५॥
स्थविरं व्याधितं षण्ढमशक्तं धनवर्जितम्। अदीर्घमेहनं दीनं पुरुषं योषिदुत्सृजेत्॥७६॥
अश्मश्रुलंमलच्छन्नं जडं दुर्गन्धिदूषितम्। स्वल्पमव्यसनं नारी दूरतः परिवर्जयेत् ॥७७॥
तस्मान्मे दीयतां वेश्ये ! मैथुनं जीवयाशु माम् ।

वेश्योवाच

नियतः सर्वजातीनामिहामुत्र सुखप्रदः ॥७८॥
पातिव्रत्यं परो धर्मः स्त्रीणामिति हि शुश्रुम ।
यदधीना यदावश्या तदा नान्येन सङ्गता ॥७९॥
पतिव्रतेति विख्याता तस्मात्तं परिपालयेत् ।

काराङ्किक उवाच

यदि चैवं मृतिः शीघ्रं भविष्यति न संशयः ॥८०॥

की ज्वाला होगी । उसने महात्मा वीरभद्र से कहा ॥६८॥ नेत्र, श्रोत्र, जिह्वा, नाक, मुख तथा शिर के बिना मैं कोई भी व्यवहार कैसे करूँगा ?॥६९॥ हे प्रभो ! मेरे शिर के अभाव का कारण क्या है ? मैंने कौन सा पाप किया है ? **वीरभद्र ने कहा—** तुमने पहले परम सुन्दरी देवी को स्वीकार किया था ॥७०॥ वह प्रतिदिन शङ्करजी का मन्दिर सदैव चारों प्रकार के रङ्गों से, स्वस्तिक, सर्वतोभद्र, नन्द्यावर्तक इत्यादि को कमल, नील कमल, आन्दोलपाद (झूला) व्यजन, चामर, त्रिशूल, शङ्ख, चक्र, गदा, धनुष ॥७१-७२॥ त्रिशूल, डमरू, खड्ग, वृषभ, भृंगी रिटि, शिव, अष्टदल कमल तथा दूसरे यन्त्र इत्यादि को ॥७३॥ बनाती थी तथा शङ्करजी की सेवा करती थी । एक दिन वह वेश्या मन्दिर में आयी ॥७३-७४॥ उसी समय राजा का कोई कारांकिक भी मन्दिर में आया । उसने उस वेश्या को वहाँ देखा और उससे कहा ॥७५॥ **कारांकिक ने कहा—** एकान्त में वेश्या बैठी है, मैं भी युवा हूँ बूढ़ा नही हूँ, बूढ़ा व्याधिग्रस्त, नपुसक तथा दरिद्र को ॥७६॥ तथा जिसका मेहन (लिङ्ग) छोटा हो तथा दीन पुरुष को स्त्रियाँ त्याग देती है । जिसको दाढ़ी-मूछ नहीं आता हो, मैंले, कुचैले, मूर्ख तथा जिसके शरीर से दुर्गन्ध निकलती हो तथा जिसमें कोई व्यसन नहीं है, ऐसे पुरुष को नारी दूर से ही त्याग देती हैं । अतएव हे वेश्ये ! तुम मेरे साथ मैथुन करके मुझे जीवन प्रदान करो ॥७७-७८॥ वेश्या ने कहा— सभी जाति के जीवों को नियम

अथ राजान्तिकं गत्वा राजानमिदमुक्तवान् ।
वेश्या वेश्यैव नो भार्या नेति वक्तुं च नोचितम् ॥८१॥
इत्थं राजानमुक्त्वाऽथ मण्डं चैवारनालजम् ।
किञ्चिदादाय तस्यास्तु मन्दिरं गतवानयम् ॥८२॥
निद्रावसरमालोक्य प्रसृज्य च करं ततः ॥८३॥
वस्त्रस्य विवरे तत्र मण्डं चिक्षेप दुष्टधीः। एवं कृत्वा ततो गत्वा राजानमिदमुक्तवान् ॥८४॥
राजन्निर्गत्य गत्वाऽथ वेश्याग्र्यां तव योषितम् ।
उत्थपयित्वा वेश्यां तां सर्वाङ्गं द्रष्टुमर्हसि ॥८५॥
उन्मुक्तबन्धमथवा वसनं पश्य यत्नतः। वेश्यावेश्माथ गतवान्राजाकाराङ्किकं वचः ॥८६॥
इदमाह सनिद्रेयं पश्येमां यामि पश्यसि। स तूवाच नृपं तत्र न मे युक्तमिदं नृप ! ॥८७॥
तन्मातरं वा पितरं दर्शनाय नियोजय। तद्दृष्टो सर्वमेवेदं व्यक्तमाशु भविष्यति ॥८८॥
आनीता ह्यथ राज्ञा तु माता वीक्षितुमुद्यता। वचनात्तु नृपस्यैव वस्त्रं शोधयतीव सा ॥८९॥
तत्र स्थितं मण्डमथ विज्ञायाम्बाह्यमर्दयत्। मर्दनाद्वसनं क्लिन्नं किं तदित्याह पार्थिवः ॥९०॥
न किञ्चिद्देव नो किञ्चिदिति वेश्याप्रसूरपि। बहुवाक्येन राजाऽथ वसनं वीक्ष्य शङ्कया ॥९१॥
शुक्रक्लिन्नमिदं वासः प्राहैतद्दृश्यतामिति। अथ दृष्टवा समीपस्थास्तथेत्यूचुर्वचो नृपम् ॥९२॥

सुख प्रदान करने वाला होता है । यह सुना गया है कि स्त्रियों का पातिव्रत्य धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म होता है । जो वेश्या जिसके अधीन होती है, वह उसको छोड़कर किसी दूसरे के साथ संयोग नहीं करती है । ऐसी वेश्या पतिव्रता होती है अतएव उसे उस धर्म का पालन करना चाहिए ॥८०॥ **करांकिक ने कहा**— यदि ऐसी बात है तो तुम्हारी शीघ्र ही मृत्यु होगी । इसके बाद वह राजा के पास जाकर कहा ॥८१॥ वेश्या वेश्या ही होती है, वह पत्नी नहीं हो सकती है, इस बात को नहीं नकारा जा सकता है । इस तरह से राजा से कहकर वह आरनाल (काँजी) के माँड को लाया ॥८२॥ उसमें से थोड़ा सा मांड लेकर वह मंदिर में गया । वेश्या को सोते हुए देखकर उसने मांड को हाथ से रगड़ दिया ॥८३॥ उस दुष्ट ने उसके वस्त्र को उठाकर उसकी योनि में मांड डाल दिया । ऐसा कार्य करके वह राजा से जाकर कहा ॥८४॥ राजन् ! आप यहाँ से उठकर जायँ और अपनी श्रेष्ठ वेश्या को देखे । उसके वस्त्रों को उठाकर आप उसके सम्पूर्ण अङ्गों को देखें ॥८५॥ अथवा उसके वस्त्र को खोलवाकर उसके वस्त्र को सावधानी से देखें । करांकिक की वाणी को सुनकर राजा वेश्या के घर गये ॥८६॥ राजा ने कहा कि तुम इसको देखों यह सो रही हैं । मैं यहाँ से हट जाता हूँ । करांकिक ने कहा— राजन् ! ऐसा करना मेरे लिए उचित नहीं हैं॥८७॥ देखने के लिए उसकी माता अथवा उसके पिता को आप नियुक्त कीजिये । उन सबों के द्वारा देखे जाने पर ये सारी बातें शीघ्र ही स्पष्ट हो जायेंगी ॥८८॥ उसके बाद उसको देखने के लिए राजा ने उसकी माता को बुलाया । वह राजा की आज्ञा के अनुसार उसके वस्त्र को देखने लगी ॥८९॥ उसमें लगे माड़ को बाहर लाकर उसने मसला । रगड़ने से उसका कपड़ा गंदा हो गया । राजा ने पूछा कि यह क्या हैं ?॥९०॥ वेश्या की माता ने कहा महाराज यह कुछ भी नहीं हैं । बहुत वाक्यों को सुनकर राजा को शङ्का हुयी और राजा ने स्वयं उसको देखा ॥९१॥ राजा ने कहा देखो यह वीर्य से भिंगा हुआ वस्त्र है।

राजाऽथ स्वगृहं गत्वा दण्डाध्यक्षमभाषत । इदानीमेव वेश्यायाःशिरश्छिन्ध्यविचारयन् ॥९३॥
दर्शनीयं शिरस्तस्या घटिकाभ्यन्तरे मम ।
दण्डकश्च नृपोक्त्याऽस्यास्तथा कृत्वा ह्यदर्शयत् ॥९४॥

वीरभद्र उवाच

एवं कृतं त्वया पूर्वं प्राप्तं च फलमद्य ते ।
ज्वालयैव हि वक्ता त्वं श्रोता द्रष्टा च जिघ्रसि ।
रसं जानासि मतिमानतिक्रोधी भविष्यसि ॥९५॥

शम्भुरुवाच

एवं ज्वालामुखोजातोराजामाहेश्वरोऽक्षमी । तस्मात्तु क्षमिणाभाव्यं परत्रेहसुखेप्सुना॥९६॥
य इदं शृणुयान्नित्यं पुण्याख्यानमनुत्तमम् । विमुक्तपापबन्धश्च शिवलोके भविष्यति ॥९७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शिवराघवसंवादे शिवपूजामाहात्म्यकथनं नाम
दशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥११०॥

* * *

उसको देखकर समीप में विद्यमान सभी लोगों ने कहा राजा का कहना सत्य है ॥९२॥ इसके बाद राजा अपने घर जाकर दण्डाधिकारी से कहे । तुम इसी समय जाकर बिना किसी प्रकार के विचार किए वेश्या के शिर को काट दो ॥९३॥ एक घड़ी के भीतर ही उसका शिर लाकर मुझे दिखाओ । दण्डाधिकारी राजा की आज्ञा के अनुसार कार्य किया; और उसका शिर लाकर राजा को दिखया ॥९४॥ **वीरभद्र ने कहा**— तुमने पहले ऐसा काम किया है, अतएव यह उसी का फल तुम्हें मिल रहा है । तुम ज्वाला के ही द्वारा बोलोगे, सुनोगे, ॥९५॥ तुम्हें रस का भी ज्ञान उसी के द्वारा होगा । तुम बुद्धिमान और अत्यन्त क्रोधी होओगे । **शम्भु ने कहा**— इसतरह से वह क्रोधी शिवभक्त ज्वाला रूपी मुखवाला हो गया ॥९६॥ जो इस पवित्र आख्यान को नित्य सुनता है, वह सभी पापों के बंधन से मुक्त होकर शिवलोक में जायेगा ॥९७-९८॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के शिवराघव संवादान्तर्गत शिवपूजा के माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११०।।

* * *

एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय

श्रीराम उवाच

महेशनाममाहात्म्यं पूजामाहात्म्यमेव च। नमस्कारस्य माहात्म्यं दृष्टिमाहात्म्यमेव च॥१॥
जलदानजस्य माहात्म्यं धूपदानस्य सत्तम। दीपगन्धादिदानस्य माहात्म्यं वद मे गुरो ॥२॥

शम्भुरुवाच

एकैकनाममाहात्म्यं विस्तरान्न हि शक्यते । संक्षेपेण च ते वच्मि शृणु राघव सादरम् ॥३॥
पुरा त्रेतायुगे राजा विधृतो नाम वीर्यवान्। मृते पितरि बालोऽसौ भूमिराज्येऽभिषेचितः ॥४॥
समानवयसः सर्वान्समीपस्थांश्चकार सः। ये वृद्धा ये च विद्वांसस्ते च तस्य न संमताः॥५॥
युवानः संमता दुष्टा अकार्यकरणास्तथा । सुस्यानयनदक्षाश्च चोरकर्मविशारदाः ॥६॥
भाण्डवार्तारतालास्यनिपुणास्तस्य संमताः । वशीकरणमन्त्रज्ञा वस्त्रौषधविदस्तथा ॥७॥
गीतनर्तनशीलाश्च धूर्त्ता द्यूतविदः प्रियाः। पितृसंमतकर्तृणां त्यागं चक्रे स पार्थिवः ॥८॥
विचार्य स च तैः सार्द्धं दुष्टैः कार्यमकारयत् ।
एतादृशांस्तथा चान्यान्दुष्टान्सह युयोज ह ॥९॥
एतदुक्तिमुपालम्ब्य शिष्टं सुहृदमत्यजत्। उरोमुष्टिं च फेत्कारं ये कुर्युस्तस्य ते प्रियाः ॥१०॥
भगलक्षणतत्त्वज्ञा रतितन्त्रविशारदाः । राजनीतिर्विहीनं तद्राज्यं समभवत्तदा ॥११॥
गजाश्वरथमुष्ट्राजं गोमहिष्यादिकं च यत् । तत्सर्वं नाशमापन्नमपहारा यतस्ततः ॥१२॥

शिवजी के नाम, पूजा, नमस्कार तथा दर्शन का माहात्म्य

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा— हे गुरो ! आप मुझे शङ्करजी के नाम के माहात्म्य को, उनकी पूजा के माहात्म्य को, नमस्कार के माहात्मय को और उनके दर्शन के माहात्म्य को ॥१॥ जलदान के माहात्म्य को, धूपदान के माहात्म्य को, दीप तथा गन्ध आदि के दानके माहात्म्य को मुझे बतलायें ॥२॥ **शम्भु मुनि ने कहा—** शङ्करजी के प्रत्येक नाम का विस्तार पूर्वक माहात्म्य का वर्णन सम्भव नहीं है । इसलिए मैं उसको हे राघव ! संक्षेप में बतला रहा हूँ उसे आप सुनें ॥३॥ पहले के त्रेतायुग में एक विधृत नाम के पराक्रमी राजा थे । पिता के मर जाने के बाद वे पृथिवी के राज्य पर अभिषिक्त हो गये ॥४॥ उन्होंने अपने ही समान आयु वाले लोगों को अपना समीपवर्ती बना दिया । जो वृद्ध और विद्वान् थे वे उस राजा को पंसन्द नहीं थे॥५॥ जो लोग उस राजा को पसन्द थे वे युवक थे और बुरा कार्य करने वाले थे । वे अच्छी स्त्रियों को लाने में चतुर थे तथा चोरी करने में प्रवीण थे । वे भाण्डों की तरह बातें बनाते रहते थे नृत्य में विशारद थे ऐसे ही लोग उस राजा को पसन्द थे । वे वशीकरण के मन्त्र को जानते थे तथा वस्त्र एवं औषधियों के ज्ञाता थे ॥६-७॥ राजा को धूर्त, नाचने वाले, गीत गाने वाले, तथा जूआ खेलने वाले लोग प्रिय थे । उस राजा ने अपने पिता के संत लोगों का परित्याग कर दिया ॥८॥ वह उन दुष्टों से ही विचार करके कार्यों को करता था । इस तरह से तथा दूसरे दुष्टों के साथ उसका सम्बन्ध हो गया ॥९॥ उन सबों की बातों को मानकर उसने दूसरे सुहृद तथा शिष्ट पुरुषों का परित्याग कर दिया । उसके वे ही लोग प्रिय थे जो अपना हृदय ठोकते थे और चिल्लाते थे ॥१०॥ जो योनि के लक्षण को जानने वाले थे और

रत्नानि वसुधान्यानि न दृश्यन्ते पुरे तदा। अथ भूपान्तरेणासौ निर्जितः प्रपलायितः ॥१३॥
महारण्यमथो गत्वा गिरिदुर्गमकल्पयत् । तत्र चाल्पपरीवारश्चौरवृत्तिसमाश्रितः ॥१४॥
सुवर्णवस्त्रधान्यादि रत्नगन्धादिकं तथा। तत्र तत्र विनिर्दिश्य चोरानानीय वञ्चकान् ॥१५॥
बन्धाद्यकारयत्तैस्तु द्रव्याहरणकर्मणि । यदाहारो न विद्येत तदाहारमकल्पयत् ॥१६॥
गोमहिष्यादिमांसेन यद्यन्नं नोपलभ्यते। अश्वीयनरमांसेन भोजनं पर्यकल्पयत्॥१७॥
एतादृशमभूद्वृत्तं सन्ध्योपासादिवर्जितम् । एकस्तु सचिवस्तस्य सुरापो नाम राक्षसः ॥१८॥
नियुङ्क्ते सर्वकालं तमाहार प्रहरेति च । एवं रक्षो मते स्थित्वा नानादेशगतान्नरान् ॥१९॥
नृसहस्त्रपरीवारो ह्यादद्यादकृपालयः । स्वस्याभिमतयोषास्तु ज्ञात्वा ज्ञात्वा समाहरत् ॥२०॥
किञ्चित्कालं च ता भुक्त्वा तासां मांसमभक्षयत् ।
एवं हत्वा नरान्नारी राज्यं चक्रे सुदुःसहम् ॥२१॥
एवं वर्षसहस्त्रं तु राज्यं कृत्वा नराधमः । जराशिथिलसर्वाङ्गो वलीपलितदूषितः ॥२२॥
निर्जीवमभवत्स्थानं समन्ताद्दशयोजनम् । अथ मृत्युदिनं प्राप्तं राज्ञस्तस्य महात्मनः॥२३॥
मृत्युकालेऽथ सम्प्राप्ते स्नातं भूमिगतं नृपम् ।
तस्य चानुचराः सर्वे परिवार्योपतस्थिरे ॥२४॥

रातिशास्त्र के ज्ञाता थे । उस समय वह राज्य राजनीति विहीन हो गया ॥११॥ हाथी, घोड़े, रथ, ऊँट, अज, गौ, भैंस आदि जो थे वे उन सबों को जहाँ-तहाँ से चोरों ने चुरा लिया । इस तरह वे सव नष्ट हो गये ॥१२॥ उस नगर में उस समय रत्न आदि तथा धन-धान्य कहीं दिखायी नहीं पड़ता था । उसके वाद दूसरे राजा ने उसको जीत लिया और वह राजा भी राज्य छोड़कर भाग गया ॥१३॥ वह महावन में जाकर पर्वतों को ही अपना किला वना लिया । वहाँ उसका परिवार बहुत छोटा था और वह चोरी करने का काम करने लगा ॥१४॥ सुवर्ण, वस्त्र, अन्न आदि रत्न तथा गंध आदि विभिन्न स्थानों पर बतलाकर चोरों को तथा ठगों को एकत्रित किया और उन सबों से लोगों को द्रव्य इत्यादि को चोरी करने के काम में लगाता था । जब अन्न का भोजन नहीं मिलता था तब वह गौ तथा भैंस इत्यादि के मांस का भोजन करता था। वह अश्वों तथा मनुष्यों के मांस का भी भोजन करता था ॥१५-१७॥ उसका इसी प्रकार का चरित्र हो गया वह सन्ध्योपासन आदि नहीं करता था । उसका एक मंत्री सुराप नाम का राक्षस था । उसको वह इसी कार्य में सदा लगाये रखता था कि तुम चोरी करो और लोगों को मारो । इस तरह से उस राक्षस के मनोनुकूल काम करने के कारण अनेक देश में गये हुए मनुष्यो को ॥१८-१९॥ दयाविहीन वह हजारों मनुष्यों को मारकर खा गया । वह अपने मनोऽनुकूल स्त्रियों को जानकर उन सबों का अपहरण कर लेता था॥२०॥ कुछ दिनों तक वह उन सबों का उपभोग करके वह उन सबों के मांस को खा लेता था । इस तरह से पुरुषों तथा स्त्रियों को मारकर वह अत्यन्त दुःसह राज्य को करता था ॥२१॥ इस तरह से वह नराधम एक हजार वर्ष तक राज्य करके बूढा हो गया । उसके सारे अङ्ग जराजीर्ण हो गये तथा उसके सारे बाल पककर गिर गये ॥२२॥ उसके चारों ओर दश योजन पर्यन्त सभी स्थान जीवों से रहित हो गये उसके बाद उस राजा की मृत्यु का दिन आ गया ॥२३॥ मृत्यु के समय के आ जाने पर राजा को स्नान कराकर भूमि पर सुला दिया गया । उसके सारे अनुचर उसको घेर कर खड़े थे ॥२४॥ उसके सुराप नामक मंत्री ने कहा आप

सुरापः सचिवः प्राह किंकार्यं मम चादिश ।
अथ राजा तथाऽशक्तो निर्गतायुस्तदार्दितः ॥२५॥
नाभेरधस्तु क्षीणासुः कथञ्चिद्वाक्यमुक्तवान् ।
त्वं सर्वकाले दैत्येन्द्र प्रहर प्राहराहर ॥२६॥
इत्यथोक्त्वा ममारासौ यमदूताः समाययुः। विचित्रं बन्धने यत्नं चक्रुस्ताडनतत्पराः ॥२७॥
चूर्णिता बन्धपाशाश्च हेतिदण्डाश्च चूर्णिताः। तद्गात्रस्पर्शमात्रे च तदद्भुतमिवाभवत् ॥२८॥
अथायातः स्वयं मृत्युः पाशेनैनमयोजयत् । मृत्युपाशमपि च्छिन्नं वीक्ष्य मृत्युरचिन्तयत् ॥२९॥
सर्वमर्त्यमृतिर्दृष्टा दृष्टानैतादृशी क्वचित् । इति चिन्तापरे मृत्यौज्वालावक्त्रःप्रतापवान्॥३०॥
वीरभद्रेण निर्दिष्टः सहसाऽऽयाच्च शूलभृत् ।
ज्वालावक्त्रमथालोक्य मृत्युस्तूर्णं पलायितः ॥३१॥
पलायमानं तं दृष्ट्वा मृत्युं वह्निमुखस्तादा ।
अरे रे चोर चोर त्वं तिष्ठ तिष्ठ क्व यास्यसि ॥३२॥
एनसो मुच्यते चोरः शूलरोपणमात्रतः । एवमाभाष्य मृत्युं तं शूलप्रोतमकल्पयत्॥३३॥
शूलस्कन्धगतं कृत्वादूतान्सङ्ग्रन्थ्य रज्जुना। पादशृङ्खलविन्यस्तानादायनृपमध्यगात् ॥३४॥
विमानवरमारोप्य गीतवाद्यसुशोभितम् । वीरान्तिकमथोगत्वा सर्वमस्मै न्यवेदयत्॥३५॥
वीरभद्रोऽपि तत्सर्वं शङ्करायामितात्मने । नानामुनिगणैर्देवैर्ब्रह्मविष्णुपुरःसरैः ॥३६॥

आदेश दें कि मैं क्या करूँ । किन्तु राजा ने आदेश देने में असमर्थ था उसकी आयु समाप्त हो गयी थी और वह दुःख से व्याकुल था ॥२५॥ नाभि के नीचे उसके प्राण बचे थे उसने किसी तरह से कहा—हे दैत्येन्द्र ! तुम सदैव मारने और हरण करने का काम करो ॥२६॥ इस तरह से कहने के पश्चात् वह मर गया और उसको लेने के लिए यमदूत आये । उन सबों ने उसको मारते हुए उसे विचित्र बंधन में बाँध दिया ॥२७॥ किन्तु उसके शरीर का स्पर्श होते ही बंधन के पाश चूर-चूर हो गये तथा वज्र के दण्ड भी चूर्ण हो गये उसके स्पर्श करने मात्र से यह आश्चर्य हो गया ॥२८॥ उसके बाद स्वयं मृत्यु आये और उसको पाश के बन्धन में बाँधे, किन्तु वह मृत्यु का पाश भी टूट गया । यह देखकर मृत्यु ने सोचा॥२९॥ मैंने आज तक जितने भी मनुष्यों की मृत्यु को देखा है, उनमें से किसी की भी इस प्रकार की मृत्यु को नहीं देखा । जब मृत्यु इस प्रकार की चिन्ता कर रहे थे उसी समय वहाँ पर वीरभ्रद के द्वारा भेजे गये प्रतापी ज्वालाचक्र अपने हाथ में त्रिशूल लिए हुए आ गये । ज्वालाचक्र को देखते ही मृत्यु वहाँ से जल्दी से भाग चले ॥३०-३१॥ भागते हुए मृत्यु को देखकर बह्निमुख ने कहा अरे चोर ! ठहरो ! ठहरो !! भागकर कहाँ जाओगे ?॥३२॥ पापी चोर को शूलारोपण करके ही छोड़ा जाता है । इस तरह से कहकर उन्होंने मृत्यु को त्रिशूल से छेद दिया ॥३३॥ उन्होंने त्रिशूल को अपने कंधे पर रखकर यमदूतों को रस्सी में एक साथ बाँध दिया । उन सबों के पैरों में बेंडी डालकर वह राजा के पास गया ॥३४॥ उसको श्रेष्ठ विमान पर बैठाकर बह्निमुख वीरभद्र के पास सबों को ले जाकर उन्हें समर्पित कर दिए ॥३५॥ वीरभद्र भी उन सबों को शङ्करजी को निवेदित कर दिए । उस समय शङ्करजी की अनेक मुनिगण, देवगण, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता स्तुति कर रहे थे । उस समय पार्वतजी भी उनके साथ विद्यमान थीं । वीरभद्र ने

सेव्यमानाय देवाय पार्वतीसहिताय च। प्रणिपत्य निवेद्याथ शूलस्थं मृत्युमेव च ॥३७॥
तूष्णीं बभूव विश्वात्मा वीरभद्रः प्रतापवान् ॥३८॥
अग्न्याननं वीक्ष्य शिवो निगर्हयन्कथं त्वयैतद्वण साहसं कृतम् ।
विभेषि मृत्योर्न कथं यमाधिकाद्वदस्व सर्वं परमार्थतो मे ॥३९॥
प्रणम्य तं वह्निमुखोऽतिरोषो मृत्युं समालोक्य ननर्त हर्षात् ।
उवाच चौर्यं कृतमेव मृत्युना तदेष शूलेऽपि मया प्ररोहितः ॥४०॥
विमोचयामास शिवोऽपि मृत्युं दूतानशेषानिन्निरुजश्चकार ।
मृत्युं समालोक्य शिवो बभाषे मन्नाम एषां मरणे समास्ते ॥४१॥
मच्चेतसमान्यधियां च नाम हीनाक्षरं वाऽधिकवर्णयुक्तम् ।
ममैव लोकं प्रददामि सत्यं ह्यनेन नामप्रहरेति भाषितम् ॥४२॥
प्रशब्दमात्रं त्वधिकं हरेरितपदप्रदं वै पदमीरयन्ति ।
आरादमूस्त्वं जपतो नमस्व मदीयवाक्यं च यमं वदस्व ॥४३॥
नतिं यतिं कीर्तिमुपास्तिमाश्रिता दास्यं च कैङ्कर्यमथ श्रुतिम्वदाः ।
पञ्चाक्षरोक्तिं शतरुद्रियोक्तिं शिवस्य कुर्वन्ति न ते विचार्याः ॥४४॥
मन्नामरुद्राक्षविभूतिधारणो ममाग्रतो यस्तु पुराणवक्ता ।
सर्वेषु पापेष्वपि तेषु सत्सु प्रशास्म्यहं नैव यमाधिकारः ॥४५॥

शङ्करजी को साष्टाङ्ग प्रणाम करके उन यमदूतों को तथा त्रिशूलस्थ मृत्यु को समर्पित कर दिया । फिर विश्वात्मा वीरभद्र मौन हो गये ॥३६-३८॥ अग्निमुख को देखकर शिवजी उसको डाँटते हुए कहे कि तुमने इस तरह का साहसिक कार्य क्यों किया ? तुम मृत्यु से क्यों नहीं डरते हो इन सारी बातों को तुम सच-सच बतलाओ ॥३९॥ अत्यन्त क्रोधी वह्निमुख ने शङ्करजी को प्रणाम करके तथा मृत्यु को देखकर हर्ष से नाचने लगे । उन्होंने कहा इस मृत्यु ने ही चोरी की है इसीलिए मैंने इसको त्रिशूल के अग्रभाग में बैठा दिया है ॥४०॥ शिवजी ने मृत्यु को छोड़ दिया और सभी यमदूतों को निरोग बना दिए । मृत्यु को देखकर शङ्करजी ने कहा मृत्यु के समय इसने मेरे नाम का उच्चारण किया है ॥४१॥ मुझमें जिसका मन लगा हो यदि वह मेरे नाम को न्यूनाक्षर के रूप में अथवा अधिकाक्षर के रूप में मेरे नाम का उच्चारण करता है, उसको मैं अपना ही लोक प्रदान करता हूँ । इसमें भी मृत्यु के समय मेरा प्रहर नाम उच्चारण किया है॥४२॥ प्रहर में तो मेरे हर नाम से अधिक प्रमात्र है । वह पद मेरा लोक प्रदान करने वाला है, ऐसा वेद बतलाता है । ऐसे जीवों को तुम दूर से ही प्रणाम कर लिया करो । मेरे इस वाक्य को यम को भी बतला दो ॥४३॥ नमस्कार, प्रशासन, कीर्ति तथा उपासना करने वालों को मैं अपना दास्य प्रदान करता हूँ ऐसा श्रुतियाँ कहती हैं । शिवजी के पञ्चाक्षर मन्त्र का उच्चारण अथवा शतरुद्रिय अध्याय का पाठ, जो लोग करते हैं, उन लोगों के विषय में कोई भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥४४॥ मेरा नाम, रुद्राक्ष तथा विभूति को धारण करने वाला मनुष्य है, अथवा जो मनुष्य मुझे पुराणों को सुनाता है । उसमें सभी पापों के रहने पर भी मैं उसका प्रशासन करता हूँ । उस पर यम का अधिकार नहीं है ॥४५॥ यदि कोई पापी अथवा मायावी भी मनुष्य हो जो दूसरो के अन्न, वस्त्र तथा पत्नी का उपभोग करने वाला भी

ये चापि पापान्वितमायिनो नराः परान्नवस्त्रादिवधूभुजश्च ।
वाराणसीमृत्युपराश्च ये वै श्रीशैलमर्त्याश्च न ते विचार्याः ॥४६॥
यूकाश्च दंशा अपि मत्कुणाश्च मृगादयः कीटपिपीलिकाश्च ।
सरीसृपा वृश्चिकशूकराश्च काशीमृताः शङ्करमाप्नुवन्ति ॥४७॥
इदं नाम गृणन्ध्यायेद्यो वै हृत्पद्ममन्दिरे। त्रियम्बकं विरूपाक्षं सोमं सोमार्द्धभूषणम् ॥४८॥
त्रिनेत्रकं त्रयीनेत्रं सोमसूर्याग्निलोचनम्। तं नमस्कृत्य दूरस्थो भव मृत्यो ! ममाज्ञया ॥४९॥
अथाकर्ण्य शिवप्रोक्तं मृत्युस्तुष्टाव शङ्करम्। नमस्ते देवतानाथ ! नमस्ते ! देवमूर्तये॥५०॥
सर्वज्ञाय नमस्तुभ्यं पशुनां पतये नमः। अथ देवो महादेवो मृत्युं प्राह वरं वृणु ॥५१॥
स्तोत्रेणानेन तुष्टोऽस्मि मृत्युर्वरमयाचत ।
त्वदीयं पालय विभो ! मां च शङ्कर ! पापिनम् ॥५२॥
तथेत्युक्त्वा मृत्युमीशो गच्छ वत्सेति चाब्रवीत् ।
यमलोकं गतः सोऽपि यमायाशेषमुक्तवान् ॥५३॥

शम्भुरुवाच

य इदं शृणुयान्नित्यं पुण्याख्यानमनुत्तमम्। विमुक्तः सर्वपापेभ्यो याति शङ्करसन्निधिम्॥५४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शिवराघवसंवाद एकादशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥१११॥

* * *

हो, ऐसा व्यक्ति यदि वाराणसी अथवा श्रीशैल पर अपने प्राणों का परित्याग करे तो उसके विषय में कुछ भी विचार करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है ॥४६॥ काशी में मरने वाले यूक, (चीलर) मच्छर, मत्कुण खटमल, मृग आदि कीट, चींटी, साँप, बीछी तथा सूकर भी मरकर शिवजी को प्राप्त कर लेते हैं। मेरे त्र्यम्बक, विरूपाक्ष, सोम, सोमार्द्धभूषण, त्रिनेत्र, त्रयीनेत्र, सोमसूर्याग्निनेत्र, इन नामों का उच्चारण करके हृदय में नमस्कार करने वाले लोगों को हे मृत्यो तुम नमस्कार करके उनसे दूर हट जाना यह तुमको मेरी आज्ञा है ॥४७-४९॥ इसके बाद शङ्करजी की बातों को सुनकर मृत्यु ने शङ्करजी की स्तुति की। हे देवताओं के स्वामिन् ! आपको नमस्कार है। हे देवमूर्ते ! आपको नमस्कार है ॥५०॥ हे सर्वज्ञ ! आपको नमस्कार है, हे पशुपते ! आपको नमस्कार है। इसके बाद महादेव शङ्करजी ने मृत्यु से कहा कि तुम वरदान माँगो ॥५१॥ तुम्हारे इस स्तुति से मैं प्रसन्न हूँ। मृत्यु ने वरदान माँगा कि हे शङ्करजी मैं आपका हूँ, आप मेरी रक्षा करें मैं पापी हूँ ॥५२॥ शङ्करजी ने कहा ठीक है वत्स ! अब तुम जाओ। मृत्य भी यमलोक में जाकर यम को सारी बातों को बतलाया ॥५३॥ जो कोई भी इस पवित्र तथा उत्तम आख्यान को सुनेगा वह सभी पापों से छूटकर शङ्करजी की सन्निधि में जायेगा ॥५४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शिवराघवसंवादान्तर्गत एक सौ ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१११।।

* * *

एक सौ बारहवाँ अध्याय

शम्भुरुवाच

अथान्यदपि निर्वच्मि प्रमदाख्यानमुत्तमम्। सुतया देवरातस्य यत्प्राप्तं नाम कीर्तनात् ॥१॥
देवरातसुता बाला कला नामाऽतिरुपिणी । धनञ्जयसुतस्यासीद्भार्या शोणस्य धीमतः ॥२॥
तावुभौ नियतौ नित्यं धर्मैकप्रवणौ शुभौ। लब्धवन्तौ निधिमथो गङ्गास्नानाय तौ गतौ ॥३॥
प्रवाहपतिते कूले मृत्तिकानयनाय तौ। कूलादादाय मृल्लोष्टं दृष्टवन्तौ महाघटम् ॥४॥
राजतं चोद्‌र्ध्वपाषाणमथ शोणः प्रियां वचः ।
इदमाह कथं कार्यं किं कर्तव्यं हि नोहितम् ॥५॥

भार्योवाच

न नारीमतमालम्ब्य किञ्चित्कार्यं समाचरेत्। न च नार्या चरेद् गुह्यमप्रियं वाऽथ किञ्चन ॥६॥
यदि नारीसमक्षं तु द्रविणं दृष्टिमापतेत् । वञ्चयीत तथा नारी त्वीदृशैर्वाक्यसञ्चयैः ॥७॥
अस्माभिर्न हि सम्प्रेक्ष्यं किं वा तत्र हि तिष्ठति ।
द्रविणं चेन्न संप्रेक्ष्यं बाधोदर्कं भविष्यति ॥८॥
अन्याज्ञातं तु यदि चेत्कुतो ज्ञानविनिश्चयः । अप्रदृष्टस्त्विदानीं चेन्निभृतः कोऽपि तिष्ठति ॥९॥
तिरोधानं न किञ्चिच्चेन्मायया कोऽपि तिष्ठति ।
न चेन्मायामनुष्याणां क्षेत्रपालस्तु तिष्ठति ॥१०॥
न हि चेद्भैरवश्चेह तिष्ठति ब्रह्मराक्षसः । न सोऽपि चेन्महाविद्या राज्ञां तत्र भविष्यति ॥११॥

शिवनाम माहात्म्य

शम्भु मुनि ने कहा— अब मैं आपको एक अन्य स्त्री का भी उत्तम आख्यान सुनाता हूँ । देवरात की पुत्री के नाम कीर्तन के द्वारा जिस फल को प्राप्त किया उसे मैं आपको बतलाता हूँ । देवरात की पुत्री का नाम कला था, वह अत्यन्त सुन्दरी थी । वह धनञ्जय के बुद्धिमान पुत्र शोण की पत्नी थी ॥१-२॥ वे दोनों नियम पूर्वक धर्म का पालन करते थे । उन दोनों ने खजाना प्राप्त किया था । वे एक बार गङ्गाजी में स्नान करने के लिए गये ॥३॥ नदी के तट के प्रवाह से टूटकर गिर जाने पर वे दोनों मिट्टी लाने के लिए गये थे । वहाँ से मिट्टी के ढेले को लेकर उन दोनों ने एक बहुत बड़े घड़े को देखा । उन दोनों ने चाँदी का एक ऊँचा पत्थर भी देखा । इसके बाद शोण ने अपनी पत्नी से कहा— अब हमलोगों को क्या करना चाहिए ? जिससे कि हमलोगों का कल्याण हो ॥४-५॥ **पत्नी ने कहा**— नारी के वचन को मानकर कोई काम नहीं करना चाहिए और नारी से किसी अप्रिय बात को भी नहीं छिपाना चाहिए ॥६॥ यदि नारी के सामने ही धन दिखायी पड़े तो, इसतरह के वाक्य समूह से नारी से उस बात को छिपा देना चाहिये॥७॥ उसमें क्या है ? इस चीज को हमलोगों को नहीं देखना चाहिए । धन नहीं देखना चाहिए उसका फल कष्टप्रद होता है ॥८॥ यह दूसरे के द्वारा अज्ञात हो तो इस बात का निश्चय कैसे किया जा सकता है ? यह यदि किसी के द्वारा आदृष्ट है तो कोई यहाँ छिपाकर बैठा होगा ॥९॥ यदि किसी चीज का तिरोधान नहीं होता है तो हो सकता है कि कोई माया करके यहाँ विद्यमान हो । नहीं तो माया मनुष्यों (मायावी

न च जानाति चेद्राजा व्यवहारादिसम्भवः। स चेद् गूढप्रकारेण चोरबाधा भविष्यति॥१२॥
अप्रमत्तस्य भवतो महानर्थो भविष्यति। प्रायेणार्थवतां नृणां भोगलिप्सा प्रजायते ॥१३॥
भोगाद्भोगान्तरेच्छा च सर्वानुष्ठाननाशिनी। जानाति यदि नारी स्वं भावयोगगतं तथा॥१४॥
नारी स्वतन्त्रतामेति रोषाल्लब्धप्रकाशिनी। रोषे विश्वासतां याति तदा दोषः पुरोदितः॥१५॥
विश्वासिनि च विश्रम्भः प्रवासो वान्यचित्तता ।
विश्रम्भाज्जायते स्त्रीणां नानाविध विचेष्टता ॥१६॥
यं कञ्चित्पुरुषं दृष्ट्वा युवानं प्रीतिरापतेत्। प्रीत्या सञ्जायते योगो योगान्मैथुनसङ्गतिः ॥१७॥
सततं मैथुने जाते विश्रम्भान्तरमापतेत्। भवता वा तथा पूर्वं भुक्तेदानीं च भुज्यते ॥१८॥
का प्रतीच्छा तवेदानीं प्रीतिः कस्यामथापि वा ।
का रिअवदग्धा सुसंस्निग्धा पुरुषादन्यतश्चरेत् ॥१९॥
योऽब्रवीदथ वाक्यं तां यदि ब्रूयास्त्वमद्य मे ।
सर्वमेव तथा वच्मि नान्यथा वाक्यमुच्यते ॥२०॥
इत्थं च धृष्टतां याता तथा रूपान्तरेण च। द्रव्यमादाय यत्किञ्चिदनुवर्ते स्वतन्त्रतः॥२१॥
स मारयित्वा तां द्रव्यं गृहीत्वा पातयिष्यति ।
अथ पूर्वं पतिमृतौ प्रविशेन्नाशुशुक्षणिम् ॥२२॥

लोगों) का क्षेत्रपाल इसमें विद्यमान हो सकता है इसमें कोई भयङ्कर ब्रह्मराक्षस बैठा हो। वह भी न हो तो इसमें राजाओं की महाविद्या बैठी हो सकती है ॥१०-११॥ यदि राजा नहीं जानता है तो इसका व्यवहार आदि भी हो सकता है। उसको छिपाये रखने पर चोर की भी बाधा हो सकती है ॥१२॥ सदा सावधान रहने वाले आपका महा अनर्थ भी हो सकता है। देखा जाता है कि जिस मनुष्य के पास धन होता है, उसको भोग प्राप्त करने का लालच बढ़ जाती है ॥१३॥ एक भोग को प्राप्त करने के बाद दूसरे भोग को प्राप्त करने की इच्छा होने लगती है। उससे समस्त अनुष्ठानों का नाश हो जाता है। यदि नारी उसको अपने भाग्ययोम से प्राप्त जान लेती हैं तो फिर नारी स्वतंत्र बन जाती है और क्रोध के द्वारा प्राप्त अर्थ का प्रचार करने लग जाती है। रोष होने पर उस पर विश्वास होता है और उसके बाद उसमें पूर्वोक्त दोष आ जाते हैं ॥१४-१५॥ विश्वास युक्त नारी पर पुरुष का विश्वास हो जाता है, और वह प्रवास में चला जाता है अथवा उसका मन अन्य में लग जाता है। विश्वास करने के कारण नारियाँ अनेक प्रकार की बुरी चेष्टायें करने लग जाती हैं ॥१६॥ वह जिस किसी भी युवक पुरुष को देखकर उसके साथ प्रेम करने लगती हैं। प्रेम के कारण दोनों का मिलन होता है और मिलने के बाद वह उसके साथ मैथुन करने लग जाती है ॥१७॥ निरन्तर मैथुन करने पर विश्वास में अन्तर आ जाता है। आपने भी वैसा पहले भोग किया है और इस समय उसका भोग कर रहे हैं ॥१८॥ उसके कारण वह पति की प्रतीक्षा नहीं करती है, अथवा किसी में भी (पति का) प्रेम नहीं होता है। चतुर नारियों का कोई भी स्नेहिल नहीं होती है, वह अपने पुरुष के अतिरिक्त दूसरे पुरुष के साथ चलने लगती हैं ॥१९। जिन वाक्यों को आपने मुझसे कहा है उस वाक्य को कोई भी अपनी स्त्री को कहता है। मैं वैसी ही बातें कह रही हूँ, मैं कोई इधर-उधर की बात (फालतूबात) नहीं कह रही हूँ ॥२०॥ इस तरह से नारी धृष्ठ (ढीठ) हो जाती है अथवा दूसरे

वैधव्ये द्रविणं सर्वं धर्मार्थं मे भविष्यति । इति निश्चित्य मनसा वैधव्ये समुपस्थिते ॥२३॥
योनिकुण्डं समासाद्य दिवा वा यदि वा निशि ।
एकान्तस्थानमभ्येत्य विवृत्य वसनं भगम् ॥२४॥
इदमूचे वचो दुःखादुपस्थस्थकरा सती । किं त्वया वै कृतं योने किंवा पापमुपाश्रिता ॥२५॥
शिश्नस्य वाथवा पापं यत्त्वदन्तरवेशनात् । यच्च कर्तृकृतं पापं मादृक्सेवाविवर्जनात् ॥२६॥
अतोऽपि कण्डूसम्भूतौ प्रवेशयेदथाङ्गुलीम् । विचित्रचेष्टा कृत्वा तु कण्डूबुद्धेरतःपरम् ॥२७॥
मर्दयित्वा कराभ्यां तत्सन्ताड्य च विवृत्य तु ।
असकृधुन्वती पादौ विवृतास्यातिदुःखिता ॥२८॥
खट्वाकाष्ठमथालिङ्ग्यस्तनपीडं यथाप्रियम् । अथोविचित्रचित्तत्वे ततःप्रद्युष्टतीभवेत् ॥२९॥
अथवाह्निपुरे स्थित्वा शाकं व्यवहृतं च यत् ।
आलम्व्य वेश्मनि निशि सन्ध्यायां विशिखासु च ॥३०॥
कृत्वान्यवेषमात्मानं यैःकैरप्युपभुज्यते । अथवाच्यप्रभावेन शङ्कितायोग्यमाहरेत् ॥३१॥
अज्ञातं च गृहं गत्वा रमयेदेव निश्चितम् । नारी समक्षं लब्धं तु द्रविणे ह्येतदिष्यते ॥
तस्मान्मयापि भवतो न विचारप्रयोजनम् ॥३२॥

शोण उवाच

एवमेतन्न सन्देहो गच्छ त्वं तिष्ठ दूरतः । मलमूत्रविसर्गार्थं स्थित्वा गच्छाम्यतः परम् ॥३३॥

प्रकार से वह धृष्ट हो जाती है । वह कुछ धन लेकर स्वतन्त्र बन जाती है ॥२१॥ वह जिसके साथ व्यवहार करती है वह उसको मारकर उसके द्रव्य को लेकर उसको कहीं फेंक देता है । यदि पहले पति मर जाता है तो अग्नि में प्रवेश नहीं करती है ॥२२॥ वह सोचती है कि विधवा हो जाने पर सारा मेरा धन धर्मार्थ हो जायेगा । विधवा हो जाने पर इस तरह से मन में निश्चित करके वह दिन अथवा रात में योनि रूपी कुण्ड को प्राप्त करके वह दिन अथवा रात्रि में एकान्त में जाकर अपने वस्त्र तथा योनि को खोलकर॥२३-२४॥ योनि पर हाथ रखकर दुःखी होकर कहती है कि अरे योनि तुमने कैसा कर्म किया है ? तुमने भयङ्कर पाप किया है ॥२५॥ क्योंकि तुमने दूसरे शिश्न को अपने भीतर प्रवेश कराया है । इस पाप कार्य को करने वाले ने मेरी सेवा भी नहीं की ॥२६॥ इतना होने पर भी यदि उसकी योनि में खुजली पैदा होती है तो वह अपनी अङ्गुलि को अपनी योनि में डाल देती है और वह खुजली की बुद्धि से विचित्र प्रकार के चेष्टायें करती हैं ॥२७॥ वह योनि को दोनों हाथों से फैलाकार उसको रगड़ती है । अत्यन्त दुःखी होकर वह अपने मुख को खोलकर बार-बार अपने दोनों पैरों को पटकती है ॥२८॥ वह काठ अथवा खाट को पकड़ कर अपनी इच्छा भर स्तनों को दबाती है । उसके पश्चात् चित्त में विकार आ जाने पर वह व्यभिचारिणी हो जाती है ॥२९॥ अथवा दिन में किसी पुरुष के साथ बातें करती है, घर में रात्रि में या संध्या के समय, या विशिखाओं (गलियों) में अपना दूसरा वेष बदलकर जिस किसी व्यक्ति के द्वारा उपभोग की जाती है। अथवा वाच्य (निन्दा) के प्रभाव से शङ्कित होकर वह योग्य व्यक्ति को अपने घर लाती है ॥३०-३१॥ वह अज्ञात घर में जाकर निश्चित रूप से उसके साथ रमण करती है। नारी के सामने धन प्राप्त होने पर ये ही सारी बातें होती हैं ॥३२॥ अतएव मेरे साथ आपको विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है । **शोण**

तस्यां गतायां शोणोऽपि वस्त्रखण्डं त्वकल्पयत् ।
एवैकस्मिंस्ततःखण्डे त्वग्रहीद्द्रविणं बहु ।।३४।।
सैकते विवरं जानुदध्नं कृत्वा ततस्ततः। क्षिप्त्वा धनं पूरयित्वा विष्ठां चक्रे ततोपरि ।।३५।।
वस्त्राधारं घटं तं च प्रतिचिक्षेप कुत्रचित्। सर्वमज्ञातवत्कृत्वा स्नानाय प्रययौ मुनिः ।।३६।।
तस्य भार्या ततः स्नानं कृत्वा सम्पूज्य पार्वतीम् ।
गच्छेति भर्त्रा सा प्रोक्ता स्ववेष्माभ्यागमत्सती ।।३७।।
एतामेकाकिनीं ज्ञात्वा मारीचो नाम राक्षसः ।
भर्तृरूपमथास्थाय कलामेतदुवाच ह ।।३८।।

मारीच उवाच

सप्तगोदावरीतीरे पवित्रं पापनाशनम्। द्राक्षाराममिति प्रोक्तं यत्र भीमः स्वयं स्थितः।।३९।।
भुक्तिमुक्तिप्रदो नृणां स्मरणात्पापनाशनः । तत्र गच्छावहे शीघ्रं त्वं तु निर्गच्छ सुन्दरि ।।४०।।

कलोवाच

इदानींमभिषेकाय प्रवृत्तो नाभिषिक्तवान्। कथमेतादृशं त्वं हि पूर्वानुक्तं वदिष्यसि ।।४१।।
प्रकृतेरन्यथा भावमुत्पातं विदुरुत्तमाः ।।४२।।

मारीच उवाच

भर्तुरप्रतिकूलत्वं नारीणां धर्म उच्यते । प्रतिकूलानुकूला वा मम शीघ्रं वदस्व तत्।।४३।।
तूष्णीं भूत्वाऽथ सा साध्वी भर्तेत्येव विचार्य तम् ।
निर्ययौ तेन सा बाला वनमध्ये गता सती ।।४४।।

ने कहा— निस्सन्देह तुम्हारी बातें सत्य हैं । तुम यहाँ से दूर चली जाओ ।।३३।। अब मैं यहाँ ठहर कर बाद में मलमूत्र का त्याग करने के लिए जाऊँगा । उसके चले जाने पर शोण ने अपने कपड़े के टुकड़े कर दिए ।।३४।। वह एक-एक टुकड़े मे बहुत अधिक धन ले लिया । उसने बालु में घुटने-घुटने पर कई स्थानों पर गढा बनाया ।।३५।। उसमें धन को गाड़ करके उसको रखकर उसके ऊपर विष्ठा कर दिया । उसके बाद जिस घड़े में धन था उसको कहीं फेंक दिया ।।३६।। इन समस्त कार्यो को अज्ञात के समान करके वह स्नान करने के लिए चला गया । उसकी पत्नी तब तक स्नान करके तथा पार्वतीजी की पूजा करके आयी ।।३७।। उसको पति ने कहा कि तुम जाओ और वह अपने घर चली गयी । उसको अकेली समझकर मारीच नामक राक्षस ।।३८।। उसके पति का रूप बनाकर कला से कहा । **मारीच ने कहा**— सप्त गोदावरी नदी के तट पर पापों को विनष्ट करने वाला पवित्र द्राक्षाराम है । वहाँ पर भीम नामक शङ्करजी का लिङ्ग स्वयं स्थित है । वह मनुष्यों को भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले हैं तथा स्मरण करने मात्र से पापों का विनाश करने वाले हैं ।।३९-४०।। हम दोनों वहाँ शीघ्र चलें, हे सुन्दरि ! तुम आगे निकलो। **कला ने कहा**— अभी तुम अभिषेक करने वाले थे और अभिषेक भी नहीं किए ।।४१।। ऐसा अपने पहले कभी नहीं कहा था आज आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ? उत्तम पुरुषों का कहना है कि प्रकृत का परित्याग करने से उत्पात होता है ।।४२।। **मारीच ने कहा**— नारीयों का यही धर्म है कि वे कभी भी पति के मन के प्रतिकूल कार्य न करें । प्रतिकूल हो अथवा अनुकूल हो मुझको शीघ्र बतलाओ ।।४३।। उसके बाद वह

अथ मध्याह्नकालोऽसौ क्रियतामाह्निकक्रियाः ।
राक्षसोऽथ वचः श्रुत्वा नानुष्ठानस्थलं त्विह ॥४५॥
यत्र तत्रास्ति गन्तव्यमितो गच्छावहे ततः। किञ्चित्प्रदेशं गत्वा तु गुहां वीक्ष्य सरस्तथा ॥४६॥
इह स्थानं हि मे स्थातुं कार्यं स्नानमथ प्रिये ! ।
इत्युक्त्वा सरसि स्नात्वा फलाहारं प्रकल्प्य च ॥४७॥
भोजनावसरे प्राप्ते कलादध्यावुमां शिवम् । अयं धवो मम न वा इति ध्यानपराऽभवत्॥४८॥
अथ ध्यानेन तं चोरं निश्चित्य च पतिव्रता। भीताति नम्रवदना अश्रुपूर्णमुखी तदा ॥४९॥
कष्टमापतितं पापमित्युक्त्वा निपपात च । रुदतीं तामथो दृष्ट्वा राक्षसः पापनिश्चयः ॥५०॥
धार्षितुं तामथारेभे न चैतद्धर्षणं प्रति । बलात्कारमथोकर्तुं यतमाने तु राक्षसे ॥५१॥
आजानुनाभिपर्यन्तं शैलस्थानमकल्पयत् । शिलासमभवद्वस्त्रं राक्षसो वीक्ष्य तामथ॥५२॥
इत्येवं तां हनिष्यामि खादयिष्याम्यतः परम् ।
इत्युक्त्वा भ्रामयित्वाऽसिं शिरश्छेत्तुं प्रचक्रमे ॥५३॥
कलाहंमत्पतिर्ज्ञात्वा शापं दास्यति माहर । इत्युक्तमात्रे वचसि शिरश्चिच्छेद राक्षसः ॥५४॥
प्राप्तायां दुर्मृतिं तस्यामथ शैवाः समागताः ।
दूता विचित्राभरणाःसर्वायुधधराः शुभाः ॥५५॥
एतां विमानमारोप्य शिवलोकमुपागमन् । तामागतां गिरिसुताहर्षेण प्रतिपूज्य च ॥५६॥

साध्वी चूप होकर, ये पतिदेव हैं, मन में विचार करके उसके साथ निकल पड़ी वह वन में गयी ॥४४॥ दो प्रहर की बेला में उसने कहा यह दोपहर हो गया है, आप मध्याह्न की क्रिया को कर लें । उसकी बात को सुनकर राक्षस ने कहा यह अनुष्ठान के योग्य स्थान नहीं है ॥४५॥ जहाँ अनुकूल स्थान है, वहाँ हमदोनों चलें कुछ दूर जाकर एक गुफा और सरोवर को देखकर ॥४६॥ उसने कहा यही स्थान हमलोगों को ठहरने के लायक है, हे प्रिये ! यहाँ हम स्नान करें । इस तरह से कहकर उसने स्नान करके फलाहार की व्यवस्था कर दी ॥४७॥ भोजन के समय कला ने शङ्कर तथा पार्वती का ध्यान किया । वह ध्यान करने लगी कि यह मेरा पति है कि नहीं ?॥४८॥ उसके बाद ध्यान के द्वारा उसको चोर जानकर वह पतिव्रता अत्यन्त भयभीत होकर अपने मुख को झुका ली । उसकी आँखों में आँसू भर गया ॥४९॥ अरे यह तो बहुत बड़ा पाप हो गया यह कहकर वह गिर पड़ी । उसको रोती हुयी देखकर पापी राक्षस ॥५०॥ उसके साथ बलात्कार करना चाहा किन्तु कर नहीं सका । जब वह राक्षस उसके साथ बलात्कार करने का प्रयास कर रहा था ॥५१॥ उस समय घुटने से लेकर नाभि पर्यन्त का उसका वस्त्र शिला के समान हो गया । शिला के समान वस्त्र और उस युवती को देखकर वह ॥५२॥ सोचा कि मैं इसी तरह से इसको मारकर खा जाऊँगा । इस तरह कहकर वह तलवार घुमाकर उसके शिर को काटना चाहा ॥५३॥ उस समय उसने कहा— मैं कला हूँ तुमको अपना पति जानकर आयी हूँ । यह तुमको शाप दे देगी, ऐसी आकाशवाणी होते ही उसने उसका शिर काट दिया ॥५४॥ उसकी इस तरह से दुर्मृत्यु हो जाने पर उसको लेने के लिए वहाँ शिवजी के गण आये । वे सब विचित्र अलङ्कार धारण किए थे । तथा सब आयुध धारण किए थे॥५५॥ उसको वे सब विमान पर बैठकर शिवलोक में चले गये । उसको आयी हुयी देखकर पार्वतीजी

स्वपादप्रणतां शुद्धामुमावाक्यमभाषत। पातिव्रत्येन ते तुष्टा अभीष्टं प्रददामि ते॥५७॥

कलोवाच

दासीभावं प्रयच्छ त्वं त्वत्पादाब्जं मम प्रियम् ।
प्रार्थ्यैः किमन्यैर्बहुभिस्तथास्त्विति शिवाऽब्रवीत् ॥५८॥
इन्द्रादि वनिताभिः सा पूजिताऽथ कलानिधिः ।
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तः शोणो मुनिरथो गृहम् ॥५९॥
न तत्र दृष्ट्वा तां भार्यां ध्यानयोगपरोऽभवत् ।
रक्षोहतां मृतां प्राप्तां शिवलोकमुमां प्रति ॥६०॥
उमादत्तवरां चापि दृष्टवाज्ज्ञानचक्षुषा। किञ्चिद्दुःखश्चिरं ध्यात्वापरावृत्य मुनिस्तदा ॥६१॥
श्वशुरं गतवान्सोऽथ देवरातो मुनीश्वरः। निवेद्य सर्वं सहितो विश्वामित्रगमान्मुनिम् ॥६२॥
निवेद्य तद्वसिष्ठस्य वसिष्ठोऽप्याह तान्मुनीन् ।
गत्वा कैलासमादौ तु दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥६३॥
अनुज्ञां शिवतो लब्ध्वा पार्वतीमन्दिरे गताः ।
देव्यै विज्ञाप्य तत्सर्वं यथार्थं प्रवदामतत् ॥६४॥
तथेत्युक्त्वा मुनिवराः कैलासं शङ्करालयम् ।
गत्वा प्रणम्य देवेशं वीरभद्रेण पूजिताः ॥६५॥
विज्ञापयामासुरिदं शोणभार्याहृतेति च ।
शिवः प्राह मुनीन्द्रांस्ताञ्ज्ञातमेव मया त्विदम् ॥६६॥

ने उसकी प्रसन्नता पूर्वक पूजा की ॥५६॥ अपने चरणों पर पड़ी हुयी कला को पार्वतीजी ने कहा । मैं तुम्हारे पातिव्रत्य धर्म के कारण प्रसन्न हूँ । तुम जो चाहो वह मैं प्रदान करूँगी ॥५७॥ **कला ने कहा**— आप मुझे अपनी दासी बना लें आपके चरण मुझे प्रिय हैं । पार्वतीजी ने कहा— अब दूसरी वस्तुओं को माँगने से क्या लाभ हैं ? तुम जो चाहती हो वही होगा ॥५८॥ इन्द्र आदि देवताओं ने उस कला की पूजा की । उसी समय शोण अपने घर आये ॥५९॥ वहाँ पर अपनी पत्नी को नहीं देखकर वह ध्यान करने लगे । उन्होंने अपने ध्यान योग के द्वारा जान लिया कि कला का राक्षस ने अपहरण कर लिया, वह मर गयी है, और पार्वतीजी के लोक में चली गयी है ॥६०॥ और पार्वतीजी ने उसको वरदान दे दिया है । कुछ दुख पूर्वक मुनि ने उसका दीर्घकाल तक ध्यान किया वहाँ से लौटकर शोण अपने श्वशुर देवरात के पास गये । उन्होंने उनको सम्पूर्ण बातों को बतलाया और उनको साथ लेकर वे महर्षि विश्वामित्र के पास गये ॥६२॥ उनलोगों ने सारी बातें विश्वामित्र महर्षि को बतलाया । उसके बाद वे सब वसिष्ठ महर्षि को जाकर बतलायें, वसिष्ठ महर्षि ने उन मुनियों से कहा पहले कैलास पर्वत पर जाकर उसके पहले शङ्करजी का दर्शन करें ॥६३॥ शिवजी की आज्ञा से हम सब पार्वतीजी के गृह में जायँ । पार्वतीजी को सारी बातें हमलोग बतलायें ॥६४॥ सभी मुनिवरों ने कहा ठीक है । वे सबके सब शङ्करजी के गृह कैलास पर्वत पर गये । उन लोगों ने शिवजी को प्रणाम किया और वीरभद्र ने उन सबों की पूजा की ॥६५॥ उनलोगों ने शोण की पत्नी के अपहरण का वृत्तान्त बतलाया । शिवजी ने उन मुनीन्द्रों से कहा कि मैं इस बात को

अकालमरणं त्वस्या आयुर्वर्षशतं स्थितम् । अकालमृत्युयुक्तानां पुनर्जीवनमस्ति च ॥६७॥
दशपुत्रप्रसूर्वीरा रूपसौभाग्यवत्यपि । भवद्भिरिति निश्चित्य समागतमिह द्विजाः ॥६८॥
यमलोकगतानां तु सर्वमेतद्विनिश्चितम् । ममलोकगतानां च गतिरन्या न विद्यते ॥६९॥
अनया कीर्तितं नाम प्राणनिर्गमने पुरा । तया यमलिपिर्मृष्टा कथमायुष्यनिर्णयः ॥७०॥
अथवा गिरिजायै च निवेदयत कृत्स्नशः । अथ ते पार्वतीपाददर्शनाय गता द्विजाः ॥७१॥
प्रणम्य मातरं सर्वे विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम्। दीनानाथा कृशा भार्या प्रनष्टपितृकाञ्छिशून् ॥७२॥
रक्षयित्वा पुरा मातरिष्टदा त्वं सदा ह्यभूः । कला पौत्री ममैवेयं त्वामाराध्य पतिं त्वमुम् ॥७३॥
शोणं लब्धवती मातस्त्वत्पूजायाः फलं त्विदम् ।
तपसा लभ्यतेऽपर्णे ! दानेन यदि वाऽपि च ॥७४॥
व्रतोपवासैरथवा कला सा लभ्यते मया । एतया परिविष्टान्नं भोक्तुमिच्छामि तत्कथम् ॥७५॥

पार्वत्युवाच

यादृशी चेष्यते भार्या तादृशी दीयते मया । नैनां त्यमुक्तुमहं शक्ता किं वा त्वं मन्यसे मुने॥७६॥

विश्वामित्र उवाच

माता त्वमित्येव मया अविशङ्कितमीरितम्। शोणो मुनिरयं मातस्तव विज्ञापयिष्यति॥७७॥

शोण उवाच

तामेव भार्यां प्रति मे प्रीतिरत्युत्कटा सति । सैव मे दीयतां भार्याचान्यथामरणं भवेत् ॥७८॥

जानता हूँ ॥६६॥ उसकी अकाल मृत्यु हुयी है, अभी उसकी सौ वर्ष की आयु बची हैं ॥६७॥ वह दश पुत्रों की माता है, तथा रूप और सौभाग्य से युक्त हे द्विजों ! इस बात का निश्चय करके ही आपलोग यहाँ आये हैं ॥६८॥ यमलोक में जाने वालें की ये सारी बातें निश्चित रहती है, किन्तु मेरे लोक में रहने वालों की दूसरी गति होती ही नहीं हैं ॥६९॥ प्राणों के निकलने से पहले इसने मेरे नाम का उच्चारण किया है । उसके द्वारा यम की लिपि मिट गयी अव उसकी आयु का निश्चय कैसे हो सकता है ?॥७०॥ अथवा आपलोग इन सारी बातों को पार्वतीजी से कहें । उसके बाद वे सभी ब्राह्मण पार्वतीजी का दर्शन करने के लिए गये ॥७१॥ सबों ने माता पार्वती के चरणों में प्रणाम किया उसे बाद महर्षि विश्वामित्र ने पार्वतीजी से कहा हे मातः ! आप हमदोनों की स्वामिनी हैं आपने जिनके पिता नष्ट हो गये हैं, ऐसे बच्चों की सदा रक्षा की है और उन सबों को सदा अभीष्ट वस्तुओं को प्रदान किया है । कला मेरी पौत्री हैं । इसने आपकी आराधना करके इसको अपने पति के रूप में प्राप्त किया है ॥७३॥ आपकी पूजा के फलस्वरूप से शोण को पति के रूप में प्राप्त किया है । हे अपर्णे ! यदि तपस्या करने से या दान करने से ॥७४॥ या व्रत अथवा उपवास करने से यदि कला की प्राप्ति हो सके तो आप उसे बतलायें । मैं चाहता हूँ कि इसके द्वारा परोसा गया अन्न मैं खाऊँ, यह कैसे सम्भव हैं ?॥७५॥ **पार्वतीजी ने कहा—** शोण जैसी पत्नी चाहें वैसी पत्नी मैं दे रही हूँ, किन्तु इसको मैं नहीं त्याग सकती हूँ । हे मुने ! आप इसे कैसा मानते हैं ?॥७६॥ **विश्वामित्र ने कहा—** आप माँ है, इस बात को जानकर मैंने विना शङ्का के अपनी बात कही ये शोण मुनि ही इसके विषय में आपसे प्रार्थना करेंगे ॥७७॥ **शोण मुनि ने कहा—** मुझे उसी पत्नी के प्रति प्रेम और आसक्ति है । आप मुझे उसी पत्नी को दे दें अन्यथा मैं मर जाऊँगा ॥७८॥ **पार्वतीजी ने कहा—**

पार्वत्युवाच

भार्या पतिसमावेव विषमौ तु विगर्हितौ ।
तव चासदृशी चेयं सदृशीं प्रददाम्यहम्। न च मन्मन्दिरे प्राप्तां त्यक्ष्ये देहविवर्जिताम्॥७९॥

शोण उवाच

यदि नो दीयते चेयं भार्यामन्यां ममप्रियाम् ।
राज्यं महेश्वरे भक्तिं प्रयच्छवरमुत्तमम् ॥८०॥
भविष्यत्येवमेवैतादित्युक्त्वा चाब्रवीन्मुनीन् ।
भोक्तव्यमिह युष्माभिर्ममास्मिन्दिवसत्रयम् ॥८१॥
प्रतीन्दुवारे देवस्य महेशस्यैव तुष्टये। भोजनीयाः सदाकालमष्टौ विप्रा मुनीश्वराः॥८२॥
इच्छया यत्र कुत्रापि व्रतमेतदुपक्रमेत्। वत्सरे परिपूर्णे तु महाराजतमीश्वरम्॥८३॥
चतुर्निष्कप्रमाणेन तदर्द्धेनैव कारयेत्। श्वेतवस्त्रयुगं सूक्ष्मं चामरे व्यजने तथा॥८४॥
पादुकोपानहं छत्रं सर्वं विप्रे नियोजयेत् ।
स्वशक्त्या दक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणांश्च विसर्जयेत् ॥८५॥
एतदुद्यापने कुर्यादादौ मध्ये तथा सुधीः। दिने दिने तथा पूजा सोमस्य परमात्मनः ॥८६॥
तत्पुरुषस्य विद्महे महादेवस्य धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥८७॥

इति पूजामन्त्रः

स्थण्डिले पूजयेद्देवं प्रतिमायामथापिवा। एकभक्तं स्वयं कुर्याद्ब्रह्मचर्यसमन्वितम् ॥८८॥
एतत्सोमव्रतं प्रोक्तं शिवतुष्टिप्रदं शुभम्। य एवं कुरुते भक्त्या नारी वा पुरुषोऽपिवा॥८९॥

पति और पत्नी को तो एक समान होना चाहिए विषम पति और पत्नी तो निंदित होते हैं । यह तुम्हारे सदृश नहीं है, तुम्हारे सदृश पत्नी को मैं तुम्हे दे रही हूँ ॥७९॥ मेरे घर आयी हुयी तथा देह से रहित इसको मैं नहीं त्याग सकती हँ । **शोण ने कहा—** यदि आप मुझे इस पत्नी को नहीं दे सकती है तो आप मुझे दूसरी प्रिय पत्नी को प्रदान करें ॥८०॥ मुझे राज्य दें तथा महेश्वर में भक्ति का उत्तम वरदान दें । ये सारी बातें आपको प्राप्त होंगी यह पार्वतीजी ने उन मुनियों से कहा ॥८१॥ यहाँ पर आपलोग यहाँ तीन दिन तक भोजन करे । प्रत्येक सोमवार को शङ्करजी की प्रसन्नता के लिए ॥८२॥ हे मुनीश्वरों ! आपलोग आठ ब्राह्मणों को भोजन करायें । अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ कहीं भी आपलोग इस व्रत को प्रारम्भ कर सकते हैं ॥८३॥ जब एक वर्ष पूरा हो जाय तो शङ्करजी की महारजत की चार निष्कों अथवा उसके आधे की मूर्ति बनाये ॥८४॥ उसके बाद ब्राह्मण को दो सूक्ष्म श्वेत वस्त्र, दो चामर, दो पङ्खा, पादुका, उपानह तथा छत्र इन सभी वस्तुओं को दान दें ॥८५॥ अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देकर ब्राह्मण की विदाई करें । बुद्धिमान को व्रत के आदि मध्य और अन्त में उसका उद्यापन को करना चाहिए।॥८६॥ प्रतिदिन परमात्मा सोम की पूजा करनी चाहिए ॥८७॥ उनके पूजा मन्त्र इस प्रकार है **तत्पुषस्य विद्महे, महादेवस्य धीमहि, तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्** अर्थात् हम तत्पुरुष शङ्करजी को जानते हैं । महादेव का हम ध्यान करते हैं, वे रुद्र हमारी बुद्धि को प्रेरित करें ॥८८॥ शङ्करजी की पूजा स्थण्डिल अथवा प्रतिमा पर करनी चाहिए । ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए एक शाम ही भोजन करना चाहिए ॥८९॥

छायेव शङ्करस्यासौ नित्यमेवानुवर्तते। अद्य सोमदिनं प्राप्तं मध्याह्नात्परतो भुजिः ॥९०॥
यूयं च सर्वे मुनयः कृतपौर्वाह्णिकक्रियाः। माध्याह्निकीं क्रियां कृत्वा भोक्तुमर्हथ सत्तमाः॥९१॥
मातुर्वचनमाकर्ण्य तथेत्युक्त्वा नमस्य च। अनुष्ठानाय ते सर्वे गता भागीरथीं नदीम्॥९२॥
सङ्गमे मध्यतो वृत्ते कृत्वा माध्याह्निकीं क्रियाम्।
विश्वेशपूजां कृत्वा च षोडशैरुपचारकैः ॥९३॥
अथ ते पार्वतीगेहं गत्वा देवीं प्रणम्य च। लोकमातुर्नियोगेन शालङ्कायनकात्मजः॥९४॥
पादप्रक्षालनमुखानुपचारानकल्पयत्। पञ्चगन्धकमादाय तान्मुनीनभ्यलेपयत्॥९५॥
राज्यं च महदाप्नोति यो दद्यात्पञ्चगन्धकम्।
पञ्चबाणसमो भूत्वा स्त्रीणां बल्लभतामियात् ॥९६॥
विष्णवे यो हि दद्यात्तु सोऽपि मारसमो भवेत्।
कामी त्वकामी यः कुर्यात्कैलासे पञ्चवत्सरान् ॥९७॥
सर्वगन्धसमोपेतो भोगीचेष्टार्थसंयुतः। यथेष्टवर्त्तनो भूत्वा ततो जायेत भूमिपः॥९८॥
कस्तूरीचन्दनं चन्द्रागरुद्वितयं तथा। पञ्चगन्धं समाख्यातं सर्वकार्येषु शोभनम्॥९९॥
विलप्तपञ्चगन्धेषु ब्राह्मणेषु महात्मसु।
आसीनेषु तदाभ्यागाद्ब्राह्मणः स्थविरः कृशः ॥१००॥
उन्मत्तवेषो दिग्वासा जराजर्जरितस्त्वरी।
खल्वाटः श्वासकासी च बहुहिक्की क्षुधान्वितः ॥१०१॥

यह शङ्करजी को प्रसन्न करने वाला शुभ सोमव्रत है। जो कोई स्त्री अथवा पुरुष इस सोमव्रत को भक्तिपूर्वक करता है ॥९०॥ वह शङ्करजी की छाया के समान उनके पीछे-पीछे चलता है। आज सोमव्रत है, दिन के दूसरे भाग में भोजन करें ॥९१॥ आप सभी ऋषिगण पूर्वाह्न की क्रिया करके उसके बाद माध्याह्न की क्रिया करके भोजन करें ॥९२॥ माता पार्वती की बातों को सुनकर सबों नें कहा ठीक है, और सबों ने उनको नमस्कार किया। वे सबलोग अनुष्ठान करने के लिए भागीरथी नदी में गये ॥९३॥ सङ्गम के बीच में जाकर माध्याह्न की क्रियाओं को करके, उन लोगों ने विश्वेश्वर की सोलहों उपचारों से पूजा की ॥९४॥ उसके बाद वे लोग पार्वतीजी के घर में जाकर उनको प्रणाम किए। पार्वतीजी की आज्ञा से शालंकायन के पुत्र ने ॥९५॥ उनके पादप्रक्षलान आदि उपचारों को सम्पन्न किया। उसने पञ्चगन्ध को लेकर उसका लेप मुनियों को लगाया ॥९६॥ जो पञ्चगन्ध का दान देता है वह महान् राज्य को प्राप्त करता है। वह कामदेव के समान होकर स्त्रियों को प्रियतम बन जाता है ॥९७॥ जो भगवान् विष्णु को पञ्च गन्ध चढ़ाता है, वह भी कामदेव के समान सुन्दर हो जाता है। कामित्व को चाहने वाला पाँच वर्षों तक कैलास पर्वत पर पञ्चगन्ध प्रदान करता है ॥९८॥ वह सभी गन्धों से युक्त अभिप्रेत विषयों का भोग करता है। वह यथेष्ठ व्यवहार करने वाला होकर राजा होता है ॥९९॥ कस्तूरी, चन्दन, चन्द्रक और दोनों प्रकार के अगरु इन सबों को पञ्चगन्ध कहते हैं यह सभी कार्यों में अच्छा माना जाता है ॥१००॥ उन महात्माओं को पञ्च गन्ध लगाने के बाद, जब वे बैठ गये तो एक बूढा तथा दुर्बल ब्राह्मण आये ॥१०१॥ वे ब्राह्मण उन्मत्तवेष

लालास्नुतः श्मश्रुकूर्चः श्लेष्मानम्रः स्खलत्पदः ।
द्व्यष्टवर्षा तथा नारी सर्वाभरणभूषिता ॥१०२॥
रूपलावण्यसंयुक्ता लोकोत्कृष्टस्वरूपिणी। पुरूषान्रूपसंयुक्तान्वीक्षन्ती च ततस्ततः ॥१०३॥
गायन्ती त्वथ नृत्यन्ती तं दृष्ट्वाऽऽह सतीपतिम् ।
प्रबाधने बृद्धधवं शीघ्रमेहि कृशाधम ॥१०४॥
आलम्ब्य त्वत्करं बृद्ध दुःखिता नित्यमस्म्यहम् ।
भूषणं वसनं घ्राणं स्त्रग्विलेपनमेव च ॥१०५॥
हासो गीतिस्तथापानं मण्डनं शोभनं गृहम्। सर्वमृतुसमृद्धिश्च कामस्यैवाभिवृद्धये ॥१०६॥
सर्वेषामेव कामानां रतिरेका प्रयोजनम् । सुखानि सर्वाण्येकत्र रतिरेकत्र च स्थिता ॥१०७॥
तुलया तुलितं सर्वं रतिः शतगुणाधिका । तन्मादृशी समासाद्य भवन्तं किं करिष्यति ॥१०८॥
इति चान्यानि वाक्यानि ब्रुवाणा गृह्य वै करे ।
तदुत्तरमुवाचेदं किं कुर्मो भाग्यमीदृशम् ॥१०९॥
मा मारय दुरक्त्या त्वं मां विज्ञायाय चेदृशम् ।
एतादृशो द्विजः प्रायात्पार्वतीमन्दिरं तदा ॥११०॥
अविज्ञायैव गिरिजामिदं वचनब्रवीत् ॥१११॥

द्विज उवाच

अन्नार्थिनमिह प्राप्तं विद्धि मामतिथिं मुने। भोजनावसरे प्राप्तं ब्राह्मणान्नहि भोजय ॥११२॥
तद्भार्यावचनं प्राह क्व मुनिर्योषिदेव हि। अन्धस्य वचनं सर्वमेवमेतादृशं दृढम् ॥११३॥

में नग्न थे । उनका शरीर बूढापे से जर्जर हो गया था । वे खल्वाट थे । उनको श्वास और कास की बिमारी थी । उनको बार-बार हिचकी आती थी, वे भूखे थे ॥१०२॥ लार से उनकी दाढी भिंगी थी, कफ के कारण झुके हुए उनके पैर लड़खड़ा रहे थे । उनकी सोलह वर्ष की नारी थी और सभी अलङ्कारों से अलंकृत थी ॥१०३॥ वह रूप तथा सौन्दर्य से सम्पन्न थी तथा सर्वोत्कृष्ट प्रकाश स्वरूपिणी थी । वह इधर-उधर रूप सम्पन्न पुरुषों को देख रही थी ॥१०४॥ वह गाती और नृत्य कर रही थी, और उसको (वृद्ध को) पति रूप से देखकर हँसती थी । वह कह रही थी कि हे कृशाधम शीघ्र आओ मुझको वृद्ध पति कष्ट देता है ॥१०५॥ हे वृद्ध ! तुम्हारा हाथ थामकर तो मैं सदैव, दुःखी रहती हूँ । भूषण, वस्त्र, सुगन्धि, माला तथा विलेपन ॥१०६॥ हँसी, गीत तथा पेय पदार्थ, अलङ्कार, सुन्दर गृह, सभी ऋतुयों में समृद्धि ये सबके-सब काम की ही समृद्धि के साधन हैं ॥१०७॥ सभी कामों का एकमात्र प्रयोजन रति है। एक तरफ सभी प्रकार के सुख तथा एक तरफ रति जन्य सुख को यदि तराजू पर रखकर तौला जाय तो रतिजन्य सुख उसके सौ गुना भारी होगा । अतएव मुझ जैसे नारी आपको प्राप्त करके क्या करेगी?॥१०९॥ इसतरह से तथा दूसरे प्रकार के भी वाक्याक वह वृद्ध का हाथ पकड़ कर कह रही थी । उसके उत्तर में वृद्ध ने कहा मैं क्या करूँ ? हमारा भाग्य ही ऐसा है ॥११०॥ मुझको इस प्रकार का जानकर अपनी दुरुक्ति के द्वारा मुझको मारो मत । इस प्रकार का ब्राह्मण पार्वतीजी के मंदिर में गया ॥१११॥ वह पार्वतीजी को जाने बिना ही कहा । **ब्राह्मण ने कहा—** हे मुने ! मैं अतिथि हूँ, भोजन करना चाहता

पार्वत्युवाच

प्रक्षाल्य चरणावेतमासने चोपवेशय । जाम्बूनदकृतेऽतीव भोज्येनातर्पयद्द्विजम् ॥११४॥
सुरत्नचषकोपेतममृतं ब्रह्मवादिनीम् । अरुन्धतीमथाहूय पर्यवेषयदम्बिका ॥११५॥
कला चारुन्धती चैव अनसूया पतिव्रता । परिवेषं पदार्थानां स्रग्गन्धाक्षतभूषणाः ॥११६॥
अकुर्वन्नम्बिकावाक्यात्षड्रसानां पृथक्पृथक्। भुञ्जानेषु तु विप्रेषु दिग्वासा ब्राह्मणाकृतिः ॥११७॥
क्षणेन बुभुजे सर्वं दातुं नोशेकुरङ्गनाः । अथ सा गिरिजा देवी स्वयं दातुं प्रचक्रमे ॥११८॥
यथा दत्तमशेषं तु क्षणेनाश्नाति स द्विजः । भाण्डस्थितमशेषं च भोक्तुमैच्छत्प्रियायुतः ॥११९॥
तथाम्बिकासमादाय प्रादादक्षय्यमस्त्विति। अथ वामकरेणासौ भोक्तुमैच्छत्ततःसती ॥१२०॥
तत्राप्यक्षय्यमेवास्तु तवान्नमिति चार्पयत् । करान्तरमथोत्पाद्य भोक्तुमैच्छद् द्विजोत्तमः ॥१२१॥
एवं करसहस्रं च कृत्यैच्छद्भोजनं द्विजः । दत्त्वा दत्त्वा पुनर्देवी सन्तुष्टा न च कोपना ॥१२२॥
न चित्तमन्यथा कर्तुं शक्यमस्या इति द्विज ।
प्रक्षाल्य हस्तौ चरणौ हस्तार्पितसुगन्धवान् ॥१२३॥
पार्वतीं वाक्यमाहेदं तोषितोऽहं वरं वृणु ॥१२४॥

पार्वत्युवाच

मम दत्तुं वरं शक्तो यदि त्वं ब्राह्मणोत्तम । वरेण मम किं कार्यं शङ्करो मे यतः पतिः॥१२५॥

हूँ ॥११२॥ भोजन के समय आये हुए ब्राह्मण को अन्न का भोजन कराइये । उस ब्राह्मण की पत्नी ने कहा यहाँ कोई मुनि कहाँ है, यहाँ तो नारी ही है ॥११३॥ अन्धा आदमी सर्वत्र इसी तरह की बातें बोलता रहता है । **पार्वतीजी ने कहा—** इस ब्राह्मण के चरणों को धोकर आसन पर बैठाओ ॥११४॥ सुवर्ण के पात्र में बनाये गये भोजन से इस ब्राह्मण को तृप्त करो । सुन्दर रत्न प्याला से युक्त अमृत के समान बोलने वाली इस ब्राह्मणी को दे ॥११५॥ अरुन्धती को बुलाकर अम्बिका (पार्वतीजी) परोसवाने का कार्य कर रही थी । कला, अरुन्धती और तथा अनसूया ये पतिव्रताएँ परोसने का काम माला, चन्दन और अक्षत धारण करके कर रही थीं । वे लोग पार्वतीजी के कथनानुसार अलग-अलग छह प्रकार के रस वाले पदार्थों को परोसने का काम कर रही थीं ॥११६-११७॥ खाने वाले ब्राह्मणों में जो नग्न वेषधारी ब्राह्मण थे वे सबकुछ खा गये । वे नारियाँ परस नहीं पा रही थीं ॥११८॥ इसके बाद गिरिजादेवी ने स्वयं परसना शुरु किया वे जितना परोसती थी वह सबकुछ क्षणभर में खा जाते थे ॥११९॥ भाण्ड में जो कुछ था वे अपनी पत्नी के साथ खा जाने की इच्छा किए । अम्बिका ने भाण्ड को लेकर कहा यह अक्षय हो जाय ॥१२०॥ उसके बाद अपने वायें हाथ में लेकर उस ब्राह्मण ने खाना चाहा । उस समय भी गिरिजा देवी ने कहा तुम्हारा अन्न अक्षय हो जाय ॥१२१॥ उसके बाद वे उत्तम ब्राह्मण दूसरे हाथों को उत्पन्न करके भोजन करना चाहे । इस तरह से हजारों हाथों को उत्पन्न करके वे द्विजोत्तम भोजन करना चाहे ॥१२२॥ देवी भी बार-बार परोसकर प्रसन्न हो रही थीं वे क्रोध नहीं करती थीं । ब्राह्मण ने सोच लिया इसके चित्त में मैं विकार नहीं पैदा कर सकता हूँ ॥१२३॥ वे हाथ और पैर धोए । उसके बाद उनके हाथ पर देवी ने सुगन्ध लगाया । उन्होंने पार्वतीजी से कहा मैं सन्तुष्ट हो गया हूँ अब वरदान माँगो ॥१२४॥ **पार्वतीजी ने कहा—** ब्राह्मण यदि तुम मुझे वरदान देने में समर्थ हो तब न मेरे पति जब शिवजी हैं तो मुझे वरदान से कौन

तदाह ब्राह्मणो देवीं शङ्करः कीदृशास्त्विति ।
सदृशोऽसौ त्वया नो वा त्वद्योग्यो नान्यथा भवेत् ॥१२६॥
स्त्रीवल्लभत्वमप्येव रूपं दाक्ष्यं शुभाङ्गना । नोचेदेतादृशी भार्या मदधीना कथम्भवेत्॥१२७॥

पार्वत्युवाच

त्वद्भार्यावचनं श्रुत्वा तव वाक्यं तथा द्विज ! ।
अपलापस्त्वयं ब्रह्मच्छ्रुतं किं वा तथा विषम् ॥१२८॥

ब्राह्मण उवाच

धम्मिल्लं ते करिष्यामि ममाङ्कं त्वं समारुह ।
प्रचलेद्यदि ते चित्तं पातिव्रत्यं कुतस्तव ॥१२९॥

पार्वत्युवाच

मम व्रतं द्विजश्रेष्ठ शङ्कराङ्ककरोहणम्। अथ तच्चित्तमाज्ञाय भवान्याः परमेश्वरः ॥१३०॥
द्व्यष्टवर्षवया भूत्वा सुस्निग्धकचबन्धनः। सुस्निग्धचारुनयनो गोक्षीरसमविग्रहः ॥१३१॥
कोटिकन्दर्पलावण्यः सर्वाभरणभूषितः । स्वपार्श्वस्थितनार्यंसे प्रसारितभुजद्वयः॥१३२॥
गायन्मन्दं तथा साकमुमया पटुता यथा ।
अथ तां पार्वतीं शम्भुः करेणाकृष्य च स्मयन् ॥१३३॥
विन्यस्य हस्तौ वनिताद्वयांसे गायन्समस्ताभरणः प्रसन्न दृक् ।
ननर्त चानन्दसमृद्धगात्रो मुनीन्द्रगीतश्च सकालवेलम् ॥१३४॥
एतादृशं शिवं ध्यात्वा जन्मकोटिशतेष्वपि । न दुःखं जायते तस्य सदा हर्षश्च जायते॥१३५॥

सा प्रयोजन है ? उस समय ब्राह्मण ने पार्वतीजी से कहा कि शङ्करजी कैसे हैं ? वे तुम्हारे समान हैं या नहीं ? लगता है वे तुम्हारे योग्य नहीं है ॥१२५-१२६॥ स्त्रियों का बल्लभ होना ही शुभांगनाओं का रूप और उसकी दक्षता होती है । अन्यथा इस तरह की पत्नी मेरे अधीन कैसे होती ॥१२७॥ **पार्वतीजी ने कहा—** हे द्विज ! आपकी पत्नी के वचन को सुनकर तथा तुम्हारे वचन को सुनकर लगता है कि इसके सामने विष भी व्यर्थ हैं ॥१२८॥ ब्राह्मण ने कहा तुम मेरी गोद में बैठो मैं तुम्हारी चोटी बना दूँ । यदि तुम्हारा चित्त चञ्चल हो जाय तो फिर तुम्हारा पतिव्रत्य धर्म कैसे रहेगा ?॥१२९॥ पार्वतीजी ने कहा— हे विप्र ! मेरा व्रत है कि मैं केवल शङ्करजी की ही गोद में बैठती हूँ । इसके बाद पार्वतीजी के चित्त को जानकर वे परमेश्वर ॥१३०॥ सोलह वर्ष की अवस्था वाले हो गये और उनके बाल अत्यन्त स्निग्ध हो गये । उनके सुन्दर नेत्र अत्यन्त स्नेहिल हो गये और गो दुग्ध के समान उनका आकार हो गया ॥१३१॥ उनका सौन्दर्य करोड़ों कामदेव के समान था और वे सभी भूषणों से भूषित थे । उन्होंने अपने बगल में विद्यमान नारी के कन्धे पर आना दोनों हाथ फैला दिया वे उस नारी के साथ उसी तरह पटुता पूर्वक गा रहे थे जैसे पार्वतीजी के साथ गाते थे । इसके बाद मुस्कुराते हुए शिवजी अपने हाथ से पार्वतीजी को अपनी ओर खींच लिए ॥१३२-१३३॥ वे दोनों नारियों के कन्धे पर हाथ रखकर सभी आभरणों से भूषित होकर प्रसन्नता पूर्वक गीत गाते हुए आनन्द से परिपूर्ण शरीर वाले नृत्य करने लगे उन मुनीन्द्र का गीत को काल और बेला से युक्त था ॥१३४-१३५॥ इस प्रकार के शिव का ध्यान करने वाले के सैकड़ों जन्म

अथ स्तुतो मुनिवरैर्नारीं कृत्वा हरिं ततः ।
अथ सा पार्वती तुष्टा देवं प्राह पिनाकिनम् ॥१३६॥

पार्वत्युवाच

किमित्येतादृशं भावमास्थाय त्वमिहागतः ।
नारीं कृत्वा तथा विष्णुं किं प्रकृत्या न चागतौ ॥१३७॥
शिवः प्राह व्रते चात्र ह्यतिथेर्भोजनं शुभम् ।
जाने सिद्धिमथो येषां विषादो नाभिजायते ॥१३८॥
जाते विषादे तु व्रतमसम्यगिति निश्चयः ।
सोमवाराः समायान्ति यावन्तोऽब्दशातानि तु ॥१३९॥
तावन्ति मत्पुरे देवि सर्वभोगसमन्वितः । सभार्यपुत्रबन्धुश्च वेदोक्तायुष्यजीवितः ॥
पश्चाद्वाराणसीं गत्वा मृतो मुक्तिमवाप्स्यति ॥१४०॥

शम्भुरुवाच

अथ देवे स्थिते तत्रमुनयस्त्रिःप्रदक्षिणम् । कृत्वा पञ्चनमस्कारान्पुनःकृत्वा प्रदक्षिणम्॥१४१॥
पुनश्च दण्डवद् भूत्वा विसृष्टा निर्युयुस्ततः ।
अथ शोणः शोभिताङ्गीं भार्यामाप ह्यनिन्दिताम् ॥१४२॥
राज्यं च भारते वर्षे धर्मेणापालयद्द्विजः । मानुषानखिलान्भोगान्बुभुजे शिवभक्तिमान् ॥१४३॥
नित्यं देवार्चनपरो नित्यंब्राह्मणपूजकः । नित्यदाता नित्ययाजीनित्यश्रोता पुराणकम्॥१४४॥
मृतः स गतवांल्लोकं शङ्करस्य विभोः शुभम् ।
नामकीर्तनमाहात्म्यं प्रसङ्गात्परिकीर्तितम् ॥१४५॥

में कभी भी दुःख नहीं होता है, उसको सदा हर्ष ही प्राप्त होता है ॥१३६॥ **पार्वतीजी ने कहा**— इस तरह का रूप बनाकर आप यहाँ क्यों आये थे । आपने विष्णु को पत्नी बना लिया था, अपने वास्तविक रूप में क्यों नहीं आये थे ॥१३७॥ शिवजी ने कहा कि इस व्रत में अतिथि को भोजन कराना शुभ है। जिन लोगों को अतिथि को भोजन कराने में विषाद नहीं होता है, उनको सिद्धि प्राप्त हो जाती है ॥१३८॥ यदि उसमें विषाद हो गया तो जानना चाहिए कि व्रत सफल नहीं हुआ । सोमवार तो सैकड़ों वर्षों तक आते हैं ॥१३९॥ हे देवि ! व्रती उतने वर्ष तक मेरे नगर में सभी भोगों से सम्पन्न होकर अपनी पत्नी तथा बन्धुओं के साथ वेदोक्त आयु के अनुसार जीवित रहता है ॥१४०॥ उसके बाद वह वाराणसी में जाकर जब मरता है तो उसकी मुक्ति हो जाती हैं । **शम्भु मुनि ने कहा**— उस समय जब शङ्करजी वहाँ विद्यमान थे मुनियों ने उनकी तीन बार प्रदक्षिणा की ॥१४१॥ वे उनको पाँच बार नमस्कार करके प्रदक्षिणा किए । उसके बाद साष्टाङ्ग प्रणाम करके आज्ञा प्राप्त किये और वहाँ से चले आये ॥१४२॥ उसके बाद शोण ने सुन्दर शरीर वाली अनिन्दित पत्नी को प्राप्त किया । उन्होंने धर्मपूर्वक भारत वर्ष में राज्य किया॥१४३॥ शिवजी की भक्ति से सम्पन्न होकर मनुष्यों को प्राप्त होने वाले समस्त भोगों को प्राप्त किया। वे नित्य ही शिवजी की अर्चना करते थे । नित्य ही ब्राह्मणों की पूजा करते थे । वे नित्य ही दान करते थे और नित्य ही यज्ञ करते थे । वे नित्य ही पुराणों का श्रवण करते थे । मृत्यु के बाद वे शङ्करजी के

श्रृण्वतांसर्वपापघ्नंभक्तानां च तथा नृप !। सर्वकल्याणदं नित्यं सुभार्याराज्यदं शिवम् ।।१४६।।
शिवभक्तिप्रदं गोप्यं यस्य कस्यापि नेरयेत् ।।१४७।।

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शिवराघवसंवादे शिवनाममाहात्म्ये द्वादशोत्तरशततमोऽध्यायः ।।११२।।

एक सौ तेरहवाँ अध्याय

श्रीराम उवाच

खे दृश्यन्ते विमानस्था नानारूपधराः शुभाः ।
सर्वकामफलोपेताः सुभार्याः शतयोषितः ।।१।।
सहस्रनरनारीभिः पूज्यमानाः पदे पदे। गायन्ति विंशतिर्योषा रूपलावण्यकोमलाः ।।२।।
करङ्कवाहिनी चैका चामरासक्तबाहवः। तालवृन्तद्वयं नार्योवीजयन्ति प्रगृह्य वै ।।३।।
स चक्रे चाङ्कमध्येऽस्या उपधानं तथापरः । एकस्याः करयोर्हस्तः स्तावकानेकसंयुतः।।४।।
नानाविधपरीहासकृतोऽफुल्लमुखाम्बुजः । एकैकत्र विमाने तु दृश्यते चन्द्रदीधितिः ।।५।।
स्त्रीशतेषु विमानेषु दृश्यते चेश्वरः शुभः । एते किं पुण्यकर्तारो विष्णुमायाऽथवा मुने।।६।।

शुभ लोक में चले गये ।।१४४-१४५।। **शम्भु मुनि ने कहा—** मैंने प्रसङ्गवशात् नाम कीर्तन का माहात्म्य बतलाया । हे राजन् ! यह आख्यान सुनने वालों तथा शिवभक्तों के समस्त पापों का विनाश करने वाला है । यह समस्त कल्याणों को प्रदान करने वाला है, इसका श्रवण करने से सुन्दर पत्नी और कल्याण की प्राप्ति होती है । यह शिवजी की भक्ति प्रदान करने वाला है यह गोपनीय है । इसको सबों को नहीं सुनाना चाहिए ।।१४६-१४७।।

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाञ्चवें पातालखण्ड के शिवराघव संवाद के अन्तर्गतशिवजी के नाम के माहात्म्य का वर्णन करने के प्रसङ्ग में एक सौ बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११२।।

शम्भुमुनि द्वारा पुराण की महिमा और पौराणिक की पूजा का वर्णन

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा— आकाश में विमान में विद्यमान अनेक सुन्दर वेष धारण की हुयी मङ्गलमय सभी कामना रूपी फलों से सम्पन्न सुन्दर पत्नियाँ रूपी स्त्रियाँ दिखायी दे रही हैं ।।१।। पद-पद पर हजारों नर और नारियाँ उनकी पूजा कर रही हैं । रूप एवं लावण्य से युक्त कोमल बीस नारियाँ गीत गा रही हैं।।२।। उनमें से एक अपने एक हाथ में करङ्क और एक हाथ में चामर ली हैं । दो नारियाँ अपने हाथ में पङ्खा लेकर हवा कर रही हैं ।।३।। वह पुरुष उसके गोद में अपना शिर रखकर दूसरा हाथ एक के दोनों हाथों पर रखे हुए है । उसकी स्तुति करने वाले अनेक हैं ।।४।। अनेक प्रकार के परिहास करने के कारण उसका मुख कमल के समान विकसित है । यहाँ प्रत्येक विमान पर चन्द्रमा की कान्ति दिख रही है ।।५।।

शम्भुरुवाच

एते हि ब्रह्मणाः पुण्या गृहस्थाश्रमवासिनः ।
येषामेव च सुग्रामो दत्ता दशरथेन ते ॥७॥
मच्चित्तानां च तेषां तु कदाचिदभवन्मतिः । यथेह सुखिनः सर्वे वयं चान्योपजीविनः ॥८॥
अस्मानेवानुजीवन्ति शतशो मनुजा इह । येन पुण्येन च वयं सर्वे कामानुमोदिनः ॥९॥
सुस्त्रीकृतोपचाराश्च सर्वे राज्यसुखान्विताः । जरामरणहीनाश्च युवानः सर्वदैव हि॥१०॥
विचार्यैव द्विजाः सर्वे वसिष्ठस्याश्रमं ययुः ।
आगतानथ सम्पूज्य वसिष्ठो वाक्यमुक्तवान् ॥११॥
किमर्थमागता यूयं शीघ्रं ब्रूत द्विजोत्तमाः ॥१२॥

द्विजा ऊचुः

वयमिच्छामहे सर्वे सर्वसम्पत्समन्विते। विमाने कामगे रोढुं तत्सम्पादय नो गुरो॥१३॥
तत्तेषां चिन्तितं श्रुत्वा वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ।
पुराणं सर्वदा विप्राः श्रोतव्यं पापनाशनम् ॥१४॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षस्तत्रैव दृश्यते । तथेत्युक्त्वयाऽथ मुनयः पुराणकुशलं मुनिम् ॥१५॥
जग्मुरङ्गिरसं श्रेष्ठं सर्वशास्त्रविशारदम्। सर्वागमपुराणज्ञं सदासत्कर्मचारिणम् ॥१६॥
इदमूचुर्नमस्कृत्य वयं सफलजीविनः। कृतकृत्या वयं ब्रह्मन्साक्षाद्दृष्टोऽसि यन्मुने ॥१७॥

सैकड़ों स्त्रियों वाले विमान पर ईश्वर दिखायी दे रहे हैं । हे मुने ! ये सभी पुण्यवान् पुरुष हैं अथवा यह भगवान् विष्णु की माया है ?॥६॥ **शम्भु ने कहा**— ये सभी गृहस्थाश्रम में रहने वाले पुण्यवान् ब्राह्मण हैं । उन सबों के वे ही ग्राम हैं जिन सबों को दशरथजी ने उन्हें प्रदान किया है ॥७॥ उन सबों का एक समान चित्त है । वे सब सोच रहे कि जिस तरह यहाँ पर हम सब लोग सुखी हैं उसी तरह से दूसरे भी उपजीवी जीव सुखी हैं क्या ?॥८॥ यहाँ पर सैकड़ों मनुष्य हमलोगों के द्वारा उपजीवित रहते हैं । उसी पुण्य के कारण हम सभी उनकी कामनाओं का अनुमोदन करते हैं ॥९॥ सुन्दर स्त्रियाँ उन सबों की सेवा करती हैं, और वे सब राजस सुख को भोगते हैं । ये सदा युवक ही रहते हैं इनको जरा और मृत्यु नहीं होती है ॥१०। इस तरह से विचार करके वे सभी ब्राह्मण महर्षि वसिष्ट के आश्रम में गये । उन आये हुए ब्राह्मणों की पूजा करके महर्षि वसिष्ठ ने कहा ॥११॥ हे द्विजवर्यो ! आपलोग अपने आने का प्रयोजन शीघ्र बतलायें । **ब्राह्मणों ने कहा**— हम सभी सम्पूर्ण सम्पत्तियों से युक्त विमान में ॥१२॥ जो कामग विमान हो उस पर चढ़ें इस कामना को आप पूर्ण करें । उनलोगों की उस कामना को सुनकर वसिष्ठ महर्षि ने कहा ॥१३॥ हे व्रिपों ! पापों को विनष्ट करने वाले पुराण को सदैव सुनना चाहिए । उसी से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥१४॥ मुनियों ने कहा ठीक हैं । वे सभी लोग पुराण के विषय में निपुण सभी शास्त्रों के ज्ञाता महर्षि अङ्गिरा के पास गये ॥१५॥ वे सभी आगमों तथा पुराणों के ज्ञाता थे तथा सदा सत्कर्मों का अनुष्ठान करने वाले थे । उनलोगों ने कहा हमलोगों का जीवन सफल हो गया॥१६॥ आपका जो साक्षात्कार हुआ है, हे मुने ! उसके कारण हमलोग कृतकृत्य हो गये । **अङ्गिरा महर्षि ने कहा**— आपलोग जिस कार्य के लिए आये हैं, मैं उस कार्य को करना चाहता हूँ ॥१७॥

अङ्गिरा उवाच

यदर्थमागता यूयं तत्कार्यं करवाण्यहम्। पुराणं श्रोतुकामास्तु यूयमत्र समागताः ॥१८॥
कीर्तयिष्ये विधानं वः समस्ताघविनाशनम्। सर्वज्ञानप्रदं देवं तत्त्वविज्ञानसम्भवम् ॥१९॥
शिवभक्तिप्रदं हृद्यं विष्णुभक्तिप्रदं शुभम्। विचित्रस्वगतिप्राप्तिज्ञानदं रमणीप्रदम् ॥२०॥
नानाविधशुभज्ञानं रतितन्त्रप्रकाशकम्। भुक्तिमुक्तिप्रधानं च विधिदर्शनदीपकम् ॥२१॥
विचित्रभक्तिकथनं भक्तिसाहसकीर्तनम्। व्रतप्रतिष्ठादानादिभस्मपूजाविधिप्रदम् ॥२२॥
पुराणं पाद्ममुदितं ब्रह्मद्योपनिर्वृतम्। महेश्वरेण कथितं प्रथमाकृतिवर्णनम् ॥२३॥
एतदन्यत्र कथितं पुराणे पाद्म एव तु। दिलीपेन पुरा पृष्टो वसिष्ठः प्रोक्तवानिदम्॥२४॥
तच्छृणुध्वं मुनिवरा ज्ञानं सर्वं भविष्यति। अथ तद्वचनाद्विप्राः पुराणश्रवणे रताः ॥२५॥
कथं श्रोतव्यमधुना किं कृत्येत्यब्रुवन्मुनिम्। सोऽपि सर्वं समाचष्टश्रृणु धर्मं सनातनम् ॥२६॥
नमस्कृत्य पुराणज्ञं दद्याच्चार्घासनं ततः। निषीद तत्र चेत्युक्त्वा गन्धपुष्पैः समर्चयेत् ॥२७॥
आत्मयोगं च ताम्बूलमधिकं वा समर्पयेत्। ब्रूहि पुण्यकथां ब्रह्मन्पौराणिकीमितीरयेत्॥२८॥
न खट्वासनमारुह्य नोच्चासनमथापि वा। नीचासनो वै श्रृणुयाद्धर्मकामार्थसिद्धये ॥२९॥
श्रृण्वित्युक्त्वा पुराणज्ञ इमं मन्त्रमुदीरयेत्। नमो हरि हरमथो गणेशं भारतीमतः ॥३०॥

आपलोग पुराण सुनने की इच्छा से यहाँ आयें हैं। मैं सभी पापों को विनष्ट करने वाले पुराण का वर्णन करूँगा ॥१८॥ सभी प्रकार के ज्ञान को प्रदान करने वाले देवता तत्त्व के विज्ञान से उत्पन्न, शिवजी की भक्ति प्रदान करने वाला, मनोहर तथा भगवान् विष्णु की भक्ति को प्रदान करने वाला ॥१९॥ श्रोताओं को अद्भुत गति प्रदान करने वाला, ज्ञान तथा पत्नी को प्रदान करने वाला, अनेक प्रकार के शुभ ज्ञान को प्रदान करने वाला रतिशास्त्र का ज्ञान कराने वाला ॥२०॥ भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाला तथा उसकी विधि का ज्ञान कराने वाला, विचित्र भक्ति का वर्णन करने वाला, भक्ति के साहस का वर्णन करने वाला ॥२१॥ व्रत, प्रतिष्ठा, दान आदि तथा भस्म की पूजा विधि का ज्ञान कराने वाला पद्मपुराण को कहा गया है। वह ब्रह्म तथा पद्मपुराण से सम्पन्न ॥२२॥ भगवान् शिव के द्वारा वर्णित प्रमथों के आकार का वर्णन करने वाला, इन सारी बातों को तथा जो अन्यत्र वर्णित विषय हैं, उन सबों का वर्णन पद्मपुराण में है ॥२३॥ प्राचीन काल में दिलीप के पूछने पर महर्षि वसिष्ठ ने जिसका वर्णन किया था हे मुनिवरों! उसी पुराण को आप सभी सुनें, उससे सारा ज्ञान हो जायेगा ॥२४॥ उसके बाद महर्षि अङ्गिरा के कथनानुसार सभी मुनिगण पुराण के श्रवण में प्रवृत्त हो गये। इस पुराण को कैसे सुनना चाहिए? तथा कथा श्रवण के समय क्या करना चाहिए? इस बात को मुनि वसिष्ठ ने दिलीप को बतलाया। और दिलीप ने भी उन समस्त कार्यों को किया। महर्षि ने कहा अब तुम सनातन धर्म को सुनो। सबसे पहले पुराण पुरुष को नमस्कार करे उसके बाद उनको अर्घ प्रदान करके उन्हें आसन प्रदान करे ॥२५-२६॥ उनको कहे कि आप इस आसन पर बैठें फिर पुराणज्ञ की चन्दन तथा पुष्प से पूजा करे। फिर आत्मयोग तथा ताम्बूल अथवा उससे अधिक वस्तुएँ प्रदान करे ॥२७॥ फिर कहे कि हे ब्रह्मन्! आप पुराण की कथा कहें कथा को खाट पर बैठकर अथवा वक्ता से ऊँचे आसन पर बैठकर न सुनें ॥२८॥ धर्म, अर्थ, और काम की प्राप्ति के लिए वक्ता से नीचे आसन पर बैठकर कथा सुनना चाहिए। पुराणज्ञ भी कहे कि सुनो; इसके

इष्टेदवं नमस्कृत्य पुराणं वक्तुमर्हति। अर्द्धयामं प्रतिदिनं यदि वापीच्छया भवेत् ॥३१॥
एवं पाठसमाप्तिं च श्रुत्वा कृत्यं समाचरेत् ।
श्रोतुश्च तृष्णीं मननं तूष्णीं श्रवणमेव वा ॥३२॥
अन्यथा भारती क्रुध्येत्तत्क्रोधान्मूकता भवेत् ।
तस्मात्पुराणश्रोत्रा च ताम्बूलादिसमर्पणम् ॥३३॥
वक्तुश्च जीविका कार्या स्वसामर्थ्यानुसारतः ।
पुराणप्रक्रमे देयं सचौलोद्गमनीयकम् ॥३४॥
सूक्ष्माम्बरमथो वापि वस्त्रद्वितयमर्पयेत्। आसनं तु महच्चित्रं रम्यमूर्जस्वलं मृदु ॥३५॥
सुवर्णं वा तथा दद्याद्गोभूगेहादिकं तथा। एतत्समस्तं विप्रेन्द्रा दक्षिणामूर्तिना पुरा ॥३६॥
शङ्करेण मुनीनां हि भाषितं च दिवौकसाम् ।
अथ ते मुनयः सर्वे तं प्रणम्यासनस्थितम् ॥३७॥
पृथक्पृथक्चताम्बूलं दत्त्वा शुश्रुषवः स्थिताः ।
तेनापि कथितं सर्वं पुराणं सर्वसम्प्रदम् ॥
उपान्ताध्यायपर्यन्तं श्रुतवन्तो द्विजोत्तमाः ॥३८॥

दिलीप उवाच

कामगेन विमानेन सर्वसम्पत्समृद्धिना। सर्वतः सुखयुक्तेन पुण्यस्थानमुपस्थितम्॥३९॥

वसिष्ठ उवाच

नालं पृष्टं त्वया राजन्नितोऽप्यतिशयान्तरैः । क्रीडमाना भविष्यन्ति येन तत्पुण्यमुच्यते ॥४०॥

बाद उनको इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए ॥२९॥ **नमो हरिं हरमिति इत्यादि** अर्थात् श्रीहरि, और श्रीशङ्करजी को नमस्कार है । उसके बाद, गणेशजी, सरस्वतीजी तथा इष्टदेव को नमस्कार करके पुराण की कथा कहना चाहिए ॥३०॥ प्रतिदिन आधा प्रहर तक अथवा यदि इच्छा हो तो इससे अधिक समय तक पाठ का श्रवण करे । पाठ के समाप्त होने पर फिर नित्य कृत्यों को करे ॥३१॥ श्रोता को मौन होकर कथा का श्रवण तथा मनन करना चाहिए । अन्यथा सरस्वती देवी क्रुद्ध हो जाती हैं । और उसके कारण मूकता की प्राप्ति होती है ॥३२॥ इसीलिए श्रोता को चाहिए कि वे पुराण को ताम्बूल आदि समर्पित करे। वक्ता को जीविका अपने सामर्थ्य के अनुसार प्रदान करे ॥३३॥ पुराण के प्रारम्भ में आचार्य को वस्त्र तथा चादर प्रदान करे । अथवा सूक्ष्म (महीन) दो वस्त्र प्रदान करे ॥३४॥ आसन को अत्यन्त अद्भुत मनोहर, चमकता हुआ तथा कोमल होना चाहिए । उसके बाद सुवर्ण, गौ, भूमि तथा गृह आदि दान देना चाहिए॥३५॥ हे विप्रेन्द्रों ! इन सारी बातों को प्राचीन काल में दक्षिणामूर्ति शङ्करजी ने मुनियों तथा देवताओं को बतलाया है ॥३६॥ इसके बाद वे सभी मुनिगण आसन पर बैठे हुए अङ्गिरा मुनि को प्रणाम करके, कथा सुनने की इच्छा से अलग-अलग ताम्बूल प्रदान करके बैठ गये ॥३७॥ महर्षि अङ्गिरा ने भी सब कुछ प्रदान करने वाले पुराण को सुनाया । वे सभी ब्राह्मण अन्तिम अध्याय पर्यन्त की पद्मपुराण की कथा को सुने ॥३८॥ **दिलीप ने कहा—** सभी प्रकार की सम्पत्तियों से समृद्ध कामग विमान के द्वारा जो सभी प्रकार के सुख से युक्त तथा पुण्य स्थान पर उपस्थित था उस विमान के विषय में पूछा ॥३९॥ **वसिष्ठ महर्षि ने कहा—**

सुधा धवलितं कृत्वा शिववेश्मसमन्ततः। स्त्रियो रूपविलासाढ्याः सर्वालङ्कारभूषिताः ॥४१॥
नानासुगीतकुशला नानानृत्यविशारदाः। चतस्रोऽष्टौ षडथवा मर्दलध्वनिकाः स्त्रियः ॥४२॥
वशिन्यौ द्वे आवजिक्यौ कोणिकाधमने उभे ।
लासिक्यस्तु चतस्रः स्युः सन्तुष्टैकाथ गायिका ॥४३॥
एको द्वे वा सुगीतज्ञेऽमुखरे हि प्रकीर्तिते। कोणवाद्यकृते द्वे तु तूष्णीं भूताः षडष्टवा ॥४४॥
सर्वा रूपविलासिन्यः सर्वाश्चापतितस्तनाः । रतितन्त्राधिकुशलास्तत एवाविशङ्किताः ॥४५॥
सुसूक्ष्मवस्त्रवेषाश्च विद्युच्चञ्चलदृष्टयः। एतादृशीभिर्योषाभिर्येन नृत्यं हि कारितम् ॥४६॥
एकस्मिन्दिवसे राजन्वत्सरान्सविमानगः। शतस्त्रीवीक्षितुखो युवा बहुभिरर्चितः॥४७॥
आनन्दपोषसपूर्णः क्रोधेर्ष्यादिविवर्जितः। पञ्चगन्धविलिप्ताङ्गः स चन्द्राहिदलाननः ॥४८॥
सूर्योपमस्तु योषाश्च सर्वास्तादृशभान्विताः। सद्यो विकसितामोदि पारिजातकृतस्रजः ॥४९॥
सर्वा विकसितारोहिरक्तसन्धिकृतस्रजः। धम्मिल्ले वक्षसि तथा बिभ्रत्यः सुस्मिताधराः॥५०॥
चरत्येतादृशोभिस्तु नृत्यगीतानुमोदितः। एवं विमानगो भूत्वा उषित्वा कालमक्षयम् ॥५१॥
पश्चाज्जायेत नृपतिरेवं कृत्वा पुनस्तथा। राज्यं स्वर्गफलं भूक्त्वा शिवभक्तो भविष्यति॥५२॥

राजन् ! आपने इससे भी अधिक सुखद जिसके द्वारा जीव क्रीड़ा करेंगे उस पुण्य के विषय में आपने नहीं पूछा है, मैं उसी पुण्य को बतलाता हूँ ॥४०॥ शिवजी के मन्दिर को चूने से पोतवाकर अमृत के समान धवल बना दे। रूप तथा विलास से युक्त तथा सभी अलङ्कारों से अलंकृत जो अनेक प्रकार के गीतों को गाने में कुशल हों तथा अनेक प्रकार के नृत्यों को करने में दक्ष हों ऐसी स्त्रियों से तथा मृदङ्ग ध्वनि करने वाली, चार, आठ अथवा छह स्त्रियों से ॥४१-४२॥ दो वासिनी होना चाहिए तथा दो स्त्रियों को आजविकी होना चाहिए। दो स्त्रियों को नगाड़ा बजाने वाली होना चाहिए, चार स्त्रियों को नृत्य करने वाली होनी चाहिए। एक को सन्तुष्ट गायिका होनी चाहिए ॥४३॥ एक अथवा दो स्त्रियों को गीतों का सुन्दर ज्ञान होना चाहिए तथा उन दोनों को मुखर होना चाहिए। दो स्त्रियों को कोण बजाने वाली होना चाहिए। मौन रहने वाली छह या आठ स्त्रियों को होना चाहिए ॥४४। इन सबों को रूप तथा विलास से युक्त होना चाहिए। इन सबों के स्तनों को उठा हुआ होना चाहिए। उन सबों को रतिशास्त्र में कुशल होना चाहिए जिससे कि ये लज्जा न करें ॥४५॥ उन सबों के वस्त्र तथा वेश को सूक्ष्म (महीन) होना चाहिए। उनके नेत्रों को बिजली के समान चञ्चल होना चाहिए। राजन् इस प्रकार की स्त्रियों के द्वारा जो व्यक्ति शिवमन्दिर में एक दिन नृत्य करवाता है वह एक वर्ष तक विमान से सञ्चरण करता है। सैकड़ों स्त्रियाँ उसका मुख देखती रहती हैं, और अनेक युवा पुरुष उसकी अर्चना करते हैं ॥४६-४७॥ वह आनन्द के साधनों से परिपूर्ण होता है तथा क्रोध एवं ईर्ष्या से रहित होता है। उसके अङ्गों में पञ्चगन्ध का लेप लगाया जाता है। उसका चन्द्रमा के समान मनोहर मुख होता है ॥४८॥ वह सूर्य के समान तेजस्वी होता है और उसकी सभी स्त्रियाँ सुन्दर मुख वाली होती हैं। वह ताजे तथा विकसित पारिजात पुष्पों की माला को धारण करता है ॥४९॥ उसकी स्त्रियाँ विकसित लाल अरोही पुष्प की माला धारण करती हैं। वे अपनी चोटी में तथा वक्षःस्थल पर भी माला धारण करती हैं। उनके ओठों पर मुसुकान बनी रहती है ॥५०॥ वह इसी प्रकार की स्त्रियों के साथ सञ्चरण करता है और वह नृत्य तथा गीत का अनुभव करके प्रसन्न रहता है। इसतरह

शम्भुरुवाच

दिलीपाय वसिष्ठोक्तं मुनिभ्योऽवददङ्गिरा। ते तथा कृतवन्तश्च तौर्यत्रिकमुमापतेः ॥५३॥
श्रुत्वा पुराणं पाद्मं च समग्रं सुखिनोऽभवन् ।
त एते ब्राह्मणा राम विमानवरमास्थिताः ॥५४॥
दृश्यन्ते खे च सुखिनः सदा मुदितमानसाः ।
एतत्तेसर्वमाख्यातं पुराणेषु विनिश्चितम् ॥५५॥
इतः परं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि राघव ॥५६॥

इति श्रीपद्मपुराणे पञ्चमे पातलखण्डे शिवराघवसंवादे त्रयोदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥११३॥

* * *

एक सौ चौदहवाँ अध्याय

राम उवाच

क्व एष दृश्यते व्योम्नि सर्वाभरणभूषितः । विमानस्थो महादीप्तमध्याह्नार्क इवापरः ॥१॥
दुष्प्रेक्ष्यः सर्वमर्त्यानां तस्याङ्के चारुहासिनी । अपरा श्रीरिवब्रह्मंस्तथापञ्च सुयोषितः ॥२॥

से विमान के द्वारा सञ्चरण करने वाला वह अक्षय काल तक स्वर्ग में निवास करता है ॥५१॥ उसके बाद वह राजा होता है, और वह पूर्वोक्त प्रकार का कार्य करके राज्य तथा स्वर्ग का फल भोगकर शिवजी का भक्त होता है ॥५२॥ **शम्भु मुनि ने कहा—** इस बात को दिलीप को महर्षि वसिष्ठ ने बतलाया और मुनिजनों को महर्षि अङ्गिरा ने बतलाया । उन लोगों ने उस प्रकार का शङ्करजी का नृत्य वाद्योत्सव मनवाया॥५३॥ वे सभी पद्मपुराण का श्रवण करके सुखी हो गये । हे श्रीरामचन्द्रजी ! वे ही ऋषिगण उस श्रेष्ठ विमान में स्थित हैं ॥५४॥ वे सदैव सुखी तथा प्रसन्न दिखायी देते हैं । मैंने यह सबकुछ पुराणों में निश्चित की गयी बातों को सुनाया है । हे राघव ! अब आप क्या सुनना चाहते हैं ॥५६॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवे पाताल खण्ड के शिवराघव संवाद के अन्तर्गत एक सौ तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११३।।

* * *

महर्षि गौतम के गृह का वृत्तान्त वर्णन, महर्षि गौतम के घर बाण आदि असुरों का आना, महर्षि गौतम के घर ब्रह्मा विष्णु तथा शिव आदि का आना, भगवान् विष्णु तथा शिवजी की जलक्रीड़ा का वर्णन, महर्षि गौतम के घर देवताओं का भोज करना, शिव पार्वती संवाद, हनुमानजी द्वारा शिवलिङ्ग की पूजा, चारो युगों के धर्मों का वर्णन, हरि कीर्तन तथा पुराण श्रवण का माहात्म्य, पुराण श्रवण के अधिकारी का वर्णन तथा पौराणिक के लक्षण

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा— आकाश में सभी आभरणों से भूषित विमान में स्थित, अत्यधिक देदीप्यमान तथा मध्याह्न के दूसरे सूर्य के समान यह कौन दिखायी दे रहा है ॥१॥ सभी मनुष्यों के लिए यह दुष्प्रेक्ष्य

गायन्ति मधुरां गीतिं सुभ्रूभङ्गनिरीक्षणैः । मन्दस्मितैः करतलशब्दास्फोटिकया तथा ॥३॥
क्वचिद्गलकृतैर्गीतैरन्योरन्यकरताडनैः । अन्योन्यमुखमालोक्य प्रलोभैर्गीतपूर्वकैः ॥४॥
क्रीडनास्ते महायोगी पद्मकिञ्जल्कसन्निभः । एवं चरितपुण्योऽसौ कोऽयमेतद्वदस्व मे ॥५॥

शम्भुरुवाच

एष विप्रः पुरा राम सर्वसम्पत्समन्वितः । नानाविधसुखापेतो भार्यापोषणतत्परः ॥६॥
अपुत्रो दानहीनश्च देवतार्चनवर्जितः । पञ्चयज्ञविहीनश्च स्वाध्यायपरिवर्जितः ॥७॥
प्रातर्मध्याह्नसायाह्नभोजनप्रवणोऽशुचिः । कदाचिदगमद्गेहं गौतमस्य महात्मनः ॥८॥
त्र्यम्बकस्य गिरौ पुण्ये नानामुनिगणाश्रिते । तत्रापि शोभितगृहं स्फटिकस्तम्भकल्पितम् ॥९॥
अगुरुद्रवकस्तूरीचन्द्रकुङ्कुमचर्चिता । भित्तिर्यस्य च सन्तानकुसुमामोदसौष्ठवम् ॥१०॥
कस्तूरिकापुष्परसमुत्सेचितभूतलम् । सूक्ष्मसुश्वेतविविधवितानपरिशोभितम् ॥११॥
अङ्गणं शोभितमहाकदलीपूगशोभितम् । समीपसरसीजातमञ्जुकूजन्मधुव्रतम् ॥१२॥
पाटीरतरुसम्भूतगन्धपूरितदिङ्मुखम् । शिक्षागीतकृताह्लादगीतपूरितदिङ्मुखम् ॥१३॥
निदाघजनितातापनाशनाय विनिर्मितम् । कदलीदलसञ्छादिपावकाकल्पितच्छदम् ॥१४॥
पाटीरतरुसुस्निग्धसान्द्रद्वारकपाटकम् । सौगन्धिकमहामोदिकल्पितान्तरभित्तिकम् ॥१५॥
ईशानभागसुभगरतिकल्पितवेदिकम् । हाटिकाकल्पितपदं विचित्रवेदिकायुतम् ॥१६॥

है तथा उसकी गोद में मनोहर हँसी वाली, दूसरी लक्ष्मी के समान नारी विद्यमान है तथा पाँच सुन्दर स्त्रियाँ मधुर गीत गा रही हैं ॥२॥ और वे सुन्दर भ्रूभङ्ग के साथ उसको देखती हैं । वे मन्द मुसुकान पूर्वक अपनी ताली बजाती हैं ॥३॥ कहीं पर गले में हाथ डालकर गीतों के द्वारा तथा परस्पर में करताल ध्वनि से एक दूसरे का मुख देखकर लुभाने वाले गीतों के द्वारा ॥४॥ कमल के सदृश गौरवर्ण वाला कौन महायोगी क्रीड़ा कर रहा है ? इस प्रकार का चरित किस प्रकार के पुण्य से होता है, इसे आप मुझे बतलायें ॥५॥ **शम्भु मुनि ने कहा—** हे राम ! प्राचीनकाल में यह ब्राह्मण सभी प्रकार की सम्पत्ति से सम्पन्न था । वह अनेक प्रकार के सुखों से युक्त था, वह अपनी पत्नी के ही पोषण में सदा लगा रहता था ॥६॥ उसका कोई पुत्र नहीं था और वह अज्ञानी था । वह देवताओं का पूजन भी नहीं करता था, वह पञ्चयज्ञ भी नहीं करता था तथा वह वेदाध्ययन भी नहीं किया था ॥७॥ वह प्रातःकाल, मध्याह्न तथा सायंकाल खाता रहता था तथा सदा अपवित्र रहता था । एक बार वह महात्मा गौतम के घर भगवान् शिव के पवित्र पर्वत कैलास पर गया, उस गृह के स्तम्भ स्फटिक मणि के बने हुए थे ॥८-९॥ अगरु के द्रव (रस) कस्तूरी, चन्द्र (कर्पूर) तथा कुङ्कुम से अलंकृत वहाँ की दिवारें थी । वह गृह सन्तान (पारिजात) पुष्प की सुगन्धि से तथा सौन्दर्य समृद्ध था ॥१०॥ वहाँ की भूमि कस्तूरी तथा फूलों के रस से सींच दी गयी थी उसके ऊपर महीन तथा श्वेत अनेक प्रकार के चन्दोवा लगे हुए थे ॥११॥ वहाँ का आँगन महाकदली तथा सुपारी वृक्ष से सुशोभित था । सन्निकट के सरोवर में उत्पन्न कमल पर भौंरे मँडरा रहे थे ॥१२॥ पाटीर वृक्ष से उत्पन्न सुगन्धि से दिशाएँ सुगन्धित थीं । शिक्षा के गीत से उत्पन्न आनन्द जन्य गीत से दिशाएँ ध्वनित थीं । वह गृह ग्रीष्म जनित संताप को नष्ट करने वाले यन्त्र से वह युक्त था । कदल दल को आच्छादित करने वाले पावक से उसके छद बने थे ॥१३-१४॥ पाटीर वृक्ष के समान चिकना तथा घने उसके कपाट बने थे । सौगन्धिक

सुस्निग्धनिविडच्छायं वटमूलोपकल्पितम् । प्रसूनकदलीखण्डसरोभिः प्रान्तशोभितम् ॥१७॥
महावटाग्रसँलग्नतुषारितपयोधरम् । नाकोपवनसम्पन्नविचित्रारामशोभितम् ॥१८॥
वापीकूपतडागाद्यमनेकवनशोभितम् । मन्दम्मन्दं ववौ वायुर्यत्र गेहे सुखप्रदः ॥१९॥
वादिन्यश्चारुसर्वाङ्ग्यो वाद्यानि स्मरसम्पदः । वीणां वेणुं त्रिवेणुं च वादयन्ति वराङ्गनाः ॥२०॥
तौर्यत्रिककृतो नार्यश्चतुर्दिक्षु तथोर्ध्वतः। सुवर्णादिकपात्रेषु वटका भस्मनाः शुभाः ॥२१॥
वासिताः सर्वगन्धैश्च सुधूपैरपि धूपिताः। कुशग्रथितमसङ्खाश्च अक्षमालाश्च कोटिशः ॥२२॥
कृष्णाजिनसहस्राणि वहिः प्रान्ते स्थितानि च ।
एतादृशे गृहवरे देववन्द्यो मुनीश्वरः ॥२३॥
कर्पूरादिश्च संस्थाप्य चतुर्दिक्षु मुनीश्वरः। पाटीरपीठेकर्पूरसिंहासनमकल्पयत् ॥२४॥
सूक्ष्मं श्वेतञ्च सुस्निग्धमावृतं घनसारकैः। सुगन्धावासितजलैः स्नाप्य क्षीरेण शङ्करम् ॥२५॥
अन्यैश्च वैदिकैर्मन्त्रैः स्नापयित्वा सदाशिवम् ।
दारुचन्द्रोपपीठे तु वस्त्रापीठं निधाय च ॥२६॥
पात्रिकामग्रतः स्थाप्य स्थापयित्वादलेष्यमून् ।
एकस्मिन्नक्षताःपात्रे अन्यंस्मिन्सतिलाक्षताः ॥२७॥
पञ्चगन्धकमेकस्मिन्नन्यस्मिन्नष्टगन्धकम् । काश्मीरं मृगनाभिं तु कर्पूरं चन्दनं तथा ॥२८॥
पात्रेष्वन्येषु विन्यस्य पूजास्थाने प्रकल्प्य च ।
नानावरणमार्गेण पूजा तत्र विधीयते ॥२९॥

कमल के अत्यधिक सुगन्धि से उसके भीतर की दिवार सुगन्धित बनायी गयी थी ॥१५॥ ईशान भाग में सुन्दर रतिवेदिका बनायी गयी थी । सुवर्ण से निर्मित विचित्र वेदिका से वह गृह युक्त था ॥१६॥ महावट के अग्रभाग से सटा हुआ, ठण्डे जल से युक्त, स्वर्गीय उपवन से युक्त तथा अद्भुत उद्यान से सुशोभित था वह गृह ॥१७-१८॥ बावली, कूप, तटाक (तालाब) आदि से युक्त अनेक वनों से वह सुशोभित था। उस गृह में सुख देने वाली वायु धीरे-धीरे चल रही थी ॥१९॥ कामोन्मादक वाद्यों को बजाने वाली नारियाँ सर्वाङ्ग सुन्दरी थी । वे श्रेष्ठ नारियाँ, वीणा, वेणु (वंशी) तथा त्रिवेणु को बजा रही थीं ॥२०॥ वाद्यों को बजाने वाली नारियाँ चारों दिशाओं में तथा ऊपर की ओर सुवर्ण आदि के पात्रों में मङ्गलमय वटका भस्म से ॥२१॥ तथा सभी प्रकार के सुगन्धि द्रव्यों से तथा सुन्दर धूमों से धूपित तथा सुगन्धित थीं । उस गृह के बाहरी भाग में करोड़ों कुश निर्मित चटाइयाँ तथा कृष्णमृगचर्म पड़े हुए थे । इस प्रकार के श्रेष्ठ गृह में देवताओं के लिए भी वन्दनीय मुनीश्वर (गौतम) विद्यमान थे ॥२२-२३॥ वे मुनीश्वर चारों दिशाओं में कर्पूर इत्यादि रखकर पाटीर रचित चौकी पर सिंहासन बनाये थे ॥२४॥ सूक्ष्म, श्वेत तथा अत्यन्त स्निग्ध एवं ढंके हुए शङ्करजी को कर्पूर तथा सुगन्धित जल से स्नान कराकर ॥२५॥ तथा दूसरे वैदिक मन्त्रों से सदाशिव को स्नान कराकर काष्ठ निर्मित चन्द्र के उपपीठ के ऊपर वस्त्रनिर्मित पीठ को रखकर उनके समक्ष पत्रिका आगे रखकर इन सभी वस्तुओं को पात्रों में स्थापित करके ॥२६॥ एक पात्र में अक्षत तथा दूसरे पात्र में तिल मिश्रित अक्षत, एक पात्र में पञ्च गन्ध, दूसरे पात्र में अष्टगन्ध ॥२७॥ केसर, कस्तूरी, कर्पूर तथा चन्दन को दूसरे पात्रों में रखकर तथा इन सबों को पूजा के स्थान में एकत्रित करके ॥२८॥ अनेक

लिङ्गमध्ये स्थितो देवः पञ्चवक्त्रः सदाशिवः ।
तस्य प्रावरणं लिङ्गं शक्तिस्तस्य विधीयते ॥३०॥
शक्तेरावरणं विष्णुर्विष्णोरावरणं विधिः । ब्रह्मप्रावरणं चन्द्रस्तस्य सूर्यस्ततः श्रुतिः ॥३१॥
दिग्देवतासुतद्धुप्तिस्तासामावरणं दिशः । दिशामावरणं शम्भुस्तस्य चावरणं गुणाः ॥३२॥
दशप्रावरणं ह्येतच्छिवलिङ्गार्चनं शुभम् । केषाञ्चिमतमेतत्स्यादथ प्रावरणान्तरम् ॥३३॥
विद्यावरणमाख्यातं तदुमावरणं स्मृतम् । विष्णुरावरणं तस्या विष्णोश्चावरणं विधिः ॥३४॥
ब्रह्मप्रावरणं चन्द्रस्तस्य भानुरथावृत्तिः । भानोरावरणं चेश इति षोढावृतिःस्मृताः ॥३५॥
विधिं विना समाख्यातं पञ्चावरणमुत्तमम् । शशाङ्कविष्णुशक्तीनामेतदावरणत्रयम् ॥३६॥
अम्बिकावरणं प्रोक्तमेकावरणमुत्तमम् । अथवा लोकपालाःस्युरावृत्तिःसोमपूजने ॥३७॥
अनावरणमथवा पूजनं शस्यते शिवे । पत्रिकाष्टदलेष्वेव स्थितद्रव्यैर्यजेच्छिवम् ॥३८॥
पत्रिकालक्षणं वक्ष्ये सर्वकर्मोपयोगि च । स्वर्णेन राजतेनाथ ताम्रेणाथ प्रकल्पितम् ॥३९॥
मुक्ताशुक्तिनिभं कुर्यात्पत्रिकाष्टदलं शुभम् । पद्मपत्रसमानाष्टकोणाकारं प्रकल्पयेत् ॥४०॥
पलमात्रं ततः शस्तं निर्वृतं विस्तृतं पदम् । अस्थूलमध्यमुपरि पद्माकृति दलाष्टकम् ॥४१॥
अथवा शक्तिमार्गेण पञ्चपत्रं प्रकल्पयेत् । त्रिपत्रमथवा कुर्याच्छक्तिभावेन तेन च॥४२॥
यथास्याच्छोभनं पात्रं तथाकुर्याद्विचक्षणः । शक्त्यान्तरितरुद्राक्षैः कल्पिताष्टशतैःशुभा ॥४३॥

आवरणों की विधि से वे वहाँ पूजा करते थे । लिङ्ग के बीच में पञ्चमुखी सदाशिव स्थित थे ॥२९॥ वे लिङ्ग से आवृत थे और उसका आवरण शक्ति थी । शक्ति के आवरण विष्णु थे, विष्णु के आवरण ब्रह्माजी थे ॥३०॥ ब्रह्मा के आवरण चन्द्रमा थे, चन्द्रमा के आवरण सूर्य थे तथा सूर्य का आवरण श्रुति थी, उसकी कान्ति दिशाओं पर पड़ रही थी और उन सबों के आवरण दिशाएँ थीं ॥३१॥ दिशाओं के आवरण शम्भु (शङ्करजी) थे और उनके आवरण गुण थे । इन दश आवरणों वाली शिवलिङ्ग की पूजा शुभ है ॥३२॥ कुछ लोगों के मतानुसार इनसे भिन्न दूसरे भी आवरण हैं । इन सबों का आवरण विद्या है, विद्या का आवरण उमा हैं ॥३३॥ उमा के आवरण विष्णु हैं और विष्णु के आवरण ब्रह्मा हैं । ब्रह्मा के आवरण चन्द्रमा हैं और चन्द्रमा के आवरण सूर्य हैं ॥३४॥ सूर्य के आवरण ईश (शङ्करजी) हैं, ये छह ही आवरण सदाशिव के हैं । ब्रह्माजी के आवरण से रहित पाँच आवरण शुभ हैं ॥३५॥ कुछ लोगों के मतानुसार चन्द्रमा, विष्णु तथा शक्ति ये तीन ही आवरण हैं । किसी के मतानुसार केवल अम्बिका का ही आवरण उत्तम हैं ॥३६॥ अथवा सोम (शिवजी) की पूजा में लोकपालों का ही आवरण है । अथवा शिवजी की आवरण रहित पूजा श्रेष्ठ होती है ऐसा कुछ लोग मानते हैं ॥३७॥ अष्टदल की पत्रिका (दल) में ही स्थित द्रव्यों में शिवजी की पूजा करनी चाहिए । सभी कर्मों के लिए उपयोगी मैं पवित्रक का लक्षण बतलाता हूँ॥३८॥ वह सुवर्ण, चाँदी या ताम्बे से वह बना होता है । मोती की सीपी के समान अष्टदल पत्रिका शुभ होती है ॥३९॥ उसके कमल दल के समान आठ कोणों के आकार का बनाना चाहिए । एक पलभर वाली पत्रिका शुभ होती है । उससे अधिक विस्तृत पद होता है ॥४०॥ उसके ऊपर पतला कमल के आकार वाला आठ दल होता है । अथवा शक्ति सिद्धान्त के अनुसार पत्रिका के पाँच ही दल को बनाना चाहिए॥४१॥ अथवा शक्तिभाव के मतानुसार तीन ही पत्र बनाये । बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह वैसी ही पत्रिका

मालोपवीतं त्रिंशत्या अष्टकेन प्रकल्पितम् । प्रगण्डयोरथैकैकं बद्ध्वा तु विप्रकोष्ठयोः ॥४४॥
शिरस्येका धृता तेन कण्ठे च परमर्षिणा ।
रुद्राक्षैः स्फटिकैः रत्नैः कल्पिता ह्यक्षमालिका ॥४५॥
व्याघ्रचर्मासनं कृत्वा पद्मासन गतो मुनिः ।
आवाहनासनं चार्घ्यं पाद्यं वाऽऽचमनीयकम् ॥४६॥
निर्वर्त्य गङ्गासलिलैः स्नापयामास शङ्करम्। अष्टगन्धकसंयुक्तैः पुष्पैर्वकुलपाटलैः ॥४७॥
स्वर्णभाण्डस्थितैर्वस्त्रशोधितैर्वासितर्दृढम् । द्वारे ताम्रकटाहश्च प्रबन्धद्रोणिना शुभम्॥४८॥
गोशृङ्गेण विषाणेन गवयस्य तथाक्वचित् । दक्षिणावर्तशङ्खेन रत्नपात्रैरथापि वा ॥४९॥
स्वर्णैर्वा राजतैर्वापि ताम्रैःकांस्यैरथापिवा। स्वर्णैश्च सूक्ष्मकलशैःस्नापयामास चेच्छया॥५०॥
अथवा मृण्मयैः कुर्यात्पद्मपत्रैरथापि वा । पालाशैश्चूतजम्ब्वाद्यैः पात्रैः संस्नापयेद्विभुम् ॥५१॥
स्नानानामथ सर्वेषां धारास्नानं विशिष्यते। नमस्तेत्यादिमन्त्रेण शतरुद्रियसंज्ञिना ॥५२॥
शंचेत्याद्यनुवाकेन शान्तिरूपेणचेश्वरम् । आवृत्य च यथाशक्ति पश्चाद्गङ्गादिविन्यसेत् ॥५३॥
ततश्च शोभनैः पुष्पैः पत्रैर्विल्वैः समर्चयेत्। तुलसीमारुवदलैः कङ्कारैश्च महोत्पलैः ॥५४॥
नीलोत्पलैरुत्पलैश्च शेषैश्च करवीरकैः। कर्णिकारैः सिताम्भोजैरपराजितया तथा ॥५५॥
तिलाक्षतैरक्षतैश्च श्रीपत्रैस्तिलमिश्रकैः। एवं महेशमीशानं पूजयामास गौतमः ॥५६॥

बनाये जैसा देखने में अच्छा लगे ॥४२॥ शक्ति से सम्पन्न एक सौ आठ रुद्राक्षों से निर्मित माला शुभ होती है । अड़तीस रुद्राक्षों से निर्मित यज्ञोपवीत को वे महर्षि धारण किये थे । वे अपने कपोलों पर एक-एक रुद्राक्ष बाँधकर धारण किए थे । दो माला अपनी कलाई में धारण किए थे । वे एक माला शिर पर धारण किए थे तथा एक माला गले में धारण किए थे ॥४३-४४॥ वे सभी मालिकाएँ रुद्राक्ष, स्फटिक तथा रत्नों से बनी थीं । वे व्याघ्रचर्म के आसन पर पद्मासन लगाकर बैठे थे !!४५॥ आवाहन, आसन, अर्घ्य तथा आचमन उपचारों को पूरा करके गङ्गाजल से शङ्करजी को स्नान कराये ॥४६॥ अच्छी तरह से धोए हुए सुगन्धित वस्त्र से ढँककर सुवर्ण के पात्र में रखे गये अष्टगन्ध से युक्त मौलि श्री (बकुल) तथा गुलाब के पुष्पों से ॥४७॥ द्वार पर ताम्रकटाह रखे, फिर प्रबन्धद्रोणि (पात्रविशेष) अथवा गोशृङ्ग से किसी के मतानुसार गवय (नीलगाय) के शृङ्ग से ॥४८॥ या दक्षिणावर्त शङ्ख से, अथवा रत्न निर्मित पात्र से अथवा स्वर्ण पात्र से, या रजत पात्र से, या सुवर्ण पात्र से, या कांस्य पात्र से, अथवा सुवर्ण के छोटे कलशों से वे मुनीश्वर अपनी इच्छा के अनुसार सदाशिव को स्नान कराते थे । अथवा मिट्टी के पात्र से या पद्मपत्र निर्मित पात्र से वे स्नान कराते थे ॥४९-५०॥ पलाश, आम्र तथा जामुन आदि के पात्रों से शिवलिङ्ग को स्नान कराना चाहिए । सभी स्नानों की अपेक्षा धारा स्नान को अधिक महत्त्व है ॥५१॥ शङ्करजी को स्नान- **नमस्ते रुद्रमन्यवे इत्यादि** मन्त्र से; अथवा शतरुद्रिय मन्त्रों से अथवा **शंच इत्यादि** सूक्त से अथवा **शान्ति सूक्त** से कराये ॥५२॥ अपनी शक्ति के अनुसार शङ्करजी को आवरणों से आवृत करके, उसके बाद गन्ध इत्यादि चढ़ाये । उसके बाद सुन्दर पत्रो, पुष्पों से तथा विल्व से शङ्करजी की अर्चना करे ॥५३॥ तुलसी और मरुआ के पत्रों कमल, नीलकमल, रक्तकमल, करवीर, कर्णिकार, श्वेतकमल, अपराजिता, तिल, अक्षत और तिलमिश्रित अक्षत से ॥५४-५५॥ महर्षि गौतम ने सम्पूर्ण जगत् के नियामक शङ्करजी की पूजा

कर्पूरागरुकस्तूरीसर्जागरुकचन्दनैः । अन्यैश्च धूपयामास षोडशाथ प्रदीपिकाः ॥५७॥
कर्पूरवर्त्तिसंयुक्तादीपयन्त्रोपरिस्थिताः । निवेदितं महेशाय अथ नैवेद्यमुत्तमम् ॥५८॥
सुपक्वशालिपिष्टान्नं भक्ष्यं लेह्यं च चोष्यकम् ।
मधुरादिसमोपेतं पञ्चभक्षसमन्वितम् ॥५९॥
अनेकपक्वशाकाढ्यमनेकपक्वमिश्रितम् । पानं विंशातिसंयुक्तं द्राक्षारम्भाफलान्वितम् ॥६०॥
सहकारफलैश्चान्यैर्नागरङ्गफलाक्षतैः । शर्करागुडसंयुक्तैराज्यपात्रसमन्वितम् ॥६१॥
सूपाष्टकादिसंयुक्तं युक्तं मूलफलादिना। यथासम्भवसंयुक्तैरन्यैरप्युपकल्पितम् ॥६२॥
अग्रपुष्पसमोपेतं नैवेद्यं प्रददौ मुनिः। सौवर्णपात्रिकान्यस्तनीराजनसहस्त्रकम् ॥६३॥
सोपहाराय देवाय दत्त्वा चैव नमस्य च । पूगखण्डानथो घृष्टान्पत्राणि क्षालितानि च ॥६४॥
अपृष्ठाग्राणि सुश्वेतच्छादप्रावृतिकानि च। धनसारकचूर्णं च न्यस्तपत्रत्रयं शुभम् ॥६५॥
सौवर्णपात्रविन्यस्तमिदं ताम्बूलमीश्वरे। अथ प्रदक्षिणं कृत्वा नमस्काराननन्तरम् ॥६६॥
अष्टयोषास्ततः प्राप्तास्तन्त्रीवेण्वादिधारिकाः। विचित्रवाद्यवादिन्यः सम्प्राप्ता मुनिसन्निधिम् ॥६७॥
क्षुद्रतालयुगं गृह्य स्वयं गातुं प्रचक्रमे। गौतमे गातुमुद्युक्ते तानं कुर्युरथाङ्गनाः ॥६८॥
मन्दम्मन्दं च वाद्यानि वादयन्ति तथा पराः ।
मधुरं गायति मुनौ स्वरामूर्तिभूतस्तथा ॥६९॥

की । उसके बाद, कर्पूर, अगरु, कस्तूरी, सर्जागरु, चन्दन ॥५६॥ तथा दूसरे प्रकार के धूपों से शङ्करजी को धूप प्रदान करके उन्होंने सोलह दीप प्रदान किया । वे सब कर्पूर की बत्ती से युक्त तथा दीपयन्त्र पर स्थापित थे ॥५७॥ उसके बाद उन्होंने शिवजी को उत्तम नैवेद्य निवेदित किया अच्छी तरह से पकाये गये चावल के पिण्डी तथा भक्ष्य लेह्य और चोष्य पदार्थों का नैवेद्य अर्पित किया । उसमें मिठाई तथा पाँच प्रकार के भक्ष्य पदार्थ थे । अनेक प्रकार के पकाये गये शाक तथा अनेक प्रकार के पक्वान्नों से वह युक्त था । उसमें बीस प्रकार के पेय पदार्थ थे । अङ्गूर और केला के फल भी थे । उसमें आठ प्रकार के सूप थे । जो मूलों तथा फलों से बने थे ॥५८-६०॥ किञ्च, वह यथासम्भव अन्य पदार्थों से भी निर्मित था। अग्रपुष्प से युक्त नैवेद्य को मुनि ने समर्पित किया ॥६१॥ सुवर्ण पत्रिका में रखी हुयी हजार वत्तियों की मुनि ने आरती की, उसके बाद शङ्करजी को उपहार निवेदित करके उन्होंने शङ्करजी को नमस्कार किया॥६२॥ उसके बाद रगड़कर महीन किए गये सुपारी के खण्ड को और धोए गये ताम्बूल पत्तों को उन्होंने शङ्करजी पर चढ़ाया वे पान के पत्ते के अग्रभाग तथा पृष्ठ भाग से रहित थे तथा श्वेत वर्ण के हो गये थे ॥६३॥ तीन पत्रों पर कर्पूर का चूर्ण रखकर सुवर्ण के पात्र में रखे गये उन सबों को शङ्करजी को समर्पित किया॥६४॥ उसके बाद शङ्करजी की प्रदक्षिणा करके उन्होंने अनेक बार नमस्कार किया । उसके बाद आठ स्त्रियाँ आयीं वे सब सितार तथा वंशी आदि धारण की थीं ॥६५॥ वे सब विचित्र वाद्यों को बजाने वाली थीं वे सब मुनि गौतम के सन्निकट आयीं । छोटे-छोटे दो तालों को अपनाकर स्वयं उन सबों ने गाना प्रारम्भ किया । जब महर्षि गौतम गाने के लिए तैयार हुए तो उन सबों ने तान बजाया । दूसरी स्त्रियाँ धीरे-धीरे वाद्यों को बजाती थीं ॥६६-६७॥ जब महर्षि मधुर गीत गा रहे थे उस समय सभी स्वर शरीर धारण करके शङ्करजी के समक्ष नृत्य करने लगे, यह अद्भुत दृश्य था ॥६८॥ उसी समय देवर्षि नारदमुनि वहाँ

प्रानृत्यन्त महेशाग्रे तदद्भुतमिवाभवत्। एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो भगवान्नारदो मुनिः ॥७०॥
तमागतं गौतमोऽपि सम्पूज्य प्रणिपत्य च ।
आह चैनं कृतार्थोऽस्मि न च कश्चिन्मया समः ।
तवागमनकृत्यं किं कुत आगमनं तथा ॥७१॥

श्रीनारद उवाच

पातालादागतोऽस्मीह भुक्त्वा वै बाणमन्दिरे ।
आयास्यन्ति महात्मानो बाणशुक्रादयो गृहम् ॥७२॥
अथ क्षणादभ्यगाच्च बाणः परपुरञ्जयः। विंशत्यक्षौहिणीयुक्तो गजमारुह्य सोऽसुरः ॥७३॥
अपरं हि गजं शुक्रः प्रह्लादो रथमुत्तमम्। वृषपर्वारथवरं बलिस्तुरगमुत्तमम ॥७४॥
आगतानथ तान्सर्वानाज्ञाय स तु गौतमः। स शिष्यो निर्जगामाथ ह्यादायार्घ्यादिकं तथा ॥७५॥
गौतमं चापि ते वीक्ष्यावरुह्य च गजादिकात् ।
नमश्चक्रुरथो दैत्यास्तं नमस्कृत्य भार्गवम् ॥७६॥
आलिङ्गय राक्षसान्सर्वान्पूजयित्वा यथाविधि ।
सेनायाःसन्निवेशं च चकार मुनिपुङ्गवः ॥७७॥
पादौ प्रक्षाल्य शुक्रस्य जलं मूर्ध्नि धृतं तथा ।
विचित्रफलसंयुक्तं दत्तवानर्हणं मुनिः ॥७८॥
वापीतडागसरसीस्नानापूर्वकृतक्रियाः। सङ्गमे वर्तमाने तु गौतमस्याश्रमे शुभे ॥७९॥
तद्गेहं तु प्रविश्याथ राक्षसास्सपुरोहिताः। देवपूजाप्रपत्तिं च चक्रुः सर्वे द्विजालये ॥८०॥

आ गये । आये हुए नारदजी की गौतम ऋषि ने पूजा करके उनको प्रणाम किया ॥६९॥ महर्षि ने कहा— मैं तो आज कृतार्थ हो गया आज मेरे समान कोई नहीं है । आपके आने का प्रयोजन क्या है ? आप कहाँ से आ रहे हैं ?॥७०॥ **श्रीनारदजी ने कहा**— मैं पाताल में वाण के घर भोजन करके वहीं से आ रहा हूँ । आपके घर वाण तथा शुक्राचार्य आदि आने वाले हैं । उसके वाद शत्रुओं की नगरियों पर विजय प्राप्त करने वाला वाण वहाँ आ गया । वह असुर हाथी पर चढ़कर आया था और उसके साथ बीस अक्षौहिणी सेना थी ॥७१-७२॥ दूसरे हाथी पर शुक्राचार्य सवार थे और प्रह्लाद उत्तम रथ पर वैठे थे । वृषपर्वा श्रेष्ठ रथ पर वैठे थे और बलि उत्तम घोड़े पर सवार थे ॥७३॥ उन सवों को आये हुए जानकर महर्षि गौतम अपने शिष्यों के साथ निकले और सवों को अर्घ्य आदि प्रदान किये ॥७४॥ वे सव भी गौतम महर्षि को देखकर हाथी आदि से उत्तरकर भृगवंशीय महर्षि गौतम को नमस्कार किए ॥७५॥ महर्षि ने सभी राक्षसों का आलिङ्गन किया और सवों की विधिपूर्वक पूजा की । मुनिश्रेष्ठ ने सेना के भी ठहरने की व्यवस्था की ॥७६॥ उन्होंने शुक्राचार्य के चरणों को धोकर उसके जल को अपने शिर पर चढ़ाया । मुनि ने विचित्र फल से युक्त उनकी पूजा की ॥७७॥ वापी, तड़ाग (तलाव) सरोवर में स्नान करके सभी क्रियाओं को कर लेने पर, महर्षि गौतम के आश्रम में सङ्गम होने पर ॥७८॥ सभी राक्षस उनके गृह में प्रवेश करके, श्रीशङ्करजी की पूजा करके उनकी शरणागति किए ॥७९॥ सद्यः निर्मित वेदी पर शुक्राचार्य

सद्यः प्रकल्पितायां च वेद्यां शुक्रोऽयजच्छिवम् ।
तस्यैव वामभागे तु प्रह्लादोऽयजदच्युतम् ॥८१॥
सोमं च बलिरप्येवमन्ये चासुरपुङ्गवाः। अथ बाणोऽयजद्देवमेकमेव त्रियम्बकम् ॥८२॥
शुक्रोऽपि भगवन्तं तमुमानाथमपूजयत् । गौतमोऽप्यथ मध्याह्ने पूजयामास शङ्करम् ॥८३॥
सर्वे शुक्लाम्बरधरा भस्मोद्घूलितविग्रहाः । सितेन भस्मना कृत्वा सर्वस्थाने त्रिपुण्ड्रकम् ॥८४॥
नत्वा तु भार्गवं सर्वे भूतशुद्धिं प्रचक्रमुः। हृत्पद्ममध्ये सुषिरं तत्रैव भूतपञ्चकम् ॥८५॥
तेषां मध्ये महाकाशमाकाशे निर्मलानलम् । तन्मध्ये च महेशानं ध्यायेद्दीप्तिमयं शुभम् ॥८६॥
अज्ञानसंयुतं भूतं शमलं सर्वसङ्गतम्। तद्देहमाकाशदीपे प्रदहेज्ज्ञानवह्निना ॥८७॥
आकाशस्यावृतं चाहं दग्ध्वाकाशमथो दहेत् ।
दग्ध्वाकाशमथो वायुमग्निभूतं तदा दहेत् ॥८८॥
अब्भूतं च ततो दग्ध्वा पृथिवीभूतमेव च । तदाश्रितान्गुणान्दग्ध्वा ततो देहं प्रदाहयेत्॥८९॥
एवं संदह्य भूतानि देहो तज्ज्ञानवह्निना । शिखामध्यस्थितं विष्णुमानन्दरसनिर्झरम् ॥९०॥
निष्पन्नचन्द्रकिरणसङ्काशकिरणं शिवम् । शिवाङ्गोत्पन्नकिरणैरमृतद्रवसंयुतैः ॥९१॥
सुशीतला ततो ज्वाला प्रशान्ता चन्द्ररश्मिवत् ।
प्रसारितसुधारुग्भिः सान्द्रीभूतश्च सम्प्लवः ॥
क्रमेण प्लावितं भूतग्रामं सञ्चिन्तयेत्परम् ॥९२॥

ने शिवजी की पूजा की । उनके बायें भाग में बैठकर प्रह्लादजी भगवान् अच्युत की पूजा किए ॥८०॥ बलि ने सोम नामक शिवजी की पूजा की और दूसरे असुरों ने भी इसी प्रकार पूजा की । उसके बाद बाणासुर ने केवल त्र्यम्बक की ही पूजा की ॥८१॥ शुक्राचार्य ने भी भगवान् उमानाथ की पूजा की । महर्षि गौतम ने भी मध्याह्न में शङ्करजी की पूजा की ॥८२॥ सब के सब शुक्ल वस्त्र धारण करके अपने शरीर में भस्म लगाये थे । वे सब उजले भस्म से सभी स्थानों में त्रिपुण्ड्र लगाये थे ॥८३॥ सबों ने भृगुवंशीय मुनि को नमस्कार किया इसके बाद सबों ने भूतशुद्धि की । हृदय कमल के भीतर जो सुषिर (छिद्र) है उसीमें पाञ्चोभूत हैं ॥८४॥ उन सबों के बीच में महाकाश है, महाकाश के बीच में निर्मल अग्नि हैं, उसके बीच में महेश हैं इस तरह प्रकाशमय शुभ महेश का ध्यान करना चाहिए ॥८५॥ अज्ञान से युक्त भूत सभी मलों से युक्त हैं । उस देह को आकाश रूपी दीप में ज्ञान रूपी अग्नि से जलाये ॥८६॥ आकाश से आवृत अहङ्कार को दग्ध करके उस आकाश को दग्ध करे । उस आकाश को दग्ध करके उसके बाद अग्नि स्वरूप वायु को दग्ध करे ॥८७॥ उसके बाद जल नामक भूत को दग्ध करके पृथिवी नामक भूत को भी दग्ध करे । उसमें रहने वाले गुणों को दग्ध करके उसके बाद देह को भी दग्ध कर दे ॥८८॥ शरीरधारी को चाहिए कि इस प्रकार से ज्ञान रूपी अग्नि के द्वारा भूतों को दग्ध करके शिखा के भीतर विद्यमान आनन्दमय विष्णु जो आनन्द के रस से परिपूर्ण हैं । उनको ॥८९॥ चन्द्रमा के किरण के समान उत्पन्न शिव किरण जो शिव के अङ्ग से उत्पन्न तथा अमृत द्रव से युक्त हैं ॥९०॥ उससे ज्वाला को अच्छी तरह से शीतल करे, जब वह चन्द्रमा की किरण के समान शान्त हो जाय उस समय, अमृत किरणों से जब वह सप्लव (प्रवाह) घना हो जाय तब ॥९१॥ बहाये गये भूत समूह को क्रमशः संचित करे ॥९२॥

इत्थं कृत्वा भूतशुद्धिं क्रियार्हो मर्त्यः शुद्धो जायते शुद्ध एव ।
पूजां कर्तुं जाप्यकर्माऽपि पश्चाद्देवध्याने ब्रह्महत्यादि हानिः ॥९३॥
एवं ध्यात्वा चन्द्रदीप्तिप्रकाशं ध्यानेनारोप्याशु लिङ्गे शिवस्य ।
सदाशिवं दीपमध्ये विचिन्त्य पञ्चाक्षरेणार्चनमव्ययं तु ॥९४॥
आवाहनादीनुपचारांस्तथाऽपि कृत्वा स्नानं पूर्ववच्छङ्करस्य ।
उदुम्बरं राजतं स्वर्णपीठं वस्त्रादिछन्नं सर्वमेवेह पीठम् ॥९५॥
अन्ते कृत्वा बुद्बुदानाञ्च वृष्टिं पीठे पीठे नागमेकं पुरस्तात् ।
कुर्यात्पीठे चोद्र्ध्वके नागयुग्मं देवाभ्याशे दक्षिणे वामतश्च ॥९६॥
जपापुण्यं नागमध्ये निधाय मध्ये वस्त्रं द्वादशप्रातिगुण्ये ।
सुश्वेतेन तस्य मध्ये महेशं लिङ्गाकारं पीठयुक्तं प्रपूज्यम ॥९७॥
एवं कृत्वा बाणमुख्यादितीशा दत्त्वा दत्त्वा पञ्चगन्धाष्टगन्धम् ।
पुष्पैः पत्रैः श्रीतिलैरक्षतैश्च तिलोन्मिश्रैः केवलैश्च प्रपूज्य ॥९८॥
धूपं दत्त्वा विधिवत्सम्प्रयुक्तं दीपं दत्त्वा चोक्तमेवोपहारम् ।
पूजाशेषं ते समाप्याथ सर्वे गीतं नृत्यं तूत्र तत्रापि चक्रुः ॥९९॥
अथास्मिन्नन्तरे गौतमस्य प्राप्तः शिष्यः शङ्करात्मेति नाम्ना ॥१००॥
उन्मत्तवेषो दिग्वासा अनेकावृतिमाश्रितः ।
क्वचिद् द्विजातिप्रवरः क्वचिच्चण्डालसन्निभः ॥१०१॥

इस तरह से भूतशुद्धि करके क्रिया करने के योग्य शुद्ध ही मनुष्य शुद्ध होता है । पूजा करने के लिए जप भी करना चाहिए, उसके पश्चात् ध्यान करने पर ब्रह्महत्या आदि का नाश होता है ॥९३॥ इस तरह चन्द्रमा की कान्ति के समान प्रकाश का ध्यान करके ध्यान के द्वारा उसको शीघ्र ही शिवलिङ्ग में स्थापित कर देना चाहिए । दीप के भीतर निर्विकार सदा शिव का ध्यान करके उनकी पूजा पञ्चाक्षर मन्त्र से करना चाहिए॥९४॥ फिर आवाहन आदि उपचारों को करके पहले के ही समान शिवजी को स्नान कराये । उदुम्बर, चाँदी या सुवर्ण निर्मित पीठ को वस्त्र आदि से ढँक दे सबकुछ इस पीठ पर करे ॥९५॥ अन्त में बुदबुदों की वृष्टि करे । प्रतयेक पीठ पर उसके आगे एक नाग की भावना करे । पीठ के ऊपर दो नाग की भावना करे । उन दोनों की भावना शङ्करजी के दायें और बायें ओर करनी चाहिए ॥९६॥ नाग के बीच में जपा कुमुम का ध्यान करके खूब श्वेत द्वादश परत के वस्त्र की कल्पना करके उसके बीच में पीठ से युक्त लिङ्ग की आकृति वाले महेश की पूजा करनी चाहिए ॥९७॥ इस तरह से करके बाण आदि राक्षसों ने शङ्करजी को बार-बार पञ्चगन्ध तथा अष्टगन्ध प्रदान किया । पुष्प, पत्र, श्रीतिल, अक्षत और तिल मिश्रित अक्षत से पूजा करके । विधि पूर्वक धूप देकर तथा दीप देकर उपर्युक्त प्रकार का उपहार प्रदान किया । अवशिष्ट पूजा को समाप्त करके उन सबों ने विभिन्न स्थानों पर गीत तथा नृत्य किया ॥९८-९९॥ इसी बीच में महर्षि गौतम के शिष्य जिनका नाम शङ्कर था वे भी आ गये ॥१००॥ उनका उन्मत्त वेष था, वे नग्न थे, वे अनेक आवरणों को धारण किए हुए थे । कहीं पर वे श्रेष्ठ द्विजाति प्रवर के समान थे तो कहीं चाण्डाल के सदृश थे ॥१०१॥ कहीं पर वे योगी शूद्र के समान थे और कहीं पर वे तपस्वी के समान थे । वे गर्जना करते

क्वचिच्छूद्रसमो योगी तापसः क्वचिदप्युतः ।
गर्जत्युत्पतते चैव नृत्यति स्तौति गायति ॥१०२॥
रोदिति शृणुते व्यक्तं पतत्युत्तिष्ठति क्वचित् ।
शिवज्ञानैकसम्पन्नः परमानन्दनिर्झरः ॥१०३॥
सम्प्राप्तौ भोज्यवेलायां गौतमस्यान्तिकं ययौ ।
बुभुजे गुरुणा साकं क्वचिदुच्छिष्टमेव च ॥१०४॥
क्वचिच्च लीढे तत्पात्रं तूष्णीमेवाभ्यगात्क्वचित् ।
हस्तं गृहीत्वैव गुरोः स्वयमेवाभुनक् क्वचित् ॥१०५॥
क्वचिद्गृहान्तरे मूत्रं क्वचित्कर्दमलेपनम्। सर्वदा तं गुरुर्दृष्ट्वा करमालम्ब्य मन्दिरम् ॥१०६॥
प्रवेश्य स्वीयपीठे तमुपवेश्याभ्यभोजयत् । स्वयं तदस्य पात्रेण बुभुजे गौतमो मुनिः ॥१०७॥
तस्य चित्तं परिज्ञातुं कदाचिदथ सुन्दरी ।
अहल्या शिष्यमाहूय भुङ्क्ष्वेत्युक्त्वाऽथ सा शुभा ॥१०८॥
सौवर्णे भाजने चान्नं निधाय चषकान्तरे । पानादिकमथो दत्त्वा एकस्मिन्पावकं पुनः ॥१०९॥
निधायाङ्गारनिचयं कण्टकानां चयंपरे ।
निधायभुङ्क्ष्व भुङ्क्ष्वेति स चापि बुभुजे मुनि ॥११०॥
यथा पपौहि पानीयं तथा वह्निमपि द्विजः । कण्टकानपि भुक्त्वा स यथा पूर्वमतिष्ठत ॥१११॥
पुराहि मुनिकन्याभिराहूतो भोजनाय च। दिने दिने तत्प्रदत्तं लोष्ठमम्बु च गोमयम् ॥११२॥
कर्दमं काष्ठदण्डं च भुक्त्वा प्रीत्याऽथ हर्षितः ।
एतादृशो मुनिरसौ चण्डालसदृशाकृतिः ॥११३॥

थे कही उछलते थे, कहीं पर वे नृत्य करते थे और कहीं वे स्तुति करते थे तो कहीं गीत गाते थे॥१०२॥ कहीं पर वे रोने लगते थे, कहीं पर वे सारी बातें सुनते थे, कहीं पर गिर जाते थे और कही उठ जाते थे । उनको केवल शिव का ज्ञान था और वे परमानन्द से परिपूर्ण थे ॥१०३॥ वे भोजन की बेला में महर्षि गौतम के सन्निकट में गये । उन्होंने अपने गुरु के साथ भोजन किया, कहीं वे उच्छिष्ट ही खाते थे॥१०४॥ कहीं पर वे उनके पात्र को चाटते थे तो कहीं पर वे चुपचाप चले जाते थे कहीं पर वे अपने गुरु के हाथ को पकड़े हुए स्वयं खा लेते थे ॥१०५॥ कहीं पर वे घर के भीतर ही मूत्र-त्याग कर देते थे और कहीं पर वे कीचड़ लपेट लेते थे । महर्षि गौतम उनका सदा हाथ पकड़कर अपने घर में ले जाकर अपने पीठपर बैठाकर भोजन कराये और उनके ही पात्र में स्वयं गौतम मुनि ने भोजन कर लिया ॥१०६-१०७॥ उनके चित्त को जानने के लिए एक बार सुन्दरी अहल्या ने उनको बुलाकर कहा कि भोजन कर लो ॥१०८॥ सुवर्ण के पात्र में अन्न रखकर दूसरे प्याले में पीने की वस्तु को दिया । फिर एक पात्र में अग्नि को रखकर तथा दूसरे पात्र में काण्टों के समूह रखकर कहा खाओ, खाओ । और वे मुनि खाने लगे ॥१०९-११०॥ जैसे कोई पानी पीता है, उसी तरह से वे अग्नि को भी पी गये और काण्टों को भी खाकर वे पहले के ही समान बने रहे ॥१११॥ एक बार मुनि कन्याओं ने उनको भोजन करने के लिए बुलाया । उन सबों के द्वारा प्रदत्त, ढेला, जल, गोबर ॥११२॥ कीचड़, काठ का दण्ड

सुजीर्णोपानहौ हस्ते गृहीत्वा तु तथाकरे। अन्त्यजोचितभाषाभिर्वृषपर्वाणमभ्यगात् ॥११४॥
वृषपर्वेशयोर्मध्ये दिग्वासाः समतिष्ठत। वृषपर्वा तमज्ञात्वा पीडयित्वा शिरोऽच्छिनत्॥११५॥
हते तस्मिन्द्विजश्रेष्ठे जगदेतच्चराचरम्। अतीव कलुषमभवत्तत्रस्थामुनयस्तथा ॥११६॥
गौतमस्य महाशोकः सञ्जातः सुमहात्मनः। निर्ययौ चक्षुषोर्वारिशोकं सन्दर्शयन्निव ॥११७॥
गौतमः सर्वदैत्यानां सन्निधौ वाक्यमुक्तवान् ।
किमनेन कृतं पापं येन च्छिन्नमिदं शिरः ॥११८॥
मम प्राणाधिकस्येह सर्वदा शिवयोगिनः। ममापि मरणं सत्यं शिष्यरूपी यतो गुरुः॥११९॥
शैवानां धर्मयुक्तानां सर्वदाशिववर्तिनाम्। मरणं यत्र दृष्टं स्यात्तत्र नो मरणं ध्रुवम्॥१२०॥

शुक्र उवाच

एनं सञ्जीवयिष्यामि मम गोत्रं शिवप्रियम्। किमसौ म्रियते ब्रह्मन्पश्य मे तपसो बलम् ॥१२१॥
इति वादिनि विप्रेन्द्रे गौतमोऽपि ममार ह ।
तस्मिन्मृतेऽथ शुक्रोऽपि प्राणांस्तत्याज योगतः ॥१२२॥
तस्यापि मृतिमाज्ञाय प्रह्लादाद्या दितेस्सुताः। सर्वे मृताः क्षणेनैव तदद्भुतमिवाभवत्॥१२३॥
मृतमासीदथ बलं तस्य बाणस्य धीमतः। अहल्याशोकसन्तप्तारुरोदोच्चैः पुनः पुनः ॥१२४॥
गौतमेन महेशस्य पूजया पूजितो विभुः। वीरभद्रो महायोगी सर्वं दृष्ट्वा चुकोप ह॥१२५॥
अहो कष्टमहोकष्टं माहेशा बहवो मृताः। शिवं विज्ञापयिष्यामि तेनोक्तं करवाण्यहम् ॥१२६॥

भी खाकर वे पहले के ही समान हर्षित रहे। इस प्रकार के वे मुनि थे, उनका आकार चाण्डाल के समान हो गया था ॥११३॥ वे बिल्कुल टूटे हुए जूतों को हाथ में लेकर शूद्र के समान भाषा बोलते हुए वृषपर्वा के घर गये ॥११४॥ वे वृषपर्वा तथा शङ्करजी के बीच में नङ्गे खड़े हो गये। वृषपर्वा ने उनको जाने बिना ही उनको पीड़ित करके उनके शिर को काट दिया ॥११५॥ उनको मार दिए जाने पर यह सारा चराचरात्मक जगत् अत्यन्त पापी हो गया, वहाँ पर रहने वाले मुनिगण भी वैसे ही हो गये ॥११६॥ महात्मा गौतम ऋषि को अत्यन्त शोक हो गया उनके शोक को अभिव्यक्त करते हुए उनकी आँखों से आँसू निकलने लगा॥११७॥ सभी दैत्यों के समक्ष गौतम महर्षि ने कहा इसने कौन सा पाप किया था कि तुमने इसका शिर काट दिया ?॥११८॥ इस शिवयोगी के प्राण मेरे प्राणों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अब मेरी भी मृत्यु निश्चित रूप से हो जायेगी क्योंकि गुरु शिष्य स्वरूप होता है ॥११९॥ सदा शिव का अनुवर्तन करने वाले धार्मिक शैवों की जहाँ पर मृत्यु दिखायी देती है, वहाँ पर मेरी मृत्यु निश्चित है ॥१२०॥ **शुक्राचार्य ने कहा**— यह शिवजी का प्रिय है तथा मेरे गोत्र का है, अतएव इसको मैं जीवित कर देता हूँ। हे ब्रह्मन्! यह मरेगा नही आप मेरी तपस्या का बल देखें ॥१२१॥ इस तरह शुक्राचार्य के कहने पर महर्षि गौतम भी मर गये। उनके मर जाने पर शुक्राचार्य भी योग को अपनाकर अपने प्राणों का त्याग कर दिए ॥१२२॥ उनके भी मर जाने पर प्रह्लाद आदि दानवेश्वर भी सबके-सब क्षणभर में मर गये यह अद्भुत दृश्य हो गया॥१२३॥ उस बुद्धिमान बाण का बल भी विनष्ट हो गया। शोक से सन्तप्त होकर अहल्या भी जोर-जोर से बार-बार रोने लगीं ॥१२४॥ गौतम महर्षि के द्वारा पूजा से पूजित विभु वीरभद्र ने कहा यह अत्यन्त कष्ट की बात है बहुत से शिव भक्त मर गये। इस बात को मैं पहले शिवजी को बतलाता हूँ,

इति निश्चित्य गतवान्मन्दराचलमव्ययम् । नमस्कृत्य विरूपाक्षमिदं सर्वमथोक्तवान् ॥१२७॥
ब्रह्महरी स्थितौ तत्र दृष्ट्वा प्राह शिवो वचः ।
मद्भक्तैः साहसं कर्मकृतं दृष्ट्वा वरप्रदः ॥१२८॥
गत्वा पश्यामहे विष्णो युवामप्यागमिष्यथ । अथेशो वृषमारुह्य वायुना धूतचामरः॥१२९॥
नन्दिकेन सुवेषेण धृते छत्रेऽतिशोभने । सुश्वेतहेमदण्डे च नान्ययोग्ये धृते विभोः ॥१३०॥
महेशानुमतिं लब्ध्वा हरिर्नागान्तके स्थितः । आरक्तनीलच्छत्राभ्यां शुशुभे लक्ष्यकौस्तुभः॥१३१॥
शिवानुमत्या ब्रह्मापि हंसारूढोऽभवत्तदा। इन्द्रगोपप्रभाकारच्छत्राभ्यां शुशुभे विधिः ॥१३२॥
इन्द्रादि सर्वदेवाश्च स्वस्ववाहनसंयुताः । अथ ते निर्ययुः सर्वे नानावाद्यानुमोदिताः ॥१३३॥
कोटिकोटिगणाकीर्णा गौतमस्याश्रमं गताः । ब्रह्मविष्णुमहेशानां दृष्ट्वा तत्पराद्भुतम्॥१३४॥
स्वभक्तं जीवयामास वामकोणनिरीक्षणात् । शङ्करो गौतमं प्राह तुष्टोऽहं ते वरं वृणु॥१३५॥

गौतम उवाच

यदि प्रसन्नो देवेश यदि देयो वरो मम। त्वल्लिङ्गार्चनसामर्थ्यं नित्यमस्तु महेश्वर ॥१३६॥
वृतमेतन्मया देव शृणुष्वैतत्त्रिलोचन । मम शिष्यो महाभागो हेयाहेयादिवर्जितः॥१३७॥
प्रेक्षणीयं ममत्वेन न च पश्यति चक्षुषा । न च घ्राणेन घ्रतव्यं न दातव्यं न चेतरत्॥१३८॥
इति बुद्ध्वा तथा कुर्वन्स हि योगी महायशाः ।
उन्मत्तविकृताकारः शङ्करात्मेति कीर्तितः ॥१३९॥

वे जैसा बतलायेंगे वैसा ही मैं करूँगा ॥१२५-१२६॥ इस तरह से निश्चय करके वे मन्दराचल पर्वत पर गये । वहाँ पर शिवजी को प्रणाम करके उन्होंने शिवजी को सारी बातों को बतलाया ॥१२७॥ वहाँ पर ब्रह्माजी तथा श्रीहरि भी बैठे थे । उन दोनों को देखकर शिवजी ने कहा हे विष्णो ! मेरे भक्तों ने साहसिक कर्म किया है मुझ वर प्रदान करने वाले को देखकर यह कर्म किया है ॥१२८॥ हे विष्णो ! मैं जाकर देखता हूँ आप दोनों भी आयें । इसके बाद शङ्करजी वृष पर बैठ गये उस समय वायु देवता उनको चामर झल रहे थे ॥१२९॥ सुन्दर वेष वाले वे उनका छत्र धारण किए हुए थे । उनके सुन्दर श्वेत दण्डों को किसी ने धारण नहीं किया ॥१३०॥ महेश की अनुमति प्राप्त करके श्रीहरि गरुड़ पर बैठ गये । कुछ लालिमा लिए हुए दो छत्रों के द्वारा श्रीहरि कौस्तुभ मणि से सुशोभित हो रहे थे ॥१३१॥ शिवजी की अनुमति प्राप्त करके ब्रह्माजी भी हंस पर चढ़ गये । इन्द्रगोप की प्रभा के आकार वाले दो छत्रों से ब्रह्माजी सुशोभित हो रहे थे ॥१३२॥ इन्द्र आदि सभी देवता भी अपने-अपने वाहनों के सवार हो गये । इसके बाद वे सभी अनेक प्रकार के वाद्यों से अनुमोदित होकर चल पड़े ॥१३३॥ करोड़ों गणों से महर्षि गौतम का आश्रम भर गया । ब्रह्मा, विष्णु और महेश उस अद्भुत दृश्य को देखकर ॥१३४॥ शङ्करजी अपनी बायीं आँख के कोने से देखकर अपने भक्त को जीवित कर दिए । शङ्करजी ने गौतम महर्षि से कहा कि मैं तुमसे प्रसन्न हूँ वरदान माँगो ॥१३५॥ **गौतम महर्षि ने कहा—** हे देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि आप मुझे वरदान देना चाहते हैं तो मुझमें आपके लिङ्ग की पूजा करने का समर्थ्य बना रहे ॥१३६॥ हे त्रिलोचन ! मैं आपसे यह वरदान मागता हूँ कि मेरा यह शिष्य हेय तथा अहेय से रहित है ॥१३७॥ यह अपने नेत्रों से नहीं देखता है, इसे आप ममता पूर्वक देखें । यह घ्राणेन्द्रिय से घ्रातव्य को नहीं जानता

न कश्चितं प्रतिद्विष्यान्न च तं हिंसयेदिति। एतन्मे दीयतां देव एतेषाममृतिस्तथा ॥१४०॥

श्रीभगवानुवाच

आकल्पमेतेजीवन्तु ततो मुक्तिभजन्तु च। त्वया कृतमिदंवेश्म विस्तृतं विकृतं शुभम् ॥१४१॥
तिष्ठामः क्षणमात्रं तु ततो यास्याम मन्दिरम् ॥१४२॥

गौतम उवाच

अयोग्यं प्रार्थयामीश ह्यर्थी दोषं न पश्यति ।
ब्रह्माद्यलभ्यं देवेश ! दीयतां यदि रोचते ॥१४३॥
अथेशो विष्णुमालोक्य गृहीत्वा तु करं हरेः ।
प्रहसन्नम्बुजाभाक्षमित्युवाच सदाशिवः ॥१४४॥
म्लानोदरोऽसि गोविन्द ! देयं ते भोजनं किमु ।
स्मयं प्रविष्य यदि वा स्वयं भुङ्क्ष्व स्वगेहवत् ॥१४५॥

गच्छवा पार्वतीगेहं या कुक्षिं पूरयिष्यति। इत्युक्त्वा तत्करालम्बी एकान्तमगमद्विभुः ॥१४६॥
आदिश्य नन्दिनं देवोद्वाराध्यक्षं यथोक्तवत्। गौतमं समुवाचायमुत्तरंविष्णुभाषणम्॥१४७॥

सदाशिव उवाच

सम्पादयान्नं सर्वेषां भोक्तुकामा वयं मुने। इत्युक्त्वैकान्तमगमद्वासुदेवेन शङ्करः ॥१४८॥
मृदुशय्यां समारुह्य शयितौ देवतोत्तमौ। अन्योन्यं भाषणं कृत्वा प्रोत्तस्थतुरुभावपि ॥१४९॥
गत्वा तटाकं गम्भीरं स्नास्यन्तो देवसत्तमौ ।
कराम्बुपानमन्योन्यं पृथक्कृत्वोभयत्रच ॥१५०॥

है और न दातव्य को जानता है ॥१३८॥ इस तरह से यह महायोगी महायशस्वी हैं। यह उन्मत्त तथा विकृत आकार वाला। यह शङ्करात्मा कहलाता है ॥१३९॥ उससे कोई द्वेष न करे और न कोई इसको मार सके। हे देव ! मुझको यह वरदान दें और ये सबके सब जीवित हो जायँ ॥१४०॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** ये सभी कल्प पर्यन्त जीवित रहें उसके बाद इन सबों की मुक्ति हो जोयगी। तुमने इस विकृत गृह को विस्तृत और सुन्दर बना दिया है ॥१४१॥ हमलोग यहाँ क्षण भर रुकते हैं इसके बाद अपने लोक में चले जायेंगे। **गौतम महर्षि ने कहा—** हे ईश ! मैं आपसे अनुचित वस्तु की प्रार्थना कर रहा हूँ, जो व्यक्ति अर्थी होता है वह दोष को नहीं देख पाता है ॥१४२॥ वह ब्रह्मा आदि के लिए भी अलभ्य है यदि आपको अच्छा लगे तो मुझे प्रदान कीजिये। इसके बाद शिवजी भगवान् विष्णु के हाथ को पकड़कर और उनको देखकर जोर से हँसते हुए कमलनयन से कहे। हे गोविन्द ! लगता है आपको भूख लगी है आपको कौन सा भोजन कराना चाहिए ॥१४३-१४४॥ यदि ऐसी बात है तो आप स्वयं प्रवेश करके अपने घर के समान स्वयं भोजन कर लें। अथवा आप पार्वती के घर चले जायँ वह आपके पेट को भर देगी॥१४५॥ इसतरह से कहकर वे भगवान् विष्णु के हाथ को पकड़कर एकान्त में चले गये। शङ्करजी ने नन्दी को आदेश दिया कि तुम द्वाराध्यक्ष रहो। भगवान् विष्णु से कहने के बाद उन्होंने गौतम महर्षि से कहा **सदाशिव ने कहा—** हे मुने ! आप भोजन तैयार करें हम सब भोजन करना चाहते हैं ॥१४६-१४७॥ इस तरह से कहकर शङ्करजी एकान्त में भगवान् वासुदेव के साथ आ गये। कोमल शय्या पर बैठ कर वे दोनों

मुनयो राक्षसाश्चैव जलक्रीडां प्रचक्रिरे । अथ विष्णुर्महेशश्च जलपातानि शीघ्रतः ॥१५१॥
चक्रतुः शङ्करः पद्मकिञ्जल्काञ्जलिना हरेः । अवाकिरन्मुखे तस्य पद्मोत्फुल्लविलोचने ॥१५२॥
नेत्रे केशरसम्पातान्न्यमीलयत केशवः । अत्रान्तरे हरेः स्कन्धमारुरोह महेश्वरः ॥१५३॥
हर्युत्तमाङ्गं बाहुभ्यां गृहीत्वा संन्यमज्जयत्। उन्मज्जयित्वा च पुनः पुनश्चापि पुनः पुनः ॥१५४॥
पीडितः स हरिः सूक्ष्मं पातयामास शङ्करम् ।
अथ पादौ गृहीत्वा तु आचकर्ष च भ्रामयत् ॥१५५॥
अताडयद्धरेर्वक्षः पातयामास चाच्युतम् । अथोत्थितो हरिस्तोयमादायाञ्जलिना ततः ॥१५६॥
अवाकिरदथो शम्भुमथ विष्णुमथो हरः । जलक्रीडैवमभवदथ चर्षिगणान्तरे ॥१५७॥
जलक्रीडासम्भ्रमेण विस्रस्तजटबन्धनाः। अथ सम्भ्रमतस्तेषामन्योन्यजटबन्धनम् ॥१५८॥
इतरेतरबद्धासु जटासु च मुनीश्वराः । शक्तिमन्तोऽशक्तिमत आकर्षन्ति च सव्यथम्॥१५९॥
पातयन्तोऽन्यतश्चापि क्रोशतो रुदतस्तथा । एवं प्रवृत्ते तुमुले सम्भूते तोयकर्मणि॥१६०॥
आकाशे नारदो हृष्टो ननर्त च ननाद च। विपञ्चीं नादयन्वाद्यं ललितां गीतिमुज्जगौ ॥१६१॥
सुगीत्या ललितायास्तु अगायत विधा दश। शुश्राव गीतं मधुरं शङ्करो लोकभावनः ॥१६२॥
स्वयं गातुं हि ललितं मन्दम्मन्दं प्रचक्रमे। स्वयं गायति देवेशे मिश्रा मङ्गलकैशिकी॥१६३॥
नारदे नृत्यमाने तु गायति स्वरभेदिनि। स्वरं ध्रुवं समादाय सर्वलक्षणसंयुतम्॥१६४॥

देवता सो गये ॥१४८॥ दोनों परस्पर में बात-चित करके उठे । वे गहरे तालाब में जाकर स्नान किए॥१४९॥ वे दोनों एक दूसरे के हाथ से पानी पिए मुनिगण और राक्षस जलक्रीड़ा किये ॥१५०॥ उसके बाद विष्णु और महेश दोनों शीघ्रता से एक दूसरे पर जल उड़ेलने लगे । शङ्करजी भगवान् विष्णु पर कमल के पराग से युक्त अञ्जलि से ॥१५१॥ श्रीहरि के मुख पर तथ विकसित कमल के समान नेत्रों पर जल डाल रहे थे । आँख में केशर के पड़ जाने पर भगवान् विष्णु ने अपनी आँखे बन्द कर ली ॥१५२॥ इसी बीच महेश्वर श्रीहरि के कन्धे पर चढ़ गये और श्रीहरि के शिर को अपनी दोनों भुजाओं से पकड़ कर पानी में डुबो दिये ॥१५३॥ वे बार-बार श्रीहरि को बाहर निकाल कर फिर बार-बार पानी में डुबाते थे । थोड़ी पीड़ित होकर हरि ने शङ्करजी को पटक दिया ॥१५४॥ उसके बाद शङ्करजी चरणों को पकड़कर श्रीहरि को खींचे । उन्होंने श्रीहरि के वक्षःस्थल पर प्रहार करके श्रीहरि को गिरा दिया ॥१५५-१५६॥ उसके बाद खड़े होकर श्रीहरि अञ्जलि से जल लेकर शङ्करजी पर डाले और शङ्करजी विष्णु भगवान् पर जल डाले॥१५७॥ इसी तरह ऋषियों में भी जलक्रीड़ा हुयी । जलक्रीड़ा के जोश में उनकी जटाएँ खुल गयी थीं ॥१५८॥ उसके बाद जोश में भरकर उनलोगों ने अपनी जटायें बाँध ली । जटाओं के बँध जाने पर वे मुनीश्वरगण॥१५९॥ जो बलवान् थे वे कमजोर मुनियों को खींचते थे और पीड़ित भी करते थे । एक दूसरे को पटक भी देते थे तथा वे चिल्लाने और रोने भी लगते थे ॥१६०॥ इस तरह से जल क्रीड़ा समाप्त होते समय आकाश में नारदजी नाच रहे थे और बीणा बजा रहे थे ॥१६१॥ वे अपनी बीणा को बजाते हुए मधुर गीत गा रहे थे । उन्होंने सुन्दर गीत को अपनी बीणा पर दश प्रकार से गाया ॥१६२॥ उसको लोक कल्याणकारी शङ्करजी ने सुना । वे स्वयं भी धीरे-धीरे ललित गीत गाना प्रारम्भ कर दिए ॥१६३॥ जब स्वयं देवेश शङ्करजी मङ्गल मिश्रित कौशिक राग में गीत गा रहे थे उस समय नारदजी नृत्य कर रहे थे और भिन्न स्वर

स्वधारामृतसंयुक्तं गानेनैवमथोऽजयत् । वासुदेवो मर्दलंच कराभ्यामिदमाहनत् ॥१६५॥
अवगाहंश्चतुर्वक्त्रंस्तुम्बुरुर्मुखरो बभौ । तानकागौतमाद्यास्तु तूष्णीं गातुं च वायुतः ॥१६६॥
गायके मधुरं गीतं हनूमति कपीश्वरे । म्लानमम्लानमभवत्कृशाः पुष्टास्तदाऽभवन् ॥१६७॥
स्वां स्वां गीतिमतः सर्वे तिरस्कृत्यैव मूर्च्छिताः ।
तूष्णीं सर्वे समभवन्देवर्षिगणदानवाः ॥१६८॥
एकः स हनुमान्गाता श्रोतारः सर्व एव ते ।
मध्याह्नकालवितते भोजनावसरे सति ॥१६९॥
दुकूलयुगमाधत्त शृण्वन्गीतिं महेश्वरः । पीतवस्त्रद्वयं विष्णुरारक्तं चतुराननः ॥१७०॥
स्वस्वार्हाण्यथ सर्वेऽपि कृत्यं कृत्वाऽपि कालिकम् ।
स्वं स्वं वाहनमारुह्य निर्गताः सर्वदेवताः ॥१७१॥
गानप्रियो महेशस्तु जगाद प्लवगेश्वरम् । प्लवगत्वं मया ज्ञप्तो निश्शङ्कं वृषमारुह ॥१७२॥
मम चाभिमुखो भूत्वा गायस्वाशेषगायनम् । अथाह कपिशार्दूलो भगवन्तं महेश्वरम् ॥१७३॥
वृभमारोहसामर्थ्यं तव नान्यस्य विद्यते । तव वाहनमारुह्य पातकी स्यामहं विभो ! ॥१७४॥
मामेवारुह देवेश ! विहगः शिववाहन ! । तव चाभिमुखं गानं करिष्यामि विलोकय ॥१७५॥
अथेश्वरो हनूमन्तामारुरोह वृषं यथा । आरूढे शङ्करे देवे हनूमान्कन्धराशिरः ॥१७६॥

में उसे गा रहे थे ॥१६४॥ सभी लक्षणों से युक्त ध्रुव स्वर को अपनाकर उन्होंने अपनी स्वरामृत को उस गीत से मिला दिया ॥१६५॥ उस समय भगवान् वासुदेव अपने दोनों हाथों से मर्दल नामक वाद्य को बजाने लगे । ब्रह्माजी स्नान करते हुए तुम्बुरु के समान मुखर होकर सुशोभित हुए ॥१६६॥ गौतम आदि ऋषिगण मौन रहे । वायु के माध्यम से जब कपीश्वर हनुमानजी मधुर गीत गा रहे थे ॥१६७॥ उस समय जो उदास थे वे लोग प्रसन्न हो गये तथा जो दुर्बल थे वे पुष्ट हो गये । उसके बाद सबलोग अपना-अपना गीत गाना छोड़कर मूर्छित हो गये ॥१६८॥ उस समय देवता एवं ऋषिगण तथा दानव सबके सब मौन हो गये । अकेले हनुमान्जी गा रहे थे और सबके सव उनके श्रोता थे ॥१६९॥ जब मध्याह्न काल की बेला हुयी भोजन का समय आ गया तो गीत को सुनते हुए महेश्वर ने दो वस्त्रों को धारण किया ॥१७०॥ भगवान् विष्णु ने पीताम्बर धारण किया और ब्रह्माजी ने लाल वस्त्र को धारण किया । सबलोगों ने तात्कालिक अपने योग्य क्रियाओं को सम्पन्न किया ॥१७१॥ अपने-अपने वाहनो पर चढ़कर सभी देवता चल पड़े । गानप्रिय शङ्करजी हनुमानजी से कंहे हनुमान मेरी आज्ञा है तुम निःशङ्क होकर वृषभ पर बैठ जाओ और मेरी ओर मुँह करके पूरे गीत को गाओ ॥१७२॥ उसके बाद हनुमानजी ने भगवान् महेश्वर से कहा बैल पर बैठने का सामर्थ्य तो केवल आप में ही है दूसरे में वह सामर्थ्य नहीं है ॥१७३॥ हे विभो! आपके वाहन पर बैठकर तो मैं पापी हो जाऊँगा । हे देवेश ! आप मुझ पर ही बैठ जायँ मै शिव का वाहन होकर आकाश में चलूँगा । मैं आपकी ही ओर मुख करके गाऊँगा आप देखें । उसके बाद शिवजी हनुमानजी पर उसी तरह से चढ गये जैसे वे बैल पर बैठते थे ॥१७४-१७५॥ शङ्करजी के बैठ जाने पर हनुमानजी अपना कन्धा और शिर अपने चमड़े को छिलकर अपना मुख घुमाकर पहले के तरह गा रहे थे॥१७६॥ गीतामृत का श्रवण करते हुए शिवजी महर्षि गौतम के घर गये । वहाँ पर सभी देवता,

छित्त्वा त्वचं परावृत्त्य मुखं गायति पूर्ववत् ।
शृण्वन्नगीतिसुधां शम्भुर्गौतमस्य गृहंगतः ॥१७७॥
सर्वे चाप्यागतास्तत्र देवर्षिगणदानवाः। पूजिता गौतमेनाथ भोजनावसरे सति॥१७८॥
यच्छुष्कदारुसम्भूतं गृहोपकरणादिकम्। प्ररूढमभवत्सर्वं गायमाने हनूमति ॥
तस्मिन्गाने समस्तानां चित्रदृष्टिरतिष्ठत ॥१७९॥
द्विबाहुरीशस्य पदाभिवन्दनःसमस्तगात्राभरणोपपन्नः ।
प्रसन्नमूर्तिस्तरुणः सुमध्ये विन्यस्तमूर्द्धाञ्जलिभिः सुरैः स्तुतः ॥१८०॥
शिरः कराभ्यां परिगृह्य शङ्करो हनूमतः पूर्वमुखं चकार ।
पद्मासनासीनहनूमताञ्जलौ निधाय पादं त्वपरं मुखे च ॥१८१॥
पादाङ्गुलीभ्यामथ नासिकां विभुः स्नेहेन जग्राह च मन्दमन्दम् ।
स्कन्धे मुखे त्वंसतले च कण्ठे वक्षःस्थले च स्तनमध्यमे हृदि ॥१८२॥
ततश्च कुक्षावथनाभिमण्डले ततो द्वितीयं निदधाति चाञ्जलौ ।
शिरो गृहीत्वाऽवनमय्य शङ्करः पस्पर्श पृष्टं चिबुकेन सध्वनि ॥१८३॥
हारं च मुक्तापरिकल्पितं शिवो हनूमतः कण्ठगतं चकार ह ॥१८४॥
अथ विष्णुर्महेशानमिदं वचनमुक्तवान्। हनूमता समो नास्ति कृत्स्नब्रह्माण्डमण्डले॥१८५॥
श्रुतिदेवाद्यगम्यं हि पदं तव किल स्थितम् ।
सर्वोपनिषदव्यक्तं त्वत्पदं कपिसर्वयुक् ॥१८६॥
यमादिसाधनैर्योगैर्नक्षणं ते पदं स्थितम्। महायोगिहृदम्भोजे बलं स्वच्छं हनूमति॥१८७॥

ऋषिगण और दानव भी आये। भोजन की बेला में महर्षि गौतम ने सबों का पूजन किया, जो शुष्क पेड़ से उत्पन्न गृह आदि के उपकरण आदि थे वे सबके सब श्रीहनुमानजी के गीत से हरे हो गये। सबों की दृष्टि उनके गीत पर चित्रलिखित के समान टिकी थी ॥१७७-१७९॥ दो भुजाओं वाले शङ्करजी के चरणों की वन्दाना करने वाले, सम्पूर्ण शरीर में आभरणों से युक्त, प्रसन्न मूर्ति, तरुणों के बीच सभी देवताओं द्वारा हाथ जोड़कर स्तुति किए जाने पर ॥१८०॥ शङ्करजी अपने दोनों हाथों से हनुमानजी के शिर को पकड़कर पहले के समान कर दिए। पद्मासन से बैठे हुए हनुमानजी की अञ्जलि पर एक पैर रखकर तथा दूसरा पैर उनके मुख पर रखकर ॥१८१॥ पैरों की अङ्गुलियों से शङ्करजी प्रेमपूर्वक हनुमानजी की नाक को धीरे-धीरे पकड़ लिए। कन्धे, मुख, कण्ठ, मुख, वक्षःस्थल और हृदय पर ॥१८२॥ उसके बाद उनके पेट पर उसके बाद नाभि पर उसके पश्चात् उनकी अञ्जलि पर शिवजी ने स्पर्श किया। शङ्करजी ने हनुमानजी के शिर को झुकाकर उनकी पीठ को थपथपाकर ॥१८३॥ मोतियों से बने हार को हनुमानजी के गले में पहना दिया। उसके बाद भगवान् विष्णु ने शङ्करजी से कहा ॥१८४॥ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मण्डल में हनुमान के समान कोई नहीं है; क्योंकि श्रुतियों और देवताओं के लिए भी अगम्य आपके चरण उनपर पड़े हैं ॥१८५॥ सभी उपनिषदों में वर्णित आपके चरणों का हनुमान से सम्पर्क हो गया। यम, नियम आदि साधनों तथा योगों के द्वारा आपके चरणों को कोई क्षण भर के लिए भी आपके चरणों का स्पर्श नहीं कर सका ॥१८६॥ महायोगी हनुमान के हृदय कमल में स्वच्छ बल है। हजारों करोड़ वर्षों तक

वर्षकोटिसहस्रेषु तपः कृत्वा तु दुष्करम्। त्वद्रूपं नाभिजानन्ति कुतः पादं मुनीश्वराः ॥१८८॥
अहोभाग्यं विचित्रं हि चपलो वानरो मृगः ।
धत्ते पादयुगं चाङ्के योगिहृद्यपि न क्षमम् ॥१८९॥
मया वर्षसहस्रं तु सहस्राब्जैस्तथाऽन्वहम् ।
भक्त्या सम्पूजितोऽपीश पादो नो दर्शितस्त्वया ॥१९०॥
लोके वादो हि सुमहाञ्छम्भुर्नारायणप्रियः। हरिःप्रियस्तथाशम्भार्नतादृग्माग्यमस्ति मे ॥१९१॥

सदाशिव उवाच

न त्वया सदृशो मह्यं प्रियोऽस्ति भगवन्हरे ! ।
पार्वती वा त्वया तुल्या न चान्यो विद्यते मम ॥१९२॥
अथ देवाय महते गौतमः प्रणिपत्य च। व्यज्ञापयदमेयात्मन्देवै हि करुणानिधे ! ॥१९३॥
मध्याह्नोऽयं व्यतिक्रान्तो भुक्तिवेलाऽखिलस्य च ।
अथाचम्य महादेवो विष्णुना सहितो विभुः ॥१९४॥
रत्नाङ्गुलीयैरथ नूपुराभ्यां दुकुलबन्धेन तडित्सुकाञ्च्या ।
हारैरनेकैरथ कण्ठनिष्कयज्ञोपवीतोत्तरवाससी च ॥१९५॥
विलम्बिचञ्चन्मणिकुण्डलेन सुपुष्पिधम्मिल्लवरेण देवः ।
पञ्चाङ्गगन्धस्य विलेपनेन बाह्वङ्गदैः कङ्कणकाङ्गुलीयैः ॥१९६॥
इत्थं विभूषितः शिवो निविष्ट उत्तमासने स्वसंमुखं हरिं तथान्यवेशयद्वरासने ।
अन्योन्यसंमुखौ स्थितौ हरीशौ देवसत्तमौ सुवर्णभाजनान्यथो ददौ स चापि गौतमः ॥१९७॥

तपस्या करके वड़े-वड़े मुनिगण आपके रूप को भी नही जान पाते आपके चरणों को वे कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? इस चञ्चल वानर नामक पशु का भाग्य सराहनीय है ॥१८७-१८८॥ आपके दोनों चरणों को धारण करने में योगियों का हृदय भी समर्थ नहीं है । हे ईश ! मैंने हजारो हजार वर्षो तक तपस्या की फिर भी आप अपने चरणो को नहीं दिखाये, संसार में यह वहुत वड़ी प्रसिद्धि है कि शङ्करजी नारायण के प्रिय हैं ॥१८९-१९०॥ शङ्करजी के प्रिय श्रीहरि हैं किन्तु मेरा वैसा भाग्य नहीं है । **सदाशिव ने कहा**— हे हरे ! आपके समान मुझको कोई भी प्रिय नहीं है ॥१९१॥ पार्वती तथा आपके समान मुझको कोई भी प्रिय नहीं हो सकता है । इसके वाद महर्षि गौतम शङ्करजी को प्रणाम करके ॥१९२॥ कहे— हे अमेयात्मन्! हे ऐहिक करुणा सागर ! यह दोपहर हो गया है, सबों के भोजन की पूरी बेला समाप्त हो गयी है॥१९३॥ इसके वाद आचमन करके शङ्करजी भगवान् विष्णु के साथ गौतम के गृह में प्रवेश करके भोजन करना प्रारम्भ किए ॥१९४॥ रत्नजटित अङ्गूठियों, नुपुरों, वस्त्र वन्ध तथा विद्युत के समान चमकती हुयी करधनी, अनेक हारों, गले के निष्क, यज्ञोपवीत तथा लटकते हुए उत्तरीय तथा चमकते हुए मणिकुण्डल, और पुष्पग्रथित श्रेष्ठ केशबन्ध पञ्चाङ्गगन्ध के लेप तथा विजाइट और कङ्कण से विभूषित श्रीशङ्करजी उत्तम आसन पर वैठ गये और अपने सामने श्रीहरि को दूसरे आसन पर बैठाया । परस्पर में एक दूसरे के सामने देवताओं में श्रेष्ठ श्रीशङ्करजी और श्रीहरि बैठे हुए थे । उन दोनों के सामने महर्षि गौतम ने सुवर्ण के पात्रों को रखा ॥१९५-१९७॥ उन्होंने तीस प्रकार के भक्ष्य पदार्थ, चार प्रकार के खीर, अच्छी तरह से पकाये

त्रिंशत्प्रभेदभक्ष्यकं सुपायसं चतुर्विधं सुपक्वकपाकजातकं शतद्वयं प्रकल्पितम् ।
अवक्वपक्वमिषकं शतत्रयं प्रकल्पितं शतं शतं तथा सुकन्दशाककं तथा मुनि ॥१९८॥
पाकादिसर्पिषान्वितं ददौ च पञ्चविंशति सुशर्करादिकं तथा सूचूतदाडिमादिकम् ।
मोचाफलं तु गोस्तनीं सुखर्जुनागरङ्गकं जम्बूफलं प्रियालुकं विकङ्कतं फलं तथा ॥१९९॥
एवमादीनि चान्यानि द्रव्याण्यर्प्य यथाविधि ।
दत्त्वा चापोशनं विप्रो भुज्यतामिति चाब्रवीत् ॥२००॥
भुञ्जानेषु च सर्वेषु व्यजनं सूक्ष्मवस्त्रम्। गौतमः स्वयमादाय शिवविष्णू अवीजयत् ॥२०१॥
परिहासमथो कर्तुमियेष परमेश्वरः। पश्य विष्णो हनूमन्तं कथं भुङ्क्ते स वानरः॥२०२॥
वानरं पश्यति हरौ मण्डकं विष्णुभाजने। चिक्षेप मुनिसङ्घेषु पश्यत्स्वपि महेश्वरः॥२०३॥
हनूमत्ते दत्तवांश्च स्वोच्छिष्टं पायसादिकम्। त्वदुच्छिष्टमभोज्यं तु तवैव वचनाद्विभो॥२०४॥
अनर्हं मम नैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं तथा । मह्यं निवेद्य सकलं कूप एव विनिक्षिपेत् ॥
अभुक्ते त्वद्वचो नूनं भुक्ते चापि कृपा तव ॥२०५॥

सदाशिव उवाच

बाणलिङ्गस्वयम्भूते चन्द्रकान्ते ह्यवस्थिते । चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्॥२०६॥
भुक्तिवेलेयमधुना तद्वैरस्यं कथान्तरात् ।
भुक्त्वा तु कथयिष्यामि निर्विशङ्कं विभुङ्क्ष्व तत् ॥२०७॥
अथासौ जलसंस्कारं कृतवान्गौतमो मुनिः ॥२०८॥
आरक्तसुस्निग्धसूसूक्ष्मगात्राननेकधाधौतसुशोभिताङ्गान् ।
तडागतोयैः कृतबीजघर्षितैर्विशोधितैस्तैः करकानपूरयत् ॥२०९॥

गये दो प्रकार के पक्वान्न, अपक्व तथा पावन मिश्रित पदार्थ तीन सौ प्रकार के सौ-सौ प्रकार के कन्द और शाक, घृत युक्त शाक, पचीस प्रकार के सुन्दर चीन आदि चून तथा अनार आदि गोस्तन के समान केलाफल, खर्जूर, नारङ्गी, जामुन, प्रियालु तथा विकांकत फल आदि को गौतम महर्षि ने परोसा ॥१९८-१९९॥ इसीतरह से दूसरे फलों को विधि के अनुसार परस कर उन्होंने आपोशन प्रदान किया और कहा व्रिपों आपलोग भोजन करें ॥२००॥ सबों के भोजन करते समय गौतम महर्षि ने सूक्ष्म वस्त्र से उन लोगों को हवा किया ॥२०१॥ उसके बाद शङ्करजी ने हँसी करना चाहा । उन्होंने कहा हे विष्णो ! आप देखें हनूमान नामक वानर कैसे भोजन कर रहे हैं ?॥२०२॥ जब श्रीहरि हनुमानजी को देख रहे थे उसी समय शङ्करजी भगवान् विष्णु के पात्र में मांड डाल दिए । इसको सभी मुनिगणों ने देखा॥२०३॥ उन्होंने हनुमानजी को अपना उच्छिष्ट खीर प्रदान कर दिये । हे देव ! आपने ही कहा है कि जो मेरा उच्छिष्ट होता है वह मेरा नैवेद्य, पुष्प तथा फल अयोग्य होता है । अतएव मुझको निवेदित की गयी सारी वस्तुओं को कूप में डाल देना चाहिए ॥२०४-२०५॥ उसको नहीं खाने पर आपके वचन का पालन होता है और खाने पर आपकी कृपा होगी । **सदाशिव ने कहा—** बाण लिङ्ग के होने पर अथवा स्वयं चन्द्रकान्त के रहने पर ॥२०६॥ शिवजी के नैवेद्य का भक्षण करने से चान्द्रायण व्रत करने का फल प्राप्त होता है। इस भोजन के समय दूसरे प्रकार की चर्चा से विरसता आ जायेगी ॥२०७॥ भोजन कर लेने के बाद मैं

नद्याः सैकतवेदिकां नवतरां सञ्छाद्य सूक्ष्माम्बरैः ।
शुद्धैः स्वेततरैरथोपरि घटांस्तोयेन पूर्णान्क्षिपेत् ॥
क्षिप्त्वा नालकजातिमास्तपुटकं कङ्कोलकस्तूरिका ।
चूर्णं चन्दनचन्द्ररश्मिविशदां मालां पुटान्तां क्षिपेत् ॥२१०॥
यामस्यापि पुनश्च वारिवसने नाशोध्य कुम्भेक्षिपेत् ।
चन्द्रग्रन्थिमथो निधाय वकुलं क्षिप्त्वा तथा पाटलाम् ॥२११॥
शेफालीस्तबकमथो जलं च तत्र विन्यस्य प्रथमत एवं तोयशुद्धिम् ।
कृत्वाऽथो मृदुतरसूक्ष्मवस्त्रखण्डेनावेष्टेत्सृणिकमुखं च सूक्ष्मचन्द्रम् ॥२१२॥
अनातपप्रदेशे तु निधाय करकानथ । मन्दवातसमोपेते सूक्ष्मव्यजनवीजिते ॥२१३॥
अथ उर्वीशसलिलैः सिञ्चयेत्सृणिकामपि ।
संस्कृत्वा स्वायतास्तत्र नरा नार्योऽथवा नृप ! ॥२१४॥
तत्कया वा क्षालिताङ्गा धौतवस्त्राश्च वासहः ।
मधुपिङ्गलनिर्यासमसांद्रमगुरुद्रवम् ॥२१५॥
बाहुमूले च कण्ठे च विलिप्यसान्द्रमेव च। मस्तके जाप्यकं न्यस्य पञ्चगन्धविलेपनम् ॥२१६॥
पुष्पनद्धसुकेशास्तु ताः शुभास्याः सुनिर्मलाः ।
एवमेवोचिता नार्य आत्तकुङ्कुमविग्रहाः ॥२१७॥

बतलाऊँगा तुम बिना किसी शङ्का के भोजन करो । उसके पश्चात् गौतम मुनि ने जल संस्कार किया॥२०८॥ लाल-लाल सुन्दर तथा छोटे आकार वाले, अनेक प्रकार से धोए जाने के कारण सुन्दर लगने वाले करकाओं को बीज को डालकर जिसको शुद्ध बना दिया गया था ऐसे तालाब के जल से गौतम महर्षि ने भर दिया । नदी के शुद्ध तथा श्वेत वर्ण के बालू से नवीन बनायी गयी वेदी को वस्त्र से ढ़ँककर जल भरे घड़ों को रथ के ऊपर रख दे । फिर नालक जाति के दोनो को उन पर रखकर कंकोल और कस्तूरी के चूर्ण चन्दन तथा श्वेत माला को उस दाने पर रखे ॥२०९-२१०॥ फिर वस्त्र छानने वाले कपड़े से उस जल को छानकर कलश में डाले । उसके बाद चन्द्रगन्थि को कलश में डालकर बकुल तथा गुलाब को डालना चाहिए ॥२११॥ हरशृङ्गार के गुच्छ तथा जल को वहाँ रखकर पहले से ही जल की शुद्धि करके सूक्ष्म वस्त्र के टुकड़े से करका के मुख तथा छोटे चन्द्रक को लपेट देना चाहिए ॥२१२॥ उसके बाद करकाओं को वहाँ रखना चाहिए जहाँ धूप नहीं मन्दवायु से युक्त तथा पङ्खे से हवाकर लिए जाने पर॥२१३॥ उसके बाद हे पृथिवीपते ! जल से सृणिका को भी सींचे । हे राजन् रामचन्द्र ! वहाँ पर अपने अधीन रहने वाले स्त्रियों और पुरुषों का संस्कार करके ॥२१४॥ अथवा उन सबों की स्नान की हुयी कन्याएँ, अथवा जिनके वस्त्र को धो दिए गये हैं, वे सब एक साथ मधुपिङ्गल के रस को जो पतला हो तथा जो भारी रस न हो उसको ॥२१५॥ अच्छी तरह से अपने बाहुमूल तथा कण्ठ में अच्छी तरह से पोतकर, पञ्च गन्ध के लेप तथा जप्यक को मस्तक पर रखे ॥२१६॥ उन सबों के सुन्दर केशों में पुष्पों को लगा हुआ होना चाहिए तथा उनका मुख भी स्वच्छ होना चाहिए । इसी तरह उचित नारियाँ जो अपने शरीर में कुङ्कुम लगायी हों ॥२१७॥ युवती तथा सर्वाङ्ग सुन्दरी तथा भूषणों से भूषित नारियाँ हों उन सबों से अथवा

युवत्यश्चारुसर्वाङ्ग्यो नितरां भूषणैरपि। एतादृग्वनिताभिर्वा नरैर्वादापयेज्जलम् ॥२१८॥
तेऽपि प्रदानसमये सूक्ष्मवस्त्राल्पवेष्टनम्। अथ वामकरे न्यस्य करकं तत्र पश्य हि ॥२१९॥
दोहरकान्यस्तमुन्मुच्य ततस्तोयं प्रदापयेत्। एवं सत्कारयामास गौतमो भगवान्मुनिः ॥२२०॥
महेशादिषु सर्वेषु भुक्तवत्सु महात्मसु। प्रक्षालिताङ्घ्रिहस्तेषु गन्धोद्वर्तितपाणिषु॥२२१॥
तदासनसमासीने देवेदेवे महेश्वरे। अथ नीचसमासीना देवाः सर्षिगणास्तथा ॥२२२॥
मणिपात्रेषु संवेष्ट्य पूगखण्डान्सुधूपितान्। अकोणवर्तलान्स्थूलानसूक्ष्मानकृशानपि ॥२२३॥
श्वेतपत्राणि संशोध्य क्षिप्त्वा कर्पूरखण्डकम्।
चूर्णं च शङ्करायाथ निवेदयति गौतमे ॥२२४॥
गृहाण देव ताम्बूलमित्युक्तवचनेमुनौ। कपे गृहाण ताम्बूलं प्रयच्छ ममखण्डकान् ॥२२५॥
उवाच वानरो नास्ति मम शुद्धिर्महेश्वर। अनेकफलभुक्तत्वाद्वानरस्तु शुचिःकथम् ॥२२६॥

सदाशिव उवाच

मद्वाक्यादखिलं शुध्येन्मद्वाक्यादमृतं विषम्। मद्वाक्यादखिलावेदा मद्वाक्याद्देवतादयः॥२२७॥
मद्वाक्याद्धर्मविज्ञानं मद्वाक्यान्मोक्ष उच्यते। पुराणान्यागमाश्चैव स्मृतयो मम वाक्यतः ॥२२८॥
अतो गृहाण ताम्बूलं ममदद्याःसुखण्डकान्।
हरिर्वामकरेणादात्ताम्बूलं पूगखण्डकम् ॥२२९॥
ततःपात्राणि सङ्गृह्य ततः खण्डान्समर्पयत्।
कर्पूरमग्रतोदत्तं गृहीत्वाऽभक्षयच्छिवः ॥२३०॥

पुरुषों से जल दिलवाये ॥२१८॥ उन पुरुषों को भी जल देते समय सूक्ष्म (पतला) वस्त्र तथा अल्प वेष्टनों से युक्त होना चाहिए। उसके पश्चात् करक को बायें हाथ पर रखकर उसको देखे और उसमें रखी गयी डोरी को खोलकर उसके बाद जल दे इसी प्रकार से भगवान् गौतम मुनि ने सबों का सत्कार किया ॥२१९-२२०॥ जब महेश आदि सभी महापुरुष भोजन कर लिए, हाथ पैर धो लिए और हाथ में चन्दन का उद्वर्तन लगा लिए ॥२२१॥ उसके बाद जब देवदेव शङ्करजी अपने आसन पर बैठ गये, उनके नीचे सभी देवता और ऋषिगण बैठ गये ॥२२२॥ मणि के पात्रों में लपेट कर, अच्छी तरह से धूपित कोण रहित, गोल-गोल बड़े-बड़े सुपारी के टूकड़े पककर उजले हुए पान के पत्तों को पोंछकर तथा उसमें कर्पूर के टुकड़ों को डालकर, उस पान को तथा चूने को महर्षि ने शङ्करजी को प्रदान किया ॥२२३-२२४॥ मुनि ने जब कहा कि हे देव ! आप ताम्बूल स्वीकार करें तो शङ्करजी ने हनुमानजी से कहा हे कपे ! ताम्बूल लेकर मुझे सुपारी के टुकड़ों को दों ॥२२५॥ हनुमानजी ने कहा महेश्वर मैं शुद्ध नहीं हूँ। अनेक फलों को खाने वाला बानर कैसे शुद्ध हो सकता हैं ?॥२२६॥ **सदाशिव ने कहा—** मेरे कहने मात्र से सभी वस्तुएँ शुद्ध हो जाती हैं और मेरे कहने से ही अमृत भी विष हो जाता है। सारे वेद मेरे वाक्य से उत्पन्न हैं और मेरे ही वाक्य से देवता आदि हैं ॥२२७॥ मेरे ही वाक्य से धर्म का ज्ञान होता है और मेरे ही वाक्य से मोक्ष होता है। मेरे ही वाक्य से पुराण, आगम, स्मृतियाँ उत्पन्न हुयी हैं ॥२२८॥ अतएव पान ले लो और मुझे सुपारी का टुकड़ा दो। हनुमानजी ने बायें हाथ से ताम्बल और सुपारी के टुकड़ों को ले लिया ॥२२९॥ उसके बाद पान के पत्तों को लेकर उन्होंने सुपारी के टुकड़े के साथ उसे शङ्करजी को

देवे तुकृतताम्बूले पार्वती मन्दराचलात् । जया विजययोर्हस्तं गृहीत्वायान्मुनेर्गृहम्॥२३१॥
देवपादौ ततो नत्वा विनम्रवदनाऽभवत् । उन्नमय्यमुखं तस्या इदमाह त्रिलोचनः ॥२३२॥
त्वदर्थं देवदेवेशि ! अपराधःकृतो मया ।
यत्त्वां विहाय भुक्तं हि तथाऽन्यच्छृणु सुन्दरि ! ॥२३३॥
अथ स्वमन्दिरे स्थाप्य देवदेवविवर्जिते । सर्वबन्धविमुक्ते च महदेनो मयाकृतम्॥२३४॥
क्षन्तुमर्हसि देवेशि ! त्यक्तकोपा विलोकय ।
न बभाषैवमुक्ता सा अरुन्धत्या हि निर्ययौ ॥२३५॥
निर्गच्छन्तीं मुनिर्ज्ञात्वा दण्डवत्प्रणनाम च । तदारभ्य महेशाय दण्डप्रणतिसंस्तुतिम् ॥२३६॥
कुर्यादुवाच च शिवा गौतम ! त्वं किमिच्छसि ॥२३७॥

गौतम उवाच

कृतकृत्योऽस्मि देवेशि ! यदि देयो वरो मम ।
मन्मन्दिरे महाभागे भोक्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥२३८॥

देव्युवाच

भोक्ष्यामि तवगेहेऽहं शङ्करानुमता मुने ! । गत्वेशं गौतमो विप्रो लब्धानुज्ञः पुनर्गतः ॥२३९॥
भोजयामास गिरिशां देवीं चारुन्धतीं तथा ।
भुक्त्वाऽथ पार्वती सर्वं गन्धपुष्पसभूषणा ॥२४०॥
सहानुचरकन्याभिःसहस्राभिर्हरं ययौ । अथाह शङ्करो देवीं गच्छ गौतममन्दिरम् ॥२४१॥

समर्पित किया । उन्होंने पहले ही कर्पूर दे दिया उसके लेकर शिवजी ने खा लिया ॥२३०॥ भगवान् शिव के ताम्बूल ले लेने के पश्चात् पार्वतीजी जया तथा विजया के हाथों को पकड़ करके मन्दराचल से गौतम ऋषि के घर आयीं ॥२३१॥ शङ्करजी के चरणों की वन्दना करके उन्होंने अपना मुख नीचे कर लिया । पार्वतीजी के मुख को ऊपर उठाकर शङ्करजी ने कहा ॥२३२॥ हे देव देवेशि ! मैंने आपका यह अपराध किया है कि आपको छोड़कर अकेले ही भोजन कर लिया है, दूसरी भी बात यह है कि आपसे रहित तथा सभी प्रकार के बन्धनों से रहित अपने घर में आपको छोड़कर मैंने आपका महान् अपराध किया है॥२३३-२३४॥ हे देवि ! क्षमा करो और क्रोध का त्याग करके तुम मुझे देखो । किन्तु पार्वतीजी उनसे बोले बिना ही अरुन्धतीजी के साथ चली गयी ॥२३५॥ मुनि उनको जाती हुयी जानकर साष्टाङ्ग प्रणाम किए । उसके बाद उन्होंने शङ्करजी को दण्डवत् प्रणाम करके उनकी स्तुति की ॥२३६॥ पार्वतीजी ने गौतम महर्षि से पूछा कि तुम क्या चाहते हो ? **गौतम महर्षि ने कहा**— हे देवि ! यदि आप मुझे वरदान देना चाहती है तब तो मैं कृतकृत्य हो गया ॥२३७॥ हे महाभागे ! आप मेरे घर भोजन कर लें । **देवी ने कहा**— हे मुने ! शङ्करजी की अनुमति प्राप्त करके ही मैं तुम्हारे घर भोजन करूँगी ॥२३८॥ गौतम महर्षि शङ्करजी के पास जाकर उनसे आज्ञा लेकर फिर पार्वतीजी के पास आये । उन्होंने पार्वतीजी को और अरुन्धती देवी को भोजन कराया ॥२३९॥ भोजन करके पार्वतीजी सभी पुष्पों की सुगन्धि और भूषणों से अलंकृत होकर अपनी हजार अनुचरी कन्याओं के साथ शङ्करजी के पास गयीं ॥२४०॥ इसके बाद शङ्करजी ने पार्वतीजी से कहा कि तुम गौतम के घर में जाओ । मैं सन्ध्योपासन करके फिर घर आ रहा हूँ ॥२४१॥ इस तरह

सन्ध्योपास्तिमहं कृत्वा ह्यागच्छामि पुनर्गृहम् ।
इत्युक्त्वा प्रययौ देवी गौतमस्यैव मन्दिरम् ॥२४२॥
सन्ध्यावन्दनकामाश्च सर्व एव विनिर्गताः । कृतसन्ध्यास्तटाके तु महेशाद्यास्तु कृत्स्नशः॥२४३॥
अथोत्तरमुखः शम्भुर्न्यासं कृत्वा जजाप ह। अथ विष्णुर्महातेजा महेशमिदमब्रवीत्॥२४४॥
सर्वैर्नमस्यते यस्तु सर्वैरेव समर्च्यते। हूयते सर्वयज्ञेषु स भवान्कि जपिष्यति॥२४५॥
रचिताञ्जलयःसर्वे त्वामेवैकमुपासते । स भवान्देवदेवेश कस्मै वा रचिताञ्जलिः॥२४६॥
नमस्कारादि पुण्यानां फलदस्त्वं महेश्वर । तवकःफलदो वन्द्यःको वात्वतोऽधिको वद॥२४७॥

शङ्कर उवाच

ध्याये न किञ्चिद्गोविन्द न नमस्येह किञ्चन ।
नोपास्येकं च न हरे न जपिष्येह किंचन ॥२४८॥
किं तु नास्तिकजन्तूनां प्रवृत्त्यर्थमिदं मया । दर्शनीयं हरे ! तेस्युरन्यथा पापकारिणः ॥२४९॥
तस्माल्लोकोपकारार्थमिदं सर्वं कृतं मया । ओमित्युक्त्वा हरिरथ तं नत्वा समतिष्ठत ॥२५०॥
अथ ते गौतमगृहं प्राप्ता देवगणर्षयः। सर्वे पूजामथो चक्रुर्देवदेवाय शम्भवे॥२५१॥
देवो हनूमतासार्द्धं गायन्नास्ते रघूत्तम ! । पञ्चाक्षरीं महाविद्यां सर्व एव तदाऽजपन्॥२५२॥
हनूमत्करमालम्ब्य देव्यभ्याशं गतो हरः । एकशय्या समासीनौ तावुभौ देवदम्पती ॥२५३॥
गायन्नास्ते स हनुमांस्तुम्बुरुर्नारदस्तथा ।
नानाविधविलासांश्च चकार परमेश्वरः । आहूय पार्वतीमीश ! इदं वाक्यमुवाच ह॥२५४॥

से कहने पर पार्वतीजी गौतम महर्षि के ही घर चली गयीं । सन्ध्या करने की इच्छा से सभी लोग निकल पड़े ॥२४२॥ महेश आदि सभी लोग तटाक में सन्ध्या करके शङ्करजी उत्तराभिमुख होकर न्यास करके जप किए ॥२४३॥ उसके बाद महातेजस्वी भगवान् विष्णु शङ्करजी से पूछे । सबलोग आपको नमस्कार करते हैं और सबलोग आपकी ही पूजा करते हैं ॥२४४॥ सभी यज्ञों में आपका ही आवाहन किया जाता है, आप किस देवता का जप करते है ? सबलोग हाथ जोड़कर केवल आपकी ही उपासना करते हैं ॥२४५॥ हे देवदेवेश ! आप किसको हाथ जोड़ते हैं ? हे महेश्वर ! नमस्कार आदि पुण्यों का एक मात्र फल प्रदान करने वाले आप हैं आपको कौन फल देने वाला है, अथवा आपसे बढ़कर कौन है ? इसे आप बतलाएँ शङ्करजी ने कहा हे गोविन्द ! मैं किसी का ध्यान नहीं करता हूँ और न तो मेरा कोई नमस्य है ॥२४६-२४७॥ हे हरे ! मैं किसी की उपासना नहीं करता हूँ और न तो मैं किसी का जप करता हूँ, किन्तु नास्तिक जीवों को दिखाने के लिए मैं यह करता हूँ ॥२४८॥ हे हरे ! उन सबों को दिखाना आवश्यक है अन्यथा वे पापी हो जायेंगे । अतएव संसार का उपकार करने के लिए मैं यह सब करता हूँ ॥२४९॥ उसके बाद श्रीहरि ठीक है, इस तरह से उनको कहकर बैठ गये । उसके बाद वे सभी देवगण और ऋषिगण महर्षि गौतम के घर गये ॥२५०॥ सबलोगों ने देवाराध्य शङ्करजी की पूजा की । हे रघूत्तम रामचन्द्रजी ! शङ्करजी हनुमानजी के साथ गीत गा रहे थे ॥२५१॥ उस समय सबलोग पञ्चाक्षरी महाविद्या का जप कर रहे थे । हनुमानजी का हाथ पकड़कर शङ्करजी देवी पार्वतीजी के पास गये ॥२५२॥ वे दोनों देवदम्पती एक आसन पर बैठे थे और हनुमानजी तुम्बरु तथा नारदजी गीत गा रहे थे ॥२५३॥ शङ्करजी

श्रीसदाशिव उवाच

रचयिष्यामि धम्मिल्लमेहि मत्पुरत:शुभे। देव्याह न च युक्तं तद्भर्त्राशूश्रूषणं स्त्रियाः॥२५५॥
केशप्रसाधनकृतावनर्थान्तरमापतेत् । केशप्रसाधने देव ! तत्त्वं सर्वं न चेप्सितम्॥२५६॥
अथ बन्धे कृते पश्चादंसप्रान्तप्रमार्जनम् । तनोश्चरमसँलग्नकेशपुष्पादि मार्जनम्॥२५७॥
एतस्मिन्वर्तमाने तु महात्मानो यदाऽऽगमन्। तदा किमुत्तरं वाच्यं तव देवादिवन्दिनः॥२५८॥
नायान्ति चेदथ विभो भीतिर्नाशमुपेष्यति। एवं हि भाषामाणां तां करेणाकृष्य शङ्करः॥२५९॥
स्वोर्वोस्तां स्थापयित्वैव विस्रस्य कचबन्धनम् ।
विभज्य च कराभ्यां स प्रससार नखैरपि ॥२६०॥
विष्णुदत्तां पारिजातस्रजं कचगतामपि। कृत्वा धम्मिल्लमकरोदथ मालां करागताम्॥२६१॥
मल्लिकास्रजमादाय बबन्ध कचबन्धने। कल्पप्रसूनमालां च ब्रह्मदत्तां महेश्वरः॥२६२॥
पार्वतीवसने गूढगन्धाढ्ये च समादधात्। अथांसपृष्ठसंल्लग्नप्रमार्जनं कृतवान्विभुः॥२६३॥
श्लथनीवेरधो देव्या वस्त्रवेष्टेरधोगतः। देवः किमिदामित्युक्त्वा नीवीबन्धं चकार ह॥२६४॥
नासाभूषणमेतत्ते पश्यामि समदात्ततः ।
इत्युक्त्वा स्वयमादाय विच्छायं मौक्तिकं सती ॥२६५॥
हरिद्रायाःसमायोगे मुक्ताफलदीप्तिमत्। इदं न ध्रियतां मुक्ताफलं मम तव प्रियम्॥२६६॥

पार्वत्युवाच

अहो त्वन्मन्दिरं शम्भो सर्ववस्तु समृद्धिमत् ।
पूर्वमेव मया सर्वं वस्तुज्ञातं विभूषणैः ॥२६७॥

ने अनेक प्रकार का विलास किया। पार्वतीजी को बुलाकर शङ्करजी ने कहा ॥२५४॥ **श्रीसदाशिव ने कहा**— हे देवि ! मेरे सामने आओ मैं तुम्हारी चोटी गूंथ दूँ। पार्वतीजी ने कहा पति को स्त्री की सेवा करना उचित नहीं है ॥२५५॥ केश को सँवारने पर दूसरा अर्थ हो सकता है। हे देव ! केशों के सवारने में तो सभी तत्त्व हैं नहीं ॥२५६॥ केश बाँधने के पश्चात् कन्धे को साफ करना पड़ता है। शरीर में लगे हुए केश तथा पुष्प आदि को हटाना होता है ॥२५७॥ उसी समय यदि कोई महापुरुष आ जायँ तो हे देवताओं मे वंदनीय शङ्करजी ! आप उनसे क्या उत्तर देंगे ?॥२५८॥ हे विभो ! यदि वे नहीं आते हैं तो नाश का भय होता है। इस तरह से कहने वाली पार्वतीजी को शङ्करजी अपने हाथ से खींचकर ॥२५९॥ अपने जङ्घे पर उनको बैठा लिए तथा उनके केश के बंधन को खोल दिए। वे अपने दोनों हाथों से उनके केशों को दो भागों में विभक्त करके अपने नखों से फैला दिए ॥२६०॥ भगवान् विष्णु के द्वारा प्रदत्त पारिजात पुष्प की माला को बालों में लागाकर अपने हाथ की माला को भी उनकी चोटी में लगा दिए।॥२६१॥ मल्लिका की माला को लेकर उन्होंने बालों के बन्धन में लगा दिया। ब्रह्माजी के द्वारा प्रदत्त कल्पपुष्प की माला को शिवजी ने पार्वतीजी के अत्यन्त सुगन्धित वस्त्र में छिपाकर रख दिया। इसके बाद शङ्करजी ने पार्वतीजी के कन्धों पर लगे बालों को झाड़ दिया ॥२६२-२६३॥ ढीली पड़ी हुयी देवी के नीवी के वस्त्र के नीचे जाकर शङ्करजी ने कहा यह क्या है ? और उन्होंने कसकर नीवी को बाँध दिया ॥२६४॥ यह तुम्हारी नाक का भूषण है उसे मैं देखता हूँ, यह कहकर उसको लेकर पार्वतीजी ने गंदली हुयी मोती को

अहो द्रविणसम्पत्तिभूषणैरवगम्यते। शिरो विभूषितं देव ब्रह्मशीर्षस्य मालया॥२६८॥
नरकस्य तथा माला वक्षःस्थलविभूषणम्। शेषश्च वासुकिश्चैव सविषौ तव कङ्कणे ॥२६९॥
दिशोऽम्बरे जटाकेशा भसितं चाङ्गरागकम् ।
महोक्षो वाहनं गोत्रं कुलं चाज्ञातमेव च ॥२७०॥
ज्ञायेते पितरौ नैव विरूपाक्षं तथा वपुः । एवं वदन्तीं गिरिजां विष्णुःप्राहातिकोपनः ॥२७१॥
किमर्थं निन्दसे देवि ! देवदेवं जगत्पतिम्। त्यक्ष्ये प्राणान्प्रियान्भद्रे तव नूनमसंशयम्॥२७२॥
यत्रेशानिन्दनं भद्रे तत्र नो मरणंव्रतम् ।
इत्युक्त्वाऽथ नखाभ्यां हि हरिश्छेत्तुं शिरोगतः ॥२७३॥
महेशस्त करंगृह्य प्राह मा साहसं कृथाः ।
पार्वतीवचनं सर्वं प्रियं मम तवाप्रियम् ॥२७४॥
ममाप्रियं हृषीकेश ! कर्तुं यत्किञ्चिदिष्यते ।
ओमित्युक्त्वाऽथ भगवांस्तूष्णीं भूतोऽभवद्धरिः ॥२७५॥
हनुमानथ देवाय व्यज्ञापयदिदं वचः। अर्थयामि विनिष्कामं ममपूजां व्रतं तथा॥२७६॥
पूजार्थमप्यहं गच्छे मामनुज्ञातुमर्हसि ॥२७७॥

शङ्कर उवाच

कस्य पूजा क्व वा पूजा किं पुष्पं किं दलं वद ।
को गुरुः कश्च मन्त्रस्ते कीदृशं पूजनं तथा ॥२७८॥

हल्दी के द्वारा रगड़ करके उसको चमका दिया । इसे ले लो यह मोती तुमको अत्यन्त प्रिय है ॥२६५-२६६॥ **पार्वतीजी ने कहा—** अरे शम्भो ! आपके घर में तो सारी वस्तुएँ समृद्धि से ही युक्त हैं । मैं भूषणों के द्वारा आपके घर की सारी वस्तुओं को जान चुकी हूँ ॥२६७॥ धन सम्पत्ति का पता तो आभूषण से ही चल जाता है । हे देव ! आपका शिर ब्रह्माजी के शिर की माला से अलंकृत रहता है ॥२६८॥ नरकासुर के शिर की माला से आपका वक्षस्थल सुशोभित रहता है । विषैले शेष तथा वासुकि आपके कङ्कण का काम करते हैं ॥२६९॥ आपकी जटा के केश दिशा रूपी वस्त्र में लहराते रहते हैं और भस्म ही आपके अङ्गराग का काम करता है । बड़ा सा बैल आपका वाहन है । आपके कुल तथा गोत्र का तो कोई पता नहीं है ॥२७०॥ आपके माता-पिता कौन है यह भी पता नहीं है, आपका शरीर विरूपाक्ष है । इस तरह से कहने वाली पार्वती देवी से क्रोध करके भगवान् विष्णु ने कहा ॥२७१॥ हे देवि ! शङ्करजी देवाराध्य हैं, जगत् के स्वामी हैं, इनकी निन्दा आप क्यों कर रही हैं ? आपकी इन असंयमित बातों को सुनकर मैं अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगा ॥२७२॥ हे देवि ! यह मेरा व्रत है कि जहाँ पर शिवजी की निन्दा की जाती है, वहाँ मैं अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगा । इस तरह से कहकर श्रीहरि नखों से अपना शिर काट देना चाहे ॥२७३॥ शङ्करजी ने उनका हाथ पकड़ कर कहा साहसिक कार्य मत करो । पार्वतीजी की सारी बातें जो तुमको अप्रिय लगती हैं, वे सब मुझको प्रिय हैं ॥२७४॥ हे हृषीकेश ! मुझको जो प्रिय है वही तुमको करना चाहिए । यह सुनकर भगवान् विष्णु ने कहा ठीक है और वे मौन हो गये ॥२७५॥ हनुमानजी ने शङ्करजी से कहा मैं अपनी निष्काम पूजा और व्रत को जानना चाहता हूँ ॥२७६॥ मैं भी पूजा

एवं वदति देवेशे हनूमानतिकम्पितः। वेपमानसमस्ताङ्गःस्तोतुमेव प्रचक्रमे ॥२७९॥

हनुमानुवाच

नमो देवाय महते शङ्करायामितात्मने। योगिने योगधात्रे च योगिनां गुरवे नमः ॥२८०॥
योगिगम्याय देवाय ज्ञानिनां पतये नमः। वेदानां पतये तुभ्यं देवनां पतये नमः ॥२८१॥
ध्यानाय ध्यानगम्याय ध्यातॄणां गुरवे नमः। शिष्टाय शिष्टगम्याय भूम्यादिपतये नमः ॥२८२॥
नमस्तेत्यादीनां वेदवाक्यानां निधये नमः। आतनुष्वेति वाक्यैश्च प्रतिपाद्याय ते नमः ॥२८३॥
अष्टमूर्ते नमस्तुभ्यं पशूनांपतये नमः। त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय सोमसूर्याग्निलोचन !॥२८४॥
सुभृङ्गराजधत्तूरद्रोणपुष्पप्रियाय ते। बृहतीपूगपुन्नागचम्पकादिप्रियाय च ॥२८५॥
नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु भूय एव नमो नमः।
शिवो हरिमथ प्राह मा भैषीर्वद मेऽखिलम् ॥२८६॥

हनुमानुवाच

शिवलिङ्गार्चनं कार्यं भस्मोदधूलितदेहिना। दिवासम्पादितैस्तोयैः पुष्पाद्यैरपि तादृशैः ॥२८७॥
देव विज्ञापयिष्यामि शिवपूजाविधिं शुभम्। सायंकाले तु सम्प्राप्ते ह्यशिरःस्नानमाचरेत् ॥२८८॥
क्षालितं वसनं शुष्कं धृत्वाऽऽचम्य द्विरग्रधीः।
अथभस्मसमादाय आग्नेयं स्नानामाचरेत् ॥२८९॥

करने जा रहा हूँ मुझे आप आज्ञा दें। **शङ्करजी ने कहा—** बतलाओं किसकी पूजा, कहाँ पर पूजा, उसका कौन सा पुण्य है, कौन सा पत्र है, ॥२७७॥ तुम्हारे गुरु कौन हैं ? तुम्हारा मन्त्र क्या है ? तथा तुम्हारी पूजा कैसी है ? शङ्करजी के इस तरह से कहने पर हनुमानजी काँपने लगे ॥२७८॥ उनका सारा अङ्ग काँप रहा था। वे शङ्करजी की स्तुति करने लगे। **हनुमानजी ने कहा—** महान् देवता अमितात्मा शङ्करजी को नमस्कार है। योगी, योग के धाता तथा योगियों के गुरु शङ्करजी को नमस्कार है। जिनको योगी ही जान सकते हैं, तथा ज्ञानियों के स्वामी शङ्करजी को नमस्कार हैं ॥२७९-२८०॥ आप वेदों के स्वामी हैं तथा देवताओं के स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। ध्यान स्वरूप, ध्यानगम्य तथा ध्यान करने वालों के गुरु शङ्करजी को नमस्कार है ॥२८१॥ शिष्ट स्वरूप शिष्टगम्य तथा भूमि आदि के पति शङ्करजी को नमस्कार है। **अमस्ते इत्यादि** वेद वाक्यों के आप आकार हैं, आपको नमस्कार है ॥२८२॥ **आतनुष्व इत्यादि** वाक्यों के प्रतिपाद्य आपको नमस्कार है। अष्टमूर्ति स्वरूप आपको नमस्कार है तथा पशुपति स्वरूप आपको नमस्कार है ॥२८३॥ तीन नेत्र वाले त्र्यम्बक को नमस्कार है, सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि जिनके नेत्र हैं, ऐसे शिवजी को नमस्कार हैं, भृंगराज, द्रोण पुष्प तथा धत्तूर जिनको प्रिय है ऐसे शिवजी को नमस्कार है ॥२८४॥ बृहती, पूग (सुपारी) तथा नागचम्पक जिनको प्रिय हैं ऐसे शिवजी को नमस्कार है। आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥२८५॥ शिवजी तथा श्रीहरि ने कहा डरो मत मुझे सारी बातें बतलाओ। **हनुमानजी ने कहा—** मैं भस्म से शरीर को उद्धूलित करके शिवलिङ्ग की अर्चना करना चाहता हूँ ॥२८६॥ जिन पुष्पों तथा जलों को मैंने दिन में ही एकत्रित कर लिया था उनसे ही पूजा करना चाहता हूँ। हे देव! मैं शिवपूजा की शुभ पूजा विधि का वर्णन करूँगा ॥२८७॥ सायंकाल हो जाने पर शिर से स्नान न करे। बुद्धिमान् को चाहिए कि वह धोए हुए तथा सूखे वस्त्र को धारण करके दो बार आचमन करे ॥२८८॥

प्रणवेन समामन्त्र्याप्यष्टवारमथापि वा । पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण नाम्ना वा येन केनचित् ॥२९०॥
सप्ताभिमन्त्रितं भस्म दर्भपाणिः समाहरेत् ।
ईशानः सर्वविद्यानामुक्त्वा शिरसि पातयेत् ॥२९१॥
तत्पुरुषाय विद्महे मुखे भस्म प्रसेचयेत्। अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो भस्मवक्षसि निक्षिपेत्॥२९२॥
वामदेवाय नम इति गुह्यस्थाने विनिक्षिपेत्। सद्योजातं प्रपद्यामि निक्षिपेदथ पादयोः॥२९३॥
उद्धूलयेत्समस्ताङ्गे प्रणवेन विचक्षणः। त्रैवर्णिकानामुदितःस्नानादि विधिरुत्तमः॥२९४॥
शूद्रादीनां प्रवक्ष्यामि यदुक्तं गुरुणा तथा। शिवेतिपदमुच्चार्य भस्मसम्मन्त्रयेत्सुधीः॥२९५॥
सप्तवारमथादाय शिवायेति शिरःक्षिपेत् । शङ्कराय मुखे प्रोक्तं सर्वज्ञाय हृदि क्षिपेत्॥२९६॥
स्थाणवे नम इत्युक्त्वा गुह्ये चापि स्वयम्भुवे ।
उच्चार्य पादयोः क्षिप्त्वा भस्मशुद्धमतःपरम् ॥२९७॥
नमःशिवायेत्युच्चार्य सर्वाङ्गोद्धूलनं स्मृतम्। प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य दर्भपाणिःसमाहितः॥२९८॥
दर्भाभावे सुवर्णं स्यात्तदभावे गवालकः । तदभावे तु दूर्वाःस्युस्तदभावे तु राजतम्॥२९९॥
सन्ध्योपास्तिं जपं देव्याः कृत्वा देवगृहं व्रजेत् ।
देव वेदिमथो वापि कल्पितं स्थण्डिलं तु वा ॥३००॥
मृण्मयं कल्पितं शुद्धं पद्मादिरचनायुतम्। चातुर्वर्णकरङ्गैश्च श्वेतेनैकेन वा पुनः॥३०१॥

उसके बाद भस्म को लेकर आग्नेय स्नान करे । उसके बाद भस्म को प्रणव से आठ बार अभिमन्त्रित करे, अथवा पञ्चाक्षर मन्त्र अथवा शिवजी के किसी भी नाम से सात बार अभिमन्त्रित भस्म को हाथ में कुश धारण करके लेना चाहिए ॥२८९-२९०॥ **ईशानः सर्वविद्यानाम्** इस मन्त्र से उसको अपने शिर पर डाले, **तत्पुरुषाय विद्महे** इस मन्त्र से मुख पर भस्म को लगाये ॥२९१॥ **अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यः** इस मन्त्र से बक्षःस्थल में भस्म को लगाये । **वामदेवाय नमः** इस मन्त्र से गुप्ताङ्गों में भस्म लगाये ॥२९२॥ **सद्योजातं प्रपद्यामि** इस मन्त्र से पैरों में भस्म लगाये । प्रणव से सम्पूर्ण अङ्गों में भस्म लगाये ॥२९३॥ त्रैवर्णिकों के लिए यह भस्म स्नान की विधि उत्तम बतलायी गयी है । शूद्रों के लिए मैं उस भस्म स्नानादि विधि को बतलाता हूँ जिस विधि को मेरे गुरुदेव ने बतलाया है ॥२९४॥ शिव पद उच्चारण करके भस्म को अभिमंत्रित करे । सात बार **शिवाय नमः** कहकर शिर पर भस्म को लगाये ॥२९५॥ **शङ्कराय नमः** उच्चारण करके मुख में भस्म लगाये और **सर्वज्ञाय नमः** पद का उच्चारण करके हृदय में भस्म को लगाये। **स्थाणवे नमः** इस पद का उच्चारण करके गुप्ताङ्गों में भस्म को लगाये तथा **स्वयम्भुवे नमः** इस पद का उच्चारण करके पैरों में भस्म को लगाये । इसके बाद वह शुद्ध हो जाता है । **नमः शिवाय** इस वाक्य का उच्चारण करके सम्पूर्ण शरीर में भस्मोद्धूलन करे ॥२९६-२९७॥ हाथ पैर धोकर तथा आचमन करके हाथ में कुश लेकर समाहित होना चाहिए कुश के साथ सुवर्ण को धारण करे तथा सुवर्ण भी न मिले तो गवालक (काश)ऋ को धारण करके ॥२९८॥ उसके भी अभाव में दूर्वा ले, उसके अभाव में चाँदी की अङ्गूठी धारण करे । सन्ध्योपासन करके देवी का जप करे । और उसके बाद देव मन्दिर में जाय ॥२९९॥ उसके बाद देववेदी का अथवा स्थण्डिल बनाये । कमल आदि की रचना से युक्त मिट्टी की वेदी शुद्ध है॥३००॥ चारों प्रकार के रङ्गों से अथवा केवल उजले रङ्ग से ही कमल आदि बनाये । सुन्दर कमल

विचित्राणि च पद्मानि स्वस्तिकादि तथैव च ।
उत्पलादि गदाशङ्खत्रिशूलं डमरुं तथा ॥३०२॥
सरोक्तपञ्चप्रासादं शिवलिङ्गमथैव च। सर्वकामफलं वृक्षं कुलकं कोलकं तथा ॥३०३॥
षट्कोणं च त्रिकोणं च नवकोणमथापि वा ।
कोणद्वादशकां दोलां पादुकां व्यजनानि च ॥३०४॥
चामरच्छत्रयुगलं विष्णुब्रह्मादिकं तथा। चूर्णैर्विरचयेद्वेद्यां धीमान्देवलायेऽपि वा॥३०५॥
यत्रापि देवपूजाऽस्यात्तत्रैवं कल्पयेद्बुधः। स्वहस्तरचितं मुख्यं क्रीतंचैव तु मध्यमम्॥३०६॥
याचितं तु कनिष्ठं स्याद् बलात्कारमथाधमम् ।
अर्हेषु यत्त्वनर्हेषु बलात्कारात्तु निष्फलम् ॥३०७॥
रक्तशालिजपास्थाणकलमासितरक्तकैः । तण्डुलैर्ब्रीहिमात्रोत्थैःकर्णैश्चैव यथाक्रमम्॥३०८॥
उत्तमैर्मध्यमैश्चैव कथितैरधमैस्तथा। पद्मादि स्थापनैरेव तत्सम्यग्यागमाचरेत्॥३०९॥
प्रागुत्तरमुखे वापि यदि वा प्राङ्मुखो भवेत् ।
आसनं च प्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥३१०॥
कौशं चार्म्मं चैलतल्पं दारवं ताडपत्रकम्। काम्बलं काञ्चनंचैव राजतं ताम्रमेव च ॥३११॥
गोकरीषार्कजैर्वापि त्वासनं परिकल्पयेत् । वैयाघ्रं रौरवं चैव हारिणं मार्गमेव च ॥३१२॥
चार्मं चतुर्विधं ज्ञेयमथ बन्धुकमेव च । यथासम्भवमेतेषु ह्यासनं परिकल्पयेत्॥३१३॥
कृतपद्मासनो वापि स्वस्तिकासन एव च। दर्भभस्म समासीनःप्राणानायम्य वाग्यतः॥३१४॥

आदि को अथवा स्वस्तिक चिह्न को बनाना चाहिए ॥३०१॥ नीलकमल, गदा, शङ्ख, त्रिशूल तथा सरोक्त पञ्चमहला भवन बनाये अथवा शिवलिङ्ग को बनाये ॥३०२॥ सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले कुलक था कंकोल का वृक्ष बनाये ॥३०३-३०४॥ उस वेदी पर बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि षट्कोण या त्रिकोण, या नव कोण अथवा बारह कोणों वाली झूला बनाये पादुका तथा व्यजन को भी बनाये । दो चामर, दो छत्र और ब्रह्मा, विष्णु आदि की मूर्ति बनाये । वह इस वेदी पर तथा मन्दिर पर भी बनाये । जहाँ कहीं भी शिवजी की पूजा हो वहाँ इसी प्रकार का निर्माण करना चाहिए ॥३०५॥ अपने हाथ से बनाना उत्तम होता है खरीदी हुयी ये वस्तुएँ मध्यम कोटि की मानी गयी हैं । माँग कर लायी गयी ये सव चीजें कनिष्ठ कोटि की होती हैं । किसी से छीनकर लायी गयी ये वस्तुएँ अधम कोटि की होती है ॥३०६॥ योग्य व्यक्तियों से अथवा अयोग्य व्यक्तियों से बलपूर्वक ली गयी ये वस्तुएँ व्यर्थ होती है । लाल चावल, जपापुष्प, स्थाणक तथा काले लाल रङ्ग से ॥३०७॥ चावल, धान, अथवा कण से निर्मित वस्तुएँ क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा अधम होती है । पद्म इत्यादि की स्थापना पूर्वक ही की गयी पूजा ठीक होती है । पूजन, पहले उत्तराभिमुख होकर अथवा पूर्वाभिमुख होकर करनी चाहिए ॥३०८-३०९॥ जैसा मैंने देखा है अथवा सुना है, उसी प्रकार के आसन का मैं वर्णन करता हूँ । कुश का, वस्त्र का, रुईका, लकड़ी का, ताल पत्र का, कम्बल का, सुवर्ण का, चाँदी का अथवा ताम्बे का या गौ के करीष का इनमें से जो भी सम्भव हो आसन बन सकता है । स्वयं पद्मासन लगाकर या स्वस्तिकासन से बैठे ॥३१०-३१३॥ अर्चक कुश के आसन पर या भस्म पर बैठै और मौन होकर प्राणायाम करे । तब तक वह देवतारूप होकर अपने

तावत्स देवतारूपो ध्यानं चान्तः समाचरेत् ।
शिखान्ते द्वादशाङ्गुल्ये स्थितं सूक्ष्मतनुं शिवम् ॥३१५॥
अन्तश्चरन्तं भूतेषु गुहायां विश्वमूर्तिषु। सर्वाभरणसंयुक्तमणिमादि गुणान्वितम् ॥३१६॥
ध्यात्वा तं धारयेच्चित्ते तद्व्याप्त्या पूरयेत्तनुम् ।
तथा दीप्त्या शरीरस्थं पापं नाशमुपागतम् ॥३१७॥
स्वर्ण पारदसम्पर्काद्रक्तं श्वेतं यथा भवेत्। तद्द्वादशदलावृत्तमष्ट पञ्चत्रिरेव वा॥३१८॥
परिकल्प्यासनं शुद्धं तत्रलिङ्गं निधाय च। गुहास्थितं महेशानं लिङ्गे सञ्चिन्तयेत्तथा ॥३१९॥
शोधिते कलशे तोयं शोधितं गन्धवासितम् ।
सुगन्धपुष्पं निक्षिप्यप्रणवेनाभिमन्त्रितम् ॥३२०॥
प्राणायामाश्च प्रणवःशूद्रेषु न विधीयते । प्राणायामपदे ध्यानं शिवेत्योङ्कारमन्त्रणम्॥३२१॥
गन्धपुष्पाक्षतादीनि पूजाद्रव्याणि यानि च ।
तानि स्थाप्य समीपे तु ततःसङ्कल्पयिष्यते ॥३२२॥
शिवपूजां करिष्यामि शिवतुष्ट्यर्थमेव च । इति सङ्कल्पयित्वा तु तत आवाहनादिकम् ॥३२३॥
कृत्वा तु स्नानपर्यन्तं ततःस्नानं प्रकल्पयेत् ।
नमस्तेत्यादि मन्त्रेण शतरुद्रियविधानतः ॥३२४॥
अविच्छिन्ना तु या धारा मुक्तिधारेति कीर्तिता ।
तया यः स्नापयेन्मासं जपन् रुद्रमुपांशु वा ॥३२५॥
एकबारं त्रिबारं च पञ्च सप्त नवापि वा। एकादशमथो बारमथ त्रयोदशान्वितम् ॥३२६॥

अन्तःकरण में ध्यान करे कि ॥३१४॥ शिखा के अन्त में बारह अङ्गुलि पर सूक्ष्म शरीर वाले शिवजी विद्यमान हैं । संसार के जितने भी शरीर हैं, उन सबों के अन्तःकरण के भीतर वे संचरण करते हैं॥३१५॥ वे सभी आभूषणों से भूषित हैं और अणिमा आदि गुणों से युक्त हैं । उनका ध्यान करके उनको अपने चित्त में धारण करे और उनके व्यापकता से अपने शरीर को भर दे ॥३१६॥ उनकी कान्ति से शरीर के समस्त पापों का नाश हो जाता है इसके बाद वह जैसे-जैसे स्वर्ग पारद के सम्पर्क से श्वेत रक्त हो जाता हे, वैसा ही द्वादश दलों अथवा आठ दलों या तीन पत्रों वाले शुद्ध आसन बनाये । उसके ऊपर लिङ्ग को रखे ॥३१७-३१८॥ हृदय गुफा में स्थित शिवजी का उस लिङ्ग में स्थित रूप से ध्यान करना चाहिए । शोधित कलश में शोधित जल को जो सुगन्धित हो उसको डाले ॥३१९॥ फिर प्रणव से अभिमंत्रित सुगन्धित पुष्प डालकर प्रणव से प्राणायाम करना चाहिए किन्तु शूद्रों को प्राणायाम नहीं करना चाहिए॥३२०॥ प्राणायाम शिव शब्द से करे फिर ओङ्कार से अभिमन्त्रित करे । चन्दन, पुष्प तथा अक्षत आदि जितने भी पूजा के द्रव्य हों, उनको अपने सन्निकट में रखकर सङ्कल्प करे कि शङ्करजी की प्रसन्नता के लिए शिवजी की पूजा मैं करूँगा ॥३२१-३२२॥ इस तरह से सङ्कल्प करने के बाद आवाहन आदि उपचारों को स्नान पर्यन्त करके उसके बाद शिवजी को ॥३२३॥ शतरुद्रिय विधान से **नमस्ते इत्यादि** मन्त्र से स्नान कराये। स्नान की ऐसी धारा जो बीच में टूटे नहीं वह धारा मुक्ति धारा कही गयी है ॥३२४॥ रुद्र मन्त्र का उपांशु जप करते हुए उस धारा से जो एकमास तक शिवजी को स्नान कराता है । प्रतिदिन दिन भर में एक बार,

मुक्तिस्नानमिदं ज्ञेयं मासं मोक्षप्रदायकम् । शैवाया विद्याया स्नानं केवलं प्रणवेन च ॥३२७॥

मृण्मयैर्नालिकेरस्य शकलैश्चोर्मिभिस्तथा ।
कांस्येन मुक्ता भुक्त्या च पुष्पादि कसरेण वा ॥३२८॥
स्नापयेद्देवदेवेशं यथासम्भवमीरितैः ।
शृङ्गस्य च विधिं वक्ष्ये स्नानयोग्यं यथा भवेत् ॥३२९॥
पूर्वमन्तस्तु संशोध्य बहिरन्तस्तु शोधयेत् ।
सुस्निग्धं लघु कृत्वाऽथ नागं छिन्द्यात्कथञ्चन ॥३३०॥

नीचैकदेशविन्यस्तद्वारद्रोण्यासुवृत्तया । कुशानुयुतया स्नानं देवाय परिकल्पयेत् ॥३३१॥
एवं गवयशृङ्गस्य जलपूर्तिरथोच्यते। द्वारे निषिद्धलोहार्द्धं सन्धिद्वारा समन्विते ॥३३२॥
योगवक्त्रं नागदण्डं नागाकारं प्रकल्पयेत् । फलस्थाने तु चषकं दण्डेन समरन्ध्रकम्॥३३३॥
तत्रैव पातयेत्तोयं मूदूर्ध्वयन्त्रघटे स्थितम्। पातयेदथ चान्येन वामेनैव करेण वा॥३३४॥
मुक्तिधाराकृता तेन पवित्रं पापनाशनम् । एवं संस्थाप्य देवेशं पञ्चगव्यैस्तथैव च ॥३३५॥
पञ्चामृतैरथ स्नाप्य मधुरत्रितयेन च । विभूष्यभूषकैर्देवं पुनःस्नाप्य महेश्वरम्॥३३६॥
शीतोपचारं कृत्वाऽथ तत आचमनादिकम्। वस्त्रं तथोपवीतं च पञ्चगन्धकमेव च॥३३७॥
कर्पूरं मरुवंचापि पाटीरमथवा भवेत् । उभयं मिश्रितं वापि शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् ॥३३८॥
कृत्स्नपीठं गन्धपूर्णं यद्वा विभवसारतः। तूष्णीमथोपचारं वा कालियं पुष्पमर्पयेत् ॥३३९॥

या तीन बार या पाँच बार, या सात बार या नव बार या ग्यारह बार शिवजी को स्नान कराता है तो उसको मुक्ति स्नान कहते हैं, एक महीने तक इसे करने पर मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥३२६॥ शैव विद्या से या केवल प्रणव से, मिट्टी के पात्रों से या नारियल की नरीयरी से, अथवा उर्मियों से ॥३२७॥ या कांस्यपात्र से या मोती पात्र से या फूल आदि के केसर से, इनमें से जो सम्भव हो उससे शिवजी को स्नान कराये॥३२८॥ अब मैं सींग से स्नान कराने योग्य विधि को बतलाता हूँ । पहले सींग को भीतर अच्छी तरह से साफ करके बाद में उसको भीतर बाहर से साफ करें ॥३२९॥ उसको चिकना और हल्का बनाकर किसी प्रकार नाग को काटना चाहिए । उसके नीचले भाग में सुन्दर गोल छिद्र बनाना चाहिए । फिर कुश से युक्त शृङ्ग से शिवजी को स्नान कराये । इसी तरह से गवय शृङ्ग की भी स्नान विधि है, अब मैं शिवजी की जलमूर्ति का वर्णन करता हूँ ॥३३०-३३१॥ संधि द्वार से युक्त द्वार पर निषिद्ध लोहे के आधे भाग को, योगवक्त्र, नागदण्ड की नाग के समान बनाना चाहिए ॥३३२॥ फल के स्थान पर दण्ड के समान छिद्र में जो ऊपर की ओर यंत्र घट में स्थित हो उससे जल को डालना चाहिए अथवा बायें हाथ से जल गिराये ऐसा करने वाला समस्त पापों को विनष्ट करने वाली मुक्ति धारा को करता है ॥३३३-३३४॥ इसीतरह से देवेश शिवजी की स्थापना करके, पञ्चगव्यों से, या पञ्चामृत से, या त्रिमधु से स्नान कराये । फिर शिवजी को भूषण से भूषित करके उनको पुनः स्नान कराये । उसके बाद शीतोपचार से फिर आचमन आदि प्रदान करे ॥३३५-३३६॥ वस्त्र, यज्ञोपवीत, पञ्चगन्ध, कर्पूर, मरुआ, अथवा पाटीर चढ़ाना चाहिए॥३३७॥ अथवा दोनों मिश्रित विधियों से शिवजी के लिङ्ग की पूजा करनी चाहिए । सम्पूर्ण पीठ को गन्ध पूर्ण बनाकर अपनी शक्ति के अनुसार उसे सुगन्धित करना चाहिए ॥३३८॥ उसके बाद मौन

श्रीपत्रमरुचित्याजं यथाशक्त्याऽखिलं यथा। अनेकद्रव्यधूपं च गुग्गुलं केवलं तथा ॥३४०॥
कपिलाधृतसंयुक्तं सर्वधूपाय शस्यते। धूपं दत्त्वा यथाशक्ति कपिलाधृतदीपकान्॥३४१॥
अथवाप्याज्यमात्रेण दीपान्दत्त्वोपहारकम्। यथाशक्त्युपपन्नं च दत्त्वा पुष्पसमन्वितम् ॥३४२॥
मुखशुद्धिं ततो दत्त्वा दत्त्वा ताम्बूलमादरात् ।
प्रदक्षिणनमस्कारौ पूजैवं हि समाप्यते ॥३४३॥
गीताङ्गपञ्चकं पश्चात्तनि विज्ञापयामि ते । गीतं वाद्यं पुराणं च नृत्यं हासोक्तिरेव च ॥३४४॥
नीराजनं च पुष्पाणामञ्जलिश्चाखिलार्पणम् । क्षमा चोद्वासनंचैव कीर्तितं चोपचारकम्॥३४५॥
भूषणं च तथा छत्रं चामरं व्यजनं तथा। शिवोपवीतं कैङ्कर्यं षडीशानोपचारकम्॥३४६॥
द्वात्रिंशदुपचारैस्तु यः समाराधयेच्छिवम्। एकेनाह्ना समस्तानां पापानां नाशनं ध्रुवम् ॥
द्वात्रिंशदुपचारं स्यात्पूजनं तूत्तमोत्तमम् ॥३४७॥

सदाशिव उवाच

एवमेतत्कपिश्रेष्ठ तवपूजां वदाम्यहम् । मत्पादयुगलं पूज्य सर्वपूजाकरो भव ॥
आराध्येत्थं यथा लिङ्गे तन्ममाराधनं कुरु ॥३४८॥

हनुमानुवाच

गुरुणा लिङ्गपूजैव नियता कल्पिता मम । तां करोमि पुरादेव पश्चात्त्वत्पादपूजनम्॥३४९॥
इत्युक्त्वैव नमस्येशं शिवलिङ्गार्चनेऽभवत् । सरस्तीरमथो गत्वा कृत्वा सैकतवेदिकाम् ॥३५०॥
तालपत्रैर्विरचितमासनं पर्यकल्पयत्। प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ तु समाचम्य समाहितः॥३५१॥

होकर शिवजी को कलिय, पुष्प चढ़ाना चाहिए । श्रीपत्र, मरुवा आदि को अपनी शक्ति के अनुसार समर्पित करना चाहिए ॥३३९॥ अनेक द्रव्यों से बने धूप देना चाहिये अथवा केवल गुगुल के ही धूप को दिखाना चाहिए । कपिला गौ के घी से युक्त सभी धूप श्रेष्ठ हो जातें हैं ॥३४०॥ धूप देने के बाद अपनी शक्ति के अनुसार कपिला गौ के घी का दीपक समर्पित करे । अथवा किसी भी घी से दीप दान करे ॥३४१॥ अपनी शक्ति के अनुसार शिवजी पर पुष्प चढ़ाये । उसके बाद मुख शुद्धि प्रदान करके आदर पूर्वक ताम्बूल समर्पित करे ॥३४२॥ फिर प्रदक्षिणा और नमस्कार करके पूजा को समाप्त करना चाहिए । सबों के अन्त में गीत के पाञ्च अङ्गों को मैं आपको (श्रीराचमन्द्रजी को) बतला रहा हूँ । गीत, वाद्य, पुराण पाठ, नृत्य तथा हास्योक्ति ये ही गीत के पाँच अङ्ग हैं । इसके बाद आरती करके पुष्पाञ्जलि प्रदान करे । इसके बाद सम्पूर्ण पूजा को शङ्करजी को समर्पित करना चाहिए ॥३४३-३४४॥ क्षमा तथा उद्वासन को भी पूजा का उपचार बतलाया गया है । भूषण, व्यजन, छत्र ॥३४५॥ शिवोपवीत तथा कैंकर्य ये छह शिवोपचार कहे गये हैं। जो व्यक्ति बत्तीस उपचारों से एक दिन भी शिवजी की आराधन करता है, उसके समस्त पापों का नाश हो जाता है । हे राजन् ! बत्तीस उपचारों से पूजन सर्वोत्तम पूजन है ॥३४६-३४७॥ **सदाशिव ने कहा—** हे कपिश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारी पूजा को ऐसा ही करता हूँ । मेरे दोनों चरणों की पूजा करके तुम सभी पूजाओं को करने वाला बन जाओ ॥३४८॥ इस तरह से तुम लिङ्ग की आराधना करके उसी तरह से मेरी आराधना करो। **हनुमानजी ने कहा—** मेरे गुरु ने तो लिङ्ग पूजा का मुझे विधान किया है ॥३४९॥ हे देव! पहले मैं उस पूजा को करके उसके पश्चात् आपके चरणों की पूजा करता हूँ । इस तरह से कहकर शिवजी को

भस्मस्नानमथो चक्रे पुनराचम्य वाग्यतः । देववेद्यामथो चक्रे पद्मानि सुमनोहरम्॥३५२॥
अनन्तरं तालपत्रं पद्मासनगतःकपिः । प्राणानायम्य सन्यासं शुक्लध्यानसमन्वितः ॥३५३॥
प्रणम्य गुरुमीशानं जपन्नासीदतःपरम् । अथ देवार्चनं कर्त्तुं यत्नमास्थितवानपि ॥३५४॥
पलाशपत्रपुटकद्वयानीतजलं शुचि । शिरः कमण्डलुगतं निधायाग्निं त्रिमन्त्रितम् ॥३५५॥
आवहनादि कृत्वाथ स्नानपर्यन्तमेव च । अथ स्नापयितुं देवमादाय करसम्पुटे ॥३५६॥
कृत्वा निरीक्षणं देवं पीठं नोदृष्टवान्कपिः । लिङ्गमात्रं करगतं दृष्ट्वा भीतिसमन्वितः ॥३५७॥
इदमाह महायोगी किं वा पापं मया कृतम् ।
यदेतत्पीठरहितं शिवलिङ्गं करस्थितम् ॥३५८॥
ममाद्य मरणं सिद्धं पीठं चेन्नागमिष्यति। अथ रुद्रं जपिष्यामि तदायाति महेश्वरः ॥३५९॥
इति निश्चित्य मनसा जजाप शतरुद्रियम्। अथापि न समायातो महेशोऽथ कपीश्वरः ॥३६०॥
रुद्रं न्यपातयद्भूत्यां वीरभद्रः समागतः । किमर्थं रुद्यते भक्त रुदिहेतुं वदस्व मे॥३६१॥

हनुमानुवाच

पीठहीनमिदं लिङ्गं पश्य मे पापसञ्चयम् ॥३६२॥

वीरभद्र उवाच

यदि नायाति पीठं ते लिङ्गे मा साहसं कृथाः ।
दाहयिष्याम्यहं लोकं यदि नायाति पीठकम् ॥३६३॥

नमस्कार करके हनुमानजी शिवलिङ्ग की पूजा करने में सलङ्गन हो गये ॥३५०॥ उसके बाद सरोवर के तट पर जाकर बालू की वेदी बनाकर तालपत्र से निर्मित आसन को उन्होंने बनाया ॥३५१॥ हाथ-पैर धोकर सावधानी पूर्वक वे आचमन किए । उसके बाद उन्होंने भस्म स्नान किया । उसके बाद आचमन करके वे मौन हो गये ॥३५२॥ उसके बाद उन्होंने देववेदी पर मनोहर कमलों का निर्माण किया । उसके बाद पद्मासन से बैठे हुए हनुमानजी ने तालपत्र के आसन को रखा ॥३५३॥ फिर प्राणायाम करके न्यास पूर्वक शुक्ल के ध्यान से युक्त होकर गुरु तथा शङ्करजी को प्रणाम करके हनुमानजी जप करने लगे॥३५४॥ उसके बाद देवार्चन करने का वे प्रयास किए । पलाश के पत्ते के दो दोनों में पवित्र जल लाकर ॥३५५॥ शिर पर रखे हुए कमण्डलु को रखकर अग्नि को उन्होंने तीन बार अभिमन्त्रित किया । आवाह्न से लेकर स्नान पर्यन्त सभी उपचारों को करके ॥३५६॥ स्नान कराने के लिए शिवजी को अंजलि में रखकर उस लिङ्ग का उन्होंने निरीक्षण किया । किन्तु हनुमानजी को पीठ नहीं दिखा ॥३५७॥ हाथ पर केवल लिङ्ग को देखकर हनुमानजी भयभीत हो गये । उन महायोगी ने कहा मैंने कौन सा बड़ा पाप किया है ?॥३५८॥ जिसके कारण यह शिवलिङ्ग पीठ के बिना ही हाथ में स्थित है । यदि आज पीठ नहीं आता है तब तो आज मैं अपनी जान दे दूँगा ॥३५९॥ अब मैं रुद्र का जप करूगा तब महेश्वर आयेंगे । इस तरह से मन में निश्चय करके उन्होंने शतरुद्रिय का जप किया ॥३६०॥ फिर भी महेश नहीं आये उसके बाद हनुमानजी ने रुद्र को पृथिवी पर गिरा दिया । उस समय वहाँ वीरभद्र आये ॥३६१॥ उन्होंनें पूछा भक्त क्यों रोते हो, रोने का कारण बतलाओ ? **हनुमानजी ने कहा**— आप मेरे पाप समूह को देखें । यह लिङ्ग पीठ से रहित है ॥३६२॥ **वीरभद्र ने कहा**— यदि पीठ नहीं आता है तो लिङ्ग के प्रति साहस मत करो ।

पश्य दर्शय मे लिङ्गं पीठं यद्यागतं न वा। अथ दृष्ट्वा वीरभद्रो लिङ्गं पीठमनागतम् ॥३६४॥
दग्धुकामोऽखिलाँल्लोकान्वीरभद्रः प्रतापवान् ।
अनलं भुवि चिक्षेप क्षणाद्दग्धा महीतदा ॥३६५॥
अथ सप्ततलान्दग्ध्वा पुनरूर्ध्वमवर्तत । पञ्चोद्धर्वलोकानदहज्जनलोकनिवासिनः ॥३६६॥
ललाटनेत्रसम्भूतं नखेनादाय चानलम् । जम्बीरफलसङ्काशं कृत्वा करतलेःविभुः ॥३६७॥
यदि नायाति पीठं ते दग्धा लोका न संशयः ।
अनायातमथो दृष्ट्वा वीरभद्रः प्रतापवान् ॥३६८॥
सनकादि महात्मानो ज्ञात्वा योगेन चागमन् ।
गौतमस्याश्रमवरं समागम्य महेश्वरम् ॥३६९॥
न दृष्टवन्तो देवादि सेव्यमानमपि द्विजाः । अस्तुवन्नथ च स्तोत्रैःसर्व वेदसमुद्भवैः ॥३७०॥
ॐ नमो देवदेवाय तस्मै शुद्धप्रभाचिन्त्यरूपाय तस्मै ।
नमःसुराणामधीशाय तस्मै नमो वेदगुह्याय शुद्धाय तस्मै ॥३७१॥
नमःशिवायादिदेवाय तस्मै नमो व्यालयज्ञोपवीताय तस्मै ।
नमः सुरानन्दसन्दोहवर्षत्त्रयीबिन्दुविश्वम्भराय तस्मै ॥३७२॥
पृथिव्यथोवायुराकाशमापःपुनःशशी वह्निसूर्यौ तथाऽऽत्मा ।
यस्याष्टैता मूर्तयःशङ्करस्य तस्मै नमो ज्ञानगम्याय शश्वत् ॥३७३॥
एतां स्तुतिमथाकर्ण्य भगनेत्रग्रदः शिवः ।
विष्णुमाह च गच्छ त्वं समानय च तान्द्विजान् ॥३७४॥

यदि पीठ नहीं आता है तो मैं सम्पूर्ण संसार को भस्म कर दूँगा ॥३६३॥ मुझे दिखाओ कि पीठ आ जाता है कि नहीं । इसके बाद वीरभद्र बिना पीठ के लिङ्ग को देखकर ॥३६४॥ सम्पूर्ण लोकों को जला देना चाहे । उन्होंने पृथिवी पर अग्नि को डाल दिया और क्षणभर में पृथिवी दग्ध हो गयी ॥३६५॥ उसके बाद सातो पातालों को जलाकर ऊपर की ओर के लोको को जलाने लगे । उन्होंने ऊपर के जनलोक पर्यन्त निवासियों को जला दिया ॥३६६॥ वे ललाट के नेत्र से उद्भूत अग्नि को नख से लेकर उसे जंबीर फल के समान गोल बना दिया और अपने हाथ पर रखा ॥३६७॥ उन्होंने कहा यदि पीठ नहीं आता है तो निश्चित रूप से सभी लोक जल जायेंगे । फिर भी पीठ को नहीं आये हुए वीरभद्र नहीं ॥३६८॥ इस बात को सनकादि महर्षिगण योग से जान गये और गौतम महर्षि के श्रेष्ठ आश्रम में आकर वहाँ पर विद्यमान आदि देव महेश्वर को नहीं देखे । उसके बाद सभी वेदों में विद्यमान स्तुतियों से शिवजी की स्तुति किए॥३७०॥ जो देवताओं के भी देव हैं, उनको नमस्कार है, शुद्ध कान्ति सम्पन्न अचिन्त्य शिवजी को नमस्कार है । देवताओं के स्वामी शिवजी को नमस्कार है वेद गुह्य तथा शुद्ध शिवजी को नमस्कार है॥३७१॥ आदि देव शिवजी को नमस्कार है । सर्पो का यज्ञोपवीत धारण करने वाले शिवजी को नमस्कार है । देवताओं के लिए आनन्द की वर्षा करने वाले, जो वेद त्रयी के मूल बिन्दु हैं तथा सम्पूर्ण विश्व का भरण पोषण करने वाले हैं, उन शिवजी को नमस्कार है ॥३७२॥ पृथिवी, वायु, आकाश, जल, चन्द्रमा, अग्नि, सूर्य तथा आत्मा ये आठो जिनके शरीर हैं जो ज्ञानैकगम्य तथा शाश्वत् हैं, उन शङ्करजी को

आनीतास्तेन हरिणा देवाय प्रणतास्तु ते । तानाह शङ्करो वाक्यं किमर्थं यूयमागताः ॥३७५॥

मुनय ऊचुः

देव द्वादशलोकानां दृश्यन्ते भस्मराशयः । स्थितमेकं वनमिदं पश्यत्वं लोकसङ्क्षयम् ॥३७६॥

सदाशिव उवाच

ऊर्द्ध्वर्ध्वस्थपञ्चलोकानां दाहे सन्देह एव नः ।
कथमङ्गारवृष्टिश्च कथं नो वा महाध्वनिः ॥३७७॥

मुनय ऊचुः

भीतिरस्माकमधुना वर्तते वीरभद्रतः । स एवाङ्गारवृष्टिं च पिपासुरिव तामपात् ॥३७८॥
देवोऽथ वीरमाहूय किं वीरेत्यब्रवीद्भवः । वीरो हनूमतो लिङ्गपीठाभावादिदं कृतम् ॥३७९॥
कपेश्चित्तं परिज्ञातुं मयाकृतमिदं बृहत् । कृपानिधिरथो देवो यथापूर्वमकल्पयत् ॥३८०॥
दग्धानप्यखिलाँल्लोकान्पूर्वतः शोभनान्विभुः ।
कल्पयामास विश्वात्मा वीरभद्रमथाब्रवीत् ॥३८१॥
आलिङ्ग्याघ्राय शिरसि ताम्बूलं दत्तवान्हरः ।
अथाऽसौ हनुमानीशपूजनं कृतवानथ ॥३८२॥
एकं वनचरं तत्र गन्धर्वं सविपञ्चिकम् । इदमाह महावीणा मम वै दीयतामिति ॥३८३॥
गन्धर्वो न मया त्याज्या वीणा प्राणसमा मम ।
ममापि प्राणसदृशी वीणेत्याह कपीश्वरः ॥३८४॥

नमस्कार है ॥२७३॥ इस स्तुति को सुनकर भग नामक देवता को नेत्र प्रदान करने वाले शिवजी ने भगवान् विष्णु से कहे कि आप जायँ और उन ब्राह्मणों को लिवा लायें ॥३७४॥ श्रीहरि के द्वारा लाये गये वे सनकादिक महर्षि शङ्करजी को प्रणाम किए। उन लोगों से शङ्करजी ने पूछा कि आपलोग किस प्रयोजन से यहाँ आये हैं ?॥३७५॥ **मुनियों ने कहा—** हे देव ! इस समय बारह लोकों की केवल भस्म राशि ही दिखती है केवल यही वन बचा हुआ है आप इस लोकों के विनाश को देखें ॥३७६॥ **सदाशिव ने कहा—** ऊपर के पाँच लोक जल गये इस विषय में तो मुझे सन्देह हैं। कैसे अङ्गार की वृष्टि हुयी और कैसे किसी प्रकार महा ध्वनि भी नहीं सुनायी पड़ी ?॥३७७॥ **मुनियों ने कहा—** इस समय हमलोगों को वीरभद्र से भय है। उन्होंने ही प्यासे हुए के समान अङ्गार की वृष्टि की है ॥३७८॥ उसके बाद शिवजी वीरभद्र को बुलाकर पूछे कि वीर तुमने यह क्या कर दिया ? वीरभद्र ने कहा— हनुमानजी के लिङ्ग के पीठ के अभाव के कारण मैंने यह सब किया है ॥३७९॥ वानर हनुमान के चित्त को जानने के लिए मैंने यह कार्य किया है। उसके बाद कृपा सागर शिवजी ने पहले के ही समान सभी लोकों को बना दिया ॥३८०॥ जले हुए सम्पूर्ण लोकों को पहले से भी अधिक सुन्दर उन्होंने बना दिया। उसके बाद सम्पूर्ण जगत् की आत्मा शिवजी ने वीरभद्र से कहा ॥३८१॥ उन्होंने वीरभद्र का आलिङ्गन करके उनके शिर को सूंघा और उन्हें ताम्बूल प्रदान किया। उसके बाद हनुमानजी ने शिवजी की पूजा की। उसके बाद ॥३८२॥ वन में रहने वाले एक गन्धर्व को बीणा लिए हुए देखकर हनुमानजी ने कहा यह वीणा मुझे दे दो ॥३८३॥ गन्धर्व ने कहा यह वीणा मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं। इसे मैं तुम्हें नहीं दे सकता। हनुमानजी ने कहा

अथ मुष्टिनिपातेन गन्धर्वे पतिते कपिः। आदाय वीणां महतीं स्वरतन्तुसमन्वितम् ॥३८५॥
अलाबुसंयुतां कृत्वा राजवृक्ष फलाकृतिम् ।
तस्योरसि विनिक्षिप्य गायन्नागाच्छिवान्तिकम् ॥३८६॥
बृहतीकुसुमैः शुद्धैर्देवपादावपूजयत् । तस्मै वरमथ प्रादादाकल्पं जीवितं पुनः ॥३८७॥
समुद्रलङ्घने शक्तिं वरं प्रादादथापरम् ॥३८८॥
समस्तभूषासुविभूषिताङ्गः स्वदीप्तिमन्दीकृतदेवदीप्तिः ।
प्रसन्नमूर्तिस्तरुणः शिवाङ्कः सम्भावयामास समस्तदेवान् ॥३८९॥
पीतमुन्नमनीयं च समादाय महेश्वरः। पीतवस्त्रमिदं देव त्वं गृहाण हरे ! शुभम् ॥३९०॥
ब्रह्मणे रक्तवसनं सर्वेषां वसुदस्तथा। देवर्षिदानवादीनां दत्तवान्वसुयुग्मकम्॥३९१॥
रामोऽपि चैतदाकर्ण्य शम्भवे युग्ममार्पयत् ।
सुसूक्ष्मं बहुमूल्यं च स्वर्णभूषणमेव च ॥३९२॥
अथ भुक्त्वा सुखासीनःसामात्यःस पुराहितः ।
नानामुनिगणैर्भूपैर्वानरैर्गौतमीतटे ॥३९३॥
शम्भुं पुराणतत्त्वज्ञं राघवो वाक्यमब्रवीत् ।
त्वमेव सर्वं जानीषे सर्वधर्म गुहाशयम्। कस्मिन्कस्मिन्युगे ब्रह्मन्किं विशिष्टं वदस्वमे॥३९४॥

शम्भुरुवाच

ध्यानमेव कृते श्रेष्ठं त्रेतायां यज्ञ एव च। द्वापरे चार्चनं तिष्ये दानं च हरिकीर्तनम्॥३९५॥
सर्वं च शस्तं सर्वत्र ध्यानं न च कलौ युगे ।
नराणां मुग्धचित्तत्वात्कृच्छ्रस्थानां विशांपते ॥३९६॥

यह बीणा मुझे भी प्राण के समान प्रिय है ॥३८४॥ इसके बाद हनुमानजी ने उस गन्धर्व को एक मुक्का मारा और वह गन्धर्व गिर गया । उसके बाद स्वरतंतु से युक्त उस विशाल वीणा को लेकर ॥३८५॥ उसको अलाबु से युक्त करके उसे वे राजवृक्ष के समान आकृति वाली बना दिए । उसको अपने हृदय पर रखकर गाते हुए शिवजी के सन्निकट आये ॥३८६॥ बड़े-बड़े शुद्ध पुष्पों से उन्होंने शङ्करजी के चरणों की पूजा की । उसके बाद शिवजी ने उन्हें कल्प पर्यन्त जीवित रहने का वरदान प्रदान किया ॥३८७॥ उसके बाद उन्होंने समुद्र को पार कर जाने की शक्ति का दूसरा वर प्रदान किया ॥३८८॥ सभी भूषणों से भूषित तथा देदीप्यमान अङ्गों वाले वे अपने प्रकाश से शिवजी को भी प्रकाशित कर रहे थे तरुण प्रसन्न मूर्ति हनुमानजी ने सभी देवताओं की सम्भावना (समादर) की ॥३८९॥ शङ्करजी पीला वस्त्र लेकर कहे— हे देव हरे ! आप इस पीले वस्त्र को स्वीकार करे ॥३९०॥ ब्रह्माजी को उन्होंने लाल वस्त्र दिया और सबों को उन्होंने सम्पत्ति प्रदान की । देवताओं और दानवों को उन्होंने दो-दो सम्पत्ति प्रदान की ॥३९१॥ श्रीरामचन्द्रजी भी इस बात को सुनकर शम्भुमुनि को दो वस्त्र प्रदान किये । उन्होंने उनको सुन्दर वस्त्र तथा सुवर्ण के बहुमूल्य भूषणों को समर्पित किया ॥३९२॥ उसके बाद भोजन करके अपने मन्त्रियों अनेक मुनियों राजाओं तथा वानरों के साथ गौतमी नदी के तट पर बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी ने पुराण तत्त्व के ज्ञाता शम्भु मुनि से कहे कि आप ही सभी धर्मों के रहस्यों के ज्ञाता है ॥३९३-३९४॥ हे ब्रह्मन्! आप हमें बतलायें कि किस-

न धर्मे नियताबुद्धिर्न वेदेनैव च स्मृतौ । न क्रतौ न स्वधाकारे पुराणानां च न श्रुतौ॥३९७॥
न यज्ञे न च तीर्थेषु न च शुश्रूषणे सताम् ।
नेज्यायां देवतानां च न स्वजातीयकर्मणि ॥३९८॥
न देवस्मरणेनापि न च क्वपि वृषे नृप । अतश्च दीर्घकालानां पुण्यानामक्षमा नराः ॥३९९॥
दानं तु स्वल्पकालत्वात्कर्तुं शक्नोति मानवः ।
अतश्च कलिदुष्टानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४००॥
केशाञ्चित्पापनाशः स्यात्प्रायश्चित्तैस्तु नान्यथा ।
ब्रह्मज्ञानी गयाश्राद्धी काशीगन्ता श्रुतौरतः ॥४०१॥
पुराणज्ञावमाश्चैते श्रोता तस्य च राघवः । युगानामनुसारेण तथार्थस्य विवेचनात् ॥४०२॥
स्वपरप्रत्ययोत्पादात्परब्रह्म प्रकाशनात् । पुराणवक्ता सर्वस्माद्ब्राह्मणस्तु विशिष्यते ॥४०३॥
तेनापि च कृतं पापं न सज्येत्किमुतान्यतः। अन्येषामपिकेषांचित्पुराणं पापनाशनम् ॥४०४॥
यःपुराणेषु विश्वासी वक्तारं मन्यते गुरुम् । ब्रह्मविद्या प्रदातारं विशिष्टं ज्ञातिबन्धुतः ॥४०५॥
तस्य पापानि सर्वाणि विलयं यान्त्यसंशयम् ।
अथ श्रीशैलगमनं पूजकस्य महेशितुः ॥४०६॥

किस युग में किन-किन वस्तुओं का अधिक महत्त्व होता है । **शम्भु मुनि ने कहा—** सत्ययुग में ध्यान की विशेषता (महत्ता) होती है, त्रेता युग में यज्ञ का महत्त्व होता है ॥३९५॥ द्वापर युग में पूजा का महत्त्व होता है और कलियुग में श्रीहरि के कीर्तन का महत्त्व होता है । सभी युगों में सबों की महत्ता होती हैं किन्तु कलियुग में ध्यान का महत्त्व नहीं होता है । मनुष्यों के अज्ञानी तथा कष्टापन्न होने के कारण उनकी बुद्धि धर्मो में या श्रुतियों में या स्मृतियों में निश्चल नहीं हो पाती है ॥३९६-३९७॥ उनका मन न तो यज्ञ में लगता है, न श्राद्ध में लगता है और न पुराणों के सुनने में ही उनका मन लगता है । उनका मन न यज्ञ में, या न तीर्थ में, न सज्जनों की सेवा में ही लगता है । उनका मन देवताओं की पूजा अथवा अपने वर्णाश्रम के विहित कर्मों में भी नहीं लगता है । देवताओं के स्मरण करने में या धर्म में भी उनका मन नहीं लगता है ॥३९८-९९॥ अतएव कलियुग में दीर्घ काल में सम्पन्न होने वाले पुण्यों को करने में मनुष्य समर्थ नहीं है । थोड़े ही समय में सम्पन्न होने के कारण दान के ही करने में मनुष्य समर्थ है॥४००॥ अतएव कलि के दोषों से दूषित मनुष्यो के लिए कोई भी प्रायश्चित नही । प्रायश्चित्तों के द्वारा कुछ लोगों के ही पापों का नाश सम्भव है ॥४०१॥ ब्रह्मज्ञानी, गया में जाकर श्राद्ध करने वाले, काशी जाने वाले, वेदाध्यन करने वाले तथा पुराणों के ज्ञाता तथा पुराणों का श्रवण करने वाले इन सबों के पापों का नाश हो जाता है ॥४०२॥ क्योंकि पुराणज्ञ युगों के अर्थ का विवेचन करते हैं, वे अपने तथा पराये का ज्ञान उत्पन्न करते हैं, परब्रह्म का ज्ञान उत्पन्न करते हैं ॥४०३॥ पुराण का प्रवक्ता ब्राह्मण सबों से श्रेष्ठ होता है । किन्तु वह भी यदि पापी हो जाय तो फिर कुछ भी सफल नहीं होता है ॥४०४॥ कुछ दूसरे भी प्रकार के मनुष्यों के पापों का नाश पुराण करते हैं । जो पुराणों में विश्वास करते है, तथा पुराणों के वक्ता को गुरु मानते हैं ॥४०५॥ तथा अपने जातियों तथा बंधुओं से भी विशेष ब्रह्मविद्या का उपदेश करने वाले को मानते हैं उन लोगों के समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं

अत:कालौ मनुष्याणां पुराणं पापनाशनम् । पुरा कलियुगे राम वृत्तं सङ्कीर्तये शृणु ।।४०७।।
आसीत्तु गौतमो नाम ब्राह्मणो वेदवर्जित: । तस्य पुष्टि:पशुश्चास्तां भ्रातरौ वेदवर्जितौ ।।४०८।।
ताभ्यां सह कृषिंचक्रे तत्र वृद्धिमवाप च । धनधान्यादिकं किंचिद्राज्ञेऽसौ दत्तवानथ ।।४०९।।
उवाच वचनं किंचिदधिकारं निरूपय । अर्थं न गमयिष्यामि तौ शक्तौ भ्रातरौ मम।।४१०।।

राजोवाच

ब्राह्मणस्याधिकारो हि वैदिके धर्मकर्मणि । तदन्यत्र नियुक्तस्य ब्राह्मण्यं विप्रणश्यति।।४११।।

गौतम उवाच

युगेष्वन्येषु धर्मोऽयं कलिधर्मो न तादृश: । भूपतित्वं हि भूपाल नृपाणां धर्म उच्यते ।।४१२।।
ब्राह्मणश्च परिक्षीणस्तं कुर्वन्नैव दुष्यति । शूद्राणां तु कृषिर्द्धर्मो नापद्यप्यग्रजन्मन: ।।४१३।।
तस्मात्क्षत्त्रेण वर्तिष्ये ग्रामान्मम समादिश। अन्यत्र चात्र क्षात्त्रेण वर्तनं मम रोचते ।।४१४।।
अन्यन्नतु तथेत्युक्तो ददौ ग्रामान्द्विजन्मन: । ग्रामाधिकारदुष्टस्य वर्तनं त्वन्यथाऽभवत्।।४१५।।
अभक्षिमांसंचापायि सुरा चाभाषिदुर्वच:। परयोषा तथागामि परस्वं प्रत्यहारि च ।।४१६।।
अकीडेद्यूतमसकृत्कलञ्जंचाषि दुर्भुजा। नापूजि जगतामीश:शिवो वा विष्णुरेव वा ।।४१७।।
एवं कालेन दुर्वृत्तं राजा वाक्यमभाषत। विप्र विप्रत्वमुत्सृज्य शूद्रत्वं प्राप्तवानसि ।।४१८।।

है ।।४०६।। किञ्च जो श्रीशैल पर जाकर शङ्करजी की पूजा करता है उसका भी पाप विनष्ट हो जाता है। फलत: कलियुग में पुराण मनुष्यों के पाप का विनाश करने वाले हैं ।।४०७।। हे रामचन्द्रजी ! आप को मैं पहले के कलियुग का एक वृत्तान्त सुनाता हूँ उसे आप सुने । एक गौतम नामक ब्राह्मण था वह वेदों का ज्ञाता नहीं था ।।४०८।। उसका शरीर, उसके पशु तथा उसके दो पुष्ट भाई थे उसके दोनों भाई भी वेदज्ञ नहीं थे । वह अपने दोनों भाइयों के साथ मिलकर कृषि किया और वह धनवान हो गया ।।४०९।। उसके पश्चात् उसने थोड़ा सा धन-धान्य राजा को भी प्रदान किया । उसने राजा से कहा कि आप मुझे भी कुछ अधिकार प्रदान करें ।।४१०।। मैं आपकी सम्पत्ति को बरबाद नहीं होने दूँगा, मेरे दो भाई बलवान् हैं। **राजा ने कहा—** ब्राह्मण का वैदिक धर्म के ही कार्यों में अधिकार होता है ।।४११।। उससे भिन्न कार्यों में उसको लगाने पर उसका ब्राह्मणत्व विनष्ट हो जाता है । **गौतम ने कहा—** यह धर्म दूसरे युगों का धर्म हैं, कलियुग में धर्म का स्वरूप वैसा नहीं है ।।४१२।। राजन् ! क्षत्रियों का धर्म भूपलत्व ही बतलाया गया है । जो ब्राह्मण अपनी वृत्ति से विहीन है, उसको भी राजा का कार्य करने में दोष नहीं लगता है ।।४१३।। कृषि करना तो शूद्रों का ही धर्म है, उसको ब्राह्मण को विपत्ति काल में भी नहीं करना चाहिए । अतएव मैं क्षत्रिय का ही कार्य (प्रशासन) करूँगा आप मुझे कुछ ग्रामों को दे दें ।।४१४।। क्षत्रिय धर्म से भिन्न कार्य को करना मुझे अच्छा नहीं लगता है । ब्राह्मण के ऐसा कहने पर राजा ने उस ब्राह्मण को कुछ ग्रामों को दे दिया ।।४१५।। ग्रामों का अधिकार प्राप्त करके दूषित हो जाने के बाद उस ब्राह्मण का व्यवहार बदल गया । वह मांस खाने लगा, शराब पीने लगा तथा दुष्टता पूर्वक वाणी भी बोलने लगा ।।४१६।। वह परस्त्रीगामी हो गया तथा दूसरों की सम्पत्ति का भी अपहरण करने लगा । वह बार-बार जूआ खेलता था और कलञ्ज आदि अभक्ष्य पदार्थों को भी खाने लगा ।।४१७।। उसने जगत् के स्वामी शिवजी की न तो पूजा की और न भगवान् विष्णु की उसने पूजा की । इस तरह से दुर्वृत्त परायण उस ब्राह्मण को देखकर

तस्मान्नियोगधर्मेण भवन्तं भ्रंशयामि च। माऽस्तु विप्रत्वमद्यैव शूद्रतैव वरं मम ॥४१९॥
तदृते यदि विप्रास्ते न भोक्ष्यन्ते वरं मम। न हि सर्वमिदं त्यक्तुं शक्तोऽहं पृथिवीपते ॥४२०॥

शम्भुरुवाच

एवं वदति दुर्विप्रे राजा तृष्णीमतिष्ठत । स तु वै शूद्रतुल्यश्च बुभुजेऽन्नं सहामिषम्॥४२१॥
कदाचिदथ दुर्वृत्तःप्रातोलीमण्डपस्थितः । द्विजेन पठ्यमानं तु पद्यं तु श्रुतावानिदम् ॥४२२॥
हृदये पद्यमेतत्तु द्विजेरितमतिष्ठत ॥४२३॥
परात्परतरं यान्ति नारायणपरायणाः। न ते तत्र गमिष्यन्ति ये द्विषन्ति महेश्वरम् ॥४२४॥
व्याख्यानमपि च श्रुत्वा पौराणिकमभाषत ।
कीदृङ् नारायणः प्रोक्तः कीदृशोऽपि महेश्वरः ॥४२५॥
किंपरं त्वयनं प्रोक्तं द्वेषःकीदृगुदाहृतः। किं तत्परिमितिख्यातं ततःपरतरं च किम्॥४२६॥

पौराणिक उवाच

परं तद्ब्रह्मणःस्थानं सुखव्यक्तैकलक्षणम् । ततः परतरं विष्णोर्द्धामतद्ब्रह्मणोऽधिकम् ॥४२७॥
अविनाशितया तत्तु कीर्तितं परमंपदम्। तन्मध्ये पुरुषो विष्णुस्तदङ्गपरमं विभुः ॥४२८॥
आपो हि नरजन्मत्वान्नाराः प्रोक्तामनीषिभिः ।
नाराश्चास्यायनं यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः ॥४२९॥
तत्परं वर्तनं येषां ते प्रोक्तास्तत्परायणाः । महदादीनि तत्त्वानि यानि तेषां य ईश्वरः ॥४३०॥

राजा ने कहा ॥४१८॥ हे विप्र ! आप विप्रत्व का परित्याग करके शूद्र हो गये हैं अतएव मैं आपको इस प्रशासन के कार्य से भ्रष्ट कर रहा हूँ ॥४१९॥ **ब्राह्मण ने कहा**— मुझमें ब्राह्मणत्व न रहे मेरे लिए शूद्रत्व ही अच्छा है । यदि ब्राह्मणत्व के अभाव के कारण ब्राह्मण मेरे यहाँ नहीं भोजन करेंगे तो वह भी मेरे लिए अच्छा है ॥४२०॥ राजन् ! मैं इन सभी कार्यों को नहीं त्याग सकता हूँ । **शम्भु मुनि ने कहा**— ब्राह्मण के इस तरह कहने पर राजा मौन हो गये ॥४२१॥ और वह ब्राह्मण शूद्र के समान मांस के साथ अन्न खाने लगा । एक बार वह दुर्वृत्त ब्राह्मण अपने प्रतोली मण्डप में बैठा हुआ था ॥४२२॥ किसी ब्राह्मण के द्वारा पढ़े जाते हुए इस श्लोक को उसने सुना और वह पद्य उस ब्राह्मण के हृदय में बैठ गया ॥४२३॥ जो लोग भगवान् नारायण की भक्ति में लीन रहते हैं वे सर्वोत्कृष्ट पद (मुक्ति) को प्राप्त कर लेते हैं । किन्तु जो लोग शिवजी से द्वेष करते हैं, वे उस परमपद को नहीं प्राप्त कर सकते हैं ॥४२४॥ उस श्लोक की व्याख्या को भी सुनकर उसने पौराणिक (पुराण के कथावाचक) से कहा नारायण को कैसा बतलाया गया है ? और महेश्वर को कैसा बलताया गया है ?॥४२५॥ परत्व पदार्थ क्या है ? और द्वेष पदार्थ कैसा बतलाया गया है ? किसको परमपद कहा गया है ? और उससे श्रेष्ठ क्या हैं ?॥४२६॥ **पौराणिक ने कहा**— ब्रह्माजी के स्थान को ही परमपद कहा गया है, सुख रूपता ही उसका एकमात्र स्वरूप है । उससे भी श्रेष्ठ भगवान् विष्णु का धाम है, वह ब्रह्माजी के धाम से श्रेष्ठ है ॥४२७॥ भगवान् विष्णु का कभी विनाश नहीं होता है इसीलिए उसको परमपद कहते हैं । उसलोक में भगवान् विष्णु का निवास है उनके अङ्ग परम व्यापक हैं ॥४२८॥ नर के जन्म स्थान होने के कारण जलों को मनीषियों ने नारा कहा है वह भगवान् विष्णु का आश्रय है अतएव उनको नारायण कहते हैं ॥४२९॥ जो लोग उन भगवान् नारायण को

सूर्याग्निशशिनेत्रोऽसौ महेशः स्यादुमापतिः। द्वेषो हि वैरं विज्ञेयमीश्वरे परमात्मनि ॥४३१॥

शम्भुरुवाच

एवं पुराणभट्टेन समीरितमिदं वचः। चिन्तयन्पुनरप्याह मादृशस्य कथं गतिः ॥४३२॥
पौराणिकोऽथ तं प्राह शृणु वक्ष्यामि ते गतिम्।
कुरु सर्वेण यत्नेन प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥४३३॥
धर्मंचर यथाशक्ति यथाकालं यथाविधि। विमुक्तपापः पश्चात्त्वमुत्तमां गतिमेष्यसि ॥४३४॥
पुराणमथवा नित्यं शृणुष्वावहितश्चसन्। निराशो वा महेशानं पूजयस्व पिनाकिनम् ॥४३५॥
देवं वा पुण्डरीकाक्षं केशवंक्लेशनाशनम्। संन्यासमथवा नित्यं ब्रह्मज्ञानपरोभव॥४३६॥
अथवा गच्छ काशीशं मुक्तौ वा मृतिमाप्नुहि।
गयां वा गच्छ तत्र त्वं श्राद्धं कर्तुं प्रयत्नतः ॥४३७॥
अथवा सर्ववेदानां सारं पातकनाशनम्। रुद्रं रुद्रप्रियकरं जप प्रत्यहमादरात् ॥४३८॥
श्रीशैलमथवा गच्छ केदारमथवेच्छया। अथवा प्रतिवर्षं तु माघस्नानं प्रवर्तय ॥४३९॥
किमत्र बहुनोक्तेन धर्मभक्तःसदा भव। नैवं नरकवासस्ते भविता तु द्विजाधम ! ॥४४०॥

गौतम उवाच

श्रुत्वा सर्वं करिष्यामि पुराणं भवतो मुखात्।
शास्त्रं विश्वासहेतुं च वर्ज्यं चापि वदस्व मे ॥४४१॥

ही परंतत्त्व मानकर उनकी आराधना करते है, वे नारायण भक्त हैं। महत् तत्त्व इत्यादि जितने भी तत्त्व हैं, उन सबों के जो स्वामी हैं तथा सूर्य और चन्द्रमा जिनके नेत्र हैं उन पार्वतीजी के पति को महेश कहते हैं। वैर करने को द्वेष कहते हैं। जो परमात्मा ईश्वर से द्वेष करता है ॥४३०-४३१॥ **शम्भु मुनि ने कहा**— इस तरह से पुराण के वक्ता के द्वारा कहे गये इस वाणी का चिन्तन करते हुए उस ब्राह्मण ने कहा कि मेरे जैसे व्यक्ति के लिए मुक्ति का कौन सा मार्ग है ?॥४३२॥ उसके बाद पौराणिक ने कहा कि सुनो मैं तुम्हें मुक्ति का मार्ग बतला रहा हूँ। सर्वप्रथम तुम हर प्रकार के प्रयास के द्वारा विधि पूर्वक प्रायश्चित करो ॥४३३॥ उसके बाद समयानुसार तुम विधिपूर्वक धर्मानुष्ठान करो। ऐसा करके तुम सभी पापों से रहित होकर उत्तम गति को प्राप्त कर लोगे ॥४३४॥ सदा सावधानी पूर्वक पुराणों के वाक्यों को सुना करो अथवा संसार से उदासीन होकर पिनाकधारी शङ्करजी की पूजा किया करो ॥४३५॥ अथवा दिव्य गुण सम्पन्न पुण्डरीकाक्ष जो समस्त क्लेशों को विनष्ट करने वाले भगवान् केशव हैं, उनकी पूजा करो। अथवा तुम संन्यास ग्रहण करके सदा ब्रह्मज्ञान परायण हो जाओ ॥४३६॥ अथवा तुम काशी के स्वामी भगवान् शिव के शरण में काशी चले जाओ वहाँ मरकर तुम मुक्त हो जाओगे। अथवा तुम प्रयास करके श्राद्ध करने के लिए गया चले जाओ ॥४३७॥ अथवा समस्त वेदों के सार स्वरूप तथा पापों का विनाश करने वाले रुद्राध्याय का आदर पूर्वक प्रतिदिन पाठ करो ॥४३८॥ या अपनी इच्छा के अनुसार तुम श्रीशैल पर अथवा केदार क्षेत्र में चले जाओ। अथवा तुम प्रत्येक वर्ष माघ स्नान किया करो ॥४३९॥ इस विषय में बहुत अधिक बातों को कहने से कोई लाभ नहीं है तुम सदा धर्म का पालन किया करो। हे द्विजाधम ! ऐसा करने से तुमको नरक में नहीं जाना पड़ेगा ॥४४०॥ **गौतम ने कहा**— मैं आपके मुख से पुराण का

पौराणिक उवाच

वर्ज्यं मांसं सुराऽन्यस्त्री भोगो द्यूतं विकत्थनम् ।
पारुष्यमनृतं माया देवदेवविनिन्दनम् ॥४४२॥
गुरूणां सुरवृद्धानां पुराणस्मृतिभाषिणाम् । निन्दनं श्वेतवृन्ताकं कृतकालाबुवर्तनम् ॥४४३॥
बीजपूरं कुसुम्भं च लोहितं शृङ्गमेव च । अररुं नालिकेरं च कुष्माण्डकं तथैव च ॥४४४॥
कोविदारफलं तैल पक्व मानजवं पयः । बाध्रींणसखरीदुग्धं सूतिकाक्षीरमाविकम् ॥४४५॥
औष्ट्रमेकशफक्षीरं मार्गमाजं नृसम्भवम् ।
विवत्सा सन्धिनीक्षीरं लवणंचैव योगियत् ॥४४६॥
नालिकेररसं कांस्ये ताम्रे मधु च सीसके । काचे तक्रं करम्भांश्च घृताक्तान्नैव कारयेत् ॥४४७॥
होमं तु मृण्मयेपात्रे पुरोडाशं तु राजते । न सेवेत परंलोके शुभार्थी तु विचक्षणः ॥४४८॥
पात्रान्तश्चूर्णलेपोऽपि तत्र भक्षणमेव च । क्रमुकस्य तथा भक्षश्चूर्णपत्रस्य चैव हि ॥४४९॥
क्रमुकस्यापि पक्वस्य भक्षणं क्रिमियोगिनः ।
पायसे लवणं चैव केवलं च करार्पितम् ॥४५०॥
सिन्धुसौराष्ट्रकाम्बोजमागधेषु च सिंहले । न दोषाय भवेत्तत्र क्षीरं च लवणान्वितम् ॥४५१॥
क्षीराणि च समस्तानि लवणानि च योगतः ।
देशेष्वन्येषु दोषाय पाने चैवेह संशयः ।
किमत्र बहुनोक्तेन सद्भिर्निन्द्यं विवर्जयेत् ॥४५२॥

श्रवण करके उसके अनुसार सारा कार्य करूँगा । अतएव आप विश्वास के साधन भूत शास्त्र तथा निषिद्ध कर्मों को सुनायें ॥४४१॥ **पौराणिक ने कहा**— मांस खाना, शराब पीना, परस्त्री गमन करना, जूआ खेलना तथा बहुत चढ़-चढ़कर बातें करना यह कल्याण कामी के लिए वर्जित है । कठोर वाणी बोलना, झूठ बोलना, कपट करना तथा भगवान् विष्णु या शिवजी की निन्दा करना ॥४४२॥ गुरुजनों, देवताओं, वृद्धों, पुराणों तथा स्मृतियों का उपदेश करने वालों की निन्दा करना, उजला बैंगन खाना तथा गोल लौकी खाना ॥४४३॥ बीजपूर (बिजौरी नीबू) कुसम्भ लाल शृंग क्षार (रेह) नालिकेर, कुम्हड़ा ॥४४४॥ तेल में पकाया हुआ कोविदार का फल, मनुष्य का दूध, वार्धीस, खरी का दूध, सूतिका दूध (गौ के बच्चा देने के बाद दस दिन बीतने से पहले का दूध) भेंड़ का दूध ॥४४५॥ ऊँट का दूध एक खुर वाले पशुओं का दूध, बकरी का दूध, जिसका बच्चा मर गया हो ऐसे गौ अथवा भैंस का दूध अथवा नमक मिश्रित दूध ॥४४६॥ नालिकेर का रस कांसे, अथवा ताम्बे के पात्र में, या शीशे के पात्र में शहद तथा काच के पात्रमें मट्ठा अथवा करम्भ (काँजी) न रखे ॥४४७॥ परलोक में कल्याण चाहने वाले बुद्धिमान पुरुष को मिट्टी के पात्र में हविष्य रखकर होम नहीं करना चाहिए और न चाँदी के पात्र में पुरोडाश रखकर उसका सेवन नहीं करना चाहिए ॥४४८॥ पात्र के भीतर चूर्ण (चूना) का न तो लेप लगाना चाहिए और न तो उसमें खाना चाहिए । और न तो उस तरह से सुपारी का या चूर्ण को खाना चाहिए और कृमि से युक्त पकी सुपारी को भी नहीं खाना चाहिए । जिसमें नमक डाला गया हो इस प्रकार के दुग्ध का भी सेवन नहीं करना चाहिए ॥४४९-४५०॥ सिन्धु, सौराष्ट, कम्बोज, मगध एवं सिंहल प्रदेश में नमक युक्त दूध लेने से कोई

शम्भुरुवाच

एवं तस्य वचःश्रुत्वा ब्राह्मणस्य महात्मनः। स्वमेव भवनं गत्वा चिन्तयामास दुःखितः ॥४५३॥
रात्रौ मृत्युर्दिवाचेति न जानाति महानपि। परलोके सुखं दुःखमिह भोगविनोदनम् ॥४५४॥
कृमिकीटमनुष्याद्यैःसुखदुःखैःपृथक्पृथक् । प्रतिजीवं तु हेतूनां भेदोऽपि सुविनिश्चयः ॥४५५॥
एकस्यापि हि जीवस्य नास्ति चैकविधा स्थितिः ।
जन्मकाले महाज्ञानं शैशवेऽत्यल्पबोधनम् ॥४५६॥
स्खलत्पदेऽल्पविज्ञानं बाल्ये चाल्पं तथैव च ।
कौमारे क्रीडनरतिर्यौवने विषयेषितम् ॥४५७॥
यौवने विनिवृत्ते तु द्रव्यसम्पादनेषणा ।
वार्द्धके भोगलिप्सा च न भोक्तुं क्षमतेऽपि च ॥४५८॥
दूषिकाश्लेष्मलालाभिर्वलीपलितकम्पनैः । श्वासकासानिलाक्षिप्तैर्हृषीकैर्विकलैर्युतः ॥४५९॥
किञ्चिद्धर्तुं न शक्नोति न च जानाति किञ्चन ।
तिष्ठन्तीषुःपरस्त्रीषुगुह्यस्थानं प्रदर्शयेत् ॥४६०॥
कोशकण्डूयनपरःक्रूरो जीवितलक्षणैः। कण्डूयते स्फिचौ वस्त्रमुद्धृत्य च विचालयन्॥४६१॥
भुञ्जानःश्लेष्मणा ग्रासं ग्रसितुं न च शक्नुयात् ।
यदा कासस्तदा जज्ञे पायुवायुश्च शब्दवान् ॥४६२॥

दोष नहीं होता है। उपर्युक्त प्रदेशों से भिन्न स्थानों में नमक से युक्त सभी प्रकार के दुग्ध दोषावह होते हैं। बहुत अधिक क्या कहना है? सज्जन पुरुष जिनका निषेध करते हैं, उन वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए। **शम्भु मुनि ने कहा**— इस प्रकार से उस पौराधिक महात्मा के वचन को सुनकर ॥४५१-४५३॥ वह ब्राह्मण अपने घर जाकर दुःखी होकर चिन्ता करने लगा। कोई महापुरुष भी यह नहीं जानता है कि मृत्यु रात्रि में होगी या दिन में ॥४५४॥ परलोक में होने वाले सुख या दुःख को, इस लोक में किए जाने वाले, क्रिमि, कीट तथा मनुष्य आदि के द्वारा सुख दुःख के पृथक्-पृथक् अनुभव को भी कोई नहीं जान पाता है ॥४५५॥ प्रत्येक जीव में होने वाले भेदों के कारण का भी कोई निश्चय नहीं कर पाता है। एक भी जीव की स्थिति एक ही प्रकार की नहीं होती हैं ॥४५६॥ जन्म के समय में महाज्ञान रहता है। शैशावस्था में अल्पज्ञान होता है। जैसे पैर बिछलने पर ज्ञान अल्प रहता है। उसी तरह से बाल्यावस्था में अल्पज्ञान रहता है ॥४५७॥ कौमारावस्था में खेल खेलने में ही प्रेम रहता है, युवावस्था को विषयों के सेवन तथा सोने में मनुष्य बिता देता है। जब जवानी बीत जाती है तब धन संग्रह करने की लालच बढ़ती है ॥४५८॥ वृद्धावस्था में भोगों को भोगने की इच्छा बढ़ जाती है किन्तु वृद्धावस्था में भोगों को भोगने की क्षमता नहीं रहती है। नेटा, कफ और लार निकलने लगते हैं। शिर के बाल उड़ जाते हैं, शरीर काँपने लगता है ॥४५९॥ श्वास तथा कास की वायु से चंचल बनी उसकी इन्द्रियाँ विकल हो जाती हैं। उसके कारण मनुष्य अपने से न तो किसी वस्तु को ले पाता है और न तो वह कुछ जान ही पाता है॥४६०॥ दूसरी स्त्रियों को देखकर वह अपने गुप्ताङ्गों को दिखाता है। वह क्रूर प्राणी जीवित रहते हुए अपने अण्डकोश को खुजलाता है ॥४६१॥ वह अपने वस्त्र को हटाकर अण्डकोश को इधर-उधर करते

निःसृतिश्च मलस्यापि श्लेष्मनिर्गम एव च ।
स्नुषादि भर्त्सनं बालतालहास्य निदर्शनम् ॥४६३॥
गुरुनिर्गमनादीनि सञ्चिन्त्य च पुनः पुनः । आहूतो भोजनाद्यर्थं भोज्यान्नादि विनिन्दयन्॥४६४॥
चिरमुष्णं च निर्भर्त्स्य पुनश्चिन्तामवाप सः । अतिदुष्कृतिकर्माऽहं कथं भोक्ष्ये कथं शये॥४६५॥
कथं तिष्ठे कथं गच्छे परलोकःकथंभवेत् ।
इति चिन्ताकुलो नित्यं न नमत्यपरान्वितः ॥४६६॥
द्विजस्य सदनं गत्वा पुराणज्ञस्य राघव । लज्जावाक्कृतवक्त्रश्च किं करोमीत्यभाषत ॥४६७॥
न किञ्चिदप्युवाचासौ द्विजःपौराणिकस्तदा । पापोऽयमिति विज्ञाय शिष्येण निरगामयत् ॥४६८॥
गौतमोऽपि विनिर्गम्य द्वार्येव च बहिःस्थितः ।
भुव्यासीनं तु विज्ञाय पुराणार्थविचारकम् ॥४६९॥
कथं कथमपि प्राग्य पीठं दत्तं च नाभजत् ।
निषण्णो भूतले राम पुराणज्ञमभाषत ॥४७०॥
प्रायश्चित्तं करिष्यामि तदत्रैव विधीयताम् ॥४७१॥

ब्राह्मण उवाच

पापानि कीर्तयस्व त्वं सर्वथैव कृतानि तु । स चापि नाकृतंकिञ्चिन्मया पापमितीरयन् ॥४७२॥
रुदन्पपात भूम्यां च कथं तातेतिपीडितः । ब्राह्मणस्तमथ प्राह प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४७३॥
महापापं त्रिरावृत्ते पुनश्च यदि चेत्कृतम् ॥४७४॥

हुए खुजलाता रहता है । खाते समय कफ के कारण वह अपने ग्रास को भी नहीं खा पाता है ॥४६२॥ जब उसको खाँसी आती है, उस समय उसको अपान वायु शब्द करके निकलती है । उस समय उसके शरीर से मल भी निकल जाता है और कफ भी निकलता है ॥४६३॥ बहुएँ आदि उसकी भर्त्सना करती हैं और बच्चे ताली बजाकर हँसते हैं । उसके बाद गुरुजनों के आने आदि को बार-बार सोचकर ॥४६४॥ भोजन करने के लिए बुलाये जाने पर वह भोज्य अन्न आदि की निंदा करके दीर्घ काल तक गर्म-गर्म अन्न की निन्दा करके फिर चिन्तित हो गया ॥४६५॥ वह सोचने लगा मैं अत्यन्त पापी हूँ मैं कैसे भोजन करूँ और कैसे सोऊँ । मैं कैसे ठहरूँ और कैसे चलूँ ? न जाने मेरा परलोक कैसा होगा ?॥४६६॥ इसी तरह चिन्ता से व्याकुल रहकर वह ब्राह्मण सरकने में असमर्थ होने से दूसरे के साथ पौराणिक ब्राह्मण के घर गया ॥४६७॥ और लज्जा के कारण अपना मुँह टेढ़ा करके कहा मैं क्या करूँ ? उस समय उस पौराणिक ने कुछ भी नहीं कहा ॥४६८॥ यह जानकर कि यह पापी है, उन्होंने शिष्य के द्वारा उसको बाहर निकलवा दिया । गौतम भी बाहर निकलकर द्वार पर ही पड़ा रहा ॥४६९॥ पुराणों के अर्थ का विचार करने वाले वे भूमि पर उसको बैठै हुए जानकर उसको किसी तरह से बैठने के लिए आसन प्रदान किये, किन्तु वह उस पर बैठ न सका ॥४७०॥ हे रामचन्द्रजी ! पृथिवी पर बैठा हुआ वह पुराणज्ञ ब्राह्मण से कहा मैं प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ, आप उन प्रायश्चित्तों को बतलायें ॥४७१॥ **ब्राह्मण ने कहा**— तुमने जिन पापों को किया है उन पापों को बतलाओ । गौतम ने कहा कोई भी ऐसा पाप नहीं है जिसको मैंने नहीं किया हो । हे तात ! वह अत्यन्त दुःखी होकर इस तरह से कहकर रोते हुए वह पृथिवी पर गिर पड़ा। करने के पश्चात् भी यदि पाप होता है तो उसके प्रायश्चित नहीं होता है । गौतम नामक ब्राह्मण ने कहा— हे पौराणिक ! महाभाग आपको प्राप्त करके भी मैं कैसे पाप युक्त रह सकता हूँ ? आपकी सङ्गति विफल

गौतम उवाच

पौराणिकमहाभाग ! प्राप्याऽपित्वामहं कथम् ।
पापयुक्तोद्विजश्रेष्ठसङ्गतिर्विफलाभवेत् ॥४७५॥

पौराणिक उवाच

शास्त्रं प्रमाणं सर्वेषां प्रायश्चित्तविनिर्णये। तद्विना योहितं ब्रूयात्प्रायश्चित्तं न तद्भवेत् ॥४७६॥
सकृत्कृते सकृत्प्रोक्तं द्वितीये द्विगुणं भवेत्। तृतीये त्रिगुणं प्रोक्तं चतुर्थे नास्ति निष्कृतिः॥४७७॥
त्वया कृतं तु बहुधा चतुर्विधमपीच्छया। कथं वक्तुमहं शक्तः प्रायश्चित्तं भवादृशे॥४७८॥
गौतमोऽपि पुनःप्राह क्व गन्तव्यं मयेति च ।
पौराणिको द्विजो राम तूष्णीमेव बभूव ह ॥४७९॥
गौतमोऽपि महाशैलं श्रिया एव जगाम ह ।
तत्र नद्यामथ स्नात्वा दृष्ट्वेशं मल्लिकार्जुनम् ॥४८०॥
उपवासत्रंय कृत्वा शिवरात्रिमविन्दत। चतुर्थमुपवासं च चकारातीव दुःखितः॥४८१॥
पारणं चाप्यमायां स कृतवान्फलवल्कलैः ।
अथ प्रदक्षिणं चक्रे श्रीशैलस्य च स द्विजः ! ॥४८२॥
गतवान्मन्दिरं पश्चाच्चिन्तयातिकृशःश्वसन्। कथं पापनिवृत्तिर्मेतूष्णींभूतस्य सेत्स्यति॥४८३॥
अनन्तमविचार्यं किं पापं च सुमहत्तरम् ।
श्रुत्वा न कोऽपि मे ब्रूयात्प्रायश्चित्तं विधीयताम् ॥४८४॥
किंतु कस्मिन्पुराणे तु श्रुते ज्ञातं भविष्यति ।
इति कृत्वा मतिं सोऽथ पुराणज्ञमभाषत ॥४८५॥
पुराणमेकं मे तात व्याख्यातुं भगवानिति। जातकर्मादि संस्कारान्कारयस्व ममाशु वै॥४८६॥

कैसे हो सकती है ? **पौराणिक ने कहा—** सभी प्रायश्चित्तों का निर्णय करने में शास्त्र ही प्रमाण है ॥४७२-४७५॥ उसके बिना जो कुछ भी कहा जाय वह प्रायश्चित नहीं हो सकता है । एक बार महापाप करने के बाद एक प्रायश्चित होता है, दो बार उस पाप को करने पर पाप दो गुना हो जाता है ॥४७६॥ तीसरे बार उसको करने पर प्रायश्चित्त तीन गुना हो जाता है और चौथे बार उस पाप को करने पर उसका कोई भी प्रायश्चित नहीं रह जाता है । तुमने तो अपनी इच्छा से ही चार बार तथा अनेक बार उन पापों को किया है ॥४७७॥ अतएव मैं उसका प्रायश्चित कैसे बतला सकता हूँ ? गौतम ने फिर पूछा मुझको कहाँ जाना चाहिए ?॥४७८॥ हे रामचन्द्रजी ! पौराणिक ब्राह्मण मौन ही रहे । वे गौतम ब्राह्मण भी श्रीशैल पर चले गये ॥४७९॥ उन्होंने नदी में स्नान करके भगवान् मल्लिकार्जुन का दर्शन किया । तीन दिन उपवास करने के बाद शिवरात्रि का दिन आया ॥४८०॥ अत्यन्त दुःखी वे ब्राह्मण चौथे दिन भी उपवास किए और अमावास्या के दिन उन्होंने फल तथा बल्कल से पारण किया ॥४८१॥ उसके बाद उन ब्राह्मण ने श्रीशैल की प्रदक्षिणा की । उसके बाद वे चिन्ता के कारण अत्यधिक श्वास लेत हुए मन्दिर में गये ॥४८२॥ मौन हुए मेरे पापों का विनाश कैसे होगा ? मैंने बिना विचार किए ही अत्यन्त महान् पापों को किया है॥४८३॥ उन पापों को सुनकर कोई भी मुझे प्रायश्चित्त करने के लिए नहीं कहेगा । किन्तु कौन सा ऐसा पुराण है? जिसका श्रवण कर लेने से मुझे प्रायश्चित्तों का पता चल जायेगा ॥४८४॥ इस तरह से मन में विचार करके उस ब्राह्मण ने पौराणिक से कहा हे तात ! हे भगवान् ! मुझे एक पुराण की व्याख्या करके सुनायें॥४८५॥

द्विजो भूत्वा शृणोम्यद्य प्रायश्चित्तं करोम्यतः ।
विधायकं पुराणं मे भविष्यति च कीर्तितम् ॥४८७॥

पौराणिक उवाच

यथावत्कीर्तयिष्यामि पुराणं पापनाशनम् । यथाज्ञानं यथाशक्ति यथाशुद्धं यथाविधि ॥
किं वाञ्छसि पुराणं तु कीर्तयिष्ये तदेव तु ॥४८८॥

गौतम उवाच

सर्वरुचि पुराणं मे वक्तव्यं किं हि तं वद ।
श्रुते यस्मिन्भिदानैव जायते तु हरीशयोः ॥४८९॥

पौराणिक उवाच

कौर्मोक्तं यत्पुराणं तद्देवयोरभिदाभिधम् । श्रिणोति यस्तत्प्रथमं तस्य पापं विनश्यति॥४९०॥
तस्य वक्ता तु यो विप्रस्तस्य विध्नान्तरं भवेत् ।
श्रोतव्यं मन्यते पापो यदि भार्या विनश्यति ॥४९१॥
किंचैकं दुष्करं वक्ष्ये श्रोतुर्वक्तुरनिन्दकम् । व्याख्यातरि यदि प्रीतिर्द्धमदिव प्रकाशिनि ॥४९२॥
आचारदर्शने पुण्ये कर्ममोक्षादि दर्शके । तदा तुष्टो महेशःस्याद्विष्णुरिष्टफलप्रदः ॥४९३॥
पितरस्तारितास्तेन यान्ति ते परमां गतिम् ॥४९४॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शिवराघवसंवादे चतुर्दशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥११४॥

* * *

आप शीघ्र ही मेरे जातकर्म आदि संस्कारों को सम्पन्न करे । मैं ब्राह्मण बनकर पुराण सुनना चाहता हूँ फिर प्रायश्चित्त करूँगा ॥४८६॥ जिस पुराण को आप मुझे सुनायेंगे वही मेरे लिए प्रायश्चित्त का विधायक होगा। अतएव पुराण के अर्थ का निश्चय करके ही मैं अपनी शक्ति के अनुसार प्रायश्चित्त करूँगा ॥४८७॥ **पौराणिक ने कहा—** मैं पापों के विनाशक पुराण में जैसा है वैसा ही कहूँगा । मैं अपने ज्ञान और शक्ति के अनुसार विधिपूर्वक पुराण को शुद्ध शुद्ध सुनाऊँगा ॥४८८॥ आप किस पुराण को सुनना चाहते हैं उसी को सुनाऊँगा । **गौतम ने कहा—** सभी पुराण मेरे लिए रुचिकर हैं जो मेरे लिए कल्याणकारी हो उसे ही आप मुझे सुनायें ॥४८९॥ जिसके श्रवण से शिवजी तथा भगवान् विष्णु में भेद बुद्धि उत्पन्न न हो उसे ही सुनायें । **पौराणिक ने कहा—** कूर्म पुराण के विषय में बतलाया गया है कि वह श्रीहरि और शङ्करजी में अभेद को बतलाता है ॥४९०॥ जो सबसे पहले उस पुराण का श्रवण करता है उसके पाप का नाश हो जाता है । किन्तु उसका वक्ता जो ब्राह्मण होता है उसको दूसरा विध्न होता है ॥४९१॥ यदि सुनने वाला पापी होता है तो उसकी पत्नी का नाश हो जाता हैं । श्रोता और वक्ता की निन्दा से रहित एक दुष्कर कार्य है ॥४९२॥ श्रोता और वक्ता में यदि किसी का प्रेम होता है तो उसका प्रकाशन धर्म के द्वारा ही होता है । धार्मिक आचार का प्रकाशन पुण्य करने पर उससे मोक्ष आदि की प्राप्ति होती है ॥४९३॥ तो ऐसी स्थिति में शिव जी प्रसन्न होते हैं और भगवान् विष्णु अभिप्रेत फल प्रदान करते हैं । उसके द्वारा पितरों का उद्धार हो जाता है और वे मुक्त हो जाते हैं ॥४९४॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के शिवराघव संवाद के अन्तर्गत एक सौ चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११४।।

* * *

एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय

श्रीराम उवाच

कथं पातकसङ्घातसङ्क्रमे ब्राह्मणाधमे । पुराणज्ञः कथं व्याख्यां चकार द्विजसत्तम ॥१॥

शम्भुरुवाच

अध्यापने चाध्यायने जायते चाथ सङ्गमः । सङ्गतौ वत्सरं राम याति पातकिपातकम् ॥२॥
पुराणज्ञे तु काकुत्स्थ सर्वतत्त्वार्थवेदिनि। अपि पातकसन्दोहचीर्णपापं प्रणश्यति ॥३॥
प्रभूतवह्निनाशे हि धूमराशिर्यथैव हि। शलभो दीपनाशाय वह्निनाशाय न प्रभुः ॥४॥
कृतं पापं तथान्येषां नाशनाय पुराणिकः। भूतादिग्रस्तमर्त्यानां भूतादि भयमोचकः ॥५॥
समन्त्रवानपनयेद्यथा न स्वयमातुरः । पौराणिकस्तथा पापं न किंचित्प्राप्तुमर्हति ॥६॥
आत्मना च कृतं पापमन्यैरपि च यत्कृतम्। पुराणज्ञो नाशयति त्वतिदुष्टं स्वकर्म वा ॥७॥
भवानीशे हृषीकेशे समवृत्तिर्विवेकवान् । लोकवेदक्रियावेत्ता रुद्रजाप्यतिनिः स्पृहः ॥८॥
तुष्टःशान्तः क्रियादक्षः प्रभूतो योगकृद्वशी। यथैव ते पुराणज्ञो वसिष्ठो भगवानृषिः ॥९॥
नियोगात्तव भूपाल अयोध्यायामतिष्ठत । अपालयद्ध्रुवं कृत्स्नां त्वां च रक्षः समापतत् ॥१०॥
स च शुक्रोपदेशेन राक्षस्त्वामथाभ्यगात् । निद्रासक्तं हनिष्यामि नान्यथाऽवसरस्त्विति ॥११॥
अथ विप्रो विदित्वैतद्वसिष्ठस्त्वद्धितप्रियः । सुप्तं प्रमत्तं काकुत्स्थं रक्षोहन्ति न संशयः ॥१२॥

पुराण श्रवण विधि और पुराण वाचनविधि

भगवान् श्रीराम ने कहा— हे द्विजश्रेष्ठ ! जो ब्राह्मणाधम पाप समूह से युक्त था उसको पौराणिक ब्राह्मण ने पुराण की व्याख्या कैसे सुनायी ?॥१॥ **शम्भुमुनि ने कहा**— उन दोनों का सङ्गम अध्यापन और अध्ययन दोनों समयों से होता था । हे रामचन्द्रजी ! इस तरह से एक वर्ष तक मिलते रहने के कारण उस ब्राह्मण के पाप विनष्ट हो गये ॥२॥ हे काकुत्स्थवंशावतंस श्रीरामचन्द्रजी ! तत्त्वों के ज्ञाता पुराणज्ञ के होने पर उसके द्वारा व्रत का पालन करने से पापसमूह का नाश हो जाता है ॥३॥ प्रभूत मात्रा में विद्यमान अग्नि के नाश हो जाने पर जैसे धूम समूह ही बचा रहता है, और उससे कुछ भी नहीं बिगड़ता है, जैसे कीड़ा तो दीपक को ही बुझा सकता है, वह अग्नि को नहीं बुझा सकता है ॥४॥ उसी तरह से दूसरों द्वारा किऐ गये पाप का विनाश करने के लिए पौराणिक भूत आदि से ग्रस्त मनुष्यों के भूत आदि का भय दूर कर देता है ॥५॥ जिस तरह से मन्त्रज्ञ पुरुष स्वयं भूत से ग्रस्त नहीं होता है उसी तरह पौराणिक को कोई भी पाप नहीं लगता है ॥६॥ पुराणज्ञ पुरुष अपने द्वारा किए गये तथा दूसरों के द्वारा किए गये पापों को नष्ट कर देता है ॥७॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! आपके आदेशानुसार शिवजी तथा भगवान् विष्णु में एक समान वृत्ति वाले, विवेकी, लौकिक तथा वैदिक क्रियाओं के ज्ञाता रुद्राध्याय का पाठ करने वाले, सबों से अत्यन्त निःस्पृह रहने वाले, सदा सन्तुष्ट रहने वाले, शान्त होकर क्रियाओं को सम्पादित करने में निपुण, बहुत अधिक प्रयास करते रहने वाले तथा आपके ही समान अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाले, पुराणों के ज्ञाता, ऐश्वर्य सम्पन्न ऋषि वसिष्ठ अयोध्या में रहते थे । वे सम्पूर्ण पृथिवी की तथा आपकी रक्षा करते थे । उसी समय यहाँ एक राक्षस आया ॥८-१०॥ शुक्राचार्य का आदेश प्राप्त करके वह राक्षस आपके

ब्रह्मावाप्तवरं तद्धि मया कार्यं निवारणम् । इति सञ्चिन्त्य विप्रर्षिःसेनामादाय निर्गतः ॥१३॥
रक्षोहन्तुमशक्तस्तु मृत्युहीनं ततो मुनिः । स्वयं च राक्षसो भूत्वा वाक्यमाह महामुनिः ॥१४॥
किमर्थमागतोऽसीह वनं मुनिनिषेवितम् । स आह राजा रक्षोघ्नस्तमहं हन्तुमागतः ॥१५॥
मुनिरप्याह किं तेन जीवितेन मृतेन वा। भुक्त्वाऽऽमिषं मदीयं तु युद्धं कृत्वाजयं व्रज॥१६॥

राक्षस उवाच

कथं त्वं राक्षसो मह्यं भक्षणाय भविष्यसि। वसिष्ठोऽप्यथमानुष्यमास्थाय वियतिस्थितिः ॥१७॥
निष्ठीव्य मस्तके तस्य मुष्टिना तमताडयत्। ताडितो राक्षसस्तेन व्यद्रावयदृषिश्च तम्॥१८॥
पलायमानावन्योन्यं जलधिं तु गतावुभौ।
तत्रस्थेन ग्रहेणाऽसौ गृहीतो राक्षसस्तदा । मुनिः पुनरयोध्यायां पूर्ववत्समतिष्ठत ॥१९॥

शम्भुरुवाच

तस्मात्स्वाभिमतं कुर्यात्पुराणज्ञो विमत्सरः । श्रवणस्य विधानं च कथयामि शुभं शृणु॥२०॥
शुक्लपक्षे दिने शुद्धे वारनक्षत्रयोगतः। करणे चापि लग्ने च ग्रहताराबलान्विते ॥२१॥
अमूढेन ग्रहे बाले न च वृद्धौ गुरौ स्थिते। न कृष्णपक्षे ग्रहणे न च नास्तिकसन्निधौ ॥२२॥
पूर्वोक्तलक्षणोपेतं पुराणं शृणुयादिति । शुद्धगेहेऽथवा शुद्धवेदिकायां मठेऽथवा ॥२३॥

पास आया । वह सोचकर आया कि जब श्रीराम सोते रहेंगे उसी समय मैं उनको मार दूँगा । अन्यथा मुझे उनको मारने का अवसर नहीं मिलेगा ॥११॥ आपका कल्याण करना ही जिनको प्रिय था वे महर्षि वसिष्ठ इस बात को जान गये कि जिस समय श्रीराम सोएँ अथवा असावधान रहेंगे उसी समय यह श्रीराम को मार देगा ॥१२॥ वह ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त किए हुए है, अतएव उसको मुझे रोकना चाहिए । इसके बाद वे विप्रर्षि सेना लेकर निकले ॥१३॥ वे मुनि जानते थे कि इस राक्षस की मृत्यु नहीं हो सकती है अतएव मैं उसकों नहीं मार सकता हूँ । वे महामुनि स्वयं राक्षस बन गये और उन्होंने उस राक्षस से कहा॥१४॥ मुनियों से सुसेवित इस वन में तुम किसलिए आये हो ? उस राक्षस ने कहा कि यहाँ का राजा राक्षसों को मारता है, अतएव मैं इसको मारने के लिए आया हूँ ॥१५॥ उसके जीवित या मृत होने से कौन सा लाभ है ? तुम मेरे मांस को खाकर युद्ध करके विजयी बन जाओ ॥१६॥ **राक्षस ने कहा—** तुम राक्षस हो तुमको मैं कैसे खाऊँ ? उसके बाद वसिष्ठ महर्षि मनुष्य होकर आकाश में स्थित हो गये॥१७॥ वे उसके शिर पर थूक कर उसको मुक्के से मारे । उनके द्वारा प्रताड़ित होकर वह राक्षस ऋषि को दौड़ाया ॥१८॥ भागते हुए वे दोनों समुद्र में पहुँच गये । वहाँ पर विद्यमान ग्राह ने उस राक्षस को पकड़ लिया ॥१९॥ उसके बाद मुनि वसिष्ठ पहले के ही समान अयोध्या में रहने लगे । **शम्भुमुनि ने कहा—** अतएव मत्सर रहित पुराणज्ञ को चाहिए कि वह अपने अभिमत अर्थ की सिद्धि करे ॥२०॥ मैं पुराण के सुनने के मङ्गलमयी विधि को बतलाता हूँ उसे आप सुनें । महीने के शुक्लपक्ष में जब शुद्ध दिन और नक्षत्र एवं योग से युक्त दिन आये और ॥२१॥ करण तथा लग्न को भी ग्रह तथा तारा के बल से युक्त हो उस समय पुराण सुनना चाहिए । उस समय ग्रह को मूढ अथवा बाल नहीं होना चाहिए । उस समय बृहस्पति को भी वृद्ध नहीं होना चाहिए ॥२२॥ कृष्ण पक्ष में या ग्रहण की बेला में या नास्तिक के सन्निकट पुराण का श्रवण नहीं करना चाहिए । उपर्युक्त प्रकार के ही लग्न में पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त पुराण

नदीतीरे देवगेहे सभामण्डप एव च। रथ्यामठेऽथवा रम्ये पुण्यशालासु राघव ॥२४॥
स्वयं नमस्य विप्रेन्द्रान्पुराणज्ञं विशेषतः। आसनं कल्पितं कुर्याद्दूर्ध्वं सर्वविशेषितम्॥२५॥
एहि धर्मासनमिति वक्तव्यं स्यादनिष्ठुरम्। पुराणप्रक्रमदिने यत्कार्यं तदुदीरयेत् ॥२६॥
व्याख्यातारं पुराणस्य वस्त्राद्यैःपरिपूजयेत् ।
शुभानि दत्त्वा वस्त्राणि सूक्ष्माणि च नवानि च ॥२७॥
करकण्ठविभूषादि पात्रमासनमेव च। गन्धपुष्पाक्षतैः पूज्य ताम्बूलं विनिवेद्य च ॥२८॥
शुक्लम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥२९॥
सभासदश्च सम्पूज्य गणेशं प्रार्थयेत्ततः। ॐ नमेत्यादिमन्त्रेण पूजनं भारतीनुतिः ॥३०॥
प्रातःकाले पुराणस्य प्रक्रमं प्रारभेदिति। उपक्रमदिने राम त्रिपञ्चदशवा शुभाः ॥३१॥
श्लोका द्वितीये दिवसे ततो द्विगुणिताःशुभाः ।
तृतीये दिवसे राम ततश्चाधिकमिष्यते ॥३२॥
दिनानामव्यवच्छेद्व्याख्यानं श्रवणं तथा । व्यवस्थितिर्यदा जाता तदा पौराणिकं गुरुम् ॥३३॥
ताम्बूलादि प्रदायाथ परेद्युः श्रृणुयादपि। पुराणमेवं श्रोतव्यं दैनन्दिनमिति श्रुतिः ॥३४॥
व्रतरूपेण यःकश्चित्पुराणं श्रृणुयान्नरः। यदैवं तत्पुराणं तु तत्र याति न संशयः ॥३५॥
पुराणं श्रोतुकामेन श्लोकश्चैकोऽपि चोच्छ्रुतः ।
तद्दिने तु कृतं पापं नाशयेत्तु न संशयः ॥३६॥

का श्रवण करना चाहिए ॥२३॥ शुद्ध गृह में अथवा शुद्ध वेदी पर या मठ में, या नदी के तट में, या मंदिर में अथवा सभामण्डप में अथवा गली के मठ (गुरुकुल) में या मनोहर पवित्र गृहों में, श्रोता को चाहिए कि वह ब्राह्मणों को नमस्कार करे तथा पुराण को विशेष रूप से प्रणाम करे ॥२४-२५॥ उसके बाद वह आसन का निर्माण करे । उस आसन को ऊँचा और हर प्रकार की विशेषाताओं से विशिष्ट होना चाहिए। उसके बाद पुराणज्ञ से मधुर शब्दों में कहना चाहिए कि आइये यह धर्मासन है ॥२६॥ पुराण प्रारम्भ करने के दिन जिन-जिन कार्यो को करना हो उसे कहे । पुराण की व्याख्या करने वाले को वस्त्र आदि से पूजा करनी चाहिए ॥२७॥ सुन्दर मूल्यवान् तथा नवीन वस्त्रों को प्रदान करके हथ तथा गले के भूषणों तथा पात्र एवं आसन प्रदान करे ॥२८॥ उसके बाद पौराणिक को चन्दन तथा अक्षतों से पूजा करके उनको ताम्बूल निवेदित करें । श्वेत वस्त्र धारण किए हुए चन्द्रमा के समान आह्लादक वर्ण वाले तथा चार भुजाओं वाले प्रसन्न मुख वाले भगवान् विष्णु का सभी कार्यो तथा अर्थो की सिद्धि के लिए ध्यान करे । उसके पश्चात् सभासदों की तथा गणेशजी की पूजा करें ॥२९-३०॥ **ॐ नमः इत्यादि** मन्त्र से सरस्वतीजी की पूजा करके नमस्कार करें । प्रातःकाल पुराण के उपक्रम को प्रारम्भ करे ॥३१॥ हे राम ! पुराण प्रारम्भ होने के दिन तीन या पाँच या दश श्लोकों को सुनना शुभ होता है । हे श्रीरामचन्द्रजी ! दूसरे दिन उसके दो गुना श्लोकों की व्याख्या सुनना चाहिए ॥३२॥ तीसरे दिन उससे भी अधिक श्लोकों को सुने । पुराण सुनने में दिनों का व्यवच्छेद नहीं होना चाहिए (प्रतिदिन पुराण सुनना चाहिए) जब पुराण की समाप्ति हो जाय तो पौराणिक गुरु को ताम्बूल आदि प्रदान करके उसके दूसरे दिन भी पुराण को सुने ॥३३-३४॥ इस तरह से प्रतिदिन पुराण सुनना चाहिए । जो कोई भी मनुष्य व्रत के रूप में पुराण का श्रवण करता है ॥३५॥

एवं पुराणं शृणुयाच्च यस्तु स ब्रह्मत्याकृतपापबन्धात् ।
सुरापीतिः स्वर्णहरश्च राम ! गुर्वङ्गनागश्च विमुक्तिमेति ॥३७॥
पपानि चान्यानि कृतानि पुम्भिःसर्वाणि नश्यन्ति पुरा कृतानि ।
इहापि यान्यब्दशतार्जितानि श्रोतुर्विनश्यन्ति तथा च वक्तुः ॥३८॥
कलौ समस्तविप्राणां सर्वज्ञत्वं न विद्यते। विगुणापि ततो व्याख्या फलदा दानकर्मवत् ॥३९॥
पुराणानामभिप्रायं व्यासो वेद न चापरः। अहं वेद्मि विशेषेण व्यासादपि विधेरपि ॥४०॥
न स्वाध्यायस्तपो वापि न मन्त्रो न जुहोति यः ।
फलन्ति न तथातिष्ये पुराणश्रवणं यथा ॥४१॥
एकैकश्रवणादेव पातकं महदेव तु। नाशमाप्नोत्यसन्देहः श्रीशैले वर्तनादिव ॥४२॥
अतो गुरुःपुराणज्ञः श्रोतृवन्द्योऽघनाशनः। न तस्मादधिकःकश्चिद्गुरुरस्ति गतिप्रदः ॥४३॥
मन्त्रेषु गुरवो ये च वेदशास्त्रेषु ये मताः। नेशते सर्वविज्ञानं दातुं तस्मात्र बोधकाः ॥४४॥
पिशाचाः प्रायशो राम ! ब्रह्मराक्षसनामकाः ।
वेदमन्त्रस्य वेत्तारो दृश्यन्ते न पुराणवित् ॥४५॥
पुराणविमुखो नैव सर्वः सर्वं हि पश्यति। पुराणज्ञो हितस्तस्मात्पापनाशकरः प्रभुः ॥४६॥
तत्पूजा सर्वपूजास्यात्सर्वद्रोहोऽस्य पीडनम्। यथा समस्तदानानां विद्यादानं प्रशस्यते ॥४७॥

जब ऐसा होता है तो वह पुराण निश्चित रूप से श्रोता के साथ जाता है। पुराण सुनने की इच्छा वाला व्यक्ति यदि एक श्लोक भी सुन लेता है तो ॥३६॥ उस दिन उसके द्वारा किये गये सभी पापों का नाश हो जाता है। जो इस तरह से जो पुराण का श्रवण करता है तो उसके द्वारा वह किए गये ब्रह्महत्या आदि पापों के बन्धन से छूट जाता है। हे श्रीरामचन्द्रजी मदिरा पीने वाला सुवर्ण चुराने वाला तथा गुरुपत्नीगामी, भी पापों से मुक्त हो जाता है ॥३७-३८॥ मनुष्यों द्वारा किए दूसरे भी पाप जो पहले उन सबो के द्वारा किए गये होते हैं वे सबके सब तथा इस जन्म में भी सैकड़ों वर्षों में किए गये पाप वक्ता और श्रोता दोनों के नष्ट हो जाते हैं ॥३९॥ कलियुग में सभी ब्राह्मण सर्वज्ञ नहीं होते हैं, फिर भी गुणहीन भी पुराणों की व्याख्या कर्मों के समान फल देने वाली होती ही है ॥४०॥ पुराणों के अभिप्राय को तो महर्षि व्यास ही जानते हैं उसे दूसरा कोई नहीं जान सकता है और मैं भी उसको व्यासजी तथा ब्रह्माजी से भी अधिक रूप में जानता हूँ ॥४१॥ कलियुग में जिस तरह पुराण श्रवण का फल होता है उस तरह का फल वेदाध्ययन, तपस्या, मन्त्रजप तथा होम का फल नहीं होता है ॥४२॥ जिस तरह से श्रीशैल पर रहने वाले के सभी पाप एक-एक करके विनष्ट हो जाते हैं उसी तरह एक-एक श्लोक के भी सुनने से श्रोता के छोटे-बड़े सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं। एक-एक श्लोक के भी सुनने से श्रोता के छोटे-बड़े सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं। अतएव पुराणज्ञ गुरु श्रोता के लिए वंदनीय हैं, क्योंकि वह पापों का विनाश करने वाले हैं, उनसे बड़ा गति प्रदान करने वाला कोई भी दूसरा गुरु नहीं होता है ॥४३-४४॥ मन्त्र प्रदान करने वाले तथा वेद शास्त्रों के जो गुरु हैं, वे सभी प्रकार के ज्ञानों को प्रदान करने में समर्थ नहीं हैं, अतएव वे ज्ञान प्रदान करने वाले नहीं हैं ॥४५॥ हे रामचन्द्रजी ! प्रायः यह देखा जाता है कि जो पिशाच अथवा ब्रह्मराक्षस होते हैं वे वेद के मन्त्रों को जानते हैं किन्तु उन सवों को पुराणों का ज्ञान नहीं होता हैं ॥४६॥ पुराणों से विमुख

पौराणिकस्तथा धन्यस्तत्र दानं महत्फलम् ॥४८॥

राम उवाच

किं वा पौराणिके देयं कियत्कीदृशमेव च। पुराणं कीदृशं वर्ज्यं वर्ज्यःकीदृक्पुराणवित् ॥४९॥

शम्भुरुवाच

षड्रसान्नपानानि स्नेहद्रव्याणि यानि च। गृहं सोपस्करं राम पुराणज्ञाय दापयेत् ॥५०॥

पर्याप्तान्येव सर्वाणि अधिकानि फलाधिकात् ।
दद्याद् द्रव्यमतो भूयः सचैलं शोभितं मृदु ॥५१॥
भूषणानि यथार्हाणि स्वशक्त्या प्रतिपादयेत् ।
गन्धपुष्पं प्रतिदिनं केवलं गन्धमेव च ॥५२॥

केवलं च तथापुष्पं फलकाले फलान्यपि। ताम्बूलं च तथा दद्यान्नमस्कुर्याच्च भक्तितः ॥५३॥
पुराणस्य समाप्तौ तु दद्याद्दानादिकं तथा। अधिकं तु तथादेयं भूहिरण्यादिकं नृप ॥५४॥
न च तूष्णीमुपक्रम्य श्रोतुमर्हति कश्चन। सभासद्भिःकृता चैव या पूजैकेन वा कृता ॥५५॥
देवस्थाने यथाशक्ति सर्वैः पूजनमिष्यते। तीर्थेऽपि च यथा राम पुण्येष्वायतनेषु च ॥५६॥
स्वशक्त्या पूजनं कुर्यात्पुराणज्ञाय राघव। श्रोतुस्तु लक्षणं पूर्वं मयोक्तं तु भवेन्नृप ॥५७॥

रहने वाला कोई भी व्यक्ति सव कुछ नहीं जानता है । अतएव पुराणज्ञ पुरुष सबों का हितकारी और पापों का विनाश करने वाला होता है ॥४७॥ अतएव पुराणज्ञ की पूजा करने से सबों की पूजा हो जाती है और उसको दुःख देने वाले के सबों को दुःख देने का पाप लगता है जिस तरह विद्या का दान सभी प्रकार के दानों से श्रेष्ठ होता है ॥४८॥ उसी तरह पौराणिक धन्य होता है, उसको दान देने से महान् फल की प्राप्ति होती है । **श्रीराचमन्द्रजी ने कहा—** पौराणिक को किस वस्तु का किस मात्रा में दान देना चाहिए ? उस वस्तु को कैसी होनी चाहिए ?॥४९॥ किस तरह के पुराण को नहीं सुनना चाहिए तथा किसी प्रकार के पुराणज्ञ से पुराण नहीं सुनना चाहिए ? **शम्भु मुनि ने कहा—** हे श्रीरामचन्द्रजी ! पुराणज्ञ को षड्रस अन्न तथा पेय पदार्थों को देना चाहिए तथा स्नेह द्रव्य (तेल घी) भी उसको देना चाहिए । सभी सामग्रियों से परिपूर्ण गृह का दान पुराणज्ञ पुरुष को देना चाहिए । इन सभी वस्तुओं को पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए और उससे भी अधिक दान देने पर अधिक फल की प्राप्ति होती है ॥५०-५१॥ अतएव वस्त्रों के साथ प्रभूत मात्रा में द्रव्यों को देना चाहिए । उन सबों को सुन्दर और कोमल होना चाहिए और अपनी शक्ति के अनुसार यथायोग्य भूषण भी पौराणिक को देना चाहिए ॥५२॥ प्रतिदिन उनको चन्दन, पुष्प प्रदान करना चाहिए अथवा केवल उनको चन्दन ही लगाना चाहिए । अथवा केवल फूल ही प्रदान करे । यदि फल का समय हो तो फल भी प्रदान करे ॥५३॥ पौराणिक को ताम्बूल प्रदान करके उनको भक्ति पूर्वक नमस्कार करना चाहिए । जब पुराण की समाप्ति हो जाय तो पौराणिक को दान इत्यादि देना चाहिए॥५४॥ हे राजन् ! पौराणिक को पृथिवी तथा सुवर्ण आदि अधिक देना चाहिए । किसी को चुपचाप प्रारम्भ करके पुराण को नहीं सुनना चाहिए ॥५५॥ सभी सभासदों के द्वारा पूजा किया जाना चाहिए अथवा एक भी सभासद पूजा कर सकते हैं । देवताओं के स्थान में की जाने वाली पूजा सबों को करनी चाहिए ॥५६॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जिस तरह तीर्थों में तथा पवित्र स्थानों में पूजा की जाती है, उसी तरह पौराणिक की पूजा

पौराणिकस्य सर्वस्य लक्षणं कथयामि ते। कुलहीनो महाव्याधिर्महापापी तिरस्कृतः ॥५८॥
शौचाचारविहीनश्च वेदस्मृतिविवर्जितः। अन्यदेवः पूतिवचो व्यङ्गश्चाप्यधिकाङ्गवान् ॥५९॥
परपूर्वापतिः स्तेनः प्राणिहन्ता निराकृतिः। अथ वर्ज्यं पुराणं ते कथयामि नृपोत्तम !॥६०॥
पूर्वज्ञैरुच्यमानं च यत्प्रोक्तं मुनिभिःपरैः। व्यासदयो मुनिवरा यत्प्रोचुस्तदुदीरयेत्॥६१॥
पुराणस्थं पठेद्ग्रन्थं व्याख्यायेत विचारयन्। यया कयापि वा राम भाषया देशभेदतः ॥६२॥
न देशभाषारचितं ग्रन्थं श्रुत्वा फलं लभेत् ।
व्याख्या या काऽपि काकुत्स्थ ! पुराणस्य हिता हि सा ॥६३॥
तस्मात्त्वं देव ! याचस्व व्याख्यास्ये यत्पुराणकम् ॥६४॥

शम्भुरुवाच

एवं पौराणिकेनोक्तं श्रुतवानपि गौतमः। स्वयं वस्त्रत्रयं प्रादाद्ब्राह्मणाय महात्मने॥६५॥
कौर्मं पुराणं प्रथमं श्रुतवानिति नः श्रुतम्। दत्तवान्स्वर्णमधिकं वस्त्राणि च शुभानि च॥६६॥
अथ लैङ्गं च शुश्राव वैष्णवं वामनं तथा। पाद्मं च गारुडं चैव सौरं ब्राह्ममथैव च ॥६७॥
एवमष्ट स शुश्राव पुराणानि स गौतमः। अथ रामायणं चैव कौर्ममेव पुनश्च सः ॥६८॥
शिवनारायणेत्येवं जपं चक्रे सदैव हि। अवाप निधनं चापि स गतो ब्रह्मणःपदम् ॥६९॥

सबको अपनी शक्ति के अनुसार करनी चाहिए ॥५७॥ पहले मैंने श्रोता के जिन लक्षणों को बतलाया है, वह लक्षण उसमें होना चाहिए। अब मैं पौराणिक के सभी लक्षणों को बतलाता हूं ॥५८॥ हीन वंश का, किसी महाव्याधि से ग्रस्त, महापापी, समाज से तिरस्कृत शौचाचार विहीन, वेदों और स्मृतियों के ज्ञान से रहित ॥५९॥ दूसरे देवों की आराधना करने वाला, बोलते समय जिसके मुख से दुर्गन्धि आती हो, लङ्गड़ा या टेढ़ा-मेढ़ा शरीर वाला, या अधिकाङ्ग दूसरे की पत्नी का पति, चोरी करने वाला, प्राणियों की हिंसा करने वाला, अनादृत, इस तरह का पौराणिक वर्जित है। अब मैं आपको नही सुनने योग्य पुराण को बतलाता हूँ। जिसको पहले के ज्ञाता कहते चले आ रहे हैं, अथवा जिसको दूसरे (व्यासजी से भिन्न) मुनिजन कहे हों, उन पुराणो को नहीं सुनना चाहिए। जिसको व्यास आदि मुनिजन कहे हों, उसी पुराण को कहना चाहिए। पुराण के ग्रन्थ का पाठ करना चाहिए और विचार करके उसकी व्याख्या करनी चाहिए॥६०-६२॥ हे रामचन्द्रजी ! कोई भी भाषा जो देश की हो उसमें ही व्याख्या करनी चाहिए। देश की भाषा में रचित ग्रन्थ का श्रवण करने से फल की प्राप्ति नहीं होती हैं ॥६३॥ हे काकुत्स्थ ! पुराण की व्याख्या चाहे जो हो वह कल्याणकारिणी ही होती है। अतएव हे राजन् ! आप बतलायें कि मैं किस भाषा में व्याख्या करूँ ? आप जिस भाषा में कहेंगे मैं उसी भाषा में व्याख्या करूँगा। **शम्भु मुनि ने कहा**—इस तरह से पौराणिक के द्वारा कही गयी बात को गौतम ने भी सुना। उसने ब्राह्मण को तीन वस्त्रों को प्रदान किया ॥६४-६५॥ हमने सुना है कि उस गौतम ने सर्वप्रथम कूर्म पुराण को सुना और उसने अधिक मात्रा में सुवर्ण तथा वस्त्रों का दान दिया ॥६६॥ उसके बाद उसने लिङ्ग पुराण का श्रवण किया तथा विष्णु पुराण और वामन पुराण का भी श्रवण किया। फिर गौतम नामक ब्राह्मण ने पद्मपुराण, गरुड़ पुराण, सौर पुराण तथा ब्रह्म पुराण का भी श्रवण किया ॥६७॥ इसतरह से उस गौतम नामक ब्राह्मण ने आठ पुराणों का श्रवण किया। उसके बाद वह श्रीरामायण को सुना और कूर्म पुराण को पुनः सुना ॥६८॥ वह सदैव

ब्रह्मणा पूजितो विप्रो विष्णुलोकमथागतम्। विष्णुना पूजितः सोऽथ जगाम शिवमन्दिरम्।।७०।।
सर्वेषामेव वन्द्योऽसौ गौतमो मुनिसत्तमः । भारतश्रवणे चापि नियमा ये मयेरिताः।।७१।।
पुरा व्यासेन मुनिना त्रिवर्षाद्यत्कृतं शुभम् । श्रवणात्तस्य कृत्स्नस्य व्याकर्ता भारतस्य यः ।।७२।।
न किञ्चित्प्रणमेद्विप्रं मुक्त्वा योगिनमुत्तमम् । सर्वेषामेव वन्द्योऽसौ भारतं व्याकरोति यः ।।७३।।
यो महाभारतं नित्यं व्याख्यास्यति पठेच्च वा ।
स सर्वेभ्योऽधिको विप्रस्तारयेच्चैव मानवान् ।।७४।।
व्याकरोति स पर्वैकं सर्वाणि कतिचित्तु वा ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो हव्ये कव्ये विशिष्यते ।।७५।।
तमेव प्रणमेद्विप्रं तमेवार्हं च पूजयेत्। तमेव भोजयेन्नित्यं सर्वं तस्मै निवेदयेत्।।७६।।
तस्य पूजाविधिः प्रोक्तो व्याख्यानसमये द्विजः ।
प्रतिपूज्योऽथ वस्त्राद्यैः पूजयेद्विधिमार्गतः ।।७७।।
आदिपर्वसमाप्तौ च दद्यात्सूक्ष्माम्बरत्रयम् । सुवर्णञ्च यथाशक्ति सभापर्वणि वाससी ।।७८।।
आनुशासनिकारण्यस्वर्गारोहेषु पर्वसु। आदिपर्वणि पूजा या सा पूजा नृपपुङ्गव ! ।।७९।।
कर्णाश्वमेधवैराटशल्यद्रोणेषु पर्वसु । सूक्ष्मवस्त्रत्रयं शुद्धं निष्कद्वयमथापि।।८०।।
क्षुद्रपर्वस्वथान्येषु निष्कावथ समानयेत् । हरिवंशे सनिष्कं तु वस्त्रत्रितयमेव तु ।।८१।।

शिव नारायण का जप किया करता था । उसके वाद जब उसकी मृत्यु हुयी वह ब्रह्मलोक में चला गया वहाँ ब्रह्माजी ने उसकी पूजा की और उसके वाद वे उसे विष्णुलोक में भेज दिए । उसके भगवान् विष्णु के द्वारा पूजित होकर वह शिवलोक में चला गया ।।६९-७०।। मुनियों में श्रेष्ठ वह गौतम सवो का वन्दनीय हो गया । महाभारत के भी सुनने के वे ही नियम हैं जिन नियमों को मैंने वतलाया है ।।७१।। सवसे पहले व्यासजी ने जिसका तीन वर्षों में निर्माण किया उस महाभारत के सुनने वाले तथा महाभारत की व्याख्या करने वाले ब्राह्मण को चाहिए कि वे दोनों ब्राह्मण तथा उत्तम योगी को छोड़कर किसी दूसरे को प्रणाम न करें । जो महाभारत की व्याख्या करता है, वह सवों के लिए वन्दनीय होता है ।।७२-७३।। जो प्रतिदिन महाभारत की व्याख्या करता है अथवा उसकी व्याख्या कराता है वह ब्राह्मण सवों से अधिक मनुष्यों को संसार सगार से पार करता है ।।७४।। जो किसी एक पर्व की व्याख्या करता है, अथवा महाभारत के कुछ ही पर्वो की व्याख्या करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर हव्य तथा कव्य के विषय में सर्वश्रेष्ठ होता है ।।७५।। उसी विप्र को प्रणाम करना चाहिए और उसकी पूजा करनी चाहिए । उसी को सदा भोजन कराना चाहिए और उसी को सवकुछ प्रदान करना चाहिए ।।७६।। उसके व्याख्यान के समय की जाने वाली पूजा की विधि मैं कह चुका हूँ । उसके वाद उसकी वस्त्र इत्यादि से पूजा करके फिर उसकी पूजा विधि के अनुसार पूजा करनी चाहिए ।।७७।। जब आदि पर्व की समाप्ति हो तो उस समय उन्हें वहुमूल्य तीन वस्त्र प्रदान करना चाहिए । और सभा पर्व की समाप्ति होने पर अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण दान करे तथा दो वस्त्रों को दे ।।७८।। अनुशासन पर्व अरण्य पर्व तथा स्वर्गारोहण पर्व की समाप्ति होने पर हे राजश्रेष्ठ ! आदि पर्व की समाप्ति होने पर जो पूजा की जाती है, वही पूजा करनी चाहिए। कर्ण पर्व, अश्वमेध पर्व, विराट्पर्व, शल्य पर्व तथा दोण पर्व की समाप्ति होने पर तीन वहुमूल्य वस्त्र का

भारतस्याखिलस्यैव समाप्तौ क्षेत्रदो भवेत् ।
रामायणस्य श्रवणे काण्डे काण्डे प्रपूजयेत् ॥८२॥
क्षेत्रं पर्याप्तमथवा सुवर्णमपि दापयेत् । व्याख्यातुर्गुरुवाक्यस्य सर्वकल्मषनाशनः ॥८३॥
अर्थोधर्मश्च कामश्च मोक्षश्च नृपसत्तम । व्याख्याश्रवणतःसर्वे सिध्यन्ति च सुबुद्धयः ॥८४॥
ब्रह्महत्यादि पापानां सर्वेषामपि नाशनम्। एकेन श्रवणेनास्य किं नरै र्न श्रुतं भुवि ॥८५॥
यानवसुसुवर्णाद्यैर्नित्यमेनं प्रपूजयेत् । व्याख्यातारं यतःपापसन्दोहस्य विनाशनम् ॥८६॥
अन्यान्यपि पुराणानि मुनिप्रोक्तानि तान्यपि ।
श्रोतृणां पापनाशाय वक्तुश्चापि विशेषतः ॥८७॥
यश्च सर्वपुराणानि षट्त्रिंशत्तु प्रकीर्तयेत् ।
शृणोति वा न तस्यास्ति वित्तच्छेदः कदाचन ॥८८॥
ब्राह्मं पुराणं प्रथमं द्वितीयं पाद्ममुच्यते। तृतीयं वैष्णवं चैव चतुंर्थं शैवमुच्यते ॥८९॥
अथ भागवतं प्रोक्तं पञ्चमं षष्ठमुच्यते। भविष्यं नारदीयं च सप्तमं परिकीर्तितम्॥९०॥
मार्कण्डेयमिति प्रोक्तमष्टमं नवमं तथा। आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं दशमं परिकीर्तितम्॥९१॥
लैङ्गं च वामनं चैव स्कान्दं मात्स्यमथैव च ।
कौर्मं वाराहमुदितं गारुडं वाथ कीर्तितम् ॥९२॥

दान देना चाहिए अथवा उनको तीन निष्क का दान देना चाहिए ॥७९-८०॥ दूसरे छोटे पर्वों की समाप्ति पर दो निष्कों के द्वारा व्याख्याता का सम्मान करना चाहिए । हरिवंश पर्व की समाप्ति होने पर निष्क के साथ तीन बहुमूल्य वस्त्रों को प्रदान करना चाहिए ॥८१॥ सम्पूर्ण महाभारत की समाप्ति हो जाने पर क्षेत्र का दान करना चाहिए । रामायण का श्रवण करते समय प्रत्येक काण्ड की समाप्ति होने पर व्याख्याता की पूजा करनी चाहिए ॥८२॥ पर्याप्त मात्रा में क्षेत्रदान देना चाहिए और सुवर्ण का भी दान देना चाहिए । व्याख्या करने वाले गुरु का वाक्य सभी पापों का विनाश करने वाला है ॥८३॥ हे राजश्रेष्ठ ! सद्बुद्धि सम्पन्न पुरुष व्याख्यान के ही श्रवण से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त कर लेते हैं ॥८४॥ इसके एक बार ही श्रवण कर लेने से ब्रह्महत्या आदि समस्त पापों का नाश हो जाता है, अतएव भूलोक में मनुष्य इसे क्यों नहीं श्रवण करते हैं ॥८५॥ व्याख्यान कर्ता की पूजा सवारी, सम्पत्ति तथा सुवर्ण आदि के द्वारा नित्य ही करनी चाहिए, क्योंकि व्याख्यान करने वाले सभी पापों का विनाश करने वाले हैं ॥८६॥ दूसरे भी पुराण जो मुनि व्यास के द्वारा प्रणीत हैं वे श्रोताओं के पाप का विनाश करते हैं तथा वक्ता के पापों को तो वे विशेष रूप से विनाश करते हैं ॥८७॥ जो सभी छत्तीसों अठारह पुराण और अठारह उप पुराणों का पाठ करता है अथवा उन सबों का श्रवण करता है उसके मन में कभी विकार नहीं होता है ॥८८॥ पहला ब्राह्म पुराण है, दूसरा पद्मपुराण है, तीसरा पुराण विष्णु पुराण है, चौथा शिवपुराण कहा जाता है ॥८९॥ पाञ्चवाँ पुराण भागवत को कहा जाता है और छठा पुराण भविष्य पुराण है सातवाँ पुराण नारदीय पुराण है ॥९०॥ आठवाँ पुराण मार्कण्डेय पुराण को कहा गया है और नवाँ पुराण अग्निपुराण है दशवाँ ब्रह्मवैवर्त पुराण कहा गया है ॥९१॥ उसके बाद लिङ्ग पुराण, वामन पुराण, स्कन्द पुराण, मत्स्य पुराण, कूर्म पुराण, वाराह पुराण और गरुड पुराण कहा गया है ॥९२॥ विद्वानों ने अठारहवाँ

ब्रह्माण्डमित्यष्टादशपुराणानि विदुर्बुधाः। तथा चोपपुराणानि कथयिष्याम्यतः परम् ॥९३॥
आद्यं सनत्कुमारख्यं नारसिंहमतःपरम् । तृतीयमाण्डमुद्दिष्टं दौर्वाससमथैव च ॥९४॥
नारदीयमथान्यच्च कपिलं मानवं तथा । तद्वदौशनसं प्रोक्तं ब्रह्माण्डं च ततःपरम् ॥९५॥
वारुणं कालिकाह्वानं माहेशं साम्बमेव च। सौरं पाराशरंचैव मारीचं भार्गवाह्वयम् ॥९६॥
कौमारं च पुराणानि कीर्तितान्यष्ट वै दश। अष्टादशपुराणानां व्याकर्ता तु भवेन्मनुः ॥९७॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शिवराघवसंवादे पुराणमाहात्म्यकथनं नाम
पञ्चदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥११५॥

* * *

एक सौ सोलहवाँ अध्याय

सूत उवाच

संध्यावन्दनकर्म क्रियतामिति रामो मुनिमाचष्टायम् ।
उष्णद्युतिरत्यस्तमुपैति द्विजकुलमेतन्नीडमुपैति ॥१॥
स्वयमपि सन्ध्यावन्दनकामोऽव्रजदुत्तरदिशमुज्झितयानः ।
हाहाहूहूकृतसङ्गीतिर्बन्दिप्रमुखप्रस्तुतकीर्तिः ॥२॥

पुराण ब्रह्माण्ड को कहा है इसतरह से अठारह पुराण कहे जाते हैं । अब इसके बाद मैं उपपुराणों को बतलाता हूँ ॥९३॥ पहला उपपुराण सनत् कुमार पुराण है, दूसरा उपपुराण, नरसिंह पुराण है । तीसरा आण्ड पुराण है, उसके बाद दुर्वासा पुराण, उसके बाद नारदीय पुराण है, उसके बाद कपिल पुराण, उसके पश्चात् मानव पुराण है । उसी तरह उशना पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण भी उपपुराण हैं ॥९४-९५॥ वरुण पुराण, कलिका पुराण, महेश पुराण, साम्ब पुराण, सौर पुराण, पराशर पुराण, मारीच पुराण, भृगु पुराण॥९६॥ तथा कुमार पुराण ये अठारह उपपुराण हैं जो अठारहों पुराणों की व्याख्या करता है, वह मृत्यु के बाद मनु होता है ॥९७॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड के शिवराघव संवादान्तर्गत पुराणों का माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११५।।

* * *

जाम्बवान् के द्वारा पूर्व कल्प के रामकथा का वर्णन

सूतजी ने कहा— श्रीरामचन्द्रजी ने शम्भु ब्राह्मण से कहा— आप सन्ध्या वन्दन इत्यादि कर्म करे। अब सूर्यास्त होने वाला है । ये पक्षीगण अपने घोसले में जा रहे हैं ॥१॥ वे स्वयं भी विमान का परित्याग करके उत्तर दिशा में स्वयं भी सन्ध्यावन्दन करने की इच्छा से चले गये । उस समया हाहा, हूहू इत्यादि गन्धर्व सङ्गीत गा रहे थे और प्रमुख वन्दीगण भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का यशोगान कर रहे थे ॥२॥ जब

गौतमीतटमुपेत्य राघवो वायुनन्दनसुधौतपद्युग: ।
जाम्बवत्कृतकरावलम्बन: प्रापदुत्तमनदीं तु गौतमीम् ॥३॥
करद्वये धृतकुश: स राघव: प्रागमद्वरुणदिशामथोत्तमाम् ॥४॥
दत्त्वा ततोऽर्घत्रितयं यथाविधि प्रहृष्टरोमाऽथ जजापसोऽन्तरे ।
सम्प्राथयित्वा वरुणं यथाक्रमं शम्भुं वसिष्ठं प्रणनाम राघव: ॥
ताभ्यां कृताशीरगमन्मन:पदं हनूमता क्षालितपादपङ्कज: ।
जुहाव वह्नीनथ वन्दिमागधै: संस्तूयमानोऽथ विनिर्ययौ वहि: ॥५॥
प्रहसच्चन्द्रकिरणै: सुधालिप्तमिवाम्बरम्। प्रसन्नताराकुसुमं वितानमिव सर्वत: ॥६॥
अथागच्छत्सौधतलं वृद्धामात्येन कल्पितम् । नानासनसमोपेतं सभास्थानं ययौ नृप: ॥७॥
अथ मुनिं ह्युपवेश्य स राघव: स्वयमपि प्रथमासनमाभजत् ।
कपिगणा: परित: पृथुविग्रहा रचनया स्थितिमाप्रतिपेदिरे ॥८॥
सुखस्थितं नृपमभिवीक्ष्य स द्विजो वचस्तदा समुचितमाह शम्भु: ।
इह स्थितो भवति समस्तपूजित: कथं कथा नृपवर ! वर्तते गुहायाम् ॥९॥
आकर्ण्यार्थ रघूद्वहो द्विजवच: शुश्रूषुरासीत्कथां,
तत्रस्थो निपुणं निवार्य वचनं सर्वै: श्रुतं तत्क्षणात् ।
शुश्रूषामि कथं महाद्भुततया स्वात्माश्रयामन्यथा,
रक्षोवाधनवादिनीमथ नृप: किंत्वेतदित्याह च ॥१०॥

भगवान् श्रीराम गौतमी नदी के तट पर गये तो हनुमानजी ने उनके दोनों चरणों को धोया । जाम्ववान् ने उनको हाथों का सहारा दिया । इस तरह से वे उत्तम गौतमी नदी में पहुँच गये ॥३॥ इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी ने अपने दोनों हाथों में कुश धारण कर लिया, और वे पश्चिम दिशाभिमुख हो गये । उन्होंने भगवान् सूर्य को तीन अञ्जलि जल प्रदान किया और उसके बाद उन्होंने अपने मन में ही गायत्री मन्त्र का जप किया। उस समय भगवान् श्रीराम के शरीर में रोमाञ्च हो रहा था ॥४॥ उसके बाद भगवान् श्रीराम वरुण देवता की प्रार्थना करके उन्होंने क्रमश: शम्भु मुनि और महर्षि वसिष्ठ को प्रणाम किया । उन दोनों महर्षियों का आर्शीर्वचन प्राप्त करके श्रीहनुमानर्जी के द्वारा पैर धो दिए जाने के पश्चात् उन्होंने मन से ध्यान किया । फिर वे अग्नियों में होम किए उसके बाद बन्दीजन और मागधों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए वे बाहर निकले ॥५॥ उस समय आकाश में चन्द्रमा की चाँदर्नी बिखर गयी थी । आकाश मानो चूने से पोत दिया गया हो । सर्वत्र आकाश में मानो चाँदनी तन गयी हो और उसमें तारे रूपी पुष्प जैसे लगे हों ॥६॥ उसके बाद वे महल के नीचले भाग में गये । इसके बाद वे सभाभवन में गये । वहाँ पर वृद्ध मन्त्री अनेक आसनों को लगाये थे ॥७॥ उसके पश्चात् भगवान् श्रीराम शम्भुमुनि को बैठाकर स्वयं भी पहले आसन पर बैठ गये । विशालकाय वानर समूह भी विभिन्न स्थानों पर बैठ गये जहाँ पर उनको बैठने के लिए स्थान बनाया गया था ॥८॥ सुख पूर्वक बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजी को देखकर शम्भु नामक ब्राह्मण समयानुकूल वचन श्रीरामचन्द्रजी से कहे— हे राजश्रेष्ठ ! सबों से पूजित आप यहाँ पर विद्यमान हैं, कथा गुफा में कैसे हो सकती हैं ?॥९॥ उसके बाद उस ब्राह्मण की वाणी को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी कथा सुनना चाहते थे।

कुम्भश्रोत्रवधः पुरा समजनि प्राप्तो दशास्यो वधं,
पश्चादित्ययमन्यथा विरचितं रामायणं भाषते ।
कोऽयं विप्रवरः समस्तजनतानास्तिक्यसम्पादको,
राज्ञां स्थानमुपेत्य वक्ति स मया दण्ड्योऽथ पूज्योऽथ वा ॥११॥
अथाह जाम्बवानमुं रघूत्तमं कथां प्रति रामायणं न तावकंत्विदं हि कल्पितं मतम् ।
समस्तमत्र विस्तराद्वदामि देव ! तच्छृणु पङ्केरुहस्य सूनुतो मया श्रुतं पुरा ह्यभूत् ॥१२॥
जाम्बवन्तं विज्ञाप्य रामचन्द्रो वचनमाह ॥१३॥

श्रीराम उवाच

कीर्तय पुराणं मे शुश्रूषुः कुतूहलादहं प्रणीतं तत्केन च विज्ञातम् ॥१४
जाम्बवानथ वभाषे हि विधात्रे नमो नमस्तथैव विघुभूषणकेशवाभ्याम् ॥१५॥

अथ पुरातनं रामायणं कथयामि ॥१६॥ यस्य श्रवणेनाखिलजन्मसम्पादितपापक्षयो जायते ॥१७॥ अथ तथापि दशरथो दशरथसमानरथी महीयसा बलेन सुमानसनामनगरजिगीषया पङ्केरुहसुतसुतं वसिष्ठमाहूय नमस्कृत्य मुनिदत्तानुज्ञःशताक्षौहिणीसेनया सहारुह्य तुरङ्गमं चन्द्रसमानशरीरमतिरोषसमाविष्टो विष्टरश्रवसमाराध्य दण्डयात्रां चकार ॥१८॥ साध्यो नाम स्वीयया सेनयाऽऽवृतो दशरथाभिमुखमाययौ योद्धुं युद्धं चान्योन्यमभूत् ॥१९॥

मासमेकं युद्धं कृत्वा दशरथस्तं साध्यं जग्राह ॥२०॥ अथ साध्यसूनुर्भूषणो नामाल्पपरिवारो युयुधे

वहाँ पर जो दूसरी बातें हो रही थीं उन सबों को उन्होंने अच्छी तरह से बन्द करा दिया और सबके सब लोगों ने ब्राह्मण की वाणी को सुना । राजन् ! मैं आपसे सम्बन्धित अत्यन्त अद्भुत, जो राक्षसों के वध से सम्बन्धित है, वह कैसी बात है ?।।१०।। सर्वप्रथम कुम्भकर्ण का वध हुआ, उसके बाद राक्षसराज रावण मारा गया । यह जो रामायण में कहा गया है, उसको रामायण में दूसरे प्रकार से ही कहा गया है। वह कौन सा श्रेष्ठ ब्राह्मण है जो सम्पूर्ण जनता में नास्तिकता को फैला रहा है । यदि वह इस राजसभा में आकर इस बात को कहे तो उसके दण्ड देना चाहिए ।।११।। इसके बाद जाम्बवान् ने उस ब्राह्मण से कहा श्रीरामचन्द्रजी के विषय में यह रामायण की कथा नहीं है, अपितु यह कल्पान्तर की कथा है । महाराज इस विषय में मैं सारी बातों को विस्तार से बतलाता हूँ, इसे मैं ब्रह्माजी से पहले सुना था ।।१२।। जाम्बवान् को सम्बोधित करके रामचन्द्रजी ने कहा । **श्रीरामचन्द्रजी बोले**— आप उस पुरानी कथा को कहें। मैं उसे कौतूहल वशात् सुनना चाहता हूँ । उस कथा का प्रणयन करने वाले कौन हैं, और उसे किसने जाना ।।१३-१४।। इसके बाद जाम्बवान ने कहा ब्रह्मा, विष्णु और शङ्करजी को नमस्कार हैं ।।१५।। अव मैं प्राचीन रामायण की कथा कहता हूँ ।।१६।। उसके सुनने से समस्त जन्मों में किए गये पापों का नाश हो जाता है ।।१७।। एक बार महाराज दशरथ ने अपने समान बलवान तथा रथी महान वल वाले सुमानस नामक नगर को जीतने की इच्छा से ब्रह्माजी के पुत्र महर्षि वसिष्ठ को बुलाकर उनको नमस्कार किया और मुनि की आज्ञा प्राप्त करके वे सौ अक्षौहिणी सेना के साथ चन्द्रमा के समान शरीर वाले अश्व पर चढ़कर अत्यधिक क्रोध से युक्त होकर तथा भगवान् विष्णु की आराधना करके उसको दण्डित करने के लिए यात्रा किये ।।१८।। साध्य भी अपनी सेना के साथ महाराज दशरथ के समक्ष युद्ध करने के लिए आ गये । उन

दशरथेन ॥२१॥ दशरथोऽपि साध्यसूनुं भुवो भूषणमवलोक्य योद्धुमेव नैच्छत् ॥२२॥ कथमेतादृशं हन्मि चास्मिन्हतेऽस्य कथं पिता भविष्यति कथं तन्माता कथमप्रौढयौवना प्रिया भार्या ॥२३॥ अमुष्य हि देहे समालिङ्गनचुम्बनपरिवर्तननवीनतरदलारविन्दपदानि कुसुमानीव दृश्यन्ते ॥२४॥ एतत्समानवर्णवया एतादृशः सुभगः परमप्रीतिवर्द्धनो नामपुत्रो भल्लूकभक्षितो मृतः स्मृतिपथं प्राप्यापि मां रक्षयितुमिच्छतीव मम हृदयमन्यथाकरोति इति मनसा वितर्क्यातिबालकं ग्रहीतुमारभत् ॥२५॥ स चासाध्योऽपि पराधीनो बभूव ॥२६॥ स च कुमारेण सह पराजयखेदमपिमत्वा सुखमध्युवास च ॥२७॥ दशरथोऽपि तत्र मासं स्थित्वा तत्पुत्रसन्दर्शनसुखमवलोक्याचिन्तयत् ॥२८॥ अहोसर्वदुःखापनोदनक्षममेतन्मुखावलोकनं पुत्रसंवर्द्धनं नाम सर्वराष्ट्रिको मम जयःपुत्रवियोगमनुस्मरतो दुःखाय केवलं भवति ॥२९॥ तदस्य पृच्छां करोमि कथमीदृशो जायते पुत्र इति वितर्क्य तमपृच्छत्॥३०॥ साध्योऽपि सकलमोक्षमार्गं क्षितीशायादिशत् ॥३१॥ हरीशानौ सहाराध्य सवैकादशीरुपोष्य द्वादशीषु ब्राह्मणानाराध्य तत्त्कालभव फलपूर्वमन्नाद्यं व्यञ्जनं पुष्पं च न्यायेन सम्पाद्य कपिलाघृतेन केशवं स्नापयित्वा मुद्गचूर्णेन सँलिप्य स्वादूदकेन स्नापयित्वा सुरभिप्राटीरं स्वयमुद्घृष्टं मृगनाभ्यागुरुसारेण वा समेतं देवाङ्गे सर्वमुपलिप्य सतुलसीदलैर्यूथिकाकरवीर-नीलोत्पलकमलकोकनदद्रोणकुसुममरुवदमनकगिरिकर्णिकाकेतकीदलपूर्वै र्यथासम्भवमभ्यर्च्य

दोनों के बीच एक मास तक युद्ध चलता रहा ॥१९॥ एक मास तक युद्ध करके दशरथजी साध्य को पकड़ लिए ॥२०॥ उसके बाद साध्य का पुत्र जिसका नाम भूषण था वह अल्प परिवार वाला था और दशरथजी के साथ युद्ध करने लगा ॥२१॥ दशरथजी भी पृथिवी के भूषण स्वरूप साध्य के पुत्र को देखकर उसके साथ युद्ध करना नहीं चाहे ॥२२॥ वे सोचे मैं इसको कैसे मारूँ ? इसको मार देने पर इसके पिता कैसे जीवित रहेंगे ? इसके माता कैसे जीवित रहेंगी ? और अप्रौढ़ यौवन वाली इसकी प्रियतमा पत्नी कैसे रहेगी ?॥२३॥ लगता है इसके शरीर का आलिङ्गन और चुम्बन कर लूँ परिवर्तन से युक्त अत्यन्त नवीन कमल पुष्प के समान इसके अङ्ग दिखते हैं ॥२४॥ इसके ही समान रूप तथा अवस्था वाला, इसके ही समान सुन्दर इसके प्रेम को बढ़ाने वाले प्रीतिवर्द्धन नामक साध्य के पुत्र को भालू ने खा लिया और वह मर गया । मर जाने के पश्चात् भी जैसे वह मेरी रक्षा करना चाहता है, मेरे हृदय को करुण बना रहा है। इस तरह से मन में विचार करके महाराज दशरथ अत्यन्त बालक को पकड़ना प्रारम्भ किए ॥२५॥ वह तथा साध्य दोनों पराधीन हो गये ॥२६॥ वह अपने पुत्र के साथ पराजय जन्य कष्ट को प्राप्त करके सुख पूर्वक रहता था ॥२७॥ राजा दशरथ भी वहाँ पर एक मास रहकर उसके पुत्र के दर्शन जन्य सुख को देखकर विचार किए ॥२८॥ अरे संवर्द्धन नामक पुत्र के मुख के दर्शन से जन्य सुख सभी दुःखों को दूर करने में समर्थ हैं । सम्पूर्ण राष्ट्रों के विजय जन्य मेरा सुख पुत्र के अभाव का स्मरण करते ही मुझे केवल दुःख ही प्रदान करता है ॥२९॥ अतएव मैं इससे पूछता हूँ कि इस तरह के पुत्र की प्राप्ति कैसे होती है?॥३०॥ साध्य ने भी महाराज दशरथ को सम्पूर्ण मोक्ष के मार्ग का उपदेश दिया ॥३१॥ श्रीहरि और शिवजी की एक साथ आराधना करके, सभी एकादशियों के दिन उपवास करके, द्वादशी तिथियों के दिन ब्राह्मणों की आराधना करके, विभिन्न समयों में उत्पन्न होने वाले फल तथा अन्न आदि तथा व्यजन तथा पुष्प आदि को नियमतः ब्राह्मणों को प्रदान करके, कपिला गौ के घी से भगवान् केशव को स्नान कराकर

**द्वादशाक्षरेण पुरुषसूक्तेन वा नाम्ना षोडशोपचारेण वाऽऽराध्य प्रणम्य नृत्यं कृत्वा देवं क्षमापयेत्॥३२॥
तथा व्रतानि विचित्राणि नारायणप्रीणनाय कुर्यात् ॥३३॥
प्रसन्नो भगवान्मुनिरीप्सितं पुत्रं यच्छति तदमुमाराधयस्वेति दशरथमुक्तवान् ॥३४॥ स चापि साध्यं
तत्र स्थाप्य गत्वाऽयोध्यां तथा सर्वं कृतवान् ॥३५॥ अथ पुत्रकामेष्टौ समाप्तायामाहवनीयाद्यज्ञमूर्तिः
शङ्खचक्रगदापाणिरुदतिष्ठत् । राजानं च वरंवृणीष्वेत्युक्तवान् ॥३६॥ स च राजा वव्रे
पुत्रानतिधार्मिकान्दीर्घायुषश्चतुरो लोकोपकारकान्देहीति ॥३७॥
अथ राजमहिष्यश्चतस्त्रः कौशल्या सुमित्रा सुरूपा सुवेषा चेति ॥३८॥ राजानमब्रुवन्देव प्रतियोषमेकैकेन
पुत्रेण भवितव्यम् ॥३९॥**

अथ कौसल्योवाच

एष यदि प्रसन्नो देवस्तदाऽयमुत्पद्यतां मम ॥४०॥

राजोवाच

मम यदिष्टं तदयं प्राथ्यसे हरिः । विष्णो ! प्रसीद देवेश ! कमलापते शङ्खचक्रगदाधर ! विभीषण! सृष्टिसमस्तलोकपालादिपूजितपादयुगल ! शाश्वत ! हरे ! नमस्ते नमस्ते एवं स्तुतो भगवानथ राजानमाह ॥४१॥

माधव उवाच

तव पुत्रो भविष्यामि कौशल्यायाम् । अथ चरुं प्राविशद्धरिः । तं चरुं हि चतुर्धा विभज्य भार्याभ्यो

फिर उनके शरीर में मूङ्ग के चूर्ण का उबटन लगाकर तथा स्वादिष्ट जल से श्रीभगवान् को स्नान कराकर, अपने हाथों से सुगन्धित पाटीर को रगड़कर कस्तूरी अथवा अगरु की सुगन्धि से युक्त उसका श्रीभगवान् के शरीर में लेप लगाकर, श्रीभगवान् की तुलसी दलों से और जूही, करबीर, नीलकमल, कमल, लालकमल, द्रोण पुष्प, मरुवा, दवना, गिरिकर्णिका और केतकी दलों से पहले के ही समान पूजा करके, द्वादशाक्षर मन्त्र से या पुरुष सूक्त से या नाम मन्त्रों से फिर श्रीभगवान् की षोडशोपचार से पूजा करके, नृत्य करे श्रीभगवान् से क्षमा प्रार्थना करे ॥३२॥ तथा श्रीभगवान् नारायण को प्रसन्न करने के लिए विविध व्रतों को करना चाहिए ॥३३॥ उससे प्रसन्न होकर श्रीभगवान् आराधक को अभिप्रेत पुत्र प्रदान करते हैं । अतएव आप भी श्रीभगवान् की आराधना करें, इस तरह से राजा साध्य ने महाराज दशरथ से कहा ॥३४॥ राजा दशरथ भी साध्य को वहाँ के राज्य पर अभिषिक्त करके अयोध्या चले गये और जैसा साध्य ने बतलाया था उन समस्त कार्यों को उन्होंने किया ॥३५॥ जब पुत्रेष्टि याग समाप्त हो गया तब आहवनीय अग्नि से यज्ञ मूर्ति श्रीभगवान् शङ्ख, चक्र तथा गदा हाथ में लिए हुए प्रकट हुए । उन्होंने राजा से वरदान माँगने के लिए कहा ॥३६॥ राजा दशरथ भी अत्यन्त धार्मिक तथा दीर्घायु चार पुत्रों का वरदान माँगे । उन्होंने कहा संसार के कल्याणकारी पुत्रों का मुझे आप वरदान प्रदान करें । उस समय राजा की चार राज रानियाँ थी। कौसल्या, सुमित्रा, सुरूपा और सुवेषा ॥३७-३८॥ उन्होंने राजा दशरथ से कहा— राजन् ! प्रत्येक रानियों को एक-एक पुत्र होंगे ॥३९॥ उस समय कौसल्या ने कहा कि यदि श्रीभगवान् प्रसन्न हैं तो ये मेरे पुत्र रूप से उत्पन्न होएँ ॥४०॥ **राजा ने कहा—** मुझको जो अभिप्रेत है उसी के अनुसार यह श्रीहरि को प्राप्त करना चाहती है । हे भगवान् ! विष्णो आप प्रसन्न हो जाइये । हे देवेश ! हे कमलापते ! शङ्ख, चक्र

दत्तवान् ॥४२॥ अथ कौशल्यायां रामो लक्ष्मणः सुमित्रायां सुरूपायां भरतः सुवेषायां शत्रुघ्नो जज्ञे । खात्पुष्पवृष्टिच पपात ॥४३॥

अथ चतुराननः स्वयमुपेत्य जातकर्मादिकाः क्रियाश्चके ॥४४॥ त्रिभुवनाभिरामतया राम इति त्राम चक्रे रूपशौर्यादिलक्ष्मीयोग्यतया लक्ष्मण इत्यपरस्य भुवं भारात्त ॥४५॥ रयतीति भरतः शत्रून्हन्तीति शत्रुघ्न इति नामानि कृत्वा ब्रह्मा स्वभवनं जगाम शिशवश्च वृद्धिमीयुः ।

अथ पादसञ्चारिणं बालचन्द्रसङ्काशदर्शनं बिम्बाधरमुन्नततिलप्रसूननासं पुरश्चूलिकालम्बामानरत्नपत्रकं श्रवणलोललम्बमानकुण्डलं वक्षःस्थलविचिलितस्थूलमुक्ताहारं विलसत्कार्तस्वरबाहुवलयं शिञ्जन्मणिकङ्कणरत्नाङ्गुलीयकं हेममणिरचितश्रोणिसूत्रं शिञ्जन्नूपुरोपशोभितपादमङ्गुलीयोपशोभितपादमध्याङ्लीकं वज्राङ्कुशसरोजलाञ्छनशोभितोरुपादतलं तूणीरसदृशजङ्घं करिकरसदृशोरुं विस्तृतजघनंसूक्ष्ममध्यवर्तुलावर्तकं गम्भीरनाभिमिन्द्रनीलशिलाविशालवक्षःस्थलं कम्बुग्रीवं चन्द्रविम्बसदृशवदनमर्द्धचन्द्रसदृशललाटं नीलकुटिलकुन्तलं क्रीडासक्तं धूलिभिरापण्डुरं फुल्लपद्मदलारक्तविलोललोचनं महेश्वरमिवोदधूलितभूतिं महेश्वरमिव दिगम्बर रामं कुमारं राजा दशरथो दृष्ट्वा हर्षपरिपूर्णहृदयः पुत्रमालिङ्ग्य चुम्बित्वा वक्षस्यालिलिङ्गदृढम् ॥४६॥ अथ कुमारोऽपि पार्श्वेनास्याङ्कमारोप्य कलकलितलोचनो

तथा गदा धारण करने वाले हे विभीषण (विरोधियों को भयभीत करने वाले भगवन्) अथवा विविध प्रकार की भयङ्कर सृष्टि करने वाले प्रभो ! सभी लोकपालों आदि से पूजित चरण युगल वाले भगवन् ! शाश्वत (सभी कालों में विद्यमान रहने वाले) श्रीहरे ! आपको बारम्बार नमस्कार है । इस तरह से स्तुति किए जाने पर श्रीभगवान् ने राजा से कहा ॥४१॥ **भगवान् माधव ने कहा**— मैं आपके पुत्र के रूप में कौसल्या के गर्भ से जन्म लूँगा । उसके बाद श्रीहरि चरु में प्रवेश कर गये । राजा ने उस चरु का अलग-अलग विभाग करके उसे अपनी चारों पत्नियों को प्रदान किया ॥४२॥ उसके बाद कौसल्या के पुत्र श्रीराम हुए, सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण, सुरूपा के पुत्र भरत और सुवेषा के पुत्र शत्रुघ्न हुए । उस समय आकाश से फूलों की वृष्टि हुयी ॥४३॥ उसके बाद स्वयं ब्रह्माजी आकर जातकर्म आदि समस्त क्रियाओं को सम्पन्न किए।॥४४॥ त्रैलोक्य में सबसे सुन्दर होने के कारण कौसल्या नन्दन राम यह नाम रखे । रूप, पराक्रम इत्यादि ऐश्वर्यों के योग्य होने के कारण लक्ष्मण नाम सुमित्रा नंदन का रखे । उन से भिन्न सुरूपा नन्दन का नाम भरत इसलिए रखे कि वे पृथिवी का भार से उद्धार करते है । जो शत्रुओं को मारे यह मन में सोचकर उन्होंने सुवेषा नन्दन का नाम शत्रुघ्न रखा । इस तरह से नामकरण संस्कार करके ब्रह्माजी अपने लोक में चले गये। इधर वे बालक बढ़ने लगे ॥४५॥ उसके बाद अपने पैरों से चलने वाले, बाल चन्द्रमा के सदृश जिनका दर्शन आह्लादक था उन विम्बाफल के समान लाल-लाल ओष्ठ वाले, तिल के पुष्प के समान उठी हुयी मनोहर नाक वाले, जिनके आगे चोटी लटक रही थी ऐसे रत्न पत्रक वाले, जिनके कानों में चञ्चल कुण्डल लटक रहे थे तथा जिनके वक्षःस्थल पर चञ्चल तथा वड़ी-बड़ी मोतियों से बना हार विराजमान था, जिनकी भुजाओं में सुतप्त सुवर्ण निर्मित कङ्कण सुशोभित हो रहा था, जिनका मणिरचित कङ्कण ध्वनित हो रहा था, जो रत्नों से बनी अङ्गूठी को धारण किए थे, जिनके मकर की करधनी हेममणि निर्मित थी, वजने वाले नूपुर से जिनका चरण सुशोभित था तथा जिनके पैरों की अङ्गुलियाँ अङ्गूठियों से सुशोभित थीं, जिसके पैरों का तलवा वज्र, अङ्कुश तथा कमल के चिह्न से सुशोभित था, जिनके जङ्घे तुणीर के समान थे, जिनका

यत्किञ्चिदुवाच ॥४७॥ याचमनमितस्ततो वीक्षमाणस्तात ! गच्छे शये तात ! क्रीडामितातेत्यादिपुत्रसुखमनुभूयानुभूय निर्वृतिं ययौ ॥४८॥ अथ कदाचिद्भोक्तुमागते राजनि रामचन्द्रो बालक्रीडासक्तहृदयो बहुक्रीडनकरकमल उत्प्लुत्य धावमानो नरपतिपुरःस्थितमणिखचितसुवर्णभाजनस्थमन्नं वामकरेण गृहीत्वा राजनि चिक्षेप । इदमपि राजा सुखाय मेने । एतादृशान्यन्यानि चकार रामचन्द्रः ॥४९॥ अथ कदाचित्क्रीडमाने रामे वात्यारामममपातयदामश्च रुदन्नपतत् ॥५०॥ एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मराक्षसोरामम‍गृह्णात् । रामश्च मूर्च्छामाप ॥५१॥

अथ सहचरो बाल इतस्ततो रोरूयमाणो रामं तथाविधं राज्ञे व्यज्ञापयत् ॥५२॥

अथ राजा राममादाय वशिष्ठमाह किमिदं रामस्येति पप्रच्छ ॥५३॥ अथ वसिष्ठो भस्मादायाभिमन्त्र्य ब्रह्मराक्षसं मोचयामास ॥५४॥ पप्रच्छ कोभवानिति स चाहाहं वेदगवितो ब्राह्मणो बहुशः परधनमपहृत्य ब्रह्मराक्षसो जातो मे निष्कृतिं विचारय ॥५५॥

ऊरु युगल हाथी के सूंड के समान सुशोभित था तथा जिनकी जङ्घा विस्तृत थी, जिनकी कमर पतली थी, ऐल भँवरी से युक्त जिनकी नाभि गहरी थी । इन्द्र नीलमणि के चट्टान के समान जिनका वक्षःस्थल विस्तृत था, शङ्ख के समान जिनकी मनोहर ग्रीवा थी, जिनका मुखमण्डल चन्द्रमण्डल के समान आह्लादक था, अर्द्धचन्द्रमा के समान जिनका ललाट था, जिनके काले घुंघराले केश थे । गोद में लगी हुयी धूल के कारण जो उजले, विकसित कमल दल के समान चञ्चल जिनके नेत्र थे, अपने सम्पूर्ण शरीर में भस्म लगाये हुए शिवजी के समान धूलि धूसरित तथा शिवजी के समान दिगम्बर, कुमार राम को देखकर राजा दशरथ, हर्ष से परिपूर्ण हृदय वाले होकर अपने पुत्र का आलिङ्गन करके तथा उसका चुम्बन करके देर तक उन्हें अपने हृदय से लगाये रहे ॥४६॥ उसके बाद कुमार श्रीराम भी अपने पार्श्व भाग से राजा दशरथ की गोद में लेटकर चञ्चल नेत्र वाले वे राजा दशरथ से कुछ कहे ॥४७॥ किसी से कुछ माँगते हुए तथा इधर-उधर देखते हुए वे कहते थे हे तात ! मैं जाता हूँ, हे तात ! मैं सो रहा हूं, तात मैं खेल रहा हूँ इत्यादि वाक्यों को सुनकर राजा बार-बार पुत्रजन्य सुख का अनुभव करते हुए कृतकृत्य हो जाते थे ॥४८॥ एक बार जब राजा भोजन करने के लिए आये उस समय श्रीरामचन्द्रजी बालक्रीड़ा कर रहे थे, वे बहुत से खिलौनों को अपने कर कमलों से उठाकर दौड़ रहे थे । उस समय राजा के सामने जो मणि जटित सुवर्ण से निर्मित पात्र था उसमें रखे हुए अन्न में से थोड़ा सा अन्न बायें हाथ से उठाकर राजा पर वे फेंक दिए। श्रीरामचन्द्रजी के इस कार्य को भी राजा सुखप्रद ही माने श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार के दूसरे भी कार्यो को किए ॥४९॥ एक बार जब रामचन्द्रजी खेल रहे थे उस समय आँधी ने रामचन्द्रजी को गिरा दिया और श्रीरामचन्द्रजी भी रोते हुए गिर पड़े ॥५०॥ इसी बीच ब्रह्म राक्षस ने श्रीरामचन्द्रजी को पकड़ लिया और श्रीरामचन्द्रजी मूर्छित हो गये ॥५१॥ उसके बाद श्रीरामचन्द्रजी के साथ खेलने वाला बालक इधर-उधर अत्यधिक रोता हुआ मुर्छित हुए श्रीरामचन्द्रजी के विषय में राजा दशरथ को बतलाया ॥५२॥ इसके बाद राजा श्रीरामचन्द्रजी को उठाकर महर्षि वसिष्ठ से कहे कि श्रीराम को यह क्या हो गया है ?॥५३॥ इसके बाद महर्षि वसिष्ठ भस्म लेकर तथा उसको अभिमंत्रित करके श्रीरामचन्द्रजी को ब्रह्मराक्षस से मुक्त कर दिए॥५४॥ उन्होंने उस ब्रह्मराक्षस से पूछा कि तुम कौन हो ? तो उसने कहा कि मैं वेद के गर्व से गर्वित ब्राह्मण था । मैंने बहुत बार दूसरे के धन का अपहरण किया । उसके कारण मैं ब्रह्म राक्षस हो गया । इस

वसिष्ठ उवाच

इदानीमितःपरमेकवर्शशतोपभोग्यं राक्षसत्वं नरकं भागीरथीस्नानमेकं शिवाय बिल्वपत्रशतं समर्प्य ततः स्नात्वा पापाद्विमुक्तो भवसीति ॥५६॥ कदाचित्तादृशं कृतपुण्यं तव पदं प्रयच्छामि तदुपरि शिष्टां गतिं भेजेति वसिष्ठवाक्यमाकर्ण्य ब्रह्मराक्षसो वसिष्ठोपदिष्टपुण्यवशाद्दिव्यशरीरो भूत्वा नमस्कृत्य स्वर्गं जगाम ॥५७॥ अथ रामं प्राप्ते काले उपनीय वसिष्ठो वेदानध्यापयामास षडङ्गानि मीमांसाद्वयं नीतिशास्त्रं च ॥५८॥ अथ धनुर्वेदमायुर्वेदं भरतगान्धर्ववास्तुशाकुनविविधयुद्धशास्त्राणि च ॥५९॥ अथ विवाहं कर्तुकामेन राज्ञा दशरथेन नानादेशजनपतीन्प्रतिदूताः प्रेरिताः ॥६०॥ अथ कश्चिच्छीघ्रमागत्य राजानमिदमब्रवीत् ॥६१॥ राजन्विदर्भदेशाधिपतिर्विदेहो नाम राजा । तस्य पुत्री वैदेही होमलब्धा रूपेण लक्ष्मीसमा सर्वलक्षणसम्पन्ना रामयोग्या विद्यते । स च तां दातुं राजा रामायोद्यतः। तद्गम्यतां शीघ्रमिति ॥६२॥ अथ वसिष्ठादीन्प्रेषयामास । ते च तत्र गत्वा तां च निरीक्ष्य लग्नं निश्चित्यायोध्यामेत्य राजा नम् (राजान) मुक्त्वा रामसहिताः पृथिवीपतिसमेताः शीघ्रं विविधकरितुरगशकटशिबिकान्दोलिकाभिरतिसुभगरूपभोगविलासक्रियानिपुणविदितविविधचेष्टागन्धर्वाः कामशस्त्रसुकुशला मृदुकठिनपृथुपयोधरासन्नकण्ठाः स्थूलसूक्ष्मललाटबिम्बदर्शनच्छदमुखपङ्कजाः कुटिलकुन्तलदीर्घकेशधम्मिल्लाः कनकपत्रकर्णाः स्नानचेष्टयोत्थितरोमशोभिता जपाकुसुमरक्तदशना

योनि से मुक्ति पाने के लिए आप मुझे कोई प्रायश्चित बतलाइये ॥५५॥ आज के बाद एक सौ वर्ष पर्यन्त तुमको ब्रह्म राक्षसत्व रूप नरक भोगना है । गङ्गाजी में स्नान करके शिवजी को एक सौ विल्व पत्र समर्पित करने के बाद तुम पुनः स्नान करके इस योनि से मुक्त हो जाओगे ॥५६॥ एक बार उस प्रकार के पुण्य को करके मैं उस पुण्य को आपके चरणों में समर्पित करता हूँ । उसके बाद वशिष्ठ महर्षि ने कहा तुम शिष्ट पुरुषों की गति को प्राप्त कर लो । इस तरह से वसिष्ठ महर्षि के वाक्य को सुनकर वह ब्रह्मराक्षस महर्षि वसिष्ठ के द्वारा उपदिष्ट पुण्य के फल स्वरूप दिव्य शरीर वाला हो गया और महर्षि वसिष्ठ को प्रणाम करके स्वर्ग चला गया ॥५७॥ उसके बाद समयानुसार महर्षि वसिष्ठ श्रीरामचन्द्रजी का यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न कराकर उनको वेदों को पढ़ाये फिर वे उनको छहो वेदाङ्गों को पढ़ाये । दोनों मीमांसाओं (पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा) को तथा नीतिशास्त्र को भी पढ़ाये ॥५८॥ उसके बाद उन्होंने धनुर्वेद, आयुर्वेद, नाट्यशास्त्र, गान्धर्व (सङ्गीत) शास्त्र वास्तु शास्त्र, शाकुन विद्या (पक्षियों की बोली का ज्ञान करने वाली विद्या) इत्यादि अनेक विद्याओं को और युद्ध शास्त्रों को भी पढ़ाये ॥५९॥ इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी का विवाह करने की इच्छा वाले राजा दशरथ ने अनेक देशों में अपने दूतों को भेजा ॥६०॥ उसके बाद कोई दूत शीघ्र ही आकर महाराज दशरथ से कहा ॥६१॥ महाराज ! विदर्भ देश के राजा विदेह हैं । उनकी पुत्री का नाम वैदेही है उनको वह होम के फलस्वरूप प्राप्त हुयी हैं । उसका रूप लक्ष्मीजी के समान है । उसमें नारियों के सम्पूर्ण लक्षण विद्यमान हैं । वह श्रीराम के योग्य है । वे राजा उसका श्रीराम के साथ विवाह करने के लिए तैयार हैं, अतएव आप वहाँ शीघ्र जायँ ॥६२॥ इसके पश्चात् महाराज दशरथ ने वसिष्ठ आदि को वहाँ भेजा । वे वहाँ जाकर और वैदेही को देखकर, विवाह के लग्न का निश्चय करके, अयोध्या में आकार और राजा दशरथ को बतलाकर श्रीराम के साथ तथा राजा के साथ शीघ्र अनेक हाथी, घोड़े, गाड़ी, शिविका और डोली के साथ अत्यन्त सुन्दर रूप तथा भोग विलास में निपुण, अनेक प्रकार

विशदविस्फुरच्छफरीलोचनाः शुक्तिकासदृशश्रवणाः नक्षत्रसदृशस्थूलमुक्तफलोपशोभितनासापुटा मुकुटसदृशकपोलास्तिलप्रसूनानासिका आनम्रमध्यप्रदेशचूचुका इन्द्रगोपप्रतीकाशाधरपुटदशनक्षताः समदीर्घकाङ्गप्रदर्शनास्थितसर्वप्रदेशर्तुवर्तुलानातिमांसलाः पिण्डकाग्रन्थिनीव्यो वलिताबाहुमूला अनतिचिरकालोत्थितरोमतया हरिद्रावर्णतया च कर्णिकारदलसदृशबाहुमूला मृदु-स्निग्ध-वर्तुल-सूक्ष्म-मध्यप्रदेशाः कठिनस्थूलवर्तुलामग्नचूचुकपरस्परस्थानाक्रमणस्पर्द्धिपयोधरमध्यलब्धपदकपयोधरोपरि चञ्चलविविधमणिमयहारोपशोभितवक्षःस्थलाः पयोधरपरितो लब्धपदतया तरुणदृष्टिपरम्परतया असमानया नाभिकूपोपरितनरोमराज्योपशोभितोदरप्रदेशा भज्यमानमध्यस्थलीकरण एव बलीत्रयोप शोभिता मुष्टिग्राह्यमध्याः करिकरोपमजघनप्रदेशा अरोमसदृशमृदुस्निग्धामलासमजान्व्यः कदलीस्तम्भसन्निभोरुयुगला आमग्नजानुकृशकुशवर्तुलपिण्डिकारहितजङ्घा आमग्नगुल्फा आसूक्ष्मस्निग्धा दीर्घदीर्घाङ्गुलीपादा नूपुररवाहूयमानमदना हंसमतङ्गजगमना दक्षिणाङ्गुष्ठस्पर्शिकच्छाग्रउपकरकच्छं नीवीं कृत्वा करद्वययुता वस्त्रप्रदेशकण्ठमपावृत्यापरवसनपरिभागवृतस्तनवसनापरभागे वामांस एव दक्षिणपार्श्वगतेन दशाभागेन नाभिप्रान्तेन प्रवेशितोपशोभितगात्रयष्टयो योषितो विवाहमङ्गलकर्मकरणायानेकश आगच्छन् ।।६३।।

की चेष्टाओं को जानने वाले गन्धर्व, काम शास्त्रों में पूर्ण रूप से कुशल, जिनके स्तन कोमल, कठोर तथा पुष्ट थे, तथा जिनके कण्ठ मनोहर थे, स्थूल ललाट तथा पतले लाल-लाल जिनके ओष्ठ से युक्त मुख कमल थे, जिनके घुंघराले केशों की लम्बी चोटियाँ थीं, जिनके कानों में कनकपत्र सुशोभित हो रहा था, स्नान की चेष्टा से जिनके रोमों की शोभा हो रही थी जिनके दाँत जपाकुसुम के समान लाल-लाल और मनोहर थे, जिनके नेत्र स्वच्छ तथा उछलने वाली मछलियों के समान चञ्चल थे; जिनके कान सीपी के समान थे, जिनकी नाक नक्षत्रों (तारों) के समान चमकने वाली बड़ी-बड़ी मोतियों से सुशोभित थी; जिनकी गाल दर्पण के समान स्वच्छ थी । जिनकी नाक तिल के फूल के समान मनोहर थी, स्तनों के भार से जिनका बीच का भाग मानो झुक सा गया था, इन्द्रगोप के समान जिनकी ओठ दशनक्षत से सुशोभित थे एक समान तथा दीर्घ अङ्गों के प्रदर्शन के कारण सभी प्रदेश बर्तुलाकार थे, जो बहुत अधिक मोटी नहीं थी, जिन सबों की पिण्डलियों की ग्रन्थियाँ तथा नीवियाँ स्थूल नहीं थी, जिनकी भुजाओं के मूलभाग गोल थे । जिनकी बाहुओं के मूल भाग (काङ्क) में बाल थोड़े दिन पहले ही निकले थे, तथा हरिद्रा के समान पीतवर्ण के तथा कर्णिकार पुष्प के दल के समान, उनकी काङ्क थी, जिन सबों की कमर कोमल, चिकना, गोल तथा पतली थी, कठोर बड़े-बड़े गोल तथा जिनके बीच में विद्यमान चुचुक जैसे नीचे घस गया हो ऐसे दोनों स्तनों में जैसे एक दूसरे के स्थान को छोंक लेने की स्पर्धा हो ऐसे स्तनों के ऊपर झूलते हुए अनेक प्रकार की मणियों से रचित हार उनके वक्षःस्थल को सुशोभित कर रहे थे, जिन सबों के स्तनों को हर ओर से युवक पुरुष विषम दृष्टि से देख रहे थे, नाभिकूप के ऊपर का भाग मनोहर था । जिनका उदर प्रदेश रोमपंक्ति से सुशोभित था, जिनकी कमर मानो टूट सी जाने वाली हो ऐसी त्रिबली से सुशोभित जिनकी कमर इतनी पतली थी की जैसे वह मुट्ठी में ही अँट जाय तथा जिनकी जङ्घाएँ हाथी के सूंड के समान थीं, वह रोमों से विहीन, चिकना, स्वच्छ थीं तथा ऐसा ही जिनका घुटना था जिन सबों को दोनों ऊरु प्रदेश केले के स्तम्भ के समान मनोहर थे, और जिनसे घुटने मानों उनमें छिप गये थे, और दुर्बल

बालिकाश्च विद्युल्लतांशुशोधितगात्रयष्टय उद्भिन्नकुचकमलकुड्मलविविधहारोपशोभिवक्षसो यत्किञ्चिद्भाषिण्योऽतिचपलमृदुगतयो वृद्धवनिताश्चागच्छन् ॥६४॥

अथ विदेहपुरतः क्रोशमात्रे चूतवनिकायां विविधविटपविस्तरप्रदेशविविधविहङ्गकूजितकर्णनदत्त्कर्णवनहरिणशाववत्यां महारजतनिर्मितोच्चनीचप्रासादोपशोभितप्रदेशविविधविहङ्गायां हेमवल्कलसंवीतभसितोद्धूलितशरीरजटिलमुनिगणध्यानोपासनोपशोभितवृक्षमालायां विविधविद्याधरवधूपयोधरभाराभिभूतविचरिततरङ्गसरसीयुतायां सरस्तीरमिलितसैरन्ध्रीयुवतिभिराहूयमानतरुणजनायां नानावर्णकुसुमसौरभवासिताशेषप्रदेशायामितस्ततो रिरंसया प्रदर्शितस्फारशफरीविलोचनतरलचक्षुषाप्रभाविलसितशरीरवेश्याजनायां विविधाश्चर्ययुतायां दशरथः सामात्यपुरोहितोऽभिरामरामादिपुत्रसहितः सुखमुवास ॥६५॥

अथ वैदेहोऽपि मिथिलां नानापताकोपशोभितां विविधप्रासादगोपुरोद्यानदेवतायतनोपशोभितामन्योन्यकेलिचतुरयुवतिजनानुकीर्णामुशीरविरचितमहाप्रपां सुकेलीजनोपशोभिविशिखां विविधपण्योप-

थे तथा गोल पिण्डिलिकाओं से रहित जङ्घों में जिनका गुल्फ प्रदेश छिप गया था, पतली, छोटी तथा चिकनी अङ्गुलियों से उनके पैर युक्त थे, जो मानो नूपुर की ध्वनि के माध्यम से कामदेव का आह्वान कर रहे थे जिनकी चाल हंस के समान या मदमत्त हाथी के समान थी, जिनके कच्छ का अग्रभाग दाहिने पैर के अग्रभाग का स्पर्श कर रहा था । कच्छ के ऊपर नीवी को बनाकर दोनों हाथों से वस्त्र प्रदेश के कण्ठ को बिना ढँके हुए, दूसरे वस्त्र के ऊपर वाले भाग से जो अपने स्तनों को ढंकी थी, उसके दूसरे भाग में दुर्वल के समान दाहिने भाग में विद्यमान उनका अन्तिम किनारा नहीं था उसके द्वारा था प्रविष्ट था ऐसे वस्त्रों से जिनका शरीर सुशोभित था, इस प्रकार की अनेक स्त्रियाँ मङ्गलमय विवाह कार्य करने के लिए वहाँ आयीं ॥६३॥ बालिकाओं के अङ्ग मनो विद्यल्लता की कान्ति से सुशोभित थे । उनके स्तन कमल की कलियाँ भी उठ रही थीं, उनके वक्ष:स्थल अनेक प्रकार के हारों से सुशोभित थे । कुछ बोलने वाली तथा अत्यन्त चञ्चल थी । उनकी गति भी कोमल थी । वहाँ पर कुछ वृद्ध नारियाँ भी आयीं ॥६४॥ उसके बाद विदेह नगर से कोशमात्र की दूरी पर विद्यमान आम के बगीचे में जो अनेक प्रकार के वृक्षों से युक्त प्रदेश वाला था जिसमें विद्यमान हरिणों के बच्चे अनेक प्रकार के पक्षियों की ध्वनि को ध्यान पूर्वक सुन रहे थे । जिससे महारजत से निर्मित छोटे बड़े महलों से सुशोभित प्रदेश था, बगीची का वह स्थान अनेक पक्षियों से सुशोभित था । वह अनेक जटाधारी ध्यान तथा उपासना करने वाले मुनि समूह से सुशोभित थी। उन मुनियों का शरीर सुवर्ण बल्कल से वेष्टित था तथा उन लोगों का शरीर भस्म से उद्धूलित था । उस बगीची में विद्यमान सरोवरों में अनेक विद्याधरों की नारियाँ स्नान करती थीं, जिनके विशाल पयोधर से टकराकर सरोवर की लहरियाँ टूट जाती थीं । उस बगीची के सरोवर के तट पर एक साथ विद्यमान सैरन्ध्री युवतियाँ युवकों को बुलाती थी, उस बगीची का सम्पूर्ण प्रदेश अनेक प्रकार की सुगन्धि से सुवासित कर दिया गया था । उसमें विद्यमान सुन्दर वेश्यायें रमण करने की इच्छा से अपने उछलती हुयी मच्छली के समान चञ्चल नेत्रों से कटाक्षपात कर रहीं थी । उन वेश्याओं की कान्ति से सुशोभित थी वह बगीची । अनेक आश्चर्यों से युक्त उस बगीची में महाराज दशरथ अपने मन्त्रियों तथा पुरोहित के साथ सुखपूर्वक निवास किए ॥६५॥ वैदेह भी अपनी मिथिला नगरी को सुशोभित किए । वह मिथिला नगरी अनेक प्रकार

शोभितरथ्यां तत्र तत्र ब्रह्मघोषशोभितमठां प्रतिमन्दिरं मीमांसादि व्याख्यान सम्पादितसामाध्ययनां सुपुण्यहविर्गन्थसमादिस्वरपदक्रमश्रुतिब्राह्मणवाटिकामनेकपरिवृढमन्दिप्रवेशनिष्क्रीतागुरुकुङ्कुमाध्वयुवेषां मृदुलवसन-ताम्बूल-रक्त-दन्तच्छद-कामिनी मृदुवचनकठिनवचनकरसंज्ञानिर्धारितप्रतिवचनविविधोपायनाहरणकरजनोपशोभितां मृदुधवल-जघन-परिवीत-वस्त्रो-परिभागेन स्निग्धवर्तुलपरस्परसङ्घर्षपयोधरमध्यप्रदेशोपशोभितवामांसकन्दोपशोभितवनितां विविधमुक्ता हारजपासङ्काशदशनच्छदमन्दहासमालाकारसहस्त्रोपशोभितां पुण्यासवसाधनमन्दिरां तत्र तत्र विचित्रतोरणां विशुद्धवीथिकां तत्र तत्र स्थापितकल्पपादपां रम्भाविभूषितद्वारां पुरीं शोभितां शोभयामास ॥६६॥

अथाभिकलनार्थं विलासिन्यो निशादूर्वाऽक्षतमन्त्रमङ्गलकज्जलितकैशिकधम्मिल्ललताग्रंथितजटोपशोभितसीमन्तशीर्षशोभितनासामुखविचित्राभरणार्हणहेमपात्रावस्थिताज्यगुग्गुलुफलादिसौभाग्यद्रव्यमुद्वहन्तीभिः स्त्रीभिरन्यैरपि शोभितजनैः स राजा निर्जगाम ॥६७॥

तदानीं मङ्गलतूर्यघोषा देवदुन्दुभिभेरीनिःसाणमर्दलशङ्खादिनादाः प्रादुर्बभूवुः ॥६८॥ गायकाश्च मङ्गलानि

की पताकाओं से सुशोभित थी, वह अनेक प्रकार के महलों, गोपुरों, उद्यानों तथा मन्दिरों से सुशोभित थी। परस्पर में क्रीड़ा करने में चतुर युवतियाँ वहाँ पर विद्यमान थीं। उशीर (खस) से रचित बड़े-बड़े प्याऊओं पर क्रीड़ा करने वाले लोगों से जिसकी विशिखाएँ सुशोभित थीं, उस मिथिला की गलियाँ अनेक प्रकार के विक्रेय द्रव्यों से सुशोभित थी। स्थान-स्थान पर विद्यमान गुरुकुलों में वेद ध्वनि हो रही थी। प्रत्येक मन्दिरों में मीमांसा आदि के व्याख्यान के द्वारा सामवेद का अध्ययन सम्पादित किया जा रहा था, अत्यन्त पवित्र हविष्य की सुगन्धि के द्वारा सामादि वेदों के स्वर, पद तथा क्रम ब्राह्मणवाटिका में सुनायी दे रही थी, अनेक विस्तृत मन्दिरों में प्रवेश निष्क्रमण द्वारा एवं अगरु तथा कुङ्कुम के द्वारा मानो जिसने अध्वर्यु का वेष बना लिया हो, कोमल वस्त्र तथा ताम्बूल से लाल-लाल ओष्ठों वाली कामिनियों के कोमल वचन तथा कठोर वचन को हाथ के इशारे से उत्तर निर्धारित करने वाली तथा अनेक प्रकार के उपहार प्रदान करने वाले लोगों से वह बगीची सुशोभित थीं, वहाँ पर विद्यमान वनिताएँ कोमल तथा स्वच्छ जङ्घों पर धारण किए गये वस्त्र के ऊपर के भाग के द्वारा चिकने गोल एवं परस्पर में एक दूसरे से रगड़ खाने वाले स्तनों के बीच वाले स्थान के द्वारा जिनका बायाँ कन्धा सुशोभित था एवं अनेक प्रकार के मोतियों के हार तथा जपाकुसुम (ओड़हुल के फूल) के समान मन्द मुस्कान से युक्त जपा कुसुम के समान लाल-लाल ओष्ठों वाली नारियों से सुशोभित थी वह नगरी। उसमें पवित्र आसवों वाले गृह विद्यमान थे, विभिन्न स्थानों पर अद्भुत तोरण बन्धे हुए थे, उन नगरी की गलियाँ भी अद्भुत थीं, स्थान-स्थान पर कल्पवृक्ष लगाये गये थे तथा सभी द्वारों पर केले के स्तम्भ लगाये गये थे, इस प्रकार की अपनी नगरी को वैदेह ने सजाया ॥६६॥ उसके बाद राजा सायंकाल मिलने के लिए निकले। उनके साथ चलने वाली नारियाँ दूर्वा, अक्षत, धारण की थी। मङ्गलमय मन्त्र का उच्चारण हो रहा था। उनके काले-काले केशों की चोटियों को वे गूथे हुई थी। उनका सीमान्त (मांग) भाग सुशोभित हो रहा था। उन नारियों की नाक का अग्रभाग विचित्र आभरणों से सुशोभित था। वे सुवर्ण के पात्र में घी, गुग्गुल तथा फल आदि सौभाग्य द्रव्यों को स्वयं लिए हुयी थी और दूसरी भी स्त्रियों तथा लोगों से राजा सुशोभित हो रहे थे ॥६७॥ उस समय मङ्गलमय वाद्य की ध्वनि होने लगी, देवता दुन्दुभि बजाने लगे, भेरी, निःसाण, मर्दल (मृदङ्ग) तथा

जगुः ॥६९॥ मङ्गलवेदवाक्यानुपाठेन वैदिका ब्राह्मणाः कुलपाठाका भेरीघोषेण च कृत्स्नमाकाशमापूरयन्
॥७०॥ अथान्योन्याक्षतपूर्वमङ्गीकुर्वन्तः सूतबन्दिजनादिभिः स्तूयमानाः पुरं प्रविविशुः॥७१॥
विदेहनगरात्पश्चिमभागे निर्मितं मन्दिरं दशरथः प्रविवेश ॥७२॥ अवशिष्टाश्च यथा योग्यं भवनं
विविशुः ॥७३॥
अथ नारदो मिथिलां तदानीमेवागच्छत् ॥७४॥ विदेहोऽपि देवर्षिमभिपूज्य स्वागतं पृष्ट्वा भोजनं
कारयित्वा सुखासीनाय मुनये सघनसारं ताम्बूलं दत्त्वा व्यज्ञापयत् ॥७५॥
श्वो विवाहे भवान्स्थातुमर्हति कारयितुं विवाहम् ॥७६॥

नारद उवाच

श्वो हि नक्षत्रं सूर्यनक्षत्रदर्शनं तत्र विवाहो न कर्तव्य इति ॥७७-७८॥
अथ मौहूर्तिकं वृद्धगार्ग्यमाहूय राजा प्रपच्छ । क्व विवाहमुहूर्त इति ॥७९॥
श्व इति गार्ग्य उवाच ॥८०॥
राजा च नारदं गार्ग्यं चोदीक्ष्य भो इदमित्थमिति पप्रच्छ ॥८१॥
अथ नारदो गार्म्यमुवाच ॥८२॥
कथमुक्तं लग्नं दास्यसि ॥८३॥ अथ गार्ग्यो विषघटिकाश्च विहाय लग्नं दास्यामीत्युवाच ॥८४॥
नारदोऽपि ब्रह्मवचनानि किं न जानासीत्युक्तवान्गार्ग्यम् ॥८५॥
गार्ग्येण पृष्टस्तान्दोषानपठत् ॥८६॥
उल्का च ब्रह्मदण्डश्च मोघः कम्पस्तथैवच। सर्वकार्यविनाशाय दृष्टा वै ब्रह्मणा पुरा॥८७॥

शङ्खों की ध्वनि होने लगी ॥६८॥ गायक मङ्गलगीत गाने लगे ॥६९॥ वैदिक ब्राह्मण मङ्गलमय वेद वाक्यों
का पाठ करने लगे । कुल परम्परा से पाठ करने वाली भेरी की ध्वनि से सम्पूर्ण आकाश ध्वनित हो
गया ॥७०॥ उसके पश्चात् परस्पर में एक दूसरे के अक्षत को स्वीकार करते हुए सूत, तथा बन्दीजन
जिनकी स्तुति कर रहे थे ऐसे सभी लोगों ने नगर में प्रवेश किया ॥७१॥ विदेह नगर से पश्चिम दिशा में
निर्मित भवन में महाराज दशरथ प्रवेश किए ॥७२॥ दूसरे लोग भी अपनी योग्यता के अनुसार भवनों में
प्रवेश किए ॥७३॥ उसी समय नारदजी मिथिला में आ गये ॥७४॥ विदेह राज ने भी देवर्षि की पूजा की
उनका स्वागत करके वे उन्हें भोजन कराये । उसके बाद नारदजी जब सुखपूर्वक बैठे हुए थे उस समय
कर्पूर युक्त ताम्बूल प्रदान करके उन से कहा ॥७५॥ कल विवाह के समय आप यहाँ रहकर विवाह
करायें॥७६॥ **नारदजी ने कहा—** कल का नक्षत्र सूर्यनक्षत्र को देखता है, अतएव कल विवाह न
करायें ॥७७-७८॥ इसके बाद राजा गार्ग्य नामक ज्योतिर्विद को बुलाकर कहे कि विवाह का मुहूर्त कब
है ?॥७९॥ गार्ग्य ने कहा कि विवाह का मुहूर्त कल है ॥८०॥ राजा भी नारदजी और गार्ग्य नामक
ज्योतिर्विद को देखते हुए कहे कि ये तो इस तरह से कह रहे हें ॥८१॥ इसके बाद नारदजी ने गार्ग्य से
कहा ॥८२॥ आप उस लग्न को कैसे बतला रहे हैं ? ॥८३॥ इसके बाद गार्ग्य ने कहा कि विषघटिकाओं
को छोड़कर मैं लग्न निकालूँगा ॥८४॥ नारदजी ने गार्ग्य से कहा कि आप ब्रह्माजी के वचन को
नहीं जानते हैं ॥८५॥ गार्ग्य सन्तुष्ट होकर दोषों को पढ़े ॥८६॥ उल्का, ब्रह्मदण्ड तथा व्यर्थ के कम्प इन
दोषों को ब्रह्माजी ने प्राचीन काल में सभी कामों का विनाश करने वाला बतलाया है ॥८७॥ कहा गया

प्रतिष्ठासु विवाहेषु मौञ्जीबन्धाभिषेकत:। अन्येषु सर्वकार्येषु विषनाडीर्विवर्जयेत् ॥८८॥
अत:परं तु कार्याणां करणे न च दोषाभाक् ।
विवाहादिषु कार्येषु दोषमेव वदाम्यत: ॥८९॥
उल्का दहेत्कुलं सर्वं ब्रह्मदण्डो विनाशयेत् ।
मोघस्तु मरणाय स्यात्कम्प: कम्पाय कर्मण: ॥९०॥
इति नारदोक्तमाकर्ण्य गार्ग्यो मुनिर्मौनपरोऽभवत् ॥९१॥
दध्यौ रविं ग्रहपतिं विहाय विषनाडीर्विवाह: क्रियतामिति ॥९२॥

नारद उवाच

कथं ब्रह्मवचनम् ॥९३॥

सूर्य उवाच

देशभेदेन व्यवस्थोदिता । तदस्मिन्देशे विवाहो विषघटिकाविहाय कर्तव्य एव ॥९४॥ नारदोऽप्यनुमेने॥९५॥ उवाच श्व: पराह्ने च क्षत्त्रविवाहश्च भवेदत: स्वयंवरार्थं नृपा आगच्छन्तु तन्नृप । दूतान्प्रेषय ॥९६॥ अथ राजा दशरथानुमतेन सर्वानेव नृपानागमय्याचिन्तयत् कथं सर्वानेव तिरस्कृत्य वैदेही रामाय देयेति ॥९७॥

अथ रात्रौ मुहुर्मुहुर्नि:श्वस्य निद्रालुरपि न निद्रामाप ॥९८॥ अथ मध्ये निशं राजा शुचिर्भूत्वा त्र्यम्बकं साम्बिकं मङ्गलदुकूलधारिणं कमलभवपुरुषोत्तमशक्रप्रमुखनिखिलदेवैर्भृगुप्रमुखमुनिवरैर्हाहाप्रमुखगन्धर्वै स्तुम्बुरूप्रमुखैश्चश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणैर्मूर्तिमद्भिश्च सिद्धविद्याधरादिमातृकगणैश्च नन्दीप्रमुखगणैश्च सेव्यमानपादकमलं सर्वामङ्गलपरिमोचकमतिपुण्यसलिलया गङ्गया निष्कलङ्केन चन्द्रमसा

है कि प्रतिष्ठा, विवाह, उपनयन, अभिषेक तथा दूसरे कार्यों में विष नाड़ी का परित्याग कर देना चाहिए। उससे भिन्न कार्यो के करने में कोई दोष नहीं होता है, इसीलिए मैं कहता हूँ कि विवाह आदि कार्यो के करने में दोष होता है ॥८८-८९॥ उल्का सम्पूर्ण वंश को जला देता है, ब्रह्मदण्ड विनाश करने वाला है। मोघ नामक मुहूर्त मृत्युकारक होता है, कम्पयोग कर्म को कँपा देने वाला होता है ॥९०॥ नारदजी की इस वाणी को सुनकर गार्ग्य मुनि मौन हो गये ॥९१॥ उन्होंने ध्यान करके कहा कि ग्रहों के स्वामी सूर्य की विष नाड़ियों को छोड़कर विवाह कीजिए ॥९२॥ **नारदजी ने कहा**— ब्रह्माजी ने क्या कहा है ?॥९३॥ सूर्य ने कहा भिन्न-भिन्न देश के लिए भिन्न-भिन्न व्यवस्था बतलायी गयी है, अतएव इस देश में विष घड़ियों से भिन्न घड़ियों में विवाह करना चाहिए ॥९४॥ उसका समर्थन नारदजी ने भी किया ॥९५॥ उन्होंने कहा कल पराह्न में क्षत्रिय का विवाह हो सकता है, अतएव स्वयम्बर के लिए राजागण आयें । अतएव राजा अपने दूतों को भेजें ॥९६॥ उसके बाद दशरथजी की अनुमति प्राप्त करके सभी राजाओं को बुलाकर राजा जनक सोचने लगे कि सभी राजाओं का तिरस्कार करके राम के साथ वैदेही का विवाह कैसे किया जा सकता है ?॥९७॥ इसके बाद बार-बार दीर्घ श्वास लेकर राजा विदेह सोना चाहकर भी नहीं सो सके॥९८॥ इसके बाद आधी रात की बेला में राजा पवित्र होकर पार्वतीजी के साथ मङ्गलमय वस्त्र को धारण करने वाले, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि प्रधान देवताओं, भृगु आदि प्रमुख मुनिवरों, हाहा आदि तथा तुम्बुरु आदि

सेव्यमानशिरोभागं वामाङ्कारुढया गिरिजया प्रदीयमानवीटिं सहासं सकामं सहावेक्षणमाददानं गोक्षीरसदृशं प्रतिकूलकस्तूरिकासदृशकण्ठं मृदुसूक्ष्मस्निग्धजटाभिर्विरचितकपर्दं विशुद्धकार्तस्वरकुण्डलोपशोभितगण्डभागं द्विरष्टवर्षवयसं गोक्षीरसदृशस्थूलमुक्ताफलकौसुम्भवर्णाञ्चलेनावेष्टितशिरोभागं विविधरत्नविरचितकार्तस्वरभूषितवक्षः स्थलमतिधवलोपवीतेनोपशोभितशरीरमम्बिकानुलग्नकुङ्कुमारुणसुगन्धिशरीरमीक्षमाणं तर्जमानकाममार्गणं कोटिकन्दर्पसदृशं मनसाऽचिन्तयत् ॥९९॥

जजाप शतरुद्रियं जुहाव च तेनैव कामाहुतिः प्रास्तुवच्च पुरुषसूक्तेन ॥१००॥ अथ तादृश एव महेश्वरस्तत्र प्रादुरभूत् ॥१०१॥ अथ राजा नमस्कृत्यास्तुवीत ॥१०२॥

राजोवाच

क्षितिसलिलगगनपवनदहनरविशशियजमानमूर्तिभिरष्टमूर्ते ! विश्वमूर्त्ते ! त्रिभुवनमूर्ते ! वेदपुराणमूर्ते! यज्ञमूर्ते ! स्तोत्रमूर्ते ! शास्त्रमूर्ते ! स्वधामूर्ते ! नारायणमूर्ते ! सर्वदेवतामूर्ते ! त्रयीमय ! त्रयीप्रमाण! त्रयीनेत्र ! सामप्रिय ! वसुधाराप्रिय ! भक्तिप्रिय ! भक्तसुलभाभक्तविदूरस्तुतिप्रिय ! धूपप्रिय ! दीपप्रिय ! घृतक्षीरप्रिय ! द्रोणकरवीरप्रिय ! श्रीपत्रप्रिय ! कमलकह्लारप्रिय ! नन्द्यावर्तप्रिय ! बकुलप्रिय ! यूथिकाप्रिय ! कोकनदप्रिय ! ग्रीष्मजलावासप्रिय ! यमनियमप्रिय ! नियतेन्द्रियप्रिय! जपप्रिय ! श्राद्धप्रिय ! गायनप्रिय ! गायत्रीप्रिय ! पञ्चब्रह्मप्रिय ! सदाचारप्रिय ! गोत्रोत्सादिकमलभवहरिहरनयनसमर्चितपादकमलजयप्रद ! हरिप्रार्थितजलोत्पादितचक्रप्रदर्शकृत्स्मृतियुक्तिप्रद ! स्मृतमङ्गलप्रद ! मृत्युञ्जय ! नमस्ते नमस्ते ॥१०३॥

प्रमुख गन्धर्वों, शरीर धारी, श्रुतियों, स्मृतियों, इतिहासों, पुराणों, सिद्धो, विद्याधरों तथा मातृकागणों आदि के द्वारा, एवं नन्दी आदि प्रमुख गणों के द्वारा जिनके चरण कमलों की सेवा की जाती है, सम्पूर्ण अमङ्गलों का विनाश करने वाले, अत्यन्त पवित्र जल वाली गङ्गाजी तथा निष्कलङ्क चन्द्रमा जिनके शिर पर विराजमान हैं, जिनके वाम भाग में विद्यमान रहकर पार्वतीजी जिन्हे पान का बीड़ा प्रदान करती हैं, हँसकर तथा कामना पूर्वक देखकर उस पान की वीटिका को स्वीकार करने वाले, जिनका वर्ण गो दुग्ध के समान श्वेत है तथा जिनका कण्ठ कस्तूरी के समान श्याम वर्ण का है । कोमल, सूक्ष्म तथा चिकने जटाओं से जिन्होंने अपना कपर्द बना रखा है, जिनके कपोल विशुद्ध सुवर्ण रचित कुण्डल से सुशोभित है, सोलह वर्ष की अवस्था वाले गोदुग्ध के समान श्वेत वर्ण के मोतियों से सुशोभित कुसम्भ के समान वस्त्र के द्वारा अपने शिर को बाँधे रखने वाले, अनेक प्रकार के रत्नों से निर्मित सुवर्ण के हार से सुशोभित वक्षःस्थल वाल, अत्यन्त श्वेत यज्ञोपवीत से जिनका शरीर सुशोभित है, पार्वतीजी के शरीर से लगे हुए लाल कुङ्कुम की सुगन्धि से युक्त अपने अर्ध नारीश्वर शरीर को देखने वाले, कामदेव के बाणों को तिरस्कृत करने वाले, करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर शङ्करजी का राजा विदेह ने ध्यान किया ॥९९॥ उन्होंने शतरुद्रिय का पाठ किया तथा उसी से अपनी सकाम आहुतियों का होम किया । उन्होंने पुरुषसूक्त से शिवजी की स्तुति की॥१००॥ उसके पश्चात् राजा ने जिस तरह से शङ्करजी का ध्यान किया था उसी तरह के शङ्करजी प्रकट हो गये ॥१०१॥ उसके बाद विदेहराज ने उनको प्रणाम करके उनकी स्तुति की ॥१०२॥ **राजा ने कहा—** हे पृथिवी, जल, आकाश, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा तथा यजमान इन आठ शरीरों वाले, अष्टमुर्ति शिवजी ! हे विश्व मूर्ते ! (सम्पूर्ण जगच्छरीरक) हे लोकमूर्ते ! हे त्रिभुवनमूर्ते ! हे वेदमूर्ते ! हे

इति स्तोत्रमाकर्ण्य भगवान्भवो राजानमुवाच वरदोऽहं वरं वृणु ॥१०४॥

राजोवाच

श्रीमन्ममकन्या वैदेही रामाय दित्सिता स्वयंवरे कुलरूपबलोत्साहसम्पन्नानेकभूपराक्षसविप्रादिसर्वप्राणिसमागमे रामाधिकबलो यदि तामग्रीहष्यत्तदावचनमनृतं मम पापं च भविष्यति ॥१०५॥ प्रत्युत दशरथोऽपि सर्वानिवागतान्विजेतुमलं क्षत्त्रकदनश्च रामो यद्यायास्यति तर्हि मम सुतां किं करिष्यति वा किं किं वा प्रेषयिष्यति कीदृशं कारयिष्यति मम किंवाकरिष्यति सर्वथा हि प्रभूतबलवाहनो नरपतिरशेषमपि त्रिभुवनं हन्यात् । किमुतमामल्पसत्त्वं किमुतबहुना भवानेव शरणं ममोपायं वद यथा विवाहे श्रेयो भविष्यति रामश्च जामाता भविष्यति ॥१०६॥ शम्भुरपि तथा करोमीत्युवाच॥१०७॥ राम एव नाथः सीताया भविष्यति । रामं च कृत्वा स्वस्त्यद्यैव करिष्यामि गृहाणाजगवं धनुरिदम् ॥१०८॥

पुराणमूर्ते ! हे यज्ञमूर्ते ! हे स्तोत्रमूर्ते ! हे शास्त्रमूर्ते ! हे स्वछामूर्ते ! हे नारायणमूर्ते ! हे सर्वदेवतामूर्ते ! हे त्रयीमय ! हे त्रयीप्रमाण ! अर्थात् वेद ही आप में प्रमाण हैं, त्रयी आपके नेत्र हैं, हे सामप्रिय ! हे वसुधाराप्रिय ! हे भक्ति प्रिय ! हे भक्तों के लिए आसानी से प्राप्त होने वाले ! हे अभक्तों से अत्यन्त दूर रहने वाले, हे स्तुतिप्रिय ! हे धूपप्रिय ! हे दीप प्रिय ! हे घृतप्रिय ! हे क्षीरप्रिय ! हे द्रोणप्रिय ! हे करवीरप्रिय ! हे श्रीपत्र प्रिय ! हे कमलप्रिय ! हे कमलप्रिय ! हे कह्लार प्रिय ! हे नन्दयावर्त प्रिय ! हे वकुल प्रिय ! हे यूथिका प्रिय ! हे कोकनद (रक्तकमल) प्रिय ! हे ग्रीष्म ऋतु में जलाधिवास को पसन्द करने वाले, हे यम, नियम प्रिय ! हे नियतेन्द्रियप्रिय ! (अपनी इन्द्रियों को संयमित रखने वाले) मनुष्यो को प्रिय ! हे जपप्रिय ! हे श्राद्धप्रिय ! हे गायन प्रिय ! हे गायत्री प्रिय ! (गायत्री मन्त्र का जप करने वालों से प्रसन्न रहने वाले भगवन्) हे पञ्चब्रह्मप्रिय ! हे सदाचार प्रिय ! हे गोत्रोत्सादी (इन्द्र) ब्रह्मा, हरिहर के नेत्रों से पूजित चरण कमल वाले भगवन् ! हे विजय प्रदान करने वाले ! श्रीहरि के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर जल से चक्र को उत्पन्न कर प्रदर्शित करने वाले ! स्मृतियों और युक्तियों को प्रदान करने वाले, हे स्मरण करने वालों को मङ्गल प्रदान करने वाले, आपकी पृथिवी पर जय हो, आपको बारम्बार नमस्कार है॥१०३॥ इस स्तोत्र को सुनकर भगवान् शिव ने राजा से कहा, मैं वरदान देना चाहता हूँ वर माँगो ॥१०४॥ **राजा ने कहा**— हे श्रीमन् ! मेरी पुत्री वैदेही हैं; मैं उसका विवाह राम से करना चाहताा हूँ । स्वयम्बर में, कुल, रूप, बल तथा उत्साह से सम्पन्न अनेक राजा राक्षस तथा ब्राह्मण आदि आये हैं । इन सभी प्राणियों के समागम रूप स्वयम्बर में मैं चाहाता हूँ कि सबों से अधिक बल सम्पन्न राम ही उसको प्राप्त करें । ऐसा करने से मेरी वाणी सत्य हो जायेगी और मुझे पाप भी नहीं लगेगा ॥१०५॥ यही नहीं राजा दशरथ भी सबों को जीत सकने में समर्थ हैं । क्षत्रियों को मारने वाले राम भी यदि आयें तो फिर मेरी पुत्री क्या करेगी? वे क्या-क्या भेजेंगे ? वे कैसा कार्य करायेंगे ? वे मेरा क्या क्या करेंगे ? राजा प्रभूत सेना और वाहन से सम्पन्न है । वे सम्पूर्ण त्रैलोक्य को मार सकते हैं ? मुझ अल्प बल वाले के विषय में क्या कहना है? मैं बहुत क्या कहूँ ? आप ही मेरे रक्षक हैं । आप मुझे उपाय बतलायें, जिससे कि विवाह में कल्याण हो और राम मेरे जामाता हों ॥१०६॥ शम्भु ने कहा मैं भी वैसा ही उपाय करता हूँ ॥१०७॥ सीता के पति राम ही होंगे । मैं राम का आज ही कल्याण करूँगा । तुम इस अजगव धनुष को लो ॥१०८॥ **राजा**

राजोवाच

किमेतेनाजगवेन धनुषा स्वयंवरे सीतां रामं प्रापय ॥१०९॥

शङ्कर उवाच

इदं धनुरसज्यं मे यस्तु सज्यं करिष्यति। तस्मै देया मया सीताप्रतिज्ञामेवमाचर॥११०॥
इत्येवमुक्त्वा भगवान्गणैरन्तर्दधे हरः। अथादातुं धनू राजा न शशाकातियत्नतः ॥१११॥
अथोज्ज्वलं शतसहस्रगजबलं समाहूय गृहाणेत्युवाच ॥११२॥

स चापि मातुलं नत्वाऽट्टहासं कृत्वोत्प्लुप्य धनुर्द्वाभ्यां कराभ्यामुद्दधार जानुपर्यन्तं मातुलो मारीचः श्रुत्वा एकाकी विप्रवेषं कृत्वा विदेहमयाचत । वैश्वदेवान्ते प्राप्तमतिथिं मामावेहि ॥११३॥

राजोवाच

स्वागतं भो इदं ब्रह्मन्नासनं तत्र निषीदेति ॥११४॥ स चातिस्थिस्तथेत्युक्त्वा निषसाद ॥११५॥ अथ राजा जलमादाय पादौ प्रक्षाल्य गन्धपुष्पाक्षतैरभ्यर्च्य महाऽजं तस्मै निवेद्य भोजनाय प्रार्थयामास॥११६॥ स चापि तदन्नं षड्रसोपेतं सौवर्णभाजनगतमीक्षमाण इवेतस्ततो विलोकयामास॥११७॥ तस्मिन्नेवावसरे सीता पद्मकिञ्जल्कप्रभेषदरुणवसनं बिभ्रती नील कुटिलकुन्तलैश्चलद्भिः यूनां मनांस्याकर्षयद्भिः प्रेक्षमाणदृष्टिभग्नकलैरिव स्त्रीणां चित्तमीदृशमिति दर्शयद्भिरिवोपशोभितललाटानङ्गचापसुभ्रूःपद्मपत्रारुणविलोचना तिलप्रसून नासा मृदुस्निग्धरोमशकपोलानन्तरारक्तोष्ठारक्तासनमाणिक्यनिभदाडिमीदशना जपाकुसुमारुणाधरातिशोभितचिबुका शुक्तिकर्णा समदीर्घकण्ठाऽतिमांसलवक्षाः पीनोद्भिन्नकुचकुङ्मलानेकहारोपशोभिता सुभगाकारनतिमांसलबाहुलता मुग्धायतसमाना-

---

ने कहा— इस अजगव धनुष से क्या होगा ? ऐसा आप करें कि स्वयम्बर में राम-सीता को प्राप्त कर लें ॥१०९॥ **शङ्करजी ने कहा—** मेरे इस धनुष पर डोरी नहीं चढ़ायी गयी है । जो इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा उसी को मैं सीता को प्रदान कर दूँगा । इस तरह की तुम प्रतिज्ञा करो ॥११०॥ इस तरह से कहकर भगवान् शिव अपने गणों के साथ अन्तर्धान हो गये । उसके बाद बहुत अधिक प्रयास करके भी राजा उस धनुष को नही उठा सके ॥१११॥ उसके बाद एक लाख हाथियों के बल वाले उज्ज्वल को बुलाकर उन्होंने कहा— इस धनुष को उठा लो ॥११२॥ वह भी अपने मामा को नमस्कार करके तथा अट्टहास करके उछलकर दोनों हाथों से धनुष को घुटनों पर्यन्त उठा सका । उसका मामा मारीच इस बात को सुनकर अकेले ब्राह्मण का वेष बनाकर विदेह से याचना किया । उसने कहा मैं आपका अतिथि वैश्वदेव हूँ ॥११३॥ **राजा ने कहा—** हे ब्राह्मण ! आपका स्वागत है, यह आसन है, इस पर आप बैठें ॥११४॥ उस अतिथि ने भी कहा ठीक है ॥११५॥ उसके बाद राजा जल लेकर उसके पैरों को धोकर उसकी गन्ध, पुष्प तथा अक्षतों से पूजा किए और उसको भोजन प्रदान किए और भोजन करने के लिए उससे प्रार्थना किए ॥११६॥ वह भी सुवर्ण के पात्र में रखे हुए षड्रस भोजन को देखते हुए इधर-उधर देखने लगा॥११७॥ उसी समय सीताजी भी मारीच के सामने आयीं । उनकी कान्ति कमल के पराग के समान थी । वे थोड़ा लाल-लाल वस्त्र धारण की थीं उनके कालें घुँघराले और चञ्चल केश थे । उसको देखकर युवकों का मन आकृष्ट हो जाता था । अपने नेत्रों के मनोहर कटाक्षों के द्वारा स्त्रियों का चित्त ऐसा ही होता है इस बात को मानों वे बतला रहे थे, उनका ललाट अलंकृत था, उनकी सुन्दर भौंहें कामदेव के धनुष के समान थे,

ङ्गुलिशिखा पद्मारुणपल्ल्वा विविधबहुरत्नाङ्गुलिभूषणा मुष्टिग्राह्यमध्या सुरोमराजि गम्भीरनाभिः पृथुजघना करिकरोरुस्तूणीरजङ्घा सुपादकमला नूपुरादिपादविभूषणा पादाङ्गुलीभूषिता विकसितसौगन्धिकं विदधती भुञ्जानमारीचस्य पुरतश्चागता ॥११८॥ वीक्ष्यासावचिन्तयदेनां कथमपहरामि कथमालिङ्गामि कथमन्यत्किञ्चित्करोमीत्येवमवसरमलभमानस्तूष्णीमेव विनिर्गतः ॥११९॥

अथ देवा धनुः सज्जीकरणाय यतमाना अहम्पूर्विकया विद्यमाना अन्योन्यतिरस्कारेण महेन्द्रः प्राप धनुरुत्तमं प्रान्तद्वयात्परं नावनमयितुं शशाक ॥१२०॥ अथ सूर्यो धनुरादाय नमयन्नेव निपपात॥१२१॥ वायुर्बलवतां श्रेष्ठो जग्राहाजगवमथ स्वेनैव करेणोत्कर्षयन्नधः पपात धनुश्च वायोरुपरि पपात अहसंस्तदा सर्वे ॥१२२॥ एतस्मिन्नन्तरे तुरगवरमारुह्य बाणासुरः सहस्रबाहुरनेकानेक- शिरोभिर्दैत्यैः परिवृतः प्रह्लादसमेतो विदेहपुरीमाजगाम ॥१२३॥ अथ स्वविभूषणोद्भासितां दिशं कुर्वन्स्वतेजसाऽपयशसो देवताः कुर्वन्नानाविधिगीतं शृण्वद्व्यङ्गुलमात्रेण शक्तो विरराम ॥१२४॥ प्रह्लादो बलिश्चैव धावातेऽथ

उनके नेत्र कमल दल के समान रक्त वर्ण के थे, उनकी नाक तिल के पुष्प के समान सुन्दर थी और उनकी गालों पर चिकने रोम निकल आये थे। उनके ओष्ठ लाल-लाल थे, लाल-लाल आसन पर रखे गये मणिक्य के समान, दाडिम (अनार) दानों के समान उनके दाँत थे, जपा कुसुम के समान उनके लाल-लाल ओष्ठों से उनकी ठुढी अत्यन्त सुशोभित हो रही थीं, उनके कान शूक्ति (सीपी) के समान मनोहर थे और एक समान लम्बे-लम्बे थे। उनका कण्ठ शंख समान लम्बा था, वक्षःस्थल मांसल था, उनके मोटे-मोटे स्तन धीरे-धीरे बढ़ रहे थे। वे अनेक हारों से सुशोभित थीं, उनका आकार अत्यन्त मनोहर था, उनकी भुजायें बहुत मोटी नहीं थी, उनके हाथों की अङ्गुलियाँ मनोहर, लम्बी और कमल दल के समान लाल-लाल थीं, अनेक प्रकार के रत्नों से जटित वे अनेक प्रकार की अङ्गुलियों के भूषणों को धारण की थीं, उनकी कमर इतनी पतली थी कि जैसे मुट्ठी में ही अँट जाय, उनकी गहरी नाभि सुन्दर रोम पंक्ति से सुशोभित थी, उनकी जंङ्घाएँ मोटी थी और हाथी के सूढं के समान उतार चढ़ाव वाली थीं उनकी जङ्घा तुर्णीर के समान थी, उनका चरण कमल सुन्दर था, नूपुर आदि चरणों के आभूषणों से उनके चरण भूषित थे तथा सुन्दर अङ्गुलियों से सुशोभित थे, वे विकसित नील कमल को अपने हाथ में धारण की थीं॥११८॥ सीताजी को देखकर वह सोचने लगा कि मैं इसका कैसे अपहरण करूँ ? कैसे उसका आलिङ्गन करूँ ? कैसे मैं दूसरा कोई कार्य करूँ ? किन्तु अवसर नहीं पा सकने के कारण मारीच चुपचाप वहाँ से निकल गया ॥११९॥ इसके पश्चात् देवता धनुष को चढ़ाने के लिए प्रयास करने लगे। सभी देवता चाहते थे कि मैं ही सबसे पहले धनुष को चढ़ाऊँ। अतएव परस्पर एक दूसरे का तिरस्कार करते हुए इन्द्रदेव धनुष के पास आये। किन्तु वे उस धनुष के दोनों भागों को नहीं झुका सके ॥१२०॥ उसके बाद सूर्य धनुष को लेकर झुकाने लगे, किन्तु झुकाते ही समय वे गिर पड़े ॥१२१॥ उसके बाद बलवानों में श्रेष्ठ वायु देवता ने अजगव धनुष को पकड़ लिया। वे अपने हाथ से उसको झुका रहे थे कि नीचे गिर पड़े और धनुष उनके ही ऊपर गिर पड़ा। यह देखकर सबके सब लोग हँसने लगे ॥१२२॥ उसी समय श्रेष्ठ अश्व पर सवार होकर हजार भुजाओं वाला बाणासुर, अनेक श्रेष्ठ दैत्यों के साथ प्रह्लादजी के साथ विदेहराज की नगरी में आया ॥१२३॥ वह अपने आभूषणों की चमक से दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था तथा अपने तेज से सभी देवताओं को तिरस्कृत कर रहा था। लोग उसकी अनेक प्रकार से स्तुति कर रहे थे, दो

विरेमतुः ॥१२५॥ अथ राक्षसेषु तूष्णींभूतेषु राजानोऽतिबलिनः समागता ज्याबन्धशक्ता अपसृत्य तस्थुः ॥१२६॥

अथ ब्राह्मणाः समागताः ॥१२७॥

अथ विश्वामित्रो धनुरादाय एकाङ्गुलपर्यन्तं सज्यं कृत्वा विरराम ।

निवृत्ताश्चापरे ॥१२८॥

अथ दिनमात्रे धनुषि तूष्णींभूतेषु राघवः सहानुजैरागत्य धनुर्निरीक्ष्यास्पृशत् ॥१२९॥ अथ राजकुमाराः शतशः समागताः । सर्वाभरणभूषितो धनुर्दृष्ट्वा पस्पृशुर्नचालनक्षमाः ॥१३०॥ अथ दाशरथिप्रमुखाः कुमाराः समागताः ॥१३१॥ अथ वेत्रझर्झरपाणयः समागमन्सर्वनिवापसारयामासुः ॥१३२॥ अथ रामो लक्ष्मणहस्तं गृहीत्वा सर्वाभरणभूषितो धनुरासाद्य स्पृष्ट्वा नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य धनुरादायोद्दधार॥१३३॥ तदादानसमये सर्वं एवैत्य सहासमूचुः अत्र भग्ना महारथा इति ॥१३४॥ अथ स रामो धनुर्ज्यास्थानमवनमय्य धनुषि जानुं कृत्वा सज्यमेककरेणोत्पादयन्कोट्यामनामयत्॥१३५॥ अथ सज्जीकृतं दृष्ट्वा सर्व एव नासाग्रन्यस्ताङ्गुलयोऽभवन् ॥१३६॥ रामोऽपीज्यामन्वनादयत् । तेन नादेन सर्वेषां मनांसि क्षुभितान्यासन् ॥१३७॥ रामेण सज्जितं धनुरिति सर्वत्र वादः सञ्जातः॥१३८॥ जनकोऽपि तां रामाय ददौ राजभिश्चयुद्धं कृत्वा तान्निर्जित्य स्वपुरीमगात् ॥१३९॥ अथैकदा दशरथो रामं यौवराज्येऽभिषिच्य सुखी बभूव सर्वप्रजारञ्जनाच्च रामो राजानुमत इति

अङ्गुल ही धनुष को चढ़ाने में कम रहा वह धनुष को नहीं चढ़ा सका ॥१२४॥ प्रह्लाद तथा बलि आदि उसके भृत्य भी कुछ नहीं कर सके ॥१२५॥ इसके बाद जब सभी राक्षस मौन हो गये, उसके पश्चात् अत्यन्त बलवान राजागण आये किन्तु धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाने में अशक्त रहे । अतएव दूर हट गये ॥१२६-१२७॥ उसके बाद ब्राह्मण आये । उसके बाद विश्वामित्र धनुष लेकर एक अङ्गुल पर्यन्त उसको चढ़ाकर रुक गये । दूसरे लोग भी धनुष चढ़ाने के लिए प्रयास नहीं किए ॥१२८॥ उसके पश्चात् दिन भर में सबों के मौन हो जाने पर राघव अपने अनुजों के साथ आकर धनुष को देखकर उसका स्पर्श किए ॥१२९॥ उसके बाद सैकड़ों राजकुमार आये । वे सभी अलङ्कारों से अलंकृत थे । धनुष को देखकर, उसका स्पर्श किए किन्तु उसको डिगा भी नहीं सके ॥१३०॥ उसके बाद दशरथ नन्दन आदि राजकुमार आये ॥१३१॥ इसके पश्चात् वेत्र तथा झर्झर हाथ में लिए हुए वन्दीजन आये और सबों को दूर किए॥१३२॥ इसके पश्चात् राम लक्ष्मण का हाथ पकड़कर आये । वे सभी आभूषणों से भूषित थे । वे धनुष के पास आकर धनुष का स्पर्श करके, उसकी प्रदक्षिणा किए और धनुष को उठा लिए ॥१३३॥ उसे लेते समय सभी राजा हँसकर कहे, इस कार्य को महारथी भी नहीं कर सके हैं ॥१३४॥ उसके बाद श्रीरामचन्द्र धनुष को प्रत्यञ्चा के स्थान पर झुकाकर, धनुष पर घुटना रखकर एक हाथ से उसे आरोपित करके दूसरी कोटि को झुका दिए ॥१३५॥ उसके बाद चढे धनुष को देखकर सबलोग अपनी अङ्गुलि के अग्र भाग से अपनी नाक को पकड़ लिए ॥१३६॥ उसके बाद राम ने धनुष की प्रत्यञ्चा का टङ्कार किया । उस ध्वनि से सबों के मन व्याकुल हो गये ॥१३७॥ श्रीराम ने धनुष चढ़ा दिया यह बात सर्वत्र फैल गयी ॥१३८॥ जनकजी ने भी सीताजी का विवाह श्रीरामचन्द्र से कर दिया । श्रीराम भी सभी राजाओं के साथ युद्ध करके तथा उन सबों को पराजित करके अपनी नगरी में आ गये ॥१३९॥ उसके पश्चात् राजा दशरथ श्रीराम को

सर्वप्रजावादोऽभूत् ॥१४०॥ अथ केकयदेशाधिपतितनया सुवेषा रामं राजानमसहमाना राजानमुवाच मम वरदानावसर इति राजा चिन्तयत्किंदेयमिति ॥१४१॥

देव्युवाच

चतुर्दशवर्षाणि रामो वनं विशतु पालयतु राज्यं भरतः ॥१४२॥ राजाऽनृतवचन ! दोषभयात्कथं कथमपि स्वीचकार ॥१४३॥ अथ वसिष्ठं भावितयाऽवोचत रामो वनाय निर्गच्छति अस्य किं वा भवेदिति विचार्य शुभाशुभं ब्रूहि ॥१४४॥ वसिष्ठो विचार्य सहर्षं राजानमुवाच ॥१४५॥

गत्वा वनं निखिलदानववीरहन्ता शम्भोरनेकविधपूजनमातनोति ।
सीतावियोगरुषितः कपिसेनया च तीर्त्वोदधिं दशमुखं च निहन्ति रामः ॥१४६॥
आगम्य राज्यं रघुनन्दनोऽपि बहूनि वर्षाणि समातनोति ।
प्रशस्तकीर्तिर्निखिलेऽपि लोके शर्वेण देवेन चिरं न्यवात्सीत् ॥१४७॥
सुपुत्रयुक्तो बहुयज्ञयाजी परिवृढः सर्वगुणादिकश्च ॥१४८॥

इति वसिष्ठवचनं श्रुत्वा दशरथो रामगुणाननुस्मरन्नित्युवाच श्रेयो मे मरणं रामस्य निर्गमन इति॥१४९॥ अथ रामो मातरं पितरं गुरुं च वसिष्ठं पितृपत्नीर्नमस्कृत्य वनाय जगाम ॥१५०॥ अथोपवने दिनमेकं स्थित्वा जटाः कारयित्वा वल्कलं वासो धृत्वैकोपवीती कृतदन्तशुद्धिरेकेनोपवीतेन जटा बद्ध्वा भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो भसितनिष्ठुर कायो मुक्ताफलदाममणिव्यत्यस्तरुद्राक्षमालामुरसिदधानोऽल्पभूषणाधिभूपितसीतासहायो लक्ष्मणानुचरो विवेश वनान्तरम् ॥१५१॥ अथानेकराक्षसांस्त-

---

युवराज पद पर अभिषिक्त करके सुखी हो गये । सभी प्रजाओं को प्रसन्न करने के कारण उनका नाम राम हुआ और वे राजा के प्रिय हो गये यह कैकये देश के राजा की पुत्री सुवेषा, राम को राजा होना नहीं वर्दास्त कर सकी । उसने राजा दशरथ से कहा यह अवसर मुझे अपना वरदान प्राप्त करने का है । राजा ने पूछा कि तुमको क्या देना हैं ?॥१४०-१४१॥ **देवी ने कहा**— श्रीराम चौदह वर्ष के लिए वन में चले जायँ और भरत राज्य करें ॥१४२॥ राजा मृषा भाषित्व नामक दोष के भय से किसी तरह इस वरदान को स्वीकार किए ॥१४३॥ इसके बाद राजा ने वसिष्ठजी से पूछा कि यदि राम वन में चले जाते हैं तो फिर उसका परिणाम शुभ होगा या, अशुभ ? इस बात का विचार करके आप मुझे बतलायें ॥१४४॥ वसिष्ठजी ने भी विचार करके हर्ष पूर्वक राजा से कहा ॥१४५॥ श्रीराम वन में जाकर सभी दानववीरों का वध करेंगे और शङ्करजी की अनेक प्रकार से पूजा करेंगे । सीताजी के वियोग से दुःखी होकर वे वानरों की सेना के साथ समुद्र का संतरण करके रावण का वध करेंगे ॥१४६॥ उसके बाद आकर श्रीराम भी बहुत वर्षो तक राज्य करेंगे । इनकी कीर्ति सम्पूर्ण संसार में फैल जायेगी शङ्करजी इनको दीर्घकाल तक इस संसार में सुरक्षित रखेंगे ॥१४७॥ अपने सुन्दर पुत्र के साथ ये अनेक यज्ञों को करेंगे इनके सभी गुणों का विस्तार रहेगा ॥१४८॥ इस तरह से महर्षि वसिष्ठ के वचनों को सुनकर राजा दशरथ ने श्रीराम के गुणों का स्मरण करते हुए कहा— राम के वन में चले जाने पर तो मेरे लिए मर जाना ही कल्याणकारी है ॥१४९॥ इसके बाद श्रीराम माता, पिता गुरुवसिष्ठ तथा अपने पिता की पत्नियों को नमस्कार करके वन में चले गये॥१५०॥ उसके बाद एक दिन उपवन में निवास करके, जटा बनाकर, बल्कल वस्त्र धारण करके, एक यज्ञोपवीत धारण करके, दन्त धावन करके एक यज्ञोपवीत से जटा को बाँधकर अपने सम्पूर्ण शरीर में भस्म लगाकर,

स्मिन्निजघान भवानिव निखिलं चकार सीतापहरणादिनिखिलमपि भवतो यथा तथाऽस्याथ सुग्रीवाश्रममृष्यमूकपर्वतं रामो जगाम निबिडच्छायं चूतवृक्षमासाद्य लक्ष्मणसहायः परिश्रयमकल्पयत्। वृक्षे तु धनुषी आरोप्यासीनलक्ष्मणाङ्के शिरः कृत्वा हरिचर्मशय्याशयनो लक्षितां गीतिं शृण्वन्वृक्षफलं निरीक्षमाणो वानरमेकं मणिकुण्डलं हेमपिङ्गलं सुदृढबद्धमौञ्जीकौपीनमच्छोपवीतिनमतिचञ्चलं फलमादायामनि विक्षिपन्तं पुष्पमञ्जरीश्च किरन्तं गानमनुकुर्वन्तं व्यजनेन रामं वीजयन्तमारुह्य शाखामपि तथा वीजयन्तमाबद्धचूतफलमात्रं रामो वीक्ष्य लक्ष्मणमभाषत॥१५२॥ लक्ष्मण कोऽयं कपिरिति॥१५३॥

लक्ष्मणोऽपि न जान इत्युवाच । अथ रामः समाहूय कस्य त्वं किं नामेत्यपृच्छत् ॥१५४॥ स च सुग्रीवस्य हनुमानित्युवाच ॥१५५॥

रामं नत्वा सुग्रीवमेत्य नत्वा देव । नारायण इवापरः पुरुषो युवा मेघश्यामा जटी आजानुबाहुरतियशस्वी सूर्यसङ्काशेन सहापरेण इहास्ते ॥१५६॥ अथ तरुच्छायाधः संस्थितौ सर्वलक्षणसम्पन्नौ राजपुत्रौ दृष्ट्वा उक्तश्च ताभ्यां सुग्रीवाय निवेदयेति तत्त्वयि निवेदितम् ॥१५७॥ अथ सुग्रीवः सत्वरमुत्थाय पुष्पसलिलादि द्रव्यमादाय पादप्रक्षालनादिकं कृत्वा फलानि समर्प्य व्यज्ञापयत् ॥१५८॥ कौ युवां

भस्म के कारण रुक्ष शरीर वाले वे मोतियों की माला आदि को हटाकर उसके स्थान पर रुद्राक्ष की माला अपने वक्षःस्थल पर धारण करके, बहुत कम भूषणों से भूषित सीताजी के साथ तथा लक्ष्मणजी रूपी अनुचर के साथ वे दूसरे वन में चले गये ॥१५१॥ उसके पश्चात् उस वन में श्रीराम ने अनेक राक्षसों का वध किया । आपके ही समान उन्होंने सभी कार्यो को किया । आपके ही समान सीताजी का हरण उस समय भी हुआ सुग्रीव के निवास स्थान ऋष्यमूक पर्वत पर श्रीरामचन्द्रजी गये । घनी छाया वाले आम्रवृक्ष की छाया में वे लक्ष्मणजी के साथ रहने लगे । वृक्ष के ऊपर दोनों धनुषों को लटकाकर लक्ष्मणजी के गोद में शिर रखकर बाघम्बर की शय्या पर सोये हुए उससे लक्षित गीत को सुनते हुए तथा वृक्ष के फल को देखते हुए श्रीराम ने एक वानर को देखा । वह मणियों से निर्मित कुण्डल को धारण किए था । उसका वर्ण सुवर्ण के समान पीला था, वह दृढ़ता के साथ मूञ्ज की मेखला और कौपीन धारण किए था । उसका यज्ञोपवीत स्वच्छ था । वह अत्यन्त चञ्चल था । वह फल को लेकर उनके ऊपर फेंक रहा था । वह पुष्पों की मञ्जरी भी गिरा रहा था । वह लक्ष्मणजी के गीतों का अनुकरण कर रहा था । वह श्रीरामजी को पङ्खा झल रहा था । वह शाखा पर बैठकर भी इस तरह का कार्य कर रहा था । वह आम के फल के साथ लगा हुआ था । उसको देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी से कहा ॥१५२॥ लक्ष्मण यह वानर कौन है?॥१५३॥ लक्ष्मणजी ने कहा मैं नहीं जानता हूँ । उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी ने उस वानर को बुलाकर पूछा कि तुम किसके पुत्र हो । तुम्हारा नाम क्या है ?॥१५४॥ उसने कहा कि मैं सुग्रीव का दूत हूँ मेरा नाम हनुमान है ॥१५५॥ उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार करके वे सुग्रीव के पास आकर प्रणाम करके कहे हे महाराज ! यहाँ पर एक दूसरे नारायण के समान युवा पुरुष हैं । मेघ के समान उनका वर्णश्याम है, जटा धारण किए हैं, उनकी भुजाएँ घुटनों तक लटकती हैं । वे अत्यन्त यशस्वी हैं । उनके साथ सूर्य के समान तेजस्वी दूसरे पुरुष भी हैं ॥१५६॥ वे दोनों वृक्ष की छाया में नीचे स्थित है । राजकुमार के सभी लक्षणों से वे युक्त हैं । उन लोगों ने मुझको देखकर कहा कि सुग्रीव को बतला दो । इसीलिए मैं आपको

किमर्थमागतौ राजपुत्रौ तपस्विनाविति सुग्रीववचनमाकर्ण्य लक्ष्मणेनाभाषत रामः ॥१५९॥ दशरथतनयावावां राम लक्ष्मणौ दुष्टनिग्रहशिष्टपरिपालनाय वनं गताविति ॥१६०॥ अथ सुग्रीव आह युवयोरुपकारमपरं कार्यमस्तीति लक्ष्यते ॥१६१॥ अन्यथा सेनासमेतावागमिष्यतः । लक्ष्मण आह अस्ति कार्यान्तरम् । अमुष्यभार्या केनापहृता न ज्ञायते तामन्वेष्टुमागतौ तदेवावयोः कार्यमन्यदानुषङ्गिकम् । तदर्थमपि जलधिं तराव अपि पातालं प्रविशाव अपि नाकं साधयावः अपि महेन्द्रं पातयावः अपि बलिनं हन्वः किमपि कुर्वहे ॥१६२॥

सुग्रीव उवाच

रावणेनापहृतया कयाचिद्ध्रियमाणागतया विभूषणानि कानिचित्परित्यक्तानि गतानि मया सङ्गृहीतानि तानि दर्शयामीत्याभाष्य रामं मन्दिरमागमय्य दर्शयामास ॥१६३॥ रामोऽपि निरीक्ष्य निश्चित्य प्ररुद्य क्व गतोऽसौ रावण इति पप्रच्छ स च दक्षिणामाशां गत इति वभाषे ॥१६४॥ अथ रामस्तेन सख्यमकरोत् ।

अपृच्छच्च किमर्थमिह भार्याहीनः स्थित इति ॥१६५॥

सुग्रीव उवाच

मम भ्राता बाली महाबलो मम भार्यां राज्यं चापहृत्य किष्किन्धायामास्ते युद्धे न चाहं पराजितस्तद्वधाय

यह बात बतला रहा हूँ ॥१५७॥ इसके पश्चात् सुग्रीव शीघ्र ही उठकर पुष्प तथा जल आदि द्रव्यों को लेकर उनके चरणों को धोए । उसके पश्चात् उन्हें फलों को समर्पित किए । और उसके पश्चात् पूछे॥१५८॥ आप दोनों कौन हैं ? किसलिए आये हैं ? लगता है आप दोनों तपस्वी राजकुमार हैं । इस तरह से सुग्रीव के वचन को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी के माध्यम से कहा ॥१५९॥ हमदोनों महाराज दशरथ के पुत्र हैं । हमदोनों का नाम श्रीराम और लक्ष्मण है । हमारे वन में आने का उद्देश्य दुष्टों को निगृहीत करना और सज्जन पुरुषों की रक्षा करना है ॥१६०॥ उसके पश्चात् **सुग्रीव ने कहा**— लगता है कि आप दोनों का कार्य सज्जनों का उपकार करना और दुष्टों का अपकार करना है ॥१६१॥ अन्यथा आप दोनों सेना के साथ आते । यह सुनकर लक्ष्मणजी ने कहा हमें दूसरा भी कार्य करना है । इनकी पत्नी का किसने अपहरण किया है, इसका पता हमलोगों को नहीं है । उसका ही अन्वेषण करने के लिए हमदोनों आये हैं । यही हमारा मुख्य कार्य है अन्य कार्य तो आनुषङ्गिक हैं । उस कार्य को करने के लिए हम दोनों समुद्र को तैर सकते हैं, पाताल में भी प्रवेश कर सकते हैं । हम दोनों स्वर्ग में भी जा सकते हैं । हम महेन्द्र को भी मार सकते हैं । हम दोनों बालि को भी मार सकते हैं । हम दोनों कुछ भी कर सकते हैं ॥१६२॥ **सुग्रीव ने कहा**— रावण के द्वारा जिसका अपहरण किया गया था, रावण उसको ले जा रहा था, यहाँ पर उस नारी ने अपने कुछ आभूषणों को त्याग दिया, उन आभूषणों को मैंने संगृहीत कर लिया है । उन आभूषणों को मैं दिखाता हूँ । इस तरह से कहकर सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजी को अपने घर लिवा लाये और उन आभूषणों को दिखाये ॥१६३॥ श्रीराम भी उन आभूषणों को देखकर उन सबों को पहचान गये और बहुत अधिक रोए । उसके वाद उन्होंने पूछा कि रावण कहाँ गया । सुग्रीव ने कहा कि वह दक्षिण दिशा में गया है ॥१६४॥ उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी ने सुग्रीव के साथ मित्रता कर ली । उन्होंने सुग्रीव से पूछा कि तुम यहाँ अपनी पत्नी के बिना ही क्यों रहते हो ?॥१६५॥ **सुग्रीव ने कहा**— मेरा भाई बालि है । वह

सर्वथा मम चिन्ता यथाऽसौ त्वया निहन्यते तथाऽहमपि सागरं बद्ध्वा परतीरे लङ्कायां स्थितां सीतां रावणेनापहृतां तव समर्पयामीत्याभाष्य शपथं कृत्वा सुग्रीवो बालिनाऽतिबलिना युद्धायाहूतेन युयुधे ॥१६६॥ रामोऽप्यनन्तरमनिश्चयद्वालिनं नाहत् ॥१६७॥ अथ सुग्रीवः पलायितो राममिदमभाषत॥१६८॥ तव चित्तमविज्ञाय प्रवृत्तोऽहं मरणाय ॥१६९॥ रामोऽपि युवयोर्विशेषाज्ञानान्मया तूष्णींभूतं चिह्नितं त्वां निरीक्ष्य तं हन्मि ॥१७०॥ अथ सुग्रीवश्चिह्नं कृत्वा बालिनं युद्धायाहूय समतिष्ठत ॥१७१॥ तारा बभाषे बालिनम् ॥१७२॥

सहायवानिव लक्ष्यते सुग्रीवो नो चेदेवं नाह्वयति ज्ञातं मया रामलक्ष्मणौ दशरथतनयौ नारायणांशौ भूभारावतरणाय समागतौ तावस्य सहायभूतौ ॥१७३॥

बाल्युवाच

नीतिमान् इति मया श्रुतम् । नहि बलवन्तं विहाय दुर्बलं भजते तादृशः समायातु वा रामः प्रतिपन्नमधिकं कृत्वा विभेति वीरो यदि रामः स्वयं युद्धाय यातस्तदा युद्धं कर्तव्यमित्याभाष्य तारां सम्भाव्य सुग्रीवयुद्धाय निर्यातः ॥१७४॥ अथ मुष्टियुद्धमन्योन्यमभूत् ॥१७५॥ रामोऽपि बालिनं जघान॥१७६॥ पपात च बाल्याह चशस्त्रयुद्धे वा बाणघातोऽथ शोणितसर्वाङ्गो बभूव ॥१७७॥ अथ तारा चाङ्गदश्च समागत्य व्यथितौ बभूवतुः ॥१७८॥ अथ राघवं वानराः समायाता वाल्युपान्ते निपेतू रुरुदुश्च॥१७९॥

महावलवान् है । उसने मेरे राज्य और पत्नी दोनों का अपहरण कर लिया है । वह किष्किन्धा में रहता है। उसने मुझको युद्ध में पराजित कर दिया है । मैं उसका वध करने के लिए अत्यन्त चिन्तित हूँ । यदि आप उसको मार देते हैं तो मैं भी सागर को बाँधकर, सागर के दूसरे तट पर लङ्का में स्थित सीता को, जिसका अपहरण रावण ने किया है, उसको आपको समर्पित करने का काम करूँगा, इस तरह से कहकर सुग्रीव ने शपथ लिया । उसके बाद सुग्रीव ने युद्ध करने के लिए अत्यन्त बलवान्, बालि को ललकारा और उसके साथ युद्ध किया ॥१६६॥ उसके पश्चात् बालि तथा सुग्रीव में अन्तर को नहीं जान सकने के कारण राम बालि को नहीं मारे ॥१६७॥ उसके बाद सुग्रीव वहाँ से भाग चले और श्रीराम से कहे ॥१६८॥ आपके मन की बात को जाने बिना ही मैं मरने के लिए युद्ध करने लगा था ॥१६९॥ श्रीरामचन्द्रजी ने भी कहा तुम दोनों में अन्तर नहीं जान सकने के कारण मैं चूप रहा । अब मैं आपको चिह्न प्रदान करता हूँ और उसका वध करता हूँ ॥१७०॥ इसके पश्चात् चिह्न को धारण करके सुग्रीव ने बालि को युद्ध के लिए ललकारा और युद्ध करने लगा ॥१७१॥ तारा ने बलि से कहा ॥१७२॥ लगता है सुग्रीव को कोई सहायक मिल गया है, अन्यथा वह इस तरह से नहीं ललकारता । मैंने सुना है कि महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम और लक्ष्मण हैं, वे भगवान् नारायण के अंश से अवतीर्ण हैं । वे पृथिवी के भार को दूर करने के लिए अवतीर्ण हुए है । वे दोनों सुग्रीव के सहायक हो गये हैं ॥१७३॥ **बालि ने कहा**— मैंने सुना है श्रीराम नीति के ज्ञाता हैं । वे बलवान् को छोड़कर दुर्बल को नहीं अपनाते हैं । इस तरह के राम आयें। अधिक बलवान् को जानकर वीर भयभीत हो जाता है । यदि स्वयं राम युद्ध करने के लिए आ रहे हों तो भी युद्ध करना ही चाहिए । इस तरह से कहकर बालि ने तारा का संमादर किया और वह सुग्रीव के साथ युद्ध करने के लिए निकल पड़ा ॥१७४॥ उसके बाद सुग्रीव और बालि में मुष्टि युद्ध होने लगा॥१७५॥ राम ने भी बालि को मार दिया ॥१७६॥ बालि गिर पड़ा । शस्त्र युद्ध में बाण के प्रहार से बालि का सारा

अथ तारा रामं बभाषे शास्त्रकुशलाः शूराः धार्मिकाः राघवाः पुरा चापि राम ! कथं पापमकार्षीः॥१८०॥ न क्षत्रधर्मं जानीषे राजगणसेवितम् ॥१८१॥

अन्योन्यं युद्धयतोर्युद्धे जयो वा मरणं भवेत् ।
अन्यो यदि तयोर्हन्याद् ब्रह्महा स निगद्यते ॥१८२॥
किं वैरेण बालिनमाहनः किं वानरमांसाशया ॥१८३॥

अभोज्यं वानरं मांसं यद्यात्मनोऽप्रियात्सुखाभावादपरेषामपि तथाभावं मन्यसे अहो विमोहाद्यदि मामादातुमिदं कृतमेकपत्नीव्रतं तव ॥१८४॥ यदि रावणहृतां सीतामानेतुं सुग्रीवसहायाय कृतमेवमेवहामहदन्तरं बलबृद्धेन महाबलेन बालिना सद्भावेन दिनकरावर्तितान्तरे सीतामानेतुं समर्थेन स्मरणागतरावणनसमर्थेन वानरराजेन पञ्चाशत्परार्द्धवानरभल्लूकसेनावता आत्मकार्येण सिध्यत इति किं सुग्रीवेणाल्पवीर्येण सप्तपरार्द्धसेनापतिना कपिना किं सिध्यति कार्यं वचनवतः ॥१८५॥ अहो ज्ञातं सर्वदेव भद्रं यदुक्तोऽसि ॥१८६॥ वक्ति च रामः पृथिलीपतिना मया दुष्टनिग्रहणं कार्यं शिष्टपरिपालनं च वालिना सुग्रीवमहिषी रुमाऽपहृता राज्यं च अतश्च न तादृग्वधे दोषः ॥१८७॥

तारोवाच

सुग्रीवोऽपि तर्हि बध्यो दुन्दुभिना युध्यता वालिना बिले प्रविष्टेन वत्सरं तत्रोषितं तदन्तरे च मामपहृत्य राज्यं च कृतं सुग्रीवेण तं पूर्वमपि पश्चात्तं हन्तु ॥१८८॥

शरीर खून से भिंग गया ॥१७७॥ उसके बाद तारा और अङ्गद दोनों आकर दुःखी हो गये ॥१७८॥ उसके पश्चात् सभी वानर श्रीराम के सन्निकट आये वे सभी बालि के सन्निकट में जाकर रोने लगे ॥१७९॥ इसके पश्चात् तारा ने श्रीराम से कहा— रघुवंशी तो पहले से ही शास्त्रों के ज्ञाता रहे हैं । वे पहले से ही वीर तथा धार्मिक रहे हैं । फिर आप ने यह पाप कर्म क्यों किया ? ॥१८०॥ आप राजाओं के द्वारा सेवित क्षत्रियों के धर्म को नहीं जानते हैं ॥१८१॥ जब दो व्यक्ति आपस में युद्ध कर रहे हों तो उसमें किसी की भी विजय अथवा मृत्यु हो सकती है । उन दोनों में से किसी एक को कोई मार देता है तो वह ब्रह्मघाती कहा जाता है ॥१८२॥ आपने वैर के कारण बालि को मारा है क्या ? अथवा वानर का मांस प्राप्त करने की आशा से आपने उसे मारा है ?॥१८३॥ वानर का मांस तो अभोज्य होता है । यदि अपना अप्रिय होने के कारण अथवा सुख का अभाव होने के कारण आपने उसे मारा है तो आपकी ऐसी ही भावना दूसरों के प्रति भी हो सकती है । अथवा अज्ञानवशात् आप मुझको प्राप्त करने के लिए इसे मारा है तो फिर आपका एकपत्नी व्रत कैसे निभेगा ?॥१८४॥ यदि रावण के द्वारा हरी गयी सीता को लौटा लाने के लिए तथा सुग्रीव की सहायता प्राप्त करने के लिए आपने बालि का वध किया है तो महाबलवान् बालि तथा सुग्रीव में महान् अन्तर है । वे सद्भाव के द्वारा एक दिन के भीतर ही सीता को लाने में समर्थ थे। उनमें इतना सामर्थ्य था कि स्मरण करते ही रावण को पकड़कर आपको दे सकते थे । वे वानरराज थे। उनकी वानरों और भालुओं की पचास परार्द्ध सेना थी । उसी से आपका कार्य सिद्ध हो जाता । इस अल्प पराक्रम वाले सुग्रीव से आपका कौन सा लाभ हुआ ?। ये तो सात परार्द्ध सेना के स्वामी हैं । केवल कहने मात्र से आपका कार्य सिद्ध हो जायेगा क्या ?॥१८५॥ मैने जान लिया है कि आप कैसे सभी देवताओं का कल्याण करने वाले हैं ॥१८६॥ **श्रीराम ने कहा—** मैं पृथिवी का स्वामी हूँ । दुष्टों का निग्रह

राम उवाच

कियत्कालात्पूर्वमिदं च वद ॥१८९॥

तारोवाच

षष्टिवर्षसहस्रादर्वागशीतितमे वर्षे रक्षोयुद्धे सुग्रीवेण राज्यमपहृतम् ॥१९०॥ पुनश्च वर्षान्तरे प्राप्तेन वालिना सुग्रीवः पलायितः ॥१९१॥ अपहृता तस्य भार्या राज्यं चापहृतम् ॥१९२॥ तस्मिन्नेव दिने भवतः पितुर्दशरथस्याभिषेकः ॥१९३॥

राघव उवाच

मया पितुरनुशासनाद्राज्यगतदुष्टनिग्रहणं कृतम् । गुरुवचनस्यानुल्लङ्घनीयत्वात्तदपहरणवेलायां यो राजा स नाचरत् ॥१९४॥ अथवा स्वतन्त्रौ मृगौ मृगयोर्हतश्च वाली मृगाणामन्योन्यदारणाद्यजुगुप्सा च ॥१९५॥ यतो मम मृगयावदाथवा मृगाणाम् ।
चलितस्थितबद्धानां चलद्भ्रान्तपलायिनाम् । अथावसृजतासङ्गमुज्झितामृगया तथा ॥१९६॥ मृगया शास्त्रविधितो मृगयेयं मया कृता । दर्शनादर्शनाभ्यां च धावता धावता तथा ॥१९७॥

अवरोहात्परं स्थानं सात्त्विकानां प्रभिद्यते ।
राज्ञश्च मृगया धर्मो बिना चामिषभोजनम् ॥१९८॥

करना और शिष्ट पुरुषों का पालन करना ही मेरा कार्य है । बालि ने सुग्रीव की पत्नी और उसके राज्य का अपहरण कर लिया है । अतएव ऐसे बालि का वध करने में कोई दोष नहीं है ॥१८७॥ **तारा ने कहा**— तव तो सुग्रवी भी वध के योग्य हैं । दुंदुभि के साथ युद्ध करते हुए बालि जब गुफा में प्रवेश कर गये तो बालि उसके भीतर एक वर्ष तक रह गये । उसके बीच में सुग्रीव ने मेरा अपहरण कर लिया और बालि के राज्य का राजा हो गया । अतएव आपको पहले सुग्रीव को मारना चाहिए और उसके बाद बालि को मारना चाहिए था ॥१८८॥ **श्रीराम ने कहा**— बतलाओं कितने दिन पहले यह घटना हुयी॥१८९॥ **तारा ने कहा**— साठ हजार वर्ष पहले अस्सीवें वर्ष में जब राक्षस के साथ युद्ध हो रहा था उस समय सुग्रीव ने राज्य का अपहरण किया था ॥१९०॥ फिर जब बालि लौट कर आये तो सुग्रीव भाग गये॥१९१॥ बालि ने भी सुग्रीव की पत्नी और राज्य दोनों का अपहरण कर लिया ॥१९२॥ उसी दिन आपके पिता दशरथ का अभिषेक हुआ ॥१९३॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— मैंने अपने पिताजी की आज्ञा के अनुसार राज्य में विद्यमान दुष्टों का निग्रह किया है । गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है । उसके अपहरण के समय जो राजासन पर विद्यमान थे, वे उसका आचरण नहीं किए ॥१९४॥ अथवा बालि और सुग्रीव दोनों मृग (पशु) स्वतंत्र थे । उन दोनों मृगों में बालि मारा गया । परस्पर दोनों मृगों (पशुओं) में से किसी एक को मारने में कोई निन्दा नहीं हैं ॥१९५॥ क्योंकि मृगया करना मेरा धर्म है तो किसी एक मृग का अथवा अनेक मृगों का आखेट करने में कोई दोष नहीं है । चलते हुए, खड़े, बधे हुए, भ्रांत तथा पलायन करने वाले अथवा सङ्ग करने वाले या सङ्ग का परित्याग करने वाले की मृगया होती है ॥१९६॥ अतएव मृगया शास्त्र के अनुसार मैंने यह मृगया (आखेट) ही किया है । छिपकर या प्रकट रहकर, दौड़ते हुए अथवा खड़े रहकर अवरोह के कारण सात्त्विक पुरुषों का लक्ष्य विचलित हो जाता है । मांस नहीं खाने पर भी आखेट करना राजाओं का धर्म हैं ॥१९७-१९८॥ इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी

अथ रामवचनमाकर्ण्य एवं प्राकम्पयच्छिरांसि ॥१९९॥ वाली बभाषे राममञ्जलिं मस्तके निधाय नमस्ते राम ! शृणु वचनं मम ॥२००॥

शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगद्गुरुः । नारायणः स्वयं साक्षाद्भवानिति मया श्रुतम्॥२०१॥
त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति त्वां यजन्ति च यज्विनः ।
हव्यकव्यभुगेकस्त्वं पितृदेवस्वरूपधृत् ॥२०२॥
मरणे चिन्तमानस्य त्वां विमुक्तिरदूरतः । स त्वं मे दर्शनं प्राप्तो राम ! मे पापसंक्षयः॥२०३॥
गृहाण बाणं काकुत्स्थ व्यथितो भृशमस्म्यहम् ॥२०४॥
अथ रामस्तथेति बाणमादाय बालिनमुवाच किमिष्टं दीयतां वद ॥२०५॥

कपिरुवाच

यदि प्रसन्नो भगवान्मम सद्गतिं देहि ॥२०६॥ अयं सुग्रीवस्तथा रक्षणीयोऽङ्गदोऽथ तारा च मया पापिनाऽपराधः कृतस्तत्फलमनुभूतम् ॥२०७॥ अथ रामं पश्यन्नेव वाली ममार स्वर्गं च गतः॥२०८॥ अथ सुग्रीवं राज्येऽभिषिच्य स्वयं वनं विवेश ॥२०९॥ अथ तेन सहायेन जलधिसमीपं गत्वा क्व लङ्का क्व सीता क्व चारातिरिति सुग्रीवमाह रामः ॥२१०॥ अथ हनुमानाह प्रविश्य लङ्कां विचित्य सीतां सर्वतत्त्वमवगत्य युद्धं सन्धिर्वा कर्तव्यस्तदुदधिलङ्घनाय कश्चित्समादिशतु भगवान्॥२११॥ अथ सुग्रीवमाह रामः । कथमेतद् घटत इति ॥२१२॥

के वचन को सुनकर सबों ने अपना शिर हिला कर उनकी बातों का समर्थन किया ॥१९९॥ बालि ने हाथ जोड़कर और उसे शिर से लगाकर कहा राम आपको नमस्कार हैं । आप मेरी बात सुनें ॥२००॥ मैंने सुना है कि आप अपने हाथ में शङ्ख, चक्र और गदा धारण करने वाले हैं, पीताम्बर धारण करने वाले, जगत् के स्वामी हैं । आप स्वयं साक्षत् नारायण हैं ॥२०१॥ योगिजन आपका ही ध्यान करते हैं, और यज्ञ करने वाले आपका ही यजन करते हैं । पितृगण और देवगण स्वरूप होने के कारण आप ही हव्य और कव्य का भोग करते हैं ॥२०२॥ मृत्यु के समय जो जीव आपका ध्यान करते हैं, उनको मुक्ति प्राप्त हो जाती है । ऐसे ही आपका दर्शन मुझे प्राप्त हो गया अतएव मेरे समस्त पापों का नाश हो गया ॥२०३॥ हे काकुत्स्थ ! आप अपने बाण को निकाल लें, मुझे बहुत अधिक कष्ट हो रहा है ॥२०४॥ उसके बाद राम ने कहा ठीक है, उन्होंने बाण को बालि के शरीर से निकाल कर कहा तुम्हें क्या अभिप्रेत वरदान में दूँ? बतलाओ ॥२०५॥ **वानर ने कहा**— हे भगवन् ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे मुक्ति प्रदान कर दें । इस सुग्रीव, अङ्गद तथा तारा की आप रक्षा करें । मैं पापी हूँ । मैंने अपराध किया था उसका फल भी मैंने प्राप्त कर लिया ॥२०६-२०७॥ उसके बाद श्रीराम का दर्शन करते हुए बालि मर गया और स्वर्ग चला गया॥२०८॥ इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीव को राज्य पर अभिषिक्त करके वन में चले गये ॥२०९॥ इसके पश्चात् सुग्रीव की सहायता प्राप्त करके श्रीराम समुद्र के समीप जाकर लङ्का कहाँ है, सीता कहाँ है तथा मेरा शत्रु रावण कहा है ? इस तरह से सुग्रीव से पूछे ॥२१०॥ उसके पश्चात् हनुमानजी ने कहा लङ्का में प्रवेश करके सीता का पता लगाकर, सारी बातों को ठीक से जानकर युद्ध अथवा सन्धि जो भी करना हो करना चाहिए। अतएव आप समुद्र को पार करने के लिए किसी को आदेश दें ॥२११॥ इसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी ने सुग्रीव से कहा ये क्या कह रहे हैं ?॥२१२॥ **सुग्रीव ने कहा**— मेरे प्रमुख वानर तथा भालु करोड़ों हैं ॥२१३॥

कपिरुवाच

मम वानरा भल्लूप्रमुखाः कोटिशः सन्ति ॥२१३॥ एकं नियुज्य सर्वमाकलय्य यथायुक्तं तथा करणीयम् ॥२१४॥ अथ जाम्बवानाह । हनुमानेको गच्छतु बुध्यतु लङ्काम् ॥२१५॥ अथ हनुमानगमल्लङ्कापुरं विचित्य सीतामशोकवनिकायामासीनां तया सम्भाष्य च विश्वासं कृत्वा वनं बभञ्ज वनरक्षकांश्च ॥२१६॥ बद्धो रक्षसा लङ्कां दग्ध्वा उत्तरकूलं गत्वा रामं दृष्ट्वा वृत्तान्तं कथयित्वा तूष्णीमतिष्ठम् ॥२१७॥

अथ रामः सर्वैर्विचारयामास जाम्बवानुवाच रामेण लङ्का कपिभिर्विनश्यतीति नारदेन ममोक्तम्॥२१८॥ अथ सागरोत्तरणे यत्न आस्थेयः ॥२१९॥ अथ रामः शङ्करमाराध्य सर्वं निवेदयित्वा त्वदुक्तं करोमीति वचनमुक्त्वा शिवमभ्यर्च्य प्रणतोभूत्वा व्यजिज्ञपत् ॥२२०॥ हे महादेव ! महाभूतग्रास! महाप्रलयकारण ! महाहिभूषण ! महारुद्र ! शङ्कर ! परमेश्वर ! विरूपाक्ष ! नागयज्ञोपवीत ! करिकृत्तिवसन ! ब्रह्मशिरः ! कपालमालाभरभूषण ! नरकास्थिभूषण ! भसितपर ! नारायणप्रिय! शुभचरित ! पञ्चब्रह्मादिदेव ! पञ्चानन ! चतुर्वदन ! वेदवेद्य ! भक्तसुलभाभक्तदुर्लभ ! परमानन्दविज्ञान! पर पूषदन्तपातन ! दक्षशिरच्छेदन ! ब्रह्मपञ्चमशिरोहरण ! पार्वतीवल्लभ ! नारदोपगीयमानशुभचरित! शर्व ! त्रिनेत्र ! त्रिशूलधर ! पिनाकपाणे ! कपर्दिन्ननेकरूपधर ! वृषभवाहन ! शुद्धस्फटिकसङ्काश! चतुर्भुज ! नानायुध ! दक्षिणामूर्ते ! ईश्वर ! देवपते ! गङ्गाधर ! त्रिपुरहर ! श्रीशैलनिवास !

उन सबों में से किसी एक को नियुक्त करके और सारी बातों का पता लगाकर जैसा उचित हो वैसा करना चाहिए ॥२१४॥ उसके बाद जाम्बवान् ने कहा अकेले हनुमान जायँ और लङ्का की सारी जानकारी प्राप्त करें ॥२१५॥ उसके बाद हनुमानजी लङ्का में जाकर अशोक वाटिका में बैठी हुयी सीतजी का पता लगाकर उनके साथ बातें करके तथा उनको विश्वास दिलाकर वन को विनष्ट कर दिये और वन के रक्षकों को मार दिए ॥२१६॥ उनको इन्द्रजीत नामक राक्षस ने बाँध लिया इसके बाद हनुमानजी ने लङ्का को जला दिया। उसके बाद सागर के उत्तर तट पर जाकर, श्रीरामजी का दर्शन किए । सारा वृत्तान्त उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी को बतलाया इसके बाद वे मौन होकर बैठ गये ॥२१७॥ इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी ने सबों से विचार किया, उसके बाद जाम्बवान् ने कहा कि नारदजी ने मुझे बतलाया है कि वानर लङ्का को विनष्ट कर देंगे॥२१८॥ अतएव सागर के उत्तर तट पर सावधानी पूर्वक रहना चाहिए ॥२१९॥ उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्र ने शङ्करजी की आराधना की और उनको सारी बातों को निवेदित किया । उन्होंने कहा ! भगवन् आपने जो कहा है मैं उन्हीं सब कामों को कर रहा हूँ । उसके पश्चात् शिवजी की आराधना करके उन्होंने उनको प्रणाम किया फिर उनसे निवेदन किया ॥२२०॥ हे माहादेव ! हे माहाकाल हे महाभूतों को ग्रस्त करने वाले ! हे महाप्रलय के कारण स्वरूप ! बड़े-बड़े सर्पों को अपना भूषण बनाने वाले ! हे महारुद्र ! हे शङ्कर ! हे परमेश्वर ! हे विरूपाक्ष ! हे नाग को यज्ञोपवीत रूप से धारण करने वाले, गजासुर के चर्म को अपना वस्त्र बनाने वाले ! ब्रह्माजी के शिर को धारण करने वाले, मुण्डों की माला धारण करने वाले, तथा कपाल समूह के भूषण को धारण करने वाले, नरकासुर की अस्थियों को अपना भूषण बनाने वाले ! भस्म धारण करने वाले ! भगवान् नारायण के प्रिय ! मङ्गलमय चरितों को करने वाले ! हे पञ्चब्रह्मादिदेव ! हे पञ्चानन! हे ब्रह्माजी के वेदों के प्रतिपाद्य ! हे भक्तों को आसानी से प्राप्त होने वाले और अभक्तों के लिए

काशीनाथ ! केदारेश्वर ! भूषणसिद्धेश्वर ! गोकर्णेश्वर ! कनखलेश्वर ! पर्वतेश्वर ! चक्रप्रद ! बाणचिन्तापादक ! मुरहरपूजितचरणकमल ! सोम ! सोमभूषण ! सर्वज्ञ ! ज्योतिर्मय ! जगन्मय! नमस्ते नमस्ते ॥२२१॥ एवं स्तुवतो रामस्य पुरतो लिङ्गमध्यकोपेतस्तेजोमयमूर्त्तिराबिर्बभूव ॥२२२॥ अभयवानथ पुनः पद्मासनासीनमुमाधिष्ठिताङ्कमीशमामुक्तसर्वाभरणं सुकान्तिकिरीटिनं हैमवती कटिस्पर्शं करद्धयेनाभयवरप्रदं तरङ्गितानेकदिशाभिः पूर्णतेजस्विनं हासमुखं प्रसन्नवदनं ददर्श रामः ॥२२३॥ परमेशितारं ननाम बद्ध्वाञ्जलिः पुनश्च दण्डवत्पपात ॥२२४॥ अथ रामं परमेश्वरोऽपि वरं वृणु त्वं वरदोऽहमित्युक्तवान् ॥२२५॥

राम उवाच

लङ्कां गमिष्यामि समुद्रतरण उपायमेकं मम देहि शम्भो ! ॥२२६॥

शम्भुरुवाच

ममाजगवं धनुरस्ति तत्कालरूपमविकल्पं वा भवति । तदारुह्य समुद्रं तीर्त्वा लङ्कामाप्नुहि ॥२२७॥ रामस्तथेति निश्चित्य सस्माराजगवम् ॥२२८॥ आगतं धनुस्ततश्च रामोऽपूजयत् ॥२२९॥ अथ हरो धनुरादाय रामाय दत्तवान् ॥२३०॥ रामोऽपि जलधावपातयत् ॥२३१॥ आरुरुहुः सर्वे वानरा रामलक्ष्मणौ च षष्टिपरार्द्धं तेषामसङ्ख्येषु वानरेषु धनुरारुढेषु निकामं ययौ !॥२३२॥ धनुस्तटं वानराश्च ततस्ततो गत्वा निरीक्षयामासुः ॥२३३॥

दुर्लभ ! हे परमानन्द स्वरूप ! हे विज्ञान परायण ! हे पूषा देवता के दाँत को तोड़ देने वाले । हे दक्ष प्रजापति के शिर को काट देने वाले । हे ब्रह्माजी के पाँचवें शिर को काट देने वाले ! हे पार्वती बल्लभ! नारदजी जिनके शुभ चरित का गान किया करते हैं ऐसे हे शिवजी ! हे शर्व ! हे त्रिनेत्र ! हे त्रिशूल धारण करने वाले ! हे पिनाक नामक धनुष को धारण करने वाले ! हे कपर्दिन ! हे अनेक रूपों को धारण करने वाले ! हे वृषभवाहन ! हे शुद्ध स्फटिक मणि के समान वर्ण वाले शिवजी ! हे चार भुजाओं वाले ! हे अनेक प्रकार के आयुधों को धारण करने वाले ! हे दक्षिणामूर्ते ! हे ईश्वर ! हे देवताओं के स्वामिन् ! हे गङ्गाजी को धारण करने वाले ! हे त्रिपुर को विनष्ट करने वाले ! हे श्रीशैल पर निवास करने वाले ! हे काशी के स्वामिन् ! हे केदारेश्वर को भूषण रूप से धारण करने वाले ! हे सिद्धेश्वर ! हे गोकर्णेश्वर ! हे कनखलेश्वर ! हे पर्वतेश्वर ! हे चक्र प्रदान करने वाले ! हे बाणासुर की चिन्ता को पूर्ण करने वाले ! हे मुर नामक दैत्य को मारने वाले ! हे भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा पूजित चरण कमल वाले ! हे सोम स्वरूप ! हे सोम को भूषण रूप से धारण करने वाले शिवजी ! हे सवज्ञ ! हे सोम को भूषण रूप से धारण करने वाले शिवजी ! हे सर्वज्ञ ! हे ज्योतिर्मय ! हे जगन्मय शिवजी आपको बार-बार नमस्कार है।।२२१।। इस तरह से जब श्रीरामचन्द्रजी स्तुति कर रहे थे उसी समय लिङ्ग के मध्य में विराजमान तेजः स्वरूप मूर्ति वाले शिवजी भगवान् श्रीराम के समक्ष प्रकट हो गये ॥२२२॥ शङ्करजी अभय मुद्रा से युक्त थे । उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी ने देखा कि शङ्करजी पद्मासन से बैठे हैं और उनकी गोद में पार्वतीजी बैठी हैं । वे सभी प्रकार के आभरणों से अलंकृत हैं । उनकी सुन्दर कान्ति है । वे किरीट धारण किए हुए हैं। वे पार्वतीजी के कमर का स्पर्श किए हुए हैं और दोनों हाथों से अभय प्रदान कर रहे हैं, अनेक दिशाएँ तरङ्गित हो रहीं है । पूर्ण रूप से प्रसन्न तथा हँसते हुए प्रसन्न मुख वाले शङ्करजी हैं ॥२२३॥ सबों का

अथातिकायो नाम राक्षसः कपिबलमालोक्य रावणायोक्तवान् ॥२३४॥ रावणोऽपि किं कपिभिः शाखामृगैः किं वा मानुषाभ्यां रामलक्ष्मणाभ्यां किमायातं दैवागतमस्माकं भोजनमित्युवाच ॥२३५॥ अथ सुग्रीवः पश्चिमावलम्बिनि भास्वति हनूमज्जाम्बवदादिमहाबलैश्चातिकायैरसङ्ख्यातैर्लङ्कापार्श्वं गत्वा उपवनं प्रविश्य नाना फलानि खादित्वा पयः पीत्वोपवनरक्षिराक्षसान्विद्राव्य सर्वविपिनमेकैकशो गृहीत्वा प्राद्रवँल्लङ्कां गोपुरं च गत्वा समारुह्य प्रासादं च विशीर्यैकैकशः केचित्स्तम्भमादाय रक्षोभिर्युयुधुः ॥२३६॥ एके च शालां बभञ्जुर्गृहाणि चूर्णयामाससुर्बालवृद्धस्त्रीजनादिकं सर्वमेव निजघ्नुः ॥२३७॥

अथैकं प्राकारं निर्जितमाज्ञाय रावण इन्द्रजितं सन्दिदेश ॥२३८॥ इन्द्रिजिता च युद्धं वनराः कृत्वा भीताः पालयिताश्च ॥२३९॥ अथ हनुमानखिलं निर्गतमाज्ञाय रावणं ज्ञात्वा वानरानाहूय निर्भर्त्स्य सेनां महतीं कारयित्वा दशमुखं कल्पयित्वा मोदयामास ॥२४०॥ अथ खस्थ एवेन्द्रजिद्युयुधे

प्रशामन करने वाले शङ्करजी को श्रीरामचन्द्रजी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उसके पश्चात् उन्होंने शिवजी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥२२४॥ इसके पश्चात् परमेश्वर शिवजी ने कहा कि तुम मुझसे वरदान माँगो । मैं वरदान देना चाहता हूँ ॥२२५॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— हे शम्भो ! मैं लङ्का जाना चाहता हूँ, आप समुद्र पार करने का कोई साधन मुझे प्रदान करें ॥२२६॥ **शिवजी ने कहा**— मेरा अजगव धनुष है । वह काल स्वरूप है । उसका कोई भी विकल्प नहीं है । उसी पर चढ़कर समुद्र को पार करके लङ्का में चले जाओ ॥२२७॥ राम ने कहा ठीक है । इस तरह से निश्चित करके उन्होंने अजगव धनुष का स्मरण किया ॥२२८॥ स्मरण करते ही धनुष आ गया । श्रीरामचन्द्रजी ने उसकी पूजा की ॥२२९॥ उसके बाद शङ्करजी उस धनुष को लेकर उसे श्रीरामचन्द्रजी को प्रदान कर दिए ॥२३०॥ श्रीरामचन्द्रजी ने उस धनुष को समुद्र के ऊपर रख दिया ॥२३१॥ उस पर सभी वानर और राम लक्ष्मण चढ़ गये । वहाँ साठ परार्द्ध वानरों की सेना थी वे सबके सब उस धनुष पर चढ़कर अच्छी तरह से समुद्र के पार चले गये ॥२३२॥ उस पर जाकर सभी वानरों ने उस धनुष को देखा ॥२३३॥ उसके बाद अतिकाय नामक राक्षस वानरो को देखकर जाकर रावण को बतलाया ॥२३४॥ रावण ने कहा इन शखामृग वानरों तथा उन दो मनुष्यों से क्या होने वाला हैं ? ये तो भाग्यवशात् आ गये हैं । ये सब तो हमलोगों के भोजन हैं ॥२३५॥ उसके पश्चात् जब सूर्यास्त होने वाला था उसी समय सुग्रीव हनुमान् तथा जाम्बवान आदि महाबलवान् तथा विशालकाय असंख्य वीरों के साथ लङ्का के सन्निकट जाकर वहाँ के उपवन में प्रवेश करके, अनेक प्रकार के फलो को खाकर तथा पानी पीकर, उपवन की रक्षा करने वाले राक्षसों को भगाकर सम्पूर्ण वन के वृक्षों को प्रत्येक वीर उखाड़कर दौड़ पड़े और लङ्का के गोपुर पर चढ़कर वहाँ के प्रासादों को तोड़ फोड़कर प्रत्येक वीर उसके स्तम्भ को लेकर राक्षसों के साथ युद्ध करने लगे ॥२३६॥ कुछ वीरों ने वहाँ की शाला को तोड़ दिया तथा गृहो को चूर-चूर कर दिया और वहाँ के बालक, वृद्ध तथा स्त्रियों आदि को मार दिया॥२३७॥ उसके बाद रावण को इस बात का जब पता चला कि वानरों ने एक परकोटे को जीत लिया है तो उसने इन्द्रजीत् के पास युद्ध करने के लिए संदेश दिया ॥२३८॥ वानरों ने इन्द्रजित् के साथ युद्ध किया किन्तु वे भयभीत होकर वहाँ से भाग चले ॥२३९॥ उसके पश्चात् हनुमानजी को जब सम्पूर्ण समाचार का पता चला तो रावण के विषय में जानकर, वानरों को बुलाकर उन्होंने उन सबों को फटकारा।

न च वानरास्तं दृष्टवन्तः ॥२४१॥ अथ हनुमज्जाम्बवन्तौ खमुत्पत्य पर्वतशिखाराभ्यामिन्द्रजितं निजघ्नतुः ॥२४२॥ अथ भुवि पापात तं लक्ष्मणश्च यमलोकगामिनं चकार ॥२४३॥ अथातिकाय महाकायौ वानरसैन्यं बहुशो हत्वा लक्ष्मणं पीडयित्वा रामेण संयुध्य सुग्रीवं कृत्वा हनूमज्जाम्बवद्भ्यां युयुधाते पराजितौ गृहीत्वा च योद्धारावादाय रामसमीपं गत्वा रामाय न्यवेदयताम् ॥२४४॥ अतिकायमभाषत रामः ॥२४५॥ रावणस्य मम युद्धं ब्रूहि सचिवानामन्येषां महाभयानाञ्च॥२४६॥

अतिकाय उवाच

निश्चितमिदंपुरास्माभिः कार्यं सेनां विभागशः कृत्वा विद्युन्माली नाम राक्षसो महाबलो विचित्रयोधी दर्शनादर्शनयोधी वानरैः सर्वैरेक एव युध्यते ॥२४७॥ अपरे च बलिनोमहान्तः शिक्षितास्त्राश्चागता आवां च युवाभ्यां युध्यावो रावणः पुष्पकमारुह्यापरभागेन त्वामेव निहतिष्यति ॥२४८॥ अन्ये राक्षसाः कुम्भकर्णमुखाश्चात्मरूपं कृत्वा त्वां परिवार्य गृहीत्वा सीतायै दर्शयित्वा तत्सन्निधावेव हनिष्यति ॥२४९॥ रामः प्राह अहो बलवतां किमसाध्यमेव भवति दैवगतिः कुटिला । सुग्रीवोऽतिकोपनः सक्रोधं दृष्ट्वा राममुवाच ॥२५०॥ वध्यावेतौ च मोचनीयौ ॥२५१॥ रामः प्राहावध्यौ मोचनीयावेतौ वसनानि भूषणान्यानयेत्युक्तमात्रे हनूमता तान्यानीतानि रामस्ताभ्यां दत्तवान्॥२५२॥ नत्वा यदेतल्लङ्काद्वारे दृश्यते दारुपञ्चवक्त्रं शुक्रेणोक्तमेतेन च्छिन्नेन रावणो

विशाल सेना को एकत्रित करके वे उसे रावण ही जानकर प्रसन्न हुए ॥२४०॥ उसके बाद इन्द्रजित् आकाश में ही स्थित होकर युद्ध करता था और वानर उसको नहीं देख पाते थे ॥२४१॥ उसके पश्चात् हनुमानजी और जाम्बवान आकाश में उड़कर इन्द्रजित् को दो शिखरों से मारे ॥२४२॥ उसके बाद इन्द्रजित् पृथिवी पर गिर पड़ा और उसको लक्ष्मणजी ने मार दिया ॥२४३॥ उसके बाद अतिकाय और महाकाय नामक राक्षसों ने बहुत अधिक वानरों की सेना को मार दिया और उन दोनों ने राम और लक्ष्मण को भी पीड़ित किया । राम के साथ अच्छी तरह से युद्ध करके वे दोनों ने सुग्रीव के साथ भी युद्ध किया । उसके पश्चात् उन दोनों ने हनुमानजी तथा जाम्बवान् के साथ युद्ध किया और वे पराजित हो गये । हनुमानजी और जाम्बवान् ये दोनों योधा उन दोनों को पकड़कर श्रीरामजी को उन दोनों को समर्पित कर दिये ॥२४४॥ श्रीरामचन्द्रजी ने अतिकाय से कहा ॥२४५॥ तुम रावण और उसके अत्यन्त भयङ्कर जो योद्धा हों उन सबों से कहना कि वे मुझसे युद्ध करें ॥२४६॥ अतिकाय ने कहा निश्चित रूप से मैं सबसे पहले इस कार्य को करूँगा । उसके पश्चात् विद्युन्माली नामक राक्षस ने अपनी सेना का विभाग किया । वह महाबलवान् तथा विचित्र ढंग से युद्ध करने वाला था । वह युद्ध करते समय कभी दिखायी पड़ता था और कभी नहीं दिखायी पड़ता था । वह अकेले ही सभी वानरों के साथ युद्ध करने लगा ॥२४७॥ उस समय दूसरे भी बलवान् तथा महान् अस्त्रों के प्रयोग में निपुण राक्षस आ गये । उस समय अतिकाय और महाकाय ने कहा हमदोनों तुम दोनों (राम और लक्ष्मण) के साथ युद्ध करेंगे । रावण पुष्पक विमान पर चढ़कर दूसरी ओर से तुमको ही मारेंगे ॥२४८॥ दूसरे कुम्भकर्ण आदि अपना रूप बनाकर तुमको घेर कर पकड़ लेंगे और सीता को दिखाकर तुम्हें मार देंगे ॥२४९॥ श्रीरामचन्द्रजी ने कहा अरे बलवानों के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है । दैव की गति तो कुटिल है । ऐसा तुमलोग कर सकते हो क्रोध करने वाले सुग्रीव ने श्रीरामचन्द्रजी को देखकर क्रोध पूर्वक कहा ॥२५०॥ ये दोनों मार देने योग्य हैं । इन दोनों को छोड़ना नहीं चाहिए।२५१॥

हन्यते॥२५३॥ अथ च दारुच्छेदन समनन्तारं पातालं गन्तव्यमिति भार्गवभाषितं शासनं लिखितम्॥२५४॥ तस्मात्त्वमिदं दार्वेकप्रयत्नैकबाणनिपातने पञ्चधाच्छिन्धि ततस्तव शक्तिं ज्ञात्वा युद्धमति दृढं कुर्वीमहि ॥२५५॥ अथ भार्गववचो विज्ञाय राम:पूर्व कोट्यां स्पर्शमात्रेण सज्यं कृत्वा धनुषि वाणं संयोज्य रक्षोभ्यां हनूमतश्रावयन्नेवबाणं मुमोच ॥२५६॥

बाणं धनुषश्चलितं तौ राक्षसो बाणमार्गं निरीक्षमाणो दारुबाणेन पञ्चधाच्छिन्नं निरीक्ष्य रामं व्यज्ञापयतामावयोः शिशवो रक्षणीयास्त्वयेति तथेत्याह रामः राक्षसौ लङ्कां प्रविष्टौ ॥२५७॥ अथ प्रकारयुद्धं कर्तुं वानरा गत्वा सर्वतो वरणमात्रं हि षार्ष्णिभि:पादैर्जानुभि:करै पृष्ठैश्च तलसमं कृत्वा द्वितीयप्रकारां गतास्तदा च रावणः समागत्य सर्वानिवेषुभिर्द्रावयित्वा तदनुगच्छन्राममगात् ॥२५८॥ अथ राममपि पञ्चभिर्बाणैर्विव्याध ॥२५९॥ अथ रामो दशभिर्बाणै रावणं सव्रणं चकार ॥२६०॥ अनयोरतिदारुणमन्योन्यं युद्धं बभूव ॥२६१॥ रावणो दशभिर्बाणैर्विव्याध ॥२६२॥ अथ रामबाणैश्च क्षतशरीरो राक्षसः पलायनपरोऽभवत् ॥२६३॥ वानरा लक्ष्मणश्च कोटि-कोटि राक्षसानघ्नन् ॥२६४॥ अथ परस्मिन्नहनि विभीषणो रावणं विचार्येदमुवाच ॥२६५॥

तृतीयोपायकालोऽयं चतुर्थं न विचारय ।
चतुर्थो विपरीतो न शस्तः शस्तार्थकारिणः ॥२६६॥

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा— ये दोनों मारने योग्य नहीं है, छोड़ देने योग्य है । इन सबों के लिए वस्त्र और भूषण लाओ । यह कहते ही हनुमान जी वस्त्र और भूषणों को लाये और श्रीरामचन्द्रजी ने उन दोनों को प्रदान किया ॥२५२॥ उन दोनों ने श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम करके कहा लङ्का के द्वार पर पाञ्च मुखों वाला जो दारु दिखायी देता है । इसके काट देने पर ही रावण मारा जायेगा यह शुक्राचार्य ने कहा है ॥२५३॥ और शुक्राचार्य ने कहा है कि उस दारु को काटने के बाद राक्षसों को पाताल में चला जाना चाहिए यह उनका लिखित अनुशासन है ॥२५४॥ अतएव तुम एक ही बार एक ही बाण का प्रयोग करके इस दारु को पाँच टुकडों में काट दो । उसके बाद तुम्हारी शक्ति को जानकर हमलोग अत्यन्त घोर संग्राम करेंगे॥२५५॥ उसके बाद शुक्राचार्य की वाणी को जानकर श्रीरामचन्द्रजी ने धनुष के प्रथम कोटि को पकड़कर धनुष को चढ़ाया और उन्होंने उन दोनों राक्षसों तथा हनुमानजी को सुनाकर के वाण को छोड़ा ॥२५६॥ धनुष से चले हुए बाण के मार्ग को उन दोनों राक्षसों ने उस दारु (स्तम्भ) को बाण ने पाँच टुकड़ों में काट दिया। इस बात को देखकर उन दोनों ने श्रीराम से प्रार्थना किया की आप मेरे बच्चों की रक्षा करेंगे । श्रीरामचन्द्रजी ने भी कहा ठीक है । वे दोनों राक्षस लङ्का में चले गये ॥२५७॥ उसके प्राकार पर युद्ध करने के लिए वानर वीर जाकर हर ओर से आवरण मात्र को अपने पार्ष्णिभाग से, पैरों से, घुटनों से, हाथों से तथा पीठ से समतल बना दिया । उसके बाद वे सब दूसरे परकोटे पर पहुँच गये । उस समय रावण युद्ध करने के लिए आया । उसने सभी वानरों को अपने बाणों से मारकर भगा दिया । उन वानरों के पीछे दौड़ता हुआ रावण राम के पास आ गया ॥२५८॥ उसने पाँच बाणों से राम को भी छेद दिया ॥२५९॥ उसके बाद श्रीरामचन्द्र ने दश बाणों से मारकर रावण को व्रण युक्त बना दिया ॥२६०॥ श्रीरामचन्द्रजी और रावण में परस्पर में भयङ्कर युद्ध हुआ ॥२६१॥ रावण ने श्रीरामचन्द्रजी को दश बाणों से छेद दिया ॥२६२॥ उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्र के बाणों से क्षतविक्षत शरीर वाला रावण भागने लग गया ॥२६३॥ लक्ष्मणजी और

परस्य चाऽत्मनःशक्तिं विदित्वा चाऽऽत्मनोऽधिकाम् ।
तदा युद्धं प्रशस्तं स्याद्विपरीतं विनाशकम् ॥२६७॥
रामेण बलिना नैव युद्धं ते दुर्बलस्य च ।
एकेषु बालिहन्ताऽसौ वालिर्ज्ञातस्त्वया पुरा ॥२६८॥
मारीच एकबाणेन भवानपि पलायितः । निहता राक्षसाः शूरा इन्द्रजिच्च सुतो हतः ॥२६९॥
वरेण्यत्रितयं भग्नं तेन युद्धं च नैव ते । दासभावमथोवाऽपि दत्त्वा सीतामथाप्नुहि ॥२७०॥
गोपुरस्थं तथा दारुपञ्चवक्त्रमथेपुणा । चिच्छेद पञ्चधा तेन रामस्त्वां मारयिष्यति ॥२७१॥
त्वदर्थं वहवो नष्टा नाशमेष्यन्ति चापरे । एकोन्यायःसुखार्थाय न च मौढ्यं सहोदर ॥२७२॥
मानुषीं मृत्युसंयुक्तामनिच्छन्तीं पतिव्रताम् । पत्नीं बलवतश्चापि पूजयित्वा विसर्जय ॥२७३॥
अनिच्छन्त्याःसमायोगे भवेद्दुःखपरम्परा । दुर्गन्धिमलसंयुक्तो नारीसङ्गो जुगुप्सितः ॥२७४॥
विरक्तिरथचेज्जाता दुःखायाकार्यवर्तनम् । अनुरागो यदि भवेन्मरणं नरकं ततः ॥२७५॥
आत्मनोमरणव्यर्थं तस्याश्चाद्यसमागमे । त्यागो वा मरणं तातधर्मपत्न्यास्तथा भवेत् ॥२७६॥
एवमादि तथाऽन्यच्च कश्मलं सम्भविष्यति ।
अन्यदाख्यामि ते वाक्यं सर्वेषां च प्रियं हितम् ॥२७७॥

वानरों ने करोड़ों-करोड़ राक्षसों को मार दिया ॥२६४॥ उसके बाद दूसरे दिन विभीषण ने विचार करके रावण से कहा ॥२६५॥ यह तीसरे उपाय का समय है, अतएव आप चतुर्थ उपाय के बारे में न सोचें। चतुर्थ उपाय (युद्ध करना) श्रेष्ठ तो है किन्तु बलवानों के साथ युद्ध हितकारक नहीं होता है ॥२६६॥ पहले शत्रु तथा अपनी शक्ति का पता लगाना चाहिए । यदि अपनी शक्ति अधिक हो तो युद्ध करना ठीक होता है, यदि शत्रु की शक्ति अधिक हो तो वह युद्ध विनाशक करने वाला होता है ॥२६७॥ आप दुर्बल हैं। अतएव बलवान् श्रीरामचन्द्र के साथ आपका युद्ध करना ठीक नहीं है । इन्होंने एक ही बाण से बालि को मार दिया । आप बालि को पहले ही जान चुके हैं ॥२६८॥ मारीच को भी इन्होंने एक ही बाण से मारा और आप भी इनके साथ युद्ध करके युद्ध के मैदान से भाग गये । बड़े-बड़े वीर राक्षस और आपका पुत्र इन्द्रिजित् भी मारा जा चुका है ॥२६९॥ तीन वरेण्य (श्रेष्ठ) पुरुष मारे जा चुके हैं, अतएव इनके साथ युद्ध करना ठीक नहीं है । आप इनको सीताजी को लौटाकर इनके दासभाव को प्राप्त कर लें ॥२७०॥ गोपुर पर विद्यमान पाँच मुख वाले दारु को इन्होंने एक ही बाण से पाँच टुकड़ों में काट दिया है, अतएव ये आपका वध कर देंगे ॥२७१॥ आपके लिए बहुत से लोग मारे जा चुके हैं और बहुत से लोग मारे भी जायेंगे । हे सहोदर ! एक न्याय सुखप्रद होता है किन्तु मूर्खता कल्याणकारिणी नहीं होती है ॥२७२॥ मानुषी सीता मर जाने वाली है । वह पतिव्रता है । वह आपको नहीं चाहती है । वह आपसे बलवान् पुरुष की पत्नी है । आप उसकी पूजा करें और उसको लौटा दें ॥२७३॥ जो स्त्री आपको नहीं चाहती है, उसके साथ संयोग करने पर केवल कष्ट की ही प्राप्ति होगी । अत्यन्त घृणित कर्म है ॥२७४॥ यदि आपकी उससे विरक्ति हो जाती है तो फिर उससे आपको कष्ट की प्राप्ति नहीं होगी । यदि आपका उसमें अनुराग बना रहा तो फिर उससे आपकी मृत्यु हो जायेगी और उसके पश्चात् आपको नरक की प्राप्ति होगी ॥२७५॥ आज यदि आप उस सीता के साथ समागम करते हैं तो फिर आपकी व्यर्थ में ही मृत्यु हो जायेगी ।

गत्वा रामान्तिकं नत्वा स्तुत्वा विज्ञाप्य राघवम् ।
क्षम राम महावीर शरणागतवत्सल ! ॥२७८॥
तामसा राक्षसा:सर्वे वयमेते सुपापिन: । सीतापहारजं रोषं त्यक्त्वा पुत्रानवेहि न: ॥२७९॥
त्वदधीना वयं राम रक्ष वा मारयेच्छया । इत्युदीर्य पुरस्तस्य राघवस्य स्थिता वयम् ॥२८०॥
स्थिररायुषो भविष्याम:स्थिरराज्या दशानन ! ।
अथाऽऽह रावणो वाक्यमहो नो राक्षसो भवान् ॥२८१॥
न शूरो राजधर्मं च न च जानासि शाश्वतम् ।
परनारीपरद्रव्यपरराज्यनिषेवया ॥२८२॥
शूराणामुत्तमो धर्मो न षण्ढानां भवादृशाम् ।
शत्रुपक्षं समालिङ्ग्य निर्गच्छेच्छा हि चेन्नृप ॥२८३॥

अथ विभीषणो मन्दिरं गत्वा रामान्तिकं गत्वा तं शरणमभजत् ॥२८४॥ अथ रावणः पुरान्निर्गत्य रामेण लक्ष्मणवानरै राक्षसा अपि युयुधिरे ॥२८५॥ अथ रावणं महाबलं हन्तुमशक्तो रामो विभीषणमुखमवलोक्य तदुक्तचिह्नपदं बाणेन निर्भिद्यामारयत् ॥२८६॥ अथ कुम्भकर्णो महागदामादाय सर्वं निष्पाद्य वानराननेकशो भक्षयित्वा रामोत्तमाङ्गं गदयाऽहन् ॥२८७॥ अथ रामो निशितबाणशतेन तमहन्ममार कुम्भकर्णः ॥२८८॥ अथ विभीषणेन रावणादेः श्राद्धादिकं कारयित्वा शिवालयं

अतएव हे तात ! उस धर्मपत्नी की या तो मृत्यु हो जायेगी अथवा आप उसका त्याग कर दें ॥२७६॥ इस तरह का ही आप को काम करना चाहिए अन्यथा आप को पाप लगेगा । मैं आपके लिए तथा सबलोगों के प्रिय तथा कल्याणकारी दूसरी बातों को कह रहा हूँ ॥२७७॥ हम सभी लोग राम के निकट जाकर उनको नमस्कार तथा स्तुति करके कहें कि हे महावीर ! शरणागत वत्सल राम ! आप हमें क्षमा करें॥२७८॥ सभी राक्षस तमोगुणी हैं । हम लोग तो महापापी है । सीताजी के अपहरण जन्य पाप को आप क्षमा कर दें और हमलोगों को अपने पुत्र के समान स्वीकार करें ॥२७९॥ हे श्रीरामचन्द्रजी हमलोग आपके अधीन हैं । आप अपनी इच्छा के अनुसार हमलोगों की रक्षा करें अथवा हमलोगों को मार दें । इस तरह से कहकर हमलोग उनके सामने खड़े हो जायँ ॥२८०॥ हे दशानन ! ऐसा करके हमलोगों की आयु स्थिर हो जायेगी और आपका राज्य स्थिर हो जायेगा । उसके पश्चात् रावण ने कहा हम राक्षसों के बीच तुम तो धन्य हो॥२८१॥ तुम न तो वीर हो और न तो शाश्वत राजधर्म को ही जानते हो । शूरवीरों का सर्वोत्तम धर्म है कि वे दूसरों की नारी, दूसरों के द्रव्य और दूसरे के राज्य का सेवन करें । किन्तु यह धर्म तुम जैसे नपुंसकों का नहीं है । राजन् ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम शत्रु के ही पक्ष को अपनाकर लङ्का से बाहर निकल जाओ ॥२८२-२८३॥ उसके पश्चात् विभीषण पहले अपने घर में गये उसके पश्चात् वे श्रीरामजी के पास चले गये और रामजी के ही शरण मे चले गये ॥२८४॥ उसके बाद रावण अपनी नगरी से निकला । वह श्रीराम के साथ और दूसरे राक्षस लक्ष्मण और वानरों के साथ युद्ध करने लगे ॥२८५॥ उसके बाद महाबलवान रावण को मारने में असमर्थ राम विभीषण का मुख देखने लगे और विभीषण के द्वारा बतलाये गये चिह्न के स्थान को बाण से छेद कर वे उसे मार दिये ॥२८६॥ उसके पश्चात् कुम्भकर्ण महागदा को लेकर सबों को मारकर, अनेक वानरों को खा गया और उसने श्रीराम के शिर पर गदा से

तन्नाम्ना कारयित्वा तमेव लङ्काराज्ये विभीषणमभिषिच्य सीतामग्निप्रवेशशुद्धामुमामहेश्वराभ्यां नमयित्वा पुरन्दरेण दत्ताखिलामृत्तबलायुष्य: सुपुष्पकमारुह्य जलधिमुत्तीर्य पारावारतटे सेनां समवस्थाप्य शिवप्रतिष्ठां तत्र कृत्वा मुनिभिर्देवैरभ्यर्चितोऽयोध्यामगमत् ॥२८९॥ अथ भरतादि समुपेतो नागरैर्वसिष्ठेन मुनिभिश्चाभ्यर्चित:स्वगृहमगमत् ॥२९०॥ आत्मनाऽऽगतानिन्द्रादि देवानासनादिनाऽभ्यर्च्य वानरान्सम्पूज्य मुक्तजटोऽभिषिक्तो राज्ये रावणवधहर्षिता देवा राममूचुः ॥२९१॥ त्वयाऽऽत्मराज्ये स्थापिता वयं न:सर्वदा परिपालयत्वमादिनारयणो देवो निखिलदुष्टनिग्रहार्थमवतीर्णो रावणं सबान्धवं हत्वा लोकत्रयरक्षकोऽसि श्रिया सह सुखी भवेत्युदीर्य स्वर्गं गताः ॥२९२॥ अथायोध्यावासिनो रामं प्रहर्षिता ऊचुः ॥२९३॥

हत्वा शत्रून्समायातो दिष्ट्या प्राप्तोऽसि वै शिवम् ।
दिष्ट्या त्वं राजसे राम दिष्ट्या पालयसे प्रजाः ॥२९४॥
त्वया यज्ञाः करिष्यन्ते त्वया धर्मो विवर्धते ।
इति पौरवचः श्रुत्वा रामो राजीवलोचनः ॥२९५॥
वस्त्रादिभिरथो सर्वान्नागरान्समपूजयत् । मुनीनुवाच धर्मात्मा पूजयित्वाखिलैर्जनैः ॥२९६॥
कच्चित्तप:समृद्धं वः कच्चिद्यज्ञः स्वनुष्ठितः ।
कच्चित्स्वदारनिरताः कच्चिदीशोऽभिपूज्यते ॥२९७॥

प्रहार किया ॥२८७॥ उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी ने उसको सैकड़ों तीक्ष्ण बाणों से मारा और कुम्भकरण मर गया ॥२८८॥ उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी ने विर्भीषण से रावण आदि के श्राद्ध आदि को कराया और उनके नाम से शिवालय बनवाया । लङ्का के राज्य पर उस विभीषण को ही अभिषिक्त करके सीताजी की उन्होंने अग्नि परीक्षा की और सीताजी के शुद्ध जानकर वे उनसे उमा तथा महेश्वर को प्रणाम करवाये । उसके पश्चात् इन्द्र के द्वारा प्रदत्त अमृत, से बल तथा आयु से सम्पन्न होकर पुष्पक विमान पर चढ़कर वे समुद्र को पार किए । समुद्र के तट पर सेना को स्थापित करके, वहाँ पर शिवजी की उन्होने प्रतिष्ठा की। उसके पश्चात् मुनियों तथा देवताओं से पूजित होकर वे अयोध्या आये ॥२८९॥ उसके पश्चात् भरत आदि के साथ वे नागरिकों, महर्षि वसिष्ठ तथा मुनियों से पूजित होकर अपने भवन में आये ॥२९०॥ अपने से आये हुए इन्द्र आदि देवताओं को आसन आदि प्रदान करके पूजा करके तथा वानरों का सम्मान करके उन्होंने अपनी जटा खोली । उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी का राज्याभिषेक हुआ । रावण का वध हो जाने से प्रसन्न देवताओं ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा ॥२९१॥ आपने हमलोगों को अपने-अपने राज्य में स्थापित कर दिया है । आप हमलोगों की सदा रक्षा करें । आप आदि नारायण देव हैं । आप सम्पूर्ण सभी दुष्टों का निग्रह करने के लिए अवतार ग्रहण किए हैं । बान्धवों के साथ रावण को मारकर आपने त्रैलोक्य की रक्षा की है । आप श्रीदेवी के साथ सुखी रहें । इस तरह से कहकर सभी देवता स्वर्ग चले गये ॥२९२॥ अत्यन्त प्रसन्न हुए अयोध्यावासियों ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा ॥२९३॥ शत्रुओं को मारकर आप भाग्यवशात् आये हुए हैं और भाग्यवशात् ही आपने कल्याण प्राप्त किया है । राजन् ! आप भाग्यवशात् सुशोभित हो रहें है और प्रजाओं का पालन कर रहे है ॥२९४॥ आपके ही द्वारा सभी लोग यज्ञ करेंगे और आपके द्वारा धर्म की समृद्धि होती है । इसतरह से नागरिकों की वाणी को सुनकर कमल के समान नेत्र वाले भगवान् श्रीराम ॥२९५॥ ने सभी नागरिकों का वस्त्र आदि के द्वारा सम्मान किया । धर्मात्मा श्रीराम ने सभी लोगों के द्वारा मुनियों की पूजा कराकर कहा ॥२९६॥ आपलोगों की तपस्या बढ़ रही है न ? आपलोगों ने यज्ञ

कच्चित्सुप्रजसो भार्याः कच्चित्सर्वं सुखोत्तरम् ॥२९८॥

मुनयः ऊचुः

त्वयि राजनि काकुत्स्थ ! सर्व स्वस्थं तपस्विनाम् ।
गच्छामहे पदमितः किं वा त्वं मन्यसे नृप ! ॥२९९॥

राम उवाच

यस्य विप्राःप्रसीदन्ति तस्य शम्भुःप्रसीदति। यस्य प्रसीदतीशानस्तस्य भद्रं भविष्यति॥३००॥
तत्कृत्वा भोजनमिह गन्तुमर्हा अनन्तरम् । तथेत्युक्त्वा मुनिगणाः कृत्वा भोजनमुत्तमम्॥३०१॥
अभिवर्ध्य तमाशीर्भिर्हृष्टाःस्वंस्वं पदं ययुः। रामोऽपि परमप्रीतः सभार्यश्च सहानुजः ॥३०२॥
अकण्टकं स कृतवान्राज्यं सर्वजनप्रियः। शृणोत्येतदुपाख्यानं यः कश्चिदपिपातकी॥३०३॥
सर्वपापविनिर्मुक्तःपरंब्रह्माधिगच्छति । न दुर्गतिर्भवेत्तस्य यश्चेदं स्मरते नरः ॥३०४॥
यश्चापि कीर्तयेत्तस्य एवमेतदुदीरितम् ॥३०५॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शिवराघवसंवादे पुराकल्पीयरामायणकथनं नाम षोडशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥११६॥

* * *

का अच्छी तरह से अनुष्ठान किया है न ? आपलोग अपनी पत्नियों से ही प्रेम करते हैं न ? क्या आपलोग भगवान् शिव की पूजा करते हैं ?॥२९७॥ क्या आपलोगों की पत्नियों ने सुन्दर पुत्रों को प्राप्त किया है ? क्या आपलोगों के द्वारा किए गये कार्यों का परिणाम सुखमय होता है ?॥२९८॥ **मुनियों ने कहा—** हे काकुत्स्थ ! श्रीराम ! आपके राज्यकाल में तपस्वियों का सारा कार्य अच्छी तरह से चल रहा है । अब हमलोग यहाँ से अपने गन्तव्य स्थल पर जा रहे हैं, आप इसको अच्छा मानते हैं ?॥२९९॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—** जिसके ऊपर ब्राह्मण प्रसन्न रहते हैं, उस पर शिवजी भी कृपा करते हैं । जिस पर शङ्करजी प्रसन्न रहते हैं, उसका सब प्रकार से कल्याण ही होता है ॥३००॥ अतएव आपलोग यहाँ पर भोजन करके अपने स्थान पर जायँ । मुनियों ने कहा ठीक है, ऐसा कहकर उन लोगों ने उत्तम कोटि का भोजन किया ॥३०१॥ अपने आशीर्वचनों से श्रीरामचन्द्रजी का अभिनन्दन करके वे सभी लोग अपने-अपने स्थान पर चले गये । श्रीरामचन्द्रजी ने भी अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक अपनी पत्नी तथा अनुजों के साथ अकण्टक राज्य किया । श्रीरामचन्द्रजी सभी प्रजाओं के प्रिय थे । इस कथा को यदि कोई पापी मनुष्य भी सुनता है तो ॥३०२-३०३॥ वह सभी पापों से मुक्त होकर परब्रह्म को प्राप्त करता है । जो मनुष्य इस कथा का स्मरण भी करता है उसकी कभी दुर्गति नहीं होती है ॥३०४॥ जो कोई इस कथा को पढ़ता है, उसके भी सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥३०५॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवें पातालखण्ड के एक सौ सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११६।।

* * *

एक सौ सत्रहवाँ अध्याय

सूत उवाच

भारद्वाजगृहेभुक्त्वा रामचन्द्रःप्रसन्नधीः। मुनीन्द्रविष्णुसहितो वानरर्क्षसमन्वितः ॥१॥
मेघच्छन्ने तथाकशे मन्दं चरति मारुते। तद्वनाभ्यन्तरे क्वपि सुदेवगृहमुत्तमम् ॥२॥
अष्टापदस्तम्भयुतं हेमपट्टिककल्पितम्। मणिमौक्तिकसंयुक्तं राजतैःकलशैर्युतम्॥३॥
पाटीरचन्द्रकस्तूरीकुङ्कुमैःसुरभीकृतम् । कर्दमैर्जालकयुतं शकलोपरिसंवृति ॥४॥
चन्द्रज्योत्स्नागमं सूर्यानिरीक्ष्या (?) मध्यभीत्तिकम् ।
गृहान्तर्भूतलं कृत्स्नं चन्द्रपुष्परसोक्षितम् ॥५॥
दिगुदीची तथा कृत्स्ना भित्तिकल्पवर्जिता ।
स्तम्भे स्तम्भे चित्रकारी स्वपादीपरिकल्पितम् ॥६॥
शतहस्ताङ्गणं तस्यःस्फटिकोपरिकल्पितम् । गृहाङ्गणाधिकच्छायःपारिजातमहीरुहः ॥७॥
कृत्स्नप्रावृतिकं तत्र निबिडं कदलीवनम् । कदलीवनसंयुक्तं केतकीवनसंवृतम् ॥८॥
मयूरनादबहुलं मञ्जुकूजन्मधुव्रतम् । पारावतगणध्वानं नानोपवनशोभितम् ॥९॥
प्रासादशतसम्बाधं मत्तकोकिलनादितम्। शाखालम्बिमहारत्नशोभितानेकपादपम् ॥१०॥
किन्नरीवनितागीतनादपूरितदिङ्मुखम् । अनेकारामसुभगं गौतमीतटमुत्तमम् ॥११॥
भारद्वाजगृहं पुण्यमनन्तगुणसेवितम्। रतिकन्दर्पसङ्काशदासीदासशतान्वितम् ॥१२॥

भगवान् श्रीराम द्वारा कौसल्याम्बा के मासिक श्राद्ध का वर्णन

सूतजी ने कहा— महर्षि भरद्वाज के यहाँ भोजन करके प्रसन्न मन वाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी वानरों ऋक्षों मुनिश्रेष्ठ शम्भु तथा भगवान् विष्णु के साथ ॥१॥ जब आकाश मेघ से भर गया था तथा वायु धीरे-धीरे चल रही थी; उस समय उस वन के भीतर एक ऐसे उत्तम गृह में आये जो सुन्दर देवता का गृह था ॥२॥ उसमें सुवर्ण के स्तम्भ लगे थे । वह गृह सुवर्ण की पट्टिकाओं से निर्मित था । उसमें मणियाँ जड़ी हुयी थीं और वह मोतियों से अलंकृत था । उसमें चाँदी के कलश लगे हुए थे ॥३॥ वह पाटीर, कर्पूर, कस्तूरी तथा कुङ्कुम की सुगन्धि से सुगन्धित था । उसमें चन्दन के जाल लगे थे तथा उस जाल के टुकड़े पर पर्दा लगा था ॥४॥ वहाँ चन्द्रमा की चन्द्रिका आती थी तथा उसके बीच की दिवार पर सूर्य नहीं दिखते थे । गृह के भीतर की सारी फर्श चन्द्रपुष्प के रस से सुगन्धित थी ॥५॥ सम्पूर्ण उत्तर दिशा भित्ति (दिवार) से रहित थी । प्रत्येक स्तम्भों पर स्वपदों के द्वारा चित्रकारी की गयी थी ॥६॥ उस गृह का आँगन सौ हाथ का था । उस आङ्गन का निर्माण स्फटिक मणि से किया गया था । गृह के आँगन के अधिक भाग में पारिजात वृक्ष की छाया थी ॥७॥ वहाँ का सम्पूर्ण घेरा कदली वन का था । कदली वन से युक्त वह भवन केतकी वन से घिरा था ॥८॥ वहाँ बहुत अधिक मयूरों की ध्वनि सुनायी पड़ती थीं और भौरों की मनोहर गूंज सुनायी पड़ती थी । कबूतर भी बोल रहे थे । वह अनेक उपवनों से सुशोभित था॥९॥ उसमें सैकड़ों भवन थे तथा मदमत्त कोकिलों की ध्वनि सुनायी पड़ती थी । वह ऐसे अनेक वृक्षों से सुशोभित था जिनकी शाखाओं पर रत्न लटक रहे थे ॥१०॥ किन्नरों की वनिताओं के गीत की ध्वनि

नानोपकरणोपेतं भारद्वाजगृहं शुभम् । तस्य चान्तर्गतःसौधस्तत्रान्तर्गृहवाटिकाः ॥१३॥
अष्टौ तन्मध्यतोह्येकं गृहं परमशोभनम् । चतुर्दिक्षु महादेव गृहप्रासादशोभितम्॥१४॥
प्रतिदेवगृहं श्यामातौर्यत्रिकसुशोभितम् । स्वर्गस्थितवरस्त्रीणां विश्रामायैव कल्पितम् ॥१५॥
भारद्वाजगृहाद्रामो निर्गत्याशेषसंयुतः । तस्यैव च महागेहं वनमध्यगतं त्वगात् ॥१६॥

तदन्तराच्छादितकम्बलं तदा पृथक्स्थवस्त्रासनसंयुतं च ।
सिंहासनं मध्यगतं तथैकं मुन्यासनानेकगतं विवेश ॥१७॥
पौराणिकस्यानुपमासनान्तारं भूपालहर्यृक्षवरासनञ्च ।
पौराणिकं पूर्वमथोपवेश्य ततो वसिष्ठं मुनिपुङ्गवांश्च ॥१८॥
नारायणं भूमिपतीन्कपींश्च नीचासनं च स्वयमध्यतिष्ठत् ।
मेघावृतं व्योमदिशःप्रसन्नाःसुपुष्पमुर्वीतलमुप्तबीजम् ॥१९॥
तदङ्गणं नोष्णमहो न शीतलं सन्तानपुष्पं दमपुष्पगन्धि ।
शम्भुं विलोक्याथ वचो बभाषे रामः कथां कीर्तय शङ्करस्य ॥२०॥
तृप्तिर्न जाता मुनिवर्य शृण्वतो माहेशमाख्यानमघौघनाशनम् ।
चकार किंवा ननु गौतमाश्रमे महेश्वरो देवगणाधिसंवृतः ॥२१॥

शम्भुरुवाच

महाविपञ्चीमवलम्ब्य निष्ठितः स वायुसूनुःशिवमन्वपृच्छत् ।
न्यायार्जितैरेव हि पूजने विभोः कीदृग्भवेच्चानयजैः फलं वद ॥२२॥

से दिशाएँ गूंजित हो रही थी । गौतमी नदी का वह सुन्दर तट अनेक उद्यानों से सुशोभित था ॥११॥ भरद्वाज मुनि का वह पवित्र गृह अनन्त गुणों से युक्त था । वहाँ पर विद्यमान सैकड़ों दास और दासियाँ कामदेव और रति के समान सुन्दर थे ॥१२॥ अनेक प्रकार के उपकरणों से सम्पन्न था वह भारद्वाज मुनि का सुन्दर गृह । उसके भीतर विद्यमान महल के भीतर आठ गृहवाटिकाएँ थी ॥१३॥ उसके बीच में एक गृह अत्यन्त सुन्दर था । उसकी चारों दिशाओं में भगवान् शिव का मन्दिर था ॥१४॥ प्रत्येक गृह में श्यामा तौर्यत्रिक थीं । वह स्वर्ग में रहने वाली स्त्रियों के विश्राम के लिए बना था ॥१५॥ भारद्वाज मुनि के गृह से सबों के साथ निकलकर श्रीरामचन्द्रजी उसी महागृह के बीच में विद्यमान गृह में गये ॥१६॥ उसके भीतर का भाग कम्बल से ढँका हुआ था । सबों के लिए अलग-अलग आसन लगे थे । उसके बीच में एक सिंहासन था और उसके चारों ओर मुनियों के लिए अनेक आसन बने थे । भगवान् श्रीराम सिंहासन पर बैठ गये ॥१७॥ पौराणिक का अनुपम आसन था । उसके बाद श्रेष्ठ वानरों और भालुओं का आसन था । उन्होंने सर्वप्रथम पौराणिक को बैठाया और उसके पश्चात् मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ महर्षि को बैठाया॥१८॥ उसके बाद उनहोंने भगवान् नारायण को बैठाया, फिर राजाओं और वानरों को बैठाया और स्वयं भगवान् श्रीराम सब से नीचे के आसन पर बैठे । उन्होंने देखा आकाश में मेघ छा गये हैं तथा भूमि पर बीज बो दिए गये हैं ॥१९॥ उस भवन का आङ्गन न तो गर्म था और न शीतल । कल्पवृक्ष तथा दम पुष्प की सुगन्धि आ रही थी । भगवान् श्रीराम ने शम्भुमुनि को देखकर कहा आप शङ्करजी की कथा कहें ॥२०॥ हे मुनिवर्य भगवान् शिव की कथा सुनने से मुझे तृप्ति नहीं हुयी हैं क्योंकि वह कथा तो पाप समूह को

चौर्यैरथो किं फलमर्पितार्पणे उपाहृतद्रव्यसमर्पणेषु ।
एवैकशो मे भगवन्वदेश प्रश्नोत्तरं किं कथायाशु शम्भो !॥२३॥
अथेश्वरो वानरमाबभाषे वदामि सर्वं तव ध्यानतः शृणु ।
न्यायर्जितैः पूज्य सदाशिवं त्वजं सम्प्राप चैश्वर्यमिदं हि गौतमः ॥२४॥
पुरा द्विजो मङ्कणसूनुराकथः सुशोभनामाप सतीं द्विजन्मा ।
द्ररिद्र एकःकरुणासमन्वितः षष्ठाहभोजी पितृवर्जितश्च ॥२५॥
उपोष्य पञ्चाहमथापि भोक्तुं प्रवृत्त एवाथ समापतद्यतिः ।
यतिर्वभाषे मधुरं तदा कथं मासोपवासी तव भोक्तुमागतः ॥२६॥
तिष्ठामि भुञ्ज यदि चास्ति ते मुने न मे बुभुक्षाऽन्यगृहाद्विभोक्तुम् ॥२७॥

आकथ उवाच

न मे भुजिः पञ्चदिनं द्विजेन्द्र ! षष्ठे दिने मे भुजिरागतश्च ।
तदा मया कार्यमचिन्तनीयं प्रक्षालयाम्येहि तवाद्य पादौ ॥२८॥
ओमित्यथ क्षालितपादयुग्मः स भोजनं कर्तुमियेष योगी ।
रम्भादलांसे बुभुजे तदन्नं विपाच्य सम्पादितमाज्ययुक्तम् ॥२९॥
वन्यैः सुसंयुक्तमथादरेण न किंचिदुच्छेषितमन्नमस्य ।
अथाकथो वीक्ष्य मुनिं सुतुष्टं तुतोष भार्यासहितस्तपस्वी ॥३०॥

विनष्ट करने वाली है । देव सनूह से घिरे हुए शिवजी महर्षि गौतम के आश्रम में क्या किए ?॥२१॥ **शिवजी ने कहा—** भक्तिभावना से युक्त वायु पुत्र हनुमानजी अपने हाथ में विशाल वीणा लेकर शिवजी से पूछे हे विभो ! न्याय पूर्वक अर्जित धन से पूजन करने से कैसे फल की प्राप्ति होती है ?॥२२॥ किञ्च चोरी करके लाये गये द्रव्य से पूजा करने तथा उपहार समर्पित करने से किस प्रकार के फल की प्राप्ति होती है ? हे भगवन् ! एक-एक करके आप इन सारी बातों को मुझे बतलायें । शम्भो आप मेरे प्रश्नों का उत्तर शीघ्र बतलाएँ ॥२३॥ इसके पश्चात् शिवजी ने कहा मैं इन सारी बातों को बतलाता हूँ; तुम इसे ध्यान पूर्वक सुनो । गौतम महर्षि ने अपने न्यायार्जित सम्पत्ति के द्वारा सदा शिवजी की पूजा करके इस ऐश्वर्य को प्राप्त किया है ॥२४॥ प्राचीन काल में मङ्कण महर्षि का पुत्र आकथ था, उस ब्राह्मण ने सती साध्वी पत्नी को प्राप्त किया । वह दयालु दरिद्र था, वह छठे दिन भोजन करता था उसका पिता नहीं था॥२५॥ उसने पाँच दिन उपवास करके छठे दिन भोजन करना प्रारम्भ किया उसी समय एक संन्यासी आ गये । संन्यासी ने मधुर वाणी में कहा मैं एक मास से भोजन नहीं किया हूँ, आपके यहाँ भोजन करने के लिए आया हूँ ॥२६। हे मुने ! यदि आपके यहाँ भोजन है तो मैं रुकूँ, मैं दूसरे के घर का भोजन नहीं करना चाहता हूँ । **आकथ ने कहा—** हे द्विजेन्द्र ! मैं पाँच दिन से भोजन नहीं किया हूँ । आज छठे दिन भोजन मुझे मिला है ॥२७॥ मुझे इस विषय में चिन्ता नहीं करनी है । आप आइये मैं सबसे पहले आपके चरणों को धोता हूँ । योगी ने कहा ठीक है । उसके बाद पैर धोने के पश्चात् उस संन्यासी ने भोजन कराना चाहा ॥२८॥ केले के पत्ते पर उन्होंने घी के साथ अच्छी तरह पकाये गये उस अन्न को खाया । वह अन्न वन्य पदार्थों से युक्त था । उसको आदर पूर्वक उन्होंने खाया और उस अन्न का कोई

गतोऽथ भुक्त्वाऽपि यतिः स चाकथः सन्तुष्टचित्तोऽथ जपं चकार ।
कपोतवृत्तिं स चकार पत्न्या तपोवितानाय स सज्जनो मुनिः ।।३१।।
पीठेऽथ कृत्वा तमुमापतिं शिवं लिङ्गे समाराध्य समन्वितं गणैः ।
लिङ्गं निधायाथ निरीक्षमाणो ददर्श चाज्ञातकृशाकृतिं द्विजम् ।।३२।।
दिगम्बरं पादविहीनमेतं काणं कुणिं कर्णविहीनकं प्रभुम् ।
सामोद्गिरन्तं बहुशास्त्रपारगं गृहं समायान्तमथो ददर्श ।।३३।।

अथाकथो भार्यां सुशोभनामिदमुवाच ।।३४।। अयं हि विकृतवेषो ब्राह्मणः समायाति ।।३५।। अर्द्धं देयमेतस्मै भोजनं रक्षार्द्धमन्नं चास्मिन्नपि दिने गते षष्ठेऽह्नि भोजनाभावात्तवजीवितं न तिष्ठतीति मम प्रतीयते किं तु त्वं मन्यसे वद ।।३६।।

शोभनोवाच

आयुर्ललाटे लिखितं नान्तरा नश्यति ।।३७।। आकथ आह । यथा बद्धायुषोऽपि यज्ञस्य वीरभद्रेण च्छिन्नं शिर अजस्रात्मनः किमुत मनुष्याणां पापात्मनामिति तदेनं परिहृत्य त्वचा भुज्यते यदि त्वेतस्मै मयाऽन्नं दीयते । तवेच्छानुसारतो मम कर्तव्यम् ।।३८।। भार्या प्राह कथमहं भोक्ष्ये त्वय्यभुक्ते मया किं पूर्वं भुक्तमिदमपरं शृणु ।।३९।।

अन्नं हि प्राणिनां प्राणाः प्रत्यक्षं सर्वदेहिनाम् ।
तस्मादन्नप्रदो यस्तु प्राणदः स निगद्यते ।।४०।।

भी अंश नही छोड़ा ।।२९।। उस संतुष्ट मुनि को देखकर तपस्वी आकथ अपनी पत्नी के साथ सन्तोष का अनुभव किए । भोजन करके वे यति चले गये और सन्तुष्ट आकथ भी जप करने लगे ।।३०।। वे सज्जन मुनि अपनी तपस्या की समृद्धि के लिए अपनी पत्नी के साथ कपोतवृत्ति को अपना लिए थे । वे गणों के साथ विद्यमान उमापति शिवलिङ्ग की आराधना करके उसको अपने पीठ पर रख लिए थे । वे लिङ्ग को रखकर जब देख रहे थे उस समय उन्होंने एक अज्ञात दुर्बल आकार वाले ब्राह्मण को देखा । वे ब्राह्मण दिगम्बर थे, उनके पैर नहीं थे, वे काने, कुबड़े और बहरे थे ।।३१-३२।। वे सामवेद का पाठ कर रहे थे । अनेक शास्त्रों में पारङ्गत थे, उनको वे अपने घर आते हुए देखे ।।३३।। इसके बाद आकथ अपनी सुशोभना नाम की पत्नी से कहे ।।३४।। ये विकृत वेष वाले ब्राह्मण आ रहे हैं ।।३५। इस ब्राह्मण को आधा भोजन दे देना चाहिए और आधा भोजन रख लो । मुझे लगता है कि आज छठे दिन भी भोजन नहीं करने से तुम्हारा जीवन नहीं बचेगा । बतलाओ यह मेरी बात तुमको कैसी लगती हैं ?।।३६।। **उस शोभाना ने कहा—** जो आयु ललाट में लिख गयी है वह बीच मे नष्ट नहीं हो सकती है ।।३७।। **आकथ ने कहा—** जिस तरह आयु से युक्त होने पर यज्ञ के शिर को वीरभद्र ने काट दिया था । यज्ञ तो अजस्रात्मा थे । तो पापी मनुष्यों के विषय में क्या कहना है ? अतएव इसको छोड़कर यदि तुम खा लो, अथवा मैं अपना अन्न दे देता हूँ । मैं तुम्हारी इच्छा के ही अनुसार काम करूँगा ।।३८।। **पत्नी ने कहा—** यदि आप नहीं खायेंगे तो मैं कैसे खाऊँगी ? क्या कभी मैंने आपके भोजन किए बिना भोजन किया है ? दूसरी बात आप सुनें ।।३९।। अन्न प्राणियों का प्राण है, यह सब लोग जानते हैं । अतएव जो अन्न देने वाला होता है । उसे प्राण देने वाला कहा जाता है ।।४०।। सभी जीव अन्न से ही उत्पन्न और उसी से वे बढते भी हैं ।

अन्नाद्भूतानि जायन्ते वर्द्धन्ते तानि वै यतः ।
तस्मादन्नाधिकं किञ्चिन्नास्य दानं महाफलम् ॥४१॥
अश्वत्थचलपत्राग्रलीनतोयद्रवास्तिके । जीविते न हि यो दद्यात्तस्य जन्म निरर्थकम् ॥४२॥
परलोकसहायो हि धर्मो भार्या न बान्धवाः ।
भार्या वा पितरौ पुत्रा यावदायुर्न बान्धवाः ॥४३॥
सम्पद्वयः सुहृदिह इहामुत्र हितं स्थितम् । धर्मं धर्मभृतां श्रेष्ठं भुङ्क्ते चान्ये किमावयोः ॥४४॥
इति भार्यावचः श्रुत्वा आकथः करुणानिधिः ।
अविशङ्कितमेवास्मै दत्तवानन्नमूर्जितम् ॥४५॥
अयं स शङ्करो देवो नानाकरणमागतः । इति निश्चित्य मनसा तस्याङ्गं पापनाशनम् ॥४६॥
आजानुपादं प्रक्षाल्य पराजङ्घमतः परम्। गुल्फं च तदधस्तस्य प्रक्षाल्याचामयद् द्विजम्॥४७॥
अथाकथोऽपि पत्सन्धिं गृहाङ्गणमुपानयत्। उन्मुच्य पादसन्धिं स निषसादार्पितासने ॥४८॥
समभ्यर्च्याकथः सम्यग्भोजमामास तं मुनिन् ।
एतस्मिन्नन्तरे कश्चिदुन्मतो गृहमागतः ॥४९॥
पादसन्धिमथादाय गृहबाह्यमुपानयत् । अथादहच्च तद्गेहं दम्पती चाप्यताडयत्॥५०॥
आकथस्ताडितो विप्रो दह्यमानं गृहं तदा। विवेश देवमीशानमादातुं तूर्णमेव वा॥५१॥
अथादाय महेशानं दग्धपूजां द्विजोत्तमः। निर्गत्य च ततो दृष्ट्वा मुखसन्तापमेव च ॥५२॥
दग्धपूजां तिरस्कृत्य वीक्ष्य दग्धाङ्गमप्युत्। भार्यामुवाच धर्मात्मा यथापूजामहेशितुः ॥५३॥

अतएव अन्न दान से बढ़कर अधिक फल देने वाली कोई भी दूसरी वस्तु नहीं है ॥४१॥ पिपल के चंचल पत्ते के अग्रभाग में स्थित जल के समान चञ्चल जीवन का जो दान नही करता है, उसका जन्म व्यर्थ है॥४२॥ परलोक में धर्म ही सहायक होता हे, पत्नी तथा बाँधव वहाँ सहायक नहीं होते हैं, पत्नी, माता-पिता तथा पुत्र ये सभी आयु पर्यन्त ही वन्धु वने रहते हैं ॥४३॥ सम्पत्ति, अवस्था, मित्र ये सभी इस लोक में सहायक हैं, किन्तु धर्म तो इस लोक तथा परलोक दोनों मे साथ देता है, अतएव धार्मिकों के लिए श्रेष्ठ धन धर्म ही है । उसका भोग दूसरे लोग भी करते हैं, हमदोनों की क्या बात है ?॥४४॥ इस तरह अपनी पत्नी की वार्णा को सुनकर करुणासागर आकथ ने विना किसी शङ्का के उस उपार्जित अन्न को उस ब्राह्मण को दे दिया । आकथ ने सोचा कि अनेक प्रकार के आकार वाले भगवान् शिव ही हमारे यहाँ आये हैं इस तरह से मन में निश्चित करके उस ब्राह्मण के घुटनो पर्यन्त पवित्र अङ्गों को वे धोये । उसके पश्चात् उस ब्राह्मण के जङ्घे को धोये । उसके वाद गुल्फों को धोकर उसके नीचे के भागों को धोए फिर ब्राह्मण को आचमन कराये ॥४५-४७॥ उसके वाद आकथ भी पैर की संधि को गृह के आङ्गन में लाये । वे ब्राह्मण भी उस पैर की संधि को खोल कर आसन पर बैठ गये ॥४८॥ आकथ ने उस मुनि की अच्छी तरह से पूजा की और भोजन कराया । उसी समय उनके घर में कोई पागल आ गया ॥४९॥ वह उनके उस पादसंधि को लेकर उसको घर से वाहर लाया उसने उन पति-पत्नी को पीटा भी तथा उस घर में आग लगा दिया ॥५०॥ पीटे जाने के पश्चात् वे आकथ नामक ब्राह्मण जलते हुए गृह को देखकर उसके भीतर रखे हुए भगवान् शिव की मूर्ति को लेने के भीतर घुसे ॥५१॥ तव तक शङ्करजी की पूजा जल गयी थी

तथा मम समस्ताङ्गं कर्त्तव्यमविशङ्कितम् ।

व्यङ्ग उवाच

पश्चादपि कृता पूजा सफला ते भविष्यति ॥५४॥
यथान्यद्रव्यदहने तादृशं दीयते जनैः। पूजा या दहने तद्वत्पूजाऽस्य क्रियतामिति ॥५५॥

आकथ उवाच

चौर्येणाप्यर्जितैर्दैव्यैः पूजया न हितं भवेत्। नचान्यायार्ज्जितैर्विप्र शम्भोःपूजा शुभप्रदा ॥५६॥
इत्युक्त्वा चाकथस्तूर्ण स्वाङ्गं दग्धुमुपाक्रमत् ।
दग्धं लिङ्गं तदोन्मत्तो गृहीत्वाऽन्तर्दधे क्षणात् ॥५७॥
अथ व्यङ्गो हरो भूत्वा वारयामास चाकथम् ।
किमर्थं खिद्यते विप्र वरदोऽहं वरं वृणु ॥५८॥
आकथोऽपि विभोः पादे भक्तिं वव्रे सुनिश्चलाम् ।

सूत उवाच

एतां श्रुत्वा कथां रामः प्रहृष्टो मुनिभिर्वृतः ॥५९॥
भारद्वाजं नमस्कृत्य प्रयाणाज्ञामयाचत ।
अथो भरद्वाजमुनिः प्रसन्नः शम्भुं वसिष्ठं मुनिपुङ्गवञ्च ॥६०॥
नारायणञ्चर्षिगणांश्च नत्वा व्यसर्जयत्तेऽपि ययुः प्रणम्य ॥६१॥

नैमिषीया ऊचुः

गत्वाऽयोध्यां महातेजाःसमस्तमुनिसंयुतः। किं चकार ततो रामःस च शम्भुर्महायशाः ॥६२॥

वे शङ्करजी को लेकर घर से बाहर निकले। जली हुयी पूजा को देखकर उनको बड़ा कष्ट हुआ ॥५२॥ उन्होंने जली हुयी पूजा को हटाया और देखा कि शङ्करजी के अङ्ग भी जले हुए हैं। उन्होंने कहा कि जिसतरह से शिवजी की पूजा हो जाय उसतरह से मेरे सभी अङ्गों को बिना कुछ सोचे ही तुम कर दो। **उस लङ्गड़े ब्राह्मण ने कहा—** उसके बाद ही तुम्हारे द्वारा की गयी पूजा सफल होगी ॥५३-५४॥ जिस तरह से किसी के द्रव्य के जल जाने पर उसी तरह का दूसरा द्रव्य लोग दे देते हैं। पूजा के जल जाने पर आप उसी तरह से पूजा करें ॥५५॥ **आकथ ने कहा—** चोरी करके लाये गये द्रव्य से पूजा करने से कल्याण नहीं होता है और हे विप्र ! अन्याय पूर्वक अर्जित धन से की गयी शङ्करजी की पूजा कल्याणकारिणी नहीं होती है ॥५६॥ इस तरह से कहकर आकथ शीघ्र ही अपने अङ्गों को जलाने लगे। उसी समय वह पागल उस जले हुए लिङ्ग को लेकर अन्तर्धान हो गया ॥५७॥ उसके पश्चात् वह व्यङ्ग पुरुष शङ्करजी हो गये और उन्होंने आकथ को रोके। उन्होंने कहा विप्र ! क्यों दुःखी हो रहे हो मैं वर देना चाहता हूँ तुम वरदान माँगो ॥५८॥ आकथ ने भी शिवजी के चरणों में अचला भक्ति का वरदान माँगा। **सूतजी ने ऋषियों से कहा—** मुनियों से घिरे हुए भगवान् श्रीराम इस कथा को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥५९॥ उन्होंने भारद्वाज मुनि को प्रणाम करके जाने की आज्ञा माँगी ॥६०॥ उसके बाद प्रसन्न हुए भारद्वाज महर्षि ने मुनि, शम्भु, मुनियों में श्रेष्ठ वसिठ, भगवान् नारायण और ऋषि समूह को नमस्कार करके विदा किया और वे लोग भी भरद्वाज मुनि को प्रणाम करके चले गये ॥६१॥ **नैमिषारण्य के ऋषियों ने कहा—**

सूत उवाच

कौसल्यामासिकश्राद्धमपरेऽहनि राघवः । चिकीर्षुर्द्विजप्रवरानृषिकल्पान्न्यमन्त्रयत् ॥६३॥
शम्भुं समस्ततत्वज्ञं नारदं रोमशं भृगुम् । विश्वामित्रमथो राम एकभक्तव्रती ततः॥६४॥
भूमौ सुखास्तृतायां च सुष्वापाव्याकुलेन्द्रियः ।
परेद्युरथ सम्प्राप्ते प्रातः स्नात्वा विधानवित् ॥६५॥
अन्नं शाकादिकं शुद्धं जनैरेवान्वकारयत् ।
नानान्नानि विचित्राणि चोष्याद्यानि तथैव च ॥६६॥
वटकादींस्तथाभक्ष्यानष्टत्रिंशदकल्पयत् । पायसं षड्विधं चैव पक्वशाकशतद्वयम् ॥६७॥
अपक्वमिश्रकाणां च शतत्रयमकल्पयत्। कालशाकादिकं शाकं फलानि विविधानि च॥६८॥
मूलानि चैककन्दानिवल्कलानि च राघवः । कारयित्वा नदीं गत्वा सह भ्रातृपुरोहितः॥६९॥
सरयूसलिले स्नात्वा हुत्वाऽग्निं स्वागतान्द्विजान् ।
उक्त्वा तु स्वागतं तांस्तु कृतदेवार्चनो नृपः ॥७०॥
प्राणानायम्य सङ्कल्प्य क्षणं चैव प्रदत्तवान्। रोमशं नारदं रामो वैश्वदेवे न्यमन्त्रयत् ॥७१॥
शम्भुं भृगुं कौशिकं च मातृस्थाने न्यमन्त्रयत् ।
गोमयेन ततः कृत्वा मण्डलं पूज्य चार्हतः ॥७२॥
पादप्रक्षालनं चक्रे सीतादत्तोदकेन च । आचामयित्वा तान्विप्रान्गृहं गन्तुमथोद्यतः ॥७३॥

समस्त मुनियों के साथ महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी अयोध्या जाकर क्या किए ? और वे शम्भु मुनि क्या किए ?॥६२॥ **सूतजी ने कहा**— दूसरे दिन कौसल्याजी का मासिक श्राद्ध करने के लिए श्रीरामचन्द्रजी ऋषिकल्प श्रेष्ठ ब्राह्मणों को निमन्त्रित किया ॥६३॥ वे सभी ऋषि तत्त्वों के ज्ञाता थे । उनका नाम शम्भु, नारदजी, रोमश महर्षि, भृगु महर्षि तथा विश्वामित्र महर्षि था । उस दिन श्रीरामचन्द्रजी ने एक बार ही भोजन करने का व्रत किया ॥६४॥ वे भूमि पर ही बिछी हुयी शय्या पर सुख पूर्वक शयन किए । दूसरे दिन प्रातःकाल होने पर विधानों के ज्ञाता श्रीरामचन्द्रजी प्रातःकाल स्नान करके ॥६५॥ अन्न तथा शुद्ध शाक आदि अपने लोगों से तैयार कराये । उसमें अनेक प्रकार के विचित्र चोष्य आदि भोज्य पदार्थ थे ॥६६॥ अड़तीस प्रकार के बड़े इत्यादि बनवाये । छह प्रकार के खीर बनवाये तथा दो सौ प्रकार के शाकों को बनवाये ॥६७॥ बिना पकाये हुए मिश्रित पदार्थ, तीन सौ प्रकार के तैयार कराये । कालशाक इत्यादि शाकों को तैयार कराये तथा अनेक प्रकार के फलों को तैयार किए ॥६८॥ उसके बाद प्रत्येक प्रकार के मूलों को तथा वल्कलों को तैयार कराकर श्रीरामचन्द्रजी अपने भाइयों तथा पुरोहितों के साथ नदी जाकर ॥६९॥ सरयू के जल में स्नान करके, अग्नि में होम किए । उसके पश्चात् अपने से आये हुए ब्राह्मणों का स्वागत करके, देवताओं की पूजा किए ॥७०॥ उसके बाद प्राणायाम करके उन्होंने सङ्कल्प किया । उसके बाद उन्होंने दान दिया । तदनंतर श्रीरामचन्द्रजी रोमश महर्षि तथा नारदजी को वैश्वदेव पद के लिए निमन्त्रित किया ॥७१॥ फिर उन्होंने शम्भु, भृगु तथा विश्वामित्र ऋषि को माता के पद पर निमन्त्रित किया । उसके बाद गोबर से मण्डल बनाकर उन्होंने आहित की पूजा की ॥७२॥ उन्होंने ब्राह्मणों का पैर धोया और सीताजी ने उन्हें पैर धोने के लिए जल प्रदान किया । उन ब्राह्मणों को आचमन कराकर वे घर जाने के

अभ्यागतः समायातः स्थविरो विकृता कृतिः ।
कृशः सम्प्रचलद्गात्रो वेपिताङ्गशिरास्तथा ॥७४॥
लम्बमानत्वगुत्कर्षच्छ्वासकासादिपीडितः । दूषिकाक्लिन्नगण्डश्च लालासम्पृक्त कूर्चकः ॥७५॥
उवाच रामं राजानमहमेको द्विजः स्थितः । ममापि भोजनं देयं स्थविरस्य कृशस्य च ॥७६॥
रामोऽपि तद्वचः श्रुत्वा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ।
पादौ प्रक्षालयास्य त्वमहमभ्यर्चये द्विजम् ॥७७॥
अभ्यागतोऽपि वचनमाह राममथाकुलम् । त्वया प्रक्षालिते पादे मम भोजनमिष्यते॥७८॥
मत्तोऽधिका द्विजाः किं ते येन मामवमन्यसे ।
श्राद्धधर्मं न जानीषे महर्षिगणसेवितम् ॥७९॥
ममावमानतः सर्वविप्राणामवमाननम् । श्राद्धं विहन्यते चापि नरकं च गमिष्यसि ॥८०॥
अथ रामः स्वयं विप्रपादौ प्राक्षालयत्तदा। आचामयित्वा तं विप्रं गृहं प्रावेशयत्ततः ॥८१॥
आचान्तश्च स्वयं रामो विष्टरं दत्तवानथ। आसीनेषु च विप्रेषु प्राणवायुं निरुध्य च॥८२॥
स्वकर्मकरणानुज्ञां लब्ध्वाऽथ सतिलं जलम् ।
अथहतेति मन्त्रेण द्वारदेशे विनिक्षिपेत् ॥८३॥
उदीरतामिति तथा पितृपात्रस्थले क्षिपेत्। गायत्र्या चाक्षतजलं देव पात्रस्थले क्षिपेत् ॥
पाकजातं तथाऽभ्युक्ष्य मन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥८४॥
श्राद्धभूमिं गयां ध्यात्वा ध्यात्वा देवं जनार्दनम् ।
वस्वादींश्च पितॄन्ध्यात्वा ततः श्राद्धं प्रवर्तयेत् ॥८५॥

लिए उद्यत हुए ॥७३॥ उसी समय विकृत आकार वाले बूढ़े अभ्यागत आ गये । उनका शरीर दुबला था, शरीर काँप रहा था, उनके शिर और पैर भी काँप रहे थे ॥७४॥ उनके शरीर के चमड़े लटक रहे थे । जोर-जोर से ऊपर की ओर श्वास आ रहा था, जुकाम से पीडित थे । उनकी गाल में नेटा तथा खंखार लिपटा हुआ था । तथा दाढी लार से भिंगी हुयी थी ॥७५॥ उन्होंने राजा रामचन्द्रजी से कहा मैं अकेला ब्राह्मण हूँ । मैं बूढ़ा हूँ तथा दुर्वल हूँ । मुझे भी भोजन कराओ ॥७६॥ उन ब्राह्मण की वाणी सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने लक्ष्मणजी से कहा, तुम इनके पैरों को धोओ मैं ब्राह्मण की पूजा कर रहा हूँ ॥७७॥ उसके बाद कार्यव्यग्र श्रीरामचन्द्रजी से उस अभ्यागत ने कहा, जब तुम मेरा पैर धोओगे तब ही मैं भोजन करूँगा ॥७८॥ क्या ये ब्राह्मण मुझसे बड़े हैं कि तुम मेरा इस तरह से अनादर कर रहे हो । लगता है कि महर्षियों के द्वारा अनुष्ठित तुम श्राद्ध धर्म को नहीं जानते हो ॥७९॥ मेरा अपमान करने पर तो सभी ब्राह्मणों का अपमान हो जायेगा । तुम्हारा श्राद्ध विनष्ट हो जायेगा और तुम नरकगामी हो जाओगे ॥८०॥ उसके पश्चात् श्रीरामचन्द्रजी ने स्वयं उस ब्राह्मण का पैर धोया । उन्होंने उन ब्राह्मणों को आचमन कराया और उसके बाद वे उनको घर के भीतर ले गये ॥८१॥ तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी ने आचमन करके ब्राह्मणों को विष्टर (आसन) प्रदान किया । ब्राह्मणों के बैठ जाने पर उन्होंने प्राणायाम किया ॥८२॥ उसके बाद ब्राह्मणों से कर्म करने की आज्ञा प्राप्त करके तिल और जल लेकर **अपहताः इत्यादि** मन्त्र से दरवाजे पर छोड़ा ॥८३॥ **उदीरतामवर इत्यादि** मन्त्र से उन्होंने पितरों के पात्र स्थल में तिल और जल छोड़ा । गायत्री

विश्वेदेवार्चनं कुर्याद्यवैर्वातण्डुलैरथ । मूलाग्रयोजितौ दर्भौ गृहीत्वा साक्षतावथ ॥८६॥
भूस्पृष्टदक्षजानुस्तुद्विजहस्ते जलार्पणम् । पुरूरवार्द्रवाणां वै देवानामिदमासनम् ॥८७॥
इति दत्त्वाऽऽसनं तेषां श्राद्धदः प्रार्थयेत्क्षणम् ॥८८॥
अर्घं कृत्वा ततः पश्चादुत्तराग्रकुशेष्वथ ।
न्युब्जं पात्रं ततः कृत्वा कुशग्रन्थिमथोपरि ॥८९॥
उत्तानं तु ततः कृत्वा जलैरभ्युक्ष्य रौक्मकैः ।
पवित्रान्तर्हिते पात्रे शं नो देव्या जलं क्षिपेत् ॥९०॥
वैश्वदेव्याऽखिलं कर्म यावत्तद्विधिचोदितम् ।
यवोऽसि धान्यराजो वा इति पात्रे क्षिपेद्यवान् ॥९१॥
मधुमिश्रांस्तु करकान्गान्धपूष्पैस्ततो ददेत् ।
द्विज ! तेऽस्त्वर्घ इत्युक्त्वा त्वस्त्वर्घोत्तरतस्ततः ॥९२॥
आवाहयिष्य तान्देवानिति पृष्ट्वा तदुत्तरम् ।
विश्वेदेवास इत्युक्त्वा विप्रमूर्ध्नि कुशान्क्षिपेत् ॥९३॥
विश्वेदेवाः शृणुतेममागच्छन्त्विति सञ्जपेत् ।
समागतो निषण्णोऽथ सदर्भं पात्रमाहरेत् ॥९४॥
दक्षिणे चरणे क्षिप्त्वा मुख्यपात्रोदकं ततः। विप्रस्य दक्षिणे हस्ते प्रागग्रेऽथ पवित्रके ॥९५॥

मन्त्र पढ़कर उन्होंने देवताओं के पात्र स्थल पर जल और अक्षत छोड़ा । उसके पश्चात् सम्पूर्ण पाक समूह का प्रोक्षण करके इस मन्त्र को पढ़ कर पाठ करना चाहिए । मन्त्र का अर्थ है- श्राद्ध की भूमि, गया, भगवान् जनार्दन, वसुओं आदि देवताओं तथा पितरों का ध्यान करके श्राद्ध कर्म प्रारम्भ करना चाहिए ॥८४-८५॥ यव अथवा चावल से विश्वेदेव का पूजन करना चाहिए । फिर दो कुशों के मूलभाग और अग्रभाग को जोड़कर हाथ में अक्षत के साथ ग्रहण करना चाहिए । पृथिवी पर अपना दाहिना घुटना टेककर ब्राह्मण को हाथ में जल देना चाहिए । उसके पश्चात् पुरुरवा आद्रवों के लिए यह आसन है, इस तरह से कहकर आसन प्रदान करना चाहिए । उसके बाद उन देवताओं की प्रार्थना करे ॥८६-८७॥ उसके पश्चात् उत्तराग्र कुशों के ऊपर अर्घ प्रदान करना चाहिए । उसके बाद कुश की ग्रन्थि पर पात्र को उलट दे ॥८८-८९॥ तदन्तर पात्र को सीधा करके सुवर्ण के जल से उसका प्रोक्षण करे । फिर पवित्र जिसमें रखा हो उसमें **शं नो देवी रभीष्टय इत्यादि** मन्त्र से जल छोड़े ॥९०॥ उसके बाद विश्वेदेव के समस्त विधि विहित कर्मों को करना चाहिए । **यवोसि धान्यराजोवा** इस मन्त्र से पात्र में यव डालना चाहिए । उसके पश्चात् मधु से युक्त करकों को चन्दन और पुष्पों के साथ देना चाहिए । इसके बाद कहे **द्विज तेऽस्त्वर्घः** और ब्राह्मण भी कहे **अस्त्वर्घः** ॥९१-९२॥ उसके बाद यजमान कहे कि मैं देवताओं का आवाहन करूँगा । उसके बाद श्राद्धकर्ता **विश्वेदेवास इत्यादि** मन्त्र को पढ़कर ब्राह्मण के शिर पर कुशों को छोड़ दे ॥९३॥ **विश्वेदेवा शृणुतेम इत्यादि** मन्त्र का पाठ करे । उसके पश्चात् आकर बैठ जाय । कुश युक्त पात्र को ले ले ॥९४॥ उसके पश्चात् मुख्य पात्र के जल को ब्राह्मण के दाहिने पैर पर छोड़े । उसके बाद ब्राह्मण के पवित्रक युक्त दाहिने हाथ के अग्रभाग में **या दिव्या आपः इत्यादि** मन्त्र पढ़कर उस जल को

या दिव्या इति मन्त्रेण निक्षिपेत्पात्रवारितत् ।
इदं भो अर्घमित्युक्त्वा ह्यस्त्वर्घोत्तरतस्ततः ॥९६॥
पात्रे धृत्वाऽर्घतोयं च तत्पात्रं स्थापयेत्क्वचित् ।
अथ दत्त्वा करे तोयं यवैरेतानथार्चयेत् ॥९७॥
अर्चत प्रार्चत इति पृष्ट्वा चोत्तरतस्ततः। पादादिमूर्धपर्यन्तमभ्यर्च्य जलदस्ततः ॥९८॥
गन्धद्वारेति मन्त्रेण तथेत्युक्त्वोत्तरस्ततः । पितृणामर्चनं कुर्यादेवमेवापसव्यकम् ॥९९॥
उपवीतं द्विजं कृत्वा कुशान्भुग्नांस्तिलान्वितान् ।
वामजानुं भूमिगतं कृत्वा दद्यात्तदासनम् ॥१००॥
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा क्षणप्रश्नमथो वदेत् ।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु न्युब्जं पात्रत्रयं न्यसेत् ॥१०१॥
त्रिकुशग्रन्थिसंयुक्तमुत्तानमथ कल्पयेत् । ततः सम्प्रोक्ष्य पात्रेषु सपवित्रतिलेषु च ॥१०२॥
शन्नो देव्या जलं क्षिप्त्वा तिलोऽसीति तिलान्क्षिपेत् ।
गन्धपुष्पमथो दत्त्वा स्वधाऽर्घ इति पृच्छति ॥१०३॥
दत्तोत्तरोस्त्वर्घ इति पितृनावाहयेत्ततः । तिलपुष्पकुशैस्तिष्ठनकल्पितार्घकरे दधत्॥१०४॥
उशन्तस्त्वेति मन्त्रेण त्रिरर्घोदकमर्पयेत्। अर्चनं तु तदा तेषामपसव्यं तु पूर्ववत्॥१०५॥
प्रक्षाल्य भाजनं स्वर्णं देवानां परिकल्पयेत् ।
पितृणां राजतं कुर्याद्यथासम्भवमेव वा ॥१०६॥
तदभावे तु कांस्यं स्यादनन्याशितमुत्तमम् ।
पात्राणि तदभावे स्युः पालाशानि च मध्यमम् ॥१०७॥

छोड़ दे । उसके पश्चात् श्राद्ध कर्ता कहे **इदं भो अर्घः** । उसके पश्चात् ब्राह्मण कहें **अस्तु अर्घः** ॥९५-९६॥ अर्घ के जल को पात्र में रखकर उस पात्र को कहीं रख दे । उसके पश्चात् ब्राह्मण के हाथ पर जल देकर यव से ही ब्राह्मण की पूजा करे ॥९७॥ **अर्चत प्रार्चत इत्यादि** मन्त्र से ब्राह्मण के पैर से लेकर शिर पर्यन्त पूजन **गन्धद्वारां दुराधर्षां इत्यादि** मन्त्र से करना चाहिए । उसके पश्चात् अपसव्य होकर उसी प्रकार से पितरों की भी पूजा करनी चाहिए ॥९८-९९॥ पितरों की पूजा करते मसय अपसव्य होकर मुड़े हुए कुश और तिल से पूजा करनी चाहिए । उस समय बायाँ घुटना भूमि पर टेककर आसन प्रदान करना चाहिए॥१००॥ उस समय दक्षिणाभिमुख होकर श्राद्ध करने के लिए पितृब्राह्मण्यों से आज्ञा ले । फिर कुशों को दक्षिणाग्र रखकर तीन पात्रों को उलट कर रखे ॥१०१॥ फिर ग्रन्थि से युक्त तीन कुशों को हथेली पर रखे । उसके बाद पवित्र तथा तिल से युक्त पात्रों का प्रोक्षण करके **शं नो देवी** इस मन्त्र से उसमें (पात्र में) जल डाले फिर **तिलोऽसि तिल** इस मन्त्र से तिल डाले उसमें चन्दन और पुष्प डालकर कहें **एषः तेऽर्घोस्तु** कहे । फिर ब्राह्मण कहें **अस्त्वर्घः** तदन्तर श्राद्धी तिल, पुष्प तथा कुश से युक्त अर्घ लेकर बैठे हुए ही पितरों का आवाहन करे ॥१०२-१०४॥ **उशन्तस्त्वा निधि इत्यादि** मन्त्र को पढ़ते हुए यजमान तीनों अर्घोद को प्रदान करे । उसके पश्चात् पहले के ही समान अपसव्य रहकर पितृ ब्राह्मणों की पूजा करे ॥१०५॥ सुवर्ण पात्र को धोकर यथा सम्भव देवताओं की पूजा करे और पितरों की पूजा रजतपात्र से करे ॥१०६॥ उसके

रम्भाणि चूतपत्राणि जम्बूपुन्नागकानि च । पराकन्यथ चाम्पानि मधूककुटजान्यपि ॥१०८॥

मातुलिङ्गस्य पत्राणि श्राद्धे देयानि वै नृभिः ।
दर्व्यामन्नमथाऽदाय कराभ्यामाज्यमेव च ॥१०९॥

प्रवेषणं ततः पृच्छेत्प्राचीनावीतवान्द्विजम् । करिष्येऽग्नौकरणमिति कुरुष्वेति तदुत्तरम् ॥११०॥
परिवेष्योपवीतीस्यादभिघार्यसमाहरेत् । हुनेत्सोमायपितृमते स्वधा नम इतीरयन् ॥१११॥
यमायाङ्गिरसे पितृमते स्वधा नम इति। द्वितीयामाहुतिं हुत्वा चाभिघार्याक्षतं ततः॥११२॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमस्ततः परम् ।
हुत्वाऽपसव्यं कृत्वा तु परिवेष्यद्विजान्व्रजेत् ॥११३॥

मेक्षणेन ततोऽभीक्ष्णं पातयेत्पितृपात्रके । पिण्डपात्रमतः शेषं दर्वीप्रक्षालनं ततः ॥११४॥
मेक्षणस्याग्निनिक्षेपं ततो पात्राण्युपस्तरेत्। पात्रदक्षिणभागे तु दद्यादन्नमनन्तरम् ॥११५॥

भक्ष्याणि भोज्यशाकानि सर्वाण्येवसदत्तवान् ।
अथातिथिर्महाबृद्धो वीक्षमाणस्ततस्ततः ॥११६॥
उवाच राघवं शान्तं शीघ्रमेव नमस्कुरु ।
बुभुक्षा वर्ततेऽस्माकं भोक्ष्येऽहं वा तवाऽऽज्ञया ॥११७॥

रामो वभाषे वचनं विलम्बय क्षणं मुने। देवताः पितरो मङ्क्षु नमस्यन्तेऽधुना मया ॥११८॥
इत्युक्त्वा राघवः प्रादादन्नं पात्रगतं तदा । प्राक्सौम्याग्रान्कुशान्दैवे प्रतीचीदक्षिणाग्रकान्॥११९॥

अभाव में कांस्य पात्र से पूजा करना चाहिए । उन पात्रों को नवीन होना चाहिए उसमें कोई भोजन नहीं किया हो । पत्तों में की जाने वाली पूजा मध्यम कोटि की होती है ॥१०७॥ केले के पत्ते, आम के पत्ते, जामुन के पत्ते, पुंनाग के पत्ते, पराक के पत्ते, चम्पा के पत्ते, महुआ या कूटज के पत्ते ॥१०८-१०९॥ अथवा मातुलुङ्ग के पत्तें का श्राद्ध में उपयोग करना चाहिए । करछूल में अन्न लेकर तथा दोनों हाथों से घी लेकर सव्य होकर ब्राह्मणों से अग्नौकरण करने की आज्ञा ले । यमजान कहे **अग्नौ करणं करिष्ये** फिर ब्राह्मण कहे **कुरुष्व** ॥११०॥ फिर सव्य रहकर परिवेषण (परोसने का कार्य) करे । उसके बाद अन्न को लेकर जल में होम करें । **अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः** ॥१११॥ **यमायाङ्गिर स्वते पितृमते स्वधा नमः** इस तरह से दूसरी आहुति देकर अक्षत लेकर ॥११२॥ **अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः** इस मन्त्र से आहुति देकर अपसव्य हो जाय और ब्राह्मणों को परिवेषण का कार्य करे ॥११३॥ **मेक्षणे** से पितरों के पात्र में डालें । उसके पश्चात् पिण्ड के पात्र तथा दर्वी को धो दे ॥११४॥ फिर मेक्षण को अग्नि में डाल दें । उसके बाद पात्रों को उतारें । फिर पात्र के दाहिनी ओर अन्न डालें । फिर भक्ष्य पदार्थों को तथा सभी प्रकार के शाकों को परसें । इसी तरह से श्रीरामचन्द्रजी ने परसने का कार्य किया । उसके पश्चात् इधर-उधर देखते हुए महावृद्ध अतिथि ने ॥११५-११६॥ श्रीरामचन्द्रजी से कहा जल्दी से नमस्कार करो । हमलोगों को भूख लगी है तुम्हारी आज्ञा प्राप्त करके मैं भोजन करूँगा ॥११७॥ श्रीरामचन्द्रजी ने कहा मुने! थोड़ा रुक जायँ । उस समय मैं शीघ्रता से देवता और पितरों को नमस्कार कर रहा हूँ ॥११८॥ इस तरह से कहकर श्रीरामचन्द्रजी पात्र में विद्यमान अन्न को प्रदान किए । पहले पूर्वाग्र कुशों को देव पात्र में तथा पश्चिमाग्र दक्षिणाग्र कुशों को पितरों के पात्र में डाले । देवताओं के पात्र में फिर यव तथा पितरों

पित्र्ये पवित्रे ये दर्भा यवानथ तिलानपि। अन्नप्रदानं कुर्वन्ति पृथिवी इति मन्त्रतः ॥१२०॥
इदं विष्णुरिति स्पृष्टमङ्गुष्ठेनद्विजस्य तु । देवेभ्यः प्रथमं दद्याद्येदेवा इति वै पठन्॥१२१॥
पितृणां च ततो दद्याद्दद्यादतिथये ततः ।
देवताभ्य इति मुखानुच्चार्याऽऽपोशनं ददेत् ।
त्रिर्जपित्वा तु गायत्रीमुपवीतिपुरोमुखः ॥१२२॥
प्राचीनावीतवान्ब्रूयान्मधुत्रयमतः परम्। भुञ्जध्वमिति तानुक्त्वा भुञ्जानेषु द्विजातिषु ॥१२३॥
रक्षोघ्नमन्त्रपठनं भक्ष्यभोज्यादि दापयन्। एतस्मिन्नन्तरे विप्रो योऽतिथिस्तदिदं तथा ॥१२४॥
कृतवान्महदाश्चर्यं तद्वदामि समासतः। पात्रस्थितमशेषं च ग्रासेनैकेन चाग्रसत् ॥१२५॥
प्राणाहुतीनां पर्याप्तं दीयतामिति चाब्रवीत् । एतावद्दातुमशक्तः कथं श्राद्धक्रियोद्यतः॥१२६॥
ममैकस्य प्रदाने त्वमशक्तो राम किं वृथा। बहूनां भोजनं दातुमुद्युक्तो राम किं वृथा ॥१२७॥
सहसाकृतकर्माणि न समाप्तिं प्रयान्ति च । त्वया कृतमशेषाणां नालं प्राणाहुतिर्मम ॥१२८॥
कथं ते दीयते भुक्तिः कथमेषां तथा वद। रामस्तमब्रवीद्वीरो भुङ्क्ष्व त्वंहि यथासुखम्॥१२९॥
इत्युदीर्य निरीक्ष्यास्यकर्म तत्परमाद्भुतम्। अथ शम्भुं समाहूय प्राह त्वं परिवेषय ॥१३०॥
त्वं पिता पार्वती माता शिवादेवीति मे मतिः ।
अन्नपूर्णेश्वरीदेवी भवान्येवेति मे इतिः ॥१३१॥
सा शाम्भवीवचः प्राह तत्पर्याप्तं ददाम्यहम् ।
अथोमा कांस्यमादाय भिस्सापूर्णमलङ्कृतम् ॥१३२॥

के पात्र में तिल डाले । उसके पश्चात् **पृथिवी ते पात्रम् इत्यादि** मन्त्र से पितरों के पात्र में तिल डाले । उसके पश्चात् **पृथिवी ते पात्रम् इत्यादि** मन्त्र से अन्न परसे ॥११९-१२०॥ **इदं विष्णुर्विचक्रमे** इस मन्त्र से देवताओं के पात्र का अङ्गूठे से स्पर्श करे । देवताओं को पहले परोसे । उस समय **ये देवाः इत्यादि** मन्त्र पढ़ना चाहिए ॥१२१॥ उसके पश्चात् पितरों तथा अतिथियों को परोसना चाहिए । **देवताभ्यः इत्यादि** मन्त्र पढ़कर आपोशन देना चाहिए । उसके पश्चात पूर्वाभिमुख होकर तीन बार गायत्री जप करे । उसके पश्चात् सव्य रहकर त्रिमधुसूक्त पढ़े ॥१२२-१२३॥ इसके बाद ब्राह्मणों से कहे कि आपलोग भोजन करें। जब ब्राह्मण भोजन कर रहे हों उस समय भक्ष्य भोज्य पदार्थो को परोसते समय रक्षोघ्न मन्त्र को पढ़ते रहना चाहिए ॥१२४॥ उस समय जो अतिथि ब्राह्मण थे वे बड़े आश्चर्य का काम किए, उसे मैं संक्षेप में बतला रहा हूँ ॥१२५॥ उनके पात्र में जो कुछ भी था उन सारी वस्तुओं को वे एक ही ग्रास में खा गये । उन्होंने कहा कि ऐसा दो कि प्राणाहुतियो के लिए पूरा हो ॥१२६॥ इतना भी देने में असमर्थ व्यक्ति श्राद्ध कैसे कर सकता है ?। राम तुम तो अकेले मुझको ही भोजन कराने में असमर्थ हो, व्यर्थ ही अनेक ब्राह्मणों को भोजन कराने के लिए कैसे तैयार हो गये ? अचानक किए जाने वाले कार्य पूरा नहीं होते हैं ॥१२७-१२८॥ तुमने जो कुछ बनाया है, उसमें तो मेरी प्राणाहुति ही पूरी नहीं हो सकती है । तुम मुझको तथा इन ब्राह्मणों को भोजन कैसे कराओगे ? बतलाओ ॥१२९॥ श्रीरामचन्द्रजी ने उस अतिथि ब्राह्मण से कहा आप मनभर कर भोजन करें । इस तरह से कहकर उस अतिथि के अद्भुत कर्म को देखकर॥१३०॥ उन्होंने शम्भु को बुलाकर कहा कि आप परोसने का काम करें । आप ही मेरे पिता हैं और

स्वर्णदर्व्या समादाय पायसं गन्धकान्तिमत्। अस्याक्षयमिदं भूयादिति प्रादात्तु पायसम् ॥१३३॥
द्विजस्य दक्षिणे हस्ते साऽददात्सत्कृतं मुदा ।
कम्पमानशिरस्कस्तु ऊर्ध्वदृष्टिरथाभवत् ॥१३४॥
प्रसारितकरश्चाऽऽसीद् गृहीत्वा पायसं करे ।
दीयतां पायसं स्वादु सुष्ठुपक्वमिदं तु किम् ॥१३५॥
शम्भुपत्नी बभाषे तं करे भुङ्क्ष्व ततो ददे ।
अभक्षयत्ततो विप्रःपुनः करतले स्थितम् ॥१३६॥
तदक्षयमथ ज्ञात्वा प्रासारयदथेतरम् । तस्मिन्करतले देवी पायसं दत्तवत्युत ॥१३७॥
अन्येषामपि विप्राणां पक्वाक्षय्यमदात्सती। अथ पाणिद्वयगतं विज्ञायाक्षय्यपायसम् ॥१३८॥
दृष्ट्वा करान्तरमथो प्रासारयत स द्विजः। उवाचान्नं प्रदातव्यं ससूपघृतमुत्तमम् ॥१३९॥
शिवादेवी तथा प्रादादक्षय्यं शम्भुवल्लभा। यद्यत्प्रादात्तदा साध्वी सर्वमेव तदक्षयम् ॥
करान्तरमथोसृष्टं परिपूर्णं पुनः पुनः ॥१४०॥
एवं करसहस्रं तु कृत्वा स विरराम ह।
उवाच वचनं विप्रो देहि गण्डूषवारि मे। तर्पितोऽस्मि त्वया भद्रे न रामेण न सीतया॥१४१॥

शम्भुरुवाच

रामेण सीतया दत्तं मया दत्तं हि यत्र च। इतः परं हि कि देयं पूर्णं वा त्वं वदस्व मे॥१४२॥

द्विज उवाच

तृप्तोऽस्मि न च मे देयमधिकं च करस्थितम् ।
विद्वन्नतः करगतं न पपात कथञ्चन ॥१४३॥

शिवादेवी पार्वती मेरी माता है ॥१३१॥ मैं जानता हूँ कि वे अन्नपूर्णा भवानी देवी हैं । शम्भु की पत्नी ने कहा मैं इनको पर्याप्त परोसती हूँ ॥१३२॥ उसके बाद उमा देवी ने उस कांस्य पात्र को अपने सामने लेकर उसे परिपूर्ण कर दिया । सुवर्ण की दर्वी से देदीप्यमान पायस को लेकर ॥१३३॥ कहा यह इसके लिए अक्षय हो जाय और उन्होंने पायस प्रदान किया । उन्होंने उस ब्राह्मण के दाहिने हाथ पर प्रसन्नता पूर्वक प्रदान किया ॥१३४॥ शिर कँपाते हुए अतिथि ने ऊपर की ओर देखा । वे अपने हाथ पर पायस लेकर हाँथ फैलाये थे ॥१३५॥ अतिथि ने कहा स्वादिष्ट पायस दीजिये यह अच्छी तरह से पका है । शम्भु की पत्नी ने कहा पहले हाथ पर का खा लें तो दूँ ॥१३६॥ विप्र ने उसे खाया किन्तु वह हाथ पर बना ही रहा । उसको अक्षय जानकर अतिथि ने दूसरा हाथ फैलाया ॥१३७॥ देवी ने उस हाथ पर भी पायस दे दिया । उन्होंने दूसरे भी ब्राह्मणों को उस पक्व तथा अक्षय पायस को प्रदान किया ॥१३८॥ उसके बाद दोनों हाथों पर अक्षय पायस को जानकर उस ब्राह्मण ने दूसरे हाथ को फैलाया ॥१३९॥ उन्होंने कहा सूप तथा घृत के साथ उत्तम अन्न दीजिये । शम्भु मुनि की पत्नी शिवा देवी ने उसी तरह से प्रदान किया॥१४०॥ उस समय उमा देवी ने जो कुछ भी प्रदान किया वह अक्षय हो गया । अतिथि ब्राह्मण ने दूसरे भी हाथों की सृष्टि की किन्तु वे सब भी बार-बार पूर्ण हो जाते थे । इस तरह से एक हजार हाथों का निर्माण करके वे अतिथि हाथों की सृष्टि करना बन्द कर दिए । इसके बाद ब्राह्मण ने कहा मुझे कुल्ला, करने के लिए जल दो । हे भद्रे ! तुमने मुझे तृप्त कर दिया, राम और सीता नहीं तृप्त कर सके ॥१४१-१४२॥ **शम्भु**

निषण्णो हि चिरं दध्यौ कथं मे केवलःकरः ।
भुक्त्यैकृतमिदं सर्वं नान्यस्मैकर्मणे मम ॥१४४॥
तस्मादन्यकृतेरेतत्सर्वं रिक्तं भविष्यति । इति निश्चित्य मनसा लिप्ताङ्गोऽतिथिराभवत्॥१४५॥
पश्यत्सु सर्वदेवेषु तदद्भुतमिवाभवत् । तृप्तानथ द्विजाञ्ज्ञात्वा राघवः परमार्थवित्॥१४६॥
दर्वीकरोऽथ तृप्ताःस्थ इति पृष्ट्वा यथाविधि ।
तृप्ताः स्म इति विप्रेन्द्रा विकीर्यान्नं समन्त्रकम् ॥१४७॥
पात्रस्य याम्याभिमुखः सन्निधौ पिण्डमर्पयेत् ।
गण्डूषमपि विप्राणां तत्रैव परिकल्पयेत् ॥१४८॥
उच्छिष्टपर्णपात्रेषु ते गण्डूषमकुर्वत ।
गृहान्तरे च ते विप्रा विविशुस्त्वतिथिं बिना ॥१४९॥
आहातिथिर्बहिः कार्यं मयाऽऽचमनं विद्यते ।
उत्थातुं नैव शक्नोमि करं मे देहि राघव ! ॥१५०॥
अथ रामः करं प्रादान्नोत्थितस्तु द्विजोत्तमः ।
हनूमानथचाप्यस्य दत्तवान्बलवत्करम् ॥१५१॥
इतरेण गृहीत्वा तु करेण द्विजपुङ्गवम् । आचकर्ष कपीन्द्रस्तु द्विजः साक्रोशमुक्तवान्॥१५२॥

द्विज उवाच

छिद्यते मे करो व्यक्तमुत्थापय ततोऽन्यतः ।
लाङ्गूलेन सपीठं तमावृत्याऽऽमस्तकं बलात् ॥१५३॥

ने कहा— राम और सीता ने जो दिया था उसी को हमने दिया है । अब आप को क्या देना है ? अथवा पूरा हो गया बतलाओ ॥१४३॥ **ब्राह्मण ने कहा**— मैं तृप्त हो गया हूँ । जो हाथ पर बचा है वह अधिक है । हे विद्वान् ! हाथ पर जो है, वह किसी प्रकार नहीं गिरा ॥१४४॥ बैठा हुआ वह ब्राह्मण दीर्घ काल तक सोचता रहा कि कैसे मेरा केवल हाथ सम्पूर्ण इन वस्तुओं को खाने के लिए बन गया मेरे दूसरे कर्म के लिए यह नहीं होता है ॥१४५॥ अतएव दूसरे के लिए यह सब कुछ रिक्त हो जायेगा । इस तरह से सोचकर अतिथि ने उसे (पायस) को अपने शरीर में लपेट लिया ॥१४६॥ सभी देवताओं के सामने यह अद्भुत कार्य हुआ । ब्राह्मणों को तृप्त जानकर परमार्थ वेत्ता श्रीरामचन्द्रजी ने कहा ॥१४७॥ वे अपने हाथ में दर्वी लिए ब्राह्मणों से पूछे आपलोग तृप्त हो गये ? उसके बाद मन्त्र पढ़कर अन्न को छीटते हुए ब्राह्मणों ने कहा हमलोग तृप्त हो गये है ॥१४८॥ उसके बाद पात्र के सामने दक्षिण ओर मुख कर पिण्ड दान करना चाहिए और ब्राह्मणों को वहीं पर गण्डूष (कुल्ला) भी करवा देना चाहिए ॥१४९॥ उच्छिष्ट पत्ते के पात्र में ब्राह्मणों ने कुल्ला किया । उसके बाद अतिथि को छोड़कर वे ब्राह्मण प्रवेश कर गये । अतिथि ने कहा मुझे बाहर आचमन करना है । राघव मैं उठ नहीं सकता हूँ मुझे अपने हाथ का सहारा दो ॥१५०-१५१॥ उसके बाद श्रीराम ने हाथ पकड़ा किन्तु वे ब्राह्मण उठे नहीं । उसके बाद हनुमानजी ने अतिथि को उठाने के लिए अपना बलवान् हाथ लगाया ॥१५२॥ दूसरे हाथ से अतिथि को पकड़कर हनुमानजी ने खींचा ब्राह्मण ने अक्रोश पूर्वक कहा ॥१५३॥ **ब्राह्मण ने कहा**— इस तरह से तो मेरा हाथ

अथाधावत्ततः पृथ्वीं द्विजस्तु न चचाल ह ।
अथ वानरवीरस्तु पद्भ्यां चकृन्त तां महीम् ॥१५४॥
पादौ विन्यस्यसुदृढौ द्विजमूर्धानमाक्षिपत्। विशीर्णमभवद्वेश्म द्विजाः सर्वे बहिस्तथा ॥१५५॥
सहवृद्धद्विजः सोऽथ हनूमान्वहिरभ्यगात् । पीठे च स्थापयामास ब्राह्मणं स्थविरं कृशम्॥१५६॥
द्विजाय जलमादाय जाम्बवान्मृण्मये घटे । आह स्वच्छं जलं विप्र त्वयाऽदेयं सभाजनम्॥१५७॥
सीताप्रक्षालयेदङ्गं लक्ष्मणो जलदो भवेत् ॥१५८॥
जाम्बवानाहतं रामं ब्राह्मणोक्तमशेषतः ॥१५९॥
द्विजप्रक्षालने रामो व्यादिदेशानुजं प्रियाम्। सौमित्रिर्जलमादाय द्विजाङ्गक्षालनेतथा ॥१६०॥
प्राक्षालयदशेषाङ्ग प्रतिमामिवभूभुजः । अथ रामोपदेशेने चक्रतुस्तौ तथैव च ॥१६१॥
अथातिथिः स्वगण्डूषं सीतावक्त्रे व्यमुञ्चत ।
सालङ्काराऽम्बुभिर्व्याप्ता प्राक्षालयदथो सती ॥१६२॥
श्लेष्मलालासुप्रचुरं मुखं विप्रस्य सा सती। प्रममार्ज पुनः क्षाल्य नासाश्लेष्माणमत्यजत्॥१६३॥
आचामयित्वा सौमित्रिरुत्तिष्ठेत्यब्रवीद् द्विजम् ।
द्विजो न शक्यमित्याह हनुमानप्यथाऽगतः ॥१६४॥
अतिथिः प्राह तं विप्रः पीडितोऽहं हनूमता ।
गृहीत्वोद्धरता पूर्वं पातितो वानरेण च ॥१६५॥
जाम्बवानथ तं प्राह लोमाङ्गं मम वै मृदु। मयाऽथो ध्रियसे विप्र न च पीडा भविष्यति॥१६६॥
इत्युक्त्वा जाम्बवान्विप्रं दोर्भ्यामालम्ब्य चोद्धरत् ।
द्विजप्रान्तमथादाय स्थापयामास तं मुनिम् ॥१६७॥

ही उखड़ जायेगा, दूसरी जगह पकड़कर उठाओ । हनुमानजी ने अपनी पूंछ को ब्राह्मण के पीठ से मस्तक पर्यन्त लपेट कर उनको खींचा तो वह घर ही टूट गया सभी ब्राह्मण बाहर निकल गये ॥१५४-१५६॥ उसके बाद वृद्ध ब्राह्मण के साथ हनुमानजी बाहर आये । उन्होंने अपनी पीठ पर बूढे तथा दुर्बल ब्राह्मण को बैठा लिया ॥१५७॥ ब्राह्मण के लिए मिट्टी के घड़े में जल लेकर जाम्ब्वान् ने कहा हे विप्र ! यह स्वच्छ जल है इसे आप पात्र के साथ ले लें ॥१५८॥ सीताजी ने उनके अङ्गों को धोया और लक्ष्मण जल देने का काम करते थे । जाम्ब्वान् ने ब्राह्मण के द्वारा कही हुयी सारी बातों को श्रीरामजी से कहा ॥१५९॥ ब्राह्मण को धोने के काम में श्रीरामजी ने अपने अनुज को लगाया । लक्ष्मणजी जल लेकर ब्राह्मण के अङ्गों को धोये ॥१६०॥ राजा की प्रतिमा के समान उन्होंने उस ब्राह्मण के सभी अङ्गों को धोया । इसके बाद उस अतिथि ने अपने गण्डूष के जल को सीताजी के मुखपर छोड़ दिया । अलङ्कारों से युक्त सीताजी ने उसे धोया ॥१६१-१६२॥ उन्होंने विप्र के मुख में लगे हुए कफ तथा लार को धोया । उन्होंने उसे धोकर पोंछा तो ब्राह्मण ने नाक के कफ को निकाल दिया ॥१६३॥ लक्ष्मणजी ने उस ब्राह्मण को आचमन कराकर कहा उठिये । किन्तु वे ब्राह्मण उठ न सके, इसके बाद हनुमानजी आये ॥१६४॥ अतिथि ब्राह्मण ने कहा— हनुमान ने मुझे दुःख दिया है । पहले जब वह वानर मुझे पकड़कर उठा रहा था मुझे गिरा दिया । उसके बाद जाम्बवान् ने कहा रोओं से भरे हुए मेरे अङ्ग कोमल हैं । हे ब्राह्मण ! मैं आपको पकड़ रहा हूँ आपको

अथ रामो द्विजेन्द्राणां प्रदक्षिणमवर्तत। दत्ताशीरपिविप्रेन्द्रैर्दत्त्वा ताम्बूलमग्रतः ॥१६८॥
पादावलम्बकृद्रामो भ्रातृभिः सह चाब्रवीत्। अयि सीतेऽतिथेरस्य त्वया न क्षालितं वपुः॥१६९॥
जङ्घायुगतिथेरस्य मलं चास्यं मलान्वितम् । सम्यक्प्रक्षालयमुखं द्विजो न सहते मलम्॥१७०॥

सीतोवाच

अथ प्रक्षालितं सम्यगिदानीं निर्गतं पुनः ।

राम उवाच

पुनः प्रक्षालयमलं दोषः स्यादन्यथा मम ॥१७१॥
अथ सीता तथा कृत्वा तूष्णीमेव बभूव ह ।
आह रामं च सीतां च द्विजः परमकोपवान् ॥१७२॥
पादौ यौ ममराजेन्द्र तौ सीतालम्बयेदिति ।
भवान्करौ च भरतो मम बीजं प्रयच्छतु ॥१७३॥
लक्ष्मणः केशनिचयप्रसाधनकरो भवेत्। शत्रुघ्नः श्लेष्मनिर्मुक्तिं स्ववस्त्रेण करोतु मे॥१७४॥

सूत उवाच

अथ ते चक्रुरतिथेरशेषमुदितं तथा। तथापुर्विस्मयं विप्रा नरवानरराक्षसाः ॥१७५॥
शिवा देवी च शम्भुश्च सभ्रूमङ्गमुदैक्षताम् । मनसा चाप्यभाषेतामतिथिः शम्भुरेवच ॥१७६॥
अतिथिश्च प्रसन्नोऽभूच्छङ्खचक्रगदाधरः। पीताम्बरः समस्ताङ्गभूषितोऽतीव दीप्तिमान्॥१७७॥
यः पुराराधितः शम्भुः प्रसन्नोऽभूत्त्रिलोचनः ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशःसर्वाभरणभूषितः ॥१७८॥

कष्ट नहीं होगा ॥१६६॥ इस तरह से कहकर जाम्बवान् ने अपने दोनों हाथों से पकड़कर उठाया । उसके बाद वे द्विज के किनारे के भाग को पकड़कर उनको बैठाये ॥१६७॥ इसके पश्चात् श्रीराचमन्द्रजी ने उन ब्राह्मण श्रेष्ठों की प्रदक्षिणा की । ब्राह्मणों ने उनको आशीर्वाद दिया । उसके बाद श्रीरामचन्द्रजी ने उन लोगों को ताम्बूल प्रदान किया ॥१६८॥ श्रीरामचन्द्रजी ने अपने भाइयों के साथ ब्राह्मणों के पैर को पकड़ा और कहा अरी सीते ! इस अतिथि के शरीर को तुमने धोया नहीं ॥१६९॥ इस ब्राह्मण के दोनों जङ्घाओं पर मैल लगी है और इनका मुख भी मल से युक्त है । इनके मुख को अच्छी तरह से धोओ । ब्राह्मण मल वर्दास्त नहीं कर पाते हैं ॥१७०॥ **सीताजी ने कहा**— मैंने इनके मल को अच्छी तरह से धो दिया था, यह अभी-अभी निकल आया है । श्रीरामचन्द्रजी ने कहा इनके मल को फिर से धोओं नहीं तो मुझको पाप लगेगा ॥१७१॥ उसके बाद सीताजी उनके मुख को धोकर चुपचाप खड़ी रहीं । अत्यन्त क्रोधी ब्राह्मण ने सीताजी और रामचन्द्रजी को कहा ॥१७२॥ हे राम ! मेरे जो दोनों पैर हैं उन दोनों को सीता पकड़े और भरत मेरे दोनों हाथों को पकड़े । लक्ष्मण मुझेको बीज प्रदान करें ॥१७३॥ और मेरे केशों को शत्रुघ्न संवारे । मेरे कफ आदि को अपने वस्त्र से पोंछ कर दूर करें ॥१७४॥ **सूतजी ने कहा**— उसके बाद अतिथि ने जैसे-जैसे कहा सभी कर्मों को उन लोगों ने किया । उसके बाद वे सभी ब्राह्मण, मनुष्य तथा वानर तथा राक्षस आश्चर्यित हो गये ॥१७५॥ शिवा देवी और शम्भु भौंहे टेढ़ी करके देखने लगे । शम्भु तथा अतिथि ने मन ही मन बातें की ॥१७६॥ प्रसन्न होकर अतिथि शङ्ख, चक्र, गदाधारी हो गये । वे

कोटिसूर्यप्रतिकाशः किरीटी करुणानिधिः ।
आलम्ब्य चक्रिणः पाणिमातिष्ठत सदाशिवः ॥१७९॥
रामः परमधर्मात्मा पुलकाञ्चितविग्रहः। दण्डवन्निपपातोर्व्यामानन्दप्लावितेक्षणः ॥१८०॥
अनमन्भ्रातरस्तस्य दण्डवद् भूतले स्थिताः ।
शिव उत्थाप्य काकुत्स्थमालिङ्ग्याघ्राय मस्तकम् ॥१८१॥
उवाच मधुरं वाक्यं रामं राजीवलोचनम्।

शिव उवाच

वरं वृणु प्रसन्नोऽस्मि ब्रह्मादेरपि दुर्लभम् ॥१८२॥
तवादेयं न मे किंचिद्वृणुत्वं न चिराय वै ।

श्रीराम उवाच

न याच्यं मे जगन्नाथ भूराज्यं मम साम्प्रतम् ॥१८३॥
स्वर्गश्च कर्मभिः प्राप्तो भक्तिस्त्वत्पाददर्शनात् ।
अरोग्यं पश्य भुञ्जेऽहं सा सीता योषितां वरा ॥१८४॥
वशीकृतासर्वनृपाः प्रज्ञा धर्मसमन्विताः ।
हर्ष एव ममापन्नस्त्वदागमनतोऽच्युत। तथापि वरये किंचिद्भक्तिरस्तु स्थिरा त्वयि॥१८५॥
तथा मम गृहे देव त्रिवर्षं तिष्ठ हे प्रभो। ब्रुवन्समस्तधर्मांश्च रूपेणानेन शङ्कर !॥१८६॥

शिव उवाच

एवमस्तु तथा राम सर्वं ते सम्भविष्यति। अथाह चक्री राजानं रामं राजीवलोचनम् ॥१८७॥

पीताम्बर धारण किए हुए थे उनके सारे अङ्ग अलंकृत थे और कान्ति युक्त थे ॥१७७॥ श्रीरामचन्द्रजी ने जिस शम्भु की आराधना की थी वे प्रसन्न होकर त्रिलोचन हो गये । उनका शरीर शुद्ध स्फटिक मणि के समान था और वे सभी अलङ्कारों से अलंकृत थे ॥१७८॥ करोड़ों सूर्य के समान उनकी कान्ति थी, करुण सागर वे किरीट धारण किए थे । वे सदाशिव भगवान विष्णु के हाथ को पकड़कर खड़े थे ॥१७९॥ यह देखकर परम धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी का सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया था । वे दण्ड के समान पृथिवी पर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किए और उनके नेत्र आनन्दाश्रु से भर गये थे ॥१८०॥ इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी के सभी भाइयों ने भी साष्टाङ्ग प्रणाम किया । शिवजी ने श्रीरामचन्द्रजी को उठाया, उनका आलिङ्गन किया और उनका माथा सूंघा ॥१८१॥ उन्होंने कमल के समान नेत्र वाले श्रीरामचन्द्रजी से मधुर वाणी में कहा **शिवजी ने कहा—** मैं आप पर प्रसन्न हूँ । आप वरदान माँगे । मैं ब्रह्मा आदि के लिए भी दुर्लभ वरदन दूँगा ॥१८२॥ आपके लिए मेरे पास कुछ भी अदेय नहीं है, आप देर न करें शीघ्र वरदान माँगे । **श्रीराचमन्द्रजी ने कहा—** हे जगन्नाथ ! मुझे इस समय कुछ भी याचने योग्य नहीं है । पृथिवी और राज्य को माँगना तो अनुचित है ॥१८३॥ आपके चरणों में भक्ति होने के कारण मुझे अपने कर्मो से ही स्वर्ग प्राप्त है । आप देखें मैं आरोग्य का उपभोग कर रहा हूँ । नारियों में श्रेष्ठ सीता मेरी पत्नी हैं ॥१८४॥ सभी राजागण मेरे वशवर्ती हैं और प्रजायें धार्मिक है । हे अच्युत ! आपके आगमन से मुझको हर्ष ही मिला है ॥१८५॥ फिर भी मैं यह माँगता हूँ कि आप में मेरी स्थिर भक्ति हो । और हे प्रभो ! आप मेरे

वरं वृणु महाभाग प्रसन्नोऽहं यमिच्छसि। श्रीरामआह वचनं ममप्रार्थ्यं न चास्तिहि॥१८८॥
यत्प्राप्यं शम्भुतः प्राप्तमन्यत्सर्वमुदीरितम्। किं चैकं वरये विष्णो प्रसन्नः सर्वदा भव॥१८९॥
अथ सीतां हरिः प्राह प्रसन्नोऽहं तवाधुना। वरं वृणु प्रयच्छामि ततः सीताऽब्रवीदिदम्॥१९०॥
वरो वृतः पुरा भर्त्रा न चान्यो मे वरो वरः।
यदि कामं प्रयच्छेथा मनश्च परपूरुषात्॥१९१॥
सन्निवृत्तं च भवतान्नमस्तेऽस्तु द्विज प्रभो। अथ ते मुनयः सर्वे प्रणेमुर्देवतोत्तमौ॥१९२॥
अथासौ राघवं प्राहभुङ्क्ष्व त्वं बन्धुभिः सह।
एकान्तमन्दिरे रम्ये देव्या सह वसामि ते॥१९३॥
विष्णुःसमस्तकरणः समुद्रतनयान्वितः। एकस्मिन्मन्दिरे राम तिष्ठतां लोलुपो हि सः॥१९४॥
अथ शुद्धमहागारे पीठाढ्ये बहुभाजने। अग्रे वसिष्ठो भगवानुपविष्टस्तयोर्मुनिः॥१९५॥
अपरे ऋषयःसर्वे यथावृद्धं नृपास्तथा। तेषामभिमुखो रामो भ्रातृभिः सहितो नृपः॥१९६॥
तरुणे समभागे च आसने तानवेशयत्। हनूमत्प्रमुखान्भृत्यानाह रामोऽनुसान्त्वयन्॥१९७॥
भवन्तःपरितिष्ठन्तु पश्चाद्भुञ्जे न चान्यथा। ततस्ते प्रददुःसर्वे पादार्घाननुपूर्वशः॥१९८॥
बुभुजुश्चापि ते सर्वे ये रामस्योपसेविनः। तेषां दत्त्वाऽथ ताम्बूलं कपीन्द्रादीनभोजयत्॥१९९॥
भुक्तवत्सु समस्तेषु रामो राजीवलोचनः। दीनान्धकृपणादीनां पशुपक्षिमृगस्य च॥२००॥

गृह में तीन वर्षों तक निवास करें ॥१८६॥ और इसी तरह से सभी धर्मों का उपदेश करते रहें। **शिवजी ने कहा—** हे श्रीराम ! जो तुम चाहते हो वह सारी बातें होंगी ॥१८७॥ इसके बाद चक्रधारी भगवान् विष्णु ने राजा रामचन्द्रजी से कहा हे महाभाग ! मैं प्रसन्न हूँ आप जो चाहें वरदान माँग लें ॥१८८॥ श्रीरामचन्द्रजी ने कहा— संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसे मैं माँगू। जो कुछ भी प्राप्त करना था शङ्करजी से प्राप्त कर लिया ॥१८९॥ किन्तु हे भगवन् विष्णो ! मैं आपसे एक वरदान माँगता हूँ कि आप मुझ पर सदा प्रसन्न रहें। इसके बाद श्रीहरि ने सीताजी से कहा मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम वरदान माँगों मैं तुम्हें वरदान दे रहा हूँ। इसके बाद सीताजी ने कहा मेरे पतिदेव ने पहले ही वरदान माँग लिया है, उससे बढ़कर मेरे लिए दूसरा कोई वरदान नहीं है ॥१९०-१९१॥ यदि आप मुझे वरदान देना चाहते हैं तो यही दीजिये कि मेरा मन कभी भी दूसरे पुरुष में न लगे। हे द्विज ! प्रभों ! आपको प्रणाम है ॥१९२॥ उसके पश्चात् सभी मुनियों ने उन दोनों उत्तम देवों को प्रणाम किया। उसके बाद उन्होंने कहा आप अपने बान्धवों के साथ भोजन करें ॥१९३॥ मैं अपनी देवी के साथ एकान्त में आपके मनोहर मन्दिर में निवास करूँगा। हे श्रीराम ! सबकुछ करने वाले भगवान् विष्णु भी एक मन्दिर में रहना चाहते हैं। उसके पश्चात् जिसमें अनेक आसन और पात्र थे उस विशाल तथा शुद्ध भवन में ॥१९४-१९५॥ उन दोनों (सीताजी और रामजी) के सामने मुनि वसिष्ठ बैठे। दूसरे ऋषिगण तथा वृद्ध राजागण बैठे ॥१९६॥ उन सबों के समक्ष श्रीरामचन्द्रजी अपने भाइयों के साथ देदीप्यमान तथा एक समान आसन पर सबलोगों को बैठाये ॥१९७॥ सान्त्वना प्रदान करते हुए श्रीरामचन्द्रजी हनुमानजी आदि अपने अनुचरों से कहे आप सभी लोग बैठें मैं सबों के पश्चात् मैं भोजन करूँगा ॥१९८॥ इसके बाद उन सबों ने सबों को पदार्थ प्रदान किया फिर श्रीरामचन्द्रजी ने सभी सेवकों ने भोजन किया ॥१९९॥ उन कपीन्द्र इत्यादि को पान प्रदान करके श्रीरामचन्द्रजी

दत्त्वा हि भोजनं सन्ध्यां वन्दितुं हि समारभत् ।
सन्ध्याजपादिकं कृत्वा नत्वा तेषां नृपस्ततः ॥२०१॥
सिंहासनगतो रामः पौरजानपदादिभिः। सेव्यमानःसभास्थानं गतो रेजे स राघवः ॥२०२॥
सर्वदेवपरीवारो यथादेवःशचीपतिः। राजकार्यमशेषं च कृतवान्भ्रातृभिःसह ॥२०३॥
नाम्ना चैकैकशःसर्वान्विससर्ज स राघवः। भ्रातृन्विसर्जयामास वानरादींस्तथाऽपरान्॥२०४॥
अथ रामं महातेजा वसिष्ठोवाक्यमुक्तवान्। तव प्रातर्हि यत्कार्यं न च विस्मर राघव ॥२०५॥
आस्ते शम्भुर्जगन्नाथो भगवानम्बिकापतिः । स्मर्तव्यो वन्दनीयश्च भगवानथ यत्नतः॥२०६॥
तथेत्युक्त्वा गुरुं राजा नत्वा तं च व्यसर्जयत् ।
स्वयं च भार्यामभजद्देवदेवं विचिन्तयन् ॥२०७॥

ऋषय ऊचुः

प्रातःसमुत्थाय गुरो रामो मतिमतांवरः । किं चकार तदाख्याहि श्रोतुं कौतूहलं हि नः॥२०८॥

सूत उवाच

शम्भुं विलोक्याथ ततो बभाषे रामः कथां कीर्त्तय शङ्करस्य ।
तृप्तिर्न जाता मुनिवर्य ! शृण्वतो महेशामाहात्म्यमघौघनाशनम् ॥२०९॥

शम्भुरुवाच

अथ प्रश्नशेषस्योत्तरमीशभाषितं ते कीर्तयिष्यामि । अन्यायोपर्जितद्रव्यैरीश्वरं य उपासते ने व्यङ्गा जायन्ते ॥२१०॥ तद्यथा कश्चिद्रूपको नाम राक्षसोऽन्यायार्जितेन द्रव्येण शङ्करमाराध्य तेनैव द्रव्येण

ने भोजन कराया । सबलोगों के भोजन कर लेने के पश्चात् कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी ॥२००॥ दीनों अन्धों, कृपणों, पशुओं तथा पक्षियों आदि को भोजन प्रदान करके सन्ध्या करना प्रारम्भ किए ॥२०१॥ सन्ध्या तथा जप आदि करके तथा सभी देवताओं को नमस्कार करके राजा रामचन्द्रजी नागरिकों के साथ सिंहासन पर बैठे ॥२०२॥ सभा स्थान में जाकर श्रीरामचन्द्रजी सुशोभित हुए । वे सभी देवों के साथ तथा परिवार के साथ उसी तरह से सुशोभित हुए जैसे देवताओं के साथ इन्द्र सुशोभित होते हैं ॥२०३॥ वे अपने भाइयों के साथ राज्य के सारे कार्यों को किए । उसके बाद एक-एक का नाम लेकर श्रीरामचन्द्रजी ने सबों को विदा किया ॥२०४॥ उन्होंने अपने भाइयों तथा दूसरे मनुष्यों को भी विदा किया । उसके पश्चात् महातेजस्वी वसिष्ठजी ने श्रीरामचन्द्रजी से कहा ॥२०५॥ हे श्रीरामचन्द्र ! आप अपने प्रातःकाल के कार्यों को न भूलें। जगत् के स्वामी अम्बिका पति शम्भु हैं, वे जगत् के स्वामी हैं ॥२०६॥ आपको प्रयत्न पूर्वक उनका स्मरण करना चाहिए और उनकी वन्दना करनी चाहिए । श्रीरामचन्द्रजी ने कहा ठीक है ऐसा ही होगा, इसके पश्चात् उन्होंने गुरु वसिष्ठ को विदा किया ॥२०७॥ उसके पश्चात् देवाराध्य शङ्करजी का ध्यान करते हुए वे सीताजी के पास गये । **ऋषियों ने कहा—** हे गुरो ! आप यह बतलाइये कि प्रातःकाल उठकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ने क्या किया ? इस बात को जानने की हमलोगों की उत्कण्ठा है।॥२०८॥ **सूतजी ने कहा—** शम्भु को देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा कि आप शङ्करजी की कथा कहें । हे मुनिवर्य! पाप समूह को विनष्ट करने वाले शङ्करजी के माहात्म्य को सुनने से मुझे तृप्ति नहीं हुयी हैं ॥२०९॥ **शम्भु मुनि ने कहा—** अब मैं आपको शेष के प्रश्न तथा शङ्करजी द्वारा उसके उत्तर को सुनाता हूँ । जो पुरुष

घण्टामीश्वरप्रीतये कृतवान् ॥२११॥ तस्य पुत्रः सम्पातिरीतिख्यातः । चौर्यार्जितैःशङ्करं पूजयामास॥२१२॥ तावुभावेकस्मिन्दिवसे मम्रतुः गतौ शिवलोकं वीरभद्रेण भाषितौ च ॥२१३॥ भो रूपक ! अन्यायार्जितेन द्रव्येण भवता पूजा कृता घण्टादिकं च तेन भावेन व्यङ्गोभूत्वा चौरगणो भविष्यसि ॥२१४॥ शिवपदवचनाद्व्यक्तं नामाश्रवणाच्छ्रोत्रं तस्य स्वनेनध्वस्तं भवति नो दर्शनमेतावदेव त्वयेश्वरपूजा सम्यक्कृता ॥२१५॥ अतोभक्तिश्च भविष्यति वीरभद्रस्त्वनशनं नाम गणं क्वचिद्विचरन्तमित्यादिदेश ॥२१६॥ तौ च तथाभूतौ शिवलोकेऽतिष्ठताम् ॥२१७॥

शम्भुरुवाच

अथोपहतद्रव्यपूजा कथां हनुमते महेशभाषितां कथयिष्यामि ॥२१८॥ श्रृणु राघव ! प्रमथानां चरित्रमेवैकस्य कर्मविपाकं कथयिष्यामि ॥२१९॥ उपहताङ्गगणव्याख्या क्रियतामिति हनुमत्पृष्टः॥२२०॥

शिव उवाच

तदुपहतद्रव्यं ज्ञानतो य ईश्वरेऽर्पयिष्यति एतदुक्तं ज्ञानिनोऽतः श्रृणु ॥२२१॥ एष सर्वाङ्गस्वेदिलः सर्वकालं सर्वाङ्गस्वेदिलः स्वेदार्द्रवसनःस्वेदसम्पादिताल्पप्रवाहशरीरो नासाग्रनिपतितस्वेदविन्दुः स्पर्शायोग्यो दृश्यते ॥२२२॥ स पुरा स्वेदकरणेश्वरार्चनं कृतवान् । अत्रेतिहासं कीर्तयिष्यामि॥२२३॥

अन्याय द्वारा अर्जित सम्पत्ति के द्वारा शङ्करजी की उपासना करते हैं वे अगले जन्म में लङ्गड़े होते हैं॥२१०॥ एक रूपक नामक राक्षस था वह अन्याय पूर्वक अर्जित द्रव्य से शिवजी की आराधना करता था । उसने उसी द्रव्य से शङ्करजी की प्रसन्नता के लिए घण्टा खरीदा ॥२११॥ उसका पुत्र सम्पाति के नाम से प्रसिद्ध था । उसने चोरी से कमाये धन से शङ्करजी की पूजा की ॥२१२॥ वे दोनों एक ही दिन मर गये । वे शिवलोक में गये तो वहाँ पर वीरभद्र ने कहा ॥२१३॥ ऐ रूपक ! तुमने अन्याय पूर्वक अर्जित धन से पूजा किया है और घण्टा आदि भी लगाया है । उसके कारण तुम टेढे शरीर वाले होकर चोरों में अग्रगण्य हो जाओगे ॥२१४॥ शिवजी के वचन से अपना स्पष्ट नाम सुनने से उस ध्वनि से उसके कान बहरे हो गये आँखे नहीं फूटी है अतएव तुमने शिवजी की अच्छी तरह से पूजा की है ॥२१५॥ अतएव तुम में शिवजी की भक्ति भी होगी । वीरभद्र ने कहीं पर विचरण करने वाले अनशन नामक अपने गण को आदेश दिया॥२१६॥ वे दोनों वैसा ही होकर शिवलोक में रहने लगे ॥२१७॥ **शम्भु मुनि ने कहा—** अब मैं उपहत द्रव्य से की जाने वाली पूजा से सम्बद्ध कथा जिसे शिवजी ने हनुमानजी को सुनाया था उसे सुनाता हूँ ॥२१८॥ हे श्रीरामचन्द्र ! मैं आपको प्रत्येक प्रमथ के चरित्र को तथा उसके फल को सुनाता हूँ ॥२१९॥ हनुमानजी ने शिवजी से कहा उपहत अङ्ग वाले गण की कथा आप कहिए ॥२२०॥ **शिवजी ने कहा—** जो व्यक्ति जानकर उपहत (उच्छिष्ट) द्रव्य शिवजी को समर्पित करता है, उसको होने वाले ज्ञानी पुरुष के द्वारा उक्त फल को तुम सुनो ॥२२१॥ उस व्यक्ति के सम्पूर्ण शरीर में स्वेद (पसीना) निकलता रहता है। उसके शरीर के सभी अङ्गों से सदैव स्वेद निकलता रहता है । स्वेद से उसके वस्त्र भिंगे रहते हैं । स्वेद की पतली धारा उसके शरीर से निकलती रहती है । उसकी नाक के अग्रभाग से पसीना टपकता रहता है । वह अस्पृश्य बना रहता है ॥२२२॥ प्राचीन काल में स्वेद करण ने शिवजी की पूजा की मैं उसका इतिहास सुनाता हूँ ॥२२३॥ चेकितान नामक एक ब्राह्मण किसान हो गया । वह प्रतिदिन कृषि कार्य करके

चैकितानिरिति ख्यातो ब्राह्मणः कर्षकोऽभवत् ।
स नित्यं कृषिमुत्पाद्य प्रातः स्नात्वा च नित्यशः ॥२२४॥
मध्याह्नाकाले सम्प्राप्ते सञ्जपन्ब्रह्मणस्त्वसौ । अन्नमानय मे क्षिप्रमिति भार्यामभाषत ॥२२५॥
तयाऽऽनीतेन चान्नेन वेगेन शिवपूजनम् । कृतवानर्कसन्तप्तः स्वेदिलः सर्वदैव तु॥२२६॥
गन्धपुष्पाक्षताद्यैश्च स्वेदबिन्दुसमन्वितैः । अथ सायन्दिनेप्राप्ते क्षालिताङ्गःसुशोभनः ॥२२७॥
पूजयामास देवेशं कालसम्भवसाधनैः । ममाराथ महाबुद्धिः शिवलोकं गतश्च सः ॥२२८॥
वीरभद्रेण चाप्युक्तो भवत्वं स्वेदिलो गणः । स्वेदस्पृष्टपदार्थैश्च पुरा शम्भुःप्रपूजितः ॥२२९॥
नित्यं स्वेदसमायुक्तस्तेन स्वेदगणो भव ।

शम्भुरुवाच

वीरेणाथ समादिष्टः प्राप्तो राम ! गणस्त्वयम् ॥२३०॥

अमुं घण्टामुखं पश्यायं पुरा वैश्यो विभावसो नाम धार्मिको महादानकर्त्ता नित्यं ब्राह्मणभोजनं कारयित्वा कृतानुष्ठानः प्रातःकाले शिवं नमस्कृत्य कुसुमैः सम्पूज्य किञ्चित्प्रदेशं गोमयेनोपलिप्य पद्मादिकमर्जयित्वा देवाय समर्प्य उपहतघण्टानादं कृतवान् ॥२३१॥

राम उवाच

कथमुपहतघण्टा ॥२३२॥

शम्भुरुवाच

आसीत्पुराबलःकश्चित्सोम इत्यभिविश्रुतः । तस्य पुत्रश्च मन्दाख्यो दशवर्षवया अभूत् ॥२३३॥
स चाग्निपक्वकुल्माषान्घण्टायां प्राक्षिपन्नृप । तानभक्षयदप्येष तेन चोपहतोऽभवत् ॥२३४॥

प्रातःकाल स्नान करके ॥२२४॥ मध्याह्न काल की बेला में मन्त्र का जप करता था । वह अपनी पत्नी से कहता था; शीघ्र मेरा भोजन लाओ ॥२२५॥ पत्नी के द्वारा लाये गये अन्न से वह शीघ्रता से शिवजी की पूजा करता था । सदैव सूर्य से सन्तप्त होने के कारण पसीना से लथपथ वह पूजा करता था ॥२२६॥ स्वेद की विन्दु से युक्त वह चन्दन, पुष्प तथा अक्षत से शिवजी की पूजा करता था । उसके बाद सायंकाल होने पर अपने अङ्गों को अच्छी तरह से धोकर ॥२२७॥ उस समय मिलने वाले साधनों से शिवजी की पूजा वह करता था । महाबुद्धिमान वह जब मरा तो शिवलोक में गया ॥२२८॥ वीरभद्र ने उससे कहा कि तुम स्वेदिल गण बन जाओ । तुमने पहले स्वेद से युक्त पदार्थों से शिवजी की पूजा की है ॥२२९॥ उसके कारण तुम सदैव स्वेद से युक्त स्वेदगण हो जाओ । **शम्भु मुनि ने कहा**— हे रामजी ! वीरभद्र के द्वारा आदिष्ट होकर वह शिवजी का गण हो गया ॥२३०॥ आप इस घण्टा के मुख को देखें प्राचीन काल में विभावसो नामक वैश्य, जो महाधार्मिक था, वह महादानी था । वह प्रतिदिन ब्राह्मण भोजन कराने के बाद अनुष्ठान करता था । वह प्रातःकाल शिवजी को नमस्कार करके उनकी पुष्पों से पूजा करता था, वह थोड़े से स्थान को गोबर से लिप देता था । कमल आदि लाकर शिवजी को समर्पित करता था उसके बाद वह अशुद्ध घण्टा नाद करता था ॥२३१॥ **श्रीरामचन्द्रजी ने कहा**— घण्टा कैसे उपहत हो गयी॥३३२॥ **शम्भु मुनि ने कहा**— प्राचीन काल में कोई बल नामक पुरुष था । वह अत्यन्त विख्यात था उसके पुत्र का नाम मन्द था । उसकी दश वर्ष की अवस्था थी ॥२३३॥ वह आग में पकायी गयी कुल्माषों (कुल्थी) को घण्टा पर फेंकता था । और वह कुल्माषों को ही खाता था । उसके कारण वह घण्टा जूठी हो

ग्रहीतुमथ तं वैश्यं यतमानोऽब्रवीदिदम्। अथ वैश्यः स्वयं तत्र निश्चित्य द्रव्यशोधनम्॥२३५॥
लौकिके कृतवाँल्लोके व्यवहारपदश्च ताम्। एतेन पापयोगेन गणोघण्टामुखोऽभवत्॥२३६॥

राम उवाच

द्रव्यशुद्धेर्विशुद्धा सा कथं पापस्य कारणम् ।
सम्यगुक्तं द्रव्याशुद्ध्यैकथं न द्रव्यशोधिनी ॥२३७॥

शम्भुरुवाच

न लौकिकव्यवहृतौ तवाभक्तो भविष्यति ।
स याति च शिवस्थानं वक्ता चापि तथा भवेत् ॥२३८॥

सूत उवाच

यश्च वक्ति कथामेतां स तेन सदृशो भुवि। गुह्याद्गुह्यतमं विप्राःशिवज्ञानप्रदं भवेत्॥२३९॥
एतद्वःकथितं विप्राःपुण्यायुष्यमतं महत्। य इदं शृणुयाद्भक्त्या शिवलोके महीयते ॥२४०॥
पुराणवक्त्रे दातव्यं वस्त्रं गोहमभूषणम्। भूमिसस्यफलोपेता देया शक्त्यनुसारतः ॥२४१॥
शिवराधसंवादं सर्वाघौघनिकृन्तनम्। यःपठेच्छृणुयाद्वापि स याति परमं पदम्॥२४२॥

इति श्रीपद्ममहापुराणे पञ्चमे पातालखण्डे शिवराघवसंवादे सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥

समाप्तं पञ्चमं पातालखण्डम् ॥५॥

* * *

गयी॥२३४॥ उसके पश्चात् उस वैश्य को पकड़ने के लिए प्रयास करता हुआ उससे कहा— उसके बाद वैश्य वहाँ पर स्वयम् निश्चित करके लौकिक व्यवहार के लिए उस घण्टा का भी द्रव्य शोधन किया । इसी पाप के कारण वह घण्टामुख नामक शिवजी का गण हो गया ॥२३५-२३६॥ श्रीरामचन्द्रजी ने कहा— द्रव्य की शुद्धि करने के कारण वह घण्टा तो शुद्ध हो जाती थी फिर वह पाप का कारण कैसे बनी । अच्छी तरह से की गयी द्रव्य की शुद्धि, घण्टा द्रव्य की शुद्धि क्यों नहीं हुयी ॥२३७॥ **शम्भु मुनि ने कहा—** लोक व्यवहार में कोई भी आपका अभक्त नहीं होगा । वह शिव लोक में जायेगा और इस कथा का वक्ता भी वैसा ही होगा ॥२३८॥ **सूतजी ने कहा—** जो लोक में इस कथा को कहेगा वह भी उसी के समान हो जायेगा । हे ब्राह्मण ! वह अत्यन्त रहस्यमय भी शिव सम्बन्धी ज्ञान को प्रदान करने वाला होगा ॥२३९॥ हे विप्रों ! मैंने आपलोगों को सर्वोत्तम आयु तथा पुण्य प्रदान करने वाला प्रसङ्ग सुनाया है । जो इस कथा को भक्ति पूर्वक सुनेगा वह शिवलोक में पूजित होगा ॥२४०॥ पुराण के वक्ता को वस्त्र, गौ तथा सुवर्ण का भूषण प्रदान करना चाहिए । अपनी शक्ति के अनुसार सस्य तथा फल से युक्त भूमि का दान करना चाहिए ॥२४१॥ यह शिवराघव संवाद सम्पूर्ण पाप समूह को विनष्ट करने वाला है । जो इसको पढ़ता या सुनता है वह परमपद को प्राप्त कर लेता है ॥२४२॥

इस तरह श्रीपद्ममहापुराण के पाँचवे पाताल खण्ड के शिवराघव संवादान्तर्गत एक सौ सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११७।।

इस तरह पद्ममहापुराण के पाँचवें पाताल खण्ड का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

* * *